



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNA-PĪṬHA MŪRTIDEVI JAINA GRANTHAMĀLĀ
SANSKRITA GRANTHA No. 9

MAHĀPURĀNA

Vol. I.

UTTAR PURĀNA

OF

BHAGAVAT JINASENĀCĀRYA

PART SECOND

WITH HINDI TRANSLATION



Translated and Edited

BY

PANDITA PANNALAL JAIN, SAHITYACHARYA

Sahityachyapak—GANESHA DIGAMBAR JAINA VIDYALAYA, SAGAR.

Published by

Bhāratīya Jñānapīṭha Kāshī

First Edition }
1000 Copies. }

BHADRAPADA, VIR SAMVAT 2477
VIKRAMA SAMVAT 2008
SEPTEMBER, 1951.

{ *Price*
{ *Rs. 10/-*

BHĀRATIYA JÑĀNA-PITHA KĀSHI

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTI DEVĪ

JÑĀNA-PĪTHA MURTI DEVI JAIN GRANTHĀMALĀ

IN THIS GRANTHAMALA CRITICALLY EDITED JAIN AGAMIC PHILOSOPHICAL,
PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSA, HINDI,
KANNADA & TAMIL Etc, WILL BE PUBLISHED IN
THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUE OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT
SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE ALSO WILL BE PUBLISHED

SANSKRIT GRANTHA No. 9

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

Secy., BHARATIYA JÑANAPITHA,

POST BOX No 48, BANARAS N 1

Founded on
Phalgun Krishna 9,
Vira Sam. 2470

} All Rights Reserved. {

Vikrama Samvat 2000
18th Feb 1944

द्वितीयभागस्य विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पद्मविंशतितम पर्व		लिए पहुँचा। चक्रवर्ती उसकी विनयसे बहुत प्रसन्न हुए।	४५-५०
- चक्रवर्ती भरतने विधिपूर्वक चक्ररत्नकी पूजा की और फिर पुत्रोत्पत्तिका उत्सव मनाया। नगरीकी सजावट की गई। अनन्तर दिग्विजयके लिए उद्यत हुए। उस समय शरद ऋतुका विस्तृत वर्णन। दिग्विजयके लिए उद्यत चक्रवर्तीका वर्णन। तत्कालोचित सेनाकी शोभाका वर्णन।	१-७	समुद्रका विविध छंदों द्वारा विस्तृत वर्णन। अंतमें कवि द्वारा पुष्पका माहात्म्य वर्णन।	४६-६१
सप्तविंशतितम पर्व		पद्मोत्पत्तिशुचम पर्व	
पूर्व दिशामें प्रयाणका वर्णन। गंगाका वर्णन।	७-६	अनन्तर चक्रवर्ती दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढ़े। मार्गमें अनेक राजाओंकी वश करते जाते थे। बीचमें मिलनेवाले विविध देशों, नदियों और पर्वतोंका वर्णन।	६२-७१
अष्टविंशतितम पर्व		दक्षिण समुद्रके तटपर चक्रवर्तीने अपनी समस्त सेना ठहराई। वहाँकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन। चक्रवर्तीने स्वयं द्वारा दक्षिण समुद्रमें प्रवेश कर वहाँके अधिपति स्पतरदेवकी जीता।	७२-८०
सारथी द्वारा गंगा तथा यन्त्री शोभाका वर्णन।	६-१७	त्रिंशुचम पर्व	
हाथी तथा घोड़ों आदि सेनाके अंगोंका वर्णन।	१८-२५	सम्राट् भरत दक्षिण दिशाकी विनय कर पश्चिमकी ओर बढ़े। वहाँ विविध वनों, पर्वतों और नदियोंकी प्राकृतिक सुषमा देखते हुए वे बहुत ही प्रसन्न हुए। अमरा वे किन्ध्य गिरिपर पहुँचे। उत्तरी घिसरी हुई शोभा देखकर उनका चित बहुत ही प्रसन्न हुआ। वहाँ उन्होंने अपनी सेना ठहराई। अनेक वनके स्वामी उनके पास तरह-तरहकी भेंट लेकर मिलनेके लिए आये। भरतने सबका यथोचित सम्मान किया। समुद्रके किनारे-किनारे जाकर वे पश्चिम सभ्य-समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने दिव्य सस्त्र धारणकर पश्चिम समुद्र में आरूह योजन प्रवेश किया और अन्त-राधिपति प्रभाम नामक देवकी ध्यान किया। पुष्पके प्रभावके क्या नहीं होता ?	८१-६५
अष्टाविंशतितम पर्व		पद्मोत्पत्तिशुचम पर्व	
दूसरे ही दिन प्रातःकाल होते ही दिग्विजयके लिए आगे प्रयाण किया। चक्ररत्न उनके आगे आगे चल रहा था। तात्कालिक सेनाकी शोभाका वर्णन। अमरा घाट पर वे गंगातटपर पहुँचे। वहाँ वे उपसमुद्रकी देखते हुए स्थलमार्गसे गंगारे किनारेके उपवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ सेनाकी ठहराया। अनन्तर समुद्रके किनारेपर पहुँचे, वहाँ समुद्रका विस्तृत वर्णन।	२६-३२	अनन्तर अंधारूह करके घोड़ोंके अधिपति भरत चक्रवर्तीने उत्तरकी ओर प्रयाण	
भरत चक्रपर सबसमुद्रमें स्थलकी तरह भ्रमणे आगे बढ़ गये। बारह योजन आगे चलकर उन्होंने अपने नामसे विद्वित एक बाण छोड़ा, जोकि भागप देवकी सभामें पहुँचा। पहले तो भागपदेव बहुत विगड पर बारहों बाणपर चक्रवर्तीका नाम देण पर्वराहित हुआ। तथा हार, गिराणन और अन्तस ताय लेकर चक्रवर्तीके स्वागतके	३३-४४		

विषय

किया । क्रमशः चलते हुए विजयापार्थ पर्वतकी उपत्यकामें पहुँचे । वहाँ वे अपनी सभस्त सेना ठहराकर निश्चिन्त हुए । पता चलनेपर विजयापार्थदेव अपने समस्त परिकरके साथ इनके पास आया और उनका आज्ञाकारी हुआ । विजयापार्थको जीत लेनेसे इनकी दिग्विजयका अर्धभाग पूर्ण हो गया । अनन्तर उन्होंने उत्तरभारतमें प्रवेश करनेके अभिप्रायसे दण्डरत्न द्वारा विजयापार्थ पर्वतके गुहाद्वारका उद्घाटन किया ।

६६-१११

द्वात्रिंशत्तम पर्व

गर्मां शान्त होनेपर उन्होंने गुहाके मध्यमें प्रवेश किया । काकिणी रत्नके द्वारा मार्गमें प्रकाश होना जाता था । बीचमें उम्मन्जला तथा निमन्जला नामकी नदिया मिलीं, उनके तटपर सेनाका विश्राम हुआ । स्वपतिरत्नने अपने बुद्धिबलसे पुत्र तयार किया जिससे सभस्त सेना उस पार हुई । गुहागर्भसे निकलकर सेना सहित भरत उत्तर भरत-क्षेत्रमें पहुँचे । चिलात और श्रावर्त नामके राजा बहुत कुपित हुए । वे परस्परमें मिलकर चक्रवर्तीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए । नाग जातिके देवोंकी सहायतासे उन दोनोंने चक्रवर्तीकी सेनापर घनघोर वर्षा की जिससे ७ दिन तक चक्रवर्तीकी सेना चर्मरत्नके बीचमें नियन्त्रित रही । अनन्तर जयकुमारके आग्नेय बाणसे नाग जातिके देव भाग खड़े हुए । और अब उपद्रव शांत हुआ । चिलात और श्रावर्त दोनों ही म्लेच्छ राजा निरपपा होकर शरणमें आये । क्रमशः भरतने उत्तरभरतके समस्त म्लेच्छ लक्ष्मणपर विजय प्राप्त की ।

११२-१३०

त्रयस्त्रिंशत्तम पर्व

दिग्विजय करनेके बाद चक्रवर्ती सेना सहित अपनी नगरीके प्रति वापिस लौटे । मार्गमें अनेक देश, नदियाँ और पर्वतोंकी उत्सवधन करते हुए बंलास पर्वतके समीप आए । वहाँसे श्री ऋषभ जिनेंद्रजी पूजा करनेके लिए बंलास पर्वतपर गए । अनेक

पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

राजा उनके साथ थे । पुरोहितके द्वारा बंलास पर्वतका वर्णन ।

१३१-१३६

समवसरणका सक्षिप्त वर्णन ।

१३७-१४०

समवसरणमें स्थित श्री ऋषभ जिनेंद्र का वर्णन । सघाटके द्वारा भगवान्की स्तुति का वर्णन ।

१४१-१४०

चतुस्त्रिंशत्तम पर्व

बंलाससे उतरकर अयोध्या नगरीकी ओर प्रस्थान । चक्ररत्न अयोध्या नगरीके द्वारपर आकर एक गया, जिससे सबको श्रद्धापूर्वक हुआ । चक्रवर्ती स्वयं सोच-विचार में पड़ गए । निमित्तज्ञानी पुरोहितने बतलाया कि अभी आपके भाइयोंको वश करना बाकी है । पुरोहितकी सम्मतिसे अनुसार राजदूत भाइयोंके पास भेजे गये । उन्होंने भरतकी आज्ञामें रहना स्वीकार नहीं किया और श्री ऋषभनाथ स्वामीके पास जाकर दीक्षा ले ली ।

१४१-१७१

पञ्चत्रिंशत्तम पर्व

सब भाई तो दीक्षित हो चुके, परन्तु बाहुबली राजदूतकी बात सुनकर क्षुभित हो उठे । उन्होंने कहा कि जब पिताजीने सबको समान रूपसे राजपद दिया है, तब एक सम्राट ही और दूसरा उसके अधीन रहे यह संभव नहीं । उन्होंने दूतको फटकारकर वापिस कर दिया । अन्तमें दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ हुईं ।

१७२-१९६

षट्त्रिंशत्तम पर्व

युद्धके लिए इस ओरसे भरतकी सेना आगे बढ़ी और उस ओरसे बाहुबलीकी सेना आगे आई । बुद्धिमान् मन्त्रियोने विचार किया कि इस भाई-भाईकी लड़ाईमें सेनाका व्यर्थ ही संहार होगा । इसलिए अर्घ्य ही कि स्वयं ये दोनों भाई ही लड़ें । सबने मिलकर नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध, ये तीन युद्ध निश्चित किये । तीनों ही युद्धोंमें जब बाहुबली विजयी हुए तब भरतने कुपित होकर चक्ररत्न घला दिया, परन्तु उससे बाहुबलीकी कृप भी हानि नहीं हुई । बाहुबली चक्रवर्तीके इस व्यवहारसे बहुत ही विरक्त हुए और

विषय

पृष्ठ

जगत्समें जाकर बोझा ले ली। उन्होंने एक वर्षका प्रतिमायोग लिया और कायोत्सर्ग करते हुए तपश्चरण करते रहे। भरत चक्रवर्तीने उनके चरणोंमें अपना मस्तक टेक दिया। बाहुवली केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त हुए। २००-२२०

सतत्रिंशत्तम पर्व

चक्रवर्तीने बड़े वैभवके माय अयोध्या नगरमें प्रवेश किया। उनके वैभवका वर्णन। २२१-२३६

अष्टत्रिंशत्तम पर्व

एक दिन भरतने सोचा कि हमने जो वैभव प्राप्त किया है उसे कहीं खर्च करना चाहिए। जो मुनि हैं, वे तो पत्तने निस्पृह रहते हैं। अतः अगुप्तन धारो गृह्णन्ति लिए ही धनादिक देना चाहिए। एक दिन भरत चक्रवर्तीने नगरके सब लोगोको किमी उल्लवके बहाने अपने घर बुलाया। घरके अन्दर पहुँचनेके लिए जो भाग्य थे वे हरि अक्षरोंमें आच्छादित करा दिये। बहुतेस लोग उन भागोंके चक्रवर्तीके महान के भीतर प्रविष्ट हुए। परन्तु कुछ लोग बाहर खड़े रहे। चक्रवर्तीने उनसे भीतर न आनेका जब कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि मार्गमें उत्सर्ग हुईं हरीं पाम आदिमें एकेन्द्रिय जीव होते हैं। हम लोगोंने चलनेमें वे सब मर जाएंगे अतः दयाकी रक्षाके लिए हम लोग भीतर आनेमें प्रसमय हैं। चक्रवर्ती उनके इस उत्तरमें बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें दूसरे मार्गके मार्गमें भीतर बुलाया और उन्हें दयालु ममत्कर आशय मत्ता दी, वही आह्वान कृत्वा। इन्हें आह्वानोचित क्रियाकाण्ड आदिका उपदेश दिया। अनेक क्रियाओंका उपदेश दिया। सबसे पहले गर्भावय क्रियाओंका उपदेश दिया। २४०-२६८

पञ्चोत्तरत्रिंशत्तम पर्व

अपानन्तर भरत चक्रवर्तीने दोषान्वय क्रियाओंका उपदेश दिया। २६९-२७६

विषय

पृष्ठ

अनन्तर ब्रह्मन्वय क्रियाओंका निरूपण किया। २७७-२८६

चत्वारिंशत्तम पर्व

योद्धा सत्कार तथा हवनके योग्य मंत्रोंका वर्णन। २९०-३१६

एकचत्वारिंशत्तम पर्व

कुछ समय ध्यनीत होनेपर भरत चक्रवर्तीने एक दिन रात्रिके प्रतिनत भागमें प्रदुभुत फल दिखानेवाले कुछ स्वप्न देखे। स्वप्न देखनेके बाद उनका चित्त कुछ अस्त हुआ। उनका वास्तविक फल जाननेके लिए वे भगवान् आदिनाथके समबत्तरणमें पहुँचे। वहाँ जिनेंद्र बन्दनाके अनन्तर उन्होंने श्री आश्विनेन्द्रने निवेदन किया कि मैंने ब्राह्मण वर्णकी मूर्ष्टि की है। वह लानप्रद होगी या हानिप्रद। तथा मैंने कुछ स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या होगा? भरतके उत्तरमें श्री भगवान्ने कहा कि वल! यह ब्राह्मण वर्ण आगे चलकर मर्यादाका लोप करनेवाला होगा यह कहकर उन्होंने स्वप्नोंका फल भी बतलाया, जिसे सुनकर चक्रवर्तीने अयोध्या नगरोंमें वापिस प्रवेश किया। श्री दुःस्वप्नोंके फलकी शान्तिके लिए जिनानियेक आदि कार्यकर सुखी प्रजाका पालन करने लगे। ३१७-३३०

द्विचत्वारिंशत्तम पर्व

एक दिन भरत मग्यात् राजमनामें बंटे हुए थे। पास ही अनेक अन्य राजा विद्यमान थे। उन समय उन्होंने विविध वृष्टान्तोंके द्वारा राजाओंको राजनीति तथा वर्णधर्म धर्मका उपदेश दिया। ३३१-३५०

त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व

यहाँमें गुणनन्नाचार्यकी रचना है। सर्वप्रथम उन्होंने गृहधर जिनमेंनेके प्रति भक्ति प्रकट कर अपनी सधुना प्रदर्शित की। अनन्तर श्रेणिकने मधवमरणमनामें मन्त्रे होकर श्री गौतम गणधरने प्रार्थना की कि भगवन्! धर्म में जो जयधुमारका अति मनना चाहना है कृपा कर कहिये।

विषय

उत्तरमें गणधर स्वामीने जयकुमारका विस्तृत चरित कहा। वासीराज अक्षयन की सुपुत्री सुलोचनाने स्वयंवर-मंडपमें जयकुमारके गलेमें चरमाला डाल दी। ३५१-३८५

चतुश्चत्वारिंशत्तम पर्व

स्वयंवर समाप्त होते ही चक्रवर्ती भरतके पुत्र अर्ककीर्ति और जयकुमारके बीच घनघोर युद्ध हुआ। अन्तमें जयकुमार विजयी हुए। अक्षयन तथा भरतकी दूरदृष्टितासे युद्ध शान्त हुआ तथा दोनोंका मनमुटाव दूर हुआ। ३८६-४२४

पञ्चचत्वारिंशत्तम पर्व

अक्षयनने पुत्रीके शील और सतीपकी प्रशंसा की तथा अर्ककीर्तिकी प्रशंसा कर उन्हें शांत किया। तथा चक्रवर्ती भरतके पास दूत भेजकर अपने अग्रप्राथये प्रति क्षमायाचना की। चक्रवर्तीने उससे उत्तरमें अक्षयन और जयकुमारकी बहुत ही प्रशंसा की। ४२५-४३१

जयकुमार और सुलोचनाका प्रेममिलन जब जयकुमारने अपने नगरकी ओर वापिस आनेका विचार प्रकट किया तब अक्षयनने उन्हें बड़े वैभवके साथ बिदा किया। मार्गमें जयकुमार चक्रवर्ती भरत से मिलनेके लिए गये। चक्रवर्तीने उनका बहुत सत्कार किया। अयोध्यासे लौटकर जब जयकुमार अपने पडावकी ओर गगके मार्गसे जा रहे थे तब एक देवीने भगवत्का रूप धरकर उनसे हाथीको प्रसन्न किया जिससे जयकुमार हाथी सहित गगामें डूबने लगे तब सुलोचनाने पंचमस्तकार मंत्रकी आराधनासे इस उपसर्गको दूर किया। ४३२-४४०

बड़ी धूम-धामसे साथ जयकुमारने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। नगरके नर-नारियोंने सुलोचना और जयकुमारकी देखकर अपने नेत्र राकव दिये। जयकुमार ने ऐमाटगद आदिके समक्ष ही सुलोचना

पृष्ठ

विषय

की पटराजीका पट्ट बांधा और बड़े वैभवसे साथ सुलसे रहने लगे। ४४१

इधर किसी कारणवश सुलोचनाके पिता अक्षयनको संसारने विरक्षित हो गई। उन्होंने वैराग्यभाषनाका चिन्तन कर अपनी विरक्षितकी बढ़ाया तथा रानी सुप्रभाके साथ दीक्षा पारणकर निर्वाण प्राप्त किया। सुप्रभा यथायोग्य स्वर्गमें उत्पन्न हुई। ४४२-४४३

जयकुमार और सुलोचनासे विषय भोगोरा वर्णन। ४४३-४४५

षट्चत्वारिंशत्तम पर्व

किसी एक दिन जयकुमार अपनी भागवत्तभा सुलोचनाके साथ मरुतकी छतपर बैठे हुए थे कि अचानक उनकी दृष्टि आकाशमार्गसे जाते हुए विद्यापर-दम्पतिपर पड़ी। दृष्टि पडते ही 'हा मेरी वैभावती' कहकर जयकुमार मूर्च्छित हो गये और सुलोचना भी 'हा मेरे रतिवर' कहती हुई मूर्च्छित हो गई। उपचारके धाव दोनों सचेत हुए। जयकुमारने सुलोचनासे मूर्च्छित होनेका कारण पूछा तब वह पूर्वभवका वृत्तान्त कहने लगी। विस्तारके साथ दोनोंकी भवावलम्ब वर्णन। ४४६-४७६

सप्तचत्वारिंशत्तम पर्व

जयकुमार और सुलोचना पूर्व भवकी चर्चा कर रहे थे, कि जयकुमार ने उससे श्रीपाल चक्रवर्तीके विषयमें पूछा। सुलोचनाने अपनी सरस वाणीके द्वारा श्रीपाल चक्रवर्तीका विस्तृत कथानक प्रगट किया। अन्तर दोनों सुलसे अपना समय बिताने लगे। ४८०-५००

देव द्वारा जयकुमारके शीलकी परीक्षा। जयकुमारका सत्कारसे विरक्त होना और भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें गणधर पद प्राप्त करना। ५०१-५१२

भरत चक्रवर्तीका दीक्षाग्रहण, कैवल-ज्ञानकी प्राप्ति, भगवान्का अंतिम विहार और निर्वाणप्राप्ति। ५१३-५१५

श्री भगवत्पुत्रसेनाचार्यरिचरचितम्

महापुराणम्

[द्वितीयो भागः]

अथ पञ्चविंशतितमं पर्व

अथ चक्रपरं पूजा चक्रस्य विधिषु च्ययान् । सुतोष्यत्तिमपि श्रीमान् ब्रह्मन्न्ददनुक्रमान् ॥१॥
ना'दित्योऽग्निः' इति च द्विभोऽस्मिन् महोत्सवे । दारिद्र्यमप्यिताभे' तु जान विरवाशिन' नवे ॥२॥
चतुष्केषु' च रम्याम्' पुरस्यान्वर्वाहि' पुरम् । पुञ्जोऽह्नानि रत्नानि तदार्पयन्तो ददौ नृप ॥३॥
प्रभिवार' श्रियेवासी' चक्रपूजास्य विद्विषाम् । जान शान्तिरुमैव जानरुमाप्यनूत्तरा ॥४॥
ततोऽस्य दिग्जयोषोममये शरदापतन् । जपनरुमोरिवानुप्य प्रमत्ता विमलाम्बरा ॥५॥
अतका इव सरेजु अस्या' मधुकरवजा । सप्तच्छदप्रमूनोत्परजोऽनूपिन' विभ्रा ॥६॥
प्रमत्तमनवत्तोय सरसा सरितामपि । कवीनामिव मन्त्रास्य जनवाचितरञ्जनम् ॥७॥
सिनच्छदावती' रेजे सम्पन्नो सम्पन्न । स्थूलभुक्तावनां नदा कष्टिकेव शरच्छिप ॥८॥

अथानन्तर श्रीमान् चक्रवर्ती भग्न महागणने विधिपूर्वक चन्द्रनदी पूजा की और फिर अनुक्रमे पुत्र उत्पन्न होनेका आनन्द मनाया ॥१॥ राजा भग्नके उन महोत्सव के समय ममार भरमें कोई दरिद्र नहीं रहा था किन्तु दरिद्रता इस वानकी हो गई थी कि घन देने पर भी उसे कोई लेनेवाग नहीं मियता था । भावार्थ—महाराज भग्नके द्वारा दिये हुए दानसे याचक लोग इतने अधिक सतुष्ट हो गये कि उन्होंने हमेंगाके श्रिये याचना करना छोड़ दिया ॥२॥ उन समय राजाने चौराहोंमें, गण्डोंमें, नगरके भीतर और बाहर सभी जगह रत्नोंके ढेर किये थे और वे सब याचकोंके श्रिये दे दिये थे ॥३॥ उन समय भग्नने जो चक्रगन्तकी पूजा की थी वह उसके शत्रुओंके श्रिये अभिचार क्रिया प्रयान् हिमाकारके समान मायूम हुई थी और पुत्र-जन्मका जो उन्मव किया था वह समागको शान्ति रुमैके समान जान पडा था ॥४॥ नदनन्तर भग्नने दिग्बिलके श्रिये उद्योग किया, उसी समय शरदृश्रुतु भी जा गई जो कि भरतकी जयश्रुतीके समान प्रसन्न तथा निर्मल अम्य (जाताम) को घाण्य बग्नेवाली थी ॥५॥ उस समय मत्पपान् जातिके पूजोसे उठी हुई परागने निनके शरीर सुशोभित हो रहे हैं ऐसे मूमरोके समूह इन शरदृ श्रुतुके जन्मके (वैश्याम) के समान शोभायमान हो रहे थे ॥६॥ तिस प्रकार कवियोंका उत्तम वाक्य प्रमत्त अर्थात् प्रमाद गूणसे सहित और जनममूहके चिन्तको आनन्दिन बग्नेवाग होता है उसी प्रकार नागावों और नदियोंका जड़ भी प्रमत्त अर्थात् स्वच्छ और सतुष्योके चिन्तको आनन्द देनेवाग बन गया था ॥७॥ चारों ओर उठनी हुई हमोंकी पत्निया ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो शरदृश्रुतुकी उन्मी

१ दारिद्र्य मानूत् । नो दारिद्र्य जन स० । न दारिद्र्य जन द०, इ०, ल०, प०, म० । २ याचक-वतस्यो । ३ मत-तनुत्तिजनके । ४ शत्रु-नपहनमन्मये । ५ वापिदु । ६ 'यति' पदंवा 'व' इति मनसः । ७ माग्यश्रिया । ८ आ-ज्ञा । ९ निर्मलतावाग निर्मलवपुजा च । १० परन्तरम्या । ११ वाच्य-वचि । १२ ह्यनदृश्रि ।

सरोजलमभूत्कान्त सरोजरजसा ततम् । सुवर्णरजसाकीर्णमिव कृट्टिमभूततम् ॥६॥
 सर सरोजरजसा परित स्थगितोदकम् । कादम्ब^१जाया सम्प्रेक्ष्य ममूहु^२ स्थलशक्या ॥१०॥
 कञ्जकिञ्जल्कपुञ्जेन पिञ्जरा पदपदायली । सोवर्णमणिदुग्धेव^३ शरव कण्टिका धमी ॥११॥
 सरोजल समासे^४कुमुधरा सितपक्षिण^५ । 'धदान्यकुलमुदभूतसौगन्ध्यमिव' वन्दिन ॥१२॥
 नदीना पुलिनात्यासन् शुचीनि शरदागमे । हसाना रचितानीव शयनानि सितशुर्कं ॥१३॥
 सरासि ससरोजानि सोत्पला^६वप्रभूमय । सहस्रसंकेता^७ नद्यो^८जहृद्द्वेषेतासि कामिनाम् ॥१४॥
 प्रसन्नसलिला रेजु सरस्य सहसारसा । कूजितं कलहसात् जितनूपुरशिञ्जितं ॥१५॥
 नीलोत्पलेक्षणा रेजे शरच्छ्री पङ्कजानना । व्यवतमाभापमाणेव फलहसोकलस्वर्नं ॥१६॥
 पक्वशालिभुवो नमकणिशा पिञ्जरश्रिय । स्नाता^९हृदिद्रव्येयासन् शरत्वालप्रियागमे ॥१७॥
 मन्वसाना^{१०}मव^{११}भेजु सहसाना^{१२}मद जहृ । शरत्लक्ष्मीं समालोक्य शुद्धशुद्धधोरत्य^{१३} निज ॥१८॥

की वडे वडे मोतियोकी मालासे वनी हुई कण्ठमाल (गलेमे पहननेका हार) ही हो ॥८॥ कमलोकी परागसे व्याप्त हुआ सरोवरका जल ऐसा सुन्दर जान पडता था मानो सुवर्णकी धूलिसे व्याप्त हुआ रत्नजटित पृथिवीका तल ही हो ॥९॥ जिसका जल चारो ओरसे कमलो की परागसे ढका हुआ है ऐसे सरोवरको देखकर कादम्ब जातिके हसोकी स्त्रिया स्थलका सदेह कर बार बार मोहमें पड जाती थी अर्थात् सरोवरको स्थल समझने लगती थी ॥१०॥ जो भूमरोकी पक्षिताया कमलोके केशरके समूहसे पीली पीली हो गई थी वे ऐसी जान पडती थी मानो सुवर्णमय मनकाओसे गूथा हुआ शरद् ऋतुका कठहार ही हो ॥११॥ जिस प्रकार चारण लोग प्रसिद्ध दानी पुरुषके समीप उसकी कीर्ति गाते हुए पहुचते हैं उसी प्रकार हस पक्षी भी शब्द करते हुए अतिशय सुगन्धित सरोवरके जलके समीप पहुच रहे थे ॥१२॥ शरद् ऋतुके आते ही नदियोके किनारे स्वच्छ हो गये थे और ऐसे जान पडते थे मानो सफेद वस्त्रो से बने हुए हसोके विछौने ही हो ॥१३॥ कमलोसे सहित सरोवर नील कमलोसे सहित खेतोकी भूमिया और हसो सहित किनारोसे युक्त नदिया ये सब कामी मनुष्योका चित्त हरण कर रहे थे ॥१४॥ जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ है और जो सारस पक्षियोके जोडोसे सहित हैं ऐसे छोटे छोटे तालाव, नूपुरोके शब्दको जीतनेवाले कलहस पक्षियोके सुन्दर शब्दोसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१५॥ नीलोत्पल ही जिसके नेत्र हैं और कमल ही जिसका मुख है ऐसी शरद् ऋतुकी लक्ष्मीरूपी स्त्री कलहसियोके मधुर शब्दोके वहाने वार्तालाप करती हुई भी जान पडती थी ॥१६॥ जिनमें वागें नीचेकी ओर भुव गई हैं और जिनकी शोभा कुछ कुछ पीली हो गई है ऐसी पके चावलोनी पृथिविया उस समय ऐसी जान पडती थी मानो शरद् वागैरूपी पतिके आनेपर हल्दी आदिके उबटन द्वारा स्नान कर सुसज्जित ही बैठी हो ॥१७॥ उस शरद् ऋतुकी शोभा देखकर हस हर्षको प्राप्त हुए थे और मयरोने अपना हर्ष छोड दिया था । मो ठीव ही है यद्यपि शुद्धि और अनुद्धिवा यही स्वभाव होता है । भावार्थ—हम शुद्ध अर्थात् सपेद होते हैं इसलिये उन्हें शरद् ऋतुकी शोभा देखकर हर्ष हुआ परन्तु मयूर अनुद्ध अर्थात् वागै होने हैं इसलिये उन्हें उमे देखकर दुःख हुआ । विसीका संभव देखकर शुद्ध अर्थात् स्वच्छ हृदयवाले पुरष तो आनन्दवा अनुभव करते हैं और अनुद्ध अर्थात् मलिन स्वभाव वाले—दुर्जन पुरष दुःखवा अनुभव करते हैं, यह इनका स्वभाव ही है ॥१८॥

१ कादम्ब कनहम स्याद् इत्यभिधात् । २ माहवति स्म । ३ रचिता । ४ जगु । ५ हृणा । ६ त्यागिधुमूहम् । ७ शीहादम् । ८ वेदार । ९ पुलिन । १० अपहरति स्म । ११ रजया । १२ हृणा । मन्वसात् त० । १३ हर्षम् । १४ मयूर । शरत्मात् त० । १५ अयमार्यान्गुणा हि ।

कलहसा हसन्तीव चिरंतं स्म दिखण्डिन । अहो 'जडप्रिया यूपमिति निर्मत्तमूर्तय ॥१६॥
 चित्रवर्णा घनाबद्धरुचयो गिरिसश्रया । सम शतमुखेष्वात्तैर्बहिण स्वोप्राति जहु ॥२०॥
 'बन्धुकरिन्द्रगोपश्रीरातेने वनराजिपु । शरल्लक्ष्म्येव निष्ठघृतं ताम्बूलरसविन्दुमि ॥२१॥
 विकास बन्धुजीवेयु शरदाविर्बन्धवघात । सतीव सुप्रसन्नाया विपद्का विशदाम्बरा ॥२२॥
 हसस्वनावावाशाकणिशोष्ज्वलचामरा । पुण्डरीकात्तपत्रासोहिज्योत्येव सा शरत् ॥२३॥
 दिशा 'प्रसाधनायाधाव वाणासन' परिच्छदम् । शरत्कालो 'जिगीपोहि श्लाघ्यो वाणासनग्रह ॥२४॥
 घनावली वृशा पाण्डु प्रासोदाशा विमुञ्चती । घनागमवियोगोत्पचिन्तयेवाकूलोक्तता ॥२५॥
 नभ सतारमारेजे बिहसत्कुमुदाकरम् । कुमुद्वतीवन चाभाञ्जयत्तारकित नभ ॥२६॥

निर्मल शरीरको धारण करनेवाले हस मधुर शब्द करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो अहो तुम लोग जडप्रिय-मूर्खप्रिय (पक्षम जलप्रिय) हो इस प्रकार कहकर मयूरीकी हँसी ही उडा रहे हो ॥१९॥ जिनका वर्ण अनेक प्रकारका है, जिनकी रुचि-इच्छा (पक्षमें कान्ति) मेघोंमें लग रही है और जो पर्वोंके आश्रय हैं ऐसे मयूरीने इन्द्रधनुषके साथ ही साथ अपनी भी उत्पत्ति छोड़ दी थी । भावार्थ-उस शरद्ऋतुके समय मयूर और इन्द्रधनुष दोनोंकी शोभा नष्ट हो गई थी ॥२०॥ वन पवित्रियोंमें शरद्ऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा धूके हुए ताम्बूलके रसके बूदके समान शोभा देनेवाले बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पोंने क्या इन्द्रगोप अर्थात् वर्षान्ऋतुमें होनेवाले लाल रंगके कौडोकी शोभा नहीं बढ़ाई थी ? अर्थात् अवश्य ही बढ़ाई थी । बन्धूक पुष्प इन्द्रगोपोंके समान जान पड़ते थे ॥२१॥ जिस प्रकार निर्मल अन्त करणवाली, पापरहित और स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाली कोई सती स्त्री घरसे बाहिर प्रकट हो अपने बन्धुजनोंके विषयमें विकास अर्थात् प्रेमको धारण करती है उसी प्रकार शुद्ध दिशाओंको धारण करनेवाली कीचड़-रहित और स्वच्छ आकाशवाली शरद्ऋतुने भी प्रकट होकर बन्धुजीव अर्थात् दुपहरिया के फूलपर विकास धारण किया था-उन्ह विकसित किया था । तात्पर्य यह है कि उस समय दिशाएँ निर्मल थी, कीचड़ सूख गया था आकाश निर्मल था और वनोंमें दुपहरियाके फूल खिले हुए थे ॥२२॥ उस समय जो हंसोंके शब्द हो रहे थे वे नगाडोंके समान जान पड़ते थे, वनोंमें वाशके फूल फूट रहे थे वे उज्ज्वल चमरोंके समान मालम होते थे, और तालावोंमें कमल खिल रहे थे वे छत्रके समान सुशोभित हो रहे थे तथा इन सबसे वह शरद्ऋतु ऐसी जान पड़ती थी मानो उसे दिग्बिजय करनेकी इच्छा ही उत्पन्न हुई हो ॥२३॥ उस शरद्ऋतुने दिशाओंको प्रसाधन अर्थात् अलवृत करनेके लिये वाणासन अर्थात् वाण और आसन जातिके पुष्पोंका समूह धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंको प्रसाधन अर्थात् वश करनेके लिये जिगीपु राजाको वाणासन अर्थात् धनुषका प्रहण करना प्रशसनीय ही है ॥२४॥ उस समय समस्त आशा अर्थात् दिशाओं (पक्षमें सगमकी इच्छाओं)को छोड़ती हुई मेघमाला वृश और पाण्डुवर्ण हो गई थी सो उमसे ऐसी जान पड़ती थी मानो वर्षा कालने वियोगसे उत्पन्न हुई चिन्तासे व्याकुल होकर ही वेंसी हो गई हो ॥२५॥ उस शरद्ऋतुके समय ताराओंसे सहित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कुमुदिनियों सहित सरोवरकी हँसी ही बर रहा हो

१ जलप्रिया स०, द०, द०, स०, अ०, प० । २ मेघकनवाञ्छा । ३ इन्द्रबाण । ४ बन्धुजीवर्न ।
 'बन्धूक' बन्धुजीवर्न इत्यभिधानात् । ५ बन्धूक-कुमुदेषु परे सुहृज्जीवपु । ६ पुष्पागहनैव ।
 ७ मुप्रसन्नदिव परे मुप्रसन्नमानसा । मुप्रसन्नात्मा-स० । ८ विगनरदमा, परे दोपरहिता । ९ पत्ने
 निमलवस्त्रा । १० अलवाशाय । जयापं च । ११ मिष्टिकुमुममजं बन्धुमपरितरम् । परे धनु-
 परिवरम् । १२ जेतुमिच्छो ।

तारकाबुभुवाकीर्णं नभ सरति त्रिगंले । हस्तापते स्म शीतांशु विक्षिप्तकरपक्षति ॥२७॥
 नभोग्रह्राङ्गणे तेन धिय पुण्योपहारजाम् । तारपादिष्वपुहारतरतमुक्ताफलस्विय ॥२८॥
 बभुर्नभोऽभ्युधी तारा स्फुरन्मुक्ताफलामला । बरका इव मेघोर्धे निहिता हिमशीतला ॥२९॥
 ज्योत्स्नासलिलसम्भूता इव युक्ष्वदपटवतय । तारका रश्मिमातेन विप्रशीर्णा नभोऽङ्गणे ॥३०॥
 तनुभूतपयोवेणो नद्य परिकृशा बधु । विद्युक्ता घनवालेन विरहिण्य इवाद्गता ॥३१॥
 धनुद्धता गभीरत्व भेजु स्वच्छजलागुणा । सरित्स्त्रियो घनापायाद् बंधव्यमिव सधिता ॥३२॥
 दिग्दशगना घनापायप्रकाशोभूतमूर्तय । व्यावहारोभियातेन प्रसन्ना हसमण्डलं ॥३३॥
 कूजितं फलहसाना निजिता इव तत्पयजु । केकायितानि शिखिन सर्वं बालयलाद् बली ॥३४॥
 ज्योत्स्नादुकूलवसना लसप्रक्षत्रमालिका^{१०} । बन्धुजीवाधरा रेजे निर्मला शरदङ्गना ॥३५॥
 ज्योत्स्ना कीर्तिमिवातयन् विधुगंगनमण्डले । शरल्लक्ष्मीं समासाद्य सुराजेवाद्युततराम् ॥३६॥
 बन्धुजीवेयु^{११} विन्यस्तरागा^{१२} बाणकृतद्युति^{१३} । हसी सखीवृत्ता रेजे नवोडेव^{१४} शरदधु ॥३७॥

और कुमुदिनियोसे सहित सरोवर ऐसा जान पडता था मानो ताराओसे सुशोभित आकाश को ही जीत रहा हो ॥२६॥ तारकारूप कुमुदोसे भरे हुए आकाशरूपी निर्मल सरोवरमें अपने किरणरूप पखीको फैलाता हुआ चन्द्रमा ठीक हसके समान आचरण करता था ॥२७॥ जिनकी कान्ति विशारूपी स्त्रियोके हारोमे लगे हुए वडे वडे मोतियोके समान हैं ऐसे तारागण आकाशरूपी धरके आगनम फूलोके उपहारसे उत्पन्न हुई शोभाको वडा रहे थे ॥२८॥ देदीप्यमान मुक्ताफलोके समान निर्मल तारे आकाशरूपी समुद्रमे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो मेघो के समूहने बर्फके समान शीतल ओले ही धारण कर रखे हो ॥२९॥ आकाशरूपी आगनमें जहा तहा विखरे हुए तारागण ऐसी शोभा धारण कर रहे थे मानो चादनी रूप जलसे उत्पन्न हुए बबूलोके समूह ही हो ॥३०॥ वर्षाकालरूपी पतिसे विछुडी हुई नदिया विरहिणी स्त्रियोके समान अत्यन्त कृश होकर जलके सूक्ष्म प्रवाहरूपी चोटियोको धारण कर रही थी ॥३१॥ वर्षाकालके नष्ट हो जानेसे नदीरूप स्त्रिया मानो वैधव्य अवस्थाको ही प्राप्त हो गई थी, क्योंकि जिस प्रकार विधवाए उद्धतता छोड देती हैं उसी प्रकार नदियोने भी उद्धतता छोड दी थी, विधवाए जिस प्रकार स्वच्छ (सफेद) वस्त्र धारण करती हैं उसी प्रकार नदिया भी स्वच्छ वस्त्ररूपी जल धारण कर रही थी और विधवाए जिस प्रकार अगम्भीर वृत्तिको धारण करती हैं उसी प्रकार नदिया भी अगम्भीर अर्थात् उथली वृत्तिको धारण कर रही थी ॥३२॥ मेघोके नष्ट हो जानेसे जिनकी मूर्ति आकृति प्रकाशित हो रही है ऐसी विशारूपी स्त्रिया अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी और हसरूप आभरणोके छलसे मानो एक दूसरेके प्रति हँस ही रही थी ॥३३॥ उस समय मयूरोने अपनी केका वाणी छोड दी थी, मानो कलहस पक्षियोके मधुर गद्योसे पराजित होकर ही छोड दी हो सो ठीक ही है क्योंकि समयके बलसे सभी बलवान् हो जाते हैं ॥३४॥ चादनीरूपी रेदामी वस्त्र पहने हुए देदीप्यमान नक्षत्रोकी माला (पक्ष में मत्ताईम मणियोवाला नक्षत्रमाल नामका हार) धारण किये हुए और दुपहरियाके फूल रूप अधरोमे सहित वह निर्मल शरदऋतुरूपी स्त्री अतिशय सुशोभित हो रही थी ॥३५॥ शरदऋतुकी शोभा पाकर आकाशमण्डलमें चादनीरूपी कीर्तिको फैलाता हुआ चन्द्रमा किसी उत्तम राजाके समान अत्यन्त मुग्धाभित हो रहा था ॥३६॥ वह शरदऋतु नवोडा स्त्रीके समान

१ विरणा एय पक्षति मूल यस्य । २ वर्षोपना । ३ निक्षिप्ता । ४ पयप्रवाहा इत्यर्थ ।

५ पयो ष्वेतस्पृशवस्त्रा । ६ विधवाया भाव । ७ परस्परहासम् । ८ हसमण्डना प०, ६०, ६० ।

९ गमण्डनान् प० । १० मयूररानि । १० तारकावती पक्षे हारभेद । ११ बन्धुष्वेषु बाणेषु च ।

१२ भिष्टि, पक्षे पर । १३ विवासा पक्ष वान्ति । १४ नूतनविवाहिता ।

स्वयं^१ धीतमनाद् व्योम स्वयं प्रच्छालित शशी । स्वयं प्रसादिता^२ नद्य स्वयं सम्मार्जिता दिशः ॥३८॥
 शरत्लक्ष्मीमूलातीकदर्पणे शशिमण्डले । प्रजादशी घृति भेज् अस्ममुत्समुज्ज्वले ॥३९॥
 वनराजीस्ततामोदा कुसुमाभरणोज्ज्वला । मधुव्रता भजन्ति स्म वृत्तकोलाहलस्वना ॥४०॥
 तन्वयो^३ वनलता रेज् विवासिकुसुमस्मितता । सालका इव गन्धान्यविलोलातिकुलानुला ॥४१॥
 वर्षोद्धरा^४ खुरोत्खातमुधस्तामू^५ वृत्तेक्षणः । वृषा^६ प्रतिवृपालोककृपिता प्रतिसस्वन् ॥४२॥
 श्रवास्करन्त^७ शृङ्गाग्रं वृषभा धीरनिस्वना । वनस्यली^८ स्थलाम्भोजमृणालशकलाचिता^९ ॥४३॥
 वृषा^{१०} शकुदसलगनमुद^{११} कुमुदपाण्डरा । ध्यक्ताह्वस्य मृगाट्टस्य लक्ष्मीभयिमहस्तवा ॥४४॥
 क्षीरप्लवमयी^{१२} वृत्स्नामातन्व्याना वनस्यलीम् । प्रस्नुवाना वनान्तेषु प्रसन्नगोमन्तल्लिका^{१३} ॥४५॥
 कुण्डोष्णोऽमृतपिण्डेन^{१४} घटिता इव निर्मला । गोगूटयो^{१५} वनान्तेषु शरच्छिद्र्य इवारुचन्^{१६} ॥४६॥

सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार नवोटा स्त्री वन्धुजीव अर्थात् भाईवन्धुजीपर राग अर्थात् प्रेम रखती है उसी प्रकार वह शरद्ऋतु भी वन्धुजीव अर्थात् दुपहरियाके फूलोपर राग अर्थात् लालिमा धारण कर रही थी, नवोटा स्त्री जिस प्रकार देदीप्यमान होती है उमी प्रकार शरद्ऋतु भी बाण जातिके फूलोसे देदीप्यमान हो रही थी और नवोटा स्त्री जिस प्रकार सखियोसे घिरी रहती है उसी प्रकार वह शरद्ऋतु भी हसीरूपी सखियोसे घिरी रहती थी ॥३७॥ उस समय आकाश अपने आप साफ किये हुऐके समान जान पडता था, चन्द्रमा अपने आप धोये हुऐके समान मालूम होता था, नविया अपने आप स्वच्छ हुई सी जान पडती थी और दिशाए अपने आप झाड बुहार कर साफ की हुईके समान मालूम होती थी ॥३८॥ जो शरद्ऋतुरूपी लक्ष्मीके मुख देखनेके लिये दर्पणके समान है और जो बिना साफ किये ही अत्यन्त उज्ज्वल है ऐसे चन्द्रमण्डलमें प्रजाके नेत्र बडा भारी मतोप प्राप्त करते थे ॥३९॥ जिनकी सुगन्धि चारो ओर फैल रही है और जो फूलरूप आभरणोमे उज्ज्वल हो रही है ऐसी वन-पक्षियोको भूमर बोलाहल शब्द करते हुए सेवन कर रहे थे ॥४०॥ जो फूले हुए पुष्परूपी मन्द हास्यसे सहित थी तथा गन्धसे अघे हुए भूमरोके समूहसे व्याप्त होनेके कारण जो सन्दर वेशोसे सुशोभित थी ऐसी वनकी रत्नाए उग समय कृदा शरीरवाली स्त्रियोके समान शोभा पा रही थी ॥४१॥ जो खुरोमे पृथिवीको खोद रहे थे, जिनकी आखें लाल लाल हो रही थी और जो दूसरे बँलोके देखनेसे नोधित हो रहे थे एमे मदोन्मत्त बँल अन्य बँलोके शब्द सुनकर बदलेमें स्वय शब्द कर रहे थे ॥४२॥ उमी प्रकार गम्भीर शब्द करते हुए वे बँल अपने सीमोके अग्रभागसे स्थलवमलोके मृणालके टुकडोसे व्याप्त हुई वनकी पृथिवीको खोद रहे थे ॥४३॥ इसी तरह उस शरद्ऋतुमें जिनके काधौलपर मिट्टी लग रही है और जो कुमुद पुष्पके समान अत्यन्त सफेद है ऐसे वे बँल स्पष्ट चिह्नवाले चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहे थे ॥४४॥ जिनसे अपने आप दूध निक्कल रहा है ऐसी उत्तम गायें वनकी सम्पूर्ण पृथिवीको दूधके प्रवाहके रूप करती हुई वनोके भीतर जहा तहा फिर रही थी ॥४५॥ इसी प्रकार जिनके स्तन कुण्डके समान भारी है और जो अमृतके पिण्डसे बनी हुईके समान अत्यन्त निर्मल है ऐसी तुरन्तकी प्रसृत हुई गायें वनोके मध्यमें शरद्ऋतुकी शोभाके समान जान पडती थी ॥४६॥

१ आत्मना प्रसन्नमित्यर्थं । २ प्रसन्नीकृता । ३ वृक्षा अह्वनादिव । ४ जलवृष्टा । ५ वृषभा । ६ किरन्ति स्म । ७ वनस्यली ल० । ८-चिताम् स० । ९ धरन्ति स्म । १० प्रशास्तागाव । 'मन्तल्लिका मन्चचिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजी । प्रशास्तावाचकान्यमूनि' इत्यभिधानात् । ११ पिठराधीना । पिठरः स्थाल्युभा कुण्डमित्यभिधानात् । 'ऊधस्तु क्लीवमापीनम्' । ऊधसोऽगम् इति सूत्रात् सकारस्य नकारादेशः । १२ सवृत्तप्रसृता गावः । 'गूटि सवृत्प्रसूतिका' इत्यभिधानात् । १३ इवाभवन् स० ।

चेतासि त्ररणाद्रगोपजीविनामुद्धतात्मनाम् । मुंसां च्युताधिकराराणामिन दैव्यमुपागमन् ॥५७॥
 प्रतापी भुवनस्यैकं चर्दानित्यमहोदयः । माम्बानाशान्ततेजस्वी बभूवसे भरतेश्वरत् ॥५८॥
 इति प्रस्यष्टचन्द्रांगप्रहासे शरदागमे । चक्रे दिग्विजयोत्तमं चक्री चक्रपुरस्मरम् ॥५९॥
 प्रस्थानभेयो गम्भीरप्रस्थानाः प्रहतास्ताः । श्रुता चर्हिभिरुग्रैर्व घनाउम्बरदाह्रिभिः ॥६०॥
 वृत्तमद्भ्यजनेपथ्यो^१ बनारोरस्वतं प्रभुः । शरत्तदभ्येव सम्भक्त^२ सहाहृरिचन्द्रनम् ॥६१॥
 ज्योत्स्नामपे दुकूलं च शुकले परिदधौ नृपः । शरच्छिषोपनीते वा मृदुनी दिव्यवामनो ॥६२॥
 भ्राजानुलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण विबभौ विभुः । हिमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहं तटस्थया ॥६३॥
 त्रिरीटोदग्रमूर्धासौ कर्षाम्यां कृण्डले दधौ । चन्द्रार्कमण्डले बभ्रुमित्रायाते जयोत्सवम् ॥६४॥
 यज्ञःस्थलेऽस्य शरचे शचिरः शैस्तुभो मणिः । जपलक्ष्मीसमुद्राहमद्भ्यगतासिदोपनत् ॥६५॥

पंक्ति आकाशमें ऐसी गोभा बढा रही थी मानो पत्रराग मणियोंकी कान्ति महिन हरित मणियों की बनी हुई बन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिम प्रकार अधिकारमें भूट हुए मनुष्योंके चित्त दीनताको प्राप्त होते हैं उमी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविका करनेवाले उदत मल्लाहोंके चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ—शरद् ऋतुमें नदियोंका पानी कम हो जानेसे नाव चलानेवाले लोगोंका व्यापार बन्द हो गया था इसलिये उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥ उस समय सूर्य भी ठीक महाराज भरतके समान देवीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिम प्रकार भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिम प्रकार भरत लोकके एकमान तेज थे अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उमी प्रकार सूर्य भी लोकका एक मान तेज था, जिम प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन बढता जाता था, और जिम प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओंको दवा दिया था उसी प्रकार सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दवा दिया था—अपने तेजसे उनका तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणें ही जिसका हास्य है ऐसी शरद् ऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिये उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर शब्द करते हुए प्रस्थान कालके नगाड़े बज रहे थे, जिन्हें मेवके आटम्बरकी शका करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊंची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मंगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐंसे महाराज भरत हार तथा मफेद चन्दन से सुशोभित जिस वक्ष स्थलको धारण किये हुए थे वह ऐंसा जान पड़ता था मानो शरद् ऋतु रूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चादनीमें बने हुएके समान मफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य बन्नोंको धारण किया था वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतु रूपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमें लाये गये हो ॥६२॥ घुटनी तक लटवते हुए ब्रह्मसूत्रमें महाराज भरत ऐंसे सुशोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको सार्ग करनेवाले गंगा जलके प्रवाहमें हिमवान् पर्वत सुशोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेमें जिनका मन्त्रक बहुत ऊंचा हो रहा है ऐंसे भरत महाराजने अपने दोनों कानोंमें जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिये सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हो ॥६४॥ भरतेश्वरके वक्ष स्थलपर देवीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐंसा सुशोभित होता था,

१ द्रोण्डुपाद्युपजीविनाम् । नदीनारणाणामिभयं । २ कृण्डलेऽन्तरम् । ३ सेवितम् ।

हुम्भारवभृतो^१ वत्सानापिप्य^२न्मृत्तस्यान्^३। पीनापीना^४ पयस्त्विन्य^५ पय पीयूषमुत्सुका^६ ॥४७॥
 क्षीरस्यतो^७ निजान्वत्सान् हुम्भागम्भीरनि स्वनान् । धेनुष्या^८ पाययन्ति स्म गोपैरपि नियन्त्रिता ॥४८॥
 प्राक्स्वीया जलदा जाता शिखियामप्रियास्तदा । रिक्ता जतधनापायाद् ग्रहो षष्ठा दरिद्रता ॥४९॥
 'व्यावहासीमिवातेन गिरय पुणितं दुर्मं । ध्यात्युक्षीमिव^९ तन्वाना स्फुरन्निशंरनीकरं ॥५०॥
 प्रवृद्धवयसो^{१०} रेजु कतना भूशमानता । परिणामात्प्रशुष्यन्तो^{११} जरन्त^{१२} पुरुषा इव ॥५१॥
 विरेजुरसं^{१३}नापुषं मदालिपटसाद्रतं । इन्द्रनीलकृतान्तयं^{१४} सौधर्णरिव भूपणं ॥५२॥
 घनावरणनिर्मुक्ता दधुराशा दृशा मुदम् । नटिका^{१५} इव नेपथ्यगृहाद्रङ्गं^{१६}मुपागता ॥५३॥
 श्रद्धुर्धनमुन्दानि मुक्तासाराणि^{१७} भूधरा । सदशानीव^{१८} धासाति^{१९} निष्प्रवाणीनि^{२०} सानुभि ॥५४॥
 पवनाघोरणाहवा^{२१} भू-मूर्जी^{२२}भूतदन्तिन । सान्तगंजा निकु-जेषु^{२३} सासारमदशोकरा ॥५५॥
 युकावलोप्रवालाभचञ्चुस्तेने दिवि^{२४} श्रियम् । हरिन्मणिपिनद्वेव तोरणाली सवन्मभा^{२५} ॥५६॥

जिनके स्तन बहुत ही स्थूल हैं और जो हभा शब्द कर रही हैं ऐसे दूधवाली गायें दूध पीनेके लिये उत्सुक हुए तथा बार बार हभा शब्द करते हुए अपने बच्चोको दूधरूपी अमृत पिला रही थी ॥४७॥ इसी प्रकार हभा ऐसा गभीर शब्द करनेवाली गायें ग्वालाओके द्वारा अलग बाध दिये जानेपर भी दूध पीनेकी इच्छा करनेवाले अपने बच्चोको दूध पिला ही रही थी ॥४८॥ जो मेघ पहले मयूरोको अत्यन्त प्रिय थे वे ही अब शरद्वृक्षतुमं जलरूप धनके नष्ट हो जानेसे खाली होकर उन्हे अप्रिय हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि दरिद्रता बहुत ही कष्ट देनेवाली होती है ॥४९॥ उस समय फूले हुए वृक्षोसे पर्वत ऐसे जान पडते थे मानो परस्पर में हँसी ही कर रहे हो और भरते हुए भरनोके छोटीसे ऐसे जान पडते थे मानो फाग ही कर रहे हो—विनोदवशा एक दूसरेके ऊपर जल डाल रहे हो ॥५०॥ कलमी जाति के धान, जो कि बहुत दिनके थे अथवा जिनके समीप बहुत पक्षी उठे हुए थे, जो खूब नव रहे थे और जो अपने परिपावमें जगत्के समस्त जीवोका पोषण करते थे, वे ठीक वृद्ध पुरुषोके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५१॥ सहजनाके वृक्ष मदनोन्मत्त भूमरोके समूहसे घिरे हुए अपने फूलोसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनके मध्यभागमें इन्द्रनील मणि लगा हुआ है ऐसे सुवर्णमय आभू-पणोमें ही सुशोभित हो रहे हो ॥५२॥ जिस प्रकार आभषण आदि पहिनेके परदेवाले घरमें निक्कल कर रगभूमिमें आई हुई नृत्यकारिणी नेत्रोको आनन्द देती है उसी प्रकार मेघोके आवरणमें छटी हुई दिशाएँ नेत्रोको अतिशय आनन्द दे रही थी ॥५३॥ पर्वतोने जो अपनी गिरनो पर जल-रहित सफेद बादलोके समूह धारण किए थे वे ऐसे जान पडते थे मानो अचल-ग्रहित नथीन वस्त्र ही हो ॥५४॥ जिनपर वायुरूपी महावत बैठे हुए हैं, जो भीतर ही भीतर गरज रहे हैं और जो लतागृहोमें जलकी बर्दें रूपी मदधाराकी बर्दें छोड रहे हैं ऐसे मेघरूपी हाथी जहाँ तहाँ फिर रहे थे ॥५५॥ जिनकी चोब मू गा के समान लाल है ऐसी तोताओकी

१ हूँ भा इत्यनुकरणवभृत । २ पाययन्ति स्म । ३ प्रवर्षेण वृत्त । ४ प्रवृद्धवयसः । ५ धेनुव । ६—मूत्सुकात् १० । ७ क्षीरमात्मानमिच्छन् । ८ धेनुष्या वन्ये स्थिता इत्यभिधानात् । ९ परस्पर-हत्याम् । १० परमपरमचनम् । ११ वृद्धवयसो प्रवृद्धपक्षिणश्च । १२ परिपत्रवात् । १३ वृद्धा । १४ गंजरा । १५ मध्यंरित्यर्थः । १६ नर्वन्य । १७ अलतागृहात् । १८ यर्पाणि । १९ वस्तिरहितानि । 'रिक्ता षष्ठाके वन्यस्य दग्ग स्वर्तनय' इत्यभिधानात् । अन्यत्रपि दशावर्तावस्थाया वस्त्रान्ते स्फुर्दशा श्रियः । २० वान्नाणि । २१ मूतनानि । 'अनाह्व निष्प्रवाणि तन्त्रव च नवान्बरे' इत्यभिधानात् । २२ हृत्पिप । 'अघोरणो हृत्पिपसः' इत्यभिधानात् । २३ मय । २४ सानुदु । २५ आवातो । २६ परमगर्गाहिता ।

चेतासि 'तरणाद्गोपजीविनामुद्धतात्मनाम् । पुता च्युताधिकाराणामिव दैन्यमुपागमन् ॥५७॥
 प्रतापी भुवनस्वैक चक्षुर्नित्यमहोदय । भास्वानाम्रान्ततेनस्वी वभासे भरतेरावन् ॥५८॥
 इति प्रस्पष्टचन्द्रानुग्रहासे शरदागमे । चक्रे दिग्विजयोद्योग चक्री चन्द्रपुरस्तरन् ॥५९॥
 प्रस्थानभेयो गम्भीरप्रधाना प्रहृतास्तदा । श्रुता बर्हिनिस्वृष्टीवं धनाडम्बरजडकिम्भि ॥६०॥
 वृत्तमद्गलनेपथ्यो^१ वमारोरस्वल प्रभु । शरत्लेक्ष्म्येव सन्नक्त^२ सहारहरिचन्द्रनम् ॥६१॥
 ज्योत्स्नामथे डुकूले च शुक्ले परितदयो नृप । शरच्चिद्योपनीते वा मृदुनो दिव्यवासनी ॥६२॥
 श्राजानुलम्बिता ब्रह्मसूत्रेण विभो विभु । हिमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहेण तटस्वया ॥६३॥
 'तिरीटोदग्रमूर्धासौ कर्णाम्या कृण्डते दधी । चन्द्रार्कमण्डले वक्तुमिवापाते जयोत्सवम् ॥६४॥
 वक्षस्थलेऽस्य चरुचे रचिर कौस्तुभो मणि । जयलदमीसमुद्राहमद्गलादासिदोपवत् ॥६५॥

पवित्र आकाशमें ऐसी शोभा बढ़ा रही थी मानो पन्नग मणियोंकी कान्ति सहित हरित मणियोंकी वनी हुई बन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारमें भूट हुए मनुष्योंके चित्त दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविता करनेवाले उद्धत मल्लाहोंके चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ—शरद् ऋतुमें नदियोंका पानी कम हो जानेसे नाव चलानेवाले लोगोंने व्यापार बन्द हो गया था इसलिये उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥ उस समय मूर्य भी ठीक महाराज भरतने ममान देदीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिन प्रकार भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिन प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार मूर्य भी लोकका एक मात्र नेत्र था, जिन प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था उसी प्रकार मूर्यका भी तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था, और जिन प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओंको दवा दिया था उन्हीं प्रकार सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दवा दिया था—अपने तेजसे उनका तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणें ही जिसका हास्य है ऐसी शरद् ऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिये उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर जट्ट करते हुए प्रस्थान कालके नगाडे बज रहे थे, जिन्हें भेषके आडम्बरकी शमा करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊंची उठाकर मुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐंसे महाराज भरत हार तथा नफेद चन्दन से सुगोभित जिस वक्षस्थलको धारण किये हुए थे वह ऐंसा जान पड़ता था मानो शरद् ऋतु रूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चादनीमें बने हुएके ममान नफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोंको धारण किया था वे ऐंसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतुस्त्री लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमें लाये गये हों ॥६२॥ घुटनों तक लटकते हुए ब्रह्मसूत्रसे महाराज भरत ऐंसे सुशोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगा जलने प्रवाहमें हिमवान् पर्वत सुगोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेसे जिनका मन्त्रक बहुत ऊंचा हो रहा है ऐंसे भरत महाराजने अपने दोनों कानोंमें जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐंसे जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिये सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हों ॥६४॥ भरतेश्वरके वक्षस्थलपर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐंसा सुशोभित होता था,

१ द्रोण्युपायुपजीविनाम् । नदीनारवाणामित्यर्थ । २ ऋग्वाक्यकार । ३ सेविनम् ।

विद्युधिम्बप्रतिस्पर्धि 'दधु'ऽस्यात्पवारणम् । 'तन्निभेर्नग्दधं विग्दमागत्येव शिप्येवियु ॥६६॥
 तदस्य दधिमातेने धृतमात्पवारणम् । घृष्टाररनांनुभिभिर्प्र' सारणांशिवय' पद्वज्रम् ॥६७॥
 स्वर्धुनीशोवरस्पर्धि घामराणां वदम्बवम् । 'दुधुधुर्वा'रनायो'ऽस्य विक्वग्या इव संधिता' ॥६८॥
 तत् स्वपतिरत्नेन निर्गमे' स्यन्दनो भटान् । गुण्यंमणिधिनाद्गो' भेदवृज्जधिभय' हतम् ॥६९॥
 चक्ररत्नप्रतिस्पर्धिचक्रद्वितयसद्गत । यज्ञाक्षधटितो' रजे रथोऽस्येव मनोरथ ॥७०॥
 कामर्गयोर्वरहोभि' 'कुमुदो'ज्ज्वलथान्तिभि । यशोवितानतावाशं स रथोऽयोर्जि' वाजिभि ॥७१॥
 स तं स्यन्दनमादक्षशुभ्रतसारभ्यधिष्ठितम्' । नितम्बवेदान्मरीश' सुरराशि्व चक्रराट् ॥७२॥
 तत् प्रास्थानिकं' पुण्यनिर्घोषंरभिनन्वित । प्रतस्ये विजयोद्युभ्रत वृत्तप्रस्थानमद्गत' ॥७३॥
 तदा नभोद्गण कृत्स्नं जयघोषैररघ्यत । नृपांगणं च संदृष्टम् ध्रमवत् संयन्तापहं' ॥७४॥
 महामुकुटबद्धास्त परिवद्व समन्तत । दूरात् प्रणतमूर्धानं सुरराजमिवामरा ॥७५॥
 प्रचत्वाल बलं विष्वग्भ्रादृष्टपुरवीथिष्वन् । महायोधमयो' सुष्टिं ष्पूषंवाभदत्तवा ॥७६॥

मानो विजयलक्ष्मीके विवाहरूपी मगलकी सूचना देनेवाला दीपक ही हो ॥६५॥ उन्होंने चन्द्रमण्डलके साथ स्पर्धा करनेवाले जिम छत्रको धारण किया था वह ऐसा जान पड़ना था मानो उस छत्रके बहानेसे स्वयं चन्द्रमण्डल ही आकर उनकी सेवा करना चाहता हो ॥६६॥ महाराज भरतने जो छत्र धारण किया था वह चूडारत्नकी विरणोसे मिलकर ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो सूर्यकी लाल किरणो सहित कमल ही हो ॥६७॥ जो वारागनाए महाराज भरतके आस-पास गंगाके जल की बू दोंके साथ स्पर्धा करनेवाले चमरोके समूह डल रही थी ऐसी जान पड़ती थी मानो अच्छी तरहसे आई हुई दिक्कन्याए ही हो ॥६८॥ तदनन्तर स्वपति रत्नने एक बड़ा भारी रथ तैयार किया जो कि सुवर्ण और मणियोसे चित्र विचित्र दिखनेवाले मेरु पर्वतके लतागुहोकी शोभाकी ओर हंस रहा था ॥६९॥ वह रथ चक्ररत्नकी प्रतिस्पर्धा करनेवाले दो पहियोसे सहित था तथा वज्रके बने हुए अक्ष (दोनों पहियोके बीचमें पडा हुआ मजबूत लोहदड-भौरा) से युक्त था इसलिये महाराज भरतके मनोरथके समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस रथमें जो घोड़े जोते गये थे वे इच्छानुसार गमन करते थे, वायुके समान वेगशाली थे, कुमुदके समान उज्ज्वल कान्तिवाले थे और यशके समूह के समान जान पड़ते थे ॥७१॥ जिस प्रकार इन्द्र मेरु पर्वतके तटपर आरूढ होता है उसी प्रकार भरतेश्वर, जिसपर योग्य सारथि (हाकनेवाला) बैठा है ऐसे रथपर आरूढ हुआ ॥७२॥ तदनन्तर प्रस्थान समयमें होनेवाले 'जय' 'जय' आदि पुण्य शब्दोंके द्वारा जिनका अभिनन्दन किया जा रहा है जो दिग्विजयकी समस्त तैयारिया कर चुके हैं और जिनके साथ प्रस्थान-कालीन सभी मगलाचार किये जा चुके हैं ऐसे महाराज भरतने प्रस्थान किया ॥७३॥ उस समय आकाशरूपी समस्त आगन जय जय शब्दोंकी घोषणासे भर गया था, और राजाका आगन सेनापतियोसे भर गया था ॥७४॥ जिस प्रकार देव लोग इन्द्रको घेर कर खड़े हो जाते हैं उसी प्रकार दूरमें ही मस्तक भुकाकर नमस्कार करते हुए महामुकुट बद्ध राजा लोग भरत को घेरे हुए चारो ओर खड़े थे ॥७५॥ जिसने चारो ओरसे नगरकी समस्त गलियोको रोक लिया है ऐसी वह सेना चलने लगी । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो यो बड़े-बड़े

१ दधे ल० । २ आत्पवारणव्याजेन । ३ मिश्रम् । ४ सूर्यकिरणसहितम् । ५ वीजयन्ति स्म ।
 ६ सगुता ल० । ७ रच्यते स्म । ८ अवयव । ९ तट । १० वरुणाद्ग । ११ वेगवद्भि ।
 १२ इज्यते स्म । १३ युक्तिपरगारयिसमाश्रितम् । १४ भेरो । १५ प्रस्थाने नियुक्त ।
 १६ भटमयी ।

पुरः 'पादातमाश्वीयं रथकड्या' च हास्तिकम् । क्रमाक्षिरी'पुरावेष्ट्य सपताकं रथं प्रभोः ॥७७॥
 रथ्या 'रथ्याश्वसंघट्टाद् उत्थितं हर्मरेणुभिः । बलक्षोदाक्षमाश्वोम समुत्पेतुरिव' स्वयम् ॥७८॥
 रोषमं रजोभिराकीर्णं तदा रेजे नभोऽजिरम् । स्पष्ट' बालातपेनेव पटवासेन वाततम् ॥७९॥
 शनैः शनैर्जनैर्मुक्ता विरेजुः पुरवीथयः । कल्लोलैरिव 'वेलोत्थं' महावधेस्तीरभूमयः ॥८०॥
 पुराङ्गनाभिरुन्मुक्ताः सुमनोज्ज्वलपोऽपतन् । सौधवातायनस्याभिः दृष्टिपातैः सम प्रभो ॥८१॥
 जयेश विजयिन् विश्वं विजयस्व दिशो दश । पुण्याशिषा शर्तैरित्यं पीराः प्रभुमयूधुजन् ॥८२॥
 सम्राट् पश्यप्रयोध्यायाः परां भूमिं^१ तवातनीम्^२ । शनैः प्रतोलीं^३ सम्प्रापद् रत्नतोरणभासुराम् ॥८३॥
 पुरो बहिः पुरः पद्मचात् समं च विभुनाऽमुना । ददृशे दृष्टिपर्यन्तम् प्रसङ्गखचमिव तद्वत्तम् ॥८४॥
 जगतः प्रसवागारादिव तस्मात् पुराद् बलम् । निरियाय निषच्छ्रवासां^४ शनैरापद्मगोपुरम् ॥८५॥
 किमिदं प्रलयक्षोभात् क्षुभितं वारिधेर्जलम् । किमुत त्रिजगत्सर्गैः^५ प्रत्यपोऽयं विजृम्भते ॥८६॥
 इत्याशङ्क्य नभोभागिभिः सुरैः सादृश्यमीक्षितम् । प्रससार बलं विष्वक्पुराश्रियार्थं चक्रिणः ॥८७॥

योद्धाभोकी एक अपूर्व सृष्टि ही उत्पन्न हुई हो ॥७६॥ सबसे पहले पैदल चलनेवाले सैनिकोका समूह था, उसके पीछे घोड़ोंका समूह था, उसके पीछे रथोका समूह और उसके पीछे हाथियो का समूह था । इस प्रकार वह सेना पताकाओंसे सहित महाराजके रथको घेरकर अनुक्रम से निकली ॥७७॥ जिन मार्गोंसे वह सेना जा रही थी वे मार्ग रथ और घोड़ोके संघटनसे उठी हुई सुवर्णमय धूलिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो सेनाका आघात सहनेने असमर्थ होकर स्वय आकाशमे ही उड़ गये हो ॥७८॥ उस समय सुवर्णमय धूलिसे भरा हुआ आकाशरूपी आगन ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बालसूर्यकी सुनहली प्रभासे स्पर्श किया गया हो, और सुगन्धित चूर्णसे ही व्याप्त हो गया हो ॥७९॥ धीरे धीरे लोग नगरकी गलियोंको छोडकर आगे निकल गये जिससे खाली हुई वे गलिया ऐसी जान पड़ती थी मानो ज्वारभाटासे उठी हुई लहरोके चले जानेपर खाली हुई समुद्रके किनारे की भूमि ही हो ॥८०॥ उस समय बड़े बड़े मकानोके भरोखोमे खड़ी हुई नगर-निवासिनी स्त्रियोके द्वारा अपने अपने कटासोके साथ छोडी हुई पुष्पाञ्जलिया महाराज भरतके ऊपर पड़ रही थी ॥८१॥ हे ईश, आपकी जय हो, हे विजय करनेवाले महाराज, आप ससारका विजय करे और दशो दिशाभोको जीतें, इस प्रकार सैकडो पुण्याशीर्वादीके द्वारा नगरनिवासी लोग भरतकी पूजा कर रहे थे—उनके प्रति सम्मान प्रकट कर रहे थे ॥८२॥ इस प्रकार उस समय होनेवाली अयोध्याकी उत्कृष्ट विभूतिको देखने हुए सम्राट् भरत धीरे धीरे रत्नोके^१ तोरणोंसे देदोप्यमान गोपुरद्वारको प्राप्त हुए ॥८३॥ उस समय महाराज भरतको नगरके बाहर अपने आगे पीछे और साथ साथ जहातक दृष्टि पडती थी वहा तक असख्यात सेना ही सेना दिखाई पड़ती थी ॥८४॥ जगत्की उत्पत्तिके धरके समान उस अयोध्यापुरीसे वह सेना गोपुरद्वारको रोकती हुई बडी कठिनतासे धीरे धीरे बाहर निकली ॥८५॥ क्या यह प्रलय कालके क्षोभसे क्षोभको प्राप्त हुआ समुद्रका जल है ? अथवा यह तीनों लोकोंकी नवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है ? इस प्रकार आशका कर आकाशमे खड़े हुए देव लोग जिसे बड़े आश्चर्यके साथ देख रहे हैं ऐसी चक्रवर्तीकी वह सेना नगरसे निकल कर चारों ओर फैल गई ॥८६—८७॥

१ पदातीना समूह । २ -कट्या ल० । ३ निर्गच्छन्ति स्म । ४ रथनियुक्तवाजी । रथारवः ५०, ल०, इ० । ५ उत्पत्तन्ति स्म । ६ स्पष्ट ल० । ७ वाततम् । ८ जलविकारोत्थं: 'अवध्यम्बुविदृता वला' इत्यभिधानात् । ९ -मपूजयन् ल० । १० सम्पदम् । ११ तत्वावजाम् । १२ गोपुरम् । १३ उच्छ्रवासाभिन्नान्तं यथा भवति तथा । सप्तसप्तमिति यावत् । १४ त्रिलोवगुष्टिः ।

तत् प्राचीं दिश जेतुं कृतोद्योगो विशाम्पति । प्रथमो प्रायुलो भूया घञरत्नभानुवजन् ॥८८॥
 चक्रमस्य ज्वलद्ध्योम्नि प्रयाति रम पुरो विभो । सुरं परिच्छृतं विदयभास्वैर्द्विम्वप्रभास्वरम् ॥८९॥
 चक्रानुयायि तद्भोजे' निधीनामीशितुर्वलम् । पुरोरिच्छानुवर्षित्पु मुनीनामिव मण्डलम् ॥९०॥
 दण्डरत्न पुरोधाय सेनागीरप्रणीरभूत् । स्वपुटानि' समीकृष्वन् स्पलदुर्गाण्यस्तत ॥९१॥
 अग्रण्या दण्डरत्नेन पयि राजपथीकृते । यवेष्ट प्रथमो संय क्वचिद्व्यस्ततद्गति ॥९२॥
 ततोऽप्यनि विशामीश सोऽपश्यच्छारवीं श्रियम् । दिशां प्रसाधनीं कीर्तिम् श्राल्मीयामिव निर्मलाम् ॥९३॥
 सरासि कमलामोदन् उद्धमन्ति शरच्छिद्यम् । मुत्तायिताणि सम्प्रेक्ष्य सोऽभ्यनन्दवपीशिता ॥९४॥
 स हसान् सरसा तोरेष्वपश्यत् कृतशिञ्जनान् । मृणालपीथ्य'सम्पुष्टान् शरद पुत्रवानिव ॥९५॥
 घञ्चक्रा मृणालमुद्गत्य हसो हर्ष्य समपंपन् । राजहस्तस्य' हृद्यस्य' महतीं पृतिमावदे ॥९६॥
 सधीचीं' योचिसकृद्दाम् अग्रपश्यन् परित' सर । कोर' 'क्रोकूयमानोऽस्य मनस प्रीतिमातनोत् ॥९७॥
 'हसयूनाब्जविञ्जलकरज पिञ्जरितां निजाम् । वधु विधुता' सोऽपश्यच्चक्राकीविशदकृया ॥९८॥
 तरङ्गपार्श्वलीभूतविग्रहा कोषवाग्मिनीम् । ध्यामोहादनुधावन्त स' जरद्वसमैशत ॥९९॥
 नदोपुलिनदेशेयु हससारसहारिषु । शयनेष्विव तस्यसौद् पृति शुचिमसीमसु' ॥१००॥

तदनन्तर जिन्होने सबसे पहले पूर्व दिशाको जीतनेवा उद्योग किया है ऐसे महाराज भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे जाते हुए पूर्वकी ओर मुखकर प्रयाण किया ॥८८॥ सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान और चारो ओरसे देव लोगोके द्वारा घिरा हुआ जाज्वल्यमान चक्ररत्न आकाशमे भरतेद्वरके आगे-आगे चल रहा था ॥८९॥ जिस प्रकार मुनियोंका समूह गुरुजी इच्छानुसार चलता है उसी प्रकार निधियोंके स्वामी महाराज भरतकी वह सेना चक्ररत्न की इच्छानुसार उसके पीछे पीछे चल रही थी ॥९०॥ दण्डरत्नको आगे कर सेनापति सबसे आगे चल रहा था और वह ऊचे नीचे दुर्गम वनस्थलोको लीलापूर्वक एकसा करता जाता था ॥९१॥ आगे चलनेवाला दण्डरत्न सत्र मार्गको राजमार्गके समान विस्तृत और सम करता जाता था इसलिये वह सेना किसी भी जगह स्थलित न होती हुई इच्छानुसार जा रही थी ॥९२॥ तदनन्तर मार्गम प्रजापति-भरतने दिशाओको अलकृत करनेवाली अपनी कीर्तिके समान निर्मल शरद् ऋतुकी शोभा देखी ॥९३॥ शरद् ऋतुरूपी लक्ष्मीके मुखके समान जो सरोवर कमल की सुगन्ध छोड रहे थे उन्हे देखकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥९४॥ सरोवरोके किनारेपर मयूर गन्द करते हुए और मृणालरुनी मक्खन खाकर पुष्ट हुए हसोको भरतेश्वर ने शरद्ऋतुके पुत्रोके समान देखा ॥९५॥ जो हस अपनी चोचसे मृणालको उठाकर हसीके लिये दे रहा था उसने, सब राजाओम श्रेष्ठ इन भरत महाराजके हृदयम बडा भारी सतोप उत्पन्न किया था ॥९६॥ जो चक्रवा लहरोसे रुकी हुई चक्रवीको न देखकर सरोवरके चारो ओर शब्द कर रहा था उसने भी भरतके मनकी प्रीतिको अत्यन्त विस्तृत किया था ॥९७॥ एक तरुण हमने कमल केशरकी धूलिसे पीली हुई अपनी हसीको चक्रवी समझकर भूलसे छोड दिया था महाराज भरतने यह भी देखा ॥९८॥ लहरोसे जिसका शरीर सफेद हो गया है ऐसी चक्रवीको हमी समझकर और उसपर मोहित होकर एक बूढा हस उसके पीछे पीछे दौड रहा था—महाराज भरतने यह भी देखा ॥९९॥ जिनकी सीमाए अत्यन्त पवित्र है जो हस तथा

१ पूर्वाम् । ३ परिवृत ल० । ३ सूर्यविम्बम् । ४ तद्भोजे ल० । ५ निम्नोन्नतानि ।

६ सिञ्जितान् प०, द०, ल० । ७ शीरवनीत । स्वपयोवनीतमित्यर्थ । ८ राजश्रेष्ठस्य । ९ हृदये ।

१० प्रियाम् । ११ सरस गमनान् । १२ भूय स्वर कुर्वाण । १३ तरुणहमेन । १४ ज्वनाताम् ।

१५ धत्री । १६ पुत्रिवम्पावापयु ।

‘रोधोलनागि’ गो मृष्टपुष्पप्रकटशोभिनी । सरिङ्गोरभुवोऽदसंज्ज नोन्द्वामनरतिङ्गता ॥१०१॥
 सतालपेषु रम्येषु रतिरस्य प्रपश्यत । स्वयं गलप्रसूवीयरचिनप्रस्तरेष्वभूत् ॥१०२॥
 वरचिल्लनाहास्यत्स्यचन्द्रवाग्विगताधिनान् । स्वयशोमानसकनान् विद्वरान् प्रनुरक्षन् ॥१०३॥
 वरचिल्लता प्रसूनैषु विलोमनूपावनी । विलोस्य स्रस्तरेशीना समार प्रिययोपिताम् ॥१०४॥
 सुमनोवर्षमातेन प्रीयेवास्याधिर्मूर्धजम् । पवनान्पूनवाग्व्याघ्रा प्रफुल्ला मार्गशाखिन ॥१०५॥
 सच्छायात् सफलान् तुङ्गान् सर्वसन्मोग्गसम्पद । भगदुभान् समद्राक्षीन् स नृपाननुकृषन्त ॥१०६॥
 सरन्तीरभुवोऽपश्यन् सरोररजसा तना । सुवर्णकट्टिं माशदरामध्वन्यहृदि तन्वती ॥१०७॥
 बलरंणभिरादृष्टे दोषामर्ग्ये नभस्यसौ । दहर्णं दहनौ बोक्षान्धके चक्राह्वामिनोम् ॥१०८॥
 गवा गगानवापश्यद्गोष्पदारण्यचारिण । क्षीरमेयानिपाजस क्षरत्क्षीरप्लुनान्तिवान् ॥१०९॥
 क्षीरमेवान् स शृङ्गाप्रसमुत्खानस्वयन्बुजान् । मृषालानि पसासोव किरतोऽपश्यदुन्मदान् ॥११०॥

मार्गम आदि पक्षिघोमे मनोहर है, और जो विछी हुई अध्याओके नमान जान पडते हैं ऐंने नदी-किनारेके प्रदेशोपर महाराज भरतको भागी मनोप हुवा ॥१००॥ जो किनारेपर लगी हुई ग्नाओके अग्रभागमे गिरे हुए फूओके समूहमे मुगोभित हो रही हैं और जो जगके प्रवाह से उठी हुई गृहगेमे व्याप्त हैं ऐंमी नदियोंके किनारेकी भूमि भी भरतेश्वरने बडे प्रेममे देखी थी ॥१०१॥ जिनमें अपने आप गिरे हुए फूओके समूहमे अध्याए जनी हुई हैं ऐंमे रमणीय लनागृहोको देखते हुए भरतको उनमें भारी प्रीति उत्पन्न हुई थी ॥१०२॥ उन भरत महाराज ने वही कहीपर लनागृहोके भीतर पडी हुई चन्द्रकान्ति मणिकी जिगजोपर बैठे हुए और अपना यगगान करनेमें लगे हुए निजरोको देखा था ॥१०३॥ वही कहीपर लताओके फूओपर बैठे हुए भूमरोके समूहोको देखकर जिनकी चोटिया टींगी होकर नीचेकी ओर लटक रही हैं ऐंमी प्रिय स्त्रियोंका स्मरण करता था ॥१०४॥ जिनकी शाखाओके अग्रभाग वायुमे टिङ्ग रहे हैं ऐंमे फूओ हुए मार्गके वृक्ष मानो बडे प्रेममे ही भरत महाराजके सम्मुखपर फूओकी वर्षा कर रहे थे ॥१०५॥ वह भरत मार्गके दोनों ओर लगे हुए जिन वृक्षोको देखते जाते थे वे वृक्ष राजाओका अनुकरण कर रहे थे क्योंकि निम् प्रकार राजा मच्छाय अर्थात् उत्तम वान्तिमे सहित होते हैं उमी प्रकार वे वृक्ष भी मच्छाय अर्थात् उत्तम छाहरीसे सहित थे, जिम प्रकार राजा मफठ अर्थात् अनेक प्रकारकी आयमे सहित होते हैं उमी प्रकार वे वृक्ष सफठ अर्थात् अनेक प्रकारके फओमे सहित थे, जिम प्रकार राजा तुङ्ग अर्थात् उदार प्रकृतिके होते हैं उमी प्रकार वे वृक्ष भी तुङ्ग अर्थात् ऊंचे थे और जिम प्रकार राजाओकी सम्पदाए सबके उपभोगमें आती हैं उमी प्रकार उन वृक्षोकी फठपुष्प पल्लव आदि सम्पदाए भी सबके उपभोगमें आती थी ॥१०६॥ जो सरोवरोके किनारेकी भूमिया समगोनी परागमे व्याप्त हो रही थी और इसीलिये जो पक्षिकोने हृदयमें बना वह सुवर्णकी धूलियोमे व्याप्त हैं, इन प्रकार बना कर रही थी, उन्हें भी महाराज भरत देखते जाते थे ॥१०७॥ सेनाकी धूलिसे भरे हुए और इसीलिये रात्रिके ममान जान पडनेवाले आकाशमें रात्रि समझ कर रोती हुई चक्रवीको देखकर महाराज भरतके हृदयमें बडी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१०८॥ कुछ आगे चलकर उन्होंने जगजानी गोचरभूमिमें चरते हुए गायाने समूह देखे, वे गायाने समूह दूधके मेघोने ममान निरन्तर भरते हुए दूधमे अपनी समीपवर्ती भूमियो तर कर रहे थे ॥१०९॥ जिन्होंने अपने सीगाके

१ तन्वता । ‘बून रावश्च तीरश्च तत् त्रिपु’ इत्यभिधानान् । २ वेणु । ३ रजना-व० ।

४ आत्मान दाया रात्रि मन्वत इति । ५ क्रियाविशेषात्ता लघुसक्त्वा द्वितीया वक्तव्या । ६ आनुभोते ।

७ गोग्म्यवन ।

वात्सक क्षीरसम्पोपादिव निर्मलविप्रहृम् । सोऽपश्यच्चपापलस्येव परा कीर्तिं कृतोत्प्लुतम् ॥१११॥
 स पक्वकणितानमकलमक्षेत्रमक्षत । नोद्धत्य फलयोगीति नृणा यक्तुमिबोधतम् ॥११२॥
 व्रान्तं भुवमाघातुमिबोत्पलमिवानतान्^१ । स कंदायै^२ कलमान् वीक्षयानन्द पर ययो ॥११३॥
 फलानतान् स्तम्बकरीन् सोऽपश्यद् चप्रभूमिषु । स्वजग्महेतून् केदारान्नमस्पत इवादरात् ॥११४॥
 आपीतपयस प्राज्यक्षीरा लोकोपकारिणी । पयस्विनीरिवापश्यत् प्रसूता शालिसम्पद ॥११५॥
 श्रवतसितनीलाब्जा कञ्जरेणुश्रितस्तनी । इक्षुदण्डभृतोऽपश्यच्छालींश्चोत्कृत्यती^३ स्त्रिय ॥११६॥
 हारिगीतस्वनाकृष्टं वेष्टिता हसमण्डलं । शालिगोप्यो दूशोरस्य मुद तेनुवंधूटिका ॥११७॥
 कृताम्बगोपरोपानि गीतानि दधती सती । न्यस्तावतसा कणिशं शालिगोपीर्ददशं स ॥११८॥
 सुगन्धिमुखनि श्वासा भूमरंरायुलीकृता । मनोऽस्य जह्नु शालीनां पालिका कलवातिका ॥११९॥
 उपाध्वं प्रकृतक्षेत्रान् क्षेत्रिण परिधावत । बलीपरोधंरायस्तानक्षतासी^४ सकीतुकम् ॥१२०॥

अग्रभागसे स्थलकमल उखाड डाले है और जो अपने यशके समान उनकी मृणालोको जहा तहा फक रहे है ऐसे उन्मत्त बैल भी भरत महाराजने देखे थे ॥११०॥ दूधसे पालन पोषण होनेके कारण ही मानो जिनका निर्मल-सफेद शरीर है जो चचलताकी अन्तिम सीमाके समान जान पडते है और जो बार बार उछल-कूद रहे है ऐसे गायोके बछडोके समूह भी भरतेश्वर देखते जाने थे ॥१११॥ भरत महाराज पकी हुई वालोसे नस्त्रीभूत हुए धानोके खेत भी देखते जाते थे, उम समय वे खेत ऐसे मालूम होते थे मानो 'लोगोको उद्धतपना फल देनेवाला नही है' यही कहनेके लिये तैयार हुए ही ॥११२॥ जो खेतके भीतर उत्पन्न हुए कमलोको सूधनेके लिये ही मानो नस्त्रीभूत हो रहे है ऐसे खेतोमें लगे हुए धानके पौधोको देखकर भरत महाराज परम आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥११३॥ उन्होने खेतकी भूमियोमें फलोके भारसे भुके हुए धानके उन पौधोको भी देखा था जो कि अपने जन्म देनेके कारण खेतोको बडे आदरके साथ नमस्कार करते हुएसे जान पडते थे ॥११४॥ उन्होने जहा तहा फैली हुई धानरूप सम्पदाओ को गायोके समान देखा था, क्योंकि जिस प्रकार गायें जल पीती है उसी प्रकार धान भी जल पीते है (जलसे भरे हुए खेतोमें पैदा होते है) जिस प्रकार गायोमें उत्तम दूध भरा रहता है उमी प्रकार धानोमें भी पक्वनेके पहले दूध भरा रहता है और गायें जिस प्रकार लोगोका उपकार करती है उमी प्रकार धान भी लोगोका उपकार करते है ॥११५॥ जिन्होने नाल सहित कमठोको अपने कणका आभूषण बनाया है, कमलकी पराग जिनके स्तनोपर गड रही है, जो हाथमें ईयना दहा लिये हुए है और जो धान रखानेके लिये 'छो छो' शब्द कर रही है ऐसी स्त्रियो को भी उन्होने देखा था ॥११६॥ जो अपने मनोहर गीतोके शब्दोसे खिचकर आये हुए हसो के समूहोमें धिरी हुई है ऐसी धानकी रसा करनेवाली नवीन स्त्रिया भरत महाराजके नेत्रोका आनन्द बडा रही थी ॥११७॥ जो पथिकोको रोक्नेवाणे सुन्दर गीत गा रही है और जिन्होने धानकी यात्रामें कणभूषण बना कर धारण किये है ऐसी धानकी रखानेवाले स्त्रियोको भरत ने बडे प्रेमसे देखा था ॥११८॥ जो अपने मुणकी सुगन्धित निश्वासे आये हुए भूमरोसे ध्यातु हो रही है ऐसी धान रखानेवाणी कुलीन लडकिया महाराज भरतके मनको हरण कर रही थी ॥११९॥ जा गीताके लोगोमे मार्गसे समीपवर्ती खेतोकी रसा करनेके लिये उनके

१ भूष अत्र अत्रभुषम् । २-भवानतान् ल०, ६०, ५० । ३ सस्यक्षेत्रममूहम् । ४ धेनु । ५ न वरगित-६० । ६ उन्मत्तान् भुवनी । ७ कलवातिका ल०, ६०, ६० । ८ मार्गसमीपे । ९ दृश । १० वरगितान् ।

‘उपशान्त्यनुषोऽश्रीप्रिगमानभितो विभुः । वेदारत्तावेराकीर्णा स भ्राम्यद्भिः कृषीवतैः ॥१२१॥
 सोऽपद्यन्निगमोपान्ते पयः^१ संश्यानरुदंमानु^२ । प्रथयन्गोबुरसोदस्वपुटानतिसद्भ्रतान् ॥१२२॥
 निगमान् परितोऽपदवद् ग्राममुत्थानु^३ महाबलान्^४ । पपत्विनो^५ जनेः सेष्यान् म^६हारामनहनपि ॥१२३॥
 ग्रामान् कुरुरुटसम्भ्रात्यान् सोऽन्यथाद् वृत्तिभिर्वृत्तान् । बोशातकीलतापुष्पस्यगिताभिरितोऽमुनः ॥१२४॥
 ‘बटोपरिसरेष्वप्य घनिरातीनु प्रपद्यतः । फलपुष्पानना घन्ती प्रसवाडघा^७ सतीरपि ॥१२५॥
 योपितो^८ निष्कमालाभिः बलपदंश्च विभूषिताः । पश्यनोऽस्य मनो जहूः ग्रामोभा^९ सथितापृती^{१०} ॥१२६॥
 ‘हृद्यद्गवोनकलशैः दध्नामपि निहिनकं^{११} । ग्रामेषु^{१२} फलभेदंश्च तमद्राशुमंहसराः ॥१२७॥
 ततो विदूरमुल्लद्घघ सोऽध्वानं पृतनावृतः । गद्राशुभासदद् धोरः^{१३} प्रयाणैः ‘कतिधंरपि ॥१२८॥
 हिमवद्विपुता पूज्या^{१४} सनामसिन्धुगाभिनीम् । शक्तिप्रवाहामावस्त्ववृत्तिं वीतिमिवालयनः ॥१२९॥
 ‘शकरोप्रेक्षगामुघत्तरद्गगञ्चूयिनर्तनाम् । वनरागोबृहच्छाटोपरिधाना यपूमिन ॥१३०॥

चारों और दौड़ रहे हैं और सेनाके लोगोंकी जवर्दस्ती करनेपर गेद खिन्न हो रहे हैं ऐसे खेतोंके मालिक किसानोंको भी भरतेस्वरने बड़े कौतुकके साथ देखा था ॥१२०॥ जो खेत फाटनेवाले इधर-उधर घूमने हुए किसानोंमें व्याप्त हो रही है ऐसी प्रत्येक ग्रामोंके चारों ओरकी निकट-पत्ती भूमियोंको भी भरतेस्वरने देखा था ॥१२१॥ जो स्पष्ट दिग्नेवाले गाणोंके मुरोंके चिह्नोंमें ऊंचे नीचे हो रहे हैं और जो अत्यन्त मरुद्धे हैं ऐसे कुछ कुछ कीचड़में भरे हुए गावोंके समीपवर्ती माणोंको भी भरत महाराज देखते जाते थे ॥१२२॥ उन्होने ग्रामोंके चारों ओर खड़े हुए महाबलवान् गावोंके मुग्धिया लोगोंको देखा था तथा पक्षी तिर्यञ्च और मनुष्योंके द्वारा गेवा करने योग्य बड़े बड़े बगीचोंके वृक्ष भी देखे थे ॥१२३॥ जो जहाँ जहाँ लौकी अथवा तुरई की लनाओंके फूलोंमें ढकी हुई वाडियोंमें घिरे हुए हैं और जिनपर एकसे दूसरेपर मृगा भी उड़कर जा मरुता है ऐसे गावोंको वे दूरमें ही छोड़ते जाते थे ॥१२४॥ भोपड़ियोंके समीपम फण और फूलोंसे भुकी हुई फूलों महित उत्तम लनाओंको देखते हुए महाराज भरतको बड़ा आनन्द आ रहा था ॥१२५॥ जो मूवणोंकी मालाओं और कड़ोंसे अलंकृत हैं तथा वाडियोंकी ओटमें लगे हुए हैं ऐसी गावोंकी स्त्रिया भी देखनेपाके भरतका मन हरण कर रही थी ॥१२६॥ गावोंके बड़े बड़े लौंग धौंके घड़े, दहीके पात्र और अनंके प्रकारके फल भंड कर उनका दर्शन करते थे ॥१२७॥

तदनन्तर धोरकी भरत सेनामहित किलनी ही मजिलों द्वारा लम्बा मार्ग तय कर गङ्गा नदीके समीप जा पहुँचे ॥१२८॥ वहाँ जाकर उन्होने गङ्गा नदीको देखा, जोकि उनकी कीर्तिके समान मुगोभिन हो रही थी क्योंकि जिम प्रसार उनकी बनी हिमवान् पर्वतमें धारण की गई थी उनी प्रकार गङ्गा नदी भी हिमवान् पर्वतसे धारण की गई थी, जिम प्रकार उनकी कीर्ति पूज्य और उत्तम थी उनी प्रकार गङ्गा नदी भी पूज्य तथा उत्तम थी, जिम प्रसार उनकी

१ ग्रामान्नुभुव । २ ग्रामान्नु उरभन्व न्यान् इत्यभिधानान् । ३ वेदारैः तुनर्नाति वेदारत्तावान् । ४ मागान् । ५ ईवशरंरुदंमान् । ६ ग्राममनरान् । ७ महाबलान् ८०, ९० । ८ वयन्निरोत्रं ल० । ९ शीरोशयानान् शीरितारव । १० महाग्राम-शरपि कश्चित् । ११ पटोरिका । १२ बोशातकी ज्योम्बिनकात्यामपागामोऽपि ना भवेत् इत्यभिधानान् । १३ गृह । १४ पुत्रंश्चरघा । १५ मूवणंमागामि । १६ ग्रामे भवा । १७ यवुतापृती यवुतापृती इत्यपि कश्चित् । १८ पुत्रकर्म । १९ नाकविकीर्णं । २० -सदुपीरः २० । २१ कतिधंरपि । २२ मनाम् ल० । २३ मीनर्तनाम् ।

विस्तोर्गेर्जनसम्भोग्यः कूजद्वंसात्तिमेलनैः । तरङ्गवदसनेः यान्ता^१ पुलिनंर्जपनैरिव ॥१३१॥
 'लोभोमिहस्तनिर्बूतपक्षिमालाकलस्वनैः । किमप्यालपितु यत्नं तग्यन्ती वा तटद्रुमैः ॥१३२॥
 क्षनी^२वंश्वेभदन्ताना 'रोधोजघनवर्तिनो । रुन्धतीमग्निभोत्पेव लसद्गामिद्रुकूलकैः ॥१३३॥
 रोमराजीमिधानीला वनराजो विवृष्वतीम् । तिष्ठन्मातामिवावर्तव्यक्तनाभिमुदन्वते ॥१३४॥
 विलोलवीचिसद्वद्वृत्ता^३ उदितयां पतागावत्तिम् । पताकामिव बिभ्राणा लब्धां सर्वापगाजयात् ॥१३५॥
 समासमोना^४ पर्याप्तपयसं धोरनिःस्वनाम् । जगता पावनीं भाग्या हसन्तीं गोमतल्लिकाम्^५ ॥१३६॥
 गुरुप्रवाहप्रसृता तीर्थकानंरुपासिताम् । गम्भीरशब्दसन्भूतिं जेनीं श्रुतिमिवामलाम् ॥१३७॥

कीर्ति समुद्र तक गमन करनेवाली थी उसी प्रकार गङ्गा नदी भी समुद्र तक गमन करनेवाली थी, जिस प्रकार उनकी कीर्तिका प्रवाह पवित्र था उसी प्रकार गङ्गा नदीका प्रवाह भी पवित्र था और जिस प्रकार उनकी कीर्ति कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी उसी प्रकार गङ्गा नदी भी कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी । अथवा जो गङ्गा किसी स्त्रीके समान जान पड़ती थी, क्योंकि मछलियां ही उसके नेत्र थे, उठनी हुई तरंग ही भौहोका नचाना था और दोनों किनारोंके वनकी पंक्ति ही उसकी साड़ी थी । जो स्त्रियोंके जघन भाग के समान सुन्दर किनारोंसे सहित थी, उसके वे किनारे बहुत ही बड़े थे । शब्द करती हुई हसोंकी माला ही उनकी करघनी थी और लहरें ही उनके वस्त्र थे ।—चञ्चल लहरों रूपी हाथोंके द्वारा उड़ाये हुए पक्षिमूर्खोंके मनोहर शब्दोंसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो किनारोंके वृक्षोंके साथ कुछ वार्तालाप करनेके लिये प्रयत्न ही कर रही हो ।—जो अपनी छलकती हुई लहरोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो तटस्त्री नितम्ब प्रदेशपर जगली हाथियोंके द्वारा किये हुए दातोंके घावोंको समुद्ररूप पतिके डरमे शोभायमान लहरोंरूपी वस्त्रसे ढक ही रही हो । जो दोनों ओर लगी हुई हरी भरी वनश्रेणियोंके प्रकट करने तथा साफ साफ दिखाई देनेवाली भवरोसे ऐसी जान पड़ती थी मानो किसी स्त्रीकी तरह अपने समुद्ररूप पतिके लिये रोमराजि और नाभि ही दिखला रही हो ।—जो चञ्चल लहरोंके संघटनसे उड़ी हुई पक्षियोंकी पंक्तिको धारण कर रही थी और उमने ऐसी जान पड़ती थी मानो सब नदियोंको जीत लेनेसे प्राप्त हुई विजय पताकाको ही धारण कर रही हो । जो किसी उत्तम गायकी हँसी करती हुई सी जान पड़ती थी क्योंकि जिम प्रकार उत्तम गाय ममासमीना अर्थात् प्रति वर्ष प्रसव करनेवाली होती है उसी प्रकार वह नदी भी ममाम-मीना अर्थात् परिपुष्ट मछलियोंसे सहित थी, जिस प्रकार उत्तम गायमे पर्याप्त पय अर्थात् दूध होना है उसी प्रकार उस नदीमें भी पर्याप्त पय अर्थात् जल था, जिस प्रकार उत्तम गाय गम्भीर शब्द करती है उसी प्रकार वह भी गम्भीर कल-कल शब्द कर रही थी, उत्तम गाय जिम प्रकार जगत्को पवित्र करनेवात्री है उसी प्रकार वह भी जगत्को पवित्र करनेवात्री थी और उत्तम गाय जिम प्रकार पूज्य होनी है उसी प्रकार वह भी पूज्य थी । अथवा जो जिनवाणोंके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिम प्रकार जिनवाणी गुरु-प्रवाह अर्थात् आचार्य परम्परामे प्रसृत हुई है उसी प्रकार वह भी गुरुप्रवाह अर्थात् बड़े भारी जलप्रवाहसे प्रसृत हुई थी—प्रवाहित हुई थी । जिम प्रकार जिन वाणी तीर्थ अर्थात् धर्मकी इच्छा करनेवाले पुरुषों

१ यान्तां य० । २ वापोमि-य० । ३-वंश्वे य० । ४ तीर । ५ प्रदंशपत्नीम् । ६ मागमशव-
 धात्तल्लिकाम् । प्रति वर्ष वर्षं गृह्णन्तीम् । 'ममाममीना मा वैव प्रतिवर्षं प्रगुषते' । ७ प्रगस्तगाम् ।
 गोमचरिचाम् य०, य०, य० ।

राजहंसैः कृणो'पास्यामलडघपां विपूतापतिम् । जपलक्ष्मीमिव स्फीताम् आत्मीयामग्नियामिनीम् ॥१३८॥
 विलसत्पद्मसम्भूतां जनतानन्ददायिनीम् । जगद्भोग्यामिवात्मीयां श्रियमायतिशालिनीम् ॥१३९॥
 विजयार्थतटाकान्ति'कृतश्लाघां' सुरंहसम् । अमग्नप्रसरं दिव्यां निजामिव पताकिनीम् ॥१४०॥
 ब्यालोलोमिकारास्फूर्णः स्वतीरवनपादपः । दधद्भिरद्रुहरोद्भेदं'म् आश्रितां कामुकरिव ॥१४१॥
 रोषोलतावपासीनान्' स्वेच्छ्रया सुरवम्पतीन् । हसन्तीमिव सुध्वानैः' शोकरोत्यैविसारिभिः ॥१४२॥
 किन्नराणां कलपवार्णः सगानैश्पवीणितैः । सैव्यपर्यन्तभूभागलतामण्डपमण्डनाम् ॥१४३॥

के द्वारा उपासित होती है उमी प्रकार वह भी तीर्थ अर्थात् पवित्र तीर्थ-स्थानकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके द्वारा उपासित होती अथवा किनारेपर रहनेवाले मनुष्य उसमे स्नान आदि किया करते थे, जिस प्रकार जिनवाणीसे गंभीर शब्दोंकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार उससे भी गंभीर अर्थात् बड़े जोरके शब्दोंकी उत्पत्ति होती थी, और जिस प्रकार जिनवाणी मल अर्थात् पूर्वापर विरोध आदि दोषोंसे रहित होती है उमी प्रकार वह भी मल अर्थात् कौचड आदि गंदले पदार्थों से रहित थी ।—अथवा जो अपनी (भरतकी) विजयलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार विजयलक्ष्मीकी उपासना राजहंस अर्थात् बड़े बड़े राजा लोग करते थे उसी प्रकार उस नदीकी भी उपासना राजहंस अर्थात् एक प्रकारके हंस विशेष करते थे, जिस प्रकार जयलक्ष्मीका कोई उल्लंघन—आनादर नहीं कर सकता था उसी प्रकार उस नदीका भी कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था, जयलक्ष्मीका आयति अर्थात् भविष्यत्काल जिम प्रकार स्पष्ट प्रकट था इसी प्रकार उमकी आयति अर्थात् लम्बाई भी प्रकट थी, जयलक्ष्मी जिस प्रकार स्फीत अर्थात् विस्तृत थी उसी प्रकार वह भी विस्तृत थी और जयलक्ष्मी जिस प्रकार समुद्र तक गई थी उसी प्रकार वह गंगा भी समुद्र तक गई हुई थी । अथवा जो भरतकी राज्यलक्ष्मीके समान मालूम होती थी क्योंकि जिस प्रकार भरतकी राज्यलक्ष्मी शोभायमान पद्म अर्थात् पद्म नामकी निधिसे उत्पन्न हुई थी उमी प्रकार वह नदी भी पद्म अर्थात् पद्म नामके सरोवरसे उत्पन्न हुई थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी उसी प्रकार वह भी जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जघत्के भोगने योग्य थी उसी प्रकार वह भी जगत्के भोगने योग्य थी, और भरतकी लक्ष्मी जिस प्रकार आयति अर्थात् उत्तरकालमे सुशोभित थी उसी प्रकार वह आयति अर्थात् लम्बाईसे सुशोभित थी ।— अथवा जो भरतकी सेनाके समान थी, क्योंकि जिम प्रकार भरतकी सेना विजयार्थ पर्वतके तटपर आक्रमण करनेसे प्रशंसाको प्राप्त हुई थी उमी प्रकार वह नदी भी विजयार्थ पर्वतके तटपर आक्रमण करनेसे प्रशंसाको प्राप्त हुई थी (गङ्गा नदी विजयार्थ पर्वतके तटको आक्रमण करती हुई बही है), जिस प्रकार भरतकी सेनाका वेग तेज था उसी प्रकार उस नदीका वेग भी तेज था । जिस प्रकार भरत की सेनाके फौजवाको कोई नहीं रोक सकता था उमी प्रकार उमके फौजवाको भी कोई नहीं रोक सकता था और भरतकी सेना जिस प्रकार दिव्य अर्थात् मुन्दर थी उमी प्रकार वह नदी भी

१ सेवाम् । २ विपूतापतिम् ल० । ३ पद्महृदये भागाम् । ४ शो निधिविशेषजगाम् ।
 ५ आक्रमण । ६ श्लाघ्या ल०, इ० । ७ मुवेगाम् । ८ रोमानाम् । ९ तीरलतागन्धिपताम् ।
 १० गुम्बानैः ल० । ११ सरगानैः इ० ।

हारिभि विश्वरोद्गीतं ब्राह्मता हरिणाडगना । द्यतीं तीरवच्छेपुं प्रसारितगतद्गता १ ॥१४४॥
 हृद्यं ससारसारावं पुलिर्दिव्ययोपिताम् । नितम्यानि सखाञ्चीनि हस्ततीमिव दिस्तुतं ॥१४५॥
 चतुर्दशभिरन्विता सहस्रैरन्विथयोपिताम् । सद्पीचीनामिवोद्दीचिं बाहूनां परिरम्भणे ॥१४६॥
 इत्याविष्कृतसशोभा जाह्नवीमंसत प्रभु । हिमयद्गिरिणाग्भोगे प्रहितामिव वशिष्ठ्याम् ॥१४७॥

मालिनीवृत्तम्

धारदुर्पहितकान्ति प्राक्तकान्तारराजीविरचितपरिधाया १ संकतारोहरम्याम् ।
 युवतिमिव गभीरावर्तनानि प्रपश्यन् प्रमदमतुलमूहे क्षमापति स्व स्रवन्तीम् ॥१४८॥
 सरसिजमकरम्बोद्गन्धिराधूतरोधोवनकिसलयमन्दा बोलनोद्बुद्धभान्द्य ।
 असकृदमरसिन्धोराधुनानस्तरडगान् अहृत नृपवधूनामध्वखेद समीर ॥१४९॥

सुन्दर थी । जो चचल लहरो रूपी हाथोसे स्पर्श किये गये और अकुररूपी रोमाचोको धारण किये हुए अपने किनारेके वनके वृक्षोसे आश्रित थी और उससे ऐसी मालूम होती थी मानो कामी जनोसे आश्रित कोई स्त्री ही हो ।— जो जलकणोसे उत्पन्न हुए तथा चारो ओर फैलते हुए मनोहर शब्दोसे अपनी इच्छानुसार किनारे परके लतागृहोम बैठे हुए देव देवागनाओकी हँसी करती हुई सी जान पडती थी । किन्नरोक मधुर शब्दवाले गायन तथा वीणाकी भनकारसे सेवनीय किनारेकी पृथिवीपर बने हुए लतागृहोसे जो बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थी ।— किन्नर देवोके मनोहर गानोसे बुलाई हुई और सुखस ग्रीवाको लम्बा कर बैठे हुए हरिणयो को जो अपने किनारेकी भूमिपर धारण कर रही थी ।— जिनपर सारस पक्षी कतार बाधकर मनोहर शब्द कर रह है ऐसे अपने बड़े बड़े सुन्दर किनारोसे जो देवागनाओके करधनी सहित नितम्बोकी हँसी करती हुई सी जान पडती थी ।— जिन्होने आलिंगन करनेके लिये तरगरूपी भुजाए ऊपरकी ओर उठा रखी है ऐसी सखियोंके समान जो चौदह हजार सहायक नदियोंसे सहित है ।— इस प्रकार जिसकी शोभा प्रकट दिखाई दे रही है और जो हिमवान् पर्वतके द्वारा समुद्रके लिये भेजी हुई कण्ठमालाके समान जान पडती है ऐसी गङ्गा नदी महाराज भरतने देगी ॥१२९—१४७॥ शरद्व्रतके द्वारा जिसकी कान्ति बढ गई है किनारेके वनोकी पक्ति ही जिनके वस्त्र है, जो वायूके टिलेरूप नितम्बोसे बहुत ही रमणीय जान पडती है, गभीर भवर ही जिनकी नाभि है और इस प्रकार जो एक तरह स्त्रीके समान जान पडती है ऐसी गङ्गा नदीको देखते हुए राजा भरतने अनुपम आनन्द धारण किया था ॥१४८॥ जो कमलोकी मकरन्दमे सुगन्धित है, कुछ कुछ वम्पित हुए किनारेके वनके पल्लवोके धीरे धीरे हिलनेसे जिसका मन्दपना प्रकट हो रहा है और जो गङ्गा नदीकी तरगीको बार-बार हिला रहा

१ तीरवनपु । २ प्रसारिता भूत्वा गुप्तातिशयेनाधो गतद्गनो मागा ता । ३ रापीनाम् ।
 ४ बाँचिबाट्टा ल० । ५ गंगाम् । ६ प्राक्त । ७ संकतानितम्ब ।

शार्दूलविकीर्णितधृत्तम्

तामात्रान्तहरिन्मुखां^१ कृतरजोमूर्तिं^२ जगत्पावनीम्

प्रासेध्यां^३ द्विजकुञ्जरैरविरतं सन्तापविच्छेदिनीम् ।

जनीं कीर्तिनिवाततामपमलां शशयज्जनानन्दिनीं

निध्यापन्^४ विद्युत्पापघ्नां निधिपतिः प्रीतिं परामासदत् ॥१४०॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भरतराजदिग्विजयोद्योगवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमं पद्यं ॥

है ऐसा वहाँका वायु रानियोंके मार्गके परिश्रमको हरण कर रहा था ॥१४१॥ वह गङ्गा ठीक जिनेन्द्रदेवकी कीर्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवकी कीर्तिने समस्त दिशाओं को व्याप्त किया है उसी प्रकार गङ्गा नदीने भी पूर्व दिशाको व्याप्त किया था, जिनेन्द्र भगवान् की कीर्तिने जिस प्रकार रज अर्थात् पापोंका नाश किया है उसी प्रकार गङ्गा नदीने भी रज अर्थात् धूलिका नाश किया था, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार जगत्को पवित्र करती है उसी प्रकार गङ्गा नदी भी जगत्को पवित्र करती है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार द्विज कुंजर अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके द्वारा सेवित है उसी प्रकार गङ्गा नदी भी द्विज कुंजर अर्थात् पक्षियों और हाथियोंके द्वारा सेवित है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार निरन्तर संसार-भ्रमण-जग्य संतापको दूर करती है उसी प्रकार गङ्गा नदी भी सूर्यकी किरणोंमें उत्पन्न संतापको नष्ट करती थी और जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार विस्तृत, निर्मल और सदा लोगोंको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार वह गङ्गा नदी भी विस्तृत, निर्मल तथा सदा लोगोंको आनन्द देती थी । इस प्रकार उस गङ्गा नदीको देगते हुए निधियोंके स्वामी भरत महाराज परम प्रीतिको प्राप्त हुए थे ॥१५०॥

इम प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिपट्टि लक्षण महापुराण मप्रह्के

हिन्दी-भाषानुवादमें भरतराजकी दिग्विजयके उद्योगके वर्णन

करनेवाला छद्मीमवां पद्यं पूर्ण हुआ ।

सप्तविंशतितमं पर्व

अथ व्यापारयामास दश तत्र^१ विशाम्पति । प्रसन्नं सलिलं पाद्य वितरन्त्यामिवात्मन ॥१॥
 व्यापारितदश तत्र प्रभुभालोक्य सारथि । प्राप्तावसरमित्यूचे वचदचेतोऽनुरञ्जनम् ॥२॥
 इयमाह्लादिताशेषभूवना देवनिम्नगा । रजो विधुन्वती भाति भारतीव स्वयम्भुव ॥३॥
 पुनातीय हिमाद्रि च सागर च महानदी । प्रसूती^२ च प्रवेशे च गम्भीरा निर्मलाशया ॥४॥
 इमा वनगजा प्राप्य निर्वाण्येते^३ भवदध्युत^४ । मुनीन्द्रा इव सद्विद्या^५ गम्भीरा तापविच्छिद्यदम् ॥५॥
 इत पिबन्ति वन्येभा पयोऽस्या कृतनि स्वना । इतोऽमी पूरयत्येना मुक्तासारा शरद्वना ॥६॥
 अस्या प्रवाहमग्नीधि धत्ते गाम्नीर्ययोगत । अतोऽ विजयाधेन तुद्रगेनाप्यचलात्मना ॥७॥
 अस्या पय प्रवाहेण नूनमप्यिवितुड भवेत् । क्षारेण पयसा स्वेन दह्यमानान्तराशय ॥८॥
 पद्महृदादिभवत प्रसन्नादिव मानसात् । प्रसूता पप्रथे पुष्या शुद्धजमा हि पूज्यते । ९॥
 व्योमापगामिमा प्राहुर्वियत्^६ पतिता क्षिती । गङ्गादेवीगृह विष्वगाप्लाव्य स्वजलप्लवं ॥१०॥

आयानन्तर वहापर जो स्वच्छ जलसे अपने लिये (भरतके लिये) पादोदक प्रदान करती हुई सी जान पड़ती थी ऐसी गङ्गा नदीपर महाराज भरतने अपनी दृष्टि डाली ॥१॥ उन समय सारथिने महाराज भरतको गङ्गापर दृष्टि डाले हुए देखकर चित्तको प्रसन्न करनेवाले निम्नलिखित समयानुकूल वचन कहे ॥२॥ हे महाराज ! यह गङ्गा नदी ठीक ऋषभदेव भगवान्की वाणीके समान जान पड़ती है, क्योंकि जिस प्रकार ऋषभदेव भगवान्की वाणी ममत्त ससारको आनन्दित करती है उसी प्रकार यह गङ्गा नदी भी समस्त लोकको आनन्दित करती है और ऋषभदेव भगवान्की वाणी जिस प्रकार रज अर्थात् पापको नष्ट करनेवाली है उसी प्रकार यह गङ्गा नदी भी रज अर्थात् धूलको नष्ट कर रही है ॥३॥ गभीर तथा निर्मल जलसे भरी हुई यह गङ्गा नदी उत्पत्तिके समय तो हिमवान् पर्वतको पवित्र करती है और प्रवेश करते समय समुद्रको पवित्र करती है ॥४॥ जिम प्रकार गभीर और सन्तापको नष्ट करनेवाली मद्रिद्या (मम्याज्ञान) को पाकर बड़े बड़े मुनि लोग मद्र अर्थात् अहंकार छोड़ कर मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार ये जगती हाथी भी इस गभीर तथा सतापको नष्ट करनेवाली गङ्गा नदीको पाकर मदे अर्थात् गण्डम्यग्मे भरनेवाते तोय विशेषको छोड़कर शान्त हो जाते हैं ॥५॥ इपर ये वनके हाथी मद्र करने हुए इसका पानी पी रहे हैं और इधर जलकी वृष्टि करने हुए ये मद्रकृतुके भेष इमे भर रहे हैं ॥६॥ अत्यन्त ऊचा और सदा निरश्चर रहनेवाला विजयाधं पर्वत भी जिमे धारण नहीं कर सका है एमे इसके प्रवाहो गम्भीर होनेसे समुद्र मदा धारण करना रहता है ॥७॥ सम्भव है कि अपने घारे जल जिमका अन्त करण निरन्तर जाता रहता है वेगा समुद्र इग गङ्गा नदीके जलके प्रवाहमे अवश्य ही प्यागरहित हो जायेगा ॥८॥ यह गङ्गा प्रगन्न मनष गमात निर्मल हिमवान् पर्वतके पय नामक शरोवरमे निवृत्त-कर पृथिवीपर प्रगिष्ठ हुई है या ठीक ही है क्याकि जिमका जन्म मृदु होता है वह पूज्य होता ही है ॥९॥ यह गङ्गा अपने जलके प्रवाहमे गङ्गादेवीके परमा चारा आग्ने भिगोरर आवाश-

१ अश्वत्थाम ।

२ उत्पत्तिरूपान ।

३ मुनिना भवति मुक्तासव ।

४ मद्रप्युत स० ।

५ अश्वत्थामनाम । ६ मद्रकृतुवचन । ७ अत्यन्तसंश्लेष । ८ विषय स०, ९०, ९० ।

विभति हिमवानेना शशाङ्करनिर्मलाम् । आसिन्धो प्रसूता कीर्तिमिव स्वा लोकपावनीम् ॥११॥
 वनराजोद्भिषेनेय विभाति' तदवतिना । वाससोरिव युग्मेन विनीलेन कृतधिया' ॥१२॥
 स्वतटाश्रयिणीं धत्ते हृत्समात्ता कस्तस्वनाम् । काञ्चीमिदेषमम्भोजरज-पिञ्जराविप्रहाम् ॥१३॥
 नवीसखीरिव स्वच्छ'मृणालशकलामला । सन्धिभति स्वसालुत्य सरप श्लाघ्य हितावृशम् ॥१४॥
 राजहंसैरिव सेव्या लदमीरिव विभाति ते । तन्वती जगत प्रीतिमलहृद्यमहिमा परं ॥१५॥
 वनवेदीमिव धत्ते समुत्तुङ्गा हिरण्ययोम् । धातामिव तवालहृषा नभोमार्गविलम्बिनीम् ॥१६॥
 इत' प्रसीद देवेभ्य शरल्लक्ष्मीं विलोकय । वनराजियु सरदा' सरित्सु सरसीयु च ॥१७॥
 इमे सप्तचक्रदा पोष्य विकिरन्ति रजोऽभित । पटवासमिवाभोदसवासितहरिण्मुत्तम् ॥१८॥
 बाणं' कृष्णमबाणस्य बाणैरिव विकिरसिभि । ह्रियते' कामिना चेतो रम्य हरि र कस्य वा ॥१९॥
 विकसन्ति सरोजानि सरस्तु सममुत्पलं । विकासिलोचनानीव यदनानि शरच्छ्रिय ॥२०॥
 पद्मकजेषु विलीयन्ते' भ्रमरा गन्धलोलुपा । कामिनीमुखपद्मेषु कामुका इव काहता' ॥२१॥
 मनोजशरपुङ्खवाङ्गं पक्षमंधुकरा इमे । विचरन्त्यविजनीपण्डे मकरन्दरसोत्सुका ॥२२॥

से अर्थात् हिमवान् पर्वतसे ऊपरसे पृथिवीपर पडी है इसलिये इमे आकाशगङ्गा भी कहते हैं ॥१०॥ जो चन्द्रमानी विरणोके समान निर्मल है, समुद्रतप फौली हुई है और लोकको पवित्र करनेवाली है ऐसी इस गङ्गाको यह हिमवान् अपनी कीर्तिके समान धारण करता है ॥११॥ यह गङ्गा अपने तटवर्ती दोनों ओरके वनोसे ऐसी सुशोभित हो रही है मानो इमने नीले रगके दो वस्त्र ही धारण कर रखे हो ॥१२॥ कमठोके परागसे जिनका शरीर पीला पीला हो गया है और जो मनोहर शब्द कर रही है ऐसी हंसोकी पवित्रयोरो यह नदी इस प्रकार धारण करती है मानो मन्द-मन्द शब्द करती हुई सुवर्णमय करघनी ही धारण किये हो ॥१३॥ यह नदी स्वच्छ मृणालके टुकडोके समान निर्मल अन्य सखी स्वरूप महायक नदियोंको अपने में मिलाकर धारण करती है सो ठीक ही है क्योंकि ऐमे पुरपोकी मित्रता ही प्रथमनीय बहलाती है ॥१४॥ अनेक राजहंस (पक्षमें बडे बडे राजा) जिसकी सेवा करते है, जो समारको प्रेम उत्पन्न करनेवाली है, और जिसकी महिमा भी कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसी यह गङ्गा आपकी राजलक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही है ॥१५॥ जो अत्यन्त ऊची है, सोनेकी बनी हुई है, आकाश-मार्गको उल्लघन करनेवाली है और आगकी आज्ञाके समान जिसका कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसी वनवेदिकाको यह गङ्गा नदी धारण कर रही है ॥१६॥ हे देव, प्रमत्त होइए और इधर वनपतितयो, नदियो और तालाओमें स्थान जमाये हुई शरद् ऋतु की इस शोभाको निहारिये ॥१७॥ ये सप्तपर्ण जातिके वृक्ष अपनी मुगन्धिसे समस्त दिशाओ को सुगन्धित करनेवाले मुगन्धिचूर्णके समान फूठोकी परागको चारो ओर बिखेर रहे है ॥१८॥ इधर वामदेवके बाणोके समान फूटे हुए बाण जातिके वृक्षो द्वारा कामी मनुष्योका चित्त अपहृत किया जा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि रमणीय वस्तु क्या अपहृत नहीं करती ? अथवा किसे मनोहर नहीं जान पडती ? ॥१९॥ इधर तालाओमें नील कमलोके माय साय माघारण कमल भी विरमित हो रहे है और जो ऐमे जान पडते है मानो जिनमें नेत्र विकसित हो रहे है ऐमे शरद्ऋतुरूपी लक्ष्मीके मुख ही हो ॥२०॥ इतर ये वृक्ष वृक्ष अव्यवत शब्द करते हुए मुगन्ध के लोभी भ्रमर कमठोमें उन्न प्रकार निगन हो रहे है निम प्रकार कि चाटुवारी करने हुए वामी जन म्रियोके मुगन्धी कमलोमें निगन-आमकन-होते है ॥२१॥ जो मकरन्द रमरा पान

१ विभति ल० । २ धनधिया ल०, ६०, ६० । ३ स्वच्छमृणाल-ल० । ४ तावृशाम् ल० । ५ परं राजधेः । ६ प्रसिद्धाम् । ७ निम्बिभि । ८ अपहृतम् । ९ आदिनप्यन्ति । निरीयन्ते ल० । १० अस्तुवताना ।

हृषिता^१ कञ्जकिञ्जल्कं आभान्पतेते मधुग्रता । सुवर्णकपिशोररुणे वामाग्नेरिय मुमुंरा^१ ॥२३॥
 स्थलेषु स्थलपद्मिन्यो विकसत्यश्चकासति । शरच्छिद्यो जिगोपन्त्या द्वूप्यशाला^१ ह्योत्थिता ॥२४॥
 स्थलाब्जशङ्किकीं हसी सरस्यद्वरजस्तते । सद्गत्य पक्षविक्षेप विद्यन्तीप निमज्जति ॥२५॥
 हसोऽय निजशाचाय घञ्चोद्घृत्य लसद्विसम् । पीयबुध्या^१ ददात्यस्मै शशाङ्ककरकोमलम् ॥२६॥
 कृतयला प्लवन्तेऽमी राजहसा सरोजले । सरोजिनोरजकीर्णं धूतपक्षा शनं शनं ॥२७॥
 चक्रवाकीं सरस्तीरे तरङ्गे स्थगिताममूम्^१ । अपश्यन्^१ करण रीति चक्राह्व साधुलोचन ॥२८॥
 अभ्येति बरटाशङ्ककीं धार्तराष्ट्र^{१०} कृतस्वनम्^{११} । सरस्तरङ्गशुभ्राङ्गीं कोकवान्तामनिच्छतीम् ॥२९॥
 अनुगद्गतातट भाति साप्तपर्णमिद वनम् । सुमनोरेणुभिर्व्योम्नि वितानधिपमावपत् ॥३०॥
 मन्दाकिनोतररुणोत्पवनोऽध्वधम हरन् । शनं स्पृशति^{१२} नोऽङ्गानि रो^{१३} धोवनविधूनन् ॥३१॥
 श्रान्तिप्यमिव^{१४} नस्तन्वन् हृतगङ्गाम्बुशोकर^{१५} । अभ्येति^{१६} पवमानोऽय वनवीथीविधूनयन् ॥३२॥
 अगोप्यदमिव^{१७} देव देवैरधूपित धनम् । लतालयैर्विभात्यन्त^{१८} कुसु^{१९}मप्रस्तराञ्चितं ॥३३॥

करनेके लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं ऐसे ये भूमर कामदेवके वाणोकी मूठके समान आभावाले अपने पक्षोसे कमलिनियोके समूहमें जहा तहा विचरण कर रहे है घूम रहे है ॥२२॥ जिनके अगोपाग कमलकी केशरसे रूपित होनेके कारण सुवर्णके समान पीले पीले हो गये है ऐसे ये भूमर कामरूपी अग्निके स्फुल्लिङ्गोके समान जान पडते है ॥२३॥ जगह जगह पृथिवीपर फूले हुए स्थल-कमलिनियोके पेड ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सवको जीतनेकी इच्छा करने-वाली शरद्भ्रतुरूपी लक्ष्मीके खडे हुए कपडेके तम्बू ही हो ॥२४॥ जो कमलोकी परागसे व्याप्त हो रहा है ऐसे सरोवरमें कमलको स्थलकमल समझती हुई यह हसी पक्षोके विक्षेपको रोककर अर्थात् पक्ष हिलाये विना ही प्रवेश करती है और पानीमे डब जाती है ॥२५॥ यह हस चन्द्रमाकी किरणोके समान कोमल और देदीप्यमान मृणालको अपनी चोचसे उठाकर और क्षीर-सहित मक्खनके समान कोई पदार्थ समझकर अपने वच्चेके लिये दे रहा है ॥२६॥ कमलनीके परागसे भरे हुए तालावके जलमे ये हस धीरे धीरे पक्ष हिलाते हुए बडे प्रयत्नसे तैर रहे है ॥२७॥ तालावके तीरपर तरगोसे तिरोहित हुई चकवीको नही देखता हुआ यह हस आखोमें आसू भरकर बडी कृष्णाके साथ रो रहा है ॥२८॥ सभोगकी इच्छा करनेवाला यह शब्द करता हुआ हस, तालावकी तरगोसे जिसका शरीर सफेद हो गया है ऐसी चकवी के सन्मुख जा रहा है जब कि वह चकवी इस हसकी इच्छा नही कर रही है ॥२९॥ गङ्गा नदी के विनारे किनारे यह मन्तपर्ण जातिके वृक्षोका वन ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपने फूलोकी परागसे आकाशमें चंदोवाकी शोभा ही धारण कर रहा हो ॥३०॥ मार्गकी थकावट को दूर करता हुआ और विनारेके वनोको हिलाता हुआ यह गङ्गाकी लहरोसे उठा हुआ पवन हम लोगोके शरीरको धीरे धीरे स्पर्श कर रहा है ॥३१॥ वनकी पक्षियोको हिलाता हुआ यह वायु ग्रहण की हुई गङ्गाके जलकी बूदोमे ऐसा जान पडता है मानो हम लोगोका अतिथि-सत्कार करना हुआ ही आ रहा हो ॥३२॥ हे देव, जो गायोके सचारसे रहित है अर्थात् अत्यन्त दुर्गम

१ आच्छादिता । २ वनवन् विद्वर्ल । ३ विस्पृतिवद्गता । ४ पटवृष्ट । ५ द्वूप्य वस्त्रे च तद्गृहं । ६ शशीरनवनीतबुध्या । ६ कृतमन्त ल०, द०, इ०, अ०, प०, स० । ७ स्तनिताम् आच्छादिताम् । ८ आनावयन् । ९ हृग्वान्गिति गटकावान् । "बरटा हसवान्ता स्यात् बरटा बरलापि च" इति वैजयन्ती । १० गितेतरपञ्चुचरणवान् हम् । 'राजहसास्तु ते चञ्चुश्चरणं लोहितं क्लिता । मपिनर्मैल्लिपशासारं पावंराष्ट्रा गितेतरं' इत्यभिधानान् । ११ कृतस्वन द०, व०, ल० । कृतस्वनाम् अ० । १२ अग्मात्रम् । १३ तटवा । १४ अतिथित्वम् । १५ दीकरे ल०, प०, इ० । १६ अभिमुखमाग-च्छादि । १७ प्रमाणरहितम् । प्रवेष्टुमगवय वा । १८ विभायेतं द०, ल०, द० । १९ शयन ।

मदारयनवीथीना साग्न्यच्छाया समाश्रिता । चन्द्रवातशिलास्वेतो ररम्यते नभसव ॥३४॥
 ग्रहो तटवनस्यास्य रामणीयकमद्भुतम् । श्रवधूतनिजावासा रिरसन्तेऽथ यत्सुरा ॥३५॥
 मनोभवनिवेशस्य लक्ष्मीरत्र वितयते । सुरदम्पतिभि स्वैरम् प्रारब्धपरतिविभुम् ॥३६॥
 इय निधुवनासक्ता सुरस्त्रीरतिकोमला । हसनीव तरङ्गोत्पं शीकरंमरापगा ॥३७॥
 इत क्षिप्रसद्गोतम् इत सिद्धोपवीणितम् । इतो विद्याधरोनुत्तम् इतस्तद्गतिविभुम् ॥३८॥
 नृत्तमप्सरसा पश्यन् शुष्यस्तद्गीतनि त्यनम् । वाजिपवत्रोऽयमुद्भवीव सप्तमास्ते स्वकात्पया ॥३९॥
 निव्यर्थाप वनेऽमुष्मिन् श्रुतुवर्गो विवर्धते । परस्परमिव द्रष्टुम् अस्तुषापितमानस ॥४०॥
 अशोकतरत्राय सनुते पुष्पमञ्जरौम् । साक्षारक्तै लगत्प्रोणा चरणरनितादित ॥४१॥
 पुस्तोक्त्तिलालापमुखरीरुतदिद्मुख । चूतोऽय मञ्जरौपंतो मदनत्येव तीरिका ॥४२॥
 चम्पका विषसन्तोऽत्र कृसुमनो वितन्वति । प्रदोषानिव पुष्पीघान् वधतीम् मनोभुव ॥४३॥
 सहकारेष्वमी मत्ता विदवन्ति मपुश्रता । विजिगीषोरनद्गतस्य बाहला इव पूरिता ॥४४॥
 कोकिलानकनि स्वानं श्रुतिग्यारवज्जम्बित । श्रुतिषेण्यतीवान मनोभुम्बनत्रयम् ॥४५॥

हैं और जो देवोंके द्वारा अधिष्ठित हैं अर्थात् जहाँ देव लोग आकर त्रीडा करते हैं ऐसा यह वन फूँटोने विछौनीमें सुशोभित इन लतागूहोंमें अतिशय सुशोभित हो रहा है ॥३१॥ इधर मन्दार वृक्षोंकी वन-भक्तियोंकी घनी छायामें बैठे हुए ये देव लोग चन्द्रवान्त मणियोंकी शिलापर वार-वार त्रीडा कर रहे हैं ॥३४॥ अहा, इस किनारेके वनकी मुन्दरता वही आश्चर्य-जनक है कि देव लोग भी अपने अपने निवासस्थान छोड़कर यहाँ त्रीडा करते हैं ॥३५॥ जिन्होंने अपनी इच्छानुसार रति त्रीडा प्रारम्भ की है ऐसे देव देवागनाओंके द्वारा यहाँ काम-देवके घरकी शोभा बढ़ाई जा रही है । भावार्थ देव देवागनाओंकी स्वच्छद रतित्रीडाको देवपर मात्रुम होता है कि मानो यह कामदेवके रहनेका घर ही हो ॥३६॥ यह गन्ना अपनी तरासे उठी हुई जल्की वृद्धोंमें ऐसी जान पड़ती है मानो सभोग करनेमें अममयं होकर दीनता भरे अस्सप्ट शत्रु करनेवाली देवागनाओंकी हसी ही कर रही हो ॥३७॥ इधर किन्नरोंका मगीत हो रहा है, इधर सिद्ध लोग वीणा बजा रहे हैं, इधर विद्याधरिया नृत्य कर रही हैं और इधर कुछ विद्याधरिया विलामपूर्वक टहल रही हैं ॥३८॥ इधर यह किन्नर अपनी कान्ता के साथ साथ अप्पराजोका नृत्य देगता हुआ, और उनके संगीत शदोंको मुनता हुआ सुनने गाना ऊँचा कर बैठे हैं ॥३९॥ परस्परमें एक दूसरेको देखनेके लिये जिमका मन उत्पण्डित हो रहा है ऐसा ऋतुओंका समूह इन वनमें एक साथ इकट्ठा होता हुआ बढ रहा है ॥४०॥ लामसे रगे हुए विद्याधरियोंके चरणोंमें ताडित हुआ यह अगोच वृक्ष इस वनमें पुष्प-मजरियों को धारण कर रहा है ॥४१॥ कोकिलोंमें आलापमें जिमने नमन्त्र दिशाओंकी वाचाग्नि कर दिया है ऐसा यह आमवृक्ष कामदेवकी आवांठी पुतलियोंमें समान पुष्प-मजरियोंको धारण कर रहा है ॥४२॥ वसन्तऋतुके फेःनेपर इन वनमें जो चम्पक जातिवें वृक्ष विवमित हैं गृहे हैं और फूँटोने समूह धारण कर रहे हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवके दीपक ही धारण कर रहे हो ॥४३॥ इधर ये मदोन्मत्त भ्रमर आमू वृक्षोंपर ऐसा शब्द कर रहे हैं मानो गवरो जीतनेकी इच्छा करनेवाले कामदेवकी राजाके बाजे ही बज रहे हो ॥४४॥ कोकिलों

१ अथगत । २ रतुमिच्छन्ति । ३ यन्मान् कारणात् । ४ यन्ना स०, ६० । ५ रतित्राहना स०, ६०, ६० । ६ नृत्यन् अ०, ६० । ७ पूगणत् । निगमाया ५०, स०, ६०, अ०, स० । ८ पुष्पाणि सानामासाप स० । ९ बाणा । सारका स० । १० विषमन्यत्र स०, ६०, ६०, अ०, ५०, स० । ११ वगन्वतने । १२ किन्नुत सति । अविगतिः कसरोऽनभ इत्यभयचमत्र । १३ द्युताऽनी स०, ६०, ६०, अ०, ५०, स० । १४ ध्वनन्ति । १५ सनया अविद्यानि । निर्वृत्त इत्यादिपि नि ।

निचल^१ सहकारेण विकसन्नत्र माधवीम्^१ । तनोति लक्ष्मीमक्षुणाम् ग्रहो प्रावृद्ध्रिया समम् ॥४६॥
 माधवीस्तबकेष्वत्र माधवोऽद्य विजृम्भते । वनलक्ष्मीप्रहासस्य लीला तन्वत्सु विदधत ॥४७॥
 वासन्त्यो विकसन्त्येता वसन्तर्तुस्मितश्रियम् । तन्वाना कुसुमामोर्वे प्राकुलीकृतपद्मदा ॥४८॥
 मल्लिकाविततामोर्वेविलोलीकृतपद्मद । पादपेषु पद पत्ते श्रुचि^२ पुष्पश्रुचिस्मित^३ ॥४९॥
 कदम्बामोवसुरभि केतकीधूलिधूसर^४ । तापात्यमानिलो^५ देव नित्यमत्र विजृम्भते ॥५०॥
 माघान्ति कोकिला शशवत् सममत्र शिखण्डिभि । कलहसोकलस्वानं सम्मुखित^६ विकूजिता ॥५१॥
 कूजन्ति कोकिला मत्ता केकायन्ते^७ कलापिन । उभयस्यास्य वर्गस्य हसा^८ प्रश्यालपरत्यमो ॥५२॥
 इतोऽभी किन्नरीगीतम अनुकूजन्ति^९ पद्मदा । सिद्धोपवीणितान्वेष निहनन्तेऽन्यभूतस्वव^{१०} ॥५३॥
 जितनूपुरझङ्कारम् इतो हसविकूजितम् । इतश्च खेचरोनृत्यम् अनुनृत्यच्चिद्बलाबलम्^{११} ॥५४॥
 इतश्च संकतोत्सङ्गे सुप्तान् हसान् सशावकान् । प्रातः प्रबोधयत्युद्यन्^{१२} खेचरोनूपुरारव ॥५५॥
 इतश्च रचितानल्पपुष्पतरुमनोहरा । चन्द्रकान्तशिलागर्भा सुरभोग्या लतालया ॥५६॥

के मधुर शब्दरूपी नगाडो और भूमरोकी गुजार रूप प्रत्यचाकी टकार ध्वनिसे यह ऐसा मालूम होता है मानो कामदेव तीनों लोकोको जीतनेके लिये सेना सहित चढाई ही कर रहा हो ॥४५॥ अहा, कैसा आश्चर्य है कि आम्रवृक्षके साथ साथ फूलता हुआ यह निचुल जातिका वृक्ष इस वनमें वर्षाऋतुकी शोभाके साथ साथ वसन्त ऋतुकी भारी शोभा बढा रहा है ॥४६॥ इधर इस वनमें चारो ओरसे वन-लक्ष्मीके उत्कृष्ट हास्यकी शोभा बढानेवाले माधवीलता के गुच्छोपर आज वसन्त बडी वृद्धिको प्राप्त हो रहा है ॥४७॥ जो अपने विकाससे वसन्त ऋतुके हास्यकी शोभा बढा रही है और जो फूलोकी सुगन्धिसे भूमरोको व्याकुल कर रही है ऐसी ये वसन्तमें विवसित होनेवाली माधवीलताए विवसित हो रही है फूल रही है ॥४८॥ जिनने मालतीकी फंली हुई सुगन्धिसे भूमरोको चचल कर दिया है और फूल ही जिसका पवित्र हास्य है ऐसा यह ग्रीष्मऋतु वृक्षोंपर पर रख रहा है अपना स्थान जमा रहा है ॥४९॥ हे देव, वदम्य पुष्पोकी सुगन्धिसे सुगन्धित तथा केतकीकी धूलिसे धूसर हुआ यह वर्षाऋतु का वायु इस वनमें सदा बहता रहता है ॥५०॥ इस वनमें मयूरोके साथ साथ कोयल सदा उन्मत्त रहने है और कल-हसियो (वदकी) के मनोहर शब्दोंके साथ अपना शब्द मिलाकर बोलने है ॥५१॥ इधर उन्मत्त कोविलाए बुह बुह बर रही है, मयूर केवा वाणी बर रहे है और ये हम इन दोनोंके शब्दोकी प्रतिध्वनि बर रहे है ॥५२॥ इधर ये भूमर किन्नरियोके द्वारा गाये हुए गीतोंका अनुकरण बर रहे है और इधर यह कोयल सिद्धोके द्वारा बजाई हुई वीणाके शब्दोको छिन्ना रहा है ॥५३॥ इधर नूपुरोंकी भवारोकी जीतता हुआ हसोका शब्द हो रहा है, और इधर जिमवा अनुकरण बर मयूर नाच रहे है ऐसा विद्याधरियोका नृत्य हो रहा है ॥५४॥ इधर वायूके टीनोंकी गोदमें अपने बच्चो सहित सोये हुए हसोको प्रातः कालके समय यह विद्याधरियोके नूपुरोका ऊचा शब्द जगा रहा है ॥५५॥ इधर जो बहुतमे पूत्रोसे बजाई हुई शय्याओंके मनोहर जान पडते है, जिनके मध्यमें चन्द्रकान्त मणिकी शिलाए पडी

१ हिन्दुत्व । 'निचुली हिन्दुतोऽन्तुः' इत्यभिधानात् । २ वगने भवाम् । 'अतिमूक- पुष्प- कन्द- कर्णा मापवी एता' इत्यभिधानात् । एतानि पुष्पानि वसन्तकाले प्रागुक्तैः जायमानस्य नामानि । ३ कर्णात्पुष्पानि । 'यद्वा पुष्पानि एतानि' इत्यभिधानात् । ४ धीप । ५ पुष्पादेव श्रुचिस्मित इत्यर्थः । ६ ईष्यताम् । 'ईष्यन्तुः पूगा' इत्यभिधानात् । ७ वर्षाकालवाम् । ८ मिथिल । ९ कलापि । १० प्रश्यालं कूजन्ति । ११ उपलानं कूजन्ति । १२ अनुगन्तं नृत्यन्तं इत्यभिधानात् । १३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६० ।

इतीव वनमत्यन्तरमगीर्यः परिच्छदः०। स्वर्गोद्यानगतां प्रीतिं जनयेत् स्वःसदा१ सदा ॥५७॥
 बहिस्तटवनादेतद् दृश्यते काननं महत् । नानाद्रुमलतागुल्मबीरुद्भिरेतितुर्गमम् ॥५८॥
 वृष्टीनामप्यगम्येऽस्मिन् वने मृगरुदम्बकम् । नानानातीवमुद्भूतान्तं संन्यसोभात् प्रधावति ॥५९॥
 इदमस्मद्बतक्षोभाद् उत्त्रस्तमृगसद्वृकृतम् । धनमाकृतितप्राणमिवाभात्यन्धकारितम् ॥६०॥
 गजयूथमितः १कद्यद् ग्रन्थकारमिवाभितः । विरिलट्य१ बलसद्वृक्षोभाद् अप्रसपत्यतिद्रुतम् ॥६१॥
 शनः प्रयाति सञ्जयन् १दिशः प्रोत्क्षिप्तपुष्करः । स महाहिरिवात्रीन्द्रो नरोऽयं गजयूथपः ॥६२॥
 महाहिरवमपामं निमानं १इव भूच्छाम् । श्वसन्नायच्छ्ये १कद्यद् ऊर्ध्वोऽकृतशरीरकः ॥६३॥
 शयुपीता निकञ्जेयु १पुञ्जीभूता वसन्तमी । १वनस्येवान्प्रसन्तानाः चमूक्षीनाद्विनिसृताः ॥६४॥
 श्वमेकचरः १घोत्रसमृत्खातान्तिकस्थलः १। रुण्टि वरुं संन्यस्य वराहस्तोवरोपगः ॥६५॥
 सैनिकैर्यमाच्छः १पाषाणलकटादिभिः । व्याकुलीकृते १सैन्यं गण्डो १गण्ड १इव स्फुटम् ॥६६॥
 प्रागा इव घनादस्माद् विनिष्क्रामन्ति सन्तताः । सिंहा बहुदवज्वाला १पुञ्जानाः केसरच्छटाः ॥६७॥

हुई है और जो देवोंके उपभोग करने योग्य है ऐसे लतागृह वने हुए हैं ॥५६॥ इस प्रकार यह वन अत्यन्त रमणीय सामग्रीसे देवोंके सदा नन्दन वनकी प्रीतिको उत्पन्न करता रहता है ॥५७॥
 इधर किनारेके वनके बाहर भी एक बड़ा भारी वन दिखाई दे रहा है जो कि अनेक प्रकारके वृक्षों, लताओं, छोटे छोटे पौधों और झाड़ियोंसे अत्यन्त दुर्गम है ॥५८॥ जिसमें दृष्टि भी नहीं जा सकती ऐसे इस वनमें मेनाके क्षोभसे धवड़ाया हुआ यह अनेक जातिके मृगों का समूह बड़े जोरसे दौड़ा जा रहा है ॥५९॥ जो हमारी सेनाके क्षोभसे भयभीत हुए हरिणों से व्याप्त है तथा जिसमें जीवोंके प्राण आकुल हो रहे हैं ऐसा यह वन अन्वकारसे व्याप्त हुए के समान जान पड़ता है ॥६०॥ इधर सेनाके क्षोभसे अलग अलग हुआ यह हाथियोंका भ्रुण्ड गङ्गा किनारेके जलवाले प्रदेशसे अन्वकारके समान चारों ओर बड़े वेगसे भागा जा रहा है ॥६१॥ हाथियोंके भ्रुण्डकी रक्षा करनेवाला यह भद्र गजराज सूडको ऊंचा उठाता हुआ तथा दिशाओंको सूंघता हुआ धीरे धीरे ऐसा जा रहा है मानो नेपनाग सहित मुभेर पर्वत ही जा रहा हो ॥६२॥ जिसने अपने शरीरके ऊर्ध्वभागको ऊंचा उठा रक्खा है ऐसा यह बड़ा भारी सर्प जलवाले प्रदेशसे नांग लेता हुआ इस प्रकार जा रहा है मानो वृक्षोंकी लम्बाईको नापता हुआ ही आ रहा हो ॥६३॥ इधर इस लतागृहमें इकट्ठे हुए ये अजगरके बच्चे इस प्रकार श्वाभ ले रहे हैं मानो सेनाके क्षोभसे वनकी अंतड़ियोंके समूह ही निकल आये हों ॥६४॥ जो अकेला ही फिरा करता है, जिमने अपनी नाकसे समीपके स्थल खोद डाले हैं, और जो अत्यन्त क्रोधी है ऐसा यह झूकर सेनाका मार्ग रोक रहा है ॥६५॥ सेनाके लोगोंने जिसे पत्थर लकड़ी आदिसे रोक रक्खा है ऐसा यह गंड अर्थात् छोटे पर्वतके समान दिखनेवाला गंडा हाथी स्पष्ट रूपसे सेनाको व्याकुल कर रहा है ॥६६॥ जो दावानलकी ज्वालाके समान पीले और विस्तृत गर्दनपरके बालोंके समूहोंको हिला रहे हैं ऐसे गे सिंह इस वनमें इस प्रकार

१ नागिनाम् । २ प्रतानिनीसनाभिः । 'तना प्रतानिनी वासन् गुन्मिन्मुनमिदयिषि' इत्यभिधानम् । ३ बहुजलप्रदेशात् । 'जनप्रायमनूयं स्थान् पुंसि वृद्धमनयाविषः ।' इत्यभिधानम् । ४ विमलम् । ५ आघाणयन् । ६ प्रमिर्नि कुर्वन्निव । ७ दीर्घानिवति । ममुध्नः स्वंगे चाजा ।' इत्यतमनेपदी । -सागण्ये स०, ६० । ८ अजगरशिरावः । ९ निकञ्जेऽस्मिन् स०, ६०, ६० । १० पुरीतम् । ११ पृथगी । १२ चूनाम् । 'मृगार्थे त्रोट्टनयो पोत्रम्' इत्यभिधानम् । 'योत्रप्योऽत्रोऽह्मणे तद्' इति गुणं गिति । १३ वेष्टिनः । १४ आकृती-स० । १५ गङ्गागुणः । १६ गण्डान्त इव । १७ दावादावगुणा ।

गुग्गुलूना^१ धनादेव महियो धनकबुरं । निर्याति मृत्युबद्धाभविषाणाप्राणि भोषण ॥६८॥
 ललद्वालधयो^२ लोलजिह्वा व्यालोहितेशणा । ध्याला^३ बलस्य सद्भक्षोभम् श्रमो तन्वन्त्यनाकुला^४ ॥६९॥
 शरभ^५ ख समुत्पत्य पतद्भुतापितोऽपि^६ सन् । नैव दुःखासिका वेद^७ चरणं पृष्ठवर्तिभि ॥७०॥
 चमरोऽय^८ 'चमुरोधाद् विद्रुतो^९ द्रुतमुत्पतन् । क्षोभ तनोति संन्यस्य वर्षो रूपीव^{१०} बुधरं ॥७१॥
 शशा शशप्रय^{११} देव सैनिकंरननुद्रुत^{१२} । शरणापेव भीतात्मा म^{१३}ध्येसंन्यं निलीयते^{१४} ॥७२॥
 सारङ्गोऽय तनुच्छायाकल्माषितवन^{१५} शनं । प्रयाति शृङ्गभारेण शाखिनेव प्रशुष्यता ॥७३॥
 दक्षिणैर्मतया^{१६} विष्वगभिषावन्त्यपीक्षिता^{१७} । प्रजानुपालन न्याय्य तवाचष्टे मृगप्रजा^{१८} ॥७४॥
 कलापी बहृभारेण मन्द मन्द व्रजत्यसौ । केशपाशधिय तन्वन् वनलक्ष्म्यास्तनूहै ॥७५॥
 नैत्रावलीमिवातन्वन् वनभूम्या सचन्द्रके । कलापिनामय सद्बधो विभात्यस्मिन् वनस्थले ॥७६॥
 सद्भक्रोडता^{१९} रपाडगाना स्वनामकार्णयन् मुहु । हरिणानामिद यूय नापसरति वतन^{२०} ॥७७॥

निकल रहे हैं मानो उसके प्राण ही निकल रहे हो ॥६७॥ जो मेघके समान कबुर वणं है, जिसके सींगका अग्रभाग यमराजकी दाढके समान है तथा जो अत्यन्त भयकर है ऐसा यह भंसा इस गुग्गुलुके वनसे बाहर निकल रहा है ॥६८॥ जिनकी पूछ हिल रही है, जिह्वा चंचल हो रही है और नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे हैं ऐसे ये सिंह आदि क्रूर जीव स्वयं व्याकुल न होकर ही सेना का क्षोभ बढ़ा रहे हैं ॥६९॥ यह अष्टापद आकाशमें उछलकर यद्यपि पीठके बल गिरता है तथापि पीठपर रहनेवाले पैरोसे यह दुःखका अनुभव नहीं करता। भावार्थ अष्टापद नामका एक जगली जानवर होता है उसके पीठपर भी चार पाव होते हैं। जब कभी वह आकाश में छलाग मारनेके वाद चित्त अर्थात् पीठके बल गिरता है तो उसे कुछ भी कष्ट नहीं होता क्योंकि वह अपने पीठपरके पैरोसे सबलकर खडा हो जाता है ॥७०॥ जो मृतिमान् अहकारके समान है, दुर्जय है और मेनामे घिर जानेके कारण जल्दी जल्दी छलाग मारता हुआ उधर-उधर दौड रहा है ऐसा यह मृग मेनाका क्षोभ बढ़ा रहा है ॥७१॥ हे देव, यह खरगोश दौड रहा है, यद्यपि मैनिवोने इमना पीछा नहीं किया है तथापि यह डरपोक होनेसे उधर-उधर दौडकर शरण ढूढनेके लिये आपकी मेनाके बीचमें ही बही छिप जाता है ॥७२॥ जिसने अपने शरीरकी शान्तिसे वनको भी बाला कर दिया है ऐसा यह वृष्णसार जातिका मृग सूखे हुए वृक्षके समान अनेक शाखाओवाले सींगोंके भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७३॥ देखिये, दाहिनी ओर घाव लगनेसे जो चारा आर चक्कर लगा रहा है ऐसा यह हरिणोका समूह मानो आपसे यही वह रहा है कि आपको मय जीवोका पालन करना योग्य है ॥७४॥ जो अपनी पूछके द्वारा वनलक्ष्मी के केशपाशकी गोभा को बढ़ा रहा है एसा यह भयूर पूछने भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७५॥ द्रुपद् इम धनम्यग्रमें यह मजुरीना समूह एसा गुनोभित हो रहा है मानो अपनी पूछ परके चन्द्रबोने यवनी पृथिवी रूपी स्त्रीके नेत्रोने समूहकी गोभा ही बढ़ा रहा हो ॥७६॥ उधर देखिये, चलते हुए रथसे पहिलेके सद्भको बार बार गुता हुआ यह हरिणोका समूह मार्ग

१ शींगिचानाम् । २ 'कुम्भारस्य' कर्तव्ये शींगिको गुग्गुलु पुट' इत्यभिप्रायान् । ३ धनत् ।

४ दुष्टान् । ५ निर्मिता । ६ अष्टापद । ७ अर्धमृगपरणा भूषा । ८ जात्रा । ९ ध्यायु ।

१० ललनितस्य । ११ पाषाण । १२ रूपी व स० । १३ 'सद्यः प्लुतागौ उत्प्लुत्य गच्छत् ।

१४ अनुगत । १५ धीमत्पये । १६ अन्वृष्टिा भवति । विवीचने अ०, इ० । १७ शक्ति ।

१८ अन्वृष्टिा भवति । १९ 'दक्षिणैर्मतया विष्वगभिषावत् प्रवीरताम् । प्रजानुपालना न्याय्यं

तवाचष्टे मृगप्रजा ॥ स० । २० सैनिकैर्यथापि । २१ मृगमृग । २२ भीत्यारं कुर्वताम् । शीरोऽ

वृत्त इति अर्धमृगस्य अर्धमृगस्य वृत्तव परमैररी । २३ वर्णन स० । इत्य अ० ।

हरिणीने^१धितेष्वेता पश्यन्ति सकृत्तूहलम् । स्वां नेत्रशोभा कामिन्यो बहिर्बहुषु मूर्धजान् ॥७८॥
 इत्यनाकुलमेवेद संन्यरप्याकुलीकृतम् । वनमालक्ष्यते विदग्धं ग्रसम्बाधमृगद्विजम् ॥७९॥
 ज^२रखोऽप्यातपो नायम् इहास्मान् देव बाधते । वने महातश्चक्षुषा नरनर्यानुबन्धिनि ॥८०॥
 इमे वनदुमा भान्ति सान्द्रच्छाया मनोरमा । त्वद्वभक्षये^३ वनलक्ष्म्येव मण्डपा विनिवेशिता ॥८१॥
 सरस्य स्वच्छतलिला धारितोष्पास्तदद्भुतं । स्यापिता वनलक्ष्म्येव प्रप्रा^४ भान्ति षलमच्छिद ॥८२॥
 बहुवा^५णातना^६र्णोमिद ख^७ड्गिभिराततम् । सहा^८स्तिकमपर्यन्त वन युष्मद्बलायते ॥८३॥
 इत्थ वनस्य सामुद्ध्य निरूपयति सारथी । वनभूमिमतीयाय सद्ग्राडविदितान्तराम् ॥८४॥
 तदाश्वीयसुरोद्घाताद् उत्थिता वनरेणव । दिशा मूलेषु सलम्ना^९ तेनुर्यवनिकाश्रियम् ॥८५॥
 सादिना^{१०} चारवाणानि^{११} स्यूतान्यपि^{१२} सितारुके । ^{१३}कापायाणोव जातानि ततानि वनरेणुभि ॥८६॥
 वनरेणुभिरालम्नं जटीभूतानि योपित । स्तनाशुकानि कृच्छ्रेण दधुरष्वश्रमात्ससा ॥८७॥
 कुम्भस्यलोपु ससत्ता करिणामप्यरेणव । सिन्दूरश्रियमातेनु ^{१४}धातुमूमितमृत्पिता ॥८८॥

से एक ओर नहीं हट रहा है ॥७७॥ ये स्त्रिया हरिणियोंके नेत्रोमे अपने नेत्रोकी शोभा वडे कौतूहलके साथ देख रही है और हरिणोकी पछोमें अपने केशोकी शोभा निहार रही है ॥७८॥ जिसमे हरिण पक्षी आदि सभी जीव एक दूसरेको वाधा किये बिना ही निवास कर रहे हैं ऐसा यह वन यद्यपि सैनिकोके द्वारा व्याकुल किया गया है तथापि आकुलतासे रहित ही प्रतीत हो रहा है ॥७९॥ हे देव, जो वडे वडे वृक्षोकी धनी छायासे सदा सहित रहता है ऐसे इस वनमें रहनेवाले हम लोगोको यह तीव्र घाम कुछ भी वाधा नहीं कर रहा है ॥८०॥ ये धनी छाया वाले वनके मनोहर वृक्ष ऐसे जान पडते हैं मान्ने वनलक्ष्मीने आपकी भक्ति (सेवा) करनेके लिये मण्डप ही लगा रखे हो ॥८१॥ कितारे परके वृक्षोसे जिनकी सव गर्मी दूर कर दी गई है ऐसे स्वच्छ जलसे भरे हुए ये छोटे छोटे तालाव ऐसे मालूम होते हैं मानो वनलक्ष्मीने बलेश दूर करनेवाली प्याऊ ही स्थापित की हो ॥८२॥ हे प्रभो, यह वन आपकी सेना के समान जान पडता है क्योंकि जिस प्रकार आपकी सेना बहुतसे वाणासन अर्थात् धनुषोसे व्याप्त है उसी प्रकार यह वन भी बाण और असन जातिके वृक्षोसे व्याप्त है, जिस प्रकार आप की सेना खड्गी अर्थात् तलवार धारण करनेवाले सैनिकोसे भरी हुई है उसी प्रकार यह वन भी खड्गी अर्थात् गंडा हाथियोसे भरा हुआ है, जिस प्रकार आपकी सेना हाथियोके समूहसे सहित है उसी प्रकार यह वन भी हाथियोके समूहसे सहित है और जिस प्रकार आपकी सेनाका अन्त नहीं दिखाई देता उसी प्रकार इस वनका भी अन्त नहीं दिखाई देता ॥८३॥ इस प्रकार सारथिके वनकी समृद्धिका वर्णन करते रहनेपर सम्राट् भरत उस वनभूमिको इस तरह पार कर गये कि उन्हें उसकी लम्बाईका पता भी नहीं चला ॥८४॥ उस समय घोडोके समूहके सुरो के आघातसे उठी हुई वनकी घूलि समस्त दिशाओमें व्याप्त होकर परदेकी शोभा धारण कर रही थी ॥८५॥ घुडसवारोके वचच, यद्यपि ऊपरसे सफेद बस्त्रोसे ढके हुए थे तथापि वनकी घूलिसे व्याप्त होनेके कारण ऐसे मालूम पडते थे मानो कपाय रगसे रगे हुए ही हो ॥८६॥ मार्गके परिध्रमसे अलसाती हुई स्त्रिया वनकी घूलि लगनेसे भारी हुए स्तन ढकनेवाले बस्त्रो को बडी कठिनाईसे धारण कर रही थी ॥८७॥ गेरू रगकी भूमिसे उठी हुई मार्गकी घूलि

१ लोचनेषु । २ पक्षी । ३ प्रवृद्ध । ४ तव भजनाय । ५ पानीपथानिका । 'प्रपा पानीपथानिक' इत्यभिधानात् । ६ क्रिष्टि सनैव, पशे चाप । ७ गण्डमृगं पशे आयुधिकं । ८ उभयत्रापि गजसमूहम् । ९ अज्ञातान्तरमवधियंस्मिन्नत्ययकर्मणि । १० अस्वारोहवाणाम् । 'अस्वारोहस्तु सादिन' इत्यभिधानात् । ११ वञ्चुना । 'वञ्चुनो चारवाणोऽन्धो' इत्यभिधानात् । १२ उजाति । १३ कपायपरिन्ध्रिताति । १४ रगिन् ।

गुग्गुलूना^१ वनादेव महिपो घनकबुरः । निर्याति मृत्युवंष्ट्राभविषाणाप्राणि भोवणः ॥६८॥
 ललद्वालघयो^२ लोलजिह्वा व्यालोहितेक्षणाः । व्याला^३ बलस्य सद्भक्षोभम् भ्रमी तन्वन्वयनाकुलाः^४ ॥६९॥
 शरभः^५ खं समुत्पत्य पतद्भुत्तापितोऽपि^६ सन् । नंद दुःखासिका वेद^७ चरणैः पुच्छवर्तिभिः ॥७०॥
 चमरोऽयं^८ 'चमुरोपाद् विद्रुतो'^९ द्रुतमुत्पतन् । क्षोभं तनोति संव्यस्य दमो रूपोव^{१०} दुर्धरः ॥७१॥
 शशः शशप्रय^{११} देव सैनिकरननुद्रुतः^{१२} । शरणादेव भीतात्मा म^{१३}घ्येसंयं तिलीवते^{१४} ॥७२॥
 सारङ्गोऽयं तनुच्छायाकल्माषितवनः^{१५} शनः । प्रयाति शृङ्गभारेण शाखिनेव प्रशुष्यता ॥७३॥
 दक्षिणैर्मंतया^{१६} विष्वगभिधावन्त्यपीक्षिता^{१७} । प्रजानुपालनं न्याय्यं तवाचष्टे मृगप्रजा^{१८} ॥७४॥
 कलापी बह्मभारेण मन्वं मन्वं प्रजत्यसी । केशपाशभ्रियं तन्वन् वनलक्ष्म्यास्तनूहैः ॥७५॥
 नैत्रावलीमिवातन्वन् वनभूम्याः सचन्द्रकः । कलापिनामयं सद्भयो विभात्यस्मिन् वनस्थले ॥७६॥
 सद्भकीडता^{१९} रयाद्गानां स्वनमाकर्णयन् मुहुः । हरिणानामिदं यूयं नापसर्पति वरमनः^{२०} ॥७७॥

निकल रहे है मानो उसके प्राण ही निकल रहे हों ॥६७॥ जो मेघके समान कबुर वण है, जिसके सींगका अग्रभाग यमराजकी दाढके समान है तथा जो अत्यन्त भयकर है ऐसा यह भंसा इस गुगुलके वनसे बाहर निकल रहा है ॥६८॥ जिनकी पूछ हिल रही है, जिह्वा चंचल हो रही है और नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे है ऐसे ये सिंह आदि क्रूर जीव स्वयं व्याकुल न होकर ही सेना का क्षोभ बढ़ा रहे है ॥६९॥ यह अष्टापद आकाशमें उछलकर यद्यपि पीठके बल गिरता है तथापि पीठपर रहनेवाले पैरोसे यह दुःखका अनुभव नहीं करता । भावार्थ अष्टापद नामका एक जगली जानवर होता है उसके पीठपर भी चार पाव होते है । जब कभी वह आकाश में छलाग मारनेके बाद चित्त अर्थात् पीठके बल गिरता है तो उसे कुछ भी कष्ट नहीं होता क्योंकि वह अपने पीठपरके पैरोसे सभलकर खड़ा हो जाता है ॥७०॥ जो मृतिमान् अहंकारके समान है, दुर्जय है और सेनासे घिर जानेके कारण जल्दी जल्दी छलाग मारता हुआ इधर-उधर दौड़ रहा है ऐसा यह मृग सेनाका क्षोभ बढ़ा रहा है ॥७१॥ हे देव, यह खरगोश दौड़ रहा है, यद्यपि सैनिकोंने इमका पीछा नहीं किया है तथापि यह डरपोक होनेसे इधर-उधर दौड़कर शरण ढूढनेके लिये आपकी सेनाके बीचमें ही वही छिप जाता है ॥७२॥ जिसने अपने शरीरकी कान्तिसे वनको भी काला कर दिया है ऐसा यह कृष्णसार जातिका मृग सूखे हुए वृक्षके समान अनेक शाखाओवाले सींगोके भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७३॥ देखिये, दाहिनी ओर घाव लगनेमें जो चारों ओर चक्कर लगा रहा है ऐसा यह हरिणोंका समूह मानो आपसे यही कह रहा है कि आपको मव जीवोंका पालन करना योग्य है ॥७४॥ जो अपनी पूछके द्वारा वनलक्ष्मी के केशपाशवनी शोभा को बढ़ा रहा है ऐसा यह मयूर पूछके भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७५॥ इधर इम घनम्यालमें यह मयूरोका समूह ऐसा सुदोभित हो रहा है मानो अपनी पूछ परके चन्द्रकोमें वनकी पृथिवी रूपी स्त्रीके नेत्रोंके समूहकी शोभा ही बढ़ा रहा हो ॥७६॥ इधर देखिये, चलने हुए रयके पहियेके शब्दको बार बार सुनता हुआ यह हरिणोंका समूह मार्ग

१ शौशिकानाम् । २ 'बृभ्रंभारतव' कृतीने शौशिको गुग्गुलुः पुट्ट' इत्यभिधानात् । ३ पतत् ।

४ पुट्टमृगाः । ५ निर्मिताः । ६ अष्टापदः । ७ ऊर्ध्वमुत्तरणो भूत्वा । ८ जानाति । ९ ध्यायुः ।

१० सेनानिरुपायः । ११ धावमानः । १२ रूपी प ल० । १३ 'राश प्युतगतौ' उत्प्लुत्य गच्छन् ।

१४ अन्नुद्रुतः । १५ संव्यमध्यः । १६ अर्गाह्यो भवति । किलीवते अ०, इ० । १७ रावतितः ।

१८ दक्षिणभागे द्रुतप्रणयाः । 'दक्षिणे गतया विष्वगभिधावन् प्रवीक्षताम् । प्रजानुपालनं न्याय्यं

तवाचष्टे मृगप्रजा' ल० । १९ सैनिकरवर्तापिता । २० शौत्वारं कुवंतम् । श्रीश्रीऽ

बृहं इति अक्षरायं तद्विधायात् अक्षरायं परममर्थः । २१ वरमनं ल० । दूरं य० ।

हरिणोत्रे^१सिनेष्वेना परमनि सकृत्तुहलम् । स्वा नेत्रगोभा क्षामिन्यो बहिर्बह्ये मूषणान् ॥७८॥
 इत्यनाकुलमेवेद संस्यरप्याकुलोहनम् । वनमालक्ष्यते विदवा प्रसम्भ्राधमृगजिह्वम्^२ ॥७९॥
 ज^३रटोऽप्यानपो नायम् इहास्मान् देव वापने । वने महानरुच्छाया नरन्त्ययानुवापिनि ॥८०॥
 इमे वनद्रुमा भान्नि साग्नरुच्छाया मनोरमा । त्वद्नक्षत्रं^४ वनलक्ष्म्येव मण्डपा विनिवेशिता ॥८१॥
 सरस्य स्वच्छदपलित्वा वारितोष्णाम्पद्रुमं । स्थापिना वनलक्ष्म्येव प्रया^५ भान्नि वनमच्छिद्र ॥८२॥
 बहुवा^६पासनाकीर्णमिदं स^७र्द्धगमिराननम् । सहा^८स्तिवमपर्यन्त वन युष्मद्बलापते ॥८३॥
 इत्य वनस्य भामुद्ध्य निरूपयति सारथो । वनभूमिमनोयाय सग्राडविदिनान्तराम् ॥८४॥
 तदाश्रयौखुरोहानाद् उत्पिना वनरेणव । विद्या मुनेषु सलग्ना तेनुयवनिवायियम् ॥८५॥
 सादिना^९ वारवापानि^{१०} न्युत्तान्यपि^{११} सितागुर्कं ।^{१२}क्षपायाणीव जातानि तनानि वनरेणुभिः ॥८६॥
 वनरेणुमिराननं जटीभूतानि योपिनि । स्तनागुफानि कृच्छ्रेण दधुरध्वश्रमालमा ॥८७॥
 कुम्भस्यलोपु ससक्ता करिषामध्वरेणव । निन्दुरथियमानेन^{१३} धानुभूमिसमुत्पिना ॥८८॥

ये एक ओर नहीं हट रहा है ॥७८॥ ये म्रियया हरिणियोंके नेत्रोंमें अपने नेत्रोंकी गोभा बड़े कौतूहलके साथ देख रही है और हरिणोंकी पछोमें अपने केशोंकी गोभा निहार रही है ॥७९॥ निममें हरिण पक्षी आदि सभी जीव एक दूसरेको वाधा किये बिना ही निवाम कर रहे हैं ऐंसा यह वन यत्रपि सैनिकोंके द्वारा व्याकुट किया गया है तथापि आकुलतासे रहित ही प्रतीत हो रहा है ॥७९॥ हे देव, जो बड़े बड़े वृक्षोंकी घनी छायासे नदा सहित रहता है ऐंने इस वनमें रहनेवाड़े हम लोगोंको यह तीव्र घाम कुछ भी वाधा नहीं कर रहा है ॥८०॥ ये घनी छाया वाड़े वनके मनोहर वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मान्ने वनलक्ष्मीने आपकी भक्ति (मेवा) करनेके लिये मण्डप ही लगा रखे हों ॥८१॥ किनारे परके वृक्षोंसे जिनकी भव गर्मी दूर कर दी गई है ऐंमे स्वच्छ जलमें भरे हुए ये छोटे छोटे तालाव ऐंमे मालूम होने हैं मानो वनलक्ष्मीने कृपे दूर करनेवागी प्याऊ ही स्थापित की हो ॥८२॥ हे प्रभो, यह वन आपकी मेना के समान जान पड़ना है क्योंकि जिन प्रकार आपकी मेना बहनेसे वाणामन अर्थात् धनुषोंसे व्याप्त है उसी प्रकार यह वन भी वाण और अमन जातिके वृक्षोंसे व्याप्त है, जिन प्रकार आपकी मेना खट्गो अर्थात् तन्त्राग धारण करनेवाड़े सैनिकोंसे भरी हुई है उसी प्रकार यह वन भी खट्गो अर्थात् गंडा हाथियोंसे भरा हुआ है, निम प्रकार आपकी मेना हाथियोंके समूहसे सहित है उसी प्रकार यह वन भी हाथियोंके समूहसे सहित है और जिन प्रकार आपकी मेनावा अन्न नहीं दिवाई देता उसी प्रकार इस वनका भी अन्न नहीं दिवाई देता ॥८३॥ उस प्रकार मारथिके धनकी समृद्धिका वर्णन करते रहनेपर ममात् भरत उस वनभूमिको इन तरह पार कर गये कि उन्हें उनकी लम्बाईका पता भी नहीं चला ॥८४॥ उस समय घाडोंके समूहके गुरों के आघातसे उठी हुई वनकी धूटि समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर परदेकी गोभा धारण कर रही थी ॥८५॥ घुडमवारोंके बक्क, यद्यपि ऊपरसे मफेद वस्त्रोंसे ढके हुए थे तथापि वनकी धूटिसे व्याप्त होनेके कारण ऐंमे मालूम पड़ने से माना कषाय रगसे रगे हुए ही हो ॥८६॥ मार्गके परिश्रमसे अलमानी हुई म्रियया वनकी धूटि लगनेसे भारी हुए स्तन टकनेवाड़े वस्त्रों को यडी बठिनाईसे धारण कर रही थी ॥८७॥ गेरु रगकी भूमिसे उठी हुई मार्गकी धूटि

१ भावनेषु । २ पयो । ३ प्रवृद्ध । ४ तव भ्रतनाय । ५ पानीपाननिवा । 'प्रसा पानीपाननिवा' इतिपिपातान् । ६ निच्छिद्र अत्रंत, पत्रा वात । ७ लक्ष्मणे, पत्रो आवृषिकं । ८ उदमनापि मण्डपमूढम् । ९ क्षपातान्तरमथियमिमिप्रयवकमति । १० अश्वराहतागाम् । 'अश्वारासन्तु गतिव' इतिपिपातान् । ११ कच्छुता । 'कच्छुता वाग्वा' इतिपिपातान् । १२ उत्रानि । १३ क्षपादरुच्छिद्रानि । १४ म्रियि ।

ततो 'मध्यन्दिनेऽभ्यर्णे दिदीपे तीव्रमशुमान् । विजिगीषुरिवाहृडप्रताप शुद्धमण्डल ॥८६॥
 सरस्तीरतरुच्छायाम् आश्रयन्ति स्म पत्रिण^१ । शरदातपसन्तापात् सद्बृचत्पत्र^२सम्पद ॥८७॥
 हसा कलमपण्डेषु पुञ्जीभूतान् स्वशावकान् । पक्षैराच्छादयामासु असौडजरठातपान ॥८८॥
 वन्या स्तम्बेरमा भेजु सरसीरवगाहितुम् । मवधुतिषु तप्तासु मुशता मधुकरव्रजं ॥८९॥
 शाखाभद्रगं^३ कृतच्छाया प्रयान्तो गजयूथपा । शाखीद्वारमिवातन्वन् खराशो करपीडिता ॥९०॥
 यूय वनवराहाणाम् उपर्युपरि पुञ्जितम् । तदा प्रविश्य 'वेशन्तम् अधिशिये सकर्दमम् ॥९१॥
 मृणालैरङ्गमावेष्टय स्थिता हसा विरेजिरे । प्रविष्टा शरणापेव शशाङ्ककरपञ्जरम् ॥९२॥
 चक्रवाकयुवा भेजे धन शैवलमाततम् । सर्वाङ्गलग्नमुष्णा^४त्तु विनीलमिव कञ्चुकम् ॥९३॥
 पुण्डरीकातपत्रेण कृतच्छायोऽञ्जनीवने । राजहसस्तदा भेजे हसीभि सह मञ्जनम् ॥९४॥
 विसभद्रगं कृताहारा मृणालैरवपुष्णिता^५ । विसिनीपप्रतल्पेषु शिशियरे हसनावका ॥९५॥
 इति शारदिके तीव्र तन्वाने तापमातपे । पुलिनेषु प्रतप्तेषु न हसा धृतिमावधु ॥९६॥

हाथियोके गण्डस्थलोमे लग कर सिन्दूरकी शोभा धारण कर रही थी ॥८८॥ तदनन्तर मध्याह्न का समय निकट आनेपर सूर्य अत्यन्त देदीप्यमान होने लगा । उस समय वह सूर्य किसी विजिगीषु राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार विजिगीषु राजा प्रताप (प्रभाव) धारण करता है उसी प्रकार सूर्य भी प्रताप (प्रकृष्ट गर्मी) धारण कर रहा था और जिस प्रकार विजिगीषु राजाका मण्डल (स्वदेश) शुद्ध अर्थात् आन्तरिक उपद्रवोंसे रहित होता है उसी प्रकार सूर्यका मण्डल (विम्ब) भी मेघ आदिका आवरण न होनेसे अत्यन्त शुद्ध (निर्मल) था ॥८९॥ शरद् ऋतुके घामके सतापसे जिनके पक्षोंकी शोभा सकुचित हो गई है ऐसे पक्षी सरोवरोके किनारेके वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेने लगे ॥९०॥ जो मध्याह्नकी गर्मी सहन करनेमें असमर्थ हैं और इसीलिये जो कमलोकें समूहमें आकर इकट्ठे हुए हैं ऐसे अपने बच्चोंको हस पक्षी अपने पक्षोंसे ढँकने लगे ॥९१॥ मदका प्रवाह गर्म हो जानेसे जिन्हें भूमरोके समूह ने छोड़ दिया है ऐसे जगली हाथी अवगाहन करनेके लिये सरोवरोकी ओर जाने लगे ॥९२॥ सूर्यकी किरणोंमें पीडित हुए हाथी वृक्षोंकी डालिया तोड़ तोड़कर अपने ऊपर छाया करते हुए जा रहे थे और उनसे ऐसे मालूम होते थे मानो शाखाओका उद्धार ही कर रहे हो ॥९३॥ उस समय जगली सरोवरोका समूह कीचड़ सहित छीटे छीटे तालावोंमें प्रवेश कर परस्पर एक दूसरेके ऊपर इकट्ठे हो शयन कर रहे थे ॥९४॥ अपने शरीरको मृणालके तन्तुओंमें लपेटकर बैठे हुए हम ऐसे मुग्धोभित हो रहे थे मनो अपनी रक्षा करनेके लिये चन्द्रमाकी किरणोंसे बने हुए पिण्डमें ही धुम गये हों ॥९५॥ जो उष्णता सहन करनेमें असमर्थ हैं ऐसे किसी तरुण चक्रवाने अपने सर्व शरीरमें लगे हुए, मोटे मोटे तथा विस्तृत शोवालको धारण कर रक्खा था और उससे वह ऐसा मारुत होता था मानो नीले रगका कुरता ही धारण कर रहा हो ॥९६॥ जिनके वर्माञ्जिनियोंके वनमें मण्ड वमरुप छत्रमें छाया बना ली है ऐसा राजहस उस मध्याह्न के समय अपनी ह्मियोंके साथ जलमें गोने लगा रहा था ॥९७॥ जिन्होंने मृणालके टुकड़ोंका आहार किया है और मृणालके तन्तुओंसे ही जिनका शरीर ढका हुआ है ऐसे हसोंके बच्चे वर्मालिनी के पत्ररूपी शय्या पर गों रहे थे ॥९८॥ इस प्रकार शरद्ऋतुका घाम तीव्र सताप फैला रहा

१ मध्याह्नकाले । २ पत्रिण य० । ३ पत्र । ४ शाखातरुण्डे । ५ पल्लवानि गृहीत्वा आश्रयन्तम् । ६ पत्रवन्तम् । ७ मन्तर इत्ययम् । ८ वनान् पत्रवत् शालागट इत्यभिधानात् । ९ उष्णमसहमान् । 'तापील्लवदारण' भाष्ये । ८ आश्रयन्ति ।

मप्यस्योऽपि तदा तीव्र तताप तरणिर्भुवन । नून तीव्रप्रतापाना माप्यस्वभनपि तापकम् ॥१००॥
 स्वेदबिन्दुभिरावदज्जालकानि' नृपस्त्रिय' । वदनाग्यहूरब्जिन्य पद्मानीवाम्बुशोकरं ॥१०१॥
 नृपवल्लभिकावत्रपट्टकजेष्वपुपच्छिद्रयम् । धर्मविन्दूद्गमो निर्वल्लावप्यरसपूरवत् ॥१०२॥
 पतद्घर्मान्त्रिबिन्दूनि मुखानि नृपयोपिताम् । अचेदमाप्यततानोव राजीघानि विरेजिरे ॥१०३॥
 नृपाद्गनामुखाञ्जानि धर्मविन्दुभिरावभु । मुक्ताफलद्वंद्वीमूर्तिरिवालकविभूषणं ॥१०४॥
 रयवाहा' रयानूह आपस्ता' फेनिलैर्मुसं । तीव्र तपति तिममाशी समेऽपि' प्रस्वतत्पुत्र ॥१०५॥
 ह्रस्ववृत्तलुरास्तुद्रगा तनुस्निग्धतनूरहा । पद्मासना' महाबाहा प्रयपूर्वापुरहृय' ॥१०६॥
 महाजवजुयो वक्त्राद् उद्भन्त खुरानिव । महोरस्का स्फुरप्रोषा' द्रुत जग्ममहाहृया ॥१०७॥
 समुच्छिन्नपुरो भागा दृढावर्ता' मनोजवा । ध्रुपर्पात्तेयु' मार्गेषु द्रुतमोयस्तुरद्वगमा ॥१०८॥
 मेघासत्त्वजवोपेता विनीतादचटलक्रमा । गल्हमाना' इय स्पष्ट महोमदवा द्रुत ययु ॥१०९॥
 अश्वेभ्योऽपि रवेभ्योऽपि पतयो वेगित' ययु । सोपानर्त' पदं स्यागुभष्टकोपतलद्विघन ॥११०॥

था और उससे तपे हुए नदियोंके किनारोंपर हसोसो मतोप नही हो रहा था ॥१९॥ उस समय सूर्य यद्यपि मध्यस्थ था, आकाशके बीचोबीच स्थित था, पक्षपात रहित था तथापि वह पृथिवीको बहुत ही सतप्त कर रहा था सो ठीक ही है क्योंकि तीव्र प्रतापी पदार्थोंका मध्यस्थ रहना भी सताप करनेवाला होता है ॥१००॥ जिस प्रकार कमलिनिया (कमलकी लताएँ) जलकी बूदोंसे सुगोभित कमलोंको धारण करती हैं उसी प्रकार महाराज भरतकी स्त्रिया पसीनेकी बूदोंसे जिनपर मोतियोंका जाल-सा वन रहा है ऐसे अपने मुख धारण कर रही थी ॥१०१॥ रानियोंके मुख-कमलोंपर जो पसीनेकी बूदें उठी हुई थी वे निकलते हुए सौन्दर्य स्पी रसके प्रवाहके समान शोभाको पुष्ट कर रही थी ॥१०२॥ जिनसे पसीनेकी बूदें टपक रही हैं ऐसे रानियोंके मुख ऐसे सुगोभित हो रहे थे मानो ओसकी बूदोंसे व्याप्त हुए कमल ही हो ॥१०३॥ जिन पसीनेकी बूदोंमें रानियोंके मुख-कमल सुगोभित हो रहे थे वे ऐसी जान पड़ती थी मानो वेगपाशको अलकृत करनेवाले मोती ही पिघल पिघलकर तरल रूप हो गये हो ॥१०४॥ उस समय सूर्य बड़ी तेजीके साथ तप रहा था इसलिये जो घोड़े रथोंको ले जा रहे थे उनके मुख परिश्रमसे खुल गये थे, उनमें फेन निकल आया था और उनके खुर समान जमीनपर भी स्खलित होने लगे थे ॥१०५॥ जिनके खुर छोटे और मोठे हैं, जिनपर छोटे और चिकने रोम हैं, जो बहुत ऊंचे हैं, जिनका आसन अर्थात् पीठ बहुत बड़ी है, और जिनका वेग वायुके समान है ऐंसे बड़े बड़े उत्तम घोड़े भी जल्दी जल्दी दौड़े जा रहे थे ॥१०६॥ जो तीव्र वेगसे सहित हैं, जो अपने आगेके खुरोंको भुगसे उगलते हुएके समान जान पड़ते हैं, जिनका वक्ष स्थल बड़ा है और जिनकी नाकके नयने कुछ कुछ हिल रहे हैं ऐसे बड़े बड़े घोड़े जल्दी जल्दी जा रहे थे ॥१०७॥ जिनके आगेका भाग बहुत ऊंचा है, जिनके शरीरपरके भवर अयन्त दृढ़ हैं, और जिनका वेग मनके समान है ऐसे घोड़े उम छोटेमें मार्गमें बड़ी शीघ्रतासे साथ जा रहे थे ॥१०८॥ जो बुद्धि-बल और वेगसे सहित हैं, विनयवान् हैं तथा मुन्दर गमनके धारक हैं ऐसे घोड़े पृथिवीको (रजस्वला अर्थात् पृथिवीमें युक्त-पक्षमें-रजोधर्ममें यक्त ममक) उसके स्पर्श करनेमें घृणा करते हुए ही मानो बड़े वेगमें जा रहे थे ॥१०९॥ पंदल चलनेवाले

१ आसममूहानि । शरकारिण वा । २ प्राग्नेय । 'अवस्त्रमायस्तु मोहार्त्सुयारत्सुहिन हिमम् । प्राग्नेय मिहिना च' इत्यभिधानात् । ३ रपादवा । ४ उन्नता । -उपलं इत्यपि पाठः । ५ गमानमूननेऽपि । ६ पुपुनपुष्टभागा । ७ वायुवेगा । ८ पाना । ९ दवर्मि'प्रमुपगुमावता । १० अश्वगु'पु मगु । ११ कृत्स्नाना । १२ वेगवद् मया भवति तथा । १३ मयाद्वानां । -

शक्तिका^१ सह पाटीकै^२ प्राक्तिका^३ धन्वभि समम् । मैत्रिप्रशिकाश्च^४ तिस्र्योऽन्य स्पर्धयेव धयुर्भूतम् ॥१११॥
 पुरः प्रधाकितं^५ श्रेडलद्वारवाणा^६ प्रपल्लवा । जातपक्षा इवोद्गीय भटा जामुरतिव्रतम् ॥११२॥
 प्रयात धावतापेत मार्गं मा इध्वमप्रत । इत्युच्चैश्छपरद्व्याना^७ पौरस्त्यानत्ययुर्भटा ॥११३॥
 इतोऽपसर्पताऽवीयाव इतो धावत हास्तिनात्^८ । इतो रयावपमस्ता^९ दूर नयत नयत ॥११४॥
 भ्रमुष्माज्जनसद्वधट्टाव उत्थापयत डित्यकान्^{१०} । इतो^{११} हृत्पुरसादद्वान् भ्रपसारयत हुतम् ॥११५॥
 इत^{१२} प्रस्थानमाध्व स्थितोऽय घानुको गज । मध्येऽध्व^{१३} प्राजितुर्दोषात्^{१४} पर्यस्तोऽपमितो रय ॥११६॥
^{१५} क्रमेत्कोऽयमुन्नस्त^{१६} प्रतीप^{१७} पथि धावति । उत्सूष्टभारो लम्बोष्ठो जनानिव विडम्बयन् ॥११७॥
 विव्रस्ताद्वेसरदेनां पतन्तीमथरोधिकाम् । सन्धारयन् प्रपातेऽस्मिन्^{१८} सौविबल^{१९} पतत्ययम् ॥११८॥
 यवीयानेय^{२०} पथ्यस्त्रोमृलालोकनविस्मित । पतितोऽप्यदवसद्वधट्टं नात्मान वेद^{२१} शून्यधी ॥११९॥
^{२२} हृदिद्वारञ्जितमथ कज्जलाडिकतलोचन ।^{२३} कूट्टिनीमनुधम्रेय^{२४} प्रवयास्तस्यापते^{२५} ॥१२०॥
 इति प्रयाणसञ्जल्यं भ्रताताध्वपरिश्रमा । संनिका शिबिर प्रापन् सेनाग्या प्राद्वनिवेशितम् ॥१२१॥

सैनिक जाता पहने हुए पैरोसे डूठ, काटे तथा पत्थर आदिको लाघते हुए घोड़े और रयोसे भी जल्दी जा रहे थे ॥११०॥ शक्ति नामके हथियारको धारण करनेवाले लट्ट धारण करनेवालो के साथ, भाला धारण करनेवाले धनुष धारण करनेवालोके साथ और तलवार धारण करनेवाले लोग परस्पर एक दूसरेके साथ स्पर्धा करते हुए ही मानो बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे ॥१११॥ आगे आगे दौडनेसे जिनके कवचके अग्र भाग कुछ कुछ हिल रहे हैं ऐसे थोडा लोग इतनी जल्दी जा रहे थे मानो पल उत्पन्न होनेसे वे उडे ही जा रहे हों ॥११२॥ चलो, दौडो, हटो, आगेका मार्ग मत रोको इस प्रकार जोर जोरसे बोलनेवाले थोडा लोग अपने सामनेके लोगोको हटा रहे थे ॥११३॥ अरे, इन घोडोके समूहसे एक ओर हटो, इन हार्थियोके समूहसे भागो, और बिचले हुए इन रयोसे भी दूर भाग जाओ ॥११४॥ अरे, इन बच्चोको लोगोकी इस भीडसे उठाओ और इन हार्थियोके आगेसे थोडोको भी शीघ्र हटाओ ॥११५॥ इधर यह दुष्ट हाथी रास्ता रोककर खडा हुआ है और इधर यह रथ सारथिकी गलतीसे मार्ग के बीचमें ही उलट गया है ॥११६॥ इधर देखो, जिसने अपना भार पटक दिया है जिसके लड़े ओठ हैं और जो बहुत घबडा गया है ऐसा यह ऊट मार्गमें इस प्रकार उल्टा दौडा जा रहा है मानो लोगोकी विडम्बना ही करना चाहता हो ॥११७॥ इधर इस ऊँची जमीनपर घबडाये हुए सञ्चरपरसे गिरती हुई अन्त पुरकी स्त्रीको कोई कचुकी बीचमें ही धारण कर रहा है परन्तु ऐसा करता हुआ वह स्वयं गिर रहा है ॥११८॥ यह तरुण पुरुष वेश्याका मुख देखनेसे आश्चर्यचकित होता हुआ थोडेके धक्केसे गिर गया है, परन्तु वह मूलं 'मे' गिर गया हू इस तरह अब भी अपने आपको नहीं जान रहा है ॥११९॥ जिसने अपने बाल खिजावसे काले कर लिये हैं, जिसकी आखोंमें काजल लगा हुआ है और जो किसी कुट्टिनीके पीछे पीछे जा रहा है ऐसा यह बूडा ठोव तरुण पुरपके समान आचरण कर रहा है ॥१२०॥ इस प्रकार चलते समयकी बात

१ शक्तिः प्रहरणधेयाते शक्तिवा । २ यष्टिहेतुर्वि । ३ कौन्तिका । ४ अतिहेतिका । ५ प्रधावनं । ६ बललञ्चुव । ७ पुरोगामिन । ८ भो विगतमया । ९ वात्सान् । डिम्भवान् ल०, द०, इ०, अ०, प०, य० । १० हस्तिमुस्यात् । ११ गमनम् । -यस्थान-स० । १२ मार्गमध्ये । १३ सारथे । 'नियन्ता प्राजिता यन्ता गूतः क्षता च सारथि ।' इत्यभिधानात् । १४ उत्तानित । १५ उष्ट्र । १६ भीति गत । १७ प्रतिवृत्तम् । अभिमुसमित्यप । १८ प्रपातस्तु तटो भुगु । १९ बञ्चुवी । २० युवा । २१ जानाति । २२ पतितप्रतीकागर्भं प्रयुक्तीपथकिणोपरञ्जित । २३ धारणीम् । 'कूट्टिनी धारणी समे इत्यभिधानात् । २४ अनुगच्छन् । २५ बुडा । 'प्रवया स्ववरो बुडो जिनो जीर्णो जरप्रथि' इत्यभिधानात् ।

ततोऽवरोधनवधूमूलच्छायाविलङ्घयति । मध्यन्दिनात्पे^१ सम्राट् सम्प्राप शिविरान्तकम् ॥१२२॥
 ध्वजरत्नदृत्च्छायो विव्य रथमधिष्ठित । न तदातपसम्बाधा विदामास^२ विशाम्यति ॥१२३॥
 वर्षाधोभिरयासप्तं^३ श्रारब्धसु^४खसदृकय । प्रयातमपि^५ नाध्वान शिवेद भरताधिप ॥१२४॥
 नोवपात^६ कोऽप्यभूदङ्गो रयाङ्गपरिवर्तनं^७ । रथवेगेऽपि नास्याभूत् क्षतेनो^८ विद्यानुभाजत् ॥१२५॥
 रथवेगानिलोवर्स्त^९ ध्यायत् तद्वध्वजासूकम् । पद्भवादागामिस्तं यानामिव मार्गमसूत्रयत्^{१०} ॥१२६॥
 रथोद्धतगतिक्षोभाद् उद्भूताङ्गपरिश्रमा । कथं कथमपि प्रापन् रथिनोऽप्ये रथे प्रभो ॥१२७॥
 तमध्वशेषमध्वन्यं^{११} तुरङ्गोरत्नवाहयन्^{१२} । सादिन प्रमुणा सार्धं शिविर प्रथिविक्षव^{१३} ॥१२८॥
 दूराद्दृष्ट्व्यकटीभेवान् उत्थितान् प्रभुरक्षत । सेनानिवेशमभित^{१४} सौधशोभापहासिनः ॥१२९॥
 शोष्यदृष्टेयु विन्यस्तान् विस्तृतान् षटमण्डपान् । सौऽपश्यञ्जनतातापहारिण सुजनानिव ॥१३०॥
 किमेतानि स्वलाञ्जानि हसयूथान्यमनि वा । इत्यादादृक्य स्वलाप्राणि^{१५} दूराद्दृग्गिरि जन् ॥१३१॥
 सामन्तानां निवेशेषु काममानानि^{१६} नैक्या^{१७} । निवेशितानि विन्यासं निरूप्यो^{१८} प्रभुरप्रत ॥१३२॥
 परित कायमानानि वीक्ष्य कष्टविनीवृ^{१९}ती । निष्कष्टके निजे राज्ये मेने तानेव कष्टकान् ॥१३३॥

चीतसे जिन्हें मार्गका परिश्रम भी मालूम नहीं हुआ है ऐसे सैनिक लोग सेनापतिके द्वारा पहले से ही तैयार किये हुए शिविर अर्थात् ठहरनेके स्थानपर जा पहुँचे ॥१२१॥ तदनन्तर जब मध्याह्नका सूर्य अन्त पुरकी स्त्रियोके मुखकी कान्तिको मलिन कर रहा था तब सम्राट् भरत शिविरके समीप पहुँचे ॥१२२॥ जिनपर ध्वजरत्नके द्वारा छाया की जा रही है और जो देवनिर्मित सुन्दर रथपर बैठे हुए हैं ऐसे महाराज भरतको उस दोपहरके समय भी गर्मीका कुछ भी दुःख मालूम नहीं हुआ था ॥१२३॥ जिन्होंने समीपमें चलनेवाले वृद्ध जनोके साथ साथ अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रारम्भ की हैं ऐसे भरतेश्वरको बीते हुए मार्गका भी पता नहीं चला था ॥१२४॥ दिव्य सामर्थ्य होनेके कारण रथके पहियोकी चालसे उनके शरीरमें कुछ भी उद्धात (दक्कन) नहीं लगा था और न रथका तीव्र वेग होनेपर भी उनके शरीरमें कुछ कष्ट हुआ था ॥१२५॥ रथके वेगसे उत्पन्न हुए वायुसे ऊपरकी ओर फहराता हुआ उनकी ध्वजा का लम्बा वस्त्र ऐसा जान पड़ता था मानो पीछे आनेवाली सेनाके लिये मार्ग ही सूचित कर रहा हो ॥१२६॥ रथकी उद्धत गतिके क्षोभसे जिनके अग अगमें पीडा उत्पन्न हो रही है ऐसे रथ पर सवार हुए अन्य राजा लोग बड़ी कठिनाईसे महाराज भरतके रथके समीप पहुँच सके थे ॥१२७॥ जो घुड़सवार लोग महाराज भरतके साथ ही शिविरमें प्रवेश करना चाहते थे उन्होंने वचने हुए मार्गको अपने उन्हीं चलते हुए श्रेष्ठ घोडोसे बड़ी शीघ्रताके साथ तय किया था ॥१२८॥ जो राजभवनोकी शोभाकी ओर भी हँस रहे हैं ऐसे शिविरके चारो ओर खड़े किये हुए रावट्टी तम्बू आदि डेराओनो महाराज भरतने दूरसे ही देखा ॥१२९॥ उन्होंने चादीके यमोपर खड़े किये हुए बहुत बड़े बड़े कपडेके उन मण्डपोको भी देखा था जो कि सञ्जन पुरयो के समान लोगोका सत्ताप दूर कर रहे थे ॥१३०॥ क्या ये स्थलकमल हैं अथवा हमोंके समूह हैं इस प्रकार आसका कर लोग दूरसे ही उन तम्बूओके अग्रभागोको देख रहे थे ॥१३१॥ सामन्त लोगोकी ठहरनेकी जगहपर अनेक प्रकारकी रचना कर जो तम्बू वगैरह बनाये गये थे उन्हें भी महाराज भरतने सामनेसे देखा था ॥१३२॥ तम्बूओके चारो ओर जो कटीली

१ दिनापिपे ट० । मध्याह्नसूर्ये । २ विविदे । ३ कुतवृद्धादिभि । ४ मुम स० । ५ अग्निदूर एतन् । ६ पीडा । ७ रथचत्रमुमगं । ८ कनम ट० । ९ थम । १० उदतम् । ११ अद्यायत । १२ अश्वनि मापुभि । १३ अग्नित्रय प्रापन् । १४ प्रवेशमिच्छव । १५ सेनारत्नवाया ययन्तान् । १६ षटकृपायाणि । १७ द्रव्यं म्यून पट्टीमुपतयनिधेषिषा तुल्या इति वैनयन्ती । १८ कटीभेदा । १९ नानाप्रकार । २० दृश्य ।

तदशाखाप्रसक्तपर्याणावि^१परिच्छेदवान् । ^२स्कन्धावाराद् बहि कांदिचद् श्रायासान् प्रभुरंक्षत ॥१३४॥
^३बहिनिवेशमित्यादीन् विशेषान् स विलोकयन् । प्रवेशे शिविरस्थास्य महाद्वारमयासवत् ॥१३५॥
 तवतीत्य समं सैन्यं सगच्छन् किञ्चिदन्तरम् । महाब्धिसमनिर्घोषमाससाद् यणिकपयम् ॥१३६॥
 कृतोपशोभमाबद्धतोरण चित्रकेतनम् । यणिकभ्रूद्धरत्नार्थं स जगाहे यणिकपयम् ॥१३७॥
 प्रत्यापणमसौ तत्र रत्नराशोभिधोनिव । पयन मेने निधोयत्ता^४ प्रसिद्धधैव तयास्थिताम् ॥१३८॥
 समौचितक स्फुरद्वल जनतोक्तलिकाकुलम्^५ । रया यणिकपयाम्भोधि पोता इव ललद्धयिरे ॥१३९॥
 धनदशबोयकल्लोर्ल स्फुरद्भिस्त्रिशरोहितं^६ । राजमार्गोऽम्बुधेर्लीलां महेभमकरंरयात् ॥१४०॥
 राजन्यकेन सहद्ध समन्तादानपालयम् । तदासौ विपणीमार्गं सत्य राजपयोऽभवत् ॥१४१॥
 तत पर्यन्तविन्यस्तरत्नभासुरतोरणम् । रयकटपा^७ परिक्षेपकृतबाह्यपरिच्छेदम् ॥१४२॥
 आरध्यमानमश्वीयं हास्तिकेनातिदुर्गमम् । बहूनागवन^८ जुष्ट^९ कलभैश्च करेणुभि ॥१४३॥
 छत्रपण्डकृतच्छाय महोद्यानमिव श्वचित् । श्वचित्तामन्तमण्डल्या रचितास्थानमण्डलम् ॥१४४॥

वाडिया वनाई गई थी उन्हें देखकर महाराज भरतने अपने निष्कण्ठक राज्यमें ये ही काटे हैं
 ऐसा माना था । भावार्थ—भरतके राज्यमें वाडीके काटे छोडकर और कोई काटे अर्थात्
 शत्रु नहीं थे ॥१३३॥ जहापर वृक्षोकी डालियोके अग्र भागपर घोडोके पलान आदि अनेक
 वस्तुए टगी हुई हैं और जो शिविरके बाहिर बने हुए हैं ऐसे कितने ही डेरे महाराज भरतने
 देखे ॥१३४॥ इस प्रकार शिविरके बाहर बनी हुई अनेक प्रकारकी विशेष वस्तुओको देखते
 हुए महाराज शिविरमें प्रवेश करनेके लिये उसके बडे दरवाजेपर जा पहुचे ॥१३५॥ बडे
 दरवाजेको उल्लवन कर सैनिकोके साथ कुछ दूर और गये तथा जिसमे समुद्रके समान गभीर
 शब्द हो रहे हैं ऐसे बाजारमें वे जा पहुचे ॥१३६॥ जिसकी बहुत अच्छी सजावट की गई है
 जिसमें तोरण बधे हुए हैं, अनेक प्रकारकी ध्वजाए फहरा रही हैं और व्यापारी लोग जिसमें रत्नो
 वा अर्थ लेकर खड हैं ऐसे उस बाजारमें महाराजने प्रवेश किया ॥१३७॥ वहापर प्रत्येक
 दुवानपर निधियोके समान रत्नोकी राशि देखते हुए महाराज भरतने माना था कि निधियो
 की मह्या प्रसिद्धि मात्रसे ही निश्चित की गई है । भावार्थ—प्रत्येक दुवानपर रत्नोकी राशिया
 देगवर उन्होने इस बातका निश्चय किया था कि निधियोकी सरया नही है यह प्रसिद्धि मात्र
 है, धाम्तवमें वे अमस्यात हैं ॥१३८॥ जो मोतियोसे सहित हैं जिसमें अनेक रत्न देदोप्यमान
 हो रहे हैं और जो मनुष्योके गमूहरूपी ल्हरोसे व्याप्त हो रहा है ऐसे उस बाजाररूपी समुद्र
 की रयोने जहाजके समान पार किया था ॥१३९॥ उस समय वह राजमार्ग चलते हुए घोडो
 के गमुदायरपी ल्हरोमे, चमवती हुई तलवाररूपी मछलियोसे और बडे बडे हाथीरूपी मगरी
 से ढीव गमुद्रकी गोभा धारण कर रहा था ॥१४०॥ उस समय वह बाजारका रास्ता महाराज
 के तम्बू तक चारो ओरमें अनेक राजकुमारोमे भरा हुआ था इसलिये वास्तवमें राजमार्ग हो
 रहा था ॥१४१॥ तदनन्तर जिवके गमीप ही रत्नोके देदोप्यमान तोरण पग रहे हैं, घेरकर
 रखते हुए रयोने गमूहमे जिवकी बाहरकी गोभा बद्ध गही हैं—जो घोडोके समूहमे भरा हुआ है,
 हाथियोके गमूहमे जिवके भीतर जाना पट्टिन हैं, जो हाथियोकी बडी भारी सेनासे सुनोभित
 हैं, हाथियोके बच्चे और हाथिनियोमे भी भरा हुआ है । अनेक छत्रोके गमूहकी छाया होनेसे

१ वाच्यनातिपरिच्छेदवान् । २ शिवात् । ३ बहिः । ४ पूनरुत्तारणम् । ५ प्रमाणम् ।
 ६ महाभयसमनिर्घोषमाससात् । ७ शिविरस्थानम् । ८ मनुष्योके । ९ मनुष्योके । १० मनुष्योके । ११ यणिकम् ।

प्रविशद्भिद्वच निर्यदभि अर्पयन्तंनियोगिभि । महास्येरिव क्लृप्तोत्तं तदभाविर्भवंदध्वनि ॥१४५॥
 जनतोत्सारणव्यग्रमहादौवारपालकम् । कृतमद्गलनिर्घोष वाग्देव्येव कृतास्पवम् ॥१४६॥
 चिरानुभूतमप्येवम् अपूर्वमिव शोभया । नृपो नृपाद्गण पश्यन् किमप्यासीत् सविस्मय ॥१४७॥
 निधयो यस्त पयन्ते मध्ये रत्नान्यनन्ता । महत् शिविरस्यास्य विशेष कोऽनुदणंयेत् ॥१४८॥

शार्दूलविक्रीडतम्

स श्रीमानिति विदवत् स्वशिविर लक्ष्म्या निवासायित
 पर्यप्राप्तधृतिविलङ्घ्य विशिष्टा^१ स्वर्गापहासिधिय ।
 सम्भ्राम्यत्प्रतिहारपद्मजनतासम्वायमुत्खेतन
 प्राविशत् कृतसन्निवेशमचिरादात्मानाय श्रीपति^१ ॥१४६॥
 तत्राविष्टमद्गले सुरसरिद्वीचीमुखा धाम्ना
 सम्प्लव्याद्गणवेदिके विकिरता तापच्छिद शीकरान् ।
 शस्ते वास्तुनि^२ विस्तृते स्पपतिना सद्य समुत्पापिते
 लक्ष्मीवान् सुखभावसंप्रधिपति प्राची^३ दिश निर्जयन् ॥१५०॥

जो कहीपर किसी बड़े भारी बगीचाके समान जान पड़ता है और वही अनेक राजाओकी मण्डलीमें युक्त होनेके कारण सभामण्डपके समान मालूम होता है, जो प्रवेश करते हुए और बाहर निकलते हुए अनेक कर्मचारियोंमें लहरोमें शब्द करते हुए किसी महासागरके किनारेके समान जान पड़ता है । जहापर बड़े बड़े द्वारपाल लोग मनुष्योंकी भीड़को दूर हटानेमें लगे हुए हैं, जहां अनेक प्रकारके मंगलमय शब्द हो रहे हैं और इनीलिये जो ऐसा जान पड़ता है मानो सरस्वती देवीने ही उसमें अपना निवास कर रखा हो तथा जो चिरकालमें अनुभूत होनेपर भी अपनी अनोखी शोभासे अपूर्वके समान मालूम हो रहा है ऐसे राजभवनके आगनको देखते हुए महाराज भरत भी कुछ कुछ आश्चर्यचकित हो गये थे ॥१४२-१४७॥ जिनके चारों ओर निधिया रक्खी हुई हैं और बीचमें अनेक प्रकारके रत्न रखे हुए हैं ऐसे उम बड़े भारी शिविर की विशेषताका कौन वर्णन कर सकता है ॥१४८॥ इस प्रकार लक्ष्मीके निवामस्यानके समान मुशोभित अपने शिविरको चारो ओरसे देखते हुए जो अत्यन्त सन्तुष्ट हो रहे हैं ऐसे लक्ष्मीपति श्रीमान् भरतने, चारो ओर दौड़ते हुए द्वारपालोंके द्वारा जिनमें मनुष्योंकी भीड़ का उपद्रव दूर किया जा रहा है, जिनपर अनेक पतावाए फहरा रही हैं, और जिनमें अनेक प्रकारकी रचना की गई हैं ऐसे अपने तन्त्रमें शीघ्र ही प्रवेश किया ॥१४९॥ जिनमें मंगल-द्रव्य रखे हुए हैं, गङ्गा नदीकी लहरोमें उत्पन्न हुए तथा सतापको दूर करनेवागी जलकी बूदोंको बरमाते हुए वायुसे जिनके आगनकी वेदी साफ की गई है, जो प्रगमनीय हैं, विन्मूत हैं तथा स्पपति (शिलावट) रत्नके द्वारा बहुत शीघ्र सड़ा किया गया है, बनाया गया है ऐसे तबूमें पूर्व दिशानो जीतनेवाले, निधियोंके स्वामी श्रीमान् भरतने मुग्यपूर्वक निवाम किया

१ रम्या । २ रम्या प्रतीती विशिष्टा इत्यमरः । ३ विहितमम्यगूरचनम् । ४ मग्नेरवटः ।
 ५ सम्प्राजित । ६ गृहे । ७ पूर्वाम् ।

रातामावसयेषु शान्तजनतासोभेषु पीताम्भसाम्
 अदवाना पटमण्डपेषु निवहे स्वैर तृणप्रासिनि ।
 गद्गानोरसरोवगाहिनि बनेध्वालानिते हास्तिके
 जिष्णोस्तत्कटक चिरादिव कृतावास तदा लक्ष्यते ॥१५१॥
 तत्रासोनमुपायनं कुलधनं कन्याप्रदानादिभि
 प्राच्या मण्डलभूमज समुचितंराराधयन् साधनं ।
 सदृष्टा^३ प्रविहाय मानमपरे प्राणशिषुदक्षिण
 दूरादानतमौलयो जिनमिद प्राण्योदयं नाकिन ॥१५२॥
 इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटितलक्षणमहापुराणसद्वग्रहे
 भरतराजविजयप्रयाणवर्णनं नाम सप्तविंशतितमं पर्व ॥

अष्टाविंशतितमं पर्व

प्रयाग्येऽर्चिनारम्भे वृत्तप्राभातिकक्रिये । प्रयागमकरोच्चक्री चक्ररत्नानुमार्गते ॥१॥
 श्रमद्वय चक्रभाषात्परचक्रपराश्रमम् । दण्डद्वय दण्डिताराणि द्वयमस्य पुरोगभवत् ॥२॥
 रदय देवसहस्रेण चक्र दण्डद्वय तादृश । जयाद्वयमिदमेवास्य द्वय शेष परिच्छद ॥३॥
 विजयार्थं प्रतिस्पर्धियर्ष्यां यामहस्तिनम् । प्रतस्ये प्रमुरादृश्य नाम्ना विजयपर्वतम् ॥४॥
 प्राचीं दिशमयो जेतुम् आपयोधेस्तमुच्यताम् । नूनं स्तम्भैरमध्याजाद् ऊर्हे विजयपर्वत ॥५॥
 सुरेभः शरदभ्राभम् ग्राह्यो जयकुञ्जरम् । स रेजे दीप्तमुकुटं सुरेभः सुरराडिव ॥६॥
 मिनातपत्रमस्योच्चं विदुत श्रियभादये । यशसा प्रसनागारभिव तद्व्याजतृम्भितम् ॥७॥
 लक्ष्मीप्रहासविशदा चामरासी समन्तत । व्यधूपतास्य विध्यस्तनापा ज्योत्स्नेव शारदी ॥८॥
 जयद्विरदमाह्वो ज्वलज्जैत्रास्त्रभासुर । जयलक्ष्मीवटाशोभानु श्रयमत् स शरद्व्यनाम् ॥९॥
 महामुकुटबद्धाना सहस्राणि समन्तत । तमनुप्रचलन्ति स्म सुरार्थिपविवासा ॥१०॥

अध्यानान्त-दूसरे दिन सुबेरा होने ही जो प्रात कालने समय कर्ने योग्य समस्त
 त्रियाए कर चने हें ऐमे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे पीछे प्रस्थान किया ॥१॥ शत्रु-समूह
 के परानमनो नष्ट करनेवाग तथा स्वय दूमगोके द्वारा उत्पन्न न करने योग्य चक्ररत्न और
 शत्रुओंको दण्डित करनेवाला दण्डरत्न, ये दोनों ही रत्न चक्रवर्तीकी सेनाके आगे आगे रहते
 थे ॥२॥ चक्ररत्न एक हजार देवोंने द्वारा रक्षित था और दण्डरत्न भी इतने ही देवोंने द्वारा
 रक्षित था । वायुवर्मे चक्रवर्तीकी विजयके कारण ये दो ही थे, शेष मामयो तो केवल शोभा
 के लिये थी ॥३॥ अथकी वार चक्रवर्तीने, जिमवा शरीर विजयार्थ पर्वतके माथ स्पर्धा कर
 रहा है ऐमे विजयपर्वत नामके पूज्य हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया था ॥४॥ उम
 समय ऐमा मादूम होना था मानो समुद्र पर्यन्त पूर्वं दिशाको जीतनेके लिये उद्यत हुए महाराज
 भरतको उम हाथीने छत्रमे विजयार्थ पर्वत ही धारण कर रहा हो ॥५॥ जिम प्रकार देदीप्य-
 मान मुकुटको धारण करनेवाला इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढा हुआ मुग्धोभित होता है उमी प्रकार
 देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला भरत शरद् ऋतुके बादगीके समान नफेद और देवों
 के द्वारा दिये हुए उम विजयपर्वत हाथीपर चढा हुआ मुग्धोभित हो रहा था ॥६॥ भरतेश्वर
 के ऊपर लया हुआ नफेद छत्र ऐमी शोभा धारण कर रहा था मानो छत्रने वहानेने यशकी उत्पत्ति
 का न्यान ही हो ॥७॥ लक्ष्मीके हास्यने समान निर्मल और शरद् ऋतुकी चादनीके समान
 मनासको नष्ट करनेवाली चमगोकी पवित्र महागुज भरतके चारों ओर टुगाई जा रही थी ॥८॥
 विजय नामके हाथी पर आसुद हुए और विजय प्राप्त करानेवाले प्रशासमान अश्वोंमे देदीप्यमान
 होनेवाले भरतेश्वर जयश्रीमीने कटाक्षोने लक्ष्य धन रहे थे । भावार्थ—उनकी ओर विजय-
 लक्ष्मी देव रही थी ॥९॥ जिम प्रकार देव लोग इन्द्रने पीछे पीछे चरने हें उमी प्रकार हजारों
 मुकुटबद्ध बड़े बड़े राजा और चारों ओर भरत महाराजने पीछे पीछे चर रहे थे ॥१०॥

१ अनुगमनाम् । २ अर्चिनार । पराश्रम या । ३ शरित । ४ शरित । ५ विजयार्थं
 गिरिणा शर्षमानदेहम् । ६ पूजार्थेकाजम् । ७ ननु म० । ८ पराश्रमम् । ९ विजयपर्वगिरि ।
 १० मुकुटम् । ११ ऐरावतम् । १२ यशसा । १३ कर्तव्यम् । 'ननु कर्तव्यं न इच्छितवान् ।
 १४ अर्चिनार इति ।

राज्ञामावसथेषु शान्तजनताक्षोभेषु पीताम्भसाम्
 शश्वानां पटमण्डपेषु निवहे स्वरं तृणप्राप्तिति ।
 गङ्गातीरसरोवगाहिनि वनेष्व्यात्मानिते हास्तिके
 जिष्णोस्तत्कटकं चिरादिव कृतायासं तवा लक्ष्यते ॥१५१॥
 तनासीनमुपाधर्नः क्लृप्तधर्नः कन्याप्रदानादिभिः
 प्राच्या मण्डलभूभुजः समुचितैराराधयन् साधनैः^१ ।
 सश्रद्धाः^२ प्रविहाय भानमपरं^३ प्राणशिशुश्चक्रिणं
 दूरादानतमीलयो जिनामिव प्राण्योदयं^४ नाकिनः ॥१५२॥

इत्यायं भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसङ्ग्रहे
 भरतराजविजयप्रयाणवर्णनं नाम सप्तविंशतितमं पर्वं ॥

॥१५०॥ जिस समय राजाओके तम्बुओमें मनुष्योंकी भीड़का क्षोभ शान्त हो गया था, घोडो के समूह जल पीकर कपडेके बने हुए मण्डपोंमें अपने इच्छानुसार घास खाने लगे थे, और हाथियो के समूह गङ्गा नदीके किनारेके सरोवरोंमें अवगाहन कराकर—स्नान कराकर-वनोमें वांध दिये गये थे उस समय विजयी महाराज भरतकी वह सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो चिर कालसे ही वहा रह रही हो ॥१५१॥ जिस प्रकार श्रेष्ठ महिमाको धारण करनेवाले तथा समवसरण सभामें विराजमान जिनेन्द्रदेवकी देव लोग आराधना करते है उसी प्रकार श्रेष्ठ वैभवको धारण करनेवाले तथा उस मण्डपमें बैठे हुए महाराज भरतको पूर्वदिशाके राजाओने अपनी कुल-परम्परासे आया हुआ धन भेंटमें देकर, कन्याए प्रदान कर तथा और भी अनेक योग्य वस्तुए देकर उनकी आराधना-सेवा की थी । इसी प्रकार उनकी सेनाके द्वारा रोके हुए अन्य कितने ही राजाओंने अहंकार छोड़कर दूरसे ही मस्तक झुकाकर चक्रवर्तीके लिये प्रणाम किया था ॥१५२॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्य-प्रणीत त्रिपटिलक्षण श्रीमहापुराणसङ्ग्रहके भाषानुवादमें भरतराजका राजाओकी विजयके लिये प्रयाण करना इस बातका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवा पर्व समाप्त हुआ ।

अष्टाविंशतितमं पर्व

अथा-वेद्युद्दिनारम्भे वृत्तश्राभातिवक्रिय । प्रयाणमकरोच्चक्रो चकरतनानुमार्गत^१ ॥१॥
 अलद्वय चक्रमाकान्तपरचक्रपराश्रमम् । दण्डश्च दण्डिताराति द्वयमस्य^२ पुरोऽभवत् ॥२॥
 रदय देवतहृत्त्रेण चक्र दण्डश्च ताडुश । जयाद्रगमिदमेवास्य द्वय शेष परिच्छद^३ ॥३॥
 विजयार्थं प्रतिस्पर्धयन्नापि यामहस्तिनम्^४ । प्रतरये प्रभुराहृद्य नाम्ना विजयपर्वतम् ॥४॥
 प्राचीं दिशामयो जेतुम् आपयोपेस्तमुद्यतम् । तून^५ स्तम्बेरमव्याजाद् ऊर्हे^६ विजयपर्वत^७ ॥५॥
 सुरेभ^८ शरदभ्रानम् आरुढो जयकुञ्जरम् । स रेजे दीप्तमुकुट सुरेभ^९ सुरराडिव ॥६॥
 तितातपनमस्थोच्चं विद्युत् श्रियमादधे । पशसा प्रसवाणारमिव^{१०} तद्व्याजजन्मिभतम् ॥७॥
 लक्ष्मीप्रहासविदादा चामराली समन्तत् । व्यधुयतास्य विष्वस्ततापा ज्योत्स्नेव शारदी ॥८॥
 जयद्विरदमारुढो ज्वलज्जवाश्रभासुर । जयलक्ष्मीवटाक्षानाम् भ्रगमत् स शरव्यताम्^{११} ॥९॥
 महामुकुटबद्धाना सहस्राणि^{१२} समन्तत् । तमनुप्रचलन्ति स्म सुराधिपमिवाभरा ॥१०॥

अथानन्तर-दूसरे दिन सबेरा होते ही जो प्रातःकालके समय करने योग्य समस्त
 त्रियाए कर चके हं ऐसे चनवर्ती भरतने चनरत्नके पीछे पीछे प्रस्थान किया ॥१॥ शत्रु-ममूह
 के पराक्रमको नष्ट करनेवाला तथा स्वयं दूमरोंके द्वारा उल्लयन न करने योग्य चनरत्न और
 शत्रुओंको दण्डित करनेवाला दण्डरत्न, ये दोनों ही रत्न चनवर्तीकी सेनाके आगे आगे रहते
 थे ॥२॥ चक्ररत्न एक हजार देवोंके द्वारा रक्षित था और दण्डरत्न भी इतने ही देवोंके द्वारा
 रक्षित था । वास्तवमें चक्रवर्तीकी विजयके कारण ये दो ही थे, शेष सामग्री तो केवल शोभा
 के लिये थी ॥३॥ अबकी बार चनवर्तीने, जिसका शरीर विजयार्थ पर्वतके साथ स्पर्धा कर
 रहा है ऐसे विजयपर्वत नामके पूज्य हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया था ॥४॥ उस
 समय ऐसा मालूम होना था मानो समुद्र पर्वत पूर्व दिशाको जीतनेके लिये उद्यत हुए महाराज
 भरतको उम हाथीके छलमे विजयार्थ पर्वत ही धारण कर रहा हो ॥५॥ जिम प्रकार देदीप्य-
 मान मुकुटको धारण करनेवाला इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढा हुआ सुगोभित होना है उसी प्रकार
 देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला भरत शरद् ऋतुने घादलोके समान मफेद और देवों
 के द्वारा दिये हुए उम विजयपर्वत हाथीपर चढा हुआ सुगोभित हो रहा था ॥६॥ भरतेश्वर
 के ऊपर लगा हुआ सफेद छत्र ऐसी शोभा धारण कर रहा था मानो छत्रने वहानेमें यगकी उत्पत्ति
 का म्यान ही हो ॥७॥ लक्ष्मीके हास्यके समान निर्मल और शरद्ऋतुरी चादनीके समान
 सनापको नष्ट करनेवाली चमरोंकी पत्ति महाराज भरतके चारों ओर दुलाई जा रही थी ॥८॥
 विजय नामके हाथी पर आरुढ हुए और विजय प्राप्त करानेवाले प्रयागमान अश्रोमे देदीप्यमान
 होनेवाले भरतेश्वर जयलक्ष्मीके वटाक्षोंके लक्ष्य बन रहे थे । भावार्थ-उनको और विजय-
 लक्ष्मी देख रही थी ॥९॥ जिस प्रकार देव लोग इन्द्रके पीछे पीछे चलने हैं उसी प्रकार हजारों
 मुकुटबद्ध बड़े बड़े राजा लोग चारों ओर भरत महाराजके पीछे पीछे चत्र रहे थे ॥१०॥

१ अनुगमनात् । २ अरिनिवर । पराश्रु वा । ३ चरित । ४ परिपर । ५ विजयार्थ-
 गिरिणा स्पर्धमानदेहम् । ६ पूजोत्तमजम् । ७ मनु त० । ८ परति स्म । ९ विजयार्थगिरि ।
 १० मुकुटम् । ११ ऐरावतम् । १२ हास्यव्याज । १३ तावताम् । 'तदा तस्य तास्य च' इत्यभिधानात् ।
 १४ जगतिमा इत्यर्थः ।

दूरमद्य प्रयातव्यं निवेष्टव्यमुपाणंघम्^१ । त्वरध्वमिति सेनान्यः सैनिकानुवृत्तिपटयन् ॥११॥
 त्वर्यंता प्रस्थितो देवो दबोपशच^२ प्रयाणकम् । बलाधिकारिणामित्यं वचो बलमचक्षुभन् ॥१२॥
 अद्यासिन्धु^३ प्रयातव्यं गङ्गाद्वारे निवेशनम् । संश्राव्यो मागधोऽर्ध्वं धितद्रुष्य पयसां निधिम् ॥१३॥
 समुद्रमद्य पश्यामः समुद्रङ्गत्तरङ्गकम्^४ । समुद्रं सङ्कतेऽर्ध्वं समुद्रं^५ दासतं विभोः ॥१४॥
 अन्धोन्यस्येति सञ्जल्पैः सम्प्रास्थियत^६ सैनिकाः । प्रयाणभेरीप्रध्वानतः तदोद्यन् छा^७मधिध्वनत्^८ ॥१५॥
 ततः प्रचलिता सेना सानुगङ्गं धृतायतिः । मिमानेव तदायामं पश्ये प्रथितध्वनिः ॥१६॥
 सचामरा चलद्दंसां सबलाकां^९ पताकिनो^{१०} । धन्विषाय चमूर्गङ्गा सतुरङ्गा तरङ्गिणीम्^{११} ॥१७॥
 राजहंसैः कृताध्यासा ष्वचिदध्वस्वतद्गतिः । घमूरब्धिं प्रति प्रायात्^{१२} सा द्वितीयेव जाह्नवी ॥१८॥
 विपरीतामत्तद्वृत्तिः^{१३} निम्नगा^{१४}मुन्नतस्थितिः । त्रिमागंगां ध्वजेष्टासौ पृतना बहुमागंगा ॥१९॥

‘आज बहुत दूर जाना है और समुद्रके समीप ही ठहरना है इसलिये जल्दी करो’ इस प्रकार सेना-पति लोग सैनिकोंको जल्दी जल्दी उठा रहे थे ॥११॥ ‘अरे जल्दी करो, महाराज प्रस्थान कर गये, और आजका पडाव बहुत दूर है’ इस प्रकार सेनापतियोंके वचन सेनाको क्षोभित कर रहे थे ॥१२॥ ‘आज समुद्र तक चलना है, गङ्गाके द्वारपर ठहरना है और आज ही समुद्रको उल्लंघन कर मागधदेवको वश करना है ॥१३॥ आज हम लोग, जिसमें ऊँची ऊँची लहरें उठ रही हैं ऐसे समुद्रको देखेंगे और आज ही समुद्रको उल्लंघन करनेके लिये महाराजकी मुहर सहित आजा है’ ॥१४॥ इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए सैनिकोंने प्रस्थान किया, उस समय प्रयाण-कालमें वजनेवाले नगाडोंके उठे हुए शब्दने आकाशको शब्दायमान कर दिया था ॥१५॥ तदनन्तर, जिसका शब्द सब ओर फैल रहा है ऐसी वह सेना गङ्गा नदीके किनारे किनारे लम्बी होकर इस प्रकार चलने लगी मानो उसकी लम्बाईका नाप करती हुई ही चल रही हो ॥१६॥ उस समय वह सेना ठीक गङ्गा नदीका अनुकरण कर रही थी क्योंकि जिस प्रकार गङ्गा नदीमें हंस चलते हैं उसी प्रकार उस सेनामें चमर ढुलाये जा रहे थे, जिस प्रकार गङ्गा नदीमें वगुला उड़ा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें ध्वजाएं फहराई जा रही थी और जिस प्रकार गङ्गा नदीमें अनेक तरङ्ग उठा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें अनेक घोड़े उछल रहे थे ॥१७॥ वह सेना समुद्रकी ओर इस प्रकार जा रही थी मानो दूसरी गङ्गा नदी ही जा रही हो क्योंकि जिस प्रकार गङ्गा नदीमें राजहंस निवास करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें भी राजहंस अर्थात् श्रेष्ठ राजा लोग निवास कर रहे थे और जिस प्रकार गङ्गा नदीकी गति कही भी स्वलित नहीं होती उसी प्रकार उस सेनाकी गति भी कही स्वलित नहीं हो रही थी ॥१८॥ अथवा उग सेनाने गङ्गा नदीको जीन लिया था क्योंकि गङ्गा नदी विपरीत अर्थात् उल्टी प्रवृत्ति करनेवाली थी (पश्चिम विपरीत-पश्चिमोत्तरे व्याप्त थी) परन्तु सेना विपरीत नहीं थी अर्थात् गदा चक्रवर्तीके आज्ञानुसार ही काम करती थी, गङ्गा नदी निम्नगा अर्थात् नीच पृष्ठको प्राप्त होनेवाली थी (पश्चिम डालू स्थानकी ओर बहनेवाली थी) परन्तु सेना उसके विरुद्ध उन्नतगा अर्थात् उन्नत पुरप-चक्रवर्तीको प्राप्त होनेवाली थी और इसी प्रकार गङ्गा त्रिमागंगा अर्थात् तीन भागोंमें गमन करनेवाली थी (पश्चिम त्रिमागंगा, यह गंगाका एक नाम है) परन्तु

१ अर्धवर्गमिते । २ वेग वृष्ट्यम् । ३ दूरतरम् । ४ आ समुद्रम् । ५ मापनीय । गंगाध्वो ६०, ७०, ८० । ६ उर्ध्वरूपवर्तीविषयम् । ७ समुद्रतटपनेऽर्ध्वं ल०, ८०, ६० । ८ मुद्रया गहितम् । ९ सानुमुपानान्वयम् । १० गम् । ११ ध्वनिमनागम् । १२ विषयश्लेषागहितम् । १३ सपतायावती । १४ तरङ्गवर्तिम् । १५ अगण्यम् । १६ पश्चिमि पश्चिन्ताम् । धन्विष्यामिति ध्वनिः । १७ विपरीत-वृत्तिरहितेऽर्थे । १८ नीचपथगामिति पथनिः ।

अनुगडगातट पान्ती ध्वजिनो सा ध्वजाशुक्रं । वनरेणुभिराकीर्णं सम्ममाजैकवाटपणम् ॥२०॥
 दुर्विगाहा महाप्राहा' संयान्युत्तेरन्तरे । गडगानुगा 'धुनीबन्दी बहुराजकुलस्थितौ' ॥२१॥
 मार्गं 'बहुषियान्' वेदान् सरित् पर्वतानपि । 'वनधीन्' वनदुर्गणि सनीरप्यत्यगान् प्रभु ॥२२॥
 प्रगोप्यदेध्वरप्येषु' दृश व्यापारयन् विभु । भूमिच्छिद्रपिधानाय क्षण यत्ननिवातनोत् ॥२३॥
 पथि प्रणैमुरागत्य सम्भ्रान्ता मण्डलाधिपा' । दण्डोपनतवृत्तस्य' विद्ययोऽग्रमिति' प्रभुम् ॥२४॥
 त' 'चक्र घेहि' राजेन्द्र सपुर' प्राज' सारये । सञ्जल्प इति नास्यात्तोद् श्रयलाबनतद्विप ॥२५॥
 प्रतिषोद्भ्रमस्तस्त 'प्रयनेषु जिगीषव । तल्प प्रणतिव्याजात् समीलिभिरताडयन् ॥२६॥
 'विभुत्वमरिचक्रेषु भूपरागानुरञ्जनम्' । स्वचक्र इव सोऽप्यत महता चित्रमोहितम् ॥२७॥

सेना अनेक मार्गोंसे गमन करनेवाली थी ॥१९॥ गङ्गा नदीके किनारे किनारे जाती हुई वह सेना अपनी फहरानी हुई ध्वजाओमें ऐसी जान पडती थी मानो वनकी धूलिसे भरे हुए आकाशरूपी आगनको ध्वजाओके वस्त्रोंसे साफ ही कर रही हो ॥२०॥ महाराज भरतकी सेनाओंने उत्तर्की ओर बहनेवाली तथा आनेवाली जिन अन्य अनेक नदियों और सेनाओंको पार किया था वे परम्परमें एक दूसरेके अनुत्प थी अर्थात् नदिया सेनाओंके समान थी और सेनाएँ नदियोंके संमान थी, क्योंकि जिन प्रकार नदिया दुर्विगाहा अर्थात् कठिनतामें प्रवेश करने योग्य होती है उसी प्रकार सेनाएँ भी कठिनताके प्रवेश करने योग्य होती है, जिस प्रकार नदिया महाप्राह अर्थात् बड़े बड़े मगरमच्छोंमें सहित होती है उसी प्रकार सेनाएँ भी महाप्राह अर्थात् बड़े भारी आग्रहसे सहित होती है, और जिन प्रकार नदिया बहुराज कुलस्थिति अर्थात् (बहुराज कुल स्थिति) अनेक राजाओंकी पृथिवीको ग्रहण करनेवाली स्थितिसे सहित होती है उसी प्रकार सेनाएँ भी बहुराज कुलस्थिति अर्थात् अनेक राजवशोंकी स्थितिसे सहित होती है ॥२१॥ धनवान् महाराज भरत मार्गमें पडते हुए अनेक देश, नदिया, पर्वत, वन, किले और खान आदि सबको उल्लंघन करते हुए आगे चले जा रहे थे ॥२२॥ गाय आदि जानवरों के संचारसे रहित वनोंमें दृष्टि डालते हुए भरतेश्वर ऐसे जान पडते थे मानो पृथिवीके छिद्रों राजा जिमें दण्ड रत्न प्राप्त होता है यह देश उसीका होना है इस निश्चयमें आकर महाराज को ढकनेके लिये क्षणभर प्रयत्न ही कर रहे ही ॥२३॥ मार्गमें घवटाएँ हुए अनेक मण्डलेश्वर राजा भरतको प्रणाम कर रहे थे ॥२४॥ मार्गमें महाराज भरतेश्वरके समस्त शत्रु विना प्रयत्नके ही नश्वीभूत होने जाते थे इसलिये उन्हें कभी यह शब्द नहीं कहने पडते थे कि हे राजेन्द्र, आप चक्ररत्न धारण कीजिये और हे सारथे, तुम रथ चलाओ ॥२५॥ जीतनेकी इच्छा करनेवाले अन्य कितने ही राजा लोग युद्धमें भरतेश्वरके लडनेके लिये समर्थ नहीं हो सके थे इसलिये नमस्कार के वहाने अपने मुकुटोंमें ही उनके पैरोंकी ताडना कर रहे थे ॥२६॥ महाराज भरत जिन प्रकार अपने राज्यमें विभुत्व अर्थात् ऐश्वर्य धारण करने के उसी प्रकार शत्रुओंके राज्यों में भी विभुत्व अर्थात् पृथिवीका अभाव धारण करते थे—उनकी भूमि छीन लेने थे, (विगत भूषेपा सेपा भाव विभुत्वम्) और जिस प्रकार अपने राज्यमें भूप-गगानुरजन अर्थात्

१ महानद्या, २ पश्चिम महासमीपारा । ३ नदी । ४ राजकुलस्थिते गमा । ५ वनस्थान् । ६ वनस्थान् । ७ वनस्थान् । ८ वनस्थान् । ९ वनस्थान् । १० वनस्थान् । ११ वनस्थान् । १२ वनस्थान् । १३ वनस्थान् । १४ वनस्थान् । १५ वनस्थान् । १६ वनस्थान् । १७ वनस्थान् । १८ वनस्थान् । १९ वनस्थान् । २० वनस्थान् । २१ वनस्थान् । २२ वनस्थान् । २३ वनस्थान् । २४ वनस्थान् । २५ वनस्थान् । २६ वनस्थान् । २७ वनस्थान् । २८ वनस्थान् । २९ वनस्थान् । ३० वनस्थान् । ३१ वनस्थान् । ३२ वनस्थान् । ३३ वनस्थान् । ३४ वनस्थान् । ३५ वनस्थान् । ३६ वनस्थान् । ३७ वनस्थान् । ३८ वनस्थान् । ३९ वनस्थान् । ४० वनस्थान् । ४१ वनस्थान् । ४२ वनस्थान् । ४३ वनस्थान् । ४४ वनस्थान् । ४५ वनस्थान् । ४६ वनस्थान् । ४७ वनस्थान् । ४८ वनस्थान् । ४९ वनस्थान् । ५० वनस्थान् । ५१ वनस्थान् । ५२ वनस्थान् । ५३ वनस्थान् । ५४ वनस्थान् । ५५ वनस्थान् । ५६ वनस्थान् । ५७ वनस्थान् । ५८ वनस्थान् । ५९ वनस्थान् । ६० वनस्थान् । ६१ वनस्थान् । ६२ वनस्थान् । ६३ वनस्थान् । ६४ वनस्थान् । ६५ वनस्थान् । ६६ वनस्थान् । ६७ वनस्थान् । ६८ वनस्थान् । ६९ वनस्थान् । ७० वनस्थान् । ७१ वनस्थान् । ७२ वनस्थान् । ७३ वनस्थान् । ७४ वनस्थान् । ७५ वनस्थान् । ७६ वनस्थान् । ७७ वनस्थान् । ७८ वनस्थान् । ७९ वनस्थान् । ८० वनस्थान् । ८१ वनस्थान् । ८२ वनस्थान् । ८३ वनस्थान् । ८४ वनस्थान् । ८५ वनस्थान् । ८६ वनस्थान् । ८७ वनस्थान् । ८८ वनस्थान् । ८९ वनस्थान् । ९० वनस्थान् । ९१ वनस्थान् । ९२ वनस्थान् । ९३ वनस्थान् । ९४ वनस्थान् । ९५ वनस्थान् । ९६ वनस्थान् । ९७ वनस्थान् । ९८ वनस्थान् । ९९ वनस्थान् । १०० वनस्थान् ।

सन्धादिविषये^१ नास्य समकक्षो^२ हि पार्थिव ।^३ पाङ्गुण्यमत एवास्मिन् चरितार्थं^४ मभूत् प्रभो^५ ॥२८॥
 प्रतिराष्ट्रमुपानीतप्राभूतान् विषयाधियान् । सम्भावयन् प्रसाधेन सोऽप्यगाद् विषयान् बहून् ॥२९॥
 नास्त्रे^६ व्यापारितो हस्तो मौर्वी धनुषि नापिता । केवल प्रनुशक्त्येव प्राची दिग्विजिताऽमुना ॥३०॥
 गोकुलानामुपान्तेषु सोऽपश्यद् ध्रुवबलवान्^७ । वनबल्लीभिराबद्धजूटकान्^८ गोऽभिरक्षिण ॥३१॥
 मन्याकर्यभ्रमोद्भूतस्वेदबिन्दुचिताना । मग्नती^९ सकुचोत्कम्प सतील^{१०}त्रिकनतने ॥३२॥
 मन्वरज्जुसमाकृष्टिवलान्तबाहू^{११} श्लयाशुक्रा । सस्तस्तनाशुक्रा लक्ष्यत्रिवलीभङ्गु^{१२}रोदरा ॥३३॥
 क्षुधाभिघातोच्चलितस्थल^{१३}गोरसयिन्दुभिः । विरलैरङ्गसलनै शोभा वामपि पुष्पती ॥३४॥
 मन्वारवानुसारेण किञ्चिदारब्धमूर्धना^{१४} । विलस्तवदरीबन्धा कामस्येव पताविका ॥३५॥
 'गोष्ठाद्गणेषु स्ल्लारं^{१५} स्वरमारब्धमन्यना । प्रभुर्गोपवधू पश्यन् किमप्यासीत् समुत्सुक ॥३६॥
 वने वनगजैर्जुष्टे^{१६} प्रभुमेन वनेचरा । दन्तैर्वनवरीन्द्राणाम् भद्राक्षु सह मौक्तिके ॥३७॥

राजाओके प्रेमपूर्ण अनुरागको धारण करते थे उसी प्रकार शत्रुओके राज्यमें भी भू-परागा-
 नुरजन अर्थान् पृथिवीकी धूलिसे अनुरजन धारण करते थे, शत्रुओको धूलिमें मिला देते
 थे, सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषकी चेट्याए आश्चर्य करनेवाली होती ही हैं ॥२७॥ सधि
 आदि गुणोके विषयमें कोई भी राजा महाराज भरतके बराबर नहीं था इसलिये सन्धि आदि
 छहो गुण उन्हींमें चरितार्थ हुए थे । भावार्थ—कोई भी राजा इनके विरुद्ध नहीं था इसलिये
 इन्हें किसीसे सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय नहीं करने पड़ते थे ॥२८॥
 प्रत्येव देशमें भेंट लेकर आये हुए वहाके राजाओका बडी प्रसन्नतासे आदर-सत्कार करते हुए
 महाराज भरत बहुनसे देशोको उल्लघन कर आगे बढ़ते जाते थे ॥२९॥ भरतेश्वरने न तो
 कभी सलवारपर अपना हाथ लगाया था और न कभी डोरी ही धनुषपर चढाई थी । उन्होने
 केवल अपनी प्रभुत्वशक्तिसे ही पूर्व दिशाको जीत लिया था ॥३०॥ उन्होने गोकुलोके समीप
 ही गायोकी रक्षा करनेवाले तथा वनकी लताओसे जिन्होने अपने शिरके बालोका जडा बाध
 रमा है ऐमे तमण ग्वाला देखे ॥३१॥ कटनियोके खोचनेके परिश्रमसे उत्पन्न हुए पसीनेकी
 रूदोमें जिनके मुग्ग व्याप्त हो रहे हैं, जो लीलापूर्वक नितम्बोको नचा नचा कर स्तनोको हिलाती
 टुट्टे दही मय रही हैं, कटनियोके गीचनेसे जिनकी भुजाए धव गईं हैं, जिनके मघ वस्त्र ढीले
 पड गये हैं, जिनके म्ननोपरका वस्त्र भी नीचेकी ओर विसक गया है, जिनके वृश उदरमें त्रिवली
 की रेखाए साफ साफ दिख रही हैं, रङ्ग (पूङ्ग) के आपातमे उल्लङ्ग उल्लङ्ग कर शरीरमें जहाँ तहाँ
 लगी हुई दर्शोकी बडी बडी बदोने जो एव प्रवारती विचित्र मोभावो पुष्ट कर रही हैं, मन्यन
 मे होनेवाके गर्दोने गाय गाय ही जिन्होने कुछ गाना भी प्रारम्भ किया है, जिनके केशपाद
 का वन्धन मल गया है और इगोत्रिये जो कामदेवकी पताकाओके समान जान पडती हैं, तथा
 गोनागके आगनोंमें अपने इच्छानुसार वार्तात्रय करती हुई जिन्होने दहीका मथना प्रारम्भ
 किया है ऐमी ग्वागओकी ग्निषोओ देगने हुए महाराज भरतेश्वर कुछ उत्पण्डित हो उठे
 थे ॥३२-३६॥ जगती हाथियोमे भरे हुए वनमें रहनेवाके भील लोगोने जगली हाथियोके
 दान धोर मोरी भट कर महाराजके दर्शन किये थे ॥३७॥ जिनका शरीर न्याम है जिनके

श्यामाङ्गीरनभिर्व्यस्तरोमराजीस्तनूदरी । परिधानीकृतालोलपलत्रव्यक्तसवती । ॥३८॥
 चमरीवालकविद्यद्वन्द्वरीव्रणध्वराः । फलिनीपल्लवसन्दुष्यनालारचितकण्ठिकाः ॥३९॥
 वस्तूरिकामुगाभ्यासवासिताः सुरभीमूढः । सञ्चिद्यतीर्वनाभोगे प्रसाधनजिघ्रक्षया ॥४०॥
 पुलन्दवन्द्याः सैग्यसमारोकाविस्मिताः । अय्याजसुन्दराकारा दूरादालोकयत् प्रभुः ॥४१॥
 चमरीवालकान् वेचित् केचित् वस्तूरिकाण्डकान् । प्रगोष्पाप्यतीकृत्य ददृशुस्त्वैच्छराजकाः ॥४२॥
 तत्रान्तपालदुर्गाणा सहस्राणि सहस्रशः । लभ्यचक्रधरादेश सेनानी, समञ्चिश्रित्य ॥४३॥
 अपूर्वरासन्दर्भः कृप्यसारधनेरपि । अन्तपाला प्रभोरज्ञा सप्रणामरमानयन् ॥४४॥
 ततो विदूरमुल्लस्य सोम्वानं सह सेनया । गद्गदाद्वारमनुप्रापत् स्वमिवालदध्यमर्गवम् ॥४५॥
 बहिःसमुद्रमुद्रिकत द्वैष्यं निम्नोपगं जलम् । समुद्रस्येव निष्यन्दंम् अथ्वेरादाद ध्यसोवयत् ॥४६॥
 वर्षारम्भो युगास्त्रभे योऽभूत् फालागुभवत् ॥ । ततः प्रभृति सबद्ध जलं द्वीपान्तमापूणोत् ॥४७॥
 अतदप्यत्वात् गृहीयत्सवाद् द्वीपपर्यन्तयेष्टनात् । द्वैष्यसम्बु समुद्रिकतम् ॥ अग्रादुपसमुद्रताम् ॥४८॥
 पदपङ्गुपसमुद्रं त यत्वा स्थलपर्येनं स । गद्गदीपिनवेद्यन्तं भोगे सैग्यं न्यवीचिदात् ॥४९॥

शरीरपर अभी रोमराजी प्रवट गही हुई है, उदर भी जिनका वृद्ध है, वस्त्रके समान धारण किये हुए चचल पत्तोसे जिनके शरीरका सवरण प्रकट हो रहा है, चमरी गायके बालोमे बंधे हुए केशपापोसे जो बहुत ही सुन्दर जान पड़ती है, गुजाफलोसे धनी हुई मालाओको जिन्होंने अपना कण्ठहार बनाया है, वस्तूरी मृगके वैशनेसे सुगन्धित हुई मिट्टीको आभूषण बनाने की इच्छासे जो वनके किसी एक प्रदेशमें इकट्ठी कर रही है, जिनका आकार वास्तवमें सुन्दर है और जो सेनाके देवनेसे विस्मित हो रही है ऐसी भीलोकी वन्याओको भरतने दूरसे ही देखा था ॥३८-४१॥ किनने ही म्लेच्छ राजाओने चमरी गायके बाल और कितने ही ने वस्तूरी-मृगकी नाभि भेट कर भरतके दर्शन किये थे ॥४२॥ बहापर सेनापतिने चरत्रतीकी आज्ञा प्राप्त कर अन्तपालोके लाये किले अपने वश किये ॥४३॥ अन्तपालोने अपूर्व अपूर्व रत्नो के समूह तथा सोना चादी आदि उत्तम धन भेरे कर भरतदेवरको प्रणाम किया तथा उसकी आज्ञा स्वीकार की ॥४४॥ तदनन्तर सेनाके साथ साथ बहुत कुछ दूर मार्गको व्यतीत कर वे गङ्गाद्वारको प्राण हुए और उमके बाद ही अपने समान अलघनीय समुद्रको प्राप्त हुए ॥४५॥ उन्होंने समुद्रके समीप ही, समुद्रसे बाहर उछल उछल कर गहरे स्थानमें इकट्ठे हुए द्वीप सम्वन्धी उस जलको देखा जो कि समुद्रके निष्यन्दके समान मालूम होता था अथवा समुद्रके जलके समान ही निद्रचल-स्थायी था अर्थात् उपसमुद्रको देखा, समुद्रवा जो जल उछल उछलकर समुद्रके समीप ही द्वीपके किसी गहरे स्थानमें इकट्ठा होता जाता है वही उपसमुद्र कहलाता है । उपसमुद्र द्वीपके भीतर होता है इसलिए उसका जल द्वैष्य कहलाता है । उपसमुद्रका जल ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्रवा न्येद ही इकट्ठा हो गया हो ॥४६॥ वर्षभूमिरप युगके प्रारम्भ में जो वर्षा हुई थी तबसे लेकर वायके प्रभावमें घबना हुआ गही जल द्वीपके अन्त भाग तक पहुँच गया था ॥४७॥ जो जल समुद्रसे उछल उछलकर द्वीपमें आया था वह अलघनीय था, यद्यत् गहरा था और उगने द्वीपके सब समीपवर्ती भागको घेर लिया था इसलिए वही उपसमुद्र कहलाने लगा था ॥४८॥ उम उपसमुद्रको देखने हुए भरतने गुप्तार मार्गमें जाकर

१ अञ्जनास्त्रदेहा । २ गुञ्जाराजिन । ३ अनुसापि । ४ स्थाप । ५ वासोमधीगण्डादि ।

६ अनुजवा । ७ समुद्रस्य बहिः । ८ द्वीपगन्धपि । ९ अपापभावप्राप्तम् । १० द्रवकाम् । ११ गामर्ष्येन ।

१२ अञ्जनामहृथा । १३ उग्रदम् । १४ गुणपर्येन । १५ गुणपर्येन ६०, १० । १६ गुणेन मानो गुप्तमं

दादि गुप्तं दादि ६ । १७ अञ्जनाम् । १८ बन्दवभागे १० ।

वेदिकातोरणद्वारमस्ति 'तत्रोच्छ्रितं महत् । शनस्तेन' प्रविश्यात्तवर्षणं संयं ग्विधशत ॥५०॥
 तत्र वास्तु^१ वसादस्थ किञ्चित्तुसदकुचिता यतः । स्थग्धाधारनिधेशोऽभूद् भ्रतद्रव्यव्यूहविस्तृतिः^२ ॥५१॥
 नन्दनप्रतिभे^३ तरिम्न् धने रद्दातपाडिधुषे । गङ्गाशीतानिलस्पर्शः तद्बलं सुखमायसत्^४ ॥५२॥
 तस्मिन् पीरुषसाध्वेऽपि कृत्ये^५ बंधं प्रमाणयन् । तवणाब्धिजयोद्युक्त सोऽभ्येच्छद् वैदिकीं विद्याम् ॥५३॥
 'अधिवासितजैत्रास्त्र' स त्रिरात्रमधोपिवान् । मन्त्रानुस्मृतिपूतात्मा शुचिललोपगः शुचिः ॥५४॥
 सायंप्रातिकनि श्रेयकरणीये समाहित । पुरोधोऽधिष्ठितां पूजां स ध्यधात् परमेष्ठिनाम् ॥५५॥
 सेनान्यं बलरक्षायं नियोज्य विधिवद् विभुः । प्रतस्थे घृतविश्यास्त्रो जिगोपुसंवणान्मुधिम् ॥५६॥
 प्रतिग्रहा^६ पसाराविचिन्ताऽभून्नास्य चेतसि । 'वित्तिलद्वययोरधिधम् ग्रहे'^७ स्थयं महातमनाम् ॥५७॥
 अजितजयमाह्वद् रथं दिव्यास्त्रसम्भूतम् । योजितं धाजिभिर्दिव्यैः जलस्थलबिलडिभिः ॥५८॥
 'पत्रश्यामरथं प्रोच्यं' चलच्चक्राङ्गकेतनम् । तमूहुर्जबना^८ घाहा दिव्य^९ 'सव्येऽदृचोदिता'^{१०} ॥५९॥
 ततोऽस्मिं दत्तपुण्याशोः पुरोषा^{११} 'धृतमहगलः । त्व देव विजयस्वेति स इमामुचमापठत् ॥६०॥

गङ्गाके उपवनकी वेदीके अन्तभागमे सेनाका प्रवेश कराया ॥४९॥ वहा वेदिकामें एक बडा भारी तोरणद्वार है जो कि उत्तर द्वार कहलाता है, उसी द्वारसे धीरे धीरे प्रवेश कर वनके भीतर सेनाको ठहराया ॥५०॥ वहा चक्रवर्तीके विद्विरकी जो रचना हुई थी उसकी, उस क्षेत्रके अनुसार, लम्बाई तो अधिक थी परन्तु चौडाई कुछ कम थी और उसकी सेनाके विस्तार को कोई उल्लघन नही कर सकता था ॥५१॥ जो नन्दन वनके समान है तथा जिसके वृक्ष सूर्य के आतापको रोकनेवाले है ऐसे उस वनमे भरतकी वह सेना गङ्गा नदीके शीतल वायुके स्पर्शसे सुखपूर्वक निवास करती थी ॥५२॥ यद्यपि मागध देवको वश करना यह कार्य पौरुषसाध्य है अर्थात् पुरुषार्थसे ही सिद्ध हो सकता है तथापि उसमे देवकी प्रमाणता मानकर लवण समुद्रको जीतनेके लिये तत्पर हुए भरत महाराजने भगवान् अरहन्त देवके आराधन करनेका विचार किया ॥५३॥ जिसने मन्त्र तन्त्रोसे विजयके शस्त्रोका सस्कार किया है, तीन दिन उपवास किया है, मन्त्रके स्मरणसे जिसका आत्मा पवित्र है, जो पवित्र गध्यापर बैठा हुआ है, स्वयं पवित्र है, सायकाल और प्रातःकालकी समस्त क्रियाओमे सावधान है और पुरोहित, जिसके समीप बैठा है ऐसे उन भरतने पञ्च परमेष्ठीकी पूजा की ॥५४-५५॥ भरतने विधिपूर्वक सेनाकी रक्षाके लिये सेनापतिको नियुक्त किया और स्वयं दिव्य अस्त्र धारण कर लवण समुद्रको जीतनेकी इच्छामे प्रस्थान किया ॥५६॥ समुद्रको उल्लघन करनेकी इच्छा करने वाले भरतके चित्तमें यह भी चिन्ता नही हुई थी कि क्या क्या साय लेना चाहिये और क्या-क्या यहा छोड देना चाहिये सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोका धैर्य ही आश्चर्यजनक होता है ॥५७॥ जो देवोपनीत अस्त्र-शस्त्रोसे भरा हुआ है और जिसमें जल स्थल दोनोंपर समान रूपमे चलनेवाले दिव्य घोडे जुते हुए है ऐसे अजितजय नामके रथपर भरतेश्वर आरूढ हुए ॥५८॥ जो पत्तोके समान हरिलवण है, जिसपर बहुत ऊचे चक्रके आकारमे चिह्नित ध्वजा पहन रही है और जो दिव्य सारथिके द्वारा प्रेरित है—हाका जा रहा है—ऐसे उस रथको वेग-घान्ठी घोडे ले जा रहे थे ॥५९॥ तदनन्तर हे देव, आपकी जय हो इस प्रकार भरतके लिये

१ तत्रोत्तर ६०, ल० । २ द्वारेण । ३ गृहगामर्थात् । ४ बलविन्यामविस्तार । ५ मृदुने । ६ -माविद्यत् ल० । ७ मागधामरतापनरपवार्ये । ८ मन्त्रसम्भृत । ९ अस्नमनप्रभातगन्धविधि । १० स्वीकारत्यजनादि । ११ दिनदृष्टिपुमिच्छो । १२ मनाथैर्ये अ०, ग०, ६० । १३ वाहनवाजिभिः श्यामवर्णैः कृततरयम् । अनेक-मदपारत्वा. हरिडर्णा इत्युक्ता । १४ वेगिनः । १५ दिव्यगारथिप्रेरिता । 'नियन्ता प्राजिता यन्ता सूत शान्ता च गारथ्यः । सव्येऽदृचोदिगर्तयो च गजारथबुद्धिचिन' इत्यभिधानात् । (सव्येऽदृचोदिगर्तयो इति ऋदन्त इति ऋचिम्) अर्थात् मन्त्रविषयः । १६ धीरिन ल० । गोदिता ग०, अ० । १७ धृतमदगलम् अ०, ग०, ६० ।

जयन्ति विभुताशेषज्वला धर्मनायकाः^१ । त्वं धर्मविजयी भूत्वा तत्प्रसादाज्जयालितम् ॥६१॥
 सन्त्यधिनिस्तया देवाः त्वं दुर्भक्त्यन्तनिवासिनः । तान् विजेतुमेष कालः तवेत्युच्चैर्जुषोय च ॥६२॥
 ततः कतिपर्यन्तं नायकः परिवारितः । जगतीतलभारक्षद् गङ्गाद्वारस्य चक्रभृत् ॥६३॥
 न केवलं समुद्रान्तःप्रवेशद्वारमेव तत् । कार्यसिद्धेरपि द्वारं तदमस्तं रयाद्गमभृत्^२ ॥६४॥
 धृतमन्त्रालयस्य^३ तद्द्वारोहणं विभोः । विजयश्रीसमुद्राहवेद्यारोहणवद् यमो ॥६५॥
 मद्गुहाद्गणवेशेदीयं जगतीति विकल्पयन् । दुर्गं ध्यापारयामास कुल्यावृद्ध्या महोदधौ ॥६६॥
 सा प्रतिशामिबाह्वो जगतीं तां महायतिम् । निस्तोर्गमिव^४ तत्पारं पारस्वारमजीगणत् ॥६७॥
 मुहुः प्रचलदुष्टे लवलोत्तमनिलाहृतम् । विलङ्घयनाभयादुच्चैः फूत्कुर्यन्तमिदारवैः ॥६८॥
 धीचिदाहृदिगन्धर्वैः सरस्वतः शीकरोत्करैः । पाद्यं स्वस्यैव तन्वानं मौक्त्विकासनमिभ्रिनः ॥६९॥
 प्रसन्नपशदाक्षमाकान्तविश्वद्वीपमवारकम् । परंरत्नद्रव्यमक्षोभ्यं स्वबलीयानुकारिणम् ॥७०॥
 उत्केन^५ जृम्भिकारम्भैः सापस्मारमिबोल्बणम् । केनाप्यदाषयमापतुं ष्वचिदप्यनवस्थितम् ॥७१॥

पवित्र आशीर्वाद देकर मंगलद्रव्य धारण किये हुए पुरोहितने इस नीचे लिखी हुई ऋचाको पढा ॥६०॥ समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करनेवाले धर्मनायक-तीर्थकर देव सदा जयवन्त रहते हैं इसलिये उनके प्रसादसे तू भी धर्मपूर्वक विजय प्राप्त कर, सबको जीत ॥६१॥ उसी समय पुरोहितने यह भी जोरसे घोषणा की कि हे देव, इस समुद्रमें निवास करनेवाले देव आपके उप-भोग करने योग्य क्षेत्रके भीतर ही रहते हैं इसलिये उन्हें जीतनेके लिये आपका यह समय है ॥६२॥ तदनन्तर कुछ वीर पुरुषोंसे घिरे हुए चक्रवर्ती भरत गङ्गाद्वारकी वेदीपर जा चढे ॥६३॥ चक्रवर्तीने उस गङ्गाद्वारकी वेदीको केवल समुद्रके भीतर प्रवेश करनेका द्वार ही नहीं समझा था किन्तु अपने कार्यकी सिद्धि होनेका भी द्वार समझा था ॥६४॥ मंगल वेपको धारण करने-वाले चक्रवर्तीका उस वेदीपर आरूढ होना विजय-लक्ष्मीके विवाहकी वेदीपर आरूढ होनेके समान बहुत ही अधिक सुसोभित हो रहा था ॥६५॥ यह वेदी मेरे घरके आगनकी वेदी है इस प्रकार कल्पना करते हुए भरतने महासागरपर कृष्ण नदीकी बुद्धिने दृष्टि डाली थी । भावार्थ—भरतने अपने बलकी अधिकतामें गङ्गाकी वेदीको ऐसा समझा था मानो यह हमारे घरके आगनकी ही वेदी है और महासमुद्रको ऐसा माना था मानो यह एक छोटी-सी नहर ही है ॥६६॥ वे उस बड़ी लम्बी वेदीपर इस प्रकार आरूढ हुए थे जैसे अपनी प्रतिज्ञापर ही आरूढ हुए हो और समुद्रको उन्होंने ऐसा माना था जैसे उसके दूसरे किनारे पर ही पहुँच गये हो ॥६७॥ उस वेदीपरसे उन्होंने समुद्र देगा, उस समुद्रमें बारबार तटको उल्लंघन करने-वाली लहरे उठ रही थी, पवन उसका ताडन कर रहा था और वह अपने गभीर शब्दोंमें ऐसा मालूम होता था मानो उल्लंघनके भयसे रो ही रहा हो । तरंगम्पी भुजाओंमें किनारेपर छोड़े हुए रत्न महिन जलके छोटे छोटे कणोंमें वह ऐसा जान पडता था मानो भरतके लिये मोती और अक्षतोंसे मिला हुआ अर्घ ही दे रहा हो । उस समुद्रमें अमंश्यान् शय्य थे, उमने ममस्त द्वीपोंको आप्रान्त कर लिया था, वह पाररहित था, उमका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था और न उमने कोई क्षोभित ही कर पाता था इसलिये वह ठीक भरतकी सेनाके समूहना अनुकरण कर रहा था क्योंकि उममें भी वजाये जानेवाले अमंश्यान् शय्य थे, उमने भी ममस्त द्वीप आप्रान्त कर लिये थे—अपने आधीन बना लिये थे, वह भी अपार था, वह भी दूसरोंके द्वारा अल्लंघनीय तथा क्षोभित करनेके अयोग्य था । वह समुद्र निमी अपम्मार (मृगी)

१ तीर्थकर । २ त्वपालनशेव । ३ वेदिभृत् । ४ रयाद्गमभृत्, ६०, ६०, १० । ५ मद्रगता-पद्मराग्य । ६ 'कृयाया वृत्तिमा मग्नि' । ७ पारगाम । ८ उद्गातिरिडीगिन्दुडि । ९ धो उद्गापेन ।

धरस्माद्बुच्चरद्ब्रह्मणम् अनिमित्तचलाचलम् । धरारण्टतायतम् घति'सद्वृत्तवर्तिनिम् ॥७२॥
 हस्तन्मिय फेनोर्धं ततस्तन्मिय' योचिभि । चलन्तमिय वररोधं माघन्तभिर्ध पूर्णित ॥७३॥
 सरत्नमुत्पगवियं' मुक्तनूत्वारभोकरम् । स्फुरत्तरश्चनिर्गोष' स्फुरन्तमिय भोगिनम् ॥७४॥
 श्रत्यम्बुपानातु'द्विक्तव्रतिसयायमिवाधिबम् । क्षुत्तागीय विकूर्वाण घ्नितानि सट्टनम् ॥७५॥
 'आञ्जनमसङ्करपोतथिश्चलोतस्विरीरसम् । रसातिरेषातुद्गार तन्पानमिय पाल्लृतं ॥७६॥
 निजगम्भीरपातालमहगतापदेशत । अतुप्यन्तमियाम्भोभि आतालुधिवृत्तानाम् ॥७७॥

वे रोगीके समान जान पडता था क्योकि जिस प्रकार अपरमारणा रोगी फेन सहित आती हुई जृम्भिकाओ अर्थात् जमुहाइयोसे व्याकुल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी फेन सहित उठती हुई जृम्भिका अर्थात् लहरोसे व्याकुल था, जिस प्रकार अपस्मारणा रोगी किसीके द्वारा पकड़-कर नहीं रखा जा सकता उसी प्रकार वह समुद्र भी किसीके द्वारा नहीं रोका जा सकता और जिस प्रकार अपस्मारणा रोगी किसी भी जगह स्थिर नहीं रहता इसी प्रकार वह समुद्र भी किसी जगह स्थिर नहीं था—लहरोके कारण चंचल हो रहा था । वह समुद्र आस्मात् ही गम्भीर शब्द करता था, बिना कारण ही चंचल था और बिना कारण ही उसमें आवर्त अर्थात् भवर पडते थे, इसलिये उसकी दशा किसी अन्यन्त भयभीत मनुष्यके समान हो रही थी क्योकि अत्यन्त भयभीत मनुष्य भी अचानक शब्द करने लगता है, चिल्ला उठता है, बिना कारण ही कापने लगता है और बिना कारण ही आवर्त करने लगता है इधर उधर भागने लगता है । वह समुद्र फेन उठनेसे ऐसा जान पडता था मानो हंस ही रहा हो, ज्वार-भाटाओसे ऐसा मालूम होता था मानो लास्य (नृत्य) ही कर रहा हो, लहरोसे ऐसा सुशोभित होता था मानो चल ही रहा हो और हिलनेसे ऐसा दिखाई देता था मानो नक्षमे भूम ही रहा हो अथवा वह समुद्र किसी सर्पके समान जान पडता था क्योकि जिस प्रकार सर्प रत्नसहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी रत्नसहित था, जिस प्रकार सर्पमें उत्कट विष अर्थात् जहर रहता है उसी प्रकार समुद्रमें भी उत्कट विष अर्थात् जल था जिस प्रकार सर्प सू सू आदि फुकारोसे भयकर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सू सू आदि शब्दोसे भयकर था, जिस प्रकार सर्पके देदीप्यमान काचली होती है उसी प्रकार उस समुद्रके भी देदीप्यमान लहरे थी, और जिस प्रकार सर्प चंचल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी चंचल था । अथवा वह समुद्र ऐसा जान पडता था मानो अधिक पानी पीनेसे उसे सर्दी (जुवाम) ही हो गई हो और इसीलिये हजारो शब्दोके वहाने छीके ही से रहा हो । अथवा वह समुद्र किसी आञ्जन अर्थात् बहुत खालेवाले—पेटू-मनुष्य के समान जान पडता था, क्योकि जिस प्रकार आञ्जन मनुष्य बहुत खाता है और बादमें भोजन की अधिवक्ता होनेसे डकार लेता है उसी प्रकार उस समुद्रने भी समस्त नदियोका जल पी लिया था और बादमें जलकी अधिवक्ता होनेसे वह भी शब्दोके वहाने डकारे ले रहा था । वह समुद्र अपने गम्भीर पातालरूपी महाउदरके वहानेसे जलसे कभी तृप्त नहीं होता था और इसी लिये मानो उसने ताल पर्यन्त अपना मुख खोल रखा था । भावार्थ—वह समुद्र किसी ऐसे मनुष्यके समान जान पडता था जो बहुत खानेपर भी तृप्त नहीं होता, क्योकि जिस प्रकार तृप्त नहीं होनेवाला मनुष्य बहुत कुछ खाकर भी तृष्णासे अपना मुख खोले रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी बहुत कुछ जल ग्रहण कर चुबनेपर भी तृष्णासे अपना मुख खोले रहता था—नदियो

१ चञ्चलम् । २ नितराम् अस्थिरस्थितिम् । 'असवृग्बोऽस्थिर इत्यमर । विशेषनिघ्नवर्ग ।

३ नृत्यम् । ४ उताटजलम् । ५ गीजरम् प० । ६ उत्कटपीनसम् 'प्रतिश्यायस्तु पीना' इत्यभिधानात् ।

७ औदरिक्म् । तृप्तिरहितमित्यर्थ । ८-गर्भात्- म० ।

विशा 'रावणमाक्रान्त्याचलप्राह' विभीषणम् । रक्षसामिव सम्पातमतिक्राय' महोदरम् ॥७८॥

वीवीवाहुभिराघ्नन्तम् भ्रजस तदवेदिकाम् । समपादत्वमाहत्य श्रावयन्तमिवात्मनः ॥७९॥

चलद्भिरचलोद्भ्रं कल्लोर्नरतिवर्तितम् । सरिद्युवतिसम्भोगाद् भ्रसम्मान्तमिवात्मनि ॥८०॥

तरङ्गिततनु वृद्धपृथुक व्यथतरङ्गितम् । सरलमतिकान्ताद्ग सप्राहमर्तमोषणम् ॥८१॥

लावण्येऽपि न सम्भोग्य गान्धोर्वेष्यन्वस्त्वितम् । महत्त्वेऽपि हृताक्रोश व्यक्तमेव जलाशयम् ॥८२॥

न चात्य मदिरासद्गो न कोऽपि मदनञ्जर' । तयाप्युद्रिक्त'कन्दर्पम् आरूढमधुविक्रियम् ॥८३॥

का अन्य जल ग्रहण करनेके लिये तत्पर रहता था । वह समुद्र समस्त दिशाओमें व्याप्त होकर शब्द कर रहा था इसलिये 'रावण' था, उसने अनेक पहाड अपने जलके भीतर डुवा लिये ये इसलिये 'अचलप्राह' था । वह सब जीवोंको भय उत्पन्न कराता था इसलिये विभीषण था, अत्यन्त बडा था इसलिये 'अतिक्राय' था और बहुत गहग होनेसे 'महोदर' था इस प्रकार वह ऐसा जान पडता था मानो राक्षसोंका समूह ही ही । वह समुद्र अपनी तरङ्गरूपी भुजाओं के द्वारा किनारेकी वेदीपर निरन्तर आघात करता रहता था इसलिये ऐसा जान पडता था मानो धक्का देकर उसे अपने समर्पादपनेको ही सुना रहा हो । यह पर्वतके समान ऊची उठती हुई लहरोसे किनारेको उल्लघन कर रहा था इसलिये ऐसा जान पडता था मानो नदीरूप स्त्रियोंके साथ सभोग करनेसे अपने आपमें ही नहीं समा रहा हो । उसके शरीरमें अनेक तरंगरूपी सिकुडनें उठ रही थी इसलिये वह वृद्ध पुरुषके समान जान पडता था, (पक्षमें अत्यन्त बडा था) अथवा वह समुद्र किसी पृथुक अर्थात् बालकके समान मालूम होता था (पक्षमें पृथु व अधिक है जल जिसमें ऐसा था) क्योंकि जिम प्रकार बालक पृथिवीपर घुटनोके बल चलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरोके द्वारा पृथिवीपर चल रहा था, जिस प्रकार बालक सरकता है उसी प्रकार वह भी लहरोसे सरकता था, जिस प्रकार बालक अत्यन्त सुन्दर होता है उसी प्रकार वह भी अत्यन्त सुन्दर था । इसके सिवाय वह समुद्र मगरमच्छ आदि जलचरजीवों से सहित था तथा अत्यन्त भयकर था अथवा वह समुद्र स्पष्ट ही जलाशय (ठ और ल में अभेद होनेसे जडाशय) अर्थात् मूर्ख या क्योंकि लावण्य रहनेपर भी वह उपभोग करने योग्य नहीं था जो लावण्य अर्थात् सुन्दरतासे सहित होता है वह उपभोग करने योग्य अवश्य होता है परन्तु समुद्र वंसा नहीं था (पक्षमें लावण्य अर्थात् खारापन होनेसे किसीके पीने योग्य नहीं था) गभीरता होनेपर भी वह स्थिर नहीं था, जो गभीरता अर्थात् घंघंसे सहित होता है वह स्थिर अवश्य रहता है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था (पक्षमें गभीरता अर्थात् गहराई होनेपर भी वह लहरोसे चंचल रहता था) और महत्त्वके रहते हुए भी वह चिरछाता रहता था—गालिया बका करता था, जो महत्त्व अर्थात् बडप्पनसे सहित होता है वह बडा शान्त रहता है, चिल्लाता नहीं है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था (पक्षमें बडा भारी होनेपर भी लहरोके आघातसे शब्द करता रहता था) इन सब कारणोंसे स्पष्ट है कि वह जडानय अवश्य था (पक्षमें जल है आशयमें जिसके अर्थात् जलमें भरा हुआ था) । उस समुद्रके यद्यपि मद्यका सगम नहीं था—मद्यपानका अभाव था तथापि वह आण्ट मधुविनिय था अर्थात् मद्यपानमें उत्पन्न होनेवाले विकार नानाथो धारण कर रहा था, इमी प्रकार यद्यपि उगके काम-ञ्जर नहीं था तथापि वह उद्रिक्त-कदर्प था अर्थात् तीव्र काम-विकारको धारण करनेवाला था । भावायं—इस श्लोकमें श्लेष-

१ रौनीति रावणस्तम् । शब्द क्वन्तमिति यावन् । पक्षे दगास्यम् । २ पर्वतस्थोनास्त्वानम् । पक्षे अक्षपप्राहमिति कञ्चिद् राषास्तम् । ३ भयङ्करम् । पक्षे रावणानुजम् । ४ अतिशय मूर्खम् महान्मिदित्यम् । पक्षे अतिवायमिति कञ्चिदमूरम् । ५ महाबुधिमम् । पक्षे महावर्षमिति रागमम् । ६ उल्लटवामम्, पक्षे उत्पटजसदर्यम् ।

धनाशितभवं^१ पीत्या सुस्वावुसरितो जलम् । गतागतानि शुभंन्तं शन्तोपाश्रिय योधिभि ॥८५॥
 नवीवधुभिरातोष्य वृतरत्नपरिग्रहम् । महाभोगिभिराराध्यं चातुरन्तमिधं^२ प्रभुम् ॥८६॥
 यादोदोर्घातिनिर्घातिं^३ वृरोच्चलितशीघरं । सपतायमियादोपदोपाणंयधिनजंयात् ॥८६॥
 कुलाचलपुस्तम्भजम्बूद्वीपमहोक्त^४ । विनोलरत्ननिर्माणम् एषं सात्तमिथोच्छ्रितम् ॥८७॥
 धनादिमस्तपयन्तम् ऋषिलयायवाहनम् । गभीरशब्दसन्धुभं श्रुतस्कन्धमिवापरम् ॥८८॥
 नित्यप्रवृत्तशब्दत्वाद् द्रव्याधिकनयाभितम् । धीवीनां क्षणभङ्गित्वात् पर्यायनपगोघरम् ॥८९॥
 नित्यानुबद्धतृष्णत्वात् शब्दवज्जलपरिग्रहात्^५ । गुरुणां^६ च तिरस्कारात्^७ विराजानमिवाङ्कम् ॥९०॥

मूलक विरोधाभास अलकार है इसलिये प्रारम्भ-वालमें विरोध मालूम होता है परन्तु बादमें उसका परिहार हो जाता है । परिहार इस प्रकार समभना चाहिये कि वह मद्यके सगमसे रहित होकर मधु अर्थात् पुष्परसकी विक्रिया धारण कर रहा था अथवा मनोहर जलपक्षियो की क्रियाए धारण कर रहा था और वामज्वरसे रहित होकर भी उद्विक्त-न-दर्प था अर्थात् जलके अहकार से सहित था । वह समुद्र किनारेपर आती जाती हुई लहरोसे ऐसा जान पड़ता था मानो जिससे कभी तृप्ति न हो ऐसा नदियोका भीठा जल पीकर लहरो द्वारा सतोपसे गमना-गमन ही कर रहा हो । अथवा वह समुद्र चक्रवर्तीके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार चक्रवर्ती अनेक स्त्रियोके द्वारा सेवित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी नदीरूपी अनेक स्त्रियोके द्वारा सेवित था, जिस प्रकार चक्रवर्तीके पास अनेक रत्नोका परिग्रह रहता है उसी प्रकार उस समुद्रके पास भी अनेक रत्नोका परिग्रह था, जिस प्रकार चक्रवर्ती महाभोगी अर्थात् बड़े बड़े राजाओके द्वारा आराधन करने योग्य होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी महाभोगी अर्थात् बड़े-बड़े सर्पोंके द्वारा आराधन करने योग्य था और जिस प्रकार चक्रवर्ती चारो ओर प्रसिद्ध रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी चारो ओर प्रसिद्ध था-व्याप्त था । जल-जन्तुओके आघातसे डडी हुई और बहुत दूरतक ऊंची उछटी हुई जलकी बूदोसे वह समुद्र ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाकीके समस्त समुद्रोको जीतनेसे अपनी विजय-पताका ही फहरा रहा हो । उस समुद्र-का नीले रगका पानी वायुके वेगसे ऊपरको उठ रहा था जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कुलाचलरूपी बड़े बड़े खभोपर बने हुए जम्बूद्वीपरूपी विशाल घरका नील रत्नोसे बना हुआ एक ऊचा कोट ही हो । अथवा वह समुद्र दूसरे श्रुतस्कन्धके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध आदि अन्त-रहित है उसी प्रकार वह समुद्र भी अन्त-रहित था, जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध समस्त पदार्थोका अवगाहन निरूपण करनेवाला है उसी प्रकार वह समुद्र भी समस्त पदार्थोका अवगाहन-प्रवेशन धारण करनेवाला है, और जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध में गभीर शब्दोकी रचना है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी गम्भीर शब्द होते रहते थे-अथवा वह समुद्र द्रव्याधिक नयका आश्रय लेता हुआ सा जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार द्रव्या-धिक नयसे प्रत्येक पदार्थमें नित्य शब्दकी प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी नित्य शब्द की प्रवृत्ति हो रही थी अर्थात् निरन्तर गभीर शब्द होता रहता था । अथवा उसकी लहरे क्षण-भंगुर थी इसलिये वह पर्यायिको गोचर भी मालूम होता था क्योंकि पर्यायाधिक नय पदार्थोको क्षणभंगुर अर्थात् अमित्य बतलाता है । अथवा वह समुद्र किसी दुष्ट राजाके समान मालूम होता था क्योंकि जिस प्रकार दुष्ट राजा मदा तृष्णासे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मदा तृष्णासे सहित रहता था अर्थात् प्रतिक्षण अनेक नदियोका जल ग्रहण करते रहने

१ अतिशयम् । २ महामयं । ३ मार्चनिक प्रसिद्धमित्ययं । चातुरङ्ग-स०, ६०, अ०, प० ।

४ निर्दुर्ग-स० । ५ महागुह्य । ६ जम्बूद्वीपारत्नम् । ७ गुरुद्रव्याणामप्यकरणम् । ८ कृतिसतराजानम् ।

ससत्त्वमतिगम्भीर भोगिभिर्वृतवेलकम् । सुराजानमिवात्युच्चं वृत्ति मर्यादाया घृतम् ॥६१॥

अनेकमन्तरद्वीपमन्तर्वतिनमात्मन । दुर्गदेवमिवाहायं पातयन्तमलद्रव्यं ॥६२॥

गर्जंश्भिरतिगम्भीर नभोव्याधिभिर्हृजतं । प्रापूपमाणमम्भोभि घनीषं किद्रवरीरिव ॥६३॥

'रटगितंश्चलितं' क्षीभं उत्थितंश्च विवर्तनं । ग्रहाविष्टमिवोज्जृम्भं सध्वान च सघ्नमितम् ॥६४॥

रत्नानुचित्रिततल मुक्ताशकलितारुणम् । प्राहुरप्यासित दिव्यकमुलातोक् च भीषणम् ॥६५॥

नदीन रत्नभूयिष्ठम् अघ्राणं चिरजीवितम् । समुद्रमपि चोन्मुद्रं^{१०} ऋषके^{११} तुमममयम्^{१२} ॥६६॥

पर भी सतुष्ट नहीं होता था, जिस प्रकार दुष्ट राजा जल (जड) अर्थात् मूलं मनुष्योसे घिरा रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी निरन्तर जल अर्थात् पानीसे घिरा रहता था, और जिस प्रकार दुष्ट राजा गुरु अर्थात् पूज्य महापुरुषोका तिरस्कार करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी गुरु अर्थात् भारी वजनदार पदार्थोका तिरस्कार करता रहता था अर्थात् उन्हें डुबोता रहता था । अथवा वह समुद्र किसी उत्तम राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा सत्त्व अर्थात् पराक्रमसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सत्त्व अर्थात् जल जन्तुओ से सहित था, जिस प्रकार उत्तम राजा अत्यन्त गभीर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अत्यन्त गभीर अर्थात् गहरा था, जिस प्रकार उत्तम राजाके समीप अनेक भोगी अर्थात् राजा लोग विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार उस समुद्रकी वेला (तट) पर भी अनेक भोगी अर्थात् सर्प विश्वमान रहते थे, जिस प्रकार उत्तम राजाकी वृत्ति उच्च होती है उसी प्रकार उस समुद्रकी वृत्ति भी उच्च थी अर्थात् उसका जल हवासे ऊचा उठ रहा था और जिस प्रकार उत्तम राजा मर्यादा अर्थात् कुल-परम्परासे आई हुई समीचीन पदतिसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मर्यादा अर्थात् पालीसे सहित था । वह समुद्र अपने मध्यमें रहनेवाले अनेक अन्तर्द्वीपोकी रक्षा कर रहा था वे अन्तर्द्वीप उसके अलघनीय तथा हरण करनेके अयोग्य किलोने समान जान पड़ते थे । वह अतिशय गम्भीर समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो सेवकोके समान निरन्तर घड़ते हुए, गर्जते हुए और आकाशमें फंले हुए मेघोके द्वारा ही जलमें भरा गया हो अथवा वह समुद्र किसी ग्रहाविष्ट अर्थात् भूत लगे हुए मनुष्यके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य जमीनपर रेंगता है, चलता है, क्षुब्ध होता है, ऊचा उछलता है और इधर उधर धूमता है अथवा करवटें बदलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरोसे पृथिवीपर रेंग रहा था, चल रहा था, क्षुब्ध था, ऊचा उछलता और इधर उधर धूमता था अर्थात् कभी इधर लहरता था तो कभी उधर लहरता था, तथा ग्रहाविष्ट मनुष्य जिस प्रकार उज्जृम्भ अर्थात् उठती हुई जमुहाइयोसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उज्जृम्भ अर्थात् उठती हुई लहरोसे सहित था, जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य दाब्द करता है उसी प्रकार समुद्र भी दाब्द कर रहा था और जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य वापता रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी वायुसे वापता रहता था । उस समुद्रका तल भाग रत्नोकी किरणोमे चित्र चित्र हो रहा था, उसका जल मोतियोमे चित्रित था और वह चारो ओर मगरमच्छोसे भरा हुआ था इसलिये वह देखनेमें अच्छा भी लगता था और भयानक भी मालूम होता था । वह समुद्र अनेक रत्नो

१ भूभ्रतारुणं । २ पतनं । ३ उत्थानं । ४ अमर्षं । ५ उज्जृम्भणम् । ६ अग्निशाम हितम् । ६ सतिरुत्थितम् । निस्वसद्गन्तम् । 'अज्ञात्वे निषेधे ष स्वल्पार्थं व्यतिश्रमे । ईषदपे ष गादृश्यं तद्विरदवदपयो ॥' इत्यभिधानात् । ७ आप प्राण यम्य स तम् । पक्षे गतप्राणम् । ८ चिरकालस्थापिनम् । -जीविनम् ४०,५० ४०,५० ६० । ९ मुद्रया सहितम् । १० भूदारहितम् । महान्मिथ्यम् । ११ मयाध्यवितम् । १२ मन् मना मन्तानीनि ममय न ममय अममयस्त मनाहरमिथ्यं ।

अदृष्टपारमक्षोभ्यम् असह्यम्^१मनुस्तरम्^२ । सिद्धातपमिव ध्यवतम्^३ अथ्यवतममृतास्पदम्^४ ॥६७॥
 अचिन्महोपलब्ध्याया^५धृतसन्ध्याभूमिभूमम् । श्रुताप्यतमसारम्भं अचिन्मोलात्तरादिमभि ॥६८॥
 हरिन्मणिप्रनोतसर्षं अचिन्मिन्द्रिग्धं^६शैवलम् । अचिन्मच कौटुकीं कान्ति तन्वानं विद्रमाद्रुं ॥६९॥
 अचिन्मचिन्मिन्द्रिग्धं^६शैवलम् । तारकानिषराकोणं हमन्त जलभुत्ययम् ॥१००॥
 वेलापयन्तसम्^७धृतसर्वरत्नाद्गुणोकरं^८ । अचिन्मिन्द्रिग्धं^६शैवलम् । अचिन्मिन्द्रिग्धं^६शैवलम् ॥१०१॥
 रयाद्रगपाणिर्त्युच्चं सम्भूत रत्नकोटिभि । महानिधिभिन्वापूर्वम् अथ्यवतमकरावरम्^९ ॥१०२॥

से भरा हुआ था इसलिये नदीन अर्थात् दीन नहीं था यह उचित था (पक्षमें 'नदी इन' नदियोका स्वामी था)परन्तु अप्राण अर्थात् प्राण रहित होकर भी चिरजीवित अर्थात् बहुत समय तक जीवित रहनेवाला था, समुद्र अर्थात् मुद्रा सहित होकर भी उन्मुद्र अर्थात् मुद्रा-रहित था और भूपकेतु अर्थात् मछलीरूप पताकासे सहित होकर भी अमन्मथ अर्थात् कामदेव नहीं था यह विरुद्ध बात थी किन्तु नीचे लिखे अनुसार अर्थमें परिवर्तन कर देनेसे कोई विरुद्ध बात नहीं रहती । वह प्राणरहित होनेपर भी चिरजीवित अर्थात् चिरस्थायी रहनेवाला था अथवा चिरकालसे-जल सहित था, समुद्र अर्थात् सागर होकर भी उन्मुद्र अर्थात् उत्कृष्ट आनन्दको देनेवाला था (उद्-उत्कृष्टा मुद्र हर्षं राति-ददातीति उन्मुद्र) और भूपकेतु अर्थात् समुद्र अथवा मछलियोके उत्पातसे सहित होकर भी अमन्मथ अर्थात् काम नहीं था । अथवा वह समुद्र स्पष्ट ही सिद्धालयके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सिद्धालयका पार दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार उस समुद्रका भी पार दिखाई नहीं देता था-दोनों ही अदृष्ट-पार थे,जिस प्रकार सिद्धालय अक्षोभ्य है अर्थात् आकुलता-रहित है उसी प्रकार समुद्र भी अक्षोभ्य था अर्थात् क्षोभित करनेके अयोग्य था उसे कोई गँदला नहीं कर सकता था, जिस प्रकार सिद्धालयका कोई सहार नहीं कर सकता उसी प्रकार उस समूहका भी कोई सहार नहीं कर सकता था, जिस प्रकार सिद्धालय अनुत्तर अर्थात् उत्कृष्ट है उसी प्रकार वह समुद्र भी अनुत्तर अर्थात् तैरनेके अयोग्य था, जिस प्रकार सिद्धालय अव्यक्त अर्थात् अप्रकट है उसी प्रकार वह समुद्र भी अव्यक्त अर्थात् अगम्य था और सिद्धालय जिस प्रकार अमृतास्पद अर्थात् अमृत (मोक्ष)का स्थान है उसी प्रकार वह समुद्र भी अमृत (जल) का स्थान था । कहीं तो वह समुद्र पद्मरागमणियो से सध्या बालके वादलोकी शोभा अथवा सदेह धारण कर रहा था और कहीं नील मणियोकी विरणोसे गाढ अन्धकारका प्रारम्भ करता हुआ सा जान पड़ता था । कहीं हरित मणियोकी कान्तिके प्रसारसे उसमें शेवालका सदेह हो रहा था और कहीं वह मृगाओके अकुरोसे कुकुम की कान्ति फैला रहा था । कहीं सीपोंके सपुट खुल जानेसे उसमें मोती तैर रहे थे और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओके समूहसे भरे हुए आकाशकी ओर हँस ही रहा हो । तथा कहींपर किनारेके समीप ही समस्त रत्नोकी विरणो सहित जलकी छोटी छोटी बूद पड़ रही थी उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशरूपी आगनम इन्द्रधनुषकी रेखा ही लिख रहा हो । इस प्रकार जो ऊँचे तक बरोडो रत्नोसे भरा हुआ था ऐसे उम समद्रको चित्रवर्तनी अपूर्व महानिधिके समान देखा ॥६८-१०२॥

१ अचिन्मथम् । २ न विद्यते उत्तरं श्रेष्ठो मरमात् न तम् । ३ सखिलपीयूषनिवासम् ।
 पक्षे अचिन्मथम् । 'सुधावर्यजगोषमखिलजग्यधोदापग्वन्तरिविषवन्द्यिन्द्रप्रहायदिविजेत्वमृत' इत्यभिधानात् ।
 ४ अथ्यवत- मणिकय । ५ विप्ल । सन्देहविपर्ययत । ६ गमुतापानानारत्नमरीचियुतशीवरं । ७ -सर्वरं
 ८ । ८ मकराक्षयम् ९ ।

दृष्ट्वाप्य तं महाभागः^१ कृत्स्नधीरनिस्वनम् । दृष्ट्वाद्यनुत्तमञ्चको गोप्यदावतपारणवम् ॥१०३॥
 ततोऽग्निमनससिद्धिर्ध्यां कृत्स्नद्वनसस्त्रियः । रयं प्रचोदयेत्युच्चं । प्राजितारमचोदयत् ॥१०४॥
 विमुक्त्वाप्रहृष्टोऽरिः ऊह्यमानो मनोजवं । लवणाद्यौ द्रुत प्रायाद् दानवाप्रायितो रयः ॥१०५॥
 रयो मनोरथान् पूर्वं रयान् पूर्वं मनोरथः । इति मग्नाध्यवेगोऽग्नी रयो वार्धि ध्यगाहन् ॥१०६॥
 जलन्तम्भः प्रमुषतो नृ जलं न स्थलतां गतम् । स्थन्वन् यदधो बाहा जले निन्युः स्थानास्थया ॥१०७॥
 तयं च चक्रवोत्वारः तयं वोच्चं प्रधोरितम्^२ । यया बहिर्जलं पूर्वम् ग्रहो पुष्य रयादग्निः ॥१०८॥
 महद्भिरपि बल्लोलं शोषयमानास्तुरङ्गगमाः । रय निन्युरनायामात् प्रत्युत्तया स विधमः^३ ॥१०९॥
 रयचक्रम्^४ मृत्योर्बाञ्जलतोऽरीड^५ खमुत्सवन् । न्यषाद् घ्वन्नाशुकं जाड्य जलानामोद्गतो गतिः ॥११०॥
 नाङ्गरापस्तुरङ्गगाम् आद्रितः श्रमधर्मितः^६ । क्षालितः खुरवेगोत्थैः केचन शौरुररयाम् ॥१११॥
 क्षणं रयाद्रागसद्गद्गजलमन्वोद्दिषाम्भवत् । व्यर्भावि भविना बर्त्सं चक्रिणामिव सूत्रितम् ॥११२॥
 रयोऽस्थानिमता भूमिं प्रापत्सारथिचोदितः । मनोरथोऽपि ससिद्धिं पुष्यसारथिचोदितः ॥११३॥

तदनन्तर—महानाग्यजाली बुद्धिमान् भरतने गम्भीर शब्द करने हुए उम समुद्रको देखकर, दृष्टि मात्रसे ही उमे गायके खुरके समान तुच्छ ममम् लिया ॥१०३॥ और फिर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये गिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर 'धीवृ ही रथ बढ़ाओ' इस प्रकार सारथिके लिये जोरमे प्रेरणा की ॥१०४॥ जिनकी रास ढीली कर दी गई है और जिनका वेग मनके समान है ऐसे घोड़ोंके द्वारा ले जाया जानेवाला वह रथ लवणममुद्रमें जहाजकी नाईं शीघ्रताके साथ जा रहा था ॥१०५॥ मनोरथमें पहले रथ जाता है अथवा रथसे पहले मनोरथ जाता है इस प्रकार जिसके वेगकी सम्भावना की जा रही है ऐसा वह रथ समुद्रमें बड़े वेगके साथ जा रहा था ॥१०६॥ क्या वह जलन्तम्भिनो विद्यामें यभा दिया गया था अथवा स्थलपनेको ही प्राप्त हो गया था क्योंकि चक्रवर्तिके घोड़े स्थल ममम्कर ही जलमें रथ खींचे लिये जा रहे थे ॥१०७॥ जिन प्रकार जलके बाहर पहियोंका चोत्वार शब्द होता था उसी प्रकार जलके भीतर भी हो रहा था और जिन प्रकार जलके बाहर घोड़े दौड़ते थे उसी प्रकार जलके भीतर भी दौड़ रहे थे, अहा ! चक्रवर्तिका पुष्य भी कैसा आदर्यजनक था ! ॥१०८॥ वे घोड़े बड़ी बड़ी लहरोंसे नीचे जानेपर भी बिना किसी परिश्रमके रथको ले जा रहे थे । उन लहरोंमें उन्हें कुछ डुरा नहीं होता था बल्कि उनका परिश्रम दूर होता जाना था ॥१०९॥ रथके पहियेके आपातमें आनामकी ओर उछलनेवाले जलके समूहने ध्यजाके वस्त्रमें भी जाड्य अर्थात् भारीपन ला दिया था सो ठीक ही है क्योंकि जलका ऐसा ही स्वभाव होता है । भावार्थ—संस्कृत काव्योमें ट और ञ के बीच कोई भेद नहीं माना जाता इसलिये जलानाम् को जगह जडानाम् पढ़कर चतुर्थ चरणका ऐसा अर्थ करना चाहिये कि मूर्ख मनुष्योंका यही स्वभाव होता है कि वे दूरमें भी जाड्य अर्थात् मूर्खता उत्पन्न कर देते हैं ॥११०॥ घोड़ोंके शरीर पर लगाया हुआ अगराग (लेप) परिश्रममें उत्पन्न हुए पानीने गीला नहीं हुआ था केवल सुरोंके वेगमें उठे हुए जलके छोटोंमें ही धुल गया था ॥१११॥ रथके पहियोंके मघट्टनमें क्षण भरके लिये जो समुद्रका जल फटकर दोनों ओर होता जाता था वह ऐसा मालूम होता था मानो आगे होनेवाले मगर आदि चक्रवर्तियोंके लिये मूत्र डालकर मार्ग ही तैयार किया जा रहा हो ॥११२॥ सारथिके द्वारा चलाया हुआ चक्रवर्तिका रथ उनके अभिलषित स्थानपर पहुंच

१ महाभाग ल० । २ सारथिम् । ३ त्यक्त्वाऽनुत्तम् । ४ अग्ररुद्धम् । ५ स्थानमिति बुद्ध्या ।
 ६ अत्रिविगोपाकान्तम् । ७ जनाद् बहिः । स्थाने इत्यर्थः । ८ निचयमाना । ९ गेचनविधिः ।
 १० श्रमहरणकारणम् । ११ मनुर्नाम्नान् । १२ जलमूह । जनात् जडानामिति ध्वनि । १३ स्वैरैः ।

गत्वा कतिपयान्यथो योजनानि रथ प्रभो । स्थितोऽन्तर्जलमाक्रम्य प्रस्ताइव इव वार्धिना ॥११४॥
द्वियड्योजनमागाह्य स्थिते मध्येऽणवै रथे । रयाद्गपानिगराहृष्टो^१ जप्राह किल कार्मुकम् ॥११५॥
स्फुरज्ज्य^२ वज्रकाण्ड तदनुरापोपित यदा । तदा जीवितसन्देहदोलाहृदमभूज्जगत् ॥११६॥
स्फुरन्मौर्वीरवस्तस्य मुहु प्रघ्वानयन् दिश । प्रक्षोभमनयद्गार्ध चलन्तिमिकुलाकुलम् ॥११७॥
सहायं किम^३मुष्याम्विः उत विश्वमिद जगत् । इत्याशङ्क्य क्षण तस्ये तदा नभसि खेचरं ॥११८॥
वक्रैरपि गृणवत्यस्मिन् ऋजुकर्मणि कार्मुके । श्रमोघ सन्दर्धे बाण श्लाघ्य^४ स्यात्कमास्थित ॥११९॥
ग्रह हि भरतो नाम धक्री वृषभनन्दन । मत्सादृभवन्तु^५ मद्भूक्तिवासिनो^६ व्यन्तरामरा ॥१२०॥
इति व्यक्तलिपिन्यासो द्रुतमुख्य इव द्रुतम् । स पत्नी^७ चक्रिणा मुक्त^८ प्राड्मुखीमास्थितो गतिम् ॥१२१॥
जितनि^९र्घातनिर्घोष ध्वनिं कुर्वन्नभस्तलात् । न्यपत्तन्मागधावासे तत्सैन्य क्षोभमानयन् ॥१२२॥
किमेव क्षुभितोऽभोधि कल्पात्पवनाहत । निर्घातं किंस्विदुध्वान्तो भूमिकम्पो न जम्भते ॥१२३॥
इत्याकुला^{१०}बुलधियः तत्रिकायोपगा सुरा । परिवव्रुष्येत्येन सप्रद्धा मागध प्रभुम् ॥१२४॥
देव दोष शर कौर्षि पतितोऽस्मत्सभाङ्गणे । तेनाथ प्रकृत^{११} क्षोभो न किञ्चित्कारणान्तरम् ॥१२५॥

गया और पुण्यरूपी सारथिके द्वारा प्रेरित हुआ उनका मनोरथ भी सफलताको प्राप्त हो गया ॥११३॥ महाराज भरतका रथ समुद्रमें कुछ योजन जाकर जलके भीतर ही खडा हो गया मानो समुद्रने ऊपरकी ओर बढकर उसके थोडे ही थाम लिये हो ॥११४॥ जब वह रथ समुद्र के भीतर वारह योजन चलकर खडा हो गया तब चक्रवर्तिने कुछ कुपित होकर धनुष उठाया ॥११५॥ जिसकी प्रत्यचा (डोरी) स्फुरायमान है और काण्ड वज्रके समान है ऐसा वह धनुष जिस समय चक्रवर्तिने प्रत्यचासे युक्त किया था उसी समय यह जगत् अपने जीवित रहनेके सदेह रूपी भूलापर आरुढ हो गया था अर्थात् समस्त ससारको अपने जीवित रहनेका सदेह हो गया था ॥११६॥ समस्त दिशाओको वार-वार शब्दायमान करते हुए चक्रवर्तिके धनुषकी स्फुरायमान प्रत्यचाके शब्दने डधर-डधर भागते हुए मच्छोके समूहसे भरे हुए समुद्रको भी क्षोभित कर दिया था ॥११७॥ क्या यह चक्रवर्ती इस समुद्रका सहार करना चाहता है अथवा समस्त ससारका ? इस प्रकार आकाश वर विद्याधर लोग उस समय क्षण भरके लिये आकाशमें खडे हो गये थे ॥११८॥ जो टेढा होकर भी गुणवान् (पक्षमें डोरीसे सहित) और सरल कार्य करनेवाला था (पक्षमें सीधा बाण छोडनेवाला था) ऐसे उस धनुषपर चक्रवर्तिने प्रदसनीय-योग्य आमनने खडे होकर वभी व्यर्थ न जानेवाला अमोघ नामका बाण रसा ॥११९॥ 'मं वृषभदेवका पुत्र भरत नामका चक्रवर्ती हूँ इसलिये मेरे उपभोगके योग्य क्षेत्रमें रहनेवाले सब व्यन्तर देव मेरे अधीन हो इस प्रकार जिसपर स्पष्ट अक्षर लिखे हुए है ऐसा हुआ वह चक्रवर्ती के द्वारा चलाया हुआ बाण मुख्य दूतकी तरह पूर्व दिशाकी ओर मुख कर चला ॥१२०-१२१॥ और जिम्ने वज्रपातके शब्दको जीत लिया है ऐसा भारी शब्द करता हुआ तथा मागध देवकी मेनामें क्षोभ उत्पन्न करता हुआ वह बाण आकाश-तलमें मागध देवके निवासस्थानमें जा पडा ॥१२२॥ क्या यह यत्नान् काल्ये वायुमें ताडित हुआ समुद्र ही क्षोभको प्राप्त हुआ है ? अथवा जोगमें पाड करना हुआ वज्र पडा है ? अथवा भूमिपर ही हो रहा है ? इस प्रकार जिनकी बुद्धि अथवा व्याकुल हो रही है ऐसे उमके गमीप रहनेवाले व्यन्तरदेव तैयार होकर मागध देवके पाग धापे और उगे घेरकर खडे हो गये ॥१२३-१२४॥ हे देव, हमारे सभा-

१ व्रतमप्ये । २ अर्धवर्ष्ये । ३ वृद्ध । ४ स्फुरन्ती ज्या मौर्वी यय स तम् । ५ चक्रिण ।

६ स्यात्कमास्थितम् । ७ मन्दीना भवन्तु । ८ मय क्षेत्रवागिन इत्यर्थे । ९ बाण ।

१० वृषभदेवकी । ११ अग्नि । १२ अथावृषभदेव । १३ विहित ।

येनाय प्रहित पत्नी नाकिना दानवने वा । तस्य कर्तुं प्रतीकारमिमे सज्जा वयं प्रभो ॥१२६॥
 इत्यारक्षिभर्तस्तूर्णम् एव विहापित प्रभु । अलमाध्वं भटातापं इत्युच्चं प्रत्युवाच तान् ॥१२७॥
 मूय तं एव मदप्राप्त्या सोऽहमेवास्मि मागध । श्रुतपूर्वमिदं किं व सोऽपूर्वो मयेत्यरि ॥१२८॥
 विभति यः पुमान् प्राणान् परिभूतिमलीमसान् । न गुणतिद्वयमात्रेण पुमानेयं प्रतीयते ॥१२९॥
 सच्चिरपुरुषो वास्तु चञ्चापुष्टयं एव च^१ । यो विनापि गुणं पौलं^२ नाम्नेव पुष्टयायते ॥१३०॥
 स पुमान् यः पुनीते स्व कुल जन्म च पौष्ट्यं । नरद्वयो जनो यस्तु तस्यास्त्यभयनिर्भुवि ॥१३१॥
 विजिगीषुतया देवा^३ वयं नेच्छाविहारत^४ । तपोऽरिर्विजयादेव सम्पदस्तु सदापि न ॥१३२॥
 बस्तुवाहनराज्याद्गणं श्राराधयति यः परम् । परनोषोणमंददयं^५ तस्य मन्ये विदम्बयन् ॥१३३॥
 शरदाली प्रभु कोऽपि मतोज्य^६ धनमौत्सृजति । धनायतोऽज्यं वास्याणि निपन प्रयत्नं^७ सतम् ॥१३४॥
 विचूर्जनं शर तावत् कोपानो प्रयमेव्यनम् । करवाणोदमेवास्तु^८ 'तनुशान्कं'पेव्यनम्^९ ॥१३५॥

भयनके आगन्तमें कोई देदीप्यमान बाण आकर पड़ा है उसीमे यह क्षोभ हुआ है इसका दूसरा कारण नहीं है ॥१२५॥ हे प्रभो, जिम किसी देव अथवा दानवने यह बाण छोडा है हम मर लोग उसका प्रतिकार करनेके लिये तैयार हैं ॥१२६॥ इस प्रकार गदा करनेवाले वीर योद्धाओं ने धीघ्र ही आकर अपने स्वामी मागध देवमे निवेदन किया और मागध देवने भी बड़े जोरमे उन्हें उत्तर दिया कि चुप रहो, इस प्रकार वीर बाक्योंमे कुछ लाभ नहीं है ॥१२७॥ तुम लोग वे ही मेरे अधीन रहनेवाके देव हो और मैं भी वही मागध देव हूँ, क्या मुझे कभी पहले अपना शत्रु सहन हुआ है ? यह बात तुम लोगोने पहले भी कभी सुनी है ? ॥१२८॥ जो पुरुष परामर्श से मलिन हुए अपने प्राणोंको धारण करता है वह गुणोमे पुष्प नहीं कहलाता किन्तु केवल लिङ्ग से ही पुरुष कहलाता है ॥१२९॥ जो पुरुष, पुष्पोंमें पाये जानेवाले गुणोंके बिना केवल नाम से ही पुरुष बनना चाहता है वह या तो चित्रमें लिखा हुआ पुरुष है अथवा तण काष्ठ वगैरहसे बना हुआ पुरुष है ॥१३०॥ जो अपने पराक्रमसे अपने कुल और जन्मको पवित्र करता है वास्तवमें वही पुरुष कहलाता है, इससे विपरीत जो मनुष्य मूठमूठ ही अपनेको वीर कहता है पृथिवीपर उरका जन्म न लेना ही अच्छा है ॥१३१॥ हम लोग शत्रुओंको जीतनेमे ही 'देव' कहलाते है, इच्छानुसार जहाँ तहाँ विहार करने मायमे देव नहीं कहलाते इमर्ग्ये हम लोगोकी सपत्ति सदा शत्रुओंको विजय करने मानसे ही प्राप्त हो ॥१३२॥ जो मनुष्य रत्न आदि वस्तु, हाथी घोडे आदि बाहन और छत्र चमर आदि राज्यके चिह्न देवर किसी दूसरेकी आराधनासेवा करता है उसका ऐश्वर्य दूसरोके उपभोगके लिये हो और मैं ऐसे ऐश्वर्यको केवल विदम्बयना समझता हूँ ॥१३३॥ बाण चलानेवाला यह कोई राजा मुझमे धन चाहता है सो इसके लिये मैं युद्धके साथ माघ निधन अर्थात् मृत्यु दूगा ॥१३४॥ मरने पहले मैं इस बाण को चूर कर अपने शोधरुपी अग्निका पहला ईंधन बनाऊगा, यही बाण अपने छोटे छोटे टुकड़ों

१ प्रभो वयम् ४०, ५०, ६० । २ अष्टारविभर्त । ३ तूर्णो निष्कृत । ४ त पूर्वमिन् विद्यमाना एव । ५ परिभव । ६ तृणपुरुष । 'चञ्चा'अत्रादिनिमाग चञ्चा तु तृणशूरे', इयनिधानात् । करिवनमवायमाश्रिय पुन पुष्प शब्दप्रयोग । ७ वा ल०, य०, अ०, प०, म०, द० इ० । ८ पुण्यमम्बाधिनि । ९ अनूत्सृजति । 'नद्रो नि गाणे इति अनिप्रयवान् । १० दीप्यन्ति विजिगीषुतयानि देवा । ११ स्वैरविहारत । कौडविहारत इति भाव । १२ परमागिभ्या इति । १३ अम्भत् । १४ प्रथमं २०, ३०, ल०, अ०, प०, य० । युद्धं । 'युद्धमावाचन जय प्रथमं प्रविशाम्' इयनिधानात् । १५ अन्वगतं (चूर्णित्तुगरीरैर्नै) । 'तनुगरीरगतं । १६ मधुगाम् अग्निशानतम् ।

साक्षेपमिति सरम्भाद् डवीर्षं गिरमूर्जिताम् । धरतीद् वशनज्योत्सनां संहरन्माघां वर ॥१३६॥
 ततस्तमूचुरभ्यर्णां सुरा दृष्टपरम्परा । प्रभु शमयितुं श्रोधाद् विद्यावृद्धं विभो^१ स्थिति ॥१३७॥
 यथार्थं वरमर्थञ्च^२ मितञ्च बहुधिरस्तरम् । अनाकुलञ्च गम्भीर "नाधिपामीदृश यच ॥१३८॥
 सत्य परिभव सोढुम अशक्यो मानशालिनाम् । बलवद्विबिरोधस्तु स्वपरामभवकारणम् ॥१३९॥
 सत्यमेव यशो रक्ष्य प्राणैरपि वरं रपि । तत् प्रभुमनाधित्य कथ तभ्येत पीधनं ॥१४०॥
 अलव्यभायो लक्ष्यार्थपरिरक्षणमित्यपि । ह्यमेतत् सुखालम्ब्य जिगीषोनाश्रय विना ॥१४१॥
 बलिनामपि सन्त्येव बलीयासो मनस्विनः । बलवानहमस्मीति नोत्सेवतव्यमत परम् ॥१४२॥
 न किञ्चिदप्यनालोच्य विधेयं सिद्धिकाम्यता^३ । तत शर कृतस्त्योऽप्य किमीयो^४ वेति मृग्यताम् ॥१४३॥
 श्रुतञ्च बहुशोऽस्माभि आत्नीय^५ पुष्कल यच । जिनाश्चक्रवरंस्साध^६ वत्स्यन्तीहेति भारते ॥१४४॥
 नून चक्रिण एवाप जयाशसि शरागम । धूतान्धतमसोद्योत सम्भाव्योऽन्यत्र कि रवे^७ ॥१४५॥
 अथवा खलु^८ सशय्य चक्रपाणेरय जार । ध्यनक्ति व्यक्तमेवं ११तन्नामाक्षरमालिका ॥१४६॥

से मेरी क्रोधरूपी अग्निको प्रज्वलित करनेवाला हो ॥१३५॥ इस प्रकार वह मागध देव क्रोध से तिरस्कारके साथ साथ बठोर वचन कहकर दातुकी कान्तिको सकुचित करता हुआ जब चुप हो रहा ॥१३६॥ तब कुल-परम्पराको देखने वाले समीपवर्ती देव उसका क्रोध शमन करनेके लिये उससे कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोगोकी स्थिति विद्याकी अपेक्षा वृद्ध हुए मनुष्योसे ही होती है, भावार्थ—जो मनुष्य विद्यावृद्ध अर्थात् विद्याकी अपेक्षा बड़े है उन्हींसे राजा लोगोकी भयादा स्थिर रहती है किन्तु जो मनुष्य केवल अवस्थासे बड़े है उनसे कुछ लाभ नहीं होता ॥१३७॥ उन देवोंने जो वचन कहे थे वे समयके अनुकूल थे, अर्थसे भरे हुए थे, परिमित थे, अर्थकी अपेक्षा बहुत विस्तारवाले थे, आकुलता-रहित थे और गभीर थे सो ठीक ही है क्योंकि मूर्खोंके ऐसे वचन कभी नहीं निकलते हैं ॥१३८॥ उन देवोंने कहा कि हे प्रभो, यह ठीक है कि अभिमानी मनुष्योको अपना पराभव सहन नहीं हो सकता है परन्तु बलवान् पुरुषोके साथ विरोध करना भी तो अपने पराभवका कारण है ॥१३९॥ यह बिलकुल ठीक है कि अपने प्राण अथवा धन देकर भी यदाकी रक्षा करनी चाहिये परन्तु वह यश किसी समयं पुष्टपवा आश्रय लिये विना बुद्धिमान् मनुष्योको किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? ॥१४०॥ प्राप्त नहीं हुई वस्तुका प्राप्त होना और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना ये दोनों ही कार्यं किमी विजिगीषु राजाके आश्रयके विना सुखपूर्वक प्राप्त नहीं हो सकते ॥१४१॥ हे प्रभो, बलवान् मनुष्योकी अपेक्षा और भी अधिक बलवान् तथा बुद्धिमान् है इसलिये मैं बलवान् हूँ इन प्रकार यमो गर्व नहीं करना चाहिये ॥१४२॥ सिद्धि अर्थात् सफलताकी इच्छा करनेवाले पुरषको विना विचारे कुछ भी कार्यं नहीं करना चाहिये इसलिये यह वाण कहासे आया है ? और किसका है ? पहले इस बातकी खोज करनी चाहिये ॥१४३॥ इस भारतवर्षमें चक्र-वर्तियोके माय तीर्थं वर निवास करेंगे, अवतार लगे ऐसे आप्त पुरषोके यथार्थ वचन हम लोगो ने अनेक बार सुने हैं ॥१४४॥ विजयको मूर्चित करनेवाला यह वाण अवश्य ही चक्रवर्तीका ही होगा क्योंकि गघन अन्धकारको नष्ट करनेवाला प्रकाश क्या मूर्खके मिषाय किसी अन्य वस्तु में भी भभव हो सकता है ? अर्थात् नहीं ॥१४५॥ अथवा इन्म विषयमें सशय्य करना व्यर्थ है । यह वाण चक्रवर्तीका ही है क्योंकि इमपर सुदे हुए नामके अक्षरोकी माला साफ साफ ही

१ प्रभा स्थिति विद्यावृद्धं भवति हि । २ प्रभा स० । ३ यथावन्मर्त्यं च ६०, ६०, अ०, ७०, ग०, ६० । ४ अभिलषणीयम् । ५ बुद्धिहीनानाम् । ६ गिद्धि वाञ्छना । ७ वन्य सम्बन्धि । ८ विवायताम् । ९ आप्तगन्धि । १० रवि विवर्ग्यं । ११ शरा मा कार्पा । १२ चक्रिनामाक्षर ।

तदेन शरमभ्यर्च्यं गन्धमाल्याक्षनाविनि । पूज्याद्यैव विभोराज्ञा गत्वास्मानि शरार्पणा ॥१४७॥
 मा गा मागध वैचित्यं कार्ष्णमेतद् विनश्चिन्तु । न युक्त्वं तत्प्रतीपत्वं^१ तव तद्देशवाग्निं^२ ॥१४८॥
 तद्वत् देव सरभ्यं^३ तत्प्रातीप्यं^४ न शान्तये । महत् सतिबोधस्वं^५ च प्रतीप तरन् सुखी ॥१४९॥
 बलवाननुवर्षश्चेद् अनुनेयोग्यं चक्रमथ । महत्सु वैतमो^६ वृत्तिसु ग्रामनन्त्यविपत्करोम^७ ॥१५०॥
 इहामुत्र च जग्नुनाम् उग्रप्रपूज्यपूजनम् । ताम् तं वानुवृष्णानि पूज्यपूजाव्यतिथम् ॥१५१॥
 इति तद्वचनात्किञ्चित् प्रबुद्ध इव^८ तत्क्षणम् । अज्ञातमेवमेतत्पथाद् इत्यसौ प्रत्यपद्यन्^९ ॥१५२॥
 ससम्भ्रममिवास्थानूत् चित्तं किञ्चित्ममाध्वसम् । माशङ्कमिव^{१०} मोद्रेण प्रबुद्धमिव च क्षणम् ॥१५३॥
 तत् प्रसेदुषी^{११} तस्य नचिरादेव^{१२} शोमुषी । पूर्वापर व्यलोकिष्ट कोपापायान् प्रशोमुषी^{१३} ॥१५४॥
 मोक्ष्य चक्रनृतामाद्यो भरतोऽज्ञतद्व्यपज्ञासन । प्रनोस्य^{१४} सर्वथास्मानि अनुनेयदत्त सादरम् ॥१५५॥
 चक्रिव चरमाद्गत्य पुनत्वं च जगद्गुरो । इत्यस्य पूज्यमेवंक किं पुनस्तत्समुच्चिनम् ॥१५६॥
 इति निदिच्छत्य^{१५} सम्भ्रान्तं अनुयात सुरीक्षतं । सहसा चक्षिण द्रष्टुमुच्चवात् स मागध ॥१५७॥

चक्रवर्तीको प्रबुद्ध कर रही है ॥१४८॥ उमलिये गन्धमागा अन्न आदिमे डम ब्राणकी पूजा कर हम ऋगोको आज ही बूट जाकर उनका यह ज्ञान उन्ह अर्पण कर देना चाहिये और आज ही उनकी आज्ञा मान्य करनी चाहिये ॥१४७॥ हे मागध, आप जमी प्रनागके विकारको प्राप्त मन हुआ जिये, और हम ऋगोके द्वारा कहे हुए डम कार्यका अवश्य ही निश्चय कीजिये, क्योंकि उनके देशमें रहनेवाचे आपको उनके साथ विगोत्र करना उचित नहीं है ॥१४८॥ उमलिये हे देव, रोध करना व्यर्थ है, चक्रवर्तीके साथ वैर करनेमे कुछ शान्ति नहीं होगी क्योंकि नदीके बडे भारी प्रवाहके प्रतिकूल तरनेवागा कौन मुनी हो सकता है ? क्या कोई नहीं ॥१४९॥ यदि बलवान् मनुष्यको अनुकूल बनाये रखना चाहिये यह नीति है तो चक्रवर्तीको आज ही प्रमत्त करना चाहिये, क्योंकि बडे पुण्योके विषयमें बँतके समान नम् वृत्ति ही दुःख दूर करनेवाली है ऐसा विद्वान् लोग मानने है ॥१५०॥ पूज्य मनुष्योकी पूजा करनेमे डम लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकोंमें जीवोकी उत्पत्ति होती है और पूज्य पुण्योकी पूजा का उल्लंघन अर्थात् अनादर करनेमे दोनों ही लोकोंमें पाप बन्ध होता है ॥१५१॥ डम प्रकार उन देवोके वचनोंमे जिने उमी समय कुछ कुछ योग उत्पन्न हुआ है ऐसे उन मागध देवने-मुझे यह हाल मालूम नहीं था यह कहने हुए उनसे वचन स्वीकार कर लिये ॥१५२॥ उस समय उमसे चित्तमें कुछ घमडाहट, कुछ भय, कुछ आशंका, कुछ उद्वेग और कुछ प्रबोध-सा उत्पन्न हो रहा था ॥१५३॥ तदनन्तर थोडी ही देरमें निर्मल हृद् और रोधके नष्ट हो जानेमे शान्त हुई उमकी बुद्धिने आगे पीछेका मत्र हार देव लिया ॥१५४॥ यह वही चक्रवर्तियोंमें पहला चक्रवर्ती भग्न है जिसकी कि आज्ञाका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, हम ऋगोको हरेक प्रवारमे इसकी पूजा करनी चाहिये और आदर सहित इसकी आज्ञा माननी चाहिये ॥१५५॥ यह चक्रवर्ती है, चरमगरीरी है और जगद्गुरु भगवान् वृषभदेवता पुत्र है, इन तीनोंमेंमे एक एक गुण ही पूज्य होता है फिर जिसमें तीनोंका समुदाय है उमकी तो बात ही क्या कहनी है ? ॥१५६॥ डम प्रकार निश्चय कर वह मागध देव शीघ्र ही चक्रवर्तीको देखनेके लिये आकाश-मार्गमे चला, उस समय सन्ममको प्राप्त हुए अनेक अच्छे अच्छे देव उमके पीछे पीछे

१ चित्ताविकारम् । २ चक्रवर्तिपूजकम् । ३-वृत्तिनं न० । ४ सरभ्य मा कार्ष्णं । ५ प्रातिवृष्णम् । ६ प्रवाहस्य । ७ वैतममभ्यन्निनोम् । अनुकूलतामिदं । ८ पुत्र न० । ९ जनी । १० एव । ११ अनुमेने । १२ इव अवपागने । १३ प्राप्रवती । १४ अपकनेनैव । १५ उपागवता । १६ पूज्य । मागधिक, मन्वाद्यप्रमातव । १७ मन्मवर्त्ति ।

खमुग्मणितिरीटाशुरचितेन्द्रशरारसनम् । क्षणेनोत्लङ्घय सम्प्रापत् तं देशं यत्र चक्रभृत् ॥१५८॥
 पुरोधायां शरं रत्नपटले सुनिवेशितम् । मागधः प्रभुमानसीद् श्रापं स्वीकुरु मामिति ॥१५९॥
 चक्रोत्तिसागे भद्र यन्नायामोज्ज्वलितकाः । महान्तमपराधं न त्व क्षमस्वायितो मुहुः ॥१६०॥
 घुम्पत्पादरज स्पृशाद् वाधिरेव न केवलम् । पूता दयमपि श्रोमन् त्वत्पादाभ्युज्जतेवया ॥१६१॥
 रत्नान्यमुन्वयनार्थाणि स्वर्गोऽप्यसुलभानि च । श्रापे निधीनामाघातुं सोपयोगानि सन्तु ते ॥१६२॥
 हारोज्ज्वलितरोचिष्णुः श्रवाराहं रशुचितजं । श्रवणद्विपसम्भूतः दृष्यो मुषताफलैर्जुः ॥१६३॥
 तवं वक्ष स्थलादलेपाद् उपेयां दुपहारताम् । स्फुरन्ती कण्डले चामू फणासङ्गात्पवित्रताम् ॥१६४॥
 इत्यस्मै कण्डले दिव्ये हारं च विततार सः । श्रैलोक्यसारसन्दोहमिवैकध्वं मुपागतम् ॥१६५॥
 रत्नैश्चाभ्यर्च्य रत्नेशं मागधः प्रीतमानसः । प्रभोरवात्सलकारः तन्मतात् स्वमघात् पदम् ॥१६६॥
 अय तत्रस्य एवाग्निं सान्त्वित्वा विलोकयन् । प्रभुर्विसिस्मयो किञ्चिद् बह्वाश्चर्यो हि धारिणिः ॥१६७॥
 ततः कुतूहलाद् वाधिं पदपन्तं घूर्णतः पतिम् । तमित्युवाच दन्तादासुमनोमञ्जरीः किरन् ॥१६८॥

पृथ्वीवृत्तम्

अयं जलविह्वलत्तरलवीचिबाहुद्वत्स्फुरन्मणिगणार्चनो ध्वनदसङ्ख्यशाङ्खाकुलः ।
 तवाधिभिव संविभिरसुरनुबेलमुच्चैर्नन्दन् मरुद्धतजलानको दिशतु शशब्दानन्दधुम् ॥१६९॥

जा रहे थे ॥१५७॥ देदीप्यमान मणियोसे जडे हुए मुकुटकी किण्णोसे जिसमे इन्द्रधनुष
 बन रहा है ऐसे आकाशको क्षण भरमे उल्लघन कर वह मागध देव जहा चक्रवर्ती था उस स्थान
 पर जा पहुँचा ॥१५८॥ रत्नके पिंढारेमे रखे हुए वाणको सामने रखकर मागध देवने भरत
 के लिये नमस्कार किया और कहा कि हे आर्य, मुझे स्वीकार कीजिये—अपना ही समझिये
 ॥१५९॥ हे भद्र, हम अज्ञानी लोग चक्र उत्पन्न होनेके समय ही नहीं आये सो आप हमारे इस
 भारी अपराधको क्षमा कर दीजिये, हम वार वार प्रार्थना करते है ॥१६०॥ हे श्रीमन्, आपके
 चरणोकी धूलिके स्पर्शसे केवल यह समुद्र ही पवित्र नहीं हुआ है किन्तु आपके चरणकमलोकी
 सेवा करनेसे हम लोग भी पवित्र हो गये है ॥१६१॥ हे प्रभो, यद्यपि ये रत्न अमूल्य है और
 स्वर्गमें भी, दुर्लभ है तथापि आपकी निधियोके नीचे रखनेके काम आवे ॥१६२॥ यह अतिशय
 देदीप्यमान तथा सूर, सीप, वास और हाथीमें उत्पन्न न होनेवाले दिव्य-मोतियोसे गुथा हुआ
 हार आपके वक्षस्थलके आलिंगनसे पूज्यताको प्राप्त हो तथा ये देदीप्यमान—चमकते हुए
 दोनो कुण्डल आपके कानोंकी सगतिसे पवित्रताको प्राप्त हो ॥१६३—१६४॥ इस प्रकार
 उग्र मागध देवने एकरूपताको प्राप्त हुए तीनो लोकोकी सार वस्तुओंके समुदायके समान
 मुशोभित होनेवाला हार और दोनो दिव्य कुण्डल भरतके लिये समर्पित किये ॥१६५॥
 तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है ऐसे मागध देवने अनेक प्रकारके रत्नोसे रत्नो
 के स्वामी भरत चक्रवर्तीकी पूजा की और फिर उनसे आदर-सत्कार पाकर उन्हीकी समतिसे
 वह अपने स्थानपर चत्र गया ॥१६६॥

श्रमुष्य जलमुत्पन्नद्वागणमेतदालक्ष्यते शशाङ्कवरबोमलच्छविभरातन शीकरं ।
 प्रहासामिव बिम्बप्रपरिचयाय विदम्बदधत् तितान्तं चिब चातमन प्रतिदिश यतो नापश ॥१७०॥
 क्वचित्सुकृदितशुभितपौकिनकतत सनार जभो जयत्वलिमलीमन्न मकरमीनरादिश्रितम् ।
 क्वचित्सलिलमस्य भोगिकुलं सद्गुल सूत्रत नरेन्द्रकुलमुत्तमस्थितिगिणीपनीबोदभटम् ॥१७१॥
 इतो विद्यति ग्राह्यगमम्बु शरदम्बुदाच्छच्छवि स्रुत हिमवतोऽमुत्तमश्च सुरम पय संन्यवम् ।
 तथापि न जलागमेन धृतिरस्य पौरुष्यते घृष न अतसत्प्रहृष्टिह जलागमो घ्रायति ॥१७२॥

चसन्ततिलकावृत्तम्

व्याप्योदर चलवलाचलसन्निकासा पुत्रा इवाम्य तिमय पयसा प्रपुष्टा ।
 वल्लोलकाश्च परिमारहिता समन्ताद् अग्योग्यघट्टनपरा सममावसन्ति ॥१७३॥

रूपी भुजाओके द्वारा धारण किये हुए देदीप्यमान मणियोंके समूह ही जिनकी पूजाकी सामग्री है, जो शब्द करते हुए असम्यात शस्त्रोमे आवृत्त है, जो प्रयेक प्रेङ्गके माय जोरसे शब्द कर रहा है, वायुके द्वारा कपित हुआ जड़ ही जिनके नगाटे हैं और जो इन सभसे ऐसा जान पड़ता है मानो आपके लिये अर्थ ही देना चाहता हो ऐसा यह समुद्र मत्स्य आपके लिये आनन्द देवे ॥१६९॥ आकाशकी ओर उछलता हुआ और चन्द्रमाकी किरणोंके समान जोमल कान्तिवाटे जलके छोटे छोटे छींटोसे व्याप्त हुआ इन समुद्रका यह जल ऐसा जान पड़ता है मानो दिशाम्पी म्निषों के साथ परिचय करनेके लिये चारों ओरसे हाम्य ही कर रहा हो अथवा अपना यद्य वाटकर प्रत्येक दिशामें फैलना ही चाहता हो ॥१७०॥ खुशी हुई नीपाके मोनियोसे व्याप्त हुआ, भूमरके समान वाग और मकर मीन, मगर-मच्छ आदि जड़-जन्तुओंकी राशि-समूहमें भग हुआ यह समुद्रका जल वही ताराओ महित, भूमरके नमान ध्याम और मकर मीन आदि राशिषों में भरे हुए आकाशकी जीतना है तो वही राजाओंके कुलको जीतना चाहता है क्योंकि तिन प्रकार राजाओंका कुल भोगी अर्थात् राजाओंके समूहमें व्याप्त रहना है उन्नी प्रकार यह जड़ भी भोगी अर्थान् सर्पोंके समूहमें व्याप्त है, जिन प्रकार राजाओंका कुल सूत्रत अर्थात् अयन्त उन्वृष्ट होता है उन्नी प्रकार यह जल भी सूत्रत अर्थान् अत्यन्त ऊँचा है, जिन प्रकार राजाओंका कुल उत्तम स्थिति अर्थान् मर्यादासे सहित होता है उन्नी प्रकार यह जड़ भी उत्तम स्थिति अर्थान् अर्वाधि (हृद्) में सहित है, और राजाओंका कुल जिन प्रकार उद्भूत अर्थान् उत्कृष्ट योद्धाओंसे सहित होता है उन्नी प्रकार यह जल भी उद्भूत अर्थान् प्रशस्त है ॥१७१॥ इधर हिमवान् पर्वत से निकला हुआ तथा शरदश्चतुर्वे वादलोके समान स्वच्छ कान्तिना धारण करनेवाया गङ्गा नदीका जल प्रवेश कर रहा है और उस ओर सिन्धु नदीका भीठा जल प्रवेश कर रहा है, फिर भी जलके आनेसे उमवा मनोप पूरा नहीं होता है, मो ठीक ही है क्योंकि जलाशय (जिसके बीचमें जल है, पक्षमें जल आगयवाग-मूर्धं) जल (पक्षमें जल-मूर्धं) के मग्रहमें कभी भी मनुष्ट नहीं होना है । भावायं—जिस प्रकार जलाशय अर्थान् मूर्धं मनुष्य जल मग्रह अर्थान् मूर्धं मनुष्योंके सग्रहमें सतुष्ट नहीं होना उन्नी प्रकार जलाशय अर्थान् जग्मे नरा हुआ समुद्र या तालाव जल-मग्रह अर्थान् पानीके मग्रह करनेमें सतुष्ट नहीं होता ॥१७२॥ इस समुद्रके उदर अर्थान् मध्यभाग अथवा पेटमें व्याप्त होकर पय अर्थान् जल अथवा दूधमें अयन्त पुष्ट हुए तथा चलते हुए कुलाचरोंके समान बड़े बड़े इसके पुत्रोंके समान मारम ल और प्रमाण रहित

१ विष्णोरितुमिच्छत् । २ मरुमूह पयं भागिण्यम् । ३ सिन्धुनदागर्वाधि । ४ जलाशय मनुष्यदिश । ५ श्रावति तु यति । ६ तृप्तौ । -६ भावियन्ति सः, ६० ।

आपो धन धृतरसाः सरितोऽस्य वाराः पुत्रीयिता^१ जलचराः सिकताश्च रत्नम् ।
 इत्थं विभूति^२ त्वदुल्ललितो विचित्र धत्ते महोदधिरिति प्रथि^३मानमेवः ॥१७४॥
 निःशवासधूममलिनाः फणमण्डलास्तः^४ सुव्य^५क्तरत्नश्चयः परितो भ्रमन्तः ।
 व्यापच्छ्रमानतनवो^६ शपितं^७ रकस्माद् अत्रोल्मुकश्रि^८धमनी दधते फणीन्द्राः ॥१७५॥
 पादरथं जलनिधिः शिशिरैरपीन्दोः श्वास्युश्यमानसलिलः सहसा खमुघ्न^९ ।
 रोपादिवोच्चलति^{१०} मुक्तगभीरभाषो वेलाछलेन^{११} न महान् सहतेऽभिभूतिम्^{१२} ॥१७६॥
 नाकौकसां धृतरसं^{१३} सहकामिनीभिः प्राक्रीडनानि^{१४} सुमनोहरकाननानि ।
 द्वीपस्थलानि शचिराणि सहस्रजोऽस्मिन् सन्त्यन्तरोपमिव^{१५} दुर्गनिवेशनानि^{१६} ॥१७७॥

अनेक लहरें ये सब चारो ओरसे एक दूसरेको धक्का देते हुए एक ही साथ इस समुद्रमें निवास कर रहे हैं ॥१७३॥ हे प्रभो, इस समुद्रके जल ही धन है, रस अर्थात् जल अथवा शृङ्गार या स्नेहको धारण करनेवाली नदियां ही इसकी स्त्रियां हैं, मगरमच्छ आदि जलचर जीव ही इसके पुत्र हैं और बालू ही इसके रत्न हैं इस प्रकार यह थोड़ी सी विभूतिको धारण करता है तथापि महोदधि इस भारी प्रसिद्धिको धारण करता है यह आश्चर्यकी बात है । भावार्थ— इस श्लोकमें कविने समुद्रकी दरिद्र अवस्थाका चित्रण कर उसके महोदधि नामपर आश्चर्य प्रकट किया है । दरिद्र अवस्थाका चित्रण इस प्रकार है । हे प्रभो, इस समुद्रके पास आजीविकाके योग्य कुछ भी धन नहीं है । केवल जल ही इसका धन है अर्थात् दूसरोको पानी पिला पिलाकर ही अपना निर्वाह करता है, इसकी नदीरूप स्त्रियोंका भी बुरा हाल है वे बेचारी रम-जल धारण करके अर्थात् दूसरेका पानी भर-भरकर ही अपनी आजीविका चलाती हैं । पुत्र हैं परन्तु वे सब जलचर अर्थात् (जडचर) मूर्ख मनुष्योंके नौकर हैं अथवा मूर्ख होनेसे नौकर हैं अथवा पानीमें रहकर शेवाल-चीनना आदि तुच्छ कार्य करते हैं, इसके सिवाय कुल परम्परा से आई हुई सोना-चाँदी रत्न आदिकी संपत्ति भी इसके पास कुछ नहीं है—बालू ही इसके रत्न हैं, यद्यपि इसमें अनेक रत्न पैदा होते हैं परन्तु वे इसके निजके नहीं हैं उन्हें दूसरे लोग ले जाते हैं इसलिये दूसरेके ही ममभना चाहिये इस प्रकार-यह विलकुल ही दरिद्र है फिर भी महोदधिः (महा + उ + दधि) अर्थात् लक्ष्मीका बड़ा भारी निवासस्थान इस नामको धारण करता है यह आश्चर्य की बात है । आश्चर्यका परिहार ऊपर लिखा जा चुका है ॥१७४॥ जो नि श्वासके साथ निबलने हुए धूममें मूलित हो रहे हैं, जिनके फणाओंके मध्यभागमें रत्नीवी गान्धि स्पष्ट रूपमें प्रकट हो रही हैं, जो चारो ओर गोलाकार धूम रहे हैं, जिनके शरीर घटन लम्बे हैं, और जो अवस्मात् ही प्रोध करने लगते हैं ऐसे ये सर्प इन समुद्रमें अलातचक्रकी शोभा धारण कर रहे हैं ॥१७५॥ इन समुद्रका जल चन्द्रमाके शीतल पादो अर्थात् पैरो से (किरणोमे) स्पृशं किया जा रहा है, इसलिये ही मानो यह प्रोधसे गम्भीर शब्द करता हुआ ज्वारकी लहरोंके छलगे बदला चुबानेके लिए अवस्मात् आवागामी और उछल कर दीड़ रहा है गो टीव ही है क्योंकि महापुराण निरम्पार नहीं सह गृवते ॥१७६॥ इस समुद्रके जलके

१ पुत्रा एव आचरिता । २ विभूतेरेत्यर्थस्य सर्वो धेमाद्येन दुर्ललितो दुर्गवं । त्वगाम्योऽयं विविचकारणम् । ३ प्रसिद्धताम् । ४ फणमण्डलमर्थम् । ५ गुणवटम् । ६ दीर्घभक्चद्रीया । ७ रोपं । ८ अत्रागतोभासम् । ९ विभूतिं परलं गिति धत्ति । १० -दिवोष्णव्यपत्तिम् । ११ जलविचारव्याजेन । १२ अत्रोल्मुकश्रिधमनात् । १३ पद्मभवम् । १४ विद्याविशेषणम् । मतिरग ६० । प्रतरणां स० । १५ आगमनात् । १६ धननिधिं येषु लानि । १७ ममनोहर इत्यपि कश्चित् पाठः । १८ अल्लर्दीपमिव । १९ गौरीशंकरमन्तराण्यं यदन्तर्दीपमन्तरम् । इत्यभिप्रायान् । २० अत्रादीगमभक्चद्रीया निरिदुर्गादिनिवेशनार्थं च मन्दीरवर्षे । २१ दधि शिरालपावाद्याभाषे थीबाएकश्रयो' इति मैट्टिनी

मालिनीवृत्तम्

अपमनिभूतवेतो रुद्रोयोऽन्तरालं^१ अनिलवतदिलोलंनूरिकन्वोलजानं ।
 तटवनमनिहृन्नि व्यक्तमस्मिं^२ प्ररप्यन् मन विल बहिरस्मात्प्रान्नि वृत्तिर्मुपेति^३ ॥१७८॥
 अविगणितमहत्त्वा यथमस्मान् स्वपादं अनिरथ^४ किमलदध्य बो द्या तौद्रायमेनन् ।
 वयमिव किमलदध्या किं गभीरा इतोऽन्य परिवदति^५ विरावंनूनं^६ मत्थि कृताशीन् ॥१७९॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

अत्राय भुजगशिर्षाविलासिनाह्वकी व्याताम्य^७ निमिमभिषावति प्रहृष्ट ।
 त तोऽपि स्वगलत्रितावतलनं^८ तन्न स्वान्त्रात्पा^९ विहितदयो न जेगिनोति^{१०} ॥१८०॥

दोधकवृत्तम्

एयमहा^{११} मणिरदिमविकीर्णं तोयममूष्य^{१२} पुनामिप^{१३} शद्वक् ।
 मोतगगोऽनुत्तरन् सहसास्माद् धाङ्गिनिया पुनरप्यपपाति ॥१८१॥
 सोलनरद्वगविनोलिनदृष्टि^{१४} वृद्धनरोऽमुमति^{१५} मुमन^{१६} न ।
 ही रपमेव निमिद्विगतसद्वकी पश्यति पश्य निमि^{१७} निमिनास^{१८} ॥१८२॥

सुजङ्गप्रयातवृत्तम्

इहामो सुजङ्गा मरुतं^{१९} कपाशं समुत्सिष्य भोगान्^{२०} समुद्रीसनाणा ।
 विनाभ्यन् एते तरदोऽष्टमं घृता दीपिकीधा महावारिनेव ॥१८३॥

भीतर अपनी देवागनाओंने साथ बड़े वेगमे आने हुए देवोंके हजारो जीवा करनेके स्थान हैं, हजारो मनोहर वन हे और हजारो मुन्दर द्वीप हैं तथा वे.नव ऐसे जान पडने हे मानो इनके भीतर बने हुए किन्हे ही हो ॥१७७॥ ज्वान्-गुटाओने चंचल हुआ यह समुद्र इन वनके बाहर मेरा जाना नहीं हो सकना है इसलिये इसपर प्रकट रोष करता हुआ अपने किनारेके वनको वायुके वेगमे अतिशय चंचल और पृथिवी तथा आकाशके मध्य भागको रोकनेवाली अनेक लहरोंके समूहमे ज्वर्य ही ताडन कर रहा है ॥१७८॥ हे प्रभो, यह गज्जता हुआ समुद्र ऐसा जान पडता है मानो अपने ऊंचे शब्दोंसे बुल पर्वतोंको यहाँ बह रहा है कि हे बुग्पर्वतो, तुम्हारी ऊंचाई बहुत है इसीलिये क्या तुम अपने पैरों अर्थात् अन्तके भागोंमे हम लोगोंकी जाडना कर रहे हो ? तुम्हारी यह व्यर्थकी ऊंचाई क्या उन्लघन करनेके अयोग्य है ? क्या तुम हमारे समान अलघ्य अथवा गभीर हो ? ॥१७९॥ इधर यह सापका बच्चा अपना फिर ममक कर प्रमत्त होता हुआ, मुख फाडे हुए मन्डके मुखमें दौड़ा जा रहा है और वह भी अपने गणे स्प विलमें लगे हुए इस सापके बच्चेको अपने अन्तरंगमें मचित हुई निरदयताके कारण निगल रहा है ॥१८०॥ इधर यह मछलियोंका समूह पद्मराग मणिकी किण्णोंसे व्याप्त हुए इस समुद्रके जलको मान ममभकर उभे लेनेके लिये दौडता है और फिर अवस्मान् ही अग्नि ममभकर वहामे लोट आता है ॥१८१॥ हे देव, इधर देखिये, चंचल लहरोंसे जिमकी दृष्टि चंचल हो रही है और जो बहून ही पूटा है ऐसा यह मन्ड इन रथको मछलियोंको स्थानेवाला बड़ा मन्ड समझकर निश्चल दृष्टिमें देख रहा है, हमारा ख्याल है कि यह बड़ा मूर्ख है ॥१८२॥ इधर

१ अम्भिर । अचनमिपयं । २ आकाशमन्त्रं । 'मुष्पाकागहृद्रयाननेपु रोपम्' ।
 ३ तटवनाय । ४ व्या । ५ अनितादय । ६ पमिध्वनिनि । ७ इव । ८ विवृत्ताननम् । ९ मध्य । मध्यम चावतन व मुद्राश्रीं इयमर । १० निजपुरोत्पद्विद्वत्तनन (?) । ११ भुजगिनि । १२ पद्मराग । १३ समुद्रम् । १४ पलने । १५ अगोमनवृष्टि । १६ सापुत्रम् । १७ मन्त्र । १८ निमिनासा वादुर्धनिरवनामिपनिधानम् । १९ शरीरानि । 'ना सुपे निवयादिभूतवहेरच कणरायणा' ।

भुजङ्गप्रयातरिद वारिराशेः जलं लक्ष्यतेऽन्तःस्फुरद्भ्रतकोटि ।
महानीलवेदमेव दीपेरनेर्षः ज्जलव्भिश्चलव्भिस्ततध्वान्तनुद्भिः^१ ॥१८४॥

मत्तमयूरवृत्तम्

वाताघातात् पुष्कर^१वाद्यध्वनिमुच्चं: तन्वानेऽधो मन्द्रगभीर वृत्तलास्याः ।
द्वीपोपात्ते सन्ततमस्मिन् सुरकन्याः ररम्पन्ते मत्तमयूरं. सममेताः^२ ॥१८५॥
नीलं श्यामाः कृतरवमुच्चैर्षुक्ष्णानादा^३ विद्युद्भ्रन्तः^४ स्फुरितभुजङ्गोत्फणरत्नम् ।
आदिलप्यन्तो जलदत्तमूहा जलमस्य व्यक्तं^५ नोपव्रजि^६ तुमल ते^७ घनकाले ॥१८६॥
पश्यान्मोघेरनुत्तमेना वनराजौ राजीवास्य^८ प्रशमिततापा विततापाम्^९ ।
बेलोत्सर्पज्जलकणिकाभिः^{१०} परिघोताम् नीला शाटीभिः^{११} सुमनोभिः प्रविकीर्णाम् ॥१८७॥

तोटकवृत्तम्

परितः^१ सरसीः सरसं: कमलं: सुहिता^२ सुचिरं विचरन्ति मृगाः ।
^३उपतीरममुष्य निसर्गसुखा वसति^४ निरुपवृत्तिमेत्य वने ॥१८८॥
अनुतीरवन^५ मृगयूपमिदं कनकस्थलमुज्ज्वलितं हृदिभिः ।
परिवीक्ष्य इवानलशार्दिकं भुक्षं परिघावति^६ घावति तीरभुवः ॥१८९॥

रत्नसहित फणाके अग्रभागसे अपने मस्तकको ऊंचा उठाकर आकाशकी ओर देखते हुए ये सर्प ऐसे जान पड़ते हैं मानो इस महासमुद्रने अपने तरंगोरूपी बड़े बड़े हाथोंसे दीपकोके समूह ही धारण कर रखे हो ॥१८३॥ जिसके भीतर करोड़ों रत्न देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसा यह महासमुद्रका जल सर्पोंके इधर-उधर जानेसे ऐसा दिखाई देता है मानो फैले हुए अन्धकारको नष्ट करते हुए, जलते हुए और चलते हुए अनेक दीपकोसे सहित महानील मणियोंका वना हुआ घर ही हो ॥१८४॥ जिस समय यह समुद्र वायुके आघातसे पुष्कर (एक प्रकारका बाजा) के समान गभीर और ऊंचे शब्द करता है उस समय इस द्वीपके किनारेपर इन उन्मत्त मयूरोंके साथ साथ नृत्य करती हुई ये देवकन्याएँ निरन्तर क्रीडा किया करती हैं ॥१८५॥ वर्षाऋतुमें वादलोके समूह और इस समुद्रका जल दोनों एक समान रहते हैं क्योंकि वर्षाऋतुमें वादलोके समूह बाले रहते हैं और समुद्रका जल भी काला रहता है, वादलोके समूह जोरसे गरजते हुए आनन्दित होते हैं और समुद्रका जल भी जोरसे शब्द करता हुआ आनन्दित होता है—लहराता रहता है, वादलोके समूहमें विजली चमवती है और समुद्रके जलमें भी सर्पोंके ऊंचे उठे हुए फणाओं पर रत्न चमवते रहते हैं, इस प्रकार वादलोके समूह अपने समान इस समुद्रके जलका आलिंगन करते हुए वर्षाऋतुमें किसी दूसरी जगह नहीं जा सकते यह स्पष्ट है ॥१८६॥ कमलके समान मुन्दर भावको धारण करनेवाले हे देव, समुद्रके किनारे किनारेकी इन वनपवित्तियोंको देखिये जिनमें कि सूर्यवा संताप बिलकुल ही शान्त हो गया है, जहा तहा विस्तृत जल भरा हुआ है, जो फूलोंसे व्याप्त हो रही है और जो बड़ी बड़ी लहरोंके उछलते हुए जलकी वृद्धोंसे धोई हुई नीले रंगकी माड़ियोंके समान जान पड़ती है ॥१८७॥ इस समुद्रके किनारेके वनमें उपद्रव रहित तथा स्वभावमें ही सुग्य देनेवाले स्थानपर आकर सरस कलमी धानोंको खाते हुए ये हरिण बहुत काल तक इन तान्त्रिकोंके चारों ओर घूमा करते हैं ॥१८८॥ इस किनारेके वनमें कान्ति

१ श्यामान्पवारानासर्षः । २ जलमिति वाद्य अथवा चर्मनिर्देवाद्यभेद । ३ सममेताः स०, द० ।

४ घनमोहा स० । ५ गहिद्वन् । ६ व्यक्तं स० । ७ गन्तुम् । ८ मेघसमूहाः । ९ वनलास्य ।

१० विन्युत्तमाम् । ११ जलपवै । 'वर्षावा षष्पनेऽप्यन्ता गूढमवग्निमन्त्रयो' ॥ १२ वरत्रम् ।

१३ मरुतीना गमन्वतः । १४ पीपिना । १५ तटे । १६ निरापद्रवाम् । १७ तटवने । १८ परिमण्डले (वेतायाम्)

प्रहर्षिणी

सायम्पादपमनिभारयन्' सरित्स्त्री'श्राश्रमप्रवन्'जवासाकाम्परह्वां ।
श्रादिपप्यन्मुहरपि नोपयाति तृप्तिं सम्नोङ्गनिरमिको न तृप्यनीह ॥१६०॥

वसन्नतिलका

रो'धोमुबोध्य तनुसीकरवारिमिक्ता सम्माजिता विरलमुन्वतिवन्परह्यं ।
मान्नीह सन्नततनाद्विगतप्रमूढ-नित्योपहारमुभया शुभदा' निषेधा ॥१६१॥

मन्दाक्रान्ता

स्वर्गोद्यानश्रियमित्र ह्यनुत्प्रवृत्ते वनेऽस्मिन् मन्चाराणा सरति' पत्रे मन्दमद वनान्ता ।
मन्दाक्रान्ता' मलनितपद किञ्चिद्वाररचनाता चन्द्रम्यन्ते स्वयुवनप्रतीरदेशे'वमुप्य ॥१६२॥

प्रहर्षिणी

अप्यप्य'स्तिनिरप्यमापिता'मुपराद् अन्येति द्रुतमनिनावु'कोप्सुपोनिम्' ।
शंसोच्चावपि निगिनल्लिमोनिनोऽन्यो व्यत्यास्ते' समममता यूपन्मान ॥१६३॥

पृथ्वी

जलादगरस्तिमि शयुमपि' स्थनादप्युजो' विरुषति' यूपत्यया' हृन्द्दुपहो' दुप्रह' ।
तयापि न जयो मिथोऽस्ति समकश्ययोरेनयो घृव न समरथ'योरिह जयेत्प्रक्रम' ॥१६४॥

से प्रयागमान सुवर्णमय स्यात्तोदो देवदर जिमे दावानरणी मना ही रही है ऐसा यह हरिणी का समूह बहुत शीघ्र किनारेकी पृथिवीकी ओर लौटना हुआ दौड़ा जा रहा है ॥१८९॥ यह समूह, जिनके जठरपी मूढम चन्द्र कुछ कुछ नीचेकी जोग विभक्त गये हैं ऐसी नदीन्पी म्त्रियों को गवप्य अर्थान् मुन्दरताके कारण (पक्षमें स्वागतनके कारण) अपनी ओर बुलाना हुआ तथा तरंगोंके द्वारा बार-बार उनका आनिर्गन्त' करना हुआ भी कभी तृप्तिको प्राप्त नहीं होना सो ठीक ही है क्योंकि जो अन्यन्त रमिक अर्थान् कामी (पक्षमें जठर महित) होना है वह इन ममार में अनेक बार मभोग करनेपर भी तृप्त नहीं होता है ॥१९०॥ जो छोटी छोटी बंदोके पानी के बीचनेमे स्वच्छ हो गई है, निरन्तर गताजोमे गिरते हुए पूरोंके उपहारसे जो मदा मुन्दर जल प्रवृत्ती है, और जो देवोके द्वारा सेदर करने योग्य है ऐसी से रुदरकी किनारेकी भूमिका विरल विरल रूपमे उच्छ्रती हुई लहरोमे अत्यन्त सुशीमित हो रही है ॥१९१॥ स्वर्गके उपवनकी शोभाकी ओर हमनेवाटे तथा पूरोंमे भरे हुए इन वनमे मन्दाग वृक्षोंके बनेके मध्य नागमे यह वायु धीरे धीरे चढ़ रहा है और इसी समय जिन्होंने कुछ कुछ गाना प्रारम्भ किया है ऐसी ये धीरे धीरे चरनेवागी विद्याधरिया इन समुद्रके किनारेके प्रदेशोपर लीगापूर्वक पर रमती उठाती हुई टहल रही है ॥१९२॥ इधर, इस जगमें उत्पन्न हुए अथ अन्येच मच्छोरो निरेस्वार धर इनके मारनेकी इच्छा करता हुआ यह इसी जलमें उत्पन्न हुआ बड़ा मच्छ बहुत शीघ्र दूरने उनके सम्मुख आ रहा है और पतके मनान बड़े बड़े मच्छोको निगलता हुआ यह दूरगा यदा मच्छ उभ पहाटे बड़ मच्छके नाथ युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ मडा है ॥१९३॥ इधर, यह अवनगर जगमें किसी बड़े मच्छको अपनी ओर मींच रहा है जोग मन्तृनीमे पठने-

- १ अनिनाचिया कृन् २ इतदा ३ तनुमय ४ देवान् ५ ह्यनुति ह्यन तस्मिन् ।
६ मन्तीनि मन्तु तस्मिन् । ७ मन्दाक्रान्ता । ८ अन्तु भव । ९ आहभुमिकद । १० अनिमवर्गा ।
११ गदम जनवर वा । १२ वैपरीयेन स्थिक । १३ अत्रगम् । १४ मन्स । १५ अकर्मि ।
१६ यादुमिच्छता । १७ परम्यरविहितदुप्रहम् । प्रह स्वीकार । १८ मृगिनुमन्तर । १९ मन्वतया ।
२० अत्रय ।

वनं वनगर्भैरिदं जलनिधे समास्फालितं वनं वनगर्भैरिव स्फुटविभूषितसाराविणम् ।
 मृदङ्गपरिवादनश्रियमुपादधद्विषत्ते तनोति तटमुच्चलत्सपदि दत्तसम्मार्जनम् ॥१६५॥
 तरत्तिमिवलेबर स्फुटितशुक्तिशल्काङ्घ्रित स्फुरत्पल्पनि स्वयं विवृतरन्ध्रपातालकम् ।
 भयानकमितो जल जलनिधेर्लेसत्पन्नप्रभूषिततनुं कृत्तिसशयितवीचिमाताकुलम् ॥१६६॥
 इतो धृतवनोऽनिल शिशिरशीकरानाकिरन् उर्ध्वंति शनकंस्तटद्रुमसुगन्धिपुष्पाहर् ॥
 इतश्च पर्योऽनिल स्फुरति धूतकल्लोलसात् कृतस्वनभयानकस्तिमिकलेवरानाधुनन् ॥१६७॥

शार्दूलविष्कीडितम्

अस्योपान्तभुवश्चकासति तरा बेलोच्चलन्मीषितकं आकीर्णां कुसुमोपहारजनिता लक्ष्मीं दधाना भूशम ।
 सेवन्ते सह मुन्दरीभिरमरा या स्वर्गलोकान्तरम् मन्वानां धृतसम्मदास्तटवनच्छायातरुसश्रिता ॥१६८॥
 एते ते भकरादयो जलचरा मत्स्येव कृत्स्नभिरम् वारा राशिमनन्तरायमधिकं पुत्रा इवास्त्यौरसा ॥
 भागस्य प्रतिलिप्तया नु जनकस्याश्रोशतोप्यप्रतो युध्यन्ते मिलिता परस्परमहो बद्धक्रुधो विग्धनम् ॥१६९॥
 लोकानन्दिभिरप्रमापरिपतंश्चावर्धेर्भोगिनाम आहर्दंरधिभस्तकं शुचितमं सन्तापविच्छेदिभिः ।
 पानालंबिवृत्ताननंमृहुरापि प्राप्तव्ययंरक्षयं धाससारममुष्य नास्ति विगमो रत्नंजलोधरपि ॥२००॥

वाला यह दुष्ट मच्छ भी लडनेकी इच्छासे उसे जमीनपरसे अपनी ओर खींच रहा है तथापि एक समान बल रखनेवाले इन दोनोंमें परस्पर किसीकी जीत नहीं हो रही है सो ठीक ही है क्योंकि इस समारमें जो समान शक्तिवाले हैं उनमें परस्पर जय और पराजयका निर्णय नहीं होता है ॥१९४॥ जगली हाथियोंके द्वारा अतिशय ताडन किया हुआ यह समुद्रका जल, जिसमें जाली हाथी स्पष्ट रूपसे गर्जना कर रहे हैं ऐसे किसी वनके समान तथा मृदग बजनेकी शोभाको धारण करता हुआ और दिशाओंमें उछलता हुआ विनारेको बहुत शीघ्र शृद्ध कर रहा है ॥१९५॥ जिसमें अनेक मछलियोंके शरीर तैर रहे हैं, जो खुली हुई सीपोंके टुकड़ोंसे व्याप्त हैं, जिसमें बठोर शब्द हो रहे हैं, जिसने अपने रन्ध्रोंमें श्वातालको भी धारण कर रखा है, और जो तैरने हुए मापोंमें टूटी हुई काचलियोंसे लोगोंको ऐसा सदेह उत्पन्न करता है मानो लहरोके ममूहमें ही व्याप्त हो ऐसा यह समुद्रका जल इधर बहुत भयानक हो रहा है ॥१९६॥ इधर, वनको दिखाता हुआ, शीतल जलकी बंदोंको बरमाता हुआ और वृक्षोंके सुगन्धित फूलोंकी मुगर्धिका गन्ध करता हुआ वायु धीरे धीरे विनारेकी ओर बढ़ रहा है और इधर बड़े बड़े मच्छोंके शरीरको बपाता हुआ तथा हिलती हुई लहरोके शब्दोंसे भयकर यह प्रचण्ड वायु बढ़ रहा है ॥१९७॥ जो बड़ी बड़ी लहरोमें उछलते हुए मोतियोंसे व्याप्त होकर फूलोंके उपहारमें उत्पन्न हुई अतिशय शोभाको धारण करती है, विनारेके वनके छायादार वृक्षोंके नीचे बैठे हुए देव लोभ हर्षित होकर अपनी अपनी देवागनाओंके साथ जिनकी सेवा करते हैं और प्रमोदित होकर स्वर्ग लोककी शोभा बढानी हैं ऐसी ये इस समुद्रके विनारेकी भूमियां अत्यन्त मुगोभित हो रही हैं ॥१९८॥ ये मगरमच्छ आदि जटकर जीव, जिसके पास अनन्त धन है ऐसे इस समुद्रको अपने उदरका पालन-पोषण करनेवाला पिता समझकर सगे पुत्रोंके समान उमका धन बांटकर अपने भाग (हिस्से)को अधिक रूपसे लेनेकी इच्छामें, गर्जनाके शब्दोंके बहाने विनाशे हुए पिताके मामने ही डकट्टे होकर बोधित होने-हुए परस्परमें लड़ रहे हैं, हाय ! ऐसे धनको धिक्कार दो ॥१९९॥ मद्र शोचकर पडे हुए अनेक पाताली अर्थात् विवरो और

१ प्रथम । २ द्वितीय । ३ तृतीय—५०, ६०, ७०, ८०, ९० । चतुर्थम् ।

४ विष्कीडितम् । ५ सुगन्धिपुष्पाहर् । ६ स्फुरति । ७ शिशिरशीकरम् । उभावागमभिर-शुक्तिशरि-
 खादरुषम् । ८ मन्वाना । ९ उग्रमि भवा । १० भाग सारममुष्य । ११ प्रमाणरहितम् ।
 १२ शोचकर । १३ शोचते । १४ विवरो ।

स्रग्धरा

वज्रोद्गमनुष्य स्वयदिव जठरं व्यक्तमुद्बुद्बुदाम्मुस्कृन्तातालरन्ध्रोच्छ्वसदनिलबलाद्विष्वगावर्तमानम् ।
प्रस्तौर्गानिकरत्नान्यपहरति जने नूनमुत्पन्नन्तः प्रायो राया^१ विभोगो जनयति महनोऽप्युप्रमत्ताविदाहम् ॥२०१॥

प्रहृषिणी

प्रापुष्मन्निति बहुविस्मयोऽप्यमव्यिः सद्रत्नः सकलजगजनोपजीव्यः ।
गम्भीरप्रकृतिरत्नसत्त्वयोगः प्रायस्त्वामनुहर्ते^२ विना जटिम्ना^३ ॥२०२॥

वसन्ततिलका

इत्थं निपन्तरि^४ परां त्रिपमन्बुराशोः श्रावणंयत्पुनर्नर्बचनेविचित्रं ।
प्राप क्रनोदमधिकं नचिराचच^५ सम्राट् सेनानिवेशमभियातुमना बभूव ॥२०३॥

वडवान गोंके द्वारा बार बार हान होनेपर भी जिनका कभी क्षय नहीं हो पाता है, जो लोगोंको आनन्द देनेवाले हैं, प्रमाण-रहित हैं, अनेक प्रकारके हैं, नर्पोंके फगाओंपर आरुट हैं, अन्यन्त पवित्र हैं, और मनापको नष्ट करनेवाले हैं ऐसे रत्नों तथा जलके भमूहोंकी अपेक्षा इम समुद्रका जब तक संसार है तब तक कभी भी नाश नहीं होता । भावार्थ—एवमपि इम समुद्रके अनेक रत्न इसके विवरों-विलोमों घुमकर नष्ट हो जाने हैं और जलके समूह वडवानलमें जलकर कम हो जाते हैं तथापि इनके रत्न और जलके समूह कभी भी विनाशको प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि जितने नष्ट होने हैं उनमें कहीं अधिक उत्पन्न हो जाने हैं ॥२००॥ बहुत बड़े पाताल रानी छिद्रोंके द्वारा ऊपरकी ओर बटने हुए वायुके जोगसे जो चारों ओर घूम रहा है और जिनमें जलके अनेक बबूले उठ रहे हैं ऐंसा यह समुद्रका उर अर्थात् मध्यभाग बज्जी कड़ाहीमें खोलना हुआ ना जान पड़ता है अथवा लोग इसके जहा तहाँ फँसे हुए अनेक रत्न ले जाते हैं इनलिये मानो यह भीतर ही भीतर मतप्त हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि वनका वियोग प्रायः करके बड़े बड़े पुरपोंके हृदयमें भी भयकर दाह उत्पन्न कर देता है ॥२०१॥ हे आयुष्मन्, जिन प्रकार आप अनेक वाच्ययोंमें भरे हुए हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनेक वाच्ययोंसे भरा हुआ है, जिन प्रकार आपके पान अच्छे अच्छे रत्न हैं उसी प्रकार इम समुद्रके पान भी अच्छे अच्छे रत्न हैं, जिन प्रकार संसारके सनस्त प्राणी आपके उपजीव्य हैं अर्थात् आपकी महायत्नमें ही जीवित रहते हैं उसी प्रकार इम समुद्रके भी उपजीव्य हैं अर्थात् समुद्रमें उत्पन्न हुए रत्न मोती तथा जल आदिसे अपनी आजीविका करते हैं, जिन प्रकार आप गभीर प्रकृतिवाले हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी गभीर (गहरी) प्रकृतिवाला है और जिन प्रकार आप अनन्यमत्त्व योग अर्थात् अनन्त शक्तिको धारण करनेवाले हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनन्यसत्त्व योग अर्थात् बड़े बड़े जलचर जीवोंसे सहित है अथवा जिन प्रकार आप अनालमत्त्व योग अर्थात् आलस्यके सम्बन्धसे रहित हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनालमत्त्व योग अर्थात् नाल (नरा) रहित जीवोंके सम्बन्धसे सहित है इम प्रकार यह समुद्र ठीक आपका अनुकरण कर रहा है । यदि अन्तर है तो केवल इतना ही है कि यह जलकी ऋद्धिमें रहित है और आप जल अर्थात् मूर्ख (जड) मनुष्योंकी ऋद्धिमें रहित हैं ॥२०२॥ इम प्रकार जब मारयिने समुद्रकी उदरुष्ट शोभाका वर्णन किया तब सम्राट् भरत बहुत ही अधिक आनन्दको प्राप्त हुए तथा शीघ्र ही अपनी छावनीमें जानेके लिये उद्यत हुए ॥२०३॥

१ -वर्षमानम् २०, १०, १० । २ धनानाम् । ३ अनुवरोति । ४ जट्वेन । ५ मारवी ।
६ आयु ।

शार्दूलविक्रीडितम्

तत्रोद्घोषितमद्गलं जययेत्यानन्दिनो वन्दिन् गत्वान् शिविरं नृपालयमहाद्वारं समासादयन् ।
 'अन्तर्वाङ्मूलोक्तवारवनिनाइतासनाशासन' प्राक्सप्तभिजकेतव निधिपतिर्बानोन्तमत्केतनम् ॥२०६॥

वसन्ततिलका

देवोऽग्रमज्ञानननुचिजिताम्बिरागात् ते मूयमानयत साक्षनसिद्धयोषा ।
 आशीध्वमाध्यमिह^१ सम्मुखमेत्य तूर्णम् इत्युत्थित क्लृप्तकल कटके तदानून् ॥२१०॥
 जीवेति नन्दतु भवानिति वीर्ययोष्या^२ देवेति निजंयरिपूनीति गा^३ जयेति ।
 त्व 'स्नाच्चिरायुरिति कानितमाम्नुहोति' पुष्याग्निषा शनमलम्बि तदा स वृद्धं ॥२११॥
 जीयादरोनिह भवानिति निजितारि^४ देव प्रशाधि^५ वनुधामिति सिद्धरत्न ।
 त्व जीवताच्चिरमिति प्रथम चिरायु आर्योजि मद्गलधिषा पुनरुक्नवावयं ॥२१२॥
 देवोऽग्रमन्वुधिमगायमलद्रघपपारम् उल्लङ्घय सन्निविजय पुनरप्युधापान्^६ ।
 पुष्यं कसारयिरेति विवानरार्यं पुष्ये प्रतेतुधि^७ नृणा किमिवात्पत्तद्रघपम् ॥२१३॥

गृहे हं ऐमा बहू भरत अपनी छावनीके वाहरवाली तोरणभूमिपर आ पहुँचा ॥२०८॥ वहाँ पर जय जय इन प्रकार मगलशब्द करते हुए वन्दीजन जिन्हें आनन्दित कर रहे हैं ऐमे वे महाराज भरत छावनीके भीतर जाकर राजभवनके वडे द्वारपर जा पहुँचे वहाँ परिवारके लोगो तथा वेध्याओने उन्हें मगलाक्षत तथा आशीर्वाद दिये । इस प्रकार निधिनोके स्वामी भरतने जिसपर वायुके द्वारा ध्वजाएँ पहरा रहीं हैं ऐमे अपने तम्बूमें प्रवेश किया ॥२०९॥ जिन्होंने शरीर में कुछ चोट लगे त्रिना ही समुद्रको जीत लिया है ऐमे ये भरत महाराज आ गये हैं, इनलिये तुम मगलाक्षत महित मिद्ध तथा गोपाक्षत लाजो, तुम आशीर्वाद दो और तुम वृद्ध शीघ्र मामने जाकर गडे होओ इन प्रकार उन ममय सेनामें बडा भारी कोलाहल उठ रहा था ॥२१०॥ हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें, समृद्धिमान् हो, मुदा बढने रहें, आप शत्रुओको जीतिये, पृथिवीको जीतिये, आप चिरायु रहिये और ममन्त मनोरथोको प्राप्त कीजिये—आपकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो इस प्रकार उन ममय वृद्ध मनुष्योने भरत महाराजके लिये मँकडो पवित्र आशीर्वाद प्राप्त कराये ये ॥२११॥ यद्यपि भरतेश्वर शत्रुओको पहरे ही जीत चुके थे तथापि उन ममय उन्हें आशीर्वाद दिया गया था कि देव, आप शत्रुओको जीतिये, यद्यपि उन्होंने चौदह रत्नोको पहले ही प्राप्त कर लिया था तथापि उन्हें आशीर्वाद मिला था कि हे देव । आप पृथिवीका शासन कीजिये, और इसी प्रकार वे पहरे हीसे चिरायु थे तथापि आशीर्वाद में उनसे कहा गया था कि हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें—चिरायु हो । इस प्रकार मगल मममवर लोगोने उन्हें पुनरुक्न (कार्य हो चुननेपर उमी अर्थको सूचित करनेके लिये फिरसे कहे हुए,) वचनोमें युक्त किया था ॥२१२॥ एक पुष्यही जिनका महायक है ऐसे महाराज भरत अगाध और पाररहित समुद्रको उरुघनवर तथा योग्य उपायसे विजय प्राप्त कर बिना किसी विघ्न-बाधाके यहा वापिस आ गये हैं सो ठीक ही है क्योंकि निर्मल पुष्यके रहते

१ कञ्चुको । 'अन्तर्वाङ्मूलो अन्तपुराधिपतिरिति ।' 'अन्तपुरेऽधिपिष्ठ' म्पादनवर्षिका जन' इतिनिधानात् । २ आशीर्वादन । ३ आशीर्वा कृष्णम् । ४ मूयम् । ५ भव । ६ गात् । ७ गात् अनुचिटी तात् । ८ उपायम् । ९ प्रसन्ने सति ।

मालिनी

अथ रथपरिवृत्तं^१ सारथी कृच्छ्रकृच्छ्रात् विषमवलन^२भुग्नप्रीयमदवाग्नुत्तो^३ ।
 धुवति भरति मन्द योचिवेगोपशान्ते शिबिरमभिनिघोनामोशिता सम्प्रतरथे ॥२०४॥
 कथमपि रथचक्र^४ सारथित्याम्बुद्वम्^५ भ्रवहृणहृतकोपानु^६ याजिनोऽनुप्रसाध्य^७ ।
 रथमधि जलमन्थी चोदयामास सूतो जलधिरपि नृपानु^८श्रग्भयेयोच्चचाल ॥२०५॥
 अथमयमुद्भारो^९ धारिराशेर्वहथ स्यगपति रथवेगादेव भिन्नोभिरधि ॥
 इति किल तटसद्भिस्तकर्षमाणो रथोऽथ जवनतुरगकृष्ट^{१०} प्राप पारसमुद्रम्^{११} ॥२०६॥

शिखरिणी

^१तरङ्गात्यस्तोऽथ ^{११}समघटितसर्वाङ्गघटनो रथ क्षेमात् प्राप्तो रथचरण^{११}हेतिश्च कृतली ।
 तुरङ्गा धोताङ्गा जलधिसन्निवेशतखुरा महत्पुण्य जिष्णोरिति किल जलपुस्तदजुष^{११} ॥२०७॥
 नृपंगङ्गाद्वारे प्रणतमणिमौल्यपितकरं अधस्तात्तद्वेद्या सजयजयघोषेरधिहृतं^{११} ।
 बहिर्द्वारं^{११} संपर्ष्यगपदसकृद्घोषितजयं विभुर्द्वष्ट प्रापत् स्वशिबिरबहिस्तोरणभुवम् ॥२०८॥

अथानन्तर—जब सारथिने बड़ी कठिनाईसे रथ लौटानेके लिये विषम रूपसे घूमनेके कारण गलेको कुछ टेढा कर घोडोको हाका, मन्द मन्द वायु बहने लगा और लहरोका वेग शान्त हो गया तब निधियोके स्वामी भरतने छावनीकी ओर प्रस्थान किया ॥२०४॥ पानीसे रुके हुए रथके पहियोको किसी तरह बाहर निकालकर और बार बार हाकने अथवा बोझ धारण करनेके कारण कुपित हुए घोडोकी प्रसन्न कर सारथि समुद्रमें जलके भीतर ही रथ चला रहा था, और वह समुद्र भी उस रथके पीछे पीछे जानेके लिये ही मानो उछल रहा था ॥२०५॥ अरे, यह समुद्रकी बड़ी भारी लहर रथकी छतरीको अवश्य ही ढक लेगी और इधर रथके वेग से समुद्रकी लहरे भी फट गई हैं इस प्रकार किनारे पर खड़े हुए लोग जिसके विषयमें अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क कर रहे हैं ऐसा वह वेगशाली घोडोसे खीचा हुआ रथ समुद्रके किनारेपर आ पहुँचा ॥२०६॥ जिसके समस्त अगोकी रचना एक समान सुन्दर है ऐसा यह रथ लहरो को उल्लघन करता हुआ कुशलतापूर्वक किनारे तक आ गया है, चक्ररत्नको धारण करनेवाले चक्रवर्ती भरत भी सकुशल आ गये हैं और समुद्रके जलसे जिनके समस्त अंग धुल गये हैं तथा जिनके खुर भी नहीं घिसे हैं ऐसे घोडे भी राजी-खुशी आ पहुँचे हैं । अहा ! विजयी चक्रवर्तीका बड़ा भारी पुण्य है, इस प्रकार किनारे पर खड़े हुए लोग परस्परमे बातलाप कर रहे थे ॥ ॥२०७॥ जो बंदीके नीचे गङ्गाद्वारपर नियुक्त किये गये हैं, जिन्होंने नवाये हुए मणिमय मुकुटो पर अपने अपने हाथ जोडकर रखे हैं और जो जय जय शब्दका उच्चारण कर रहे हैं ऐसे राजा लोग, तथा दरवाजेके बाहर एक साथ बार बार जयघोष करनेवाले सैनिक लोग जिसे देख

१ परिवर्तनाय । २ विषमाकर्षणवृत्तिर्ग्रीव यथा भवति तथा । ३ प्रेरितमिच्छी सति ।
 ४ गमयित्वा । ५ प्रेरण । ६ प्रमाद नीत्वा । ७ अनुगमनेन । ८ जलसमूह । ९ तीरस्थ ।
 १० वेगाद्वाहृत । ११ समुद्रय पारम् । १२ तरङ्गान् त्यस्त तरङ्गात्यस्त इति द्वितीयात्पुण्य ।
 यत्परिचिन्ना तर्ष्योन्मत्त्वात् । १३ समान यथा भवति तथा घटित । १४ चक्रायुध । १५ तटसेविन ।
 तीरस्था इत्यर्थं । १६ अधिकारिणि । १७ द्वारस्य बाह्ये ।

शाकूलचिक्रीडितम्

तत्रोद्घोषितमङ्गलं जयजयेत्यानन्दितो वन्दिभिः गत्वा तत्र शिविरं नृपालयमहाद्वारं समासादयन् ।
 'अन्तर्वंशिव लोचनारवितादत्तासिताशासनं' प्राविशन्निजचेतनं निधिपतिर्षातोत्सत्वेत्तनम् ॥२०६॥

वसन्ततिलका

देवोऽयमक्षततनुर्विजिताश्विरागात् ते युष्मानपत साक्षतसिद्धशेषा ।
 आशोष्वन्नाश्वमिह^१ सम्मुखमेतम् तूर्णम् इत्युत्थित कतकत कटके तदामूत् ॥२१०॥
 जीवेति नन्दतु भवानिति वधिषोष्या देवेति निजंरिपूनिति गां जयेति ।
 त्व 'स्ताञ्चिरायुरिति कामित्तापानुहोति' पुष्याशिया शतमलम्भि तदा स वृद्धं ॥२११॥
 जीयादरीनिह भवानिति निजितरि देव प्रसाधि^२ वस्तुधामिति सिद्धरत्न ।
 त्व जीवताञ्चिरमिति प्रथम चिरायु आयोजि मङ्गलधिया पुनरक्षतवाक्यं ॥२१२॥
 देवोऽयमम्बुपिमगाधमसङ्गपपरम् उल्लङ्घय सत्पवित्रय पुनरप्युपायात्^३ ।
 पुष्यं वसार्थिरिहेति विनान्तरायं पुष्यं प्रसेदुषि^४ नृपा किमिवात्स्यत्तङ्घषम् ॥२१३॥

रहे है ऐसा वह भरत अपनी छावनीके बाहरवाली तोरणभूमिपर आ पहुँचा ॥२०८॥ वहा पर जय जय इस प्रकार मंगलशब्द करते हुए बन्दीजन जिन्हें आनन्दित कर रहे हैं ऐसे बं महाराज भरत छावनीके भीतर जाकर राजभवनके बड़े द्वारपर जा पहुँचे वहा परिवारके लोगो तथा वेश्याओने उन्हें मंगलाक्षत तथा आशीर्वाद दिये । इस प्रकार निधियोके स्वामी भरतने जिसपर वायुके द्वारा धनजाए फहरा रही है ऐसे अपने तन्मूर्धमें प्रवेश किया ॥२०९॥ जिन्होंने शरीर में कुछ चोट लगे बिना ही समुद्रको जीत लिया है ऐसे ये भरत महाराज आ गये हैं, इसलिये तुम मंगलाक्षत सहित सिद्ध तथा शेषाक्षत लाओ, तुम आशीर्वाद दो और तुम बहुत शीघ्र सामने जाकर खडे होओ इस प्रकार उम समय सेनामें बडा भारी कोणहल उठ रहा था ॥२१०॥ हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें, समृद्धिमान् हो, सदा बढते रहें, आप शत्रुओको जीतिये, पृथिवीको जीतिये, आप चिरायु रहिये और समस्त मनोरथोको प्राप्त कीजिये—आपकी सत्र इच्छाए पूर्ण हो इस प्रकार उम ममय वृद्ध मनुष्योने भरत महाराजके लिये सबडो पवित्र आशीर्वाद प्राप्त कराये थे ॥२११॥ यद्यपि भरतेश्वर शत्रुओको पहूँचे ही जीत चुके थे तथापि उस समय उन्हें आशीर्वाद दिया गया था कि देव, आप शत्रुओको जीतिये, यद्यपि उन्होंने चौदह रत्नोको पहले ही प्राप्त कर लिया था तथापि उन्हें आशीर्वाद मिला था कि हे देव । आप पृथिवीका शासन कीजिये, और इसी प्रकार वे पहूँचे हीसे चिरायु थे तथापि आशीर्वाद में उनसे कहा गया था कि हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहें—चिरायु हो । इस प्रकार मंगल ममभवर लोगोने उन्हें पुनरक्त (कामं हो चुकनेपर उसी अर्थको सूचित करनेके लिये फिरसे बहे हुए,) वचनोमे युक्त किया था ॥२१२॥ एव पुष्य ही जिनका महायज है ऐसे महाराज भरत अगाध और पाररहित समुद्रको उल्लङ्घनकर तथा योग्य उपायसे विजय प्राप्त कर बिना किसी विघ्न-आघाके यहा वापिस आ गये हैं नो ठीक ही है भयोकि निर्मल पुष्यने रहते

१ कञ्चुकी । 'अन्तर्वंशिव' अन्तःपुराधिकारिण । 'अन्तःपुरेऽप्युपायात्' स्नादन्तर्वंशिको जन' इत्यभिधानात् । २ आशीर्षण । ३ आशीर्ष कृष्णम् । ४ भुवम् । ५ नय । ६ याति । ७ नाम् । अनुगच्छो नाम् । ८ उपायम् । ९ प्रसन्नं गति ।

पुण्याद्यं भरतचक्रधरो जिगीवः उदभिन्नवेलमगिताहृतयोचिमालम् ।
 प्रोल्लङ्घय चार्धिनमरं रहसा विजिग्ये पुण्ये बलीयति किमस्ति जगत्यज्यम् ॥२१४॥
 पुण्याद्येन मकराकरवारिसीमं पुष्वीं स्वसावकृतं चक्रधरः पुयश्रीः ।
 दुर्लङ्घयचमिधिमवगाह्य विनोपसर्गैः पुष्यात् परं न सलु साधनमिष्टसिद्ध्यं ॥२१५॥
 चक्रायुषोऽयमरिचक्रभयङ्करश्रीः श्राफन्य ^१सिन्धुमतिभीषणनरुचयम् ।
 चक्रे वशो सुरमवयमनन्यवययं पुष्यात् परं न हि वशीकरण जगत्याम् ॥२१६॥
 पुष्यं जले स्थलमिवाभ्यवपश्यते^२ नृन् पुष्य स्थले जगामिवाद्गु निपन्ति तापम् ।
 पुष्यं जलस्थलभये शरणं तुतीयं पुष्यं कुरुध्वमत एष जना जिनोवतम् ॥२१७॥
 पुष्यं परं शरणमापदि दुर्विलङ्घ्यं पुष्यं दरिद्रति^३ जने धनदायि पुष्यम् ।
 पुष्यं सुहृदियनि जने सुसुदायि रत्नं पुष्यं जिनोदितमत सुजनादिचनुष्यम् ॥२१८॥
 पुष्यं जिनेन्द्रपरिवृजनसाध्यमाद्य पुष्यं सुपात्रगतदानसमुत्पमन्यत् ।
 पुष्यं व्रतानुचरणानुपवासयोगात् पुष्यादिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥२१९॥

हुए मनुष्योको क्या उल्लघनीय (प्राप्त न होने योग्य) रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥२१३॥ सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाले भरत चक्रवर्तीने पुण्यके प्रभावसे, जिसमे ज्वार-भाटा उठ रहे हैं और जिसमे लहरोके समूह बायुसे ताडित हो रहे हैं ऐसे समुद्रको उल्लघन कर शीघ्र ही मागध देवको जीत लिया सो ठीक ही है क्योंकि अतिशय बलवान् पुण्यके रहते हुए ससारमे अजय्य अर्थात् जीतनेके अयोग्य क्या रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥२१४॥ बहुत भारी लक्ष्मीको धारण करनेवाले चक्रवर्ती भरतने पुण्यकर्मके उदयसे ही विना किसी उपद्रवके उल्लघन करनेके अयोग्य समुद्रको उल्लघन कर समुद्रका जल ही जिसकी सीमा है ऐसी पृथिवीको अपने आधीन कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि इष्ट पदार्थोकी सिद्धिके लिये पुण्यमे बढकर और कोई साधन नहीं है ॥२१५॥ शत्रुओके समूहके लिये जिनकी सम्पत्ति बहुत ही भयकर है ऐसे चक्रवर्ती भरतने अत्यन्त भयकर मगर-मच्छोके समूहसे भरे हुए समुद्र को उल्लघन कर अन्य किसीके वश न होने योग्य मागध देवको निश्चित रूपसे वश कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें पुण्यसे बढकर और कोई वशीकरण (वश करनेवाला) नहीं है ॥२१६॥ पुण्य ही मनुष्योको जलमे स्थलके समान हो जाता है, पुण्य ही स्थलमें जलके समान होकर शीघ्र ही समस्त सत्तापको नष्ट कर देता है और पुण्य ही जल तथा स्थल दोनों जगहके भयमें एक तीमरा पदार्थ होकर शरण होता है, इसलिये हे भव्य जनो, तुम लोग जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा बहे हुए पुण्यकर्म करो ॥२१७॥ पुण्य ही आपत्तिके समय किसीके द्वारा उल्लघन न करनेके योग्य उत्पृष्ट शरण है, पुण्य ही दरिद्र मनुष्योके लिये धन देनेवाला है और पुण्य ही गुप्तकी इच्छा करनेवाले लोकोके लिये गुप्त देनेवाला है, इसलिये हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा बहे हुए इस पुण्यरूपी रत्नका भय करो ॥२१८॥ जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करनेसे उत्पन्न होनेवाला पत्न्या पुण्य है, मुपात्रको दान देनेसे उत्पन्न हुआ, दूसरा पुण्य है व्रत पालन करनेसे उत्पन्न हुआ, तीमरा पुण्य है और उपवास करनेसे उत्पन्न हुआ, चौथा पुण्य है इस प्रकार पुण्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषोको ऊपर लिखे हुए चार प्रकारके पुण्योका

इत्थं स्वपुण्यपरिपाक'जमिष्टलाभं संश्लायन्^१ जनतया^२ श्रुतपुण्यघोषः ।
चक्रौ सभागूहगतो नृपचक्रमध्ये शक्रोपमः पृथुनृपासनमप्यधात्सीत्^३ ॥२२०॥

हरिणी

धृततटवने रक्ताशोकप्रवालपुटोद्भिदि^४ स्तृशति पवने मन्द मन्द तरङ्गविभेदिनि ।
अनुस्तरसरित्तन्त्रैः सार्धं प्रभुः सुग्यमावसज्जलनिधिजयश्लाघाशीर्भिजिनाननुचिन्तयन् ॥२२१॥

इत्यायं भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसङ्ग्रहे पूर्वार्णवद्वारविजयवर्णन
नामाष्टाविंश पर्व ।

सचय करना चाहिये ॥२१९॥ इस प्रकार जिमने लोगोके समूहसे पुण्यकी घोषणा सुनी है
ऐसे चतवर्ती भरत, अपने पुण्यकर्मके उदयमे प्राप्त हुए इष्ट वस्तुओके लाभकी प्रशंसा करते
हुए सभा-भवनमे पहुँचे और वहाँ राजाओके समूहके मध्यमें इन्द्रके समान बड़े भारी राज-
सिंहासन पर आरूढ हुए ॥२२०॥ जिस समय किनारेके वनको हिलानेवाला, रक्त अशोक
वृक्षकी कोपलोके सपुटको भेदन करनेवाला और लहरोको भिन्न भिन्न करनेवाला वायु धीरे
धीरे वह रहा था उस समय समुद्रको जीतनेकी प्रशंसा और आशीर्वादके साथ माय जिनेन्द्र
भगवान्‌का स्मरण करते हुए भरतने गङ्गा नदीके किनारे किनारे ठहरो हुई सेनाके माथ मुग
रो निवास किया था ॥२२१॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसङ्ग्रहके
भाषानुवादमें पूर्वममृदके द्वारको विजय करनेका वर्णन
करनेवाला अष्टाविंशत्वा पर्व समाप्त हुआ ।

८

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

अथ चक्रधरो जंजी कृत्वेज्यामिष्टसाधनीम् । प्रतस्ये दक्षिणामाशा जिगोपुरनुतोयधि ॥१॥
 'यतोऽस्य' पददक्काना ध्वनिरामन्द्रमुच्चरन् । मूर्च्छित^१ काहलारावे अग्निध्वान तिरोदधे^२ ॥२॥
 प्रयाणभेरोनि स्वान सम्मूर्धन्^३ गजबृ हितं । दिङ्मुखाग्नयनयत् क्षोभ हृदयानि च विद्विषाम् ॥३॥
 विबभू पवनोद्भूता जिगीषोजंयकेतना । वारिधेरिय कलोलान् उद्वेला^४ नाजुहृपव^५ ॥४॥
 एकतो लवणाम्भोधि अग्न्यतोऽप्युपसागर । तन्मध्ये 'यान्वलोघोऽस्य तृतीयोऽग्निपरिवायवनी ॥५॥
 हस्त्यश्वरयपादात् देवाश्च सनभश्चरा । पङ्कग बलमस्येति पप्रथे व्याप्य रोदसी^६ ॥६॥
 पुर^७ प्रतस्ये दण्डेन^८ चक्रेण तदनन्तरम् । ताभ्या विशोधिते मार्गे तद्बल प्रययौ सुखम् ॥७॥
 तच्चक्रमरिचक्रस्य केवल क्रकचापितम्^९ । दण्डोऽपि दण्डपक्षस्य कालदण्ड^{१०} इवापर ॥८॥
 प्रययौ निकषाम्भोधि^{११} समया तटवेदिकाम्^{१२} । अनुवेलावन सग्राद् संग्यं सथावयन्^{१३} दिश ॥९॥
 अन्वार्धितट^{१४} कर्षन्नलद्वघा स्वामनीकिनीम् । अज्ञातता नृपाद्रीणा मूर्ध्नि रोपयति स्म स ॥१०॥
 चलिते चलित पूर्वं नियति निःसृत पुर । प्रयाते यातमेवास्मिन्^{१५} सेनानीभिरिवारिभि ॥११॥

अथानन्तर—चक्रवर्ती भरत समस्त इष्ट वस्तुओको सिद्ध करनेवाली जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर दक्षिण दिशाको जीतनेकी इच्छा करते हुए समुद्रके किनारे किनारे चले ॥१॥ जिस समय चक्रवर्ती जा रहा था उस समय तुरहीके शब्दसे मिली हुई बड़े बड़े नगाडोकी गभीर ध्वनि समुद्रकी गर्जनाको भी ढक रही थी ॥२॥ हाथियोंकी चिंगघाडोसे मिले हुए प्रस्थानके समय बजनेवाले नगाडोके शब्द समस्त दिशाओ तथा शत्रुओके हृदयोंको क्षोभ प्राप्त करा रहे थे ॥३॥ जीतनेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्तीकी वायुसे उड़ती हुई विजय-पताकाए ऐसी सुशो-भित हो रही थी मानो ज्वारसे उठी हुई समुद्रकी लहरोंकी ही बुला रही हो ॥४॥ उस सेनाके एक ओर (दक्षिणकी ओर) तो लवण समुद्र था और दूसरी (उत्तरकी) ओर उपसागर था उन दोनोंके बीच जाता हुआ वह सेनाका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो तीसरा समुद्र ही हो ॥५॥ हाथी, घोड़े, रथ, पिपादे, देव और विद्याधर यह छह प्रकारकी चक्रवर्तीकी सेना आवाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर सब ओर फैल गई थी ॥६॥ सेनामें सबसे आगे दण्डरत्न और उसके पीछे चक्ररत्न चलता था तथा इन दोनोंके द्वारा साफ किये हुए मार्गमें मुत्तपूर्वक चक्रवर्तीकी सेना चलती थी ॥७॥ चक्रवर्तीका वह एक चक्र ही शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेके लिये बरोतके समान था तथा दण्ड ही दण्ड देने योग्य शत्रुओंके लिये दूसरे यमदण्डके समान था ॥८॥ सग्राद् भरत समुद्रके समीप समीप विनारेकी वेदीके पास पास विनारेके अनुसार अपनी सेनाके द्वारा दिशाओंको गुजाते हुए—सचेत करते हुए चले ॥९॥ अपनी अल्पनीय सेनाको समुद्रके विनारे विनारे चलाते हुए चक्रवर्ती भरत अपनी आत्मा-न्वी रत्ताको राजारूपी पर्वतोंके मस्तकपर चूडाते जाते थे ॥१०॥ महाराज भरतके शत्रु उावे सेनापतियोंके समान थे, क्योंकि जिस प्रकार महाराजके चलनेकी इच्छा होते ही सेनापति

१ गच्छन् । २ पट्ट प०, द०, द० । ३ मिथित । ४ आच्छादयति स्म । ५ मिथीभवन् ।
 ६ उज्ज्वलितान् । ७ दण्डोऽपि दण्डपक्षस्य । ८ गच्छन् । ९ छाकापृथिव्यौ । 'भूराको रोदयो रोदती च
 १० दण्डरत्न । ११ दण्डरत्न । १२ चक्ररत्नस्य धारितम् । १३ यमस्य दण्ड । १४ अग्निध्वो समीपम् ।
 निरया स्वर्गस्य मध्य १५ तटवेदिकाया र्धाम्ने । १६ सापयन् । १७ प्रापयन् । १८ भरते ।

निष्क्रान्त इति सम्भ्रान्तं रायात इति भोवशं । प्राप्त' इत्यनवस्यंश्च' प्रणेमे सोऽरिभूमिपं ॥१२॥
 ३ महापगारयस्येव तदरस्य बलीयस । यो य 'प्रतीपमभवत् स स निर्मूलता ययौ ॥१३॥
 'प्रतीपवृत्तिमादशौ द्यायात्मान' च नात्मन । विन्मंकरत्तदश्वी सोऽशोड' किमुत द्विपम् ॥१४॥
 चमूरदश्वदेव' कंश्चिदस्य विरोधिभि । 'चमूरवृत्तमारव्यम् श्रतिदूर पलायितं' १० ॥१५॥
 ११ महाभोगैर्नृपं कंश्चिद भयादुत्सृष्टमण्डलं ११ । भुजङ्गैरिव निर्मोकं तत्पजेऽपि परिच्छद ११ ॥१६॥
 प्रदुष्टान् भोगिन ११ कारिचत् प्रभुरुदस्य मन्त्रत ११ । वल्मीकेष्विव दुर्गेषु ११ कृत्यान्व्यानतिलिपत् ११ ॥१७॥

पहले ही चलनेके लिये तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजको चलनेके लिये तत्पर सुनकर स्वयं चलनेके लिये तत्पर हो जाते थे अर्थात् स्थान छोड़कर भागनेकी तैयारी करने लगते थे अथवा भरत की ही शरणमें आनेके लिये उद्यत हो जाते थे, जिस प्रकार महाराज के नगरमें बाहर निकलते ही सेनापति उनसे पहले बाहर निकल आते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजको नगरसे बाहर निकला हुआ सुनकर स्वयं अपने नगरसे बाहर निकल आते थे अर्थात् नगर छोड़कर बाहर जानेके लिये तैयार हो जाते थे अथवा भरतसे मिलनेके लिये अपने नगरसे बाहर निकल आते थे और जिस प्रकार महाराजके प्रस्थान करते ही सेनापति उनसे पहले प्रस्थान कर देते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजका प्रस्थान सुनकर उनसे पहले ही प्रस्थान कर देते थे अर्थात् अन्यत्र भाग जाते थे अथवा चक्रवर्तीसे मिलनेके लिये बागे बढ़ आते थे ॥११॥ चक्रवर्ती भरत नगरमें बाहर निकला यह सुनकर जो व्याकुल हो जाते थे, चक्रवर्ती आया यह सुनकर जो भयभीत हो जाते थे और वह समीप आया यह सुनकर जो अस्थिरचित्त हो जाते थे ऐसे शत्रु राजा लोग उन्हें जगह जगह प्रणाम करते ॥१२॥ जिस प्रकार किसी महानदीके बलवान् वेगके विरुद्ध खड़ा हुआ वृक्ष निर्मूल हो जाता है—जड़ सहित उखड़ जाता है उसी प्रकार जो राजा उस बलवान् चक्रवर्तीके विरुद्ध खड़ा होता था—उसके सामने विनयभाव धारण नहीं करता था वह निर्मूल हो जाता था—वशसहित नष्ट हो जाता था ॥१३॥ एक पराक्रम ही जिसे प्रिय है ऐसा वह भरत जब कि दर्पणमें उल्टे पड़े हुए अपने प्रतिविम्बको भी सहन नहीं करता था तब शत्रुओंको किस प्रकार सहन करता ? ॥१४॥ कितने ही विरोधी राजाओंने तो उनकी सेनाका शब्द सुनते ही बहुत दूर भागकर हरिणकी वृत्ति प्रारम्भ की थी ॥१५॥ और कितने ही वैभवशाली बड़े बड़े राजाओंने भयसे अपने अपने देश छोड़कर छत्र चमर आदि राज्य-चिह्नोंको उस प्रकार छोड़ दिया था जिस प्रकार कि बड़े बड़े फणाओंको धारण करनेवाले सर्प अपने बलयाकार आसनको छोड़कर वाचली छोड़ देते हैं ॥१६॥ जिस प्रकार दुष्ट सर्पोंको मंत्रके जोरसे उठाकर वामीमें डाल देते हैं उसी प्रकार भरतने अन्य कितने ही भोगी-विलासी दुष्ट राजाओंको मंत्र (मन्त्रियोंके साथ की हुई सलाह) के जोरसे उखाड़कर किलोमें डाल दिया था, उनके स्थानपर अन्य कुलीन राजाओंकी बैठायी

१ समीप प्राप्त । २ अवस्थामतिश्रान्तं । त्यक्तपूर्वस्वभावैरित्यर्थ । ३ महानदीवेगस्य । ४ प्रतिबुद्धम् । ५ प्रतिबुद्धवृत्तिम् । ६ द्यायास्वरूपम् । 'आत्मा यना धृतिर्दुःखि स्वभावो ब्रह्म यमं च' इत्यमरः । ७ सहति स्म । ८ सेनाध्वनिप्रभावर्णनान् । ९ वम्भाजादिदेशजक्रुणविकीर्णकर्मणम् । 'वदन्ती वदन्ती चीनदश्वमूरप्रियवापि । समूररश्नेति हरिणा अमी अजिनयोनय ।' इत्यभिधानान् । १० पलायिभि त०, प०, द०, । ११ पशुं महावायं । 'भोग सुषे स्थादिभूतावहेरव फणवाययो' इत्यभिधानात् । १२ त्यक्तभूमिर्णम् । पशुं त्यक्तवचनम् । १३ परिच्छदोऽपि छत्रचामरादिपणिकरोऽपि परित्यक्त । १४ पशुं मर्णम् । १५ मन्त्रशक्तिम् । १६ सन्कुमजान् । १७ स्थापयति स्म ।

धनन्यशरणंरन्यस्तापविच्छेदमिच्छन्भि । तत्पादपादपच्छाया न्यपेधि सुखदोतता ॥१८॥
 केषाञ्चित् पत्रनिर्मोक्षं दद्यात्पापयं च भूभुजात् । पादपानामिव ग्रीष्म समभ्यर्षदचकार स ॥१९॥
 ध्वस्तोष्मप्रमरा^१ गाढम् उच्छ्वसन्नोऽन्तराकुला । प्राप्तेऽस्मिन्^२ वैरिभूपाला प्राप्सुर्मतव्यशेषताम् ॥२०॥
 "वैरकाम्यति य^३ स्मास्मिन् प्रागेव विनताश स । विदिध्यापयियुर्घोह्न शलम कुशली किम् ॥२१॥
 वस्तुवाहनसर्वस्वम आच्छिद्य^४ प्रभुराहरन्^५ । अरित्वमरिचक्रेतु^६ व्यक्तमेव चकार स ॥२२॥
 स्वयमर्षितसवस्वा नमन्तश्चक्रवर्तिनम् । पूर्वमप्यरय पश्चाद् ग्रथिकारित्व^७माचरन् ॥२३॥
 साधन^८रमुनाश्रान्ता या परा धृतसाध्वसा^९ । साधनंरव त तोष नीत्याऽभूद्भूतसाध्वसा ॥२४॥
 कुल्या^{१०} कुलघनान्वस्मं दत्वा स्वा भुवमाजिजन^{११} । कुल्या^{१२} धनजलोपस्य जिगोषोस्ते हि पार्थिवा ॥२५॥
 प्रजा करभराश्रान्ता यस्मिन् स्वामिति दु स्थिता^{१३} । तमुद्भूत्य पदे तस्य युक्तदण्ड^{१४} न्यषाद् विभु ॥२६॥

था ॥१७॥ जिन्ह अन्य कोई शरण नहीं थी और जो अपना सताप नष्ट करना चाहते थे ऐसे वितने ही राजाओंने सुख तथा शान्ति देनेवाली भरतके चरणरूपी वृक्षोकी छायाका आश्रय लिया था ॥१८॥ जिस प्रवार समीप आया हुआ ग्रीष्म ऋतु वृक्षोके पत्र अर्थात् पत्तोंका नाश कर देता है और उनकी छाया अर्थात् छाहरीका अभाव कर देता है उसी प्रकार समीप आये हुए भरतने कितने ही राजाओंके पत्र अर्थात् हाथी घोड़े आदि वाहनो (सवारियों) का नाश कर दिया था और उनकी छाया अर्थात् कान्तिका अभाव कर दिया था । भावार्थ—भरतके समीप आते ही कितने ही राजा लोग वाहन छोड़कर भाग जाते थे तथा उनके मुखकी कान्ति भयसे नष्ट हो जाती थी ॥१९॥ महाराज भरतके समीप आते ही शत्रु राजाओंका सब तेज (पक्ष नों गर्मी) नष्ट हो गया था उनके भारी भारी स्वामोच्छ्वास चलने लग थे और वे अन्त वरण में व्याकुल हो रहे थे, केवल उनका मरना ही बाकी रह गया था ॥२०॥ जिस पुरुषने भरतके माय शत्रुता करनेकी इच्छा की थी वह पहले ही नष्ट हो चुका था, सो ठीक ही है क्योंकि अग्नि को बुझानेकी इच्छा करनेवाला पतंगा क्या कभी मनुशाल रह सकता है ? अर्थात् नहीं ॥२१॥ महाराज भरतने शत्रुओंके हीरा मोती आदि रत्न तथा सवारी आदि सब धन छीन लिया था और इस प्रवार उन्होंने समस्त अरि अर्थात् शत्रुओंके समहको स्पष्ट रूपसे अरि अर्थात् धन-रहित कर दिया था ॥२२॥ अपने आप समस्त धन भट कर चक्रवर्तीको नमस्कार करनेवाले राजा लोग यद्यपि पहले शत्रु थे तथापि पीछेमे वे बड़े भारी अधिकारी हुए थे ॥२३॥ जो पृथिवी पर भगवती गेनामे आदान्त हाकर भयभीत हो गयी थी वही पृथिवी अब अपने धनसे भरत का शत्रुत्व प्राप्त करगार निर्भय हो गई थी ॥२४॥ उच्च गुलामे उत्पन्न हुए अनेक राजाओं ने भरतके दरत अरि अपनी शत्रु परम्परामे घटा जाया धन देकर फिरसे अपनी पृथिवी प्राप्त की थी सो ठीक ही है क्योंकि शत्रु अर्थात् शत्रु-परम्परामे आया हुआ धन जोर कृत्या अर्थात् शत्रुमें उत्पन्न हुआ जब ये शत्रु ही पृथिवीमें उत्पन्न हुए पदार्थ, जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजाने होते हैं ॥२५॥ जिस राजाने रहते हुए प्रजा करके बोभने देव पर दु गी हो गयी थी,

१ वाह्यारित्वात् । २ प्राप्तेऽस्मिन् । ३ गमीपय । ४ विरक्तप्रभाव प्रमरा । ५ प्राप्तेऽस्मिन् । ६ अरिभूपा । ७ अरिभूपा । ८ साधनं । ९ साधनं । १० कुल्या । ११ कुल्या । १२ कुल्या । १३ कुल्या । १४ कुल्या । १५ कुल्या । १६ कुल्या । १७ कुल्या । १८ कुल्या । १९ कुल्या । २० कुल्या । २१ कुल्या । २२ कुल्या । २३ कुल्या । २४ कुल्या । २५ कुल्या । २६ कुल्या ।

निजग्राहं नृपान् वृप्तान् प्रनुजग्राहं सत्त्रियान् । न्यायः^१ क्षात्रो^२ऽप्यभित्येव प्रजाहितविधितया ॥२७॥
योगक्षेमी जगत्त्रियं न प्रजास्त्रेव केवलम् । प्रजापालेष्वपि प्रायस्तस्य चिन्त्यत्वमीयतुः ॥२८॥
पार्यवसद्वैकराष्टस्य^३ मतावर्णाश्रमाः प्रजा^४ । पार्यथाः सार्वभौमस्य^५ प्रजायतेन ते^६ पृताः ॥२९॥
पुत्र साधनमस्यैकं चक्रं तस्यैव पोषकम् । तद्द्वयं साध्यसिद्धिद्वयं सेनाद्रूपानि विभूतये ॥३०॥
इति मण्डलभूपालान् बलत् प्राणमयप्रथमम्^७ ।^८ मानमेवाभनक्तु^९ तेषां न सेवाप्रणय विभुः ॥३१॥
प्रतिप्रयागमभ्येत्य^{१०} प्राणसिपूरम् नृपाः । प्राणरक्षाभिवास्यात्ता बहन्तः स्वेषु मूर्धसु ॥३२॥
प्रगताननुजग्राह सातिरेकं^{११} फलैः प्रभुः । किमु कल्पतरुः सेवास्यफलात्फलापि वा ॥३३॥
सम्प्रेक्षितः स्मिर्नर्हासिः सविश्रम्भद्व^{१२} जल्पिनः^{१३} । सम्राट् सम्नावयामाम नृपान् सम्मानतैरपि^{१४} ॥३४॥
स्मिर्नः प्रसवैः सञ्जल्पैः विस्मयन् हसितैर्मुदम् । प्रेक्षितैरनुरागं च व्यनक्ति स्म नृपेषु सः ॥३५॥

भरतने उसे हटाकर उसके पदपर किसी अन्य नीतिमान् राजाको बैठाया था ॥२६॥ उन्होंने अहंकारी राजाओंको दण्डित किया था और मत्कार अथवा उत्तम कार्य करनेवाले राजाओं पर अनुग्रह किया था सो ठीक ही है क्योंकि प्रजाना हित करनेकी इच्छाने क्षत्रियोंका यह ऐसा न्याय ही है ॥२७॥ राजा भरतने जगत्की स्थितिके लिये केवल प्रजाके विपयमें ही योग (नवीन वस्तुको प्राप्त करना) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना) की चिन्ता नहीं की थी किन्तु प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाओंके विपयमें भी प्राय उन्हें योग और क्षेमकी चिन्ता रहती थी ॥२८॥ किसी एक देगके राजाकी प्रजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों रूप मानी जाती है परन्तु चक्रवर्तीकी प्रजा नञ्जीभूत हुए राजा लोग ही माने जाते हैं इसलिये चक्रवर्तीको प्रजाने माय माय राजाओंकी चिन्ता करना भी उचित है ॥२९॥ भरतके ममस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाला एक पुण्य ही मुख्य साधन था, और चक्ररत्न उस पुण्यकी पुष्टि करनेवाला था, पुण्य और चक्ररत्न ये दोनों ही उसके माध्य (सिद्ध करने योग्य विजय रूप कार्य) की सिद्धि के अग थे, बाकी हाथी घोड़े आदि सेनाके अग केवल वैभवके लिये थे ॥३०॥ इस प्रकार मण्डलेश्वर राजाओंसे बलपूर्वक प्रणाम कराने हुए चक्रवर्तीने उनका केवल मान भग ही किया था, अपनी सेवाके लिये जो उनका प्रेम था उसे नष्ट नहीं किया था ॥३१॥ प्राणोष्ठी रक्षाने समान भरतकी आज्ञाको अपने मन्त्रकपर धारण करते हुए अनेक राजा लोग प्रत्येक पडावपर आकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥३२॥ प्रणाम करनेवाले राजाओंको महाराज भरतने बहुत अधिक फल देकर अनुगृहीत किया था सो ठीक ही है क्योंकि कल्पवृक्षकी सेवा क्या सभी फलरहित अथवा थोडा फल देनेवाली वृक्ष है ? ॥३३॥ सम्राट् भरतने कितने ही राजाओंकी ओर देगकर, कितने ही राजाओंकी ओर मुमकराकर, कितने ही राजाओंकी ओर हमकर, कितने ही राजाओंके माय विश्वामपूर्वक वार्तालाप कर, और कितने ही राजाओं वा सम्मान कर उन्हें प्रसन्न किया था ॥३४॥ उन्होंने कितने ही राजाओंपर मुमकराकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी, कितने ही राजाओंपर वार्तालाप कर अपना विश्वास प्रकट किया था, कितने ही राजाओंपर हमकर अपना हर्ष प्रकट किया था और कितने ही राजाओंपर प्रेमपूर्ण

१ निग्रह करोति स्म । २ दर्पांकटात् । ३ स्वीकृत्यात् । ४ न्यायादपेन । ५ क्षत्रियवर्गम् ।
६ पार्यवेषु । ७ एष देवतात् । ८ क्षत्रियादिवर्गा पञ्चवर्णाणा आश्रमा । ९ प्रजायते १०, १० ।
१० पार्यथा । ११ स्वीकृत्या । १२ प्रहृष्टभूतान्मूर्धसु । १३ गर्वमेव । १४ भवेयति स्म । 'भद्राऽऽवमर्धने' ।
१५ ममगुरुंति स्म । १६ तैर्देवपत्न्या सापिर्णा । १७ म्निग्वावर्णोपनं । १८ मन्त्रेण । १९ न विन्यायं ।
'गमो विश्रम्भविज्यायो' इत्यमरः । २० बचने । २१ कथाभरतादिपुत्रं ।

'प्रताप्योऽतः प्रगतानेय' 'सगताप्सोद् विरोधिन । दामप्रतापो क्षमा जेतु' पाथिव्योचितौ गुणौ ॥३६॥
 प्रसन्नया दुर्शवास्य प्रसाद प्रणते रिपी । भ्रूभङ्गनेगास्फुटत् कोप सत्य बटुनटौ' नृप ॥३७॥
 'अङ्गान्मणिभिरत्यङ्गं वडगास्तुङ्गमंत'ङ्गाजं । तंश्च तंश्च कलिङ्गेशान् सोऽप्यन्यद्वयुपानतान्' ॥३८॥
 'मागधापितमेवास्य स्फुट' 'मागधिवं नृपं' । कीर्तयद्भिर्गुणानुच्यं प्रसादमभिलाषुषं ॥३९॥
 कुरुनवन्तान् पाञ्चालान् काशीश्च सह कीसलं । यदभानिप्यनापासाद् घ्राचक्षयं' चमूपति ॥४०॥
 'व्रजन् मद्राश्च कच्छश्च चेदोन वत्सान् ससृह्यावान् । पुण्ड्रानोण्ड्राश्च गौडाश्च' 'मतमथावयद् विभो' ॥४१॥
 दशार्णान् कामरूपाश्च काश्मीरान्पुण्ड्रानान् । मध्यमानपि भूपालान् सोऽधिवाद् वशमानयत् ॥४२॥
 वदुरस्मं नृपा प्राच्यकलिङ्गाङ्गारजान्' गजान् । गिरीनिव महोच्छ्रायान्' 'प्रदत्तोत्तमदनिर्भरान् ॥४३॥
 'दशानकवन्दोद्भूतानपि चेदिककूशजान्' । दिङ्नागस्पर्धनो नागान्' 'प्रादुर्नाग' वनाधिपा ॥४४॥
 विभोर्वैतभरक्षोभम् ध्रासहन्तीव दु सहम् । सुयुवेऽन्तरत्नानि गर्भिणीव' वक्तुधरा ॥४५॥

दृष्टि डालकर अपना प्रेम प्रकट किया था ॥३५॥ उन्होंने नम्नीभूत राजाओको सतुष्ट किया था और विरोधी राजाओको अच्छी तरहसे सतप्त किया था सो ठीक ही है क्योंकि पृथिवीको जीतनेके लिये शान्ति और प्रताप ये दो ही राजाओके योग्य गुण माने गये हैं ॥३६॥ राजा भरत नमस्कार करनेवाले पुरुषपर अपनी प्रसन्न दृष्टिसे प्रसन्नता प्रकट करते थे और साथ ही रात्रुके ऊपर भौह टेंढी कर क्रोध प्रकट करते जाते थे इसलिये यह उचित सच मालूम होती है कि राजा लोग नट तुल्य होते हैं ॥३७॥ उत्तम उत्तम मणियोंको भेंट कर नमस्कार करते हुए अग देशके राजाओपर ऊंचे ऊंचे हाथियोंको भेंट कर नमस्कार करते हुए वग देशके राजाओ पर और मणि तथा हाथी दोनोंको भेंट कर नमस्कार करते हुए कलिङ्ग देशके राजाओपर वह भरत बहुत ही प्रसन्न हुए थे ॥३८॥ भरतेश्वरके प्रसादकी इच्छा करनेवाले मगध देशके राजा उनके उन्कृष्ट गुण गा रहे थे इसलिये वे ठीक मागध अर्थात् बन्दीजनोंके समान जान पड़ते थे ॥३९॥ भरत महाराजके सेनापतिने कुर, अवती, पाचाल, काशी, कोशल और वैदर्भ देशोंके राजाओको विना किसी परिश्रमके अपनी ओर खींच लिया था अर्थात् अपने वज्र कर लिया था ॥४०॥ मद्र, कच्छ, चेदि, वत्स सुह्य, पुण्ड्र, औण्ड्र और गौड देशोम जा जा कर सेनापतिने सब जगह भरत महाराजकी आज्ञा सुनाई थी ॥४१॥ उसने दशार्ण, कामरूप, काश्मीर, उजानर और मध्यदेशके समस्त राजाओको बहुत शीघ्र वज्र कर लिया था ॥४२॥ वहाके राजाओ ने जिनसे मदके निर्भरने भर रहे हैं ऐसे, पूर्व देशमे उत्पन्न होनेवाले तथा कलिङ्ग और अगार देशमें उत्पन्न होनेवाले, पक्षोंके समान ऊंचे ऊंचे हाथी महाराज भरतके लिये भेंटमे दिये थे ॥४३॥ जिनमें हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसे वनोंके स्वामियोने दिग्गजोंके साथ स्पर्द्धा करनेवाले, दशार्णव यनमें उत्पन्न हुए तथा चेदि और कसेर देशमें उत्पन्न हुए हाथी महाराजके लिये प्रदान किये थे ॥४४॥ उस समय भरतेश्वरको पृथिवीपर जहा तहा अनेक रत्न भेटम मिल रहे थे अर्थात् ऐमा जान पड़ता था मानो गर्भिणीके ममान पृथिवीने चक्रवर्तीकी सेनाके बोभते उत्पन्न हुए दु मह क्षोभवों न मह मवनेके वारण ही अनात रत्न उत्पन्न किये हुए हो ॥४५॥

१ गणसामान । २ गनापयनि स्म । ३ जेतु ल०, ६०, अ०, ५०, स० । ४ व्यक्तो वभूव । ५ नग्नदृग् । ६ अटगद'ताधिपान् । ७ अनर्घ्ये । ८ आनतान् । ९ मागधीमित -५०, ६० । १० मगधाधिपं । ११ स्वीकृतवान् । १२ गच्छद् । १३ दशानम्, अज्ञानं पथ । १४ प्राङ्निगमर्षिभारिन्गदेगाङ्गारजान् । १५ गजान् । १६ दशार्णदेशाम्बधि । १७ परिदणन' शान् । १८ दर्पानि स्म । १९ गजवा । २० गभस्वनिगुरिव ।

आपाण्डरगिरिप्रस्थात् आ च वंभारपर्वतात् । आजाताद् गोरवाद्यस्य विचे' र्गर्जयकुञ्जरा ॥४६॥
 वदगाद्यागुण्डमगयान् मलवान् बाणिकीसलान् । सेनानो परिवध्याम ण्गिोधुजयमानर्न ॥४७॥
 कालिन्दकालकृटी च विरालवियय तथा । मन्तदेशे च सप्रप्रापन्म'तादन्य' चनूपति ॥४८॥
 घूर्नी सुमागधी गङ्गा गोमती च कशीरतीन् । रयास्का' च नदीं तीर्त्वा' च'मुरस्थ चमूजगा ॥४९॥
 गन्भीरामतिगम्भीरा कालतोया च शौशिकीम् । नदीं बालमहो' ताग्याम् अरुणा निचुरामपि' ॥५०॥
 त लोहित्य'समुद्र च कञ्जुक च महत्तर । चक्षुमतद्रगतास्तस्य नेत्रु प्राव्य'वतोपगा ॥५१॥
 दक्षिणेन' नद शोषन् उत्तरेण च नर्मदाम् । वीजानदीमुभयन- परितो मेखलानदीम् ॥५२॥
 विचेर स्वहुरोद्भूतघृतीनरुद्धदिगुष्ठा । 'जयिनोऽग्न्य स्फुरत्योषा' जयनाथनवादिन ॥५३॥
 औदुम्बरी' च पनना तमसा प्रमृशामपि । 'पपुरस्थ द्विपा शुक्तिमती च यमुनानपि ॥५४॥
 चेदिपर्वतमन्तद्वधय वेदिराष्ट्र' विजिग्यरे' । पम्पा'सरोऽम्नोऽजिताया विभीरस्य तुरद्रामो ॥५५॥
 तनूप्यमूकमात्रम्य कालाहलगिरि त्रिना । प्राङ्मान्यगिरिमानिदु- जयिनोऽग्न्य जयद्विपा ॥५६॥
 नागप्रियाद्रिनाक्रम्य 'कृतपावतया विभो । सेनाचरा स्वसाच्यद् गमाश्चेदिक'कूशजान्' ॥५७॥
 नदीं वृधवती' कान्वा वन्येभक्षतरोधसम्' । भेजुदिवनवर्नामस्य चमूवीरास्तुरद्रगम् ॥५८॥

हिमवान् पर्वतके निचले भागमे लेकर वंभार तथा गौरय पर्वत तक मत्र जगह भरत महाराज के विजयी हाथी घूम रहे थे ॥४६॥ गजको जीतनेकी इच्छा करनेवाला भरतका मेनापति अपनी विजयी मेनाके साथ साथ दग, अग, पड्ड, मगघ, मालव, कागी और वींगल देगोभ सब जगह घूमा था ॥४७॥ भरतकी ममतिमे वह मेनापति कालिन्द, काञ्जुक, भीशोका देग, और मन्त देगमें भी पहुंचा था ॥४८॥ उनकी मेनाके हाथी सुमागधी, गगा, गोमती, कशीरती और रेवम्या नदीको तरकर जहा-तहा घूम रहे थे ॥४९॥ पूर्व दिशाके पाम पाम जानेवागे उनकी सेनाके हाथी अत्यन्त गहरी गनीग, कालतोया, शौशिकी, बालमहो, ताग्या, अरुणा और निचुरा आदि नदियो तथा लोहित्य समुद्र और कञ्जुक नामके बडे बडे मरोवरोंमें घूमे थे ॥५०-५१॥ जिन्होंने अपने मुरोने उठी हुई धूमिगे समस्त दिगाने भद्र दी है, जो बडे वेगगाथी है और जिनके नयने चचल हो रहे है ऐसे महाराज भरतकी विजयी मेनाके घोडे घोण नामके नदकी दक्षिण ओर, नर्मदा नदीकी उत्तर ओर, वीजा नदीके दोनों ओर और मेखला नदीके चारो ओर घूमे थे ॥५२-५३॥ भरतने हाथियोने उदुम्बरी, पनना, तमसा, प्रमृगा, शुक्तिमती और यमुना नदीका पान किया था ॥५४॥ चक्रवर्तीने घोडोने पम्पा मगावरके जगको पार किया था तथा चेदि नामके पर्वतको उल्लखन कर चेदि नामके देगको जीता था ॥५५॥ सत्रको जीतनेवाले भरतके विजयी हाथी ऋष्यमूक पर्वतको उल्लखन कर कोशुहल पर्वत तक जा पहुंचे थे और फिर माल्य पर्वतके पूर्व भागके समीप भी जा पहुंचे थे ॥५६॥ भरतकी मेनाके लोभोने लीलापूर्वक नागप्रिय पर्वतको उल्लखन कर चेदि और कमेर देगमें उत्पन्न हुए हाथियोको अपने आधीन कर लिया था ॥५७॥ उनकी सेनाके वीर पुन्य घोडोके द्वारा क्षत्रवती नदीको पार कर जिनके किनारे जगली हाथियोने खूदे गये है ऐसी विद्व-

१ चरन्ति स्म । २ मलवान् ३०, अ० । मालवान् ५० । मानवान् ६०, ८० । ३ आजात ।
 ४ चक्रिण । ५ रयस्या अ० । रेवम्या ५०, ८० । रेवम्या ६० । ६ अकनीयं । ७ निचुरामपि ८० ।
 ८ लोहि यमुद्रनामरोवरम् । ९ पूर्व । १० वीजानस्य दक्षिणस्या दिशि । ११ चैग्नि । १२ नाशिका ।
 १३ उदुम्बरी ६०, ६०, अ०, ५०, ८०, ६० । १४ 'ययु' इयपि पाठ । याननकर्वन् । १५ चदिगाम् ।
 १६ जयन्ति स्म । १७ पम्पानरोडलमतिशाला । १८ दहती । १९ -मेरुद्वान् ८०, ८० । २० वंशवती
 ३० । वृधवती ५० । वृत्तवती अ०, ८० । २१ वनाङ्गमुण्डवाम् ।

हृदधा माल्यवतीतीरवन यन्वेभसङ्कलम । यामुन च पय पीत्या जिग्युराय द्विपा विदा ॥५६॥
 प्रनुबेणुमतीतीर गत्वास्य जयसाधनम्^१ । यत्सागुमि रामाश्रम्य^२ वशाणामिप्यलद्रघयत् ॥६०॥
 विशाला नालिका सिन्धु परा निष्कुन्दरीमपि । बहुवज्रा च रम्या च नदीं सिक्वतिनीमपि ॥६१॥
 ऊहा^३ च समतोया च कञ्जामपि कपीवतीम् । निविन्ध्यां च धुनीं जम्बूमतीं च सरिदुत्तमाम् ॥६२॥
 वसुमत्यापगामविधगामिनीं शर्करावतीम् । सिप्रा च कृतमाला च परिञ्जा पनसामपि ॥६३॥
 नदीमवन्तिकामा च हस्तिपानीं च निम्नगाम् । कागन्धुभापगा^४ व्याध्रीं धुनीं चर्मण्वतीमपि ॥६४॥
 शतभोगा च नन्दा च नदीं करभवेगिनीम् । चुल्लितापीं च रेवा च सप्तपारा च कौशिकीम् ॥६५॥
 सरितोऽमूरगाधापा विष्णवाब्ध्य तद्बलम् । तुरङ्गमक्षुरोत्खाततीरा विस्तारिणीव्यधान् ॥६६॥
 तैरश्चिक गिरिं कान्त्वा हृदधा वेङ्कयभूधरम् । भटा कूटाद्रिमूलद्रघय पारियाश्रमशिथिपन् ॥६७॥
 गत्वा पुष्पगिरे प्रस्थान् सानून् सितगिरेरपि^५ । गदागिरेनिकञ्जेपु^६ बलान्यस्य विशश्रमु^७ ॥६८॥
 वातपृष्ठवरीभागा^८ नृक्षवत्^९ कृक्षिभि^{१०} समम् । तत्सैनिका श्यन्ति स्म कम्बलाद्रितटान्यपि ॥६९॥
 वासवन्त महाशैल विलडघाजसुरधूपन^{११} । स्थित्वाऽस्य सैनिका प्रापन् मदेभानङ्गरेयिका^{१२} ॥७०॥
 नि सप्लमिति भ्रेमु इतश्चेतश्च सैनिका । द्विपान् वनविभागेपु^{१३} कर्बन्तोऽस्य निर्जर्ज ॥७१॥
 दुस्तरा सुतरा जाता सम्भुक्ता सरितो बलं । स्वारोहाश्च^{१४} दुरारोहा गिरय क्षुण्णसानव ॥७२॥

वती नदीको प्राप्त हुए थे ॥५८॥ जगली हाथियोसे भरे हुए माल्यवती नदीके किनारेके वनको घेरकर तथा यमुना नदीका पानी पीकर भरतके हाथियोने उस ओरकी समस्त दिशाएँ जीत ली थी ॥५९॥ उनकी विजयी सेनाने वेणुमती नदीके किनारे किनारे जाकर वत्स देशकी भूमिपर आक्रमण किया और फिर दशार्णा (धमान) नदीको भी उल्लघन किया—पार किया ॥६०॥ भरतकी सेनाने विशाला, नालिका, सिन्धु, पारा, नि कुन्दरी, बहुवज्रा, रम्या, सिक्वतिनी, कुहा, समतोया, वजा, कपीवती, निविन्ध्या, नदियोमे श्रेष्ठ जम्बूमती, वसुमती, ममुद्र तक जानेवाली शर्करावती, सिप्रा, कृतमाला, परिजा, पनसा, अवन्तिकामा, हस्तिपानी, कागधुनी, व्याध्री, चर्मण्वती, शतभोगा, नन्दा, करभवेगिनी, चुल्लितापी, रेवा, सप्तपारा, और कौशिकी इन अगाध जलसे भरी हुई नदियोको चारो ओरसे घेरकर जिनके किनारे घोडोके चुरोसे खुद गये हैं ऐसी उन नदियोको बहुत चौड़ा कर दिया था ॥६१-६६॥ सैनिको-ने तैरश्चिक नामके पर्वतको लाघवर वैङ्कय नामका पर्वत जा घेरा और फिर कूटा-चलवो उल्लघन कर पारियाश्र नामका पर्वत प्राप्त किया ॥६७॥ भरतकी वह सेना पुष्प गिरिके सिनरीपर चढ़कर म्मितगिरिके शिखरोपर जा चढ़ी और फिर वहासे चलकर उसने गदा नामक पर्वतके लनामूहोमें विश्राम किया ॥६८॥ भरतके सैनिकोने ऋक्षवान् पर्वतकी गुफाओके गाय माय वातपृष्ठ पर्वतकी गुफाओका आश्रय लिया और फिर वहासे चलकर कम्बल नामक पर्वतके किनारोपर आश्रय प्राप्त किया ॥६९॥ वे सैनिक वासवन्त नामके महापर्वत को उल्लघन कर अमुरधूपन नामक पर्वतपर ठहरे और फिर वहासे चलकर मदेभ तथा अगिरेयिक पर्वतपर जा पहुँचे ॥७०॥ सेनाके लोग उन देशोको धमुरहित ममभकर अपने हाथियोके द्वारा वनके प्रदेशोमें हाथी पकड़ने हुए जहा तहा घूम रहे थे ॥७१॥ जो नदिया दुस्तर अर्थात् कठिनाईमें तेरने योग्य थी वे ही नदिया सैनिकोके द्वारा उपभुक्त होनेपर सुतर अर्थात् सुगमे

१ वरम् । २ 'दशार्णा' इत्यपि क्वचित् । ३ कुहा म० । ४ कागधुन्यापगाम् । ५ मानून् ।
 ६ गिरिगिरे—प० । ७ निगबेपु । ८ विद्यमन्ति स्म । ९ वातपृष्ठगिरिके दशप्रदेशान् । १० भन्तुवा इव ।
 ११ महाशैलमगुहानि मह इत्यर्थे । १२ अमुरधूपन इति पर्वतविशेषे । १३ मदेभस्य आनङ्गद्वय
 रेविकश्च तान् । १४ एषोपर्वन्त । १५ गुहागहा ।

राष्ट्राध्यक्षयस्तेषां राष्ट्रीयैश्च महोभुज । फलाय जित्तिरे भर्तुं योजिताश्चामुना^१ फलं ॥७३॥
 नृपानवारपारीगान्^२ द्वैष्यान्पुपसागरे । बली बलैरवष्टभ्य^३ प्रापोपवनजान्^४ गजान् ॥७४॥
 रत्नान्यपि विचित्राणि तेभ्यो लब्ध्वा यथेप्सितम् । तानेवास्यापयत्तत्र सतुष्ट प्रभुराज्ञया ॥७५॥
 महान्ति गिरिदुर्गाणि निम्नदुर्गाणि च प्रभो । सिद्धानि बलहृद्धानि विमसाध्य महोयसाम् ॥७६॥
 इत्य स पृथिवीमध्यात्^५ धीरस्त्याग्निर्जयद्रूपान् । प्रतस्ये दक्षिणामासा^६ दक्षिणाश्वजिगीयया ॥७७॥
 यतो यतो बल जिष्णो प्रचलत्युद्धनायकम् । ततस्तत स्म सामन्ता नमत्यानमनोलय ॥७८॥
 त्रिकलिङ्गाधिपानोद्गान् कच्छाग्निविषयाधिपान् । प्रातरान्^७ केरलाश्चोलान्^८ पुत्रागाश्च ध्यजेत् स ॥७९॥
 कडुभ्यानोलिकाश्चैव स माहियकमेकुरान् । पाण्डवान तरपाण्ड्याश्च दण्डेन^९ वशमानयत् ॥८०॥
 नृपानेतान् विजित्वाशु प्रणमय्य स्वपादयो । हृत्वा तत्साररत्नानि प्रभु प्राप्त परा मूढम् ॥८१॥
 सेनानीरपि ब्रह्माम^{१०} विभोराज्ञा समुद्वहन् । गिरीन् ससरितो देशान्^{११} बलिद्रग्ववनश्रितान् ॥८२॥
 स साधनं सम भेजं तं लामिभ्रमतीमपि । नदीं नश्रीरवा बडगा श्वसना च महानदीम् ॥८३॥

तरने योग्य हो गई थी । इसी प्रकार जो पर्वत दुरारोह अर्थात् कठिनाईसे चढ़ने योग्य थे वे ही पर्वत सैनिकोंके द्वारा शिखरोंके चूर्ण हो जानेसे स्वारोह अर्थात् सुसंपूर्णक चढ़ने योग्य हो गये थे ॥७२॥ देश, उनकी सीमाएँ और देशोंके राजा लोग सम्राट् भरतेश्वरको पत्र प्रदान करने के लिये ही उत्पन्न हुए थे तथा बदलेमें भरतने भी उन्हें अनेक फलोंसे युक्त किया था । भाग्य— सम्राट् भरत जहा जहा जाते थे वहा वहाके लोग उन्हें अनेक प्रकारके उपहार दिया करते थे और भरत भी उनके लिये अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करते थे ॥७३॥ जो राजा लोग उपसमुद्रके उस पार रहते थे अथवा उप-समुद्रके भीतर द्वीपोंमें रहते थे उन सबको बलवान् भरतने सेनाके द्वारा अपने वश किया था तथा वनमें उत्पन्न होनेवाले हाथियोंको पकड़ पकड़कर उनका पोषण किया था ॥७४॥ महागज भरतने उन राजाआसे अपने इच्छानुसार अनेक प्रकारके रत्न लेकर सतुष्ट हो अपनी आज्ञासे उनके स्थानोंपर उन्हीको फिरसे विराजमान किया था ॥७५॥ जो बड़े बड़े बिले पहाड़ोंके ऊपर थे और जो जमीनके नीचे बने हुए थे वे सब सेनाके द्वारा घिरकर भरतने वशीभूत हो गये थे, सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको क्या असाध्य है ? ॥७६॥ इस प्रकार भरतने पूर्वं दिशाके समस्त राजाओंको जीतकर दक्षिण दिशाके राजाओंको जीतनेकी इच्छासे उस पृथिवीके मध्यभागमें दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥७७॥ उत्कृष्ट सेनापति महित विजयी भरतकी सेना जहा जहा जाती थी वहा वहा के राजा लोग सामन्तों सहित मस्तक भुजा भुजाकर उन्हे नमस्कार करते थे ॥७८॥ दक्षिणमें भरतने त्रिकलिङ्ग, ओद्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेर और पुत्राग देशोंके सब राजाओंको जीता था ॥७९॥ तथा कूट, ओलिक, महिष, कमेचुर, पाण्डव और अन्तरपाण्डव देशके राजाओंको दण्डरत्नसे द्वारा अपने वशीभूत किया था ॥८०॥ सम्राट् भरतने इन सब राजाओंको शीघ्र ही जीतकर उनमें अपने चरणोंमें प्रणाम कराया और उनके सारभूत रत्न लेकर पद्म आनन्द प्राप्त किया ॥८१॥ चन्द्रवर्तीकी आज्ञा धारण करता हुआ सेनापति भी बालिग्व वनके समीपवर्ती अनेक पहाड़ों, नदियों तथा देशोंमें घूमा था ॥८२॥ वह अपनी सेनाजाने साथ साथ तंला, इक्षुमती, नश्रीरवा, बगा और श्वमना आदि महानदियोंको प्राप्त हुआ था

१ मनाया । २ उभयतीरे भवान् । 'पारवारपरमेय' इति स' इति प्रागुक्तिरप्येवं स । 'पागवाने परं तीर' इत्यमरः । ३ द्वीपे जानान् । ४ पापा कृत्वा । ५ पुत्राग वनजान् स०, ६०, ६०, ७० । ६ पूषदिभयान् । ७ दक्षिणदिशि जाना । ८ परान् स०, ६० । ९ बचन । १० प्रभो-त० । ११ बलिद्रगदेशसम्बन्धि ।

धूर्तौ वंतरणीं मापयतो च समहेन्द्रकाम् । सैनिकैः सममुत्तीर्य ययो शुष्कनदीगपि ॥८४॥
 सप्तगोदावर तीर्त्वा^१ पश्यन् गोदावरीं शुचिम् । सरो मानसामासाद्य मुमुदे शुचिमानतः ॥८५॥
^२सुप्रयोगा नदीं तीर्त्वा कृष्णवर्णा^३ च निम्नगाम् । सद्गीरा च प्रवेणीं च घ्यतीयाय समं बर्तः ॥८६॥
 कुब्जा धैर्या च चूर्णा च वेणां सूकरिकामपि । भ्रम्वेणां च नदीं पश्यन् दक्षिणात्पानशुभ्रयत् ॥८७॥
 महेन्द्राद्रिं समाकामन् विन्ध्यापग्त च निर्जयन् । नागपर्वतमध्यास्य प्रययो मलयचलम् ॥८८॥
 गोशीर्षं ददुराद्रिं च गिरिं पाण्ड्यकवाटकम् । स शीतगुहमासोद्भूत् अग श्रीकटनाह्वयम् ॥८९॥
 धीपर्वतं च किष्किन्ध निजंयञ्जयसाधनैः । तत्र तत्रोचितैर्लाभैः अयधंत चमूपतिः ॥९०॥
 कर्णाटकान् स्फुटाटो^४पदिकटोद्भूत^५वैषकान् । हरिद्राञ्जनाम्बूलप्रियात् प्रायो यशोधनान् ॥९१॥
 आन्धान्^६ हृन्द्प्रहारेषु कृतलक्षान्^७ कर्दयकान्^८ । पापाणकठिनानद्गर्गः न परं हृदयैरपि ॥९२॥
 कालिङ्गवान्^९ गज^{१०}प्रायसाधनान् सकलाधनान् । प्रायेण तादृशानोद्भान् जटानुड्ड^{११}भरप्रियान् ॥९३॥
^{१२}चोलिकाप्रासिकप्रायान्^{१३} प्रायशोऽनुजुचेष्टितान्^{१४} । बैरलान् सरलातापान् कलागोष्ठीव^{१५} च्छुञ्जान्^{१६} ।
 पाण्ड्यान् प्रचण्डदोर्बण्डलण्डितारातिमण्डलान् । प्रायो गजप्रियान् धन्विकुन्तभूयिष्ठतापनान् ॥९५॥

॥८३॥ तथा वंतरणी, मापवती और महेन्द्रका इन नदियोंको अपने सैनिकोंके साथ पार कर वह शुष्क नदीपर जा पहुँचा था ॥८४॥ सप्तगोदावर नामके तीर्थ और पवित्र गोदावरीको देखता हुआ वह पवित्र हृदयवाला सेनापति मानस सरोवरको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥८५॥ तदनन्तर उसने सेनाओंके साथ साथ सुप्रयोगा नदीको पार कर कृष्णवर्णा, सद्गीरा और प्रवेणी नामकी नदीको पार किया ॥८६॥ तथा कुब्जा, धैर्या, चूर्णा, वेणा, सूकरिका और अम्बवर्णा नदीको देखते हुए उसने दक्षिण दिशाके राजाओंको चक्रवर्तीकी आज्ञा सुनाई ॥८७॥ फिर महेन्द्र पर्वतको उल्लघन कर विन्ध्याचलके समीपवर्ती प्रदेशको जीतता हुआ नागपर्वतपर चढ़कर वह सेनापति मलय पर्वतपर गया ॥८८॥ वहासे अपनी सेनाके साथ साथ गोशीर्ष, ददुर, पाण्ड्य, कवाटक और शीतगुह नामके पर्वतपर पहुँचा तथा श्रीकटन, श्रीपर्वत और किष्किन्ध पर्वतको जीतता हुआ वहाके राजाओसे यथायोग्य लाभ पाकर वह सेनापति अतिशय वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८९-९०॥ प्रकट रूपसे धारण किये हुए आडम्बरोमे जिनका वेप विकट तथा शूरवीरताको उत्पन्न करनेवाला है, जिन्हें हल्दी, ताबूल और अजन बहुत प्रिय है, तथा जिनके यग ही धन है ऐसे कर्णाटक देशके राजाओंको, जो कठिन प्रहार करनेमें सिद्धहस्त हैं जो बड़े वृषण हैं और जो केवल शरीरकी अपेक्षा ही पापाणके समान कठोर नहीं हैं किन्तु हृदय की अपेक्षा भी पापाणके समान कठोर हैं ऐसे आधू देशके राजाओंको, जिनके प्राय हाथियों की सेना है और जो बला-कौशल रूप धनसे महित हैं ऐसे कलिङ्ग देशके राजाओंको, जो प्राय बलिङ्ग देशके समान हैं, मूर्ख हैं और लड़नेवाले हैं ऐसे ओण्ड देशके राजाओंको, जिन्हें प्राय भूट बोलना बहुत प्रिय है और जिनकी चेष्टाए कुटिल हैं ऐसे चोल देशके राजाओंको, मधुर गोष्ठी करनेमें प्रवीण तथा सरलतापूर्वक वार्तालाप करनेवाले केरल देशके राजाओंको, जिनके भुजदण्ड अत्यन्त बलिष्ठ हैं, जिन्होंने सशुओंके समूह नष्ट कर दिये हैं, जिन्हें हाथी बहुत प्रिय हैं और जो युद्धमें प्राय धनुष तथा भाला आदि शस्त्रोंका अधिकतासे प्रयोग करते हैं ऐसे पाण्ड्य

१ नीर्यं अ०, ग०, ल० । २ 'गुप्रवेणाम्' इत्यपि वचिन् । ३ कृष्णवर्णा ल० । ४ अम्बवर्णा ल० । ५ थावयति म् । ६ नागपर्वते स्थित्वा । ७ आगमन् । ८ गर्व । ९ मनोहर । 'विकट मुन्दर प्राग्गो विद्याविक्रमयो' इत्यभिधानात् । १० दुस । ११ कृतव्याजान् । 'व्याजोऽपदेशो परय च' इत्यमर ! १२ वृषणान् । 'बदये' वृषणे शुद्रविपचानमितपच' इत्यमर । १३ कलिङ्गवर्णान् । १४ युद्ध । १५ दक्षिणान् । १६ अनीक अनुत् । १७ वनवर्णान् । १८ वतगोष्ठीषु च्छुञ्जान् ल०, द० । १९ प्रवीणान् ।

'दृष्टापदानानन्यांश्च तत्र तत्र द्रुदुत्थितान्' । जयसंगैरवस्वन्त्या^१ सेनानीरनयद् वधम् ॥६६॥
 ते च सत्सृष्ट्य सेनान्य पुरसृष्ट्य सत्साप्वसम् । चप्रिणं प्रणमन्ति स्म दुरादुरीकृतायतिम्^२ ॥६७॥
 करग्रहेण सम्पौड्य दक्षिणाशा वधूमिव । प्रसमं हृततत्सारो दक्षिणाग्निभगात्^३ प्रभुः ॥६८॥
 तवद्गमलयतीप्रायम्^४ एलागुत्तमलतान्तिवम्^५ । वेलोपान्तवन पश्यन् महतीं घृतिमाप स^६ ॥६९॥
 तमातिपेबिरे मन्त्रमाद्योलिततरोजला । एलासुगन्धय^७ नौम्या वेलास्तवनवायवः ॥१००॥
 मरुद्भूतशालाप्रदिकीर्गुसुभनोऽञ्जलिः । नून प्रत्यगृहीदेतं वनोद्देशो दिशास्पतिम् ॥१०१॥
 पवनायूतशालाप्रिं द्यक्षतपट्पदिनिस्वनः । विद्यान्त्ये संनिधानस्य व्याहरप्रिर्व^८ पादथाः ॥१०२॥
 श्रय तस्मिन् वनाभोगे^९ संन्यमानसयद् विभुः । वंजयन्तहाद्वारनिग्डेऽम्बुनिषेस्तटे ॥१०३॥
 सन्नाग^{१०} बहुपुत्रागं^{११} मुसनीभि^{१२}रधिष्ठितम् । बहुपत्ररव^{१३} निष्णोः बल तदनमावसत्^{१४} ॥१०४॥

देशके राजाओंको और जिन्होंने प्रतिकूल खड़े होकर अपना परान्तम दिग्बलाया है ऐसे अन्य देशके राजाओंको सेनापतिने अपनी विजयी सेनाके द्वारा आक्रमण कर अपने आधीन किया था ॥९१-९६॥ उन राजाओंने सेनापतिका सत्कार कर तथा भयमहित कुछ भेंट देकर जिन्होंने उनका भविष्यत्काल अर्थात् आगे राजा बना रहने देना स्वीकार कर लिया है ऐसे चन्द्रवर्तीको दूरसे ही प्रणाम किया था ॥९७॥ जिस प्रकार पुरुष करग्रह अर्थात् पाणिग्रहण मन्त्रकार में किमी स्त्रीको वशीभूत कर लेता है उमी प्रकार चन्द्रवर्ती भरतने करग्रह अर्थात् टैकम वसूलीसे दक्षिण दिशाको अपने वश कर लिया था और फिर जयवदन्ती उसके माग पदार्थोंको छीनकर दक्षिण समुद्रकी ओर प्रयाण किया था ॥९८॥ वहा वह चन्द्रवर्ती, जिनमें प्रायः लवग और चन्दनकी लताएँ लगी हुई हैं तथा जो उद्यायचीके छोटे छोटे पौधोंकी लताओंमें सहित हैं ऐसे किनारेके समीपवर्ती वनको देगता हुआ बहुत भारी सतोपको प्राप्त हुआ था ॥९९॥ जो तान्वाओंके जलको हिण्डा रहा है, जिसमें दलायचीकी सुगन्धि मिली हुई है और जो नौम्य है ऐसे किनारेके वनकी वायु उस चन्द्रवर्तीकी सेवा कर रही थी ॥१००॥ वायुने हिलती हुई शालाओंके अग्रभागमें जितने फूलोंकी अंजलि बिखेर रखी है ऐसी वह वनका प्रदेश ऐसा जान पड़ता था मानो इस चन्द्रवर्तीकी अगवानी ही कर रहा हो ॥१०१॥ वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभाग वायुसे हिल रहे थे और उनपर भूमर स्पष्ट शब्द कर रहे थे, जिसमें ऐसा जान पड़ता था मानो वे वृक्ष हाथ हिला हिलाकर भूमरोंके गन्धोंके बहाने पुकार पुकारकर विद्याम करनेके लिये भरतके सैनिकोंको बुला ही रहे हो ॥१०२॥

अथानन्तर—चन्द्रवर्तीने उस वनके मैदानमें समुद्रके किनारे वंजयन्त नामक महाद्वारके निकट अपनी सेना ठहराई ॥१०३॥ वह वन और भरतकी सेना दोनों ही समान थे क्योंकि जिस प्रकार वन सनाग अर्थात् मोथाके पौधोंमें सहित था उमी प्रकार सेना भी सनाग अर्थात् हाथियोंमें सहित थी, जिस प्रकार वन बहुपुत्राग अर्थात् नागकेशरके बहुत वृक्षोंमें सहित था उमी प्रकार सेना भी बहुपुत्राग अर्थात् अनेक उत्तम पुष्पोंमें सहित थी, जिस प्रकार वन मुसुन अर्थात् फूलोंमें सहित था उमी प्रकार वह सेना भी मुसुन अर्थात् देव अथवा अच्छे हृदयवाले पुष्पोंमें सहित थी, और जिस प्रकार वन बहुपत्र रव अर्थात् अनेक पक्षियोंमें सहित होता

१ दृष्टानामस्मान् । 'अपदान कर्षणि म्यादनिवृत्तेऽवगणने' इत्यभिधानात् । २ अम्बुचिदान् । ३ आश्रम्य । ४ अदगीहृतममपदम् । ५ वनाचारेण । ६ चन्दनवना । ७ तनाद्रिनिन्दम् इत्यभिधानि । ता विष्णुतम् । ८ आह्वयनि स्मेव । ९ विन्तारे । १० प्रगल्भपदम् । गुन्तगुन्त थ । ११ पुष्पश्रेष्ठे नागनेसा च । १२ देवं वसुमन्त्रेव । १३ वृक्षावृत्तगन्धनम् वृत्तविरगन्त्र । 'पाणिपदि पतनगन्धनस्य रसाऽगता' इत्यभिधानात् । १४ एवविध वनमवविध वनमावत् ।

सच्छायान् सफलान्स्तुङ्गान् बहुपत्रपरिच्छदान् । असेयन्त जना प्रीत्या 'पार्थिवारतापरिच्छद' ॥१०५॥
 सच्छायानप्यसम्भाव्य फलान् प्रोग्ध्य महाद्रुमान् । सफलान् विरलसच्छायान् अल्पहो शिथियुज्जना ॥१०६॥
 'श्राकालिकोमनाहृत्य बहिर्दृष्ट्यां तदातनोम् । भाविनीं तपमूलेषु द्रष्टव्यामाश्रियञ्जना' ॥१०७॥
 वनस्थलीस्तसच्छायानिरुद्धद्रुमणित्विष्य । 'सजानपस्तरस्तीरेष्वध्यासिष्यत' सैनिका ॥१०८॥
 सप्रेयसीभिराबद्धप्रणयैराश्रिता नृवं । कल्पपादपजां लक्ष्मीं ध्यवन्तमूढं नद्रुमा ॥१०९॥
 कव्य कणिकच्छदानम् उद्धनाना फलच्छदा । संनिकानाकुलाश्चन्द्र निविष्टान् वीरुषामय ॥११०॥
 सरपरिसरेष्व्वासन् प्रभोराश्रयोपमन्दुरा । सुन्दरा स्वैरमाहार्ये^{१०} वाप्यच्छेषैस्तुणाद्भुरं ॥१११॥

है उसी प्रकार वह सेना भी अनेक सवारियो और रथोसे सहित थी, इस प्रकार भरतकी वह सेना अपने समान वनमे ठहरी ॥१०४॥ उस वनके पार्थिव अर्थात् वृक्ष (पृथिव्या भव, 'पार्थिव') अर्थात् राजाओ (पृथिव्या अधिप 'पार्थिव')के समान थे, क्योंकि जिस प्रकार राजा सच्छाय अर्थात् उत्तम कान्तिसे सहित होते है उसी प्रकार उस वनके वृक्ष भी सच्छाया अर्थात् उत्तम छाया (छाहरी) से सहित थे, जिस प्रकार राजा लोग सफल अर्थात् आयसे सहित होने है उसी प्रकार उस वनके वृक्ष भी सफल अर्थात् फलोसे सहित थे । जिस प्रकार राजा लोग तुङ्ग अर्थात् ऊँची प्रकृतिके—उदार होते है उसी प्रकार उस वनके वृक्ष भी तुग अर्थात् ऊँचे थे, जिस प्रकार राजा लोग बहुपत्रपरिच्छद अर्थात् अनेक सवारी आदिके बँभवसे सहित होते है उसी प्रकार उस वनके वृक्ष भी बहुपत्रपरिच्छद अर्थात् अनेक पत्तोके परिवारसे सहित थे और जिस प्रकार राजा लोग ताप अर्थात् दरिद्रतासम्बन्धी दुखको नष्ट करनेवाले होते है उसी प्रकार उस वनके वृक्ष भी ताप अर्थात् सूर्यके धामसे उत्पन्न हुई गर्मीको नष्ट करनेवाले थे, इस प्रकार भरतके सैनिक, राजाओकी समानता रखनेवाले वृक्षोका आश्रय बडे प्रेमसे ले रहे थे ॥१०५॥ सेनाके कितने ही लोग उत्तम छायासे सहित होनेपर भी जिनसे फल मिलने की मभावना नही थी ऐसे बडे बडे वृक्षोको छोडकर थोडी छाया वाले किन्तु फलयुक्त वृक्षो वा आश्रय ले रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार धनाढ्य होनेपर भी उचित वृत्ति न देनेवाले बड़म स्वामीको छोडकर सेवक लोग अल्पधनी किन्तु उचित वृत्ति देनेवाले उदार स्वामीका आश्रय लेने लगते है उसी प्रकार सैनिक लोग फलरहित बडे बडे वृक्षोको छोडकर फलसहित छोटे छोटे वृक्षोका आश्रय ले रहे थे ॥१०६॥ सेनाके लोग उस समयकी थोडी देर रहनेवाली वाहिरकी छाया छोडकर वृक्षोके नीचे आगे आनेवाली छायामें बैठे थे ॥१०७॥ वनस्थली के वृक्षोकी छायामें जिनपर सूर्यका धूप रख गया है ऐसे कितने ही सैनिक अपनी अपनी स्त्रियोँ सहित तालावाँके किनारोपर बैठे हुए थे ॥१०८॥ परस्परके प्रेमसे बडे हुए राजा लोग अपनी अपनी स्त्रियोँ सहित जिनके नीचे बैठे हुए है ऐसे वनके वृक्ष कल्पवृक्षोसे उत्पन्न हुई शोभा को स्पष्ट रूपसे धारण कर रहे थे । भावार्थ—वनके वे वृक्ष कल्पवृक्षोके समान जान पडते थे जोर उतरे नीचे बैठे हुए स्त्री-पुरुष भोगभूमिके आर्य तथा आर्याओके समान मालूम होते थे ॥१०९॥ बड़ा चरने पर ममूहोको हितने हुए वानर उन लताओके नीचे बैठे हुए सैनिको को व्यापुड पर रहे थे क्योंकि चरनेके परके रीयें धरोरपर लग जानेसे गुजली उठने लगती है ॥११०॥ तापको समीप ही दृष्टानुसार चरने योग्य तथा भापमें ही दूटनेवाले धामके

^{१०} मच्छायां तच्छिदाश्च । ० वृद्धनपरिच्छदान् बहुवाहापरिच्छदाश्च । ३ वृक्षान् नृपतीरुष । ४ अश्विनम् । ५ -मार्गश्रियुज्जना १० ६० । ६ स्त्रीयुज्जना । ७ मर्त्येणम् । 'वाप्यच्छेषैस्तुणां मर्त्येण' । ८ पश्यमच्छरी । ९ वनानाम् । १० सर्वत्रप्रदेशेषु सुवर्भरित्वये । ११ वानरं ।

अवनारितपर्यागं^१ मुखनागडाद्युपस्रवात् । स्फुरत्प्रोयंमूर्ध्वरेखा क्षमा^२ जघ्नुर्विविबृत्तव^३ ॥११२॥
 सात्रपप्रज-शोभा^४ सत्सामानिकस्थले । मन्द^५ दुषुषुरदृगाणि वाहा हृन्निविवर्तना ॥११३॥
 विवनावम्बरे कञ्जरजपुञ्जोऽनिलोद्धृत^६ । अपल^७ रचिनोऽश्वानामिवोन्म^८ पटमण्डप ॥११४॥
 रचम्बला^९ महौ स्फु^{१०}त्वा^{११} जुगुम्ब इवोत्थिता । द्रुत विविगुरन्मनासि सरयोना महाहृया ॥११५॥
 वारि^{१२} वारिचक्रिञ्जन्नवनान्यदथा विगहिता । धौनमप्यद्गराग स्व भेचुरम्भोऽरेपुनि ॥११६॥
 सरोजवाहनिर्नथ्रमा पोानन्ममो ह्या । आसोत्तिनाक्षमध्युप विनतान् पटमण्डपान् ॥११७॥
 नात्तिकेरुमेध्वाप्तो^{१३} उचिनो^{१४} "वर्षगात्तिन । निवेशो हात्तिकस्यास्य विमोस्तानोवनेषु च ॥११८॥
 प्रयत्नान्तिकेरोवम्यपुटा वनमूमय । हृम्निना स्थाननामोयु^{१५} तरेव^{१६} प्रान्तमारित^{१७} ॥११९॥
 द्विपानुदपत^{१८} स्तोत्र वमयु^{१९}ञ्जित^{२०} अमान् । निगुञ्जलोपयोग्य सरास्यभिर्निपादिन^{२१} ॥१२०॥
 नोर्षणैत^{२२} सुष्यन्ममार्गमञ्जनिवधमान् । गतालापोरथा निपु सरनोरवगाहने^{२३} ॥१२१॥

बकुगेमे सुन्दर, चक्रवर्तीके घोडोकी घुटमालें थी ॥१११॥ चिनपरमे पगन और ल्गाम
 आदि मामरी जाग गी गड है एमे घोटे जमीनपर घोटेनेकी इच्छा करते हुए, चिनमें ताकके
 नयने हिल रहे है एमे मुशोमे जमीनको म्घ रहे थे ॥११०॥ कमगोकी मान्द्र परागमे भरे
 हुए, तागावके ममीपवनी प्रदेशपर लोटकर वे घोटे पूरि नाटनेने लिये धीरे धीरे अपने
 वगीर हिया रहे थे ॥११३॥ जो कमगोकी पगनका ममूह वासुने उ कर आकाशमें छा गया
 था वह ऐसा मुगोभिन हो रहा था मानो घोडाके चिये बट्टन ऊचा कपटेका मण्डप ही बनाया
 गया हो ॥११४॥ बटे बटे घोटे पृथिवीको रचम्बना अर्थात् घृत्निने युक्त (पथमें ग्जोपम
 में युक्त) देखकर ग्यानि करते हुए से उठे और शीघ्र ही नरोरगोके जलमें धुन गये ॥११५॥
 कमलकी वेधरमे भरे हुए जर्म प्रविष्ट हुए घोडोका अगगग (शोभाके लिये वरीरपर
 लगाया हुआ एक प्रकारका रेष) यद्यपि धुल गया था तथापि उन्होंने कमगोके परागसे अपने
 उन अगरागको पुन कर प्राण लिया था । नाकार्य-कमगोकी वेधरने भरे हुए पानीमें
 स्नान करनेमें उनके वगीरपर जो कमगोकी वेधरके छोटे छोटे कण गग गये थे उनमें अगगग
 की वमी नहीं मारूम होती थी ॥११६॥ नरोरगेमें धुनकर स्नान करनेसे जिनका गद परि-
 श्रम दूर हो गया है और जिन्होंने इच्छानुसार जग पी लिया है एमे घोटे कपटेके उडे बडे मडपों
 में कुछ कुछ नेत्र बन्द किने हुए खडे थे ॥११७॥ ऊचे ऊचे नरोरगेने मुगोभिन होनेवाये,
 महाराज भरतके हाथियोंके डेरे नागियठ और ताड वृत्तके वनोमें बनाये गये थे जो वि नर्वथा
 उचित थे ॥११८॥ जो वनकी भूमि ऊपरसे पटने हुए नारियलके ममूहसे ऊची नीची हो रही
 थी वही नारियलके एक ओर हटा देनेसे हाथियोंके योग्य स्थान बन गई थी ॥११९॥ जिन्हें
 बट्टन प्याम लगी है तथा जो वमयु अर्थात् मूडने निवाटे हुए जगके छोडोमे अपना परिश्रम
 प्रकट कर रहे है एमे हाथियोंका महावन गेग पानी पिलानेके लिये नागावोपर ले गये थे ॥१२०॥
 जो धीरे धीरे चरनेसे मागमें उन्नत हुए परिश्रमको प्रकट कर रहे है एमे हाथियोंको महावन

१ प यनवर्तीनादिपरिष्कार । २ आषाफयनि म्म । ३ विदंतिनुमिच्छव । ४ -को ल० ।
 ५ कम्पयनि म्म । ६ -निवाद्गुन न० । ७ वय नु न० । ८ वृन्मरत्रोवनीम श्रुतुमतीमिति ध्वनि ।
 ९ दृष्ट्वा ल०, द० । १० जगानाचय । ११ प्रमात्म् । 'वम्ब वम्प्रमात्वा' इत्यभिधानत् ।
 १२ तरेव । १३ स्वकटेनीयाकारेण पदन्तप्रसारितं । १४ दुषितान् । 'उदथा नु निगमा वृद्'
 इत्यभिधानत् । १५ वरागावप्रवृत्ति । वमयु करणीकट' इत्यभिधानत् । १६ हृम्बरागत् ।
 'हृम्बरागत् निपादिन' इत्यमरः । १७ मदापनत् । स्वउदुग्मनेन वा । जगमर्तनेचय । 'अन्ये
 नाचमहपुञ्जं' १८ अनात्नायम् ।

प्रवेष्टुमद्विनीषन्नच्छ्रं नागो नवग्रहः^१ । नच्छत् प्रचोद्यमानोऽपि वारि वारी^२ वितद्वनया ॥१२२॥
 धनं विलोक्यन् स्वैर कवलचितपल्लवम् । गजश्चिरगृहीतोऽपि किमप्यासीत् समुत्सुकः ॥१२३॥
 स्वैरं न पपुरम्भासि नागुल्लुङ्ग कवलानपि । केवल धनसम्भोगसुखानां सरमरंजाः ॥१२४॥
 उत्पुष्करान्^३ स्फुरद्बीवमं कक्ष्याभिन्मुद्दिपान् सर^४ । सशयूनिष^५ नीलाद्रीन् सविद्युत् दवाम्बुदान् ॥१२५॥
 वनद्विषमदामोदवाहिते गन्धवाहिते^६ । घ्नज कृप्यञ्जलोपान्त निग्ये कृच्छ्याभिवादिना ॥१२६॥
 भ्रकस्मात् कुपितो दन्ती शिरस्तिर्यग्विधूनयन् । घ्ननद्वःकुशवशस्तीव्रम् ध्राघोरणमल्लेदयत् ॥१२७॥
 यन्यानेकपसम्भोगसद्वक्रान्तमदवासनाम् । 'विसोदु सरसीं नच्छन्मदेभः करिणीमिव ॥१२८॥
 पोत वनद्विषः पूर्वम् श्रम्बु तद्दानवासितम् । द्विष करेण सञ्जिघृषन्^७ नापादास्फालयत् परम् ॥१२९॥
 पोताम्भतो मदासारं वृद्धि निग्यः सरोजलम् । गजा मृधा धनादान नूनं वाच्छन्ति नोत्रताः ॥१३०॥
 उत्पुष्कर सरोमध्यं निमग्नोऽपि मदद्विषः । ररणद्विभिः^८ क्षमत्पत्य व्यज्यते स्म मधुव्रतः ॥१३१॥
 पोताम्बुरम्बुदस्पर्धि वृ^९हितो मदकुञ्जरः । दुधाव^{१०} गण्डकण्ड्या^{११} चण्डगण्डूधवारिभिः ॥१३२॥

लोग नहलानेके लिये तालाबोपर ले गये थे ॥१२१॥ कोई नवीन पकडा हुआ हाथी वार-वार प्रेरित होनेपर भी कमलिनीके पत्तोसे ढके हुए जलमें समुद्रकी आशकासे प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२२॥ बहुत दिनका पकडा हुआ भी कोई हाथी अपने इच्छानुसार खाने योग्य नवीन पत्तोवाले वनको देखता हुआ विलक्षण रीतिसे उत्कण्ठित हो रहा था ॥१२३॥ कितने ही हाथियोने इच्छानुसार न तो पानी ही पिया था और न घास ही उठाये थे, वे केवल वनके सभोग-मुर्वोका स्मरण कर रहे थे ॥१२४॥ जिनकी सूड ऊची उठी हुई है और जिनकी बगलमें सुवर्ण की मालाएँ देदीप्यमान हो रही हैं ऐसे हाथियोको महावत लोग सरोवरोपर ले जा रहे थे, उन समय वे हाथी ऐसे जान पडते थे मानो अजर सहित नील पर्वत ही हो अथवा विजली सहित मेघ ही हो ॥१२५॥ जो जगली हाथीके मदकी गन्धको धारण करनेवाले वायुसे कुपित हो रहा है ऐसे किसी हाथीको उसका महावत बड़ी कठिनाईसे जलके समीप ले जा सका था ॥१२६॥ अचानक कुपित हुआ कोई हाथी अपने शिरको तिरछा हिला रहा था, वह अकुशके वश भी नहीं होना था और महावतको खेद विन्न कर रहा था ॥१२७॥ जगली हाथीके सभोगसे जिसमें मदकी वाम फैल रही है ऐसी हथिनीको जिस प्रकार कोई मदोन्मत्त हाथी नहीं चाहता है उसी प्रकार जिसमें जगली हाथियोकी तीडामें मदकी गंध मिली हुई है ऐसी सरोवरीमें कोई मदोन्मत्त हाथी प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२८॥ जिस पानीको पहले वनके हाथी पी चुके थे और इमीलिये जो मदकी गन्धमें भरा हुआ था ऐसे पानीको सेनाके हाथियोने नहीं पिया था, वे वेदव मूठमें गंध सूपन उसे उछाल रहे थे ॥१२९॥ जिन हाथियोने तालाबका पानी पिया था उन्होंने अपना मद बहा बहाकर तालाबका वह पानी बहा दिया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो उन्नत अर्थात् बडे होने हैं वे किसीका व्यर्थ ही धन लेनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥१३०॥ कोई मदोन्मत्त हाथी यद्यपि मूढ ऊपर उठाकर तालाबके मध्यभागमें डूबा हुआ था तथापि आवागममें उद्वेग घट्ट करने हुए भूमरोसे 'वह यहाँ है', इस प्रकार साफ समझ पडता था । ॥१३१॥ जो पानी पी चुका है और जिमनी गर्जना मेघोके साथ स्पर्धा कर रही है ऐसा कोई मदोन्मत्त हाथी अपने पुग्गलेने जगरी तेज पटवाममें वपोलोकी गुजली दान्त कर रहा था

१ नरो नृगो वृह स्वीधरो यय म । २ गजवन्धनहेतुभूतगतिशब्दवया । 'वारी तु गजवन्धी' इत्यभिधानम् । ३ वन्य गम्भीराजानुवासानाम् । ४ उद्गनहस्ताधान् । ५ सुवर्णमयमवरधान् । 'दूपा वरना वरवा वरान्' इत्यभिधानम् । ६ अजगम्भितान् । ७ अनिवाय । ८ विगाडु ल०, द० । ९ अत्तरयत् । १० न रिचिन् म । ११ भूगुच्छ्रिम् । १२ अपनयति स्म । १३ मपोनवच्छूयन्म् ।

विमुक्त व्यपतसूत्कार करमुत्क्षिप्य वारणं । वारि स्फटिकदण्डस्य लक्ष्मीमूले क्षमुच्चलत् ॥१३३॥
 उदगाहैविनिर्धूतश्रमा केचिन्मतद्गजा । विसभट्ठगे^१रघुस्तुतिं हेतया कवलीकृतं ॥१३४॥
 मृणालंरघिवन्ताप्रम् अपितैविवभुर्गजा । अजलमन्वुसत्तेकाद् रवे^२ प्रारोहितैरिव^३ ॥१३५॥
 प्रमाद्यन् द्विरद कश्चिन्मृणाल स्वकरोदधृतम् । बवाबालान्^४बुदप्यैव नियत्रे^५ द्विगुणोक्तम् ॥१३६॥
 चरणालनमाकर्षन् मृणाल भीलुको गज । बहि सरस्तट^६ व्यास्यद्^७ अन्दुतनुको^८शङ्कया ॥१३७॥
 करंरुत्क्षिप्य पद्मानि स्थिता स्तम्भेरमा बभू । देवतान्स्मृति किञ्चित् कुर्वन्तोऽर्वरिवोदधृतं ॥१३८॥
 सरस्तरद्गघौताद्गगा रेजुस्तुद्गगा मतद्गजा । शृङ्गारिता इवालनं सान्द्रैरम्भोजरेणुभि ॥१३९॥
 ययु करिभिरायद् परिहृत्य^९ सरोजलम् । पतत्रिण सरस्तीर तद्युक्तमबलीयताम् ॥१४०॥
 सरोवगाहनिषिक्त^{१०}मूर्तोयोरपि मतद्गजा । रज^{११}प्रमायंरात्मान चक्रुरेव मलीमसम् ॥१४१॥
 वय जायैव मातद्गगा^{१२} मदेनोहोपिता पुन । कृतस्तया शृङ्गिरस्माकम् इत्यात् नु^{१३} रजो गर्जं ॥१४२॥

वसन्ततिलकाष्टतम्

इत्य सरस्तु रुचिर प्रविहृत्य नागा सन्तापमन्त^{१४}रुहित प्रशमय्य तोयं ।

तीरद्रुमानुपययु किमपि प्रतोयात् बन्ध तु तत्र नियत न विदाम्ब^{१५}भूयु ॥१४३॥

॥१३२॥ कितने ही हाथी सूड ऊची उठाकर सू सू शब्द करते हुए ऊपरको पानी छोड रहे थे, उस समय आकाशकी ओर उछलता हुआ वह पानी ठीक स्फटिक मणिके बने हुए दण्डेकी शोभा धारण कर रहा था ॥१३३॥ पानीमें प्रवेश करनेसे जिनका सब परिश्रम दूर हो गया है ऐसे कितने ही हाथी लीलापूर्वक मृणालके टुकडे खाकर सतोप धारण कर रहे थे ॥१३४॥ कितने ही हाथी अपने दांतोके अग्रभागपर रखे हुए मृणालोसे ऐसे सुगोभित हो रहे थे मानो निरन्तर पानीके सींचनेसे उनके दात ही अकुरित हो उठे हो ॥१३५॥ मयसे अत्यन्त उन्नत हुआ कोई हाथी अपनी सडसे ऊपर उठाये हुए मृणालको बांधनेकी साँकल समझकर उसे दुहरी कर महावतको दे रहा था ॥१३६॥ अपने पैरमें लगे हुए मृणालको सींचता हुआ कोई डरपोह हाथी उसे बाँधनेकी साँकल समझकर तालावके बाहरी तटपर ही सडा रह गया था ॥१३७॥ अपनी सूडोसे कमलोको उठाकर खडे हुए हाथी ऐसे सुगोभित हो रहे थे मानो हाथीमें अर्घं लेकर किसी देवताका कुछ स्मरण ही कर रहे हो ॥१३८॥ जिनके शरीर तालावकी लहरोसे धूल गये हैं ऐसे ऊँचे ऊँचे हाथी सघन रूपसे लगे हुए कमलोकी परागसे ऐसे सुगोभित हो रहे थे मानो स्नान कराकर उनका शृङ्गार ही किया गया हो ॥१३९॥ हाथियोसे घिरे हुए तालाव के जलको छोडकर सड पक्षी तालावके विनारेपर चले गये थे सो ठीक ही है क्योंकि निर्मल प्राणियोको ऐसा ही करना योग्य है ॥१४०॥ तालावोमें प्रवेश करनेसे जिनके शरीर निर्मल हो गये हैं ऐसे कितने ही हाथी धूल उडाकर फिरसे अपने आपको मूला कर रहे थे ॥१४१॥ प्रथम तो हम लोग जातिसे ही मातंग अर्थात् चाण्डाल हैं (पक्षमें—हाथी हैं) और फिर मद अर्थात् मविरासे (पक्षमें—गण्डस्थलसे बहते हुए तरल पदार्थमें) उत्तेजित हो रहे हैं इसलिये हम लोगोकी शुद्धि अर्थात् पवित्रता (पक्षमें—निर्मलता) वहासे रह सक्ती है ऐसा समझकर ही मानो हाथियोने अपने ऊपर धूल डाल ली थी ॥१४२॥ इस प्रकार वे हाथी बहुत देर तक सरोवरोंमें श्रीडा कर और अन्तरङ्गमें उत्पन्न हुए सतापको जलसे शान्त कर विनारेके वृक्षों

१ रामुच्छलत् ल०, द०, द०, अ०, प०, स० । २ अनावागहै । ३ मृणालसत् । ४ घृतवन् ।

५ दन्तै ल०, द० । ६ सजातप्रागेहं, अद्भुतं । ७ बपनरज्जु । ८ आगेहनाय । ९ सरस्तीवाह्य प्रदेने । १० प्रक्षिपति स्म । 'अनु शोषणे' । ११ शृङ्गस्तनासूत्र । 'अथ शृङ्गवन्त । अदुको निगताम्प्रा स्याद्' इत्यभिधानात् । १२ त्यक्त्वा । १३ गूढ । १४ धृतिप्रशोषं । १५ स्वपचा इति ध्वनि ।

१६ इव । १७ अभ्यन्तरोद्भूतम् । १८ न विदन्ति स्म ।

हृत्वा तरोऽम्बु करिणो निजदानचारि सर्वाधत 'विनिमयादनुणाश्च' सन्त ।
 तद्गीचिहस्तजनितप्रतिरोधशङ्का व्यासद्गिनी नु सरस प्रसन्न निरीयु ॥१४४॥
 धाघोरणा मदमयोमलिनान् करोद्भान् निर्णेषु'मभ्यु मरसामवगाहयन्त ।
 शेरुन्' केवलमयाम्पयोगमात्र 'तीरस्थिताननु नयंस्तदचीकरन्त' ॥१४५॥
 स्वरं नवाम्बुर्पापोतमयल्लभ्यतीरदुमेयु न कृत कवलप्रहोऽपि ।
 ध्यायास्वलम्भि न' तु विद्यमण प्रभिन्न' स्तम्बेरसंबंत मद सलु नात्मनो न' ॥१४६॥
 नाध्वा इत गृह्तरैरपि नातियातो' युद्धेषु जातु न किमप्यपराद्धमेभि ।
 भारक्षमाश्च करिण सविशेषमेव बद्धास्तयाप्यनिभृता'^{१०} इति दिक्चलत्वम् ॥१४७॥
 यज्नीय'^{११} न किमिति हन्त विनापराधात जानीत'^{१२} भो'^{१३} प्रतिफलत्यचिरादिद व ।
 इत्युच्चलत्सृणि'^{१४} विधूय शिरासि बन्धे चैर नु यन्तूयु गजा स्म विभावयन्ति ॥१४८॥
 घ्रायातुरी'^{१५} द्विरदिन सविशेषमेव गात्रापरात्तकर'^{१६} बालयिषु न्ययोजि ।
 बन्धेन सिन्धुरवरास्त्वितरै'^{१७} तथा नो गाढीभवत्यधिरताप्र'^{१८} परप्र'^{१९} बन्ध ॥१४९॥

वे ममीप आ गये थे, यद्यपि वहा उनके वाँछनेका स्थान नियत था तथापि क्रीडासे उत्पन्न हुए अतिगम्य सतोपसे उन्हें उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥१४३॥ हाथियोने तालाबोका जो पानी पिया था उसे मानो अपना बदला चुकाने के लिये ही अपने मदरूपी जल से वडा दिया था, इस प्रकार प्याम रहित हो सुखकी साँस लेंते हुए वे हाथी, ये तालाब अपनी लहरेरूपी हाथोसे' वही हमें रोव न लें' ऐसी आज्ञा कर तालाबोसे शीघ्र ही बाहर निकल आये थे ॥१४४॥ मदरूपी स्याहीसे मलिन हुए हाथियोको निर्मल करनेके लिये तालाबोके जलमे प्रवेश कराते हुए महावन जब उन्हें जलके भीतर प्रविष्ट नहीं करा सके तब उन्होने केवल जल ही पिलाना चाहा परन्तु बहुत कुछ अनुनय विनय करनेपर भी वे विनारे पर सडे हुए उन हाथियोको केवल जल ही पिलानेके लिये समर्थ नहीं हो सके थे । भावार्थ—मदोन्मत्त हाथी न तो पानीमें ही घुमे थे और न उन्हाने पानी ही पिया था ॥१४५॥ मदोन्मत्त हाथियोने न तो अपने इच्छानुसार विना मनके प्राप्त हुआ पानी ही पिया था, न विनारेके वृक्षोसे कुछ तोडकर खाया ही था, और न वृक्षोनी छायामें कुछ विश्राम ही प्राप्त किया था, खेद है कि यह मद वभी भी आत्मा का भंग करनेवाला नहीं है ॥१४६॥ इन हाथियोने शरीर भारी होनेसे शीघ्र ही मार्ग तय नहीं किया यह यात नहीं है अर्थात् इन्होने भारी होनेपर भी शीघ्र ही मार्ग तय किया है, इन्होने युद्धमें भी वभी अपराध नहीं किया है और ये भार ढोनेके लिये भी सबसे अधिक समर्थ है फिर भी केवल मत्त होनेसे इन्हें थक होना पडा है इसलिये इन चञ्चलताको ही धिक्कार हो ॥१४७॥ तुम लोग इस प्रकार विना अपराधके हम लोगोंको क्यों बाध रहे हो ? तुम्हारा यह वायं तुम्हें शाप ही दगवा बदला देगा यह तुम मूल गमभ को इस प्रकार बाधनेके कारण महाघतोमे जो पैर था उन ये हाथी अकुशलो ऊपर उछाटकर मग्नव द्दिगते हुए स्पष्ट रूपमे जतला रहे थे ॥१४८॥ जो हाथी जीवोंका घात करनेवाले थे वे शरीरके आगे पीछे तथा मूड और पृष्ठ आदि

श्रालानिता वनतलव्यतिमात्रमुच्चस्वन्धेषु सिन्धुरवरादव 'तयोच्चकर्मयत्' ।
 तन्ननमाथपणमिच्छमुदात्तमेव सन्भारणाय महतामहतात्मसारम् ॥१५०॥
 इत्य निपत्सुभिरनेकपद्मनुच्चं श्रालानित तदप्य सासि^१ निर्मीनिताक्षम् ।
 तस्यो मुख विचतुरेण^२ कृताद्गहार^३ लोलोपयुक्तवचल स्पृष्टकर्णतालम् ॥१५१॥
 उत्तारिताखिलपरिच्छदलाप्रवेन प्रध्यञ्जितद्रुतगतिर्भ्रमलद्वयदंगा ।
 श्रापातुमम्बुसरसा परित प्रसन्न उच्छद्गल्लसं^४ रनुगता कलभं करिष्य ॥१५२॥
 प्राक्पोतमन्व सरसा 'वृत्तमोष्ट्रकेण^५ स्वोद्गाल^६ दूषितमुपात्ततदद्ग^७ धन्यम् ।
 नापातुमच्छद्गुदिवन्व^८ पितोऽपि यर्ष^९ सर्वो हि वाञ्छति जनो विषय मनोत्तम् ॥१५३॥
 पोत पुरा गजतपा सलिल मदाभ्यु सवासित सरसिजाकरमेत्य तूर्णम् ।
 प्रीत्या पपु कलभकाश्च करेणवदच सम्भोगहेतुदितो^{१०} हि सण्य^{११} भाव ॥१५४॥

प्रहृषिणी

पीत्वाऽम्भो व्यपगमितातरद्गतापा सन्ताप बहिरदित सरोवगाहं ।
 नीत्वान्त^१ गनकतभं सम करिष्य सम्नोस्तु सपदि वनद्रुमान् विचेष्ट ॥१५५॥

सब जगह बन्धनोसे युक्त किये गये थे और जो हाथी किसीका घात नहीं करते थे वे बन्धनसे युक्त नहीं किये गये थे इससे यह सिद्ध होता है कि जो अविरत अर्थात् हिंसा आदि पापोके त्यागसे रहित है उन्हीके कर्मबन्धन सुदृढ रूपसे होता है और जो विरत अर्थात् हिंसा आदि पापोके त्यागसे सहित है उनके कर्मका बन्धन नहीं होता ॥१५०॥ जिनके स्वन्ध बहुत ऊंचे गये हैं ऐसे वनके वृक्षोंमें ही सेनाके ऊंचे ऊंचे हाथी बाधे गये थे सो ठीक ही है क्योंकि महा पुराणोको धारण करनेके लिये जिसकी स्वसक्ति नष्ट नहीं हुई है ऐमा बहुत बडा ही आश्रय चाहिये ॥१५०॥ इस प्रकार महावतोंके द्वारा ऊंचे वृक्षोंमें बांधा हुआ वह हाथियोंका समूह अपनी आधी आँखें बन्द किये हुए सुखसे खडा था, उस समय वह अपना सब शरीर हिला रहा था, लीलापूर्वक ग्रास ले रहा था और कान फडफडा रहा था ॥१५१॥ पलान आदि सय सामान उतार लेनेसे हलारी होकर जिन्होंने जल्दी जल्दी चलकर अपनी शीघ्र गति प्रकट की है, तथा चंचल बच्चे जिनके पीछे पीछे आ रहे हैं ऐसी हथिनियाँ तालाबोंका पानी पीनेके लिये चारों ओर से जा रही थी ॥१५२॥ तालाबोंके जिस पानीको पहले ऊँटोंके समूह पी चुके थे, जो ऊँटोंके उगालसे दूषित हो गया था और जिसमें ऊँटोंके शरीरकी गंध आने लगी थी ऐमे पानीको हाथी भा बच्चा प्यासा होनेपर भी नहीं पीना चाहता था, सो ठीक ही है क्योंकि सभी बोंड अपने मनके विषयभूत पदार्थोंके अच्छे होनेकी चाह रखते हैं ॥१५३॥ जिमे पहले हाथियोंके समूह पी चुके थे और जिसमें उनके मद जलकी गंध आ रही है ऐमे पानीको हथिनियाँ तथा उनके बच्चे बहुत शीघ्र तालाबपर जाकर बड़े प्रेमसे पी रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि ममानता ही साथ साथ पाने पीने आदि सभोगका कारण होता है ॥१५४॥ जिन्होंने जल पीकर अन्तर्गद्गवा सताप दूर किया है और तालाबमें घुमकर बाहिरी सताप नष्ट किया है ऐसी हथिनियाँ अपने

१ आधोरत्नं । २ यस्मात् कारणान् । ३ अर्थ । ४ विदूश्यानि विगनानि चत्वारि यस्य तन ।
 ५ अक्षयविभेदम् । ६ पाद । ७ स्वच्छदवृत्तिनि । ८ सम्पूर्णम् । ९ उच्छ्रममूहण । १० निजाद्गार ।
 ११ उच्छ्रमरीगचम् । १२ भृगु तृपित । १३ तरणगज । विक्व अ० । १४ उक्त । १५ परिमनाच
 मिनत्व च । १६ नाम् ।

मालिनी

अन्ननिपतिसमाजेनानुपातस्तुरङ्गं अकृदात्रिमययोगाग्निर्जयन् लोकपालान् ।
 प्रतिदिशमुपगृण्वन्प्राशिपदश्चभ्रनाणि शिविरमविशदुर्ध्ववन्दिना पुष्यघोषे ॥१६३॥
 अथ सरसिजिनीना गन्धमादाय सान्द्र धृततटवनवीधिचन्दमावान् समन्तात् ।
 श्रममखिलमनोत्सोत् कर्तुमत्योपघार प्रहित इव सगन्ध^१ सित्थुना^२ गन्धवाह ॥१६४॥
 अविदितपरिमाणरन्वितो रत्नसादृशं स्फुरितमणिशिखारंभोगिभि^३ सेवनीय ।
 सततमुपचितात्मा रुद्धदिवचक्रवालो जलनिधिमनुजह्ले^४ तस्य सेनानिवेद ॥१६५॥

शादूलविक्रीडितम्

तत्रावासितसाधने^१ निधिपतिर्गत्वा रयेनाम्नुधि जंत्राहप्रतितन्नितामरसमस्त व्यन्तराघोदयरम् ।
 जित्वा मागधवत् क्षणाद्वरतनु तत्ता ह्यमग्नोनिषे द्वीप साद्वदलचकार यदासा कल्पान्तरस्थाधिना ॥१६६॥
 लेशभेद्येधमुरश्चद्वरतनोर्वेपथ च स्फुरच्चूडारत्नमूदसु दिव्यकटकान्सूत्र च रत्नोज्ज्वलम् ।
 सश्लेरिति पूजित स भगवान्^२ श्रौत्रैजयन्तार्णवद्वारेण प्रतिसप्रिवृत्य कटक प्रायिसदुत्तोरणम् ॥१६७॥

सेनाओमे क्षण भरके लिये बडा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था ॥१६०॥ घोडोपर बैठे हुए अनेक राजाओका समूह जिसके पीछे पीछे चल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती अपने बडे भारी वैभव से लोकपालोको जीतता हुआ तथा प्रत्येक दिशामें बन्दीजनोके मंगल गानोके साथ साथ आगी-वादि सुनता हुआ अपने उच्च शिविरमें प्रविष्ट हुआ ॥१६३॥

अथानन्तर जो किनारेके वनकी पकिनयोको हिला रहा है ऐमा वायु कमलिनिघो की उत्कट गध लेकर धीरे धीरे चारो ओर यह रहा था और समुद्रके द्वारा भेजे हुए किमी गान सम्बन्धोके समान चक्रवर्तीके समस्त परिश्रमको दूर कर रहा था ॥१६४॥ उस समय वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान (पटाव) ठीक समुद्रका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र प्रमाणरहित शख और रत्नोसे सहित होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी प्रमाणरहित शख आदि निधियो तथा रत्नोसे सहित था, जिम प्रकार समुद्र, जिनके मस्तकपर अनेक रत्न देदीप्यमान हो रहे हैं ऐमे भोगी अर्थात् सर्पोसे सेवनीय होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी, जिनके मस्तकपर अनेक मणि देदीप्यमान हो रहे हैं ऐमे भोगी अर्थात् राजाओके द्वारा सेवनीय था, जिम प्रकार समुद्र निरन्तर बढ़ता रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी निरन्तर बढ़ता जाना था, और जिम प्रकार समुद्र सत्र दिशाओकी घेरे रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी सब दिशाओको घेरे हुए था ॥१६५॥ जिसने अपनी सेना समुद्रके किनारे ठहरा दी है और जिमने अपने विजय-शील शस्त्रोमे मागध देवकी सभाको जीत लिया है ऐमे निधियोके स्वामी चक्रवर्तीने अपने द्वारा समुद्रमें जातर मागधदेवके समान व्यन्तराके स्वामी वरतनु देवकी भी जीता और समुद्रके भीतर रहनेवाले उमके वरतनु नामक द्वीपको कल्पान्त कालतक स्थिर रहनेवाते अपने यग मे मन्दाके लिये अन्वृत्त कर दिया ॥१६६॥ भरतने वरतनु देवमे कभी न टूटनेवाला कवच, देदीप्यमान हार, चमत्ता हुआ चूटागल, दिव्य कडे और रत्नोमे प्रमाणमान यज्ञोपवीत इतनी वस्तुएं प्राप्त कीं । तदनन्तर उत्तम रत्नोमे जिमकी पूजा की गई है ऐमे ऐश्वर्यमाली

१ आगच्छन् । २ अपनयति म् । ३ यद्यु । ४ समुद्रेण । ५ चक्रादिनागणनिधिभि ।
 ६ पा भोकिनादिनागणम् । ६ एग मर्षे । ७ वदितमवस्था । ८ अनुकरणं म् । ९ निरागि-
 वन । १० पूज्य ।

वत्सीनां सकृत्सुमपल्लवाग्रभद्रगान् गुल्मीघानपि सरसां कडङ्गरांश्च^१ ।
 सुस्वाद्गन् मुबुविटपान् वनद्रुमाणां तद्युयं फयलयति स्म घेनुकानाम्^२ ॥१५६॥
 कुञ्जेषु^३ प्रतनुत्तुणाड्कुरान् प्रमुद्नन्^४ यप्रान्तानपि^५ रदनः शर्नैविनिष्णन् ।
 वल्लवप्रसनचण^६ फलेग्रहि^७ सन् वालोलः फलभगणदिशरं विजहृ^८ ॥१५७॥
 प्रत्यग्राः किसलयिनीगुंहाण शाखा-भ^९ङ्गध्युच्चैर्वनगहनं निपीव^{१०} फुञ्जे ।
 सम्भोग्यानुपसरसल्लकीवनान्तत् इत्येवं^{११} व्यहृत^{१२} घने करेणुवर्गः ॥१५८॥
 सम्भोगैर्वनमिति निविशन्^{१३} यवेष्टं स्वातन्त्र्यान्मुहुरपि^{१४} धृगंतनिबद्ध^{१५} ।
 बद्धव्यः सहकलभः करेणुवर्गः सम्प्रापत् समुचितमात्मनो निवेशम् ॥१५९॥
 वित्रस्त्रंरपयमुपाहृतस्तुरङ्गैः पर्यस्तो^{१६} रय इह^{१७} भग्नधूर्निरक्ष^{१८} ।
 एतास्ता द्रुतमपयान्त्वपेत्य मर्गाद् धारस्त्रीबहनपराश्च वेगसर्व^{१९} ॥१६०॥
 वित्रस्तः^{२०} करभनिरक्षणाद् गजोयं भोह्व प्रकटयति प्रघावमानः ।
^{२१}उन्नस्ताप्यतति च वेसरादमुष्माद् वित्तस्तस्तनजघनांशुवा पुरन्धी ॥१६१॥
 इत्युच्चैर्व्यतिवदता^{२२} पृथग्जनाना सञ्जल्पः क्षुभितलरोट्टृकौर्क्षकैश्च^{२३} ।
^{२४}व्याश्रोशैर्जनितरवेदश्च सेनिकाना सडक्षोभः क्षणमभवच्चमूय राजाम् ॥१६२॥

वच्चोके साथ खानेके लिये शीघ्र ही वनके वृक्षोंकी ओर चली गईं ॥१५५॥ वह हथिनियोका समूह लताओके पुष्पसहित नवीन पत्तोंके अग्रभागको, छोटे छोटे पौधोंको, रसीले कड़ुगिरि वृक्षोंको और वनके वृक्षोंकी स्वादिष्ट तथा कोमल शाखाओको खा रहा था ॥१५६॥ लता-गृहोमे पतली घासके अकुरोको खूदता हुआ खेतोकी मेडको अपने दाँतोसे धीरे धीरे तोड़ता हुआ, लताओके अग्रभागके खानेमे चतुर तथा फलोको तोड़ता हुआ वह चचल हाथियोके वच्चो का समूह चिरकाल तक क्रीडा करता रहा था ॥१५७॥ पत्तवाली नवीन लताओको ग्रहण कर, ऊँची ऊँची शाखाओसे युक्त सघन वनमे जा, लतागृहमे बैठ और खानेके योग्य सल्लकी वनोंके समीप जा इस प्रकार महावतोंकी आज्ञासे वह हथिनियोका समूह वनमें इधर-उधर विहार कर रहा था ॥१५८॥ इस प्रकार जो अनेक प्रकारकी क्रीडाओके द्वारा वनका अपने इच्छा-नुसार उपभोग कर रहा है, स्वतन्त्रतापूर्वक आगे चलनेसे महावत लोग जिसे रोक रहे हैं और जो बाँधनेके योग्य है ऐसा वह हथिनियोका समूह वच्चोके साथ अपने ठहरने योग्य स्थानपर जा पहुँचा ॥१५९॥ इधर हाथियोसे डरे हुए इन घोड़ोने यह रथ कुमार्गमे ले जाकर पटक दिया है, इसका घुरा और भौंरा टट गया है तथा वेश्याओको ले जानेमे तत्पर ये खच्चरियाँ अपना मार्ग छोड़कर बहुत शीघ्र भागी जा रही हैं ॥१६०॥ इधर यह ऊट देखनेसे डरा हुआ-हाथी दौड़ा जा रहा है और उममे अर्पना डरपीवपना प्रकट कर रहा है तथा इधर जिसके स्तन और जघन परका वस्त्र गिरा गया है ऐसी यह स्त्री डरे हुए खच्चरसे गिर रही है ॥१६१॥ इस प्रकार जोर जोरमे बोलने हुए गाधारण पुरपोकी बातचीतके शब्दोंसे, क्षोभको प्राप्त हुए गधे, ऊट तथा बैलोंके शब्दोंमे और परस्पर बलानेसे उत्पन्न हुए सेनिकोंके कठोर शब्दोंसे राजाओकी

१ बुभानि । 'कडङ्गरांश्च' इत्यभिधानात् । २ वत्सीनाम् । 'वत्सीनां घेनुका वसा' इत्यमरः । ३ मुग्धाणाम् । ४ शोमल । ५ मर्दयन् । ६ मान्वन्तान् । 'सुवर्षेण सानुरस्त्रियाम्' इत्यमरः । ७ यथागमय । ८ पलाशानि गृह्णन् । ९ भद्रग मुप । १० आस्त्व । ११ सादिजनानुनयं । १२ विहानि रम । १३ अनुभवन् । १४ गार्दिनि । १५ निपिडः । १६ उत्तान यथा पतित । १७ भग्नवान्मुप । १८ निर्गन्तव्यव । १९ वेसरा । २० भय गत । २१ चवितान् । २२ परस्परभाषणानाम् । २३ वृषभैः । २४ परस्परद्वयं ।

मालिनी

अत्रनिपतिसमाजेनानुशातस्तुरङ्गैः अहृदाविभवयोगान्निर्गन्तुं लोकपालान् ।
 प्रतिदिशमुपशृण्वन्प्राशिपद्भयनाणि शिविरमविशदुर्चर्चंविन्दना पुण्यघोरं ॥१६३॥
 अथ सरसिजिनीना गन्धमादाय सान्द्र धृततटवनबोधिमन्दमावान्^१ समन्तात् ।
 श्रममलिलमनोत्सीत्^२ कर्णुमस्थोपचार प्रहित इव सगन्ध^३ सिन्धुना^४ गन्धवाह ॥१६४॥
 अविदितपरिमाणंरन्वितो रत्नदाडले^५ स्फुरितमणिशिखारंभोभि^६ सेवनीय ।
 सततमुपचितात्मा^७ रुद्धदिकचक्रवालो जलनिधिमनुजहृ^८ तस्य सेनानिवेश ॥१६५॥

शार्दूलविष्ठीडितम्

तत्रावासितसाधनो^१ निधिपतिर्गत्वा रयेनाम्बुधि जैत्रास्त्रप्रतितन्त्रितामरसमस्त ध्यन्तरायोदयरम् ।
 जित्वा मागधवत् क्षणाद्वरतनु तत्ता ह्यमम्भोनिषे द्वीप शब्दवदत्तञ्चकार यत्सत्ता कृत्वाग्नरत्नभाजिना ॥१६६॥
 लोभेऽनेधमुरदधद वरतनोर्ध्वेवैक च स्फुरच्चूडारत्नमुदनु दिव्यकटकासूत्र च रत्नोत्पलम् ।
 सद्रत्नैरिति पूजित स भगवान्^२ श्रीवैजयन्तार्णव द्वारेण प्रतिसन्निवृत्त्य षटक् प्राधिसदुत्तोरणम् ॥१६७॥

सेनाओंमें क्षण भग्वे लिये वडा भारो क्षोभ उत्पन्न हो गया था ॥१६२॥ घोडोपर बैठे हुए अनेक राजाओंका समूह जिसने पीछे पीछे चल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती अपने वडे भारो वैभव से लोकपालोको जीतता हुआ तथा प्रत्येक दिशामें वन्दीजनोके मगल गानोके साथ साथ आशीर्वादि मुनता हुआ अपने उच्च शिविरमें प्रविष्ट हुआ ॥१६३॥

अथानन्तर जो विनारेके वनकी पकिनयोको हिला रहा है ऐसा वायु कमलिनियो की उत्कट गध जेकर धीरे धीरे चारो ओर वह रहा था और समुद्रने द्वारा भेजे हुए विष्ठी नाम सम्यन्धोके समान चक्रवर्तीके समस्त परिश्रमनो दूर कर रहा था ॥१६४॥ उम समय वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान (पडाव) ठीक समुद्रका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र प्रमाणरहित शूल और रत्नोसे सहित होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी प्रमाणरहित शूल आदि निधियो तथा रत्नोमे सहित था, जिम प्रकार समुद्र, जिनके मस्तकार अनेक रत्न देदीप्यमान हो रहे है ऐसे भोगी अर्थात् सर्पोमे सेवनीय हो ॥ है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी, जिनके मन्त्रपर अनेक मणि देदीप्यमान हो रहे है ऐसे भोगी अर्थात् राजाओंके द्वारा सेवनीय था, जिम प्रकार समुद्र निरन्तर बढ़ता रहता है उन्ही प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी निरन्तर बढ़ता जाता था, और जिम प्रकार समुद्र मत्र दिशाओंको घेरे रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी मत्र दिशाओंको घेरे हुए था ॥१६५॥ जिमने अपनी सेना समुद्रके विनारे ठहरा दी है और जिमने अपने विजयशील शस्त्रोमे मागध देवकी मभावो जीत लिया है ऐसे निधियोके स्वामी चक्रवर्तीने ग्यके द्वारा समुद्रमें जाकर मागधदेवके समान व्यन्त्रोके स्वामी वरतनु देवको भी जीता और समुद्रके भीतर रहनेवाके उपके वरतनु नामक द्वीपको कप्तान कप्तक स्थिर रहनेवाके अपने यश मे मद्राके ग्ये अङ्कन कर दिया ॥१६६॥ भरतने वरतनु देवके कमी न दूटनेवाका कवच, देदीप्यमान हाथ, चमत्ता हुआ चूडारत्न, दिव्य वडे और रत्नोमे प्रशङ्गमान यज्ञोपवीत इनकी वस्तुएं प्राप्त की । तदनन्तर उत्तम रत्नोमे जिमकी पूजा की गई है ऐसे ऐश्वर्यशाली

१ आगच्छन् । २ अपनयति स्म । ३ वधु । ४ समुद्रेण । ५ चक्राक्षिरत्नमणिकपिभि ।
 ६ गणं शोकाशानिनागान् । ७ तपो गर्भे । ८ यद्विनम्बवत् । ९ अनुकरणं स्म । १० दिशामि-
 त्तम् । १० पूज्य ।

स्वच्छ हृदय स्फुट प्रकटयन्मुक्ताफलध्वजना स्व चान्तर्गतारागानां वयन्नुद्यत्प्रवासाद्भृत् ।
सर्वस्व च समर्पयन्पुनर्यन्तर्वर्ण^१ दक्षिणो वारा राशिरमात्ययद्विभ्रमसी निर्घ्राजमारोपयत् ॥१६८॥
आस्थाने^२ जपहुन्दुभीनन् नवन^३ प्राभातिके मद्गले गम्भीरध्वनितैर्जयध्वनिमिव प्रस्पष्टमुच्चारयन् ।
सुध्यक्त स जलाशयोऽध्यजल^४धीर्वास्पति श्रीर्वांसि निर्भृत्य^५स्वित्तिरन्विधाय सुचिर शत्रो यथाद्य जिनम्

इत्याप्ये भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटितलक्षणमहापुराणसग्रहरे
दक्षिणाण्वद्वारविजयवर्णन नामकोनत्रिंश पवं ।

भरतने वैजयन्त नामक समुद्रके द्वारसे वापिस लौटकर अनेक प्रकारके तोरणोमे सुशोभित किये गये अपने विबिरमें प्रवेश किया ॥१६७॥ उस समय वह दक्षिण दिशाका लवणसमुद्र ठीक मन्त्रीकी तरह छलरहित हो भरतकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिस प्रकार मन्त्री अपने स्वच्छ हृदयको प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मोतियोंके छलसे अपने स्वच्छ हृदय (मध्यभाग)को प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपने अन्तरङ्गका अनुराग (प्रेम) प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उत्पन्न होते हुए मृगाओके अकुरोसे अपने अन्तरङ्गका अनु राग (लाल वर्ण) प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है उसी प्रकार समुद्र भी अपना सर्वस्व (जल) समर्पण कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना गुप्त धन उनके समीप रखता था उसी प्रकार वह समुद्र भी अपना गुप्त धन (मणि आदि) उनके समीप रख रहा था, और जिस प्रकार मन्त्री दक्षिण (उदार सरल) होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी दक्षिण (दक्षिणदिशावर्ती) था ॥१६८॥ अथवा जिस प्रकार इन्द्र दाम होकर अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी प्रथम जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेवकी सेवा करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी दास होकर राज्यलक्ष्मीके अधिपति भरत चक्रधरकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिम प्रकार इन्द्र आस्थान अर्थात् समवसरण सभाम जाकर विजय दुन्दुभि वजाता था उसी प्रकार वह समुद्र भी भरतके आस्थान अर्थात् सभामण्डपके समीप अपनी गर्जनासे विजय-दुन्दुभि वजा रहा था, जिस प्रकार इन्द्र प्रात कालके समय पढे जानेवाले मंगल-पाठके लिये जय जय मन्दका उच्चारण करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी प्रात कालके समय पढे जानेवाले भरतके मंगल पाठके लिये अपने गभीर गद्दोसे जय जय शब्दका स्पष्ट उच्चारण कर रहा था, जिम प्रकार इन्द्र जलाशय (जडाशय) अर्थात् केवल ज्ञानकी अपेक्षा अल्प ज्ञानी होकर भी अपने ज्ञानकी अपेक्षा अजलधी (अजडधी) अर्थात् विद्वान् (अजडा धीर्यस्य स) अथवा अजड (ज्ञानपूर्ण परमात्मा) वा ध्यान करनेवाला (अजड ध्यायतीत्यजडधी) था उसी प्रकार वह समुद्र भी जलाशय अर्थात् जलयुक्त होकर भी अजलधी अर्थात् जल प्राप्त करनेकी इच्छामे (नास्ति जडे धीर्यस्य स) रहित था, इस प्रकार वह समुद्र चिरकाल तक भग्नेश्वरकी सेवा करता रहा ॥१६९॥

* ८म प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटितलक्षण महापुराणसग्रहके भागानुवादमें दक्षिण समुद्रके द्वारके विजयवा वर्णन करनेवाला उन्नीसवाँ पवं समाप्त हुआ ।

त्रिंशत्तमं पर्व

'अथापरान्त' निजंतुम् उद्यत^१ प्रभुरद्यौ । दक्षिणा^२परदिग्भागे यशोवर्चं स्वसापनै ॥१॥
 पुर प्रयातमद्वयै श्रन्वक्^३प्रचलित रथं । मध्ये हस्तिघटा प्रायात् सर्वनेवान् पत्तय ॥२॥
 'सदेवबलमित्यस्य चतुरद्वय विभोर्वलम् । विद्याभूता बलं सार्द्धं यद्भिरद्वैविपप्रये' ॥३॥
 प्रचलद्बलतश्चोभाद् उच्चचाल किलाणव । महतामनुर्वांसं नु श्रावयन्ननुजीविनाम् ॥४॥
 बलं प्रसह्य^५ निर्भुक्ता 'प्रद्वन्ति स्म'^६ भहीभुज^७ । सरित् बर्दमन्ति^८ स्म रथन्ति स्म महाद्वय ॥५॥
 सुरसा^९ 'कृतनिर्वाणा' स्नुहणीया वृभक्षुभि^{१०} । मद्भूमि^{११} 'सममुद्योगं' फलन्ति^{१२} 'स्नास्य सिद्धय'^{१३} ॥६॥
 ध्रमेद्या दूढसन्धाना^{१४} विपक्षजय^{१५} हेतव । 'शवनयोऽस्य स्फुरन्ति स्म सेनाश्च विजिगीषुषु ॥७॥
 फलेन^{१६} योजितास्तीक्ष्णा सपक्षा' दूरगामिन । नाराचै^{१७} 'सममेतस्य योषा जग्मुर्जयाद्गताम् ॥८॥

अथानन्तर—पश्चिम दिशाको जीतनेके लिये उद्यत हुए चक्रवर्ती भरत अपनी सेनाके द्वारा दक्षिण और पश्चिम दिशाके मध्यभाग (नैऋत्य दिशा) को जीतने हुए निकले ॥१॥ उनकी सेनामें घोड़ोके समूह सबसे आगे जा रहे थे, रथ मत्तसे पीछे चर रहे थे, हाथियोंका समूह बीचमें जा रहा था और प्यादे सभी जगह चल रहे थे ॥२॥ हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे इम प्रकार चार तरहकी भरतकी सेना देव और विद्याधरोकी सेनाके साथ साथ चल रही थी । इम प्रकार वह सेना अपने छह अंगोके द्वारा चारो ओर विस्तार पा रही थी ॥३॥ उम चलती हुई सेना के क्षोभसे समुद्र भी क्षुब्ध हो उठा था—लहराने लगा था और ऐसा जान पड़ता था मानो 'सबको महापुरुषोका अनुकरण करना चाहिये' यही बात सेवक लोगोको मुना रहा हो ॥४॥ सेनाके द्वारा जवर्दस्ती आक्रमण किये हुए राजा लोग नष्ट हो गये थे, नदियोमें कीचड़ रह गया था और बड़े बड़े पहाड़—समान जमीनके सदश—हो गये थे ॥५॥ जिनका उपभोग अत्यन्त मनोरम है, जो सतोष उत्पन्न करनेवाली है, और जो उपभोगकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके द्वारा चाहने योग्य है ऐसी इम चक्रवर्तीकी समस्त सिद्धिया इसके बड़े भारी उद्योगोके साथ ही साथ फल जाती थी अर्थात् सिद्ध हो जाती थी—॥६॥ जिन्हें कोई भेद नहीं सकता है, जिनका सगठन अत्यन्त मजबूत है और जो शत्रुओके क्षयका कारण है ऐसी भरतकी शक्ति तथा सेना दोनों ही शत्रु राजाओपर अपना प्रभाव डाल रहे थे ॥७॥ भरतके योद्धा उनके वाणोके समान थे, क्योंकि जिम प्रकार योद्धा फल अर्थात् इच्छानुसार लाभसे युक्त किये जाते थे उसी प्रकार वाण भी फल अर्थात् ओहेकी नोकसे युक्त किये जाते थे, जिस प्रकार योद्धा तीक्ष्ण अर्थात् तेजस्वी थे उसी प्रकार वाण भी तीक्ष्ण अर्थात्

१ 'रूप्याद्रितायनतमोनिविरात्रिरत्नमन्दोर्हनिर्गन्तदीजिमयाऽऽधिरथम् । देव नमामि मदन जादेननाथ मनया प्रणन्दुरित जगदनाथम् ॥ 'त' पुस्तकेऽधिरथोऽयं म्नाक' । २ अपरदिगवधिम् । ३ अभ्युदयवान् । ४ नैऋत्यदिग्भागम् । ५ परचान् । ६ अगच्छत् । ७ सदव न० । ८ प्रयागन स्म । ९ भटानाम् । १० वातावरणेण । ११ निजिता । १२ प्रणता इव आचरन्ति स्म । १३ मर्हन्नुज वृक्षा वा । १४ बर्दमा इवाचरिता । १५ मिद्धिपसे रामनहिता । पत्राभमे रसप्रहिता । 'युगे रामे द्वे रम' इत्यमरः । १६ वृत्तानुया । १७ भोऽनुमिच्छुभि । आश्रितजनैरित्यर्थः । १८ उगाहं । १९ पत्रानोयाचरन्ति स्म । २० कार्ष्णिमिद्धय । २१ दृग्गम्बया । २२ नय-न० । २३ प्रनु मशोगाहस्या । २४ तीरिच्छनेन अनौष्टफनेन च । २५ पत्रप्रहिता सतायाचर । २६ वाणं ।

दूरमत्तारिता तेषं परित्यक्तपरिच्छदा । विपक्षा तस्यगवारय विपक्षत्वमुपाययु ॥६॥
 प्राक्कातभूमतो नित्य भूञ्जाना पतताम्पदम^१ । कुपतित्व^२ ययुश्चित्रं वापेऽप्यय विभाषित ॥१०॥
 सन्निविष्टहृत्वितास्य^३ पदविद्यारयभूत परम । पृतवा^४ तस्यपक्षय बध तस्यानं बध विग्रह^५ ॥११॥
 इत्यजतस्यपक्षोऽपि यद्य विजयोद्यत । तन्मूनं^६ भुक्तिमातापोयां तद्वापान्नं^७ परीयवान्^८ ॥१२॥
 आत्राता संनिररय विभो पारऽप्यय^९ भुव । पूयद्रुमवृत्तदद्याया नातिवञ्चनंरत्ना ॥१३॥
 निपदे^{१०} नातिवेराणां तरणानां ह्यतो^{११} रत । सरतीरतरदद्याया विधाम्नेरय संनिर^{१२} ॥१४॥

पैने थे, जिस प्रकार योद्धा सपक्ष अर्थात् सहायकोसे महिन थे उगी प्रकार याण भी गपध अर्थात् पखोसे सहित थे, और जिस प्रकार योद्धा दूर तव गमन करनेवाणे थे उगी प्रकार याण भी दूर तक गमन करनेवाले थे, इस प्रकार वे दोनों साथ साथ ही विजयके अग हो गये थे ॥८॥ भग्न के विपक्ष (विरुद्ध पक्षो येपा ते विपक्षा) अर्थात् शत्रुओको उनकी सेनाने दूर भगा दिया था और उनके छत्र चमर आदि सब सामग्री भी छीन ली थी इसलिये वे गन्धमुच ही विपक्षपनेको (विगत पक्षो येपा ते विपक्षास्तेपा भावस्तत्त्वम्) प्राप्त हो गये थे अर्थात् महायरहित हो गये थे ॥९॥ यह एक आश्चर्यकी बात थी कि भरतके विरोधी राजा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर तथा उनके क्रोधित होनेपर भी अनेक प्रकारकी पत्र-सपदाओका उपभोग करते हुए कुपतित्व अर्थात् पथिवीके स्वामीपनेको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ—इस श्लोकमें श्लेष-मूलक विरोधाभास अलंकार है इसलिये पहले तो विरोध मात्रम् होता है बादमें उमवा परिहार हो जाता है । श्लोकका जो अर्थ उपर लिखा गया है उससे विरोध स्पष्ट ही भग्न रहा है क्योंकि भरतके क्रोधित होनेपर और उनकी सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर कोई भी शत्रु सुखी नहीं रह सकता था परन्तु नीचे लिखे अनुसार अर्थ बदल देनेसे उस विरोधका परिहार हो जाता है—भरतके विरोधी राजा लोग, उनके कुपित होने तथा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर अपनी राजधानी छोड़कर जगलोमें भाग जाते थे वहाँ फल खाकर ही अपना निर्वाह करते थे और इस प्रकार कु-पतित्व अर्थात् कुत्सित राजवृत्ति (वरिद्रता)को प्राप्त हो रहे थे ॥१०॥ उस भरतको सन्धि (स्वर अथवा व्यजनको मिलाना) और विग्रह (व्युत्पत्ति) की चिन्ता केवल व्याकरण शास्त्रम ही हुई थी अन्य शत्रुओके विषयमें नहीं हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिसने समस्त शत्रुओको नष्ट कर दिया है उसे कहा सन्धि (अपना पक्ष निर्बल होनेपर बलवान् शत्रुके साथ मेल करना) करनी पडती है ? और कहा विग्रह (युद्ध) करना पडता है ? अर्थात् वही नहीं ॥११॥ इस प्रकार भरतके यद्यपि जीतने योग्य कोई शत्रु नहीं था तथापि वे जो दिग्विजय करनेके लिये उद्यत हुए थे सो केवल दिग्विजयके छलसे अपने उपभोग करने योग्य क्षेत्रमें चक्कर लगा आये थे—धूम आये थे ॥१२॥ महाराज भरतके सैनिकोंने, जहा सुपारीके वृक्षोके द्वारा छाया की गई है और जो नारियलके वनोसे व्याप्त हो रही है ऐसे समुद्रके किनारेकी भूमि पर आक्रमण किया था ॥१३॥ सरोवरोके किनारेके वृक्षोकी छायामें विश्राम करनेवाले भरतके सैनिकोंने नारियलक तरुण अर्थात् बड़े बड़े वृक्षो

१ सहायगुणपरहितत्वम् । २ आत्रान्ता भूमतो ल० । भूभूत राजान पवताश्च । ३ अभीष्ट पत्रगमपदम वनरगतिपत्रसम्पद च । ४ भूपतित्व कुत्सितपतित्व च । ५ सधानयुद्धचिन्ता च । ६ शब्दप्राप्तयु । ७ निरस्तानुपगम्य । ८ पाननभत्रम् । ९ दिग्विजयद्यधना । १० प्रदक्षिणीवृत्तवान् । ११ गमदतीरम् । १२ पारं मध्यऽय पठया । १३ पान त्रियते स्म । १३ निसृत ।

स्फुरत्पदपसम्पातपवनान्धूननोल्लस्यत । तालीवनेषु' तत्संग्यं शुश्रुवे मर्मर'ध्वनि ॥१५॥
 सम ताम्बूलवल्लीमि अग्रशयत् ऋमुकान् विभु । एककार्यत्वमस्माकमितीव' मिलितान्मिय ॥१६॥
 नृपस्ताम्बूलवल्लीनाम् उपधनान्' ऋमुकद्रुमान् । निध्यायन् वोट'तास्ताभि 'ममुदे दम्पतीयितान् ॥१७॥
 स्वाध्यायमिव कूर्वाणान् वनेत्वविरतस्वनान्' । धीन्मुनीनिव सोऽपश्यद् पत्रास्त'मितवासिन ॥१८॥
 पनसानि मूङ्गपन्त षष्टकोनि बहिस्त्वचि । सुरसाग्न्यमृतानीव जना 'प्रादन् ययेप्सितम् ॥१९॥
 नालिकेररस पान पनसान्यशन परम् । मरीचान्युपदशश्च वन्या' वृत्तिरहो सुखम् ॥२०॥
 सरसानि मरीचानि किमप्यास्वाद्य विधिरान् । स्वत' प्रभुरद्राक्षीद् गतदध्यविलोचनान् ॥२१॥
 विदश्य' मञ्जरीस्तीक्ष्णा मरीचाना सशङ्कितम् । शिरो विमुन्वतोऽपश्यत् प्रभुस्तदणमकटान् ॥२२॥
 वनस्पतीन् फलानघ्रान् वीक्ष्य लोकोपकारिण । जाता कल्पद्रुमास्तित्वे नि'रारेकास्तदा जना ॥२३॥
 लतायुधतिससक्ता प्रसवाद्यथा वनद्रुमा । करदा' इव तस्यासन् प्रीणयन्त फलेर्जनान् ॥२४॥
 नालिकेरासवंमत्ता किञ्चिदा' धूणितेक्षणा । यशोऽस्य जगुरामन्द्रकुहर' सिंहलाडगना ॥२५॥

से निकला हुआ रस खूब पिया था ॥१४॥ वहा भरतकी सेनाके लोगोने ताड वृक्षोके वनो में वायुके हिलनेसे उठी हुई बहुत कठोर सूखे पत्तोंकी मर्मर-ध्वनि सुनी थी ॥१५॥ वहा सम्राट् भरतने हम लोगोका एक ही समान कार्य होगा यही समझकर जो पानकी बेलोके साथ साथ परस्परमें मिल रहे थे ऐसे सुपारीके वृक्ष देखे ॥१६॥ जो पानोकी लताओके आश्रय थे तथा जो उनके साथ लिपटकर स्त्री-पुरुषके समान जान पडते थे ऐसे सुपारीके वृक्षोंको बडे गौरके साथ देखकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए थे ॥१७॥ उन वनोमें सूर्यास्तके समय निवास करनेवाले जो पक्षी निरन्तर शब्द कर रहे थे और ऐसे जान पडते थे मानो मूषास्तके समय निवास करनेवाले तथा स्वाध्याय करते हुए मुनि ही हों उन्हें भरतने देखा था ॥१८॥ जो भीतर कोमल है तथा बाहरी त्वचापर काटोसे युक्त है ऐसे अमृतके समान मीठे कटहलके फल सेनाके लोगोने अपने इच्छानुसार खाये थे ॥१९॥ वहा पीनेके लिये नारियलका रस, खानेके लिये कटहलके फल और व्यजनके लिये मिरच मिलती थी, इस प्रकार सैनिकोंके लिये वनमें होनेवाली भोजनकी व्यवस्था भी सुखकर मागूम होती थी ॥२०॥ जो सरस अर्थात् गीली मिरचें खाकर कुछ कुछ शब्द कर रहे हैं और जिनकी आँखोंसे आसू गिर रहे हैं ऐसे पक्षियोंको भी भरतने देखा था ॥२१॥ जो तरण वानर बहुत तेज मिरचोंके गुच्छोंको नि शक रूपसे खाकर वादम चरपरी लगनेसे शिर हिला रहे थे उन्हें भी महाराजने देखा ॥२२॥ उस समय वहा फलोसे भुके हुए तथा लोगोका उपकार करनेवाले वृक्षोंको देखकर लाग कल्प-वृक्षोके अस्तित्वमें शंका रहित हो गये थे ॥२३॥ जो लतारूप स्त्रियोंसे लिपटे हुए हैं और अनेक फलोसे युक्त हैं ऐसे वनके वृक्ष अपने फलोसे सेनाके लोगोको सतुष्ट करते हुए ऐसे जान पडते थे मानो भरतके लिये कर ही दे रहे हों ॥२४॥ जो नारियलकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो रही हैं और इसीलिये जिनके नेत्र कुछ कुछ धूम रहे हैं ऐसी सिंहल द्वीपकी स्त्रिया वहा गद्गद

१ तानवनपु । २ शुष्कपणध्वनि । 'अथ ममर., स्वनिन वन्धपणानाम्' इयमिधानान् ।

३ पर्णश्रमुकमेरुनादेवकायत्वमिति । ४ आश्रयभूतान् । 'स्थादुपमानिकाश्रय इत्यमर । ५ विध्याय ये-ल० । ६-स्वनम् ल० । ७ विह्वान । ८ यत्र रविरस्त गतस्तत्र वासिन । ९ भगयन्ति स्म । भक्षितवन्त इत्यर्थ । १० वनवास । ११ रव (रत्न) वृत्त । १२ भगयिष्या । १३ गिरसदेहा । १४ कर मिश्राय ददतीति करदा, वृट्-भ्विजना इत्ययम् । 'आलस्योपहन पाद पाद पायण्डमाथिन । राजान सवने पाद पाद शृविमुपागत ॥ १५ प्रचलायिन । १६ गम्भीरगहर यथा भवति यथा । गद्गदमहितवम्पन कुररसध्नोच्यत ।

त्रिकूटमलयोत्तदगे गिरी पाण्ड्यकवाटकः । जगुरय यशो मन्द्रमूर्च्छनाः किन्नराद्यगनाः ॥२६॥
 मलयोपान्तकान्तारे सह्याचलवनेषु च । यशो वने चरस्त्रीभिः उज्जगोऽस्य जयार्जितम् ॥२७॥
 चन्दनोद्यानमाधुप मन्द गन्धवहो बवौ । मलयाचलकुञ्जेभ्यो हरप्रिभरदोकरान् ॥२८॥
 विष्कविस्वारी^१ दाक्षिण्य^२ समुज्जगन्नि सौमिलः । सम्भावयन्नि^३वातिव्यः विभोः श्रममपाहरत् ॥२९॥
 एलावदगसवाससुरभिश्वासितं^४मुखैः । रतनरापाण्डुभिः सान्द्रचन्दनद्रवर्वाचितं ॥३०॥
 तलीतमदुभिर्वा^५तै नितम्बभरमन्यरे^६ । स्मितरनद्गगुप्पास्त्रस्तबकोद्भेदविभूमः ॥३१॥
 फोक्तिलापमधुरैः ज्वलितै^७(जल्पितै)रनतिस्कृष्टैः । मृदुबाहुलतान्दोलसुभगैश्च विचेष्टितैः ॥३२॥
 साख्यैः स्तलत्पदन्यासैः मुक्ताप्रार्थविनूपणैः । भद्रमञ्जुनिरुद्धयैः जितातिलकलशिञ्जितैः^८ ॥३३॥
 तमालवनवीवीषु सञ्चरन्त्यो यदृच्छया । मनोऽस्य जहुराहृद्यौवनाः केरलस्त्रियः ॥३४॥
 प्रसाध्य दाक्षिणामाशा विनुस्त्रैराज्य^९पालकान् । समं प्रगमयामास विजित्य जयसाधनैः ॥३५॥

कण्ठसे महाराज भरतका यश गा रही थी ॥२५॥ त्रिकूट पर्वतपर, मलय गिरिके मध्यभाग पर और पाण्ड्यकवाटक नामके पर्वतपर किन्नर जातिकी देवियाँ गभीर स्वरसे चक्रवर्ती का यश गा रही थी ॥२६॥ इसी प्रकार मलय गिरिके समीपवर्ती वनमें और सह्य पर्वतके वनोमे भीलोंकी स्त्रियाँ विजयसे उत्पन्न हुआ महाराजका यश जोर जोरसे गा रही थी ॥२७॥ उम समय मलय गिरिके लतागूहोसे भरनोके जलके छोटे छोटे कण हरण करता हुआ तथा चन्दनके वगीचेको हिलाता हुआ वायु धीरे धीरे वह रहा था ॥२८॥ वह वायु दक्षिण दिशा को छोडकर चारो ओर वह रहा था और ऐसा जान पडता था मानो अतिथि-सत्कारके द्वारा भरतका सम्मान करता हुआ ही उनका परिश्रम दूर कर रहा था । भावार्थ—इस श्लोकमे दाक्षिण्य शब्दके श्लेष तथा अपि शब्दके सन्निधानसे नीचे लिखा हुआ विरोध प्रकट होता है—
 'वह वायु यद्यपि दाक्षिण्य (स्वामीके इच्छानुसार प्रवृत्ति करना) भावको छोडकर स्वच्छन्दता पूर्वक चारो ओर घूम रहा था तथापि उसने एक आज्ञाकारी सेवककी तरह भरतका अतिथि-सत्कार कर उनका सब परिश्रम दूर कर दिया था, जो स्वामीके विरुद्ध आचरण करता है वह उमकी सेवा क्यों करेगा ? यह विरोध है परन्तु दाक्षिण्य शब्दका दक्षिण दिशा अर्थ लेनेमे वह विरोध दूर हो जाता है ('दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तितु' इति मेदिनी दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम्, पक्षे दक्षिणैव दाक्षिण्यम्) ॥२९॥ तमाल वृक्षोके वनकी गलियोंमें इच्छानुसार इधर-उधर घूमती हुई केरल देशकी तरुण स्त्रियाँ इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुओंके मन्थनमे जिनके नि द्वास सुगन्धित हो रहे हैं ऐसे मुखोसे, जो घिसे हुए चन्दनके गाद लेपमे मुगोभित हो रहे हैं एमे स्नानोसे, नितम्बोके भारके साथ इर्ष्या करनेवाले लीलासहित सुकोमल गमनमे, जो कामदेवके पुष्परूपी शस्त्रोके गुच्छोके खिलनेके समान सुशोभित हो रहे हैं एमे मन्द हान्यमे, वीयलकी कूबके समान मनोहर तथा अव्यक्त वाणीसे, सुकोमल बाहु-रूपी ललाओके इधर उधर फिरानेमे मुन्दर चेष्टाओंसे, जिसमें खलित होते हुए पैर पड रहे हैं एमे नृत्योमे, अधिकतर मोनियोंके वने हुए आभूषणोसे, भ्रमरसमूहकी गुजारको जीतनेवाले मरसे मनोहर उत्कृष्ट गीतोंमे चक्रवर्ती भरतका मन हरण कर रही थीं ॥३०-३४॥ इस प्रकार महाराज भरतने अपनी विजयी मेनाके द्वारा दक्षिण दिशाको दबा कर चोल, केरल और पाण्ड्य

१ विष्क ५०, ६०, ५०, ५०, ५० । त्रिकूटगिरिमलयाचलवानी । २ वनचर-ल० । ३ विगरण-शक्ति । ४ दाक्षिण्यशब्दात् । आनुश्रवण च । ५ अर्थात् माधुपि उपचारितव्यं । ६ उत्कृष्टताम् । ७ मधुरं । ८ मन्त्रैः । ९ स्त्रियै चक्रं । १० मित्ररत्न-अ०, प०, द०, ग० । ११ विराग्येयु जानात् । भारवत्पसात्पान् ।

‘कालिद्रुग’केगंजैरस्य मलयोपान्तं भूधराः । तुलयद्भिरिवोभानम् आशान्ताः स्वेन चरन्ता ॥३६॥
 दिशा प्रान्तेषु विश्रान्तं विजयेत्ये चमूगैः । दिग्गजत्वं स्वसाचक्रके शोभायं तत्कथान्तरम् ॥३७॥
 ततोऽपरान्तमासह्यं सह्याचलतटोपगः । पदिचमार्णववेद्यान्तं पालकानजयद् विभुः ॥३८॥
 जयसाधनमस्याग्नेः शारात्तोर व्यज्ज्मतं । महासाधनमप्युच्चैः ० परं ॥ पारमवाष्टभत् ॥३९॥
 उपसिन्धुः ॥ रिति व्यवनम् उभयोस्तीरयोर्वलम् । दृष्ट्वास्त्य साध्वसातसुभ्यसिवाभूबाकुन्ताकलः ॥४०॥
 ततः स्म बलसद्दक्षोभाद् इतो वार्धिः प्रसर्पति । इतः स्म बलसद्दक्षोभात् ततोऽग्नियः प्रतिसर्पति ॥४१॥
 हरिन्मणिप्रभोत्सर्पैः ततमग्नेयंभो जलम् । चिराद् विवृत्तमस्यैव ० सशैबलमघत्तलम् ॥४२॥
 पद्मरागांशुभिर्भ्रंश्वचनाव्येव्यंभाज्जलम् । क्षोभादिवास्य हृच्छीर्णम् ० उच्चलं ० द्योणितच्छटम् ॥४३॥
 सद्योत्सद्यमे ० सुठन्नस्थिः नूनं दुःखं न्यवेदयत् । सोऽपि सग्यारयन्नेनं बन्धुहृत्यमिवातनोत् ॥४४॥
 असह्यैर्वलसद्दष्टैः सह्यैः ० सह्यतिपीडित । शाखोद्धारमिव ० व्यवनम् श्रकरोद् ० ह्यगपादपैः ॥४५॥

इन तीन राजाओको एक साथ जीता और एक ही साथ उनसे प्रणाम कराया ॥३५॥ जो अपने शरीरसे मानो मलय पर्वतकी ऊँचाईकी ही तुलना कर रहे हैं ऐसे कालिग देशके हाथियोने मलय पर्वतके ममीपवर्ती अन्य समस्त छोटे छोटे पर्वतको व्याप्त कर लिया था ॥३६॥ दिग्विजयके समय दिशाओके अन्त भागमें विश्राम करनेवाले भरतके हाथियोने दिग्गजपना अपने आधीन कर लिया था अर्थात् स्वयं दिग्गज बन गये थे इसलिये अन्य आठ दिग्गजकी कथा केवल शोभा के लिये ही रह गई थी ॥३७॥ तदनन्तर पश्चिमी भागपर आदृष्ट होकर सह्य पर्वतके किनारे के समीप होकर जाते हुए भरतने पश्चिम समुद्रके किनारेके राजाओको जीता ॥३८॥ भरत की वह विजयी सेना समुद्रके समीप किनारे किनारे सब जगह फैल गई थी और वह इतनी बड़ी थी कि उसने समुद्रका दूसरा किनारा भी व्याप्त कर लिया था ॥३९॥ उस समय ह्वासे लहराता हुआ उपसमुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो दोनों किनारेपर भरतकी सेना देखकर भयसे ही अत्यन्त आकुल हो रहा हो ॥४०॥ उस किनारेका उपसमुद्र सेनाके क्षोभसे इन किनारेकी ओर आता था और इस किनारेका उपसमुद्र सेनाके क्षोभसे उस किनारेकी ओर जाता था ॥४१॥ ऊपर फैली हुई हरे मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त हुआ वह समुद्रका जल ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इस समुद्रका शेवाल सहित नीचेका भाग ही बहुत समय बाद उलटकर ऊपर आ गया हो ॥४२॥ कहीं कहींपर पद्मराग मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त हुआ समुद्रका जाल ऐसा जान पड़ता था मानो सेनाके क्षोभसे समुद्रका हृदय ही फट गया हो और उसीसे खूनकी छटाएँ निकल रही हो ॥४३॥ सह्य पर्वतकी गोदमें लोटता हुआ (लहराता हुआ) वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो उससे अपना दुःख ही कह रहा हो और सह्य पर्वत भी उसे धारण करता हुआ ऐसा मालूम होता था मानो उसके साथ अपना बन्धुभाव (भाई-चारा) ही बढ़ा रहा हो ॥४४॥ सेनाके असह्य संघटनोंसे अत्यन्त पीडित हुआ वह सह्य पर्वत अपने टूटे हुए वृक्षोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने मस्तकपर लकड़ियोंका गट्टा रख-

१ कलिद्रुगवने जानैः । कलिद्रुगवनजाता उग्रतन्त्रायाश्च । उग्रतन्त्र दण्डिना देवविरोध-प्रतिपादनकाले ‘कलिद्रुगवनमन्मूता मृगप्राया मतद्गजा’ इति । २ मनयदेशसमीपस्थपर्वता । ३ शृणुयद्भिः- अ०, इ०, स० । ४ दिग्गजा सन्तीति कथाभेदः । ५ अपग्दिग्भागम् । ६ व्याप्य । ७ वेदान्त-इत्यपि बबचित् । ८ प्रभुः ल० । ९ विजृम्भितम् ल० । १०-मायुच्चैः द०, ल०, अ०, प०, म० । ११ अपरतीरम् । १२ अग्निधियत् । १३ उपसमुद्रः । १४ परिणनम् । चिरकाल-प्रवर्तितम् । १५ हृत् हृदयम् नीर्णं विधीर्णं सत् । १६-मुच्छ्ववन- ल०, द० । १७ मह्यगिरि-सानी । १८ पदिचमार्णवपर्वत । १९ पल्लव गृहीत्वा आशीरम् । २० भुज । ‘तण भुजै’ इत्यमर । भुज-ल० । भग्न-द० ।

चलत्सत्त्वो 'गुहारार्थः' विमुञ्चत्राकुल स्वनम् । 'महाप्राणोऽद्विहृत्कान्ति'म् इयायेव बलक्षतः ॥४६॥
 चलच्छाखी चलत्सत्त्व' चलच्छिद्यितमेखल' । नामनेवाचलता भेजे सोऽद्विरेव चलाचलः ॥४७॥
 गजतावन'सम्भोगं, तुरङ्गगखुरघटने' । सट्टयोत्सद्गभुव क्षुण्णा स्थलीभाव क्षणाद् ययुः ॥४८॥
 घ्रापदिचमाणंवतटाद् घ्रा च मध्यमपर्वतात् । घ्रातुद्गववरकाद्रे, तुद्गगण्डोपलाङ्कितात् ॥४९॥
 त वृष्णगिरिमुत्सद्वेष त च शैल सुमन्दरम् । मुकुन्द चाद्रिमुद्वृप्ता जयेभास्तस्य धनुम् ॥५०॥
 तना'परात्तकान् नागान् ल्हस्वप्रोवान्' परान् रदं । युक्तान् 'वीनायतस्निग्धं श्यामान् स्वक्षान्' मुदुत्व, ५१
 'महोत्सद्गमान् द्वाद्वान् रवतजिहोष्यतालुकान् । मानिनो दीर्घवालोप्यान् पद्मगन्धमदच्युतः ॥५२॥
 सन्नुप्यान् स्वे वने शूरान् दृढपादान् सुवर्षणः । स भेजे तद्वनाधीशः ससम्भूममुपाह्वतान्' ॥५३॥
 वनरोमावसीस्तुद्गतटारोहा' बहून्दी । पूर्वपराधिगाः 'सोऽर्ष्यत् सह्याद्रिर्दुहित्वा' ॥५४॥
 सञ्चरद्नापणप्राहं, भीमा भंम'र्यीं नदीम् । नक्रचक्रकृतावर्तैर्दाहवेणा च दारुणाम् ॥५५॥

कर भरतके प्रति अपनी पराजय ही स्वीकृत कर रहा हो (पूर्व कालमे यह एक पर्वत ही थी कि पराजित राजा गिरपर लकडियोंका गट्टा रखकर गलेमे कुल्हाडी लटकाकर अथवा मुखमें तृण दवानर विजयी राजाके सामने जाते थे और उससे क्षमा मागते थे ।) ॥४५॥ वह पर्वत-स्त्री बड़ा भारी प्राणी सेनाके द्वारा क्षायल हो गया था, उसके शिखर टूट-फूट गये थे, उसका सत्व अर्थात् धर्म विचलित हो गया था—उसके सब सत्व अर्थात् प्राणी इधर-उधर भाग रहे थे, वह गुफाओंके छिद्रोंसे ध्याबुल शब्द कर रहा था और इन सब लक्षणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत शीघ्र मरना ही चाहता हो ॥४६॥ उस पर्वतके सब वृक्ष हिलने लगे थे, सब प्राणी इधर-उधर चचल हो रहे थे—भाग रहे थे और उसके चारों ओरका मध्यभाग भी शिथिल होकर हिलने लगा था इन प्रकार वह पर्वत नाममानसे ही अचल रह गया था, वास्तवमें चल हो गया था ॥४७॥ लोमोकी वनप्रोडाओसे तथा घोडोंके खुरोंके सघटनसे उस सह्य पर्वतके ऊपरकी भूमि चूर चूर होकर क्षण भरमे स्थलपनेको प्राप्त हो गई थी अर्थात् जमीनके समान गपाट हो गई थी ॥४८॥ पश्चिमी भरतके मदीयमे विजयी हाथी, पश्चिम समुद्रके किनारे मे लेबर मध्यम पर्वत तक और मध्यम पर्वतसे लेबर ऊंची ऊंची चट्टानोंसे चिह्नित तुगवर पर्वत तक, वृष्ण गिरि, नुमन्दर तथा मुकुन्द नामके पर्वतको उल्लंघन कर, चारों ओर घूम रहे थे ॥४९-५०॥ जिनकी गर्दन कुछ छोटी है, जो देगनेमें उठ्टट्ट हैं, मोटे लम्बे और चिबने दाँतोंमे नहिंन हैं, बाले हैं, जिनकी मव दन्डियाँ अच्छी हैं, चमड़ा बामल है, पीठ जोड़ी है, शरीर ऊँचा है, जोन, आँठ और नाटु लाल हैं, जो मानी हैं, जिनकी पूँछ और आँठ लम्बे हैं, जिनसे बमटो गमान गधवाग्या मद भर रहा है, जो अपने ही वनमें सतुष्ट हैं, शूरवीर हैं, जिनके पैर मजबूत हैं, शरीर अच्छा है और जिन्हें उन जनोंके स्वामी बड़े हर्ष या क्षोभके साथ भेंट देनेके लिये लाल है ऐसे पश्चिम दिशामें उत्पन्न होनेवाले हाथी भी भरतने प्राप्त किये थे ॥५१-५३॥ इन ही जिनकी रोमावशी है और ऊँचे किनारे ही जिनके नितम्ब हैं ऐसी सह्य पर्वतकी पूर्वाधी गमान पूर्व तथा पश्चिम समुद्रकी ओर बहनेवाली अनेक नदियाँ महाराज भरतने उत्पन्न की थीं—गार की थी ॥५४॥ पश्चिम-किरने हुए भयकर मगरमच्छोंमे भया-नक भीमरथी नदी, नापुत्रोंमे गमरथे की हुई आवतोंमे भयकर दारुवेणा नदी, किनारे

नीरां तीरस्थानीर'शाखाप्रत्यगिताम्भसम् । मूला कूतद्वकपैरोप' उन्मूलिततटद्रुमाम् ॥५६॥
बाणामविरताबाणा वेत'ध्राम्भुसम्भूताम् । करीरित'तटोत्सद्गङ्गां करीरीं सरितुत्तमाम् ॥५७॥
प्रहरा विपमग्राहः दूषितामसनीमिव' । मुररा कुररं' सेव्याम् अपपदका' सतीमिव ॥५८॥
पारा पारेजल' कूजत्प्रोन्वकादम्ब' सारसाम् । 'दमना समनिम्नेपु' १३ 'समानामस्तलद्वगतिम् ॥५९॥
मदधुति'निवात्रद्ववेणिका' सद्दयदन्तिवः । गोदावरीमिविच्छिन्नप्रवाहामतिविस्तृताम् ॥६०॥
करीरवर्ण'सद्वदतटपयन्तभूतलाम् । तापीमातपमन्तापात् कवोष्णा विभूतीमपः ॥६१॥
रम्या तीरतहृच्छायासनुप्तमृगशावकाम् । 'खातामिवापरान्तस्य' नदीं लाडगलजातिवाम् ॥६२॥
सरितोद्गुः रामं संन्यः उत्ततार चमूपति' । तत्र तत्र 'समाकर्षन्मदिनो वनसामजान् ॥६३॥
प्रसारितसरिज्जिह्वो योऽग्निं पातुमिबोधतः । सद्दघाचलं तमुल्लदघच विन्ध्याद्रि प्राप तद्वलम् ॥६४॥
भूमता' पतिमुत्तुङ्ग पृथुवश' धृतायतिम् १३ । परंरलद्रघपमद्राक्षी' विन्ध्याद्रि स्वमिव प्रभुः ॥६५॥

पर स्थित वेतोकी शाखाओके अग्रभागसे जिसका जल ढका हुआ है ऐसी नीरा नदी, किनारे को तोड़नेवाले अपने प्रवाहमें जिसने किनारेके वृक्ष उग्राड दिये हैं ऐसी मूला नदी, जिममें निरन्तर शब्द होता रहता है ऐसी बाणा नदी, जलमें भरी हुई केतवा नदी, जिमके किनारेके प्रदेश हाथियोंने तोड़ दिये हैं अथवा जिमके किनारेके प्रदेश करीर वृक्षोंसे व्याप्त है ऐसी करीरी नामकी उत्तम नदी, विपमग्राह अर्थात् नीच मनुष्योंमें दूषित व्यभिचारिणी स्त्रीके समान विपम ग्राह अर्थात् बड़े बड़े मगरमच्छोंसे दूषित प्रहरा नदी, सती स्त्रीके समान अपना अर्थात् वीचड-रहित, (पक्षमें-बलकरहित) तथा कुरर पक्षियोंके द्वारा सेवा करने योग्य मुररा नदी, जिमके जलके किनारेपर नीच, बलहम (बदक) और सारस पक्षी शब्द कर रहे हैं ऐसी पारा नदी, जो समान तथा नीची भूमिपर एक समान जलसे भरी रहती है तथा जिमकी गति कहीं भी स्थलित नहीं होती है ऐसी मदना नदी, जो सद्द पर्वतरूपी हाथियोंके बहते हुए मदके समान जान पडती है, जो अनेक धाराएँ बाधकर बहती है, जिमका प्रवाह वीचमें बही नहीं टूटता, और जो अत्यन्त चौड़ी है ऐसी गोदावरी नदी, जिसके किनारेके समीपकी भूमि करीर वृक्षोंके वनोसे भरी हुई है और जो धूपकी गरमीसे कुछ कुछ गरम जलको धारण करती है ऐसी तापी नदी, तथा जिमके किनारेके वृक्षोंकी छायामें हरिणोंके बच्चे सो रहे हैं और जो पश्चिम देशकी परिष्काके समान जान पडती है ऐसी मनोहर लागलजातिवा नदी, इत्यादि अनेक नदियों को सेनापतिने अपनी सेनाके साथ साथ पार किया था । उम ममय वह सेनापति मदीन्मत जगली हाथियोंको भी पकडवाता जाता था ॥५५-६३॥ जो अपनी नदियाँपी जीभोंको फेंकाकर मानो समुद्रको पीनेके लिये ही उद्यत हुआ है एमने उम सद्द पर्वतको उल्लङ्घन कर भरतकी सेना विन्ध्याचलपर पहुँची ॥६४॥ चत्रपती भग्नने उम विन्ध्याचलको अपने ममान ही देना था क्योंकि जिस प्रकार आप भूमृत् अर्थात् राजाओंके पति थे उसी प्रकार विन्ध्याचल भी भूमृत् अर्थात् पर्वतोंका पति था, जिम प्रकार आप उत्तुग अर्थात् अत्यन्त उदार हृदय थे उमी प्रकार वह विन्ध्याचल भी उत्तुग अर्थात् अत्यन्त ऊँचा

१ वेतग । २ प्रवाह । ३ अविच्छिन्नविश्रवणाम् । अविन्न आगानो यस्या गा । ४ वेतया
-५० । ५ गजप्रेरित । ६ विपममरुं, पक्षे नीचप्रहणं । ७ पक्षिविनोदं । ८ अपगलसदंमाम् ।
पक्षे अपगलदोषप्रदताम् । ९ तीरजने । १० वनहम । ११ मदना ल०, द० । १२ गमानप्रदेशेणु ।
निम्नदेशेणु च । १३ जनेन गमानाम् । १४ मदगवाम् । १५ प्रवाहाम् । कृष्णाम् वा । १६ वेणुव ।
१७ गगतिशाम् । १८ पश्चिमदेशस्य । १९ स्त्रीरुपं । २० गजा गिरिणा च । २१ मलयद मगरेणु
च । २२ पृथुवशमम् । धृतायाम् च । 'आयनिर्देशंनया स्यात् प्रभुतायामिवावया ।'

स्फुटद्वेषुद्वेगुम्बुर्न वरस्नंमुक्ताफलं क्वचित् । वनलक्ष्म्यो हसन्तीव स्फुटद्वेगुतादा' यद्वने ॥७४॥
 गुहापुस्तस्फुरद्वीरनिहंरप्रतिशब्दकं । गजंतीव कृतस्पर्शो महिम्ना य' कुलाचलं ॥७५॥
 स्फुटद्विम्नोप्रतोद्वेदी चित्रवर्णद्वेष घातुभि' । मृगस्पर्शतव जेद्व चित्रोकारं विनक्ति य' ॥७६॥
 ज्वलन्त्यौवधयो यस्य घनात्तेषु तमोमुखे । देवताभिरिवोत्सिप्ता' दीपिकास्तिमिरच्छिद ॥७७॥
 क्वचिन्मृगेन्द्रभिन्नेभक्त्वम्भो'च्चलितमौक्तिकं । यदुपान्तस्यलं धत्ते प्रवेणंक्वसुमधियम्' ॥७८॥
 स तमानोक्वयन् दूरात् आसत्ताद महागिरिम् । ग्राह्यपान्तमिवाभक्व'मधूदतस्तद्वृमं ॥७९॥
 स तद्वनगतान् दूराद् अपदयद् घनकर्वुरान् । सपूयानुद्वनुर्व'शान् किरातान् करिणोर्गपि च ॥८०॥
 सारिद्वधूस्तद्वुत्तद्वे' विद्वत्तदाफरीक्षणा । तद्वल्लभा इवापयत् स्फुरद्विदतमग्ना ॥ ८१॥

था इस प्रकार विरोधरूप होकर भी सुशोभित हो रहा था । भावार्थ—उम शोकमें विरोधा-
 भाग बलवार है, विरोध ऊपर दिखाया जा चुका है अत्र उमका परिहार देखिये—वहाँका
 वन क्षीवकुजर अर्थात् मदनमत्त हाथियोंसे युक्त होनेपर भी अक्षीवकुजर अर्थात् समुद्री
 नमक तथा हाथीदाँतोंको देनेवाला था अथवा सोहाजनाके लतामण्डपोंको प्रदान करनेवाला
 था और विपन अर्थात् पक्षियोंके पखोमे सहित होकर भी उत्तम पत्तों तथा नवीन कोपड़ोंसे
 महिन था (अक्षीव च कुञ्जश्चेत्यक्षीवकुञ्जी, ती राति ददातीत्यक्षीवकुञ्जरम् अथवा
 'अक्षीवाणा शोभाञ्जना कुञ्ज लतागृह गति ददाति', 'सामुद्र यत्तु लवणमक्षीर
 वधिर च तत्' 'कुञ्जो दन्तेऽपि न स्त्रियाम्' 'शोभाञ्जने शिश्रुतीक्षणगन्धवाक्षीवमोचका
 इति सर्वनामर) ॥७३॥ उस पर्वतके वनम वही वहाँ पर फटे हुए वानोंके भीतरमे निक्कल-
 कर चारों ओर फँटे हुए मोतियोंमे ऐसा जान पड़ता था मानो वनलक्ष्मिवा ही दाँतोंकी किरणें
 फँलाती हुई हँस रही हो ॥७४॥ गुफाओंके द्वारोंसे निकलती हुई भरनोकी गभीर प्रतिध्वनियों
 में वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी महिमाके कारण कुलाचलोंके साथ स्पर्धा
 करता हुआ गरज ही रहा हो ॥७५॥ वह पर्वत ऊँचे नीचे प्रदेशोंमे, अनेक रगती धातुओंसे
 और हरिणोंके अचिन्तनीय वर्णोंसे प्रकट रूप ही एक विचित्र प्रकारका आकार धारण कर रहा
 था ॥७६॥ उम पर्वतके वनोंमें रात्रि प्रारम्भ होनेके समय अनेक प्रकारकी औपधियाँ प्रकाश-
 मान होने लगती थी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो देवताओंने अन्धकारको मूट करनेवाले
 दीपक ही जलाकर लटका दिये हो ॥७७॥ वही वहीपर उम पर्वतके ममीपत्रा प्रदेश, मिहो
 के द्वारा फाड़े हुए हाथियोंके मन्त्रकोंमे उठलकर पटे हुए मोतियोंमे ऐसा जान पड़ता था मानो
 धियरे हुए कूनोंकी गोभा ही धारण कर रहा ही ॥७८॥ जो वायुमे हिलते हुए किनारेके वृक्षों
 में बुलता हुआ ना जान पड़ता था ऐसे अपनेमें आमवन उम महापर्वतको दूगमे ही देखते हुए
 चत्रवर्ती भरत उमपर जा पहुँचे । ॥७९॥ वहाँ जाकर उन्होंने उम पर्वतके वनोंमें रहनेवाले
 भुण्डके भुण्ड भील और हाथी देखे ये भील मेघोंके समान वाटे थे और घनुषोंके यामोंको
 ऊँचा उठाकर कंधोंपर रखे हुए थे तथा हाथी भी मेघोंके समान वाले थे और घनुषके समान
 ऊँची उठी हुई पीठकी हड्डीको धारण किये हुए थे ॥८०॥ उम पर्वतके किनारेपर उन्होंने
 चचल मछलिया ही जिनके नेत्र हैं और बोलने हुए पक्षियोंके गन्ध ही जिनके मनोहर गन्ध
 हैं ऐसी उम विन्ध्याचलकी प्यारी स्त्रियोंके समान नदीन्धी स्त्रियोंको बड़ी ही उत्तण्डने साथ

१ स्फुरद्वेगुता-१० । २ वन । ३ मंत्रिकादिभि । ४ उद्वृता । ५ च्चुवता-१०, ६० ।

६ पुत्रासतागोनाम । ७ अत्रवन्म । ८ मगमूद्वान् । ९ उद्वृता-१० । १० उद्वृता-१० । ११ विद्वत्तदाफरीक्षणा वागा ता । -१०, ६० ।

भाति य शिखरंस्तुद्रां दूरव्यापतनिर्भरं । सपताकंविमानोर्ध्वं विध्रमायेव स्रश्चित ॥६६॥
 य यूर्ध्वापरकोटिभ्या त्रिगाट्याम्बुनिधि स्थित । नूनं दावप्रयात् सख्यैम् प्रमुनां प्रचिकीर्षति ॥६७॥
 नयति निशंरा यस्य शदवत्पुष्टि तदनुमान् । स्वपादाश्रयिण पोष्या प्रभुणेतीव शसितुम् ॥६८॥
 तद्रथ्यपुटं पापागस्त्रलितोच्चरितिताम्भस । नदीवधू कृतध्वान निर्धरं हंसतीव य ॥६९॥
 वनाभोगमपर्यन्त यस्य दग्धमिवाक्षम । भृगुपाताय^१ दावाग्नि शिखराण्यधिरोहति ॥७०॥
 ज्वलद्दावपरीतानि यत्कूटानि धनेचरं । चाभीकरमपानीव सख्यन्ते शुचि^२सन्धियो ॥७१॥
 समातद्रणं वन यस्य सभुजङ्गपरिग्रहम् । विजाति^३कण्टकाकीर्णं क्वचिद्भस्तेऽतिकट्टताम् ॥७२॥
 क्षीव^४कूञ्जरयोगेऽपि क्वचिदक्षीवकूञ्जरम्^५ । विपत्रमपि^६ सत्यत्रपल्लव भाति यद्दन्तम् ॥७३॥

था, जिस प्रकार आप पृथुवश अर्थात् विस्तृत-उत्कृष्ट वश (कुल) को धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विन्ध्याचल भी पृथुवश अर्थात् बड़े बड़े वांसके वृक्षोको धारण करनेवाला था, जिस प्रकार आप धृतायनि अर्थात् उत्कृष्ट भविष्यको धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विन्ध्याचल भी धृतायनि अर्थात् लम्बाईको धारण करनेवाला था, और जिस प्रकार आप दूसरोके द्वारा अग्न्य अर्थात् अजेय थे उसी प्रकार वह विन्ध्याचल भी दूसरोके द्वारा अलघ्य अर्थात् उल्लपन न करने योग्य था ॥६५॥ जिससे बहुत दूरतक फैलनेवाले भरने भर रहे हैं ऐसे ऊँचे ऊँचे शिखरो से वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पताकाओसहित अनेक विमानोके समूह ही विश्राम करनेके लिये उसपर ठहरे हो ॥६६॥ वह पर्वत अपने पूर्व और पश्चिम दिशाके दोनों कोणोमे ममुद्रमे प्रवेश कर खड़ा हुआ था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो दावानलके डरसे समुद्रके माथ मिथता ही करना चाहता हो ॥६७॥ उस विन्ध्याचलके भरने 'स्वामीको अपने चरणोका आश्रय लेनेवाले पुत्रोका अवश्य ही पालन करना चाहिये' मानो यह सूचित करनेके लिये ही अपने किनारेके वृक्षोका सदा पालन-भोषण करते रहते थे ॥६८॥ वह पर्वत मन्त्र करते हुए निर्भरनोसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने किनारेके ऊँचे नीचे पत्थरो से स्पर्शित होकर जिनका पानी ऊपरकी ओर उछल रहा है ऐसी नदीरूपी स्त्रियोकी हँसी ही भर रहा हो ॥६९॥ उम पर्वतकी शिखरोपर रग्या हुआ दावानल ऐसा जान पड़ता था मानो उमके गीमरहित बहुत बड़े वनप्रदेशको जलानेके लिये असमर्थ हो ऊपरसे गिरकर आत्म-घात करनेके लिये ही उमके गिररोपर चढ़ रहा हो ॥७०॥ आपाढ महीनेके समीप जलती हुई दावाग्ने घिरे हुए उम पर्वतके गिरर बहाके भीलोको मुक्कणसे बने हुएके समान दिखाई देते थे ॥७१॥ उम पर्वतका वन वही वही मातंग अर्थात् हाथियोसे सहित था अथवा मातंग अर्थात् चाडागोमे रहित था, भुजंग अर्थात् सर्पोके परिवारसे युक्त था अथवा भुजंग अर्थात् नीच (विटमुडे) लोकोके परिवारमे युक्त था और अनेक प्रकारके काँटोसे भरा हुआ था अथवा अनेक प्रकारके उपद्रवी योगोमे भरा हुआ था इसलिये वह बहुत ही दुखदायी अथवा नाचनीय अवस्थाको प्राण्य कर रहा था ॥७२॥ उस पर्वतपरका वन क्षीयकूञ्जर अर्थात् मदीमन्न हाथियोमे युक्त होकर भी अशोत्रकूञ्जर अर्थात् मदीमन्न हाथियोसे रहित था और विपत्र अर्थात् पन्नोमे रहित होकर भी सत्यत्रपल्लव अर्थात् पत्तो तथा कोपलोमे सहित

१ दध । २ गिरवम् । ३ समुद्रेण । ४ कर्तुमिच्छति । ५ मटनिम्नाप्रत । ६ प्रयातपताय ।

१ भृगुपाताय । २ शुचि । ३ कर्णमिच्छति । ४ मटनिम्नाप्रत । ५ प्रयातपताय । ६ विपत्रमपि । ७ क्षीव । ८ मत्तं पशो मत्तं । ९ मत्तं, पशो मत्तं । १० क्षीव । ११ मत्तं । १२ क्षीव । १३ क्षीव । १४ क्षीव । १५ क्षीव । १६ क्षीव । १७ क्षीव । १८ क्षीव । १९ क्षीव । २० क्षीव । २१ क्षीव । २२ क्षीव । २३ क्षीव । २४ क्षीव । २५ क्षीव । २६ क्षीव । २७ क्षीव । २८ क्षीव । २९ क्षीव । ३० क्षीव ।

स्फुटद्वेग्वदरोन्मूर्त्तं ध्वस्तंमुक्ताफलं क्वचित् । वनलक्ष्म्यो हृमन्तीव स्फुटहृन्ताश्च यदने ॥७४॥
 गुहामुखस्फुरद्वीरनिशंरप्रतिशास्त्रकं । गर्जतीव कृतस्पर्षो महिम्ना य कुलाचलं ॥७५॥
 स्फुटशिम्लीप्रतोद्देशं चित्रवर्णदध घातुभिः । मृगपरैरतर्कधैर्यं चित्रोकारं विभक्तिं य ॥७६॥
 ज्वलन्त्योषधयो यस्य वनात्तेषु तमीमुखे । देवताभिर्वोत्सिप्तान् दीपिकास्तिमिरच्छिद्य ॥७७॥
 क्वचिन्मृगेन्द्रभिक्षेभक्त्वाभ्योऽचक्षितमौक्तिर्न । यदुपान्तस्यले घत्ते प्रकीर्णं सुमश्रियम् ॥७८॥
 स तमालोक्यन् दूरात् श्रासत्तदा महागिरिम् । ग्राह्यपन्निवामक्तं मरुदूतस्तद्वृत्तम् ॥७९॥
 स तद्वनगतान् दूराद् अपश्यद् धनकंधूरात् । सद्युधानुद्धनुर्ब्रह्मान् विरातान् हरिणोर्जपि च ॥८०॥
 सरिद्धप्लस्तदुत्सटगे^१ विवृत्तशकरीक्षणा । तद्वल्लभा इवापश्यत् स्फुरद्विरतमग्ना ॥८१॥

था इस प्रकार विरोध रूप होकर भी सुशोभित हो रहा था । भावार्थ—उम दशोक में विरोधाभास अलवार है, विरोध ऊपर दिखाया जा चुका है अब उसका परिहार देखिये—वहाँका वन क्षीवकुजर अर्थात् मदोन्मत्त हाथियोसे युक्त होनेपर भी अक्षीवकुजर अर्थात् ममूद्री नमक तथा हाथीदाँतोको देनेवाला था अथवा सोहाजनाके लनामण्टपोको प्रदान करनेवाला था और विपत्र अर्थात् पक्षियोके पक्षोसे सहित होकर भी उत्तम पत्तो तथा नवीन कोपओसे सहित था (अक्षीव च कुञ्जश्चेत्यक्षीवकुञ्जो, ती राति ददातीत्यक्षीवकुञ्जरम् अथवा 'अक्षीवाणा शोभाञ्जना कुञ्ज लतागृह राति ददाति', 'शामुद्र यत्तु लवणमक्षीव वंशिर च तत्' 'कुञ्जो दन्तेऽपि न स्त्रियाम्' 'शोभाञ्जने शिश्रुतीक्षणगन्धवाक्षीवमोचका इति सर्वत्रामर) ॥७३॥ उस पर्वतके वनमें वही वही पर फटे हुए वामोने भीतरने निकलकर चारो ओर फैले हुए मोतियोसे ऐसा जान पडता था मानो वनलक्ष्मिया ही दाँतोकी विरण फैलाती हुई हँस रही हो ॥७४॥ गुफाओके द्वारोमे निकलती हुई भरनोकी गमीर प्रतिध्वनियो मे वह पर्वत ऐसा जान पडता था मानो अपनी महिमाके कारण कुलाचओके साथ स्पर्ष करता हुआ गरज ही रहा हो ॥७५॥ वह पर्वत ऊँचे नीचे प्रदेशोमे, अनेक रगकी घातुओसे और हरिणोके अचिन्तनीय वर्णोसे प्रकट रूप ही एक विचित्र प्रकारवा आवाज धारण कर रहा था ॥७६॥ उस पर्वतके वनोमें रात्रि प्रारम्भ होनेके समय अनेक प्रकारकी औपधियाँ प्रकाशमान होने लगती थी जो कि ऐसी जान पडती थी मानो देवताओने अन्वकारको नष्ट करनेवाले दीपक ही जलाकर लटका दिये हो ॥७७॥ वही वहीपर उम पर्वतके समीपका प्रदेश, मिहो के द्वारा फाडे हुए हाथियोके मस्तकोमे उछलकर पडे हुए मोतियोसे ऐसा जान पडता था मानो विकरे हुए पूत्रोकी शोभा ही धारण कर रहा हो ॥७८॥ जो वायुमे हिलते हुए विनारके वृद्धो से बुलाना हुआ ना जान पडता था ऐमे अपनेमें आमवन उम महापर्वतको दूरसे ही देखने हुए चन्द्रती भरत उसपर जा पहुचे । ॥७९॥ वहा जाकर उन्होने उम पर्वतके वनोमें रहनेवाले भुण्डके भुण्ट भील और हाथी देये वे भील मेघोके समान बाटे थे और धनुषोके वामोको ऊँचा उठाकर क्योपर रक्के हुए थे तथा हाथी भी मेघोके समान बाटे थे और धनुषके समान ऊँचे उठी हुई पीठकी हड्डोको धारण किये हुए थे ॥८०॥ उस पर्वतके विनारपर उन्हींने चल मछलिया ही जिनके नेत्र हैं और बोलने हुए पक्षियोके शब्द ही जिनके मनोहर शब्द हैं ऐसी उम विन्ध्याचलकी प्यारी म्रियोने समान नदीरूपी स्त्रियोको बडी ही उज्यारके साथ

१ स्फुरद्वेग्वदरोन्मूर्त्तं-२ ध्वस्तं । ३ म्रियोऽपि । ४ उद्धृता । ५ अक्षीवकुञ्ज-७०, ८० ।

६ गुहामुखस्फुरद्वीरनिशंरप्रतिशास्त्रकम् । ७ धनकंधूरात् । ८ ममूद्रीम् । ९ उदग्मधनुषा वपुः । उदग्मधनुः काण्ड-
 मन्दि । १० परागता । ११ विराट्-रविरेण वावावा वावा वा । -पुत्रा ७० ८० ।

मद्वेविन्ध्यमर्थक्षिप्य^१ नर्मदा सरिद्रुतमाम् । प्रततामिव तत्कीर्तिम् आसमुद्रमपारिकाम् ॥८२॥
 तरद्रपितपयोवेगा भुवो वेणोनिवायताम् । पताकानिव विन्ध्यप्रे श्रेयाद्रिजयशसितोम् ॥८३॥
 सा ध्रुवी बलसशोभात् उड्डीनविहगावलि । विभोरुपागमे यद्वतोरणेव क्षण ध्यभात् ॥८४॥
 नर्मदा^१ सन्धमेवात्सीन्नर्मदा नृपयोपिताम् । यदुपोरुत्तरन्तोस्ता शफरीभिरघट्टयत् ॥८५॥
 तामुत्तोर्य जनशोभाद् उत्पतत्यगावलिम्^१ । बल विन्ध्योत्तरप्रत्यान् आक्रामत् कुतुपास्थया^१ ॥८६॥
 तस्या^१ दक्षिणतोऽपश्यत् विन्ध्यमुत्तरतोऽप्यसौ । द्विधाकृतमिवात्मानम् अपर्यन्त विशोर्द्धयो ॥८७॥
 स्कन्धावारनिबेशोऽस्य नर्मदाभितोऽद्भुतत् । प्रयिम्ना^१ विन्ध्यमावेष्ट्य स्थितो विन्ध्य इवापर ॥८८॥
 गर्जमण्डोपने^१ रद्वं श्रद्धवक्त्रद्वं^१ विद्वृतं । स्कन्धावार त विन्ध्यश्च भिदा^१ नावापतुर्मिय ॥८९॥
 बलोपमुक्त्वा नि शेषफलपल्लवपादप । अग्रसूनवतावीरद्विन्ध्यो वन्धस्तदाभवत् ॥९०॥
 घण्टमन्त्रण्डुलैर्मुक्ताफलमित्रं कृतार्चना । अद्भ्युपु^१ सैनिका स्वैर रम्या विन्ध्याचलस्वती^१ ॥९१॥

देगा ॥८१॥ तदनन्तर उन्होंने विन्ध्याचलके मध्य भागमे समुद्र तक फैली हुई और किसी में न रुकनेवाली उसकी कीर्तिके समान नर्मदा नामकी उत्तम नदी देखी ॥८२॥ जिसके जलका प्रवाह अनेक लहरोंसे भरा हुआ है ऐसी वह नर्मदा नदी पृथिवीरूपी स्त्रीकी लम्बी चोटी के समान जान पडती थी अथवा शेष सब पर्वतोंको जीत लेनेकी सूचना करनेवाली विन्ध्याचल की विजयपताकाके समान मालूम होती थी ॥८३॥ सेनाके क्षोभसे जिसके ऊपर पक्षियोंकी पवित्रया उड़ रही है ऐसी वह नदी क्षण भरके लिये ऐसी जान पडती थी मानो उसने चत्रवर्ती के आनेपर तोरण ही बाधे हो ॥८४॥ चूकि वह नर्मदा नदी जलको पार करनेवाली रानियों के लिये मछलियोंके द्वारा घक्का देती थी इसलिये वह सचमुच ही उन्हे नर्मदा अर्थात् क्रीडा प्रदान करनेवाली हुई थी ॥८५॥ मनुष्योंके क्षोभसे जिसके पक्षियोंकी पक्ति ऊपरको उड़ रही है ऐसी उस नर्मदा नदीको पार कर उस सेनाने देहली समभक्तर विन्ध्याचलके उत्तरकी ओर, जानमण किया ॥८६॥ वहा भरतने दक्षिण और उत्तर दोनों ही ओर विन्ध्याचलको देगा, उम समय दोनों ओर दिखाई देनेवाला वह पर्वत ऐसा जान पडता था मानो अपने दो भाग कर दोनों दिशाओंको ही अर्पण कर रहा हो ॥८७॥ भरतकी सेनाका पडाव नर्मदा नदी के दोनों किनारोंपर था और वहा ऐसा मुनोभित हो रहा था मानो अपने विस्तारसे विन्ध्याचल को पेरकर कोई दूसरा विन्ध्याचल ही उठरा हो ॥८८॥ उस समय सेनाका पडाव और विन्ध्याचल दोनों ही परस्परमें किमी भेद (विशेषता) को प्राप्त नहीं हो रहे थे क्योंकि जिस प्रवार सेनाके पडावमें हाथी थे उगी प्रसार विन्ध्याचलमें भी हाथियोंसे समान ही गडोपल अर्थात् घटी घटी पागी चट्टानें थी और सेनाके पडावमें जिम प्रवार अनेक घोडे इधर उधर फिर रहे थे उगी प्रसार उम विन्ध्याचलमें भी अनेक अश्ववक्त्र अर्थात् घोडोंके मुखसे समान मुखवाले विन्नर जानिके देव इधर-उधर फिर रहे थे (पवित्रप्रदायम विन्नरोने मुनोका वर्णन घोडों के गर्भोंसे गमात्र किया जाता है) ॥८९॥ सेनाके उम विन्ध्याचलने गमस्त कर पते और वृषोका उभोग कर लिया था और लताओं तथा छोटे छोटे पौधोंको पुणरहित कर दिया था दर्गात्पं दत् विन्ध्याचल उम गमय वन्ध्याचल अर्थात् कण्ठ-गुण आदिमें रहित हो गया था ॥९०॥ नोनिशोम मित्र हुए वागी साथियोंके त्रिनेन्द्रदेवकी पूजा करने हुए गैतिक लीगोंने वही इच्छा-

श्रुतावासञ्च तत्रैतं ददृशुस्तद्वृत्ताधिपाः । कर्णरूपायनः श्लाघ्यः श्रगर्दस्व' महोपयः ॥६२॥
 उपानिन्नुः' करीन्द्राणां दन्तानस्मं समीकिनकान् । किरानवर्षा' 'धर्षा' हि स्वोचिता सन्ध्याप्रसी' ॥६३॥
 पश्चिमाग्ने' दिग्घ्याद्रिम् उल्लदध्योत्तीर्यं नर्मदाम् । विज्रेतुमपरामाशां प्रतस्ये चक्रिणो बलम् ॥६४॥
 गत्वा किञ्चिद्दु' दग्भूयः प्रनीचो' दिशमानसो । प्राक् प्रतापोऽप्य दुर्वारः सचक्र चरमे' बलम् ॥६५॥
 तदा प्रचलदश्वीप्रवृत्तौ' महोरजः । न केवलं द्विष्यं तेजो हरोन घृमणेरपि ॥६६॥
 तादा तलाट' संपुष्टभूपुष्टाश्चाटुभाषिणः । तालाटिक' पदं भेजः प्रनोराजावशीहृताः ॥६७॥
 केचित्तौराष्ट्रिर्जनैः परे' पाञ्चनदैर्भजेः । तं तद्वृत्ताधिपा योस्तञ्चरिरे चक्रचातितः ॥६८॥
 चक्रमन्दसंभादेव प्रस्ता निमंण्ड' लप्रहाः । प्रहा' इव नृपाः केचिन् चन्निगो वदामाययुः ॥६९॥
 दिग्घ्यानिब' द्विषान् दमापाण्युर्ध्वगान्मदोद्वोरान् । प्रचक्रे' प्रगुणादचक्रो बलादाश्रम्य दिक्पनीन् ॥७०॥
 नृपान् सौराष्ट्रवानुष्ट' वामीदानभूतो पशान् । स' भाग्यन् प्रभुभजे रम्या रदनवस्वली' ॥७१॥

नुगार निवाम किया था नो ठीक ही है क्योंकि विन्ध्याचलपर रहना बहुर ही रमणीय होता है ॥९१॥ विन्ध्याचलके वनोंके राजाओंने वनोंमें उत्पन्न हुईं रोग दूर करनेवाली और प्रशसनीय वड़ी वड़ी औषधिया भेंट कर वहाँपर निवाम करनेवाले राजा भरतके दर्शन किये ॥९२॥ भौल्लोके राजाओंने बड़े बड़े हाथियोंके दांत और मोती महाराज भरतकी भेंट किये, सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीका मत्कार अपनी योग्यताके अनुगार ही करना चाहिये ॥९३॥ विन्ध्याचलको पश्चिमी किनारेके अन्तभागमें उल्लधन कर और नर्मदा नदीको पार कर चक्रवर्ती की मेनाने पश्चिम दिशाको जीतनेके लिये प्रस्थान किया ॥९४॥ वह मेना पहले तो कुछ उत्तर दिशाकी ओर बटी और फिर पश्चिम दिशामें व्याप्त हो गई । मेनामें मवसे आगे महाराज भरतका दुनिवार प्रताप जा रहा था और उनके पीछे पीछे चक्रमहित मेना जा रही थी ॥९५॥ उम समय वेगसे चलते हुए घोड़ोंके समूहके खुरोंसे उड़ी हुई पृथिवीकी धूलिने केवल सन्धुओंके ही तेजको नहीं रोका था किन्तु सूर्यका तेज भी रोक लिया था ॥९६॥ जिन्होंने अपने ललाटमें पृथिवीतलको धिसा है और जो मयुर भाषण कर रहे हैं ऐसे भरतकी आज्ञासे क्या किये हुए लाट देशके राजा उनके लालाटिक पदको प्राप्त हुए थे । (ललाट पद्मनि लालाटिक—स्वामी क्या आज्ञा देते हैं ? यह जाननेके लिये जो मदा स्वामीके मुखकी ओर ताका करते हैं उन्हें लालाटिक कहते हैं ।) ॥९७॥ चक्र रत्नने विचलित हुए कितने ही वनके राजाओंने सोरठ देशमें उत्पन्न हुए और कितने ही राजाओंने पजाबमें उत्पन्न हुए हाथी भेंट देकर भरतके दर्शन किये ॥९८॥ जो चक्रके देवनेसे ही भयभीत हो गये हैं और जिन्होंने अपने देवका अभिमान छोड़ दिया है ऐसे कितने ही राजा लोण सूयं चन्द्र आदि ग्रहोंके ममान चक्रमर्तीके वश हो गये थे । भावार्थ—जिस प्रकार ममन्त ग्रह भरतके यज्ञीभूत थे—अनुकूल थे उसी प्रकार उम दिशाके ममन्त राजा भी उनके वशीभूत हो गये थे ॥९९॥ चक्रमर्ती भरतने दिग्गजोंके ममान पृथुवंश अर्थात् उदृष्ट वंगमें उत्पन्न हुए (पक्षमें—नीउपरकी चौड़ी रीठमें नहीं) और मदीन्द्र अर्थात् अभिमानी (पक्षमें—मदजलमें उत्कट) राजाओंको जवर्दम्नी आक्रमण कर अपने वश किया था ॥१००॥ शंखड़ां ऊंट और घोड़ियोंकी भेंट लेकर आये हुए सोरठ देशके राजाओं

१ व्याधिपान्त' । ० उपायनीहृत् न नयन्ति स्म । उपनिन्नु ४०, ६०, ५०, ५०, ६० ।

२ श्लेष्ठा । ४ वर्षा ५० । ५ विनीग०, ५० । ६ पश्चिमाग्नेन स०, ६० । ७ उदगदिग्गम् । ८ पश्चिमाग्ने ।

९ पश्चात् । १० मुरोद्भूतमहोरजं स० । ११ मदृष्ट—६०, ५०, ६० । १२ विदिष्टम् चरदम् ।

'तालाटिक' प्रनोर्भावर्षो कर्णरूपमरुत ग' दग्भियानान् । १३ पाञ्चनदीमु' जतं । १४ देवाप्रहारहिता ।

१५ आदिप्रपहा । १६ दिशि नवान् । १७ प्रतापम् । १८ उदृष्टममन्तुर्नृपौतान् । १९ सौरपन् ।

२० उदयन्तगिरिस्थयी ।

सुराष्ट्रेपूर्जपन्ताद्रिम् अरिराजमिवोच्छ्रितम् । ययो प्रदक्षिणीकृत्य भाषितोयंमनुस्मरन् ॥१०२॥
 क्षीमांशुकद्रुकुलंश्च चीनपट्टाम्बरंरपि । पटोभेदेदंश्च^१ देशोशा बद्गुणतमुपायनं ॥१०३॥
 कादिचत् सम्मानदानाभ्या कादिचद्वि^२स्त्रम्भाषितः । प्रसन्नैर्वीक्षितः कादिचद् भूयान्भिररञ्जयत् ॥१०४॥
 गजप्रवेकैजित्यदं रत्नैरपि पृथग्विधैः^३ । तमात्रचैनु^४पास्तुष्टा. स्वराष्ट्रोपगत प्रभुम् ॥१०५॥
 तरस्विभिवृषुमैधावय सस्यगुणान्वितः । नुरङ्गगनैस्तुष्टका^५ं च विभूमा राषयन् परे ॥१०६॥
 केचित्काम्बोजवाहृलीकृतैतिलारटुसैन्धवै^६ । वानायुकैः^७ सगान्धारैः वापयै^८रपि वाजिभिः ॥१०७॥
 कुलोपकुलक्षम्भैः. नानाविदेशचारिभिः । आजानेयैः^९ समप्राङ्गैः प्रभुमैक्षन्त पाषिषाः ॥१०८॥
 प्रतिप्रमाणमित्यस्य रत्नलाभो न केवलम् । यशोलाभश्च दु साध्यन् बलात् साधयतो नृपान् ॥१०९॥
 जलस्थलपदान् विष्वग् आरुध्य जयसायनैः । प्रत्यन्तपालभूपालान् भ्रजयत्तच्च मूपतिः ॥११०॥
 विलक्ष्य विविधान् देशान् अरण्यानो सरिद्गिरीन् । तत्र तत्र विभोराज्ञां^{१०} सेनातीरादवशुधुयत् ॥१११॥
 प्राच्यानिव स भूपालान् प्रतीच्यानप्यनुक्रमात् । थावयन् हृततन्मानयन प्रापापराम्बुधिम् ॥११२॥

से सेवा कराने हुए अथवा उनसे प्रीतिपूर्वक साक्षात्कार (मुलाकात) करते हुए चक्रवर्ती भरत गिरनार पर्वतके मनोहर प्रदेशोमें जा पहुँचे ॥१०१॥ भविष्यत् कालमें होनेवाले तीर्थ कर नेभिनाथका स्मरण करते हुए वे चक्रवर्ती सौरठ देशमें सुमेरु पर्वतके समान ऊँचे गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा कर आगे वढे ॥१०२॥ उन उन देशोके राजाओने उत्तम उत्तम रेशमी वस्त्र, चायना सिल्क तथा और भी अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे वस्त्र भेंट देकर महाराज भरत के दर्शन किये ॥१०३॥ भरतने कितने ही राजाओको सम्मान तथा दानसे, कितने ही राजाओ को विश्वास तथा स्नेहपूर्ण बातचीतसे और कितने ही राजाओको प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे अनुरक्त किया था ॥१०४॥ कितने ही राजाओने सतुष्ट होकर उत्तम हाथो, कुलीन घोडे और अनेक प्रकारके रत्नोसे अपने देशमे आये हुए महाराज भरतकी पूजा की थी—॥१०५॥ अन्य कितने ही राजाओने वेगसे चलनेवाले, तथा शरीर, बुद्धि, अवस्था और बल आदि गुणोसे सहित तुरख आदि देशोमें उत्पन्न हुए घोडोके द्वारा भरतकी सेवा की थी ॥१०६॥ कितने ही राजाओने उसी देशके घोडे घोडियोसे उत्पन्न हुए, तथा एक देशके घोडे और अन्य देशकी घोडियोसे उत्पन्न हुए, नाना दिशाओ और देशोमें सचार करनेवाले, कुलीन और पूर्ण अगोपाङ्ग धारण करनेवाले, काम्बोज, वाल्हीक, तैतिल, आरुट्ट, सैन्धव, वानायुज, गान्धार और वाण देशमें उत्पन्न हुए घोडे भेंट कर महाराजके दर्शन किये थे ॥१०७-१०८॥ इस प्रकार भरत को प्रत्येक पडावपर केवल रत्नोकी ही प्राप्ति नही हुई थी किन्तु अपने पराक्रमसे बड़े बड़े दु साध्य (वठिनाइयोसे जीते जाने योग्य) राजाओको जीत लेनेसे यगकी भी प्राप्ति हुई थी ॥१०९॥ भरतके सेनापतिने अपनी विजयो सेनाओके द्वारा चारो ओरसे जल तथा स्थलके मार्ग रोककर पहाडी राजाओको जीता ॥११०॥ सेनापतिने अनेक प्रकारके देश, बड़े बड़े जगल, नदिया और पर्वत उल्लघन कर सब जगह घीघ्र ही सम्राट् भरतकी आज्ञा स्थापित की ॥१११॥ दम प्रकार चक्रवर्ती दम दममे पूर्व दिशाके राजाओके समान पश्चिम दिशाके राजाओको भी वग परना हुआ तथा उनके अभिमान और धनका हरण करता हुआ पश्चिम समुद्रकी ओर

१ मूत्रवन्धय पटी ।

२ स्नेह ।

३ थोळ ।

४ नानाविध ।

५ तुरखदेशजात्याय ।

६ तैतिल-आरुट्टिसिन्धुदेग ।

७ वानायुदेने जान ।

८ वापिदेशमवै, पाणयं

९ द०, वाणयं ल० ।

१० प्रभो- ल० ।

११ थावयति गम ।

१२ थावयति गम ।

‘वेलसिरिक्करान्वादि. अतिदूरं प्रसारयन् । नूनं’ प्रत्यग्रहीदेव नानारत्नार्थमुद्बुहन् ॥११३॥
 शूर्पगेमेयाणि’ रत्नानि वार्येरित्यप्रशंसिनी । पानपानमहामानैः उन्मेयाव्यत्र तानि यत् ॥११४॥
 नाम्नेय लवणाम्भोधिरित्दुदन्वान् लङ्कृत । रत्नाकारोऽप्यभित्युच्चैः बहु मेनें तदा नृपः ॥११५॥
 पतन्यत्र पतद्गोऽपि’ तेजसा याति मन्दताम् । दिदीरे तत्र तेजोऽप्य प्रतीच्या’ जयतो नृपान् ॥११६॥
 पारयंश्चक्ररत्नस्य’ पारय. सद्गुरोदधे’ । द्विवा’मुदे’^{१०}जयतीव्र स तिम्रानुविवाद्युत्त् ॥११७॥
 श्रनुवाद्धि तद् गत्वा सिन्धुद्वारे न्यवेदायत् । स्क्न्वावारं स लदमीवान् अशोभ्य स्वमिवादायम् ॥११८॥
 सिन्धोस्तटवने रम्ये न्ययिक्षप्रास्य संनिका । च्मूद्विरदसम्भोगनिःकुञ्जी’भूतपादपे ॥११९॥
 तत्राधिवासि’तानोद्ग. पुरश्चरण’^{११}कर्मवित् । पुरोधा धर्मचक्षेत्रान्’^{१२}प्रपूज्य विधिवत्ततः ॥१२०॥
 सिद्धशोवाक्षर्नैः पुण्यैः गन्धोदकविभिन्नितं । अभ्यतस्वत्सुयज्वा’^{१३}स पुण्याशीभिश्च चक्रिणम् ॥१२१॥
 ततोऽतो धृतदिव्यास्त्रो रयमारुह्य पूवंवत्’^{१४} । जगाहे लवणाम्भोधि गोप्पदावजया प्रभुः ॥१२२॥

चला ॥११२॥ उस समय वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो किनारे पर वहनेवाली नदिया रूपी हाथोको बहुत दूर तक फैलाकर नाना प्रकारके रत्नरूपी अर्धको धारण करता हुआ महाराज भरतकी अगवानी ही कर रहा हो अर्थात् आगे बढ़कर सत्कार ही कर रहा हो ॥११३॥ जो लोग कहा करते हैं कि समुद्रके रत्न सूपसे नापे जा सकते हैं वे उसकी ठीक ठीक प्रशंसा नहीं करते बल्कि अग्रशंसा ही करते हैं क्योंकि यहाँ तो इतने अधिक रत्न हैं कि जो बड़े बड़े जहाजरूप नापोसे भी नापे जा सकते हैं ॥११४॥ यह समुद्र ‘लवण समुद्र’ इस नामसे बिलकुल ही तुच्छ कर दिया गया है, वास्तवमें यह रत्नाकर है इस प्रकार उस समय भरत आदि राजाओंने उसे बहुत बड़ा माना था ॥११५॥ जिस दिशामें जाकर सूर्य भी अपने तेजकी अपेक्षा मन्द (फीका) हो जाता है उसी दिशामें पश्चिमी राजाओंको जीतते हुए चक्रवर्ती भरत का तेज अतिशय देदीप्यमान हो रहा था ॥११६॥ चक्ररत्नको धारण करता हुआ, युद्धरूपी समुद्रको पार करता हुआ और शत्रुओंको उद्विग्न करता हुआ वह भरत उस समय ठीक सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥११७॥ जो राज्यलक्ष्मीमें युक्त है ऐसे उस भरत ने समुद्रके किनारे किनारे जाकर अपने हृदयके समान कभी क्षुब्ध न होनेवाला अपनी सेनाका पड़ाव सिन्धु नदीके द्वारपर लगवाया । भावार्थ—जहाँ सिन्धु नदी समुद्रमें जाकर मिलती है वहाँ अपनी सेनाके डेरे लगवाये ॥११८॥ सेनाके हाथियोंके उपभोगमें जहाँके वृक्ष निवृञ्ज अर्थात् लतागुह्यके समान हो गये हैं ऐसे सिन्धु नदीके किनारेके मनोहर वनमें भरतकी सेनाके लोगोंने निवास किया ॥११९॥ तदनन्तर कार्यके प्रारम्भमें करने योग्य समस्त वार्यों को जाननेवाले पुरोहितने वहापर मन्त्रोंके द्वारा चक्ररत्नकी पूजा कर विधिपूर्वक धर्मचक्रके स्वामी अर्थात् जिनेन्द्रदेवकी पूजा की और फिर गन्धोदकसे मिले हुए पवित्र मिद्ध गोपाशतो और पुण्यरूप अनेक आशीर्वादोंमें चक्रवर्ती भरतको आनन्दित किया ॥१२०—१२१॥ तदनन्तर

१ वंसासरित एव वरा तान् । २ इव । ३ प्रम्प्रीटनेन उन्मानु योम्यानि । प्रम्प्रीटन शूर्प-
 मन्त्रीत्यभिधानान् । ४ घेला । -रिभ्यप्रशंसिभि न० । प्रशन्नेऽपि न प्रशम्या । (प्रशमन्ताऽपि न
 प्रशम्या) । ५ मयं । ६ प्रतीच्यानिनि पाठ । ७ चक्ररत्न पारयन् । ८ प्रतिशामुद्र ममाग्न क्वंन् ।
 ९ नन्नून् । १० कम्पयन् । (एज कम्पने दनि धानु । ‘दारिपारिवेदुदेजिनिगारिगारिनिगारिन्दो-
 पमगान् इति वनैरि नपू प्रगय’ । ‘मध्यं वनैरि नपू’ इति नपू विषामान् एजपादेन) । ११ निरग
 हस्वोभूत । १२ समन्वव पूजितचक्ररत्न (अन शकटम् सम्पादगम् चक्रम्) । १३ पूर्वमेवा ।
 १४ पञ्चवार्येडितन । १५ पुरोहित । मृदु दृष्टवान् । ‘यग्या तु विधिनेष्टवान्’ इत्यमर । ‘मृयजोर्द वनिते’
 इति अनीताथे मृयजपानुभ्या इवनित्प्रत्यय । १६ मागपवित्रये मया ।

प्रभासमजयतत्र प्रभासं ध्वन्तराधिपम् । प्रभासमूहमकरं स्वभासा तर्जयन्प्रभु ॥१२३॥
जयश्रीशकरीजालं मुक्ताजालं ततोऽमरात् । लेभे सान्तानिकीं मालां हेममालाञ्च चक्रभृत् ॥१२४॥
इति पुण्योदयाञ्जिह्वणु इन्द्रज्येष्ठामरसत्तमान् । तस्मात् पुण्यधनं प्राप्ता शश्वदजयतोऽजितम् ॥१२५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

त्वद्गत्तुङ्ग तुरङ्गसाधनखुरक्षुणां ग्महीस्यण्डिताद्^१
उद्भूतं रणरेणुभिर्जलनिधे कालुष्यमापादयन्^२ ।
सिन्धुद्वारमुपेत्य तत्र विधिना जित्वा प्रभासामर
तस्मात्सारधनान्यवापदतुलश्वोरप्रणीञ्चक्रिणाम् ॥१२६॥
लक्ष्म्यान्दोलितामिवोरसि दधत् सन्तानपुष्पस्रज
मुक्ताहेममयेन जालपुगलेनालङ्कृतोर्चस्तनु ।
लक्ष्म्युद्वाह^३गुहादिव्याप्रतिभयो^४ नियन्निधेरम्भसा
लक्ष्मीशो वरुचे भृशं नववरच्छाया^५ परामुद्बहन् ॥१२७॥

जिसने दिव्य अस्त्र धारण किये हैं ऐसे भरतने पहलेके समान रथपर चढकर गोप्यदके समान
तुच्छ समझने हुए लवण समुद्रमे प्रवेश किया ॥१२२॥ अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाके समूहको
तिरस्वृत करते हुए भरतने वहा जाकर अतिशय कान्तिमान् प्रभास नामके व्यन्तरोके स्वामी
को जीता ॥१२३॥ तदनन्तर चत्रवर्तिने उस प्रभासदेवसे जयलक्ष्मीरूपी मछलीको पकडने
के लिये जाणके समान मोतियोका जाल, कल्पवृक्षके फूलोकी माला और सुवर्णका जाल भेंट
स्वप्न प्राप्त किये ॥१२४॥ इस प्रकार विजयी भरतने अपने पुण्यकर्मके उदयसे अच्छे अच्छे
देवोको भी जीता इसलिये हे पण्डित जन, तुम भी उत्कृष्ट फल देनेवाले पुण्यरूपी धनका सदा
उपाजंन करो ॥१२५॥ अनुपम लक्ष्मीके धारक भरत, उछलते हुए बड़े बड़े घोडोकी सेना
के गुरोमे सुदी हुई पृथिवीसे उडती हुई रथको धूलिके द्वारा समुद्रको कलुपता प्राप्त कराते
हुए (गँदला करते हुए) सिन्धुद्वारपर पहुँचे और वहा उन्होने विधिपूर्वक प्रभास नामके देवको
जीतकर उससे मारभूत धन प्राप्त किया । ॥१२६॥ जो अपने वक्ष स्थलपर लक्ष्मीके झूला
को लनाके समान कल्पवृक्षके फूलोकी माला धारण किये हुए है, जिसका ऊँचा शरीर मोती
और सुवर्णके बने हुए दो जाणोसे अटूट हो रहा है, जो निर्भय है और लक्ष्मीका स्वामी है
ऐसा यह भग्न लक्ष्मीके विवाहगृहके समान समुद्रमे निकल रहा है और नवीन वरकी उत्कृष्ट
वाग्निको धारण करता हुआ अत्यन्त सुगोभित हो रहा है ॥१२७॥ इस प्रकार समुद्र-पर्यन्त
पूर्व दिगाके राजाओको, अजयन पर्वत तक दक्षिण दिगाके राजाओको और पश्चिम समुद्र

१ प्रकृत्यर्थात् । २ अर्थधारक शकरी माली तस्य जालम् पाप । ३ कल्पवृक्षजाताम् ।
४ कल्पम् । ५ कल्पिताम् । ६ कल्पराजापरदमान् । ७ मन्थरणां गुभि । ८ मन्थादयन् । ९ लक्ष्म्या
प्रदत्तां वराणां कृत् । १० मायायामन । ११ विवाह । १२ भयङ्कित । १३ नृपवर्णोभा ।

प्राच्या^१नाजलधे^२रपाच्यन्पती^३नावंजयन्ताञ्जयन्

निजित्यापरसिन्धुमीमपदितामासा प्रतीचीमपि

दिक्पालानिष पार्यवान्प्रणमयन्नाकम्पयन्नाकिनो

द्विघ्नं विजितारिचक्रमकरोदित्यं स भूभूतप्रभुः ॥१२८॥

पुण्याच्च^४शघरधियं विजयिनीमैन्द्रीं च दिव्यधिरं

पुण्यातीर्थंकरधिय च परमां नैःश्रेयसोञ्चादनुते ।

पुण्यादित्यसुभूच्छिद्यमां चतसृणामाविर्भवेद् भाजनं

तस्मात्पुण्यमुपार्जयन्तु सुधियः पुण्याग्निनेन्द्रागमात् ॥१२९॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसद्वहे

पश्चिमाणवद्वारविजयवर्णनं नाम त्रिदशं पर्व ।

की सीमा तक पश्चिम दिशाको जीतकर दिक्पालोके समान ममस्व राजाओमे नमस्कार कराते हुए तथा देवोंको भी कम्पायमान करते हुए राजाधिराज भरतने समस्त दिशाओको शनुरहित कर दिया ॥१२८॥ पुण्यमे मत्रको विजय करनेवाली चक्रवर्तीको लक्ष्मी मिलती है, इन्द्रकी दिव्य लक्ष्मी भी पुण्यमे मिलती है, पुण्यमे ही तीर्थंकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है और परम कल्याण रूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्यमे ही मिलती है इस प्रकार यह जीव पुण्यमे ही चारो प्रवारकी लक्ष्मीका पात्र होता है, इगलिये हे सुधी जन ! तुम लोग भी जिनेन्द्र भगवान्के पवित्र आगमके अनूमार पुण्यका उपार्जन करो ॥१२९॥

इस-प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणमग्रहके भाषानुवादमें पश्चिममममद्रके द्वारका विजय वर्णन करनेवाला तीसवां पर्व समाप्त हुआ ।

एकत्रिंशत्तमं पर्व

कोबेरोमय निजंतुम् प्राशामभ्युद्यतो विभुः । प्रतरये याजिभूषिष्ठः साधनैः स्वयमयन् दिशः ॥१॥
 धीरित्तैर्गतेभ्यस्ताहैः सत्यं शिक्षा च लाघवैः । जातिं ययुर्गन्तस्तज्ञाः तदादवाना विजितिरै ॥२॥
 धीरित्तं गतिचातुर्यम् उत्साहस्तु पराक्रमः । शिक्षाविनयसंपत्तो रोमच्छाया ययुर्गुणः ॥३॥
 पुरोभागनिवात्वेतु^१ पश्चाद्भाग^२ कृतोद्यमाः । प्रययुर्द्वैतमध्वानम् अध्वनीनास्तुरङ्गामाः ॥४॥
 खुरोद्घृत्तान् महोरेणून् स्वाङ्गास्पशंभयादिव । केचिद् ध्यती^३युरध्वय^४ महादयाः कृतयित्रमाः ॥५॥
 छायात्मनः^५ सहोत्थानं^६ केचित्तोडुमिवाक्षमाः । पुररघट्टयन् याहाः त तु सोध्याप्रबाधितः ॥६॥
 केचिन्तमिवातेतुः महोरङ्गे तुरङ्गमाः । ऋभेश्चङ्कमणारम्भे^७ कृतमङ्कु^८यादनैः ॥७॥
 स्थिरप्रकृतिसत्त्वानाम् अश्वाना धसताऽभवत् । प्रचलत्पुस्तक्षुण्णभ्रुवां गतिपु केवलम् ॥८॥
 कोटयोऽप्यादशास्य स्युःवाजिनां यापुरंहसाम्^९ । आजानेयप्रधानानां^{१०} योग्यानां चक्रवर्तिनः ॥९॥
 शङ्करोधोवनाक्षुण्णतटभूर्हांसयंत्यप । सिन्धोः^{११} प्रतीपता^{१२} भजे प्रयात्ती सा पताविनी ॥१०॥

अयानन्तर-उत्तर दिशाको जीतनेके लिये उद्यत हुए चक्रवर्ती भरत जिनमें अनेक घोड़े हैं ऐसी सेनाओसे दिशाओको व्याप्त करते हुए निकले ॥१॥ उस समय घोड़ोंके गुण जानने वाले लोगोंने धीरित नामकी गतिसे उनकी चाल जानी, उत्साहसे उनका दल जाना, स्फूर्तिके साथ हलकी चाल चलनेसे उनकी शिक्षा जानी और शरीरके गुणोंसे उनकी जाति जानी ॥२॥ गतिकी चतुराईको धीरित; उत्साहको पराक्रम, विनयको शिक्षा और रोमोकी कान्तिकी शरीरका गुण कहते हैं ॥३॥ अच्छी तरह मार्ग तय करनेवाले घोड़े मार्गमें बहुत जल्दी जल्दी जा रहे थे और ऐसे जान पडते थे मानो अपने पीछेके भागोंसे अगले भागोंको उल्लंघन ही करना चाहते हों ॥४॥ अपने खुरोंसे उडती हुई पृथिवीकी धूलिका कही हमारे ही शरीरके साथ स्पर्श न हो जावे ? इस भयसे ही मानो अनेक बड़े बड़े घोड़े अपना पराक्रम प्रकट करते हुए मार्गमें उस धूलिको उल्लंघन कर रहे थे ॥५॥ कितने ही घोड़े अपनी छायाका भी अपने साथ चलना नहीं सह सकते थे इसलिए ही मानो वे उसे अपने खुरोंसे तोड़ रहे थे परन्तु सूक्ष्म होनेसे उस छायाको कुछ भी बाधा नहीं होती थी ॥६॥ कितने ही घोड़े ऐसे जान पडते थे मानो चलनेके प्रारम्भमें वजने हुए नगाड़े आदि वाजोंके साथ साथ अपने पैरोंसे पृथ्वीरूपी रङ्गभूमिपर नृत्य ही कर रहे हों ॥७॥ जिनका स्वभाव और पराक्रम स्थिर है परन्तु जिन्होंने अपने चलते हुए मुरोंसे पृथ्वी खोद डाली है ऐसे घोड़ोंकी चंचलता केवल चलनेमें ही थी अन्यत्र नहीं थी ॥८॥ जिनका वेग वायुके समान है, जो उत्तम जातिके हैं और जो योग्य है ऐसे चक्रवर्तीके घोड़ों की मर्या अटारह करोड़ थी ॥९॥ जिसने किनारेके वन रोक लिये हैं, जिसने किनारेकी पृथिवी

१ पारसि । 'आस्वन्दित धीरितक रेचितं वलिल प्लुतम् । गतयोऽमू पञ्च धारा ।' पदं-
 ल्पुन्योत्प्लुत्य गमनम् आस्वन्दितम् । वद्वत्सिद्धिचोडनकुलगतैः सपूराम् धीरितकम् । मध्यमवेगेन चक्रवद्
 भ्रमणम् रेचितम् । पदभिरवल्लितम् वलिलम् । मृगसाम्येन लक्ष्येन प्लुतम् । आस्वन्दितादीनि पञ्चपदानि
 पारसाम्भ्याख्यानि । पारस्यस्वगति सा आस्वन्दितादिभेदेन पञ्चविधा भवतीत्यर्थः । २ गमनम् ।
 ३ द्युत्पिरं । ४ पूर्ववापान् । ५ अनिगन्तुम् । ६ अपरतायै । ७ अध्वनिं समर्थी । ८ अतीत्या-
 गच्छन् । ९ मार्गं । १० छायास्पर्शवन् । ११ छायात्मा । १२ धीपृग्गमनारम्भे । १३ वाद्यविशेषः ।
 १४ पराङ्गिताम् । १५ जापरानुगताम् । १६ विन्दुनद्या । १७ प्रतिकूलनाम् ।

प्रभोरिवागमात्सुखा सिन्धुः संन्याधिनायकान् । तरङ्गपवनैर्मन्दम् आसिपेवै सुखाहरं ॥११॥
 गद्गावर्णनयोपेता फेनार्थी सम्मुखागताम् । ता पश्यभ्रुत्तरामाया जिना मेने तिघोश्वर ॥१२॥
 श्रुन्मिन्धुत्त संघं उदीच्यान् माधयश्रुपान् । विजयाद्धांचिलोपान्त्तम् श्रामसाद शनैर्मन ॥१३॥
 स गिरिर्मणिनिर्माणनवपूटविशङ्कट १ । ददशे प्रभुणा दूराद् धृताय इव राजत ॥१४॥
 स शैल पवनाधृतचलशाखाप्रवाहनि । दूरावभ्यागत जिष्णुम् श्राजुहावेव पारय ॥१५॥
 सोऽञ्जल शिखरोपागतनिपतत्रिभ्रंराम्यभि । प्रभोरुपागमे पाद्य भविधित्मुनिवाचकान् ॥१६॥
 स नगो नागपुत्रागसूगादिदृममदृष्टं १ । रम्पंरतडवनोदशैः प्राहन् प्रभुनिवासिनुम् ॥१७॥
 रजो वितानं यन् पीप्य पवनं परितो वनम् । सोऽभ्युत्थित्तत्रिवास्यामीन् ब्रूजन्वीकितडिण्डिम ॥१८॥
 किमत्र बहुना सोऽत्रि विभु दिग्विजयोत्तनम् । प्रत्येच्छदिव सप्रोत्पया सत्काराद्वर्गनित्पूटं ॥१९॥
 पिनद्धं तोरणामुच्चैरतीत्य वनवेदिकाम् । नियन्त्रितं बलाप्यशं जगार्ज्ज्वतवर्ण वलम् ॥२०॥
 वनोपान्तभुव संघं प्रापद्धा रद्धदिदमुने । उड्डीनविहगप्राणा निरच्छुधासास्तवानवन् ॥२१॥

तोड दी है और जो जग्गो वम बग्गी जाती है ऐसी चानी हुई वह मेना मानो मिन्नु नदीके माय शत्रुता ही धारण कर रही थी । भावार्थ—वह मेना मिन्नु नदीको हानि पहुँचानी हुई जा रही थी ॥१०॥ वह मिन्नु नदी मानो चक्रवर्ती भरतके आनेमे मनुष्य होकर ही मुख देनेवाले अपनी ल्हरोकी पत्रनमे धीरे धीरे मेनाके मुख्य गोगोकी मेला कर रही थी ॥११॥ जो गङ्गा नदीके समस्त वर्णनमे नहित है और फेनोने भरी हुई है ऐसी सामने आई हुई मिन्नु नदीको देखते हुए निधिपनि—भरत उत्तर दिशाको जीती हुईने समान समझने लगे थे ॥१२॥ मिन्नु नदीके किनारे किनारे अपनी मेनाओंके द्वारा उत्तर दिशाके राजाओंको बग करते हुए बुद्धकर—भरत धीरे धीरे विजयार्थ पर्वतके समीप जा पहुँचे ॥१३॥ जो मणियोंके वने हुए नी गिरगोमे बहुत विशाल मालूम होना था ऐसा वह चाँदीका विजयार्थ पर्वत भरतने दूरमे ऐसा देखा मानो गिरगोके वहानेमे अंध ही धारण कर रहा हो ॥१४॥ जिनकी गावाओंके अग्रभागकी भुजाएँ वायुमे हिट रही हैं ऐमे वृजोमे वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो दूरमे नन्मुव आये हुए विजयी भरतको बुग ही रहा हो ॥१५॥ गिरगोके समीपने ही पट्टे भरतने जल्मे वह पर्वत ऐसा अच्छा सुगोभित हो रहा था मानो चक्रवर्ती भरतके आनेपर उनके लिये पाद्य अर्घोन् पैर घोंनेना जर ही देना चाहता हो ॥१६॥ वह पर्वत नाग, नागसेम और सुपारी आदिके वृक्षोमे भरे हुए तथा मनोहर अपने किनारेके वनके प्रदेशोमे ऐसा जान पड़ता था मानो विश्राम करनेके लिये स्वामी भरतको बुला ही रहा हो ॥१७॥ जो अपने वनके चारो ओर वायुमे उठते हुए फूटोकी परागका चंदोवा तान रहा है और मन्द करने हुए कोकिल ही जिमने गगाडे है ऐसा वह पर्वत भरतका भ्रमान करनेके लिये सामने गडे हुए के समान जान पड़ता था ॥१८॥ इन विषयमें अधिक बहनेमे क्या लाभ है ? इतना ही बहुत है कि वह पर्वत वडे प्रेममे प्रसट विये हुए मन्त्रके मत्र माधनोमे दिग्विजय करनेके लिये उद्यत हुए भरतका मानो सकार ही कर रहा था ॥१९॥ जिमके चारो ओर तोरण ऐसे हुए हैं ऐसी पनकी ऊँची वेदीको उल्लघन कर मेनापनियोंके द्वारा नियन्त्रित की हुई (बग की हुई) मेनाने वनके भीतर प्रवेश किया ॥२०॥ समस्त दिशाओंमें फेनवायी मेनाओंमे उन वनके समीप

प्रभूतपूर्वम्^१ भूतप्रतिध्वान बलध्वनिम् । श्रुत्या 'बलप्रदुत्प्रेसुः' तिर्घञ्चो वनगोचराः ॥२२॥
 बलक्षोभाविभो^२ नियन् बलक्षोऽभाद्^३ वनान्तरात् । सुरेभः^४ सुविभवतादृग^५ सुरेभ^६ इव चर्मणा ॥२३॥
 प्रबोधञ्जम्भगादाव्य व्यादवो^७ कित्त केसरी । न मेऽस्त्यंतर्भयं किञ्चित् पश्यतेऽनीय दरांयन् ॥२४॥
 दारभो रभसाद्बुध्वम् उत्पद्योत्तानित. पतन् । सुस्य एष पदः पूष्टर्षः^८ श्रभूमिर्मातृगौडात्^९ ॥२५॥
 'विवागोलिलिखितस्कन्धो कथिताऽऽताम्रितेक्षणः'^{१०} । खुरोत्खातायनि. संय्यः ददूशे महिषो जिभोः^{११} ॥२६॥
 चमूरवध्रवोद्भूत^{१२} साध्वताः क्षुद्रका मृगाः । विजयादुंगूहोत्सद्गगान् युगक्षय^{१३} इवाश्रयन् ॥२७॥
 अनूद्रता^{१४} मृगाः शार्वः पलायाञ्चक्रिरेऽभितः । धित्रस्ता वेपमानादृगाः^{१५} सिक्वतभयरसैरिय ॥२८॥
 घराहाररति^{१६} मुपत्वा घराहा मुगतपत्कताः^{१७} । विनेषु^{१८} विरफूटदृयाः^{१९} चमूक्षोभादितोऽमृतः ॥२९॥
 ०^{२०} वरणावरणास्तस्यः करिणोऽप्ये भयद्रताः । हरिणा हरिणा^{२१} रातिगुहान्तानधिप्रिश्यरे ॥३०॥

की समस्त भूमियाँ भर गई थी, उनके पक्षीहृषी प्राण उड़ गये थे और उस समय वे ऐसी जात पड़ती थी मानो ध्वासोच्छ्वासममे रहित ही हो गई ही । अर्थात् सेनाओंके वोभने दबकर मानो मर ही गई ही ॥२१॥ जो पहले कभी मुननेमे नही आया था और जिमकी प्रतिध्वनि उठ रही थी ऐसा सेनाका कलकल शब्द सुनकर वनमे रहनेवाले पशु बहुत ही भयभीत और डुभी हो गये थे ॥२२॥ जो अपने शरीरकी अपेक्षा ऐरावत हाथीके समान था, जिमके ममस्त अंगो-पाङ्गोका विभाग ठीक ठीक हुआ था, और जो मधुर गर्जना कर रहा था ऐसा कोई सफेद रंगका हाथी सेनाके क्षोभसे वनके भीतरसे निकलता हुआ बहुत ही अच्छा सुशोभित ही रहा था ॥२३॥ मेरे मनमें कुछ भी भय नहीं है जिसकी इच्छा हो सो देख ले इस प्रकार दिखलाता हुआ ही मानो कोई सिंह जागकर जमुहाई लेता हुआ मुँह खोल रहा था ॥२४॥ अष्टापद बड़े वेगसे ऊपरकी ओर उछलकर ऊपरकी ओर मुँह करके नीचे पड़ गया था परन्तु बनानेवाले (जामकमे) की चतुराईसे पीठपरके पैरोसे ठोक ठोक आ खडा हुआ था—उसे कोई चोट नही आई थी ॥२५॥ जो पत्थरमे अपने बन्धे घिस रहा है, जिसके नेत्र क्रोधित होनेसे कुछ कुछ लाल हो रहे हैं और जो खुरोमे पृथिवी मोद रहा है ऐसा एक निर्भय भैसा सेनाके लोगोंने देखा था ॥२६॥ सेनाके शब्द सुननेमे जिनके भय उत्पन्न हो रहा है ऐसे छोटे छोटे पशु प्रलयकालके समान विजयार्थ पर्वतकी गुफाओंके मध्य भागका आश्रय ले रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार प्रलयकालके समय जीव विजयार्थकी गुफाओंमे जा छिपते हैं उसी प्रकार उस समय भी अनेक जीव सेनाके शब्दोंमे डरकर विजयार्थकी गुफाओंमे जा छिपे थे ॥२७॥ जिनके पीछे पीछे बच्चे दौड़ रहे हैं और जिनका शरीर कंप रहा है ऐसे डरे हुए हरिण चारों ओर भाग रहे थे तथा वे उस समय गंमे मालूम होते थे मानो भयभीत गममे मीचे ही गये हो ॥२८॥ सेनाके क्षोभसे जिन्होंने जलमे भरे हुए छोटे छोटे तालाव (तलैया) छोड़ दिये हैं और जिनके कण्ड विपर गये हैं ऐसे मूअर अपने उत्तम आहारमें प्रेम छोड़कर इधर उधर घूम रहे थे ॥२९॥ कितने ही अन्य हाथी भयमे भागकर वृक्षोंमे टहने हूट जगडमें छिगकर जा पड़े हुए थे और हरिण मिहोंकी गुफाओं

१ अधिभम् । २ तन्वम् । ३ धक्व । ४ रेजे । ५ गोभनध्वनि । ६ मुद्यवतावपव । ७ देवगण । ८ विवृणमरागन् । ९ पूष्टवसिभि । १० निर्माणयमे अथवा विधि । ११ पाषाणां ल० । १२ रणेणारणाहृण । १३ जिभोति । १४ मेतध्वन्यावर्णनाज्जात । १५ प्रलयकाले यथा । १६ अनुद्रता । १७ वेपमानादृगिण । १८ उष्णान्तराग्रिणम् । १९ त्यक्तवेदान्ता । २० नरयति म् । विविन् । ल० । २१ विवरीचंभुद्रता । २२ वृषाविभोपाख्यादना मन् । २३ मिह ।

इति सत्त्वा वनस्यैव प्राणा प्रचलिता भृशम् । प्रत्यापति^१ चिराद् ईषु^२ संव्यशोभे प्रसेदुषि^३ ॥३१॥
 'प्रयायानुबन्ध किञ्चिद् अन्तर तदनन्तरम् । 'रूप्याद्रेमेष्यम कूट सप्रिदृष्य'^४ स्थित धलम् ॥३२॥
 ततस्तस्मिन् वने मन्द मरुता दौतितनुमे । नृपाजया यत्नाभ्यक्षा स्त्रन्वाबार न्यवेगयन् ॥३३॥
 स्वैर जगुहुरायासान् सैनिका सानुमसटे^५ । स्वय गतप्रसूनौर्घघनगात्रि घने वने ॥३४॥
 सरस्तनोरतरपान्तलनामण्डपगोचरा । रम्या बभूवुराद्यामा मैनिकानामयतन ॥३५॥
 वनप्रवेशम् जग्मुषा^६ प्राह्वैराग्यकारणम् । तत्रवेशी^७ 'भतस्तेषाम् अभवद् रागबुद्धये ॥३६॥
 प्रथ तत्र कृतावाम ज्ञात्वा सनियम प्रनुम् । प्रयान्मागपयन् द्रष्टुं विजयादांघिप सुर ॥३७॥
 तिरोहसितरोदघो सम्ब्रालम्बनिर्भर^८ । त भावन्कटको^९ रेजे राजताद्रिरिवापर ॥३८॥
 सिताग्रकपर सखी हरिचन्दनचचित । स वनी पृतरत्नार्थो तिपि शट्रव इबोच्छ्रित ॥३९॥
 ससम्भ्रम च सोऽभ्येत्य प्रह्वनामगमत्प्रभो । ससत्कार च त चक्रो भद्रासनमलम्भयत् ॥४०॥

वे भीतर ही जा ठहरे थे ॥३०॥ इन प्रकार वनके प्राणोके समान अत्यन्त चंचल हुए प्राणी सेनाना क्षोभ शान्त होनेपर बहुत देरमें अपने अपने स्थानोंपर वापिस लौटे थे ॥३१॥ तदनन्तर वह मेना वन ही वन कुछ दूर जाकर विजयार्थ पर्वतके पाँचवे कूटके समीप पहुँचकर ठहर गई ॥३२॥ मेनाके ठहरनेपर मेनापनियोंने महाराजकी आज्ञामें, जिसके वृक्ष मन्द मन्द वायुमें हिल रहे थे ऐसे उम वनमें मेनाके डेरे लगवा दिने थे ॥३३॥ जिसमें अपने आप फूटके समूह गिर रहे हैं और जो घने घने लगे हुए वृक्षोंमें मघन हैं ऐसे विजयार्थ पर्वतके विनागेके वनमें मैनीय लोगोंने अपने इच्छानुसार डेरे ये लिये थे ॥३४॥ मरुवगोरे विनागेके वृक्षोंके समीप ही जो जगुहुराके स्थान थे वे विना प्रयत्न किये ही मेनाके ओषोके मनोहर डेरे हो गये थे ॥३५॥ 'वनमें प्रवेश करना वैराग्यका कारण है, ऐसा मूत्रं मनुष्य ही कहते हैं क्योंकि उन वनमें प्रवेश करना उन मैनीसोंको रागबुद्धिका कारण हो रहा था । भावार्थ—वनमें जानेमें सेनाके लोगोंका राग बढ रहा था इसलिए वनमें जाना वैराग्यका कारण है ऐसा कहनेवाले पुण्य मूर्ख ही हैं ॥३६॥

अबानन्तर—महाराज भरतको वहाँ नियमानुसार उहाँ हुआ जानकर विजयार्थ पर्वतका स्वामी विजयार्थ नामका देव मागस देवके समान भरतके दर्शन करनेके लिये आया ॥३७॥ उन समय वह देव किमी दूरसे विजयार्थ पर्वतके समान नृमीभित हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार विजयार्थ पर्वत शिखरमें ऊँचा है उसी प्रकार वह देव भी मनुदृष्ट्यो शिखरमें ऊँचा था, जिस प्रकार विजयार्थ पर्वतपर भग्ने भग्ने हैं उसी प्रकार उन देवके गर्भमें भी भग्नों के समान हाथ पटक रहे थे और जिस प्रकार विजयार्थ पर्वतका कटक जयान् मध्यभाग देदीप्यमान है उसी प्रकार उसका कटक अर्थात् हाथोंका कला भी देदीप्यमान था ॥३८॥ जो मण्डे उग्र धारण किये हुए हैं, भाग्यारे पहिने हैं, जिसके शरीरपर मण्डे चन्दन रंगा हुआ है और जो रत्नोंका अर्थ धारण कर रहा है ऐसा वह देव मण्डों की दृष्टि मात्र नामक विधिसे समान मुनीभित हो रहा था ॥३९॥ उन देवने उड़ी मीघुनाके नाथ आकर चक्रवर्तीको नमस्कार किया और

१ पुनस्तप्राप्तिम् पूर्वस्मिन्नितिदर्थ । २ जग्मु । ३ प्रसन्ने मति । ४ कृता । ५ रोचते ५०, ६०, ५० । ६ ग्राटे ५० य० ६० । ७ मर्मात् कृता । ८ अतिशयोक्ति । ९ 'निपु निमित्तमभारतारि'तदुपनोदुपनपनारुपनिपायसधासूच्य'दनाद्व्यप्रनिमित्तमभारत' इति सूत्रेण निमित्ताप्यनिपायसा निपायित निमित्त'द्व मन्ताराहारिणा' इति उच्यविनायकाका कते इत्यर्थ । यमापारहरिणाह 'परिलोको विनायका' श्लोके विनायक इत्यर्थ । अर्थप्रसंगे यनापयनापयने'तत्परिदर्थ सधा सूच्य'कदा'द्व्यप्रनिमित्तमभारत' इति निपायन्त् विधिः । १० कृता । १० यमात् कारणात् । ११ श्रुतुर्विवादाः । १२ कथयति एव गन्तु ।

‘गोपायिताः ह्यमस्यात्रे, मध्यम इट्मायसन् । स्वर्चारी चिरादद्य स्वयाऽस्मि परवार् १ विभो ॥४१॥
 विद्धि मा विजयार्द्धाद्यम् श्रुम् च गिरिमूर्जितम् । श्रुण्वोऽन्यैः सथयाद् द्यायाम् अलध्याद्यचलरिच्यती ॥४२॥
 देव दिग्विजयस्याद् विभज्जनेय सानुमान् । विजयार्द्धं धृति पत्ते ‘तात्स्थ्यात् तद्द्रव्यो’ वयम् ॥४३॥
 आयुष्मन् धूमवोयात्ता मर्णा अजनिद्योद्दहन् । ‘पदातिर्नियशेषोऽस्मि विज्ञाप्य विमत परम् ॥४४॥
 इति द्रुवस्तयोत्थ्याय ॥ शिवेस्तीर्याम्बुभि प्रभुम् । ‘सोऽभ्यापिञ्चत् सुरं साद्’ स्व नियोग निवेदयन् ॥४५॥
 तदा प्रणेदुरामन्द्रम् श्रानका पयि वामुंचाम् । विचेदमंरतो मन्दम् द्राघतवनयोयय ॥४६॥
 ननुतु सुरनतं वय सलीलानतितभ्रुव । जगुदच मडगलान्यस्य जयशसीनि किभरा ॥४७॥
 कृताभिपेकमेन च शुभनेष्यधारिणम् । युगोज रत्नलाभेन लम्भयन् स जयाशिय ॥४८॥
 स तस्मै रत्नभूङ्गार सितमातपवारणम् । प्रकीर्णकं युग द्विष्य वदो च हरिरिष्यटरम् ॥४९॥
 इति प्रसाधितस्तेन यचोनि सानुवर्तने । प्रसादतरता दुष्टि तत्र व्यापारयत् प्रभु ॥५०॥
 विसर्जितदच सानुज प्रभुणा कृतसत्क्रिय । भृत्यत्व प्रतिपद्यास्य स्वमोक प्रत्यगात् सुर ॥५१॥
 विजयार्द्धं जिते हृत्सन् जित दक्षिणभारतम् । मन्वानो निधिराद् तच्च चक्ररत्नमपूजयत् ॥५२॥

चक्रवर्तिने भी उसे सत्कारपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाया ॥४०॥ भरतसे उस देवने कहा कि मैं इस पर्वतका रक्षक हूँ और इस पर्वतके धीचके शिखरपर रहता हूँ । हे प्रभो, मैं आजतक अपनी इच्छानुसार रहता था—स्वतन्त्र था परन्तु आज बहुत दिनमे आपके आधीन हुआ हूँ ॥४१॥ मुझे तथा इस ऊँचे पर्वतको आप विजयार्धं जानिये अर्थात् हम दोनोंका नाम विजयार्धं है और हम दोनों ही परस्पर एक दूसरेके आश्रयसे अलक्ष्य तथा निश्चल स्थितिसे युक्त है ॥४२॥ हे देव, यह पर्वत दिग्विजयका आधा आधा विभाग करता है इसलिये ही यह विजयार्धं नामको धारण करता है और उसपर रहनेसे मेरा भी विजयार्धं नाम रूढ हो गया है ॥४३॥ हे आयुष्मन्, मैं आपकी आज्ञाको मालाके समान मस्तकपर धारण करता हूँ और आपके पैदल चलनेवाले एक सैनिकके समान ही हूँ, इसके सिवाय मैं और क्या प्रार्थना करूँ ? ॥४४॥ इस प्रकार कहता हुआ और ‘दिग्विजय करनेवाले चक्रवर्तियोका अभिषेक करना मेरा काम है’ इस तरह अपने नियोगवी सूचना करता हुआ वह देव उठा और अनेक देवोंके साथ साथ कल्याण करनेवाले तीर्थजलसे सम्प्राद् भरतका अभिषेक करने लगा ॥४५॥ उस समय आकाशमे गभीर शब्द बरतते हुए नगाडे बज रहे थे और वन गलियोंको कम्पित करता हुआ वामु धीरे धीरे वह रहा या ॥४६॥ लीलापूर्वक भौहोको नचाती हुई नृत्य करनेवाली देवागनाएँ नृत्य कर रही थीं और वित्रर देव भरतकी विजयको सूचित करनेवाले मगलगीत गा रहे थे ॥४७॥ तदनन्तर जिनवा अभिषेक किया जा चुका है और जो सफेद वस्त्र धारण किये हुए है ऐसे भरतको विजय करनेवाग आशीर्वाद देते हुए उम देवने अनेक रत्नोंकी प्राप्तिसे युक्त किया अर्थात् अनेक रत्न भेंट किये ॥४८॥ उस देवने उनके लिये रत्नोंका भूङ्गार, सफेद छत्र, दो चमर और एक दिव्य मिहामन भी भेंट किया था ॥४९॥ इस प्रकार ऊपर लिले हुए सत्वारसे तथा विनय-सहित वचनोंमे प्रसन्न हुए भरतने उम देवपर प्रसन्नतासे चंचल हुई अपनी दृष्टि डाली ॥५०॥ अनन्तर भरतने जिनवा आदर-मत्वार किया है और ‘जाओ’ इस प्रकार आज्ञा देकर जिसे विदा किया है ऐसा वह विजयार्धं देव उनका दासपना स्वीकार कर अपने स्थानपर वापिस गया ॥५१॥ विजयार्धं पर्वतके जीत लेनेपर समस्त दक्षिण भारत जीत लिया गया

१ शिला । २ नापवान् परवण इत्यर्थः । ‘परवाप्रायवानपि’ इत्यभिधानात् । ३ परस्पर-
 आधाप्रापेदप्ययथात् । ४ तस्मिन् निष्ठति इति तस्य तस्य भाव तात्स्थ्यात् तस्मात् । ५ विजयार्धं
 इति इत्य । ६ गतिमद्ग । ७ मरगर्ण । ८ विजयार्धं इत्युच्चार । ९ धामरयुगलम् ।

गन्धं, पुष्पैश्च धूपैश्च बीपैश्च सजलाक्षतं । फलैश्च तद्दिने दिव्यैश्चनेन्या निरवतंयत् ॥५३॥
 विजयार्द्धजपेऽप्यासीद् भ्रमन्दोऽस्य जयोद्यम । उत्तरार्द्धजयादासा' प्रत्यागूर्णस्य' चक्रिण ॥५४॥
 तत प्रतीपमागत्य' श्रृप्याद्रे' पश्चिमा गुहाम् । निक'या वनमादृष्य बलेरीगो न्यविसत ॥५५॥
 दक्षिणेन तमद्रीन्द्र' मध्ये वेदिक'योर्द्वयो । बल निविविदो भर्तुं सिन्धोस्तद्वननाद बहि ॥५६॥
 भूयो द्रष्टव्यमत्रास्ति बह्नादृष्ये घरापरे । इति तत्र चिरावास बहु मेने किलाधिराद् ॥५७॥
 चिरासनेर्गर्भ' तत्रास्य नासीन् स्वल्पोऽप्युपक्षय' । 'प्रत्युतापूर्वतामेन प्रभुरापूर्यताव्यवत् ॥५८॥
 कृतासन च तत्रेन श्रुत्वा द्रष्टुमुपागमन् । पाथिवा पृथिवीमध्यात् मध्ये' नद्योर्द्वयो स्थित ॥५९॥
 दूरानतत्रलम्बोलितसदृशकण्टकमला' । प्रणमन्त स्फुटोचक्रु प्रभो भक्ति महोभुज ॥६०॥
 कुड्ममागदक'पूर'सुवर्णमणिमोक्तिक' । रत्नैरन्यैश्च रत्नैश्च भक्त्यानर्चनूपा परम् ॥६१॥
 विप्वगानुर्यंभापस्य रैराशिभिरनारतम् । कोटा'प्रावेशरलानाम् इयता कोऽप्य निर्णयेत् ॥६२॥
 देशाप्यक्षा बलाध्यक्षं बल सुकृतरक्षणम् । यवसेन्धन'सन्धानं तवोपजगु'दृष्टिचरम् ॥६३॥
 उत्तरार्द्धजयोद्योग प्रभो श्रुत्वा तदारगमन् । पाथिवा कुरुराजाद्या' समप्रबलवाहना ॥६४॥

ऐसा मानते हुए चक्रवर्तीने चन्द्ररत्नकी पूजा की ॥५०॥ उन्होंने चन्द्ररत्नकी पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जल, अक्षत, फल और दिव्य नैवेद्यके द्वारा की थी ॥५३॥ विजयार्थ पर्वत तक विजय कर लेनेपर भी उत्तरार्धको जीतनेकी आशामे उद्यत हुए चक्रवर्तीका विजयका उद्योग शिथिल नहीं हुआ था ॥५४॥ तदनन्तर—ब्रह्म भरत कुछ पीछे लौटकर विजयार्थ पर्वतकी पश्चिम गुहाके समीपवर्ती वनको अपनी मेनाके द्वारा घेरकर ठहर गया ॥५५॥ विजयार्थ पर्वतके दक्षिणकी ओर पर्वत तथा वन दोनोंकी वेदियोंके बीचमें मिन्यु नदीके किनारेके वन के बाहर भरतकी मेना ठहरी थी ॥५६॥ अनेक आश्चर्योंमे भरे हुए इस पर्वतपर बहुत कुछ देखने योग्य है यही ममभ्रकर चक्रवर्तीने वहाँ बहुत दिन तक रहना अच्छा माना था ॥५७॥ वहाँपर बहुत दिनतक रहनेपर भी भरतका थोडा भी खर्च नहीं हुआ था, बल्कि अपूर्व अपूर्व वस्तुओंके लाभ होनेसे वह समुद्रके समान भर गया था ॥५८॥ भरतको वहाँ रहना हुआ सुनकर गङ्गा और मिन्यु दोनों नदियोंके बीचमें रहनेवाले अनेक राजा लोग अपनी अपनी पृथिवीमे उनके दर्शन करनेके लिये आये थे ॥५९॥ दूरसे भूजे हुए चंचल मुकुटोपर जिन्हीं अपने हाथ जोडकर रखे हैं ऐसे नमस्कार करते हुए राजा लोग महानग्न भरतमे अपनी भक्ति प्रकट कर रहे थे ॥६०॥ उन राजाओंने केशर, अगुग, कपूर, सुवर्ण, मोती, रत्न तथा और भी अनेक वस्तुओंमे भक्तिपूर्वक चक्रवर्तीका उत्तम सन्मान किया था ॥६१॥ धनकी गणियों से निरन्तर चारो ओरसे भरते हुए भरतके खजानेमें प्रविष्ट हुए रत्नोंकी मर्यादा (मग्या) का भला कौन निर्णय कर सकता था ? भावार्थ—उमके खजानेमें इनने अत्रिब रत्न इकट्ठे हो गये थे कि उनकी गणना करना कठिन था ॥६२॥ उस समय ममीपर्वती देगोंरे राजाओंने, मेनापतियोंके द्वारा जिमकी अच्छी तरह रक्षा की गई है गंगी भग्नकी मेनाको चिरकाल तक भूसा, दूँ वन आदि वस्तुएँ देकर उपवृत्त किया था ॥६३॥ मग्नग्न भग्न त्रिज-यार्थ पर्वतमे उत्तर भागको जीतनेका उद्योग कर रहे हैं यह सुनकर मृग देशके राजा जयकुमार

१ इच्छामुद्दिश्य । २ उद्यतस्य । ३ पश्चिमदिगम् । ४ श्रृप्याद्रे १० । श्रृप्याद्रे ४० म० ६० । ५ वनस्य समीपम् । ६ तस्य अद्रीन्द्रस्य दक्षिणभागे दिशि । ७ पर्वतवर्तीकाप्रावेशितया । ८ बहुकालनिवसने मयपि । ९ धनव्यय । १० गङ्गा किशकिश चम् । ११ मग्यामिधुनदीमध्यम् । १२ कुड्मला ६०, १०, ४०, ८०, ६० । १३ वायाम् वायामूर्ध्वम् श्रृप्याद्रे इत्यमरः । १४ नाश्रृप्याद्रे प्रवेगयोग्य । १५ तृण । १६ उपकार चम् । १७ मग्नग्नमपुत्रादा ।

श्राहता वैचिदाग्रम् प्रभुणा मण्डलाधिपा । श्रनाहृताश्च संभेजु विभु घादभटा^१ परे ॥६४॥
 विवेदा^२ किल यातव्यो जेतव्या म्लेच्छभूमिपा^३ । इति सचिग्रथ सामन्तं प्राय सज्जं धनुयंतम् ॥६५॥
 धन्विन शरनाराचसंभूतेषु धिक्वधने । न्यवेदयन्निघातमान् श्रणदासामधीशानाम् ॥६७॥
 धनुर्धरा धनु सज्ज्यम्^४ आस्फाल्यं^५ चक्रुषु^६ परे । चिबोपेव इवारीणां जीवाकर्षं सट्टुदृष्टता ॥६८॥
 करवालान् करे कृत्वा तुलपन्ति स्म वैचन । स्वामिसत्त्वारभारेण^७ नून तान् प्रमिमित्सव^८ ॥६९॥
 'सर्वामिता भूश रेजु भटा प्रोल्पासितासप^९ । निर्मोकैरिव^{१०} विश्लिष्टं लल^{११} जिहाडामहाहप ॥७०॥
 साटोप स्फुटिता^{१२} केचिद परगन्ति स्वामितो भटा । अस्युद्यता^{१३} पुरोऽरतीन् पश्यन्त^{१४} इव सन्मुलम्^{१५}
 'अस्त्रैर्व्यस्त्रैश्च^{१६} 'शस्त्रैश्च शिरस्त्रै^{१७} सतनुत्रकै । दधुजंयनशाहाना^{१८} लीला^{१९} रथ्या सुसम्भृता ॥७२॥
 रथिनो^{२०} रथकटघाषु^{२१} गुर्वारोपधसपद । समारोप्यापि पतिभ्यो भेजुरेवातिगौरयम्^{२२} ॥७३॥

तथा और भी अनेक राजा लोग अपनी समस्त सेना और सवारियाँ लेकर उसी समय आ पहुँचे ॥६४॥ कितने ही मण्डलेश्वर राजा भरतके बुलाये हुए आये थे और कितने ही उत्तम उत्तम योद्धा बिना बुलाये ही उनके समीप आ उपस्थित हुए थे ॥६५॥ अब विवेदामें जाना है और म्लेच्छ राजाओको जीतना है यही विचार कर सामन्तोंने प्राय धनुष-बाणको धारण करने वाली सेना तैयार की थी ॥६६॥ धनुष धारण करनेवाले योद्धा छोटे-बड़े बाणोंसे भरे हुए तरकमौके बाँधनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानो वे अपने स्वामियोंसे यही कह रहे हों कि हम लोग आपके ऋणके दास हैं अर्थात् आज तक आप लोगोंने जो हमारा भरणपोषण किया है उसके बदले हम लोग आपकी सेवा करनेके लिये तत्पर हैं ॥६७॥ हुकार शब्द करते हुए कितने ही धनुषधारी लोग अपने डोरी सहित धनुषको आस्फालन कर खींच रहे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो धनुषको जीवोंको ही खींचना चाहते हों ॥६८॥ कितने ही योद्धा लोग हाथमें तलवार लेकर उसे तोल रहे थे मानो स्वामीसे प्राप्त हुए मत्कारके भारके साथ उसका प्रमाण ही करना चाहते हों ॥६९॥ जो कवच धारण किये हुए हैं और जिनकी तलवारें चमक रही हैं ऐसे कितने ही योद्धा इतने अच्छे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनकी काँचली कुछ ढीली हो गई है और जो भी वार-वार बाहर लपक रही हैं ऐसे बड़े बड़े सर्प ही हों ॥७०॥ कितने ही योद्धा अभिमानमहित हाथमें तलवार उठाये और गर्जना करते हुए चारों ओर इस प्रकार घूम रहे थे मानो शत्रुओंको अपने सामने ही देख रहे हों ॥७१॥ आग्नेय बाण आदि अस्त्र, महा-मन्त्र आदि व्यस्त्र, तलवार धनुष आदि शस्त्र, शिरकी रक्षा करनेवाले लोहके टोप और कवच आदिमें भरे हुए रथोंके समूह ठीक आयुधशालाओंकी शोभा धारण कर रहे थे ॥७२॥ रथोंमें सवार होनेवाले योद्धा यद्यपि भारी भारी शस्त्रोंको रथोंपर रखकर जा रहे थे तथापि

१ शिरभटा । 'शूरीवीर्यच विनालो भरदचारभटा भत' इति ह्यनुपुष । २ नानादेश । ३ भूभुज म०, द०, अ०, प०, ग०, ल०, इ० । ४ मन्त्रद्वीकृतम् । ५ ज्यामहितम् । ६ आनाडय, टणलवार कृत्वा । ७ नान्या षडृप् ब०, द०, अ०, म०, प०, ल०, इ० । ७ आकर्षयन्ति स्म । ८ भारेण मह । ९ प्रमानुमित्तव । १० धनुषत्रया । ११ प्रकपेणोत्तामित्तवङ्गा । १२ निधिवे । १३ क्षतत् । १४ आरणादिन भूजा । १५ मन्त्रं उपुषा । १६ शत्रून् प्रत्यक्षमानोकवन्निव । १७ दिव्यायुषी । १८ मन्त्रशालायुषी । १९ सामान्यायुषी । २० वीर्यव । २१ शस्त्रशालानाम् । २२ वीर्या । २३ रथिका । २४ रथममृत्यु । २५ अतिरथायतम् । अति भाग्यवन्निधि ध्वनि, अत्यर्थ वंग मत्ता इत्यर्थ ।

हस्तिना पदरक्षार्थं सुभटा योजिता नृप । राजन्यं सह युध्वान कृताश्चाभिनिपादिन ॥७४॥
 प्रवीरा राजयुध्वान क्लृप्ता पत्तिपु नायका । अश्वीये^१ च सप्तद्राहा^२ सोत्तरद्गा^३स्तुरद्गणि ॥७५॥
 आचरव्य धतापेके स्वानीक्षाचक्रिरे नृपा । दण्डमण्डलभोगासहृत्तव्यूहं^४ सुयोजितं ॥७६॥
 चक्रिणाऽवसर कोऽस्य योऽस्माभि सा^५भ्यतेऽपके । भक्तिरेषा तु न काले प्रभोर्पदनुसंपणम्^६ ॥७७॥
 प्रभोरपत्तर सार्थं^७ प्रसारं नो यशोधनम् । विरोधिवलमुत्सायं सत्यायं पुष्टव्रतम् ॥७८॥
 द्रष्टव्या विविधा देशा लब्धव्याश्च जयाशिय । इत्युदाचक्रिरे^८ऽन्योन्य भटा श्लाघ्यंश्चाहृतं ॥७९॥
 गिरिदुर्गोऽयमूल्लङ्घयो महत्य सरित्तोज्ज्वरा^९ । इत्यपायेक्षण केचिद भ्रयान^{१०} बहू मेतिरे ॥८०॥
 इति नानाविधैर्नाभैः सजल्पैश्च लघुत्वियता । प्रस्थिता सैनिका प्रापन सेश्वरा^{११} शिबिर प्रभो ॥८१॥

वे पैदल चलनेवाले सैनिकोंकी अपेक्षा अधिक गौरव अर्थात् भारीपन (पक्षमें श्रेष्ठता) को प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ—पैदल चलनेवाले सैनिक अपने शस्त्र बन्दोपर रखकर जा रहे थे और रथोपर मवार होनेवाले सैनिक अपने मत्र शस्त्र रथोपर रखकर जा रहे थे तो भी वे पैदल चलनेवालोंकी अपेक्षा अधिक भारी हो रहे थे यह वडे आश्चर्यकी बात है परन्तु अति गौरव शब्दका अर्थ अतिशय श्रेष्ठता देनेपर वह आश्चर्य दूर हो जाता है । पैदल सैनिकोंकी अपेक्षा रथपर मवार होनेवाले सैनिक श्रेष्ठ होने ही है ॥७३॥ राजाओंने हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेके लिये जिन दूरवीर योद्धाओंको नियुक्त किया था वे अनेक राजाओंके साथ युद्ध करते थे और उन हाथियोंके चारो ओर विद्यमान रहते थे अथवा समय पर महावत भी बनाये जाते थे ॥७४॥ जो राजाओंके साथ भी युद्ध करनेवाले थे ऐसे श्रेष्ठ दूर वीर पैदल सेनाके सेनापति बनाये गये थे और जो घुड़सवार कवच पहिने हुए तथा लहराते हुए नदीके प्रवाहके समान थे उन्हें घुड़सवार सेनाका सेनापति बनाया था ॥७५॥ कितने ही राजा लोग अच्छी तरह रचे हुए दण्डव्यूह, (दण्डके आकार सेनाको मीथी रेखाके मण्डलके आकार सडा करना) और असहृत्त व्यूह (फैलाकर खडा करना) में अपनी सेनाकी रचना कर उमे देख रहे थे ॥७६॥ इस चक्रवर्तीका ऐसा बौन-सा कार्य है जिसका हम तुच्छ लोग स्मरण भी कर सकते हो अर्थात् कार्यका सिद्ध करना तो दूर रहा उसका स्मरण भी नहीं कर सकते, फिर भी हम लोग जो स्वामीने पीछे पीछे चल रहे हैं नो यह हम लोगोंकी इस समयपर हाने वाली भक्ति ही है । हम लोगोंको स्वामीका कार्य सिद्ध करना चाहिये, अपना यशरपी धन फैलाना चाहिये, शत्रुओंकी सेना दूर हटानी चाहिये, पुरुषार्थ धारण करना चाहिये, अनेक देग देखने चाहिये और विजयके अनेक आगीर्वाद प्राप्त करने चाहिये, इस प्रकार प्रशमनीय उदाहरणोंके द्वारा योद्धा लोग परस्परमें बातचीत कर रहे थे ॥७७-७९॥ यह दुर्गम पर्वत उल्लङ्घन करना है और बीचमें बड़ी बड़ी नदियाँ पार करनी हैं इस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओं का विचार करते हुए कितने ही लोग आगे नहीं जाना ही अच्छा समझते थे ॥८०॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके भावों और परस्परकी बातचीतके साथ जल्दी उठकर जिन्होंने प्रस्थान किया है ऐसे सैनिक लोग अपने अपने स्वामियों महिन चक्रवर्तीके शिबिरमें जा पहुँचे ॥८१॥

१ अश्वयुद्ध । २ सप्तद्राहा । ३ उमिममाना । ४ दण्डादिनि चक्रिरे व्युत्पन्नानामानि । अनाभिषानम पिपत्तिन्मु दण्ड स्यात् भोगाऽप्यावृत्तिश्च च । दण्डन मवना धनि प्रावृत्तिरगहन । ५ समय । ६ मयन द०, म० अ०, प० ह० म० । ७ अतवतनम् । ८ प्रापणीय । ९ उच्चिर । १० मय्ये मय्ये । ११ वाहनरहितताम् अथवा अगमनम् । १२ नित्रस्वामिमहिला ।

प्रवेत्तु सर्वसामग्र्या नृपाः सम्भूतकोटिकाः^३ । प्रभोश्चरं जयोद्योगम् आकलय्याहिमाचलम् ॥८२॥
 भटलार्कटिकैः^४ केचिद्भूता तालार्कटिकैः^५ परैः । नृपाः पश्चात्कृतानीका विभोतिकटमायमुः ॥८३॥
 सामन्तादिति सामन्तरापतद्भिः ससाधनैः । समिद्धशासनश्चकी समेत्य जयकारितः^६ ॥८४॥
 सामवायिकसामन्तसामार्जैरिति सर्वतः । सरिदोर्घैरिवाम्भोधिः श्रापयंत विभोर्वलम् ॥८५॥
 सवनं सावर्नि सोऽग्निः परितो रुधे बलं । जिनजन्तोस्तस्ये मेहः श्रनोर्कैरिव नाकिनाम् ॥८६॥
 विजयादर्धाचलप्रस्था^७ विभोरध्यासिता बलैः । स्वर्पावासश्चिर्यं तेनः विभक्तनृपमन्दिरैः^८ ॥८७॥
 प्रह्वैतिनैः^९ रथं विध्वक् प्रह्वैपिततुरङ्गमम् । प्रवृ हितगजं संग्यं ध्वनिसादकरोद् गिरिम्^{१०} ॥८८॥
 बलध्वानं गृह्णारण्यैः प्रतिभूद्भूतैः^{११} मुद्गहन् । सोऽग्निश्चद्विक्ततद्गोधो^{१२} ध्रुवं फूत्कारमातनोत् ॥८९॥
 श्रप्रान्तरे ज्वलन्मौलिप्रभापिञ्जरिताम्बरः । ददुशे प्रभुणा व्योम्नि गिरैरवतरत् सुरः ॥९०॥
 स ततोऽवतरद्वरैः वभौ^{१३} सानुचरोऽभरः । सवनः^{१४} कल्पशालीव तसदाभरणांशुकः ॥९१॥

भग्नेऽग्न्या हिमवान् पर्वतं तत्र विजयं प्राप्तं करनेका उद्योग बहुत समयमें पूर्ण होगा ऐसा
 समझकर राजा लोग सब प्रकारकी सामग्रीमें कोठे भर भरकर निकले ॥८२॥ कितने ही
 राजा लोठो धारण करनेवाले योद्धाओंके साथ, और कितने ही ललाटकी ओर देखनेवाले
 उन्नम मेवकोंके साथ, अपनी सेना पीछे छोड़कर भरतके निकट आये ॥८३॥ इस प्रकार अपनी
 अपनी सेना महिन चारों ओरमें आने हुए अनेक सामन्तोंने एक जगह इकट्ठे हो कर, जिनकी
 जाना सब जगह देदीप्यमान है ऐमें चक्रवर्तिका जयजयकार किया ॥८४॥ जिस प्रकार
 नदियोंमें समझमें समुद्र भर जाता है उसी प्रकार महायत्ना देनेवाले सामन्तोंके समूहसे भरतकी
 सेना सभी ओरमें भर गई थी ॥८५॥ जिस प्रकार भगवान्के जन्म-कल्याणके समय वन
 और भूमि महिन सुमेरु पर्वत देवोंकी सेनाओंसे भर जाता है उसी प्रकार वह विजयार्थ पर्वत
 भी वन और भूमि महिन चारों ओरमें सेनाओंसे भर गया था ॥८६॥ भरतकी सेनाओंसे अधि-
 ष्टित हुए विजयार्थ पर्वतके गिरर अलग अलग तने हुए राजमण्डपोंसे स्वर्गकी शोभा धारण
 कर रहे थे ॥८७॥ जिनमें चारों ओरमें रथ चर रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं, और हाथी
 गरज रहे हैं ऐसी उम सेनाने उम विजयार्थ पर्वतको एक शब्दके ही आधीन कर दिया था अर्थात्
 शब्दमय बना दिया था ॥८८॥ गुपाओंके छिद्रोंसे जिसकी प्रतिध्वनि निकल रही है ऐमें सेना
 के शब्दोंकी धारण करना हुआ वह पर्वत ऐमा जान पड़ता था मानो सेनामें घिर जानेके कारण
 कृ. कृ. शब्द ही कर रहा हो अर्थात् रो ही रहा हो ॥८९॥

इसी बीचमें भग्ने, देदीप्यमान समुद्रकी वाग्निमें जिनने आफतानको भी पीला कर दिया
 है और जो पर्वतपरमें भीने उतर रहा है ऐमा एक देव आकाशमें देमा ॥९०॥ जिनके आभूषण
 तथा वस्त्र देदीप्यमान हैं रहे हैं ऐमा वह देव अपने मेवकों महिन उम पर्वतमें उतरता हुआ ऐमा
 गर्भाभिन हो रहा था मानो जिनके आभूषण और वस्त्र देदीप्यमान हो रहे हैं ऐमा वनमहित

दिव्यः प्रभान्वयः^१ कोऽपि सम्मूर्च्छति^२ किमन्वरे । तद्विलुज्जः किमग्न्याचिरिति^३ द्रष्टः क्षणं जनः ॥६२॥
 किमप्येतदविज्योतिरित्वादावविशेषतः । पश्चादवयवव्यक्त्या प्रथक्तुपुष्पाकृतिः ॥६३॥
 कृतमालश्रुतिव्यवर्धे^४ कृतमालः स चम्पकः । कृतमाल इयोत्फुल्लो निदध्वे^५ प्रमुणाऽग्रतः ॥६४॥
 संप्रणामं च संप्राप्तं तं वीक्ष्य सहसा विभुः । यथाहंप्रतिपत्त्याऽस्मै घ्रासनं प्रत्यपादयत्^६ ॥६५॥
 प्रमुणाऽनुगतश्चायं वृतासनपरिग्रहः । क्षणं विसिस्मिये पश्यन् घृणा^७ गुण्याति^८ मानुषम् ॥६६॥
 सभापितृश्च संभ्राजा पूर्वं^९ पूर्वार्द्धभाषिणा । सुरः प्रचक्षमे वस्तुमिति प्रथमवदत्^{१०} ॥६७॥
 एव धय क्षुद्रवा देवाः एव भवान्दिव्यमानुषः । पीतग्य^{११} मुचिरं मन्ये^{१२} वाचादयति^{१३} न स्फुटम् ॥६८॥
 आयुष्मन् वृक्षलं प्रष्टुं जिह्मीम^{१४} शासितुस्तव । त्वदायता यतः^{१५} वृत्सना जगतः कुशलक्रिया ॥६९॥
 लोकस्य कुशलायाने^{१६} गिरदं^{१७} यस्य शौशलम् । कुशल^{१८} दक्षिणस्याऽस्य बाहोस्ते श्मा जिगीपतः ॥७०॥
 देवानां प्रियं देवत्वं तवाशेषजगज्जयात् । नाम्नैव तु धयं देवा जातिमानकृतोक्तयः ॥७१॥
 गीर्वाणा^{१९} यमन्यत्र^{२०} जिगीषो शितगीद्वाराः^{२१} । त्वयि कुण्ठगिरो^{२२} जाताः प्रस्वन्नद्वयं गद्गदाः ॥७२॥

कल्पवृक्ष ही हो ॥९१॥ क्या कोई दिव्य प्रभाका समूह जाकायामें फल रहा है ? अथवा क्या विज ग्रीका समह है ? अथवा क्या अग्निकी ज्वाला है ? इन प्रकार अनेक वचनपनाओ में लोगोंने जिसे क्षण भर देखा था जो पहले तो यह कोई वास्तविकता समूह है इन प्रकार सामान्य रूपसे देखा गया था, परन्तु बादमें अवयवोंके प्रकट होनेमें जिसका पुष्पका-सा बाकार साफ साफ प्रकट हो रहा था, जो अपना कृतमाल नाम प्रकट करनेके लिये चम्पाके फूलोंकी माला पहिने हुआ था और जो उससे फूले हुए कृतमाल वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसे उस देवकी चक्रवर्ती भरतने अपने सामने खड़ा हुआ देखा ॥९२-९४॥ आनेके साथ ही नमस्कार करते हुए उम देवकी अकस्मात् अपने सामने देखकर भरतने उसे यथा योग्य सत्कारके साथ आसन दिया ॥९५॥ भरतकी आज्ञासे वह देव आसनपर बैठा और उनके लोकोत्तर तेजकी देखता हुआ क्षण भरके लिये आश्चर्य करने लगा ॥९६॥ प्रथम ही, पहले बोलनेवाले सम्राट् भरतने जिसके साथ वातचीत की है ऐसा वह देव नीचे लिखे अनुमार विनयमहित वचन बहने लगा ॥९७॥ हे देव, हम क्षुद्र देव वहाँ ? और आप दिव्य मनुष्य वहाँ ? तथापि मैं ऐसा मानता हूँ कि हम लोगोंका यथायोग्य देवपना ही हम लोगोंको स्पष्ट रूपमें वाचालित कर रहा है अर्थात् जबदंस्ती बोलवा रहा है ॥९८॥ हे आयुष्मन्, आप जैसे शासन करनेवालोंका कुशल-मगल पूछनेके लिये हम लोग लज्जित हो रहे हैं क्योंकि इस जगत्का सब तरहका कल्याण करना आपके ही आधीन है ॥९९॥ जगत्का कल्याण करनेके लिये जितकी चतुराई प्रसिद्ध है और जो ममस्त पृथिवीकी जीतना चाहती है ऐसी आपकी इस दाहिनी भुजाकी कुशलता है न ? ॥१००॥ हे देव, आप देवोंके भी प्रिय हैं, आपने समस्त जगत्को जीत लिया है इसलिये यह देवपना आपके ही योग्य है हम लोग तो नाममानके ही देव हैं—बेशक देव जातिमें जन्म होनेसे ही देव कहलाने लगे हैं । यहाँ पर 'देवानां' 'प्रिय' ये दोनों ही पद पृथक्-पृथक् हैं, अथवा ऐसा

१ प्रभामन्तान् । २ व्याप्नोति । ३ अग्निशिवामतिशान् । ४ कृतमालनामा । कृतमाल आरम्भवः । आरम्भे राजवृक्ष शम्भान्चतुरगुला । आरेवन्व्याधिपातकृतमालमुषणंवा ॥ इत्यभि-
 धनान् । ५ दृश्यते स्म । ६ प्रापयन् । ७ तेज । ८ चक्रिणः । ९ मानुषमनीतम् । १० मस्तुतभाषिणा ।
 पूर्वभि—अ० प० स० द० ल० । ११ फूतनाया अपय पीनन तस्य भाव पीतन्यम् । देवत्वमित्यर्थः । १२
 नूनम् । १३ वाचान करोति । १४ लज्जामहे । १५ यस्मान्; वारणान् । १६ क्षेमकरणे । १७ प्रन्यानम् ।
 १८ क्षेम विम् । १९ गीरेव शापानुग्रहममर्या वाणा मायन निग्रहानुग्रहापरेकामिति गीर्वाणा देवा
 इत्यर्थः । २० जिगीषो त्वत्त अन्यत्र । २१ शीतनीद्वरा । २२ मन्दानामोद्वरा इत्यर्थः । शीत
 शीरेने एते शीतनयः तेषामोद्वरा त्रियागु मदानामोद्वरा इत्यर्थः । २२ मन्दवचनम् ।

‘राजोक्तिस्तव्यि राजेन्द्र राजतेऽन्यगामिनी । अखण्डमण्डलां कृत्स्नां पट्टपण्डां गां नियच्छति ॥१०३॥
 चक्रालम्ना ज्वलत्वेप प्रतापस्तव दुःसहः । प्रथते दण्डनीतिदक्ष दण्डरत्नद्वलाद् विभोः ॥१०४॥
 ईशितव्या^१ महो कृत्स्ना स्वतन्त्रस्वमसोद्वरः । निधिरत्नद्विरंश्वर्यं कः परत्त्वाद्दशः प्रभुः ॥१०५॥
 भूमत्येकाकिनो लोकं शश्वत्कीर्तिरनर्गला^२ । सरस्वती च वाचाला कथं ते ते^३ प्रियं^४ प्रभोः ॥१०६॥
 इति प्रतीतमाहात्म्यं त्वां सभाजयितुं^५ दिवः । त्वद्बलध्यानसक्षोभसाध्यसाद् धयमागताः ॥१०७॥
 कूटस्या वयमस्याद्रेः स्वपदा^६द्विचालिनः । भूमिमेतावतीं^७ तावत् त्वया देवावतारिताः ॥१०८॥
 विप्रकृष्टान्तरावासवासिनो ध्यन्तरा वयम् । सविधेयास्त्वमे^८दानीं प्रत्यासन्नाः पदातयः ॥१०९॥
 विद्धि मा विजयाद्वैस्यं मर्मज्ञममृताशनम् । कृतमालं गिरेरस्य कूटमुष्टिमन् कृतालयम् ॥११०॥
 मयि स्वसात्कृते^९ देव स्वीकृतोऽयं महाचलः । सगुहाकान्तस्यास्य गिरेर्यंभेविदस्म्यहम् ॥१११॥
 गभंशोऽहं गिरेरस्मीत्यल्पमिदमुच्यते । द्वीपाध्ययलये कृत्स्ने नास्माकं कोऽप्यगोचरः ॥११२॥

कार्य करना चाहिये कि हे प्रिय, ममस्त जगत्को जीतनेसे आप देवोके भी देव हैं ॥१०१॥
 हम गौर्वाण हे और आपके अतिरिक्त विजयकी इच्छा करनेवाले किसी दूसरे पुरुषके विषय में यद्यपि हम वचनरूपी तीक्ष्ण वाणोको धारण करते हैं तथापि आपके विषयमें हम लोग कुण्ठितवचन हो रहे हैं, हमारा अहकार जाता रहा है और हमारे वचन गद्गद् स्वरसे निकल रहे हैं ॥१०२॥ हे राजेन्द्र, आप छह खण्डोंमें बँटी हुई समस्त प्रदेश सहित इस संपूर्ण पृथिवी का शासन करते हैं इसलिये दूसरी जगह नहीं रहनेवाली राजोक्ति आपमें ही सुशोभित हो रही है—आप ही वास्तवमें राजा हैं ॥१०३॥ हे विभो, चक्ररत्नके वहानेसे यह आपका दुःसह प्रताप देदीप्यमान हो रहा है और दण्डरत्नके छलसे आपकी दंड नीति प्रसिद्ध हो रही है ॥१०४॥ यह समस्त पृथिवी आपके आधीन है—पालन करने योग्य है, आप इसके स्वतन्त्र ईश्वर हैं और निधियाँ तथा रत्न ही आपका ऐश्वर्य है इसलिये आपके समान ऐश्वर्यशाली दूसरा कौन है ? ॥१०५॥ हे प्रभो, आपकी कीर्ति स्वच्छन्द होकर समस्त लोकमें सदा अकेली फिरा करती है और सरस्वती वाचाल है अर्थात् बहुत बोलनेवाली है फिर भी न जाने ये दोनों ही मित्रया आपको प्रिय क्यों हैं ? ॥१०६॥ इस प्रकार जिनका माहात्म्य प्रसिद्ध है ऐसे आपकी सेवा करनेके लिये हम लोग आपकी सेनाके दृढके क्षोभसे भयभीत हो आकाश में यहाँ आये हैं ॥१०७॥ हे देव, हम लोग इस पर्वतकी शिखरपर रहते हैं और अपने स्थानमें कभी भी विचलित नहीं होने परन्तु इस भूमि पर आपके द्वारा ही अवतारित हुए हैं—उतारे गये हैं ॥१०८॥ हम लोग दूर दूर तक अनेक स्थानोंमें रहनेवाले व्यन्तर हैं अब आप हम लोगोंको अपने ममीप रहनेवाले सेवक बना लीजिये ॥१०९॥ आप मुझे इस पर्वतके इस निम्नपर रहनेवाला और विजयाधं पर्वतका मर्म जाननेवाला कृतमाल नामका देव जानिये ॥११०॥ हे देव, आपने मुझे चमक लिया है इसलिये इस महापर्वतको अपने आधीन हुआ ही गमभिये क्योंकि मैं गुफाओं और वन महिन इस पर्वतका समस्त भीतरी हाल जानता हूँ ॥१११॥ अथवा मैं इस पर्वतका भोगी हाल जाननेवाला हूँ यह बहुत ही थोड़ा कहा गया है क्योंकि गमन् द्वीप और गमद्रोने भीतर ऐसा थोड़ा भी प्रदेश नहीं है जो हम लोगोंका जाना

१ राजेन्द्र राज्य । २ सामन्ति । ३ ऐश्वर्यवती भक्ति योग्या । ४ प्रतिवधरहिता । ५ कीर्ति-
 मरालक्ष्मी । ६ विजयके (बभूवतु) । ७ गैविजुम् । ८ स्वग्यानात् । ९ गतावद्भूमिपत्यंताम् ।
 १० कविपापयितुं योग्या । ११ स्वधीने कृते ।

वटम्यान् वटम्याश्च कूटस्यान् वोटोटजान् । अक्षपाटान् क्षपाटाश्च विटिन माव मंत्रगान् ॥११३॥
 इति प्रतामनोत्रसिं वष सम्भाष्य मादरम् । मोञ्जरो विन्तारामन् भूषणानि चतुर्दश ॥११४॥
 तान्पनयोपनम्यानि प्राप्य चक्रौ परा मुदम् । नञे तत्तुन सन्वारं मूर मोञ्ज्याप सम्मदम् ॥११५॥
 तदृष्याद्रिगुहाद्वारप्रवेशोपायशक्तिन्म् । प्रविमर्ष्य स्वमेनान्यं प्राहिणोन् प्रमुरग्रत ॥११६॥
 त्वमुद्घाटय गुहाद्वार यावन्निरवाति मा गुहा । तादन् पादचाल्यत्तद्वस्त्रं निर्वन्वाय कुह्वरानम् ॥११७॥
 इति चक्ररादेदी मूर्ध्ना मान्यमिबोद्धन् । वृत्तमालामरोद्दिष्टृत्ल्लोपायप्रयोगाविन् ॥११८॥
 इतो कतिपर्येष तुरङ्ग मपत्त्विद्धदं । प्रतम्ये वाजिरत्नेन दण्डपाणिश्चमुपनि ॥११९॥
 किञ्चिच्चान्तरमुत्सप्य स मिन्प्रोर्वनवेदिकाम् । विगाह्य विजयाद्वम्भ मप्राप्तुं तटवेदिकाम् ॥१२०॥
 तत्प्रोषानेन म्याद्रे श्राव्ह्य जगनानतम् । प्रत्यङ्मुखो गुहोत्तमं गन् प्राणनाद चमुपनि ॥१२१॥
 जयताच्चक्रवर्तिनि सौप्रवरत्नमधिष्ठितम् । दण्डेन ताडयामास गुहाद्वार स्फुरदध्वनि ॥१२२॥
 दण्डरत्नानिघानेन गुहाद्वारे निरगन्ते । तदपनाद् बलवान्प्रथमा नियमो किल सतन् ॥१२३॥
 दण्डपाणिघानोत्य श्रेष्ठकारमररोपुटम् । मवेदनमिवास्वेदि निगन्ताम् गुहोत्पन्ना ॥१२४॥

हुआ न हो ॥११२॥ हे नार्य अर्थान् मन्त्रका हित कग्नेवाशे, वटके वटोपर, छोट्टे छोट गट्टो में, पहाडोकी जिम्बरोपर, वृक्षोको लोको और पत्तोकी भोपडियोमें रहनेवा ॥ तथा दिन और रातिमें भ्रमण करनेवाशे हम लोगोको आप मत्र जगह जाने वाशे समझिये ॥११३॥ इस प्रकार आदर सहित शान्त और ओतपूर्ण वचन कहकर उन देवने भग्नके लिये चौदह आभूषण दिये ॥११४॥ जो किमी दूररेको प्राप्त नहीं हो सकने थे ऐसे उन आभूषणोको पाकर चक्रवर्ती परम हर्षको प्राप्त हुए और चक्रवर्तीके द्वारा किये हुए मत्कारोमे वह देव भी अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ ॥११५॥ तदनंतर विजयाय पर्वतकी गुफाके द्वारमे प्रवेश करनेका उपायवितलाने वाशे उन देवको भरत चक्रवर्तीने विदा किया और गुफाका द्वार खोलनेके लिये सवमे आगे अपना मेनापनि भेजा ॥११६॥ चक्रवर्तीने मेनापनिमे कहा कि तुम गुफाका द्वार उपाडकर उत्र तब गुफा शान्त हो तब तब पश्चिम खण्डकी जीतनेका उद्योग करो ॥११७॥ इस प्रकार चक्रवर्तीकी आज्ञाको माशुके नमान मन्त्रकपर धारण करना हुआ और वृत्तमाल देवके द्वारा वनशये हुए सुमन्त उपायोसे प्रयोगको जाननेवाला वह चतुर मेनापनि कुछ थोडे और सैनिको के साथ दण्डरत्न हाथमें लेकर अश्वरत्नपर आस्र होकर चला ॥११८-११९॥ और कुछ थोडा दूर जाकर तथा म्बु नदीके वनकी वेदीको उल्लघन कर विजयाय पर्वतके तटकी वेदी पर जा पहुचा ॥१२०॥ प्रथम ही वह मेनापनि नोटियोके द्वारा विजयाय पर्वतकी वेदिकापर चढा और फिर पश्चिम की ओर मुह्वर गुफाके आगे जा पहुचा ॥१२१॥ अश्वरत्न पर बैठे हुए मेनापतिने चक्रवर्तीको जय हो इस प्रकार कहकर दण्डरत्नमे गुफा द्वारका ताडन किया जिसमे बडा भारी शब्द हुआ ॥१२२॥ दण्डरत्नकी चोटमे गुफाका द्वार खुल जानेपर उनके भीतरमे बडी भारी गर्मी निकलने लगी ॥१२३॥ दण्डरत्नके प्रहारमे उत्पन्न हुए श्रेष्ठकार शब्दको धारण करते हुए दोनो किवाट सेमे जान पडने से मानो वेदनाने सहित होनेके

१ न्यपोषम्यान् । २ पातामन्यान् । 'मर्ताकी मुवि श्वर' इत्यनिघानात् । 'वन्मन्त्रावडागदा मुको विक्रवाचना' इति शान्तेशास्त्रम् । ३ वृक्षविररसंगान्तात् ज्ञानान् 'पन्तानोत्रोर्मिष्यम्' इत्यनिघानात् । ४ राशमेभ्योऽयन् । ५ क्षपा राति सम्भाष्यन्तीति क्षपादा तान् शक्रमानीयम् । 'वन्वषा रातिवटा राशयो जवतोहित' इत्यनिघानात् । ६ महितान् । ७ तेजोऽग्निवत् । ८ वेदी । ९ निनवादि धनुर्दंगनरत्नानि । १० धनिहृत् । ११ उपायान्तिमिति । १२ पश्चिममण्डप्य । १३ आशान् । १४ पश्चिमा- निमूरा । १५ गर्भानम् । १६ आशु । १७ दण्डरत्नम् । १८ अगन्तवित् इति । १९ विष्णुत् । २० ध्वनि विष्णु । २१ कवाटमुत्पन्नम् 'कवाटमग्ग मुन्ने' इत्यनिघानात् । २२ निवटति एव स्वैदिनमित्यर्थम् ।

उद्घाटितकवाटेन द्वारेणोष्माणमुद्भमम् । राज्ञ राजत शैलो लब्धोच्छ्वासश्चिरादिव ॥१२५॥
 क्वाटपुटविदनेयाद् उच्चचार महान ध्वनि । दण्डेनाभिहतस्याद्रे आक्रोश इव विस्फुरन् ॥१२६॥
 गृहोष्मणा स नाश्लेषि^१ विदूरमपवाहित^२ । तरश्बिनाऽश्वरत्नेन^३ देवताभिश्च रक्षित ॥१२७॥
 निपेतुरभरस्त्रीणा दृक्सेरं सममम्बरात् । सुमन प्रकरास्तस्मिन् हासा इव जयश्रिय ॥१२८॥
 तद्वेदीं सतोपाना हृष्याद्रे समतोयिवान । सोऽन्मेत्^४ सतोरणा सिन्धो पश्चिमा वनवेदिकाम् ॥१२९॥
 वेदिना तामतिक्रम्य सजगहे^५ परा भुवम् । नानाकरपुरप्रामतीमारामैरलङ्कृताम् ॥१३०॥
 प्रविष्टमात्र एवास्मिन् प्रजास्त्रासमुपाययु । सन 'द्वारपवैरण्या घटन्ते स्म' पलायितुम् ॥१३१॥
 केचिन् कृतधियो धीरा सार्धा पुण्याक्षतादिभि । प्रत्यग्रहोयुरभ्येत्य सत्तन बलनायकम् ॥१३२॥
 न नेतव्यं न भेतव्यम् श्राध्वमाध्व ययासुखम् । इत्थं स्यान्नाकरा^६ विष्वक् भ्रेगुराश्वास्तितप्रभा ॥१३३॥
 म्लेच्छदण्डमलण्डास परिक्रामन् प्रदक्षिणम् । तत्र तत्र विभो राजा म्लेच्छराजैरजिग्रहत्^७ ॥१३४॥
 इदं चक्षुरस्यै स चैव निकट^८ प्रभु । तमारापयितु यूयं त्वरद्य सह साधने ॥१३५॥
 भरतस्यादिराजस्य चविणोऽप्रतिशासनम्^९ । शासन शिरसा दध्व^{१०} यूयमित्यं वशाच्च^{११} तान् ॥१३६॥

कारण चिन्ता ही रहे हो, उन्हें दुःखसे परीक्षा ही आ गया हो और गुफाके भीतरकी गरमी में उनके प्राण ही निरन्तरे जा रहे हो ॥१२८॥ जिसके किवाड खुल गये हैं ऐसे द्वारसे गरमी को निकालना हुआ यह विजयार्थ पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत दिन बाद उसने उच्छ्वास ही किया हो ॥१२९॥ दोनो किवाडोंने खुलनेसे एक बड़ा भारी शब्द हुआ था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो दण्डरत्नके द्वारा ताटित हुए पर्वतके रोकनेका शब्द ही हो ॥१२९॥ वेगनागने अस्वग्न जिमें बहुत दूर तक भगा ले गया है और देवताओंने जिसकी रक्षा की है ऐसे उम मेनापतिवो गफाकी गरमी छू भी नहीं सकी थी ॥१२७॥ उस समय उस सेनापतिपर देवागनाओंके वताशोकें साथ साथ आवागसे फूलोंके समूह पड़ रहे थे और वे जयलक्ष्मी के हामके समान जान पड़े थे ॥१२८॥ सेनापति सीढियों सहित विजयार्थ पर्वतके किनारे की वेदीपों उच्छ्वास करना हुआ तोरण गहित सिन्धु नदीके पश्चिम ओर वाली वनकी वेदिवा के समुप पृच्छा ॥१२९॥ उगने उम वेदिवाको भी उच्छ्वास कर अनेक खानि, पुर, ग्राम, गौमा और बाग ययीपोंने मन्दर म्लेच्छदण्डकी उत्तम भूमिमें प्रवेश किया ॥१३०॥ उस भूमिमें सेनापतिने प्रवेश करने ही वहाँकी सम्स्त प्रजा घबडा गई, उमसेसे कितने ही लोग म्त्रियों तथा गाय भेग जादिने साथ भागनेके लिये तैयार हो गये ॥१३१॥ कितने ही बुद्धिमान् तथा धीर वीर पुरुष पवित्र अक्षत आदिवा यना हुआ अर्ध ल्येवर मेनागहित मेनापतिवो सम्मुख

जाना वय चिरादद्य सनाथा इन्द्रदासिप' । केचिच्चक्रुरस्तस्याज्ञाम् भ्रष्टा^१ प्रत्यपन्मन^२ ॥१३७॥
 सधिविप्रह्वानादिव्याङ्गुप्यहृतविषमया । बलान् प्रमाणिता केचिद् ऐश्वर्यसत्त्वद्वेषिता ॥१३८॥
 कादिचद्गौर्धिवान् स्नेच्छान् श्रवन्कवनिरोधन^३ । सेनानीवंशभानिग्ये नमत्पत्तोऽधिक क्षत^४ ॥१३९॥
 केचिद् बलेरवपन्मा^५ तत्त्वाडा सोऽमुक्षमा । शासने चक्रिणास्तस्य स्नेहो नापॉलितान् खलान् ॥१४०॥
 इत्युपायं दयायत्न माधयन्स्नेच्छन्नूनज^६ । तेभ्य कन्यादिरस्तानि प्रमोर्नोप्यान्मुपाहरत् ॥१४१॥
 धर्मकर्मबहिर्नुता इत्यमी स्नेच्छका मना । श्रययाऽयं^७ समाचारं श्रापान्तैर्न ते सना ॥१४२॥
 इति प्रसाध्य ता भूमिं श्रभूमिं धर्मकर्मणाम् । स्नेच्छराजबलं सार्द्धं सेनानान्यवृतन् पुन ॥१४३॥
 रराज राजराजस्य साधुरत्नचमुपति । मिद्धदिग्विजयी जैन प्रताप इव भूमिमान् ॥१४४॥
 सतोरणामतिरम्य स सिधोर्वनवेदिकाम् । विगाडश्च^८ सतोपाना सप्यात्रैस्तदवेदिकाम् ॥१४५॥
 श्राद्धो जगनोमद्रे व्यूढोरस्का^९ महानुज । पट्टनिर्मासि प्रसान्णोऽप्य सोऽभ्ययासीद्^{१०} गृहामुक्त्^{११} ॥१४६॥
 तत्रामोन्दच्च सशोष्य बहुपाप गृहोदरम् । वृत्तारसाविधि सम्पक् प्रत्यायाच्चिद्विर^{१२} प्रमो ॥१४७॥

'आज हम लोग बहुत दिनमें मनाथ हुए हैं इमलिये जोर जोरसे आधीवादि देते हुए कितने ही बुद्धिमान् लोगोंने चक्रवर्तीकी आज्ञा स्वीष्टन की थी ॥१३७॥ जिन्होंने मन्वि, विग्रह और यान आदि छह गुणोंमें अपना परानम दिवाया था और जो धोटेमें ही ऐश्वर्यमें उन्नत हो गये थे ऐंसे कितने ही राजाओंमें सेनापतिने जवदंस्ती प्रणाम कराया था ॥१३८॥ कियेके भीतर रहनेवाले कितने ही स्नेच्छ राजाओंको सेनापतिने उनका चागे औरसे आवागमन रोककर वश किया था मो ठीक ही है क्योंकि अजानी लोग अधिक दुःखी किये जानेपर ही नम्रीभूत होने हैं ॥१३९॥ कितने ही राजा लोग सेनाओंके द्वारा धिक्कर उसमें उत्पन्न हुए दुःखको सहन करनेके लिये अममयं हो चक्रवर्तीके नाममें स्थित हुए थे, मो ठीक ही है क्योंकि बिना पेले खल अर्थान् खरीसे स्नेह अर्थान् तेल उत्पन्न नहीं होता (पसमें बिना दुःखी किये हुए खल अर्थान् दुर्जनसे स्नेह अर्थान् प्रेम उत्पन्न नहीं होता) ॥१४०॥ इन प्रकार उपायोंको जाननेवाले सेनापति ने अनेक उपायोंके द्वारा स्नेच्छ राजाओंको वश किया और उनमें चक्रवर्तीके उपनामके योग्य कन्या आदि अनेक रत्न भेंटमें किये ॥१४१॥ ये लोग धर्मक्रियाओंमें रहित हैं इमलिये स्नेच्छ माने गये हैं, धर्मक्रियाओंके सिवाय अन्य आचरणोंमें कार्य खण्डमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके गमान हैं ॥१४२॥ इस प्रकार वह सेनापति, धर्मक्रियाओंमें रहित उन स्नेच्छभूमिको वश कर स्नेच्छराजाओंकी सेनाके साथ फिर वापिस लौटा ॥१४३॥ कितने दिग्विजय कर लिया है, मक्को जीतना ही जिमका स्वभाव है, और जो अश्वरत्नमें महिन है ऐंसा वह राजाधिराज भरतका सेनापति ऐंसा मुधोन्नित हो रहा था मानो भूमिमान् प्रताप ही हो ॥१४४॥ तोरणोंमहिन मिन्नु नदीके वनकी वेदीको सख्खन कर वह सेनापति सीटियों महिन विनयायं पर्वतके वनकी वेदीपर जा चटा ॥१४५॥ जिमका वक्षस्थल बहुत बड़ा है और जिमकी भुजाएँ बहुत लम्बी हैं ऐंसा वह सेनापति पर्वतकी वेदिनापर चढकर छह महीनेमें जिमकी गर्मी धान्त हो गई है ऐंसी गुफाके द्वारपर ठहर गया ॥१४६॥ वहाँ ठहरकर उमने अनेक विघ्नो से भरे हुए गुफाके भीतरी भागको मुद्ध (माफ) कराया और फिर अच्छी तरहसे उमकी रखा

१ उद्वृत्तातीवचना । २ निष्पत्तवृत्तया भूवा । ३ अर्थाकार वृत्तवन् । ४ धागनिरासनं । 'निप्रह्वन्तु निराय स्याद्' इत्यमरः । अन्त्यानायनात्मकनिग्रहं । उक्तं च विदग्धवृत्तानां 'अभ्यवस्वन्दन त्वन्मासापनम' (पेरका नाम) । ५ अधिक पीडिता भूत्वा । ६ वेष्टिता । ७ विनाहादिनि । ८ पुष्पमुष्मा आर्यामन्नेनेत्यर्थः । 'अर्यावर्तं पुष्पभूमिं' इयमिधानम् । ९ अल्पानम् । १० प्रविष्टः । ११ विगातवग स्यत् । १२ तत्पत्नी । १३ गुहाद्वारम् । १४ स्वन्वावाग् प्रत्यगात् ।

अथ सम्मुखमागत्य 'सानोरैर्नृपसत्तमः । प्रत्यगृह्यत सेनानी सजयानकनिस्वनम् ॥१४८॥
 विभक्ततोरणामुच्चैः प्रचलत्कैतुमालिकाम् । महावीर्यीमतिक्रम्य प्राविशत् स नृपालयम् ॥१४९॥
 तुरङ्गमवराद्दूरात् कृतावतरणः कृती । प्रभोर्नृपासनस्वस्य प्रापदास्यानमण्डपम् ॥१५०॥
 दूराननचलन्नीलिसदृशकरकुटुम्बलः । प्रणनाम प्रभु सभ्यं बोध्यमाणः सविस्मितः ॥१५१॥
 मुखरंजयकारेण म्लेच्छराजं मसाध्वसम् । प्रणमे प्रभुरभ्येत्य ललाटस्फुटभूतलैः ॥१५२॥
 तदुपाहृतं रत्नाद्यैः 'अर्घ्ययन्नुपडीकितं' । नामादेशं च 'तानस्मं प्रभवेऽसौ न्यवेदयत् ॥१५३॥
 सप्रसादं च सम्मान्य सत्कृतास्ते महीभुजः । प्रभोरनुमताद् भूयः स्वभोकः प्रत्ययासिद्युः ॥१५४॥
 इत्य पुष्पोदयाच्चक्री बलात् प्रत्यन्तपालकान् । विजिग्ये वण्डमात्रेण जयः पुण्यादुक्ते कुतः ॥१५५॥

मालिनी

अथ नृपतिसमाजेनाचितः सानुराणं विजितसकलदुर्गः प्रह्वयन् म्लेच्छनाथान् ।
 पुनरपि विजयायायोजि सोऽग्रेसरत्वे जय इव जयचिह्नं मानितो रत्नभर्त्रा ॥१५६॥
 जपति जिनवराणां शासनं यत्प्रसादात् पदमिदमधिराज्ञा प्राप्यते हेलयैव ।
 सन्वितनिधिरत्नप्राज्यभोगोपभोगप्रकटितसुखसार भूरि सपत्प्रसारम् ॥१५७॥

शार्दूलविनीडितम्

धन च द्रव्यरापहानि रचिर चामीकरप्रोज्ज्वलद्-
 दण्ड चामरयुग्मक सुरभरिद्दृढिङ्डीरपिण्डच्छदि ।
 दक्षमाद्रेरिव सखिनवनमपर दूट भृगोन्नासन
 लेभेऽनौ विजयाद्वैनायविजयाद्रत्नाग्वयान्वान्वयि ॥१५८॥
 गोर्वाणा कृतमाल इष्यन्निमन सपूज्य त सादर
 प्रादावाभरणानि यानि न पुनस्तेषामिहास्त्युन्मिति १ ।
 सम्प्रादूर्तरचना^१ दलद्रुनतनु कल्पद्रुम पुष्पिनो
 मेरो सानुभिवाधिनो मणिमय सोऽध्यासिनो दिप्तरम् ॥१५९॥

इत्यार्षे भगवज्जिनमेनाचार्यप्रणीते त्रियष्टितन्मणश्रीमहापुराणसप्तदशे
 विजयाद्रगुहाद्वारोद्गादनवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥ ३१ ॥

के द्वारा जिममें सुखोत्ता मार प्रवृत्त रहना है, और जिममें अनेक मम्मदाखोका प्रमाण रहना है
 ऐमा यह चन्द्रवर्तीका पद जिमके प्रमादमे लीला मात्रमें प्राप्त हो जाता है ऐमा यह जिनेन्द्र
 भगवान्वा शामन मदा जयजन्त रहे ॥१५७॥ महाराज भरतने विजयार्थ पर्वतक न्यामीको
 जीतकर उससे चन्द्रमारी किरणोरी हमी करनेवाग मन्दर छत्र, मुवर्णमय देदीप्यमान
 दण्डोमे युक्त तथा गङ्गा नदीके फेनके समान कान्तिवाणे दो मनोहर चमर, सुमेरु पर्वतमे
 अलग विये हुए उसके शिखरके समान मिहामन तथा और भी अन्य अनेक रत्न प्राप्त त्रिये
 थे ॥१५८॥ 'कृतमाल' इम नाममे प्रसिद्ध देवने मत्कार कर महाराज भरतने त्रिये जो आभू
 पण दिये थे इम भक्तक्षेत्रमें उनसी उपमा देने योग्य कोई भी पदार्थ नहीं है । उन अनुपम
 आभूषणोमे तिनका शरीर अट्टन हो रहा है और जो मणियोंके बने हुए मिहामनपर
 विराजमान है ऐमे महाराज भरतेश्वर उम समय मेरु पर्वतकी शिखरपर स्थित कृते हुए कस
 वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१५९॥

इम प्रकार भगवज्जिनमेनाचार्यप्रणीत त्रियष्टितन्मणश्रीमहापुराणसप्तदशे हिन्दी
 भाषानुवादमें विजयार्थ पर्वतकी गुफाका द्वार उपादनेना वर्णन
 करनेवाग इतनीमत्रा पर्व समाप्त हुआ ।

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथान्येद्युष्टपाह्वडसभूमैर्वलनायकैः । प्रत्यपात्यत' तत्रद्वः प्रयाणसमयः पभो. ॥१॥

गजताश्वीवरग्याना' पावाताना' च सङ्गुले । न नृपाजिरभेयासीत् वृद्धवृद्धयन्तावपि ॥२॥

जयकुञ्जरमाह्वडः परीतो' नृपकुञ्जरं' । रेजे 'नियन्त्रयाणाय ताम्गाट् शफ इयामरं. ॥३॥

किञ्चित् परचान्मुख' गत्वा सेनान्या शोधिते पवि । ध्वजिनी सङ्गुचन्त्यासीत् ईर्याशुद्धि धितेव सा ॥४॥

प्रगुणस्थानसोपाना' रूप्यादे श्रेणिनश्रमात् । मुने शुद्धिरिय श्रेणीम् आरुढा सा पताविनी' ॥५॥

तमिल्लेति गुहा यासौ गिरिव्याससमायति' । उच्छ्रिता योजनान्यष्टी ततोऽर्द्धाधिप'० विस्तृति' ॥६॥

वाज कपाटयोर्गुग्म या स्वोच्छ्वायमितोच्छ्रति । दधे पृथक्' स्वविष्वम्भसाधिवृद्धयशविस्तृति' ॥७॥

पराध्वंमणिनिर्माणहचिमद्द्वारवन्धना । 'तद्वधस्तलनिस्तपंतसिन्धुस्रोतोविराजिता ॥८॥

अश्वयोद्धाटनाज्येषा मुबत्या चश्चिमूपतिम् । तन्निरमलितत्वाच्च'० प्रागेय वृत्तनिवृत्ति' ॥९॥

अथानन्तर—दूसरे दिन जिन्हें जल्दी ही रहनी है और जो हरएक प्रकारसे तैयार है ऐसे सेनापति लोग चक्रवर्तीके चलनेके समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥१॥ हाथियोंके समूह की सेना, घोड़ोंके समूहकी सेना और पैदल चलनेवाले सैनिक, इन सबकी भीड़से केवल महाराजका आगम ही नहीं भर गया था किन्तु विजयार्थ पर्वतके वन भी भर गये थे ॥२॥ विजयी हाथीपर चढ़ा हुआ और अनेक श्रेष्ठ राजाओंसे घिरा हुआ चक्रवर्ती जब विजयके लिये निकला तब ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ और देवोसे घिरा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥३॥ भरतकी वह सेना कुछ पश्चिमकी ओर जाकर सेनापतिके द्वारा शुद्ध किये हुए मार्गमें सकुचित होकर चल रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो वह ईर्यापथ शुद्धिको ही प्राप्त हुई हो ॥४॥ जिस प्रकार मुनियोंकी विद्युद्धता उत्तम गुणस्थान (आठवें, नौवें दशवें रूपी सीढियोंसे युक्त श्रेणी (उपशम श्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी) पर चढ़ती है उसी प्रकार चक्रवर्तीकी सेना, जिसपर उत्तम सीधी सीढिया बनी हुई हैं ऐसी विजयार्थ पर्वत की श्रेणीपर जा चढ़ी थी ॥५॥ वहा तमिल्ला नामकी वह गुफा थी जो कि पर्वतकी चौड़ाई के बराबर लम्बी थी, आठ योजन ऊंची थी और उससे डेवढी अर्थात् बारह योजन चौड़ी थी जो अपनी ऊँचाईके बराबर ऊँचे और कुछ अधिक छह छह योजन चौड़े वज्रमयी किवाडोंके युगल धारण कर रही थी जिसके दरवाजोंकी चौखट महामूल्य रत्नोंसे बनी हुई होनेसे अत्यन्त देदीप्यमान थी, जो अपने नीचेसे निकलते हुए सिन्धु नदीके प्रवाहसे सुशोभित थी, चक्रवर्तीके सेनापतिने छोड़कर जिसे और कोई उधाड नहीं सकता था, जो सेनापतिके द्वारा पहले ही उधाड दी जानेसे शान्त पड गई थी—भीतरकी गरमी निकल जानेसे ठण्डी पड गई थी । जो यद्यपि जगत्की गृष्टिके समान अनादि थी तथापि किसीके द्वारा बनाई हुईके समान मालूम

- १ प्रतीक्ष्यते स्म । २ संख्यानाम् ल० । ३ पदातीनाम् ल० । ४ परिवृत्त । ५ नियन्त्रयन् ।
 ६ परिचमामिभुग्म् । ७ ऋजूगुणस्थानसोपाना प्रवृष्टगुणस्थानसोपानाञ्च । ८ सेना । ९ पञ्चास-
 दोत्रनायामेति भाव । १० अष्टयोत्रनोत्तरेषात् । ११ द्वादशयोजनविस्तारेत्यर्थ । १२ यमलक्षणादे
 पूर्ववत्वाटम् । १३ द्वादशयोजनविस्तारवद् गुहाया माधिवद्वितीय विस्तारम् । यमलक्षणादे पूर्वव-
 त्वाटम् । १४ द्वादशयोजनविस्तारवद् गुहाया माधिवद्वितीय विस्तारम् । १५ द्वादशयोजनविस्तारवद् गुहाया माधिवद्वितीय विस्तारम् । १६ देहल्या अथस्तले
 निगच्छति भाव । १७ तत्र चमूपतिना गमुद्धाटिगवाटस्वान् । १८ वृत्तोपशान्ति ।

जगत्स्यतिरिवानाद्या घटितेव^१ च कनचित्^२ । जंनो भू^३तिरिवोपात्ताग्नीर्षां मुनिभिर्मता ॥१०॥
व्यायता जीवितार्थेय मूर्च्छेव च^४ तपोमयी । गतेवोल्ताघतं^५ कृद्वात् मुक्तोपमा शोधितोदरा^६ ॥११॥
कुटीय च^७ प्रसृताया निपिद्धान्यप्रवेदिना । वृतरक्षाविधिद्वारे पृतमद्रगलसंविधिः ॥१२॥
तामातोषय बल^८ जिष्णोः दूरादासौनस साध्वसम् । तमसा सूचिभेदेन वज्रजलेनेव सम्भूताम् ॥१३॥
चाश्रिणा ज्ञापितो भूयः सेनानीः सपुरोहितः । तत्तमोनिर्गमोपायं प्रयत्नमकरोत्ततः ॥१४॥
काकिणोमणिरत्नाभ्या प्रतियोजनमातिष्ठत् । गुहाभित्तिद्वये सूर्यसोमयोर्मण्डलद्वयम् ॥१५॥
सप्तप्रकाशदृशोद्योतं सज्ज्योत्सनातमसोत्रिधिम् । गुहामध्यमपध्वान्तं व्यगाहत् ततो बलम् ॥१६॥
चपरत्नज्वलद्वीपे ससेनान्या^९ पुरः स्थिते । बलं तदनुमार्गेण प्रविभज्य द्विधा ययौ ॥१७॥
परिसिन्धु^{१०}नदीस्रोतः प्राग् पश्चाच्चोभयोः पयोः । बलं प्राय^{११}जतं सितधोः उपपुज्योपपुज्य तत् ॥१८॥
पयि द्वेषे^{१२} स्थिता तस्मिन् सेनापण्या नियन्त्रिता^{१३} । सा चयूः सद्यद्वेष^{१४} तदा प्रापद् दिगाथयम्^{१५} ॥१९॥
ततः प्रयाणवर्षः कंसिचत् प्रभूतपवसोदर^{१६} । गुहाद्वंसम्भिता^{१७} भूमिं व्यतीपाय^{१८} पतिविशाम् ॥२०॥

होती थी, अत्यन्त गम्भीर (गहरी) होनेके कारण जिसे मुनि लोग जिनवाणीके समान मानते थे क्योंकि जिनवाणी भी अत्यन्त गम्भीर (गूढ अर्थसे भरी हुई) होती है। जो जीवित रहने की आशाके समान लम्बी थी, मूर्च्छाके समान अन्वकारमयी थी, गरमी निकल जाने तथा भीतरका प्रदेश शुद्ध हो जानेसे जो नीरोग अवस्थाको प्राप्त हुईके समान जान पड़ती थी, जिसमें चक्रवर्तीकी सेनाको छोड़कर अन्य किसीका प्रवेश करना मना था, जिसके द्वारपर रक्षाकी सब विधि की गई थी, जिसके समीप मंगलद्रव्य रखे हुए थे और इसलिये जो प्रभूता (वच्चा उत्पन्न करनेवाली) स्त्रीकी कुटी (प्रसूतिगृह) के समान जान पड़ती थी ॥६-१२॥ सुई की नोकसे भी जिसका भेद नहीं हो सकता ऐसे वज्रजलेके समान गाढ़ अन्वकारसे भरी हुई उस गुफाको देखकर चक्रवर्तीकी सेना दूरसे ही भयभीत हो गई थी ॥१३॥ तदनन्तर जिसे चक्रवर्ती ने आज्ञा दी है ऐसे सेनापतिके पुरोहितके साथ साथ, उस अन्वकारसे निकलनेका उपाय करने के लिये फिर प्रयत्न किया ॥१४॥ उन्होंने गुफाकी दोनों ओरकी दीवालपर काकिणी और चूड़ामणि रत्नसे एक एक योजनकी दूरीपर सूर्य और चन्द्रमाके मण्डल लिखे ॥१५॥ तदनन्तर उन मण्डलके प्रकाशमें जिनमें प्रकाश किया जा रहा है, चादनी और घूप दोनों ही जिनमें मिल रहे हैं तथा जिसका सब अन्वकार नष्ट हो गया है, ऐसे गुफाके मध्य भागमें सेनाने प्रवेश किया ॥१६॥ आगे आगे सेनापतिके साथ साथ चक्ररत्नम्पी देदीप्यमान दीपय चल् रहा था और उसके पीछे पीछे उसी मार्गमें दो भागोंमें विभक्त होकर सेना चल रही थी ॥१७॥ वह सेना, सिन्धु नदीके प्रवाहके पूर्व तथा पश्चिमकी ओरके दोनों मार्गोंमें सिन्धु नदीके जलका उपयोग करती हुई जा रही थी ॥१८॥ उन दोनों मार्गोंपर चलती हुई तथा सेनापतिके द्वारा वश की हुई वह सेना उस समय दिशाओं सम्बन्धी मगधकी द्विविधताको प्राप्त हो रही थी अर्थात् उमें इस वातना मगध हो रहा था कि पूर्वदिशा वीन है ? और पश्चिम दिशा वीन है ? ॥१९॥ तदनन्तर जिनमें घाम और पानी अधिक है ऐसे बिनने ही मुनाम चलकर महाराज

१ निमित्तैव । २ कनचित् पुरेणैव । ३ परमागमः । ४ श्रुत्वा गतेव । उक्तानां निर्गतो गदान् ।
५ शोधितान्तरा सः । ६ गुहाम् । ७ सेनापतिवसन्निवने । ८ सिन्धुनदीप्रवाह वज्रविना । परिसिन्धु
परन्तार्थान् । ९ परवान् पूर्वोत्तर । १० अगच्छत् । ११ द्विप्रकारवती । १२ निपदिना । १३ मगधनेद
मगधविशाम् वा । १४ उपदेशाश्रयम् वा मगधभेद प्राग । पूर्वोदिदिग्भेदे सेना गन्धेह्वनी जातेष्व ।
१५ गुह, पाप । पागो यत्र तृणमर्द्धिर्वाग्निघातात् । १६ गुहानामर्द्धमिनाम् । १७ अजान् ।

नार्यं सममद्येद्यु प्रभुर्गजघटावृतं । महापथेन तेनैव जलदुर्गं ध्यतद्व्ययत् ॥३२॥
 तत कतिपयैरेव प्रयाणैरतिवाहितं । गिरिदुर्गं बिलप्योदगगुहाद्गारमवासदत् ॥३३॥
 निरर्गत्तोडृत द्वारं पौरस्त्यैरिभसापने । व्यतीत्य प्रभुरस्यादे श्रप्युयास वनावनम् ॥३४॥
 श्रधिशाय्य गुहागर्भं चिर मातुरिवोदत् ॥ सद्य जन्मान्तर मेने^१ नि मृतं संनिर्वंबंहि ॥३५॥
 गृह्येमतिगृधेव^२ गितित्वा^३ जनतामिमाम् । जरणाशकितता^४ नूनम् उज्जगाल^५ यहि पुन ॥३६॥
 व्यजनेरिव शाखायं धीजयन् यनवीर्याम् । गृहोष्मणा चिर क्षिन्ना चमूमादवासपन्नस्तु ॥३७॥
 तदन पवनघृत चलच्छासाकरोत्परं । प्रभोरपागमे तोयाप्रनतैव घृतातैवम्^६ ॥३८॥
 पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे बलाप्रथ्या प्रसापिते । विजेतु मध्यम खण्ड साधनं प्रभुरद्यो ॥३९॥
 न करं पीडितो लोको न भुध शोपितो रस । नाक्नेव जनस्तप्त प्रभुणाश्रयुजताप्युदक्^७ ॥४०॥
 कौबेरीं दिशामास्याय^८ तपत्यैकान्त^९ करं । भानुभरतराजस्तु भुवस्तापमपाकरोत् ॥४१॥
 वृत्तध्रूहानि^{१०} संयानि सहतानि^{११} परस्परम् । नातिभूमि ययुजिष्णो न स्वैर परिचभम् ॥४२॥

पर जा पहुँची ॥३१॥ दूसरे दिन हाथियोंके समूहसे धिरे हुए महाराज भरतने अनेक राजाओं के साथ साथ उसी जलमय महामार्गसे वठिन रास्ता तय किया ॥३२॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम चलकर और उस पर्वतहपी दुर्ग (वठिन मार्ग)को उल्लघन कर वे उस गुफाके उत्तर द्वारपर जा पहुँचे ॥३३॥ आगे चलनेवाली हाथियोंकी सेनाके द्वारा उधाड़े हुए उत्तर द्वारको उल्लघन कर चक्रवर्तीने विजयार्थ पर्वतके वनकी भूमिमें निवास किया ॥३४॥ माताके उदर के समान गुहाके गर्भमें चिरकाल तक निवास कर वहाँसे बाहर निकले हुए सैनिकोंने ऐसा माना था मानो दूसरा जन्म ही प्राप्त हुआ हो ॥३५॥ सेनाको बाहर प्रस्ट करती हुई वह गुफा ऐसी जान पड़ती थी मानो पहले वह बड़ी भारी तृष्णा इस मनुष्य समूहको निगल गई थी परन्तु पचानेकी शक्ति न होनेसे अब उसे फिर बाहर उगल रही हो ॥३६॥ उस समय पक्षोंके समान वनलताओंकी शाखाओंने अग्रभागसे हवा करता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकालतक गुफाकी गरमीसे दुखी हुई सेनाको आशवासन ही दे रहा हो ॥३७॥ जिसने श्रुतु सम्बन्धी अनेक फल-फूल धारण किये हैं और जो वायुसे हिल रहा है ऐसा वह वन उम समय ऐसा जान पड़ता था मानो चक्रवर्तीने आनेपर सतुष्ट होकर हिलते हुए अपने शाय्या रूपी हाथोंके समूहमें नृत्य ही कर रहा हो ॥३८॥ जब सेनापति पहलेकी तरह यहाके भी पश्चिम म्लेच्छ खण्डको जीत चुका तब महाराज भरत अपनी सेनाओंके द्वारा मध्यम म्लेच्छ खण्डको जीतनेके लिये उद्यत हुए ॥३९॥ यद्यपि भरत सूर्यने समान उत्तर दिशाकी ओर निकले थे तथापि जिस प्रकार सूर्य अपने घर अर्थात् चिरणोंसे लोगोंको पीडित करता है, पृथिवी वा रस अर्थात् जल सुरा देता है, और मनुष्योंको सनप्त करता है उस प्रकार उन्होंने अपने घर अर्थात् टेकसे लोगोंको पीडित नहीं किया था, पृथिवीका रस अर्थात् आनन्द नहीं सुगाया था—नष्ट नहीं किया था और न मनुष्योंको सनप्त अर्थात् दुखी ही किया था ॥४०॥ सूर्य उत्तर दिशामें पहुँचकर अपनी चिरणोंमें सन्नाप करता है परन्तु महाराज भरतने पृथिवीका सताप दूर कर दिया था ॥४१॥ जिनमें अनेक व्यूहोंकी रचना की गई है और जो परस्परमें मिश्री हुई हैं ऐसी भरतकी सेनाएँ न तो उनमें श्रुत दूर ही जाती थी और न स्वच्छदतापूर्वक

१ अपनोर्ग । २ उत्तरगुहाद्वारम् । ३ पुगालं । ४ वनभूमिम् । ५ मयन र्म ।
 ६ अत्रिवाश्रय्या । ७ निगरण वृत्त्वा । ८ जीवकवनावात् । ९ उज्जितनि रम । १० श्चो न्यम्,
 आनैवम् पुण्यादि । पूनमानंय येन ता । ११ उत्तरदिग्भाग । १२ उत्तरग्या दिशि म्पिया ।
 १३ निगरम् । १४ विहितान्नपनि । १५ मयदानि मितिनितां वा ।

यश्रोमन्तजला सिन्धु निमग्नजलाय समम् । प्रविष्टा तिवंगदृशं तं प्राप यत्तर्मांशतु ॥२१॥
 तपोरारात्तटे सैन्यं निवेश्य भरतेश्वरः । वंषम्यम्भमोर्नद्यो प्रेक्षाञ्चक्रे तबौधुयम् ॥२२॥
 एकाग्र पातपत्यन्या 'दावाद्युत्प्लावत्यरम् । मियोविच्छेदसाद्रगत्ये सद्रगते ते पर्यंचन ॥२३॥
 नद्योत्तरणोपायः को नु स्यादिति तर्कयन् । द्रुतमाह्वापयामास तत्रस्थः स्वपति पतिः ॥२४॥
 'तपोरारात्तटे पश्यन् उत्पत्तिपतज्जलम् । दृष्ट्येयं तुलयामास जलाञ्जलिमिव' क्षणम् ॥२५॥
 उपमूच्छ धातयत्येनां महान् वायुः स्फुरन्नयः । वायुस्तदन्ययावृत्तिः' श्रमुष्यां च विजृम्भते ॥२६॥
 उपनाहादुते' कोज्यः प्रतीकारोजयोरिति । भिषग्वर इयारंभे संश्रमोपश्रम' श्रुती ॥२७॥
 श्रमानुषेध्वरण्येपु ये केचन महादुभाः । सतानानापयामास' दिव्यनाशयनुभावतः ॥२८॥
 सारवाहभिरुत्तम्भ' स्तम्भानन्तर्जलस्थितान्' । स्वपतिः स्यापयामास 'तेषामुपरिसद्रश्रमम्' ॥२९॥
 बलव्यसनमासाद्दृक्' विरवृत्ती' स धीरधी । क्षणाप्रिष्पादयामास सद्रश्रमं प्रभुनासतान् ॥३०॥
 श्रुतः कतकलः सैन्यं निष्ठिते सेतुकर्मणि । तदेव च बलं कृतस्त्वम् उत्ततार परं तटम्' ॥३१॥

भरतने गुफाकी आधी भूमि तय की ॥२०॥ और जहा पर 'उन्मग्नजला' नदी 'निमग्नजला' नदीके साथ साथ दोनो तरफकी दीवालोकें कुण्डोसे निकलकर सिन्धु नदीमें प्रविष्ट होती है उस स्थानपर चक्रवर्तीकी सेना जा पहुँची ॥२१॥ महाराज भरतेश्वर उन दोनो नदियों के किनारेके समीप ही सेना ठहराकर कौतुकके साथ उन दोनों नदियोंकी विपमता देखने लगे ॥२२॥ इन दोनोमेंसे एक अर्थात् निमग्नजला तो लकड़ी आदिको शीघ्र ही नीचे ले जा रही है और दूसरी अर्थात् उन्मग्नजला प्रत्येक पदार्थको शीघ्र ही ऊपरकी ओर उछाल रही है । यद्यपि ये दोनो परस्पर विरुद्ध हैं तथापि किसी प्रकार यहाँ आकर सिन्धु नदीमें मिल रही है ॥२३॥ इन नदियोंके उतरनेका उपाय क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुए चक्रवर्तीने वहाँ खड़े खड़े ही शीघ्र ही अपने स्वपति (सिलावट) रत्नको बुलाया ॥२४॥ जिनका पानी ऊपर तथा नीचेकी ओर जा रहा है ऐसी उन दोनो नदियोंको देखते हुए सिलावट रत्नने उन्हें अपनी दृष्टिमात्रसे ही क्षणभरमें अजलि भर जलके समान तुच्छ समझ लिया ॥२५॥ उसने समझ लिया कि इस उन्मग्नजला नदीको इसके नीचे रहनेवाला महावायु ऊपरकी ओर उछालता है और इस निमग्नजला नदीको उसके ऊपर रहनेवाला महावायु नीचेकी ओर ले जाता है ॥२६॥ इसलिये इन दोनोका पुल बाँधनेके सिवाय और क्या उपाय हो सकता है ऐसा विचार कर उत्तम वैद्यके समान कार्यकुशल मिलावट रत्नने उन नदियोंके पार होनेका उपाय अर्थात् पुल बाँधनेका उपाय प्रारम्भकर दिया ॥२७॥ उसने अपनी दिव्य शक्तिकी सामर्थ्यसे निम्न यनोंमें जो कुछ बड़े बड़े वृक्ष थे वे मँगवाये । भावार्थ—अपने आश्रित देवोंके द्वारा गहन जगदोगे बड़े बड़े वृक्ष मँगवाये ॥२८॥ उसने मजबूत लकड़ियोंके द्वारा जलके भीतर मजबूत रम्भे गड़े कर उनपर पुल तैयार कर दिया ॥२९॥ अधिक समय लगनेपर सेनाको दुःख होगा इस बातका विचार कर उस गभीर बुद्धिके धारक सिलावटने भरतेश्वरकी आज्ञा में धाण भरमें ही पुल तैयार कर दिया था ॥३०॥ पुल तैयार होते ही सेनाओंने आनन्दसे घोडाट्ट विया और उगी समय चक्रवर्तीकी समस्त सेना उतरकर नदियोंके उस किनारे

१ मसिन्धु प्रदेशे । २ पूर्वोक्तमित्तिद्वयदृशान् विभक्त्य । ३ प्रदेशम् । ४ नाष्ठादि । ५ स तद्वदी-
 इयम् स०, ६०, ४०, १०, १० । ६ ददन्तौष्यं । ७ उत्पत्तिपतपत्वाद्भ्रजियुक्तजलवत् ।
 ८ प्रथमाभात्पत्ति । ९ वषणात् । १० मेतूपपश्रमम् । ११ आनयति स्म । १२ विजृम्भय ।
 १३ उभय शिरसात् ६०, ६० । १४ त्रयं शिरसात् ६० । १५ श्रममात् । १६ नेतुम् । १७ वनाय पोषा
 भविष्यतीति विचारः । १८ विरवान्तीति पति । १९ वापश्रीम् ।

नार्यकैः सममन्वेद्युः प्रभुर्जयघटावृतः । महापथेन तेनेव जलदुर्गं व्यसद्वधपत् ॥३०॥
 ततः कतिपर्यरेव प्रयागेरतिवाहितैः^१ । गिरिदुर्गं विलप्योदग्गुहाद्वारमवासदत् ॥३३॥
 निरगंलौकृतं द्वारं^२ पौरस्त्यैरिभसाधनैः । व्यनीन्य प्रभुरस्याद्रेः श्रध्युवाप्त वनावनिम्^३ ॥३४॥
 श्रधियाप्य गुहागर्भं चिरं मानुरिवोदत् ॥ तद्यं जन्मान्तरं मेने^४ नि-मृतैः सैनिकैर्बहिः ॥३५॥
 गृहेयमतिगुध्येषं^५ गिलित्वा^६ जनतामिमाम् । जरणाशकिततो^७ नूनम् उज्जगाल^८ यहिः पुनः ॥३६॥
 व्यजनैरिव शाखाप्रैः वीजयन् वनवीरधाम् । गुहोधमणां चिर क्षिप्त्वा घनमाववासयन्मत् ॥३७॥
 तद्वनं पवनापृतं चलच्छाखाकरोत्करैः । प्रभोरपागमे तोषादनतैव घृतातवम्^९ ॥३८॥
 पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे यत्प्राप्रप्या प्रसाधिते । विजेतुं मध्यमं खण्डं ताधनैः प्रभुरद्ययो ॥३९॥
 न करैः पीडितो लोको न भुवः शोषितो रसः । नाशेषेव जनस्तप्तः प्रभुणाऽभ्युद्यताप्युदक्^{१०} ॥४०॥
 षोडशैः दिशमास्त्याय^{११} तपत्येकान्ततः^{१२} करैः । भानुर्भरतराजस्तु भुवस्तापमपाकरोत् ॥४१॥
 श्रुतव्यूहानि^{१३} संन्यानि संहतानि^{१४} परस्परम् । नातिभूमि यद्युज्जगोः न स्वैरं परिवभुम् ॥४२॥

पर जा पहुची ॥३१॥ दूसरे दिन हाथियोंके समूहसे घिरे हुए महाराज भरतने अनेक राजाओं के साथ साथ उमी जलमय महामार्गसे कठिन रास्ता तय किया ॥३२॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम चलकर और उस पर्वतरूपी दुर्ग (कठिन मार्ग)को उल्लंघन कर वे उन गुफाके उत्तर द्वारपर जा पहुँचे ॥३३॥ आगे चलनेवाली हाथियोंकी सेनाके द्वारा उधाड़े हुए उत्तर द्वारको उल्लंघन कर चक्रवर्तीने विजयाधि पर्वतके वनकी भूमिमें निवास किया ॥३४॥ माताके उदर के समान गुहाके गर्भमें चिरकाल तक निवास कर वहाँसे बाहर निकले हुए सैनिकोंने ऐसा माना था मानो दूसरा जन्म ही प्राप्त हुआ हो ॥३५॥ सेनाको बाहर प्रकट करती हुई वह गुफा ऐसी जान पड़ती थी मानो पहले वह बड़ी भारी तृष्णा इन मनुष्य समूहको निगल गई थी परन्तु पचानेकी शक्ति न होनेसे अब उमे फिर बाहर उगल रही हो ॥३६॥ उस समय पापोंके समान बनलताओंकी शाखाओंके अग्रभागसे हवा करता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकालतक गुफाकी गरमीसे दुःखी हुई सेनाको आम्वासन ही दे रहा हो ॥३७॥ जिनने शत्रु सम्बन्धी अनेक फल-फूल धारण किये हैं और जो वायुसे हिल रहा है ऐसा वह वन उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो चक्रवर्तीने आनेपर संतुष्ट होकर हिलने हुए अपने दाया दायी हाथोंके समूहमें नृत्य ही कर रहा हो ॥३८॥ जब सेनापति पहलेकी तरह यहाँके भी पश्चिम म्लेच्छ खण्डको जीत चुका तब महाराज भरत अपनी सेनाओंके द्वारा मध्यम म्लेच्छ खण्डको जीतनेके लिये उद्यत हुए ॥३९॥ यद्यपि भरत सूर्यके समान उत्तर दिशाकी ओर निरले थे तथापि जिस प्रकार सूर्य अपने वर अर्थात् किरणोंमें लोगोंको पीडित करता है, पृथिवी का रस अर्थात् जल मुखा देना है, और मनुष्योंको सन्तप्त करना है उस प्रकार उन्होंने अपने वर अर्थात् टेकममें लोगोंको पीडित नहीं किया था, पृथिवीना रस अर्थात् आनन्द नहीं सुनाया था-नष्ट नहीं किया था और न मनुष्योंको सन्तप्त अर्थात् दुःखी ही किया था ॥४०॥ सूर्य उत्तर दिशामें पहुँचकर अपनी किरणोंमें सन्तप्त करता है परन्तु महाराज भरतने पृथिवीका सन्तप्त दूर कर दिया था ॥४१॥ जिनमें अनेक व्यूहोंकी रचना थी गई है और जो परस्परमें मिश्री हुई हैं ऐसी भरतकी सेनाएँ न तो उनमें बहुत दूर ही जाती थी और न म्वच्छन्दनापूर्वक

१ अनीनं । २ उत्तरगुहाद्वारम् । ३ पुर्णानं । ४ वनभूमिम् । ५ मन्वेने म्म ।

६ अधियाश्रयः । ७ निरगप इवा । ८ जीर्णगत्यभावात् । ९ उद्विगति स्म । १० शत्रो भयम् आवेवंम् पुण्यादि । पुनर्मानवं येन तत् । ११ उभरदिग्भाग । १२ उभरग्या दिशि गिया । १३ निरगम् । १४ विहितरत्नानि । १५ मवजानि भित्तानि वा ।

प्रसाधितानि दुर्गाणि वृत्त चाश्वयतापनम् । परचक्रमयष्टस्य^१ चत्रिणो जयतापनं ॥४३॥
 बलवाग्नाभिपोषतय्यो^२ रक्षणीयादश्च सधिता । यतितय्य क्षितित्राणे जिगीषोर्वसमीवृणाम् ॥४४॥
 इत्यलद्रघुघबलश्चश्री चक्ररत्नमनुव्रजन् । कियतीमपि ता^३ भूमिम् ध्रुवाष्ट^४भोत् स्यतापनं ॥४५॥
 तावच्च परचक्रेण^५ स्वचक्रस्य^६ पराभवम् । चिलातायतनामानो प्रभू द्रुधुयतु किल ॥४६॥
 अमृतवृषभेतदो^७ परचक्रमुपस्थितम् । व्यसत प्रतिवर्तय्यम् इत्यास्तां सद्रगती मिय ॥४७॥
 ततो धनुधरप्राय सहायवीय सहास्तिकम् । इतोऽमृतदश्च सजग्मे^८ तरतय्य म्लेच्छराजयो ॥४८॥
 वृत्तोच्चविप्रहारम्भी सरम्भ प्रतिपद्य तो । विप्रय्य^९ चत्रिण सय्य भेजनुविजिगीषुताम् ॥४९॥
 तावच्च सुधियो धीरा कृतकार्याश्च मा प्रण । निविध्य तो रणारम्भाद् यच्च पय्यमिद जगु ॥५०॥
 न किञ्चिदप्यनालोच्य विधय सिद्धिकाम्यता^{१०} । अनालोचितकार्याणा दवीयस्यो^{११}स्यसिद्धय ॥५१॥
 कोऽय प्रभूरवष्टम्भी कुतस्यो वा कियद्वल^{१२} । बलवान् इत्यनालोच्य नाभिषेय^{१३}कयञ्चन^{१४} ॥५२॥
 विजयाद्वलोल्लङ्घयो नैव सामान्यमानुष । दिव्यो^{१५} दिव्यानुभावो^{१६} वा भवेदेव न सदाय ॥५३॥

इधर उधर ही घूमती थी ॥४२॥ चक्रवर्तीकी विजयी सेनाओंने अनेक विले अपने वश किये, जिन्हें कोई बश नहीं कर सकता था, ऐसे राजाओंको बश किया और शत्रुओंको देना घेरे ॥४३॥ बलवान्के साथ युद्ध नहीं करना, शरणमें आये हुएकी रक्षा करना, और अपनी पृथिवीकी रक्षा करनेमें प्रयत्न करना यही विजयकी इच्छा करनेवाले राजाके योग्य आचरण है ॥४४॥ इस प्रकार जिनकी सेना अथवा पराक्रमको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे पीछे जाते हुए अपनी सेनाके द्वारा वहाँकी कितनी ही भूमिको अपने आधीन कर लिया ॥४५॥ इतनेमें ही चिलात और आवर्त नामके दो म्लेच्छ राजाओंने शत्रुओंकी सेनाके द्वारा अपनी सेनाका पराभव होता सुना ॥४६॥ हमारे देशमें शत्रुओंकी सेना आकर उपस्थित होना यह हम दोनोंके लिये विलकुल नई बात है, इस आये हुए सकटका हमें प्रतिकार करना चाहिये ऐसा विचार कर वे दोनों ही म्लेच्छ राजा परस्पर मिल गये ॥४७॥ तदनन्तर जिनमें प्राय करके धनुष धारण करनेवाले योद्धा हैं, तथा जो हाथियों और घोड़ोंके समूहसे सहित हैं ऐसी उन दोनों राजाओंकी सेना इधर उधरसे आकर इकठ्ठी मिल गई ॥४८॥ जिन्होंने भारी युद्ध करनेका उद्योग किया है ऐसे वे दोनों ही राजा क्रोधित होकर तथा पराक्रम प्रकट कर चक्रवर्तीकी सेनाओंके साथ विजिगीषुपनको प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें जीतनेकी इच्छासे उनके प्रतिद्वन्द्वी हो गये ॥४९॥ इसीके बीच, बुद्धिमान् धीरवीर तथा सफलतापूर्वक कार्य करनेवाले मन्त्रियोंने उन दोनों राजाओंको युद्धके उद्योगसे रोककर नीचे लिखे अनुसार हितकारी बचन कहे ॥५०॥ हे प्रभो, सिद्धिकी इच्छा करनेवालोंको विना विचारे कुछ भी नहीं करना चाहिये क्वाकि जो विना विचारे कार्य करते हैं उनके कार्योंकी सिद्धि बहुत दूर हो जाती है ॥५१॥ हमारी सेनाको रोकनेवाला यह बौन राजा है ? कहासे आया है ? इसकी सेना कितनी है और यह कितना बलवान् है इन सब बातोंका विचार किये विना ही उसकी सेनाके सम्मुख किमी भी तरह नहीं जाना चाहिये ॥५२॥ विजयार्थ पर्वतको उल्लंघन करनेवाला यह कोई माधारण मनुष्य नहीं है, यह या तो कोई देव होगा या कोई दिव्य प्रभावका धारक होगा इसमें

१ व्यानम् । २ अभिपणनीय । ३ महनीम् । ४ वेष्टयति स्म । ५ परसंयेन ।

६ स्वगपुत्र्य । ७ आशया । ८ मगनमनुत् । ९ अधिवा शक्ति विधाय । १० सिद्धिमिच्छता ।

११ दृग्गता । १२ कियद्वन अ०, ग०, ६० । १३ माया अभियातय्य । १४ सर्वथा ।

१५ देव । १६ दिव्यगामय्ये ।

तदास्तां समरारम्भः सम्भाव्यो दुर्गसंश्रयः । तदाधितरनायासात् जेतुं शक्यो रिपुर्महान् ॥५४॥
 स्वभावदुर्गमेतन्नः क्षेत्रे केनाभिभूयते । हिमवद्विजयाद्वाद्रिगङ्गासिन्धुतटावधि ॥५५॥
 अन्यच्च देवताः सन्ति सत्यमस्मत्कुलोचिताः । नागाभेषमुखानामते निरुण्यन्तु शानवान् ॥५६॥
 इति तद्वचनाज्ञातजयाशसौ जनेश्वरौ । देवतानुस्मृतिं सद्यः चमन्तु कृतपूजनौ ॥५७॥
 ततस्ते जलदाकारधारिणो घनगजताः । परितो वृष्टिमातेनः सानिलामनिलाशानाः ॥५८॥
 तग्जलं जलदोद्गोणं बलमाप्त्वाप्य जंघणवम्^१ । अधस्तिर्धगयोऽध्वं च समन्तादभ्यदुद्रवत्^२ ॥५९॥
 न चेतन्नोपमस्यासौत् शिविरे वृष्टिरीशितुः । बहिरैकाणवं कृत्स्नम् अक्वरोद् व्याप्य रोदती ॥६०॥
 छत्ररत्नमुपर्षासीच्चर्मरत्नमधोऽभवत् । ताभ्यामाबेष्टघ्नं तद्वृद्धं बलं स्यू^३ तमिवाभित ॥६१॥
 मध्ये रत्नद्वयस्यास्य स्वितमात्पत्तमाद् विनात् । जलप्लवे बलं भक्तुं व्यक्तमण्डायित^४ तवा ॥६२॥
 चक्ररत्नदृष्टोद्योते दृढदादशयोजने । तत्राण्डके^५ स्थित जिष्णोः निरावाद्यमभूद् बलम् ॥६३॥
 प्रथिभक्तचतुर्द्वारं सेनाव्यान्त सुरक्षितम् । बहिर्ययकुमारोण ररक्षं किल तद्वलम् ॥६४॥
 तदा परकुटीभेदा^६ १०कीटिकाश्च विद्याद्वन्द्याः^७ । कृताः स्वपतिरत्नेन रथाश्चाभ्यर^८ गोचरा ॥६५॥

कुल भी सन्देह नहीं है ॥५३॥ इसलिये युद्धका उद्योग दूर रहे, हम लोगोको किसी किलेका आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि किलेका आश्रय लेनेवाले पुरुष वड़ेसे वड़े शत्रुको महज ही जीत सकते हैं ॥५४॥ हिमवान् पर्वतसे विजयार्थ पर्वत तक और गङ्गा नदीसे सिन्धु नदीके किनारे तक वा यह हमारा क्षेत्र स्वभावसे ही किलेके समान है, इसका पराभव कौन कर सकता है ? इमे कौन जीत सकता है ? ॥५५॥ और दूसरी बात यह भी है कि हमारी कुल-परम्परासे चले आये नागमुख और भेषमुख नामके जो देव हैं वे अवश्य ही शत्रुओको रोच लेंगे ॥५६॥ इस प्रकार मन्त्रियोंके वचनोसे जिन्हें विजय करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ऐसे उन दोनों राजाओ ने शीघ्र ही पूजन कर देवताओका स्मरण किया ॥५७॥ स्मरण करते ही नागमुख देव, वादलो का आकार धारण कर घनघोर गर्जना करते हुए चारों ओर भ्रमा वायुके साथ साथ जलकी वृष्टि करने लगे ॥५८॥ मेघोके द्वारा बरमाया हुआ वह जल भरते-घरकी मेनाको डुबोकर ऊपर नीचे तथा अगल बगल चारों ओर बहने लगा ॥५९॥ यद्यपि वह जल इनना अधिक बरसा था कि उसने आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर बाहर एक नमूद्र मा बना दिया था परन्तु चक्रवर्तीके शिविरे (छावनी)में बरसका एक टुकड़ा भिगोने योग्य भी वृष्टि नहीं हुई थी ॥५९-६०॥ उस समय भरतकी मेनाके ऊपर छत्ररत्न था और नीचे चर्मरत्न था, उन दोनों रत्नोसे घिरकर रखी हुई सेना ऐसी मालूम होनी थी मानो चारों ओरसे भी दी गई हो अर्थात् चर्मरत्न और छत्ररत्न इन दोनोंमें चारों ओरसे टाके लगाकर दीर्घमें ही रोच दी गई हो ॥६१॥ उस जलके प्रवाहमें भरतकी वह सेना मात्र दिनतक दोनों रत्नोसे भीतर टहरी थी और उस समय वह ठीक अडाके समान जान पड़ती थी ॥६२॥ जिनमें चक्ररत्नके द्वारा प्रवाह किया जा रहा है ऐसे उस बाह्य योजन लम्बे-चौड़े अण्डाकार तन्मूमें टहरी हुई भरतकी सेना मय तटकी पीठामें रहित थी ॥६३॥ उस वड़े तन्मूमें चारों दिशाओंमें चार दरवाजे विभक्त किये गये थे, उनमें भीतरकी रक्षा सेनापतिने की थी और बाह्यमें जय-पुमार उस सेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥६४॥ उस समय मिलावट करने जने प्रसारके कपड़े के तन्मू, पागकी बड़ी बड़ी नोपडिया और आवानमें चरनेवाड़े रथ भी तैयार किये थे ॥६५॥

१ गात्रमिन्धु-न० । २ नागभेष-न० । ३ नागा । ४ जिष्णोस्त्रिंशत्तमं मन्त्रम् । ५ अभिषा-
 र्थि मन् । ६ पट्टमार्द्रं यथा भवति । ७ उक्तम् तन्मूमा सम्बद्धमिन्धु-न० । ८ अर्द्धमिषापरिणम् ।
 ९ पञ्चरे । १० कीटिका - कृटीका, कृता । इतिहासक १०, २०, ३०, ४०, ५० ।
 ११ विष्णोः । १२ रथाः मयगोचरा ५० ।

बहिः कलकलं श्रुत्वा क्रिमेतदिति पाथिया । परं ध्यापारयामासुः श्रुद्धाः षोडशैकं प्रति ॥६६॥
 ततश्चक्रथरादिष्टा^१ गगनवद्वामरास्तवा । नागान्त्सारयामासुः^२ श्रावष्टा^३ हृद्भृत्तः क्षणात् ॥६७॥
 बलवान् कुहराजोऽपि^४ मुक्तासंहारं गजितः । दिव्यास्त्रं रजयन्नागान् रथं दिव्यमधिप्यतः ॥६८॥
 तदा रणाटगणे वर्धनं शरपारामनारतम् । स रजे धृतसन्नाहः^५ प्रायुषेभ्य^६ इयाम्युवः ॥६९॥
 तन्मुक्ता विशिखा दोषा रजिरे समराजिरे^७ । द्रष्टुं तिरोहिताप्रापान् षोपिषा इव घोषिताः ॥७०॥
 ततो निवृत्ते^८ जित्वा नागान् मेघमुखानसौ । कुमारी रणसरम्भात् प्राप्तमेघस्वरभृतिः^९ ॥७१॥
 कुहराजस्तदा स्कृजंत्पञ्चन्य^{१०}स्तनितोजितं । गजितनिजंयन् मेघमुखान् ह्यातस्तदाज्ञया ॥७२॥
 तोपितैरवदानेन^{११} घोषितोऽस्य जयोऽमरं । दन्ध्वनदुन्दुभिध्यानमधिरीकृतदिग्मुखैः ॥७३॥
 ततो दृष्टापदानोऽयं^{१२} तुष्टुवे^{१३} चक्रिणा मृहुः । नियोजितश्च सत्कृत्य धीरो बीराप्रणोपदे ॥७४॥
 इन्द्रजाल इवामुष्मिन् व्यतिश्रान्तेऽहविष्लवे ।^{१४} प्रत्यापत्तिमगाद् भूयो बलमाधिर्भवज्जयम् ॥७५॥
 विष्वक्ते पन्नगानोके विबली म्लेच्छनायकौ । चक्रिणश्चरणावेत्य भयभ्रान्तौ प्रणेमतुः ॥७६॥
 धनं यथोधनं चास्मै कृतागः परिशोधनम्^{१५} । इत्या प्रसौद देवेति तो भृत्यत्वमुपेयतुः ॥७७॥

बाहर कोलाहल सुनकर 'यह क्या है' इस प्रकार कहते हुए राजाजोने क्रोधित होकर अपना हाथ तलवारकी ओर बढ़ाया ॥६६॥ तदनन्तर, उस समय जिन्हें चक्रवर्तीने आदेश दिया है ऐसे गणवद्ध जातिके देवोंने क्रुद्ध होकर अपने हुकार शब्दोके द्वारा क्षणभरमे नागमुख देवोको हटा दिया ॥६७॥ अतिशय बलवान् कुखवशी राजा जयकुमारने भी दिव्य रथपर बैठकर सिंह-गर्जना करते हुए, दिव्य शस्त्रोके द्वारा उन नागमुख देवोको जीता ॥६८॥ उस समय युद्धके आगनमे निरन्तर बाणोकी वर्षा करता हुआ और शरीरपर कवच धारण किये हुए वह जयकुमार वर्षाश्रुतुके बादलके समान सुशोभित हो रहा था ॥६९॥ जयकुमारके द्वारा छोड़े हुए वे देदीप्यमान बाण युद्धके आगनमे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छिपे हुए नागमुखो को देखनेके लिये जलाये हुए दीपक ही हो ॥७०॥ तदनन्तर वह जयकुमार नागमुख और मेघ-मुख देवोको जीतकर तथा मेघेश्वर नाम पाकर उस युद्धसे वापिस लौटा ॥७१॥ उस समय वह जयकुमार विजली गिरानेके पहले भयकर शब्द करते हुए बादलोकी गर्जनाके समान अपनी तेज गर्जनाके द्वारा मेघमुख देवोको जीतता हुआ मेघेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ था ॥७२॥ बार-बार बजते हुए दुन्दुभियोके शब्दोसे जिन्होने समस्त दिशाएँ बहिरी कर दी है ऐसे देवों ने इस जयकुमारके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर इसका जयजयकार किया था ॥७३॥ तदनन्तर जिम्बा पराक्रम देख लिया गया है ऐसे इस जयकुमारको चक्रवर्तीने भी बार-बार प्रशंसा की और उम धीरवा मत्वार कर उन्होंने उसे मुख्य दूरवीरके पदपर नियुक्त किया ॥७४॥ इन्द्र-जालके समान वह नागमुख देवोका उपद्रव शान्त हो जानेपर जिसकी जीत प्रकट हो रही है ऐसी वह भरतकी मेना पुन स्वस्थताको प्राप्त हो गई अर्थात् उपद्रव टल जानेपर सुखका अनुभव करने लगी ॥७५॥ नागमुख देवोकी सेनाके भाग जानेपर वे दोनो ही चिलात और आवर्त नामके म्लेच्छ राजा निर्बल हो गये और भयसे घबडाकर चक्रवर्तीके चरणोके समीप आकर प्रणाम करने लगे ॥७६॥ उन्होने अपराध क्षमा कराकर भरतके लिये बहुत सा धन तथा यन्त्रणी धन दिया और 'हे देव, प्रमन्न होइए' इस प्रकार कहकर उनकी दासता स्वीकार

१ श्रावष्टम् । २ आज्ञापिणाः । ३ पालयितान् चतुः । ४ श्रुद्धा । ५ जयकुमारः । ६ पुनश्च । ७ प्राप्ति भव । ८ गमरागणे । ९ न्यवृत्तः । १० प्राप्तमेघस्वरगजः । ११ मेघ । १२ पणवर्षण । १३ दृष्टापदानोऽयं ४०, ४०, ६० । १४ दृष्टापदानोऽयं ६०, ५० । दृष्टसामर्थ्यः । १५ इत्येवम् । १६ पूर्वग्नितम् । रत्नपान् प्रच्युतस्य पुन स्वरूपे अवस्थानम्, आदवागमित्यर्थः । १७ इन्द्रोपस्य पत्नियोपन यन्त्रान् चतुः ।

निस्तपत्ना महीमेनावृषंभवात्तनिधोदवर । आ हिमाद्रितटाद् भूय प्रवाणमकरोद् बलं ॥७८॥
 सिन्धुरोयोभुवु^५ क्षुन्दन् प्रयाणं जयसिन्धुरं । सिन्धुप्रपातं मासीदन्^६ सिन्धुदेव्या न्यपेचि^७ स ॥७९॥
 ज्ञात्वा सभागत जिष्णु देवी स्वावासगोचरम् । उपेयाय^८ समुद्रव्य रत्नाद्यं सपत्रिच्छुवा^९ ॥८०॥
 पुष्यं^{१०} सिन्धुजलैरेन हेमकुम्भशतोद्धृतं । साम्भविञ्चत् स्वहस्तेन भद्रासननिवेशितम् ॥८१॥
 कृतमटगलनेपथ्यम् श्रम्यनन्दजयाशिष्या । देव त्वद्दर्शनादद्य पूतास्मीत्यवदच्च तम् ॥८२॥
 तत्र भद्रासन दिव्य लब्ध्या तदुपडौकितम् । कृतानुव्रजना^{११} किञ्चित् सिन्धुदेवीं व्यसर्जयत् ॥८३॥
 हिमाचलमनुप्राप्त तत्तटानि जय^{१२} जयम् । बंदिच्छत्रयाणकं प्रापत् हिमवत्कूटसन्निधिम्^{१३} ॥८४॥
 पुरोहितसखस्तत्र कृतोपबसनश्रिय । श्रय्यशेत^{१४} शूचिं शय्या दिव्यास्त्राण्यधिवासयन्^{१५} ॥८५॥
 विधिरपेप नचाशक्तिरिति^{१६} सम्भाबितो नृप । स राज्यमकरोच्छाय^{१७} यज्ञकाण्डमपत्यत ॥८६॥
 तत्रामोघ शर दिव्य^{१८} समपत्तोर्ध्वगामिनम् । वंशास्रस्थानमास्थाय^{१९} स्वनामाक्षरचिह्नितम् ॥८७॥
 मुक्तसिंहप्रणावेन पदा नृक्त शरोऽमुना^{२०} । तदा सुराणैस्तुष्टं भुक्तोजय कुसुमान्जलि ॥८८॥

की ॥७७॥ इस समस्त पृथिवीकी शनुरहित करते हुए प्रथम निधिपति—चक्रवर्तीने फिर अपनी सेनाके साथ साथ हिमवान् पर्वतके किनारे तक गमन किया ॥७८॥ गमन करते समय अपने विजयी हाथियोंके द्वारा सिन्धु नदीके किनारेकी भूमिकी खूदते हुए भरतेश्वर जब सिन्धुप्रपात पर पहुँचे तब सिन्धु देवीने उनका अभिषेक किया ॥७९॥ वह देवी भरतको अपने निवास स्थानके समीप आया हुआ जानकर रत्नोका अर्घ लेकर परिवारके साथ उनसे पास आई थी ॥८०॥ और उसने अपने हाथसे सुवर्णके सैंकड़ो कलशोंमें भरे हुए सिन्धु नदीके पवित्र जलसे भद्रासनपर बैठे हुए महाराज भरतका अभिषेक किया था ॥८१॥ अभिषेक करनेके बाद उस देवीने मगररूप वस्त्राभूषण पहने हुए महाराज भरतको विजयमूचक आशीर्वादोंसे आनन्दित किया तथा यह भी कहा कि हे देव, आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र हुई हूँ ॥८२॥ वहा उस सिन्धु देवीका दिया हुआ दिव्य भद्रासन प्राप्त कर भरतने आगेके लिये प्रस्थान किया और कुछ दूर तक पीछे पीछे आती हुई सिन्धु देवीको प्रिया किया ॥८३॥ हिमवान् पर्वत के समीप पहुंचकर उसके किनारोकी जीतते हुए भरत कितने ही मुवाम चलकर हिमवत् कूट के निकट जा पहुंचे ॥८४॥ वहाँ उन्होंने पुरोहितके साथ साथ उपवास कर और दिव्य अन्नो की पूजा कर डाभकी पवित्र शय्यापर शयन किया ॥८५॥ अस्त्रोकी पूजा करना यह एक प्रकारकी विधि ही है, कुछ चक्रवर्तीका असमर्थपना नहीं है, ऐसा विचार कर राजाओने जिनका सम्मान किया है ऐसे भरतराजने बिना प्रयत्नके ही अपना वज्रकाण्ड नामका धनुष डोरीमें सहित किया ॥८६॥ और वंशास्र नामका आमन लगाकर अपने नामके अक्षरोंमें चिह्नित तथा ऊपरकी ओर जानेवाला अपना अमोघ (अव्यर्थ) दिव्य वाण उस धनुषपर रखया ॥८७॥ जिस समय सिहनाद करते हुए भरतने वह वाण छोडा था उस समय देवीके समूहने सतुष्ट होकर उनपर फूटोकी अञ्जलियाँ छोडी थी, अर्थात् फूटोकी वर्षा की थी ॥८८॥

१ उच्छृष्टनिधिपति । २ बरे त्वर्वागित्यभिधानात् । ३ मञ्जुषणम् । ४ सिन्धुनदीपतननृण्डम् । ५ आगच्छन् । ६ न्यपेचि द० । सक्त स्म । ७ उपाययी । ८ सपत्रिकरा । ९ पयिरे । १० विल्लानुगमनाम् । ११ जयन जयन् त०, अ०, द०, । जय जयन् प०, ग० । १२ रिम यन्नामरूट । १३ अधिशेते स्म । १४ मन्त्रैरभिपूजयन् । १५ पावयभावो न । १६ मोर्षीमहितम् । १७ मन्थानमवरोत् । १८ वंशास्रस्थाने स्थित्वा वितस्वन्तरण म्यिन पादद्वये विनागर, तथा चात्र धनुर्वेदे । यामपादप्रसार दक्षिणमकोषे प्रत्यनीड दक्षिणजपाप्रगारे वाममकोषे चान्नीडम् । तु यपादयुगम् गमपदम् । वितस्वन्तरण स्थित पादद्वये विनागर, मण्टनाद्यनि पादद्वये मण्टनम् । १९ चरित्रा ।

स शरो दूरमुत्पत्य क्वचिद्व्यस्तलद्गति । संप्राप्यद्विमवत्कूट तद्वेदमाकम्पयन् पतन् ॥६६॥
 स मागधवदाध्याय' शतचक्रधरागम । उच्चचाल चलनमौलि तन्निवासी सुरोत्तम ॥६७॥
 सम्प्राप्तश्च तमुद्देश धमध्यास्ते स्म चक्रभृत् । दरोपरुद्ध'सरम्भो धनुर्ज्यासकृत्स्पृशन् ॥६८॥
 तुङ्गगोम्य हिमवानद्रि श्रलङ्घयश्च पुयर्जन' । लङ्घितोऽद्य त्वया देव त्वद्वृत्तमतिमानुयम्' ॥६९॥
 चि'प्रकृष्टातरा क्वास्मदावासा क्व भवच्छर' । तथाप्याकम्पितास्तेन' पततैकपदे' वयम् ॥६९॥
 त्वत्प्रताप शरध्याजात उत्पतन् गगनाद्गणम् । गणबद्धपदे कर्तुम श्रस्मान् नाहूतवान् ध्रुवम् ॥६९॥
 विजिताग्धि समाक्रान्तविजयाद्गुहोदर । हिमाद्रिशिखरेष्वद्य जूम्भते ते जयोद्यम् ॥६९॥
 जयवादोऽनुवादोऽयम्' सिद्धदिग्बिजयस्य ते । जयतात् नन्दताञ्जिणो वृद्धिपोष्ट भवानिति ॥६९॥
 समुच्चरन् जयध्वानमुखर स सुरं समम् । प्रभु सभाजयामास' सोपचार सुरोत्तम ॥६७॥
 श्रभिषिच्य च राजेन्द्र राजवद्विधिना' वदो । गोशोषचन्दन' सोऽस्मै समभोषधिमालया' ॥६८॥
 त्वदभुक्तिवासिनो' देव दूरानमितमौलय । देवास्तवामानमन्त्येते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिण ॥६९॥

जिमयी गति वही भी स्थलित नहीं होती ऐसा वह वाण ऊपरकी ओर दूरतक जाकर वहाँपर रहनेवाले देवके भवनमें पडकर उस भवनकी हिलाता हुआ हिमवत्कूटपर जा पहुँचा ॥८९॥ मागध देवके समान कुछ विचार कर जिसने चक्रवर्तीका आगमन समझ लिया है ऐसा वहाँका रहनेवाला देव अपना मस्तक झुकाता हुआ चला ॥९०॥ और जिसने अपना कुछ क्रोध रोक लिया है ऐसा वह देव धनुषकी चापका स्पर्श करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँपर कि चक्रवर्ती विराजमान थे ॥९१॥ वह देव भरतसे कहने लगा कि हे देव, यह हिमवान् पर्वत अत्यन्त ऊँचा है और साधारण पुरपोकै द्वारा उल्लघन करने योग्य नहीं है फिर भी आज आपने उगना उल्लघन कर दिया है इसलिये आपका चरित्र मनुष्योंको उल्लघन करनेवाला अर्थात् लोकोत्तर है ॥९२॥ हे देव, बहुत दूर वने हुए हम लोगोंके आवास कहाँ ? और आपका वाण कहाँ ? तथापि पडते हुए हम वाणने हम सबको एक ही साथ कम्पित कर दिया ॥९३॥ हे देव, यह आपका प्रताप वाणके व्याजसे आकाशमें उछलता हुआ ऐसा जान पडता था मानो हम लोगोंको गणबद्ध (चक्रवर्तीके आधीन रहनेवाली एव प्रकारकी देवकी सेना) देवोंके ग्यापण नियुक्त होनेके लिये बुला ही रहा था ॥९४॥ जिसने समुद्रको भी जीत लिया है और विजयाधि पर्वतकी गुफाओंके भीतर भी आक्रमण कर लिया है ऐसा यह आपका विजय करने का उद्यम आज हिमवान् पर्वतके निम्नरोपर भी फँड रहा है ॥९५॥ हे प्रभो, आपका समस्त दिग्बिजय सिद्ध हो चुका है इसलिये हे जयशील आपकी जय हो, आप समृद्धिमान् हो और गदा दङ्गने रहें इस प्रकार आपका जयजयकार बोलना पुनरुक्त है ॥९६॥ इस प्रकार उच्चारण करता हुआ जा जय जय शब्दोंके वातावरण हो रहा है ऐसा वह उत्तम देव अन्य अनेक उत्तम देवोंके साथ साथ मय नरहो उपचारोंके भगवती सेवा करने लगा ॥९७॥ तथा राजाओंके साथ विधियों राजाधिगज भग्नवा अभिषेक कर उगने उनसे लिये औपधियोंके समूहके साथ गानों नामना पदना गर्भापि लिया ॥९८॥ और कहा कि हे देव, आपके क्षेत्रमें रहनेवाले ये देव आन्वी प्रमप्रगावी इच्छा करने हुए दूरसे ही भरतक भुवावर आपने लिये नमस्कार

पेहि' देव ततोऽन्मत्पु प्रत्यावतरता इदम् । स्वामित्रहादनाभो हि वृत्तितानोऽनुचीन्निनान् ॥१००॥
 निदेशी'रचिरेद्वाम्नाम् सन्मवयितुमर्हति । वृत्तितानाभारपि प्राय तन्मन किटकरंमेत ॥१०१॥
 गान्यप्रति' तदाव्य' स तानभरततमान् । व्यस्रंयत्प्रमनाभृत्प ययास्व हृत्नमानान ॥१०२॥
 हिमजग्ज्यसनीनि मङ्गलायत्व किन्तरा । जगुस्तत्तुज्जवेनेपु' स्वैरनारभ्यमूच्छंता ॥१०३॥
 श्रमटन् किन्तरस्योमान श्रायुवादा' स्तनावृत्तो' । सरोदीचिनिदो नन्दम् श्राववृत्तनावितता ॥१०४॥
 स्वनागिनोवनाद्विस्व किरन् किञ्जन्वज रज । हिमो हिमदिक्कुञ्जेभ्य त मियेवे समारण ॥१०५॥
 स्वताम्नोवहिणीवाभ्य कीनि साक' जयश्रिया । हिमाचलनिदुज्जेपु पप्रय' दिग्जगानता ॥१०६॥
 हिमाचलम्यलेष्वस्य धनिरासीन् प्रपदपन । हृनोपहारहृत्वेपु' स्वताम्नोर्नैविवस्वरं ॥१०७॥
 एतुच्छ्व'त्तिमान्नाभिवि'वक विपुलायतिम्' । स्वमिन्नानरत्नादि हिमादि बह्यमस्त' स ॥१०८॥

एर रहे है ॥१९॥ इनलिये हे देव, हम लोगोपर प्रमत्तनामे चञ्चल हुई दृष्टि डालिये क्योंकि स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होना ही सेवक लोगोकी आजीविता प्राप्त होना है । भावार्थ—स्वामी लोग सेवकोपर प्रमत्त रहें यही उनकी उचित आजीविता है ॥१००॥ हे स्वामिन्, आप उचित आज्ञाश्रेणी द्वारा हम लोगोको मन्मानित करनेके योग्य है अर्थात् आप हम लोगोको उचित आज्ञाएँ दीजिये क्योंकि सेवक लोग स्वामीकी आज्ञा मिलनेको आजीविका (तनखाह)की प्राप्तिमें भी कहीं बटकर मानते हैं ॥१०१॥ इन प्रकारके उन देवके वचनोकी प्रशंसा करते हुए भरतने उन सत्र उत्तम देवोका सत्कार किया और मवको अपने आधीन कर विदा कर दिया ॥१०२॥ उस समय अपने इच्छानुसार स्वरोका चटाव-उतार करनेवाले किन्नर देव उन पर्वतके श्रागृहोके प्रदेशोमें 'भरतने हिमवान् देवको जीत लिया है' इस बातको सूचित करनेवाले मगलगीत गा रहे थे ॥१०३॥ उस समय वहा किन्नर देवोकी स्त्रियोके स्तन टकनेवाले वस्त्रोको बाग-द्वार हिलाता हुआ तथा तालावकी तरफोको छिन्न भिन्न करता हुआ उस हिमवान् पर्वतके वनोका वायु धीरे धीरे बह रहा था ॥१०४॥ स्थल कमलिनियोके वनके चारो ओर केशरमे उत्पन्न हुआ रज फैलता हुआ तथा हिमवान् पर्वतके श्रागृहोमें आया हुआ शीतल वायु महाराज भग्नकी सेवा कर रहा था ॥१०५॥ दिग्विजय करनेमें प्राप्त हुई भरतकी कीर्ति जयश्रमिने साथ साथ स्थलकमलिनियोके समान हिमवान् पर्वतके श्रागृहोमें फैल रही थी ॥१०६॥ जिन्होंने फूले हुए स्थलकमलोमें उपहारका काम किया है ऐसे हिमवान् पर्वतके म्यलोमें चांगे और देगने हुए भरतको बहुत ही सनोप होना था ॥१०७॥ वह हिमवान् पर्वत ठीक भरतके समान था क्योंकि जिन प्रकार भरत उच्छ्व'स्ति अर्थात् उत्कृष्ट व्यवहार धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह पर्वत भी उच्छ्व'स्ति अर्थात् बहुत ऊँचा था, जिस प्रकार भग्नने अपने ते गे समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थी उसी प्रकार उस पर्वतने भी अपने विस्तार में समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थी, जिस प्रकार भरत आवृत्ति अर्थात् उत्तम भवितव्यता (भविव्यजा) धारण करते थे उसी प्रकार वह पर्वत भी जायति अर्थात् लम्बाई धारण कर रहा था और जिस प्रकार भरतके पास अनेक रत्नरुपी सम्पदाएँ थी उसी प्रकार उस पर्वत के पास भी अनेक रत्नरुपी सम्पदाएँ थी । इस प्रकार अपनी ममानता करनेवाले उन हिमवान्

१ इ' । २ जीविताश्रम । 'आजीवा जाविता वाना वृत्तितननावन' इत्यभिधानान् ।
 ३ मरुताश्रम । ४ श्रमने । 'अपवादस्यु निर्देशा निर्देशा श्रमनं चम । शिल्पिस्त्वाना च इत्यभिधानान् ।
 ५ आजीवाश्रम । ६ पूजयन् । ७ तदेवस्य वचनम् । ८ हिमवद्विक्कुञ्जप्रदायु । 'निकुञ्ज कुञ्जो वा
 कवीरे तानादिपिहितान्तर शयनिधानान् । ९ उराजाच्छादनवस्त्राणि । १० मह । नाक मना गम
 ग' शयनिधानान् । ११ प्रहृ' शोकान् । १२ विनिशुभापहादाश्रागृहम् । १३ श्रमनाश्रमम् ।
 १४ वृत्तानामरणात् ।

अत्रान्तरे^१ गिरोश्रेऽस्मिन् ध्यापारितद्वन्द्व प्रभुम् । विरोद्वितुमित्युर्ध्वं पुरोभा गिरगभ्ययात् ॥१०८॥
 हिमयानयमुत्तुष्टग सद्यत सततं धिया^२ । कुलक्षोणोभृता ध्रुवी^३ धरते मूलदवाभ्याम् ॥११०॥
 प्रहो महानय शंसो बुधरोहो दुदत्तर^४ । शरतग्यातमात्रेण सिद्धो^५ युत्तगमहोदयात् ॥१११॥
 विरंरलङ्कृता रत्ने अस्म श्रेणी हिरण्यवी । शतयोगामाश्रोच्चा दृष्टश्चिदाशेव भात्यगौ ॥११२॥
 स्वपूर्वापररक्षोडिभ्यां विगाह्य सयणाण्यम् । स्थितोऽयं गिरिराभाभिर्मादश्यायितो भुव ॥११३॥
 द्विविस्तृतोऽयमद्वीप्रो भरताद् भरतर्षभ^६ । मूले षोडशभागे च तुल्यवितारतमर्ति^७ ॥११४॥
 अस्यानुसान् रम्येय यनराज्ञी विराजते । शश्वदप्युविता सिद्धविद्यापरमहोरगं ॥११५॥
 तटाभोगा^८ विभारत्यस्य ज्यलन्मणिविचित्रिता । चित्रिता इय संवाग्ते स्ववंप्रप्रतिबिम्ब्यर्षं ॥११६॥
 पर्वतन्ति तदेवस्य सप्रेयस्यो^९ नभश्चरा । स्वंसभोगयोषेयु हारिभर्तितिवामूर्हं ॥११७॥
 विविकत^{१०} रमणोषेयु सानुप्यस्य पृथोत्सया । न पृति इपतेऽयत्र गीर्वाणा सापारोगणा ॥११८॥

पर्वतको भरतने बहुत कुछ माना था—आदरकी दृष्टिसे देसा था ॥१०८॥ इसी बीचमें, जब कि महाराज भरत अपनी दृष्टि हिमवान् पर्वतपर डाले हुए थे—उमकी शोभा निहार रहे थे तब पुरोहित उन्हे आनन्दित करनेके लिये नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट वचन कहने लगा ॥१०९॥ हे प्रभो, यह हिमवान् पर्वत बहुत ही उत्तुङ्ग अर्थात् ऊँचा है, सदा श्री अर्थात् शोभा से सहित रहता है और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् कुलचलोमें श्रेष्ठ है इसलिये आपका अनुकरण करता है—आपकी सन्मानता धारण करता है क्योंकि आप भी तो उत्तुङ्ग अर्थात् उदारमना है, सदा श्री अर्थात् राज्यलक्ष्मीसे सहित रहते हैं और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् वशपरम्परासे आये हुए राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११०॥ अहा, कितना आश्चर्य है कि यह बड़ा भारी पर्वत, जो कि कठिनाईसे चढ़ने योग्य है और जिसका पार होना अत्यन्त कठिन है, डोरीपर बाण रखते ही आपके पुण्य प्रतापसे आपके वश हो गया है ॥१११॥ इसकी सुवर्णमयी श्रेणी अनेक प्रकार के रत्नोंसे सुशोभित हो रही है सौ योजन ऊँची है और ऐसी जान पड़ती है मानो टाकीसे गढ़ कर ही बनाई गई हो ॥११२॥ अपने पूर्व और पश्चिमके कोणोसे 'लवण समुद्रमे प्रवेश कर' पडा हुआ यह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो पृथिवीके नापनेका एक दण्ड ही हो ॥११३॥ हे भरतश्रेष्ठ, यह श्रेष्ठ पर्वत भरतक्षेत्रसे दूने विस्तारवाला है और मूल, मध्य तथा ऊपर तीनों भागोमे इसका एक समान विस्तार है ॥११४॥ जिसम सिद्ध, विद्याधर और नागकुमार निरन्तर निवास करते हैं ऐसी यह मनोहर वनकी पवित्र इस पर्वतके प्रत्येक शिखरपर शोभायमान हो रही है ॥११५॥ देवीप्यमान मणियोसे चित्र विचित्र हुए इस पर्वतके किनारेके प्रदेश बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे हैं और भीतर पडते हुए देवागनाओके प्रतिबिम्बोसे ऐसे जान पडते हैं मानो उनमें अनेक चित्र ही खींचे गये हो ॥११६॥ सुन्दर लतागूहोसे अपनी इच्छानुसार उपभोग करने योग्य इस पर्वतके किनारोपर अपनी अपनी स्त्रियोके साथ विद्याधर लोमं टहल रहे हैं ॥११७॥ जो देव लोग अपनी अप्सराओके साथ इस पर्वतके निर्जन पवित्र और रमणीय किनारोपर त्रीडा वर लेते हैं फिर उन्हे किसी दूसरी जगह सतोप नहीं होता

१ अस्मिन्नवसरे । २ श्रीदेव्या लक्ष्म्या च । ३ मूष्य । ४ तवानुकरणम् । ५ अवतरितुम्
 तस्य । ६ राडा ल० । ७ द्विगुणविस्तार । ८ भरतश्रेष्ठ । ९ तुल्या विस्तार—ल०, द० ।
 १० गावित्नाग । ११ प्रियनगागहिता । १२ गवित्र । विचित्रो पृथिविजनी इत्यभिधानात् ।

पर्यन्तेऽप्य^१ वनोद्देशा विद्यामि वसुमम्मिना । ह्यन्तीवामरोद्यानप्रियमात्मीयया श्रिया ॥११६॥
 स्वेन मूर्ध्ना बिनत्येप श्रिय निया नपायिनीम् ।
 स्मात्ता स्मरति या शच्या^२ सौभाग्यमदकदिनीम् ॥१२०॥
 मूर्ध्नि पद्महृदोऽप्यास्ति घनधो^३ बंधुवर्णं । प्रसन्नवारोऽस्तुल्यहंसपद्मकमण्डन ॥१२१॥
 हृदस्यास्य पुरप्रयत्नोरण^४ द्वारनिर्गमं । गङ्गासिन्धु महानद्यो घतेऽप्य धरणीवर ॥१२२॥
 सरित रोहितास्या च दयायेय शिलोच्चय^५ । तदुदकनोरण^६ द्वाराम्निभूयोदकमुक्तो गनाम् ॥१२३॥
 महापगानिरित्यानि श्रलदप्रयानिविनाययम् । निसुनि शक्तिनि स्व वा नूनद्भाव विनावयन् ॥१२४॥
 शिखरंरेय कुत्साल शीलयशिव साङ्गणम् । मिद्धाध्वान^७ दणद्धोढं परार्थ्यं दृढद्विह्मलं ॥१२५॥
 परदशातमिहादीनेत्रे सत्यावामा स्याद्विनाम् । येऽप्यवाक्यपत्ना^८ सत्सो ह्यन्तीव स्वमपवा ॥१२६॥
 इत्यनेकगुणोऽप्यस्मिन् दोषोऽप्येको महानिरी । यन् पर्यन्तानाग्वत्ते गुरुरप्यगुष्टुमान्^९ ॥१२७॥
 श्रलध्वमहिमोदशो गरिमाकालविष्टय^{१०} । जगद्गुरो पुरोरा^{११} नाम् द्वय घते धरानर ॥१२८॥

है ॥११८॥ जो फूरे हुए पृथ्वी हाथ्यने सहित है ऐसे इसके किनारेके दनके प्रदेश ऐसे जान पडते है मानो अपनी शोभासे देवोके प्रगोचेकी शोभाकी हौनी ही कर रहे हौ ॥११९॥ यह पर्वत अपने मन्त्रक (शिखर) ने उन शोभाको धारण करता है, जो कि, मदा नागरहित है और स्मृतिके जानकार पण्डित लोग जिनने इन्द्राणीके सौभाग्यका बहकार दूग् करनेवाली कहते है ॥१२०॥ इसके मन्त्रकपर पद्म नामका वह मरोवर है जिनमें कि श्री देवोका निवान है, शान्त्रकागोने जिनका बहुत कुष्ठ वर्णन किया है, जिनमें स्वच्छ जल मरा हुआ है, और जो फूरे हुए मुवर्ण कमरगेने मुजोमित है ॥१२१॥ यह पर्वत जमने इन पद्ममरोवरके पूर्व तथा पश्चिम तोरणने निकरी हुई गङ्गा और सिन्धुनामकी महानदियोको धारण करता है ॥१२२॥ तथा पद्म मरोवरके उत्तर तोरणद्वारसे निकरकर उत्तरकी ओर गई हुई रोहितास्या नदीको भी यह पर्वत धारण करता है ॥१२३॥ यह पर्वत इन अलक्ष्य तीन महानदियोसे ऐसा सुशो-
 भित होना है मानो उल्हाह, मन्त्र और प्रभुत्व इन तीन शक्तियोसे अपना भूमद्भाव अर्थात् राजा पना (पक्षमें पर्वतपना) ही प्रकट कर रहा हो ॥१२४॥ देवोप्यमान तथा दिनाशोको व्याप्त करनेवाले अपने अनेक शिखरोसे यह पर्वत ऐसा जान पटना है मानो आवागम्पी बांगनको कीर्तने युक्त कर देवोका मार्ग ही रोक रहा हो ॥१२५॥ इन पर्वतराजपर देवोके अनेक आवाग है जो कि अपनी शोभासे स्वर्गकी बहुत भारी शोभा की भी हसी करते है ॥१२६॥ इस प्रकार इन पर्वतमें अनेक गुण होनेपर भी एक बड़ा नागी दोष है और वह यह कि यह स्वयं गुग् अर्थात् बड़ा होकर भी अपने चागे ओर लगे हुए अगुग् द्रुम अर्थात् छोटे छोटे वृक्षोको धारण करना है (परिहार पत्रमें अगुग् द्रुमका अर्थ अगुग् चन्दनके वृक्ष लेना चाहिये) ॥१२७॥ यह पर्वत जगद्गुग् भगवान् वृषभदेवकी मद्गता धारण करता है क्योंकि जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव अपनी अशुध्य महिमासे उदग्र अर्थात् उत्कृष्ट है उसी प्रकार यह पर्वत भी अपनी अलक्ष्य महिमासे उदग्र अर्थात् ऊँचा है और जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवने अपनी गरिमा अर्थात् गुग्पने ने समस्त विश्वको व्याप्त कर लिया था उसी प्रकार इन पर्वतने भी अपनी गरिमा अर्थात् भारीपनसे समस्त विश्वको व्याप्त कर लिया है । नावार्य-जिस प्रकार भावान् वृषभ देवका गुग्पना समस्त शोकमें प्रसिद्ध है उसी प्रकार इन पर्वतका भारीपना भी लोकमें प्रसिद्ध

१ पर्यन्त्य स० । २ स्मृतिवेदि । ३ घृता श्री (दवी) येन स । ४ पूर्वपश्चिम-
 दिक्प्रदेश । ५ तत्पद्ममरोवरस्योत्तरदिक्प्रदेश । ६ उत्तरदिक्प्रदेशम् । ७ दनवेदनागम् ।
 ८ अपरिमिता । ९ परा श्रिया शत्राधिकारम् । १० स्वर्गगम् । ११ कानागुग्मन् सपुत्रमिति ध्वनि ।
 ११ उपनाम् ।

इत्यस्याद्रे परा शोभां शसत्युच्चं^१ पुरोप्रति । प्रदाता तगद्रीन्द्र तप्रोतो भरताधिप ॥१२६॥
 स्वभुक्तिक्षेत्रसोमान सोऽभिनय^२ हिमाचलम् । प्रत्यावृत्तत् प्रभुदंष्ट्रु^३ वृषभाद्रि वृत्तुल्लात् ॥१२७॥
 यो योजनशतोच्छ्रायो मूलं तावच्च विस्तृत । तवर्द्धविस्तृतिर्मुधिं भूयो मौतिरियोद्गत ॥१२८॥
 यत्पोतसगभुवो रम्या बदली^४पण्डमण्डितं । सम्भोगाय नभोगानां कल्पन्ते रम^५ ततानयं ॥१२९॥
 तनागम^६सतापंश्च^७ तपुभानं परिप्लवत् । पत्रुपानो वन सेव्यं मृच्यते जातु नामरं ॥१३०॥
 स्वतटस्फटिकोत्सर्पत्प्रभादिश्वहरिम्पुत्रम्^८ । दारदर्भुंश्चिखाररधनुष^९ सनभोगुणम्^{१०} ॥१३१॥
 त शैलं भुवनस्यैकं ललाभैव^{११} निरुपयन्^{१२} । कत्यामास लक्ष्मीयां स्वयशा प्रतिशाननम्^{१३} ॥१३२॥
 तमेकवाधुर^{१४} शैलम् शान्तपान्तमनश्चरम् । स्वयशोराशिरीवादा^{१५} पश्यन्ननिन द त ॥१३३॥
 सोऽवल प्रभुमाद्यान्तं^{१६} मायान्तमखिलहिमाम् । प्रत्यग्रहोविद्याभ्येत्य^{१७} विट्पद्रयभिर्वेनानिने ॥१३४॥
 तसटोयान्तविश्रान्तलक्षचरोरगधिन्नरं । प्रोद्गोवमानममल शुभ्रुवे^{१८} स्वयशोऽमुना ॥१३५॥
 जव नभोनुल्लाजोव भगवादर्शविभूषा । तत्तटीभित्तयो जह्नु, मशोऽस्य स्फटिकामला ॥१३६॥

है, अथवा इस पर्वतने अपने विस्तारसे लोचका बहुत कुछ अंश व्याप्त कर लिया है ॥१२८॥
 इस प्रकार जब पुरोहित उस पर्वतकी उत्कृष्ट शोभावा वर्णन कर चुका तब भरतेश्वरने भी प्रसन्न होकर उस पर्वतकी प्रशंसा की ॥१२९॥ अपने उपभोग करने योग्य क्षेत्रकी सीमा स्वरूप हिमवान् पर्वतकी प्रशंसा कर महाराज भरत वृत्तुल्लयवा वृषभाचलकी देखनेके लिये लौटे ॥१३०॥

जो सी योजन ऊँचा है, मूल तथा ऊपर क्रमसे सी और पचास योजन चौड़ा है एव ऊपर की ओर उठा हुआ होनेसे पृथिवीके मस्तकके समान जान पड़ता है । जिसके ऊपरके मनोहर प्रदेश केलोके समूहसे सुशोभित लतागृहोमें आकाशगामी देव तथा विद्याधरोके उपभोग करने योग्य हैं, नाग सहजना और नागकेशरके वृक्षोंसे घिरे हुए तथा सेवन करने योग्य जिस पर्वत के ममीपके वनोको देव लींग कभी नहीं छोड़ते हैं । अपने तटपर लगे हुए स्फटिक मणियोंकी फैली हुई प्रभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली हैं, जिसका शरीर शरद्गन्धुके बादलों से बना हुआ-सा जान पड़ता है और जो सदा देव तथा विद्याधरोसे सहित रहता है, ऐसे उन पर्वतको लोचके एक आभूषणके समान देखते हुए श्रीमान् भरतने अपने यशका प्रतिविम्ब माना था ॥१३१-१३५॥ जो एक सफेद रगवा है और जो कल्पान्त काल तक कभी नष्ट नहीं होना ऐंसे उन वृषभाचलको अपने यशकी राशिके समान देखते हुए महाराज भरत बहुत ही आनन्दित हुए थे ॥१३६॥ उस समय वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त वानुओं की मायाको नष्ट करनेवाले चक्रवर्ती भरतको अपने समीप आता हुआ जानकर चारों ओर घबरेवाले वनसे वायुसे द्वारा सामने जाकर उनका स्वागत-सत्कार ही कर रहा हो ॥१३७॥ यहापर भरतने उन पर्वतके विनारेके गर्भीप विश्राम करते हुए विद्याधर नागकुमार और विन्नर देवोंके द्वारा गाया हुआ अपना निर्मल यश भी सुना था ॥१३८॥ स्फटिकके समान

मृषिमेक्षतमस्यामोच्छिन्नमभित्ति चरिणः । इन्द्रतमाक्षरविज्याने घृनिंश्चिद्वक्षन्नाजिनः ॥१४०॥
 वाकिणीरत्ननादाय यदा तिलिनिपत्ययम्^१ । तदा राजमह्लापां^२ नामाग्यत्रैक्षणादिशत् ॥१४१॥
 अतंल्यवत्पकोटीयु घेरतिद्वान्ता घराभुजः । तेषां नामभिराकीर्णं तं पश्यन् स तितिमये ॥१४२॥
 तनः किञ्चित् स्खलद्गर्वो विनक्षीभूय^३ चरिणः । अनन्यशासनमेतां न मेने भरतावतीम् ॥१४३॥
 स्वयं इत्यचिदेकस्य निरस्यतामशासनम् । स मेने निगिलं लोकं प्रायः स्वार्थपरायणम् ॥१४४॥
 अथ तत्र शिलापट्टे स्वहस्ततलनिरतले^४ । प्रतास्तिमित्युदात्तार्थं ध्यतितत् स पशोघनः ॥१४५॥
 स्वस्तीश्यामुकुलम्नोमनतप्रालेयदौर्धिनः । चातुरन्तं महर्भर्ता^५ भरतः शातमानुरः ॥१४६॥
 श्रोमानाननूनिःशोयस्रचरामरभूचरः । प्राजापत्यो^६ मनुनाथः शूरः शुचिरशारपीः ॥१४७॥
 चरमांगरौ धीरो धीरेयश्चक्र^७धारिणाम् । परिनान्तं घराचक्रं जित्पुना देन दिवजे ॥१४८॥
 मन्वाब्दाद्दशकोट्योऽथवा जलस्पतविलडधिनः । तस्माद्घनुरशोन्निश्च मदेना जयतामने ॥१४९॥
 यत्न दिग्बिजये बिल्ववन्दरेणुभिदहितैः । तदिदंभुषं समारद्धं वपोनगलपुबंरैः ॥१५०॥

निर्मल और विजयलक्ष्मीके मुग्य देवनेके लिये मंगलमय दर्पणके समान उस वृषभाचलके किनारे की दीवालों भरतका मन हरण कर रही थी ॥१३९॥ नमस्त पृथिवीको जीतनेवाले चक्रवर्ती भरतको उस पर्वतके किनारेकी-धिल्लाकी दीवालोंपर अपने नामके अक्षर लिखनेमें बहुत कुछ संतोष हुआ था ॥१४०॥ चक्रवर्ती भरतने काकिणी रत्न लेकर ज्योंही वहाँ कुछ लिखनेकी इच्छा की त्योंही उन्होंने वहाँ लिये हुए हजारों चक्रवर्ती राजाओंके नाम दिये ॥१४१॥ अनन्यमान करोड़ कल्पोंमें जो चक्रवर्ती हुए थे उन सबके नामोंमें भरे हुए उस वृषभाचलको देखकर भरत को बहुत ही विस्मय हुआ ॥१४२॥ तदनन्तर जिनका कुछ अभिमान दूर हुआ है ऐसे चक्रवर्ती ने आश्चर्यचकित होकर इन भरतक्षेत्रकी पृथिवीको अनन्यनाशन अर्थात् जिनपर दूमरेका शासन न चलता हो ऐसा नहीं माना था । भावार्थ—वृषभाचलकी दीवालोंपर अनन्यनाशन चक्रवर्तियोंके नाम लिखे हुए देखकर भरतका मन अभिमान नष्ट हो गया और उन्होंने स्वीकार किया कि इन भरतक्षेत्रकी पृथिवीपर भरे समान अनेक मन्त्रियाली राजा हो गये हैं ॥१४३॥ चक्रवर्ती भरतने किमी एक चक्रवर्तीके नामकी प्रशस्तिको स्वयं-अपने हाथमें मिटाया और वैसा करते हुए उन्होंने प्रायः नमस्त संसारको स्वार्थपरायण समझा ॥१४४॥

अथानन्तर—यद्य ही जिनका धन है ऐसे चक्रवर्तीने अपने हाथके तलभागके समान चिकने उस शिलापट्टपर नीचे लिखे अनुवार उत्कृष्ट अर्थमें भरी हुई प्रशस्ति लिखी ॥१४५॥ स्वस्ति थी इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशका चन्द्रमा और चारों दिशाओंकी पृथिवीका स्वामी मैं भरत हूँ, मैं अपनी माताके सौ पुत्रोंमें से एक बड़ा पुत्र हूँ, श्रीमान् हूँ, मैंने नमस्त विद्याधर देव और भूमिगोचरी राजाओंको नम्रोभूत किया है, प्रजापति भगवान् वृषभदेवका पुत्र हूँ, मनु हूँ, मान्य हूँ, शूरवीर हूँ, पवित्र हूँ, उत्कृष्ट बुद्धिका धारक हूँ, चरमजरीरी हूँ, धीर वीर हूँ, चक्रवर्तियोंमें प्रथम हूँ और इनके सिवाय जिन विजयीने दिग्बिजयके समय नमस्त पृथिवीमण्डल की परिजमा दी है अर्थात् समस्त पृथिवीमण्डलपर आक्रमण किया है, जिनके जल और स्वयं मैं बलनेवाले अशरह करोड़ घोड़े हैं, जिनकी विजयी नेनामें सींगमी लाग मदीन्यत हाथी

१ मन्त्रोपः । २ मन्त्रमहोन्निक्रमि । ३ विरिगुमिच्छति । ४ अतिनिगानां रत्नाभिचयं ।
 ५ लिम्बवाग्निरो मृष्या । विरयो विम्बवाग्निरो इत्यभिधानम् । ६ वर्णने मन्त्राने इत्यर्थः ।
 ७ पशुमनो ६०, १०, ६०, ३०, २० । ८ दिग्मूढ-शिमसुदिग्गिर्दलमहीताय । ९ मन्त्रय माता माताय
 मन्त्रा अथ शासमानुरः । १० प्रशस्तैः पुरोगमन पुमान् । ११ मृष्यः ।

प्रसाधितदिशो यस्य यदा दशिष्वलामलम् । सुरंरसहृदुर्मोत पुलशोणोपबुधियु ॥१५१॥
 दिग्जयं यस्य संन्यानि विश्वा तान्यपिदिवतटम् । चप्रानुभ्रान्तितान्तानि^१ चानवा हंमयतीरयती ॥१५२॥
 नप्ता धीनाभिराजस्य पुत्र श्रौवृषभेदिन । पट्यण्डमण्डितामेतां य स्म दास्ययतितं महोम् ॥१५३॥
 मत्वाऽतो गत्वरो^२ सधर्मो जित्वर^३ सर्वभूभताम् । जगद्विसृत्वरो^४ कीर्त्तित्म प्रतियुपदिहृगचले ॥१५४॥
 इति प्रदास्तिमालीया विलिखन्^५ स्वयमक्षरं । प्रसूनप्रवर^६मुवर्त नृपोऽयश्चविदे^७भरं ॥१५५॥
 तत्रोच्चैश्चरद्धानामद्रुन्दुभयोऽभ्यनन् । विवि देवा जयेत्याशी दशताप्युच्चैरघोषयन् ॥१५६॥
 स्वर्बुनीतीकरासारवाहिनो गन्धवाहित । मय विचेरराभूत्साद्रम दारनन्दना ॥१५७॥
 न केवल शिलाभिन्तो प्रस्य नामाक्षरायती । लिखितानेन चाद्रेऽपि बिम्बे तल्लाच्छनच्छलात् ॥१५८॥
 लिखितं साक्षिणे भुक्तिरत्यस्तीहापि शासने । लिखित सोऽचलो भुक्ति दिग्जये साक्षिणोऽमरा ॥१५९॥
 श्रहो महानुभावोऽय चक्रो दिशचक्रनिजंये । येनाफान्त महोचयम् प्रानप्रवसतिप्रकात्^८ ॥१६०॥
 खचराद्वित्तघ्योऽपि हेतयालपितोऽमुना । कीर्त्ति स्यताञ्जिनीवास्य हटा हंमाचलस्थले ॥१६१॥

है, जिसकी दिग्विजयके समय चारो ओर उठी हुई कबूतरके गलेके समान कुछ कुछ मलिन सेनाकी धूलसे समस्त दिशाओंके साथ साथ आकाश भर जाता है, समस्त दिशाओंको दश करनेवाले जिसका चन्द्रमाकी कलाओंके समान निर्मल यश कुलपर्वतोंके मध्यभागमें देव लोग वार-वार गाते हैं, दिग्विजयके समय चक्रके पीछे पीछे चलनेसे थकी हुई जिसकी सेनाओंने हिमवान् पर्वतकी तराईको उल्लघन कर दिशाओंके अन्तभागमें विश्राम लिया है, जो श्री नाभिराजका पौत्र है, श्री वृषभदेवका पुत्र है, जिसने छह खण्डोंसे सुसोभित इस समस्त पृथिवीका पालन किया है और जो समस्त राजाओंको जीतनेवाला है ऐसे मुझ भरतने लक्ष्मीको नश्वर समभ्रकर जगत्में फैलनेवाली अपनी कीर्तिको इस पर्वतपर स्थापित किया है ॥१४६-१५४॥ इस प्रकार चन्द्रवर्तीने अपनी प्रशस्ति स्वयं अक्षरोंके द्वारा लिखी, जिस समय चन्द्रवर्ती उक्त प्रशस्ति लिख रहे थे उस समय देव लोग उनपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१५५॥ वहाँ जोर जोरसे शब्द करते हुए गम्भीर नगाड़े बज रहे थे, आकाशमें देव लोग जय जय इस प्रकार सैकड़ों आशीर्वादि रूप शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे ॥१५६॥ और गङ्गा नदीके जलकी बूदोंके समह को धारण करता हुआ तथा कल्पवृक्षोंके सघन वनको हिलाता हुआ वायु धीरे धीरे बह रहा था ॥१५७॥ भरतके नामके अक्षरोंकी पक्ति केवल शिलाकी दीवालपर ही नहीं लिखी गई थी किन्तु उन्होंने काले चिन्हके वहानेसे चन्द्रमाके मण्डलमें भी लिख दी थी । भावार्थ—चन्द्रमा के मण्डलमें जो काला काला चिह्न दिखाई देता है वह उसका चिह्न नहीं है, किन्तु भरतके नामके अक्षरोंकी पक्ति ही है, यहा कविने अपह्नुति अलंकारका आश्रय लेकर वर्णन किया है ॥१५८॥ अन्य प्रशस्तियोंके समान भरतकी इस प्रशस्तिमें भी लेख, साक्षी और उपभोग करने योग्य क्षेत्र ये तीनों ही बातें थी क्योंकि लेख तो वृषभाचलपर लिखा ही गया था, दिग्विजय करनेमें छह खण्ड भरत उपभोग करने योग्य क्षेत्र था और देव लोग साक्षी थे ॥१५९॥ अहा, यह चन्द्रवर्ती बड़ा प्रतापी है क्योंकि इसने समस्त दिशाओंको जीतते समय पूर्व पश्चिम और दक्षिणके तीनों समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलपर आक्रमण किया है—समस्त भरत को अपने वश कर लिया है । यद्यपि विजयापर्वत उल्लघन करने योग्य नहीं है तथापि इसने

१ चप्रानुगमनेन भिन्नानि । २ गमनशीलम् । ३ जयनशील । ४ विसरणशीलम् । ५ व्यतिखत्
 १०, २०, ३०, ४० । ६ आर्षिणम् । ७—राध्यान् १० । ८ पत्रम् । ९ पर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्रपर्यन्तम् ।

इति दृष्टावदानं^१ तं मुट्टवुर्नाकिनायकाः । द्विष्टधा^२ स्म वर्षप्रन्त्येनं साह्यगनाश्च नभश्चरतः ॥१६२॥
 भूयः प्रोत्साहितो देवैः जयोद्योगमनूनयन्^३ । गङ्गापातमभोपाय^४ व्याहृत इव तत्स्वर्नः ॥१६३॥
 गलद्गङ्गाम्बुनिष्ठघृताः शीकरा भवशीकरैः । सम्भू^५ चट्टुं पेशाणां व्यात्यक्षी^६ वा तित्तसवः^७ ॥१६४॥
 पतद्गङ्गाजलावर्तपरिवर्द्धितकौतुकः । प्रत्याघ्राहि स तत्पाते गङ्गादेव्या घृतायया ॥१६५॥
 सिंहासने निवेश्यं प्रादमुलं सुखशीतलं । सोऽग्न्यपिञ्चज्जलैर्गादग्नैः नशात्ककरहासिभिः ॥१६६॥
 कृतमद्गलसङ्गीतनाम्बोतूर्यरवाकृतम् । निवृत्यं मज्जनं जिष्णुः भोजे मण्डनमप्यतः ॥१६७॥
 प्रयाप्तं व्यतरत् प्रांशु^८ रत्नांशुस्यगिताम्बरम् । सेन्द्रचापमिवात्रीन्द्रशिखरं हरिविष्टरम् ॥१६८॥
 चिरं वर्द्धस्व बद्धिष्णो जीवतामन्वताद् भवान् । इत्यनन्तरमाशास्य तिरोगभूत् सा विसजिता ॥१६९॥
 श्रुनु गङ्गातटं संगमैः भ्राजन्निषयापिषैः । सियेवै पवमानंदश्च गङ्गाम्बुकणवाहिभिः ॥१७०॥
 गङ्गातटवनोपान्तनिवेशेषु विशाम्पतिम् । सुखयामासुर्नवीपमया^९ ता वनमारताः^{१०} ॥१७१॥

उसे लीला मात्रमें ही उल्लंघन कर दिया है और इसकी कीर्ति स्वल्प-कमलिनीके समान हिमालय पर्वतकी शिखरपर आरूढ़ हो गई है । इस प्रकार जिनका पराक्रम देख लिया गया है ऐसे उन भरत महाराजकी बड़े बड़े देव भी स्तुति कर रहे थे और अपनी अपनी स्त्रियोंसे सहित विद्या-धर लोग भी भाग्यसे उन्हें बढ़ा रहे थे अर्थात् आशीर्वाद दे रहे थे ॥१६०-१६२॥

तदनन्तर—जिन्हें देवोंने फिर भी उत्साहित किया है ऐसे महाराज भरत अपने विजय के उद्योगको कम न करते हुए गङ्गापात (जहाँ हिमवान् पर्वतसे गङ्गा नदी पड़ती है उसे गङ्गापात कहते हैं) के सम्मुख इस प्रकार गये मानो उसके शब्दोंके द्वारा वुलाये ही गये हों ॥१६३॥ ऊपरसे गिरती हुई गङ्गा नदीके जलके समीपसे उछटे हुए छोटे छोटे जलकण राजाओंके हाथियोंके मदकी बूंदोंके साथ इस प्रकार मिल रहे थे मानो वे दोनों परस्पर फाग ही खेलना चाहते हों अर्थात् एक दूसरेको सींचना ही चाहते हों ॥१६४॥ पड़ते हुए गङ्गाजलकी भंवरोसे जिसका कौतूहल बढ़ रहा है ऐसे भरतका गङ्गापातके स्थानपर अर्घ्य धारण करनेवाली गङ्गा देवीने सामन आकर सत्कार किया ॥१६५॥ गङ्गादेवीने चक्रवर्ती भरतको पूर्व दिशाकी ओर मुख कर सिंहासनपर बैठाया और फिर सुखकारी, शीतल तथा चन्द्रमाकी किरणोंकी हँसी कर्त्नेवाले, गङ्गा नदीके जलसे उत्पन्न अभिषेक किया ॥१६६॥ जिसमें फूल, संपीत, आशीर्वाद वचन और सुरही आदि वाजोंके शब्द मिले हुए हैं ऐसे अभिषेकको समाप्त कर विजयशील भरतने उसी गङ्गादेवीसे सब वस्त्राभूषण भी प्राप्त किये ॥१६७॥ तदनन्तर देदीप्यमान रत्नोंकी किरणोंसे जिसने आकाश भी व्याप्त कर लिया है और जो इन्द्रघनुप सहित सुमेरु पर्वतकी शिखरके समान जान-पड़ता है ऐसा एक महिमान गङ्गादेवीने भरतके लिये समर्पित किया ॥१६८॥ और फिर 'सदा बढ़नेवाले हे महाराज भरत, आप चिर कालतक बढ़ते रहिये, चिरकाल तक जीवित रहिये और चिरकाल तक आनन्दित रहिये अथवा समृद्धिमान् रहिये इस प्रकार आशीर्वाद देकर भरत महाराजके द्वारा विदा की हुई वह गङ्गादेवी तिरोगहित हो गई ॥१६९॥

अपानन्तर—मेनाके साथ साथ गङ्गाके किनारे किनारे जाते हुए भरतकी अनेक देवोंके स्वामी-राजाओंने और गङ्गा नदीके जलकी बूंदोंको धारण करनेवाले यौगुने गंगा भी थी ॥१७०॥ गङ्गा किनारेके वनोंके समीपवर्ती भागोंमें पीछेने आता हुआ यगना मायु भगवर्मा

१ दृष्टामाम्यम् । २ दृष्टावदानं प०, अ० । ३ मुट्टवुर्नाकिनायकाः । ४ गङ्गापातम् । ५ अभूत् भूयन् । ६ व्यात्यक्षी । ७ तित्तसवः । ८ प्रांशुः । ९ यामासुर्नवीपमया । १० वनमारताः । ११ अन्तर्यामी । १२ यगना मायु भगवर्मा । १३ विद्याधरः । १४ अभिषेकः । १५ प्रमदः । १६ नृपगवनिष्ठाः । १७ यगना मायु भगवर्मा । १८ विद्याधरः । १९ देवी । २० उत्तरा । २१ अन्तर्यामी । २२ यगना मायु भगवर्मा ।

यने वनचरस्त्रीणाम् उद्वयप्रललावली । सुहुस्सलतन् वपालेषु नृत्यद्वनशिसृष्टिनाम् ॥१७२॥
 विलोलितानिरामुन्दनूत्कल्ला वनचलरीः । गिरिनिकरसश्लेषशिगिरो मश्वानवी ॥१७३॥
 प्रतिप्रयागमानाम् नृपास्तद्देशदासिनः । प्रभुमाराधयाञ्चक्रुः आक्रान्ता जयसाधनैः ॥१७४॥
 दृरत्नमिनि प्रमाध्वनाम् उत्तरा भरतान्वनिम् । प्रत्यासीद्वधो जिष्णुः विजयाद्वंचलस्थली ॥१७५॥
 तत्रावासितसैन्यं च सेनान्य प्रभुरादिशत् । अपावृतगुहाद्वार प्राच्यतण्ड ॥१७६॥
 यावदभ्येति सेनानोम्लेच्छराजयोद्धमात् । तावत्प्रनोः किलातीषु माता. पद् सुखसगिनः ॥१७७॥
 दशिनोत्तत्ये श्रेष्ठीः निवसन्तोऽम्बरेचरा. । विद्याधराधिपः सार्द्धं प्रभुं द्रष्टुमिहाययुः ॥१७८॥
 विद्याधरधराजीश्वरारादानममोत्तिभिः । नखाशुमातिकाध्याजादाज्ञारथ शिरसा धृता ॥१७९॥
 नमिदव दिननिश्चैव विद्याधरधराधिपौ । स्वसारधनसामग्रया विभुं द्रष्टुमुपेतुः ॥१८०॥
 विद्याधरधराक्षरधनोपायनसपदा । तदुपानीतया^{१०}जन्यत्वभ्ययासीद्विभोवृत्तिः ॥१८१॥
 तदुपाहृतस्त्रीयं कन्यारत्नपुरसरैः । सतिदोषैरिवोदग्यान् आपूर्यंत तदा प्रभुः ॥१८२॥
 स्वसार^{११} च नमेयंन्या सुभद्रा नामकन्यवाम् । उडुवाह^{१२} स दक्षमीदान् कल्पार्णः क्षचरोचितैः ॥१८३॥

को सुग्री कर रहा था ॥१७१॥वहाके वनमे भीलोकी स्त्रियोके केशोके समूहको उडाता हुआ, नृत्य करते हुए वनमयूरोवी पृष्ठपर बार-बार टकराता हुआ, भूमरोको इधर-उधर भगता हुआ, फूरी हुई वनकी लनाओको कुछ कुछ हिलाता हुआ और पहाडी भरनोके स्पर्शसे क्षीतल हुआ वायु चारो ओर वह रहा था ॥१७२-१७३॥ विजय करनेवाली सेनाके द्वारा दवाय हुए उन देशोमे निवास करनेवाले राजा लोग नम्र होकर प्रत्येक पडावपर महाराज भरतकी आराधना करने थे ॥१७४॥ इन प्रकार उत्तर भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवीको वदाकर विजयी महाराज भरत फिरसे विजयार्ध पर्वतकी तराईमे आ पहुँचे ॥१७५॥ वहाँ पर उन्होने सेना ठग्नगर सेनापतिके लिये आज्ञा दी कि 'गुफावा द्वार उघाडकर शीघ्र ही पूर्व खण्डकी विजय प्राप्त करो' ॥१७६॥ जय तक सेनापति म्लेच्छराजाओको जीतकर वापिस आया तब तक गुणपूर्णा रहने हुए महाराज भरतके छह महीने वहीपर व्यतीत हो गये ॥१७७॥ विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीपर निवास करनेवाले विद्याधर लोग अपने अपने स्वामियो से साथ महाराज भरतका दर्शन करनेके लिये वहीपर आये ॥१७८॥ दूरसे ही मस्तक भुवाने-वाले विद्याधर राजाओने नगोंकी किरणोंके समूहके वहानेसे महाराज भरतकी आज्ञा असो दिग्गज धारण की थी । भाषार्थ-नमस्कार करते समय विद्याधरराजाओके मस्तक पर जो भरत महाराजने किरणोंके नगोंकी किरणें पडती थी उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो भरती जाना ही अपने मन्वन्तर धारण कर रहे हो ॥१७९॥ नमि और विगमि दोनो ही दिग्गजोसे राजा जाने मुख्य धनकी मानधारी साथ भक्तके दर्शन करनेके लिये समीप आये ॥१८०॥ नमि और विगमि जो अन्य विगोकी गठी मिलनेवाली विद्याधरोने देसकी मुख्य धनधर शक्ति भटम लाने थे उससे महाराज भरतको भारी सतोष हुआ था ॥१८१॥ जिस प्रकार नदिपौ । प्रवाहमे गमूट पूर्ण हो जाता है उसी प्रकार उन समय नमि और विगमिके द्वारा उद्वयमे लाने हुए कन्याग्न जादि जोन ग्नोंके गमूटमे महाराज भरतकी दृच्छा पूर्ण हो गई थी ॥१८२॥ श्रीमा भरतने राजा नमिकी वरिन सुभद्रा नामकी उत्तम कन्यासे साथ

तां मनोज'रसस्येव द्युतिं संप्राप्य चक्रभूत् । स्वं मेने सफलं जन्म परमानन्दनिभंरः ॥१८४॥
 तावान्निमित्तनिःश्रेयम्लेच्छराजबलो बलः । जयलक्ष्मीं पुरस्कृत्य सेनानीः प्रभुर्मकतं ॥१८५॥
 कृतकार्यं च सत्कृत्य तं तांश्च म्लेच्छनायकान् । विसर्ज्य सम्राट् सज्जोऽभूत् प्रत्यायातुमपादमहीम् ॥१८६॥
 जयप्रयाणशंसित्यः तवामेयं प्रदध्वन्तुः । विष्वग्बलान्ते शोभम् श्रातव्यरयो रुहीभूताम् ॥१८७॥
 तां काण्डकप्रपाताख्यां प्रागेवोद्घाटितां गुहाम् । प्रविशेद बलं जिष्णोः चक्ररत्नपुरोगमाम् ॥१८८॥
 गङ्गापयोभयप्रान्तमहावीर्यीद्वयेन सा । व्यतीयाय गुहां सेना कृतद्वारां चमभूतां ॥१८९॥
 मुच्यमाना गुहा संज्ञं चिरादुच्छ्रवसितेव सा । चमूरयि गुहारोपाद्रिःसृत्योज्जीवितेव सा ॥१९०॥
 नाट्यमालामरस्तत्र रत्नार्थैः प्रभुमघंयन् । प्रत्यगृह्णाद् गुहाद्वारि पूर्णकुम्भादिमंगलैः ॥१९१॥
 कृतोपच्छन्दनं चामुं नाट्यमालं सुरयंभम् । व्यसर्जयच्छथोद्दिशं सत्कर्य भरतपंभः ॥१९२॥
 कृतोदयमिनं ध्वान्तात्परितो भगनंघराः । परिचेहर्नभोनागंम् आरुध्य घृतसायकाः ॥१९३॥

मालिनीवृत्तम्

नमिधिननिपुरो'ंगरग्वितः खेचरेन्द्रः खचरिगरिगुहान्तर्ध्वान्तनुत्सायं दूरम् ।
 रविरिव किरणोर्ध्वोतपिन्द्विभगान् निधिपतिरुदियाय' प्रीणयन् जीवलोकम् ॥१९४॥
 सरससिन्धुयान्तःस्थन्दमन्दे सुरस्त्रीस्तनतटपरिलक्ष्मीमसंक्रान्तवत्से ।
 सरति' मणति मन्वं कन्दरेष्वद्रिभर्तुः निधिपतिरिद्विराणां प्रादुरसत्रिवेदाः ॥१९५॥

विद्याधरोंके योग्य भगलाचारपूर्वकं विवाह किया ॥१८३॥ रसकी धाराके समान मनोहर
 उस सुभद्राको पाकर उत्कृष्ट आनन्दसे भरे हुए चक्रवर्तीने अपना जन्म सफल माना था ॥१८४॥
 इतनेमें ही जिसने अपनी सेनाके द्वारा समस्त म्लेच्छ राजाओंकी सेना जीत ली है ऐसे सेनापति
 ने जयलक्ष्मीको आगे कर महाराज भरतके दर्शन किये ॥१८५॥ जिसने अपना कार्य पूर्ण किया
 है ऐसे सेनापतिका सम्मान कर और आये हुए म्लेच्छ राजाओंको विदाकर सम्राट् भरतेश्वर
 दक्षिणकी पृथिवीकी ओर आनेके लिये तैयार हुए ॥१८६॥ उस समय विजयके लिये प्रस्थान
 करनेकी सूचना देनेवाली भेरियां राजाओंकी सेनारूपी समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न करती हुई चारों
 ओर वज रही थी ॥१८७॥ चक्ररत्न जिसके आगे चल रहा है ऐसी भरतकी सेनाने पहलेसे ही
 उधाड़ी हुई काण्डकप्रपात नामकी प्रसिद्ध गुफामें प्रवेश किया ॥१८८॥ उस सेनाने गङ्गा
 नदीके दोनों किनारोंपर की दो बड़ीबड़ी शलियोंमेंसे, सेनापतिके द्वारा जिसका द्वार पहलेसे ही
 खोल दिया गया है ऐसी उस गुफाको पार किया ॥१८९॥ सेनाके द्वारा छोड़ी हुई वह गुफा
 ऐसी जान पड़ती थी मानो चिरकालसे उच्छ्रवाम ही ले रही हो और वह सेना भी गुफाके रोध
 से निकलकर ऐसी मालूम होती थी मानो फिरसे जीवित हुई हो ॥१९०॥ वहाँ नाट्यमाल
 नामके देवने दक्षिण गुफाके द्वारपर पूर्णकलश आदि मंगलद्रव्य रखकर तथा रत्नोंके अर्घमें
 अर्घ देकर भरत महाराजकी अगवानी की थी-सामने आकर सत्कार किया था ॥१९१॥
 भरत महाराजने अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाले, उस नाट्यमाल नामके श्रेष्ठ देवका मत्कार
 कर उसे अपने स्थानपर जानेके लिये विदा कर दिया ॥१९२॥ धनुष बाण धारण करनेवाले
 विद्याधर चारों ओरसे आकाशमार्गको घेरकर, सूर्यके समान अन्धकारमें परे रहकर उदय
 होनेवाले चक्रवर्तीको परिचर्या करते थे ॥१९३॥ जिनमें नमि और विनिमि मुख्य है ऐसे विद्या-
 धरों सहित तथा विजयाधं पर्वतकी गुफाके भीतरी अन्धकारको दूर हटाकर सूर्यके समान
 किरणोंके समूहमें दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वह निधियोंका अधिपति चक्रवर्ती ममस्त
 जीवलोकको आनन्दित करता हुआ उदित हुआ अर्थात् गुफाके बाहर निकला ॥१९४॥ रम-

१ मनोजां रसस्येव । २ दक्षिणभूमिम् । ३ नेनाय्या । ४ वृत्तनाम्नयम् । ५ गुण्येष्टम् ।
 ६ नित्रदेनमनत्रियम् । ७ पुर मरुः । ८ उदयि रम । ९ गुण्ये । १० वाणि गति ।

किसलयपुत्रभेदो देवदारुमाणाम् असृष्टमरसिन्धो संस्वराग्याधुनान् ।
 श्रमसलिलममृणा^१दुष्णसम्भृणु^२जिष्णो खचरगिरितटाताप्रिपत्^३मातरिदया ॥१६६॥
 सपदिविजयसंवेर्निजितमनेच्छखण्ड समुपहृतजयश्रीदचत्रिणासिष्टमात्रात्^४ ।
 जिनमिव जयलक्ष्मीं सन्निधान निधीनां परि^५बृहमुपत^६स्यो नमःप्रोत्तिदचमभूत् ॥१६७॥

शार्दूलविक्त्रीडितम्

जित्वा भ्लेच्छन्पुंषी विजित्य च^१सुर प्रालेषश्लेशिन देव्यो^२च प्रणमय्य दिव्यमुभय स्वोदृत्य भद्रासनम् ।
 हेतानिजितखेचराद्रिरधिराट् प्रत्यन्तपालान् जयन् सेतान्या विजयी प्यजेष्ट निखिला दृष्टव^३डभूयां भुवम्^४१६८
 पुष्पादित्ययमाहिमाह्वयगिरेरतोवधे प्रायतना^५दाचापा^६च्यपयोनिपेजंलनिधेरा च प्रतीच्यादित ।
 चत्रेक्ष्माभिरचक्र^७भीकरकरदचक्रेण चक्री वशे तस्मात्पुण्यमुपाजंयन्तु सुधियो जैन मते सुस्थिता ॥१६९॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपिटिलक्षणमहापुराणसग्रहे

भरतोत्तरार्द्धविजयवर्णन नाम द्वाविंशत्तम पर्व ॥३२॥

युक्त नवीन कोमल पत्तोंके भीतर प्रवेश करनेसे मन्द हुआ तथा देवागनाओंके स्तनतटपर लगे हुए रेसमी वस्त्रोंम जिसकी सुगन्धि प्रवेश कर गई है ऐसा वायु जिस समय उस विजयार्थ पर्वतकी गुफाओंमें धीरे धीरे वह रहा था उस समय निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीकी सेनाके डेरोंकी रचना शुरू हुई थी ॥१९५॥ देवदारु वृक्षोंके कोमल पत्तोंके सपुटकों भेदन करनेवाला तथा गङ्गा नदीके जलकी बूदोंको चार-चार हिलाता हुआ और विजयार्थ पर्वतके किनारोंके अन्त भागसे आता हुआ वायु गर्मीसे उत्पन्न हुए महाराज भरतके पसीनेको दूर कर रहा था ॥१९६॥ चक्रवर्तीके द्वारा आज्ञा प्राप्त होने मानसे ही जिसने अपनी विजयी सेनाओंके द्वारा बहुत शीघ्र समस्त म्लेच्छ खण्ड जीत लिये हैं और जो जयलक्ष्मीको ले आया है ऐसा सेनापति अपना मस्तक भुकाये हुए, निधियोंके स्वामी भरत महाराजके समीप आ उपस्थित हुआ । उस समय भरत ठीक जिनेन्द्रदेवके समाग मालूम होते थे क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवके समीप सदा जयलक्ष्मी विद्यमान रहती है उसी प्रकार उनके समीप भी जयलक्ष्मी सदा विद्यमान रहती थी ॥१९७॥ विजयी भरतने (चिलात और आनर्त नामके) दोनों म्लेच्छराजाओं को जीतकर हिमवान् पर्वतके स्वामी हिमवान् देवको कुछ ही समय में जीता, तथा (गङ्गा मिन्धु नामकी) दोनों देवियोंसे प्रणाम कराकर (उनके द्वारा दिये हुए) दो दिव्य भद्रासन स्वोदृत किये, और विजयार्थ पर्वतको लीला मानमें जीतकर उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतने हुए उन्होंने सेनापतिके साथ-साथ छह खण्डोंसे सुशोभित भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवी को जीता ॥१९८॥ जिनका हाथ अथवा टैकम शब्दोंके समूहमें भय उत्पन्न करनेवाला है ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके द्वारा पुण्यसे ही हिमवान् पर्वतसे लेकर पूर्वे दिशाके समुद्र तक और दक्षिण समुद्रके लेकर पश्चिम समुद्र तक समस्त पृथिवी अपने वश की थी । इसलिये दृष्टिमान् शोगोरो जैन मतमें स्थिर रहकर सदा पुण्य उपाजंन करना चाहिये ॥१९९॥

एत प्रचार भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिपिटिलक्षण महापुराण सग्रहके हिन्दी

भाषानुवादमें उत्तरार्ध भरतकी विजयका वर्णन करनेवाला

वतीमवा पर्व समाप्त हुआ ।

१ आभासम् । २ उपागच्छानम् । ३ जागच्छन् । ४ आगत । ५ नाभम् । ६ प्राप्तवानित्यर्थ ।
 ७ शक्तिर म०, २० । ८ हिमवद्गिरिराजिम् । ९ गङ्गादवीगि^१पुदव्यो । १० पूषान् । ११ दक्षिणगमुद्रान् ।
 १ अत्रात्तरत् । अत्रर म्निधियमित्यभिप्रायम् ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

श्रीमानानमिताशेषनृपविद्याधरामरः । सिद्धदिग्विजयध्वजो न्यवृत्तस्तथा पुरीं प्रति ॥१॥
 नवास्य निधयः सिद्धा रत्नान्यपि चतुर्दश । सिद्धविद्याधरः साढं पट्टपण्डघरणीभुजः^३ ॥२॥
 जित्वा महीमिमा कृत्स्नां लवणाम्नीधिमेपलाम् । प्रयाणमकरोच्चध्रीं साक्षेत्नगरं प्रति ॥३॥
 प्रकीर्णकचलद्वीचिरुलसत्सद्यश्चन्द्रवुदा । निर्ययी विजयाद्वाद्रितटाद् गह्वरेव सा ध्रुवः ॥४॥
 करिणीनीभिरश्वीपकल्लोलैर्ननतोमिभिः । दिशो रण्यन्बलाम्नीधिः प्रससर्प स्फुरद्ध्यनिः ॥५॥
 चलतां रयचक्राणां चीत्कारैर्हृयहेयितैः । बृहिस्रिंश्च गजेन्द्राणां शब्दाद्रितं तवामवत् ॥६॥
 भेषः प्रस्थानशस्त्रिन्यो नेदुरामग्रनिःस्वयाः । शंकास्तनितादाङ्गानाम् श्रातग्वानाः शिलषिडानाम् ॥७॥
 तदाभूद्भुद्रमदवीर्यं हास्तित्रेण प्रसर्पता । न्यरीधि पत्तिवृन्दं च प्रयाग्या रयकल्पया ॥८॥
 पादातवृत्तसंवापात् पयः^४ पर्यन्तपातिनः^५ । हया गजा यस्याश्च भेजुस्तिर्यक्प्रचोदिताः ॥९॥
 पर्वतोदप्रमारुडो गजं विजयपर्वतम् । प्रतस्ये विचलन्मीलिः ध्रुवीं शप्रमनद्यति ॥१०॥
 श्रुगुडगातटं देशान् बिलद्रपथ ससरिद् गिरीन् । कंताससौलसाद्रिष्यं प्रापतच्चक्रिणो बलम् ॥११॥

अथानन्तर—जिन्होंने समस्त राजा विद्याधर और देवोको नश्रीभूत किया है तथा समस्त दिग्विजयमें सफलता प्राप्त की है ऐसे श्रीमान् चक्रवर्ती भरत अपनी अयोध्यापुरीके प्रति लौटे ॥१॥ इन महाराज भरतको नी निधियां और चौदह रत्न मिद्ध हुए थे तथा विद्याधरोके साथ साथ छह खण्डोके ममस्त राजा भी इनके बस हुए थे ॥२॥ लवण समुद्र ही जिमकी मेखला है ऐसी इस समस्त पृथिवीको जीतकर चक्रवर्तीने अपने अयोध्या नगरकी ओर प्रस्थान किया ॥३॥ दुलते हुए चमर ही जिमकी लहरें हैं और ऊपर चमरते हुए छत्र ही जिमके बबूले हैं ऐसी वह सेना गगाके समान विजयार्थ पर्वतके तटमें निकली ॥४॥ हृदिनीरुपी नावोमें, घोडोके समूहरूपी लहरोंमें और मनुष्योंके समूहरूपी छोटी छोटी तरङ्गोंमें दिशाओंको रोकता हुआ तथा सूत्र शब्द करता हुआ वह सेनारूपी समुद्र चारो ओर फैल गया ॥५॥ उम समय चलते हुए रथोंके पहियोंके चीत्कार शब्दसे, घोडोकी हिनहिनाहटमें और हाथियोंकी गर्जनामें शब्दाद्रित हो रहा था अर्थात् ममी और एक शब्द ही शब्द नजर आ रहा था ॥६॥ जिनका शब्द अतिशय गम्भीर है ऐसी प्रस्थान-कालको सूचित करनेवाली नेरियां मयूरोको अममयमें ही वादलोके गरजनेकी शका बढाती हुई शब्द कर रही थीं ॥७॥ उम समय दौडते हुए हाथियोंके समूहमें घोडोना समूह रुक गया था और चलते हुए रथोंके समूहमें पैदल चलनेवाले मिपाहियोंका समूह रुक गया था ॥८॥ पैदल सेनाके द्वारा जिन्हें कुछ बाधा की गई है ऐंमे हाथी घोड़े और रथ—थोड़ी दूरतक कुछ निरुच्छे चलकर ठोक रास्तेपर आ रहे थे । भावायें—मामने पैदल मनुष्योंकी भीड देखकर हाथी घोड़े और रथ बगडसे बरक बर आगे निकल रहे थे ॥९॥ जिनका मुकट कुछ कुछ हिल रहा है और जिनकी कान्नि इन्द्रके ममान है ऐंमे चक्रवर्तीने पर्वतके ममान ऊंचे विजय पर्वत नामके हाथीपर नजार होकर प्रस्थान किया ॥१०॥ चक्रवर्तीकी वह सेना गङ्गा नदीके बिनारे बिनारे अनेक देश, नदी और पर्वतोंको उल्लंघन करती हुई

१ सिद्धा विद्या—१०, २०, २०, ३०, ४०, ५० । २ पट्टपण्डमिनश्रीगान्ना । ३ मेपध्वनि । ४ मार्गान् । ५ गवापान्पय ३०, ५०, ६०, ८०, ९० । ६ मार्गं विद्याय पर्यन्ते वर्तमाना मूत्वा । ७ मन्त्रात्परिगता यन्म् ५० ।

वंलासाचनमभ्यर्गम् अथालोक्य रयाद्गमात् । विवेक्य निषटे रांभ्य प्रयवो जिनमधिगुम् ॥१२॥
 प्रयान्तमनुजम्स्त भरतेश महाशुतिम् । रोचिष्णुमोलय श्माया तोपमंद्गविषामरा ॥१३॥
 अचिराच्च तिसासाद्य शरदम्बरसच्छविम् । जिनरवेण यशोराशाम् स्रग्धनद्विज्ञामर्गि ॥१४॥
 निपतत्रिभरारारये प्राहृयन्तमिषामरार् । त्रिजगद्गुरोःपारार्त्त सेवार्धमिति सादरम् ॥१५॥
 मरुदान्दोलितोदप्रशासाग्रैस्तटपादपं । प्रतोवादिष नृत्यन्तं विषासिरसुमिर्गतं ॥१६॥
 तटनिर्भरसम्पातं वानु पाद्यनियोद्यतम् । पन्दारोभ्य्यवृन्दस्य विष्यगात्कन्धतो^१ जिनम् ॥१७॥
 शिखरोल्लिखिताम्भोदपटसोद्गोर्धवारिभि । दावभीत्येष तिष्ठन्तं स्वपर्यन्तसत्तावनम् ॥१८॥
 शुचिप्रावविनिर्माणं शिखरं स्वगिताम्बरं । गतिप्रसारमरंश्च न्यवृर्ध्वाग्निशोच्छ्रितं ॥१९॥
 स्वचिन् विप्ररसम्भोर्धवं^२ क्वचिन् पद्मसोचिन्तं । क्वचिच्च 'सचराधोटे'^३ धनेरादिष्णुतधियम् ॥२०॥
 क्वचिद्विरलनोलानुमिलितं स्फटिकोपलं । शशाङ्कमण्डलाशङ्काम् घ्रातन्वन्तं^४ मनोज्ञयाम् ॥२१॥
 हरिन्मणिप्रभाजालं भाजालंश्च प्रभाशमनाम्^५ । क्वचिदिन्द्रधनुर्लक्षाम् घ्रातिलन्त मनोःद्वगणे ॥२२॥

ऋषसे कैलास पर्वतके समीप जा पहुँची ॥११॥ तदनन्तर चप्रवर्ताने कैलास पर्वतको समीप ही देखकर सेनाओको वही पासमें ठहरा दिया और स्वयं जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेके लिये प्रस्थान किया ॥१२॥ जिस प्रकार सौधर्म इन्द्रने पीछे पीछे देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाले अनेक देव जाते हैं उसी प्रकार आगे आगे जाते हुए अतिशय वांन्तिमान् महाराज भरतके पीछे पीछे देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाले अनेक राजा लोग जा रहे थे ॥१३॥ जिसकी कान्ति शरद्वस्तुके बादलके समान है और इसीलिये जो जिनेन्द्र भगवान्के यशसे समूहके समान जान पड़ता है ऐसे उस कैलास पर्वतको बहुत शीघ्र पाकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥१४॥ जो पड़ते हुए भरतके शब्दसे ऐसा जान पड़ता है मानो समीप आकर तीनों जगत्के गुरु भगवान् वृषभदेवकी सेवा करो इस प्रकार देव लोगोको आदरपूर्वक बुला ही रहा हो—जिनकी ऊँची ऊँची शाखाओके अग्रभाग वायुके द्वारा हिल रहे हैं और जिनपर फूले हुए फूल उनके मन्द हास्यके समान मालूम होते हैं ऐसे अपने किनारेपर के वृक्षोंसे जो ऐसा जान पड़ता है मानो सन्तोषसे नृत्य ही कर रहा हो—जो किनारोपरसे भरतके पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करनेके लिये चारों ओरसे आते हुए भव्य जीवों के समूहके लिये पैर धोनेके लिये जल देनेको ही उद्यत हुआ हो—जो शिखरोसे विदीर्ण हुए बादलके समूहसे गिरते हुए जलसे ऐसा जान पड़ता है मानो दावानलके डरसे अपने समीपवर्ती यत्नाओके वनको सींच ही रहा हो—जो स्फटिक मणिके सफेद पत्थरोसे बने हुए और आकाश को घेरनेवाले अपने ऊँचे ऊँचे शिखरोसे ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यकी गतिके फैलावको रोक ही रहा हो—जिनमे वही तो किन्नर जातिके देव सभोग कर रहे हैं, कहीं नागकुमार जाति के देव सेवा कर रहे हैं और कहीं विद्याधर लोग ग्रीडा करते हैं ऐसे अनेक वनोसे जिसकी शोभा प्रकट हो रही है—जो कहींपर कुछ कुछ नीलमणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंके पत्थरोसे देवोंको चन्द्रमण्डलकी आगका उत्पन्न करता रहता है । जो कहींपर हरे रंगके मणियों की प्रभासे समूहसे और स्फटिक मणियोंकी प्रभासे समूहसे आकाशरूपी आगनमे इन्द्रधनुष की रेखा लिख रहा था । कहींपर पद्मराग मणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंकी किरणोंसे जिसके किनारेका समीपभाग कुछ कुछ लाली लिये हुए सफेद रंगका हो गया है और

१ वं नाम । २ यदनगीतस्य । ३ आगच्छत । ४ विदारित । ५ उद्यत । ६ स्फटिक पाषाण । ७ सम्भोर्गं द०, अ०, म० । ८ यैवरा—प० । ९ सचराशाम् आसमत्तात् ग्रीडा यद् तानि । १० मानवान्—द०, अ०, अ०, न०, द० । ११ पद्मरागाम् ।

पशारागाशुभिर्मन्त्रं^१ स्फटिकोपलरदिमभि । धारश्चतस्रवेतदप्रान्त^२ कित्तामितमिव^३ क्वचित् ॥२३॥
 क्वचिद्विदित्प^४ शैलेयपटलैरहुदद्रुणं^५ । मृगेन्द्रनक्षरालेखसहृगण्डोपलस्ततम् ॥२४॥
 क्वचिद्वाहान्तराद् गुञ्जन्मृगेन्द्रप्रतिनादिनो । तटोर्वंपानमुद्बद्धमदं परिहृताजं ॥२५॥
 क्वचित् सितोपलोत्सद्रग^६ चारिणीरमराद्यगना । विनाग शरदभान्तर्वतनीरिव विद्युत् ॥२६॥
 तमित्यद्भुतया लक्ष्म्या परीत नूनता पतिम् । स्वमिवालयः प्रयमालोक्य क्वचाणिरगान्मुदम् ॥२७॥
 गिरेरयस्तले दूराद् बाहनादिपरिच्छदम् । ब्रिहय पादचारेण ययौ कित स धर्मघो ॥२८॥
 पद्म्यामारोहतीऽप्याद्रि नासीत् खरो मनागपि । हितायिना हि खेदाय नात्मनो^७ क्रियाविधि ॥२९॥
 आरुरोह स त शैल सुरशिल्पिबिनिर्मिते । विद्विस्वर्मेणिसोपानंस्वर्गम्येवाधिरोहणे ॥३०॥
 अमित्यस्यासु^८ सोऽप्याद्रि प्रस्थाप्य वनराजिषु । लम्बितो^९ऽतिरिषत्कारिन्व शीतं वनाजिलं ॥३१॥
 क्वचिदुत्कृष्टमन्दारवणवीर्याविहारिणी । चिबिदनं^{१०}सुमनोमृषा सोऽप्यद्वन्द्वदेवना ॥३२॥
 क्वचिद्वनातसप्तसुनिजदावानुशापिनो । मृगोरपयदारव्य^{११}मृदुरोमन्यमन्वरा ॥३३॥
 क्वचिद्वि^{१२}कृञ्चसत्सुप्तान् बृहत् शत्रु^{१३}पोतकान् ।^{१४}पुरीतत्रिवरानद्रेरिवापययता पुञ्चितान् ॥३४॥
 क्वचिद् गजमदागोदवात्सिनान् गण्डशैलकान् । दक्षो^{१५} हरिरारोपाद् उन्निरप्रमराद्दक्षुरं ॥३५॥

इमं गिये जो ऐसा जान पड़ता है मानो उसे किण्वस (कुष्ठ) रोग ही हो गया हो । जिनपर वही वही अनेक धातुओंके टुकड़े टूट-टूटकर पड़े हैं तथा जो गिहोके नगोंका आघात महुनेवाली है और इसलिये जो ऐसी जान पड़ती है मानो उनपर बहुतसा दाद हो गया हो ऐसी अनेक चट्टानों से जो व्याप्त हो रहा है । वही वहीपर जिनमें गुपाओंके भीतर गरजन हुए मिहोनी प्रतिध्वनि व्याप्त हो रही है और इसीलिये जिन्हें मदनोत्स हाथियोंने छोड़ दिया है ऐसे अनेक किनारों जो धारण कर रहा है—और जो वही वहीपर मरदन्तुके दादलोके भीतर रहनेवाली मिज-लियोंके समान स्फटिक मणियोंकी मिलाओपर चलनेवागी देवागनाओंको धारण कर रहा है—इस प्रकार अद्भुत गोमासे सहित उस कैलम पर्वतको देलकर चन्द्रवती भरत बहुत ही आनन्दको प्राप्त हुए । और उसका स्वाम कारण यह था कि वह चन्द्रवतीने समान ही अलघ्य था और मूमृत अर्थान् पर्वतो (पक्षमें राजाओं) का अधिपति था ॥१५-२७॥ धर्मपुद्बिषो धारण करनेवाले महाराज भरत पर्वतके नीचे दूरसे ही सवारी आदि परिवर्गको छोडकर पैदल चलने लगे ॥२८॥ पैदल ही पर्वतपर चढते हुए भरतको थोडा भी खेद नहीं हुआ वा मो ठीक ही है क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको आ-माता हित करनेवाली क्रियाओंका करना खेद के लिये नहीं होता है ॥२९॥ स्वर्गकी सीढियोंके समान देवकी कारीगरोंने द्वारा बनाई हुई पवित्र मणिमयी सीढियोंके द्वारा महाराज भरत उस कैलम पर्वतपर चढ रहे थे ॥३०॥ चढने चढते वे उस पर्वतके ऊपरकी भूमिपर जा पहुँचे और वहा उन्होंने वनकी पवित्रयोंमें वनकी शीतल वायुके द्वारा मानो अनिश्चित्कार ही प्राप्त किया था ॥३१॥ वहा उन्होंने वही तो फूटे हुए मन्दार वनकी गियोंमें धूमती हुई तथा फूटने पवित्र आभूषण धारण लिये हुई वनदेवियोंको देखा ॥३२॥ वही वनके भीतर अपने वच्चोंके माय लेटी हुई और धीरे धीरे रोमन्य करती हुई हरिगियोंको देगा ॥३३॥ वही लनागुहोंमें मोने हुए और एन जगह इनटूटे हुए अजगरके उन बड़े बड़े वच्चोंको देगा जो कि उन पर्वतकी अतिढियोंके समह्वे समान जान पड़ने थे ॥३४॥ और वहीपर हाथियोंके मदनो मुदामित बडी बडी शानी चट्टानोंको हाथी

१ मिनित्रं । २ पाठान्तर-क्वचम् । 'क्षेत्र रत्नान्मु पाठान्' इत्यभिधानान् । ३ गिम्भरम् । 'मिनागी जिम्भर' इत्यभिधानान् । ४ गिधिननरुममनम् । ५ दद्रुगामिन्दुरी । 'दद्रुगा दद्रुगामि स्वद्' इत्यभिधानान् । ६ मृगलिकविनामघ्य । ७ आमहित । ८ ऊर्ध्वमृमिषु । ९ प्राणि । १० त्रिनिद्र । ११ उन्नतम् । १२ निरञ्ज न०, २०, ४० ५०, ६०, ७० । १३ अजागिम्भरम् । १४ अत्रमृन्त । १५ दृगो म्म ।

किञ्चिदन्तरमारुह्य पश्यन्नदेः परं श्रियम् । प्राप्तावसरमित्यूचे वचनं च पुरोधसा ॥३६॥
 पश्य देव गिरेरस्य प्रदेशान्वह्विस्मयान् । रमन्ते त्रिदशा यत्र स्वर्गावासेऽप्यनादराः ॥३७॥
 पर्याप्तमेतदेवास्य प्राभवं भुवनातिगम् । देवो यदेतमध्यास्ते चराचरगुणः पुरः ॥३८॥
 महाद्विपर्यमुत्सङ्गसङ्गिनी सरिदङ्गना । शश्वद् बिभन्ति कामीव गलत्रीलजलांशुका ॥३९॥
 श्रोडाहेतोरहिंश्रोषि मृगेन्द्रो गिरिकन्दरात् । महाहिमयमाकर्षन्र्दृष्ट्यांनुञ्चत्यपारयन् ॥४०॥
 सर्वद्वन्द्वसहान्सार्वान् जनतातापहारिणः । मुनीनिव वनाभोगानेषु घत्तेऽधिमेखलम् ॥४१॥
 हरीशरनिभिन्नमदद्विरदमस्तकान् । निर्हरः पापभीत्येव तर्जपत्येव सारवैः ॥४२॥
 घत्ते सानुचरान् भद्रान् उर्व्वंशान् स्ववप्रहान् । धनद्विपानयं शैलो भवानिव महोभुजः ॥४३॥
 ध्वनतो धनमघातान् शरभा रभसावनी । द्विरदाशङ्कयोत्पत्य पतन्तो यान्ति शोच्यताम् ॥४४॥
 शशीलवापसक्षणैस्त्वचो मद्गजत्वाविलाः । द्विपानां वनसम्भोगं सूचयन्तोह ॥४५॥

समभरर नखरूपी अकुरोसे विदारण करता हुआ सिंह देखा ॥३५॥ भरत महाराज कुछ दूर आगे चढकर जत्र पर्वतकी शोभा देखने लगे तत्र पुरोहितने अवसर पाकर नीचे लिखे अनुसार वचन वहे ॥३६॥ हे देव, इस पर्वतके अनेक आश्चर्योसे भरे हुए उन प्रदेशोको देखिये जिन पर कि देव लोग भी स्वर्गवामने अनादर करते हुए क्रीडा कर रहे है ॥३७॥ समस्त लोकको उन्धवन करनेवाली इस पर्वतकी महिमा इतनी ही बहुत है कि चर और अचर-सभीके गुण भगवान् वृषभदेव इसपर विराजमान है ॥३८॥ यह पहापर्वत अपनी गोदी अर्थात् नीचले मध्यभागमें रहनेवाली और जिनके नीचे जलरूपी वस्त्र छूट रहे है ऐसी नदीरूपी स्त्रियोको पामी पुण्यकी तरह मदा धारण करता है ॥३९॥ यह सिंह अहिंसक होनेपर भी केवल क्रीडा के लिये पर्वतकी मुकाममें एक बड़े भारी सर्पको खीच रहा है परन्तु लम्बा होनेसे खीचनेके लिये अशक्य होना हुआ उसे छोड भी रहा है ॥४०॥ यह पर्वत अपने तटभागपर ऐसे अनेक वनो प्रदेशोंको धारण करता है जो कि ठीक मुनियोके समान जान पडते है क्योंकि जिस प्रकार मुनि गव प्रसारके द्वन्द्व अर्थात् गीत उष्ण आदिकी वाधा सहन करते है उसी प्रकार वे वनके प्रदेश भी गव प्रसारके द्वन्द्व अर्थात् पशुपक्षियो आदिके युगल सहन करते है-धारण करते है, जिन प्रकार मुनि गववा कत्याण करते है उसी प्रकार वनके प्रदेश भी सबका कत्याण करते है और जिन प्रकार मुनि जनममूहके सताप अर्थात् मानसिक व्यथाको दूर करते है उसी प्रकार वनके प्रदेश भी गंताप अर्थात् मूर्खके धामसे उत्पन्न हुई गरमीको दूर करते है ॥४१॥ यह पर्वत मन्द करने हुए भग्नोंके ऐसा जान पटना है मानो जिन्होंने अपने नपोंसे मदीमत्त हाथियो के मग्न विदारण किये है ऐसे गिहोंको पापके डरसे तर्जना ही कर रहा हो-डाट ही दिखा रहा हो ॥४२॥ हे नाथ, जिन प्रकार आप सानुचर अर्थात् मेवको सहित, भद्र, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए और उनम शरीरवाले अनेक राजाओंको धारण करने है-उन्हे अपने आधीन रखते है, उसी प्रकार यह पर्वत भी सानुचर अर्थात् शिगरोंपर चलनेवाले, पीठपरकी उच्च मेदमे युवा और उनम शरीरवाले भद्र जानिके जंगली हाथियोको धारण करता है ॥४३॥ उपर से उल्टा, शरको हुए मेयोके समूहको हाथी समभार उनपर उललते है परन्तु फिर नीचे निरन्तर गो रभीव दशाको प्राप्त हो रहे है ॥४४॥ कपोलोने घिगनेमे जिनकी छाल घिम

शास्त्रामृगा^१ मृगेन्द्राणा गजितरिह तजिता । पुञ्जीभूता निक्ञ्जेपु पद्य तिष्ठन्ति साष्वत्तात् ॥४६॥
 मनीन्द्रपाठनिर्घोषिरितो रम्यमिद वनम् । तृणाप्रकवलप्रासिकुरङ्गदत्तसद्वलम् ॥४७॥
 इतश्च हरिणारति^२ कठोरारवभीरणम् । त्रिमुक्तकवलच्छेदप्रपत्तापितकुञ्जरम् ॥४८॥
 जरजरन्त^३ श्रेष्ठगाप्रक्षतधरुमोकरोपस^४ । इतो रम्या वनोद्देशा वराहोत्खातपर्वता^५ ॥४९॥
 मृगं प्रविष्टवेशान्तं^६ वंशस्तम्बोपगं^७ वंजं । सूच्यते हरिणाक्रात वनमेतद् भयानकम् ॥५०॥
 वनप्रवेशिभिन्नित्य नित्य स्थण्डिलशायिनि । न मृद्यतेऽयमद्रोन्द्रो मृगंमुनिगणैरपि ॥५१॥
 इति प्रशातो रीद्रश्च सर्ववाय धराधर । सन्निधानाग्निनेत्रस्य शान्त एवाधुना पुन ॥५२॥
 गजं पद्य मृगेन्द्राणा सवासिनिह^८ कानने । नखरक्षतमागेषु^९ स्वैरमास्पृशतामिमान् ॥५३॥
^{१०} चारणाद्युपितानेते गृहो^{११} त्सद्गानादाङ्किता । विदारयन्मुगता शशं पाकसत्त्वं^{१२} सममृगा^{१३} ॥५४॥
 ग्रहो परममादर्यं तिरश्चामपि यद्गणं । अनुयात^{१४} मनीन्द्राणाम् शशातमयसम्पदाम् ॥५५॥
 सोऽयमप्टापदैर्मुष्टो^{१५} नृगैरन्वयनामभि^{१६} । पुनरप्टापदरयाति पुरंति^{१७} त्वदुपश्रमम्^{१८} ॥५६॥
 स्फुरन्मणितटोपान्त तारकावश्रमापतत्^{१९} । न याति व्यक्तितमस्याद्रेस्तद्रोचिष्टप्रमण्डलम् ॥५७॥

गई है और जो मदरूपी जलसे मलिन हो रहे है ऐसे इस वनके वृक्ष हाथियोंकी वनजीडाको साफ साफ सूचित कर रहे है ॥४५॥ इधर देखिये, सिंहोकी गर्जनासे टरे हुए ये वन्दर भयसे झुकठे होकर लतामण्डपोमें बंटे हुए है ॥४६॥ यह वन इधर तो बड़े बड़े मुनियोंके पाठ करने के शत्रुसे रमणीय हो रहा है और इधर तृणोंके अग्रभागका घास खानेवाले हरिणों के समहमे व्याप्त हो रहा है ॥४७॥ इधर सिंहोके कठोर शदोसे भयकर हो रहा है और इधर खाना पीना छोडकर हाथियोंके समूह भाग रहे है ॥४८॥ इधर, जिनम वृद्ध जगली भंसाओने सीपोंकी नोकसे वामियोंके किनारे खोद दिये है और मूखरोंने छोटे छोटे तालाब खोद डाले है ऐसे ये सुन्दर सुन्दर वनके प्रदेश है ॥४९॥ छोटे छोटे तालाबोंमें घुसे हुए हरिणों और बांसजी भाडियोंके समीप छिपकर खडे हुए हाथियोंसे साफ साफ सूचित होता है कि इम भयकर वनपर अभी अभी सिंहने आक्रमण किया है ॥५०॥ सदा वनमें प्रवेग करनेवाले और सदा जमीनपर सोनेवाले हरिण और मुनियोंके समूह इम वनको कभी नहीं छोडते है ॥५१॥ इम प्रकार यह पर्वत सदा शान्त और भयकर रहता है परन्तु इम समय श्री जिनेन्द्रदेवके सन्निधानसे शान्त ही है ॥५२॥ इधर, इम वनमें सिंहोका हाथियाने माथ सप्रवाम देगिये, ये निह अपने नखासे किये हुए हाथियोंके धावोका इच्छानुमार स्पर्श कर रहे है ॥५३॥ जिनके पीछे पीछे वच्चे चर रहे है ऐसे हरिण, सिंह, व्याधु आदि दुष्ट जीवोंके माथ माथ चारण मुनियाने अधिप्यित गुफाओंमें निर्भय होकर प्रवेग करते है ॥५४॥ अहा, बड़ा आश्चर्य है नि वनश्रा के समूह भी, जिन्ह वनके भय और शोभाका कुछ भी पता नहीं है गेमे मुनियोंके पीछे पीछे फिर रहे है ॥५५॥ सार्येक नामको धारण करनेवाले अप्टापद नामके जीवोंमें संक्रिय तृणा यह पर्वत आपके चढनेके बाद अप्टापद नामको प्राप्त होगा ॥५६॥ जिसपर अनन्य मणि श्रेष्ठोप्यमान हो रहे है ऐसे इम पर्वतके किनारेके समीप आना दृशा नशानोंका समुद्र उन मणिश्रेष्ठो विरणोमे अपना मण्डल तिरोहित हो जानेमें प्रवटजाता प्राप्त नहीं हो पाता है । भावार्थ-

१ मरटा । २ सिंह । ३ वृद्धमहिय । ४ वामनूतया । ५ वामनूतया शक्यव शक्यव मृगं वनम् इत्यभिधानात् । ६ अपसमगता । ७ वंजं । ८ वंशस्तम्बोपगं वंशस्तम्बोपगं । ९ नखरक्षतमागेषु । १० चारणाद्युपितानेते गृहो । ११ त्सद्गानादाङ्किता । १२ पाकसत्त्वं । १३ सममृगा । १४ अनुयात । १५ मुष्टो । १६ रन्वयनामभि । १७ पुरंति । १८ त्वदुपश्रमम् । १९ तारकावश्रमापतत् ।

प्रजलतोपधिगतैःपि निशि नाभ्येति निन्नर । तमोविदाद्ययात्रयात्रे इन्द्रनीलमधोरततो ॥५८॥
 हरिन्मणितटोसत्पन्मयुपानत्र भूधरे । सुगाद्यरुधियोपेत्य गृगा याति यिलदपताम् ॥५९॥
 सरोजराग'रत्ना'पुच्छरिता' यनराजय । तता स ध्यातपेनेय 'पुष्ण'तोह परां धियम् ॥६०॥
 सूर्यांशुभि परामुष्टा सूर्यशता ज्वलन्त्यमी । प्रायस्तेजरिवसपर्वरतेज पुष्पाति तादृशम् ॥६१॥
 इहे दुकरसस्पर्शात्प्रभ्रन्तोऽप्यनुक्षयम् । घट्रकान्ता न होय'ते' विचित्रा पुद्गलस्थिति ॥६२॥
 सुराणामभिगम्यत्वात् सिंहासनपरिप्रात् । महत्स्यादचलत्वाच्च गिरिरेव जिनायते ॥६३॥
 शुद्धस्फटिकसङ्गादानिर्मलोदारविग्रह । शुद्धात्मेय शिवायास्तु तयायमचलाधिप ॥६४॥
 इति शसति' तस्यादे परा शोभा पुरोयति । शसाद्भूत' इयानन्द पर प्राप परन्तप १० ॥६५॥
 किञ्चिच्चत्तरपुल्लद्ध्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । प्रत्यासन्नजिनास्थान विद्यामास विद्यावर ॥६६॥
 निपतत्युपवर्षेण दुदुभोरा च नि स्वने । विद्याम्बभूव' लोनेशम् शन्यासदृत्तसिधिमम् ॥६७॥

किनारेके समीप संचार करते हुए नक्षत्रोके समूहपर मणियोंकी वान्ति पड़ रही है जिससे वे मणियोंके समान ही जान पड़ते हैं, पृथक् रूपसे दिखाई नहीं देते हैं ॥५७॥ यद्यपि यहाँ रात्रि के समय औपधियोंका समूह प्रकाशमान रहता है तथापि किन्नर जातिके देव अधकारकी आशवा से इन्द्रनील मणियोंके बने हुए वस पर्वतके किनारोके सम्मुख नहीं जाते हैं ॥५८॥ इस पर्वत पर हरित मणियोंके बने हुए किनारोकी फँलनी हुई किरणोंको हरी घासके अकुर समभ्रर हरिण आते हैं परन्तु घास न मिलनेसे बहुत ही आश्चर्य और लज्जाको प्राप्त होते हैं ॥५९॥ इधर पद्मराग मणियोंकी किरणोसी व्याप्त हुई वनकी पक्षितयाँ ऐसी उत्कृष्ट शोभा धारण कर रही हैं मानो उनपर सध्याकालकी लाल लाल धूप ही फँल रही हो ॥६०॥ ये सूर्यकान्त मणि सूर्यकी किरणोका स्पर्श पाकर जल रही हैं सो ठीक ही है क्योंकि प्राय तेजस्वी पदार्थका सबध तेजस्वी पदार्थके तेजको पुष्ट कर देता है ॥६१॥ इस पर्वतपर चन्द्रमाकी किरणोका स्पर्श होनेपर चन्द्रकान्त मणियोंसे यद्यपि प्रत्येक रात्रिको पानी झरता है तथापि ये कुछ भी कम नहीं होते सो ठीक ही है क्योंकि पुद्गलका स्वभाव बड़ा ही विचित्र है ॥६२॥ अथवा यह पर्वत ठीक जिनेन्द्रदेवके समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवके समीप देव आते हैं उसी प्रकार इस पर्वतपर भी देव आते हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवने सिंहासन स्वीकार किया है उसी प्रकार इस पर्वतने भी सिंहासन अर्थात् सिंहके आसनोको स्वीकार किया है—इसपर जहाँ-तहाँ सिंह बैठे हुए हैं अथवा सिंह और असन वृक्ष स्वीकार किये हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव महान् अर्थात् उत्कृष्ट हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी महान् अर्थात् ऊँचा है और जिनेन्द्रदेव जिस प्रकार अचल अर्थात् अपने स्वरूपम स्थिर हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी अचल अर्थात् स्थिर है ॥६३॥ हे देव, जिसका उदार शरीर शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है ऐसा यह पर्वतराज वैरास शुद्धात्माकी तरह आपका कल्याण करनेवाला हो ॥६४॥ इस प्रकार जब पुरोहितने उम पर्वतकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन किया तब शत्रुओको सतप्त करनेवाले महाराज भरत इस प्रकार परम आनन्दको प्राप्त हुए मानो सुखरूप ही हो गये हो ॥६५॥ विद्वानोंमें श्रेष्ठ भरत चक्रवर्ती प्रमत्त चित्तसे कुछ ही आगे वढे थे कि उन्हें वहाँ समीप ही जिनेन्द्रदेवका समवसरण जान पड़ा ॥६६॥ ऊपरने पढ़नी हुई पुष्पवृष्टिसे और दुन्दुभि वाजोके शब्दोसे उन्होने जान

१ विम्बयनाम् । २ पद्मराग । ३ मिथिला । ४ वदंयन्ति । ५ रात्री रात्री । ६ न शृता भवन्ति ।
 ७ हरिश्चन्द्रस्वीनासन, पर्वे गिरानामगानवृक्षाणाञ्च स्वोरात् । ८ स्तुति कूर्वति सति । ९ गुह्यायत ।
 १० पर गन् नापयन्ति पत्न्याश्चर्या । ११ जानाति स्म । १२ तमोपविष्टास्त्वितिम् ।

मन्दारकसुमोद्गन्धिः श्रान्दोलितलतावनः । पवनस्नमनीयाय^१ प्रत्युद्यमिव पावनः ॥६८॥
 सुमनोऽपिद्रापण्ड्यं आपूरितनमोद्गन्धाः । विरजोद्भूतमूलोर्^२ समं शीतैरपा^३ कर्णः ॥६९॥
^४शुश्रुवे ध्वनिरामद्रो दुन्दुभीना नमोऽन्तापे । श्रुतः केकिनिद्वर्षावेः घनम्ननिद्रादकिभिः ॥७०॥
 गुरुदण्डप्रसूनोद्यसम्मर्दमृदुना पया^५ । तनद्रिशोषमध्यान् प्रपयो स नृपाप्रणी ॥७१॥
 तनोऽधिदृष्टय तं शीतम् अपश्यन् सौम्य^६मूर्धनि । प्रागुन्ननवर्णनोचैर्^७ जंनमान्वात्ममण्डलम् ॥७२॥
 समेष्टा^८वसरावेक्षास्तिष्ठत्यस्मिन् सुरासुराः । इति तज्जतिरुक्त्वा तन्मरण समयादिवम्^९ ॥७३॥
 प्राक्षण्डलयनूतलाम् श्रवण्डपरिमण्डलाम् । जनयन् नितोद्योतैः धूलोमालमयामदन्^{१०} ॥७४॥
 हेमलम्नाप्रविण्यस्तरणनोरणनानुरम् । धूलोमालमतीत्यायो मानस्तन्ममपूजयन् ॥७५॥
 मानस्तम्नस्य पर्वन्ते^{११}नरनीः ससरोरुहाः । जंनारिव श्रुती स्वच्छसौन^{१२}लापी ददर्श सः ॥७६॥
 धूलोमालपरिक्षेपस्यालनर्भागे समन्तः । बाध्यन्तरेषु सौम्यशब्द देवावाचोचिता भूय^{१३} ॥७७॥
 प्रतीन्य परतः किञ्चिद् दर्शनं जलसानिवायम् । सुप्रमत्तानगणानां च मनोवृत्ति सनामिव ॥७८॥
 बन्नीवन तनोद्वाशीप्रानापुण्यलतानतम् । पुण्यामवरमानत्तनुमदन्मुरमण्डकृतम् ॥७९॥

लिया या कि त्रिलोकानाय जिनेन्द्रदेव नमीप ही विराजमान हैं ॥६७॥ मन्दार वृक्षोके फूटो मे मुग्धनिव और लनाओने वनको कम्पित करनेवाला वायु उनके सामने इस प्रकार आया था मानो उनकी अगवाती ही कर रहा हो ॥६८॥ जिन्होंने पृथिवीको घूलि रहित कर दिया है ऐसी जलकी शीतल बूदोंके साथ साथ आकाशरूपी आंगनको भरती हुई फूटोकी वर्षा पट रही थी ॥६९॥ जिन्हें मेघोंकी गर्जना नमकनेवाले मयूर, अपनी गर्दन ऊँची कर सुन रहे हैं ऐसे आकाशरूपी आंगनमें होनेवाले दुन्दुभि वाजोंके गम्भीर शब्द भी महाराज भरतने सुने थे ॥७०॥ राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज भरत, परकी गाँठो तक ऊँचे फेंके हुए फूलोंके समदर्से जो अत्यन्त फोमल हो गया है ऐसे मार्गके द्वारा बिना किसी परित्यक्तके वाकी बचे हुए उन पर्वत पर चढ गये थे ॥७१॥ नदनन्तर उन पर्वतपर चढकर भरतने उनके मन्त्रकपर पहले बही हुई रचनाने सहित जिनेन्द्रदेवका समवसरणमण्डल देखा ॥७२॥ इसमें समस्त मुर और अमुर आकर दिव्य ध्वनिके अवसरकी प्रतीक्षा करने हुए बैठे हैं इसलिये जानकार गणधरादि देवोंने इसना समवसरण ऐना मार्यक नाम कहा है ॥७३॥

अथानन्तर—महाराज भरत, जो अपने प्रकाशमें अखण्ड मण्डलवादे इन्द्रधनुषकी रेखा को प्रकट कर रहा है ऐसे धूलिमालके नमीप जा पहुँचे ॥७४॥ सुवर्णके खंभोंके अग्रभागपर लगे हुए रत्नोंके तोरणोंसे जो अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा है ऐसे धूलिमालको उल्लस्यन कर उन्होंने मानस्तम्भकी पूजा की ॥७५॥ जिनमें स्वच्छ और शीतल जल भरा हुआ है और कमल फूट रहे हैं ऐसी जिनेन्द्र भगवान्की वाणीके नमान मानस्तम्भके चारों ओरकी बावडियाँ भी महाराज भरतने देखी ॥७६॥ धूलिमालकी परिधिके भीतर चारों ओरमें गरियोंके बीच बीचमें उन्होंने देवोंके निवास करने योग्य पृथिवी भी देखी ॥७७॥ बूठ और आगे चलकर उन्होंने जलमें भरी हुई परित्वा देखी । वह परित्वा मज्जन पुण्योके चिनकी वृत्तिके नमान स्वच्छ और गम्भीर थी ॥७८॥ तदनन्तर जो अनेक प्रकारके फूटोकी लताओंमें व्याप्त हो रहा है और जो फूटोके आमवस्त्रो रसमें मत्त होकर फिरने हुए भूमरोंने व्याप्त है ऐना लता-

१ अमिमुत्र जनाम । २ जतानाम् । ३ भरतेज श्रुते स्म । ४ धुष्टिकप्रमाण । 'तद्दर्शनी धुष्टिके गुण्यो' इत्यभिधानात् । ५ मार्गः । ६ श्रमरहित । ७ ब्रह्मान्त्य । ८ समान्य । ९ प्रभाग्दमरभानोव-
 पन् । १० गुमनमगन्तम् । ११ ज्ञानम् । १२ पर्वनमगन्ती । १३ ईश्वरता, पर्व गतिरया ।
 १४ देवप्रानदम्भी ।

ततः किञ्चित्तुरो गच्छन् सालमाद्य ध्यलोकयत् । नियथाश्रिततरपधिषुपुं रत्नभाशुपम् ॥८०॥
 सुरदोवारिकारक्षयत्प्रतीतीलाश्रितान् । सोऽपश्यन्मद्गतद्रव्यभेदातराष्टधा स्थितान् ॥८१॥
 ततोऽज्ज प्रविशन्बोध्य द्वितयं नाट्यशास्त्रयोः । प्रीतिं प्राप परां चञ्चरी शस्त्रप्रीवर्तनोऽघृतम् ॥८२॥
 स धूपघटयोर्वृष्म तत्र धीष्णभयान्तयोः । सुगन्धिगन्धनसन्दोहोवृष्णियधूपं ध्यतोषयत् ॥८३॥
 कक्षास्तरे द्वितीयेऽस्मिन्नसौ यनचतुष्टयम् । निवृष्यो विगतसुषुप्तः श्रुताभिमयं ध्यातिभिः ॥८४॥
 प्रफुल्लघनमाशोकं साप्तपर्णं च चाम्पकम् । आश्रितं घनं प्रेक्ष्य शोऽभ्रशस्त्रोऽद्वितीयवः ॥८५॥
 तत्र चैत्यमस्तुद्गगान् जिनविम्बेरपिष्ठितान् । पूजयामास सधनीयान् पूजिताग्रसुरेशिनाम् ॥८६॥
 तत्र किन्नरनारीणां गीतरामद्रमूर्च्छनैः । लेभे परां पृतिं चञ्चरी गायन्तीनां जिनोत्सवम् ॥८७॥
 सुगन्धिपवनामोदिनिश्वासा कुसुमस्मिता । यनश्रीः कोकिलालापः सञ्जजल्लेषे घषिणा ॥८८॥
 भृङ्गगीतसङ्गीतसमूर्च्छन्तु कोकिलानकनिस्सवनैः । यनद्रुगधियं जिष्णोर्वनानीषोदधोपयम् ॥८९॥
 विजगज्जनतलस्रप्रवेशरभतोस्थितम् । तत्राशुगोन्महाधोपयया धोपयिषोदधेः ॥९०॥
 वनवेदीमयापश्यत् वनरुद्धावनेः परम् । वनराजोविलासिन्याः काञ्चीमिव कण्ठमणिम् ॥९१॥
 तद्गोपुरावांश्च क्रान्त्वा ध्वजरुद्धावांश्च सुरान् । आजहृष्टमिवाऽपश्यन्महद्भूतैर्ध्वजाशुकैः ॥९२॥

वन देखा ॥७९॥ वहाँसे कुछ आगे जाकर उन्होंने पहला कोट देखा जो कि निपघ पर्वतके किनारेके साथ स्पर्धा कर रहा था और रत्नोकी दीप्तिसे सुशोभित था ॥८०॥ देवरूप द्वारपाल जिसकी रक्षा कर रहे हैं ऐसे गोपुरद्वारके समीप रखे हुए आठ मञ्जलद्रव्य भी उन्होंने देखे ॥८१॥ तदनन्तर भीतर प्रवेश करते हुए चक्रवर्ती भरत इन्द्राणीके नृत्य करनेके योग्य दोनों ओरकी दो नाट्यशालाओको देखकर परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥८२॥ वहाँसे कुछ आगे चलकर मार्गके दोनों ओर बगलमे रखे हुए तथा सुगन्धित ई धनके समूहके द्वारा जिनसे अत्यन्त सुगन्धित धूम निकल रहा है ऐसे दो धूपघट देखे ॥८३॥ इस दूसरी कक्षामें उन्होंने चार वन भी देखे जो कि भडते हुए फूलीवाले वृक्षोसे अर्घं देते हुएके समान जान पड़ते थे ॥८४॥ फूले हुए अशोक वृक्षोका वन, साप्तपर्ण वृक्षोका वन, चम्पक वृक्षोका वन और आमोका सुन्दर वन देखकर भरत महाराजका आनन्द भी दूना हो गया था ॥८५॥ श्रीमान् भरतने उन वनोमें जिनप्रतिमाओसे अर्धापिष्ठित और इन्द्र नरेन्द्र आदिके द्वारा पूजित बहुत ऊँचे चैत्यवृक्षोकी भी पूजा की ॥८६॥ उन्ही वनोमे किन्नर जातिकी देवियाँ भगवान्का उत्सव गा रही थी, उनके गभीर तानवाले गीतोसे चक्रवर्ती भरतने परम सतोष प्राप्त किया था ॥८७॥ सुगन्धित पवन ही जिसका सुगन्धिपूर्ण निश्वास है और फूल ही जिसका मद हास्य है ऐसी वह वनकी लक्ष्मी कोषलोके मधुर शब्दोसे ऐसी जान पडती थी मानो चक्रवर्तीके साथ वार्तालाप ही कर रही हो ॥८८॥ भूमरिखोके संगीतसे मिले हुए कोकिलारूपी नगाडोके शब्दोसे वे वन ऐसे जान पडते थे मानो जिनेन्द्र भगवान्ने जो कामदेवको जीत लिया है उसीकी घोषणा कर रहे हों ॥८९॥ वहाँपर तीनों लोकोके जनसमूहके निरन्तर प्रवेश करनेकी उतावलीसे जो समुद्र के जलवी गर्जनाके समान बडा भारी कोलाहल हो रहा था उसे भी भरत महाराजने सुना था ॥९०॥ तदनन्तर उन वनोसे रकी हुई पृथिवीके आगे उन्होंने वनपक्तिरूपी विलासिनी स्त्रीकी मणिमयी मेखलाके समान मणिपोसे जड़ी हुई वनकी चेदी देखी ॥९१॥ वनवेदीके मुख्य द्वारकी भूमिको उल्लघन कर चक्रवर्ती भरतने ध्वजाओसे रकी हुई पृथिवी देखी, वह पृथिवी उग गमय ऐसी मात्राम हो रही थी मानो वायुसे हिलते हुए ध्वजाओके वस्त्रोके द्वारा

१ दन्त । २ प्रचुरवन- ल० । ३ आग्नेदिनवन ल० । आमुमिति स्तुतम् । ४ द्विधुगुणितोत्सव । ५ चर्गा रम । ६ धिमधीभवत् । ७ स्वरुद्रताम् । ८ सुगट ल०, द० । ९ आह्वानुमिच्छम् ।

सावनिः^१ सावनोबोधद् ध्वजमालानाम्बरा । सत्रथा सगजा रेने जिनराजज्योतिना ॥६३॥
 केतवो हरिवस्त्राग्जबहिणेनपरुमनाम् । स्रगुसहंमचकारां दशभोक्ता जिनेशिनः ॥६४॥
 तानेकतः^२ शनं चाष्टो ध्वजान् प्रतिदिशं स्थितान् । वरोवध्मर्षाच्चथो म तद्द्वारवनेः परम् ॥६५॥
 द्वितीयपार्श्वं सारं सगोपुरचतुष्टयम् । ध्वनीन् परतोभयप्रादुपशानाविपूर्ववत्^३ ॥६६॥
 तत्र पदपन्थुरस्त्रीणां नृत्यं गीतं निरामयन्^४ । घूपामोई च मञ्जिषून्^५ मृश्रीनाक्षोऽनवद् विनुः ॥६७॥
 कशान्तरे ततस्तस्मिन् कल्पवृक्षवनावतिम्^६ । स्रग्ध्वानरपादोष्टफनदां स निरुपयन्^७ ॥६८॥
 मिद्वार्यपादपांस्तथ मिद्विम्बं रथिष्ठितान् । परीन् प्रपमन् प्राचोद् प्रविचिताप्राकिनायकं ॥६९॥
 धनवेदीं ततोऽनीन् चतुर्गोपुरमग्जनाम् । प्रामादरुद्धामवनीं स्तूपांश्च प्रनुरंक्षत ॥१००॥
 प्रातादा विविधास्तत्र मुरावामाय कल्पिताः । त्रिचतुष्टयचतुष्टयाद्याः^८ ज्ञानाच्छन्दैरसदृशनाः ॥१०१॥
 स्तूपांश्च रत्ननिर्माणाः सालन्ता रत्नवोरपः । समन्ताग्जिनबिम्बंस्ते निविचिताल्लाश्रयकाशिरे ॥१०२॥
 तां पश्यप्रचर्यंस्तान्श्च तांश्च तांश्च स कीर्तयन् । तां च कक्षां ध्वनीनाम्^९ विन्मयं परभीषिवात् ॥१०३॥

उन्हें बुझा ही रही हो ॥९२॥ वह ध्वजानूमि यज्ञभूमिके समान मुगोभित हो रही थी क्योंकि
 जिन प्रकार यज्ञभूमिका आकाश अनेक फहराती हुई ध्वजाओंके समूहमें व्याप्त होना है उसी
 प्रकार उन ध्वजानूमिका आकाश नी अनेक फहराती हुई ध्वजाओंके समूहमें व्याप्त हो रहा
 था, जिस प्रकार यज्ञभूमि धर्मचक्र तथा हाथी आदिके मांगलिक चिह्नोंमें सहित होती है उसी
 प्रकार वह ध्वजानूमि भी चक्र और हाथीके चिह्नोंमें सहित थी, तथा जिन प्रकार यज्ञभूमि
 जिनन्द्रदेवके जय अर्थात् जयजयकार शब्दोंमें व्याप्त होती है उसी प्रकार वह ध्वजानूमि भी
 जिनन्द्रदेवके जयजयकार शब्दोंमें व्याप्त थी अथवा वर्मन्पी गजुओंको जीत लेनेमें प्रकट
 हुई थी ॥९३॥ जिनराजकी वे ध्वजाएँ मिह, वस्त्र, कमल, मयूर, हाथी, गरुड़, माला, बेल,
 हंस और चक्र इन चिह्नोंके देवने दश प्रकारकी थीं ॥९४॥ वे ध्वजाएँ प्रत्येक दिशामें एक-
 एक प्रकारकी एक नौ आठ स्थित थीं, उन सबकी पूजा करने हुए चतुर्वर्ती महाराज
 उन ध्वजानूमिमें आगे गये ॥९५॥ आगे चलकर उन्होंने चार गोपुर दरवाजों सहित चांदीका
 बना हुआ दूनरा कोट देखा और उसे उल्लंघन कर उनके आगे पहिलेके समान ही नाटयनाया
 आदि देवी ॥९६॥ वहाँ देवाङ्गनाओंके नृत्य देखने हुए, उनके गीत सुनने हुए और धूपकी
 गुग्गुलु सूघने हुए महाराज भरतकी इन्द्रिया बहून ही मनुष्ट हुई थी ॥९७॥ आगे चलकर
 उन्होंने उसी वस्त्रके मध्यमें माला, वस्त्र और आभूषण आदि अनोप्य फल देनेवाली कल्प
 वृक्षोंके बनकी भूमि देवी ॥९८॥ उसी वनभूमिमें उन्होंने सिद्धोंकी प्रतिमाओंमें अधिष्ठित
 और इन्द्रोंके द्वारा पूजित मिद्वार्य वृक्षोंकी प्रदक्षिणा दी, उन्हें प्रणाम किया और उनकी पूजा
 की ॥९९॥ तदनन्तर चार गोपुर दरवाजोंमें मुगोभित धनकी वेदीको उल्लंघन कर चतुर्वर्ती
 ने अनेक महलोंमें बरी हुई पृथिवी और स्तूप देखे ॥१००॥ वहाँ देवोंके रूतके लिये जो महल
 बने हुए थे वे तीन गण्ट, चार गण्ट, पाच गण्ट आदि अनेक प्रकारके थे तथा नाना प्रकारके
 उपकरणोंमें भरे हुए थे ॥१०१॥ जिनके बीच बीचमें गलोंके तोरण लगे हुए हैं और जिनपर
 चारों ओरसे जिनन्द्रदेवकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं ऐंसे वे ग्नमपी स्तूप भी बहून अधिक मुगो-
 भित हो रहे थे ॥१०२॥ उन स्तूपोंकी देखने हुए, उनकी पूजा करने हुए और उन्हींका वर्णन
 करते हुए जिन्हें परम आश्चर्य प्राप्त हो रहा है ऐंसे भरतने धम-धमसे उन वस्त्रोंको उल्लंघन

१ यज्ञमन्त्रिपती । सवन. मन्त्रः । २ मारावृषम । ३ एईवग्निन् (दिशि) । ४ पूजयन् ।

५ प्रथममनोसतयन् । ६ मृन्मन् । ७ आपानयन् । ८ प्रीतिग्जिनः । ९ वनावतिम् म०, प० । १० पश्यन् ।

११ स्वन्दिश-सुवैतोदमनरपादोष्टफनदांश्च कल्पवृक्षानादिरुपयन्विभोः । १२ ध्वनीनाम् ।

तेजसा चक्रवालेन स्फुरता परितो वृत्तम् । परिवेषवृत्तम्यार्कमङ्गलस्थानुकारकम् ॥११७॥
 विषयद्दुन्दुभिर्मन्त्रधोर्यस्त्रोपिनोदयम् । सुमनोवपिनिदिव्यजो मूर्ततग्निप्रियम् ॥११८॥
 स्फुरद्गम्भीरनिर्घोषप्रोगितोत्रिजपत्ननम् । प्राक्पेय्यं पयोनाहनिव पर्याम्बुवपिणम् ॥११९॥
 नानानामात्मिका दिव्यमादानेकात्मिकामपि । प्रयत्नमयत्नेन हृदय्यान् नुदतो नृगाम् ॥१२०॥
 श्रमेयवीर्यमाह्वयविरहेऽप्यनिन्दुरम् । मुखाविभवमस्मपत्नीरन शान्तसङ्गाम् ॥१२१॥
 शस्त्रेदमनमच्छायम् अपरमन्त्रबन्धुरम् । सुसन्धानमेवेद्य च दद्यात् दपुटग्निम् ॥१२२॥
 रत्यत्रतयमाहात्म्य दूरादानोत्थम् न्निम् । प्रहृष्टोन्मत्त महोम्पुट्जानुरानन्दनिर्भर ॥१२३॥
 दूरानतचलन्मौलिः शालोत्रमपि कृण्वत । म रजे प्राग्मत् भक्त्या गित रत्नैरिवाप्यम् ॥१२४॥
 तनो विधिवदानव जगन्मन्त्रगणतं । चक्षुःप्रदीपयुग्दव सप्तं स फनेप्पया ॥१२५॥
 वृत्तपुत्राविधिर्भूय प्रणम्य परमेष्ठिनम् । स्तोत्रं स्तुतिनिरत्युच्चं प्रारभे भरतापिप ॥१२६॥
 स्वास्त्योष्ये परमात्मानम् अपारानुगमयुतम् । चौद्विनोऽहं दवाद् भवया शक्या मदीऽप्यमन्दया ॥१२७॥

पर्वतने ममान जान पडते थे जोकि निम्बरीके नमीप भागसे पडते हुए नरजोने व्यात हो रहा है—जो चारो ओरसे फँडने हुए कान्तिमण्डलमे व्याप्त हो रहे थे और उममे ऐसे जान पडते थे मानो गोक परिधिमे विरे हुए मूयमण्डलका अनुकरण ही कर रहे हो—गम्भीर गद्य करनेवाले आकाशदुन्दुभिरोके द्वारा जिनका माहात्म्य प्रकट हो रहा था तथा फूलोकी वर्षा करनेवाले दिव्य मेधोके द्वारा जिनकी गोभा बढ रही थी—जिनहोते चागे ओर फँडती हुई अपनी गभीर गर्जनामे तीनों ओकोके जीवोकी मनाको मत्पुट कर दिया था और इन्मोत्रिये जो वर्मरूपी जगकी वर्षा करते हुए वर्षास्तुते मेधके ममान जान पडते थे, जो उत्पत्तिम्यानकी अपेक्षा एक रूप होकर भी अनिगयवय श्रोताओके कर्णकुहरके समीप अनेक भाषाजोदप परिणामन करनेवाली ओर जीवोके हृदयका अन्यकार दूर करनेवाली दिव्य ध्वनिको विना किसी प्रयत्न के प्रसारित कर रहे थे—जो अनन्त वीर्यको धारण कर रहे थे, बानूपपररहित होनेपर भी अतिशय मुन्दर थे, वागीन्त्री उत्तम विभूतिके धारक थे, जिनके शरीरसे मुगन्धि निकट रही थी, जो गुम लक्षणोमे सहित थे, पमीना और मग्ने सहित थे, जिनके शरीरको छाया नहीं पडती थी, जो आशोके पत्रक न लगनेमे अनिगय मुन्दर थे, ममत्रतुरव सम्भानके धारक थे, और जो छेदन नैदन रहित अतिशय बलवान् शरीरको धारण कर रहे थे—ऐसे अचिन्त्य माहात्म्यके धारक श्री जिनेन्द्र भगवान्को दूरमे ही देखने हुए भग्न महाराज आनन्दमे भर गये तथा उन्होंने अपने दोनो घुटने जमीनपर टेककर श्री भगवान्को नमस्कार किया ॥११३-१२३॥ दूरसे ही नम्र होनेके कारण जिनका मुकुट कुछ कुछ हिल रहा है और मणिमय कुण्डल चञ्चल हो रहे हैं ऐसे भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करने हुए चक्रवर्ती भरत ऐसे जान पडते थे मानो उन्होंने रजोके द्वारा अर्घ्य ही दे रहा हो ॥१२४॥ तदनन्तर उन्होंने मोक्षरूपी फट प्राण करनेकी इच्छामे विधिपूर्वक जल, चन्दन, पुष्पमाग, अशत, नैवेद्य, दीप, धूप और फणोके द्वारा भगवान्की पूजा की ॥१२५॥ पूजाकी विधि समाप्त कर चुबनेके बाद भग्नेश्वरने परमेष्ठी वृषभदेवको प्रणाम किया और फिर अठ्ठे अठ्ठे लोकोके द्वारा उनको स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१२६॥ हे नावन्, आप परमात्मा हैं, अपार गुणोके धारक हैं, अजिनश्वर हैं और मैं शक्तिमे हीन हूँ तथापि बड़ी भारी भक्तिमे जयदंभो प्रेरित होकर आपकी स्तुति करता

१ विष्णु ६० । २ गणपते ध्वनदुन्दुभिनि । ३ मूयमेधं । ४ प्राक्पि भवन् । ५ जगन्मन्त्र विरहितेभ्यः । ६ गन्धस्तुत्यम् । ७ मनीषुत्तमम् ।

वच ते गुणा गणेत्राणामप्यगण्या^१ वच मादृश । तथापि प्रयते^२ स्तोतुं भक्त्या त्वद्गुणनिघ्नया^३ ॥१२८॥
 फलाय त्वद्गता भक्ति अनल्पाय प्रकल्पते । स्वामिसपत्न्युष्णाति ननु सपत्नरम्पराम् ॥१२९॥
 घातिकर्ममलापायात प्रादुरासन् गुणास्तव । घनावरणनिर्मुक्तमूर्त्तैर्भतीयेषाञ्जिव ॥१३०॥
 यथायं दर्शनज्ञानसुखवीर्यादिलब्धयः । क्षायिक्यस्तव निर्जाता^४, घातिकर्मविनिर्जयात् ॥१३१॥
 केदलाख्य पर ज्योतिस्तव देव यदोदगात्^५ । तदा लोकमलोक च स्वमबद्धा^६ विनावधे ॥१३२॥
 सार्वभ्यं तव वचतीश वच शुद्धिरसोपगा^७ । न हि वाग्विभवो मन्वधियामस्तीह पुष्कल^८ ॥१३३॥
 वक्तुप्रामाण्यतो देव वच प्रामाण्यमिष्यते । न ह्यशुद्धतराद् वक्तु प्रभवन्त्युज्ज्वला गिर ॥१३४॥
 सप्तभद्राभ्यात्मिभ्ये ते भारती विश्वगोचरा । श्राप्तप्रतीति^९ भमला त्वध्वमुद्भावयितु क्षमा ॥१३५॥
 स्यादस्त्येव हि नास्त्येव स्यादवक्तव्यमित्यपि । स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमिति^{१०} ते सार्व^{११} भारती ॥१३६॥

हूँ ॥१२७॥ हे देव, जो गणघर देवोके द्वारा भी गम्य नहीं हूँ ऐसे कहाँ तो आपके अनन्त गुण और कहाँ मुझ सरीखा मन्द पुरुष ? तथापि आपके गुणोके आधीन रहनेवाली भक्तिसे प्रेरित होकर आपकी स्तुति करनेका प्रयत्न करता हूँ ॥१२८॥ हे भगवन्, आपके विषय में जो हुई थोड़ी भक्ति भी बहुत भारी फल देनेके लिये समर्थ रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीकी सम्पत्ति सेवक जनोकी सम्पत्तिकी परम्पराको पुष्ट करती ही है ॥१२९॥ हे नाथ, जिस प्रकार मेघोके आवरणसे छूटे हुए सूर्यकी अनेक किरणें प्रकट हो जाती हैं उसी प्रकार घातिया कर्मरूपी मलके दूर हो जानेसे आपके अनेक गुण प्रकट हुए हैं ॥१३०॥ हे प्रभो, घातिया कर्मोको जीत लेनेसे आपके यथार्थ दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य आदि क्षायिक लब्धियाँ प्रकट हुई हैं ॥१३१॥ हे देव, जिस समय आपके केन्द्र ज्ञान नामकी उत्कृष्ट ज्योति प्रकट हुई थी उसी समय आपने मर्यादाके विना ही समस्त लोक और अलोकको जान लिया था ॥१३२॥ हे ईश, सब जगह जानेवाली अर्थात् ससारके सब पदार्थोका निरूपण करनेवाली आपके वचनोकी शुद्धि आपके सर्वज्ञपनेको प्रकट करती है सो ठीक ही है क्योंकि इस जगत्में मन्द बुद्धिवाले जीवोसे इतना अधिव चचनोका वैभव बनी नहीं हो सकता है ॥१३३॥ हे देव, वक्ता की प्रमाणनामे ही वचनोकी प्रमाणता मानी जाती है क्योंकि अत्यन्त अशुद्ध वक्तासे उज्ज्वल वाणी बनी उत्पन्न नहीं हो सकती है ॥१३४॥ हे नाथ, समस्त पदार्थोको विषय करनेवाली आपकी यह सप्तभद्ररूप वाणी ही आपमें आप्तपनेकी निर्मल प्रतीति उत्पन्न करानेके लिये समर्थ है ॥१३५॥ हे गवका हित करनेवाले, आपकी सप्तभद्ररूप वाणी इस प्रकार है कि जीवादि पदार्थ कथंचित् हैं ही, कथंचित् नहीं ही हैं, कथंचित् दोनो प्रकार ही है, कथंचित् अवक्तव्य ही है, कथंचित् अस्तित्व रूप होकर अवक्तव्य है, कथंचित् नास्तित्व रूप होकर अवक्तव्य है और कथंचित् अस्तित्व तथा नास्तित्व—दोनों रूप होकर अवक्तव्य है । विशेषार्थ-ज्जागममें प्र प्रेव यन्तुं एव एव धर्मके प्रतिपक्षी धर्मकी अपेक्षासे सात सात भङ्ग माने गये हैं, जो कि इस प्रकार हैं—१ स्यादस्त्येव, २ स्यान्नास्त्येव, ३ स्यादस्ति यन्नास्त्येव, ४ स्यादवक्तव्यमेव, ५ स्यादस्ति चावक्तव्य च, ६ स्यान्नास्ति चावक्तव्य च और ७ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य च । इनका स्पष्ट अर्थ यह है कि ससारका

१ -मप्यगण्या २ -प्रयते ३ -त्वद्गुणाधीनया । ४ -निर्जाता जाता । ५ -उदेति सम ।

६ -अबद्धा ७ -सोपगा ८ -पुष्कल ९ -श्राप्तप्रतीति १० -स्यादस्त्येव ११ -सार्वभौम ।
 १ -मप्यगण्या २ -प्रयते ३ -त्वद्गुणाधीनया । ४ -निर्जाता जाता । ५ -उदेति सम ।
 ६ -अबद्धा ७ -सोपगा ८ -पुष्कल ९ -श्राप्तप्रतीति १० -स्यादस्त्येव ११ -सार्वभौम ।
 १ -मप्यगण्या २ -प्रयते ३ -त्वद्गुणाधीनया । ४ -निर्जाता जाता । ५ -उदेति सम ।
 ६ -अबद्धा ७ -सोपगा ८ -पुष्कल ९ -श्राप्तप्रतीति १० -स्यादस्त्येव ११ -सार्वभौम ।

विशद्वाब्दवाजाजालसंख्यव्याप्तुधुबुद्धिपु । अथद्वेषमनाप्तेषु सार्वज्ञ्यं त्वयि तिष्ठते ॥१३७॥

रविः पयोधरोत्सद्गसुत्तरदिग्भिकासिभिः । सूच्यतेऽन्यथा तद्वद् उद्भवंवाग्विभवमंबवान् ॥१३८॥

प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) की अपेक्षा अस्तित्व रूप ही है, परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्व रूप ही है और एक साथ दोनो धर्म नहीं कहे जा सकनेके कारण अवक्तव्य रूप भी है, इस प्रकार प्रत्येक पदार्थमे मुरयतासे अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य ये तीन धर्म-पाये जाते है । इन्ही मुख्य धर्मोंके सयोगसे सात सात धर्म हो जाते है । जैसे 'जीवोऽस्ति' जीव है । यहापर जीव और अस्तित्व क्रियामें विशेष्य विशेषण सम्बन्ध है । विशेषण विशेष्यमें ही रहता है इसलिये जीवका अस्तित्व जीवमें ही है दूसरी जगह नहीं है, इसी प्रकार 'जीवोनास्ति'-जीव नहीं है यहापर भी जीव और नास्तित्वमें विशेष्यविशेषण सम्बन्ध है इसलिये ऊपर कहे हुए नियमसे नास्तित्व जीवमें ही है दूसरी जगह नहीं है । जीवके इन अस्तित्व और नास्तित्व रूप धर्मोंको एक साथ कह नहीं सकते इसलिये उसमें एक अवक्तव्य नामका धर्म भी है । इन तीनों धर्मोंमेसे जब जीवके केवल अस्तित्व धर्मकी विवक्षा करते है तब 'स्याद् अस्त्येव जीव.' ऐसा पहला भङ्ग होता है, जब नास्तित्व धर्मकी विवक्षा करते है तब 'नास्त्येव जीव.' ऐसा दूसरा भङ्ग होता है, जब दोनोकी क्रम क्रमसे विवक्षा करते है तब 'स्यादस्ति च नास्त्येव जीव.' इस प्रकार तीसरा भङ्ग होता है, जब दोनोकी अरुम अर्थात् एक साथ विवक्षा करते है तब दो विरुद्ध धर्म एक कालमे नहीं कहे जा सकनेके कारण 'स्यादवक्तव्यमेव' ऐसा चौथा भङ्ग होता है, जब अस्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते है तब 'स्यादस्ति चावक्तव्य च' ऐसा पाँचवाँ भङ्ग होता है, जब नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते है तब 'स्याद्नास्ति चावक्तव्य च' ऐसा छठवाँ भङ्ग हो जाता है और जब अस्तित्व, नास्तित्व तथा अवक्तव्य इन धर्मोंकी विवक्षा करते है तब 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य' च ऐसा सातवाँ भङ्ग हो जाता है । सयोगकी अपेक्षा प्रत्येक पदार्थमें प्रत्येक धर्म सात सात भङ्गके रूप रहता है इसलिये उन्हें कहनेके लिये जिनेन्द्र भगवान्ने सप्त-भङ्गी (सात भङ्गोंके समूह) रूप वाणी के द्वारा उपदेश दिया है । जिस समय जीवके अस्तित्व धर्मका निरूपण किया जा रहा है उस समय उसके अवशिष्ट धर्मोंका अभाव न समझ लिया जावे इसलिये उसके साथ विवक्षा सूचक स्याद् शब्दका भी प्रयोग किया जाता है तथा सन्बेह दूर करनेके लिये नियमवाचक एव या च आदि निपातोंका भी प्रयोग किया जाता है जिससे सब मिलाकर 'स्यादस्त्येव जीव.' इस वाक्यका अर्थ होता है कि जीव किसी अपेक्षासे है ही । इसी प्रकार अन्य वाक्योंका अर्थ भी समझ लेना चाहिये । जंतुधर्म अपनी व्यापक दृष्टिसे पदार्थके भीतर रहनेवाले उसके समस्त धर्मोंका विवक्षानुसार वचन करता है इसलिये वह स्याद्वाटरूप बहलाता है । वास्तव में इस सर्वमुखी दृष्टिके बिना वस्तुका पूर्ण स्वरूप कहा भी तो नहीं जा सकता ॥१३६॥ हे देव, जिनकी बुद्धि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध तथा सम्बन्धरहित वचनोंके जालमें फंकार व्याप्तुधु हो गई है ऐसे कुदेवोंमें श्रद्धान नहीं करने योग्य सर्वज्ञता आपमें विराजमान है । भावार्थ-सर्वज्ञ वही हो सकता है जिसके वचनोमें वही भी विरोध नहीं आता है । संसारके अन्य देवी-देवनाओं के वचनोमें पूर्वापर विरोध पाया जाता है और इसीसे उनकी भ्रान्त बुद्धिका पता चल जाता है इन सब कारणोंको देखते हुए 'ये सर्वज्ञ ये' ऐसा विश्वास नहीं होता परन्तु आपके वचनो अर्थात् उपदेशोमें वही भी विरोध नहीं आता तथा आपने वस्तुके समस्त धर्मोंका वर्णन किया है इससे आपकी बुद्धि-ज्ञान-निर्भ्रान्त है और इसीलिये आप सर्वज्ञ है ॥१२७॥ जिस प्रकार मेघोंके

१ प्रमाणभूते निर्णयान् तिष्ठतीत्यर्थ । ग्नेयप्रमाणे ऽपि ग्नेयवियये जागने परे-विवादादे निर्गता प्रमाणान्त पुरय स्थेय ।

ययान्धतमसे वृरात्तक्यं^१ ते विरतः शिलो^२ । तथा त्वमपि सुव्यक्तः सूक्तं राप्तो विरतमर्हसि^३ ॥१३३॥
 आस्तामाध्यात्मिकीयं ते ज्ञानसंपन्नहोदया । बर्हिर्बभूतिरेवया शारित नः शास्तृणां^४ त्वयि ॥१४०॥
 परार्घ्यमासनं संहं कल्पितं सुरशिल्पिभिः । रत्नरूपधरितं^५ भाति तावकं मेरुऋद्गयत् ॥१४१॥
 'सुरैरुच्छ्रितमेतत्ते द्यवाणा प्रथमूजितम् । त्रिजगत्प्राभवे^६ चिह्नं न प्रतीमः कथं^७ ययम् ॥१४२॥
 चामराणि तयामुनि श्योमभानानि चामरः । शंसन्त्यनन्यसामान्यम् ऐश्वर्यं भुयनातिगम् ॥१४३॥
 परितस्त्वत्सभा देव वर्धन्त्येते सुराभ्युदाः । सुमनोययंमुद्गन्धि ध्याहृतमपुत्रजम् ॥१४४॥
 सुरदुन्दुभयो मन्वं ध्वनन्त्येते^८ नभोऽद्गणैः । सुरकिङ्करहस्ताप्रताडितास्त्वज्जघोत्सवे ॥१४५॥
 सुरैरासेवितोपान्तो जनताशोकतापनुत्^९ । प्रायस्त्वामयमन्वेति^{१०} तवाशोकमहोदहः ॥१४६॥
 त्वद्देहदोस्तयो दोषाः प्रसरन्त्यनितः सभाम् । धृतबालातपच्छायास्तन्वाना नयनोत्सवम् ॥१४७॥

बीचमे जिसकी समस्त किरणे छिप गई हैं ऐसा सूर्य यद्यपि दिखाई नहीं देता तथापि फूले हुए कमलोसे उसका अस्तित्व सूचित हो जाता है उसी प्रकार आपका प्रत्यक्ष रूप भी दिखाई नहीं देता तथापि आपके श्रेष्ठ वचनोंके वैभवके द्वारा आपके प्रत्यक्ष रूपका अस्तित्व सूचित हो रहा है । भावार्थ—आपके महान् उपदेश ही आपको सर्वज्ञ सिद्ध कर रहे हैं ॥१३८॥ अथवा जिस प्रकार सधन अन्धकारमे यद्यपि मयूर दिखाई नहीं देता तथापि अपने शब्दोंके द्वारा दूर से ही पहिचान लिया जाता है उसी प्रकार आपका आप्तपना यद्यपि प्रकट नहीं दिखाई देता तथापि आप अपने स्पष्ट और सत्यार्थ वचनोंसे आप्त कहलानेके योग्य है ॥१३९॥ अथवा हे देव, जिसका बड़ा भारी अभ्युदय है ऐसी यह आपकी अध्यात्मसम्बन्धी ज्ञानरूपी सम्पत्ति दूर रहे, आपकी यह वाह्य विभूति ही हम लोगोंको आपके हितोपदेशीपनका उपदेश दे रही है । भावार्थ—आपकी वाह्य विभूति ही हमें बतला रही है कि आप मोक्षमार्गरूप हितका उपदेश देनेवाले सच्चे वक्ता और आप्त हैं ॥१४०॥ हे भगवन्, देवरूप कारीमरोके द्वारा बनाया हुआ और रत्नोकी किरणोंसे मिला हुआ आपका यह श्रेष्ठ सिंहासन मेरु पर्वतकी शिखर के समान सुशोभित हो रहा है ॥१४१॥ देवोंके द्वारा ऊपरकी ओर धारण किया हुआ यह आपका प्रकाशमान छत्रनय आपकी तीनों लोकोंकी प्रभुताका चिह्न है ऐसा हम क्यों न विश्वास करें ? भावार्थ—आपके मस्तकके ऊपर आकाशमें जो देवोंने तीन छत्र लगा रखे हैं वे ऐसे मालूम होते हैं मानो आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं यही सूचित कर रहे हो ॥१४२॥ देवोंके द्वारा ढुलाये हुए ये चमर तीनों जगत्को उल्लघन करनेवाले आपके अस्ताधारण ऐश्वर्यको सूचित कर रहे हैं ॥१४३॥ हे देव, ये देवरूपी भेष आपकी सभाके चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित तथा भूमरोंके समूहको बलानेवाली फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥१४४॥ हे प्रभो, आपके विजयोत्सवमें देवरूप किकरोंके हाथोंके अग्र भागसे ताडित हुए ये देवोंके दुन्दुभि वाजे आकाश रूप आगनमें गम्भीर शब्द कर रहे हैं ॥१४५॥ जिसका समीप भाग देवोंके द्वारा सेवित है अर्थात् जिनके समीप देव लोग बैठे हुए हैं और जो जनसमूहके शोक तथा सतापको दूर करने वाला है ऐसा यह अगोचरवृक्ष प्राय आपका ही अनुकरण कर रहा है क्योंकि आपका समीप भाग भी देवोंके द्वारा सेवित है और आप भी जनसमूहके शोक और सतापको दूर करनेवाले हैं ॥१४६॥ जिनने प्रातःकालके मूर्ध्नि वान्ति धारण की है और जो नेत्रोंका उत्सव बढा रही है ऐसी यह आपके कारीरकी देखीप्यमान वान्ति सभाके चारों ओर फैल रही है । भावार्थ—

१ बर्हिः । २ भुनेयीग्यो भवामि । ३ निश्वस्त्वम् । ४ रत्नवान्तिमिश्रितम् । ५ त्वत्सम्बन्धि । ६ देवरुद्रजम् । ७ त्रैलोक्यप्रभुत्वं । ८ मय न विश्वागं मूर्ध्नि । ९ नदन्त्येते सः । १० मन्तापहारि । ११ धनुर्गोवि ।

दिव्यभाषा तवाशेषभाषा भेदानुकारिणी । निरस्यति मनोऽन्तान् प्रवाचामापां देहिनाम् ॥१४८॥
 प्रातिहार्यमयी भूति इयमष्टतयी प्रभो । महिमान तवाचष्टे विस्पष्ट विष्टपातिगम् ॥१४९॥
 त्रिमेखलस्य षोडश मेरोरिव गरीयस । चूलिनेव विभास्मृच्चं सेव्या गणकुटी तव ॥१५०॥
 बन्दात्पा मूनीन्द्राणा स्तोत्रप्रतिरवेमह । स्तोत्रकामेव भक्त्या त्वा सैषा नात्यतिसमदान् ॥१५१॥
 परार्धरत्ननिर्माणाम् एनामत्यन्तभास्वराम् । स्वामध्यासीनमानम्या तावन्माजो भजन्त्यमी ॥१५२॥
 राक्षसाभययोऽमीया नम्राणा भान्ति मौलय । सदीपा इव रत्नार्था स्थापितास्तत्त्ववान्तिके ॥१५३॥
 नताना सुरकोटीना चकासत्यधिमस्तकम् । प्रसादादा इवालग्ना युष्मत्पादनलाशव ॥१५४॥
 नखदर्पणसन्नान्तिबिम्बान्मरयोपिताम् । दध्यत्यमूनि द्वक्त्राणि त्वदुपाद्गुणम्बुजधियम् ॥१५५॥
 वक्त्रेष्वमरनारोणा सन्पत्ते कुङ्कुमधियम् । मुष्मत्पादतलच्छाया प्रसरती जयाऽत्पा ॥१५६॥
 गणाध्युषितंभूभागमध्यवर्ती त्रिमेखल । पीठाद्विरयमानाति तवाविष्कृतमद्वल ॥१५७॥
 प्रयमोऽस्य परिक्षेपो धर्मचक्ररत्नद्वृत । द्वितीयोऽपि तवाऽमीभि दिव्यवृष्टासु महाध्वजे ॥१५८॥
 श्रीमण्डपनिवेशस्ते योजनप्रमितोऽप्ययम् । त्रिजगज्जनताऽज्जगत्प्रावेदोपग्रहदाम ॥१५९॥
 धूलोत्तालपरिक्षेपो नावस्तम्भान् सरासि च । सातिहा सलिलापूर्णा पत्नीवचनपरिच्छद ॥१६०॥

आपके भामण्डकी प्रभा सभाके चारो ओर फेर रही है ॥१४७॥ नमन्न भापाओंके भेदोका अनुकरण करनेवाली अर्थात् समस्त भापाओं रूप परिणत होनेवागी आपकी यह दिव्य ध्वनि जो वचन नहीं बोल सकने ऐसे पशु पक्षी आदि तिर्यञ्चोके भी हृदयमे अन्वकारको दूर कर देती है ॥१४८॥ हे प्रभो, आपकी यह प्रातिहार्यरूप आठ प्रकारकी विभूति आपकी लोकोत्तर महिमाको स्पष्ट रूपमे प्रकट कर रही है ॥१४९॥ मेरे पर्वतके ममान ऊचे तीन कटनीदार पीठपर सबके द्वारा सेवन करने योग्य आपकी यह ऊँची गन्धकुटी मेरकी चूलिकाके समान सुगोभित हो रही है ॥१५०॥ बन्दना करनेवाले उत्तम मुनियोंके स्तोत्रोंकी प्रतिध्वनिसे यह गन्धकुटी ऐसी जान पडती है मानो भक्तिवश हृत्ते आपकी स्तुति ही करना चाहती हो ॥१५१॥ हे प्रभो, जो श्रेष्ठ रत्नोमे वनी हुई और अतिमय देदीप्यमान इस गन्धकुटीमें विराजमान है ऐसे आपकी, स्वर्गमें रहनेवाले देव नम होकर सेवा कर रहे है ॥१५२॥ हे देव, जो अग्रभागमें लगे हुए मणिषोमे महित है ऐसे इन नमस्कार करते हुए देवोंके मुकुट ऐसे जान पडते है मानो आपके चरणोंके गभीर दीपकसहित रत्नोके अर्घ ही स्थापित किये गये हो ॥१५३॥ नमस्कार करते हुए करोडो देवोंके मस्तकोपर जो आपके चरणोंमे नखोंकी किरणें पड रही थी वे ऐसी सुगोभित हो रही थी मानो उनपर प्रसन्नताके अण ही लग रहे हो ॥१५४॥ आपके नखरूपी दर्पणमें जिनका प्रतिबिम्ब पड रहा है ऐसे ये देवागनाओंके मुम आपके चरणोंके समीपमें कमलोकी गोभा धारण कर रहे है ॥१५५॥ जवाके फूलके समान लाल वर्ण जो यह आपके पैरोंके तलवोनी कान्ति फेर रही है वह देवागनाओंके मुक्तोपर कुङ्कुमकी गोभा धारण कर रही है ॥१५६॥ जो वारह सभाजोमे बरी हुई पृथिवीमें मध्यभागमें वर्तमान है और जिनपर अनेक मङ्गाद्रव्य प्रकट हो रहे है ऐसा यह तीन कटनीदार आपका पीठरूपी पर्वन बहुत ही अधिक सुगोभित हो रहा है ॥१५७॥ इन पीठकी पहरी परिधि धर्मचक्रोंमे अलट्टन है और दूसरी परिधि भी आठो दिशाओंमें फहरानी हुई आपकी इन बडी बडी ध्वजाओंमे सुगोभित है ॥१५८॥ यद्यपि आपने श्रीमण्डपकी रचना एक ही योजन रम्बो-चौडी है तथापि वह तीनों जगत्मे जनममूहके निरन्तर प्रवेश कराने रहने रूप उपकार में समर्थ है ॥१५९॥ हे प्रभो यह धूलोत्ताली परिधि, ये मानस्तेम्भ, मेरोवर, स्वच्छ जलसे भरी हुई परिखा, लना-

१ त्रिजगाम । २ तव पादगमोमे । ३ दादा-नम्यिन । ४ उपरादग । त्रिजगज्जनाना एगानदाने गमय इत्यथ ।

सालत्रितयमस्तद्गणयतुर्गोपुरमष्टितम् । मङ्गलद्रव्यसन्दोहो नियमस्तोरणनि ध ॥१६१॥
 १ नाट्यशालाद्वयं दीर्घं ससद्भूपघटीद्वयम् । धनराजिपरिक्षेपद्वयद्रुमपरिच्छृतम् ॥१६२॥
 वनवेदोद्वयं प्रोक्ष्यैर्ध्वजमालासतावनि । कल्पद्रुमवनाभोगाः स्तूपहृत्पर्वसीतप्यि ॥१६३॥
 सदोऽग्निपरियं देव नृसुरासुरपावनो । त्रिजगत्सारसन्दोह इयं कत्र निवेद्यतः ॥१६४॥
 बर्हिर्विभूतिरित्युच्चैः श्राविष्टतमहोदयाः । लक्ष्मीमाध्यात्मिणीं ध्वजतं ध्यनक्ति जिन सायकीम् ॥१६५॥
 सभापरिच्छदः सोऽयं सुरस्तव विनिमित्तः । धराभ्यातिशयं नाय नोपहृत्यप्रतपितः ॥१६६॥
 इत्यत्यद्भुनमाहात्म्यः त्रिजगद्वल्लभो भवान् । स्तुत्योपतिष्ठमानं मां पुनोतात्पूतयासत् ॥१६७॥
 अत्र स्तुतिप्रपञ्चेन तवाधित्यतमा गुणाः । जपेशान नमस्तुभ्यमिति सङ्क्षेपतः स्तुवे ॥१६८॥
 जपेश जय निर्दग्धकर्मधनजगज्जर । जय लोकगुरो सार्वं जयताज्जय जित्वर ॥१६९॥
 जय लक्ष्मीपते जिष्णो जयानन्तगुणोज्ज्वल । जय विश्वजगद्वन्धो जय विश्वजगद्वि ॥१७०॥
 जयाखिलजगद्वेदिन् जयाखिलासुखोदय । जयाखिलजगद्व्येष्ट जयाखिलजगद्गुरो ॥१७१॥
 जय निर्जितमोहारे जय तजितमन्मथ । जय जन्मजरातङ्कविजयिन् विजितान्तक ॥१७२॥

वनोका समूह—ऊँचे ऊँचे चार गोपुर, दरवाजोसे सुशोभित तीन कोट, मङ्गल द्रव्योवा समूह, निधिमा, तोरण—दो-दो नाट्यशालाएँ, दो-दो सुन्दर धूप घट, चैत्यवृक्षोसे सुशोभित वन पवित्रयोकी परिधि—दो वनवेदी, ऊँची ऊँची ध्वजाओकी पवित्रसे भरी हुई पृथिवी, कल्पवृक्षो के बनका विस्तार, स्तूप और मकानोकी पवित्र—इस प्रकार मनुष्य देव और धरणेन्द्रोकी पवित्र करनेवाली आपकी यह सभामूमि ऐसी जान पडती है, मानो तीनों जगत्की अच्छी अच्छी वस्तुओका समूह ही एक जगह इकट्ठा किया गया हो ॥१६०—१६४॥ हे जितेन्द्र, जिससे आपका महान् अभ्युदय या ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसी यह आपकी अतिशय उत्कृष्ट वाह्य विभूति आपकी अन्तरङ्ग लक्ष्मीको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रही है ॥१६५॥ हे नाथ, जिसके विषयमें कोई तर्क-वितर्क नहीं कर सकता ऐसी यह देवोके द्वारा रची हुई आपके समवसरणकी विभूति आपके वैराग्यके अतिशयको नष्ट नहीं कर सकती है । भावार्थ—समवसरण सभाकी अनुपम विभूति देखकर आपके हृदयमें कुछ भी रागभाव उत्पन्न नहीं होता है ॥१६६॥ इस प्रकार जिनकी अद्भुत महिमा है, जो तीनों लोकोके स्वामी हैं, और जिनका शासन अतिशय पवित्र है ऐसे आप स्तुतिके द्वारा उपस्थान (पूजा) करनेवाले मुझे पवित्र कीजिये ॥१६७॥ हे भगवन्, आपकी स्तुतिका प्रपञ्च करना व्यर्थ है क्योंकि आपके गुण अत्यन्त अचिन्त्य हैं इसलिये मैं सक्षेपसे इतनी ही स्तुति करता हूँ कि हे ईशान, आपकी जय हो और आपको नमस्कार हो ॥१६८॥ हे ईश, आपकी जय हो, हे कर्मरूप ईधनको जलानेवाले, आपकी जय हो, हे जरारहित, आपकी जय हो, हे लोकोके गुरु, आपकी जय हो, हे सबका हित करने वाले, आपकी जय हो, और हे जयशील, आपकी जय हो ॥१६९॥ हे अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी जयननीन्द, आपकी जय हो । हे अनन्तगुणोसे उज्ज्वल, आपकी जय हो । हे समस्त जगत् के धनु, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्का हित करनेवाले, आपकी जय हो ॥१७०॥ हे गममन् जगत्को जाननेवाले, आपकी जय हो । हे समस्त सुखोको प्राप्त करनेवाले, आपकी जय हो । हे गमस्त जगत्में श्रेष्ठ, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्के गुरु, आपकी जय हो ॥१७१॥ हे मोहहारी शत्रुको जीतनेवाले, आपकी जय हो । हे कामदेवको भर्त्सना करने

१ अष्टवक्र. 'परिचारे विनूपणम्' इत्यभिधानात् । २ नवाभोग ६०, ६०, । ३ समवसरण-
 भूमि । ४ न नागयति । ५ उदातीति उरिनुमराय इत्ययं । ६ स्तोत्रेणाचंयनम् । ७ पवित्र कुर ।
 ८ त्रयनीप ।

जय निर्मल निर्माय जय निर्मोह निर्मम । जय निर्मल निर्द्वन्द्व जय निष्कल^१ पुष्कल ॥१७३॥
 जय प्रबुद्ध सन्मार्ग जय दुर्मार्गरोधन । जय कर्मारिमर्माविद्ध^२ भ्रमचक्र जयोद्भुर^३ ॥१७४॥
 जयाध्वरपते यज्वन् जय पूज्य महोदय । जयोद्भुर जयाविग्द^४ तद्धर्मरथतारथे ॥१७५॥
 जय निस्तीर्थसत्तारपाशवारगुणाकर । जय नि शोयनिर्धोतविद्यारस्ताकर प्रभो ॥१७६॥
 नमस्ते परमानन्तसुखरूपाय तायिने^५ । नमस्ते परमानन्दमयाय परमात्मने ॥१७७॥
 नमस्ते भुवनोदभासितानभाभारभासिने^६ । नमस्ते नयनानन्दिपरमोदारिकत्विये ॥१७८॥
 नमस्ते मस्तकन्यस्तस्वहस्ताञ्जलिकुड्मलं । स्तुताय निदशाधीशं स्वर्गावतरणोत्सवे ॥१७९॥
 नमस्ते प्रचलन्मौलिघटिताञ्जलिबन्धनं । नृताय^७ मेरुशंताप्रस्ताताय सुरसत्तमं ॥१८०॥
 नमस्ते मुकुटोपाप्रलम्बहस्तपुटोद्भटं^८ । लोकान्तिकैरघोष्टाय^९ परिनिष्क्रमणोत्सवे ॥१८१॥
 नमस्ते स्वकिरोटाप्ररत्नप्राधान्तचुम्बिभि । कराब्जमुकुलं प्राप्तकेवलेश्याय भाकिनाम् ॥१८२॥
 नमस्ते पारनिर्वाणकल्याणेषुपि प्रवत्स्यति^{१०} । पूजनीयाय वह्नीन्द्रैर्वल्लभमुकुटोदिभि ॥१८३॥

वाले, आपकी जय हो । हे जन्मजरारूपी रोगको जीतनेवाले, आपकी जय हो । हे मृत्युको जीतनेवाले, आपकी जय हो ॥१७२॥ हे मदरहित, मायारहित, आपकी जय हो । हे मोह रहित, ममतारहित, आपकी जय हो । हे निर्मल और निर्द्वन्द्व, आपकी जय हो । हे शरीर-रहित, और पूर्ण ज्ञानसहित, आपकी जय हो ॥१७३॥ हे समीचीन मार्गको जाननेवाले, आपकी जय हो । हे मिथ्या मार्गको रोकनेवाले, आपकी जय हो । हे कर्मरूपी शत्रुभोके मर्मको वेधन करनेवाले, आपकी जय हो । हे धर्मचक्रके द्वारा विजय प्राप्त करनेमें उत्कट, आपकी जय हो ॥१७४॥ हे यज्ञके अधिपति, आपकी जय हो । हे कर्मरूप ईश्वरको ध्यानरूप अग्नि में होम करनेवाले, आपकी जय हो । हे पूज्य तथा महान् वैभवको धारण करनेवाले, आपकी जय हो । हे उत्कृष्ट दयारूप चिह्नसे सहित तथा हे समीचीन धर्मरूपी रथके सारथि, आपकी जय हो ॥१७५॥ हे सत्ताररूपी समुद्रको पार करनेवाले, हे गुणोकी खानि, आपकी जय हो । हे समस्त विद्यारूपी समुद्रका पान करनेवाले, हे प्रभो, आपकी जय हो ॥१७६॥ आप उत्कृष्ट अनन्त सुखरूप हैं तथा सबकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिये आपको नमस्कार हो । आप परम आनन्दमय और परमात्मा हैं इसलिये आपको नमस्कार हो ॥१७७॥ आप समस्त लोवको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानकी दीप्तिके समूहमें देदीप्यमान हो रहे हैं इसलिये आपको नमस्कार हो । आपके परमोदारिक शरीरकी कान्ति नेत्रोको आनन्द देनेवाली है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥१७८॥ हे देव, स्वर्गावतरण अर्थात् गर्भकल्याणकके उत्सवके समय इन्द्रोने अपने हाथों की अञ्जलिरूपी विना खिले कमल अपने मस्तकपर रखकर आपकी स्तुति की थी इसलिये आपको नमस्कार हो ॥१७९॥ अपने नमू हुए मस्तकपर दोनो हाथ जोड़कर रखनेवाले उत्तम उत्तम देवोने जिनकी स्तुति की है तथा सुमेरु पर्वतके अग्रभागपर जिनका जन्माभिषेक किया गया है ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥१८०॥ दीक्षाकल्याणकके उत्सवके समय अपने मुकुट के समीप ही हाथ जोड़कर लगा रखनेवाले लोकान्तिक देवोने जिनका अधिष्ठान अर्थात् स्तुति की है ऐसे आपके लिये नमस्कार हो ॥१८१॥ अपने मुकुटके अग्रभागमें रगे हुए रत्नोंका चुम्बन करनेवाले देवोके हाथरूपी मुकुलित कमलोके द्वारा जिनके केवलज्ञानकी पूजा की गई है ऐसे आपके लिये नमस्कार हो ॥१८२॥ हे भगवन्, जब आपका मौक्षकल्याणक होगा

१ शरीरबन्धनरहित । २ मम विध्यति ताडयतीति मर्मावित्त सस्य सम्बुद्धि । 'निहृत्विष्यि ध्यधितसहितनिषचि श्वो कारकस्वेति' दीप । ३ उदभट । ४ दमाचिह् ५०, ल०, ६०, अ०, प०, स० । ५ पालकाय । ६ ज्ञानकिरणसमूहप्रवासिने । ७ स्तुताय । ८ भ्रमद्वि सपर्य या । ९ अधिकमिष्टाय सत्तारानुमतायेत्यर्थ । १० भाविनि ।

नमस्ते प्राप्तकल्याणमहेज्याय महीजते । प्राज्यत्रलोक्यराज्याय ज्यायसे ज्यायसामपि ॥१८४॥
 नमस्ते नननाकी इक्ष्वाररत्नाचिताइपये । नमस्ते दुर्जघारातिनिर्जयोपाजितश्रिये ॥१८५॥
 नमोऽम्बु तुम्भमिडद्धे सपर्यामहंते^१ पराम् । रहोरजोऽरिघाताच्च^२ प्राप्ततन्नामहृद्ये^३ ॥१८६॥ •
 जितान्तर नमस्तुभ्य जितमोह नमोऽस्तु ते । जितानद्भ्य नमस्ते स्ता^४द् विरागाय स्वयम्भुवे ॥१८७॥
 त्वा नमस्त्यन्^५ जनेनमं नम्यते सृष्टी पुमान् । गा जयेज्जितजेत^६व्यस्त्वज्जयोद्घोषणात्कृती ॥१८८॥
 त्वत्नुते पूतवागस्मि त्वत्सृते पूतमानस^७ । त्वन्नते पूतदेहोऽस्मि घम्योऽस्म्यद्य त्वदीक्षणात् ॥१८९॥
 अहमद्य वृतायोऽस्मि जन्माद्य सफल भम । सुनिर्वृत्ते^८ दूशो मेऽद्य सुप्रसन्न मनोऽद्य मे ॥१९०॥
 त्वतीर्षसरसि त्वच्छ्रे पुष्यनोयसुसम्भृते । सुस्नातोऽहं चिरादद्य पूतोऽस्मि सुखनिर्वृत्त^९ ॥१९१॥
 त्वत्पादवत्सनाजातसतिनेरस्तवन्मये । अयिमस्तकमालान्नेरभिषिक्त इवास्यहम् ॥१९२॥
 एवम सार्वभौमश्रो इयमप्रतिशासना । एकदश भवत्पादसेवालोके कपावनी ॥१९३॥

यद्दिग्भ्रान्तिविमूढेन महदेनो मयार्जुनम् । तत्त्वत्सन्दर्शनात्सोऽनं तमो नंदा रवेयया ॥१६४॥
त्वत्पदसन्निभेण पुमानेति पवित्रताम् । विभुन त्वद्गुणस्तुत्या भक्त्यैव सुप्रयुक्त्या ॥१६५॥
भगवत्स्वद् गुणस्तोत्राद्यन्मया पुष्यमार्जुनम् । तेनास्तु त्वत्पदान्नोजे परा भक्ति सदापि मे ॥१६६॥

वसन्ततिलकाष्टुत्तम्

इत्य चरावरगुरु परमादिदेव स्तुत्वाऽधिराट् धरणिपं समिद्धबोध ।
घानन्दवाप्यसवसिक्तपुर-प्रदेशो भक्त्या ननाम करकृद्भ्रमरसनयोति ॥१६७॥
श्रुत्वा पुराणपुरायाच्च पुराणधर्मं कर्मारिचक्रजयलघ्विद्भुद्धबोधान् ।
सम्प्रीतिमाप परमा भरताधिराज प्रायो धृति कृतधिया स्वहितप्रवृत्तौ ॥१६८॥
श्रामुच्छ्रय च स्वगुरुमादिगुरु निषीसो व्याजोत्तमोऽलिनदताडितपादरपोऽ ।
भूयोऽनुगम्य च मनीन् प्रणतेन मूर्ध्ना स्वावाप्तभूमिमभिण-नुमना बभूव ॥१६९॥
भक्त्यापिता श्रजमिवाधिपद जिनस्य स्वा दृष्टिमन्वितलसत्सुमनोविकासाम् ।
शेषास्यर्धवं च पुनर्विनित्यं कृच्छ्यात् चकाधियो जिनमभानवनात्प्रत्ये ॥२००॥

समस्त लोकको पवित्र करनेवाली आपके चरणोक्ति सेवा प्राप्त हुई है ॥१९३॥ हे भगवन्, दिग्भाभूम होनेसे विमूढ होकर अथवा दिग्विजयके लिये अनेक दिशाओमें भ्रमण करनेके लिये मुग्ध होकर मैंने जो कुछ पाप उपाजंन किया था वह आपके दर्शन मात्रसे उस प्रकार विलीन हो गया है जिस प्रकार कि मयके दर्शनसे रात्रिका अन्धकार विलीन हो जाता है ॥१९४॥ हे देव, आपके चरणोक्ते स्मरणमानने ही जब मनुष्य पवित्रताको प्राप्त हो जाता है तब फिर इस प्रकार भक्तिसे की हुई आपके गुणोंकी स्तुतिमें क्यों नहीं पवित्रताको प्राप्त होगा ? अर्थात् अवश्य ही होगा ॥१९५॥ हे भगवन्, आपके गुणोंकी स्तुति करनेसे जो मैंने पुण्य उपाजंन किया है उसमें यही चाहता हूँ कि आपके चरणकमलोंमें भरी भक्ति मदा बनी रहे ॥१९६॥ इस प्रकार चर अचर जीवोंके गुरु सर्वोत्कृष्ट भगवान् वृषभदेवको नमस्कार कर जिनसे आनन्द के आँसुओंकी बूदोंसे सामनेका प्रदेश सींच दिया है, जिसका ज्ञान प्रवागमान हो रहा है और विष्णुसे, दोनो, ब्रह्म, चोरेन्द्र, आपने, मन्त्रकसे, नरक, रखे, है, ऐसे, चक्रवर्ती, भरतने, अश्विभूमिक, भगवान्, को नमस्कार किया ॥१९७॥ कर्मन्पी शत्रुओंके समूहको जीतनेसे जिन्हें विगुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐंसे पुराण पुरुष भगवान् वृषभदेवसे पुरातन धर्मका स्वरूप सुनकर भरताधिपति महाराज भरत बड़ी प्रमत्तताको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंको प्राय अपना हित करनेमें ही मन्तोप होना है ॥१९८॥ तदनन्तर अपने चञ्चल मुकुटके दिनारसे जिन्होंने भगवान्के पाद पीठका स्पर्श किया है ऐंसे निधियोंके स्वामी भरत महाराज अपने पिता आदिनाथ भगवान्से पृच्छर तथा बड़ी विराजमान अन्य मुनियोंको नमू हुए मन्तकसे नमस्कार कर अपनी निवासभूमि अयोध्याको जानेके लिये तत्पर हुए ॥१९९॥ चप्राधिपति भरतने जिनमें अनुक्रमसे विले हुए सुन्दर पञ्च गुधे हुए हैं और जो श्री जिनन्द्रदेवके चरणोंमें भक्तिपूर्वक अर्पित की गई हैं ऐंसी मालाके समान, सुन्दर मनकी प्रसन्नतासे युक्त अपनी दृष्टिको शेषाशत समस्त बड़ी बठिनाईसे हटाकर भगवान्के सभानवन अर्थात् समवसरणसे प्रन्यान किया ॥२००॥

१ दिग्विजयभूमिमूढेन । २ महत्पापम् । ३ नरकम् । ४ आदिजयम् । ५-मार्जुनम् १० ।
६ घाननमनाविकागाम्, मुमुष्पाविकागाम् । ७ विदग्धेयाम्पदा ।

श्रालोकयन् जिनसभायनिभूतिमिद्धां विस्फारितेक्षणयुगो युगवीर्यवाटुः ।
 पृथ्वीश्वरंरनुगत. प्रणतोत्तमाङ्गः प्रत्यायुतत्स्यसदन भनुयश्वेतुः ॥२०१॥
 पुण्योदयान्निधिपतिविजिताखिलाशस्तभिजितो' गमितपट्टितामा'सहस्रः ।
 प्रीत्याऽभिवन्द्य जिनमाप पर प्रमोद 'तत्पुण्यसद्ग्रहविधो सुधियो यतप्यम्' ॥२०२॥

इत्याप्यं भगवज्जिनसेनाचार्यंप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराण-
 सद्ग्रहे भरतराजकंलासाभिगमनयणं नाम
 श्रवस्त्रिशतनं पवं ॥ ३३ ॥

भगवान्के समवसरणकी प्रकाशमान विभूतिको देखनेसे जिनके दोनों नेत्र खुल रहे हैं, जिनकी भुजाये युग (जुवाँरी)के समान लम्बी है, मस्तक भुकाये हुए अनेक राजा लोग जिनके पीछे पीछे चल रहे हैं और जो कुलकरोके वशकी पताकाके समान जान पडते हैं ऐसे भरत महाराज अपने घरकी ओर लौटे ॥२०१॥ चूकि पुण्यके उदयसे ही चक्रवर्तीने समस्त दिशाएं जीती, तथा उनके जीतनेमें साठ हजार वर्ष लगाये और फिर प्रीतिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी नमस्कार कर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त किया । इसलिये हे बुद्धिमान् जन, पुण्यके सग्रह करनेमे प्रयत्न करो ॥२०२॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यंप्रणीत त्रिपट्टि लक्षण महापुराण सग्रहके भाषानुवादमे भरतराजका कंलाश पर्वतपर जानेका वर्णन करनेवाला तैतीसवा पर्व समाप्त हुआ ।

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

प्रयागवदह्यं^१ कंलासाद् अग्नीन्द्रादिव^२ देवराट् । चक्रो प्रयागनकरोद् विनीताभिमुखं कृत्वा ॥१॥
 तंन्यरद्गुप्तो रेजे^३ प्रयागचक्रो निजालयम् । गच्छगीषं^४ इव दुर्वारं सरिदोर्परंपाप्यति ॥२॥
 ततः कतिपर्येदेव प्रयागंश्चक्रिणो बलम् । अयोध्यां प्रापदावद्धतोरणा चित्रकैतनाम् ॥३॥
 चन्दनद्रवससिक्तमुसम्पृष्टं^५ महीतसा । पुरीं स्नातानुलिप्तेव सा रेजे पर्युरागमे ॥४॥
 नातिदूरे^६ निविष्टस्य प्रवेशसमये प्रभो^७ । चक्रमस्तारि चक्रं च नाकस्तं पुरगोपुरम् ॥५॥
 सा पुरी गोपुरोन्नतस्थितचक्राद्गुरञ्जिता । घृतकन्ध्यातपेवासीत् कुट्टकुमापिञ्जरच्छदि ॥६॥
 सत्यं भरतराजोऽयं घोरेयश्चक्रिणामिति । घृतदिव्यैव^८ सा जज्ञे ज्वलच्चक्रा पुरं^९ पुरी ॥७॥
 ततः कतिपर्ये^{१०} देवाश्चक्रत्नाभिरक्षिण । स्थितमेकपदे^{११} चक्रं घोटेय विस्मयमाययु ॥८॥
 सूर्यो जगतश्च केचिन्किन्मिन्द्रश्चरद्गिरिः । शलातचक्रश्च^{१२} द्वाभ्रेभ्युः करवालापितं करं ॥९॥
 किमम्बरयथैभिम्बाम्बरात्परिलम्बते । प्रतिभूयं किमुद्भूत इत्यथे^{१३} भ्रुमुद्भूतं ॥१०॥

अथानन्तर—सुमेरु पर्वतसे इन्द्रकी तरह कौलाम पर्वतसे उतरकर उस बुद्धिमान् चक्रवर्ती
 ने अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया ॥१॥ मेनाके साथ-साथ अपने घरकी ओर प्रस्थान करता
 हुआ चक्रवर्ती ऐसा सुशोभित होता था मानो नदियोंके समूहके साथ किसीसे न रुकनेवाला
 गङ्गाका प्रवाह समुद्रकी ओर जा रहा हो ॥२॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम तय कर चक्रवर्ती
 की वह सेना जिसमें तोरण बंधे हुए हैं और अनेक ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसी अयोध्या नगरी
 के समीप जा पहुँची ॥३॥ जिसकी वृहदारकर साफ की हुई पृथिवी घिसे हुए गीले चन्दनसे
 सींची गई है ऐसी वह अयोध्यानगरी उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो उसने
 पतिके आनेपर स्नान कर चन्दनका लेप ही किया हो ॥४॥ महाराज भरत नगरीके समीप ही
 ठहरे हुए थे वहाँसे नगरीमें प्रवेश करते समय जिसने समस्त शत्रुओंके समूहको नष्ट कर दिया
 है ऐसा उनका चक्ररत्न नगरके गोपुरद्वारको उल्लंघन कर आगे नहीं जा सका—बाहर ही
 रुक गया ॥५॥ गोपुरके समीप रुके हुए चक्रकी किरणोंसे अनुरक्त होनेके कारण जिसकी
 वान्ति कुकुमके समान कुछ कुछ पीली हो रही है ऐसी वह नगरी उस समय इस प्रकार जान
 पड़ती थी मानो उसने सध्याकी लालिमा ही धारण की हो ॥६॥ जिसके आगे चक्र-
 रत्न देदीप्यमान हो रहा है ऐसी वह नगरी उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो यह भरतराज
 सचमुच ही सब चक्रवर्तियोंमें मुख्य है इसलिये उसने दिव्य शक्ति धारण की हो अथवा अपनी
 वातकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिये उसने तप्त अयोगोलक आदिको धारण किया हो ॥७॥
 तदनन्तर चक्ररत्नकी रक्षा करनेवाले कितने ही देव चक्रको एक म्यानपर खड़ा हुआ देव
 कर आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥८॥ जिन्हें श्रेय उत्पन्न हुआ है ऐसे कितने ही देव, क्या है ?
 क्या है ? इस प्रकार चिन्तने हुए हाथमें तलवार लेकर अलातचक्रकी तरह चारों ओर
 घूमने लगे ॥९॥ क्या यह आनागमे मूर्खका त्रिभुज लटक पड़ा है ? अथवा कोई दूसरा ही
 सूर्य उदित हुआ है ? ऐसा विचार कर कितने ही लोभ धार धार मोहित हो रहे थे ॥१०॥

१ अवीर्यं । २ मेरो । ३ गच्छन् । ४ गच्छगीषं ३०, १ । ५ मृत्सम्माजितं । ६ गमये ।
 ७ किमो ३०, २० । ८ प्रवेगं नाकरात् । ९ पुरगानुरे २०, ३० । १० परय । ११ अग्रभागे ।
 १२ नेचन । १३ युगत् मपदि वा । १४ चक्रवन्नाप्याग्निभ्रुमागवत् । १५ मृत्त्वन्ति स्म ।

कस्याप्यकालचक्रेण^१ पतितव्यं^२ विरोधिन । क्रूरेणैव ग्रहेणाद्य यतश्चक्रेण वक्रितम् ॥११॥
 श्रययाद्यापि जेतव्यं^३ पक्ष कोऽप्यस्ति चक्रिण । चक्रस्खलनत कंश्चिदित्य तज्ज्योतिरकितम् ॥१२॥
 सेनानिप्रमुखास्तावत् प्रभवे^४ तन्पुत्रेदयन् । तद्वाताऽऽकर्णनाच्चक्रो किमप्यासीत्सर्वित्तमय ॥१३॥
 अचिन्तयच्च किं नाम चक्रमप्रतिशासने । मपि स्थितेस्खलत्यद्य क्वचिदप्यस्खलद्गति ॥१४॥
 सम्प्रधार्यमिदं^५ तावदित्याह्य पुरोधसम । धीरो धीरतरा वाचमित्युच्चैराजगो मनु ॥१५॥
 बदनोऽस्य मुखान्भोजाद् व्यक्ताकृता^६ सरस्वती । निर्णयौ सदलङ्कारा शम्फलोव^७ जयश्रिय ॥१६॥
 चत्रमाशान्तदिक्चक्रम् अरिचक्रभयङ्करम् । कस्मान्नास्मत्पुरद्वारि क्रमते न्यक्कृताकंरुक् ॥१७॥
 विश्वदिग्विजये पूर्वदक्षिणापरवार्द्धियु । यदासीदस्खलद्भवति रूप्याद्रेश्च गुहाद्वये ॥१८॥
 चक्र तद्दधुना कस्मात् स्खलत्यस्मद्गुहाङ्गणे । प्रायोऽस्माभिर्विरुद्धेन भवितव्य जिगोपुणा ॥१९॥
 किमसाध्यो द्वियत्कश्चिदस्त्यस्मद्भक्तिगोचरे^८ । सनाभि^९ कोऽपि किं वाऽस्मान् द्वेषि दुष्टान्तराश्रय ॥२०॥
 य कोऽप्यकारणद्वेषो खलोऽस्मान्नाभिनन्वति । प्राय स्खलन्ति चेतांसि महत्स्वपि दुरात्मनाम् ॥२१॥
 विमत्तराणि चेतांसि महता परवृद्धिपु । मत्सरोणि तु तान्येव क्षुद्राणामन्यवृद्धिपु ॥२२॥
 श्रयवा दुर्मदाविष्ट कश्चिदप्रणतोऽस्ति मे । स्ववर्ग्यस्तन्मदोच्छ्रयं^{१०} नून चक्रेण वक्रितम् ॥२३॥

आज यह चक्र क्रूरग्रहके समान वक्र हुआ है इसलिये अकालचक्रके समान किसी विरोधी शत्रु पर अवश्य ही पड़ेगा ॥११॥ अथवा अब भी कोई चक्रवर्तीके जेतव्य पक्षमें है—जितने योग्य शत्रु विद्यमान है इस प्रकार चक्रके एक जानेसे चक्रके स्वरूपको जाननेवाले कितने ही लोग विचार कर रहे थे ॥१२॥ सेनापति आदि प्रमुख लोगोंने यह बात चक्रवर्तीसे कही और उसके मुनते ही वे कुछ आश्चर्य करने लगे ॥१३॥ वे विचार करने लगे कि जिसकी आज्ञा कही भी नहीं रक्ती ऐंसे मेरे रहते हुए भी, जिसकी गति कही भी नहीं रक्ती ऐसा यह चक्ररत्न आज क्यों रू रह रहा है ? ॥१४॥ इस बातका विचार करना चाहिये यही सोचकर धीर वीर मनु ने पुरोहितको बलाया और उससे नीचे लिखे हुए बहुत ही गम्भीर वचन कहे ॥१५॥ कहते हुए भरत महाराजके मुखकमलसे स्पष्ट अभिप्रायवाली और उत्तम उत्तम अलवारोसे सजी हुई जो वाणी निबल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो विजयलक्ष्मीकी दूती ही हो ॥१६॥ जितने ममत्न दिशाओके समूहपर आक्रमण किया है जो शत्रुओके समूहके लिये भयकर है और जितने मूर्खकी विरणोवा भी तिरस्कार कर दिया है ऐसा यह चक्र मेरे ही नगरके द्वारमें क्यों नहीं आगे बढ़ रहा है—प्रवेश कर रहा है ? ॥१७॥ जो समस्त दिशाओको विजय करनेमें पूर्व-दक्षिण और पश्चिम समुद्रमें कही नहीं रक्ता, तथा जो विजयार्थकी दोनो गुफाओंमें नहीं रक्ता यही चक्र आज मेरे परके आगनमें क्यों रू रह रहा है ? प्राय मेरे साथ विरोध रखनेवाला षोडश विजिगीषु (जोषी इच्छा करनेवाला) ही होना चाहिये ॥१८—१९॥ क्या मेरे उपभोगके योग्य क्षेत्र (राज्य) में ही कोई अमाध्य शत्रु मौजूद है अथवा दुष्ट हृदयवाला मेरे गोत्र वा ही षोडश पुत्र मुझमें द्वेष करता है ॥२०॥ अथवा बिना कारण ही द्वेष करनेवाला कोई दुष्ट पुत्र मेरा अभिनन्दन नहीं कर रहा है—मेरी वृद्धि नहीं सह रहा है सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट पुत्रोंके हृदय प्राय कर बड़े आदमियोंपर भी विगड जाते हैं ॥२१॥ महापुरणोंके हृदय दूगरोकी वृद्धि होनेपर मागर्गमें रहित होने हैं परन्तु क्षुद्र पुत्रोंके हृदय दूगरोकी वृद्धि शरीरपर इंगी रहित होने हैं ॥२२॥ अथवा दुष्ट अहंकारमें पिग हुआ कोई मेरे ही घरका

१ अमर्गना । २ पतितम् मत्प्राप्तमय्य । ३ जेतव्यम् म०, २० । ४ चक्रिणे । ५ विचयम् ।
 ६ व्यक्ताकृता । ७ शम्फलोव । ८ भक्तिगोचरे । ९ मतिपुत्र । 'मतिपुत्रानु गतामय' इत्यभिप्राय ।
 १० अमर्गमो भव ।

खलुपेक्ष्य^१ लघोया^२ नप्युच्छेद्यो लघु^३ तादृशः । सुदो रेणुरिवाक्षित्यो ह^४ जत्यरिखेक्षितः ॥२४॥
 वलादुद्धरणीयो हि क्षोदीयानर्पि^५ कण्डकः । अनूद्धतः पदस्योऽतो भवेत्प्राञ्जको^६ भृशम् ॥२५॥
 चक्र नाम परं दैवं रत्नानामिदमग्रिमम् । गतिस्खलनमेतस्य न विना करणाद् भवेत् ॥२६॥
 ततो बाल्यमिदं कार्यं यच्चक्रेणार्थं सूचितम् । सूचिते^७ खलु राज्याद्यमे^८ विकृतिर्नाल्पकारणात् ॥२७॥
 तदत्र कारणं चित्तं त्वया धीमन्निदन्त्या^९ । अनिरूपित^{१०} कार्यार्थानां नेह नामुत्र सिद्धयः ॥२८॥
 त्वयोद कार्ष्णिगतान् तिष्ठते^{१०} दिव्यचक्षुषि । तमसां छेदने कोऽप्यः प्रभवद्वेदनाग्निनः ॥२९॥
 निवेद्य कार्ष्णमित्यस्मिं दैवज्ञाय^{११} मित्तक्षरैः । विरराम प्रभुः प्रायः प्रभवो मित्तभाषिणः ॥३०॥
 ततः प्रसन्नगम्भीरपदात्लक्ष्मणकोमलाम् । भारतीं भरतेशस्य प्रबोधायेति सोऽब्रवात् ॥३१॥
 अस्ति मानुष्यमस्त्योजरतदस्ति पृथ्वीतृणम् । अस्त्यर्थानुगमोऽन्यत्क^{१२} यन्नास्ति त्वद्वचोमये^{१३} ॥३२॥
 शास्त्रज्ञा ध्वनेकान्तात् नानिज्ञां कार्ययुक्तिवत् । शास्त्रप्रयोगयित् कोऽप्यस्तदस्त्वयो राजनीतिषु ॥३३॥
 त्वमादिराजो राजविस्तद्विद्यास्त्व^{१४} दुपप्रथमम्^{१५} । तद्विदस्तत्प्रयुञ्जाना, न जिह्मीमः कथं वयम् ॥३४॥

मनुष्य नम् नहीं हो रहा है, जान पड़ता है यह चक्र उसीका अहंकार दूर करनेके लिये वक्र हो रहा है ॥२३॥ शत्रु अत्यन्त छोटा भी हो तो भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, द्वेष करने वाला छोटा होनेपर भी शीघ्र ही उच्छेद करने योग्य है क्योंकि आखिरे पडी हुई धूलिकी केणिका के समान उपेक्षा किया हुआ छोटा शत्रु भी पीड़ा देनेवाला हो जाता है ॥२४॥ काटा यदि अत्यन्त छोटा हो तो भी उसे जवरदस्ती निकाल डालना चाहिये क्योंकि पैरमें लगा हुआ काँटा यदि निकाला नहीं जावेगा तो वह अत्यन्त दुःखका देनेवाला हो सकता है ॥२५॥ यह चक्ररत्न उत्तम देवस्व है और रत्नमें मुख्य रत्न है इसकी गतिका स्वलन विना किसी कारण के नहीं हो सकता है ॥२६॥ इसलिये हे आर्य, इस चक्रने जो कार्य सूचित किया है वह कुछ छोटा नहीं है क्योंकि यह राज्यका उत्तम अङ्ग है इसमें किसी अल्पकारणसे विकार नहीं हो सकता है ॥२७॥ इसलिये हे बृद्धिमान् पुरोहित, आप इस चक्ररत्नके रक्तनेमें क्या कारण है इसका अच्छी तरह विचार कीजिये क्योंकि विना विचार किये हुए कार्योंकी सिद्धि न तो इस लोकमें होती है और न परलोक हीमें होती है ॥२८॥ आप दिव्य नेत्र है इसलिये इस कार्य का ज्ञान आपमें ही रहता है अर्थात् आप ही चक्ररत्नके रक्तनेका कारण जान सकते हैं क्योंकि अन्धकारको नष्ट करनेमें सूर्यके सिवाय और कौन समर्थ हो सकता है? ॥२९॥ इस प्रकार महाराज भरत थोड़े ही अक्षरोंके द्वारा इस निमित्तज्ञानीके लिये अपना कार्य निवेदन कर चुप हो रहे सो ठीक ही है क्योंकि प्रभु लोग प्राय थोड़े ही बोलते हैं ॥३०॥ तदनन्तर निमित्तज्ञानी पुरोहित भरतेश्वरको समझानेके लिये प्रसन्न तथा गम्भीर पद और अलंकारोंसे कीमल वचन कहने लगा ॥३१॥ जो माधुर्य, जो ओज, जो पदोका सुन्दर विन्यास और जो अर्थकी सरलता आपके वचनोंमें नहीं है वह क्या किसी दूसरी जगह है? अर्थात् नहीं है ॥३२॥ हम लोग तो केवल शास्त्रको जाननेवाले हैं कार्य करनेकी युक्तियोंमें अभिन्न नहीं हैं परन्तु राजनीतिमें शास्त्रके प्रयोगको जाननेवाला आपके समान दूसरा कौन है? अर्थात् कोई नहीं है ॥३३॥ आप राजाओंमें प्रथम राजा है और राजाओंमें ऋषिके समान श्रेष्ठ होनेसे राजर्षि हैं यह राजविद्या केवल आपसे ही उत्पन्न हुई है इसलिये उसे जाननेवाले हम लोग

१ नोपेक्षणीय । २ अतिशयने लघु । ३ शीघ्रम् । ४ पीडा करोति । ५ अनिवापने सुद । ६ सुच्छुचिते । ७ चक्रे । ८ प्रतीयमानस्वरूपतया । ९ अविवाचित । १० निश्चिन भवति । ११ नैमित्तिकाय । १२ व्यवन प०, ल० । १३ तव वचन प्रपञ्चे । १४ राजविद्या । १५ त्वदुपप्रथमम् ल० । त्वया पूर्वं प्रवर्तित कार्यविज्ञानम् ।

तथापि त्वहृतोऽस्मात् सत्कारोऽनन्यगोचरः । तनोति गौरव्य लोके तत स्मो वषनुमुद्यता ॥३५॥
 इत्यनुभूतमस्माभिर्देव देवतज्ञासनम् । नास्ति क्षत्रस्य विश्रान्ति सायरोपे दिदां जये ॥३६॥
 ज्वलदधि कराल वो जंघमस्त्रमिदं तत । सस्तम्भितमियातस्यै पुरद्वारि विलम्बते ॥३७॥
 श्रतिमित्रमरोमित्र मित्रमित्रमिति श्रुति । श्रुतिमात्रे स्थिता देव प्रजासत्यव्यनुशासति ॥३८॥
 तथाप्यस्त्येव जेतव्य पक्ष कोऽपि तथापुना । योऽन्तर्गृहे वृत्तोत्थान क्रूरो रोग इवोदरे ॥३९॥
 बहिर्मण्डलमेवासीत् परिक्रातमिदं त्वया । अतर्मण्डलसशुद्धिमंनान्नाद्यापि जायते ॥४०॥
 जितजेतव्यपक्षस्य न नम्रा भ्रातरस्तव । व्यथिताश्च सजातीय विघाताय न नु प्रभो ॥४१॥
 स्वपक्षरेव तेजस्वी महानप्युपहृद्यते । प्रत्यर्कमर्ककातेन ज्वलतेदमुदाहृतम् ॥४२॥
 विबलोऽपि सजातीयो लब्ध्वा तोक्ष्य प्रतिष्कसम् । दण्ड परस्वधस्येव निबहंयति पार्ष्वधम् ॥४३॥
 भ्रातरोऽमी तथाजय्या बलिने मानशालिनः । यवीयास्तेषु धीरयो धीरो बाहुवली बली ॥४४॥
 एकाग्रशतसंख्यान्ते सोदर्या वीर्यशालिनः । प्रभोरदिगुरोर्नान्य प्रणमामं इति स्थिता ॥४५॥

आपके ही सामने उसका प्रयोग करते हुए क्यों न लज्जित हो ॥३४॥ तथापि आपके द्वारा किया हुआ हमारा असाधारण सत्कार लोकमें हमारे गौरवको बढ़ा रहा है इसलिये ही मैं कुछ कहनेके लिये तैयार हुआ हूँ ॥३५॥ हे देव, हम लोगोंने निमित्तज्ञानियोका ऐसा उपदेश सुना है कि जबतक दिग्विजय करना कुछ भी बाकी रहता है तब तक चररत्न विश्राम नहीं लेता अर्थात् चक्रवर्तीकी इच्छाके विरुद्ध कभी भी नहीं एकता है ॥३६॥ जो जलती हुई ज्वालाओं से भयकर है ऐसा वह आपका विजयी शस्त्र नगरके द्वारपर गुप्त रीतिसे रोके हुएके समान अटक कर रह गया है ॥३७॥ हे देव, आपके प्रजाका शासन करते हुए शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, और मित्रका मित्र ये शब्द केवल शास्त्रमें ही रह गये हैं अर्थात् व्यवहारमें न आपका कोई मित्र है और न कोई शत्रु ही है सब आपके सेवक हैं ॥३८॥ तथापि अब भी कोई आपके जीतने योग्य रह गया है और वह उदरमें किसी भयकर रोगके समान आपके घरमें ही प्रकट हुआ है ॥३९॥ आपके द्वारा यह बाह्यमण्डल ही आक्रान्त-पराजित हुआ है परन्तु अन्तर्मण्डलकी विशुद्धता तो अब भी कुछ नहीं हुई है । भावार्थ—यद्यपि आपने बाहरक लोगोको जीत लिया है तथापि आपके घरके लोग अब भी आपके अनुकूल नहीं हैं ॥४०॥ यद्यपि आपने समस्त शत्रु पक्षको जीत लिया है तथापि आपके भाई आपके प्रति नम्र नहीं है—उन्होंने आपके लिये नमस्कार नहीं किया है । वे आपके विरुद्ध खड़े हुए हैं और सजातीय होनेके कारण आपके द्वारा विघात करने योग्य भी नहीं है ॥४१॥ तेजस्वी पुरुष बड़ा होनेपर भी अपने सजातीय लोगो के द्वारा रोका जाता है यह बात सूर्यके सन्मुख जलते हुए सूर्यकान्त मणिके उदाहरणसे स्पष्ट है ॥४२॥ सजातीय पुरुष निर्बल होनेपर भी किसी बलवान् पुरुषका आश्रय पाकर राजा वा उम प्रवार नष्ट कर देता है जिस प्रकार निर्बल दण्ड बुल्हाडीका तीक्ष्ण आश्रय पाकर अपने सजातीय वृक्ष आदिको नष्ट कर देता है ॥४३॥ ये आपके बलवान् तथा अभिमानी भाई अजेय हैं और इनमें भी अतिनय युवा धीर वीर तथा बलवान् बाहुवली मुख्य हैं ॥४४॥ आपसे ये निग्यानवे भाई बड़े बलशाली हैं, हमलोग भगवान् आदिनायको छोड़कर और

१ विभिन्नशास्त्रम् । २ -मिवात्ययं स० इ०, अ० । -मिवाव्यक्तं प०, ल० । ३ विरट्टाचरणा । ४ बाध्यते । ५ सूर्यकान्तपापानेन । ६ उदाहरणं वृत्तम् । ७ प्रतिश्रयम् प०, ल० । सहयम् । ८ परतो । 'परत्पुत्र परस्वध' इत्यभिधानात् । ९ नाशयति (लूप बहं हिंसायाम्) । १० पृथिव्या भवम् । वृक्षं नृपञ्च । ११ कतिपयः । 'अपयजे ग्यु' कतिपयवीयाश्चरजानुजा इत्यभिधानात् । १२ एकोन-स०, ६०, ६०, ५० । १३ बाहुवलिना रक्षितं सृष्टयम् । गन्या-वृषभगनेन प्रागेव दीशावप्रहृणात् ।

तदत्र^१ प्रतिकर्त्तव्यम् आद्य चक्रधर त्वया । ऋणवर्णानिदात्रणा दीप नोपेक्षते वृती ॥४६॥
 राजन् राजन्वती भूयात् त्वयंवेप वसुन्वरा । माभूद्भ्राजवती^२ तेया भूम्ना इंराजदु स्थिता^३ ॥४७॥
 त्वयि राजनि राजोक्तिदेव नाम्ब्यर राजते । लिहे म्यते मृगेन्द्रोक्ति हरिणा विभ्यु क्यम् ॥४८॥
 देव त्वामनुवर्तन्ता भ्रातरो धृतमत्सरा । ज्येष्ठस्य कालमूह्यस्य शास्त्रोक्तमनुवर्तनम् ॥४९॥
 तच्छासनहरा^४ गत्वा सोपायमुपजप्य तान् । त्वदातानुवदान् कुमुविगृह्य^५ ब्रुपुरन्मया ॥५०॥
 मिथ्यामदोद्धत षोडपि नोपेयाद्यदि ते वसाम् । स नाशयेद्भ्रतात्मानम् आत्मगृह्य^६ च राजकम् ॥५१॥
 राज्य कूलकलत्र च नेष्ट साधारण^७ द्वयम् । भुङ्क्ते सार्द्धं परयंस्तन्न^८ नर पशुरेव स ॥५२॥
 किमत्र बहनोक्तेन त्वामित्य प्रणमन्तु ते । यान्तु वा शरण देव त्राहार जगता जिनम् ॥५३॥
 न तृतीया गतिस्तेषामेवंया^९ द्वितयो गति^{१०} । प्रविशन्तु त्वदास्थान वन बामो मृगं तमम् ॥५४॥
 स्वकुला-धूमकानीव^{११} दहन्त्यननुवर्तनं । अनुवर्तीनि तायेव नेत्रस्थानन्द्य परम्^{१२} ॥५५॥

किसीको प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा वे निश्चय कर बैठे हैं ॥४५॥ इसलिये हे चक्रधर, आपको इस विषयमें शीघ्र ही प्रतिवार करना चाहिये क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ऋण, घाव, अग्नि और शत्रुके वाकी रहे हुए थोड़े भी अशकी उपेक्षा नहीं करते हैं ॥४६॥ हे राजन्, यह पृथिवी केवल आपके द्वारा ही राजन्वती अर्थात् उत्तम राजासे पालन की जानेवाली हो, आपके भाइयों के अधिक होनेसे अनेक राजाओंके सम्बन्धसे जिसकी स्थिति विगड गई है ऐसी होकर राजवती अर्थात् अनेक साधारण राजाओंसे पालन की जानेवाली न हो। भावार्थ—जिस पृथिवीका शासक उत्तम हो वह राजन्वती कहलाती है और जिसका शासक अच्छा न हो, नाम मानका ही हो वह राजवती कहलाती है। पृथिवीपर अनेक राजाओंका राज्य होनेसे उसकी स्थिति छिन्न भिन्न हो जाती है इसलिये एक आप ही इस रत्नमयी वसुधराके शासक हो, आपके अनेक भाइयोंमें यह विभक्त न होने पावे ॥४७॥ हे देव, आपके राजा रहते हुए राजा यह शब्द किसी दूसरी जगह सुशोभित नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि सिंहके रहते हुए हरिण मृगेन्द्र शब्दको किस प्रकार धारण कर सकते हैं ? ॥४८॥ हे देव, आपके भाई ईर्ष्या छोडकर आपके अनुकूल रहें क्योंकि आप उन सबमें बडे हैं और इस कालमें मुख्य हैं इसलिये उनका आपके अनुकूल रहना शास्त्रमें कहा हुआ है ॥४९॥ आपके दूत जावें और युक्तिके साथ वातचीत कर उन्हें आपके आज्ञाकारी बनावे, यदि वे इस प्रकार आज्ञाकारी न हों तो विग्रह कर (विगडकर), अन्य प्रकार भी वातचीत करें ॥५०॥ मिथ्या अभिमानसे उद्धत होकर यदि कोई आपके वश नहीं होगा तो खेद है कि वह अपने आपको तथा अपने आधीन रहनेवाले राजाओंके समूहका नाश करावेगा ॥५१॥ राज्य और कुलवती स्त्रियाँ ये दोनों ही पदार्थ साधारण नहीं हैं, इनका उपभोग एक ही पुरुष कर सकता है। जो पुरुष इन दोनोंका अन्य पुरुषोंके साथ उपभोग करता है वह पशु ही है ॥५२॥ इस विषयमें बहुत कहनेमें क्या लाभ है या तो वे आकर आपको प्रणाम करें या जगत्की रक्षा करनेवाले जिनेन्द्रदेवकी शरणको प्राप्त हो ॥५३॥ आपके उन भाइयों की तीसरी गति नहीं है, इनके ये ही दो मार्ग हैं कि या तो वे आपके शिषिमें प्रवेश करें या मृगों के साथ वनमें प्रवेश करें ॥५४॥ सजातीय लोग परस्परके विरुद्ध आचरणसे अगारोंके समान

१ वारणात् । २ कृत्तितराजवती । 'मुरानि देशे राजान् स्व्यत्ताज्यम राजान्' इत्यभिधानात् । ३ द्वयो राजो राज्येन दुस्थिता । ४ त्वच्छासन-द०, ल० । दूता । ५ उक्त्या । ६ विवाद कृत्वा । ७ आत्मना स्वोवरपीयम् । ८ सर्वेषामनुभवनीयम् । ९ द्वयम् । १०-नर्पयो ल० । ११ उपाय । १२ म्वगोनापि । तव भ्रान्त इत्ययम् । १३ पर. अ०, इ०, ल० ।

प्रशान्तमत्सरा. शान्तास्त्वां नत्वा नम्रमौलयः । सोढर्याः सुखमेधन्तां त्यत्प्रसादाभिवाद्दक्षिणः ॥५६॥
 इति शासति शास्त्रज्ञे पुरोषसि सुमेधसि । प्रतिपद्यापि तत्कार्यं चरौ धुप्रोष तत्क्षणम् ॥५७॥
 प्राशुष्टकृत्वां दृष्टि क्षिपन्दिक्षिव द्दिबलितम् । सधूमासिब कोपान्नेः शिखां भ्रूष्टुट्मिहापन् ॥५८॥
 भानुभाण्डकृतामर्यविपत्रेगमयोद्धमन् । वाक्छलेनोच्छ्वलन् रोयाद् बभापे पदया गिरः ॥५९॥
 किं किमात्यं दुरात्मनो भ्रातर. प्रणता न माम् । पश्य महण्डचण्डोल्कापातात्तान् शल्कसात् कृतात् ॥६०॥
 श्रवुष्टमश्रुतं कृत्यमिद वैरमकारणम् । श्रवण्याः किल कृत्यवादिनि^१ तेषां मनोयितम् ॥६१॥
 योयनोन्मादजस्तेषा भटवातोऽस्ति^२ बुमंद. । ज्वलच्चक्राभितापेन स्वेदस्तास्य प्रतिश्रिया ॥६२॥
 अकरा भोक्तुमिच्छन्ति गृहदत्तांमिमान्तेके^३ । तस्कि^४ भटावलेपेन^५ भुक्ति ते श्रावयन्तु^६ मे ॥६३॥
 प्रतिशय्यानिषातेन^७ भुक्ति ते साधयन्तु वा । शितास्त्रकण्ठकोत्सङ्गपतिताद्गगा रणाद्द गणे ॥६४॥
 क्व वप जितजेतव्या भोक्तव्ये^८ सद्गताः क्व ते । तयापि सविभागो^९ऽस्तु तेषां मदनुधर्तने ॥६५॥

जलते रहते हैं और वे ही लोग परस्परमे अनुकूल रहकर नेत्रोके लिये अतिशय आनन्द रूप होते हैं ॥५५॥ इसलिये ये आपके भाई मात्सर्य छोडकर शान्त हो मस्तक भुकाकर आपको नमस्कार करे और आपकी प्रसन्नताकी इच्छा रखते हुए सुखसे वृद्धिको प्राप्त होते रहें ॥५६॥ इस प्रकार शास्त्रके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरोहितके कह चुकनेपर चक्रवर्ती भरतने उसीके कहे अनुसार कार्य करना स्वीकार कर उसी क्षण क्रोध किया ॥५७॥ जो क्रोधसे कलुषित हुई अपनी दृष्टिको दिशाओके लिये बलि देते हुऐके समान सब दिशाओंमें फेक रहे हैं, क्रोधरूपी अग्निकी धूमसहित शिखाके समान भ्रुकुटियां ऊंची चढा रहे हैं, भाईरूपी मूलधनपर किये हुए क्रोधरूपी विपके वेगको जो वचनोके छलसे उगल रहे हैं और जो क्रोधसे उछल रहे हैं ऐसे महाराज भरत नीचे लिखे अनुसार कठोर वचन कहने लगे ॥५८-५९॥ हे पुरोहित, क्या कहा ? क्या कहा ? वे दुष्ट भाई मुझे प्रणाम नहीं करते हैं, अच्छा तो तू उन्हें मेरे दण्डरूपी प्रचण्ड उल्कापातसे टुकडे किया हुआ देख ॥६०॥ उनका यह कार्य न तो कभी देखा गया है, न सुना गया है, उनका यह वैर विना कारण ही किया हुआ है, उनका ख्याल है कि हम लोग एक बलमें उत्पन्न होनेके कारण अवध्य है ॥६१॥ उन्हें यौवनके उन्मादसे उत्पन्न हुआ योद्धा होनेका कठिन वायुरोग हो रहा है इसलिये जलते हुए चक्रके सतापसे पसीना आना ही उमवा प्रतिकार-उपाय है ॥६२॥ वे लोग पूज्य पिताजीके द्वारा दी हुई पृथिवीकी विना कर दिये ही भोगना चाहते हैं परन्तु केवल योद्धापनेके अहंकारसे क्या होता है ? अब या तो वे लोगोको भुनावें कि भरत ही इस पृथिवीका उपभोग करनेवाला है हम सब उसके आधीन हैं या युद्धके मैदानमें तीक्ष्ण दस्त्ररूपी बाँटेके ऊपर जिनका शरीर पडा हुआ है ऐसे वे भाई प्रतिशय्या-दूसरी शय्या अर्थात् रणशय्यापर पडकर उसका उपभोग प्राप्त करें । भावायं-जीनेजी उन्हें इग पृथिवीका उपभोग प्राप्त नहीं हो सकता ॥६३-६४॥ जिसने जीतने योग्य ममस्व लोगोको जीत लिया है ऐसा कहाँ तो मैं, और मेरे उपभोग करने योग्य क्षेत्रमें म्यिन कहाँ वे लोग ? तथापि मेरे आज्ञानुसार चलनेपर उनका भी विभाग (हिस्ता)

१ भाष्ट भयपमात्रेण भाण्डमूला वणिगधने । नदीमात्रे सुरदगाणा भूयणे भाजनेऽपि व ।
 २ उत्पत्तम् । ३ वदति । ४ गच्छ । ५ कृते भया वृग्यास्तेषा भाव तस्मात् । ६ वप मटा इति
 एवं । ७ दुर्निवार । ८ अवलम् । 'नागधेय करोवनिः' इत्यभिधानात् । ९ भूमिम् । १० कृतिता ।
 ११ कति । १२ मटगवणे । १३ गाधयन्तिवत्यर्थ । १४ पूर्व शय्याया प्रतिशय्या-अन्य शय्या तस्मा
 निषातेन शय्याया इत्यर्थ । १५ कृतिशब्दे । १६ गम्यव्येऽर्थाद्विभाग ।

न भोक्तुमन्ययाकारं^१ महीं तेभ्यो ददाम्यहम् । कथङ्कारिदं^२ चक्रं विद्यमं यात्वतज्जये^३ ॥६६॥
 इवं महदनापयेयं^४ यत्प्राप्तो बन्धुपत्तलः । स बाहुबलिसाह्वोर्गपि^५ भजते विष्टतिं कृती ॥६७॥
 अवाहुबलिनानेन^६ राजवेन नतेन किम् । नगरेण गरेणेव^७ भुवतेनापोदनेन^८ किम् ॥६८॥
 किं किङ्करंः करालास्त्रप्रतिनिर्जितं^९ शात्रवैः । अनाज्ञावशात्पेतस्मिन् नवविक्रमशालिनि^{१०} ॥६९॥
 किं वा मूरभट्टैरेभिः उद्भटारभट्टैरसं^{११} । मयैवमत्तना स्पष्टां तस्मिन्कुर्वन्ति गर्बिते ॥७०॥
 इति जल्पति संरम्भान्ध्वं^{१२} श्रमाणावुपक्रमम्^{१३} । तस्योपचक्रमे कर्तुं पुनरित्य पुरोहितः ॥७१॥
 जितजेतव्यता देव घोषपश्रपि किं मुषा । जितोर्गसि श्रोषवेगेन प्राजय्यो वदिता हि सः ॥७२॥
 बालास्ते बालभावेन^{१४} वितसन्त्वपयेयं^{१५} ज्यत्तम् । देवे जितारियद्भवो न तमः^{१६} स्यातुमर्हति ॥७३॥
 षोषान्धतमते भग्नं यो नात्मानं समुद्धरेत् । स कृत्यसंशयद्वेषाभो^{१७} त्तरोतुमत्ततराम् ॥७४॥
 किं तरां स विजानाति कार्याकार्यमनात्मवित् । यः स्वान्त प्रभवान् जेतुम् भरीत प्रभवेत्प्रभुः ॥७५॥
 तदेव विरमानुष्मात् संरम्भावपकारिणः । जितात्मानो जयन्ति इमां क्षमया हि जिगीषवः ॥७६॥

हो सकता है ॥६५॥ और किसी तरह उनके उपभोगके लिये मैं उन्हें यह पृथिवी नहीं दे सकता हूँ । उन्हें जीने बिना यह चकरतन किस प्रकार विश्राम ले सकता है ? ॥६६॥ यह बड़ी निन्दाकी बात है कि जो अतिशय वृद्धिमान् है, भाइयोमें प्रेम रखनेवाला है, और कार्यकुशल है वह बाहुबली भी विकारको प्राप्त हो रहा है ॥६७॥ बाहुबलीको छोड़कर अन्य सब राज-पुत्रोंने नमस्कार भी किया तो उससे क्या लाभ है और पोदनपुरके बिना विषके ममान इस नगरका उपभोग भी किया तो क्या हुआ ॥६८॥ जो नवीन पराक्रमसे शोभायमान बाहुबली हमारी आज्ञाके वश नहीं हुआ तो भयकर शस्त्रोत्ते शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले मेवकोमे क्या प्रयोजन है ? ॥६९॥ अथवा अहकारी बाहुबली जब इन प्रकार मेरे साथ अयोग्य इंद्या कर रहा है तब अतिशय गुरखीरत्तास्य रमको धारण करनेवाले मेरे इन देवम्प योद्धाओं से क्या प्रयोजन है ? ॥७०॥ इस प्रकार जब चक्रवर्ती श्रोषवे बहुत बड़ बड़कर बानचीत करने लगे तब पुरोहितने उन्हें शान्त कर उपायपूर्वक कार्य प्रारम्भ करनेके लिये नीचे लिखे अनुसार उद्योग किया ॥७१॥ हे देव, मैंने जीतने योग्य मयको जीत लिया है ऐसी घोषणा करते हुए भी आप श्रोषके वेगसे व्यर्थ ही क्यों जीते गये ? जितेन्द्रिय पुरुषोंको तो श्रोषका वेग पहले ही जीतना चाहिये ॥७२॥ वे आपके भाई बालक हैं इसलिये अपने बालन्धभाव से कुमार्गमें भी अपने इच्छानुसार शोषा कर सकते हैं परन्तु जिमने काम, शोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छोटी अन्तरङ्ग शत्रुओंको जीत लिया है ऐसे आपमें यह अन्धकार ठहरने के योग्य नहीं है अर्थात् आपको श्रोष नहीं करना चाहिये ॥७३॥ जो मनुष्य श्रोषियों गात्र अन्धकारमें डूबे हुए अपने आत्माका उद्धार नहीं करता वह कार्यके मगयम्पी द्विषियाने पार होनेके लिये समर्थ नहीं है । भावार्थ—श्रोषमें कार्यकी मिद्धि होनेमें सदा मन्देह बना रहना है ॥७४॥ जो राजा अपने अन्तरङ्गने उत्पन्न होनेवाले शत्रुओंको जीतनेके लिये ममर्थ नहीं है वह अपने आत्माको नहीं जाननेवाला कार्य और अकार्यको कर्म जान सकता है ? ॥७५॥ इसलिये हे देव, अपकार करनेवाले इन श्रोषमें दूर रहिये क्योंकि जीतकी इच्छा रखनेवाले जिते-

१ अन्यया । २ कथम् । ३ तेषां जयानावे । ४ अवाप्यम् । ५ बाहुबलिनानां । ६ बाहुबलीपुत्राणां-
 रहितेन । ७ गरेणेव । ८ पोदनपुररहितेन । ९ अतिशय-न० ६० । १० अहबलिसि ।
 ११ अधिकभयानकरत्तं । १२ शोषा । १३ मुद्गरम्पम् । १४ बालवेन । १५ शिवाया मुषा मनीषा
 इत्यर्थः । १६ क्षमानम् । १७ कार्यमन्देहद्वेषिणम् ।

विजितेन्द्रियवर्णाणां सुश्रुतश्रुतसम्पदाम् । परलोकजिगीषुणा क्षमा साधनमुत्तमम् ॥७७॥
 लेखसाध्यं च कार्यैर्ममन् विक्रतोऽतिपरिश्रमः । तृणाद्भृशं नलच्छेद्यं चः परद्वयम् मुदरेत् ॥७८॥
 ततस्तितिक्षमाणेन^१ साध्यो भ्रान्गणस्त्वया । सोपचारं प्रयुक्तेन यचोहरगणेन सः ॥७९॥
 अद्यैव च प्रहेतव्याः समं लेखैर्वचोहराः । गत्वा श्रूयुश्च तानेत^२ घृषिणं भजताप्रजम् ॥८०॥
 कल्पानोवहृसेवेव तस्तेवाभीष्टदायिनो । गृहकल्पोऽप्रजश्चक्री स मायः^३ सर्वयापि चः ॥८१॥
 विद्वरस्वयं न युष्माभिः ऐश्वर्यं तस्य राजते । तारागणैरनासप्रैरिय विम्बनिशां पतेः ॥८२॥
 साम्राज्यं नास्य तोषाय यद्भवद्भिर्विना भयेत् । सहभोग्यं हि बन्धूनाम् अधिराज्यं सता मुदे ॥८३॥
 इदं वाचिकमन्यन्तु लेखायादिवधायां ताम् । इति सोपायनैर्लेखैः प्रत्याप्यास्ते^४ मनस्विनः ॥८४॥
 यशस्य^५ भिद्वेवायं कार्यं श्रेयस्यमेव^६ च । चिन्त्यमुत्तरकार्यं च साम्ना तेष्ववशेषु वं ॥८५॥
 बिभ्यता जन^७ निर्वादाद् अनुष्ठेयमिदं त्वया । स्याद्युक्^८ हि यशो लोके ग^९ त्वर्यो ननु संपदः ॥८६॥
 इति तद्वचनाच्चक्री वृत्तिमारभती जहौ । अनुवर्तनसाध्या हि महतां चित्तवृत्तयः ॥८७॥
 आस्ता भुजवती तायद् यत्नसाध्यो^{१०} महाबलः । शोषरेव परीक्षिष्ये भ्रातृभित्तद् द्विजिह्वताम्^{११} ॥८८॥

न्द्रिय पुरुष केवल क्षमाके द्वारा ही पृथिवीको जीतते है ॥७६॥ 'जिन्होने इन्द्रियोके समूहको जीत लिया है, शास्त्ररूपी सम्पदाका अच्छी तरह श्रवण किया है और जो परलोकको जीतने की इच्छा रखते है ऐसे पुरुषोके लिये सबसे उत्कृष्ट साधन क्षमा ही है ॥७७॥ जो लेख लिख कर भी किया जा सकता है ऐसे इस कार्यमे अधिक परिश्रम करना व्यर्थ है क्योंकि जो तृणाका अंकुर नखसे तोडा जा सकता है उसके लिये भला कौन कुल्हाडी उठाता है ॥७८॥ इसलिये आपनो शान्त रहकर भेंटसहित भेजे हुए दूतकोे द्वारा ही यह भाइयोका समूह बश करना चाहिये ॥७९॥ आज ही आपको पत्रसहित दूत भेजना चाहिये, वे जाकर उनसे कहें कि चलो और अपने बड़े भाईकी सेवा करो ॥८०॥ उनकी सेवा' कल्पवृक्षकी सेवाके समान आपके सब मनोरथोको पूर्ण करनेवाली होगी । वह आपका बडा भाई पिताके तुल्य है, चरु-धनी है और सब तरहसे आप लोगोके द्वारा पूज्य है ॥८१॥ जिस प्रकार दूर रहनेवाले तारागणोसे चन्द्रमाका विम्ब सुशोभित नही होता है उसी प्रकार दूर रहनेवाले आप लोगोसे उनका ऐश्वर्य सुशोभित नही होता है ॥८२॥ आप लोगोके विना यह राज्य उनके लिये सतोप देनेवाला नही हो सकता क्योंकि जिसका उपभोग भाइयोके साथ साथ किया जाता है वही साम्राज्य मञ्जन पुरुषोको आनन्द देनेवाला होता है ॥८३॥ 'यह मौखिक सदेश है, बाकी समाचार पत्रसे मालूम कीजिये' इस प्रकार भेंटसहित पत्रोके द्वारा उन प्रतापी भाइयोको विद्वाम दिलाता चाहिये ॥८४॥ हे आर्य, आपके लिये यही कार्य यश देनेवाला है और यही वरदाण करनेवाला है यदि वे इस तरह शान्तिसे बश न हो तो फिर आगेके कार्यका विचार करना चाहिये ॥८५॥ आपको लोभापवादसे डरते हुए यही कार्य करना चाहिये क्योंकि शोकमें मन ही स्थिर रहनेवाला है, सम्पत्तियां तो नष्ट हो जानेवाली है ॥८६॥ इस प्रकार पुरोहितके वचनोमे चयवर्तनेन अपनी शोधपूर्ण वृत्ति छोड़ दी सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषो पी चित्तकी वृत्ति अनुकूल वचन कहनेसे ही ठीक हो जाती है ॥८७॥ इस समय जो प्रयत्नसे मन नही बिया जा सकता ऐमा महाबलवान् बाहुयली दूर रहे पहले शेष भाइयोके द्वारा ही

१ परमम् । २ महामानेन । ३ आगच्छत । ४ पूज्य । ५ गदेशवाक् । 'गदेशवाग् वाचिव
 गदाश्वभिधानाम्' । ६ वि-वाग्वा । ७ यशस्वरम् । ८ श्रेयस्वरम् । ९ जनापवादात् । १० स्थिरतरम् ।
 ११ गदनागता । १२ यत्र माध्या महामुत्र अ०, प०, स०, द०, स० । १३ बाहुयलिन-वृत्तिसताम् ।

इति निर्द्धार्य कार्यज्ञान् कामपुष्पौ विदिवन्धोः । प्रहिणोत्य निमृष्टार्थान् दूताननुत्तमप्रियम् ॥२६॥
 गत्वा च तैः यथोद्देशं दृष्ट्वा तांस्तान्ययोचितम् । अगुः सन्देशमोहास्य तेष्यो दूता यथास्थितम् ॥२७॥
 अथ ते महः सन्मूय हृतकार्यनिवेदानान् । दूतानित्युत्तुराष्टप्रमत्तमदकार्णवाः ॥२८॥
 यदुक्त्वादिदामेन तत्तन्मयं नोऽनिमम्भतम् । गुरोरुत्तमप्रियो पूज्यो ज्वायान्नात्तानुत्तरिणि ॥२९॥
 प्रयत्नो गृधरस्माकं प्रतपत्रेषु विद्वद्भ्यः । स नः प्रभाषमंश्वर्यं तद्विद्वान्पिदिदं हि नः ॥३०॥
 तदत्र गृधरादाता तन्त्रां न स्वैरिणोऽवयम् । न देव्यं भरतेशान् नादेयमिह किञ्चन ॥३१॥
 पत्तु नः संदिनागार्णम् इदमामन्त्रणं कृतम् । चक्रिणा तेन संप्रीता प्रोवाश्वं वपमागतान् ॥३२॥
 इति सद्दृष्ट्य तान्दूतान् सम्मानः प्रमुदत्प्रभो । विहितोपायानाः सद्यः प्रतिनेष्व्यंतत्रयम् ॥३३॥
 दूतमात्कृतमन्त्रानां प्रमुमान्कृतबोचिकाः । गृध्रस्तान्कृत्य तत्कार्यं प्रापुन्ते गृध्रमप्रियम् ॥३४॥
 गत्वा च गृध्रमदासुः मित्रोचितपरिच्छदाः । मह्यगिरिमिबोत्तुदगं कलासमिपरायणम् ॥३५॥
 प्रणियय विधानेन प्ररूप्य च यथाविधि । व्यजिज्ञपतिदं वाक्यं कुमारं मारविद्विषम् ॥३६॥
 स्वतः स्मो लवप्रज्जानन्स्वतः प्राप्ताः परां प्रियम् । स्वत्प्रमार्दयिणो देव स्वतो नान्यमुपास्महे ॥३७॥

उनको कृष्टिल्लवाकी परीक्षा करेगा । उस प्रकार निश्चय कर कार्य करनेमें जिनकी बुद्धि कमी भी मोहित नहीं होती ऐने चक्रवर्तीने कार्यके जाननेवाले नि.सृष्टार्थ दूतोंको अपने भाइयों के समीप भेजा ॥८८-८९॥ उन दूतोंने भरतके आज्ञानुसार जाकर उनके योग्यरीतिसे दर्शन किये और उनके लिये चक्रवर्तीका संदेश सुनाया ॥९०॥ तदनन्तर—प्राप्त हुए ऐश्वर्यके मंद से जो कठोर हो रहे हैं ऐसे वे सब भाई दूतोंके द्वारा कार्यका निवेदन हो चुकनेपर पन्पुर्मों मिलकर उनमें इस प्रकार वचन कहते लगे ॥९१॥ कि जो आदिराजा भरतने कहा है वह सच है और हम लोगोंको स्वीकार है क्योंकि पिताके न होनेपर बड़ा भाई ही छोटे भाइयोंके द्वारा पूज्य होता है ॥९२॥ परन्तु समस्त मन्त्रारको जानने देखनेवाले हमारे पिता प्रत्यक्ष विराजमान हैं वे ही हमको प्रमाण हैं, यह हमारा ऐश्वर्य उन्होंने दिया हुआ है ॥९३॥ इसलिये हम लोग इस विषयमें पिताजीके चरणकमलोंकी आज्ञाके आधीन हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं । उस मन्त्रमें हमें भरतेश्वरने न तो कुछ लेना है और न कुछ देना है ॥९४॥ तथा चक्रवर्तीने हिम्मा देनेके लिये जो हम सबको आमन्त्रण दिया है अर्थात् बुलाया है उनमें हम लोग बहुत मनुष्ट हुए हैं और गले तक नृप हो गये हैं ॥९५॥ उस प्रकार राजाओंकी तरह योग्य मन्मानोंमें उन दूतों का मत्कार कर तथा भरतके लिये उपहार देकर और बदलेके पत्र लिखकर उन राजकुमारोंने दूतोंको शीघ्र ही बिदा कर दिया ॥९६॥ इस प्रकार जिन्होंने दूतोंका सम्मान कर भरतके लिये योग्य उत्तर दिया है ऐसे वे सब राजकुमार, पूज्य पिताजीका दिया हुआ वायं दूतोंको समीपनेके लिये उनके समीप पहुँचे ॥९७॥ जिनके पान परिमित तथा योग्य गामश्री हैं ऐसे उन राजकुमारोंने किमी महापर्वतके नमान ऊँचे और कलासकी गिरापर विद्यमान पूज्य पिता भगवान् वृषभदेवके जाकर दर्शन किये ॥९८॥ उन राजकुमारोंने त्रिधिपूर्वक प्रणाम किया, त्रिधिपूर्वक पूजा की और फिर वामदेवको नष्ट करनेवाले भगवान्मर्म मोक्ष लिये श्रमन कहे ॥९९॥ हे देव, हम लोगोंने आपने ही जन्म पाया है, आपने ही यह उद्गुष्ट किर्तन पाई है और अब भी आपको प्रमत्तताकी इच्छा रखने हैं, हम लोग आपको छोड़कर और किसीकी

तु यत्रसाद इत्युच्यते जनो वक्ष्येयं केवलम् । वयं तु तत्रसाभिज्ञास्त्वत्प्रसादाजितधियः ॥१०१॥

त्वत्प्रशामानुरक्तानां त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणाम् । त्वद्वच-किङ्करोणां नो यद्वा तदाज्जु मापरम् ॥१०२॥

इति स्थिते प्रणामार्थं भरतोऽस्माञ्जुह्वयति^१ । तत्रात्र कारणं विद्यः किं मदः किन्तु मस्ततः ॥१०३॥

युष्मत्प्रणमनाभ्यासरसदुर्लभिते^२ शिरः । नान्यप्रणमने देव धृतिं बध्नाति जातु मः ॥१०४॥

किमन्नोजरजपुञ्जपिञ्जर वारि मानसे । निवेद्य राजहंसोऽय रमतोऽयसरोजले ॥१०५॥

किमस्ततः शिरोजान्तं सुमनोगन्धलालितः । तुम्बीबनान्तं भभ्येति^३ प्राणान्तेऽपि मयुधतः ॥१०६॥

मुक्ताफलाञ्जुमापायं गगनाम्बुनवान्मुदात् । शुष्यत्सरोऽम्बु किं वाञ्छेदुद्वन्यन्नपि^४ चातकः ॥१०७॥

इति युष्मत्पदाञ्जन्म^५ रजोरञ्जितवस्तुका । प्रणन्तुमसदाप्ता^६ नामिहामुत्र^७ च नेशमहे^८ ॥१०८॥

परप्रशामाविमुखीं भयसङ्गाविर्बाजिताम् । वीरदीक्षा वये धर्तुं भवत्पादवेमपागताः ॥१०९॥

तद्देव कृपायस्मत्कं हित पश्य च वारं यत् । येनेहमुत्र च स्याम^९ त्वदभक्तिद्वयदासनाः ॥११०॥

परप्रशामसञ्जातमानभद्रमभयातिगताम्^{१०} । पदवीं तायकीं^{११} देव भवेमहि^{१२} भवे भवे ॥१११॥

मानसङ्गडनसम्भूतपरिभूति^{१३} भयातिगा । योगिनः सुखमेधन्ते वनेषु हरिभिः समम् ॥११२॥

उपासना नहीं करना चाहते ॥१००॥ इस ससारमे लोग यह पिताजीका प्रसाद है-ऐसा केवल कहते ही हैं परन्तु आपके प्रसादसे जिन्हे उत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है ऐसे हम लोग इस वाक्यके रसका अनुभव ही कर चुके हैं ॥१०१॥ आपको प्रणाम करनेमें तत्पर, आपके प्रसन्नता की चाहनेवाले और आपके वचनोके किकर हम लोगोका चाहे जो हो परन्तु हम लोग और किसीकी उपासना नहीं करना चाहते हैं ॥१०२॥ ऐसा होनेपर भी भरत हम लोगोको प्रणाम करनेके लिये बुलाता है सो इस विषयमें उसका मद कारण है अथवा मात्सर्य यह हम लोग कुछ नहीं जानते ॥१०३॥ हे देव, जो आपको प्रणाम करनेके अभ्यासके रससे मस्त हो रहा है ऐसा यह हमारा शिर विसी अन्यको प्रणाम करनेमें सतोप प्राप्त नहीं कर रहा है ॥१०४॥ क्या यह राजहंस-मानसरोवरमें कमलोंकी परागकी समूहसे पीले हुए जलकी सेवा कर किसी अन्य तालावके जलकी सेवा करता है ? अर्थात् नहीं करता है ? ॥१०५॥ क्या अस्तराओ के केशोमें लगे हुए फूलोकी सुगन्धसे सनुष्ट हुआ भ्रमर प्राण जानेपर भी तूवीके वनमें जाता है अर्थात् नहीं जाता है ॥१०६॥ अथवा जो चातक नदीन मेघसे गिरते हुए मोतीके समान स्वच्छ आवागगत जलको पी चुका है क्या वह प्यासा होकर भी सूखते हुए सरोवरके जलको पीना चाहेगा ? अर्थात् नहीं ॥१०७॥ इस प्रकार आपके चरणकमलोकी परागसे जिनके मस्तक रग रहे हैं ऐसे हम लोग इस लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकोंमें आप्तभिन्न देव और मनुष्यी को प्रणाम करनेके लिये समर्थ नहीं हैं ॥१०८॥ जिसमें किसी अन्यको प्रणाम नहीं करना पड़ता, और जो भयके सम्बन्धसे रहित है ऐसी वीरदीक्षाको धारण करनेके लिये हम लोग आपके समीप आये हुए हैं ॥१०९॥ इसलिये हे देव, जो मार्ग हित करनेवाला और सुख पहुचाने वाला हो वह हम लोगोको कहिये जिससे इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें हम लोगों की यामना आपकी भक्तिमें दृढ हो जावे ॥११०॥ हे देव, जो दूसरोको प्रणाम करनेसे उत्पन्न हुए मानभङ्गके भयमें दूर रहती है ऐसी आपकी पदवीको हम लोग भवभवमें प्राप्त होने रहे ॥१११॥ मानभङ्गमें उत्पन्न हुए तिरस्कारके भयसे दूर रहनेवाले योगी लोग वनों

१ सुप्रसादादगामयं । २ प्रसादाजित-२०, स० । ३ यत्किञ्चिद् भवति तदस्तु ।

४ भाहागुनिजानि । ५ गविभम् । ६ देवत्रीणा केचिन्मयुगपगन्धलालितः । ७ कलावुवनमायम् ।

८ प्रतिभ्रष्टानि । ९-मार्गय २०, स० । आपाय - पीत्वा । १० विषागप्रपि । ११ पदवमत ।

१२ नसकन्तम् । १३ अनाजानाम् । १४ तमर्षा न भवाम । १५ भवाम । मोद ।

१६ प्रतिभ्रष्टानाम् । १७ तव सम्बन्धियाम् । १८ शन्तम् । भूपात्तावात्मनेपदम् । १९ परिभव ।

श्रुत्वाणानिति साक्षेपं स्थापयन्परिथं शाश्वते । भगवानिति तानुच्चैः अन्वशादनुशासिता ॥११३॥
 महान्ना^१ वपुष्मन्तो^२ वयस्सत्त्वगुणान्विताः । कथमन्यस्य संवाहया यूयं भद्रा द्विषा इव ॥११४॥
 भद्रगिना^३ किमु राज्येन जीवितेन चलेन किम् । किञ्च^४ भो यौवनोन्मादः ऐश्वर्यबलदूषिणः ॥११५॥
 किं बलं बलितानां गम्यः किं^५ 'हार्यवस्तुवाहनैः' । तृष्णाग्निबोधनैरेभिः किं धनैरिधनैरिव ॥११६॥
 भुक्त्वापि सुचिरं कालं यनं तृप्तिः वनमः^६ परम् । विषयैस्तरलं भुक्तैर्वियमितैरिवासानैः ॥११७॥
 किं च भो विषयास्त्रादः कोऽप्यनास्त्वादितोऽर्जित वः । स एव पुनरास्त्रादः किं तेनास्त्राशितमन्भव ॥११८॥
 यत्र^७ शस्त्राणि मित्राणि शत्रवः पुत्रवान्ववाः । कलत्रं सर्वभोगीणां^८ धरा राज्यं धिगीदृशम् ॥११९॥
 भुनक्तु नृपशार्दूलो^९ भरतो भरतायनिम् । 'यावत्पुण्योदयेस्तावत्तनालं धोर्जिततिसया'^{१०} ॥१२०॥
 तेनापि^{११} त्याज्यमेवेदं राज्यं भद्रगि^{१२} यदा तदा । हेतोरशाश्वतस्यास्य युष्वाध्वे यत किं मुधा ॥१२१॥
 'तदलं स्पष्टया दृष्यं यूयं धनं मेहातरौ । दयाकृतममम्लानि यत्तन्मुक्तिफलप्रदम्'^{१३} ॥१२२॥
 पराराधनदंष्ट्रानां परैराराध्यैमेव यत् । तद्वो महाभिमानानां तपो मानाभिरक्षणम् ॥१२३॥
 दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या बधेयं प्राणवल्लभा । इति ज्याय^{१४} 'स्तपोराज्यमिदं स्ताध्यपरिच्छदम् ॥१२४॥

मे सिंहोके साथ सुखसे बढ़ते रहते हैं ॥११२॥ इस प्रकार आक्षेपसहित कहते हुए राजकुमारों को अविनाशी मोक्षमार्गमें स्थित करते हुए हितोपदेशी भगवान् वृषभदेव इस प्रकार उपदेश देने लगे ॥११३॥ महा अभिमानी और उत्तम शरीरकी धारण करनेवाले तथा तारुण्य अवस्था, बल और गुणोंसे सहित तुम लोग उत्तम हाथियोंके समान दूसरोंके सवाहय अर्थात् सेवक (पक्ष में वाहन करने योग्य सवारी) कैसे हो सकते हो ? ॥११४॥ हे पुत्रो, इस विनाशी राज्यसे क्या हो सकता है ? इस चंचल जीवनसे क्या हो सकता है ? और ऐश्वर्य तथा बलसे दूषित हुए इस जीवनके उन्मादसे क्या हो सकता है ? ॥११५॥ जो बलवान्, मनुष्योंके द्वारा जीती जा सकती है ऐसी सेनाओंसे क्या प्रयोजन है ? जिनकी चोरी की जा सकती है एमें सोना चाँदी हाथी घोड़ा आदि पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है ? और दंष्ट्रानाके समान तृष्णास्त्री अग्निको प्रज्वलित करनेवाले इस धनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥११६॥ चिरकाल तक भोग कर भी जिनसे तृप्ति नहीं होती, उल्टा अत्यन्त परिश्रम ही होता है ऐसे विष मिले हुए भोजन के ममान इन विषयोंका उपभोग करना व्यर्थ है ॥११७॥ हे पुत्रो, तुमने जिसका कभी आस्वादन नहीं किया हो ऐसा भी क्या कोई विषय वाकी है ? यह सब विषयोंका बही आम्वादा है जिसका कि तुम अनेक बार आम्वादन (अनुभव) कर चुके हो फिर भला तुम्हें इनमें सतोष कैसे हो सकता है ? ॥११८॥ जिसमें शस्त्र मित्र हो जाने है, पुत्र और भाई बगैरह शत्रु हो जाते हैं तथा सबके भोगने योग्य पृथिवी ही स्त्री हो जाती है ऐसे राज्यको धिक्कार हो ॥११९॥ जब तक पुण्यका उदय है तब तक राजाओंमें श्रेष्ठ भग्न इम भरत क्षेत्रकी पृथिवीका पालन करें इस विषयमें तुम लोगोंका क्रोध करना व्यर्थ है ॥१२०॥ यह विनश्वर राज्य भग्नके द्वारा भी जत्र कभी छोटा ही जावेगा इमलिये इम अस्थिर राज्यके लिये तुम लोग व्यर्थ ही बसों लड़ते हो ॥१२१॥ इमलिये ईर्ष्या करना व्यर्थ है, तुम लोग धर्मरूपी महावृक्षके उम श्यास्त्री फलको धारण करो जो कभी भी म्लान नहीं होता और जिमपर मुक्तिरूपी महाफल लगना है ॥१२२॥ जो दूमरोंकी आराधनासे उत्पन्न हुई दीनतासे रहित है वन्कि दूमरे पुण्य ही जिमकी आराधना करते हैं ऐमा तपस्वरण ही महाअभिमान धारण करनेवाले तुम लोगोंको मानवी रक्षा करनेवाला है ॥१२३॥ जिममें दीक्षा ही रक्षा करनेवाली है, गुण ही गौरव

१ उन्मादः । २ महाभिमानिन प्रमाणात् । ३ महात्पा । ४ विनश्यत् । ५ ईर्ष्या । ६ म्लानि । ७ तृप्ति । ८ शत्रु । ९ शत्रोणां भोगेभ्यो गिना । १० नृपस्य । ११ यथापि । १२ भद्रगिनि । १३ इमिदं कालं विनश्यति । १४ कर्मणा । १५ कर्मणा । १६ यथापि । १७ यथापि ।

इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्यं परं निर्वेदमागताः । महाप्राज्ञाज्यमास्थाय^१ निष्क्रान्तास्ते गृहद्वनम्^१ ॥१२५॥
 निद्विष्टा गुरुणा साक्षाद्दीक्षां नववधूमिव । नवा इव वराः प्राप्य रेजुस्ते युवपार्थिवाः ॥१२६॥
 या कचग्रहपूर्वेषु प्रणयेनातिभूमिगा^१ । तथा पाणिगृहीत्येव^१ दीक्षया ते धृति^१ दधुः ॥१२७॥
 तपस्तीव्रमयासाद्य ते चकासुर्नृपयंयः । स्वतेजोरुद्धविश्याशा^१ प्रोष्ममर्कांशवो यथा ॥१२८॥
 तेऽतितीव्रंस्तपोयंस्तनुभूता तनु दधुः । तपोलक्ष्म्या समुत्कीर्णामिव दीप्तां तपोगुणैः ॥१२९॥
 स्थिताः सामयिके धृते^१ जिनकल्पविशेषिते । ते तेपिरे तपस्तीव्रं ज्ञानशुद्धपुष्वहितम् ॥१३०॥
 वैराग्यस्य परा^{१०} कोटीम् श्रावदास्ते युगेश्वराः । स्वसाञ्चक्रुस्तपोलक्ष्मीं राज्यलक्ष्म्यामनुस्तुकाः ॥१३१॥
 तपोलक्ष्म्या परिष्वक्ता^{११} मुक्तिलक्ष्म्यां कृतस्पृहाः । ज्ञानसंपत्प्रसक्तास्ते राजलक्ष्मीं विसस्मरुः ॥१३२॥
 द्वादशाङ्गधृतस्क्न्धमधीत्येते महाधियः । तपो भावनयात्मानमलञ्चक्रुः प्रकृष्टया ॥१३३॥
 स्वाध्यायेन मनोरोधस्ततोऽज्ञाणा विनिर्जयः । इत्याकलय्य ते^{१२} धीराः स्वाध्यायधियमावधुः ॥१३४॥
 श्रावचाराङ्गनेन निःशेषं साध्याचारमवेदियुः । चर्याशुद्धि^{१३}मतो^{१३} रेजुः प्रतिक्रम^{१४}विवर्जिताम् ॥१३५॥

है; और यह दया ही प्राणप्यारी स्त्री है इस प्रकार जिसकी सब सामग्री प्रशसनीय है ऐसा यह तपस्वी राज्य ही उत्कृष्ट राज्य है ॥१२४॥ इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर वे सब राजकुमार परम वैराग्यको प्राप्त हुए और महादीक्षा धारण कर घरसे वनके लिये निकल पड़े ॥१२५॥ साक्षात् भगवान् वृषभदेवके द्वारा दी हुई दीक्षाको नई स्त्रीके समान पाकर वे तरण राजकुमार नये वरके समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१२६॥ जनकी वह दीक्षा विनी राजवत्याके समान ज्ञान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार राजकन्या कचग्रह अर्थात् केश पकड़कर बड़े प्रणय अर्थात् प्रेमसे समीप आती है उसी प्रकार वह दीक्षा भी कचग्रह अर्थात् केश लोचकर बड़े प्रणय अर्थात् शुद्ध नयोसे उनके समीप आई हुई थी इस प्रकार राजवत्याके समान सुशोभित होनेवाली दीक्षाके दोनो हाथ पाकर (पक्षमें पाणिग्रहण संस्कार कर) वे राजकुमार अन्न करणमें सुखको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ अथानन्तर जिन्होंने अपने तेजमें ममम्न दशाओंको रोक लिया है ऐसे वे राजर्षि तीव्र तपश्चरण धारण कर ग्रीष्म ऋतुके गूर्यकी किरणोंके समान अतिशय देदीप्यमान हो रहे थे ॥१२८॥ वे राजर्षि जिस शरीरको धारण किये हुए थे वह तीव्र तपश्चरणसे कृश होनेपर भी तपके गुणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था और ऐसा मालूम होता था मानो तपस्वी लक्ष्मीके द्वारा उकेरा ही गया हो ॥१२९॥ वे लोग जिनवपु नामके मामाधिक चारित्र्यमें स्थित हुए और ज्ञानकी विशुद्धिसे बड़ा हुआ तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥१३०॥ वैराग्यकी चरम सीमाको प्राप्त हुए उन तरण राजर्षियों ने राज्यलक्ष्मीके दृष्टा छोड़कर तपस्वी लक्ष्मीको अपने वश किया था ॥१३१॥ वे राजकुमार तपस्वी लक्ष्मीके द्वारा आर्लिप्त हो रहे थे, मुक्तिरूपी लक्ष्मीमें उनकी इच्छा लग रही थी और ज्ञानरूपी मरदामें आमन हो रहे थे । इस प्रकार वे राज्यलक्ष्मीको विलग्न हो भ्रष्ट करे थे ॥१३२॥ उन महाशुद्धिमानोंने द्वादशाङ्गरूप श्रुतस्क्न्धका अध्ययन कर करी उच्छ्रित चारणामे अपने आत्माको अकृत किया था ॥१३३॥ स्वाध्याय करनेसे मन का निर्गम होना है और मनका निर्गम होनेसे इन्द्रियोरा निर्ग्रह होता है यही ममभयर उन परमार्थ म्निषोंने स्वाध्यायमें अपनी शुद्धि लगाई थी ॥१३४॥ उन्होंने आचारोंमें

ततोऽमी श्रुनि शेषश्रुतार्थाः श्रुतचक्षुषः । श्रुतार्थभावनोत्कर्षाद् दधुः शुद्धिं तपोविधौ ॥१४८॥
 वाग्देव्या सममालापो मया मौनमनारतम् । इतीर्ष्यतीव सन्ताप व्यधत्तं तपःश्रिया ॥१४९॥
 तनुनापमसह्य ते सहमानाः मनस्विनः । बाह्यमाध्यात्मिकं चोप्र तपः सुचिरमाचरन् ॥१५०॥
 ग्रीष्मेऽहंकरसन्ताप सहमानाः सुदु सहम् । ते भेजुरातपस्थानम् श्राद्धगिरिमस्तकाः ॥१५१॥
 शिक्ततलेषु तपेषु निर्वेदितपद्भ्याम् । प्रलम्बितभुजास्तस्थुर्गिर्वेदप्रभावगोचरे ॥१५२॥
 तप्तपाञ्चिता भूमिः दाबदग्धा वनस्थली । याता जलाशयाः शोष दिशो धूमान्धकारिता ॥१५३॥
 इत्यनुप्रतरे ग्रीष्मे सप्लुष्टगिरिकानने । तस्युरातपयोगेन ते सोढजरठतपाः ॥१५४॥
 मेघान्धकारिता शेषदिक्चक्रे जलदागमे । योगिनो गमयन्ति स्म तदमूलेषु शर्वरी ॥१५५॥
 मुसलस्थूलधारिभिः बर्षत्सु जलबाहिषु । निशामनेपुरं व्यथ्यां वार्षिकीं ते महर्षयः ॥१५६॥
 ध्यानगर्भं गृह्णान्त स्या धृतिप्रवाहसवताः । सहन्ते स्म महासत्त्वास्ते घनाघनदुदिनम् ॥१५७॥
 ते हिमानोऽपरिकल्पिता तनुर्धाट्ट हिमागमे । दधुः शोषवकाशेषु दयाया मौनमास्थिताः ॥१५८॥
 श्रान्तमप्यिता एव नग्नास्तेऽग्निसेविनः । धृतिसर्वमितं रदगंः सेहिरे हिमाप्लान् ॥१५९॥

क्रिया था ॥१४७॥ तदनन्तर जिन्होंने समस्त श्रुतके अर्थोंका श्रवण किया है और श्रुतज्ञान ही जिनके नेत्र है ऐसे वे मुनि श्रुतज्ञानकी भावनाके उत्कर्षसे तपश्चरणमें विशुद्धता धारण करने लगे ॥१४८॥ ये लोग सरस्वती देवीके साथ तो वातचीत करते हैं और मेरे साथ निरन्तर मौन धारण करते हैं इस प्रकार ईर्ष्या करती हुईके समान तपश्चरणकी क्रिया उन्हें बहुत सताप देती थी ॥१४९॥ असह्य कायक्लेस सहन करते हुए वे तेजस्वी मुनि अतिशय कठिन अन्तरङ्ग और बाह्य दोनों प्रकारका तप चिरकाल तक करते रहे ॥१५०॥ ग्रीष्मऋतुमें पर्वतोंके शिखरपर आरूढ़ होकर अत्यन्त असह्य सूर्यकी किरणोंके सतापको सहन करते हुए वे आतापन योगको प्राप्त हुए थे अर्थात् धूपमें बैठकर तपस्या करते थे ॥१५१॥ पर्वतोंके अप्रमाणनी चट्टानोंकी तपी हुई शिलाओपर दोनों पैर रखकर तथा दोनों भुजाए लटका कर गड़े होने थे ॥१५२॥ जिम ग्रीष्मऋतुमें पृथिवी तपी हुई धूलिसे व्याप्त हो रही है, वनके सब प्रवेश दावानलमें जल गये हैं, ताप्याव सूख गये हैं और दिशाएं धूपसे अन्धकारपूर्ण हो रही हैं इन प्रशङ्के अत्यन्त कठिन और जिममें पर्वतोंके वन जल गये हैं ऐसी ग्रीष्मऋतुमें तीव्र गताप सहन करने हुए ये मुनिराज आतापन योग धारण कर गड़े होने थे ॥१५३-१५४॥ जिममें गमस्य दिनाशोना समूह बादलोंके छा जानेमें अन्धकारयुक्त हो गया है ऐसी वर्षाऋतु में वे योगी यक्षोंके नीचे ही अपनी रात्रियाँ बिता देने थे ॥१५५॥ जब बादल मूलके समान मोटी मोटी धाराओंमें पानी बरसाने थे तब वे महर्षि वर्षाऋतुको उन रात्रियोंको निश्चल होकर द्यतौन करने थे ॥१५६॥ ध्यानरूपी गर्भगृहके भीतर स्थित और धैर्यरूपी ओढ़नी की ओटे हुए ये महावयमान् मुनि बादलोंमें डके हुए दुदिनोंको सहन करते थे ॥१५७॥ नीतऋतुमें दिनोंमें मौन धारण कर मूले आनागमें धयन करने हुए वे मुनि बहुत भारी वर्षामें अत्यन्त दुःखी हुई अपने शरीरोंको मगडोंके समान निश्चय धारण करते थे ॥१५८॥ वे मुनि नग शीतल भी वर्षा जलमेंवन नहीं करने थे, वर्षामें गठिन हुए के समान गदा निर्द्वन्द्व रहते थे

हंसनीपुः त्रिपामागु स्वयिनाम्नेः हिमोच्चपंः । प्रवारितं रिवाटोः स्वर्धाराः स्वन्मसोरत ॥१६०॥
 निशालविषयं योगमास्यायैव दुष्टदृष्टम् । मुचिरं धारयन्ति स्म धीरास्ते धृतियोगिनः ॥१६१॥
 दधानाम्ने तपस्त्रापमन्तदीप्तं दुरामदम् । रेजुस्तरद्विगिरद्वयोः प्रायोऽनुकृतवाट्यः ॥१६२॥
 ते स्वभुवनोऽभिन्नं भूयो वै चन्द्रं भोगपरिच्छदम् । निर्भुक्तमाल्यनिवार मन्मथाना मनोधिपः ॥१६३॥
 फेनोर्महिमसम्पन्नाश्चलं जीवितमद्विगिनाम् । मन्मथाना दृढमार्गिणि भेजुन्ते पथि शारवणे ॥१६४॥
 समारावाप्तनिविष्णा गृहायामाद्विनिमृताः । जने मार्गे विभुव्यहगे ते परा धृतिमादधुः ॥१६५॥
 इतोऽप्यदुत्तरं नालीत्याष्टदृढमाजनाः । तेज्मी मनोवचःकार्यैः श्रद्धघुण्ड्यामनम् ॥१६६॥
 तेज्जुस्वना जिनप्रोचने मूले पन्ने सनानने । उत्पिष्टन्ते स्म मुक्त्वथ बहुरयदा समुत्तरः ॥१६७॥
 सवेगजनितप्रदाः शूद्रे वन्मन्पनुत्तरं । दुराया नावयामानुस्ते महाप्रतनावनान् ॥१६८॥
 श्रीहमा सत्यमस्येष ब्रह्मचर्यं विभुक्तनाम् । रान्मनोऽनपथ्यानि व्रतान्पेनाम्पनामनम् ॥१६९॥
 मावर्ज्जोवं यनेष्वेषु ते दृडीहृत्तनदराः । निविनेन प्रतिक्रान्तं शोषाः शूद्रे परा दधुः ॥१७०॥
 सर्वांरम्भविनिर्मुक्ता निर्मला निप्रिरप्रहाः । मार्गमाराधयञ्जनेन व्युत्पद्यन्तुपथ्यः ॥१७१॥

और धैर्यरूपी कवचमें टके हुए अगोमे शीतल पवनको महान करने थे ॥१५९॥ शीतलनुकी रानिषोमं व्रतके मनुहमे टके हुए वे धीर और मुनिराज न्वनन्नापूर्व इम प्रकार गयन करने थे मानो उनके अग वस्त्रमें ही टके हो ॥१६०॥ इस प्रकार वे धीर और मुनि तीनों काल-मन्वन्वी कठिन योग लेकर अपने धैर्यगुणके योगमें उन्हें चिरकायक धारण करने थे ॥१६१॥ अन्तरङ्गमें देखीप्यमान और अतिशय कठिन तपके तेजको धारण करने हुए वे मुनि तरङ्गमें समान अपने अङ्गोमें ऐसे जान पडते थे मानो समुद्रवा ही अनुकरण कर रहे हो ॥१६२॥ वे बुद्धिमान अपने द्वाग उपभोग कर छोडो हुई भोगमामुकी भोगमें आई हुई माल्याके समान मारुहीन मानते हुए फिर उनकी उन्हा नहीं करने थे ॥१६३॥ वे प्राणियोंके जीवनको फेन, ओम अथवा मंत्र्यानालके वाइलोंके समान चञ्चल मानते हुए अविनाशी मोक्षमार्गमें दृढ़ता के साथ आसक्तिको प्राप्त हुए थे ॥१६४॥ समारके निवासमें विक्कन हुए और घरके आवाम में छूटे हुए वे मुनिगज मोक्षके वारणभूत जिनन्द्रदेवके मार्गमें परम मनोप धारण करते थे ॥१६५॥ इसमें बडकर और कोई शान्त नहीं है इस प्रकारकी मजबूत भावनाएँ जिन्हें प्राप्त हो रही हैं ऐसे वे गजर्षि मन् कवन कल्पने मन्मथानुके गामनका श्रद्धात सन्ते थे ॥१६६॥ जिनन्द्र भगवानुके द्वारा वहे हुए और अनादिने चचे आवे वयार्य जंतप्रममें अनुकृत हुए वे मोक्षामिल्यापी मुनिगज मोक्षके लिये वमर वनकर मडे हुए थे ॥१६७॥ सवेग होनेने जिन्हें गुद और सर्वथेष्ठ मोक्षमार्गमें श्रद्धान उत्पन्न हुआ है ऐसे वे मुनि कठिनाईमें प्राप्त होने योग्य महाप्रवर्ती भावनाप्रोसा निरन्तर चितवन किया करते थे ॥१६८॥ अहिमा, मत्प, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग और रात्रिभोजनत्याग इन छह महाप्रतोना वे निरन्तर पाउन करने थे ॥१६९॥ जिन्होंने ऊपर वहे हुए छह प्रतोसी जीवनपर्यन्तके लिये दृढ़प्रतिज्ञा धारण की है और मन, पचन तथा कायने उन प्रतोके समस्त दोष दूर कर दिये हैं ऐसे वे मुनिगज परम दिगुद्धिकी धारण कर रहे थे ॥१७०॥ जिन्होंने मत्र प्रकारके जारम्भ छोड दिये हैं, जो ममता रहित हैं, पन्निद्राद्विनि हैं और शरीरम्प लकडीने भी जिन्होंने समन्व छोड दिया है ऐसे वे

सर्वोपविधिनिर्मुक्ता युक्ता^१ धर्मं जिनेदिते । नच्छन् बालाग्रमात्रं च द्विधाम्नातं^२ परिग्रहम् ॥१७२॥
 निर्मूर्च्छास्ति^३ स्वदेहेऽपि धर्मवर्त्मनि सुस्थिता । सन्तोषभावनापास्ततृष्णा सन्तो विजिह्वरे^४ ॥१७३॥
 वसन्ति स्मानिकेतास्ते^५ यत्रास्त 'भानुमानित'^६ । तत्रैकत्र^७ क्वचिद्देशे भेस्सङ्ग्य परमास्थिता ॥१७४॥
 विविक्तकान्तसेवित्वाद^८ प्रामेध्वेकाहवासिन^९ । पुरेऽपि न पञ्चाहात्पर तस्यनुपर्यय^{१०} ॥१७५॥
 दान्यागारस्मयानादिबिबिक्तालपयोगेचरा^{११} । ते वीरवसतीर्भेजु उज्जिता सप्तभिर्भयं ॥१७६॥
 तेऽभ्यनन्द महासत्त्वा पाकसत्त्वरधिष्ठिता । गिर्यप्रकन्दरारण्यवसती प्रतिवासरम् ॥१७७॥
 सिंहस्रक्कदाईलतरद्वयादि^{१२} निषेविते । वनान्ते ते वसन्ति स्म तदारसितभोषणे^{१३} ॥१७८॥
 स्फुरत्युख्यशाईसर्गाजितप्रतिनि स्वने । आगुञ्जत्पर्वतप्रान्ते^{१४} ते स्म तिष्ठन्त्यसाध्वरा ॥१७९॥
 कण्ठीरवशिरोराणा^{१५} कठोरं^{१६} कण्ठनिस्वने । प्रोघ्रादिनि^{१७} वने ते स्म निवसन्त्यस्तभीतय ॥१८०॥
 नृत्यत्वधधर्मन्तं सञ्चरद्वाकिनीगणा । प्रबद्धकौशिक^{१८} ध्वाननिरुद्धो^{१९} पान्तकानना ॥१८१॥
 शिथानाम^{२०} सिध्वैर्चानिं आरुद्धाखिलदिङ्मुखा । महापितृवनोद्देशा निशास्वेभि^{२१} सिषेविरं^{२२} ॥१८२॥

मुनि जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए मोक्षमार्गकी आराधना करते थे ॥१७१॥ सब प्रकार के परिग्रहमे रहित होकर जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहे हुए धर्मका आचरण करते हुए वे राजकुमार वाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारके कहे हुए परिग्रहोमेंसे बालकी नोकके धरावर भी किमी परिग्रहकी चाह नहीं करते थे ॥१७२॥ जिन्हें अपने शरीरमें भी ममत्व नहीं है, जो धर्मके मार्गमें स्थिर हैं और सतोपकी भावनासे जिन्होंने तृष्णाको दूर कर दिया है ऐसे वे उत्तम मुनिराज सब जगह विहार करते थे ॥१७३॥ परिग्रह-याग व्रतको उत्कृष्ट रूपसे पालन करने वाले वे गृहरहित मुनिराज जहाँ सूर्य डूब जाता था वही किसी एक स्थानमे ठहर जाते थे ॥१७४॥ वे राजापि एवान्त और पवित्र स्थानमें रहना पसन्द करते थे इसलिये गाँवोंमें एक दिन रहते थे और नगरोंमें पाँच दिनमे अधिक नहीं रहने थे ॥१७५॥ वे मुनि सात भयोसे रहित होकर गन्धगृह अथवा श्मशान आदि एवान्त-स्थानोंमें वीरताके साथ निवास करते थे ॥१७६॥ वे महावृषवान् राजकुमार सिंह आदि दुष्ट जीवोंसे भरी हुई पर्वतोंकी गुफाओं और जगलों में ही प्रतिदिन निवास करना अच्छा समझने थे ॥१७७॥ सिंह, रीछ, भेड़िया, व्याध, चीता आदिमे भरे हुए और उन्हींके शब्दोंमें भयकर वनके बीचमें वे मुनिराज निवास करते थे ॥१७८॥ चारों ओर घूमने हुए व्याघ्रकी गर्जनाकी प्रतिध्वनियोंमे गूजते हुए पर्वतके किनारोंपर वे मुनि निर्भय होकर निवास करते थे ॥१७९॥ मिहोंके वच्चोंकी कठोर कठगर्जनासे शब्दायमा वनमें मुनिराज भयरहित होकर निवास करते थे ॥१८०॥ जहाँ जाते हुए गिररहित धर्मोंके गभीर आचिनियोंके समूह फिर रहे हैं जिनके समीपके वन उल्लुखोंके प्रचण्ड शब्दोंमे भर गये हैं और जहाँ गूगाओंके अमङ्गलरूप शब्दोंसे सब दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं मेरी यही यही श्मशानभूमियोंमें रात्रिके समय वे मुनिराज निवास करने थे ॥१८१-१८२॥

सिंहा इव नृसिंहास्ते' तस्वर्गिरिगुहाथया । जिनोक्त्यनुगतं स्वान्तं अनुद्विर्न^२ समाहिता ॥१८३॥
 पाकसत्त्वशताकीर्णा वनभूमि भयानकाम्^३ । तेऽन्यवात्सुस्तं निवामुं^४ निघासु ध्यानमास्थिता^५ ॥१८४॥
 न्ययेवन्त वनोद्देशान् निपेव्यान्वनदग्निभिः । ते तद्गुताप्रानिर्निप्रतरम्यपुदितान्तरान्^६ ॥१८५॥
 वनेषु वनमातङ्गयु हितप्रतिनादिनी । दरीस्तेऽप्युपराष्टं शान्मन्ता करिदामुभि^७ ॥१८६॥
 स्वाध्याययोगतत्तकना न स्वपन्ति स्म रात्रियु । सूत्रार्थभावनीद्युक्ता जागृत्वा^८ सदायमी ॥१८७॥
 पश्यदग्नेन निपण्यास्ते योरासतन्युपोऽयवा^९ । शयानावकपादवेन शर्वरीरत्यघ्राह्यम्^{१०} ॥१८८॥
 त्यक्नोपधिभरा धीरा व्युत्सृष्टाऽग्रा निरन्वरा । नैषिञ्च प्रविदाद्वास्ते मुक्तिमार्गममार्गयन्^{११} ॥१८९॥
 निर्व्यपिक्ता निराकाङ्क्षा वायुवीथ्यनुगामिन^{१२} । व्यहरन् वसुधामेना सप्रामनगराकराम् ॥१९०॥
 विहरन्तो महौ वृत्तना ते कस्याप्यनभिद्गृह^{१३} । मानूकल्पा दयालुत्वात्सुत्रकल्पेषु देहियु ॥१९१॥
 ग्रीवाजीवविभागना ज्ञानीद्योतस्फुरद्गृह । सावद्य परिजहृत्ने प्रानुश्रावसयाशना^{१४} ॥१९२॥
 स्याद्यत्पिञ्चच्च सावद्य तत्सर्वं त्रिविधेन ते । रत्नप्रितयशब्द्व्यर्थं यावज्जीवमवजयन्^{१५} ॥१९३॥
 त्रसान् हरितकाप्रादच पृथिव्यप्पवनानलान् । जीवकापानपायंभ्यस्ते^{१६} स्म रक्षन्ति यत्नत ॥१९४॥

मिहके समान निर्भय, मत्र पुरपोमें श्रेष्ठ और पर्वतोमी गुफाओमें ठहरनेवाले वे मुनिराज चिनेन्द्र-
 देवके उपदेशके अनुसार चलनेवाले श्वेदरहित चित्तमें शान्त होकर निवाम करने थे ॥१८३॥
 वे मुनिराज अघेरी रानोके ममय मंडो दुष्ट जीवोमें भरी हुई भयकर वनकी भूमियोंमें ध्यान
 धारण कर निवास करने थे ॥१८४॥ जो जगती हाथियोंके द्वारा मेषन करने योग्य हैं तथा
 जिनके मध्यभाग हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागमें टूटे हुए वृक्षोंमें ऊँचे नीचे हो रहे हैं ऐसे वन-
 के प्रदेशोंमें वे महामुनि निवाम करने थे ॥१८५॥ जिनमें जगती हाथियोंकी गर्जनाती
 प्रतिध्वनि हो रही है और उन प्रतिध्वनिमें बुपिन हुए मिहोमें जो भर रही हैं ऐसी वनकी
 गुफाओमें वे मुनि निवाम करते थे ॥१८६॥ वे मुनिराज स्वाध्याय और ध्यानमें आमकन
 होकर रात्रियोंमें भी नहीं सोने थे, किन्तु मुनोके अर्थके चिन्तनमें तत्पर होकर मदा जागते
 रहते थे ॥१८७॥ वे मुनिराज पर्यटनममने पैठर, योरामनमें बैठकर अथवा एक बगवट-
 में ही सोकर रात्रियाँ बिना देने थे ॥१८८॥ जिन्होंने परिग्रहना भार छोड़ दिया है, शरीरमें
 ममय दूर कर दिया है, जो वस्त्ररहित हैं और परिग्रहत्यागने जो अयत्न विद्युत् है ऐसे वे
 धीरवीर मुनि मोक्षका मार्ग ही सोचते रहते थे ॥१८९॥ विनीकी अपेक्षा न करनेवाले, आज्ञा
 क्षात्रोंमें रहित और आकाशकी तरह निर्लेप वे मुनिराज गाँव और नगरोंमें समूहमें नही हुई
 इन पृथिवीपर विहार करते थे ॥१९०॥ ममन्न पृथिवीपर विहार करने हुए जोर किसी
 भी जीवमें श्रेह नहीं करते हुए वे मुनि दयालु होनेमें ममन्न प्राणियोंकी पुत्रों तुल्य मानने
 थे और उनके साथ माताने समान व्यवहार करते थे ॥१९१॥ वे जीव और अजीवके विभाग
 को जाननेवाले थे, ज्ञानके प्रकाशमें उनके नेत्र देदीप्यमान हो रहे थे अथवा ज्ञानका प्रकाश
 ही उनका स्फुरायमान नेत्र था, वे प्रामुक् जयान् जीवरहित स्थानमें ही निवाम करते थे और
 उनका भोजन भी प्रानुक् ही था, इन प्रकार उन्होंने ममन्न नावद्य भोगना परिहार कर दिया
 था ॥१९२॥ उन मुनियोंने रत्ननयकी विद्युत्के लिये, ममारमें चितने नावद्य (पापारम्भ-
 सहित) कार्य हैं उनका जीवन पर्यन्तके लिये त्याग कर दिया था ॥१९३॥ वे प्रनकाय, वनस्पति

१ पुरपश्रेष्ठा । २ अयत्नितं । ३ प्ररम्यम् । ४ नयवगम । ५ निवमन्ति स्म । ६ अत्रवागवनीपु
 'तमिन्ना नामनी 'नवि' विरनिधालाव । ७ आश्रिता । ८ निन्नाप्रतमध्यान् । ९ अधिवमन्ति स्म ।
 १० निः । ११ जगतीना । १२ वा । १३ नयन्ति स्म । १४ वायुवनिर्गच्छा इत्यर्थं ।
 १५ जपानुना । १६ निःशान्ततहाग । १७ अयत्नय ।

अदीनमनसः शान्ताः परमोपेक्षेयान्विताः । मुञ्चितशठपात्रिभिर्गुप्ताः कामभोगेऽप्यविरमिताः ॥१६५॥
 जिनाज्ञानगताः शश्वत्सत्साराद्विग्नमानसाः । गर्भघासैः जरा मृत्युपरिवर्तनभीरवः ॥१६६॥
 श्रुतज्ञानदृशो वृष्टपरमार्था विचक्षणा । शानदीपिकया साक्षाच्चन्द्रस्ते पदमशरम् ॥१६७॥
 ते चिर भावयन्ति स्म सन्मार्गं मुञ्चितसाधनम् । परदत्तविद्युद्धान्नभोजिनः पाण्यमप्रत्राः १ ॥१६८॥
 शङ्कितभिहृतो^१ द्विष्ट^२ क्रशक्रीतादि^३ लक्षणम् । सूत्रे^४ निषिद्धमाहारं नैच्छद्ग्राणात्ययेऽपि ते ॥१६९॥
 भिक्षा नियतवेलाया गृहपदव्यनतिप्रमान् । दण्डामाददिर धीरा मुनिवृत्तो^५ समाहिताः ॥२००॥
 शीतमुष्णं विशक्षं च स्निग्धं सत्पथं न या । तनुस्त्वित्ययंमाहारमाजुस्ते^६ गतस्पृहाः ॥२०१॥
 अक्षमूक्षणमात्रं ते प्राणधूर्यं^७ विषय्वणु^८ । धर्मायंमेव^९ च प्राणात् धारयन्ति स्म वैयलम् ॥२०२॥
 न तुयन्ति स्म ते लब्धो^{१०} व्यथोदभाष्यलब्धितः । मन्यमानास्तपोलाभमधिकं पुत्रवल्गवः ॥२०३॥

काय, पृथिवीकाय, जलकाय, वायु काय और अग्नि काय इन छह कायके जीवोंकी वड़े यत्न से रक्षा करते थे ॥१९४॥ उन मुनियोंका हृदय दीनतासे रहित था, वे अत्यन्त शान्त थे, परम उपेक्षासे सहित थे, मोक्ष प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था, तीन गुणियोंके धारक थे और काम भोगोंमें कभी आश्चर्य नहीं करते थे ॥१९५॥ वे सदा जिनेन्द्रदेवकी आज्ञासे अनुसार चला करते थे, उनका हृदय ससारसे उदासीन रहा करता था और वे गर्भमें निवास करता, वृद्धावा और मृत्यु इन तीनोंके परिवर्तनसे सदा भयभीत रहते थे ॥१९६॥ श्रुतज्ञान ही जिनके नेत्र हैं और जो परमार्थको अच्छी तरह जानते हैं ऐसे वे चतुर मुनिराज ज्ञानरूपी दीपिका के द्वारा अविनाशी परमात्मपदका साक्षात्कार करते थे ॥१९७॥ जो दूसरेके द्वारा दिये हुए विसुद्ध अन्नका भोजन करते हैं तथा हाथ ही जिनके पात्र हैं ऐसे वे मुनिराज मोक्षके कारणस्वरूप समोचीन मार्गका निरन्तर चिन्तन करते रहते थे ॥१९८॥ शक्ति अर्थात् जिसमें ऐसी शक्ति हो जावे कि यह शुद्ध है अथवा अशुद्ध, अभिहृत अर्थात् जो किसी दूसरेके यहाँमें लाया गया हो, उद्दिष्ट अर्थात् जो खासकर अपने लिये तैयार किया गया हो, और त्रयक्रीत अर्थात् जो कीमत देकर बाजारसे खरीदा गया हो इत्यादि आहार जैन शास्त्रोंमें मुनियोंके लिये निषिद्ध बताया है । वे मुनिराज प्राण जानेपर भी ऐसा निषिद्ध आहार लेनेकी इच्छा नहीं करते थे ॥१९९॥ मुनियोंकी वृत्तिमें सदा सावधान रहनेवाले वे धीरवीर मुनि धरोकी पवित्रियोंका उल्लंघन न करते हुए निश्चित समयमें शुद्ध भिक्षा ग्रहण करते थे ॥२००॥ जिनकी लालसा नष्ट हो चुकी है ऐसे वे मुनिराज शरीरकी स्थितिके लिये ठंडा, गर्म, खूना, चिकना, नमक सहित अथवा विना नमकका जैसा कुछ प्राप्त होता था वैसा ही आहार ग्रहण करते थे ॥२०१॥ वे मुनि प्राण धारण करनेके लिये अक्षमूक्षण मात्र ही आहार लेते थे और केवल धर्मसाधन करनेके लिये ही प्राण धारण करते थे । भावार्थ—जिस प्रकार गाड़ी आगनेके लिये थोड़ी मो चिन्ननाईकी आवश्यकता होती है भले ही वह चिन्ननाई किसी भी पदार्थकी हो इसी प्रकार शरीरकी गाड़ीको ठीक ठीक चलानेके लिये कुछ आहारकी आवश्यकता होती है भले ही वह गरम या नीरम कैसा ही हो । अतएव आहार लेकर मुनिराज शरीरको स्थिर रखते हैं और उसमें समय धारण कर मोक्षकी प्राप्ति करते हैं वे मुनिराज भी ऐसा ही करते थे ॥२०२॥ वे पाप रहित मुनिराज, आहार मिल जानेपर संतुष्ट नहीं होते थे और नहीं मिलनेपर तपस्वरण

१ मुखाग्राण्या अ०, १०, ६०, १० । मुनिसाध्या ल० । २ जन्म । ३ पाणिपालका द०, ल०, १०, ६० । पाणिपुत्रभाजना । ४ शूलमण्डुतापनादिव दत्त्वा स्वीकृत वतमोदनादिव । ५ आत्मानमुद्दिश्य । ६ पत्रादिव दत्त्वा च्छोऽरणम् । ७ परमागमे । ८ निषेधितम् । ९ यथाचारे । १० जायदु । ११ प्राणधारणार्थम् । १२ भुञ्जते स्म । १३ धर्मं निमित्तम् । १४ पाने गति ।

स्तुतिं निन्दा सुख दुःख तथा मान^१ विमाननाम्^२ । समभावेन तेष्वप्यन् सर्वत्र समदर्शिन ॥२०४॥
 वाचयामत्व^३ मास्थाय चरन्तो गो^४चरायिन । निर्मान्त स्माप्यलाभेन नामञ्जन् मौनसद्गारम्^५ ॥२०५॥
 महोपवासस्नानादाद्या यतन्ते स्म तनुस्थितौ । तत्राप्यगुह्यमाहार^६ नैपियमनसाज्यमो ॥२०६॥
 गोचराप्रगता^७ योग्य भुक्त्वान्ममविलम्बितम्^८ । प्रत्याख्याय^९ पुनर्वीरा नियमुक्ते तपोवतम् ॥२०७॥
 तपस्तापतनुभूततनवोऽपि मृनोश्चरा । अनवृद्धात्तपोयोगात्त चे^{१०}त्तुद्वड^{११}सद्गरा ॥२०८॥
 तीव्र तपस्थता^{१२} तेया गात्रेषु श्लयताऽभवत् । प्रतिज्ञा या तु सद्धान्तसिद्धावशिथिलं च सा ॥२०९॥
 नाभूत्परिग्रहभङ्गगस्तेया चिरमुपोष्याम् । गता परिग्रहा एव भङ्ग तान् जेतुमक्षमा^{१३} ॥२१०॥
 तपस्तनुनपात्तायाद^{१४}भूस्तेया पराद्यति । निदृष्टस्य तुवर्णस्य बीर्त्तिर्न^{१५}वतिरेक्षिणो^{१६} ॥२११॥
 तपोऽग्निस्तप्तबीत्ताद्गगास्तेऽन्तर्दृष्टिं परा दधु । तपताया तनुमुपाया शुद्धपत्यात्मा हि हेमवत् ॥२१२॥
 त्वगस्थिमाश्रदेहास्ते ध्यानगुह्यिभ्युत्तराम् । सर्वं हि परिवर्षद^{१७} बाह्यपमप्यात्मगुह्ये ॥२१३॥
 योगजा सिद्धयस्तेषाम् अणिमादिगुणद्वय । प्रादुरासन्विगुह्य हि तप सूते महफलम् ॥२१४॥

एपी अधिक लाभ समभने हुए विषाद नहीं करते थे ॥२०३॥ सब पदार्थोंमें समान दृष्टि रखने वाले वे मुनि स्तुति, निन्दा, सुख, दुःख तथा मान-अपमान सभीको समान रूपसे देखते थे ॥२०४॥ वे मुनि मौन धारण करके ईर्यासिमितिसे गमन करते हुए आहारके लिये जाते थे और आहार न मिलनेपर भी मौनव्रतकी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करते थे ॥२०५॥ अनेक महोपवाम करनेसे जिनका शरीर म्लान हो गया है ऐसे वे मुनिराज केवल शरीरकी स्थितिके लिये ही प्रयत्न करते थे परन्तु अगुह्य आहारकी मनसे भी कभी इच्छा नहीं करते थे ॥२०६॥ गोचरीवृत्तिके धारण करनेवालोंमें मुख्य वे धीरवीर मुनिराज शीघ्र ही योग्य अन्नका भोजन कर तथा आगेके लिये प्रत्याख्यान कर तपोवनके लिये चले जाते थे ॥२०७॥ यद्यपि तपश्चरणके मतापमे उनका शरीर कृश हो गया था तथापि दृढ प्रतिज्ञाको धारण करनेवाले वे मुनिराज प्राग्म्भ किये हुए तपसे विरग्न नहीं लेते थे ॥२०८॥ तीव्र तपस्या करनेवाले उन मुनियोंके शरीरमें यद्यपि शिथिलता आ गई थी तथापि समीचीन ध्यानकी सिद्धिके लिये जो उनकी प्रतिज्ञा थी वह शिथिल नहीं हुई थी ॥२०९॥ चिरकाल तन उपवास करनेवाले उन मुनियोंका परीपहोने द्वारा पराजय नहीं हो सका था बल्कि परीपह ही उन्हें जीतनेके लिये अममथं होकर म्रय पराजय को प्राप्त हो गये थे ॥२१०॥ तपस्वी अग्निके सनापमे उनके शरीरकी कान्ति बहुत ही उत्कृष्ट हो गई थी सो ठीक ही है क्योंकि तपे हुए मुवर्णकी दीप्ति बढ ही जाती है ॥२११॥ तपश्चरणस्वी अग्निके तप्त होकर जिनके शरीर अग्निगय देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे वे मुनिराज अन्तरङ्गको परम विगुह्यको धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि शरीरस्वी मृगा (साँचा) तपाये जानेपर आत्मा मुवर्णके ममान गुह्य हो ही जाती है ॥२१२॥ यद्यपि उनके शरीरमें केवल चमडा और हड्डी ही रह गई थी तथापि वे ध्यानकी उत्कृष्ट विगुह्यता धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उपवाम आदि ममन्म बाह्य माधन केवल आत्मगुह्यके लिये ही हैं ॥२१३॥ योगके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाली अणिमा महिमा आदि ऋद्धिया उन मुनियों के प्रकट हो गई थी सो ठीक ही है क्योंकि विगुह्य तप बहुत बढे बढे पर उत्पन्न करना है ॥२१४॥

१ पूजाम् । २ जवनाम् । ३ मौनवम् । ४ गावार । ५ मौनव्रतान् । ६ इच्छा न पशु । ७ गोचरनिगता मुच्यन्ते गता । ८ गीहम् । ९ प्रत्याख्यान मृगीया । १० -नारेमु-अ०, न०, ६०, ५०, ६० । ११ दुःखनिगता । १२ तप कृष्याम् । १३ तपोनिव्रतनिगताम् । १४ न स्थितरेक्षिणो ५०, ६० । १५ अनपाति ।

तपोमयः प्रणोतोऽग्निः कर्माण्याहुस्तपोऽभयन् । विधिगारतेः सद्यज्वानो मन्त्रः स्यायम्भुर्ध्वं यच्च ॥२१५॥
 महात्वरः पतिर्देवो वृषभो दक्षिणा दया । फलं वामितसंतिष्ठिः ऋषयः क्रियावधिः ॥२१६॥
 'इतोभामार्यभोमिष्टि'म् अभिसन्धाय तेऽञ्जसा । प्रायोवृत्तं प्रनूचानाः तपोयज्ञमनुत्तरम् ॥२१७॥
 इत्यमूमनगाराणा परां सद्गोवं १० भावनाम् । ते तथा ११ निर्वहन्ति स्म निसर्गोऽयं महोपसाम् ॥२१८॥
 किमत्र बहुना धर्मक्रिया धावत्यविप्लुता । तां वृत्तना ते स्वसाच्चक्षुः त्यक्तरामन्यविश्रियाः १२ ॥२१९॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं पुराणपुरादाधिगम्य धीधि

सत्तोयमानससः प्रवराजहंसाः ।

ये राज्यभूमिमवधूय ११ विधूतमोहाः

प्राज्ञाजिपुभंरतराजमननुकामाः १२ ॥२२०॥

ते धीरवा १३ मुनिवराः पुरुषैर्यंसार

धीरानगारचरितेषु १४ वृतावधानाः ।

योगीश्वरानु १५ गतमार्गमनुप्रपन्नाः

श १६ नो १७ दिशन्वसितलोकहितैकतानाः १८ ॥२२१॥

जिसमें तपस्चरण ही सस्कार की हुई अग्नि थी, कर्म ही आहुति अर्थात् होम करने योग्य द्रव्य थे, विधिविधानको जाननेवाले वे मुनि ही होम करनेवाले थे । श्री जिनेन्द्रदेवके वचन ही मन्त्र थे, भगवान् वृषभदेव ही यज्ञके स्वामी थे, दया ही दक्षिणा थी, इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होना ही फल था और मोक्षप्राप्त होना ही कार्यकी अन्तिम अवधि थी । इस प्रकार भगवान् ऋषभदेवके द्वारा कहे हुए यज्ञका सकल्प कर उन तपस्विद्योने तपस्वरूपी श्रेष्ठ यज्ञकी प्रवृत्ति चलाई थी ॥२१५-२१७॥ इस तरह वे मुनि, मुनियोंकी उत्कृष्ट भावनाकी प्रतिज्ञा कर उसका अच्छी तरह निर्वाह करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोका यह स्वभाव ही है ॥२१८॥ इस विषयमें बहुत कठनेसे क्या लाभ है उन सब मुनियोंने राज्यअवस्थामें होनेवाले समस्त विकार भावोंको छोड़कर अनादि कालसे जितनी भी वास्तविक क्रियाएँ चली आती थी उन सबको अपने आधीन कर लिया था ॥२१९॥

इस प्रकार पुराण पुरष-भगवान् आदिनाथसे रत्ननयकी प्राप्ति कर जो उनके तीर्थरूपी मानमसरोवरके प्रिय राजहंस हुए थे, जिन्होंने राज्यभूमिका परित्याग कर सब प्रकार का मोह छोड़ दिया था, जो भरतराजको नमस्कार नहीं करनेकी इच्छासे ही दीक्षित हुए थे, उत्कृष्ट धैर्य ही जिनका बल था, जो धीरवीर मुनियोंके आचरण करनेमें सदा सावधान रहते थे, जो योगिराज भगवान् वृषभदेवके द्वारा अगीकार किये हुए मार्गका पालन करने थे और जो

१ मरुताग्नि 'प्रणोत मरुतानन' इत्यभिधानान् । २ तपोयना । ३ महायज्ञ । ४ होमाने याचकादीना देय द्रव्यम् । ५ क्रियावगान । ६ ऋषभयम्यन्धिनीम् । ७ यजनम् । ८ चक्षुः । ९ प्रवचने गाहने अर्थात्तित । 'अनूचान प्रवचने माह्वेऽर्थात्ती' इत्यभिधानान् । १० प्रतिज्ञा वृत्ता । ११ तपश्चरितम् ग०, म० । १२ त्यक्तराजमनुत्तराणा । १३ त्यक्त्वैत्यर्थः । १४ नमस्कार न वन्दुवामा । १५ पुरो गन्धनिन । १६ यन्मावाग्ये । १७ ज्योतिष्य । १८ गुणम् । १९ यो प०, म०, न० । न अस्मावम् । २० व्रतितोऽन्ययुगम् ।

शादूलविक्रीडितम्

नत्वा विश्वसृज चराचरगुरु देव १ दिवोऽप्राचित
 नान्यस्य प्रपतिं ब्रजाम इति यो दीक्षा परा सश्रिता ॥
 ते न सन्तु तपोविभूतिमुचिता स्वोक्त्य मुक्तिश्रिया
 बद्धेच्छावृषभालमजा जिनमुषाम २ श्रेयसे ॥२२२॥
 स श्रीमान् भरतेदवर ३ प्रणिधिभिर्षान्प्र हृता नानयत्
 सम्भोक्तु निखिला विभज्य वमुधा सादं च यंनोऽपकृत् ४ ।
 निर्वाणाय पितृषभ जिनवृष ये शिथियु ५ श्रेयसे
 ते नो मानयता हरन्तु दुरित निर्दोषकर्मण्यना ॥२२३॥

इत्याप्ये भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणमद्वये
 भरतराजानुजदीक्षावर्णनं नाम चतुर्ग्रन्थसप्तमं पर्व ॥ ३४ ॥

समस्त लोकाहित करनेवाले थे ऐसे थे भगवान् वृषभदेवके पुत्र तुम सबका कल्याण करें
 ॥२२०-२२१॥ तम और स्यावर जीवोंने गुरु तथा इन्द्रोने द्वारा पूज्य भगवान् वृषभदेवको
 नमस्कार कर अत्र हम किसी दूसरेको प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा विचारकर जिन्होंने उत्कृष्ट दीक्षा
 धारण की थी, जिन्होंने योग्य तपश्चरणरूपी विभक्तिसे स्वीकार कर मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्रति
 अपनी इच्छा प्रकट की थी और जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करनेवालोंमें सबसे मुख्य हैं ऐसे भगवान्
 वृषभदेवके पुत्र हम सबके कल्याणके लिये हैं ॥२२२॥ वह प्रसिद्ध श्रीमान् भग्न अपने दूतों
 के द्वारा जिन्हें नम्रता प्राप्त नहीं करा सका और न विभाग कर जिनके साथ समस्त पृथिवीका
 उपभोग ही कर सका तथा जिन्होंने निर्वाणके लिये अपने पिता श्री जिनेन्द्रदेवका आश्रय लिया
 ऐसे अतिमानरूपी धनको धारण करनेवाले और कर्मरूपी ई धनको जगनेवाले वे मुनिराज
 हम सब लोगोंके पापोंका नाश करें ॥२२३॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराण मग्रहने भाषानुवादमें
 भरतराजने छोटे भाइयोंकी दीक्षा का वर्णन करनेवाला
 चौथीमवां पर्व समाप्त हुआ ।

१ इन्द्र । २ जिन वृषभ मयत्र इति त्रिजगुष तपाम । ३ हर । 'प्रणिधि प्राप्तने चर' इत्यभिधानात् ।
 ४ गमयो नाम्नू । ५ आश्रयति स्म ।

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ चक्रधरस्यासीन् किञ्चित् चिन्ताकूल मन । दोर्दलिन्यनुनेतव्यो^१ यूनि दोर्दपंगालिनि ॥१॥
 ग्रहो भूतगणोऽस्माक नाभिनन्दति^२ नन्दयुम्^३ । सनाभित्पादवप्यत्त्व मग्यमानोऽयमात्मन^४ ॥२॥
 प्रवप्य^५ शतमित्यास्या नून भूत^६ शतस्य मे । यत^७ प्रणामविमुख गतघन^८ प्रतीपताम्^९ ॥३॥
 न तयाऽस्माद्दृशा खेदो भवत्यप्रणते द्विधि । दुर्गविते यथा ज्ञातिषण्डेऽन्तर्गहर्वतिनि ॥४॥
 मुखेऽनिष्टवाग्बहिर्दीपितं रतिधूमिता । दहत्यन्तातवच्च स्या^{१०} प्रातिभूत्याभिलिखिता ॥५॥
 प्रतीपवृत्तय^{११} काम सन्तु दान्ये कुमारका । बाल्यात् प्रभृति येऽस्माभि स्यात् प्रयेणोपलालिता ॥६॥
 युधा तु दोर्दली प्राज्ञ क्रमज प्रथयो^{१२} पटु । कथं नाम गतोऽस्मासु विश्रया^{१३} सुजनोऽपि सत् ॥७॥
 कथं च सोऽनुनेतव्यो^{१४} बली मानधनोऽधुना । जयादग यस्य दोर्दपं इलाप्यते रणमूर्धनि ॥८॥
 सोऽय भुजवली बाहुबलशालो मदीदृत । महानिव गजो माद्यन् दुर्ग्रहोऽनुनर्पयिना ॥९॥
 न स सामान्यसन्देशे प्रह्वीभवति दुर्भेदी । ग्रहो दुष्ट इवाविष्टो^{१५} मन्त्रविद्यात्तर्पयिना^{१६} ॥१०॥

अथानन्तर भुजाओके गर्वसे शोभायमान युवा बाहुवलीको वश करनेके लिये चक्रवर्ती
 वा मन कुछ चिन्तासे आकूल हुआ ॥१॥ वह विचारने लगा कि यह हमारे भाइयोका समूह
 एक ही कुलमें उत्पन्न होनेसे अपने आपको अवध्य मानता हुआ हमारे आनन्दका अभिनन्दन
 नहीं करता है अर्थात् हमारे आनन्द-वैभवसे ईर्ष्या रखता है ॥२॥ हमारे भाइयोके समूहका
 यह विश्वास है कि हम सौ भाई अवध्य हैं इसीलिये ये प्रणाम करनेसे विमुख होकर मेरे शत्रु
 हो रहे हैं ॥३॥ किसी शत्रुके प्रणाम न करनेपर मुझे वैसा खेद नहीं होता जैसा कि परक
 भीतर रहनेवाले मिथ्याभिमानी भाइयोके प्रणाम नहीं करनेसे हो रहा है ॥४॥ अनिष्ट वचन
 रूपी अग्निसे उद्दीपित हुए मुखोसे जो अत्यन्त धूम सहित हो रहे हैं और जो प्रतिकूलताहृषी
 वायुसे प्रेरित हो रहे हैं ऐसे ये मेरे निजी भाई अलातचक्रकी तरह मुझे जला रहे हैं ॥५॥ जिन्हें
 हमने बालवपनसे ही स्वतन्त्रतापूर्वक खिला-पिलाकर बड़ा किया है ऐसे अन्य कुमार यदि
 मेरे विरुद्ध आचरण करनेवाले हो तो खुशीसे ही परन्तु बाहुवली तरुण, बुद्धिमान्, परिपाटी-
 को जाननेवाला, विनयी, चतुर और सज्जन होकर भी मेरे विषयमें विकारको कैसे प्राप्त हो
 गया ? ॥६-७॥ जो अतिशय बलवान् है, मानरूपी घनसे युक्त है, और विजयका अङ्ग
 स्वरूप जिसकी भुजाओका बल युद्धके अग्रभागमें बड़ा प्रशसनीय गिना जाता है ऐसे इस बाहु
 वलीको इस समय किम प्रकार अपने अनुकूल बनाना चाहिये ॥८॥ जो भुजाओके बलसे शोभाय-
 मान है और अभिमानरूपी मदसे उद्धत हो रहा है ऐसा यह बाहुवली किसी मदनोन्मत्त बड़े हाथी
 के समान अनुनय अर्थात् शान्तिमूचक बोमल वचनोके विना वश नहीं हो सकता ॥९॥ यह
 अर्चारी बाहुवली सामान्य मदेोगीने वश नहीं हो सकता क्योंकि शरीरमें घुसा हुआ दुष्ट पिशाच

१ दूर्ध्वनि २ गर्वितुं ३ योग्ये तनि । ४ नाभिवन्दति । ५ आनन्दम् । ६ भूतान्
 ७ यत । ८ वृत्तज एवमुपेपादय इति वृद्ध्या । ९ भूतगणस्य १०, १०, १० । ११ यस्मात् कारणात् ।
 १२ प्राणम् । १३ प्रतिपत्ताम् । १४ वापवा । १५ प्रतिवृत्तवर्तना । १६ विनयवान् । १७ विना
 रम् । १८ तर्पयति । १९ प्रवर्तित । २० प्रवर्तित । गमयतिरप्यं ।

शेषक्षत्रिययूनां च तस्य चास्त्यन्तर^१ महत् । मृगसामान्य^२मानार्यः^३ धर्तुं किं शक्यते हरिः ॥११॥
 सोऽग्नेऽो नीतिचुञ्चुत्वाद् दण्डसाध्यो न विप्रयो । नैप सामप्रयोगस्य विप्रयो विद्वत्साध्यः ॥१२॥
 ज्वलत्येव स तेजस्वी स्नेहेनोपकृतोऽपि सन् । घृताहुति प्रसेचेन यथेन्द्राचिर्मखानिलः^४ ॥१३॥
 स्वभावपरप्रे चास्मिन् प्रमुक्तं साम नार्यकृत्^५ । बपुषि द्विरदस्येव योजितं त्वच्यमीपथम् ॥१४॥
 प्रायो ध्यास्यात् एवास्य भावः शेषः कुमारकैः । मदाज्ञाविमुखंस्त्यक्नराज्यभोगंवनोन्मुखं^६ ॥१५॥
 भूयोऽप्यनुभवंरस्य परोक्षिष्यामहे मतम्^७ । तथाप्यप्रणते तस्मिन् विपेयं चिन्त्यमुत्तरम् ॥१६॥
 सातिव्याजनिगूढान्तर्विक्रियो^८ निष्प्रतिप्रियः । सोऽन्तर्ग्रहोत्पितो वह्निरिवादोष बहेत् कुलम्^९ ॥१७॥
 अन्तं प्रकृतिजं कोपो विघाताय प्रभोर्मतः । तरसात्प्राप्तघट्टजन्मा वह्निर्यथा गिरिः ॥१८॥
 तदाद्यु प्रतिकर्तव्यं स बली वक्रतां धितः । शूरे ग्रह इवामुत्पिन् प्रशान्ते शान्तिरेव नः ॥१९॥
 इति निद्रिचय कार्यज्ञं कृतं मन्त्रविशारदम् । तत्प्रान्तं प्राहिणोच्चक्षी निसृष्टार्थतयाऽन्वितम्^{१०} ॥२०॥

मन्त्रविद्यामे चतुर पुह्लोके विना वश नहीं हो सकता ॥१०॥ शेष क्षत्रिय युवाओंमें और वाहुवलीमें बड़ा भारी अन्तर है, माधारण हरिण यदि पागसे पकड़ लिया जाता है तो क्या उससे मिह भी पकड़ा जा सकता है ? अर्थात् नहीं । भावार्य—हरिण और सिंहमें जितना अन्तर है उतना ही अन्तर अन्य कुमारों तथा वाहुवलीमें है ॥११॥ वह नीतिमें चतुर होनेसे अभेद्य है, अर्थात् फोड़ा नहीं जा सकता, परानमी है इसलिये युद्धमें भी क्या नहीं किया जा सकता और उसका आग्रय अत्यन्त विकारयुक्त हो रहा है इसलिये उसके साथ शान्तिका भी प्रयोग नहीं किया जा सकता । भावार्य—उमके साथ भेद, दण्ड और साम तीनों ही उपायोसे काम लेना व्यर्थ है ॥१२॥ जिस प्रकार यज्ञकी अग्नि धीकी आहुति पडनेसे और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार वह तेजस्वी वाहुवली स्नेह अर्थात् प्रेमसे उपकृत होकर और भी अधिक प्रज्वलित हो रहा है कोधित हो रहा है ॥१३॥ जिस प्रकार हाथीके शरीरपर लगाई हुई चमड़ाको कोमल करनेवाली औषधि कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार स्वभावमें ही बठोर रहनेवाले इस वाहुवलीके विषयमें साम उपायका प्रयोग करना भी कुछ काम नहीं देगा ॥१४॥ जो भेरी आज्ञासे विमुख है, जिन्होंने राज्यभोग छोड़ दिये है और जो वनमें जानेके लिये उन्मुख है ऐसे वाकी समस्त राजकुमारोंने इसका अभिप्राय प्रायः प्रकट ही कर दिया है ॥१५॥ यद्यपि यह मन्त्र है तथापि फिर भी कोमल वचनोंके द्वारा उसकी परीक्षा करेंगे । यदि ऐसा करनेपर भी नम्रीभूत नहीं हुआ तो फिर आगे क्या करना चाहिये इसका विचार करना चाहिये ॥१६॥ भाईपनेके कपटमें जिनके अन्तरङ्गमें विकार छिपा हुआ है और जिसका कोई प्रतिकार नहीं है ऐसा यह वाहुवली घरके भीतर उठी हुई अग्नि के समान समस्त कुलको भस्म कर देगा ॥१७॥ जिस प्रकार वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभाग की रगड़से उत्पन्न हुई अग्नि पर्वतका विघात करनेवाली होती है उसी प्रकार भाई आदि अन्तरङ्ग प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुआ प्रकोप राजाका विघान करनेवाला होता है ॥१८॥ यह बलवान् वाहुवली इस समय प्रतिकूलताको प्राप्त हो रहा है इसलिये इसका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिये क्योंकि नूर प्रहके समान इसके शान्त हो जानेपर ही मुक्ते शान्ति हो सकती है ॥१९॥ ऐसा निश्चय कर चदवर्तने कार्यको जाननेवाले मन्त्र करनेमें चतुर तथा निःसृष्टार्थतामें महि

१ भेद । 'अन्तरमवगमावधि परिधानान्दि भेदतादर्थ्ये' इत्यभिधानात् । २ सामान्य कृत्वा । ३ जानै । 'आनाय पुमि जाल स्यात्' इत्यभिधानात् । ४ यज्ञानि । ५ कार्यकारी न । ६ त्वचे हितम् । ७ मम शासनम् । ८ वनाभिमुखे । ९ अभिप्रायः । १० जन्तुंशिविगार । ११ गृह गोत्र च । १२ स्वर्गो जानः । १३ अनकृत् । गम्पादिनप्रयोजनतया ।

उचितं^१ युग्यमाह्वो वयसा नातिकर्णः । अमुद्धतेन येणेण प्रतस्ये स तदन्तिकम् ॥२१॥
 आत्मनेव द्वितीयेन स्निग्धेनानुगतो द्रुतम् । निजानुजोयितोषेन^२ हस्तशम्भल^३वाहिना ॥२२॥
 सोऽन्वीप^४ वभित चेदेवम्^५ अहंभूयामकरव्यन^६ । धिगृह्य^७ यदि स भ्रूयाद् विरहं^८ विप्रहे पटे^९ ॥२३॥
 सन्धि च पणवन्ध^{१०} च कुर्यात् सोऽन्तरमेव नः । विशम्प^{११} क्षिप्रमेप्यामि^{१२} यिजिगीषायसङ्गते^{१३} ॥२४॥
 युग्यप्रति सम्पत्तिविपत्ती स्वायपक्षयोः । स्वय निगूढमन्त्रत्वाद् अनिमैद्योऽन्यमन्त्रिभिः ॥२५॥
 मन्त्रभेदभयाद् गूढ स्वपक्षके^{१४} प्रयाणके । युद्धापसारभूमोश्च^{१५} स पश्यन् दूरनत्ययात्^{१६} ॥२६॥
 क्रमेण देवान् सिन्धुश्च^{१७} देशसन्धीश्च^{१८} सोऽस्ति यन्^{१९} । प्रापत् सद्व्यातरात्रैस्तत् पुर पोदन साह्वयम्^{२०} ॥२७॥
 बहि पुरमयासाद्य रम्याः सस्यवतीर्भूयः । पक्वज्ञानिवनोद्देवान् स पश्यन् प्राप नन्दयुम्^{२१} ॥२८॥
 पश्यन् स्तम्बकरिस्तम्बान्^{२२} प्रभूतफल^{२३}शालिनः । कृतरक्षान् जनयन्तान् स मेने स्वाधिन्^{२४} जनम् ॥२९॥
 सरुटुम्बिभि^{२५}रुद्रात्रं^{२६} नृत्यद्भिरभिनन्दितान् । केदारलाव^{२७}सङ्घर्षन्तू^{२८}यधोपान्यदामयत्^{२९} ॥३०॥

दूतको बाहुवलीके समीप भेजा । • भावार्थ—जिस दूतको ऊपर कार्य सिद्ध करनेका सब भार सौंप दिया जाता है वह नि सृष्टार्थ दूत कहलाता है । यह दूत स्वामीके उद्देश्यकी रक्षा करता हुआ प्रसङ्गानुसार कार्य करता है । चक्रवर्ती भरतने ऐसा ही दूत बाहुवलीके पास भेजा था ॥२०॥ जो उमरमे न तो बहुत छोटा था और न बहुत बड़ा ही था ऐसा वह दूत अपने योग्य रथ पर सवार होकर नमृताके वेपसे बाहुवलीके समीप चला ॥२१॥ जिसने मार्गमे काम आनेवाली भोजन आदिकी समस्त सामग्री अपने साथ ले रखी है और जो प्रेम करनेवाला है ऐसे अपने ही समान एक सेवकसे अनुगत होकर वह दूत वहाँसे शीघ्र ही चला ॥२२॥ वह दूत मार्गमें विचार करता जाता था कि यदि वह अनुकूल बोलगा तो मैं भी अपनी प्रमत्ता विये बिना ही अनुकूल बोलूंगा और यदि वह विरुद्ध होकर युद्धकी बात करेगा तो मैं युद्ध नहीं होनेके लिये उद्योग करूंगा ॥२३॥ यदि वह सन्धि अथवा पणवन्ध (कुछ भेट देना आदि) करना चाहेगा तो मेरा यह अन्तरङ्ग ही है अर्थात् मैं भी यही चाहता हूँ, इसके सिवाय यदि वह चक्रवर्तीको जीतनेकी इच्छा करेगा तो मैं भी कुछ पराजय दिखाकर शीघ्र वापिस लौट आऊँगा ॥२४॥ इस प्रकार जो अपने पक्षकी सम्पत्ति और दूसरेके पक्षकी विपत्तिका विचार करता जाता था, जो अपने मन्त्रको छिपाकर रखनेसे दूसरे मन्त्रियोंके द्वारा कभी फोडा नहीं जा सकता था और जो मन्त्रभेदके डरसे पड़ावपर किसी एकान्त स्थानमे गुप्त रीतिसे शयन करता था ऐसा वह दूत युद्ध करने तथा उससे निकलनेकी भूमियोंको देखता हुआ बहुत दूर निकल गया ॥२५-२६॥ क्रम क्रममे अनेक देश, नदी और देशोंकी सीमाओंका उल्लंघन करता हुआ वह दूत बाहुवली के पोदनपुर नामक नगरमें जा पहुँचा ॥२७॥ नगरके बाहर धानोसे युक्त मनोहर पृथिवी को पाकर और पके हुए चावलके खेतोंको देखता हुआ वह दूत बहुत ही आनन्दको प्राप्त हुआ था ॥२८॥ जो बहुतमे फलोंमे शोभायमान है और किसानोंके द्वारा बड़े यत्नसे जिनकी रक्षा की जा रही है ऐसे धानके गुच्छोंको देखते हुए दूतने मनुष्योंको बड़ा स्वार्थी समझा था ॥२९॥ जो खेतोंको दोगकर आनन्दमे नाच रहे हैं और खेत काटनेके लिये जिन्होंने हँमिया ऊँचे उठा रखे

१ यात्रन्म् । २ गर्व भ्रूयाद् वाहन धान युग्य पत्र न धोरणम् इत्यभिधानात् । ३ अनुचरजनने ।

४ पापेय । ५ अनुकूलम् । ६ अन्वन्वृत्त्या । ७ अन्नापमान । ८ मक्छन् ल० । ९ मलह वृत्वा ।

८ नासम् । ९ करोमि । १० निजपण्यम् । प्रापुनमित्यर्थ । ११ विश्रम वृत्वा । १२ आगच्छामि ।

१३ नापन मने मति । १४ घषान । १५ युद्धागमरणयोग्यभूमि । १६-मन्त्रयान् ल०, १७, अ०,

म० । १७ नदी । १८ देशगोपन । १९ अतीत्य गच्छन् । २० आनन्दम् । २१ श्रीश्लिगुच्छन् ।

२२ वायु रीति स्वयवचरि स्वयवे मुच्छन्नादिन । इत्यभिधानात् । २३ वहन । २४ निजप्रयोजन-

याम् । २५ वृत्तवर्त २६ उद्गननकार्य । २७ देवन । २८ गमनं । २९ वृत्तान् ।

वज्रिच्छुक्कमुखाहृष्टकपाः^१ वणिशामञ्जरीः । शालिबन्धु^२ सोऽपश्यद् विटंभुक्त्वा इव म्रियः ॥३१॥
 मुग्गन्धिकतमामोदमंशोदि^३द्वमि^४तानिनैः । धामयन्तीद्विधाः शालिबन्धोरवर्णसिनाः ॥३२॥
 पौनन्तनटोन्मन्नागतद्वयमन्त्रिबिन्दुभिः । मुक्तालङ्कारनां सरमां घटयन्तीतिजोरनि ॥३३॥
 सरजोऽञ्जरा^५वीणांमोमन्तदक्षरैः कचं । च्छद्यामाबध्नती. स्वैरप्रन्यतोत्पलदानकैः ॥३४॥
 बधनीरातपवनात्मसुखपर्यन्तद्विगीतो । लाबप्यस्येव वणिक्ताः धमधनाम्बुविभुयः ॥३५॥
 शुकान् शुकच्छददक्षायैः रक्षिरादगीन्पनाशुर्कैः । धोन्वुवंतीः कतस्वार्णं सोऽपश्यच्छानिगोपिका. ॥३६॥
 भूमद्यत्र^६कुटीपन्नचोन्वारैरिक्षुवाटकान् । पून्वुवंत इवाद्राक्षीद् अतिपीडामयेन सः ॥३७॥
 उपक्षेत्रं^७ च गोथेनुः महोऽनुरमन्यराः । बान्यकेनोन्तुकास्तन्य^८ क्षरतीतिचचाय^९ सः ॥३८॥
 इति रम्यान् पुरस्यास्य सीमानान् स विनोकपत् । मेने हृत्पार्यमानानं सचयनदृशंनोत्सवम् ॥३९॥
 उपशान्यनुवा^{१०} कृत्याप्रपातोत्सतोदकाः । शालीशुजोरकक्षेत्रैः वृत्तास्तस्य^{११} मनोऽरन् ॥४०॥
 वापीक्षुपनडागंश्च सारामेरम्बुजाकरैः । पुरस्यास्य बहिर्देशाः तेनादृश्यन् हारिणः ॥४१॥
 पुण्योपुरमुत्सलद्वय स निवापन् वणिक्पथान् । तत्र^{१२}पूगोहृतान् मेने रत्नराशोन्निधीनिव ॥४२॥

हैं ऐसे कूटुम्ब सहित विमानोंके द्वारा प्रथमनीय, खेन काटनेके मधुपर्कके लिये बजती हुई तुर्गट-
 के मन्त्रोंको भी वह दून मुन रहा था ॥३०॥ कही धानके खेतोंमें वह दून जिनके कुछ दाने तोताओं
 ने अपने मुखमें खींच लिये हैं ऐसी वाद्योंके समूह इस प्रकार देखना था मानों विट पुत्रोंके द्वारा
 भोगों हुई म्रियवा ही हो ॥३१॥ जो मुग्गन्धिक घातकी मुग्गन्धिके समान मुवाभिन अपनी
 ध्यामकी वायुसे दगों दिशाओंको मुग्गन्धिक कर रही थी, जिन्होंने धानकी वाद्योंमें अपने कानों
 के आभूषण बनाये थे, जो अपने बजन्त्यलपर स्थूल स्नननटके नमीपमें गिरती हुई पमोनेकी
 वृक्षोंमें मोनियोंके अङ्कारने उत्पन्न होनेवाली घोभाको धारण कर रही थी, जो परागनहित
 कमलोंकी रजमें भरे हुए मँगने मुन्दर तथा अच्छी तरह गयी हुई नीलकमलोंकी माल्याओंमें
 मुगोभिन केगोमें चोटियाँ बाँधे हुई थी, जो धामसे दुःखी हुए मुखपर लगी हुई मीन्द्रोंके छोटे
 छोटे टुकड़ोंके समान पमोनेकी वृक्षोंको धारण कर रही थी, जिनके मरीच तोनेके पत्रोंमें समान
 कान्ति वाद्री-हरी हरी चोलियोंमें मुगोभिन हो रहे थे, और जो मनोहर नब्द करती हुई
 छो छो करके तीनोंको उठा रही थी ऐसी धानकी गन्धा कर्णवाली म्रियवाँ उम दूनने देखी
 ॥३२-३६॥ जो चलने हुए कोन्दुओंके चीन्वार मन्त्रोंके बहाने अजन्त पीडामें मानों रो ही
 रहे थे ऐमें टंखके खेन उम दूनने देखे ॥३७॥ खेतोंके नमीप ही, बड़े भारी स्ननके भारमें जो
 धीरे धीरे चल रही हैं, जो बलडोंके समूहमें उदरस्थित हो रही हैं और जो दूध भरा रही
 हैं ऐसी नवीन प्रसूता गाएँ भी उमने देखी ॥३८॥ इस प्रकार इस नगरके मनोहर सीमाप्रदेशों
 को देखना हुआ और उन्हें देखकर आनन्द प्राप्त करना हुआ वह दून अपने आपकी वृत्तार्थ
 मानने लगा ॥३९॥ जिनके चारों ओर नहरकी नायियोंमें पानी फैला हुआ है और जो धान
 डंग और जोरने खेतोंमें घिरी हुई हैं ऐसी उम नगरके बाहरकी पृथिविया उम दूनना मन हरण
 कर रही थी ॥४०॥ वानडी, कुएँ, नाशय, बगीचे और कमलोंके समूहोंमें उम नगरके
 बाहरके प्रदेश उम दूनने बहूत ही मनोहर दियाई दे रहे थे ॥४१॥ नगरके गोपुरद्वारों

१ धाम्याना । २ वेदारोपु । ३ परिम्यपि । ४ उच्छ्रवाम । ५ गियाम् । 'दिया च्छा वेजनाय'
 इत्यभिधानात् । ६ इच्छुभनगृह । ७ क्षीकननीपे । ८ मोनियगुविका । 'धेनु म्याप्रप्रमृतिवा' इत्यभि-
 धानात् । ९ मन्त्रावीतनोरनन्दयनना । १० धोरम् । ११ दरमं । 'चापुञ्ज पुत्रानिगमनयो' ।
 १२ धामान्नुभि । 'धामान्नुभामय म्याह' इत्यभिधानात् । १३ दूनम्य । १४ वृन्तीहृत्वात् । 'पुम्
 ऋम्भुत्सुदरा' इत्यभिधानात् । पुञ्जोहृत्वात्पथं पुञ्जोहृत्वात् न० । पुञ्जद्वान् ज०, प०, म०, ङ० ।

नूपोपायनवाजीभलालामदजनाधिलम्^१ । कृतच्छटमिवातोषय सोऽभ्यनदन्नुपाङ्गणम् ॥४३॥
 स निवेदितवृत्तान्तो महादोवारपालके ॥ नूप नूपासनानीनम् उपासी^२द्व यथोहर ॥४४॥
 पयुवक्षस्त^३टं तुडगमुकुटोदप्रभृडगकम् । जयलक्ष्मीविलसिया श्रीडाशंलमिवेषयम् ॥४५॥
 सलाटपट्टमाहडपट्टबन्ध सुविस्तृतम् । जपश्रिय इधोद्वाहृपट्ट दधतमुच्चरं ॥४६॥
 दधान तुलितशोषराजयकयशोयनम् । तुलादण्डमिवोदुदभूभार भुजदण्डकम् ॥४७॥
 मुखेन पङ्कजच्छाया नेत्राभ्यामुत्पलश्रियम् । दधानमप्यन्ता^४सन्नविजातिमजलाशयम्^५ ॥४८॥
 विभ्राणमतिविस्तीर्णं मनो वक्षश्च पदद्वयम् । वाग्देवीकमलावत्यो गत नित्यायकाशताम् ॥४९॥
 रक्षावृत्तिपरिक्षेप गुणग्राम^६ महाफलम् । निवेशयन्तमात्माङ्गणे मन स च महोयताम् ॥५०॥
 स्फुरदाभरणोद्योतच्छचना निखिला दिश । प्रतापज्वलनेनेव लिम्पन्तमलधीयता ॥५१॥
 मुखेन चन्द्रकान्तेभ^७ पद्मरागेण^८ चारुणा । चरणेन विराजन्त वज्रसारेण^९ धर्मणा ॥५२॥

उल्लघन कर बाजारके मार्गोको देखता हुआ वह दूत वहाँ इकट्ठी की हुई रत्नोंकी राशियोंको निधियोंके समान मानने लगा ॥४२॥ जो राजाकी भेटमें आये हुए घोड़े और हाथियोंकी लार तथा मदजलसे कौचडसहित हो रहा था और उससे ऐसा मालूम होता था मानो उसपर जल ही छीटा गया हो ऐसे राजाके आँगनको देखकर वह दूत बहुत ही प्रसन्न हो रहा था ॥४३॥ जिसो मुख्य मुख्य द्वारपालोके द्वारा अपना वृत्तान्त कहला भेजा है ऐसा वह दूत राजसिंहासन पर बैठे हुए महाराज बाहुवलीके समीप जा पहुँचा ॥४४॥ वहाँ जाकर उसने महाराज बाहुवलीको देखा, उनका वक्ष स्थल किनारेके समान चौड़ा था, वे स्वय ऊँचे थे और उनका मुकुट शिखरके समान उन्नत था इसलिये वे विजयलक्ष्मीरूपी स्त्रीके फ्रीडा करनेके लिये एक अद्वितीय पर्वतके समान जान पड़ते थे—जिसपर यह वधा हुआ है ऐसे लम्बे-चौड़े ललाटपट्टको धारण करते हुए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो विजयलक्ष्मीका उत्कृष्ट विवाहपट्ट ही धारण कर रहे हो । वे बाहुवली स्वामी जिसने समस्त राजाओका यक्षरूपी घन तोल लिया है और जिसने ममस्त पृथिवीका भार उठा रक्खा है ऐसे तराजूके दण्डके समान भुजदण्डको धारण कर रहे थे—यद्यपि वे मुखसे कमलकी और नेत्रोंसे उत्पलकी शोभा धारण कर रहे थे तथापि उनके समीप न तो विजाति अर्थात् पक्षियोंकी जातियाँ थी और न वे स्वय जलाशय अर्थात् मरोवर ही थे । भावार्थ—इस श्लोकम विरोधाभास अलंकार है इसलिये विरोधका परिहार इस प्रकार करना चाहिये कि वे यद्यपि मुख और नेत्रोंसे कमल तथा उत्पलकी शोभा धारण करते थे तथापि उनके पास विजाति अर्थात् वर्णसकर लोगोंका निवास नहीं था और न वे स्वय जलाशय अर्थात् जड आशयवाले मूर्ख ही थे । वे बाहुवली जिनपर क्रमसे सरस्वती देवी और लक्ष्मीदेवीका निरन्तर निवास रहता था ऐसे अत्यन्त विस्तृत (उदार और लम्बे चौड़े) मा और वक्ष स्थलको धारण कर रहे थे—वे प्रजाकी रक्षाके कारण तथा बड़े बड़े पा दनेवाले गुणोंसे समूहको अपने शरीरमें धारण कर रहे थे और अन्य महापुरणोंके मतमें धारण कराने थे—ये अपने देदीप्यमान आभूषणोंकी कान्तिके छलसे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने विनाश प्रतापरूपी अग्निमें ममस्त दिशाओंको लिप्त ही कर रहे हो । वे चन्द्रवान्त मणिने गमाा भुगने, पथराग मणिने समान सुन्दर चरणोंसे और वज्रके समान सुदृढ़ अपने

१ वन्द्यी प्राप्ताङ्गण । २ वदमितम् । ३ उपागमम् । ४ गानुम् । ५ अनामप्रहीन
 कान्तम् । ६ पक्षिवातिनम् । ७ अमदवृद्धिम् । ८ गरुडवातिवक्ष्मी । ९ गुणमनुहम् । निगम (गोब)
 निर्गम ध्वनि । १० धरुधन वाचन । ११ धरुधनवाचनयति ध्वनि । १२ पथरागनेन । पथरागरत्नेनेति
 ध्वनि । १३ वज्ररूपिपरावरण । पथराग गारणनि ध्वनि ।

हरिश्चन्द्रमपस्नम्भभिर्बकं हरितत्वियम् । स्तोकावष्टम्भमाधानु^१ सृष्टमाद्येन वैषता^२ ॥१३॥
^३सर्वाद्यसद्वगत तेजो दधान धाममूर्जितम् । नूनं^४ तेजोमर्दरेव घटित परमाणुभि ॥१४॥
 तमित्यालोक्षयन् दूराद् धामन्^५ पुञ्जविबीच्छ्रियम् । बधाल प्रणिधि^६ निश्चित् प्रणिधाना^७ सिधोदितु ५५
 प्रगनदचरणवेत्य ददद्वुरानत शिर । सतत्कार पुमारणे नातिदूरे न्यवेदि स ॥१५॥
 त शासनहर जिष्णो निविष्टमुचितानने । कुमारो निजगादेति स्मितादानु विष्यपाविरन् ॥१७॥
 विराचकधरस्याद्य वय चिन्त्यत्वमागता । मद्र मद्रं जगद्भक्तुं बहुचिन्त्यस्य चक्रिण ॥१८॥
 त्रिदशकं^८ त्रजयोद्योगन् अघापिन समापयन्^९ । स कश्चिद्^{१०} भूमजा नक्तुं वृशली दक्षिणोभुज ॥१९॥
 श्रुता विद्वद्विदा सिद्धा जिताश्च निखिलानृपा । कतं व्यशेषमस्याद्य किमस्ति वद नास्ति वा ॥२०॥
 इति प्रशान्तभोजस्त्रिं वच सार मितक्षरम् । वदन् कुमारो दूतस्य वचनावसरं^{११} व्यथात् ॥२१॥
 अथोपाचक्रमे वक्तुं यथो हारि^{१२} वचोहर । वागर्थाविव सम्पिण्डय^{१३} दशयन् दशानामुभि^{१४} ॥२२॥
 त्वद्वच^{१५} सम्मुखोनेऽस्मिन् कार्यं सुव्यक्तमोक्षयते । अस्तस्त्वतोर्जयं^{१६} यत्रार्थं प्रत्यक्षयति^{१७} मादृश^{१८} ॥२३॥
 वय यचोहरा नाम प्रभो शासनहारिण । गुणदोषविचारेषु मन्दास्तच्छ्रद्ध^{१९} वर्तित ॥२४॥

धरीरमे बहुत ही अधिक सुगोभित हो रहे थे । उनकी कान्ति हरे रत्नकी थी इसलिए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके द्वारा लोभको महारा देनेके लिये बनाया हुआ हरित मणियोंका एक खम्भा ही हो । समस्त धरीरमें फैले हुए अनिग्रय श्रेष्ठ क्षान्तेज को धारण करते हुए महाराज बाहुबली ऐसे जान पड़ते थे मानो तेजस्वर परमाणुजोमे ही उनकी रचना हुई हो । जिमकी ज्वाला अमरकी ओर उठ रही है ऐसे तेजके पुजके ममान महाराज बाहुबलीको दूरसे देखता हुआ वह चक्रवर्तीका दूत अपने ध्यानमे कुछ विचलित-ना हो गया अर्थात् धवडा-ना गया ॥४५-५५॥ दूरमे ही झुके हुए गिरको धारण करनेवाके उम दूतने जाकर कुमारके चरणोंमें प्रणाम किया और कुमारने भी उसे सत्कारके साथ अपने मनीष ही बँठाया ॥५६॥ कुमार बाहुबली अपने मन्दहास्यकी किरणोंको चारो ओर फैलाते हुए योग्य आसनपर बैठे हुए उम भरतके दूतसे इस प्रकार कहने लगे ॥५७॥ कि आज चक्रवर्ती ने बहुत दिनमें हम लोगोका स्मरण किया, हे मद्र, जो समस्त पृथिवीके स्वामी है और जिन्हें बहुत लोगोकी चिन्ता रहती है ऐसे चक्रवर्तीकी कुशल तो है न ? ॥५८॥ जिसने समस्त क्षत्रियोको ज्योतिषके उद्योग आज तक भी ममाप्त नहीं किया है ऐसे राजाद्विराज भरतेश्वर की वह प्रसिद्ध दाहिनी भुजा कुशल है न ? ॥५९॥ मुना है कि भरतने ममन्त दियाएँ वध कर ली है और समस्त राजाओंको जीत लिया है । हे दूत, कहे अब भी उनको कुछ कार्य बाकी रहा है या नहीं ? ॥६०॥ इस प्रकार जो अत्यन्त शान्त है, तेजन्वी है, सारूप्य है, और जितमें थोड़े अक्षर है ऐसे वचन कहकर कुमारने दूतको कहनेके लिये अवसर दिया ॥६१॥

तदनन्तर दाँतोकी किरणोंमें मन्द और अर्ध दोनोको मिलाकर दिग्गता हुआ दूत मनोहर वचन कहनेके लिये तैयार हुआ ॥६२॥ वह कहे लगा कि हे प्रभो, आपने इम वचन-रूपी दर्पणमें आगेका कार्य स्पष्ट रूपमे दिखाई देता है क्योंकि उमका अर्थ मुझ जैसा मूर्ख भी प्रत्यक्ष जान लेता है ॥६३॥ हे नाथ, हम लोग तो दूत है केवल भ्रामीका ममाचार ले जाने-

१ आधारम् । २ आदिब्रह्मणोत्पत्थं । ३ मन्दाद्यग अथवा मर्दधरीर । ४ इव । ५ धाम्ना तेजनाम् । ६ चर । ७ गुणदोषविचारानुमगण प्रणिधानम्, तन्मानु । अभिप्रायादित्यर्थ । ८ चिन्तिन्तु योग्यादिचिन्त्या तेषा भाव चिन्त्यवम् । ९ कुणजम् । १० शोत्र ३० । ११ सम्पूर्णं न कुर्वन् । १२ किम् । १३ वचनस्यावसरम् । १४ मनापम् । १५ पिण्डादित्य । १६ दनवाग्निभि । १७ तव वाग्दपणे । १८ मस्वाररहित । १९ प्रपय करानि । २० मन्विष । २१ चक्रवर्गवर्जित । -च्छ्रद्धपात्रिण न०, द० ।

ततश्चन्द्रधरेणार्थं यदादिष्ट^१ प्रियोचितम् । प्रयोक्तृगौरवादेव तदप्राप्त्य साध्वसाधुं वा ॥६५॥
 गुरोर्वचनमादेयम् अतिकल्प्येति^२ या श्रुति । तत्प्रामाण्यादमुष्यात्ता सविधेया त्वयाधुना ॥६६॥
 ऐश्वर्यं^३ प्रयमो राज्ञा भरतो भवदप्रज । परिक्रान्ता महो कृत्स्ना येन नामयताऽमरान् ॥६७॥
 गङ्गाद्वार समुल्लङ्घय यो रथेनाप्रतिक्रम^४ । चतुर्वाहिकल्लोलम् अक्रुरोन्मकरालयम् ॥६८॥
 शरध्याज प्रतापान्नि ज्वलत्यस्य जलेऽम्बुधे । पयो न केवल वाङ्मि मान च त्रिदिवीकसाम् ॥६९॥
 सा नाम प्रजाति यस्य 'त्राजियुष्टुसद कथम् । आकृष्टा शरपाप्तेन प्राध्वकृत्य^५ गले बलात् ॥७०॥
 'शरव्यमकरोद यस्य शरपातो महाम्बुधौ । प्रसभ भगधावास क्रान्तद्वादशायोजन ॥७१॥
 विजयाद्वाघिले यस्य विजयो घोषितोऽमरं । जयतो विजयाद्दश शरैणामोघपातिना ॥७२॥
 वृत्तमालादयो देवा गना यस्य विधेयताम्^६ । 'कृतमस्योभयधेनीना^७ भोगजयवर्णनं ॥७३॥
 गृह्णामुखमपव्यान्त^८ स्यतीत्य जयसाधनं । उत्तरा विजयाद्वाघि यो ध्यगाहृत ता महोम् ॥७४॥
 म्लेच्छाननिच्छन्नोऽप्याज्ञा प्रच्छाद्य^९ जयसाधनं । सेनाया यो जप प्राप बलावाच्छिद्य^{१०} तद्धनम् ॥७५॥

वाग्ने हे हम ऋग मदा स्वामीके अभिप्रायके अनुसार चलते हे तथा गुण और दोषोका विचार करनेमें भी असमर्थ है ॥६४॥ इसलिये हे आर्य चन्द्रवर्तीने जो प्रिय और उचित आज्ञा दी है वह अच्छी ही या बुरी केवल कहनेवालेके गौरवसे ही स्वीकार करने योग्य है ॥६५॥ गुरोके वचन बिना किसी तर्क वितर्कके मान लेना चाहिये यह जो शास्त्रका वचन है उसे प्रमाण मानकर हम समय आपको चन्द्रवर्तीकी आज्ञा स्वीकार कर लेनी चाहिये ॥६६॥ वह भरत दशनाकुचगर्भे उत्पन्न हुआ है अथवा इश्वरके अर्थात् भगवान् वृषभदेवका पुत्र है, राजाजोमें प्रथम है आपका बड़ा भाई है और इसके सिवाय देवोसे भी नमस्कार कराते हुए उसने समस्त पृथिवी अपने वश कर ली है ॥६७॥ उसने गंगाद्वारको उल्लंघन कर अकेले ही रथपर बैठकर समुद्रको तिमकी चञ्चल लहरों एक दूसरेसे टकरा रही है ऐसा कर दिया ॥६८॥ वाणके वहाने ने हमकी प्रतापरूपी अग्नि समुद्रके जलमें भी प्रज्वलित रहती है, उस अग्निने केवल समुद्र का ही नहीं पिया है बल्कि देवोका मान भी पी डाला है ॥६९॥ भला, देव लोग उसे कैसे न नमस्कार करेंगे ? क्योंकि उसने वाणरूपी जाग्से गग्नेमें वाघकर उच्छे जयदंस्ती अपनी ओर गौ न किया था ॥७०॥ बाराह योजन दूरतक जानेवाले उसके वाणने महासागरमें रहनेवाले मागधदेवके त्रिवागम्यानकी भी जयदंस्ती अपना निशाना बनाया था ॥७१॥ व्यर्थ न जाने-वाग्ने वाणके द्वारा विजयाधं पर्वतके स्वामी विजयाधंदेवको जीतनेवाले उस भरतकी विजय घोषणा दबाने भी की थी ॥७२॥ वृत्तमात्र आदि देव उगकी आधीनता प्राप्त कर चुके है और उत्तर दिशिण दोनों श्रेणियोंके विद्यापरोने भी उगकी जयघोषणा की है ॥७३॥ जिगया अध पात्र दूर कर दिया गया है ऋगे गुणाके दग्वाजेका अपनी विजयो सेनाके माय उत्तुघना कर उग। विजयाधं पर्वतकी उत्तर दिशाकी भूमिपर भी अपना अधिकार कर लिया है ॥७४॥ इच्छन्नोऽप्याज्ञा प्रच्छाद्य उगकी आज्ञा नहीं मानना चाहने से तथापि उगने सेनापतिके द्वारा अपनी

कृतोऽभिपेक्षो यस्याराद् अम्येत्य सुरसत्तमं । यस्याचलेन्द्रकट्टेयु स्यलपशायित यश ॥७६॥
 रत्नार्थं पर्यपासतात्^१ य स्वर्धन्यधिदेवते^२ । वृषभाद्रितटे येन टडकोत्कीर्णं कृत यश ॥७७॥
 घटदासीकृता लक्ष्मी सुरा किङ्करता गता । यस्य^३ स्वाधीनरत्नस्य निषय सुवते धनम् ॥७८॥
 स यस्य जयसंन्यानि निजित्य निखिला दिश । भूमन्ति स्माखिलात्मोपितटान्तवनभूमिषु ॥७९॥
 त्वामायुष्मन् जगन्मान्यो मानयन्^४ कृशलाशिषा । समादिशन्ति चक्राद्रका प्रययद्राधिराजताम् ॥८०॥
 मदीय राज्यमाक्रान्तिनिखिलद्वीपसागरम् । राजतेऽस्मत्प्रियभ्रात्रा न बाहुबलिना विना ॥८१॥
 सा सम्पदस्तदंबव्यं ते भोगा स परिच्छद । ये सन बन्धुभिर्भुक्ता सविभक्तसुखोदयं ॥८२॥
 अन्यच्च नमिताशेषनसुरासुरखंचरम् । नाधिराज्य विभात्यस्य^५ प्रणामविमुखे त्वयि ॥८३॥
 न दुनोति मनस्तीव्र रिपुरप्रणतस्तया । बन्धुरप्रणमन् गर्वाद् दुविदग्धो यया प्रभुम् ॥८४॥
 तदुपेत्य प्रणामेन पूज्यता प्रभुरक्ष्मी । प्रभुप्रणतिरेवेष्टा प्रसूतिर्ननु सम्पदाम् ॥८५॥
 अवन्यशासनस्यास्य शासनं^६ ये विमन्वते^७ । शासनं^८ द्वियता तेषा चक्रमप्रतिशासनम् ॥८६॥
 प्रचण्डदण्डनिघातं निपातपरिखण्डितान् । तदाज्ञाखण्डनव्यग्रान् पश्यन्तान्^९ मण्डलाधिपान् ॥८७॥

सेनासे हराकर और जवरदस्ती उनका धन छीनकर उत्तर पर विजय प्राप्त की है ॥७५॥ अच्छे अच्छे देवोंने आकर उसका अभिपेक्ष किया है और उसका निर्मल यश बड़े बड़े पर्वतोंकी शिखरों पर स्थलकमलके समान सुशोभित हो रहा है ॥७६॥ गङ्गा-सिन्धु दोनों नदियोंके देवताओं ने रत्नके अर्थाके द्वारा उसकी पूजा की है तथा वृषभानलके तटपर उसने अपना यश टाकीसे उधेर कर लिखा है ॥७७॥ उसने लक्ष्मीको घटदासी अर्थात् पानी भरनेवाली दासीके समान किया है, देव उसके सेवक हो रहे हैं, समस्त रत्न उसके स्वाधीन है और निधियाँ उसे धन प्रदान करती रहती हैं ॥७८॥ और उसकी विजयी सेनाओंने समस्त दिशाओंको जीतकर सप्त समुद्रोंके किनारेके वनोंकी भूमिमें भूमण किया है ॥७९॥ हे आयुष्मन्, जगत्में माननीय वही महाराज भरत अपने चन्द्रवर्तीपनेको प्रसिद्ध करते हुए कल्याण करनेवाले आसीवदिसे आपका सम्मान कर आज्ञा कर रहे हैं ॥८०॥ कि समस्त द्वीप और समुद्रों तक फैला हुआ, यह हमारा राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुबलीके विना शोभा नहीं देता है ॥८१॥ सम्पत्तियाँ वही हैं, ऐश्वर्य वही है, भोग वही है और सामग्री वही है जिसे भाई लोग सुखके उदयको वाँटते हुए साथ साथ उपभोग करें ॥८२॥ दूसरी एक बात यह है कि आपके प्रणाम करनेसे विमुख रहनेपर जिसमें समस्त मनुष्य, देव, धरणेन्द्र और विद्याधर नमस्कार करने हैं ऐसा उनका चन्द्रवर्तीपना भी सुशोभित नहीं होता है ॥८३॥ प्रणाम नहीं करनेवाला शत्रु स्वामीके मन को उतना अधिक दुखी नहीं करता है जितना कि अपनेको भूठमूठ चतुर माननेवाला और अभिमानसे प्रणाम नहीं करनेवाला भाई करता है ॥८४॥ इसलिये आप किसी अपराधकी क्षमा नहीं करनेवाले महाराज भरतके समीप जाकर प्रणामके द्वारा उनका सत्कार कीजिये क्योंकि स्वामीको प्रणाम करना अनेक सम्पदाओंको उत्पन्न करनेवाला है और यही मक्को इष्ट है ॥८५॥ जिसकी आज्ञा कभी व्यर्थ नहीं जाती ऐसे उस भरतकी आज्ञावा जो कोई भी उल्लघन करते हैं उन शत्रुओंका शासन करनेवाला उसका वह चक्ररत्न है जिमपर स्वयं किसीका शासन नहीं चल सक्ता ॥८६॥ आप भरतकी आज्ञाका खण्डन करनेमें व्याकुल हुए इन मण्डलाधिपति राजाओंको देखिये जो भयकर दण्डरूपी वज्रके गिरनेसे दण्ड दण्ड

१ अयुज्यताम् । २ गदगामिषू देव्यो । ३ पूजयन् । ४ चक्रिण । ५ तन्कारणात् । ६ आपाम् ।

७ अवना कुर्वन्ति । ८ गिणवम् । ९ दण्डरत्नानि । १० पश्यन्तान् ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८० ।

'तदेत्य द्रुतमायुष्मन् पूरयास्य मनोरथम् । युवयोरस्तु साद्रगत्यात् सद्रगतं निखिलं जगत् ॥८८॥
इति तद्बचनस्यान्ते कृतमन्दस्मितो युवा । धीरं वचो गभीरार्थम् आचक्षते विचक्षणं ॥८९॥
साधुक्तं साधुवृत्तत्वं त्वया घटयता प्रभो । वाचस्पत्यं तदेवेष्टं श्रेयसं स्वमतस्य यत् ॥९०॥
सामं दशंपता नाम भेददण्डो विशेषतः । प्रयुञ्जानेन साध्येऽर्थं स्वातन्त्र्यं दर्शितं त्वया ॥९१॥
स्वतन्त्रस्य प्रभो सत्यं स त्वमन्तश्च^१ रश्चर । अन्यथा कथमेवास्य^२ व्यनक्ष्यन्तर्गतं गतम् ॥९२॥
निष्ठाद्यर्थतयाऽस्मात्^३ निविष्टस्त्व निधीशना । विशिष्टोऽसि न वैशिष्ट्यं परममस्त्वीदृशम् ॥९३॥
प्रयं खलु खलाचारो यद्वलात्कारदर्शनम् । स्वगुणोत्कीर्तनं दोषोद्भावनं च परेषु यत् ॥९४॥
विवृणोति खलोऽप्येयां दोषान् स्वाद्यं गुणान् स्वयम् । सवृणोति च दोषान् स्वान् परकीयान् गुणानपि ॥९५॥
प्रनिराकृतसन्तापा सुमनोभि^४ समुन्मिताम् । फलहीना श्रयत्यन्नं^५ खलता^६ खलतामिव^७ ॥९६॥
सताम्रसम्मता विष्वग् आचिता विरसं फलं । मन्वे दुःखलतामेना खलतां लोकतापिनीम् ॥९७॥
सोपप्रदानं^८ सामादौ प्रयुक्तमपि बाध्यते । पराम्ना भेददण्डाभ्यां न्याय्ये^९ विप्रतिघोषिन^{१०} ॥९८॥

हो रहे हं ॥८७॥ इसलिये हे दीर्घायु कुमार, आप शीघ्र ही चलकर इसके मनोरथ पूर्ण कीजिये आप दोनों भाइयोंके मिलापसे यह समस्त ससार मिलकर रहेगा ॥८८॥ इस प्रकार उम दूनके वह चुकनेके वाद चतुर और जवान बाहुवली कुमार कुछ मन्दमन्द हँसकर गभीर अर्थसे भरे हुए धीर वीर वचन कहने लगे ॥८९॥ वे बोले कि हे दूत, अपने स्वामी की माधु वृत्तिको प्रकट करते हुए तूने सब सच कहा है क्योंकि जो अपने मतकी पुष्टि करने वाला हो वही कहना ठीक होता है ॥९०॥ साम अर्थात् शान्ति दिखलाते हुए तूने विशेषकर भेद और दण्ड भी दिखला दिये हैं तथा उनका प्रयोग करते हुए तूने यह भी बतला दिया कि तू अपना अर्थ मिद्ध करनेमें कितना स्वतन्त्र है ? ॥९१॥ इस प्रकार कहनेवाला तू सचमुच ही अपने स्वतन्त्र स्वामीका अन्तरङ्ग दूत है, यदि ऐसा न होता तो तू उसके हृदयगत अभि-प्रायको वैसे प्रकट कर सकता था ॥९२॥ चरवर्तीने तुझपर समस्त कार्यभार सौंपकर भरे पाम भेजा है, यद्यपि तू चतुर है तथापि इस प्रकार दूसरेका मर्मछेदन करना चतुराई नहीं है ॥९३॥ अपनी जमदंस्ती दिग्गलाना वास्तवमें दुष्टोका काम है तथा अपने गुणोका वर्णन करना और दूसरोंमें दोष प्रकट करना भी दुष्टोका ही काम है ॥९४॥ दुष्ट पुरुष, दूसरेके दोष और अपने गुणोका स्वयं वर्णन किया करते हैं तथा अपने दोष और दूसरेके गुणोको छिपाते रहते हैं ॥९५॥ मन्ता अर्थात् दुष्टता खलता अर्थात् आकाशकी बेलके समान है क्योंकि जिस प्रकार आकाशकी बेलमें किसीका सताप दूर नहीं होता उसी प्रकार दुष्टतासे किसी का सताप दूर नहीं होता, जिस प्रकार आकाशकी बेल सुमन अर्थात् फूलोसे मूल्य होती है उसी प्रकार दुष्टता भी सुमन अर्थात् विद्वान् पुरुषोसे मूल्य होती है और जिस प्रकार आकाशकी बेल पत्तलित होती है उसी प्रकार दुष्टता भी फलरहित होती है अर्थात् उससे किसीको कुछ लाभ नहीं होता, ऐसी इस दुष्टताका केवल मूल्य लोग ही आश्रय लेते हैं ॥९६॥ जो मन्ता पुरुषोको दण्ड नहीं है जो मय ओग्ने विरम अर्थात् नीरम अथवा विद्वेषरूपी पत्तले म्यान है तथा लोगोंको सताप देनेवाली है ऐसी इस सन्ता-दुष्टताको मैं दुःखलता अर्थात् दुःखकी बेल ही समझता हूँ ॥९७॥ यदि न्यायपूर्ण विरोध करनेवाले पुरुषके विषय-

१ तत् प्रमाणम् । २ वच । ३ शान्तिम् । ४ परब्रह्मचरणादिप्रयात्रो । ५ हृदये वसंता । ६ स्वयं वरादि । ७ दुष्टिम् । ८ अणुत् सत्तादिप्रयात्रनया । ९ नियुक्त । १० कुतुम् । दोषव-
दृष्टिम् । ११ धनदण्डं म०, ९० । १२ दुःखलतम् । १३ आकाशापतामिव । १४ दानमहितम् ।
१५ मन्तादिना गुणे । १६ भद्रवृत्तया विचार मन्तनि मति ।

यया' विषयमेवंपायम् उपायाना नियोजनम् । सिद्धयद्गम तद्विपर्यासः^३ फलिष्यति परानयम् ॥६६॥
 नैकान्तमनन साम समान्नात सहोष्णि^१ । स्निग्धेऽपि हि जने तप्ते सर्पिणीवाम्बुक्षेत्रम् ॥१००॥
 उपप्रदानमप्येव प्रीय^२ मग्ये महोजति । समित्तहृन्नदानेऽपि दीप्तस्मान् कृत दाम ॥१०१॥
 लोहस्येवोपतप्तस्य^४ मृदुता न मनस्विन । दण्डोऽप्यनुनयप्राप्तये सामजे न मृगाद्विय^५ ॥१०२॥
 सतो व्यत्यासपत्रे^६ नानुपायाननुपायवित् । स्वय प्रयोगवंगुण्यात् सीदत्येव न मादूत^७ ॥१०३॥

में पहले कुछ देनेके विधानके साथ सामका प्रयोग किया जावे और बादमें भेद तथा दण्ड उपाय काममें लाये जावें तो उनके द्वारा पहले प्रयोगमें लाया हुआ साम उपाय बाधित हो जाता है । भावार्थ—यदि न्यायवान् विरोधीके लिये पहले कुछ देनेका प्रलोभन देकर साम अर्थात् शान्ति का प्रयोग किया जावे और बादमें उसीके लिये भेद तथा दण्डकी धमकी दी जावे तो ऐसा करने से उमका पहले प्रयोग किया हुआ साम उपाय व्यर्थ हो जाता है क्योंकि न्यायवान् विरोधी उसकी कटनीतिको सहज ही समझ जाता है ॥१०८॥ माम, दाम, दण्ड, भेद इन चारो उपायोका यथायोग्य स्थानमें नियोग करना कार्यसिद्धिका कारण है और विपरीत नियोग करना पराभवका कारण है । भावार्थ—जो जिसके योग्य है उसके माय वही उपाय काममें लानेसे सफलता प्राप्त होती है और विरुद्ध उपाय काममें लानेमें तिरस्कार प्राप्त होता है ॥१०९॥ प्रतापशाली पुरुषके साथ साम अर्थात् शान्तिका प्रयोग करना एकान्तरूपसे शान्ति करनेवाला नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रतापशाली मनुष्य स्निग्ध अर्थात् स्नेही होनेपर भी यदि क्रोधसे उत्तप्त हो जावे तो उसके साथ शान्तिका प्रयोग करना स्निग्ध अर्थात् चिक्ने किन्तु गर्म घीमें पानी सींचनेके समान है । भावार्थ—जिस प्रकार गर्म घीमें पानी डालनेमें वह शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक चटपटाने लगता है उसी प्रकार क्रोधी मनुष्य शान्तिके व्यवहारमें शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक बटपटाने लगता है ॥१००॥ इसी प्रकार अतिशय प्रतापशाली पुरुषको कुछ देनेका विधान करना भी मैं नि मार गमभना हूँ क्योंकि हजारो समिधाएँ (रुकडिया) देनेपर भी प्रज्वलित अग्नि वैसे शान्त हो मचती है । ॥१०१॥ जिस प्रकार लोहा तपानेसे नर्म नहीं होता उसी प्रकार तेजस्वी मनुष्य वष्ट देनेमें नर्म नहीं होता इसलिये उसके साथ दण्डका प्रयोग करना निरर्थक है क्योंकि अनुनय विनय कर पकडने योग्य हाथीपर ही दण्ड चल सकता है सिंहपर नहीं । विद्येप—लोहा गर्म अवस्था में नर्म हो जाता है इसलिये यहाँ लोहाका उदाहरण व्यतिरेकरूपने मानकर ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि जिस प्रकार तपा हुआ लोहा नर्म हो जाता है उस प्रकार तेजस्वी मनुष्य वष्ट में पडकर नर्म नहीं होता इसलिये उसपर दण्डका प्रयोग करना व्यर्थ है । अरे, दण्ट भी प्रेम पुचवार कर पकडने योग्य हाथीपर ही चल सकता है न कि सिंहपर भी ॥१०२॥ इसलिये इन साम दान आदि उपायोका विपरीत प्रयोग करनेवाले और इसलिये ही उपाय न जाननेवाले आप जैसे लोग इन चारो उपायोके प्रयोगका ज्ञान न होनेसे स्वय दु गी होते है ॥१०३॥

१ सामभेदादियोग्यपुरुषमननिक्रम्य । २ मचननियोजनम् । ३ मृगनाये । ४ एकलक्षणम् ।

५ दपनममूह । ६ उपतप्तस्य लोहस्य यथा मृदुनाग्नि तथा उपतप्तस्य मनस्विका मृदुता नाग्नी-
 त्यर्थ । ७ मिह । ८ विपरीतेन योजनम् । ९-त्रेनानु—त०, द०, अ०, प०, म० । सामार्थम् ।

१० मयादृश द०, त०, अ०, प०, म०, द० ।

साम्नाऽपि दुष्कर साध्या वयमित्युपसंहृते । तत्रोत्सेक प्रयुञ्जानो ध्वजत मुग्धापते भवान् ॥१०४॥
 वयसाधिक इत्येव न श्लाघ्यो भरताधिप । जरस्रिय गज कक्षां गाहते किं हरे शिशो ॥१०५॥
 प्रणय प्रथमश्चेति सङ्गतेषु सनाभिषु । तेष्वेयासद्भवतेष्वद्भगं तद्भवस्य हता गति ॥१०६॥
 ज्येष्ठ प्रणम्य इत्येतस्का ममस्त्वन्वदा सदा । मूर्धन्यारोपितखड्गास्य प्रणाम इति व्रम ॥१०७॥
 दूत नो दूयते चित्तम् अग्नोत्सेकानुवर्णने । तेजस्वी भानुरेवंक किमग्नोऽप्यस्त्यत परम् ॥१०८॥
 राजोक्तिमयि तस्मिंश्च सविभक्ताऽदिवेषताः । राजराज स इत्यद्य स्फोटो गण्डस्य मूर्धनि ॥१०९॥
 काम स राजराजोऽस्तु रत्नयोतोऽस्ति धनुताम् । वय राजा न इत्येव सौराज्ये स्वेव्यवस्थिता ॥११०॥
 बालानिव छलादस्मान् ब्राह्मण प्रणमय्य च । पिण्डोल्लण्ड इवाभाति महोल्लण्डस्तदपित ॥१११॥
 स्वदोदुमफल श्लाघ्य यत्किञ्चन मनस्विनाम् । न चातुरन्तमप्येदं परभ्रूलतिकाफलम् ॥११२॥

हे दूत, हम लोग शान्तिसे भी वश नहीं किये जा सकते यह निश्चय होनेपर भी आप हमारे साथ अहंकारका प्रयोग कर रहे हैं, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आप मूर्ख हैं ॥१०४॥ भरतेश्वर उमरम वडे हैं इतने ही से वे प्रशसनीय नहीं कहे जा सकते क्योंकि हाथी बूढ़ा होनेपर भी क्या सिंहके बच्चेकी बराबरी कर सकता है ? ॥१०५॥ हे दूत, प्रेम और विनय ये दोनो परस्पर मिले हुए कुटुम्बी लोगोमें ही संभव हो सकते हैं, यदि उन्हीं कुटुम्बियोमें विरोध हो जावे तो उन दोनो हीकी गति नष्ट हो जाती है । भावार्थ—जब तक कुटुम्बियोमें परस्पर मेल रहता है तब तक प्रेम और विनय दोनो ही रहते हैं और ज्योही उनमें परस्पर विरोध हुआ त्यों ही दोनो नष्ट हो जाते हैं ॥१०६॥ बड़ा भाई नमस्कार करने योग्य है यह बात अन्य समयमें अच्छी तरह हमेशा हो सकती है परन्तु जिसने मस्तकपर तलवार रख छोडी है उसको प्रणाम करना यह कौन-सी रीति है ? ॥१०७॥ हे दूत, दूसरेके अहंकारके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे हमारा चित्त दुःखी होता है, क्योंकि ससारमें एक सूर्य ही तेजस्वी है । क्या उससे अधिक और भी कोई तेजस्वी है ॥१०८॥ आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने 'राजा' यह शब्द मेरे लिये और भरतके लिये—दोनोके लिये दिया है, परन्तु आज भरत 'राजराज' हो गया है सो यह कपोल के ऊपर उठे हुए गूमडेके समान व्यर्थ है ॥१०९॥ अथवा रत्नोके द्वारा अत्यन्त लोभको प्राप्त हुआ वह भरत अपने इच्छानुसार भले ही 'राजराज' रहा आवे, हम अपने धर्मराज्यमें स्थिर रहकर राजा ही बने रहेंगे ॥११०॥ वह भरत बालकीके समान छलसे हम लोगोको बुलाकर और प्रणाम कराकर कुछ पृथिवी देना चाहता है तो उसका दिया हुआ पृथिवीका टुकड़ा रागीके टुकडेके समान तुच्छ मालूम होता है ॥१११॥ तेजस्वी मनुष्योके लिये जो कुछ थोडा बहुत अपनी भुजास्त्री वृक्षवा फल प्राप्त होता है वही प्रशसनीय है, उनके लिये दूसरेकी भीहस्त्री लतावा फल अर्थात् भीहके इशारेसे प्राप्त हुआ चार समुद्रपर्यन्त पृथिवीका ऐश्वर्य भी

१ विग्नित गत मति । २ तत्र सुष्णी स्थिते पुंसि । उत्तेक साहसम्, गर्वमित्यर्थ । ३ समानताम् । ४ प्राणानि । ५ स्नेह । ६ विनय । ७ भो । ८ प्रणयप्रथमस्य । ९ अस्माकम् । १० वर्तनं ल०, द०, अ०, प०, म० । ११ भानो सवामादयम् । १२ भरते । १३ आदिब्रह्मणा । १४ भरतेश्वरपर्यो गता प्रभूणा राजा राजराज, राजा यशाणा राजा राजराज सोभंजित इति ध्वनि । भुजवलिपर्यो त्रिय दावनय पद्मगुणा षतुरोपाया सप्ताष्टगराज्यानि एतंगुणं राजन्त इति राजान । १५ पिटक । विष्णोः पिटकमित्यु इत्यभिधानान् । १६ गयगण्डस्य । 'गलगण्डो गण्डमाला' इत्यभिधानान् । १७ उपरीत्यर्थ । १८ बृहरे इति ध्वनि । १९ मुराज्यव्यापारे । २० आत्मीये । २१ वलादिव द० । २२ श्यात्रान् । २३ नमस्कारपरिवा । २४ पिण्याकनासत । २५ भरतेन दत्त । २६ चत्वारो दिगन्तो माय म् । २७ प्रभूत्वम् ।

पराप्तोपहृतं लक्ष्मीं यो वाञ्छेत् पार्थिवोऽपि सन् । सोऽप्यार्यपतिं तामुक्तिं संप्रोक्तिमिव द्रुण्डुमः^१ ॥११३॥
 परावमानमलिनान् भूतिं पते नृपोऽपि यः । नृपसोस्तस्य^२ नन्देय भारो राज्यपरिच्छदः ॥११४॥
 मानभङ्गाजित्तमोगे, यः प्राणान्वत्तुमीहते । तस्य भग्नरहस्येव द्विरदस्य कृतो, भिदा^३ ॥११५॥
 छत्रभङ्गाद्विनाप्यस्य^४ छायाभङ्गागोऽभिलक्ष्यते । यो मानभङ्गाभारेण विभर्त्यवनतं शिरः ॥११६॥
 मनुयोऽपि 'समानाश्चेत् स्वकनभोगपरिच्छदाः । को नाम राज्यभोगार्थी पुमानुज्जेत् समानताम्' ॥११७॥
 वर वनाधिवासोऽपि वरं प्राणविसर्जनम् । कुलाभिमानिनः पुंसो न पराक्तावियेयता^५ ॥११८॥
 मानभेवाभिरक्षणु धीराः प्राणैः प्रणदवरैः । नन्दलङ्घुरते विश्वं शद्वन्मानाजितं यदाः ॥११९॥
 'चारु चक्रघरस्याय त्वयाऽप्रयुक्तः' पराक्रम । वृत्तो यतोऽयंवादीऽयं^६ स्तुतिनिन्दापरायणः^७ ॥१२०॥
 बचोभिः पोषयन्त्येव पण्डिताः परिफन्दयि^८ । प्रकान्ताया^९ स्तुताविष्टः सिद्धो ग्राममृगो^{१०} ननु ॥१२१॥
 इदं वाचनिकं कृत्स्नं त्वदुक्तं प्रतिभाति नः । क्वास्य दिग्विजयारम्भः क्व धनोच्छ्रनं^{११} 'दुःखुता ॥१२२॥

प्रशंसनीय नहीं है ॥११२॥ जिस प्रकार पतया साँप 'सर्प' इम शब्दको व्यर्थ ही धारण करता है उसी प्रकार जो मनुष्य राजा होकर भी दूसरेकी आज्ञासे उपहृत हुई लक्ष्मीको धारण करता है वह 'राजा' इस शब्दको व्यर्थ ही धारण करता है ॥११३॥ जो पुरुष राजा होकर भी दूसरे के अपमानसे मलिन हुई विभूतिको धारण करता है निश्चयसे उस मनुष्यस्त्री पशुके लिये यह राज्यकी समस्त सामग्री भारके समान है ॥११४॥ जिसके दाँत टूट गये हैं ऐसे शायिके समान जो पुरुष मानभग होनेपर प्राप्त हुए भोगोपभोगोसे प्राण धारण करना चाहता है उम पुरुषमें और पशुमें भेद कैसे हो सकता है ? ॥११५॥ जो राजा मानभगके भारमें भुके हुए शिरको धारण करता है उसकी छायाका नाम छत्रभग होनेके बिना ही हो जाता है । भावार्थ— यहाँ छाया शब्दके दो अर्थ हैं अनातप और कान्ति । जब छत्रभग होता है तभी छाया अर्थात् अनातप का नाश होता है परन्तु यहाँपर छत्रभगके बिना ही छायाके नाशका वर्णन किया गया है इसलिये विरोध मालूम होता है परन्तु छत्र भगके बिना ही उनकी छाया अर्थात् कान्तिका नाश हो जाता है, ऐसा अर्थ करनेसे उसका परिहार हो जाता है ॥११६॥ जिन्होंने भोगोपभोग की सब सामग्री छोड दी है ऐसे मुनि भी जब अभिमान (आत्मगौरव) से सहित होने हैं तब फिर राज्य भोगनेकी इच्छा करनेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो अभिमानको छोड देगा ? ॥११७॥ वनमें निवास करना अच्छा है और प्राणोको छोड देना भी अच्छा है किन्तु अपने कुलका अभिमान रखनेवाले पुरुषको दूसरेकी आज्ञाके आधीन रहना अच्छा नहीं है ॥११८॥ धीर वीर पुरुषोंको चाहिये कि वे इन नन्दर प्राणोके द्वारा अभिमानकी ही रक्षा करें क्योंकि अभिमान के साथ कमाया हुआ धन इस ससारको सदा सुशोभित करता रहता है ॥११९॥ तूने जो बहुत कुछ बढ़ाकर चक्रवर्तीके पराक्रमका वर्णन किया है मो ठीक है क्योंकि तेरा यह मंत्र कहना स्तुति निन्दा में तत्पर है अर्थात् स्तुतिरूप होकर भी निन्दाको सूचित करनेवाला है ॥१२०॥ पण्डित लोग नि सार वस्तुको भी अपने वचनोसे पुष्ट किया ही करते हैं सो ठीक ही है क्योंकि स्तुति प्रारम्भ करनेपर कुत्तेको भी मिह कहना पडता है ॥१२१॥ हे दूत, तेरे द्वारा कहा

१ अपमत्तार्थं वरोति । २ पार्थिवत्व्याम् । ३ राजिन । 'समो राजितद्रुण्डुमो' इत्यभिधानाम् ।
 ४ सम्पदम् । ५ मनुजानदृह । ६ भेद । ७ तेजोहानि । ८ अभिमानान्विता । ९ साभिमानित्राम् ।
 १० अधीनता । ११ पर ल०, द०, अ०, प०, म०, इ० । १२ अनिष्कर्मोक्त । १३ मन्ववाद
 अथवा असपारोपमर्षवाद । १४ स्तुतिरूपोऽयंवादी निन्दारूपोऽयंवादोऽर्थात् इमे तत्पर । १५ अनिनि-
 स्सारवस्त्वपि । १६ प्रारम्भिताया सत्याम् । १७ सारमेय । १८ धनापनयन ।

दधच्चाक्रवरो^१ वृत्ति बाले^२ भिक्षामिवाहरन् । दीनताया परा कोटि^३ प्रभुरारोपितस्त्वया ॥१२३॥
 सत्य दिग्विजये चक्रो जितवानमरानिति । 'प्रत्येयमिदमेतत्सु' चिन्त्यमन^४ ननु त्वया ॥१२४॥
 स किं न दर्भशय्याया सुप्तो नोपोपितोऽथवा । प्रवृत्तो जलमायाया^५ शरपात समाचरन् ॥१२५॥
 कृतचक्रपरिभ्रान्ति 'दण्डेनायतिदातिना । घटयन्^६ 'पायिबानेय सकुलालायते घत ॥१२६॥
 श्राग^७ परागमातन्वन् स्वयमेव कलङ्कित । चिर क्लङ्कयत्येव कुल 'कुलभूतामपि ॥१२७॥
 नृपानाकर्षतो दूरान्मन्त्रे तन्त्रेदच योजितं । श्लाघ्यते कियदेतस्य पौरुष लज्जया विना ॥१२८॥
 दुनोति नो भृश दूत श्लाघ्यतेऽस्य यदाहव । दोलायित जले यस्य बल म्लेच्छबलंस्तदा ॥१२९॥
 यशोधनमसहार्थं क्षत्रपुत्रेण रक्षयताम् । निखनन्तो^८ निधोन् भूमौ बहवो निधन^९ गता ॥१३०॥
 रत्नं किमस्ति वा कृत्य दान्यरत्निमिता^{१०} भुयम् । 'न यान्ति यत्कृते यान्ति केवल निधन नृपा ॥१३१॥

हुआ यह समस्त कार्य हम लोगोको केवल वचनाडम्बर ही जान पड़ता है क्योंकि कहा तो इसका दिग्विजयका प्रारम्भ करना और कहा धन इकट्ठा करनेमें तत्पर होना ? ॥१२२॥ जिस प्रकार भिक्षुक चक्र धारण कर भिक्षा मागता हुआ अतिशय दीनताको प्राप्त होता है उसी प्रकार चक्रवर्तीकी वृत्ति धारण कर भिक्षाके समान कर वसूल करता हुआ तेरा स्वामी भरत तेरे द्वारा दीनताकी परम सीमाको प्राप्त करा दिया गया है ॥१२३॥ यह ठीक है कि चक्रवर्तीने दिग्विजयके समय देवोको भी जीत लिया है परन्तु यह बात केवल विश्वास करने योग्य है अन्यथा तू यहा इतना तो विचार कर कि जलस्तम्भन करनेमे प्रवृत्त हुए तेरे स्वामी भरतने जब बाण छोडा था तब वह क्या दर्भकी शय्यापर नही सोया था अथवा उसने उपवास नही किया था ॥१२४-१२५॥ जिस प्रकार कुम्हार आयति अर्थात् लम्बाईसे शोभायमान डडे के द्वारा चक्रको घुमाता हुआ पाथिव अर्थात् मिट्टीके घट बनाता है उसी प्रकार भरत भी आयति अर्थात् मुन्दर भविष्यसे शोभायमान डडे (दण्डरत्न)से चक्र (चक्ररत्न) को घुमाता हुआ पाथिव अर्थात् पृथिवीने स्वामी राजाओको वश करता फिरता है, इसलिये कहना पड़ता है कि मुम्हारा यह राजा कुम्हारसे समान आचरण करता है ॥१२६॥ वह भरत पापकी धृष्टिको उढाना हुआ स्वयं कलङ्कित हुआ है और कुलीन मनुष्योके कुलको भी सदाके लिये कलङ्कित कर रहा है ॥१२७॥ हे दूत, प्रयोगमें लाये हुए मन्-तत्रोके द्वारा दूरसे ही अनेक राजाओको बुलानेवाले इन भरतवा पराक्रम तू लज्जाके विना कितना वर्णन कर रहा है ? ॥१२८॥ हे दूत, जिस समय तू दशके युद्धकी प्रशंसा करता है उस समय हम लोगोको बहुत दुःख होना है क्योंकि उस समय म्लेच्छोकी सेनाके द्वारा भरतकी सेना पानीमें हिडोले भङ्ग गयी थी अर्थात् हिडोलेके समान बँध गयी थी ॥१२९॥ क्षत्रियपुत्रको तो जिसे कोई हर्षण न कर मरे ऐसे यशम्पी धनवी ही गदा करनी चाहिये क्योंकि इस पृथिवीमें निधियो को गाए कर गन्नेवाटे अनेक लोग मर चुके हैं । भावार्य-अमरता यदासे ही प्राप्त होती है ॥१३०॥ अथवा जो ग्न एक हाथ पृथिवी तब भी माथ नही जाने और जिनके लिये राजा लोग बँधे मृ पृको ही प्राप्त होते हैं ऐसे ग्नोमे क्या पायं निबल सक्ता है ? ॥१३१॥

तुलापुत्र एवाम यो नाम निखिलैर्नृपैः । तुलिनो रत्नं पुञ्जनेन वन नैश्वर्यमीदृशम् ॥१३२॥
 ध्रुव स्वर्गपुत्रा दत्ताम प्राचिच्छि मतिं नो भुवम् । प्रत्यागयेत्यत्वमुत्सृज्य पृथोरस्य किमोपयम् ॥१३३॥
 दूत तातविनीर्षा नो महोमेना कुनोविनाम् । भ्यानुजायामिवाद्भित्तो मास्य लज्जा नवत्पने ॥१३४॥
 देयमन्यत् स्वतन्त्रेण यथाकाम जिगीषुषाम् । मुग्ध्वा कुनकस्य च क्षमानत च नुजाजितम् ॥१३५॥
 भूयस्तं बलमात्सर्प्यं स वा भुङ्क्ता महोततम् । चिरमेकानपराङ्मुखं श्रुत् वा भुजविभम् ॥१३६॥
 वृत् वया नटात्पार्श्वे श्रयंसिद्धिबहिष्कृतं । सद्ग्रामनिकये व्यक्ति पीदयस्य ममास्य च ॥१३७॥
 तन समरमघट्टे यद्वा तद्वाञ्छु नो द्वयो । नीरैकमित्थेकं नो बबो हरं बचोहरं ॥१३८॥
 इत्याविष्कृतमानेन कुमारेण बचोहर । दूत विमजिनोज्ज्वलं पति यन्नाहयेत् परम् ॥१३९॥
 तदा मुकुटमघट्ट्यात् उच्छ्वनन्मणिकोटिनि । वृत्तोन्मुक् शनक्षेपे इवोत्सये महोदिनि ॥१४०॥
 शय समरतपट्टपिशुनो नटतडकटं । श्रूयते म्य नटालापो बले भुजबतोदिनु ॥१४१॥
 चिरान् समरमम्भरे स्वामिनोऽयमभूद्विह । किं वय स्वामिमन्वाराद् अनूपोनदिनु दत्ता ॥१४२॥

जो ममन् राजाओंके द्वारा रत्नोंकी गतिमें तोग गया है ऐसा यह भरत एक प्रकारका तुलापुत्र है खेद है कि ऐसा ऐश्वर्य नहीं होता ॥१३२॥ अवश्य ही वह नग्न अपने पूज्य पिता श्री भगवान् वृषभदेवके द्वाग दी हुई हमारी पृथिवीको छीनना चाहता है सो इस ग्रीचीका प्रत्याख्यान अर्थात् निरस्कार करनेसे मित्राय और कुट उपाय नहीं है ॥१३३॥ हे दूत, पिताजीके द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुत्की पृथिवी नग्नके गिये भाटकी स्त्रीके समान है अब वह उमे ही लेना चाहता है सो तरे ऐसे स्वामीको क्या लज्जा नहीं आती ? ॥१३४॥ जो मनुष्य स्वतन्त्र है और इच्छानुसार अनुजोको जीतनेकी इच्छा करने है वे अपने कुत्की शिरो और भुजाओंमें कमाटं हुई पृथिवीको छोड़कर बाकी सब कुट दे सकते हैं ॥१३५॥ इसलिये वाग्-वार कहना व्यर्थ है, एक छत्रसे चिह्नित इस पृथिवीको वह भरत ही चिरकालतक उपभोग करे अथवा भुजाओंमें पराक्रम करनेवाग में ही उपभोग करे । भावार्थ—मुझे पराजित किये बिना वह इस पृथिवीका उपभोग नहीं कर सकता ॥१३६॥ जो प्रयोजनकी निदिधे रहित है ऐसे शूरवीरताके इन व्यर्थ वचनोंमें क्या लाभ है? अब तो युद्धरूपी कनौटी पर ही मेरा और भरतका पराक्रम प्रकट होना चाहिये ॥१३७॥ इसलिये हे दूत, तू वह हमारा सवेहरहित एक वचन ले जा अर्थात् जाकर भरतसे कह दे कि अब तो हम दोनोंका जो कुट होना होगा वह युद्धकी भीटमें ही होगा ॥१३८॥ इन प्रकार अनिमान प्रकट करनेवाले कुमार बाहूवरीने उन दूतको यह कहकर भीष्म ही बिदा कर दिया कि जा और अपने स्वामी को युद्धके लिये जन्दी तैयार कर ॥१३९॥ उन समय जिनके मुकुटोंके मधयर्षणमें बरोड़ों मणि उछर-उछरकर उधर-उधर पड़ रहे हैं और उन मणियोंमें जो ऐसे जान पड़ते हैं मत्तो अग्नि के मकड़ों पृष्ठीको ही उधर उधर फेंग रहे हों ऐसे राजा गेग उठ खड़े हुए ॥१४०॥ उनी क्षण अनेक योद्धाओंमें भरी हुई महागज बाहूवरीकी मनोमें युद्धकी भीटको सूचित करने-वाग योद्धा लोकोका परस्परका आगप मुनाई देने लगा था ॥१४१॥ इस समय स्वामीके यह युद्धकी तैयारी वृत्त दिनमें हुई है, क्या अब हम गेग स्वामीके सुन्नाग्ने ऊष्ठा (ऋण-मुक्त) हो सकते ? भावार्थ—स्वामीने आजतक पावन-भोगण कर जो हम लोगोंका महान्

१ गन्तायम । २ छेनुमिच्छति । ३ निराकर्णोपयम् । प्रत्याग्याना निराहृत इयमिधानात ।
 इयवमिपय (इयवमव औपमिपय) । ४ नुगस्य । ५ अनुजकनरम । ६ आदानुमिच्छा ।
 ७ नव काग्नात । ८ बहुप्रनापंगमम । ९ निगल्हम । १० स्वीकृत । ११ ना दूत । १२ गच्छ पति
 ६०, ७०, । १३ मरुड कृत् । १४ गनममृत् । १५ अत्तान । १६ मयमृत् ।

पोषयन्ति महोपाला भूष्यानवसर प्रति । न घेदवसर तादं^१ विभेभित्तुणमानुषं ॥१४३॥
 कलेवरमिद त्याज्यम् धर्जनीय यशोधनम् । जयधोविजये तभ्या नान्पोवर्षो रणोरसव ॥१४४॥
 मन्दातपशरच्छाये प्रत्यङ्गैर्वीणजर्जरं । सत्स्यामते^२ वदा नाम विधम^३ रणमण्डपे ॥१४५॥
 प्रत्यनोककृतानेकशूह^४ निर्भिद्य सायकं । शरदाय्यामसम्पापम् अघ्यातिघ्वे वदा ग्यहम् ॥१४६॥
 वधतालानिलाधूति^५ विधूतसमरध्रम । गजस्यन्धे निवीरामि^६ वदाहं क्षणमूर्ध्नि ॥१४७॥
 दन्तिदन्ता^७ गलप्रोतोद्गलदन्त्रं स्खलद्गुचा । जयलक्ष्मीवटाक्षणां वदाहं लक्ष्यता भजे ॥१४८॥
 गजदन्तान्तरान्त्रिस्थान्त्रमालावरत्रया^८ । वहिं^९ दोलामियारोप्य तुलयामि जयधियम् ॥१४९॥
 ब्रुवाणंरिति सद्यधामरसिकंश्चभटभंटे । शस्त्राणि सन्निरस्त्राणि सज्जान्यासन् बले बले ॥१५०॥
 तत कृतभय भूयो भटश्रुकुटितजितं । पलायितमिय वदाऽपि प^{१०}रिच्छत्तिमगादह ॥१५१॥
^{११}श्रयोहृष्यद्भटानोकनेत्रच्छायापिता रचम् । दधान इव तिग्मांशुं आसीदारक्षमण्डल ॥१५२॥
 क्षणमस्ताचलप्र^{१२}स्यकाननदमाजपल्लवं । सद्गालोहितच्छायो वदुदोऽकांशुसस्तर^{१३} ॥१५३॥

सत्कार किया है क्या उसका बदला हम कुछ दे सकेंगे ? ॥१४२॥ राजा लोग संमथके लिये ही सेवक लोगोका पालनपोषण करते हैं, यदि समय नहीं साधा गया अर्थात् अवसर पडनेपर स्वामीका कार्य सिद्ध नहीं किया गया तो फिर तृणसे बने हुए इन पुरुषोमे क्या लाभ है ? भावार्थ—जो पुरुष अवसर पडनेपर स्वामीका साथ नहीं देते वे घास-फूसके बने हुए पुरपो के समान सर्वथा सारहीन हैं ॥१४३॥ अब यह शरीर छोडना चाहिये, यशान्पी धन कमाना चाहिये और विजय लाभकर जयलक्ष्मी प्राप्त करनी चाहिये, यह युद्धका उत्सव कुछ थोडा फल देनेवाला नहीं है ॥१४४॥ हम लोग, धावोसे जर्जर हुए शरीरके प्रत्येक अंगोसे, जिसमें धामको मन्द करनेवाली वाणोकी छाया पड रही है ऐसे युद्धके मण्डपमे वद विश्राम करेंगे ? ॥१४५॥ कोई कहता था कि मैं कब अपने वाणोसे शत्रुओकी सेनाके द्वारा किये हुए अनेक व्यहोको छेदकर बिना किसी उपद्रवके वाणोकी दाय्यापर शयन करूंगा ॥१४६॥ कोई कहता था कि मैं कब युद्धमे क्षण भरके लिये मूर्च्छित होकर हाथीके कानरूपी ताडपत्रकी वायुके चलने से जिसके युद्धका सब परिश्रम दूर हो गया है ऐसा होता हुआ हाथीके कंधेपर बैठूंगा ? ॥१४७॥ हाथीके दातरूपी अंगलोमें पिरोये जानेसे जिसकी अँतडिया निकल रही है तथा जिसके मुखसे टूटे फूटे शब्द निकल रहे हैं ऐसा होता हुआ मैं कब जयलक्ष्मीके कटाक्षोका निशाना बन सकूंगा ? भावार्थ—वह दिन कब होगा जब कि मैं मरता हुआ भी विजय प्राप्त करूंगा ? ॥१४८॥ कोई कहता था कि हाथियोके दातोके बीचमें लटकती हुई अपनी अतडियोके समूहरूपी मजबूत रस्सीपर झुलाके समान विजयलक्ष्मीको बैठकर मैं कब उसे तोलूंगा ? ॥१४९॥ इस प्रकार कहते हुए युद्धके प्रेमी बडे बडे योद्धाओने प्रत्येक सेनामे अपने अपने शस्त्र तथा शिरकी रक्षा करनेवाली टोपिया सँभाल ली ॥१५०॥

तदनन्तर दिन समाप्त हो गया सो ऐसा मालूम होता था मानो योद्धाओकी भौंहोके तिरस्वारमे भयभीत होकर कहीं भाग ही गया हो ॥१५१॥ अथानन्तर सूर्यका मडल लाल हो गया मानो उसने शोधित हुए योद्धाओकी सेनाके नेत्रोकी छायाके द्वारा दी हुई लाल कान्ति ही धारण की हो ॥१५२॥ उस समय क्षण भरके लिये सूर्यकी किरणोका समूह अस्ताचल

१ न गम्यश्चन् । २ विश्राम ल०, द०, अ०, प०, ग० । ३ शत्रुवृत्तसेनास्वरनाम् । ४ अव-
 धूनम् । ५ निपण्णो भवामि । 'वदावहयोर्का' इति भविष्यदर्थे लट् । ६ परिच्छ । ७ -तोद्गलदल-
 ट० । निर्यद्रवन् । ८ निजपुरीतदमात्रदूष्यया । 'दूष्या वदया वरया स्याद्' इत्यभिधानान् । ९ वदा ।
 १० विनागम् । ११ दिवग । १२ अयाप्य-ल० । १३ मान् । १४ रविनिरणसमूह ।

कर्त्तव्यप्रमत्तमर्गः मानुरातदप्यत क्षमन् । पातनीत्या करानार्थः करानम्बदिवाद्यन् ॥१५४॥
 पतन् वाद्यर्षी सद्भाग् परिलुप्तविभावमुत् । नानम्बन् बनात्यादिः मानु बिम्बदिबन्तः ॥१५५॥
 गतो नृ दिनमन्वेष्टु^१ प्रविष्टो नृ रसानमन् । निरोहितो नृ शृङ्गाणः क्रन्तादेर्नेति मानुमान् ॥१५६॥
 विप्रदप्य तनो नैशं कर्त्तराकस्य भूमतः^२ । दिनावमाने पर्याम्पद्^३ ग्रहो रविरत्तंशुः^४ ॥१५७॥
 निर्वह्मन्सङ्गतगन्धर्व^५ शदवद् मानुरयं भूमन् । वि^६प्रकष्यात्तन्मूर्धः श्रयाहोव^७ पतत्रयः ॥१५८॥
 व्यमनेऽस्मिन्^८ दिनेदास्य शुचेव परिपीडिताः । विच्छायाति मुद्यान्गृह^९ तनोपद्धा दिगङ्गनाः ॥१५९॥

को गिम्बरपर लगे हुए वनके वृक्षोंको कोपलोंके समान कुछ कुछ लाल रंगका दिग्वाट दे रहा था ॥१५३॥ उस समय वह सूर्य अस्ताचलकी गिम्बरपर लगे हुए किरणोंमें क्षणभरके लिये ऐसा जान पड़ता था मानो नीचे गिरनेके भयसे अपने किरणरूपी हाथोंमें किसीके हाथका महारंग ही ले रहा हो ॥१५४॥ जो सूर्य वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा (पक्षमें मदिरा) के नमागमने पतित हो रहा है और जिसका कान्तिरूपी घन नष्ट हो गया है ऐसी सूर्यको मानो पापमें डगने हुए ही अस्ताचलने आलम्बन नहीं दिया था । नावार्य—वारुणी शब्दके दो अर्थ होने हैं मदिरा और पश्चिम दिशा । पश्चिम दिशामें पहुँचकर सूर्य प्राकृतिक रूपमें नीचे की ओर टलने लगता है । यहाँ क्विने उसी प्राकृतिक दृश्यमें श्लेषमूलक उत्प्रेक्षा अलंकारकी पुष्ट देकर उसे और भी सुन्दर बना दिया है । वारुणी अर्थात् मदिराके नमागमने मनुष्य अर्थात् हो जाता है उसका स्पर्श करना भी पाप समझा जाने लगता है, सूर्य भी वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा (पक्षमें मदिरा) के नमागमने मानो अपवित्र हो गया था । उसका स्पर्श करनेमें कहीं भे भी पारी न हो जाऊँ इस भयसे अस्ताचलने उसे महारा नहीं दिया—गिरने हुए को हस्तालम्बन देकर गिरनेमें नहीं बचाया । सूर्य डूब गया ॥१५५॥ उस समय सूर्य दिग्वाट नहीं देना था सो ऐसा जान पड़ता था मानो धीने हुए दिनको खोजनेके लिये गया हो, अथवा पाताललोकमें घूम गया हो अथवा अस्ताचलकी गिम्बरोंके अग्रभागमें छिप गया हो ॥१५६॥ जिस प्रकार कोई वीर पुरुष शत्रुद्वारुणी अन्धकारको नष्ट कर और अपने कर अर्थात् टंकन द्वारा भूमन् अर्थात् राजाओंपर आक्रमण कर दिन अर्थात् भाग्यके अन्तमें अतशक्त अर्थात् विना वस्त्रके यों ही चला जाता है उसी प्रकार सूर्य रात्रिमन्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर तथा कर अर्थात् किरणोंमें भूमन् अर्थात् पर्वतोंपर आक्रमण कर दिनके अन्तमें अतशक्त अर्थात् किरणोंके विना यों ही चला गया—अन्त हो गया, यह क्विने दुम्बकी बात है ॥१५७॥ यह सूर्य तो मंत्र पर्वतके चारों ओर गोलाकार तिरछी गतिमें निरन्तर घूमना रहना है तथापि दूर होनेमें दिग्वाट नहीं देता इसलिए सूर्य पुरुषोंको नीचे गिरता हुआ मा जान पड़ता है ॥१५८॥ सूर्यको इस विपत्तिके समय मानो शोकमें पीड़ित हुई दिशास्त्री न्त्रिया अन्धकारमें भग जाने के कारण कान्तिरहित मन्त्र धारण कर रही थी । नावार्य—पत्तिकी विपत्तिके समय जिस प्रकार कुलवती स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी विपत्तिके समय दिशास्त्री स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो गये थे । अन्धकार छा जानेमें दिशास्त्रीकी

१ विम्बवाट । 'करानो शत्रुने मुद्राके विनामं विहृतेऽपि च' इत्यनियमान् । २ बरानम्बदिवाद्यन्-सद्भाग् । सदनसद्भासिदिनि ध्वनिः । ३ कान्तिरेव पत्तं मन्त्र । पत्ते विना च वन् च विनाशमूर्ती, परिष्कृते विनाशमूर्ती मन्त्र म् । ४ न परति म् । ५ पापान् । ६ शदवदाय । ७ निगमन्बन्धिय । ८ पर्वतानाम् । मृगारव । ९ दिग्वाटः । भाग्यावमानो च । दिवाव-१०, २० । १० पतिवदान् । ११ कान्तिरहित, अन्धरहित इति ध्वनिः । १२ मरुदशिशुःशत्रुपिङ्गुबिम्बपतनेन । १३ इतन् । १४ स्यात्तः । १५ विरतिः । १६ परति म् ।

पश्चिमो म्लानपश्चास्या द्विरेकवह्णारत्ते । शोचन्त्य इव संयुक्ता वियोगादग्निस्त्विय ॥१६०॥
 सन्ध्यतपतताम्यासन् यनान्यस्तमहोभूत । परीतानीव द्वापान्निशिलयातिशरालया ॥१६१॥
 श्रनुरवतापि सन्ध्येय परित्यक्ता धियस्यता । प्रविष्टेवाग्निमारवतच्छदिरालशयतान्धरे ॥१६२॥
 शनैराकाशवाराशिविद्वमोद्यानराजिवित् । दशवे दिशि वादप्या सन्ध्यासिन्धूरतच्छदिव ॥१६३॥
 चक्रवाकीमनस्तापदीपनो^१ नु हुताशन । पश्ये पश्चिमागान्ते सन्ध्यारागो जपारण ॥१६४॥
 "सन्ध्ये राग स्फुरन् दिक्षु क्षणमंशि प्रियागमे । गान्निनीनां भनोरग वृस्तो "मूर्धेप्रिवेकत ॥१६५॥
 धृतरवताशुका सन्ध्याम् प्रनुयात्तां दिनाधिपम् । बटुमेने रतां शोष वृतानुभरगामिव^२ ॥१६६॥
 चक्रवाकीं धृतोत्कण्ठम् श्रनुयात्तां कृतस्वनाम् । "विजहावेव धत्राह्वो" निर्यात को नु सद्यपयेत् ॥१६७॥
 रवे किमपरापोष्य कालस्य नियते किम् । रषाद्गामिवृताम्यासन् वियुक्तानि यतो मिय ॥१६८॥
 धन तमो विनाकंषं ध्यानशो निखिला दिश । विना तेजस्विना प्रायस्तमो रभ्ये^३ नु सन्ततम् ॥१६९॥
 तमोऽवगुण्ठता रजे रजनी तारकातता । विनीलवसना भास्वग्मीक्षितकेवाभिसारिका^४ ॥१७०॥

शोभा जाती रही थी ॥१५९॥ कमलिनियोके कमलरूपी मुख मुरझा गये थे जिमसे वे ऐसी जान पडती थी मानो सूर्यका वियोग होनेसे भूमरोके वरणाजनक शब्दोके वहाने रदन वरती हुई शोक ही कर रही हो ॥१६०॥ सायकालके लाल लाल प्रकाशसे ज्याप्त हुए अस्ताचल के वन ऐसे जान पडते थे मानो अत्यन्त भयकर दावानलकी शिखासे ही घिर गये ही ॥१६१॥ यद्यपि यह सध्या अनुरक्त अर्थात् प्रेम करनेवाली (पक्षमे लाल) थी तथापि सूर्यने उसे छोड दिया था इसलिये ही वह लाल रगकी सध्या आकाशमे ऐसी जान पडती थी मानो उनने अग्निम ही प्रवेश किया हो । भावार्थ—पतिव्रता स्त्रिया पतियोके द्वारा अपमानित होनेपर अपनी विशुद्धताका परिचय देनेके लिये सीताके समान अग्निमे प्रवेश करती है यहापर कविने भी समासोक्ति अलंकारका आश्रय लेकर सध्यारूपी स्त्रीको सूर्यरूपी पतिके द्वारा अपना नित होनेपर अपनी विशुद्धता—सच्चरित्रताका परिचय देनेके लिये सध्या कालकी लालिमा रूपी अग्निम प्रवेश कराया है ॥१६२॥ सिन्दूरके समान श्रेष्ठ कान्तिको धारण करनेवाली वह सध्या धीरे धीरे पश्चिम दिशामे ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आकाशरूपी समुद्रमें मृगीके वगीचोकी पक्ति ही हो ॥१६३॥ जवाके फूलके समान लाल लाल वह सध्याकाल की लाली पश्चिम दिशाके अन्तमें ऐसी फैल रही थी मानो चक्रवियोके मनके सतापको बढाने वाली अग्नि ही हो ॥१६४॥ समस्त दिशाओमे फैलती हुई सध्याकालकी लाली क्षण भरके लिये ऐसी दिखाई देती थी मानो पतियोके आनेपर मान करनेवाली स्त्रियोके मनका समस्त अनुराग ही एक जगह इकट्ठा हुआ हो ॥१६५॥ लाल किरणेरूपी वस्त्र धारणकर सूर्यरूपी पतिके पीछे पीछे जाती हुई सध्याको लोग पतिके साथ मरनेवाली सतीके समान बहुत कुछ मानते थे ॥१६६॥ चक्रवानं वही उत्पठासे अपने पीछे पीछे आती हुई और शब्द करती हुई चक्रवीको आखिर छोड ही दिया था सो ठीक ही है क्योंकि नियति अर्थात् दैविक नियमका उल्लंघन कौन कर सकता है ? ॥१६७॥ उस समय चक्रवा चक्रवियोके जोडे परस्परमें बिछुड गये थे—अलग अलग हो गये थे, सो यह क्या सूर्यका अपराध है ? अथवा कालका अपराध है ? अथवा भाग्यका ही अपराध है ? ॥१६८॥ सूर्यके विना सब दिशाओमे गाढअन्धकार फैल गया था सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वीके विना प्राय सब ओर अन्धकार ही भर जाता है ॥१६९॥ अन्धकारसे घिरी हुई और ताराओसे व्याप्त हुई वह रात्रि ऐसी सुशोभित हो रही

१ उदीपनवारी । २ गन्ध्याराग ७०, ८० । ३ प्रसपन् । ४ सममरणम् । अग्निप्रवेश
 अंतीमिपर्यं । ५ ममुच । ६ चत्राह्वो ७०, ८०, ९०, १००, ११० । ७ व्याप्नोति । ८ तमसाच्छादिता ।
 ९ वेत्या ।

ततान्धतमसे लोके जनैरन्मीलितेक्षणं । नादृश्यन् पुर किञ्चित्^१ मिथ्यात्वेनेव दूषितं ॥१७१॥
 प्रसह्य^२ तमसा ददौ लोकोग्न्तज्याङ्गुलीमवन् । दृष्टिबन्धन्य^३ दूष्यन् बहु मेने श्यालुनाम् ॥१७२॥
 दीपिका रचिता रेजु प्रतिवेदम स्फुरत्स्वप । 'धनान्धतमसोद्भेदे प्रकृत्पता' इव सूचिका ॥१७३॥
 तमो विधूय दूरेण जगदानन्दिभि करं । उदियाय शशी लोक क्षीरेण क्षालयन्निव ॥१७४॥
 अखण्डमनुरागेण निज मण्डलमुद्रहन् । सुराजेष शृणान दम् उदगाद् विपुलन्वर ॥१७५॥
 दृष्ट्वेवाहृष्टहरिण हरि हरिणलाञ्छनम् । तिमिरीष प्रदुदाव हरिण्यसदग् महान् ॥१७६॥
 तततारावली रेजे ज्योत्स्नापूर सुधाद्यवे । सद्बुद्बुद इवाकाशसि धोरीष परिसरन् ॥१७७॥
 हसपोत इवाविच्छन्^४ शशी तिमिरसंवलम् । तारा सहचरोक्षन्त विजगाहे^५ नन सर ॥१७८॥
 तमो निशेयमुद्रय जगदाप्तावयन् करं । प्रालेयादास्तदा विदव सुधामयमिवातनीत् ॥१७९॥
 तमो दूर विधूयाज्जि विधुरासीत् क्लृप्तजवान् । निसर्गज तमो नून महताज्जि सुदुस्त्यजम् ॥१८०॥

थी मानो नील वस्त्र पहिने हुई और चमकीले मोतियोंके आभूषण धारण किये हुई कोई अवि-
 सारिणी स्त्री ही हो ॥१७०॥ जिस प्रकार मिथ्या दर्शनमें दूषित पुरपोको कुछ भी दिग्वाइं
 नहीं देता—पदार्थके स्वरूपका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता उसी प्रकार गाढ अन्धकारमें भरे
 हुए लोकमें पुरपोको आख खोलनेपर भी सामनेकी कुछ भी वस्तु दिग्वाइं नहीं देती थी ॥१७१॥
 जबदंस्ती अन्धकारसे घिरे हुए लोग भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहे थे और उनकी दृष्टि
 भी कुछ काम नहीं देती थी इसलिये उन्होंने मोना ही अच्छा समझा था ॥१७२॥ घर घर
 में लगाये हुए प्रकाशमान दीपक ऐसे अच्छे सुगोमित हो रहे थे मानो अत्यन्त गाढ अन्धकार-
 को भेदन करनेके लिये बहुत सी सुइया ही तैयार की गई हो ॥१७३॥ इतने ही में जगत्को
 आनन्दित करनेवाली किरणोंसे अन्धकारको दूरने ही नष्ट कर चन्द्रमा इस प्रकार उदय हुआ
 मानो लोकको दूषसे नहला ही रहा हो ॥१७४॥ वह चन्द्रमा किंगी उत्तम राजाके समान
 ससारको आनन्दित करता हुआ उदय हुआ था, क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा अनुराग अर्थात्
 प्रेमसे अपने अक्षण्ड (मपूर्ण) मण्डल अर्थात् देशको धारण करता है उनी प्रकार वह चन्द्रमा
 भी अनुराग अर्थात् लालिमामे अपने अक्षण्डमण्डल अर्थात् प्रतिविम्बको धारण कर रहा था
 और उत्तम राजा जिस प्रकार चारों ओर अपना कर अर्थात् टैक्म फैलता है उनी प्रकार
 वह चन्द्रमा भी चारों ओर अपने कर अर्थात् किरणें फैला रहा था ॥१७५॥ हरिणके चिह्न
 वाले चन्द्रमाको देखकर अन्धकारका समूह बड़ा होनेपर भी इस प्रकार भाग गया था जिम
 प्रकार कि हरिणको पकड़े हुए मिहको देखकर हाथियोंना बड़ा भारी भुष्ट भाग जाता है ।
 ॥१७६॥ जिसमें ताराओंकी पङ्क्ति फँगे हुई है ऐमा चन्द्रमाकी चादनीका समूह उम समय
 ऐमा अच्छा जान पड़ता था मानो बुद्बुदों सहित ऊपरमें पड़ता हुआ आकाशकी समुद्रका
 प्रवाह ही हो ॥१७७॥ हमके बच्चेके समान वह चन्द्रमा अन्धकारकी शैवालको रोजना हुआ
 तारे की हमियोंमें भरे हुए आकाशकी सरोवरमें अवगाहन कर रहा था—इधर-उधर
 घूम रहा था ॥१७८॥ ममस्त अन्धकारको नष्ट कर जगत्को किरणोंमें भरते हुए चन्द्रमा-
 ने उम समय यह ममस्त समार अमृतमय बना दिया था ॥१७९॥ अन्धकारको दूर करने भी
 वह चन्द्रमा कलकी बन रहा था मो ठीक ही है क्योंकि स्वभाविक अन्धकार बड़े पुण्योंमें छूटना

१ दृष्टान् । २ नेत्रविन्दन-वर्णाङ्गणम् । ३ गदनागोत्रताम् । ४ पलायनगोत्रभेदे ट० । ५ निर्वि-
 हायकारभेदेने । ६ शृणा । ६ इवाविच्छन् स०, द०, प० । ७ विवेक ।

भियजेय वरं स्पृष्टा दिशतिमिरभेदिभि । शनैर्दृश हवालोचम् घ्रातेः तिगिरत्विया ॥१८१॥
 इति प्रदोषसमये जाते प्रस्पृग्ताख्ये । सौधोत्साद्रगभुयो भेजु पुरुष्यप सह वामिभि ॥१८२॥
 चन्दनद्रवसिक्ताद्वाप्य खग्विष्य^१ सायतसिक्ता । सतराभरणा रेजस्तव्य वस्पतता इव ॥१८३॥
 इन्दुवावं समुत्कयम् भ्रगान्महरवेता । तदोदन्वानिषोद्रेतो मनोवृत्तियु वामिनाम् ॥१८४॥
 रमणा^२ रमणोयाइव चन्द्रपारा सचन्दना । मदीर्य मदनारम्भम् घ्रातवन् रमणोजने ॥१८५॥
 शशाङ्कवरजंश्रात्रं तजंयमिस्त्रिस अगतु । नृपयन्सभिवावासाग्नोभूरभ्ययेणयन्^३ ॥१८६॥
 नास्नावि मविरा स्थरं नाजध्मे न वरेर्दपिता । वेषस मदाधेनासदप्यो भेजुदव्यताम् ॥१८७॥
 उत्सद्गसद्गिनी भर्तु काचिमवविपूणिता । वामिनो मोहनास्त्रेण भतानद्गमेन तर्जिता ॥१८८॥
 सलीवचनमुल्लङ्घ्य भद्रवत्वा मान निरगंता^४ । प्रयान्ती रमणावात वाप्यनद्गमेन धीरिता^५ ॥१८९॥
 शफलीवचनैर्दृना काचित् पर्यथूलोचना । वत्राह्वेय भुश तेपे नायाति प्राणवत्सभे ॥१९०॥
 शून्यगानस्वने^६ स्त्रीणां प्रसिज्याबलभद्रहृतं^७ । पूर्वरेदगमियानद्गो रचयामास वामिनाम् ॥१९१॥

भी कठिन है ॥१८०॥ जिस प्रकार वंदके द्वारा तिमिर रोगको नष्ट करनेवाले हाथोसे स्पर्श की हुई आँखें धीरे धीरे अपना प्रकाश फँलाने लगती हैं उसी प्रकार चन्द्रमाके द्वारा अन्धकारको नष्ट करनेवाली किरणोसे स्पर्श की हुई दिशाएँ धीरे धीरे अपना प्रकाश फँलाने लगी थी ॥१८१॥ इस प्रकार जिसमें तारागण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ऐमा सायकालका समय होनेपर सब स्त्रिया अपने अपने पतियोंके साथ महलोकी छतोपर जा पहुँची ॥१८२॥ जिनके समस्त शरीरपर घिसे हुए चन्दनका लेप लगा हुआ है, जो मालाएँ धारण किये हुई हैं, वानोमें आभरण पहने हैं और जिनके समस्त आभरण देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसी वे स्त्रिया वलयलताओं के समान सुशोभित हो रही थी ॥१८३॥ उस समय चन्द्रमाकी किरणोसे जिस प्रकार समुद्र लहराता हुआ वृद्धिको प्राप्त होने लगता है उसी प्रकार कामो मनुष्योंके मनमें काम उद्बलित होता हुआ बढ़ रहा था ॥१८४॥ सुन्दर पति, चन्द्रमाकी किरणों और चन्दन सहित मद ये सब मिलकर स्त्रियोमें कामकी उत्पत्ति कर रहे थे ॥१८५॥ चन्द्रमाकी किरणरूपी विजयी शस्त्रो के द्वारा समस्त जगत्को तिरस्कृत करता हुआ कामदेव राजाकी स्त्रियोके निवासस्थानमें भी सेना सहित जा पहुँचा था ॥१८६॥ तरुण स्त्रियोने न तो मंदिराका स्वाद लिया, न इच्छा नुसार उसे सूधा और न हाथमें ही लिया, केवल कामदेवके आवेशसे ही उत्कण्ठाको प्राप्त हो गईं, अर्थात् कामसे विह्वल हो उठी ॥१८७॥ पतिकी गोदमें बैठी हुई और मदसे भ्रमती हुई कोई स्त्री कामदेवके द्वारा माहन अस्त्रसे ताडित की गई थी ॥१८८॥ कामदेवसे प्रेरित हुई कोई स्त्री सखीके वचन उल्लघन कर तथा मान छोडकर स्वतंत्र हो अपने पतिके निवासस्थान को जा रही थी ॥१८९॥ कोई स्त्री पतिके न आनेपर वापिस लौटी हुई दूतीके वचनोसे दुखी होकर आखोसे आसू छोड रही थी और चकवीके समान अत्यन्त विह्वल हो रही थी—तडप रही थी ॥१९०॥ शून्य हृदयसे गाये हुए स्त्रियोके सुन्दर गीतोसे तथा भ्रमरपक्षिकके मनोहर भ्रनारोसे कामदेव कामी पुरुषोके लिये पूर्वरेज्ज अर्थात् नाटकके प्रारम्भमें होनेवाला एक अंग विमोष हो मानो बना रहा था । भावार्थ—उस समय स्त्रिया पतियोकी प्राप्तिके लिये वेसुध होवर गा रही थी और उडते हुए भ्रमरोकी गुजार फँल रही थी जिससे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेवरूपी नट कामनीडारूप नाटकके पहले होनेवाले सगीत विशेष ही दिखला रहा हो । नाटकके पहले जो मंगल-सगीत होता है, उसे पूर्वरेज्ज कहते हैं ॥१९१॥

१ मानभारिण । २ प्रियतमा । ३ मदाइव ल० । ४ सेनया सहाभ्यगमयन् । ५ उत्कण्ठताम् ।

६ प्रतिव पररहिता । ७ धर्म नीना । ८ चित्तसमोहनहेतुगीतविशेष । ९ वलयचनिभेदे ।

'गोत्रस्खलनसंबद्ध'मग्न्युमन्यामनन्यजः' । नोपेक्षिष्ट प्रियोत्तद्गम् अतयन्नवसद्गताम् ॥१६२॥
 नेनुपादेषु'ति लेभे नोशीरेनं' जलाद्रया' । खण्डिता' मानिनी काचिद् अन्तस्तापे बलीयति ॥१६३॥
 काचिदुत्तापिभिर्बाणैः तापिताऽपि मनोभवा । नितम्बिनी प्रतीकारं नैच्छद्द्वयैवलम्बिनो ॥१६४॥
 अनुरक्ततया हूरं नीतया प्रणयोचिताम् । भूमिं यूनाऽन्यया सोढः सन्देशः परयाक्षरः ॥१६५॥
 श्रान्ति' इव तालिक' ब्रूहि गतः कियु विलसताम्' । प्रियानामा'क्षरैः क्षीर्णः मोहान्मध्यवतारितं ॥१६६॥
 पया तव हृतं चेतः तया लज्जाऽन्यहारि किम् । येन निरुत्रप' भूयोऽपि प्रणयोऽस्मात् तन्यते ॥१६७॥
 संबानुवर्तनीया ते सुभग'मन्यमानिनी । अस्याने योजिता प्रीति जायतेऽनुद्रयाय' तै' ॥१६८॥
 इति प्राणप्रिया काञ्चित् सन्दिग्धन्ती' सखीजने । युवा सावरमभ्येत्य नानुनिये' न मानिनीम् ॥१६९॥
 चन्द्रपादास्तपन्तीव चन्दन दहतीव माम् । सन्धुष्यत इवाऽमीभिः कामाग्निर्व्यजनादिलैः ॥२००॥

गोत्रस्खलन अर्थात् भूलसे किसी दूसरी स्त्रीका नाम ले देनेसे जिसका क्रोध बढ रहा है ऐसी किसी अन्य नवीन व्याही हुई स्त्रीकी भी कामदेवने उपेक्षा नहीं की थी किन्तु उसे भी पतिके समीप पहुँचा दिया था । भावार्थ—प्रौढा स्त्रियोकी अपेक्षा नवोढा स्त्रियोमे अधिक मान और लज्जा रहा करती है परन्तु उस चन्द्रोदयके समय वे भी कामसे उन्मत्त हो सब मान और लज्जा भूलकर पतियोके पास जा पहुँची थी ॥१९२॥ जिस किसी स्त्रीका पति वचन देकर भी अन्य स्त्रीके पास चला गया था ऐसी अभिमानिनी खण्डिता स्त्रीके मनका मताप इतना अधिक बढ गया था कि उसे न तो चन्द्रमाकी किरणोसे सतोप मिलता था, न जमीर (खस) से और न पंखेसे ही ॥१९३॥ धीरज धारण करनेवाली कोई स्त्री कामदेवके द्वारा अत्यन्त पीडा देनेवाले बाणोसे दुखी होकर भी उसका प्रतीकार नहीं करना चाहती थी । भावार्थ—अपने धैर्यगुणसे कामपीडाको चुपचाप सहन कर रही थी ॥१९४॥ कोई तरण पुरुष प्रेगसे भरी हुई अपनी अन्य स्त्रीको प्रेम करने योग्य किसी दूर स्थानमें ले गया था, वहा वह उसके कठोर अक्षरोसे भरे हुए सदेशको चुपचाप सहन कर रही थी ॥१९५॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि हे तलि, सच कह कि क्या वह भूमसे मेरे विषयमें बहे हुए और अत्यन्त क्षीण अपनी प्रियाके नामके अक्षरोसे कुछ चकित हुआ था ? ॥१९६॥ कोई स्त्री अपने अपराधी पतिसे कह रही थी कि हे निर्लज्ज, जिसने तेरा चित्त हरण किया है क्या उसने तेरी लज्जा भी छीन ली है ? क्योंकि तू फिर भी मुझपर प्रेम करना चाहता है ॥१९७॥ कोई स्त्री पतिको ताना दे रही थी कि आप अपने आपको बडा सौभाग्यवाली समझते हैं इसलिये जाइये उसी मान करनेवाली स्त्रीकी सेवा कीजिये क्योंकि अयोग्य स्थानमें की गई प्रीति आपके सतापके लिये ही होगी । भावार्थ—मुझमे प्रेम करनेपर आपको सताप होगा इसलिये अपनी उसी प्रेयसीके पास जाइये ॥१९८॥ इस प्रकार सखियोके लिये सदेग देती हुई किमी अहकार करनेवाली प्यारी स्त्रीको उमका तरण पति आकर बडे आदरके साथ नहीं मना रहा था क्या ? अर्थात् अवश्य ही मना रहा था ॥१९९॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि ये चन्द्रमा की किरणें मुझे सताप दे रही हैं, यह चन्दन जला सा रहा है और यह पखोसी हवा मेरी कामाग्नि

१ नामग्यान । २ प्रवृद्धश्रीधाम् । ३ वाम । ४ नववधूमियथे । ५ नामज्जकं । 'मूलेऽन्योतीरमन्त्रियाम्' । 'अभय मलद मेव्यममृणाल जलाशयम् । लामज्जक सपुसवमयदाहेटकापयं ।' इत्यभिधानाम् । ६ व्यजनेन । ७ विद्युत्ता । ८ सयानम् (शय्यागृहम्) । ९ वापियम् । १० भो तगि । ११ अनृतम् । १२ किमग्यानिकताम् । १३ दिव्यं । १४ निर्लज्ज । १५ अत्र मुभमेति मग्न्यमाता रामा । १६ परचातानाय । १७ तत्र । १८ गच्छन्वन्तीम् । वचन प्रेयसिगम् । १९—येत्य १०, २० । अतुप नानुरोदिनि न । (अपि तु वगोयेय) ।

तमानयानुवीयेह नय मा वा तदस्तिकम् । त्वदधीना मम प्राणा प्राणेशे बहुदत्तमे ॥२०१॥
 इत्यनङ्गातुरा काचित् सन्निवसन्ती सखीं मिय १ । भुजोपरोपभादलेपि पत्या प्रत्यप्रलङ्घिता ॥२०२॥
 राज्ये मनोभवस्थास्मिन् स्वैर ररम्यतामिति । कामिनोकलकाञ्चीभि उदघोषीव घोवणा ॥२०३॥
 कर्णोत्पलनितीनालिकुलकोलाहलस्वने । उपजेपे १ किम् स्त्रीणां कर्णजाहे १ मनोभुवा ॥२०४॥
 स्तनाङ्गरागसम्भर्दो परिरेम्भोऽतिनिर्दयः । ववुषे कामिवुदेयु रभरश्च कचग्रह ॥२०५॥
 धारवतकलया दृष्टि मुखभाषाट १ लाघरम् । रतान्ते कामिनामासौत् सौकृत वाऽसकृत्कृतम् ॥२०६॥
 पुण्ड्रसम्मदसुरभिं श्रास्तजघनाशुका । सम्भोगावसतो १ शय्या मियुनान्यधिशरेत ॥२०७॥
 कंचिद् बोरभटैर्भाविणारम्भकृतोत्सवे । प्रियोपरोषाणम वेच्छैरप्यासिं रतोत्सव ॥२०८॥
 केचित् कौर्येङ्गनासङ्गमुखसङ्गकृतस्पृहा । प्रियाङ्गनापरिविब्रङ्गम् ब्रह्ममीचक्रुन् मानिन ॥२०९॥
 निजितारिभटैर्भोग्या प्रिया मास्माभि रन्यथा । इति जातिभटा केचिन्न भेजु शयनान्यधि ॥२१०॥
 शरतल्पगतानल्पसुखसङ्कल्पत परे । नाभ्यनन्दन् प्रियातल्पम् प्रनरूपेच्छा भटोत्तमा ॥२११॥
 स्वकामिनोभिरारब्धवोरालापभटै परे । विभावरी विभाताऽपि १ सा नावेदि रणोमुखं ॥२१२॥

को बडा सी रही है ॥२००॥ इसलिये मनाकर या तो उन्हें यहा ले आ या मुझे ही उनके पास ले चल, यह ठीक है कि प्राणपतिके अनेक स्त्रिया है इसलिये उन्हें मेरी परवाह नहीं है किन्तु मेरे प्राण तो उन्हीके अधीन है ॥२०१॥ इस प्रकार कामदेवसे पीडित होकर कोई स्त्री अपनी सखीसे सदेव कह ही रही थी कि इतनेमें उस नवीन विरहिणी स्त्रीको पास ही छिपे हुए उसके पतिने दोनों भुजाओंसे पकडकर परस्पर आलिंगन किया ॥२०२॥ उस समय मनोहर शब्द कही हुई स्त्रियोंकी करधनिया मानो यही घोषणा कर रही थी कि आप लोग कामदेव के इस राज्यमें इच्छानुसार क्रीडा करो ॥२०३॥ उन स्त्रियोंके कर्णफूलके कमलमें छिपे हुए भूमरोके समूह कोलाहल कर रहे थे और उनसे ऐसा जान पडता था कि कामदेव स्त्रियोंके कानों के समीप लगकर कुछ गुप्त बातें ही कर रहा हो ॥२०४॥ उस समय कामी लोगोंके समूहमें स्त्रियोंके स्तनोपर लगे हुए लेपकी मदन करनेवाला और अत्यन्त निर्दय आलिंगन बढ रहा था तथा वेगपूर्वक केशोंकी पकडा-पकडी भी बढ रही थी ॥२०५॥ सभोगके बाद कामी लोगोंके नेत्र कुछ कुछ लाल और कल्पित हो गये थे, मुख कुछ कुछ गुलाबी अधरोसे युक्त हो गया था तथा उससे सी सी शब्द भी वार वार हो रहा था ॥२०६॥ सभोग क्रियाके गमाप्त होनेपर स्त्री और पुरुष दोनों ही उस शय्यापर सो गये जो कि फूलोंके समदसे सुगन्धित हो रही थी और जिसपर मुलकर अधोवस्त्र पडे हुए थे ॥२०७॥ जिन्हें होनेवाले युद्धके प्रारम्भमें बडा आनन्द आ रहा था ऐसे कितने ही शूरवीर योद्धाओंने इच्छा न रहते हुए भी अपनी प्यारी स्त्रियोंके आग्रहने सभोग सुगवा अनुभव किया था ॥२०८॥ कीर्तिरूपी स्त्री के गमागममें उत्पन्न होनेवाते मुखमें जिनकी इच्छा लग रही है ऐसे कितने ही मानी योद्धाओं ने अपनी प्यारी स्त्रियोंका आलिंगन स्वीकार नहीं किया था ॥२०९॥ 'जब हम लोग शत्रुके योद्धाओंका जीव तेंगे तभी प्रियाका उपभोग करेंगे अन्यथा नहीं' ऐसी प्रतिज्ञा कर कितने ही स्वाभाविक शूरवीर शय्याओंपर ही नहीं गये थे ॥२१०॥ बडी बडी इच्छाओंको धारण करनेवाते कितने ही उनम शूरवीरोंने बाणोंकी शय्यापर सोनेसे प्राप्त हुए भारी सुखवा सबल किया था इत्यादि ही उन्होंने प्यारी स्त्रियोंकी शय्यापर सोना अच्छा नहीं समझा था ॥२११॥ जिन्होंने अपनी स्त्रियोंके साथ अनेक शूरवीरोंकी कथाएँ कहना प्रारम्भ किया है ऐसे युद्धके

१ बहुरूपी । २ शक्ति । ३ नूतनविपुला । ४ रहा कभापे । भेदकमत्र मूलि ।
 ५ कल्पमुख । ६ ईदरुण । ७ मृतावगान । ८ नारमाभि-स०, द०, अ०, प०, ग०, द० । ९ प्रभाषापि ।

केन्द्रिद्रणरसासवनमनसोऽपि पुर स्थितम् । कान्तासद्गतरस स्वरं भेजु समरसा भग्न ॥२१३॥
 प्रहारकर्मसो दृष्टदशनच्छदनिष्ठुर । रतारम्भो रणारम्भनिबिद्यो न्यवेकि तं ॥२१४॥
 रतानुवर्तनं गाडिपरिरम्भं मुं तापं । मनासि कामिना ज ह्य कामिन्यस्ता स्मरानुता ॥२१५॥
 दृग्द्वेषोक्तिर्न सात्तर्हसिर्भे मनजल्पिते १ । अत्राण्डरपितंरचष्टे विवर्नरसमभूमि १ ॥२१६॥
 तासाभकृतकस्नेहगर्भे कृतककंतवं । रसिकोऽभूद् रतारम्भ सम्भोगान्नेषु कामिनाम् ॥२१७॥
 तेषा निवृचनारम्भमतिभूनिगत तदा । सद्रष्टुमसहृतीव पर्यपन्तं सा निता ॥२१८॥
 श्रल वत चिर रत्वा दम्पती ताम्ययो ययाम् । लम्बिते दुमुषो तम्यो इतोवापरदिग्दृषु ॥२१९॥
 विषटप्य रयाद्गाना मियुनानि मियोऽभुमान् । तापेन त हृत्नेव परितीऽभ्युदियाय स ॥२२०॥
 तादासीद् दिनारम्भो गत नंदा तनो लयम् । सहस्राशुविदा प्राचीं परिरेभे करोन्धरे ॥२२१॥
 किरणस्तदधरेव तम शार्करमुद्धतम् । तरणे वरणीय तु दिनप्रीपरिरम्भणम् ॥२२२॥
 बोक्त्रान्तादुरागण सम पत्राकरे श्रियम् । पुष्पाशुणाशुश्चन्द्रन् १ अमुष्पात्कीमुदीं श्रियम ॥२२३॥

मन्मुख हुए अन्य योद्धा योगेशो मवेरा होने हुए भी वह गत जान नहीं पड़ी थी । भावार्थ—
 क्याए कहते कहने रात्रि मनाप्त हो गई, मवेरा हो गया फिर भी उन्हें भागूम नहीं हुआ
 ॥२१०॥ युद्ध और मभोगमें एकमा आनन्द माननेवाले किन्ने ही योद्धाजोका चित्त यद्यपि
 युद्धके रसमें आमक्त हो रहा था तथापि उन्होंने मामने प्राप्त हुए स्त्रीमभोगमें रमका भी इच्छा-
 नुमार उपभोग किया था ॥२१३॥ उन योद्धाजोने रणके प्रारम्भके ममान ही मभोगका प्रारम्भ
 किया था, क्योंकि जिस प्रकार रणका प्रारम्भ परस्परके प्रहारो (चोटो) से कठोर होता है
 उसी प्रकार मभोगका प्रारम्भ भी परस्परके प्रहागे अर्थात् कचग्रह, नावधन आदिमे कठोर
 था, और जिस प्रकार रणका प्रारम्भ ओठ चत्रापे जानेमे निर्दय होना है उसी प्रकार मभोगका
 प्रारम्भ भी ओठोके चुम्बन आदिमे निर्दय था ॥२१४॥ काममे पीडित हुई किन्नी ही स्त्रिया
 पतिप्रीका गाड आलिंगन कर, चुम्बनके लिये उन्हें अपना मुग देकर और उनके माय मभोग
 कर उनका मन हरण कर रही थी ॥२१५॥ आधी नजरमे देखना, नीतर ही नीतर हसते
 हुए अव्यक्त शब्द कहना, अममयमें रम जाना, पडी तेजीने माय करवट बदलना मीहोने
 आडी तिरछी चलना और स्वाभाविक स्नेहमे भराहुआ मूठा छत्रकपट दिखाना आदि
 स्त्रियोके अनेक व्यापारोमे मभोगका एक दौर समाप्त हो जानेपर भी कामी पुरुषोका पुन
 मभोग प्रारम्भ हो रहा था और वह बडा ही रमीग था ॥२१६-२१७॥ उन समय वह
 रात्रि पौदनपुरके स्त्री-पुरुषोके उम बटे हुए मभोगको देग नहीं सगी थी स्मरिये ही मानो उलट
 पडी थी अर्थात् समाप्त हो चुनी थी—प्रातःकाऽने रूपमें यदृष्ट गई थी ॥२१८॥ जिसका
 चन्द्रमास्त्री मुग नीचेकी ओर लटक रहा है ऐसी पश्चिम दिशास्त्री स्त्री मानो यही कहनी
 हुई मडी थी कि हे स्त्री पुष्पो, रहने दो, बहुत देरतक प्रीडा कर चुने, नहीं तो तुम दोनो ही
 दुग पाओगे ॥२१९॥ मयने मायकाऽने समय चरदा-चरदियोरो परस्पर अगम-अगम
 किया था डी मतापमे व्याप्त हुआ मानो वह फिरमे उदय होने ग्या ॥२२०॥ इननेमें ही
 दिनका प्रारम्भ हुआ, रात्रिका अन्तार विगिन हो गया और मयने अपनी मिष्णोने ममूहये
 पूर्वदिशाका आलिंगन किया ॥२२१॥ रात्रिका अन्तार ती मयको गत्र किरणोने ही
 नष्ट हो गया था अत्र तो मयको केवट दिनस्त्री रमभोगा आलिंगन करना बाकी रह गया था
 ॥२२२॥ मय चरदियोने अनुरागने माय ही माय कमगोनी शोभा बडा रहा था और उदय

१ गाड परि स० । २ अल्पननारणं । ३ विपमभूमि । ४ प्रत्येक ग्या । ५ ताप्यना स० ।

६ विपमभूमि । ७ व्याप्त । ८ प्रातिद्वन्द्व पत्राग । ९ प्रातिद्वन्द्व । १० अगम-अगम स० ६० ।

तम कदाटमुद्घाटय द्विदमुखानि प्रकाशयन् । जपदुद्धाटिताक्षं वा व्यधादुष्णकरं करं ॥२२४॥
 प्रातस्तारामयोत्याय पद्माकरपरिग्रहम् । तन्वन् भानुं प्रतापेन जियोवोर्बुद्धिमन्ववात् ॥२२५॥
 सुकृष्ठा पेटुरत्युच्चं प्रभो प्राबोधिकास्तदा । स्वयं प्रदुद्धमप्येन प्रबोधेन युयुक्षव ॥२२६॥

हरिणीच्छन्दः

प्रशिधिरकरो लोकानन्दी जनैरभिनन्दितो
 बहुमतकर तेजस्तन्वन्नितोऽयमुदेष्यति ।
 नृवर जगतामुद्योताय त्वमप्युदयोचितम्
 विधिमनुसरन् शय्योत्सद्गम जहीहि मुधे श्रिय ॥२२७॥
 कतरकतमे^१ नाक्रान्तास्ते^२ बलंबलशालिनो
 भुजबलमिदं लोकं प्रायो न वेत्ति तवाल्पक ।
 भरतपतिना साह्यं युद्धे जयाय कृतोद्यमो
 नृपवर भवान् भूयाद भर्ता नृवीरजयश्रिय ॥२२८॥
 रविरविरत्नानभून्^३ जातानिवाधमगातिना
 तुहिनकणिकपातानाशु^४ प्रमूज्य करोत्करं ।
 प्रथमुद्यति प्राप्तानन्दैरितोऽम्बुजिनोवनं
 उदयसमये प्रत्युद्यत्ते^५ धृताघनिवाऽम्बुजं ॥२२९॥

होते ही चादनीकी शोभाको भी चुराता जाता था—नष्ट करता जाता था ॥२२३॥ सूर्यने अपने किरणरूपी हाथोंसे अन्धकाररूपी किवाड़ खोलकर दिखाओके मुह प्रकाशित कर दिये थे और समस्त जगत्के नेत्र खोल दिये थे ॥२२४॥ वह सूर्य विजयकी इच्छा करनेवाले किसी राजाकी वृत्तिका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार विजयकी इच्छा करनेवाला राजा बड़े सवरे उठकर अपने प्रतापसे पद्माकर अर्थात् लक्ष्मीका हाथ स्वीकार करता है उसी प्रकार सूर्य भी बड़े सवरे उदय होकर अपने प्रतापसे पद्माकर अर्थात् कमलके समहोके स्वीकार कर रहा था—अपने तेजसे उन्हें विवसित कर रहा था ॥२२५॥ यद्यपि उस समय महाराज बाह्यरूपे स्वयं जाग गये थे तथापि उन्हें जगानेका उद्योग करते हुए सुन्दर कण्ठवाले बदीजन जोर जोरसे नीचे लिखे हुए मगलपाठ पढ़ रहे थे ॥२२६॥ हे पुरुषोत्तम, जो लोगोको आनन्द देनेवाला है और योग जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा यह सूर्य सब लोगोको अच्छा लगनेवाले तेजसे शान्ता हुआ इधर पूर्व दिगामे उदय हो रहा है इसलिए आप भी जगत्को प्रकाशित और ऋषीको आनन्दित करनेके लिये मर्षादयके ममय होनेवाली योग्य क्रियाओको करते हुए नय्याका मध्यभाग छोड़िये ॥२२७॥ हे राजाजोमें धोष्ठ, आपकी सेनाजोने कितने कितने यज्ञागे यज्ञाशोष आश्रमण नहीं किया है, ये छोटे छोटे लोग प्राय आपकी भुजाजोने बलके जानने भी नहीं है । हे नरवीर, आपने भग्नेश्वरके साथ युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये उद्यम किया है इगन्त्रिये विजयऋषीके स्वामी आप ही हो ॥२२८॥ हे देव, बगीचेके बूझोंपर पड़ी हुई आगकी बड़ीको निरन्तर पढ़ने हुए आमुओके समान अपनी किरणोंसे समूहमें नीचे ही पोछता हुआ यह सूर्य उदय हो रहा है और उदय होने ममय ऐसा जा पड़ता है माता कमलनिवाके वर त्रिने आनन्द प्राप्त हो रहा है ऐसे कमलके द्वारा अर्घ्य लेकर उगकी

१ विक्रमवचन । २ अतिशयमान वाच । ३ अनुकरणानि म् । ४ प्रबोधन-द०, १० ।

५ दास-निकलद । ६ अनुच्छेदः । ७ क व । ८ न व । ९ नयुदाता-द० । १० नयाता-त०, ६० ।

अयमनुसरन् कोकः कान्तां तटान्तरशायिनीम्
 अघिरलगलद्वाप्यव्याजादिवोत्सुजर्ती शुचम् ।
 विशति विसिनीपत्रच्छन्नां सरोजसरस्तटीं
 सरसिजरजःकीर्णौ पक्षौ विधूय शनः शनः ॥२३०॥
 जरठविसिनीकन्दच्छायामुपस्तरलास्त्रिष-
 स्तुहिनकिरणो दिवपर्यन्तादयं प्रतिसंहरन् ।
 प्रनुकुमुदिनीपण्डं तन्वन् करानमृतश्च्युतो
 द्रढयति परिष्वङ्गासङ्गं वियोगभयादिव ॥२३१॥
 तिमिरकरिणां यूथं भित्वा तदसपरिप्लुता-
 निष तनुभयं विभृच्छ्रोणां निशाकरफेसरी ।
 यनमिव नभः शान्तवाग्स्ताद्रेर्गुहागहनान्यतः
 श्रयति नियतं 'निद्रासङ्गाद् विजिह्विततारकः' ॥२३२॥
 सरति सरसीतीरं हंगः सत्सारतकूजितं
 भटिति घटते कोकद्वन्द्वं 'विशापमिवाधुना ।
 पतति' पततां^१ वृन्दं विष्वक् द्रुमेषु कृतास्तं^२
 गतमिव जगत्प्रत्यापत्तिं^३ समुद्यतिं^४ भास्वति^५ ॥२३३॥
 उदयशिखरिप्रावश्रेणोसरोरुहरागिणी
 गगनजलधरातन्वाना^६ प्रवालवनश्रियम् ।
 दिग्भिभवदने सिन्दूरश्रीरलक्तकपाटला-
 प्रसरतितरां सन्ध्याद्योप्तिदिगाननमण्डनो^७ ॥२३४॥

अगवानी ही कर रहे हों ॥२२९॥ इधर देखिये, जो दूसरे किनारेपर सो रही है और निरन्तर
 बहते हुए आँसुओंके बहानेसे जो मानो शोक ही छोड़ रही है ऐसी अपनी स्त्री चकवीके पीछे
 पीछे जाता हुआ यह चकवा कमलोंके परागसे भरे हुए अपने दोनों पंखोंको भटककर कमलि-
 नियोंके पत्तोंसे ढके हुए कमलसरोवरके तटपर धीरे धीरे प्रवेश कर रहा है ॥२३०॥ यह
 चन्द्रमा पके हुए मृणालकी कान्तिको चुरानेवाली अपनी कान्तिको सब दिशाओंके अन्तसे
 खींच रहा है तथा अमृत बरसानेवाली अपनी किरणोंको प्रत्येक कुमुदिनियोंके समूहपर फैलाता
 हुआ वियोगके डरसे ही मानो उनके साथ आलिङ्गनके सम्बन्धको दृढ़ कर रहा है ॥२३१॥
 जो अन्धकाररूपी हाथियोंके समूहको भेदन कर उनके रक्तसे ही तर हुएके समान लाल लाल
 दिखनेवाले शरीर (मण्डल) को धारण कर रहा है तथा नीद आ जानेसे जिसकी नक्षत्ररूपी
 आँसुओंकी पुतलियां तिरोहित अथवा कुटिल हो रही हैं ऐसा यह चन्द्रमारूपी सिंह वनके समान
 आकाशको उल्लंघन कर अब अस्ताचलकी गुहारूप एकान्त स्थानका निश्चित रूपसे आश्रय
 ले रहा है ॥२३२॥ सूर्य उदय होते ही हंस, सारस पक्षियोंकी चोलीसे सहित सरोवरके किनारे
 पर जा रहे हे, चकवा चकवियोंके जोड़े परस्परमें इस प्रकार मिल रहे हैं मानो अब उनका
 घाप ही दूर हो गया हो, पक्षियोंके समूह चारों ओर दबदबते हुए वृक्षोंपर पड़ रहे हैं और
 यह जगत् फिरसे अपने पहले रूपको प्राप्त हुआ सा जान पड़ता है ॥२३३॥ उदयाचलकी
 चट्टानोंपर पैदा होनेवाले कमलोंके समान लाल तथा आकाशरूपी समुद्रमें मृगाके वनकी

१ अभिनिवेगान् । २ यतिवतारकः । अशः-नीनिनेति घ्वनिः । ३ विगमनापम् । आश्रो-
 मित्यर्थः । ४ आश्रयति । ५ पक्षिणाम् । ६ इगममन्ताद् घ्वनिः । इगारब्धं ल० । ७ पूर्वस्थितम् ।
 ८ उदिते मति । ९ आदिने । १० विद्रुमं । ११ मण्डपतीति मण्डनी ।

कमलमलिनी नाल' घेष्टु^१ यत् प्रविषस्वर
 गतमहणता बालाकंस्य प्रसारिभिरशुभिः ।
 परिगतमिव^२ प्रादुष्यद्भिः कर्णरनिर्लाचिषा
 नियतविपद धिग् व्यामूढि विवेकपदाद्रमुखीम् ॥२३५॥
 उपनततहनाधुन्वाना विलोलितपट्पदा
 कृतपरिचया वीचीचकै सरस्सु सरोहहाम् ।
 'रतिपरिमलानाकर्षन्त सरोजरजो जडा'^३
 प्रतिदिशममो मन्द वान्ति 'प्रगेतनमास्ता ॥२३६॥

मालिनीच्छन्दः

नृपवर जिनभर्तुर्मद्भगतैरेभिर्घिष्टं
 प्रकटितजयघोषैस्त्व विबुध्यस्व भूय ।
 भवति निखिलविजयप्रशान्तिर्वतस्ते
 रणशिरसि जयश्रीकामिनो कामुकस्य ॥२३७॥
 जयति दिविजनायं प्राप्तपूजद्विरहं
 धुतद्वुरितपरागो वीतरागोऽपराग^४ ।
 कृतनतिगतयज्व^५ प्रज्वलन्मौलिरत्न-
 'च्छुरितहचिररोचिमं-जरीपिञ्जररडध्रिः ॥२३८॥

शोभा फैलाती हुई, दिशारूपी हाथियोंके मुखपर सिन्दूरके समान दिखनेवाली, महावरके समान गुणवादी और दिशाओके मुखोंको अलङ्कृत करनेवाली यह प्रभात-सध्याकी कान्ति चारों ओर वही तेजोमें फैल रही है ॥२३४॥ हे नाथ, यह खिला हुआ कमल लाल सूर्यकी फैलने-वाली किरणोंमें लाल लाल हो रहा है और ऐसा मालूम होता है मानों अग्निके फैलते हुए फूलगो-में व्याप्त ही हो रहा हो तथा इसी भयसे यह भूमरी उसमें प्रवेश करनेके लिये समर्थ नहीं हो रही है । आचार्य कहते हैं कि जिनमें आपत्ति सदा निश्चित रहती है और जो विवेकसे पराङ्मुख हैं ऐसी सूर्यताको धिक्कार है ॥२३५॥ हे राजन्, जो उपवनके वृक्षोंको हिला रहा है, भूमरीको चञ्चल कर रहा है, जिसने कमलोंके तालाबमें लहरोके साथ परिचय प्राप्त किया है, जो स्त्री-गुरुओंके मभोगवी सुगन्धिकोंके साथ रहा है और जो कमलोंके परागसे भारी हो रहा है ऐसा यह प्रातःकालका वायु मय दिशाओंमें धीरे धीरे वह रहा है ॥२३६॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, जिनमें जय जयकी घोषणा प्रसन्न रूपमें की गई है ऐसे जिनन्द्र भगवान्के इन इष्ट भगवतोंमें आज फिरमें जग जाइये क्योंकि इन्हीं भगवतोंके द्वारा रणके अग्रभागमें विजयलक्ष्मी रूपी स्त्रीको चाहनेवाले आपसे नमस्त विधनोंकी अच्छी तरह शान्ति होगी ॥२३७॥
 अनेक इन्द्रोंके द्वारा जिनमें पूजाकी ऋद्धि प्राप्त हुई है, जिनमें पापरूपी धूल नष्ट कर डाली है, जो वीतराग हैं-जिनमें रणभेद नष्ट कर दिये हैं और नमस्कार करते हुए इन्द्रोंके देदीप्य-भात मुकुटके गणोंमें मिथी हुई गुन्दर विष्णोकी मजगोने जिनके चरण कुछ कुछ पीले हो

१ अगमयं । २ शब्देभ्यः । ३ व्याप्तम् । ४ मुरतगमये दग्गत्तयनुभुक्तवत्पूरीकणुंरदि-
 पत्तिगमन् । ५ मृदा । ६ प्रातःकाले भव । ७ वीतरागभेदः । ८ इन्द्र । ९ व्याप्त ।

जयति जयविलासं सूच्यते यस्य पौर्ण -

श्रितकृत्स्नरगर्भे निर्जितानन्दगमवर्त ।

१अनुपदयुगमहर्षेभ्यः शोकादिवाचि-

ऋतकृत्स्ननिनादे सोऽप्यमाद्यो जिनेन्द्र ॥२३६॥

जयति जितमनोभूर्भूरिधामा^२ स्वयम्भू

जिनपतिरपरराग^३ क्षालिताग परराग ।

सुरमुकुटविदद्वकोदूढ^४ पादाम्बुजश्री-

जगद^५ जगदगारप्रान्तविश्रान्तबोध ॥२४०॥

जयति मदनवाग्^६ रक्षतात्मापि योऽप्यात्^७

त्रिभुवनजयलक्ष्मीकाशिनीं यक्षसि स्वे ।

स्वयमवृत च भूक्तिप्रियसी य विरुपा^८

प्यनवम^९ सुखताति तन्वती सोऽप्यमहन् ॥२४१॥

जयति समरभेरीभं रवारावभीम

बलभरवि न कूजत्त्वण्डकोदण्डकाण्डम् ।

भ्रुकुटिकुटिलमास्य येन नाकारि बोच्चं

मनस्तिनरिपुघाते सोऽप्यमाद्यो जिनेश^{१०} ॥२४२॥

त जयति जिनराजो बुविभाव^{११} प्रभाव

प्रभुरभिभवितु य^{१२} नादाकन्मारवीर ।

दिविजविजयदूरा^{१३} ऋडगवैऽपि गर्व

न हृदि हृदिशायोऽघाद् यत्र^{१४} कुण्डास्त्रवीर्यं ॥२४३॥

रहे है ऐसे श्री अहंन्तदेव सदा जयवन्त रहें ॥२३८॥ जिनके भीतर भूमरोके समूह गुजार कर रहे है और उनसे जो ऐसे मालूम होने है मानी अपनी पराजयके शोकमें रोते हुए कामदेवके करण क्रन्दनकी ही प्रकट कर रहे हो तथा उसी हारे हुए कामदेवने अपने पुष्पम्पी शस्त्र भगवान्के चरण-युगलके सामने डाल रखे हो ऐसे पुष्पके समूहमें जिनके विजयकी लीला सूचित होती है वे प्रथम जिनेन्द्र श्री वृषभदेव जयवन्त हो ॥२३९॥ जिन्होंने कामदेवको जीत लिया है, जिनका तेज अपार है, जो स्वयम्भू है, जिनपति हैं, वीतराग हैं जिन्होंने पाप स्त्री धूलि धो डाली है जिनके चरणवन्दनेकी घोषा देव लोगोंने अपने मुकुटने अन्नभागपर धारण कर रखी है और जिनका ज्ञान लोक अलोक स्त्री घरके जन्त तक फैला हुआ है ऐसे श्री प्रथम जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहें ॥२४०॥ जिनकी आत्मा कामदेवके वागोमें घायल नहीं हुई है तथापि जिन्होंने तीनों लोकोंकी जयलक्ष्मीम्पी स्त्रीको अपने वस्त्र स्थरपर धारण किया है और मुक्तिम्पी स्त्रीने जिन्हें स्वयं वर बनाया इसके मिवाय वह मुक्तिम्पी स्त्री विरुपा अर्थात् वरुपा (पक्षमें आकाररहित) होकर भी जिनके लिये उद्वृष्ट भुग-भूमूहको बड़ा रही है वे अहंन्तदेव सदा जयवन्त हो ॥२४१॥ जिन्होंने जगद्विजयी कामदेवम्पी शत्रुको नष्ट करनेके लिये न तो युद्धके नगाडोके भयकर शत्रुमें भीषण तथा शत्रु वस्ते हुए धनुषोमें युक्त मेला ही रची और न अपना मुह ही भीहोमें टेढ़ा किया वे प्रथम जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहे ॥२४२॥ जो सब जगत्के स्वामी है, कामदेवम्पी योद्धा भी जिन्हें जीतने-

१ पदयुगमभीपे । २ बहलनज । ३ अपगनराग । ४ वनन्त्या घृत । ५ नाशालाभानयप्रान्त । ६ घान-
यति स्म । ७ अमृतापि, कुरूपगपीति ध्वनिः । ८ अग्रमिनमुरपरम्पगम् । ९ जिनेन्द्र ल०, द०। १० अश्विन्य ।
११ सनयो ना भूः । १२ अत्ययं । १३ सर्वने । १४ अ० । 'कुण्डा' मन्त्र त्रियामु' च' इत्यभिधानात् ।

जयति तदरशोको दुन्दुभि पुष्पवर्षं
 चमरिहसमेत विष्टर संहमुद्घम्^१ ।
 वचनमसममुच्चरातपत्र च तेज^२
 त्रिभुवनजयचिह्न यस्य^३ सार्वो जिनोऽसौ ॥२४४॥
 जयति जननतापच्छेदि यस्य क्रमाब्ज
 विपुलफलदमारान्ममनाकीन्द्रभृद्गम् ।
 समुपनतजनाना प्रीणन कल्पवृक्ष-
 स्थितिमतनुमहिम्ना सोऽज्वतात्तीर्यकृद् ॥२४५॥
 नृवर भरतराज्योऽप्युजितस्यास्य युष्म-
 द्भुजपरिघमुगस्य प्रान्नुयात्रैव कक्षाम्^४ ।
 भुजबलमिदमास्ता दृष्टिमात्रेऽपि कस्ते
 रणनिवकगतस्य स्यातुमीश क्षितीश ॥२४६॥
 तदलमधिप कालक्षेपयोगेन निद्रा
 जहिहि महति वृत्त्ये^५ जागृकस्त्वमेधि^६ ।
 सपदि च जयलक्ष्मीं प्राप्य भूयोऽपि देव
 जिनम^७ वनम भक्त्या शासितार जयाय ॥२४७॥

हरिणीच्छन्दः

इति समुचितं हृच्चं हृच्चाव^१ चंजं पमद्गतं
 सुघटितपदं भूयोऽमीभिर्जयाय विबोधित ।
 शयनममुच्चिद्रापायात् स पायिवकुञ्जर
 मुरगज इवोत्सद्ग गडगाप्रतीरभुव शनं ॥२४८॥

के लिये समर्थ नहीं हो सका तथा जिनके सामने, देवोको जीतनेसे जिसका अहंकार बढ गया है ऐमा वामदेव भी दस्य और सामर्थ्यके कुण्ठित हो जानेसे हृदयमे अहंकार धारण नहीं कर सका ऐमे अचिन्त्य प्रभावके धारक वे प्रसिद्ध जिनेन्द्रदेव सदा जयवन्त रहें ॥२४३॥ अशोक वृक्ष, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, चमर, उत्तम सिंहासन, अनुपम वचन, ऊचा छत्र और भामण्डल ये आठ प्रातिहार्य जिनके तीनों लोकोको जीतनेके चिह्न है वे सबका हित करनेवाले श्री वृषभ-जिनेन्द्र मदा जयवन्त रहें ॥२४४॥ जिनके चरणवमल जन्मरूप सतापवो नष्ट करनेवाले हैं, मगं मोक्ष आदि बडे बडे फल देनेवाले हैं, दूरमे नमस्कार करते हुए इन्द्र ही जिनके भुमर हैं और जो मरुगमें आये हुए लोकोको वरपवृक्षके समान सतुष्ट करनेवाले हैं ऐसे वे तीर्थ वर भगवान् मदा विजयी हो और अपने विशाल माहात्म्यसे तुम मक्की रक्षा करें ॥२४५॥ हे पुराणोत्तम, महागज भग्न भी आपके दोनों भुजारूपी अंगलदण्डोकी तुलना नहीं प्राप्त कर सकते हैं, अथवा भुजाशोका बल तो दूर रहे, जब आप युद्धके निवट जा पहुँचते हैं तब आपके देवने मात्रमे ही ऐमा कौन राजा है जो आपके सामने गडा रहनेके लिये समर्थ हो सके ॥२४६॥ हमलिये हे अपीस्वर, मगय व्यतीत करना व्यर्थ है, निद्रा छोडिये, हम महान् कार्यमें मदा जाग-रूक रहिये और शीघ्र ही विजयलक्ष्मीको पाकर अग्य मय जगह विजय प्राप्त करनेके लिये मदार सामन करनेवाले देशाधिदेव जिनेन्द्रदेवको भक्तिपूर्वक फिरमे नमस्कार कीजिये ॥२४७॥ हम प्रकार त्रिमं अच्छे अच्छे पदोकी योजना की गई है ऐसे अनेक प्रकारके

१ अक्षयम् । २ अभाषणम् । ३ सर्वहितः । ४ मगानाम् । ५ तत् कारणात् । ६ जागरणधीनः । ७ मगवत् । ८ मगवत् । ९ मगवत् ।

जयकरिषटावर्धं^१ रन्धन्^२ दिशो मवविह्वलं

^३बलपरिवृद्धं राएडश्रीदूदपराश्रम ।

^४नृपकतिपर्यारारादेत्य प्रणम्य दिक्षितो

भुजवलि युवा मेजे संन्यंभुव समरोचनाम् ॥२४६॥

इत्याप्ये भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टितक्षण

श्रीमहापुराणसप्तदशे कुमारबाहुवल्किरणोद्योग-

वर्णनं नाम पञ्चविंशत्तमं पर्व ॥ ३५ ॥

उत्कृष्ट तथा राजाओके योग्य, विजय करानेवाले भगल-भीतोके द्वारा बाहुवली महागज विजय प्राप्त करनेके लिये जगे और जिग प्रकार ऐरावन हाथी निद्रा छूट जानेमे गगाके किनारे-की भूमिका साथ धीरे धीरे छोडना है उसी प्रकार उन्होंने भी निद्रा छूट जानेमे धीरे धीरे गय्या-का माथ छोड दिया ॥२४८॥ मेनाके मुख्य मुख्य लोगोके द्वारा जिमकी शोभा बट रही है, जो स्वय विनाल पराश्रम धारण किये हुए है और कितने ही राजा लोग दूर दूरसे आकर प्रणाम करते हुए जिसे देखना चाहते है ऐसा वह तपण बाहुवली मदीन्मत विजयी हाथियोनी घटाओमे दिशाओको रोक्ता हुआ मेनाके माथ साथ युद्धके योग्य भूमिमें जा पहुँचा ॥२४९॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत तिरमठशालाकापुरपोका वर्णन करनेवाले महापुराणसप्तदशे कुमार बाहुवलीके युद्धका उद्योग वर्णन करनेवाला पंदीमवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

पटत्रिंशत्तमं पर्व

ध्रुव द्रुतवचश्चण्डभरुदाघातपूणित । प्रचचाल बलाम्भोधि जिष्णोराहृध्य रोदसी^१ ॥१॥
 सादधामिन्नयो^२ महूर्भये तदा धीर प्रदध्वन् । यद्ववानं साध्वस भेजु खड्गव्यघ्रा नभश्चरा ॥२॥
 बलानि प्रविभक्तानि^३ निधीशस्य विनिर्घुपु । पुर पादातमश्वीयम् आरादाराच्च^४ हास्तिकम् ॥३॥
 रथकट्यापरिक्षेपो^५ बलस्योभयपक्षयो^६ । अघत पूळतश्चासौद् ऊर्ध्वं च खचरामरा ॥४॥
 घटङ्गबतासामग्र्या सम्पन्न पार्थिवैरमा^७ । प्रतस्ये भरताघीशो निजानुजजिगीवया ॥५॥
 महान् गजघटावग्धो^८ रेजे सजयकेतन । गिरीणामिव सघात सञ्चारी सह शाखिभि^९ ॥६॥
 श्योतन्मदजलासारसिक्त^{१०} भूमिमदद्विपं । प्रतस्ये रुद्रदिकृच्छ्रं शैलेरिव सनिभेरं ॥७॥
 जयस्तम्बरमा रेजु तुङ्गा शूद्रपारिताड्गका । सान्द्रसन्ध्यातपक्रान्ता चलन्त इव भूधरा ॥८॥
 चमूतद्रगजा रेजु सज्जा^{११} सजयकेतना । कुलशैला इवायाता प्रभो स्वबलदर्शन^{१२} ॥९॥
 गजस्कन्ध^{१३} गता रेजु धूमता विधृताङ्कशा । प्रदीप्तोद्भटनेपथ्या^{१४} दर्पा तम्पिण्डता इव ॥१०॥

अथानन्तर—द्रुतके वचनरूपी तेज वायुके आघातसे प्रेरित हुआ चक्रवर्तीका सेना
 रूपी समुद्र आकाश और पृथिवीको रोकता हुआ चलने लगा ॥१॥ उस समय युद्धकी सूचना
 करनेवाले बड़े बड़े नगाडे गम्भीर शब्दोंसे बज रहे थे और उनके शब्दोंसे तलवार उठानेमें
 व्यग्र हुए विद्याधर भयभीत हो रहे थे ॥२॥ चक्रवर्तीकी सेनाएँ अलग अलग विभागोंमें विभक्त
 होकर चर रही थी, सबसे आगे पैदल सैनिकोंका समूह था, उससे कुछ दूरपर घोड़ोंका समूह
 था और उससे कुछ दूर हटकर हाथियोंका समूह था ॥३॥ सेनाके दोनो ओर रथोंके समूह
 थे तथा आगे पीछे और ऊपर विद्याधर तथा देव चल रहे थे ॥४॥ इस प्रकार छह प्रकारकी
 सेना सामग्रीमें सम्पन्न हुए महाराज भरनेश्वरने अपने छोटे भाईको जीतनेकी इच्छासे अनेक
 राजाओंके साथ प्रस्थान किया ॥५॥ उस समय विजय-पतावाओसे सहित बड़े बड़े हाथियों-
 के समूह एमें सुशोभित हो रहे थे मानो वृक्षोंके साथ साथ चलते हुए पर्वतोंके समूह ही हो ॥६॥
 जिनमें भरने हुए मदजलकी वृष्टि में समस्त भूमि सीची गई है और जिन्होंने
 सब दिशाएँ रोक ली है एमें मदोन्मत्त हाथियोंके साथ चक्रवर्ती भरत चल रहे थे, उस समय
 ये हाथी एमें गहूम होने से मानो भरनेमें गहृत पर्वत ही हो ॥७॥ जिनके समस्त शरीर-
 पर गूनाएँ किया गया हो और जा बहुत उंचे हैं एमें वे विजयके हाथी ऐसे सुशोभित होते थे
 मानो सध्यानाश्री मयन धूमने व्याप्त हुए चक्र-फिरने पर्वत ही हो ॥८॥ जो सब प्रकारसे
 मज्जाके मने हैं और जिहास विजय-पतावाओं पर रा रही हैं एमें वे सेनाके हाथी इम प्रकार सुशो-
 भित हो रहे थे मानो महाराज भरतना अपना बर दिग्गानके लिये गुणाचर ही आये हो ॥९॥
 जिन्होंने देशीयमान तथा वीर्यगवके योग्य वेग धारण किया है, और जिन्होंने अमुका हाथमें
 ल रखा है एमें हाथियोंके कंधापर बैठे हुए मनायन योग एमें जान पड़ते थे मानो एत जगह

१ साध्वसिद्धी । २ घटङ्गव । ३ सुवधानं । ४ आमुधस्वीकारव्याप्तता ।
 ५ सचक्रमहाराज प्रविभक्तानि । ६ शर्पाय । ७ रथगमुञ्जतिरवृत्ति । ८ उभयपार्श्वव्यापित्वर्थं, मीन
 दन्तवत्पदा, मय वारण पुर्य प्रजाता भीया । चलनत जावता धैतनिका । ९ मत् । १० आगमुह
 ११ वृत् । १२ मत् । १३ धम्वस्य । धारागगात आगार । १४ मत्पदीहता । १५ त्रिधतना ।
 १६ मत्पदीहता । १७ धीमत्सामह्वरग ।

कौशेयर्कनिशाता'प्रधाराय सादिनो' वभु । मूर्त्तानुय भुजोपाप्रलनर्कौ' स्व पराक्रमं ॥११॥
 पवित्र शरनाराच'सन्धुतेपुषयो' वभु । जनदमाजा महाशाखा कोटरस्यैरिवाहिनि ॥१२॥
 रथिनो रथकटघासु सम्भूतोचितहेतय । मद्ग्रामवार्धि'तरणे प्रस्थिता नाविका' इव ॥१३॥
 मडा हस्त्यरस' भंज सशिरस्त्रतनुजका' । समुत्पातनिशानासिपाणय पादरक्षणो' ॥१४॥
 पुस्त्यु' स्फुरदशयोया मडा स इतिना' परे । श्रौत्यानिका' इवानीला सोन्कामेषा समुत्थिता ॥१५॥
 करवाल करालाप्र करे कृत्वा नटोऽपर । पदयन् मुन्वरस तस्मिन् 'स्वशोषे परिजतिवान्' ॥१६॥
 कराप्रविद्युत सङ्ग तुलयन् कोऽप्यभाद् भर । 'प्रमिमिन्सुरिवानेन' स्वामिसत्कारगोरवम् ॥१७॥
 महामुकुटवद्वाना साधनानि' प्रतस्थिरे । पादानहास्तिवाक्यद्वीयरथकटघापरिच्छदं' ॥१८॥
 वभुमंकुटवद्वान्ते रत्नाशूदप्रभौतय । सत्तोलालोकापातानाम् प्रशा' भुवविवागना ॥१९॥
 परिवेष्टप्र निरैयन्' पाविवा पृथिवीद्वरम् । दूरान् स्ववतसामश्रीं दर्शयन्तो यथाययम् ॥२०॥
 'प्रत्यप्रसतराम्ममश्रवोद्भान्तिचेतस' । 'मटोरादवासयामासु नडा 'प्रत्याप्यपोरितं' ॥२१॥

इकट्टा हुआ अभिमान ही हो ॥१०॥ घुडमवार लोग, जिनकी आगेकी धारका अग्रभाग बहुत तेज है ऐसी तलवारोंमें ऐसे जान पड़ते थे मानो उनके पराक्रम ही मूर्तिमान् होकर उनकी भुजाओंके अग्रभाग अर्थात् हाथोंमें आ लगे हों ॥११॥ जिनके तरकम अनेक प्रकारके घाणोंसे भरे हुए हैं ऐसे घनुर्धारी लोग इस प्रकार जान पड़ते थे मानो बड़ी बड़ी शालावाले वनके वृक्ष कोटरोंमें रहनेवाले सर्पोंमें ही सुशोभित हो रहे हों ॥१२॥ जिन्होंने रथोंके समूहमें युद्ध के योग्य सब यन्त्र भर लिये हैं ऐसे रथोंपर बैठनेवाले योद्धा लोग इस प्रकार चल रहे थे मानो युद्धरूपी समुद्रको पार करनेके लिये नाव चलानेवाले गेवटिया ही हों ॥१३॥ जिन्होंने शिरपर टोप और शरीरपर कवच धारण किया है तथा हाथमें पैनी तलवार ऊँची उठा रक्की है ऐसे जिनने ही योद्धा लोग हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेके लिये उनके नामने चढ़ रहे थे ॥१४॥ जिनके हाथोंमें यन्त्रोंके समूह चमक रहे हैं और जो लोहेके कवच पहने हुए हैं ऐसे जिनने ही योद्धा ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे मानो किसी उत्पातको मूचिन् करनेवाले उत्कामहित बाघे बाघे में ही उठ रहे हों ॥१५॥ कोई अन्य योद्धा पैनी धारवागी तन्वात्र हाथमें लेकर उसमें अपने मुखका रङ्ग देखना हुआ अपने पराक्रमका परिज्ञान प्राप्त कर रहा था ॥१६॥ कोई अन्य योद्धा हाथके अग्र भागपर रक्की हुई तन्वात्रको तोटना हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वह उससे अपने स्वामीके आदर-सत्कारका गौरव ही तालना चाहता हो ॥१७॥ पैदल सेना, हाथियोंके समूह, घुडमवार और रथोंके समूह आदि सामग्रीके साथ साथ महामुकुटवद्व राजाओंकी सेनाएँ भी चर रही थी ॥१८॥ रत्नोंकी विरलतामें जिनके मुकुट ऊँचे उठ रहे हैं ऐसे वे मुकुटमय राजा इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो लीला महिन् लोकपात्रोंके अंग ही पृथ्वीपर आ गये हों ॥१९॥ अनेक राजा लोग महागज भग्नको घेरकर चढ़ रहे थे और दूरसे ही अपनी सेनागी सामग्री यथायोग्यरूपमें दिगलाने जाते थे ॥२०॥ नवीन

१ निमित्त । २ अस्वागता । ३ अत्रागहन्तु मादिन' इत्यभिधानात् । ४ इव । ५ प्रश्वे'नाम्नु नागका । ६ इमुधि' नृपीर । ७ नृगोसामट'नृपीरनियट'न इपुधिद्वया । ८ नृपानि'अभिधानात् । ९ मन्मन्पुषय'सं, ६०, ४०, ५०, ६०, ६० । १० ममरसमुद्रातरणार्थम् । ११ क'पाणम् । १२ 'क'पाणम्नु नाविक' इत्यभिधानात् । १३ हस्तिमुग्धम् । १४ कवच । १५ पादरणापम् । १६ स्फुरन्नि'ग्म । १७ कवचिता । १८ मण्डो वमित्त' मग्ना दगिता' स्फुरदश्व'क' इत्यभिधानात् । १९ उजान'रुच । २० म्य' शेषम' सं । २१ वृषभे । २२ प्रनामुमिच्छ । २३ प्रतिमिन्सु-दं, सं, ५०, ६०, ४०, ६० । २४ मन्मन् म' । २५ वतानि । २६ परिचर । २७ वतिन्ना'क'नासा इत्यर्थे । २८ निययु । २९ नृपत'ना'भग्नश्व'क'मुकुट-मान'पया' पाया' नागा । ३० मन्पापित । ३१ विरल'त् । ३२ धारवा' ।

भूरेणवस्तदाश्वीयखुरोद्धृता खलङ्घिनः । क्षणविघ्नितसंप्रेक्षा प्रचदुरमराङ्गना ॥२३॥
 रजसन्तमसे रुद्धद्विचक्रं व्योमलङ्घिनि । चक्रोद्योतो नृणा चक्रे दश स्वविषयोन्मुखी ॥२३॥
 समुद्भट्टरसप्राप्य भटालापर्महोश्वरा । प्रयाणके धृति प्रापु जनजल्परेपीदश ॥२४॥
 रणभूमिं प्रसाध्यादात् स्थितो बाहुवली नृप । अथ च नृपशार्दूलं प्रस्थितो निनिघात्रण ॥२५॥
 न विघ्न किन्तु खल्वत्र स्याद् भाजोरनयोरिति । प्रायो न शान्तये पुढम् एनयोरनुजोविनाम् ॥२६॥
 विरूपमिदं पुढम् आरब्ध भरतेक्षिना । ऐश्वर्यमददुर्वारा स्वैरिण प्रभवोऽयवा ॥२७॥
 इमे सकुटुब्धा किं नैनी वारयितुं क्षमा । येऽनी समप्रसाप्तप्रघा सद्ग्रामयितुमागता ॥२८॥
 ग्रहो महानुभावोऽयं कुमारो भुजविक्रमो । क्रुद्धे चक्रघरेऽय्येव यो योद्धु सम्मूल स्थित ॥२९॥
 प्रयथा तन्मभूयस्त्वै न जयाङ्ग मनस्विन । ननु सिहो जपत्येके सहितानपि दन्तिन ॥३०॥
 अथ च चक्रभृद् देवो नेष्ट सामान्यमानुष । योऽभिरक्ष्य सहस्रेण प्रणश्राणा मुधाभुजाम् ॥३१॥
 तन्मा भूदन्तयोर्पुढ जनसदक्षयकारणम् । कुर्वन्तु देवता शान्ति यदि सन्निहिता इमा ॥३२॥
 इति माध्यस्थ्यवृत्त्येके जना श्लाघ्य वचो जगु । पक्षपातहता केचित् स्वपक्षोत्कव्यं पुञ्जगु ॥३३॥

युद्धका प्रारम्भ सुनकर जिनके चित्त व्याकुल हो रहे हैं ऐसी स्त्रियोंको वीर योद्धा बड़ी धीरता-
 के साथ समझाकर आश्वासन दे रहे थे ॥२१॥ उस समय घोड़ोंके खुरोंसे उठी हुई
 और आकाशको उल्लखन करनेवाली पृथिवीकी धूल क्षण भरके लिये देवागनाओंके देखनेमें
 भी बाधा कर रही थी ॥२२॥ समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले और आकाशको उल्लखन
 करनेवाले उस धूलसे उत्पन्न हुए अन्धकारम चक्ररत्नका प्रकाश ही मनुष्योंके नेत्रोंको अपना
 अपना विषय ग्रहण करनेके सम्मुख कर रहा था ॥२३॥ राजा लोग रास्तेमें अत्यन्त उत्कट
 वीररससे भरे हुए योद्धाओंके परस्परके वार्तागपसे तथा इमी प्रकारके अन्य लोगोंकी बात-
 चोतमें ही उत्साहित हो रहे थे ॥२४॥ उधर राजा बाहुवली रणभूमिको दूरसे ही युद्धके योग्य
 वनार ठहरे हुए हैं और इधर राजाओंमें सिहके समान तेजस्वी महाराज भरत भी यन्त्रणा
 रहित (उच्छृङ्खल) होकर उनके सम्मुख जा रहे हैं ॥२५॥ नहीं मालूम इस युद्धमें इन दोनों
 भाइयोंका क्या होगा ? प्राय कर इनका यह युद्ध सेवकोंकी शान्तिके लिये नहीं है । भावार्थ-
 इस युद्धमें नेवकोंका क्याण दिखाई नहीं देता है ॥२६॥ भरतेश्वरने यह युद्ध बहुत ही अयोग्य
 प्रारम्भ किया है सो ठीक ही है क्योंकि जो ऐश्वर्यके मदसे रोकने नहीं जा सकते ऐसे प्रभु लोग
 म्ब्रेच्छाचारी ही होने हैं ॥२७॥ जो ये मुकुटबद्ध राजा समस्त सामग्रीके साथ युद्ध करनेके
 लिये जाये हुए हैं वे क्या इन दोनोंको नहीं रोक सकते हैं ? ॥२८॥ अहो, भुजाओंका परा-
 प्रम रगनेवाग यह कुमार बाहुवली भी महाप्रतापी है जो कि चक्रवर्तियोंके बुधित होनेपर भी
 इस प्रकार युद्धके लिये सम्मुख तडा हुआ है ॥२९॥ अथवा शूरवीर लोगोंको सामग्रीकी
 अधिकता विजयका कारण नहीं है क्योंकि एक ही सिंह भुण्डके भुण्ड हाथियोंको जीत लेता है
 ॥३०॥ नमस्कार करने हुए राजा तो देन जिनकी रक्षा करते हैं ऐसा यह चक्रको धारण करने-
 वाग भरत भी माधारण पुत्र नहीं है ॥३१॥ इसलिये जो अनेक लोगोंके विनाशका कारण
 है ऐसा इन दोनोंका युद्ध नहीं ही नो अच्छा है, यदि देव लोग यहा समीपमें ही तो वे इस युद्धकी
 शान्ति करें ॥३२॥ इस प्रकार कितने ही लोग मध्यस्थ भावसे प्रवसनीय वचन कह रहे थे

१ आकाशवदपिन । २ आनासना । ३ योऽय्यवारे । ४ वीररत्नवदुने । ५ अतच्छृता ।
 ६ कर्त्तव्य । ७ नृपथेष्ठ भरत इत्यर्थ । ८ निरुद्धरा । ९ भगनाम् । १० वदम् । ११ -योपन व० ।
 १२ वदत्तवर्त्तुम् । १३ तपति । १४ गतावाग्यम् । १५ मयुजाम् । १६ देवाताम् । १७ हा-
 वाग्यम् । १८ अथे ।

एव' प्रायेर्ननाचारं महोनाया विनोदिता । द्रुत 'प्रापुस्तमुद्देशं यत्र धोराप्रगोरगो' ॥३४॥
 दोर्दपं वि'गणव्यास्य दुर्विचट्टघणमरातिभि । प्रंसु प्रतिभटा प्राय 'तस्मिन्प्रायप्रनप्रियो' ॥३५॥
 इत्यभ्यर्थे बले जित्तो' बल भुजबलीतिन । जनमध्यैरिवास्तुभ्यद धीरध्याननिरुद्धदिव् ॥३६॥
 प्रयोभयवले धीरा' सप्रद्वगतवाजय' । बलान्यारचयाप्राप्तुं ध्र'पोज्य प्रयुक्तपा' ॥३७॥
 तावच्च मन्त्रिणो मूष्या सप्रधायांवरप्रिति । शातये नैनधोयुद्ध' प्रहया धूरयोरेव ॥३८॥
 चरणागन्धरावेतो नानयो काचन शक्ति । शयो जनस्य पक्षस्य' स्याज्जेनानेव' जम्भिन ॥३९॥
 इति निश्चित्य मन्त्रता मोत्या भूपो जनक्षयान् । तपोरनुमतिं सत्त्वा धर्म्यं रणधधोपयन् ॥४०॥
 श्रकारणरथेनान जनमहारकारिणा । महानेव'मधमश्च गरीयाश्च यदोवय' ॥४१॥
 यलोन्त्यपरोक्षेयम् ध्रययाध्वपपयते' । 'तदस्तु युवयोरेव मिया युद्ध विघातवम् ॥४२॥
 भूमद्वयेन' विना मद्ग सोद्वयो युवयोरेव । विनयश्च विनोसेवात्' धर्मो ह्येव सनाभिषु ॥४३॥
 इत्युषतो पार्थिव सर्वे सोपरोधश्च मन्त्रिभि । तो कृच्छ्यात् प्रत्यपत्साना' तांश्च युद्धमुदती ॥४४॥

और विनये ही पक्षानमे प्रेरित होकर अपने ही पक्षकी प्रथमा कर रहे थे ॥३३॥ प्राय योगोके डभी प्रकारके बचनोमे मन बहूतने हुए राजा लोग शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ त्रीगुणितोमणि कुमार जाह्नवीके पहलेमे विराजमान था ॥३४॥ जाह्नवीके समीप पहुँचने ही भग्नके योद्धा, जिमना शत्रु कभी उत्पन्न नहीं कर सकते ऐसा जाह्नवीकी भुजाओंका दर्प देखकर प्राय कुछ डर गये ॥३५॥ उस प्रकार चक्रवर्ती भग्नकी सेनाके समीप पहुँचनेपर धीरोके शत्रोमे दिशाओंकी भगनेवागी जाह्नवीकी सेना समुद्रके जलके समान धामको प्राप्त हुई ॥३६॥

अथानन्तर—शत्रो ही सेनाओंमे जो धूरशीर लोग थे वे परम्पर युद्ध करनेकी इच्छामे अपने हाथी घोड़े आदि मजाकर सेनाकी रचना करने लगे—अनेक प्रकारके जूह आदि बनाने लगे ॥३७॥ इननेमे ही दोनो ओरके मुख्य मुख्य मंत्री विचार कर उन प्रकार बहने लगे कि धूरग्रहोके समान इन दोनोका युद्ध शान्तिके लिये नहीं है ॥३८॥ क्योंकि ये दोनो ही चर्म गरीबी हैं, इनकी कुछ भी धनि नहीं होगी, केवल इनके युद्धके रहानेमे दोनो ही पक्षके लोगोंका धय होगा ॥३९॥ इस प्रकार निश्चय कर तथा नागी मनुष्योंके महाग्ने डरकर मन्त्रियोने दोनोकी जाना लेकर धर्मयुद्ध करनेकी घोषणा कर दी ॥४०॥ उन्होंने कहा कि मनुष्योंका महार करनेवाके इस कारणहोत युद्धमे कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनके करनेमे बड़ा भारी अपर्ध होगा और यशवा भी बहुत विघान होगा ॥४१॥ यह करने उत्तरपंकी परीक्षा अथ प्रकारमे भी ही मक्ती है इमलिये तुम दोनोका ही परम्पर हीन प्रवाग्वा युद्ध हो ॥४२॥ इस युद्धमे जो पराजय हो वह तुम दोनोको भी'ये चटाये जिना ही—मन्त्र्यागे महत्त कर जेना चाहिये तथा जो विजय हो वह भी अहंकारके जिना तुम दोनोको महत्त करना चाहिये क्योंकि भाई भाइयोका यही धर्म है ॥४३॥ इस प्रकार जब समस्त राजाओं और मन्त्रियोने घटे जाग्रहके साथ एक तत्र गये वही कठिनतामे उद्भूत रूप उन दोनो भाइयोने वैशा यत् रग्ना श्रीराज

जलदृष्टिनिपुण्यैः^१ योजयोजयमाप्स्यति । स जयश्रीविलासिषा पतिरस्तु स्वयवृत् ॥४५॥
 इत्युदघोष्य कृतानन्दम् श्रानन्दिन्या गभीरया । भर्षा चमप्रयानाना 'न्ययुरेव' सन्निधिम् ॥४६॥
 नृषा भरतमृष्ट्या ये तानेकत्र न्यवेशयत । ये बाहुबलिगृह्याद्यच्च पायिवास्तानतोऽप्यत ॥४७॥
 मध्ये महीभृता तेषा रंजनुस्तौ नृषी स्थितौ । गतो नियमनोलादौ कृतश्चिद्विषे' सन्निधिम् ॥४८॥
 'तयोर्भुजबली रंजे गरुडप्रावसच्छ्रवि । जम्बूद्वम इवोत्तुङ्ग सभृदगोशित'मूद्भज ॥४९॥
 रराज राजराजोऽपि तिरौदोदप्रविग्रह । सचूलिक इवाद्रो'त्र तप्तचानीकरच्छ्रवि ॥५०॥
 दधद्वोरतरा दृष्टिं निनिमेपामनुदभटा^२ । दृष्टियुद्धे जय प्राप प्रसभ' भुजविभ्रमी ॥५१॥
 विनिवार्य कृतक्षोभम् श्रनिवार्य बलाण्वम् । मर्यादया यवीवास' जयेनायोजयनृषा ॥५२॥
 सरसोजलमागादौ^३ जलयुद्धे मरोद्धतौ । दिगजविष तौ दीर्घं घ्यात्यु'^४क्षीमामनुभुंजे ॥५३॥
 प्रधिवक्षस्तर जिष्णो रंजुरच्छा जलच्छटा । शैलभर्तुरिवोऽसदगतदङ्गिन्य ^५'स्रुतयोम्भसाम् ॥५४॥
 जलोयो भरतेतेन मुक्तो दोर्बलशालिन । ^६'प्राशोरप्राप्य दूरं ग मुञ्जमारालु समापतत् ॥५५॥

किया ॥४४॥ 'इन दोनोंके बीच जल युद्ध, दृष्टि युद्ध और बाहु युद्धमे जो विजय प्राप्त करेगा वही विजय-लक्ष्मीका स्वय स्वीकार किया हुआ पति हो, इस प्रकार सबको आनन्द देनेवाली गभीर भेरियोके द्वारा जिसमें सबको हर्ष हो इस रीतिसे घोषणा कर मनी लोगोंने सेनाके मुख्य मुख्य पुरुषोको एक जगह इकट्ठा किया ॥४५-४६॥ जो भरतके पक्षवाले राजा थे उन्हें एक ओर बैठाया और जो बाहुबलीके पक्षके थे उन्हें दूसरी ओर बैठाया ॥४७॥ उन सब राजाओके, बीचमें बैठे हुए भरत और बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किसी कारणसे निपथ और नीलपर्वत ही पास पास आ गये हो ॥४८॥ उन दोनोंमें नीलमणिके समान सुन्दर छविको धारण करता हुआ और काले काले केशोसे सुशोभित कुमार बाहुबली ऐसा जान पड़ता था मानो भूमरोसे सहित ऊँचा जम्बूवृक्ष ही हो ॥४९॥ इसी प्रकार मुकुटसे जिसका शरीर ऊँचा हो रहा है और जो तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिको धारण करनेवाला है ऐसा राज-राजेश्वर भरत भी इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो चूलिकासहित गिरिराज-सुमेध ही हो ॥५०॥ अत्यन्त धीर तथा पल्लवके सचारसे रहित शान्त दृष्टिको धारण करते हुए कुमार बाहुबलीने दृष्टियुद्धमें बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर ली ॥५१॥ हर्षसे क्षोभ मचाते हुए बाहुबलीके दुनिवार सेनास्त्री समुद्रको रोककर राजाओने वडी मर्यादाके साथ कुमार बाहुबलीको विजयमे युक्त किया अर्थात् दृष्टियुद्धमे उनकी विजय स्वीकार की ॥५२॥ तदनन्तर मरोन्मत्त दिगजोके समान अभिमानसे उद्वत हुए वे दोनों भाई जलयुद्ध भरतेके गिये मरोवरके जल्पे प्रविष्ट हुए और अपनी लम्बी लम्बी भुजाओसे एक दूसरेपर पानी उछालने लगे ॥५३॥ चक्रवर्ती भरतके वक्षस्थलपर बाहुबलीके द्वारा छोडी हुई जल्दी उज्ज्वल छटा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सुमेरुपर्वतके मध्यभागमें जलवा प्रवाह ही पड़ रहा हो ॥५४॥ भरतेश्वरके द्वारा छोडा हुआ जल्का प्रवाह अत्यन्त ऊँचे बाहुबलीके मुक्त को दूर छोडकर दूरसे ही नीचे जा पडा ॥ भावार्थ-भरतेश्वरने भी बाहुबलीके ऊपर पानी फेंका था परन्तु बाहुबलीके ऊँचे होनेके कारण वह पानी उनके मुखतक नहो पहुँच सका, दूरसे ही नीचे जा पडा । भरतका शरीर पाँचमी धनुष ऊँचा था और बाहुबलीका पाँचसौ पर्व्वीय

^१ अत्रयुद्धनिपुण्यैः । 'नियुद्ध वायुद्धे' इत्यभिधानात् । २ धनु । ३ वारणात् ।
 ४ मर्यादावर्ष । ५ मर्यादा । ६ नीलपर्व । 'निल इत्य नित भूजे' इति विश्वकोषतः ।
 ७ गान्धाम । ८ घोषम् । ९ धनुषम् । 'जययत्रे' इत्यु वशिष्टपवीयोऽवरजाज्जा' इत्यभिधानात् ।
 १० शिवो । ११ पारपर अयमचन धनुः । १२ प्रवाहा । १३ उन्नतम् ।

भरतेश किलानापि न यदाप जप तदा । बलैर्भुजवलीशस्य भूपोऽप्युद्योपितो जय ॥५६॥
 निवृद्धमय^१ सट्टपीयं^२ नृसिंहो सिंहविभ्रमो । धीरावाविष्कृतस्पृहो^३ तो रडगमवतेरतु^४ ॥५७॥
 बलितास्फोटितंश्चित्रं^५ वरजैर्न्यधोलितं । दोर्वपंशालिनोरासोद बाहुयुद्ध तयोर्मेहत् ॥५८॥
 ज्वलन्मुकुटभाचक्रो हेलयोद्भ्रामितोऽमुना । लीलामलातचक्रस्य^६ चक्रो भेजे क्षण भ्रमन् ॥५९॥
 यवीयान्^७ नृपशार्दूल ज्यायास^८ जितभारतम् । जित्वाऽपि नानयद् भूमिं प्रभुरित्येव गौरवत् ॥६०॥
 भुजोपरोचमुद्धस्य स त घत्ते स्म दोर्वली । हिमाद्रिमिव नीलाद्रि महाकटकभास्वरम् ॥६१॥
 तदा कलकलश्चक्रे पश्येर्भुजवली शिव । नृपंभरतगृह्यंतु सज्जया नमित शिर ॥६२॥
 समक्षमोक्षमाणेषु पार्थिवेषुभयेष्वपि । परा विमानता^९ प्राप्य ययो चक्रो बिलकृताम्^{१०} ॥६३॥
 बद्धभ्रुकुटिश्चान्तश्चिरादणलोचन । क्षण दुरीक्षता भेजे चक्रो प्रज्वलित क्रुधा ॥६४॥
 क्रोधाग्धेन तदा द्युये कर्तुमस्य पराजयम् । चक्रमुत्कृत्तनि^{११} शेषद्विपच्चक्र निधीशिता ॥६५॥
 प्राध्याननान्रमेत्यारोद् भ्रव^{१२} कृत्वा प्रदक्षिणाम् । अचभ्यस्त्यारस्य^{१३} पर्यन्त^{१४} तस्यो मन्दीकृतातपन् ॥६६॥

धनुष । इसलिये बाहुवलीके द्वारा छोडा हुआ पानी भरतके मुख तथा वक्ष स्थलपर पडता था परन्तु भरतके द्वारा छोडा हुआ पानी बीचमे ही रुह जाता था-बाहुवलीके मुखतक नही पहुँच पाता था ॥५५॥ इस प्रकार जब भरतेश्वरने इस जलयुद्धमे भी विजय प्राप्त नही की तब बाहुवलीकी सेनाओने फिरमे अपनी विजयकी घोषणा कर दी ॥५६॥ अथानन्तर सिंहके समान पराक्रमको धारण करनेवाले धीरवीर तथा परस्पर स्पर्धा करनेवाले वे दोनों नरशार्दूल-श्रेष्ठ पुरुष बाहुयुद्धकी प्रतिज्ञा कर रगभूमिमें आ उतरे ॥५७॥ अपनी अपनी भुजाओके अहंकारसे सुशोभित उन दोनों भाइयोका, अनेक प्रकारसे हाथ हिलाने, ताल टोकने, पैतरा बदलने और भुजाओके व्यायाम आदिसे बडा भारी बाहु युद्ध (मल्ल युद्ध) हुआ ॥५८॥ जिसके मुकुटकी दीपिका सन्ह अतिशय देदीप्यमान हो रहा है ऐसे भरतको बाहुवलीने लीला मानमें ही घुमा दिया और उस समय धूमते हुए चक्रवर्तिने क्षण भरके लिये अलातचक्रकी लीला धारण की थी ॥५९॥ बाहुवलीने राजाओमें श्रेष्ठ, बडे तथा भरत क्षेत्रको जीतनेवाले भरतको जीतकर भी 'ये बडे है' इसी गौरवसे उन्हे पृथिवीपर नही पटका ॥६०॥ किन्तु भुजाओसे पकडकर ऊचा उठाकर कन्धेपर धारण कर लिया । उस समय भरतेश्वरको कन्धेपर धारण करते हुए बाहुवली ऐसे जान पडने थे मानो नील गिरिने बडे बडे शिखरोसे देदीप्यमान हिमवान् पर्वतको ही धारण कर रक्खा हो ॥६१॥ उस समय बाहुवलीके पक्षवाले राजाओने बडा कोलाहल मचाया और भरतके पक्षके लोगोने लज्जामे अपना शिर झुका लिया ॥६२॥ दोनों पक्षके राजाओके साक्षात् देखते हुए चक्रवर्ती भरतका अत्यन्त अपमान हुआ था इसलिये वे भारी लज्जा और आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥६३॥ जिसने भौंहें चडा गी है, जिसकी रक्तके समान लाल लाल आँसे इधर उधर फिर रही है और जो क्रोधसे जल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती क्षण भरके लिये भी दुनिरीध्य हो गया अर्थात् वह क्रोधसे ऐसा जन्ने लगा कि उमे कोई क्षणभर नही देख सकता था ॥६४॥ उस समय क्रोधसे अन्धे हुए निधिओने स्वामी भरतने बाहुवलीका पराजय करनेके लिये ममन्त शत्रुओके समूहको उगडकर फेंकनेवाके चक्ररत्नका स्मरण किया ॥६५॥ स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरतके समीप आया, भरतने बाहुवलीपर चगाया

१ बाहुयुद्धम् । २ प्रतिज्ञा कृत्वा । ३ प्रविष्टावित्यर्थ । ४ धरनेभुजास्फातनं । बलिता-५०, ६० । ५ पदधारिणि । ६ बाहुयय । ७ वाष्ठाग्निभ्रमणस्य । ८ अनुज । ९ ज्येष्ठम् । १० बाहुपीडन यथा भवति तथा । ११ परिभ्रमम् । १२ विरमपाग्वितम् । १३ उच्छिद्र । १४ मुशित-१०, ६० । १५ मृग । १६ एतच्चक्रम् । १७ नृवर्जित । १८ मयोपे ।

कृत^१ कृत वनानेन साहसेनेति धिक्कृत । तदा महत्तमं शक्री जगामानुशय^१ परम् ॥६७॥
^१कृतापदान इत्युच्चं करेण तुल्यद्रुपम् । सोऽवतीर्यशितो^१ धीरोऽनिकृष्टा भूमिमापिपत्^१ ॥६८॥
 सत्कृत स जयाशासम् श्रम्येत्य नृपसत्तमं । मेने सौत्कर्दमात्मान तदा भुजवली प्रभु ॥६९॥
 अचिन्तयच्च किन्नाम कृते^१ राज्यस्य भद्रगिन^१ । सज्जाकरो विधिर्भात्रा ज्येष्ठेनायमनुष्ठित^१ ॥७०॥
^१विपाककटुसाम्राज्य क्षणध्वंसि धिगस्त्विवदम् । दुस्त्यज त्यजदप्येतद् श्रद्धागिभिर्दुष्कलवत् ॥७१॥
 ब्रह्मो विषयसौस्थाना वैरूप्यम्^१ पकारिता । भद्रगुरत्वमश्च्यत्व^१ सत्तर्ना विष्यते^१ जने ॥७२॥
 यो नाम मतिमानीप्तेद् विषयान् वेधदाहणान् । येषा वशागतो जन्तु यात्यनर्षपरम्पराम् ॥७३॥
 वर विष यदेवस्मिन् भवे हृन्नि न हन्ति वा । विषयास्तु पुनर्धनन्ति हन्त जन्तुनन्तदा ॥७४॥
 श्रापातेमात्र^१ रम्याणा विपाककटुकात्मनाम् । विषयाणा कृते^१ नातो^१ यात्यनर्षानपापंक्रम ॥७५॥

परन्तु उनके अवध्य होनेसे वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हींके पास जा ठहरा । भावार्थ—दैवोपनीत सास्त्र कुटुम्बके लोगोपर सफल नहीं होते, बाहुवली भरतेश्वरके एक पितृक भाई थे इसलिये भरतका चक्र बाहुवलीपर सफल नहीं हो सका, उसका तेज फीका पड गया और वह प्रदक्षिणा देकर बाहुवलीके समीप ही ठहर गया ॥६६॥ उस समय बड़े बड़े राजाओं-ने चक्रवर्तीको धिक्कार दिया और दु खके साथ कहा कि 'बस बस' 'यह साहस रहने दो'—बन्द करो, यह सुनकर चक्रवर्ती और भी अधिक सतापको प्राप्त हुए ॥६७॥ आपने खूब पराक्रम दिवाया, इस प्रकार उच्च स्वरसे कहकर धीर वीर बाहुवलीने पहले तो भरतराजको हाथसे तोला और फिर कन्वेसे उतारकर नीचे जमीनपर रख दिया अथवा (धीरो अनिकृष्टा ऐसा पदच्छेद करतेपर) उच्च स्थानपर विराजमान किया ॥६८॥ अनेक अच्छे अच्छे राजाओंने समीप आकर महाराज बाहुवलीके विजयकी प्रशंसा करते हुए उनका सत्कार किया और बाहुवलीने भी उम समय अपने आपको उल्टा अनुभव किया ॥६९॥ साथ ही साथ वे यह भी चिन्तवन करने लगे कि देखो, हमारे बड़े भाई ने इस नश्वर राज्यके लिये यह वैसा लज्जा-जनक कार्य किया है ॥७०॥ यह साम्राज्य फणकालमें बहुत दुख देनेवाला है, और क्षणभंगुर है इसलिये इमे धिक्कार हो, यह व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारिणी म्त्री एक पतिको छोडकर अन्य पतिके पास चली जाती है उसी प्रकार यह माम्राज्य भी एक पतिको छोडकर अन्य पतिके पास चला जाता है । यह राज्य प्राणियोंको छोड देता है परन्तु अविधेकी प्राणी इसे नहीं छोडते यह दु खकी बात है ॥७१॥ अहा, विषयो-में आमकन हुए पुरुष, इन विषयजनित सुखोका निन्द्यपना, अपकार, क्षणभंगुरता और नीरस-पनेको बनी नहीं मोचने है ॥७२॥ जिनके वशमें पडे हुए प्राणी अनेक दु खोकी परम्पराको प्राप्त होने हैं ऐंमे विषके ममान भयवर विषयोको वीन बुद्धिमान् पुरुष प्राप्त करना चाहेगा ? ॥७३॥ विष या येना वही अच्छा है क्योंकि वह एक ही भयमें प्राणीको मारता है अथवा नहीं भी मारता है परन्तु विषय भयन करना अच्छा नहीं है क्योंकि ये विषय प्राणियोंको अनन्तवार फिर फिरने मारने हैं ॥७४॥ जो प्रारम्भ वाग्में तो मनोहर मादूम होते हैं परन्तु फलवाग्-

१ अतमपम् । २ परचाणाम् । ३ कृतपत्रमस्तर्वाभि । ४ शोपादान-अ०, ल० । ५ भुजगितराम् ।
 'रक्षया भुजगिन्नात्त्रात्त्री' ध्यमिपानम् । -नायांगता-न० । ५ अवस्थात् । ६-मापयत् ५०, ल० ।
 ७ निर्मितम् । ८ विनश्चरय । ९-मपिष्ठ ५०, ल० । १० परिष्कृतम् । ११ बुद्धित्वम् ।
 १२ विनश्चरयम् । १३ आगताः । १४ म म्पयत् । न विषायेन इत्यथ । १५ अनुभवनकाल ।
 १६ निर्मितम् । १७ पुनात् ।

श्रत्यन्तरसिकानादौ पर्यन्ते प्राणहारिण ।^१ विम्बाकपाकविषयान् विषयान् च कृती भवेत् ॥७६॥
 शस्त्रप्रहारदीप्ताग्निवज्राग्निं महोरगा । न तयोद्वेत्का^२ पुसा घयाऽमी विषयद्विष ॥७७॥
 महाहिनरीद्रसद्रामभीमारप्यसरिद्विगीन् । भोगार्थिनो भजत्वसा घनतान^३ घनायया ॥७८॥
 दीर्घदीर्घानिर्घातं निर्घोषविषयीकृते । यादसा यादसापत्यो^४ चरन्ति विषयार्थिन ॥७९॥
 समापतच्छरव्रातनिरुद्धगगनाद्गणम् । रणाद्गण विनात्यस्तभियो भोगविनोभिता ॥८०॥
 चरन्ति वनमानुष्या^५ यत्र सपासलोचना^६ । ता पर्यटन्त्यरण्यानी भोगाशोपृता जडा ॥८१॥
 सरितो विषमायतंभोषणा ग्राहसद्रक्षुता । तितीर्थन्ति वताविष्टा^७ विषमैविषयग्रहं ॥८२॥
 श्रारोहन्ति दुरारोहान् गिरोनप्यभियोऽद्रगिन^८ । रसायनरसज्ञान^९ वलवादविमोहिता ॥८३॥
 अनिष्टवनितेवेपम् आलिङ्गति बलाज्जरा । कुर्वन्ती पलितव्याजाद् रभसेन कचग्रहम् ॥८४॥
^{१०} भोगेऽन्वत्सुक प्रायो न च वेदो^{१०} हिताहितम् । भुक्तस्य जस्ता जन्तो मृतस्य च विमभ्ररन्^{११} ॥८५॥
^{१२} प्रसह्य पातयन् भूमौ गात्रेषु कृतवेपयु^{१२} । जरापातो^{१३} नृणा कष्टो ज्वर शीत इवोद्भवन् ॥८६॥

मे कडवे (दुःख देनेवाले) जान पड़ते हैं ऐसे विषयोके लिये यह अन्न प्राणी क्या व्यर्थ ही अनेक दुःखोको प्राप्त नहीं होता है ? ॥७५॥ जो प्रारम्भकालमें तो अत्यन्त आनन्द देनेवाले हैं और अन्तमें प्राणोका अपहरण करते हैं ऐसे किपाच फल (विषफल) के समान विषम इन विषयोको कौन बुद्धिमान् पुरुष सेवन करेगा ? ॥७६॥ ये विषयम्पी शत्रु प्राणियोको जमा उद्देग करते हैं वेगा उद्देग शस्त्रोका प्रहार, प्रज्वलित अग्नि, वज्र, विजली और बड़े बड़े नरप भी नहीं कर सकते हैं ॥७७॥ भोगोकी इच्छा करनेवाले मूर्ख पुरुष घन पानेकी इच्छामें बड़े बड़े समुद्र, प्रचण्ड युद्ध, भयकर वन, नदी और पर्वतोंमें प्रवेश करते हैं ॥७८॥ विषयोको चाह रखनेवाले पुरुष जलचर जीवोकी लम्बी लम्बी भुजाओके आधानमें उत्पन्न हुए वज्रपात जैसे कठोर शत्रोसे क्षुब्ध हुए समुद्रमें भी जाकर संचार करते हैं ॥७९॥ भोगोमें लुभाये हुए पुष्प, चारो ओरमें पड़ते हुए वाणोके समूहमें जहा आधानम्पी जागन भर गया है ऐसे युद्धके मैदानमें भी निर्भय होकर प्रवेश कर जाते हैं ॥८०॥ जिनमें वनचर लोग भी भय सहित नेत्रोंमें मंचार करते हैं ऐसे भयकर बड़े-बड़े वनोंमें भी भोगोकी आशामें पीडित हुए मर्त्य मनुष्य घूमा करते हैं ॥८१॥ कितने दुःखकी दशा है कि विषयम्पी विषम ग्रहोमें, जकड़े द्रुग, कितने ही लोग, लकीन्तीनी मररोसे भयकर और मगरमन्डोमें भरी हुई नदियोंको भी पार करना चाहते हैं ॥८२॥ रसायन तथा रस आदिके ज्ञानका उपदेश देनेवाले घूर्ताके द्वारा मोहित होकर उद्योग-रग्नेवाले कितने ही पुष्प कठिनाईसे चढ़ने योग्य परंतोपर भी चट जाते हैं ॥८३॥ यह जरा मर्षेद वाओके बहानेमें वेगपूर्वक केसोकी पकडनी हुई अनिष्ट म्पीके समान जख्दंती आलिप्त करती है ॥८४॥ जो प्राणी भोगोमें अत्यन्त उत्पण्डित हो रहा है वह हिन और अहितयोको नहीं जानता तथा जिसे बुद्धावस्थाने घेर लिया है उसमें और मरे हुएमें क्या अन्तर है ? अर्थात् वेकार होनेमें वृद्ध मनुष्य भी मरे हुएके समान है ॥८५॥ यह बुद्धापा मनुष्यको शीतज्वरके समान अनेक कष्ट देनेवाला है क्योंकि जिस प्रकार शीतज्वर उत्पन्न होने ही जख्दंती जमीन-

१ अम्बीरकवपत्र । २ वज्रपात । ३ भयकर । ४ घनतानवाक्य । ५ अग्नि ।

६ जलजन्तुनाम् । 'यादागि जख्दंती' इत्यभिप्रायात् । यादगाण्यो मनुः । 'रसायन' जख्दंतिपयाद-
 पत्तिरथा पति' इत्यभिप्रायात् । ७ घनेचरा । ८ नपाहिता । ९ शरीरुक्तिप्रति । १० इत्या इत्यर्थ ।

११-अभियोगित ३० ५०, ५०, ६० । १२ गतिरग्नेमोषयिद्विगणतात्प्रायः उपायः चरित्वा ।

१३ भाषु घोचरन्तुम् । १४ न जानाति । १५ मरे । १६ वनाचारेण । १७ मर्त्य । १८ प्रसिद्धि ।

अद्रपसाव^१ मतिभूष^२ वाचामस्फुटतामपि । जरा सुरा च निर्विष्टा^३ घटयत्याशु देहिनाम् ॥८७॥
 कालव्याप्तगजनेदेमापुरात्तानक बलात् । धाल्यते यद्गलाधान जीवितालम्बन नृणाम् ॥८८॥
 शरीरद्वलमेतच्च गजकण्ठवदस्थिरम् । रोगा^४ वूपहत चेद^५ जरद्देहवृद्धोरकम् ॥८९॥
 इत्यशादवतमप्येतद् राज्यादि भरतेश्वर । शादवत मन्वते कष्ट मोहोपहतचेतन ॥९०॥
 चिरमाकलयतेष्वम् अग्रजस्यानुदात्तताम्^६ । व्याजहारैनमुद्दिश्य गिर प्रपस्याक्षरा ॥९१॥
 शृणु भो नृपशाईल क्षण^७ वैलक्ष्यमुत्सृज । मुद्ध्यतेद^८ त्वयाऽलम्बि दुरोहमतिसाहसम् ॥९२॥
 अनेद्ये मम देहाद्रौ त्वया चक्र नियोजितम् । विद्वधकिञ्चित्कर^९ वाजु शैले यज्जमिवापतत् ॥९३॥
 अन्वयन् मृतभाण्डानि भद्रवत्त्वा राज्य यद्वीर्यितम् । त्वया धर्मो यशश्चैव^{१०} तेन^{११} वैदालमजितम् ॥९४॥
 चक्रभूदभरत सष्टु सूनु आद्यस्य योऽग्रणी । कुलस्योद्धारक सोऽभूद्विती^{१२} डाऽस्यापि च त्वया ॥९५॥
 जिता च भवतंबाद्य^{१३} यस्याप्नोपहृतामिमाम् । म^{१४} वसेज्जन्यभोगीना^{१५} त्वप्रथियमनश्वरीम् ॥९६॥
 प्रेयसीय तवैवास्तु राज्यश्रीर्षा त्वयाऽदृता । नोचितैषा ममायुष्मन् बन्धो^{१६} न हि सता मुदे ॥९७॥

पर पटक देता है उसी प्रकार बुढापा भी जबदंस्ती जमीनपर पटक देता है और जिस प्रकार शीतज्वर शरीरमे कम्पन पैदा कर देता है उसी प्रकार बुढापा भी शरीरमे कम्पन पैदा कर देता है ॥८६॥ शरीरमे प्रविष्ट हुई तथा उपभोगमें आई हुई जरा और मदिरा दोनों ही लोगो के शरीरको शिथिल कर देती हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर देती है और वचनोमे अस्पष्टता ला देती है ॥८७॥ जिसके बलका सहारा मनुष्योके जीवनका आलम्बन है ऐसा यह आयुहृषी खमा कालहृषी दुष्ट हाथीके द्वारा जबदंस्ती उखाड दिया जाता है ॥८८॥ यह शरीरका बल हाथीके कानके समान चंचल है और यह जीर्ण-शीर्ण शरीररूपी भोपडा रोगरूपी चूहोके द्वारा नष्ट किया हुआ है ॥८९॥ इस प्रकार यह राज्यादि सब विनश्वर है फिर भी मोहके उदयमे जिसकी चेतना नष्ट हो गई है ऐसा भरत इन्हे नित्य मानता है यह कितने दु खकी बात है ? ॥९०॥ इस प्रकार वडे भाईकी नीचताका चिरकाल तक विचार करते हुए बाहुबली-ने भरतको उद्देश्य कर नीचे लिखे अनुसार कठोर अक्षरोवाली वाणी कही ॥९१॥ हे राजाओ-में श्रेष्ठ, क्षणभरके लिये अपनी लज्जा या भेंन छोड, मं कहता हूँ सो सुन । तूने मोहित होकर ही इम न करने योग्य वडे भारी माहसका सहारा लिया है ॥९२॥ 'जो कभी भिद नहीं सकता । ऐमे मेरे शरीररूपी पर्वतपर तूने चक्र चलाया है सो तेरा यह चक्र बजूके बने हुए पर्वतपर पडते हुए बजूके समान व्यर्थ है ऐमा निश्चयमे समझ ॥९३॥ दूसरी बात यह है कि 'जो तूने भाइयोकी सामग्री नष्ट कर राज्य प्राप्त करना चाहा है सो उसमे तूने बहुत ही अच्छा धर्म और यगका उपाजंन किया है ॥९४॥ तूने अपनी यह स्तुति भी स्थापित कर दी कि चक्रवर्ती भग्न आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवका ज्येष्ठ पुत्र था तथा वह अपने कुलका उद्धारक हुआ था ॥९५॥ हे भरत, आज तूने जिने जीता है और जो पापसे भरी हुई है ऐसी इस राज्य-लक्ष्मीको तू एक अन्ने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनाशी समझता है ॥९६॥ त्रिमका तूने आदर किया है ऐमी यह राज्यलक्ष्मी अब तुम्हे ही प्रिय रहे, हे आयुष्मन्, अब यह मेरे योग्य नहीं है षयोकि यन्मन गज्जन पुत्रयोके आनन्दके लिये नहीं होता है । भावार्थ—यह लक्ष्मी स्वय एक प्रवातका वन्धन है अथवा वाम वन्धका कारण है इमलिये सज्जन पुरुष इसे

१ यमम् । २ भृगम् । ३ अभूत्ता । ४ मृषिय । ५ जीर्ण । ६ निवृष्टताम् । ७ विमया
 विराडम् । ८ मृत्युर्नाम मृत्युर्नेत । ९ न किञ्चित्कर । विमपि वतुगममयं इत्यय । १० राज्य-
 नित्यमेव । ११ प्रगतम् । १२ मृति । १३ यम्भान् पारणात् । १४ आन्वभागाधियाम् ।
 १५ वचनान्तरादिह ।

द्विषता कटक्वरेणा फलिनीमपि ते धियम् । करेणापि स्तुभेद् धीमान् लता कष्टकिनीं च क ॥६८॥
 विपक्षकृत्जालीव त्वाग्यंया सव्यर्षिण न । निष्कृष्टवा तपोवर्मी स्वार्थिना कर्तुमिच्छताम् ॥६९॥
 मृष्यतां च तदस्मानि वृत्तमार्गो यदीदृशम् । प्रच्युतो विनयान् सोऽह स्व चापलमदीदृशम् ॥१००॥
 इ मुच्चरद् गिरामोषो मुक्ताद् बाहुवलीशितु । ध्वनिरध्वादिवाज्जल्प जित्पणोगह्लादियन्मत ॥१०१॥
 हा दुष्टं वृत्तमित्युच्चं श्रात्मान स विगर्हयन् । श्रन्वव्रातप्त पापेन कर्मणा स्थेन चक्ररात् ॥१०२॥
 प्रयुक्तानुनय भूयो मनुमन्व्य स धीरयन् । न्यवनज स्वमङ्गल्पाद् श्रुतो स्वयं मनस्विनाम् ॥१०३॥
 महाबलिनि निक्षिप्तराग्याद्धि स स्वनन्दने । दीक्षामुपादपे जैनीं गुरोराराधयन् पदम् ॥१०४॥
 दीक्षावन्त्या परिश्रवक ' त्यक्ताशेषपरिच्छद । स रेजं सलन ' परमोक्षसाम' इव द्रुम ॥१०५॥
 गुरोरनुमतेऽर्थीनी' दधदेकविहारिताम् । प्रतिमार्थीगमावर्षम्^३ श्रातस्ये कित सवन^४ ॥१०६॥
 स 'शास्त्रिनद्रनोऽनादवान्' वनबल्लोत्तनान्तिक् । वन्मीकृच्छुनि सपेन् सपरासीद् भयानक^५ ॥१०७॥
 'श्वसदाविर्भवन्नांग' भुजङ्ग शिशुभूमिर्न । विषाट्कुरुरिषोपाट्पि^६ स रेजे वेष्टिताजनि ॥१०८॥

कमी नहीं चाहते ॥१७॥ यद्यपि यह तेरी लक्ष्मी फत्रवती है तथापि अनेक प्रकारके काटोमे-
 विपत्तियोंमें दूषित है । भला, ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो काटेबागी लताको हाथमें
 छूएगा भी ॥१८॥ अब हम कटक रहित तपस्वी लक्ष्मीको अपने आधीन करना चाहते हैं
 इसलिए यह राज्यलक्ष्मी हम लोगोंके लिये विपके काटोकी श्रेणीके समान मर्क्या त्याज्य
 है ॥१९॥ अतएव जो मंने यह ऐसा अपराध किया है उसे क्षमा कर दीजिये । मैं विनयमें
 च्युत हो गया था अर्थात् मंने आपकी विनय नहीं की सो इसे मैं अपनी चञ्चलता ही ममभता
 हूँ ॥१००॥ जिन प्रकार भेवने निकलनी हुई गर्जना मत्प मनुष्योंको आनन्दित कर देती
 है उसी प्रकार महाराज बाहुवलीके मुखमें निकलते हुए वाणीके ममूहने चत्रवर्ती भृगुके मत्प
 मनकी कुछ-कुछ आनन्दित कर दिया था ॥१०१॥ 'हा मंने बहुत ही दुष्टताका कार्य किया है'
 इस प्रकार जोर जोरसे अपनी निन्दा करना हुआ चत्रवर्ती अपने पाप कर्ममें बहुत ही मत्प
 हुआ ॥१०२॥ जिनमें अनेक प्रकारके अनुनय विनयका प्रयोग किया गया है इन रीतिमें
 अन्तिम कुत्कर महाराज भरतकी बार-बार प्रमत्त करता हुआ वाटुगरी अपने मानसमें पीछे
 नहीं हटा सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वी पुण्योकी म्यग्ता भी आश्चर्यजनक होती है ॥१०३॥
 उसने अपने पुत्र महाशलीको राज्यलक्ष्मी मीन दी और स्वयं गुरदेवसे चरणोरी आराधना करते
 हुए जैनी दीक्षा धारण कर ली ॥१०४॥ जिनने ममन्त परिग्रह छोड़ दिया है तथा जो दीक्षा
 स्वी लतामें आग्निद्वित हो रहा है ऐसा वह वाटुगरी उन समय ऐसा जान पड़ता था मानो
 पत्तोंके गिर जानेमें वृष लतायुक्त कोई वृक्ष ही हो ॥१०५॥ गुरकी आज्ञामें रहकर शास्त्रों
 का अध्ययन करनेमें कुशल तथा एक विहागीयन धारण करनेवाले जिनैन्द्रिय ग्राह्ययोंने एक
 वर्षतक प्रतिमा योग धारण किया अर्थात् एक ही जगह एक ही जागनेमें गडे रहनेका नियम
 लिया ॥१०६॥ जिन्होंने प्रेममयीय व्रत धारण किये हैं, जो कमी भोजन नहीं करते, और
 जिनके ममीपका प्रदेश वनकी लनाओंमें व्याप्त हो रहा है ऐसे वे वाटुगरी वामीके छिद्रोंमें
 निकरने हुए मर्षोंमें बहुत ही भयानक हो रहे थे ॥१०७॥ जिनके फणा प्रकट हो गये हैं ऐसे
 फुवागते हुए मर्षोंके वच्चोंकी उच्छ्वसूदमें चागे ओम्ने घिरे हुए वे वाटुगरी ऐसे गुनीभित

१ क्षम्यताम् । २ अरागध । ३ भुगमानयम् । ४ प्रवत् । ५ मन्वय । ६ दुष्ट ट० ।
 ७ विदा । 'निन्दाया दुष्टं मृष्टं प्रायते ।' इच्छिन्तान्त । ८ नित्रवराग्यादिशय । ९ अर्थात्शय ।
 ६ सतया मन्ति । १० पामोचनरा । ११ अर्थात्वात् । १२ वाचपि । १३ निभृत् । १४ स्तु ।
 १५ उपवासी । १६ नयद्वार । १७ उच्छ्वसूत् । १८ पत्त । १९ अग्निमर्षी ।

वधान स्व-धर्मपर्वन्तलम्बिनी केशयस्त्ररी । सोऽभ्यगाद्बृहदृणाहिमच्छतं हरिचन्दनम् ॥१०६॥
 माषचीततया गाढम् उपगूढं प्रफुल्लया । दातादाहृनिरायेत्पथ सद्योऽश्वेव सारतया ॥११०॥
 विद्याधरी करालतपस्तया सा क्लिष्टाऽप्यम् । पादयो कामिनोयास्य सामि नमूऽभुनेप्यनी ॥१११॥
 रोजे स तदवस्थोऽपि तपो दुश्चरमाचरन् । कामोव मुनितकामिन्यां स्तुष्टयात् कृशीभवम् ॥११२॥
 तपस्तनूनपात्ताय सन्तप्तस्यास्य केवलम् । शरीरमशुब्रह्मोर्ध्वशोयं कर्मप्यशमदम् ॥११३॥
 तीव्र तपस्यनोऽप्यस्य नासीत् कादिवदुपप्लव । अचिन्त्यं महतां धर्मम् येनां वाग्नि न विप्रियाम् ॥११४॥
 सर्वसहं क्षमाभारप्रशांत शीतल जलम् । नि सद्यः पवन दीप्तं स जिगाय हृतागनम् ॥११५॥
 क्षुभं पिपासां शोतोष्णं सद्गमनकद्वयम् । मार्गाव्यवनसत्सिद्धये द्वन्द्वानि सारते स्म स ॥११६॥
 स नाग्यं परम बिभृग्नाभेदोन्द्रियधूर्तकं । ब्रह्मचर्यस्य स तां गुप्ति नामयं नाम पर तप ॥११७॥
 रति चारितमप्येव द्वितप स्म तितिक्षते ॥ न रत्वरतिवाया हि विपयानभिवदगिण ॥११८॥

हो रहे थे मानो उनके चरणोके समीप विपके अबूरे ही लग रहे हो ॥१०८॥ बन्धो पर्वन्त लटकती हुई केशरूपी लताओको धारण करनेवाले वे बाहुवली मुनिराज अनेक काले सर्वोके समहको धारण करनेवाले हरिचन्दन वृक्षका अनुकरण कर रहे थे ॥१०९॥ फून्नी हुई वासती-लता अपनी शाखारूपी भुजाओके द्वारा उनका गाढ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे जान पडते थे मानो हार लिये हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओसे उनका आलिंगन कर रही हो ॥११०॥ जिसके कोमल पत्ते विद्याधरियोने अपने हायसे तोड लिये हं ऐसी वह वासन्ती लता उनके चरणोपर पडकर सूख गई थी और ऐसी मालूम होती थी मानो कुछ नमू होकर अनुनय करती हुई कोई स्त्री ही पैरोपर पडी हो ॥१११॥ ऐसी अवस्था होनेपर भी वे कठिन तपस्चरण करते थे जिससे उनका शरीर कुश हो गया था और उससे ऐसे जान पडते थे मानो मुक्तिहवी स्त्रीकी इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो ॥११२॥ तपस्वी अग्निके सतापसे सतप्त हुए बाहुवलीका केवल शरीर ही खडे-खडे नहीं सूख गया था किन्तु दुःख देनेवाले कर्म भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे ॥११३॥ तीव्र तपस्या करते हुए बाहुवलीके कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योकि वडे पुरुषोका धैर्य अचिन्त्य होता है जिससे कि वे कभी विकार-को प्राप्त नहीं होते ॥११४॥ वे सब बाधाओको सहन कर लेते थे, अत्यन्त शान्त थे, परिग्रह रहित थे और अतिशय देदोप्यमान थे इसलिये उन्होंने अपने गुणोसे पृथ्वी, जल, वायु और अग्निको जीत लिया था ॥११५॥ वे मार्गसे च्युत न होनेके लिये भूख, प्यास, शीत, गर्मी तथा डाम मच्छर आदि परीपहोके दुःख सहन करते थे ॥११६॥ उत्कृष्ट नाग्य व्रतको धारण करते हुए बाहुवली इन्द्रियरूपी धूर्तके द्वारा नहीं भेदन किये जा सके थे । ब्रह्मचर्यकी उत्कृष्ट रूपसे रक्षा करना ही नाग्य व्रत है और यही उत्तम तप है । भावार्थ—वे यद्यपि तपन करते थे तथापि इन्द्रियरूप धूर्त उन्हें विकृत नहीं कर सके थे ॥११७॥ वे रति और अरति इन दोनों परिपहोको भी सहन करते थे अर्थात् रागके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे राग नहीं करते थे और द्वेषके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे द्वेष नहीं करते थे सो ठीक ही है क्योकि विपयो-

१ भुत्रसिम्बर । २ अनुत्तरति स्म । ३ आत्रिङ्गित । ४ सरया । ५ सहारया अ०, स०, ८०, १० । ६ छदिव । ७ ईपद् । ८ अनुनय वृत्ती । ९ अग्नि । १० ऊर्ध्वार्त् पू शुप इति गम् प्रययान् । ऊर्ध्वंभूत शरीरमित्यथ । ११ धैर्येण । १२ सबलपरीपहोपमं सहमान । १३ भुभागमियं । १४ तपाविसायेण दीप्त् । १५ परीपहान् । १६ नगत्वम् । १७ प्रगिद्धा । १८ रता । १९ सारते स्म । २० विपयवाञ्छारहितस्य ।

परीवहजयादस्य विन्ला निर्जराऽभवत् । वसंथा निर्जरोपाय परीवहजय पर ॥१२८॥
 क्रोध तितिक्षया^१ मानम् उत्सेकैपरिवर्जनं । मायामुञ्जतया लोभ सतोपेण जिगाय स ॥१२९॥
^२पञ्चेन्द्रियाप्यनायासात् सोऽजयजिजतमन्मथ । विपपेम्पनदीप्तस्य कामाग्ने शमनं तप ॥१३०॥
 आहारभयसक्ते च समंयुनपरिग्रहे । अनङ्गविजयादेता सज्ञा क्षपयतिस्म स ॥१३१॥
 इत्यन्तरङ्गशरूणा स भञ्जनं प्रसर मूहु । जयति स्माऽऽजमनाऽऽजमानम् आत्मविद् विदिताखिलं ॥१३२॥
 व्रत च समितो सर्वा सम्पत्तिन्द्रियरोधनम् । अचेतता च केशाना प्रतितुञ्चनसङ्गरम् ॥१३३॥
 आवदयकेष्वसम्बाधम् अस्नान क्षितिशाधिताम् । अदग्न्तधावन स्थित्वा भुङ्क्ति भक्त च नासदृत् ॥१३४॥
 प्राहुर्मूलगुणानेतान् तथोत्तरगुणा परे । तेषां भाराधने यत्न सोऽतनिष्ठातनुमुनि^३ १३५
^४एतेष्वहापयन्^५ काञ्चिच्च व्रतशुद्धि परा श्रित । सोऽदीपि किरणं भांत्वान्निव क्षोपंस्तपोऽद्भुभि, ॥१३६॥
 गौरवैस्त्रिभिहन्मुक्त परा नि शल्पता गत ।^६धर्मैर्दशभिराम्बुदादर्थोऽद्भुम्भितवर्मनि ॥१३७॥
 गुप्तित्रयमयो^७ गुप्ति धितो ज्ञानासिभासुर । सर्वमित^८ समितिभि स भजे विजिगीषुताम् ॥१३८॥

इस प्रकार परिपहोके जीतनेसे उनके बहुत बड़ी कर्माँकी निर्जरा हो गई थी सो ठीक ही है क्योंकि परिपहोको जीतना ही कर्माँकी निर्जरा करनेका श्रेष्ठ उपाय है ॥१२८॥ उन्होने क्षमासे क्रोधको, अहंकारके त्यागसे मानको, सरलतासे मायाको और सतोपसे लोभको जीता था ॥१२९॥ काम देवको जीतनेवाले उन मुनिराजने पाच इन्द्रियोको अनायास ही जीत लिया था सो ठीक ही है क्योंकि विषयस्वी ई धन जलती हुई कामरूपी अग्निको शमन करनेवाला तपश्चरण ही है। भावार्थ—इन्द्रियोको वश करना तप है और यह तभी हो सकता है जब कामरूपी अग्निको जीत लिया जावे ॥१३०॥ उन्होने कामको जीत लेनेसे आहार, भय, मंयुन और परिग्रह इन सज्ञाओको नष्ट किया था ॥१३१॥ इस प्रकार अन्तरङ्ग शत्रुओके प्रसारको वार वार नष्ट करते हुए उन आत्मज्ञानी तथा समस्त पदार्थोको जाननेवाले मुनिराजने अपने आत्माके द्वारा ही अपने आत्माको जीत लिया था ॥१३२॥ पाच महाव्रत, पाच समितियाँ, पाच इन्द्रियदमन, वस्त्रपरित्याग, केशोका लोच करना, छह आवश्यकोमे कभी बाधा नहीं होना, स्नान नहीं करना, पृथिवीपर सोना, दातौन नहीं करना, खड़े होकर भोजन करना और दिनमें एक वार आहार लेना, इन्हे अट्टाईस मूलगुण कहते हैं इनके सिवाय चौरासी लाख उत्तर गुण भी हैं, वे महामुनि उन सबके पालन करनेमें प्रयत्न करते थे ॥१३३-१३५॥ इनमें कुछ भी नहीं छोड़ते हुए अर्थात् सक्ता पूर्ण रीतिसे पालन करते हुए वे मुनिराज व्रतोकी उत्कृष्ट विगुद्धिको प्राप्त हुए थे तथा जिम प्रवार देदीप्यमान किरणोसे सूर्य प्रकाशमान होता है उसी प्रवार वे भी तपकी देदीप्यमान किरणोमे प्रकाशमान हो रहे थे ॥१३६॥ वे रसगौरव, शब्द गौरव, और ऋद्धिगौरव इन तीनोंमें गृहित थे, अत्यन्त नि दस्य थे और दशधर्मोने द्वारा उन्हें मोक्षमार्गमें अत्यन्त दृढता प्राप्त हो गई थी ॥१३७॥ वे मुनिराज किसी विजिगीषु अर्थात् शत्रुओको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजाके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिम प्रवार विजिगीषु राजा किसी दुर्ग आदि मुग्धिन म्यानवा आश्रय लेता है, तत्कारमे देदीप्यमान होता है और बचक पढ़ने रहता है उसी प्रवार उन मुनिराजने भी तीन गुप्तियोन्पी दुर्गोका आश्रय ले रक्का था, वे भी ज्ञानरूपी तप्याग्ने देदीप्यमान हो रहे थे और पाच समितियारूप बचक पढ़िन रक्का था। भावार्थ—यथार्थमें वे कर्मण्य शत्रुओको जीतनेकी इच्छा रखते थे

१ क्षमाया । २ लब्धे । ३ न० ब० अ० ग० ८०, १० ६० पुनवगममनोऽय परम । न० गुल्बे १८-१३० स्थाय्याप्यनित्यमाऽस्ति । ४ समुत्तम् । ५ ज्ञानगव्यन्यदाथं । ६ प्रतिज्ञाम् । ७ एषमुक्तामिषय । ८ मुक्तामग्गणानाम् । ९ महान् । १० प्राशक्तगुणम् । ११ हाणियवर्तन । १२ अन्तर्गम्यादिभिः । १३ शशात् । १४ बचकिल ।

कषायतस्करैनास्य हृत रत्नत्रय घनम् । मनन जागरकस्य भूयो भूयोऽग्रमाद्यत ॥१३६॥
 वाचयमस्य^१ तस्यात्सीद्र जातु विनयादर । नाभिघनेन्द्रियैरस्य मनोरुग्णं ममबुधम् ॥१४०॥
 मनोजगारे मह्यम्य बोधिता ज्ञानदीपिका । व्यदीपित्त^२ एवामन् विदयेऽर्था ध्येयनापदे ॥१४१॥
 मनिश्रुनाभ्या निशेषम् अर्थतत्त्व विचिन्वन्^३ । करामलकवद् विश्व तस्य विम्वष्टतामगान् ॥१४२॥
 परीयहनर्थदोषी विज्ञितेन्द्रियज्ञात्रव । कषायग्रन्थुन्द्देश स तपो राज्यम वभून् ॥१४३॥
 योगजातध्वंस्तस्य प्रादुरामस्तपोबलान् । यतोऽभ्याविरभूच्छक्तिं त्रैलोक्यक्षोभण प्रति ॥१४४॥
 चतुर्भेदेऽपि बोधेऽप्य समुत्कर्षेऽनदोदभूत्^४ । तत्तदावरणीयान्ता शयोपगमजग्निन ॥१४५॥
 मतिज्ञानसमुत्कर्षान् कोष्ठबुद्ध्यादयोऽभवन् । श्रुतमानेन विश्वाद्यात्तुर्ध्ववित्वावित्तर ॥१४६॥
 परमावधिमुल्लङ्घयस सर्वावधिमावदत् । मनपर्ययबोधे च सम्प्रापद् विपुला^५ मतिम् ॥१४७॥
 ज्ञानशुद्ध्या तपशुद्धि श्रस्यामीवतिरेकिणी । ज्ञान हि तपसो मूलं पट्टन्मूले महातरो ॥१४८॥

॥१३८॥ कषायरूपी चोरोके द्वारा उनका रत्नत्रयरूपी घन नहीं चुगया गया था क्योंकि वे सदा जागते रहते थे और बार बार प्रमादरहित होते रहते थे । भावार्थ—लोकमें भी देखा जाता है कि जो मनुष्य सदा जागता रहता है और कभी प्रमाद नहीं करना उसकी चोरी नहीं होती । भगवान् बाह्वली अपने परिणामोने शोभमें निरन्तर लवश्रीन रहते थे और प्रमादको पाममें भी नहीं आने देते थे इसलिये कषायरूपी चोर उनको रत्नत्रयरूपी घनको नहीं चुग सके थे ॥१३९॥ वे सदा मौन रहते थे इसलिये कभी उनका विकचाओम आदर नहीं होता था । और उनका मनरूपी दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित था इसलिये वह इन्द्रियोंके द्वारा नहीं तोडा जा सका था । भावार्थ—वे कभी विकचाए नहीं करते थे और पांचो इन्द्रियों तथा मनको बधम रखते थे ॥१४०॥ उनको मनरूपी विजात घरमें सदा ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशमान रहना था इसलिये ही समस्त पदार्थ उनके ध्येयशोक्तिमें थे अर्थात् ध्यान करने योग्य थे । भावार्थ—पदार्थोंका ध्यान करनेके लिये उनका ज्ञान होना आवश्यक है, मुनिराज बाहुवलीको मव पदार्थोंका ज्ञान था इसलिये मनो पदार्थ उनके ध्यान करने योग्य थे ॥१४१॥ वे मति और श्रुत ज्ञानके द्वारा ममाग्ने समस्त पदार्थोंका चिन्तन करते रहते थे इसलिये उन्हें यह जगत् हाथपर रखते हुए आवष्टके समान अत्यन्त स्पष्ट था ॥१४२॥ जो परिपहोसो जीत लेनेमें देशोप्यमान हों रहे हैं और जिन्होंने इन्द्रियरूपी शत्रुओंको जीत लिया है ऐसे वे बाहुवली कषायरूपी शत्रुओंको छेदकर तपरूपी राज्यका अनुभव कर रहे थे ॥१४३॥ तपश्चरणका बड़ पात्र उन मुनिराजने योगके निमित्तमें होनेवागे ऐसी अनेक ऋद्धिया प्रपट हुई थीं जिनने कि उनके तीनों श्रोत्रोंमें शोभ पैदा करनेकी शक्ति प्रकट हो गई थी ॥१४४॥ उन समय उनके मतिज्ञानावरण आदि बर्णोंके क्षमोपशमने मतिज्ञान आदि चारों प्रकारके ज्ञानोंमें वृद्धि हो गई थी ॥१४५॥ मतिज्ञानकी वृद्धि होनेने उनके कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धिया प्रपट हो गई थी और श्रुत ज्ञानके बढनेमें समस्त अर्णों तथा पूर्वोंके ज्ञानने आदिनी शक्तिवा विस्तार हो गया था ॥१४६॥ वे अवधिज्ञानमें परमावधिनो उल्लघन कर नवीनधिकां प्राप्त हुए थे तथा मन पर्यय ज्ञानमें विपुलमति मन पर्यय ज्ञानको प्राप्त हुए थे ॥१४७॥ उन मुनिराजके ज्ञानकी वृद्धि होनेमें तपकी वृद्धि भी बहुत अधिका हो गई थी मो टीन ही है क्योंकि जिस प्रकार किनी वने बूधने टट-रनेमें मूत्र कारण उसकी जड़ है उसी प्रकार तपके टटरने आदिमें मूत्र कारण ज्ञान है ॥१४८॥

१ मौनव्रित्त । २ ज्ञानदीपिका भाषाणात् । ३ चिन्तयन् । ४ उद्विग्न । ५ इन्द्रियाणा-
 षतुर्भेदपरिवृत्तविशेषात्तद्विस्तारः । ६ शक्ति ५०, म० । ७ श्रुतमतिमनस्यव्यवहृतम् ।

तपसोऽग्नें चोग्रोत्तपसा चातिकशितः^१ । स दोत्तपसाऽत्यन्तं दिदीपे^२ बीप्तिमागिव ॥१४६॥
 सोऽत्तप्यत तपस्तप्तं तपो धोर महच्च यत् । तथोत्तराप्यपि प्रात्तसमुत्कर्षाप्यनुकृतात् ॥१५०॥
 तपोभिरकृशैरेभिः स बभौ मुनिसत्तमः । धनोपरोपनिर्मुषतः करैरिव गभस्तिमान् ॥१५१॥
 विक्रियाऽऽत्तयो^३ चित्रं प्रादुरासीत्तपोबलात् । विक्रिया निशिलां हित्वा तीव्रमस्य तपस्यतः ॥१५२॥
 प्रात्तौषधैरस्यासीत् सध्रिजिङ्गते हितः । आमर्शंश्चेल^४ जल्लाह^५ प्राणिनामुपकारिणः ॥१५३॥
 घना^६ सुषोऽपि तस्यासीद् रसाद्धिः शक्तिमात्रतः । तपोबलसमुद्भूता बर्त्ताद्धरपि प्रथमे ॥१५४॥
 अक्षीणावसयः^७ सोऽभूत्तथाऽक्षीण^८ महाशनः (नसः)^९ । सूने हि कचमक्षीणं तपोऽक्षू^{१०} णमुपासितम् ॥१५५॥
 निर्द्वन्द्ववृत्तिरध्यात्मम् इति निर्जित्य जित्वरः । ध्यानाभ्यासे मनश्चक्रे योगी योगविदां धरः ॥१५६॥
 क्षमामयोत्तमां भजे पर मार्दवमार्जवम् । सत्यं शौचं तपस्यागावाकिञ्चन्यं च सयमम् ॥१५७॥
 ब्रह्मवचं च धर्मस्य ध्यानस्यैता हि भावनाः । योगी^{११} सिद्धौ परां सिद्धिम्^{१२} आमनन्तीह योगिनः ॥१५८॥

वे महामुनि उग्र, और महाउग्र तपसे अत्यन्त कृश हो गये थे तथा दीप्त नामक तपसे सूर्यके समान अत्यन्त देशीप्यमान हो रहे थे ॥१४९॥ उन्होंने तप्तधोर और महाधोर नामके तपश्चरण किये थे तथा इनके सिवाय उत्तर तप भी उनके खूब बढ़ गये थे ॥१५०॥ इन बड़े बड़े तपोंसे वे उत्तम मुनिराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो मेघोंके आवरणसे निकला हुआ सूर्य ही अपनी किरणोंसे सुशोभित हो रहा हो ॥१५१॥ यद्यपि वे मुनिराज समस्त प्रकारकी विक्रिया अर्थात् विकार भावोंको छोड़कर कठिन तपस्या करते थे तथापि आश्चर्यकी बात है कि उनके तपके बलसे आठ प्रकारकी विक्रिया प्रकट हो गई थी । भावार्थ—रागद्वेष आदि विकार भावोंको छोड़कर कठिन तपस्या करनेवाले उन बाहुबली महाराजके अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रावाम्य, ईशित्व, और वशित्व यह आठ प्रकारकी विक्रिया ऋद्धि प्रकट हुई थी ॥१५२॥ जिन्हें अनेक प्रकारकी औषध ऋद्धि प्राप्त है और जो आमर्श, श्वेल तथा जल्ल आदिके द्वारा प्राणिकोष उपकार करते हैं ऐसे उन मुनिराजकी समीपता जगत्का कल्याण करनेवाली थी । भावार्थ—उनके समीप रहनेवाले लोगोंके समस्त रोग नष्ट हो जाते थे ॥१५३॥ यद्यपि वे आहार नहीं लेते थे तथापि शक्ति मात्रसे ही उनके रसऋद्धि प्रकट हुई थी और तपश्चरणके बलसे प्रकट हुई उनकी बल ऋद्धि भी विस्तार पा रही थी । भावार्थ—भोजन करनेवाले मुनिराजके ही रसऋद्धिका उपयोग हो सकता है परन्तु वे भोजन नहीं करते थे इसलिये उनके शक्तिमात्र से रसऋद्धिका सद्भाव बतलाया है ॥१५४॥ वे मुनिराज अक्षीणसंवास तथा अक्षीणमहानम ऋद्धिको भी धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि पूर्ण रीतिसे पालन किया हुआ तप अक्षीण पात्र उत्पन्न करता है ॥१५५॥ विवल्प रहित चित्तकी वृत्ति धारण करना ही अध्यात्म है ऐसा निश्चयकर योगके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ उन जितेन्द्रिय योगिराजने मनको जीतकर उसे ध्यानके अम्बाममें लगाया ॥१५६॥ उत्तमशमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमगरव, उत्तमगौच, उत्तममंथम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य और उत्तम श्रद्धावचं ये दश धर्मध्यानकी भावनाएं हैं । इन लोकमें योगकी गिद्धि होनेपर ही उत्कृष्ट गिद्धि-सफलता-सोशकी प्राप्ति ही मक्ती है ऐसा योगी लोग मानते हैं ॥१५७-१५८॥

१ इन्द्रोत्तम । २ शिव । ३ मेघ । ४ तर्जनी । ५ अष्टब्राह्मण । ६ विदारम् । ७ क्षम
 वचं । ८ एदि । ९ निष्ठीघन । १० श्वेदोत्पमसाहै । ११ अनगनत्रनिन । १२ अगुनरतवादि ।
 १३ क्षमव । १४ मरुत् । १५ 'स' गुणक 'महानम' पाठ गुणक इति टिप्पणसे निर्गतम् ।
 १६ अत्यन्तम् । १७ ध्यानाभ्यासे गति । १८ मुक्तिम् ।

अनित्यानागतसत्कारकत्वाऽप्यन्वयशोचताम् । निर्जरात्त्वसरोधलोकस्वित्यनुचिन्तनम् ॥१५६॥
 परमस्याहमातता बोधे दुर्लभत्व च लक्षयन् । सोऽनुप्रेक्षाविधिं वध्यो विशुद्ध द्वादशात्मकम् ॥१६०॥
 'आज्ञापायी विपाक च सस्थान चानुचिन्तयन् । सध्यानमभज्ज् धर्म्यं कर्माशान् परितातयन्' ॥१६१॥
 दीपिकात्प्राप्त्यामुष्या ध्यानदोषो निरीक्षिता । षण्ण विशोषां कर्माशा कञ्जलाशा इवाभित ॥१६२॥
 तद्देहदीप्तिप्रसरो विड्मुखेषु परिस्फुरन् । तद्धन गारुडश्रावच्छायाततं भिवातनोत् ॥१६३॥
 तत्परदोषान्तविश्रान्ता चित्तं ध्या मृगजातय । बधाधिरे मृगनग्यं क्रूररघूरता श्रिते ॥१६४॥
 विरोधिनीऽप्यमी नुवत्तविरोधे स्वेरमासिता । तस्योपाध्दधीर्भातिहाया शशसुर्वभय मुने ॥१६५॥
 जरज्जनभ्रुकमाध्याय मस्तके 'ध्याधयेनुका । स्वशावनिषिशेषे'० ताम् पीभ्यत्'१ स्तन्य'१ मात्मन ॥१६६॥
 करिणो हरिणारातीनस्वीय सह यूपयं । स्तनपातोत्सुका भेजु करिणो सिंहपोतका ॥१६७॥
 कलभान् कल'३ भाडकारमुखरान् नखरं खरं । फण्ठीरव स्पृशन् कण्ठे नान्यनन्दि'१ न यूपयं ॥१६८॥
 करिण्यो विसिनोऽपुत्रपुटं पानीयमानयत् । तद्योगपीठपर्यन्तभुव सम्माजनेच्छया ॥१६९॥
 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१
 उपाध्दधि भोगिना'१ भोगं चिनोले'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१ 'युक्त्वे'१

अनित्य, अशरण, सत्कार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आलस्य, सवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ और धर्मस्थितत्व इन बारह भावनाओंका उन्होंने विशुद्ध चित्तसे चिन्तन किया था ॥१५९-१६०॥ वे आज्ञा, अपाय, विपाक और सस्थानका चिन्तन करते हुए तथा कर्मोंके अशोको क्षीण करते हुए धर्मध्यान धारण करते थे ॥१६१॥ जिस प्रकार दीपिकाके प्रज्वलित होनेपर उसके चारो ओर कज्जलके अश दिखाई देते हैं उसी प्रकार उनकी ध्यानरूपी दीपिकाके प्रज्वलित होनेपर उसके चारो ओर क्षणभर नष्ट हुए कर्मोंके अश दिखाई देते थे ॥१६२॥ सब दिशाओंमें फैलता हुआ उनके शरीरकी दीप्तिका समूह उस घनको नीलमणिकी कान्तिसे व्याप्त हुआ सा बना रहा था ॥१६३॥ उनके चरणोंके समीप विश्राम करनेवाले मृग आदि पशु सदा विश्वस्त अर्थात् निर्भय रहते थे, उन्हें सिंह आदि दुष्ट जीव कभी बाधा नहीं पहुँचाते थे क्योंकि वे स्वयं वहा आकर अकूर अर्थात् शान्त हो जाते थे ॥१६४॥ उनके चरणोंके समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्परका वैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार उठते बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराजके ऐश्वर्यको सूचित करते थे ॥१६५॥ हालकी व्याई हुई सिंही भेड़ोंके बच्चेका मस्तक सूचकर उसे अपने बच्चेके समान अपना दूध पिला रही थी ॥१६६॥ हाथी अपने भुण्डके मुखियोंके साथ साथ सिंहोंके पीछे पीछे जा रहे थे और स्तनके पीनेमें उत्सुक हुए सिंहके बच्चे हाथियोंके समीप पहुँच रहे थे ॥१६७॥ बालकपनके कारण मधुर शब्द करने हुए हाथियोंके बच्चोंको सिंह अपने पीने नालूनेसे उनकी गर्दनपर स्पर्श कर रहा था और ऐसा करते हुए उस सिंहको हाथियोंके सरदार बहुत ही अच्छा समझ रहे थे-उसका अभिनन्दन कर रहे थे ॥१६८॥ उन मुनिराजके ध्यान करनेमें आमनके समीपकी भूमिको साफ करनेकी इच्छासे हाथिनिया कमलनीके पत्तोंना दोना बनाकर उनमें भर भरकर पानी ला रही थी ॥१६९॥ हाथी अपनी सूँडने अग्रभागसे उठाकर लाये हुए कमल उनके दोनों चरणोंपर रख देते थे और इस तरह वे उनकी उपासना करते थे । अहा,

१ मकर । २ ध्यायति स्म । ३ आज्ञाविधायापयविषयो । ४ इणीपुर्वम् । ५ व्याप्तम् । ६ निरुत्तरा । ७ विरोधा ल०, प०, ख०, ग०, द०, । ८ जरज्जन्युत् ल०, इ० । ९ जरा वृद्ध । १० नयप्रगून्ध्यापी । १० नमानम् । ११ पाययति स्म । १२ स्तनगौरम् । १३ मनो ध्वनिविधायान् । १४ दो ननी नूयमर्थं गमयत, अभ्यनन्दीदियर्थं । १५ धमनं । १६ वरापोटन । १७ गर्गाणा शरीरैः ।

फणमात्रोद्गता रन्मात्^१ फणिनः सित्तै^२ योऽद्युतन् । वृताः कुवलपरैरर्षा मुनेरिय पदान्ति^३ ॥१७२॥
 रेज्वन्तलता नमः शाखाभिः कुलुमोज्ज्वलैः । मुनि भजनयो भवतयेय पुष्पापनेतितपूकम् ॥१७३॥
 शब्दद्विकारितिसुसुम्भैः शाखाभ्रैरभिलाहृतैः । बभूवन्तद्रुमास्तोपाग्निनृत्सव^४ इवास्तुत् ॥१७४॥
 कलैरलिहोद्गमान^५ फणिनो भन्तुः किल । उत्फगाः फणरत्नांशुदीपै^६ भोगै^७ विंशतितैः ॥१७५॥
 पुंस्कोकिलकलापिडिण्डिमानुगनैलंयैः^८ । चक्षुःधवस्तु पदयस्तु तद्विद्योऽनटिदु^९ मूहुः ॥१७६॥
 महिम्ना शमिनः^{१०} शान्तमित्यभूत्तच्च काननम् । घन्ते हि महता योगः^{११} शममप्यशमात्मसु^{१२} ॥१७७॥
 शान्तस्वनेनैवन्ति स्म वनान्तैस्सिमन् शकुन्तयः । घोषयन्त इवात्यन्त^{१३} शान्तमेतरूपोपवनम् ॥१७८॥
 तनोऽनुभावादस्यैव प्रशान्तैस्सिमन् वनाश्रये । विनियतः^{१४} कृतोऽप्यासीत् कस्यापि न कथञ्चन ॥१७९॥
 महत्सास्य तपोयोगमृत्भिनेन महोदता । बभूवुहु^{१५} तद्दध्वान्ताः तिर्यञ्चोऽप्यनभिद्रुह^{१६} ॥१८०॥
 गतिसखलनतो ज्ञात्वा योगस्य तं मुनीश्वरम् । असकृत्पूजयामासुः श्रवतीर्य नभश्चराः ॥१८१॥
 महिम्नाऽस्य तपोवीर्यं जनिनेनालघोयसा । मुहुरासनकम्पोऽभून्ततमूष्नी सुधाशानाम् ॥१८२॥

तपश्चरण कैसी शान्ति उत्पन्न करनेवाला है, ॥१७०॥ वे मुनिराज चरणोके समीप आयें हुए सर्पोंके काले फणाओसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पूजाके लिये नीलकमलोकी मालाएँ ही बनाकर रखी हो ॥१७१॥ वामीके छिद्रोंसे जिन्होंने केवल फणा ही बाहर निकाले हैं ऐसे काले सर्प उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो मुनिराजके चरणोंके समीप किसीने नीलकमलोका अर्घ्य ही बनाकर रखा हो ॥१७२॥ वनकी लताएँ फूलोंसे उज्ज्वल तथा नीचेकी झुकी हुई छोटी छोटी डालियोंसे ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो फूलोका अर्घ्य लेकर भक्तिसे नमस्कार करती हुई मुनिराजकी सेवा ही कर रही हो ॥१७३॥ वनके वृक्ष, जिनपर सदा फूल खिले रहते हैं और जो वायुसे हिल रहे हैं ऐसे शाखाओंके अग्रभागोंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सरोपने बार बार नृत्य ही करना चाहते हो ॥१७४॥ जिनके फणा ऊंचे उठ रहे हैं ऐसे सर्प, भूमरोंके शब्दरूपी सुन्दर गानेके साथ साथ फणाओपर लगे हुए रत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान अपने फणाओंको घुमा घुमाकर नृत्य कर रहे थे ॥१७५॥ मोर, कोकिलोंके सुन्दर शब्दरूपी डिण्डिम बाजेके अनुसार होनेवाले लयके साथ साथ सर्पोंके देखते रहते भी बार बार नृत्य कर रहे थे ॥१७६॥ इस प्रकार अतिशय शान्त रहनेवाले उन मुनिराजके महात्म्यसे वह वन भी शान्त हो गया था सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषोंका संयोग क्रूर जीवों में भी शान्ति उत्पन्न कर देता है ॥१७७॥ इस वनमें अनेक पक्षी शान्त शब्दोंसे चहक रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो इस बातकी घोषणा ही कर रहे हो कि यह तपोवन अत्यन्त शान्त है ॥१७८॥ उन मुनिराजके तपके प्रभावसे यह वनका आश्रम ऐसा शान्त हो गया था कि यहाँके किसी भी जीवको किसीके भी द्वारा कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ॥१७९॥ तपके मध्यम्यने बड़े हुए मुनिराजके बड़े भारी तेजसे तिर्यं चोंके भी हृदयका अन्धकार दूर हो गया था और अब वे परस्परमें किसीसे द्रोह नहीं करते थे—अहिंसक ही गये थे ॥१८०॥ विद्यापर लोभ गति भग हो जानेसे उनका सद्भाव जान लेते थे और विमानसे उतरकर ध्यान में बैठे हुए उन मुनिराजकी बार बार पूजा करते थे ॥१८१॥ तपकी शक्तिसे उत्पन्न हुए मुनिराजके बड़े भारी महात्म्यने जिनके मस्तक झूठे हुए हैं ऐसे देवोंके आसन भी बार बार कम्पाय-

१ वृषीकवितान् । २ वृष्णाः । ३ नतितुमिच्छव । ४-श्रुतैः ल० । ५ दीपै-६०, ल० । ६ सर्पैः । ७ तावन्निपडैः । ८ सर्पैः । ९ शृण्वती गृह्णाच्चक्षुःश्रवा वायोदर फणो इत्यभिधानान् । १० गर्गिणः । मयुग इत्यर्थः । ११ नदन्ति रम । १२ यने । १३ नयोग । १४ शूरवन्मोषु । १५ अत्यन्त प्रगम् । १६ बाधैर्यथै । १७ तेजसा । १८ अहिंसा ।

विद्याधर्मः कदाचिच्च क्रीडाहेतोःप्रायताः । वल्लोरद्वेष्टमानासुः^१ मुनेः सर्वाङ्गसद्विगिनीः ॥१८३॥
 इत्युपाख्यं सद्धानबलोद्भूततपोबलः । स लेश्याशुद्धिमास्कन्दन्^२ शुक्लध्यानोन्मुखोऽभवत् ॥१८४॥
 वत्सराजदानस्यात्ते भरतेशेन पूजितः । स भजे परमज्योतिः केवलाख्यं यवसरम् ॥१८५॥
 संपित्त्यो भरतापीशः सोऽस्मत्त^३ इति यत्किल । हृद्यस्य^४ हार्दं^५ तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि^६ केवलम् ॥१८६॥
 केवलाकौदयात् प्राक्च पश्चाच्च विधिवद् व्यधात् । सपर्यां भरतापीशो योगिनोऽस्य प्रसन्नधोः ॥१८७॥
^७स्वाग.प्रमार्जनार्थंन्या^८प्राक्तनी भरतेशिनः ।^९पाश्चात्याऽप्यायताः^{१०}ऽपीन्या केवलोत्पत्तिन्यभूत् ॥१८८॥
 या कृता भरतेशेन महेश्या स्वानुजन्मनः । प्राप्तकेवलवोधस्य को हि तद्वर्णने क्षमः ॥१८९॥
^{११}स्वाजन्यानुगमोः^{१२}स्त्येको धर्मरागस्तयाऽपरः । जन्मान्तरानुबन्धश्च^{१३} प्रेमधन्योऽतिनिर्भरः ॥१९०॥
^{१४}इत्येकशोऽप्यमी भक्तिप्रकर्मस्य प्रयोजकाः । तेषां नु सर्वसामग्रीं कां न पुण्याति त्तिरयाम् ॥१९१॥
 सामात्यः समहोपालः^{१५} सान्त.पुरपुरोहितः । त बाहुवर्तियोगीन्द्रं प्रणनामाधिराट् मुदा ॥१९२॥

मान होने लगते थे ॥१८२॥ कभी कभी क्रीडाके हेतुसे आई हुई विद्याधरिया उनके सर्व शरीर-
 पर लगी हुई लताओको हटा जाती थी ॥१८३॥ इस प्रकार धारण किये हुए सनीचीनधर्म-
 ध्यानको बलसे जिनके तपकी शक्ति उत्पन्न हुई है ऐसे वे मुनि लेश्याकी विशुद्धिको प्राप्त होते
 हुए शुक्लध्यानके सम्मुख हुए ॥१८४॥ एक वर्षका उपवास समाप्त होनेपर भरतेश्वरने
 आकर जिनकी पूजा की है ऐसे महामुनि बाहुवली कभी नष्ट नहीं होनेवाली केवलज्ञानरूपी
 उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त हुए । भावार्थ—दीक्षा लेते समय बाहुवलीने एक वर्षका उपवास किया
 था । जिस दिन उनका वह उपवास पूर्णहु आ उसी दिन भरतने आकर उनकी पूजा की और
 पूजा करते ही उन्हें अविनाशी उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हो गया ॥१८५॥ वह भरतेश्वर
 मूढमे संकलेशको प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्तसे उसे दुःख पहुँचा है यह विचार बाहुवली-
 के हृदयमें विद्यमान रहता था, इसलिये केवलज्ञानने भरतकी पूजा की अपेक्षा की थी । भावार्थ—
 भरतके पूजा करते ही बाहुवलीका हृदय शल्यरहित हो गया और उसी समय उन्हें केवलज्ञान
 भी प्राप्त हो गया ॥१८६॥ प्रसन्न है बुद्धि जिसकी ऐसे सम्राट् भरतने केवलज्ञानरूपी मूर्खके
 उदय होनेके पहले और पीछे—दोनों ही समय विधिपूर्वक उन मुनिराजकी पूजा की थी ॥१८७॥
 भरतेश्वरने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके पहले जो पूजा की थी वह अपना अपराध नष्ट करनेके
 लिये की थी और केवलज्ञान होनेके बाद जो बड़ी भारी पूजा की थी वह केवलज्ञानकी उत्पत्ति
 का अनुभव करनेके लिये की थी ॥१८८॥ जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे अपने छोटे
 भाई बाहुवलीकी भरतेश्वरने जो बड़ी भारी पूजा की थी उमका वर्णन करतेमें कौन समर्थ
 हो सकता है ? ॥१८९॥ प्रथम तो बाहुवली भरतके छोटे भाई थे, दूसरे भरतको धर्मका
 प्रेम बहुत था, तीसरे उन दोनोंका अन्य अनेक जन्मोंमें सम्बन्ध था, और चौथे उन दोनोंमें बड़ा
 भारी प्रेम था इस प्रकार इन चारोंमेंसे एक एक भी भक्तिकी अधिवृत्ताको बढ़ानेवाले हैं, यदि
 यह सब सामग्री एक साथ मिल जाए तो वह कौन-सी उत्तम नियाको पुष्ट नहीं कर सकती
 अर्थात् उससे कौन सा अच्छा कार्य नहीं हो सकता ? ॥१९०—१९१॥ सम्राट् भरतेश्वरने

१ मोक्षयामाम् । २ प्राटोभूत् । ३ गच्छन् । ४ मन् । ५ भुजवर्तित । ६ स्नेह । 'प्रमा ना
 प्रियता हार्दं प्रेम स्नेह' इत्यभिधानान् । ७ हार्दने । ८ भरतपूजापेक्षि । ९ केवलज्ञानम् । १० निजा-
 पतापनिवारणार्थं । ११ प्राप्त्वा । १२ पदानुभव । १३ अत्यधिका । १४ निजजवनेन । १५ अनु-
 गमनम् । महोत्पत्तिरित्यर्थ । १६ -नुबन्धश्च व०, अ०, ग०, प०, ६० । १७ एतन्मि । १८ महो-
 पार्थ महि ।

किमत्र बहुना रत्नं कृतोऽयं स्वर्गदीजतम् । पाद्य रत्नाद्ययो दीवास्तण्डुलेऽप्या च मीतिकं ॥१६३॥
 हवि^१ वीभूषण्डेन धूपो देवदूमाशकं^२ । पुण्यार्वा पारिजातादिसुरागसुमनश्चयं ॥१६४॥
 सरत्ना निधय सर्वं फलस्थाने नियोजिता । पूजा रत्नमयीभित्य रत्नेऽनो निरवतंयत् ॥१६५॥
 सुराश्चासनकम्पेन ज्ञाततत्केवलोदया । चक्रुरस्य परामिज्या शता^३धरपुर सरा ॥१६६॥
 वयमंन्द स्वधदानतः^४धूपनतबुञ्चव । तदा सुगन्धयो वाता स्वर्धुनीशीकराहृरा ॥१६७॥
 मन्द्र पयोमुजा मार्गं दध्नुश्च तुरानका । पुष्पोत्करो दिवोऽपतत् कल्पानोकहृसभव ॥१६८॥
 रत्नातपत्रमत्योच्चं निर्मित मुरशिल्पिभि । परार्ध्यमणिनिर्माणम् अभाद् दिव्य च विष्टरम् ॥१६९॥
 स्वप व्यूयतास्पोच्चं^५प्रान्तयोदचामरोत्कर । सभावनित्श्च तद्योग्या पप्रथे प्रथितोदया ॥२००॥
 सुरैरित्यचित प्राप्तकेवलद्वि स योगिराट् । व्यद्गतन्मुनिनिर्जुष्ट^६ शशोबोडुभिराश्रित ॥२०१॥
 घातिकर्मक्षपोद्भूताम् उद्वहन् परमेष्ठिताम् । विजहार महौं कृत्स्ना सोऽभिमन्य^७ मुधाशिनाम् ॥२०२॥
 इत्य स विश्वविद्विश्च प्रीययन् स्ववचोऽमृतं । कैलासमचल प्राप्त पूत सन्निधिना गुरो^८ ॥२०३॥

म^१नियोके साय, राजाओके साथ और अन्त पुरकी समस्त स्त्रियो तथा पुरोहितके साथ उन वाहुवली मुनिराजको बडे हर्षसे नमस्कार किया था ॥१९२॥ इस विषयमें अधिक कहा तक कहा जावे, सक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि उसने रत्नोका अर्घ बनाया था, गगाके जलकी जलपारा दी थी, रत्नोकी ज्योतिके दीपक चढाये थे, मोतियोसे अक्षतकी पूजा की थी, अमृतके पिण्डमें नैवेद्य अर्पित किया था, कल्पवृक्षके टुकडों (चूर्णों)से धूपकी पूजा की थी, पारिजात आदि देववृक्षोके फूलोके समूहसे पुष्पोकी अर्चा की थी, और फूलोके स्थानपर रत्नोसहित समस्त निधिया चढा दी थी इस प्रकार उसने रत्नमयी पूजा की थी ॥१९३-१९५॥ आसन कम्पायमान होनेसे जिन्हें वाहुवलीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका बोध हुआ है ऐसे इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी उत्कृष्ट पूजा की ॥१९६॥ उस समय स्वर्गके वगीचके वृक्षोकी हिलानेमें चतुर तथा गगा नदीकी वृक्षोकी हरण करनेवाला सुगन्धित वायु धीरे धीरे बह रहा था ॥१९७॥ देवोके नगाडे आकाशमें गभीरतासे वज रहे थे और कल्पवृक्षोसे उत्पन्न हुआ फूलोका समूह आकाशमें पड रहा था ॥१९८॥ उनके ऊपर देवरूपी कारीगरोके द्वारा बनाया हुआ रत्नोका छत्र सुशोभित हो रहा था और नीचे बहुमूल्य मणियोका बना हुआ दिव्य सिंहासन देदीप्यमान हो रहा था ॥१९९॥ उनसे दोनो ओर ऊचाईपर चमरोका समूह स्वयं बल रहा था तथा जिमका ऐश्वर्य प्रसिद्ध है ऐसी उनके योग्य सभाभूमि अर्थात् गन्धकुटी भी बनाई गई थी ॥२००॥ इस प्रकार देवोंने जिनकी पूजा की है और जिन्हे केवलज्ञानरूपी ऋद्धि प्राप्त हुई है ऐसे वे योगिराज अनेक मुनियोसे घिरे हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोने घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥२०१॥ जो घातियावर्मा^७ने क्षयसे उत्पन्न हुई अहंन्त परमेष्ठीकी अवग्याको धारण कर रहे हैं तथा इमीत्ये देव लोग जिनकी उपासना करते है ऐसे भगवान् वाहुवलीने ममन्त पृथिवीमें विहार किया ॥२०२॥ इस प्रकार ममस्त पदार्थोको जाननेवाडे वाहुवली अपने वचनरूपी अमृतके द्वारा ममन्त समारको मनुष्ट करते हुए, पूज्य पिता भगवान् वृषभदेवके सामोप्यमें पवित्र दृष्ट पंथाग पर्वनपर जा पहुँचे ॥२०३॥

मालिनी

सकलनृपसमाजे^१ दृष्टिभ्रलाम्बयुद्धैः
 विजितभरतकोतिर्षः प्रथमत्रान मुक्तयं ।
 तृणमिव विगणद्य प्राज्यसाध्याज्यभारं
 धरमतनृधराणामप्रणीः सोऽज्वताद् वः ॥२०४॥
 भरतविजयलक्ष्मीजाज्वलच्चक्षत्रभूर्त्या
 यमिनमभिसरन्ती क्षत्रियाणां समक्षम् ।
 चिरतरमवधूतापत्रपापात्रमासीद्
 अघिगतगुरुमार्गः सोऽज्वताद् दोर्बली वः ॥२०५॥
 स जयति जयलक्ष्मीसदृग्भासामवन्ध्यां
 विदधदधिकयामा सन्निधी पाषियवानाम् ।
 सकलजगदगारध्याप्तकीर्तिस्तपस्याम्^२
 अभजत यशसं यः सूनुराद्यस्य धाम् ॥२०६॥
 जयति भुजबलोशो वाहुवीर्यं स यस्य
 प्रथितमनवदध्रे क्षत्रियाणा नियुद्धे ।
 भरतनृपतिनामा^३ यस्य नामाक्षराणि
 स्मृतिपथमुपयान्ति प्राणिवन्दं पुनन्ति ॥२०७॥
 जयति भुजगवक्रोद्वान्तनिर्यद्गगरानिः^४
 प्रशममसङ्घवापत् प्राप्य पादो यवीर्यो ।
 सकलभुवनमाग्यः सेचरस्त्रीकराप्रो-
 द्प्रथितविततवीरद्वेष्टितो दोर्बलीशः ॥२०८॥

जिन्होंने समस्त राजाओंकी मभामें दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्धके द्वारा भरतकी समस्त कीर्ति जीत ली थी, जिन्होंने बड़े भारी राज्यके भारको तृणके समान तुच्छ समझ कर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये दीक्षा धारण की थी और जो चरम शरीरियोंमें सबसे मुख्य थे ऐसे भगवान् वाहुबली तुम सबकी रक्षा करें ॥२०४॥ सब क्षत्रियोंके नामने भरतकी विजयलक्ष्मी देदीप्यमान चक्रकी मूर्तिके बहानेमें जिन वाहुबलीके समीप गई थी परन्तु जिनके द्वारा सदाके लिये तिरस्कृत होकर लज्जाका पात्र हुई थी और जिन्होंने अपने पिताका मार्ग (मुनिमार्ग) स्वीकृत किया था वे भगवान् वाहुबली तुम सबकी रक्षा करें ॥२०५॥ जो अनेक राजाओंके नामने सफल हुई जयलक्ष्मीके ममागमकी आशाको धारण कर रहे थे, सबसे अधिक तेजस्वी थे, जिनकी कीर्ति समस्त जगत्स्वी घरमें व्याप्त थी और जिन्होंने वाम्त्विक यशके लिये तप धारण किया था वे आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके पुत्र सदा जयवन्त हों ॥२०६॥ जिनकी भुजाओंका बल क्षत्रियोंके नामने भरतराजके साथ हुए मल्लयुद्धमें प्रसिद्ध हुआ था, और जिनके नामके अक्षर स्मरणमें आने ही प्राणियोंके समूहको पवित्र कर देने हे वे वाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों ॥२०७॥ जिनके चरणोंको पाकर मार्गके मुहके उच्छ्वात्मसे निकलती हुई विपकी अग्नि बार बार शान्त हो जाती थी, जो मय्यन् लोकमें मान्य है, और जिनके शरीरपर फैली हुई लताओंको विद्याधरियां अपने हाथोंके अधभागमें हटा देती थीं वे वाहुबली स्वामी

१ समक्षे । २ भूयं ज्वनन् । ३ भुजबलिना अवधीरिता । ४ मय्याभावतम् । ५ गदग-
 धान्धाम् । ६ तप इत्यर्थः । ७ मह । ८ उपगतानि भूषा । ९ विपानिः ।

जयति भरतराजप्रांशुमौल्यप्ररलो-

पल्लुलितनखेन्दुः सृष्टुराद्यस्य सूनुः ।

भुजगकुलकलापैराकृत्स्नैर्नखिलत्वं

धृतिबलकलितो यो योगभून्नेय भजे ॥२०६॥

'शितिभिरलिक्लामंराभुजं लम्बमानं:

'पिहितभुजविट्टको मूर्धजंबल्लिताग्रः ।

जलधरपरिरोधध्याममूढैव भूधः

श्रियमवुषदनुनां दोर्वली यः स नोऽप्यात् ॥२१०॥

स जयति हिमकाले यो हिमानीपरीत'

धपुरचल इवोर्च्चैर्विभ्रदाविबंभूव ।

नखनसलिलीषैर्मंश्व घौतोऽब्दकाले'

'खरघृणिकिरणानप्य्पणकाले विपेहे' ॥२११॥

जयति 'जयिनमेन योगिन योगिवर्यैः

अधिगतमहिमानं मानित' माननीपैः ।

स्मरति हृदि नितान्तं यः स शान्तात्तरात्मा'

भजति विजयलक्ष्मीमासु जनीभजय्याम् ॥२१२॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसङ्ग्रहे भुजबलिजल-

मल्लद्विट्टिपुट्टविजयदोक्षाकेवसोत्पत्तिवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तम पर्व ॥३६॥

सदा जयवन्त हो ॥२०८॥ भरतराजके ऊचे मुकुटके अग्र भागमे लगे हुए रत्नोसे जिनके चरण के नखरूपी चन्द्रमा अत्यन्त चमक रहे थे, जो धैर्य और बलसे सहित थे तथा जो इसलिये ही क्षोभको प्राप्त हुए सर्पोंके समूहसे कभी आकुलताको प्राप्त नहीं हुए थे वे आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके पुत्र बाहुबली योगिराज सदा जयवन्त रहें ॥२०९॥ भूमरीके समूहके समान काले, भुजाओ तक लटकते हुए तथा जिनका अग्रभाग टेढा हो रहा है ऐसे मस्तकके बालोसे जिनकी भुजाओका अग्रभाग ढक गया है और इसलिये ही जो मेधोके आवरणसे मलिन शिखरवाले पर्वतकी पूर्ण शोभाको पुष्ट कर रहे हैं वे भगवान् बाहुबली हम सबकी रक्षा करें ॥२१०॥ जो शीतकालमें वर्षसे ढके हुए ऊचे शरीरको धारण करते हुए पर्वतके समान प्रकट होते थे, वर्षोऽनुत्तुमें नवीन मेधोके जलके समूहसे प्रक्षालित होते थे—भीगते रहते थे और ग्रीष्मकालमें सुयंको किरणोको सहन करते थे वे बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों ॥२११॥ जिन्होंने अन्तरङ्ग—बहिरङ्ग अनुओपर विजय प्राप्त कर ली है, बड़े बड़े योगिराज ही जिनकी महिमा जान सकते हैं, और जो पूज्य पुरषोके द्वारा भी पूजनीय हैं ऐसे इन योगिराज बाहुबलीको जो पुण्य अपने हृदयमे स्मरण करता है उसका अन्तरात्मा शान्त हो जाता है और वह क्षीय ही जिनेन्द्रभगवान्की अजय्य (जिसे कोई जीत न सके) विजयलक्ष्मी—मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥२१२॥

इम प्रथार भगवज्जिनसेनाचार्यं प्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराण संग्रहके भाषा-

नुवादमें बाहुबलीका जल-युद्ध, मल्ल-युद्ध और नेत्र-युद्धमें विजय प्राप्त करना,

दोक्षा धारण करना, और वैश्वज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन

करनेवाला—छत्तीसवा पर्व समाप्त हुआ ।

१ कृष्ण । २ आद्यप्रदिनबाहुबली । ३ वक्त्र । 'अविरुद्ध वृत्ति भुज वेत्तित वक्त्रमित्यर्षि' इत्यभिधानात् । ४ हिमगहनैर्विष्टम् । 'हिमानी हिमसर्ति' इत्यभिधानात् । ५ प्रावृत्काले । ६ मूर्ध । ७ गह्वरि स्म । ८ जयपीलम् । ९ पत्रितम् । १० उपशान्तचित्त ।

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

ध्रुव निर्घातितगोपविजयो भरतेश्वर । पुर सावेतमुखेत् प्राविक्षत् परया श्रिया ॥ १ ॥
 'तत्रास्व' नृपदार्लं अभिपेक कृतो मुदा । 'चातुरन्तजपधीस्ते प्रथता भुवनेष्विति ॥ २ ॥
 तमभ्यपिञ्चन् पौराश्च सान्त पुरपुरोषस । चिरायु पृथिवीगज्य 'क्रियाद् देव भवानिति ॥ ३ ॥
 राज्याभिषेचने भर्तृयो विधिर्व'पमेशिन । स सर्वोऽत्रापि तीर्थाम्बुस'भारादि कृतो नृप ॥ ४ ॥
 'तयाऽभिषिक्नस्तेनैव विधिनाज्जलकृतोऽधिराट् । तथैव जयघोषादि प्रयुक्त सामरं'पं ॥ ५ ॥
 तथैव सत्कृता विश्वे पाषिवा सप्ततामय । तथैव तपितो सोव परया दानसम्पदा ॥ ६ ॥
 'तयाध्वनन्महाधोवा' नान्दीधोवा महानका । प्रक्षुभ्यदद्वित्रिर्धोयो येवा घोषेरथ कृत ॥ ७ ॥
 धानादिन्यो महाभेर्ष' तथैवाभिहता मुहु । सद्गोतविधिरारम्य तथा प्रमदमण्डपे ॥ ८ ॥
 मूर्धाभिषिक्तं प्राप्तभिषेकस्यास्याजनि द्युति । मेराविवाभिषिक्तस्य नाको द्रंरादिवेषत् ॥ ९ ॥
 गङ्गासिन्धु सारिद्वेद्यो साक्षरतस्तोयदारिभि । 'श्रम्योऽशिष्टा तमभ्येत्य रत्नभूङ्गारसम्भृतं ॥ १० ॥
 कृताभिषेकमेन च नृपासनमधिष्ठितम् । गणवद्वामरा भेजु प्रणमं'मणिमौलिभि ॥ ११ ॥

अथानन्तर जिसने समस्त विग्विजय समाप्त कर लिया है ऐसे भरतेश्वरने जिसमें
 अनेक ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे अयोव्यानगरमें वडे वैभवके साथ प्रवेश किया ॥१॥ चतुरग
 विजयसे उत्पन्न हुई आपकी लक्ष्मी ससारमें अतिशय वृद्धि और प्रसिद्धिको प्राप्त होती रहे यही
 विचार कर वडे वडे राजाओंने उस अयोध्या नगरमें हर्षके साथ महाराज भरतका अभिषेक
 किया था ॥२॥ हे देव, आप दीर्घजीवी होते हुए चिरकालतक पृथिवीका राज्य करें, इस
 प्रकार बहते हुए अन्त पुर तथा पुरोहितोके साथ नगरके लोगोंने उनका अभिषेक किया था
 ॥३॥ जो विधि भगवान् वृषभदेवके राज्याभिषेकके समय हुई थी, तीर्थोका जल इकट्ठा करना
 आदि वह सब विधि महाराज भरतके अभिषेकके समय भी राजाओंने की थी ॥४॥ देवोंने
 साथ साथ राजाओंने भगवान् वृषभदेवके समान ही भरतेश्वरका अभिषेक किया था, उसी
 प्रकार आपूषण पहिनाये थे और उसी प्रकार जयघोषणा आदि की ॥५॥ उसीप्रकार परिवार-
 के लोगोके साथ साथ राजाओका सत्कार किया गया था, और उसीप्रकार दानमें दी हुई
 सम्पत्तिसे सब लोग सनुष्ट किये गये थे ॥६॥ जिनके शब्दोंने क्षोभित हुए समुद्रके शब्दको
 भी तिरकृत कर दिया था ऐसे वडे वडे शब्दोवाले मागलिक तगाडे उसीप्रकार वजाये गये थे
 ॥७॥ उसी प्रकार आनन्दकी महाभेरिया वार वार वजाई जा रही थी और आनन्दमण्यपमें
 सगीतकी विधि भी उसी प्रकार प्रारम्भ की गई थी ॥८॥ मेर पर्वतपर इन्द्रोने द्वारा अभिषेक
 किये हुए आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवकी जैसी कान्ति हुई थी उसी प्रकार राजाओके द्वारा
 अभिषेकको प्राप्त हुए महाराज भरतकी भी हुई थी ॥९॥ गंगा सिन्धु नदियोनी अविष्टात्री
 गंगा-सिन्धु नामकी देवियोने आवर रत्नोके भूङ्गारोंमें भरे हुए अथत महिन तीर्थजलसे भरन-
 का अभिषेक किया था ॥१०॥ जिनका अभिषेक समाप्त हो चुका है और जो राजसिंहासनपर
 बैठे हुए हैं ऐसे महाराज भरतकी अनेक गणवद्वदेव अपने मणिमयी मुकुटोंको नवा-नवाकर

१ सावेतपुराभि । २ चक्रिण । ३ षतुदिनु नवा जयन्मो । चातुरन्तग-न०, अ०, प०
 स०, इ० । ४ कुरु । ५ समूह । ६ यथा वृषभोऽभिषिक्तः । एवमुत्तरत्रापि यावन्मम । ७ प्रथम
 मद्गन्तरवा । ८ अभिषेक चक्रन् । ९ अद्गररादेवा ।

हिमवद्विजयार्धशौ भागधाद्याश्च देवता । खंचराश्चोभयश्रेण्यो त नेमुनंश्रमौलय ॥ १२ ॥
 सोऽभिषिक्तोऽपि नोत्सितवतो बभूव नृपसत्तमं । महता हि मनोवृत्ति नोत्सेकं परिरम्भिणी ॥ १३ ॥
 चामरंबीज्यमानोऽपि न निर्वृत्तिमगाव् विभु । भ्रातृत्वसन्धिभक्ता धी इतीहानुशयानुग ॥ १४ ॥
 धोर्बलिभ्रातृसङ्घर्षात् नास्य तेजो विकीपितम् । प्रत्युतोत्कारिहेम्नो वा घृष्टस्य निकोपोपले ॥ १५ ॥
 निष्कण्ठकमिति प्राप्य साम्राज्य भरताधिप । वभी भास्वानिवोद्भिक्तप्रताप शुद्धमण्डल ॥ १६ ॥
 क्षेमं कतानतां भोजु प्रजास्तस्मिन् सुराजनि । योगक्षेमो वितन्वाने मन्वाना स्वां सनायताम् ॥ १७ ॥
 ययास्य सविभज्यामी सम्भुक्ता निघण्डुज्जुना । सम्भोग सविभागश्च फलमर्षाजने द्वयम् ॥ १८ ॥
 रत्नान्यपि ययाकाम निविष्टानि निघोशिना । रत्नानि ननु तान्येव यानि यान्युपयोगिताम् ॥ १९ ॥
 मनुश्चक्रभूतामाद्य पट्टखण्डभरताधिप । राजराजोऽधिराट् सन्नाडित्यस्योद्धोषित यदा ॥ २० ॥
 नन्दनो वृषभेदास्य भरत शातमातुर । इत्यस्य रोदसी व्याप शुभ्रा कीर्तिरनश्वरी ॥ २१ ॥
 कीदृक् परिच्छदस्तस्य विभवश्चक्रवर्तिन । इति प्रदन्वशादस्य विभवोद्देशकोत्तनम् ॥ २२ ॥
 गलन्दजलास्तस्य गजा सुरगजोपमा । लक्षाश्चतुरशीतस्तै रदंबदं सुकल्पितं ॥ २३ ॥

सेवा कर रहे थे ॥११॥ हिमवान् और विजयार्ध पर्वतके अधीश्वर हिमवान् तथा विजयार्ध-
 देव, मागध आदि अन्य अनेक देव, और उत्तर-दक्षिण श्रेणीके विद्याधर अपने मस्तक भुका
 भुकाकर उन्हें नमस्कार कर रहे थे ॥१२॥ अनेक अच्छे राजाओके द्वारा अभिषिक्त
 होनेपर भी उन्हें कुछ भी अहंकार नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी मनोवृत्ति
 अहंकारका स्पर्श नहीं करती ॥१३॥ यद्यपि उनके ऊपर चमर ढुलाये जा रहे थे तथापि वे,
 उसमें सतोंपको प्राप्त नहीं हुए थे क्योंकि उन्हें निरन्तर इस बातका पछतावा हो रहा था
 कि मैंने अपनी विभूति भाइयोंकी नहीं बाट पाई ॥१४॥ भाई बाहुवलीके सघर्षसे उनका
 तेज कुछ कम नहीं हुआ था किन्तु कसौटीपर घिसे हुए सोनेके समान अधिक ही हो गया था
 ॥१५॥ इस प्रकार निष्कण्ठक राज्यको पाकर महाराज भरत उस सूर्यके समान देदीप्यमान
 हो रहे थे जिसका कि प्रताप बढ़ रहा है और मण्डल अत्यन्त शुद्ध है ॥१६॥ योग (अप्राप्त
 वस्तुकी प्राप्ति करना) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना) को फलानेवाले उन उत्तम
 राजा भरतके विद्यमान रहते हुए प्रजा अपने आपको सनाय समझती हुई कुशल मगलको
 प्राप्त होनी रहती थी ॥१७॥ महाराज भरतने निघण्डुका यथायोग्य विभागकर उनका
 उपभोग किया था मो ठीक ही है क्योंकि स्वयं सम्भोग करना और दूसरेको विभाग कर देना
 ये दो ही धन बमानेके मुख्य ऋ हैं ॥१८॥ निघण्डुके स्वामी भरतने रत्नोंका भी इच्छानुसार
 उपभोग किया था मो ठीक ही है क्योंकि वास्तवमें रत्न वही हैं जो उपयोगमें आवें ॥१९॥
 यह गोट्टवा मनु है, चक्रवर्तियोंमें प्रथम चक्रवर्ती है पट्ट खण्ड भरतका स्वामी है, राजराजेश्वर
 है, अधिराट् है और ममाट् है इस प्रकार उसका यश उद्घोषित हो रहा था ॥२०॥ यह
 भरत भगवान् वृषभदेवका पुत्र है और इमकी मातावे सी पुत्र है इस प्रकार इसकी कभी नष्ट
 नहीं होनेवागी उज्वल कीर्ति आवास तथा पृथिवीमें व्याप्त हो रही थी ॥२१॥ उस चक्रवर्ती-
 का परिवार किना था ? और विभूति कितनी थी ? राजा श्रेणियके इस प्रदन्वा उत्तर
 देनेके लिये नीतमन्वामी उगवी विभूतिवा द्ग प्रवार वर्णन करने लगे ॥२२॥ महाराज
 भगवते, जिनके गण्डमन्त्रमें मद्रूपी जल भर रहा है, और जो जडे हुए सुसज्जित दातोसे सुशो-

दिव्यरत्नविनिर्माण रथास्तावन्त एव हि । मनोवापुजवा सूर्यरथप्रस्यधिरहम् ॥ २४ ॥
 कोटयोऽष्टादशाद्याना भूजलाभ्यरचारिणाम् । यत्पुराप्रणि घीतानि पूतैस्त्रिपयपाजलि ॥ २५ ॥
 चतुर्भिरधिकाशीति कोटयोऽस्य पदातय । येषां सुमन्दसम्मदं निरुद्धं पृथपवत्म् ॥ २६ ॥
 वज्रास्तियवन्वनं वाज्यं बलपर्वं वेष्टित वपु । वज्रनाराचनिभन्मन् प्रमद्यमनधन् प्रभो ॥ २७ ॥
 समसुप्रविनवनाद्ग्य चतुरस्रं सुमहति । यन् सुन्दरमस्यातीतु सस्यानेनादिना द्विभो ॥ २८ ॥
 निरुद्धस्तककच्छाद्य सच्चक्रुः पण्डितक्षणम् । रुद्धं व्यञ्जनंस्तस्य नितगंतुभग वपु ॥ २९ ॥
 शारीर यच्च यावच्च बल पटलपटनभूजाम् । ततोऽधिरतर तस्य बलमासीद् बलीयस ॥ ३० ॥
 शासन तस्य चराद्धरम् आसिन्दोरनिवारितम् । शिरोनिरुद्धमाह्वयिकुर्मं पृथिवीधरं ॥ ३१ ॥
 द्वानिनाम्नीलिवद्वाना सहस्राणि महीक्षिताम् । कृत्वाचलं रिवाद्रोद्ध त रजे यं परिरुद्ध ॥ ३२ ॥
 तादन्त्येव सहस्राणि देशानां सुनिवेक्षितानाम् । परलद्धतमाभाति चक्रभूक्षेत्रमापतम ॥ ३३ ॥
 कलाभिजात्यसम्भवा वैश्यास्तावत्प्रमास्तृता । रूपलाज्ययशान्तीनां या दृग्दाहरभूमय ॥ ३४ ॥
 म्लेच्छराजादिभिर्दत्ता तावन्त्यो नृपवल्लभा । अम्बरसक्या क्षोणं यवगभिरवतारिता ३५ ॥
 श्वरद्वयश्च तावन्त्य तन्व्य कोमलविग्रहा । भदरोहीपतैर्पाता दृष्टिवाणीजित जगन् ॥ ३६ ॥

मित है ऐमे ऐरावत हायीके ममान चौरासी लात्र हायी ये ॥२३॥ जिनका वग मन और वायुके समान है अथवा जिनकी तेज चाल सर्वके माय म्पर्धा करनेवागी है ऐमे दिव्य ग्लाके वने हुए उतने ही अर्थात् चौरासी लात्र ही रथ थे ॥२४॥ जिनके सुरोके अग्रभाग पवित्र गगा जलसे धुले हुए है और जो पृथिवी, जल तथा आकाशमें समान रूपसे चल सकते है ऐमे अठारह करोड घोडे है ॥२५॥ अनेक योद्धाओके मर्दन करनेमें जिनका पुरपाय प्रसिद्ध है ऐमे चौरासी करोड पैदल सिपाही थे ॥२६॥ महाराज भरतका शरीर वज्रकी हृदयको वन्धन और वज्रके ही वेष्टनोसे वेष्टित था, वज्रमय कीलोसे कीलित था और अम्बेज अर्थात् भेदन करने योग्य नहीं था । भावायं—उनका शरीर वज्रवृषभनाराचमहननका धारक था ॥२७॥ उनका शरीर चतुरस्र था—चारो ओरने मनोहर था, उसके अगोपागोका विभाग गमानरूपने हुआ था अगोकी मिलावट भी ठीक थी और समचतुरस्र नामके प्रथम महननसे अथत सुन्दर था ॥२८॥ जिनकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान थी और जिसपर चामठ लक्षण थे ऐना उमवा त्वभावने ही सुन्दर शरीर तिल आदि व्यञ्जनोसे बहुत ही सुगोमित हो रहा था ॥२९॥ छहो लणके राजाओका जो और जितना कुठ शारीरिक् बल था उसने कही जधिव बल उन बलवान् भरतके शरीरमें था ॥३०॥ जिसका चत्र ही चिह्न है और समुद्रपर्वन्त जिसे कोई नहीं रोक सकता ऐसे उसके शासनको बडे बडे परानमको धारण करनेवाले राजालोग अपने शिरपर धारण करते थे ॥३१॥ उनके वत्तीस हजार मुकुटवद्ध राजा थे, उन राजाओमे वेष्टित हुए महागज भरत कुलाचलोमे धिरे हुए सुमेरु पर्वतने ममान सुगोमित होते थे ॥३२॥ महाराज भरतके अच्छी अच्छी रचनावाये उत्तीम हजार ही देश थे और उन सबमे सुगोमित हुआ चक्रवर्तीका लम्बा चौडा क्षेत्र बहुत ही अच्छा जान पडता था ॥३३॥ उनके उतनी ही अर्थात् वत्तीम हजार ही देविया थी जो कि उच्च बुद्ध और जानिसे मम्मत्र थी तथा जो म्त्र लावण्य और कान्तिकी मूद्ध सानिके समान जान पडती थी ॥३४॥ इनके निवाय जिन्हने पृथिवीपर अम्बरओनी पयाओको उत्तार लिया था ऐसी म्लेच्छ राजा आदिकोसे द्वारा दी हुई वत्तीम हजार प्रियगनिया थी ॥ ॥३५॥ इसी प्रकार जिनका शरीर अत्यन्त कोमल था और कामको उत्तेजित करने-

१ चतुरस्रीनिकशा एव । २ वगा । ३ पटम् । ४ प्रसिद्धम् । ५ पीठम् । ६ वधनेवा
 ७ । ७ कीलितम् । ८ मनोन्म् । ९ सुमम्बद्धम् । १० भूजाम् । ११ कृत्वाचलमि-तः ।

नलाशु कुसुमोद्भवे आरभत पाणिपल्लवम् । तास्तन्म्यो भुजगासाभि भेगु कल्पतताश्रियम् ॥ ३७ ॥
 स्तनवज्रकूटमलैरास्यपटकरजेश्व विकारसिभि । श्रज्जित्य इव ता रेजु मवनायासभूमिषा ॥ ३८ ॥
 मन्ये पात्राणि गात्राणि तासा कामप्रहोच्छ्रितौ । पवावेगवशादेयं दया प्राप्तोऽतिवर्तिनोम् ॥ ३९ ॥
 शङ्करं निशातपापाणाप्रखानासा मनोभुव । यत्रोपाहृतैश्वर्यं स्वं श्रधिष्यत् कामिन शरै ॥४०॥
 सत्य महेषुधी जडघे तासा मदनवन्धिन । कामस्यारोहीनि श्रेणी^१स्यानीपावूहवण्डको ॥ ४१ ॥
 कटौ कुटौ मनोजस्य काञ्चीसालकृतावृत्ति । नाभिरासा गभोरंका कृपिका घित्तजन्मन ॥ ४२ ॥
 मनोभुवोऽतिवृद्धस्य मन्त्रेऽवधम्भ^२यष्टिका । रोमराजि स्तनौ चासां कामरत्नकरण्डको ॥ ४३ ॥
 कामरासायतौ बाहू धिरोयोधगमकमनौ । कामश्लोच्छ्वसितं कण्ठ सुकण्ठीना मनोहर ॥ ४४ ॥
 मुख रतिसुखागारप्रमुखं मुखबन्धनम् । वैराग्यरत्नसङ्गस्य तासा च दशनच्छद^३ ॥४५॥
 दृग्धितासा शरास्तासा कर्गाती लक्ष्यतां गतो । भ्रूवल्लरो धनुर्घण्टि जिगीयो पुष्पधन्विन ॥ ४६ ॥
 ललाटाभोगमेतासा मये बाह्यालिका^४स्थलम् । अनङ्गनूपतेरिष्ट^५भोगवन्दुकचारिण ॥४७॥
^१असिका कामकृष्णाहे शिखर^६ परिशुञ्जिता । कुञ्चिता केशवत्तयो मदनस्येव वागुरा^७ ॥४८॥

वाले जिनके नेत्ररूपी बाणोसे यह समस्त ससार जीता गया था ऐसी बत्तीस हजार रानिया और भी उनके अन्त पुरमें थी ॥३६॥ वे छियानवे हजार रानिया नखोकी किरणरूपी फूलोके खिलनेसे कुछ कुछ लाल हयेलीरूपी पल्लवोसे और भुजारूपी शाखाओसे कल्पलताकी शोभा धारण कर रही थी ॥३७॥ कामदेवके निवास करनेकी भूमिस्वरूप वे रानिया स्तनरूपी कमलोकी बोडियोसे और खिले हुए मुखरूपी कमलोसे कमलिनियोके समान सुशोभित हो रही थी ॥३८॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोके शरीर कामरूपी पिशाचकी उन्नतिके पात्र थे क्योंकि उनके आंवेशके वगसे ही यह कामदेव सबको उल्लघन करनेवाली विशाल अवस्थाकी प्राप्त हुआ था ॥३९॥ अथवा मुझे यह भी शका होती है कि उन रानियोके नख, कामदेवके बाण पंने करनेके पापाण थे क्योंकि वह उन्हीपर घिसकर पंने किये हुए बाणोसे कामी लोमोपर प्रहार किया करता था ॥४०॥ यह भी सच है कि उनकी जघाएँ कामदेवरूपी धनुर्घारीके बड़े बड़े तरवस थे और ऊरुदण्ड (घुटनोसे ऊपरका भाग) कामदेवके चढनेकी नसैनी के समान थे ॥४१॥ बरधनीरूपी कोटसे घिरी हुई उनकी कमर कामदेवकी कुटीके समान थी और उनकी नाभि कामदेवकी गहरी कपिका (कुडियाँ)के समान जान पडती थी ॥४२॥ मैं मानता हूँ कि उनकी रोमराजि कामदेवरूपी अत्यन्त वृद्ध पुरुषके सहारेकी लकडी थी और उनके स्तन कामदेवके रत्न रखनेके पिटारे थे ॥४३॥ शिरोपके फूलके समान कामल उनकी दोनो भुजाएँ कामदेवके पाशके समान लम्बी थी और अच्छे कण्ठवाली उन रानियोका मनोहर कण्ठ कामदेवके उच्छ्वामके समान था ॥४४॥ उनका मुख रति (प्रीति) रूपी सुखका प्रधान भवन था और उनके ओठ वैराग्यरमकी प्राप्तिके मुखबन्धन अर्थात् द्वार बन्द करनेवाले कपाट थे ॥४५॥ उन रानियोके नेत्रोके बटाक्ष विजयकी इच्छा करनेवाले कामदेवके बाणोके समाप्त थे, कानके अन्तमाग उनके लक्ष्य अर्थात् निदानोके समान थे और भ्रौंहरूपी लता धनुषकी लण्डोके समान थी ॥४६॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोके ललाटका विस्तार इष्टभोग की गेंदगे करनेवाले कामदेवकी राजाके खेलेका मानो मैदान ही हो ॥४७॥ उनके

१ कर्षी । २ वटर्षा करामि । ३ प्राण । ४ सद्गो इत्ययं । ५ आधार । ६ जीवितम् । ७ प्रहृष्टाङ्गम् । ८ पीताम् । पीताहो मुखवधनमस्य यत् इत्यभिधानात् । ९ रत्नच्छद - ल० । १० गतु । ११ इष्टभोगा एव कटुक । १२ वृणोवृन्तता । अत्राङ्गभूयं कल्पसा इत्यभिधानात् । १३ तावका । १४ पुष्य शाबक गिष् इत्यभिधानात् । १५ मृगवधनी ।

इत्यन्तद्गमयोः सृष्टिं तन्वाता द्वाद्वागसिद्धिगनीम् । मनोऽस्य^१ जगद्दृष्ट्वा कान्ता कान्तं स्वं कामचेष्टितं
तासा मृदुकरस्पर्शं ब्रह्मन्तिथ्यंश्च बोधितं । महतो धृतरथास्तीज्जल्पितंरपि मन्मनं^२ ॥ ५० ॥
स्मितेष्वासा दरोद्भिन्नो^३ हसिनेयु विक्स्वर^४ । फलित^५ परिरम्भेयु^६ रसिकोऽभूत्तदुम ॥ ५१ ॥
भ्रूक्षेपयन्प्रायाणं दृक्षेपक्षेपणोदृतं । बहुदुर्गंरणस्तासा स्मरोऽभून् सक्चप्रह^७ ॥ ५२ ॥
सर प्रणयगर्भेयु कोरेष्वनुनये मृदु । स्तन्यो व्यलीकमानेयु मुग्ध प्रणयसंतवे ॥ ५३ ॥
निर्दय परिरम्भेयु सानुजानो मूषापणं । प्रतिपत्तियु सम्मूढ पटु वरणचेष्टितं ॥ ५४ ॥
सकल्पेष्वाहितोक्तयो मन्द^८ प्रत्यप्रसन्नगमे । प्रारम्भे रसिको दीप्त प्राप्ते कश्चकातर^९ ॥ ५५ ॥
इ च्छाव^{१०} चता भेजे तासा दोष स मन्मय । प्रायो भिन्नरस काम कामिना हृदयद्गम ॥ ५६ ॥
प्रकाममवुरानित्य कामान्^{११} कामातिरेकिय । स ताभिर्निबिडान् रेमे^{१२} ब्युत्पानिव मन्मय ॥ ५७ ॥
तादृच तच्चित्तहारिष्य तह्य्य प्रणयोदुरा । बभूवु प्राप्तसाग्ग्या इव^{१३} रत्युत्सवधिय ॥ ५८ ॥

इकट्ठे हुए आगेके सुन्दर वाल कामदेवस्त्री काले सर्पके वल्चोके समान जान पडते थे तथा कुछ कुछ टेढी हुई केशस्त्री लताएँ कामदेवके जालके समान जान पडती थी ॥८८॥ इस प्रकार अपने शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली कामनयी रचनाको प्रकट करती हुई वे रानियाँ अपनी सुन्दर कामकी चेष्टाओ से महाराज भरतका मन हरण करती थी ॥४९॥ उनके कामल हाथोके स्पर्शसे, प्रेमपूर्ण सरस अवलोकनसे, और अव्यक्त मधुर शब्दोमे इमे बहुत ही मतोप होता था ॥५०॥ रससे भरा हुआ मुरतरपी वृक्ष इन रानियोके मन्द मन्द हँसनेपर कुछ खिल जाता था, जोरमे हँसनेपर पूर्णरूपसे खिल जाता था और आलिंगन करनेपर पत्रोमे युक्त हो जाता था ॥५१॥ भौहोके चलानेरूप यन्त्रोसे फेंके हुए पत्थरोके द्वारा तथा दृष्टियोके फेंकनेरपी यन्त्र विशेषो (गुयनो)के द्वारा उन स्त्रियोका बहुत प्रकारका विलेवन्दीका युद्ध होता था और कामदेव उसमें सबकी छोटी पकटनेवाला था । मावार्य-कामदेव उन स्त्रियोसे अनेक प्रकारकी चेष्टा कराता था ॥५२॥ कामदेव इनके प्रेमपूर्ण शोधके समय बठोर हो जाता था, अनुनय करने अर्थात् पतिके द्वारा मनाये जानेपर कोमल हो जाता था, झूठा अभिमान करनेपर उद्वण्ड हो जाता था, प्रेमपूर्ण कपट करते समय भोला या अनजान हा जाता था, आलिंगनके समय निर्दय हो जाता था, चुम्बनके लिये मुग्ध प्रदान करते समय आज्ञा देनेवाला हो जाता है, स्वीकार करते समय विचार मूढ हो जाता है, हाव-भाव आदि चेष्टाओमे समय अत्यन्त चतुर हो जाता है, सकल करते समय उत्कर्षको धारण करनेवाला हो जाता है, नवीन समागमके समय लज्जासे कुछ मन्द हो जाता है, सभोग प्रारम्भ करते समय अत्यन्त रमिक हो जाता था और सभोगके अन्तमें कष्टाने कातर हो जाता था । इस प्रकार उन रानियोका अत्यन्त प्रज्वलित हुआ कामदेव ऊची-नीची अवस्थाको प्राप्त होता था अर्थात् घटना-वटना रहता था सो ठीक ही है जो काम प्रायः भिन्न भिन्न रगोसे भरा रहता है वही कामी पुण्योको सुन्दर मालूम होता है ॥५३-५६॥ इस प्रकार वह चक्रवर्ती उन रानियोके माथ अत्यन्त मधुर तथा इच्छाओमे भी अधिक भोगोको भोगना हुआ शरीरधारी कामदेवके समान शीटा करता था ॥५७॥ भरतके चित्तको हरण करनेवागी और प्रेममे भरी हुई वे तण्य स्त्रिया ऐसी जान पडती थी मानो साम्राज्यो प्राप्त हुई रत्युत्सवस्त्री लक्ष्मी ही हो ॥५८॥

१ मन्मय । २ अप्यक्त । ३ ईषाद्विक्रियत । ४ फलित म० । ५ आनन्दानयु । ६ दुःसुप्तमयु ।

७ यव । ८ कश्चकातरमात्र । ९ नानावारागताम् । १० मनायपवृद्धिगतम् । ११ मूर्तिमान् ।

१२ रत्युत्सव धिय ल० ।

नाटकानां सहस्राणि द्वाविंशत्प्रमितानि वै । सातोद्यानि समेषानि यानि रम्याणि भूमिभिः^१ ॥ ५६ ॥
 द्वासप्ततितः सहस्राणि पुरामिन्द्र पुरधियम् । स्वर्गलोक इवाभाति नृलोको घोरलङ्घकृतः ॥ ६० ॥
 ग्रामकोटचक्र च विन्धोपा विभोः पण्णवतिप्रमाः । नन्दनोद्देशजित्वयो^२ यासामारामभूमय^३ ॥ ६१ ॥
 द्रोणामुखसहस्राणि नवतिर्नन च वै हि । धनधान्यसमृद्धीनाम् श्रुधिष्ठानानि यानि वै ॥ ६२ ॥
 पत्तनानां सहस्राणि चत्वारिंशत्तयाऽष्ट च । रत्नाकरा इवाभान्ति येषामुद्घा^४ यणिकृपयाः ॥ ६३ ॥
 पोडशैव सहस्राणि खेटानां पुरिमा मता । प्राकारगोपुराट्टाल^५ खालवद्रादिशोभिनाम् ॥ ६४ ॥
 भवेयुरन्तरद्वीपाः पटपञ्चाशत्प्रमाभिताः । कुमानुपजनाकीर्णा येऽण्वस्य खिलायिताः^६ ॥ ६५ ॥
 संवाहानां सहस्राणि सख्यातानि^७ चतुर्विंश । बहन्ति यानि लोकस्य योगक्षेमविधाविधिम्^८ ॥ ६६ ॥
 स्थालीमा कोटिरिकोक्ता रम्यने^९ या नियोजिता । पक्षी स्थालीबिलोयाना^{१०} तण्डुलानां महानसे ॥ ६७ ॥
^१कोटीशतसहस्रं स्यादलानां कुट्टिभ्रं^{११} समम् । ^{१२}कर्मान्तकवर्णे यस्य विनियोगो निरन्तरः ॥ ६८ ॥
 तिलोऽस्य^{१३} चक्रकोटयः स्युः गोकुलं शश्वदाकुलाः । यत्र मन्वरवाकृष्टाः तिष्ठन्ति स्माध्वगाः क्षणम् ॥ ६९ ॥
^{१४}कुक्षिवाप्तशताग्रस्य सप्तैवोक्तानि कोविदेः । ^{१५}प्रत्यन्तवासिनो यत्र न्यवात्सु^{१६} शृतसंभयाः ॥ ७० ॥

उनकी विभूतिमें बत्तीस हजार नाटक थे जो कि भूमियोसे मनोहर थे और अच्छे अच्छे वाजों तथा गानोसे सहित थे ॥५९॥ इन्द्रके नगर समान शोभा धारण करनेवाले ऐसे बहतर हजार नगर थे जिनसे अलङ्कृत हुआ यह नरलोक स्वर्गलोकके समान जान पड़ता था ॥६०॥ उस चक्रवर्ती ऐसे छियानवे करोड गाव थे कि जिनके बगीचोकी शोभा नन्दन वनको भी जीत रही थी ॥६१॥ जो धन-धान्यकी समृद्धियोके स्थान थे ऐसे निन्यानवे हजार द्रोणामुख अर्थात् वन्दरगाह थे ॥६२॥ जिनके प्रशसनोय बाजार रत्नाकर अर्थात् समुद्रोके समान सुशोभित हो रहे थे ऐसे अडतालीस हजार पत्तन थे ॥६३॥ जो कोट, कोटक प्रमुख दरवाजे, अटारिया, परिखाए और परकोटा आदिसे शोभायमान हैं ऐसे सोलह हजार खेट थे ॥६४॥ जो कुमोगभूमि या मनुव्योसे व्याप्त थे तथा समुद्रके सारभूत पदार्थके समान जान पड़ते थे ऐसे छप्पन अन्तरद्वीप थे ॥६५॥ जो लोगोके योग अर्थात् नवीन वस्तुओकी प्राप्ति और क्षेम अर्थान् प्राप्त हुई वस्तुओकी रक्षा करना आदिकी समस्त व्यवस्थाओको धारण करते थे तथा जिनके चारो ओर परिखा थी ऐसे चौदह हजार सवाह थे ॥ ६६ ॥ पकानेके काम आनेवाले एक करोड हडे थे जो कि पाकशालामें अपने भीतर डाले हुए बहुतसे धावलोको पकानेवाले थे ॥६७॥ फसल आनेके बाद जो निरन्तर खेतोको जोतनेमे लगाये जाते हैं और जिनके साथ बीज बोनेकी नाली लगी हुई है ऐसे एक लाख करोड हल थे ॥६८॥ दही मयनेके घडरोमे आवृषित हुए पथिक लोग जहा क्षणभरके लिये ठहर जाते हैं और जो निरन्तर गायोके गमूहमे भरी रहती हैं ऐसी तीन करोड ब्रज अर्थात् गौशालाएँ थी ॥६९॥ जहा आश्रय पाकर गमोपवर्ती लोग आकर ठहरते थे ऐसे कुक्षिवासोकी सरया पण्डित लोगोंने सातसौ

१ वैशं । २ पुगणाम् । ३ जयनीना । ४ नवाधिकनवनिः । ५ प्रगस्ता । ६ धूलिकुट्टिम ।
 ७ अप्रतिहन्यमानायािका । ८ द्वि गितराग्रहे गमे इत्यभिधानान् । ९ गवातानि-त० । १० विधानप्रकारम् ।
 ११ पचने । १२ पचनवर्गि । १३ स्थालीबिलमन्तीनि स्थालीबिलीयास्तेषाम् । पचनाहंताम् इत्यर्थं ।
 १४ शटीता पशुम् । १५ कृतिभे ६०, ७०, ८०, ९०, १००, ११०, १२० । कृतिभे १० । कृतिभे २० । १६ आसप्रप-
 विपयतेवकर्मणे । १७ गोपयानकम् । १८ ब्रजो घोष्याध्वकृदेयु इत्यभिधानान् । १९ न्नाना त्रयविपयत्पान ।
 २० इत्येच्छा । २१ निवर्तानि म् । २२ पहाडोर यगनेवाये नगर गवाह कल्पाने हैं । २३ जहा रया
 वा स्थानर होग है उन्हें कुक्षिवास कहते हैं ।

दुर्गाटवीं सहस्राणि तस्याष्टाविंशतिमता । वनधन्वाननिम्नादिबिभाग्या विभागिता ॥७१॥
 म्पेच्छराजसहस्राणि तस्याष्टदशसहस्रया । रत्नानामुद्भवक्षेत्र यं समन्तादधिष्ठितम् ॥७२॥
 कालात्पदच महाकालो नैस्यं पण्डुकाह्वया । पद्ममाणवपिङ्गावन्नसर्वरत्नपदादिका ॥७३॥
 निषयो नव तस्यासन् प्रतीतरिति नामभि । यंरय गृहवार्तायां निश्चिन्तोऽभूमिधोऽश्वर ॥७४॥
 निधि . पुण्यनिधेरस्य कालास्य प्रथमो मत । यतो लौकिकशब्दादिवार्ताना प्रभवोऽब्रह्म ॥७५॥
 इन्द्रियार्था मनोज्ञा ये बीणावज्ञानकादय । तान् प्रसूते यथाकाल निधिरेव विशेषत ॥७६॥
 प्रसिमप्यादिषट्कर्मसाधनद्रव्यसम्पद । पत शश्वत् प्रसूयन्ते महाकालो निधि स वै ॥७७॥
 शय्यासनालयबीजा न सप्यात् प्रभवो निधे । पाण्डुकाह्वान्यसम्भूति षड्रसोत्पत्तिरप्यत ॥७८॥
 पट्टाशुकदुकूलादिवस्त्राणा प्रभवो यत । स पद्माह्यो निधि पद्मागर्भाविर्भावितोऽद्युतत् ॥७९॥
 दिव्याभरणभेदानाम् उद्भव पिङ्गलाग्निधे । माणवानोतिशास्त्राणा शस्त्राणा च समुद्भव ॥८०॥
 शङ्खात् प्रदक्षिणावर्तात् सौवर्णां सृष्टिमुत्तुजन् । स शङ्खानिधिरष्टदल चरुवरोर्वाजितायंरत् ॥८१॥
 सर्वरत्नान्महानीलनीलस्यूलोपलादय । प्रादु सन्ति मणिच्छायारचितेन्द्रायध्विष ॥८२॥
 रत्नानि द्वितयान्यस्य जीवाजीवविभागत । क्षमात्राणश्वयंसम्भोगसाधनानि चतुर्दश ॥८३॥

वतलाई है ॥७०॥ अट्टार्दश हजार ऐमे सधन वन थे जो कि निजल प्रदेश और ऊचे ऊचे पहाडी विभागोंमें विभक्त थे ॥७१॥ जिनके चारो ओर रत्नोके उत्पन्न होनेके क्षेत्र अर्थात् खानें विद्यमान हैं ऐसे अठारह हजार म्लेच्छ राजा थे ॥७२॥ महाराज भरतके बाल, महाकाल नैस्यं, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिङ्ग, शख और सर्वरत्न इन प्रसिद्ध नामोंसे युक्त ऐसी नौ निधिया थी कि जिनसे चतुर्वर्ती घरकी आजीविकाके विषयमें विलकुल निश्चिन्त रहते थे ॥७३-७४॥ पुण्यकी निधिस्वरूप महाराज भरतके पहली बाल नामकी निधि थी जिससे प्रत्येक दिन लौकिक शब्द अर्थात् व्याकरण आदिके शास्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥७५॥ तथा बीणा, धासूरी, नगाडे आदि जो जो इन्द्रियोके मनोज्ञ विषय थे उन्हें भी यह निधि समयानुसार विशेष रीतिसे उत्पन्न करती रहती थी ॥७६॥ जिससे असि, मपी आदि छह कर्मोंके साधनभूत द्रव्य और सपदाए निरन्तर उत्पन्न होती रहती थी वह महाकाल नामकी दूसरी निधि थी ॥७७॥ शय्या, आसन तथा मवान आदिकी उत्पत्ति नैस्यं नामकी निधिसे होती थी । पाण्डुक निधिसे धान्योकी उत्पत्ति होती थी इसके सिवाय छह रसोंकी उत्पत्ति भी इसी निधिसे होती थी ॥७८॥ जिससे रेशमी सूती आदि सब तरहके वस्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती है और जो कमलके भीतरी भागोंसे उत्पन्न हुएके समान प्रकाशमान हैं ऐसी पद्म नामकी निधि अत्यन्त देदीप्यमान थी ॥७९॥ पिङ्गल नामकी निधिसे अनेक प्रकारके दिव्य आभरण उत्पन्न होते रहते थे और माणव नामकी निधिसे नीतिशास्त्र तथा अनेक प्रकारके शास्त्रोंकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥८०॥ जो अपने प्रदक्षिणावर्त नामके शयसे सुवर्णकी सृष्टि उत्पन्न करती थी और जिसने उछलती हुई सुवर्ण जैमी कान्तिसे सूर्यकी किरणोंको जीत लिया है ऐसी शख नामकी निधि थी ॥८१॥ जिसके मणियोंकी कान्तिसे इन्द्रधनुषकी शोभा प्रकट हो रही है ऐसी सर्वरत्न नामकी निधिसे महानील, नील तथा पद्मराग आदि अनेक तरहके रत्न प्रकट होते थे ॥८२॥ इनके सिवाय भरत महाराजके जीव और अजीवके भेदमें दो विभागोंमें बटे हुए चौदह रत्न भी थे जो कि पृथिवीकी रक्षा और ऐदवर्षके उपभोग करनेके साधन थे ॥८३॥

१ महभूमि । 'समानो मरधवानो' इयभिधानात् । २ धवनिम्नादिनिम्नादि-२० । वनधन्वान-
 ननग्रादि-२० । ३ बुशिवामम् । ४ म्लेच्छराजं । ५ पिङ्गल पिङ्गलम् । अन्न वनम् । ६ व्यापारे ।
 ७ बालनिधे । ८ जनपत् । ९ उच्चम् । १० पद्मरागम् । ११ प्रदीपवर्ति । १२ पृथ्वीरागम् ।

चक्रातपत्रदण्डासिमणयश्चम काकिणी । चमूहपत्नीभाश्ययोपित्तभृपुरोधत ॥८४॥
 'चक्रासिदण्डरत्नानि सच्छत्राण्यायुधालयात् । जातानि मणिचर्चान्या काकिणी श्रीगृहोदरे ॥८५॥
 स्त्रीरत्नगजवाजीना प्रभवो^१ रीप्यशीलत । रत्नान्यग्यानि साकेताञ्जशिरे निधिभि समम् ॥८६॥
 निधीना सह रत्नाना^२ गुणान् को नाम वर्णयेत् । 'यंराजजितमूर्जेस्वि' हृदय चक्रवर्तित ॥८७॥
 भेजे पद्मस्तुजानिच्छान् भोगान् पञ्चेन्द्रियोचितान् । स्त्रीरत्नसार^३ 'पिस्तद्धि' निधान^४ सुखसम्पदाम् ॥८८॥
 कात्तरत्नमभूत्स्य तु भद्रेत्यनुपद्वुतम्^५ । 'भद्रिकाञ्जो प्रहृष्यैव'^६ जात्या विद्याधरात्नव्या ॥८९॥
 शिरीषमृकुमारादृगी चम्प^७ कच्छदसच्छवि । धकुलामोदनि श्वासा पाटला^८ पाटलाधरा^९ ॥९०॥
 प्रबुद्धपद्मसौम्यास्या नीलोत्पलदलेक्षण । सुभूरत्तिकुलानीलमृदुकुञ्चितमूर्द्धजा ॥९१॥
 तनूदरो वराहोहा^{१०} । 'वामोक्तनिविडस्तनी । मृदुवाहूलता साऽभून्मदनानेरिवारणि'^{११} ॥९२॥
 तत्कर्मो^{१२} नूपुरामञ्जुपुञ्जितमूर्त्तरीकृतौ । मदनद्विरदस्येव तेननुजेयाडिण्डिमम् ॥९३॥
 नि धेणीकृत्य तज्जदप्ये सहृद्द्वारत्नव्यताम् । वासगेहास्थयाज्जगस्तच्छोणी^{१३} नूनमासदत् ॥९४॥

चन्द्र, छत्र, दण्ड, अस्ति, मणि, चर्म और काकिणी ये सात अजीव रत्न थे और सेनापति, गृहपति, हाथी, घोडा, स्त्री, सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न थे ॥८४॥ चक्र, दण्ड, अस्ति और छत्र ये चार रत्न आयुधशालामें उत्पन्न हुए थे तथा मणि, चर्म और काकिणी ये तीन रत्न श्रीगृहमें प्रकट हुए थे ॥८५॥ स्त्री, हाथी और घोडाकी उत्पत्ति विजयाचं शैलपर हुई थी तथा अन्य रत्न निधियोंके साथ साथ अयोध्यामें ही उत्पन्न हुए थे ॥८६॥ जिनके द्वारा सेवन किया हुआ चन्द्रवर्तीका हृदय अतिशय बलिष्ठ हो रहा था उन निधियों और रत्नोंका वर्णन कौन करे सक्ता है ? ॥८७॥ वह चक्रवर्ती स्त्रीरत्नके साथ साथ छोटी ऋतुओमें उत्पन्न होनेवाले पञ्चेन्द्रियोंके योग्य भोगोंका उपभोग करता था सो ठीक ही है क्योंकि स्त्री ही समस्त सुख सम्पदाओंका भण्डार है ॥८८॥ महाराज भरतके रोगादि उपद्रवोंसे रहित सुभद्रा नामकी स्त्रीरत्न थी, वह सुभद्रा स्वभावसे ही भद्रा अर्थात् कल्याणरूप थी और जातिसमें विद्याधरोके वंशकी थी ॥८९॥ उसके समस्त अंग शिरोपके फूलके समान कोमल थे, कान्ति चम्पाकी कण्ठीके समान थी, श्वासोच्छ्वास बकौली (मौलश्री) के फूलके समान सुगन्धित था, अधर गुलाबके धूँके समान कुछ कुछ लाल थे, मुख प्रफुल्लित कमलके समान सुन्दर था, नेत्र नील कमलोंके दण्डके समान थे, नौट्टे अच्छी थी, बेश भूमरोके समूहके समान बाले, कोमल और कुछ कुछ टेढ़े थे, उदर वृष था, निनम्ब सुन्दर थे, जाँवे मनोहर थी, स्तन कठोर थे और भुजा-म्पी लताएँ बामुठ थीं, इस प्रकार वह सुभद्रा वामरुपी अग्निके उत्पन्न करनेके लिये अग्निके समान थी । भावार्थ—जिम प्रकार अरणि नामकी लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार उम सुभद्रामें दर्शकोंके मनमें वामाग्नि उत्पन्न हो उठती थी ॥९०—९२॥ नूपुरोंकी मनोहर महारुमें बरधाणित हुए उनके दोनों चरण ऐसे जान पड़ते थे मानो वामदेवकी हाथीके विजय के नगाड़े ही बजा रहे हों ॥९३॥ ऐसा मादूम होता था मानो वामदेव अपने निवासगृहपर पहुँचनेकी इच्छामें उम सुभद्राकी दोनों जपाओंकी नमैनी बनाकर जिममें उत्तम ऊर ही

१ चन्द्ररत्नानि-२० २० अ०, ५०, ५०, ६० । २ उत्पत्ति । ३ रत्नमहितानाम् ।
 ४ रत्ननिधिभि । ५ वार्तावृत्तम् । ६ गताय । ७ श्रीमत्तम् । ८ स्वाम् । ९ रोगादिभिरपीडितम् ।
 १० मञ्जुसमर्पि । ११ श्वाभाव । १२ चम्पकसुमदन । १३ बृवेगली । १४ ईशदण्ड ।
 १५ उलमनिपादा । 'वराहाराज मलवर्तियुगमा वरवर्णिनी' इत्यभिधानाम् । १६ मनोहर ।
 १७ अग्निरत्नव्यवहारम् । १८ सुभद्राचरणी । १९ बन्धिम् । 'वत्ता या श्राणिपयव बन्धि श्रोणि बन्धुमनी
 इत्यं श्रुतान्तम् ।

निसृत्य नाभिवल्मीकात् कामदृष्णभुजङ्गम । रोमावलीछन्नेनास्या ययी कुञ्जरण्डकौ ॥६५॥
 निर्मोकमिव कामाहे दधानोद् स्तनाग्रकम् । भुजगीमिव तद्दृश्यं संकामेकावलीमप्रात् ॥६६॥
 वध्रे हारलता कण्ठलाना सा नाभिलम्बिनीम् । मन्त्ररसामिवानदाप्रयिता कामदीपिनीम् ॥६७॥
 हाराप्राप्तस्तनाभोगा सा स्म धत्ते परा धियम् । सीतेव यमकाद्रिस्त्वक्प्रवाहा सरिवृत्तमा ॥६८॥
 बाहू तस्या जितानदापता लक्ष्मीमुद्रहृत् । कामरूपद्रुमधयेव प्ररोहो दीप्तभूपणी ॥६९॥
 रेजे करतल तस्या सूदमरेखाभिराततम् । जयरेखा इवाभिवन्द्यस्त्रीनिर्जयाजिता ॥१००॥
 मुखमुद्भूम् तनूदर्शा सरलापाङ्गमावनी । सदार समहेष्यासं जयागारमिवातनो ॥१०१॥
 वक्रमस्या शशाङ्गस्य कान्ति जित्वा स्वयोनया । दने नु नु पताकादर कर्णाभ्या जयपत्रकम् ॥१०२॥
 हेमपत्राङ्कितौ तन्व्या कर्णौ लोतामवापतु । स्वर्वाभिनर्जयायेव कृतपत्रावलम्बनौ ॥१०३॥
 कपोलावुज्ज्वली तस्या दधतुर्दण्डधियम् । द्रष्टुकामस्य कामस्य स्वा दद्या दद्यापि स्थिता ॥१०४॥
 मप्रेचाक्षुरधोराक्ष्या नासिकाशम्भुलोन्मुखी । तवामोदमिवाप्रात् कृतपत्रा कृतहृतात् ॥१०५॥
 कृत्वा शोनुपदे कर्णौ तन्नेत्रे चिभ्रममिव । कृतस्पध इवानाता पुष्पवाणे सनापनौ ॥१०६॥

दरवाजेके वन्दन हे ऐसे उमके नितम्बोपर जा पहुचा हो ॥९४॥ रोमावलीके छन्ने कामदेव-
 रूपी काला मर्पे उमकी नाभिरूपी वामीमे तिवल्वर उमके मनरूपी पिटागेके ममीप जा
 पहुचा था ॥९५॥ वह मुमद्रा कामरूपी मर्पकी काचलीके ममात मन्त्र मनपत्रका वन्दन
 (चोली) धारण करती थी और उम कामरूप मर्पकी सन्तुष्ट करनेके लिये मर्पणीके ममान
 थोठे एकावली हारकी धारण करती थी ॥९६॥ वह कण्ठमें पडी हुई, नाभि तक लटकनी
 हुई और कामकी उद्दीपित करनेवाणी जिम हाररूपी रत्ताकी धारण कर रही थी वह ऐसी
 मातृम होती थी मानो कामदेवके द्वारा गुया हुआ और मन्त्रोसे मन्त्रित हुआ रत्ताका डोरा ही
 हो ॥९७॥ जिमके स्तनोका मध्यभाग हारसे व्याप्त हो रहा है ऐसी वह मुमद्रा इस प्रकारकी
 उत्कृष्ट शोभा धारण कर रही थी मानो जिमका प्रवाह दोनों ओरके यमक पर्वतको मर्प
 कर रहा है ऐसी उत्तम सीता नदी ही हो ॥९८॥ कामदेवके पाशको जीतनेवाणी तथा देवीप्य-
 मान आभूषणोसे सुशोभित उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी शोभा धारण कर रही थी मानो काम-
 रूपी वरपवृक्षके दो अक्षर ही हो ॥९९॥ मूढम रेखाओसे व्याप्त हुआ उमका करतल ऐसा
 सुशोभित हो रहा था मानो अन्य स्थितिके पगजपने उत्पन्न हुई विजयनी रेखाएँ ही धारण
 कर रहा हो ॥१००॥ जिमकी भोंहें ऊपरको उठी हुई हैं और जिममें कचर कटाएँ हो रहे
 हैं ऐसा उम वृषोदरीका मुख ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाण और महाधनुषमें सहित
 कामदेवकी आयुधशाला ही हो ॥१०१॥ उमका मुख अपनी शोभाके द्वारा चन्द्रमानी कान्ति-
 को जीतकर क्या कानोसे बहानेके भौंरूपी पताकाके चिह्न सहित विजयपत्र (जीतना प्रमाण-
 पत्र) ही धारण कर रहा था ॥१०२॥ मोनेके पत्रोमें चिह्नित उमके दोनों कान ऐसी शोभा
 धारण कर रहे थे मानो उन्होंने देवागताओको जीतनेके लिये कागज-पत्र ही ले रखे ही
 ॥१०३॥ उमके दोनों उज्ज्वल कपोल ऐसे जान पड़ने थे मानो अपनी दम प्रवाणी अवस्थाको
 को देखनेकी इच्छा करनेवाणे कामदेवके दर्पणकी शोभा ही धारण कर रहे हो ॥१०४॥ उम
 चञ्चल लोचनवाणी मुमद्राकी नास आँवोके बीचमें मुटकी ओर भुकी हुई थी और उमके

१-करणरूपम् ६०, ल०, ३०, अ०, प०, म० । २ प्रगल्भम् । ३ कामात् मन्त्राणाम् । ४ मुग्धम् ।
 ५ सीतानदी । ६ दधाने स्थ । ७ महाबाणमहिनम् । ८ मन्त्राणाम् । ९ अत्रणस्य । १० दम् ।
 ११ कर्णपत्र । १२ तन्व्या ल०, ६० । १३ आनीया । १४ कर्णयामध्य । १५ मुग्ध्याभिमुनी ।
 १६ शोनुवन्मपाने । १७ काम शशाङ्गनी मति ।

अभूत् कान्तिश्चकोराध्या लताटे लुलितालके । हेमपट्टान्तसलगननीलोत्पलविडम्बिनी ॥१०७॥
 तस्या विनीलविवस्त्रस्तकयरीवन्धवधुरम् । केशपाशमनङ्गास्य मन्ये पाश प्रसारितम् ॥१०८॥
 इत्यस्या रूपमुद्भूतसौष्ठव त्रिजगज्जयि । भवाऽनङ्गास्तदङ्गेषु सन्निधान व्यपात् ध्रुवम् ॥१०९॥
 तद्गुणलोकनोच्चक्षु तद्गात्रस्पर्शनेत्युक् । तन्मुखामोदमाजिघृन् रसयश्चासकृन्मुखम् ॥११०॥
 तदग्रेयकननिश्वाणश्रुतिससक्तकण्ठक । तद्गात्रविपुलारामे स रमे सुखनिर्वृत ॥१११॥
 पञ्च बाणाननङ्गस्य यदन्वयेतानैकृष्टतान् । पुष्पसुकयालोकं प्रतिद्वयं व गता प्रयाम् ॥११२॥
 धनुर्वेता मनोजस्य प्राहु पुष्पमयी जडा । सुकृभारतर स्त्रेण यपुरेवातनोर्यन् ॥११३॥
 पञ्च बाणाननङ्गस्य नियच्छन्ति कुतो जडा । यदेव कानिना हारि तदस्त्र कामदीपनम् ॥११४॥
 स्मितमानोकिं त हासो जल्पित मदमग्नमम् । कामाङ्गामिदमेवाण्यत् कंतव तस्य पोषकम् ॥११५॥
 आरुड्योवबोन्मानी स्तनावस्या हिमागमे । रोम्णां हृषितमस्याङ्गं शिनिरोत्व विनिव्युत् ॥११६॥
 हिमानिलं कुचोक्तस्यम् आहित सा हृतकचमं । प्रयस्करतलस्यर्षो अग्रनिग्येऽङ्कशापिनी ॥११७॥

वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कौतूहलसे मुहका सुगन्ध सूधनेके लिये प्रयत्न ही कर रही हो ॥१०५॥ उसके दोनो नेत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कामदेवके सभापति रहते हुए कानो-
 को साक्षी बनाकर परस्परमें हाव-भावके द्वारा स्पर्धा ही कर रहे हो ॥१०६॥ जिसपर काली
 वाली अलकें विखर रही हैं ऐसे चकोरके समान नेत्रवाली उस सुभद्राके ललाटपर जो कान्ति
 थी वह सुवर्णके पट्टियेपर लटकती हुई नीलकमलकी मालाके समान बहुत ही सुन्दर जान पड़ती
 थी ॥१०७॥ अत्यन्त काले और नीचेकी ओर लटकते हुए कवरीके बन्धनसे सुशोभित उसके
 केशपाश ऐसे अच्छे जान पड़ने थे मानो फैला हुआ कामदेवका पाश ही हो ॥१०८॥ इस
 प्रकार जिसकी उत्तमता प्रकट है ऐसे उस सुभद्राके रूपको तीनों जगत्का जीतनेवाला जानकर
 ही मानो कामदेवने उसने प्रत्येक अगोमे अपना निवासस्थान बनाया था ॥१०९॥ उसका
 रूप देखनेके लिये जो सदा चक्षुओंको ऊपर उठाये रहता है, उसके शरीरका स्पर्श करनेके लिये
 जो सदा उन्कण्ठन बना रहता है, जो बार बार उसके मुखकी सुगन्ध सूंघा करता है, बार
 बार उसके मुखका स्वाद लिया करता है और उसके सगीतके सुन्दर शब्दोंके सुननेमें जिसके
 बान मदा तन्त्रीन रहते हैं ऐसा वह चन्द्रर्तुी उस सुभद्राके शरीररूपी वडे बगीचेमें मुखसे
 मनुष्ट होकर पीडा किया करता था ॥११०-१११॥ कविलोग, जितका वही प्रतिबन्ध
 नहीं होना ऐसा सुभद्राका रूप, कोमल स्पर्श, मुखकी सुगन्ध, ओठोंका रस और सगीतमय सुन्दर
 शब्द इन पांचको ही कामदेवके पांच बाण बतलाते हैं । लोचमें जो कामदेवके पांचो बाणोंकी
 धना है वह ऋद्धि मात्रमे ही प्रसिद्ध हो गई है ॥११०॥ मूर्त लोच बहते हैं कि कामदेवका
 धनुष पृथ्वीका है परन्तु बान्धवमें स्त्रियोका जगन्त कोमल शरीर ही उसका धनुष है ॥११३॥
 न जाने क्यों मूर्त लोच कामदेवको पांच बाण ही प्रदान करते हैं अर्थात् उसके पांच बाण बतलाते
 हैं क्योंकि जो कुछ भी कामी लोगोंके चित्तको हरण करनेवाला है वह मनी कामको उत्तेजित
 करनेवाला कामदेवका बाण है । भावार्थ-कामदेवके अनेक बाण हैं ॥११४॥ स्त्रियोका मन्द
 श्वास, निरदो नितका, जोरमे श्वासा और कामके आवेशमे अल्पष्ट चोचना यही सब काम-
 देवके अद्भुत दूतोंके मिश्रण जो उनका बन्ध है वह इही सबका पोषण करनेवाला है ॥११५॥
 जो जड़ानीसे बाण गमे हो रहे हैं ऐसे सुभद्राके दोनो भ्रुव हेमन्तश्रुतुमें ठण्डमे उठे हुए भरत
 के सगीतसे रोमांचो हो कर रहे थे ॥११६॥ गौरमें गवन करनेवाली सुभद्रा नीलत्वामुके

१ लता । २ गुणवृक्ष । ३ मङ्गादीन् । ४ अमर्यान् । ५ श्रिया इदम् । ६ नियमयन्ति ।

७ हि वाणम् । ८ मन्दास्यभारिणम् । ९ कामस्य । १० रागाञ्चम् । 'गामाञ्च सामहृणम्'
 दन्त्यञ्चम् । ११ तस्य चक्षुःश्रुतम् । १२ श्वात् । १३ प्रियामपश्यन्तम् । १४ अहर्नि रम् ।

साशोककलिकां चूतमञ्जरीं कर्णसदृशिनीम् । दपतीं चम्पकप्रोतः^३ वेदान्तः साऽऽरवन्मयी ॥११८॥
 मयी^१ मनुमदारवनलोचनामास्रक्षतद्वगतिम् । बहू मेने प्रियः कान्ता मूर्त्तामिव भद्रश्रियम् ॥११९॥
 कर्त्तरत्तिकुलवर्षाः साय्यपुष्टबिह्वलिनः । मयुरं मयुरभ्यष्टीन्^२ तुष्टये वाम्^३ विशाम्पनिम् ॥१२०॥
 'कलकण्ठीकलवराणन्नाद्यैरत्तिभृद्भृत्^४ । व्यज्यते^५ स्म स्मराकाण्डावस्कादो विण्डिमार्थितः^६ ॥१२१॥
 पुष्पचवूतवनीद्वगन्धिः^७ उत्कल्लवमलाकरः । पप्रये सुरनिर्मातः^८ सुरभोद्वृत्तदिग्मूलः ॥१२२॥
 हुतालिङ्गुलभङ्गहारः सञ्चरन्मलयानिलः । अन्तगन्तुपतेरासीद् घोषपत्रिव शामनम्^९ ॥१२३॥
 सन्ध्याश्यां कलामिन्दोः मेने क्षोत्रो जगद्भ्रतः^{१०} । करालामिव रत्नाकना^{११} दंष्ट्रा मदनरक्षसः ॥१२४॥
 उन्मत्तकोकिले काले तस्मिन्मत्तपट्टपदे । नानुमत्तो जनः कीर्ष्य मूत्रत्वानद्ग^{१२} द्रुहो मनीन् ॥१२५॥
 सायमुद्गाहृनिर्गिरः^{१३} श्रद्धांस्तुहिनशोतलः । प्रोप्ते मदनतापानं सास्याद्यं निरवापयत्^{१४} ॥१२६॥
 चन्दनव्रतसिक्ततुन्दराद्रागलतां प्रियाम् । परिरम्भ^{१५} दृढं बोध्यां स तमे गात्रनिर्बन्धिम्^{१६} ॥१२७॥
 मदनञ्ज्वरतापानां तीव्रप्रोप्मोप्मनिःसहाम्^{१७} । स ता निर्वापयामास स्वाद्यस्वसंमुत्साम्बुभिः ॥१२८॥

द्वारा उत्पन्न हुई स्तनोकी कोपकौपीको करेग दूर करनेवाले प्रिय पतिके करन्तले स्पर्शमे दूर करती थी ॥११७॥ अशोकवृक्षकी कालीके माय माय कानोंमें लगी हुई आमकी मजरीकी धारण करती हुई वह मुभद्रा वगन्तऋतुमें चम्पाके फूलोंमे गुयी हुई चोटीमे बहुत ही अधिक सुगोभित हो रही थी ॥११८॥ वमन्तऋतुमें मयुके मदनमे जिमकी आवें कुछ कुछ लाल हो रही हैं और जिमकी गति कुछ कुछ लड़खड़ा रही है—स्पलित हो रही है ऐसी उम मुभद्राको भरत महाराज मूर्तिमती मदकी शोभाके समान बहुत कुछ मानते थे ॥११९॥ वह वमन्तऋतु मनुष्ट होकर भूमरोंकी मुन्दर भंकार और कोकिलाओंकी कमनीय कूकने मानो राजा भरतकी मुन्दर स्तुति ही करता था ॥१२०॥ कोयलोके मुन्दर शब्दोंमे मिली हुई भूमरोंकी भकारसे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने नगाडोंके साथ अक्स्मान् आश्रमण ही किया हो—छापा ही मारा हो ॥१२१॥ फूले हुए आमके वनोमे जो अत्यन्त सुगन्धित हो रहा है, जिममें कमलोके समह फूले हुए हैं और जिमने ममन्त दिनाए मुगन्धित कर दी है ऐसा वह वमन्तका चैत्र माम चारों ओर फैल रहा था ॥१२२॥ भूमरममूहकी भकारको हरण करनेवाला, चारों ओर फिरना हुआ मलयमधोर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवकी राजाके शामनकी घोषणा ही कर रहा हो ॥१२३॥ उम मपय मन्ध्यावलादकी लालीमे कुछ कुछ लाल हुई चन्द्रमा की कलाको लोग ऐसा मानते थे मानो जगत्को निगलनेवाले कामदेवकी राक्षसकी रक्तमे भोगी हुई भयंकर डाढ ही हो ॥१२४॥ जिममें कोपन और भूमर मभी उन्मत्त हो जाते हैं ऐसे उम वमन्तके समय कामदेवके माय शोह करनेवाले मुनिर्वाको छोड़कर और कोई ऐसा मनुष्य नहीं था जो उन्मत्त न हुआ हो ॥१२५॥ मादकालके समय जलमे अ्रवगाहन करनेमे जो स्वच्छ किये गये हैं और जो बर्फके समान शीतल हैं ऐसे अपने ममन्त अंगोमे वह मुभद्रा प्रोप्मकालमें कामके मतापमे मत्तन हुए भग्नके शरीरकी शान्त करती थी ॥१२६॥ जिमकी शरीरकी मुन्दर लतापर बिभे हुए चन्दनका लेप किया गया है ऐसी अपनी प्रिया मुभद्राको भरत महाराज दोनों हाथोंमे गाढ़ आलिंगन कर अपना शरीर शान्त करने थे ॥१२७॥ जो कामञ्ज्वरके नानापमे पीडित हो रही हैं और जिने प्रोप्मकालकी तीव्र गर्मी बिलकुल ही गहन

१ वपन्ती स० । २ गर्बिते । ३ दपने । ४ श्लोत्रि म् । ५ बोधेण्य । ६ कौतिल्य । ७ मिथिने । ८ प्रवर्त्तयित्ते म् । ९ कामानपाटी । १० पुष्पिणम् । पुष्पवृत्-२०, अ०, ५०, म०, ६०, म० । ११ वमन्त । १२ आत्तम् । १३ मौरभशास्य । १४ श्रियवित्तम् । १५ कामपानम् । १६ मन्ध्यावलादप्रयोगम् । १७ उन्मत्त परित्यक्त शीत चारुण्यम् । १८ आलित म् । १९ शरीरसुग्मम् । २० अमृतात्तम् ।

उत्कलमल्लिकामोदवाहिभिगन्धवाहिभि । स सायप्रतिकर्भजे धृति रतिसुलाहरं ॥१२६॥
 उत्कलपाटलोद्गन्धि मल्लिकामालभारिणीम् । उग्रपूह्य प्रिया प्रेम्णा नंदाधीं सोऽन्यमिशाम ॥१३०॥
 सा घनस्तनितव्याजात तज्जितेव मनोभुवा । भुजोपपीडमादिलप्य शिष्ये पत्या तपात्यये ॥१३१॥
 नवाम्बुकलुया पूरा ध्वनिरुमदकेकिनाम् । कदम्बामोदिनी वाता कामिना धृतयेऽभवत् ॥१३२॥
 ब्राह्मणकालिका पदपन् बलाकामालभारिणीम् । घनालीं पथिक साधु दिशो मेनेऽधकारिता ॥१३३॥
 धाराएज्जुभिरानद्धा वागुरेव^० प्रसारिता । रोधाय पथिकंगाना^१ लुब्धकेनेव हृद्भुवा ॥१३४॥
 वृताषधि प्रियो नागाद भ्रगाच्च जलदागम । इन्द्रदीक्ष्य^१ घनात्^१ काचिद् हृदि शून्याऽभवत् सती ॥१३५॥
 बिभिन्दन् केतकीसूची^१ तत्प्रासूनाकिरुमहत् । पान्याना इष्टिरोषाय धूलिक्षेपमिवाकरोत् ॥१३६॥
 इत्यभर्णते तस्मिन् काले जलइमालिनि । स चासभवने रम्ये प्रियामरमयन्हु ॥१३७॥
 ब्राह्मणनिधुतामोद^१ तद्वक्त्रामोदमाहरन् । तस्या स्तनतटोत्सङ्गे सोऽनेयोद् बायिकीं^१ निशाम् ॥१३८॥
 स रेमे शरदारम्भे विहरन् कान्तया समम् । वनेष्वभिनवोद्भिन्नसप्तच्छदसुगन्धिषु ॥१३९॥

नहीं हो सकती ऐसी उम सुभद्राको महाराज भरत अपने शरीरके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखरूपी जन्मे शान्त करते थे ॥१२८॥ खिली हुई मालतीकी सुगन्धको धारण करनेवाले तथा रतिसमयमें सुख पहुँचानेवाले सायकाल और प्रातःकालकी वायुके द्वारा चक्रवर्ती भरत बहुत ही अधिक मनोप प्राप्त करते थे ॥१२९॥ फूले हुए गुलाबकी सुगन्धयुक्त मालतीकी मालाओं को धारण करनेवाली उस सुभद्राको आलिंगन कर महाराज भरत बड़े प्रेमसे श्रीष्मकालकी रान व्यतीत करते थे ॥१३०॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी गर्जनावे वहानेसे मानो कामदेवने जिसे घृष्टकी दियाकर भयभीत किया है ऐसी वह सुभद्रा भुजाओसे आलिंगनकर पतिके साथ शयन करती थी ॥१३१॥ उस वर्षाऋतुमें नये जलसे मलिन हुए नदियोंके प्रवाह, उन्मत्त मयरो के शब्द और कदवके पत्तोंकी सुगन्धसे युक्त वायु ये सब कामी लोगोंके सतोपके लिये थे ॥१३२॥ जिमपर काष्मिना छाई हुई है और जो वगुलाओकी पवित्रको धारण कर रही है ऐसी मेघमालाओं केगने हुए पथिक आसू डालते हुए दिशाओको अन्धकारपूर्ण मानते थे ॥१३३॥ उस वर्षाऋतुमें जो जङ्गी धाराए पडती थी उनसे रस्सियोंके समान व्याप्त हुई यह पृथिवी ऐसी जान पडती थी मानो कामदेवकी गिबारीने पथिककी हिरणोको रोकनेके लिये जाल ही फँलाया हो ॥१३४॥ जा आनेकी अवधि करके गया था ऐसा पति अब तक नहीं आया और यह वर्षाऋतु आ गई इम प्रकार यादलोंको देगवर बोई पतिव्रता स्त्री अपने हृदयमें दून्य हो रही थी अवर्णान्तिनाउने उमकी विचारदाकिन नष्ट हो गई थी ॥१३५॥ केतकीकी वीडियोंको भेदन करता हुआ जोर उमकी घृष्टों चार्गे और विगेरता हुआ वायु ऐसा जान पडता था मानो पथिकों की दृष्टि गानेके लिये घृष्टि ही उछा रहा हो ॥१३६॥ इम प्रकार उम वर्षाऋतुमें जय वाद्यों के गङ्गा अचय निकट आ जाने थे तब चक्रवर्ती भरत अपने मनोहर महलमें प्रिया सुभद्राको बार बार प्रगद करता था—उमके माय थोडा करता था ॥१३७॥ जिसने पानीमें उत्पन्न होनेवाले वैश्वी सुगन्धि मीन की है ऐसे उम सुभद्राके भुगकी सुगन्धको ग्रहण करता हुआ कदवकी उमके स्तनरूपके गर्भार ही वर्षाऋतुकी रानि व्यतीत करता था ॥१३८॥ शरदऋतु-

सकाम्ता रमयामास हारज्योत्स्नाञ्चिनस्तनीम् । शारदौ निर्विदान् ज्योत्स्ना सौमो सट्गोपु हारिषु ॥१४०॥
 सोत्पला 'कुड्जकंद' इया' माला चूडात्तलम्बितोम् । बाला पत्युरर सट्गाम्नेने बहुरतिभिषयम् ॥१४१॥
 इति सोत्पल्यमेवास्या प्रथयन् प्रेमनिष्पताम् । स रेमे रतिसाद्भूतो' भोगाद्भवंशाधोदितं ॥१४२॥
 सरला निघयो द्विव्या' पुर शय्यासने धम् । नाटघ समाजन' भोग्य वाहन चेति तानि वै ॥१४३॥
 दशाद्रगमिति भोगाद्भग निर्विदान् स्वाशिन' भवम् । 'स चिर पालयामास नृबभेकोप्यवारणाम्' ॥१४४॥
 योहशास्य सहस्राणि गणवद्भामरा प्रभो । ये युक्ता घननिर्दिशशा निघिरलात्तरक्षणे ॥१४५॥
 सितिसार' इति ख्यात प्रारारोग्य गृहावृति । गोपुर सर्वतोभद्र प्रोल्लसद्गतोरणम् ॥१४६॥
 नन्द्यावनो निवेशोऽप्य शिबिरस्यालघोयस । प्रासादो वैजयन्तारयो य सर्वत्र सुयावह ॥१४७॥
 दिक्स्वस्तिका समाम्नि परार्धमणिकुट्टिमा । तस्य चन्द्रकमणो' यष्टि' सुविधिमणिनिमिता ॥१४८॥
 गिरिकूटकमित्यासीन् सौध दिग्बलीकने' । वर्धमानकमित्यन्यत् 'प्रेसागृहभभूद् दिभो ॥१४९॥
 धर्मन्तोऽप्य' महानासोद् धारागृहसनाह्वय । गृहकूटकमित्युच्चं वर्षावास प्रभोरनुत् ॥१५०॥
 पुष्करावर्षभ्रिय च हर्म्यमस्य सुधासिनम् । कुबेरकान्तमित्यासीद् भाण्डागार यदस्यम् ॥१५१॥

के प्रारम्भमें वह चक्रवर्ती, जिनमें नवीन खिले हुए सप्तच्छद वृक्षोकी मुगव्य फँट रही है ऐसे वनीमें अपनी स्त्रीके साथ विहार करता हुआ नौडा करता था ॥१३९॥ राजभवनकी मनोहर छनोपर शरद्भूतुकी चादनीका उपभोग करता हुआ वह चक्रवर्ती हारकी कान्तिने जिमके स्तन सुगोभित हो रहे हैं ऐसी प्रिया नुभद्रानो प्रमत्त करना था—उमके साथ नौडा करता था ॥१४०॥ जब कभी रानी नुभद्रा पतिके बल स्थलपर लेट जाती थी उम समय उमके मस्तकपर कचुकियोके द्वारा गुयी हुई भरतकी कमली सहित माला लटकने लगती थी और उसे वह बड़े प्रेमने सूषती थी ॥१४१॥ इन प्रकार इन गुभद्रादेवीमें प्रेमकी परवगताको अच्छी तरह प्रकट करता हुआ और रतिमुक्के आधीन हुआ वह चक्रवर्ती दश प्रकारके बड़े हुए भोगोके साधनोसे नौडा करता था ॥१४२॥ रत्नसहित नौ निघिया, रानिया, नगर, शय्या, आमन, मेना नाटघशाळा, चर्नन, भोजन और तवारी ये दश भोगके साधन कहलाने हैं ॥१४३॥ इस प्रकार अपनेको तृप्त करनेवाले दश प्रकारके भोगके साधनोका उपभोग करते हुए महाराज भरतने चिरकालतक जिमपर एक ही छन है ऐसी पृथिवीका पालन किया ॥१४४॥ चक्रवर्ती भरतके ऐसे मोरूह हजार गणवद्ध देव थे जो कि तलवार धारणकर निधि, रत्न और स्वय उनको रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहने थे ॥१४५॥ उनके घरको घेरे हुए क्षितिमार नामका कोंट था और देदीव्यमान रत्नोके तोरणोमें युक्त सर्वतोभद्र नामका गोपुर था ॥१४६॥ उनकी बड़ी भारी छावनीके उहलनेका स्थान नन्द्यावतं नामका था और जो मव ऋतुओमें मुन देनेवाला है ऐसा वैजयन्त नामका महल था ॥१४७॥ बहुमूल्य मणियोमें जड़ी हुई दिनस्वस्तिका नामकी ममाम्नि थी और टहलनेके समय हाथमें लेनेके लिये मणियोकी वनी हुई सुविधि नामकी लकड़ी थी ॥१४८॥ सब दिगाए देपनेके लिये गिरिकूटक नामका राजमहल था और उन्हीं चक्रवर्तीके नृत्य देपनेके लिये वर्धमानक नामकी नृत्यशाला थी ॥१४९॥ उन चक्रवर्तीने गर्मीको नष्ट करनेवाला धारागृह नामका बड़ा भारी स्थान था और वर्षाऋतुमें निशान करनेके लिये बहुत ऊँचा गृहकूटक नामका महल था ॥१५०॥ चूनामे सपेद हुआ पुष्करावर्ष नामका

१ 'कुञ्जिका भद्ररगो बहुयन्नात्रिकारा । महामहा' इति पञ्चनरि । २ रत्नश्रीय-
 यानामिति । पद्मुररम्यस्य स्थिता मतिपुति स्म सा ५०, १०० । ४ म्नेहाधीनताम् । ५ रम्यधन ।
 ६ देव्य ६०, १००, ५० । ७ भाजनगरिणम् । ८ स्वस्य नृत्तिजनकम् । ९ मुखिर १०० ।
 १० गच्छशाम् । ११ शितिगार इति नामा । १२ आतिदान्ति, आशरतनूमिगिद्वय ।
 १३ सुविधिताम् । १४ दिगापलाचार्यम् । १५ नृत्तदंगनगृहम् । १६ पमानगताम् ।

वसुधारकमित्यासीत् कोष्ठागार महाव्ययम् । जीनूतनामधेय च मज्जनागारपूजितम् ॥१५२॥
 रत्नमालाजतिरोचिष्णु बभूवास्यावतसिका । देवरम्भेति रम्या सा मता ह्यृष्यकटो^१ पृथु ॥१५३॥
 सिंहावाहि^२ यमूच्छ्रम्या सिंहहृडा भयानकं । सिंहासनमयोऽस्योच्चं गुणंनान्नाऽप्यनुत्तरम् ॥१५४॥
 जामराण्युपमानान^३ व्यतीत्यानुपमा यभान्^४ । विजयाद्वंशुमारणे वितीर्णानि निधीयते ॥१५५॥
 भास्वत्सूर्यप्रभ तस्य बभूवात्पवारणम् । परार्ध्वरत्ननिर्माणं जितसूर्यंशतप्रभम् ॥१५६॥
 नाम्ना विद्युत्प्रभे चास्य हचिरे मणिकुण्डले । जित्वा ये^५ वेद्यतीं^६ दीप्तिं हरुचाते स्फुरत्स्वयो ॥१५७॥
 रत्नाग्राजटिलास्तस्य पादुका विपमोचिका^७ । परेया पदसस्पर्शाद् मुञ्चन्त्यो विपमुत्बणम् ॥१५८॥
 अभेद्याल्पमभूत्तस्य तनुत्राण प्रभास्वरम् । द्विपता शरनाराचं धदभेध महाह्वे ॥१५९॥
 रयोऽजितञ्जयो नाम्ना जपलक्ष्मीभरोद्भूह । यत्र शस्त्राणि जैत्राणि दिव्यान्यासप्रनेकश ॥१६०॥
 चण्डाकाण्डादानिप्रत्यज्याघाताऽकम्पिताखिलम् । जितदंत्यामर तस्य वज्रकाण्डममुद्धन ॥१६१॥
 अमोघपातास्तस्यासन् नामोपाख्या महोषव । परंसाध्यजये चक्री कृतदलाघो रणाद्गणे ॥१६२॥
 प्रचण्डा वज्रतुण्डाख्या शक्तिरस्थारिखण्डिनी । बभूव वज्रनिर्माणदलाप्या वज्रिजयेऽपि या ॥१६३॥
 कुन्त सिंहाटको नाम य सिंहनखराद्भुरं । स्पर्धते स्म निशाताप्रो मणिदण्डाप्रमण्डन^८ ॥१६४॥

खास महल था और कुवेरकान्त नामका भाण्डारगृह था जो कभी खाली नहीं होता था ॥१५१॥
 वसुधारक नामका बड़ा भारी अटूट कोठार था और जीमूत नामका बड़ा भारी स्नानगृह था ॥१५२॥ उस चक्रवर्तीके अवतसिका नामकी अत्यन्त देदीप्यमान रत्नोकी माला थी और देवरम्या नामकी बहुत बड़ी सुन्दर चादनी थी ॥१५३॥ भयकर सिंहके द्वारा धारण की हुई सिंहावाहिनी नामकी शय्या थी और गुण तथा नाम दोनोंसे अनुत्तर अर्थात् उत्कृष्ट बहुत ऊँचा सिंहासन था ॥१५४॥ जो विजयार्धकुमारके द्वारा निधियोके स्वामी चक्रवर्तीके लिये समर्पित किये गये थे ऐसे अनुपमान नामके उनके चमर उपमाको उल्लघन कर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१५५॥ उस चक्रवर्तीके बहुमूल्य रत्नोसे बना हुआ और संबडो सूर्यकी प्रभाको जीतनेवाला सूर्यप्रभ नामका अतिशय देदीप्यमान छत्र था ॥१५६॥ उनके देदीप्यमान क्रान्तिके धारक विद्युत्प्रभ नामके दो ऐसे सुन्दर कुण्डल थे जो कि त्रिजलीकी दीप्तिको पराजित कर सुशोभित हो रहे थे ॥१५७॥ महाराज भरतके रत्नोकी किरणोसे व्याप्त हुई विपमोचिका नामकी ऐसी खडाऊ थी जो कि दूसरेके पैरका स्पर्श होते ही भयकर विप छोड़ने लगती थी ॥१५८॥ उनके अभेद्य नामका कवच था जो कि अत्यन्त देदीप्यमान था और महायुद्धमे शत्रुओं के तीक्ष्ण वाणोमे भी भेदन नहीं किया जा सकता था ॥१५९॥ विजयलक्ष्मीके भारको धारण करनेवाला अजितजय नामका रथ था जिसपर शत्रुओंको जीतनेवाले अनेक दिव्य शस्त्र रखे रहते थे ॥१६०॥ अममयमें होनेवाले प्रचण्ड वज्रपातके समान जिसकी प्रत्यचाके आघातसे ममस्त मगार बन जाता था और जिसने देव, दानव-सभीको जीत लिया था ऐसा वज्रकाण्ड नामका धनुष उम चक्रवर्तीके पास था ॥१६१॥ जो कभी व्यर्थ नहीं पडते ऐसे उसके अमोघ नामके बड़े बड़े वाण थे । इन वाणोंके द्वारा ही चक्रवर्ती जिसमें विजय पाना अमाध्य हो ऐसे युद्धम्यमें प्रसंगा प्राप्त करता था ॥१६२॥ राजा भरतके शत्रुओंको खण्डित करनेवाली वज्रतुण्डा नामकी शक्ति थी, जो कि वज्रकी वनी हुई थी और इन्द्रको भी जीतनेमें प्रशमनीय थी ॥१६३॥ जिगकी नाक बहुत तेज थी, जो मणियोंके बने हुए डडेके अग्रभागपर सुशोभित

१ पृथुः । २ उरामयमाणम् । ३ भाति म् । ४ कुण्डलम् । ५ विद्युत्प्रभविपनीम् ।
 ६ विपमोचिका । ७ महारं । ८ मणिमयदण्डाय मण्डनम् जपवारा यस्य ।

तस्यासिंपुत्रिका दीक्षा रत्नानदस्फुरत्सह^१ । लोहवाहिन्वनूध्रान्ना जयश्रीदपंगायिना ॥१६५॥
 कणपोष्प^२ मनोवेगो जयश्रीप्रणयावह^३ । द्विपञ्चकुलनदमा^४पृथक्त्वेन योऽज्ञानोपिन^५ ॥१६६॥
 सौनन्दवाल्म्यमस्याभूद् ध्रमिरत्न स्फुरद्द्युति । यस्मिन् करतलारुढे दोलारुढमिवास्तितम् ॥१६७॥
 प्रातुर्भुतमुख खेट विनोर्भूतमुखाद्विक्रितम् । स्फुरनाऽऽभोमुखे येन द्विषा मृत्युमुनापितम् ॥१६८॥
 चरत्लमभञ्जिष्णो दिक्चक्राक्रमणक्षमम् । नाम्ना सुदर्शन दोष पद्ददंतीमरातिभि ॥१६९॥
 प्रचण्डद्वन्द्ववेगाद्यो दण्डोऽभूच्चक्रिण पृथु । स प्रथम विनियोगोऽभूद् वित्तकण्ठशोषने ॥१७०॥
 नाम्ना वज्रमय दिव्य चर्मरत्नमभूद् विनो । तद्बल यद्बलाधानान्निस्तीर्ण^६ जलविप्लवान् ॥१७१॥
 मणिसूडामणिर्नाम चिन्तारत्नमनुत्तरम् । जगत्सूडामणेरस्य चित्त येनानुरञ्जितम् ॥१७२॥
 सा चिन्ताजननीत्यस्य काविकीर्णो भास्वराऽभवत् । या रूपाद्रिगुहाष्वान्निविर्भेदकदीपिका ॥१७३॥
 चमूपतिरयोप्याह्यो नृत्नमनवत् प्रभो । समरेऽरिजयाद्यस्य रोदसी ध्यानयो यदा ॥१७४॥
 बुद्धिसागरनामास्य पुरोधा पुरुश्वोरभूत् । प्रम्यां प्रिया यदापत्ता प्रनोकारोऽपि देविके ॥१७५॥
 सुधोर्गृह्यतिर्नाम्ना कामवृष्टिरोप्यह^७ । ध्ययोर्ब्यथचिन्ताया नियुक्तो यो तिथीशिन^८ ॥१७६॥

हो रहा था और जो मिहके जाखुनोके साय म्पर्धा करता था ऐसा उनका सिंहाटक नामका भाला था ॥१६४॥ जो अत्यन्त देदीप्यमान थी, जिनकी रत्नोमे जडी हुई मूठ वृत्त ही चमक रही थी, और जो विजयलक्ष्मीके दर्शनके समान जान पड़ती थी ऐसी लोहवाहिनी नामकी उनकी छुरी थी ॥१६५॥ मनोवेग नामका एक कणप (अम्वविशेष) था जो कि विजयलक्ष्मीपर प्रेम करनेवाला था और शत्रुओंके वगम्भी कुलाचलोको खण्डित करनेके लिये वज्रके समान था ॥१६६॥ भरतके सौनन्दक नामकी श्रेष्ठ तलवार थी जिमकी कान्ति अत्यन्त देदीप्यमान हो रही थी और जिमे हायमें लेते ही यह समस्त जगत् भूगामें बैठे हुएके समान काप उठता था ॥१६७॥ उनके भूनोके मुखोमे चिह्नित भूतमुख नामका खेट (अम्वविशेष) था, जो कि युद्धके प्रारम्भमें चमकता हुआ शत्रुओंके लिये मृत्युके मुखके समान जान पड़ता था ॥१६८॥ उन विजयी चक्रवर्तीके सुदर्शन नामका चक्र था, जो कि समस्त दिशाओंपर आक्रमण करनेमें समर्थ था, देदीप्यमान था और जो शत्रुओंके द्वारा देखा भी नहीं जा सकता था ॥१६९॥ जिमका नियोग गुफाके बाटे वगैरह शोधनेमें था ऐसा चण्डवेग नामका बहुत भारी प्रचण्ड (भयकर) दण्ड उम चक्रवर्तीके था ॥१७०॥ भरतदेवर महाराजके वज्रमय चर्मरत्न था, वह चर्मरत्न, कि जिमके बलमे उनकी सेना जलके उपद्रवमें पार हुई थी—बची थी ॥१७१॥ उनके चूडामणि नामका वह उत्तम चिन्तामणि रत्न था जिसने कि जगत्के चूडामणि-स्वरूप महाप्राज भरतका चित्त अनुत्तर कर लिया था ॥१७२॥ चिन्ताजननी नामकी वह काविकी थी जो कि अत्यन्त देदीप्यमान हो रही थी और जो विजयार्थ पर्वतकी गुफाओंका अन्वयकार दूर करनेके लिये मुख्य दीपिकाके समान थी ॥१७३॥ उन प्रभुके अपोष्य नामका सेनापति था जो कि मनुष्योंमें रत्न था और युद्धमें शत्रुओंको जीतनेमें जिमका यग आराग और पृथिवीके बीच व्याप्त हो गया था ॥१७४॥ समस्त धार्मिक विद्याएँ जिमके आयोजन थी और देविक उपद्रव होनेपर उनका प्रतिवार करना भी जिमके आश्रित था ऐसा बुद्धिनागर नामका महा-बुद्धिमान् पुरोहित था ॥१७५॥ उनके कामवृष्टि नामका गृहपति रत्न था, जो कि अत्यन्त बुद्धिमान् था, इच्छानुसार नामकी देनेवाग था तथा जो शत्रुओंके छोटे बड़े सभी शत्रुओंकी

१ क्षुण्डिका । 'स्वाच्छन्नी कागिभुनी च क्षुण्डिका कागिभुनका ।' इत्यभिधानम् । ० मृष्टि ।
 'लस्य परमादिमृष्टि स्याद्' इत्यभिधानम् । ३ कर्माश्रय म० । ४ पवन । ५ निष्कण्ठकरणा ।
 ६ भाष । ७ धर्मि ।

रत्न स्यपतिरप्यस्य वास्तुविद्यापदात्तधी । नाम्ना भद्रमुखोऽनेकप्रासादपटने पटु ॥१७७॥
 शैलोदप्रो महानस्य यो गह्वरीक्षरमद । भद्रो गिरिवर^१ शूभ्रो नाम्ना विजयपर्वत ॥१७८॥
 पवनस्य जयन् वेग ह्योऽस्य पवनञ्जय । विजयाडुंगुहोत्सदप हेसया यो व्यलदपयत् ॥१७९॥
 प्रागुक्तवर्णनं चास्य स्त्रीरत्न रुडनामकम् । स्वभावमधुर हृद्य रसायनमिदापरम् ॥१८०॥
 रत्नान्येतानि दिव्यानि बभूवुश्चक्रवर्तिन । देवताकृतरक्षाणि पान्यलटपपानि विद्विषाम् ॥१८१॥
 श्रानन्दिन्योऽन्विनिघोषा भैर्योऽस्य द्वादशाभघ्न । द्विपड्योजनमाप्युं स्वैर्ध्वनिर्घा प्रदध्वन् ॥१८२॥
 भ्रासन् विजयघोषाख्या पटहा द्वादशापरे । गृहकोकिभिषदप्रोक्ते सानन्द धृतनिस्वना ॥१८३॥
 गम्भीरावर्तनामान शङ्खा गम्भीरनिस्वना । चतुर्विंशतिरस्यासन् शुभा पुण्यान्विषसम्भवा ॥१८४॥
 कटक रत्ननिर्माणा विभोर्वीराडगदाह्वया । रेजु प्रकोष्ठमावेष्ट्य तडिद्वलपविभूना ॥१८५॥
 पताकाकोटयोऽप्यष्टचत्वारिंशत्प्रमा भवा । नक्षत्रेण्डोलि^२ तोतम्रेण्डोलि^३ कोन्मष्टखाडगणा ॥१८६॥
 महाकल्याणक नाम दिव्याशनमभूद् विभो । कल्याणाडगस्य येनास्य तृत्तिपुष्टीबलान्विते ॥१८७॥
 भक्षाश्चामृतगर्भस्या रुच्यास्वादा सुगन्धय । नान्ये^४ जरयितुं शक्ता यान्^५ गरिष्ठरसोत्कटात् ॥१८८॥
 स्वाद्य^६ चामूतकल्याण हृद्यास्वाद सुसकृत्म् । रसायनरस दिव्य पानक चामूताह्वयम् ॥१८९॥

चिन्तामे नियुक्त था । ॥१७६॥ •मकान बनानेकी विद्यामें जिसकी बुद्धि प्रवेश पाये हुई है और जो अनेक राजभवनेको बनानेमें चतुर है ऐसा भद्रमुख नामका उनका शिलावटरत्न (इजीनियर) था ॥१७७॥ जो पर्वतके समान ऊंचा था, बहुत बड़ा था, पूज्य था, जिससे भद्र भर रहा था, भद्र जातिका था और जिसका गर्जन उत्तम था ऐसा विजयपर्वत नामका सफेद हाथी था ॥१७८॥ जिसने विजयार्धपर्वतकी गुफाके मध्यभागको लीलामात्रमे उल्लघन कर दिया था ऐसा वायुके वेगको जीतनेवाला पवनजय नामका घोडा था ॥१७९॥ और जिसका वर्णन पहले कर चुके है, जिसका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो स्वभावसे ही मधुर है और जो किसी अन्य रसायनके समान हृदयको आनन्द देनेवाला है ऐसा सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न था ॥१८०॥ इस प्रकार चक्रवर्तीके ये दिव्य रत्न थे जिनकी देव लोग रक्षा किया करते थे, और जिन्हें शत्रु कभी उल्लघन नहीं कर सकते थे ॥१८१॥ उस चक्रवर्तीके समुद्रके समान गभीर आवाजवाली आनन्दिनी नामकी वारह भेरिया थी जो अपनी आवाजको वारह योजन दूर तक फैलाकर बजती थी ॥१८२॥ इनके सिवाय वारह नगाडे और ये जिनकी आवाज घरके मधुर ऊंची गर्दन कर बडे आनन्दके साथ सुना करते थे ॥१८३॥ जिनकी आवाज अतिशय गभीर है, जो शुभ है, और पुण्यरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे गम्भीरावर्त नामके चौबीस टांग थे ॥१८४॥ उस प्रभुने रत्नोके वने हुए वीरागद नामके बडे थे जो कि हाथकी कलाई-को घेरकर सुशोभित हो रहे थे और जिनकी कान्ति विजलीके बडोके समान थी ॥१८५॥ वायुके भँफोरेमे उडते हुए पपडोमे जिन्होंने आकाशरूपी आगनको भाडकर साफ कर दिया है ऐसी उमकी अज्जालीम मरोड पतापाण थी ॥१८६॥ महाराज भरतके महाकल्याण नाम का दिव्य भोजन था जिनमे कि परयाणमय शरीरको धारण करनेवाले उनके बलसहित तृप्ति और पुष्टि दोनो ही होनी थी ॥१८७॥ जो अत्यन्त गरिष्ठ रससे उत्पन्न हैं, जिन्हें कोई अन्य पचा नहीं सकता तथा जो रचिवर, स्त्रादिष्ठ और गुगन्धित हैं ऐसे उसके अमृतगर्भ नामके भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य मोदक आदि पदार्थ थे ॥१८८॥ जिनका स्वाद हृदयको अच्छा

१ वास्तुविद्यापाने स्वीरनबुद्धि । २ पूज्य । ३ गिरिवर १०, १० । ४ बननेनेचक्रवर्त्त । ५ आनन्दम् । ६ पुण्या । ७ जीर्णोक्तम् । ८ अतिमुर । ९ प्रमुखदाडिनादि । 'आरनाप एव स्वाद तावदमादि त्रयादिभ्यम् । १० आद्यपुत्राद्य त्याग्यायेत्यानि कविकर्त्त ।'

पुण्यकल्पतरोरारसन् फलान्धैतानि चक्रिणः । यान्यनन्योपभोग्यानि भोगाद्गान्यनुत्तानि वै ॥१६०॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गृह्यसंपदनीदृशी । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु अमेषं गात्रबन्धनम् ॥१६१॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्दुःखनिधिरत्नद्विर्लजिता । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु इभादवादिपरिच्छदः ॥१६२॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु अन्तःपुरमहोदयः । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु दशाङ्गो भोगसम्भवः ॥१६३॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु आत्ताद्वीपाभिव्यलिङ्घनी । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु जयभीर्जित्वरी विशाम् ॥१६४॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु प्रामथं त्रिजगज्जयि । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु उद्योगो लङ्घितार्णवः ॥१६५॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु प्राभयं त्रिजगज्जयि । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु नगराजगयोत्सवः ॥१६६॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु सत्कारस्तत्कृतोऽधिकः । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु सतिद्वेष्यभिषेचनम् ॥१६७॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु सचराचलनिर्जयः । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु प्रत्नलाभोज्यदुर्लभः ॥१६८॥
 पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु श्रायतिभरतेऽखिले । पुण्याद् विना कुतस्ताद्गु वीतिविकृतं लङ्घिनी ॥१६९॥
 ततः पुण्योदरोद्भूतां मत्वा चकभूतः भियम् । चिनुष्वं भो वृषाः पुण्यं यत्पुण्यं सुप्तसम्पदाम् ॥२००॥

लगनेवाला है और मसाले वगैरहमे जिनका सस्कार किया गया है ऐसे अमृतकल्प नामके उनके स्वाद्य पदार्थ थे तथा रमायनके समान रसीला अमृत नामका दिव्य पानक अर्थात् पीने योग्य पदार्थ था ॥१८९॥ चक्रवर्तीके ये सब भोगोपभोगके भावन उसके पुण्यरूपी कल्पवृक्षके फल थे, उन्हें अन्य कोई नहीं भोग सकता था और वे संसारमें अपनी बराबरी नहीं रखते थे ॥१९०॥

पुण्यके विना चक्रवर्तीके समान अनुपम रूपसम्पदा कैसे मिल सकती है ? पुण्यके विना वैसा अभेश शरीरका वधन कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना अतिगम्य उत्कृष्ट निधि और रत्नोंकी ऋद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना वैसे हाथी घोड़े आदिवा परिवार कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना वैसे अन्त पुरका वैभव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना दस प्रकारके भोगोपभोग कहा मिल सकते हैं ? पुण्यके विना द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघन करनेवाली वैसी आज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना दिगाओंको जीतनेवाली वैसी विजयलक्ष्मी कहा मिल सकती है ? पुण्यके विना देवताओंको भी नमू करनेवाला वैसा प्रताप कहा प्राप्त हो सकता है ? पुण्यके विना समुद्रको उल्लंघन करनेवाला वैसा उद्योग कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना तीनों लोकोंको जीतनेवाला वैसा प्रभाव कहां हो सकता है ? पुण्यके विना वैसा हिमवान् पर्वतको विजय करनेवा उत्सव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना हिमवान् देवके द्वारा किया हुआ वैसा अधिक सत्कार कहां मिल सकता है ? विना पुण्यके नदियोंकी अधिष्ठात्री देवियोंके द्वारा किया हुआ वैसा अभिषेक कहा हो सकता है ? पुण्यके विना विजयार्थ पर्वतको जीतना कैसे हो सकता है ? पुण्यके विना अन्य मनुष्योंको दुर्लभ वैसे रत्नोंका लाभ कहा हो सकता है ? पुण्यके विना समस्त भरतक्षेत्रमें वैसा गुन्दर विम्बार कैसे हो सकता है ? और पुण्यके विना दिगाओंके किनारेको उल्लंघन करनेवाली वैसी कीर्ति कैसे हो सकती है ? इनलिमे हे पण्डित जन, चक्रवर्तीको विन्निनी पुण्यके उदयमे उदय हुई मानकर उम पुण्यका मन्व करो जो कि ममन्त गुप्त और मन्दाओंकी दुबानते गमान

१ शिववर्णिका । २ शिवप्रमथ्यनुरा । ३ मरुगागिन्दुदेवी । ४ पनागम. प्रनाथो वा । ५ पण्डितो ६० । ६ ना वाग्ना ।

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्याविष्कृतसम्पदो विजयिनस्तस्याखिलक्षमाभूताम्
स्फीतामप्रतिज्ञासना प्रययत् षट्षण्डराज्यश्रियम् ।
कानोऽनल्पतरोऽप्यगात् क्षण इव प्राक्पुण्यकर्मोदयाद्
उदभूते प्रमदावहं षट्श्रुतुर्जैर्भोगैरतिस्वादुभि ॥२०१॥
नानारत्ननिधानदेशविलसत्सम्पत्तिगुर्वाभिमा
साम्राज्यश्रियमेकभोगनियता कृत्वाऽखिला पालयन् ।
योऽभून्नृवं किलाकुल कुलव्यूमेकामिषाडकस्थितां
सोऽय चक्रधरोऽभून्नक् भुवममूमेकातपत्रा चिरम् ॥२०२॥
यन्नाम्ना भरतावनित्वमगमत् षट्षण्डभूया महो
येनासैतुहिमाद्विरक्षितमिद क्षेत्र कृतारिक्षयम् ।
यस्यार्विनिधिरत्नसम्पदुचिता लक्ष्मीरर नायिनी
स थीमान् भरतेश्वरो निधिभुजामप्रेसरोगभूत् प्रभु ॥२०३॥
य स्तुत्यो जगता त्रयस्य न पुन स्तोता स्वय कस्यचिद्
धरो यो योगिजनस्य यश्च न तरा घ्याता स्वय कस्यचित् ।
यो न नृनपि नैतुमुन्नतमल नतव्यपक्षे स्थित
स थीमान् जयताज्जगत्त्रयगुहैव पुह पावन ॥२०४॥

हे ॥१९१-२००॥ इस प्रकार जिसने सम्पदाएँ प्रकट की हैं, जिसने समस्त राजाओंको जीत लिया है, और जो दूसरेके शासनसे रहित अपने छह षण्डकी विस्तृत राज्यलक्ष्मीको निरन्तर फीकाता रहता है ऐसे उम चक्रवर्ती भरतका बड़ा भारी समय पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए, मव तरहवा आनन्द देनेवाले और अत्यन्त स्वादिष्ट छोटे श्रुतुओंके भोगोंके द्वारा क्षण-भरके समान व्यतीत हो गया था ॥२०१॥ अनेकों रत्नों, निधियों और देशोंसे सुशोभित हुई सम्पत्तिके द्वारा जो भारी गौरवको प्राप्त हो रही है ऐसी इस समस्त साम्राज्यलक्ष्मीको एक अपने ही उपभोग करनेके योग्य बनाकर उसका पालन करता हुआ जो चक्रवर्ती गौदमें बैठी हुई बुलबुलकी रक्षा करते हुएके समान कभी व्याकुल नहीं हुआ वह भरत एक छत्रवाली ह्रम पृथिवीका चिरवाङ्ग तब पावन करता रहा था ॥२०२॥ छह षण्डोंसे विभूषित पृथिवी जिसके नामसे भरतममि नामको प्राप्त हुई, जिसे दक्षिण समुद्रसे लेकर हिमवान् पर्वततन्के दून क्षेत्रमें शत्रुओंका क्षय कर उमकी रक्षा की, तथा प्रकट हुई निधि और रत्न आदि सम्पदाओं-से योग्य लक्ष्मी जिसके वक्ष स्पृशर घनन करती थी वह प्रभु-थीमान् भरतेश्वर निधियोंके स्वामी अर्दान् चक्रवर्तियोंमें प्रथम और मुख्य चक्रवर्ती हुआ था ॥२०३॥ जो तीनों जगत्के जीवोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य है परन्तु जो स्वयं किमीकी स्तुति नहीं करने, बड़े बड़े योगी लोग जिनका ध्यान करने है परन्तु जो किमीका ध्यान नहीं करते, जो नमस्कार करनेवाओं-को भी उप्रान स्थानपर गे जानेके श्रिये समर्थ है परन्तु स्वयं नमस्कार करने योग्य पक्षमें स्थित है अर्दान् किमीको नमस्कार नहीं करने ये तीनों जगत्के गुण अत्यन्त पवित्र थीमान् भगवा

१ निधि । २ आत्मन एकद्वैव भागनियताम् । ३ पालयति रम । ४ षट्षण्डराज्यका ।

५ कानोऽनल्पतरोऽप्यगात् शरण्य शिववर्णनियतम् । ६ नमतांगीमान् । ७ समय । ८ नमतायाप्यते ।

९ यद् यद् वदन्ति न मन्म नमस्य ।

य नत्वा पुनरानमन्ति न परं स्तुत्वा च य नापरं

भव्या सस्तुवते श्रयन्ति न परं य सश्रिता श्रयसे ।

य सत्कृत्य कृतादरं कृतपियं सत्कृर्वते नापरम्

स श्रीमान् वृषभो जिनो भवभयात्प्रस्रायता तीर्यंहृत् ॥२०५॥

इत्यापे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणं

महापुराणसङ्ग्रहे भरतेश्वराभ्युदयवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशत्तमं पर्वं ॥३७॥

वृषभदेव सदा जयवन्त रहें ॥२०४॥ भव्य लोग जिन्हें नमस्कार कर फिर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करते, जिनकी स्तुति कर फिर किसी अन्यकी स्तुति नहीं करते, जिनका आश्रय लेकर कल्याणके लिये फिर किसी अन्यका आश्रय नहीं लेने, और बुद्धिमान् लोग जिनका सबने आदर किया है ऐसे जिनका सत्कार कर फिर किसी अन्यका सत्कार नहीं करते वे श्रीमान् वृषभ जिनेन्द्र तीर्थं कर हम सबकी समारम्भे भयमे रक्षा करें ॥२०५॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराणसङ्ग्रहे

मायानुवादमें भरतेश्वरके वैभवका वर्णन करनेवाला यह

संतीमवा पर्वं समाप्त हुआ ।

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

जयन्त्यखिल^१धाडमार्गागामिन्य सूक्तयोऽहंताम् । धूतान्धतभसा क्षीप्रा यास्त्वियोऽग्नामतामिय ॥१॥
 स जोषात् वृषभो मोहविपसृप्तमिदं जवात् । पटयिद्येव^२ यद्विद्या सद्य समुदतिप्लवत् ॥२॥
 त नत्वा परम ज्योति वृषभ वीरमन्वत । द्विजन्मनामथोत्प्रात वक्ष्ये श्रेणिक भो ऋणु ॥३॥
 भरतो भारत वर्य^३ निर्जित्य सह पार्थिवं । पष्टधा वर्यसहस्रस्तु दिशा निययुते जयात् ॥४॥
 कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चिन्तयेमदपद्यत । परार्थे सम्पदास्माकी सोपयोग कथं भयेत् ॥५॥
 महामहमह कृत्वा जिनेन्द्रस्य महोदयम् । प्रीणयामि जगद्विश्य विष्वक्^४ विश्वाणयन् धनम् ॥६॥
 नानगारा वसून्त्यस्मत् प्रतिगृह्णन्ति नि स्पृहा । सागार वतम^५ पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभि ॥७॥
 'येऽणुव्रतधरा धीरा धीरेया' गृहमेधिनाम् । तर्पणीया हि तेऽस्माभि इन्सितवंसुवाहनं ॥८॥
 इति निश्चित्य राजेन्द्र सत्कर्तुमुचिन्तानिमान् । 'परीक्षिष्युराह्वस्त तदा सर्वान् महोभुज ॥९॥
 सदाचारैर्निर्जैरिष्टे अन्नजीविभि^६रन्विता । प्रद्यास्मदुत्सवे ययम् आयातेति^७ पूयक् पूयक् ॥१०॥
 हरितैरङ्कुरं पुष्पं फलैश्चाकीर्णमद्भगणम् । सम्मूढचीकरत्तेया परीक्षायै स्ववेशमनि ॥११॥
 तेष्वव्रता विना सद्गतात्^८ प्राविक्षन् नृपमन्दिरम् । तानेकत समुत्सार्य शोषानाह्वययत् प्रभु ॥१२॥

जो समस्त भाषाओमें परिणत होनेवाली है, जिसने अज्ञानरूपी गाढ अन्धकारको नष्ट कर दिया है और जो सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान है वह अरहन्त भगवान्की सुन्दर वाणी सदा जयवन्त हो ॥१॥ गाढी विद्याके समान जिनकी विद्याने मोहरूपी विपसे सोये हुए इस समस्त ससारको बहुत शीघ्र जगा दिया वे भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहे ॥२॥ गीतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, मैं उन परमज्योति-स्वरूप भगवान् वृषभदेव तथा भगवान् महावीर स्वामीको नमस्कारकर अब यहासे द्विजोकी उत्पत्ति कहता हूँ सो सुनो ॥३॥ भरत चक्रवर्ती अनेक राजाओंके साथ भारतवर्षको जीतकर साठ हजार वर्षमें दिग्विजयसे वापिस लौटे ॥४॥ जब वे सब कार्य कर चुके तब उनके चित्तमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि दूसरेके उपकारमें मेरी इस सपदाका उपयोग किस प्रकार हो सकता है ? ॥५॥ मैं श्री जिनेन्द्रदेवका बड़े ऐश्वर्यके साथ महामह नामका यज्ञ कर धन वितरण करता हुआ समस्त ससारको सतुष्ट करूँ ? ॥६॥ सदा नि स्पृह रहनेवाले मुनि तो हम लोगोसे धन लेते नहीं हैं परन्तु ऐमा गृहस्थ भी कौन है जो धन-धान्य आदि सम्पत्तिके द्वारा पूजा करनेके योग्य है ॥७॥ जो अणु व्रतको धारण करनेवाले हैं, धीर वीर हैं और गृहस्थोमें मृत्यु है ऐसे पुरुष ही हम लोगोके द्वारा इच्छित धन तथा सवारी आदिके वाहनोके द्वारा तर्पण करनेके योग्य हैं ॥८॥ इस प्रकार निश्चय कर सत्कार करनेके योग्य व्यक्तियोंकी परीक्षा करनेकी इच्छासे राजराजेश्वर भरतने उम ममय समस्त राजाओंको बुलाया ॥९॥ और सबके पास खबर भेज दी कि आप लोग अपने अपने सदाचारी इष्ट मित्र तथा नौकर चाकर आदिके साथ आज हमारे उत्सवमें अलग अलग आवें ॥१०॥ इधर चक्रवर्तीने उन सबकी परीक्षा करनेके लिये अपने घरके आगनमें हरे हरे अकूर, पुष्प और फल सूब भरवा दिये ॥११॥ उन लोगोमें जो अव्रती थे वे

१ सर्वभाषात्मिका रूपं । २ गारुडविद्या । ३ क्षेपम् । ४ वितरन् । ५ वदचन ।
 ६ अणुव्रता- १० । ७ पुरीणा । ८ परीक्षितुमिच्छ । ९ भूत्यै । १० आगच्छन् । ११ विचारात्
 प्रतिबन्धात् वा ।

ते तु स्वप्नसिद्धयर्थम् ईहमाना' महान्या । नंपु^१ प्रवेदान तावद् व्याघ्राद्वाङ्मुरा पवि ॥१३॥
 सपान्यं^२ हेरितं पीरुम् श्रमाकस्य नृपाद्गणम् । निदधन्नु^३ कृपालुत्वान् केचित् मानसभीरव ॥१४॥
 कृतानुबन्धना^४ भूयश्चक्रिण किल तेर्गन्निक्म् । प्रामुकेन^५ पयाज्येन भञ्जु श्रान्त्या नृपाद्गणम् ॥१५॥
 प्राक् केन हेतुना येष नायाता पुनरागता । केन भूतेति पृष्टास्ते प्रथभापन्त चक्रिणम् ॥१६॥
 प्रवालपरगुप्तादे पर्वणि व्यपरोपगम्^६ । न कल्पतेऽयं तज्जाना^७ जन्तूना नोर्गन्निद्रुहाम् ॥१७॥
 स-रेवानन्तसो जीवा हरितेऽप्यद्वाङ्मुरादिषु । निगोता इति सार्वत^८ देवास्मानि श्रुत वच ॥१८॥
 तस्मान्नास्मान्भिराका तम्^९ । प्रच्छन्वे त्वद्गुहाद्गणम् । कृतानुहारमाद्रो^{१०} फलपुष्पाद्वाङ्मुरादिभि ॥१९॥
 इति तद्रचनान् सर्वान् शोर्गन्निन्द्य दृढव्रतान् । पूजयामास तस्मीवान्^{११} दानमानादिसन्कृतं ॥२०॥
 तेषा कृतानि चिह्नानि सूत्रं पद्याह्वयादिभिः । उरातं^{१२} प्रैल्लमुजाह्वं एवाद्येकारदशान्वरं ॥२१॥
 गुणभूमिहृताद् भेदात्^{१३} कल्पन्^{१४} यतोपवीतिनाम् । सकार क्रियते स्मयाम् श्रवणादच बहि कृता ॥२२॥
 प्रय ते कृतसन्माना चविषा स्रनधारिण । भजन्ति स्म पर दादम्^{१५} लोकद्वन्द्वानपूजयन् ॥२३॥
 इज्या वातां च दत्ति च स्वाध्याय सयम तप । श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्य समुपादिषाम् ॥२४॥

गिना किमी सोच-त्रिचारके राजमन्दिरमें धुम आये । राजा भरतने उन्हें एक बोरे हटाकर
 वाकी वचे हुए लोभोको बुलाया ॥१३॥ परन्तु बड़े बड़े कुर्मों उत्पन्न हुए और अपने व्रतकी
 मिद्विधे लिये चेष्टा करनेवाले उन लोभोने जब तब मार्गमें हरे अकूरे हैं तब तब उनमें प्रवेग
 करनेकी इच्छा नहीं की ॥१४॥ पापने टरनेवाके कितने ही लोग दयागु होनेके कारण हरे
 धान्योमें भरे हुए राजाके आगनको उल्लयन किये जिना ही वापिस लौटने लगे ॥१५॥ परन्तु
 जब चन्द्रतीने उनमें बहुत ही आपहू किया तब वे दूसरे प्रामुक् मार्गमें राजाके आगनको लाप-
 कर उनके पाग पहुँचे ॥१६॥ आप लोग पट्टे किन् कारणमें नहीं आये थे, और अब किन्
 कारणसे आये हैं, ऐसा जब चन्द्रतीने उनसे पूछा तब उन्होंने नीचे लिखे अनुमार उत्तर दिया
 ॥१६॥ आज पर्वके दिन कोपल, पत्ते तथा पुष्प आदिना निधान नहीं किया जाता और न
 जो अपना कुछ विगाड करते हैं ऐसे उन कोपल आदिमें उत्पन्न होनेवाके जीवोना भी विनाश
 किया जाता है ॥१७॥ हे देव, हरे अयुर आदिमें अनल निगोदिया जीव रहते हैं, ऐसे सबज-
 देवके वचन हमलोभोने सुने है ॥१८॥ इर्मग्ये जिममें गीले गीठे फल, पुष्प और अगु-
 आदिमें शोभा की गई है ऐसा आपने घरका आगन आज हम लोभोने नहीं मूदा है ॥१९॥
 इस प्रकार उनके वचनोमें प्रभावित हुए सम्पत्तिगारी भरतने व्रतोमें दृढ रहनेवाके उन मरकी
 प्रथमा घर उन्हें दान मान आदि मत्कारसे सम्मानित किया ॥२०॥ पच नामकी निधि
 से प्राप्त हुए एकसे लेकर ग्यारह तककी मन्व्यावाके ब्रह्मसूत्र नामके सूत्रमें (सन्सूत्रमें) उन मरके
 चिह्न किये ॥२१॥ प्रतिमात्रोके द्वारा किये हुए भेदके अनुमार निहोने यतोपवीत घागण
 किये है ऐसे इन मरका भरतने मन्वार किया तथा जो व्रती नहीं थे उन्हें वंशे ही जने दिया
 ॥२२॥ जयानन्तर चक्रतीने जिनका मन्मान किया है ऐसे व्रत घागण करनेवाके वे लोग
 अपने अपने व्रतोमें और भी दृढताकी प्राप्त हो गये तथा जय लोग भी उनकी पूजा आदि करने
 लगे ॥२३॥ भरतने उन्हें उपासकाध्ययनागने इज्या, वाता, दत्ति, स्वाध्याय, मयम और

१ चेष्टमाना । २ नेच्छन्नि स्म । ३ निगोता । ४ त्रिचारा । ५ मार्गम् । ६ त्रिचक्रम् ।

७ प्रवालपरगुप्तादिकागामम् । ८ अस्माकम् । ९ अहिमरताम् । १० सर्वसम्पदम् । ११ ददन्तीम् ।

१२ त्रिचक्रमाहम् । १३ अस्मादिशतगवचक्रनादियुक्तानाहम् । १४ शोभा । १५ अस्मादिदम्

विश्वनिर्णयम् । १६ कृता । १७ ज्ञा ।

कृत्यमोष्पमिवेषाम् अहंस्पृजादिवर्णनम् । तदा भरतराज्यिः शन्ववोचदनुक्रमात् ॥२५॥
 प्रीयता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदाचनम् । चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमाःचाष्टाह्निकोऽपि च ॥२६॥
 तत्र नित्यमहो नाम शश्वज्जिनगृहं प्रति । स्वगृहाप्रीयमानाश्चो गन्धपुष्पाक्षतादिका ॥२७॥
 चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्माणं च यत् । शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदाचनम् ॥२८॥
 या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यदानानुषङ्गिणी । स च नित्यमहो ज्ञेयो यथा शक्त्युपकल्पितः ॥२९॥
 महामुकुटबद्धश्च क्रियमाणो महामहः । चतुर्मुखः स विक्रमः सर्वतोभद्र इत्यपि ॥३०॥
 दत्त्वा किमिच्छकं दानं समाह्वयैः प्रवर्त्यते । कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपुरणः ॥३१॥
 आष्टाह्निको महः सावर्जनिको ऋद्ध एव सः । महानिन्द्रध्वजोऽप्यस्तु सुरराजैः कृतो महः ॥३२॥
 बलिस्नपनमित्यग्न्यः त्रिसन्ध्यासेवया समम् । उक्तेष्वेव विकल्पेण ज्ञेयमन्यच्च तादृशम् ॥३३॥
 एवीधयविधानेन या महेश्या जिनेशिनाम् । विधिज्ञास्तामुशन्तोऽप्यौ वृत्तिं प्राथमकल्पिकीम् ॥३४॥
 वार्ता विदाद्वयस्या स्यात् कृष्यादीनामनुष्ठितिः । चतुर्धा वर्णिता दत्तिः दया पात्रसमान्वये ॥३५॥
 सातुक्त्पमनुग्रहो प्राणिवृद्धेऽभयप्रदा । त्रिदाद्वधनुगता सेयं दयादत्तिर्मता युधः ॥३६॥
 महातपोधनायाचप्रतिग्रहपुरःसरम् । प्रदानमशनादीनां पात्रदानं तद्विष्यते ॥३७॥

तपना उपदेश दिया ॥२४॥ यह इनका कुलधर्म है ऐसा विचार कर राजर्षि भरतने उस समय अनुक्रममे अहंतुपूजा आदिका वर्णन किया ॥२५॥ वे कहने लगे कि अहंत भगवान्की पूजा नित्य करनी चाहिये, वह पूजा चार प्रकारकी है सदाचन, चतुर्मुख, कल्पद्रुम और आष्टाह्निक ॥२६॥ इन चारों पूजाओंमेंसे प्रतिदिन अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालयमें श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदाचन अर्थात् नित्यमह कहलाता है ॥२७॥ अथवा भक्तिपूर्वक अहन्तदेवकी प्रतिमा और मन्दिरका निर्माण करना तथा दानपत्र लिख-पर ग्राम खेत आदिका दान देना भी सदाचन (नित्यमह) कहलाता है ॥२८॥ इसके सिवाय अपनी शक्तिके अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियोंकी जो पूजा की जाती है उसे भी नित्य-मह समझना चाहिये ॥२९॥ महामुकुटबद्ध राजाओके द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है उमें चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिये । इसका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है ॥३०॥ जो चतुर्वर्तियो-के द्वारा विमिच्छा (मुहमागा) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत्के समस्त जीवो-की आगाए पूर्ण की जाती है वह कल्पद्रुम नामका यज्ञ कहलाता है । भावार्थ—जिस यज्ञमें कल्पद्रुमके गमान मक्की द्रच्छाए पूर्ण की जावे उमें कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चतुर्वर्ती ही कर मक्ते हैं ॥३१॥ चौथा आष्टाह्निक यज्ञ है जिसे मक् लोग करते हैं और जो जगत्में धर्मन् प्रसिद्ध है । इनके सिवाय मक् ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है ॥३२॥ बलि अर्वात् नैवेप चटाना, अभिषेक करना, तीनों मध्याओंमें उपासना करना तथा इनके गमान और भी जो पूजाके प्रकार हैं वे मक् उन्ही भेदोंमें अन्तर्भूत हैं ॥३३॥ द्ग प्रवारकी विधिमें जो जिनेन्द्रदेवकी महापूजा की जाती है उमें विधिके जाननेवाले आचार्य इज्या नामकी प्रथम वृत्ति करते हैं ॥३४॥ विगुड आचरणपूर्वक गेनी आदिका करना वार्ता कहलाती है तथा दयादत्ति, पात्रदत्ति, समदत्ति और अन्वपदत्ति ये चार प्रकारकी दत्ति कही गई हैं ॥३५॥ अनुग्रह करने योग्य प्राणियोंके समुहपर दयापूर्वक मक् वचन वाक्यकी मुद्रिके साथ उनसे मक् दूर करनेकी पवित्र मोग दयादत्ति मानने हैं ॥३६॥ महायज्ञकी मुनियोंके किये

समानायात्मनाऽन्यस्मै क्रियामन्त्रव्रतादिभिः । निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥३८॥
 समानदत्तिरेया स्यात् पात्रे मध्यमतामिते^१ । समानप्रतिपत्त्यं प्रवृत्ता^२ श्रद्धयाऽन्वता ॥३९॥
 श्रात्मान्वयप्रतिपत्त्या^३ सूनुवं यदसोपत । सम समवधितान्या^४ स्ववर्गस्थातिसर्जनम् ॥४०॥
 सैषा सत्तददत्ति स्यात् स्वाध्याय श्रुतभावना । तपोऽनदानवृत्त्यादि तयमो व्रतधारणम् ॥४१॥
 विद्मद्वा वृत्तिरेषं पा घटतयोष्ठा द्विजन्मनाम् । योऽतिनामेदिमा सोऽज्ञो ताम्नेव न गुणद्विज^५ ॥४२॥
 तप श्रुतञ्च जातिश्च त्रय ब्राह्मण्यकारणम् । तप-श्रुताभ्या यो हीनो जातिब्राह्मण एव स ॥४३॥
 अपापोपहृता वृत्ति स्यादेषा जातिश्चतमा । दत्तोऽप्यापीति^६ मुख्यत्वाद् व्रतगुद्वेषा सुसकृता^७ ॥४४॥
 मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा । वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुविष्यमिहादनुते ॥४५॥
 ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणात् । यणिकोऽर्थजनान्याप्यात् शूद्रा^८ न्यवृत्तिसश्रयात् ॥४६॥
 तप-श्रुताभ्यामेवातो^९ जातिसंस्कार इष्यते । असकृत्तस्तु यस्ताभ्या जातिमात्रेण स द्विज ॥४७॥
 द्विजातो हि द्विजन्मेष्ट क्रियातो गर्भतश्च य । क्रियामन्त्रविहीनस्तु केचन नामधारक ॥४८॥
 तदेया जातिसंस्कार द्रव्यक्षिति सोऽधिराद् । स प्रोवाच द्विजन्मेभ्य क्रियाभेदानसोपत ॥४९॥

संस्कारपूर्वक पढगाह कर जो आहार आदि दिया जाता है उमे पानदान कहते हैं ॥३७॥ त्रिया, मत्र और व्रत आदिमे जो अपने समान है तथा जो सत्तारसमुद्रमे पार कर देनेवाला कोई अन्य उत्तम गृहस्थ है उसके लिये पृथिवी सुवर्ण आदि देना अथवा मध्यम पात्रके लिये समान बुद्धिसे श्रद्धाके साथ जो दान दिया जाता है वह समानदत्ति कहलाता है ॥३८-३९॥ अपने वधवी प्रतिपत्ताके लिये पुनको समस्त कुलपद्धति तथा धतके साथ अपना कुटुम्ब समर्पण करनेको सकल-दत्ति कहते हैं । शास्त्रोकी भावना (चिन्तवन) करना स्वाध्याय है, उपवास आदि करना तप है और व्रत धारण करना सयम है ॥४०-४१॥ यह ऊपर कही हुई छह प्रकारकी विद्मद् वृत्ति इन द्विजोके करने योग्य है । जो इनका उल्लघन करता है वह मूर्ख नाममानसे ही द्विज है, गुणसे द्विज नहीं है ॥४२॥ तप, याम्त्रज्ञान और जाति ये तीन ब्राह्मण होनेके कारण हैं, जो मनुष्य तप और शास्त्रज्ञानसे रहित है वह केवल जातिसे ही ब्राह्मण है ॥४३॥ इन लोगो-की आजीविका पापरहित है इसलिये इनकी जाति उत्तम कहलाती है तथा दान, पूजा, अध्ययन आदि कायं मुख्य होनेके कारण व्रतोकी शुद्धि होनेसे वह उत्तम जाति और भी सुमन्वृत हो गई है ॥४४॥ यद्यपि जाति नामवर्मके उदयमे उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है तथापि आजी-विनाके भेदसे होनेवाले भेदके कारण वह चार प्रकारकी हो गई है ॥४५॥ व्रतोके सम्भारमे ब्राह्मण, शस्त्र धारण करनेमे क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमानेसे वैश्य और नीच वृत्तिका आश्रय लेनेसे मनुष्य शूद्र कहलाते हैं ॥४६॥ इसलिये द्विज जानिवा सम्भार तपश्चरण और शास्त्रा-भ्याससे ही माना जाता है परन्तु तपश्चरण और शास्त्राभ्यासमे जिमका सम्भार नहीं हुआ है वह जातिमात्रमे द्विज कहलाता है ॥४७॥ जो एक बार गर्भमे और दूसरी बार त्रियामे इस प्रकार दो बार उत्पन्न हुआ हो उमे द्विजन्मा अथवा द्विज कहते हैं परन्तु जो त्रिया और मत्र दोनोंमे ही रहित है वह केवल नामको धारण करनेवाला द्विज है ॥४८॥ इसलिये इन द्विजोकी जातिसे सम्भारको दृढ़ करते हुए ममाद् भरनेक्षरने द्विजोके लिये नीचे लिये अनुमात्र त्रियाओ-के गमस्त भेद कहे ॥४९॥

१ समारणारात्ताम् । २ दानम् । ३ मध्यमव गत । ४ प्रवृत्ता तः । ५ श्रद्धमयतान्याम् । ६ गर्भाद्विज सः, अ०, प०, म० ८० । ७ स्वाध्याय । ८ मनुस्मृत्या मत्री । ९ वनन । १० नीचवृत्ति । ११ अत्र वाग्दान् ।

सास्य त्रियास्त्रिपासन्नाताः धारणाध्यायतद्गृहे । सद्दृष्टिभिरनुष्ठेया गृहोत्सर्गः शुभावहाः ॥५०॥
 गर्भान्वयत्रियादर्थं तया दीक्षान्वयत्रियाः । कर्मन्वयत्रियादर्थेति तस्त्रिभूतं भूषंमता ॥५१॥
 आधानाद्यास्त्रिपञ्चासत्तु शेषा गर्भान्वयत्रिया । पत्यारिदाहपाटी च हृता दीक्षान्वयत्रिया ॥५२॥
 कर्मन्वयत्रियादर्थं सप्त तर्जः सनुच्छिता । तासां यथात्रयं नामनिर्देशोऽयत्नूचते ॥५३॥
 अष्टगानां सप्तमादष्टमाद् दुरतारादर्णवादपि । श्लोकरष्ट्याभिरभ्रेष्ये प्राप्तं ज्ञानसर्वं तया ॥५४॥
 आधानं प्रीतिसुप्रीती धृतिर्नोऽत्र प्रियोद्भूयः । नामकर्मवह्नियनिपद्याः प्रादानं तया ॥५५॥
 व्युष्टिश्च केशवापश्च त्रिपितामहापानराष्ट्रहः । उपनीतिर्भ्रंतं धर्मा व्रतावतरणं तया ॥५६॥
 विवाहो वर्णलाभश्च कुलचर्या गृहीशिता । प्रशान्तिश्च गृहायागो दीक्षाद्यं जिनरूपता ॥५७॥
 मौनाध्ययनवृत्तत्वं तीर्थकृतभावना । गुरुस्थानाभ्युपगमो गणोपग्रहणं तया ॥५८॥
 स्वगुरुस्थानसंक्रान्तिः निस्तस्यवात्मभाजना । योगनिर्वाणताप्रप्तिः योगनिर्वाणसापनम् ॥५९॥
 इन्द्रोपपादाभिवेको विधिदानं सुलोदयः । इन्द्रत्यागापतारो च हिरण्योत्कृष्टजन्मता ॥६०॥
 मन्दरेन्द्राभिवेकश्च गुप्पजोपलम्भनम् । यौवराज्यं स्वराज्यं च चक्रलाभो विशाञ्जयः ॥६१॥
 चक्राभिवेकरामाज्ये निष्कान्तिर्वीणसम्पन्नः । आर्हन्त्यं तद्विहारश्च योगत्यागोऽग्रनिर्वृतिः ॥६२॥
 त्रयः पञ्चाशदेता हि मता गर्भान्वयत्रियाः । गर्भाधानादिनिर्वाणपर्यन्ताः परमाण्ये ॥६३॥
 श्रवतारो वृत्तलाभः स्थानलाभो गणग्रहः । पूजाराध्यपुण्यपतो दृढचर्योपयोगिता ॥६४॥
 इत्युद्दिष्टाभिरष्टाभिः उपनीत्यादयः क्रियाः । पत्यारिदाहप्रमापुवताः ताः स्पृदीक्षान्वयत्रियाः ॥६५॥

उन्होंने कहा कि श्रावकाध्याय सग्रहमें वे क्रियाएँ तीन प्रकारकी कहीं गई हैं, सम्पद्वृष्टि पुरुषोको उन क्रियाओका पालन अवश्य करना चाहिये क्योंकि ये सभी उत्तम फल देनेवाली और शुभ करनेवाली हैं ॥५०॥ गर्भान्वय क्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और कर्मन्वय क्रिया इस प्रकार विद्वान् लोगोंने तीन प्रकारकी क्रियाएँ मानी हैं ॥५१॥ गर्भान्वय क्रियाएँ, आधान आदि त्रिरेपन जानना चाहिये और दीक्षान्वय क्रियाएँ अडतालीस समझना चाहिये ॥५२॥ इनके सिवाय उस विषयके जानकार विद्वानोंने कर्मन्वय क्रियाएँ सात सग्रह की हैं । अब आगे यथाक्रमसे उन क्रियाओका नाम निर्देश किया जाता है ॥५३॥ जो समुद्रसे भी दुस्तर हैं ऐसे वारह अंगोंमें सातवे अंग (उपासकाध्ययनांग) से जो कुछ मुझे ज्ञानका अंश प्राप्त हुआ है उन्में मैं नीचे लिखे हुए आठ श्लोकोंसे प्रकट करता हूँ ॥५४॥ १ आधान, २ प्रीति, ३ सुप्रीति, ४ धृति, ५ मोद, ६ प्रियोद्भव, ७ नामकर्म, ८ वह्नियनि, ९ निपद्या, १० प्राजन, ११ व्युष्टि, १२ केशवाप, १३ लिपि सत्यानसग्रह, १४ उपनीति, १५ व्रतचर्या, १६ व्रतावतरण, १७ विवाह, १८ वर्णलाभ, १९ कुलचर्या, २० गृहीशिता, २१ प्रशान्ति, २२ गृहत्याग, २३ दीक्षाद्य, २४ जिनरूपता, ३५ मौनाध्ययनवृत्तत्व, २६ तीर्थकृतभावना, २७ गुरुस्थानाभ्युपगम, २८ गणोपग्रहण, २९ स्वगुरुस्थानसंक्रान्ति, ३० नि सगत्वात्मभावना, ३१ योगनिर्वाणसंप्रप्ति, ३२ योगनिर्वाणसापन, ३३ इन्द्रोपपाद, ३४ अभिवेक, ३५ विधिदान, ३६ सुलोदय, ३७ इन्द्रत्याग, ३८ अवतार, ३९ हिरण्योत्कृष्टजन्मता, ४० मन्दरेन्द्राभिवेक, ४१ गुरुपूजोपलम्भन, ४२ यौवराज्य, ४३ स्वराज्य, ४४ चक्रलाभ, ४५ दिग्विजय, ४६ चक्राभिवेक, ४७ साम्राज्य, ४८ निष्कान्ति, ४९ योगसम्पन्न, ५० आर्हन्त्य, ५१ तद्विहार, ५२ योगत्याग और ५३ अग्रनिर्वृति । परमाण्यमें ये गर्भसे लेकर निर्वाणपर्यन्त त्रिरेपन क्रियाएँ मानी गई हैं ॥५५-६३॥ १ अवतार, २ वृत्तलाभ, ३ स्थानलाभ, ४ गणग्रह, ५ पूजाराध्य, ६ पुण्ययज्ञ, ७ दृढचर्या और ८ उपयोगिता

१ नामकर्मिणम् ।

२ अनुवादयते ।

३ -द्रादशाङ्गानाम् मध्ये ।

४ उपासकाध्ययनात् ।

५ उद्देन कर्तव्यं इत्यर्थ ।

६ अभ्युपगम ।

७ गर्भान्वयक्रियाम् आदी त्रयोदशक्रिया मुक्त्वा शेषा उपनीत्यादयः ।

उपनीत्यादयः ।

तास्तु कर्त्तव्या होया या प्राप्या पुण्यकर्तृभि । पलत्पतया वृता^१ सम्मार्गाराधनस्य वै ॥६६॥
 सज्जातिं सद्गृहित्व च पारिव्राज्य सुरेन्द्रता । साम्राज्य परमार्हन्त्य परनिर्वाणमित्त्वपि ॥६७॥
 स्वानाम्येतानि सप्त स्यु परमाणि जगत्त्रये । अर्हद्भागमृतास्त्रादात् प्रतिलभ्यानि देहिनाम् ॥६८॥
 क्रियाकल्पोऽप्रमानातो बहुभेदो महर्षिभि । सदक्षेपतस्तु^२ तल्लक्ष्म वक्ष्ये सञ्चक्ष्य^३ विस्तरम् ॥६९॥
 आधान नाम गर्भादौ सस्कारो मन्त्रपूर्वक । पत्नीमृतुमतीं स्नाता पुरस्कृत्यार्हद्विजया ॥७०॥
 तत्रार्चनविधौ चक्रय घ्नत्रयान्वितम् । जिनार्चामभित^४ स्याप्य सम पुष्याग्निभस्त्रिभि ॥७१॥
 त्रयोऽग्नयोऽर्हदयणभृच्छ्रेयस्केवलिनिवृत्तौ । ये हृतास्ते प्रणेतव्या^५ सिद्धार्चावेद्युपाश्रया^६ ॥७२॥
 तेष्वर्हद्विज्याओपारतं आहुतिर्मन्त्रपूर्विका । विधेया शुचिभिर्यव्यं पु स्युरोत्पत्तिकाम्यया^७ ॥७३॥
 तन्मन्त्रास्तु यथाम्नाय वक्ष्यन्तेऽग्न्यत्र पर्वणि^८ । स्मृत्या पीठिकाजातिमन्त्रादिप्रविभागत ॥७४॥
 विनियोगस्तु सर्वासु क्रियास्वेया^९ भतो जिनं । अय्यामोहादतस्तज्ज्ञं प्रयोज्यास्त^{१०} उपारसं ॥७५॥
 गर्भाधानक्रियामेता प्रयुज्यादौ यथाविधि । सन्तानार्थं विना रागाद् दम्पतिभ्या^{११} न्यजेयताम् ॥७६॥
 इति गर्भाधानम् ।

इन वही हुई आठ क्रियाओके साथ उपनीति नामकी चौदहवी क्रियासे तिरपनकी निर्वाण (अग्र-निवृत्ति) क्रिया तककी चालीन क्रियाएँ मिलाकर कुल अठतालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ बहलानी हैं ॥६४-६५॥ कर्त्तव्य क्रियाएँ वे हैं जो कि पुण्य करनेवाले लोगोको प्राप्त हो सकती हैं और जो समीचीन मार्गकी आराधना करनेके फल स्वरूप प्रवृत्त होती हैं ॥६६॥ १ मज्जाति २ सद्गृहित्व, ३ पारिव्राज्य, ४ सुरेन्द्रता, ५ साम्राज्य, ६ परमार्हन्त्य और ७ परमनिर्वाण ये मात स्थान तीनों लोकोमें उत्पृष्ट माने गये हैं और ये सातों ही अर्हन्त भगवान्के वचनरूपी अमृत के आस्वादनसे जीवोको प्राप्त हो सकते हैं ॥६७-६८॥ महर्षियोने इन क्रियाओका समूह अनेक प्रकारका माना-अनेक प्रकारसे क्रियाओका वर्णन किया है परन्तु मैं यहाँ विस्तार छोड़कर सक्षेपसे ही उनके लक्षण कहता हूँ ॥६९॥ चतुर्थ स्नानके द्वारा गृह्य हुई रजस्वला पत्नी को आगे कर गर्भाधानके पहले अर्हन्तदेवकी पूजाके द्वारा मन्त्रपूर्वक जो सस्कार किया जाता है उसे आधान क्रिया कहते हैं ॥७०॥ इस आधान क्रियाकी पूजामें जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाके दाहिनी ओर तीन चक्र, बाईं ओर तीन छत्र और सामने तीन पवित्र अग्नि स्थापित करे ॥७१॥ अर्हन्त भगवान् (तीर्थंकर) के निर्वाणके समय, गणधरदेवोके निर्वाणके समय और सामान्य केवलियोके निर्वाणके समय जिन अग्नियोमें होम किया गया था ऐसी तीन प्रकारकी पवित्र अग्नियाँ सिद्ध प्रतिमाकी बेदीके समीप ही तैयार करनी चाहिये ॥७२॥ प्रथम ही अर्हन्त देवकी पूजा कर चुकनेके बाद शेष वक्षे हुए पवित्र द्रव्यसे पुन उत्पन्न होनेकी इच्छा कर मन्त्रपूर्वक उन तीन अग्नियोमें आहुति करनी चाहिये ॥७३॥ उन आहुतियोके मंत्र आगेके पर्वमें शाम्भानुसार कहे जावेंगे । वे पीठिका मन्त्र, जातिमन्त्र आदिके भेदसे सात प्रकारके हैं ॥७४॥ श्रीजिनेन्द्रदेवने इन्हीं मन्त्रोका प्रयोग समस्त क्रियाओंमें बतलाया है इसलिये उम विषयके जानकार श्रावणोको यामोह (प्रमाद) छोड़कर उन मन्त्रोका प्रयोग करना चाहिये ॥७५॥ इन प्रकार वही हुई इन गर्भाधानकी क्रियाओके पहले विधिपूर्वक करने फिर स्त्री-पुष्प दोनोंको विषयानुरागके विना वेदल सन्तानके लिये समागम करना चाहिये ॥७६॥ इस प्रकार यह गर्भाधान क्रियाकी विधि समाप्त हुई ।

१ प्रवृत्ता । २ क्रियात्प्राप्तम् । ३ यज्ञविधा । ४ तत्र आदानक्रियायाम् । तत्रार्चनविधौ ल० । ५ जितविभवस्य गमनतः । ६ मन्त्रार्था । ७ सिद्धप्रतिमाधिननिष्कारदिगर्मापारिभन्ता । ८ अग्नियु । ९ वाञ्छया । १० मर्गं । ११ मन्त्राणाम् । १२ मन्त्रा । १३ विधीयन्ताम् न० । व्यवीयन्ताम् द० । अभियग्न्याम् ।

गर्भाधानात् पर मासे तृतीये सम्प्रवर्तते । प्रीतिर्नाम क्रिया प्रीतिं याज्जुष्टेया द्विजभूमि ॥७७॥
तत्रापि पूर्वमन्त्रपूर्वा पूजा जिनेशिनाम । द्वारि तोरणयथास पूरणम्भो च सम्प्रती ॥७८॥
तदादि प्रत्यहं भैरोशशो घण्टाप्यनाम्बित^१ । यथाविभवमेवैतं प्रपोज्यो गृहमेधिभि ॥७९॥

इति प्रीति ।

घ्राधानात् पञ्चमे मासि क्रिया सुप्रीतिरिष्यते । या सुप्रीते प्रयोक्तव्या परमोयासकव्रतं ॥८०॥
तत्रायुक्तो विधि पूसे सर्वोऽहंबिंशसप्रिधो । कार्यो मन्त्रविधानतो साधोऽहृत्पामिन्देयता ॥८१॥

इति सुप्रीति ।

धृतिस्तु सप्तमे मासि कार्यं तद्वत्क्रियादरं । गृहमेधिभिरव्यग्रमतोभिर्गन्धुद्वये ॥८२॥

इति धृति ।

नवमे मास्यतोऽग्न्येण मोदो नाम क्रियाविधि । तद्वदेवादृतं कार्यं गन्धुद्वयं द्विजोत्तमं ॥८३॥
तत्रेष्टो गात्रिकाबन्धो मद्गत्य^२ च प्रसाधनम्^३ । रक्षासूत्रविधान^४ च गर्भिण्या द्विजसत्तमं ॥८४॥

इति मोद ।

प्रियोद्भव प्रसूत्या^५ जातकर्मविधि स्मृत । जिनजातकमाध्याय प्रवर्त्यो यो यथाविधि ॥८५॥

धवातरविशेषोऽत्र क्रियामन्त्रादिलक्षण । भूपान्^६ समस्तयत्तो ज्ञेयो भूलोपासकसूत्रत ॥८६॥

इति प्रियोद्भव ।

गर्भाधानके बाद तीसरे माहमें प्रीति नामकी क्रिया होती है जिसे सतुष्ट हुए द्विज लोग करते हैं ॥७७॥ इस क्रियामें भी पहलेकी क्रियाके समान मन्त्रपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये, दरवाजेपर तोरण बाधना चाहिये तथा दो पूर्ण कलश स्थापन करना चाहिये ॥७८॥ उस दिनसे लेकर गृहस्थोको प्रतिदिन अपने वैभवके अनुसार घटा और नगडे बजवाने चाहिये ॥७९॥ यह दूसरी प्रीति क्रिया है ।

गर्भाधानसे पाचवे माहमें सुप्रीति क्रिया की जाती है जो कि प्रसन्न हुए उत्तम थावकोके द्वारा की जाती है ॥८०॥ इस क्रियामें भी मन और क्रियाओको जाननेवाले थावकोको अग्नि तथा देवताकी साक्षी कर अहन्त भगवान्की प्रतिमाके समीप पहले कही हुई समस्त विधि करनी चाहिये ॥८१॥ यह तीसरी सुप्रीति नामकी क्रिया है ।

जिनका आदर किया गया है और जिनका चित्त व्याकुल नहीं है ऐसे गृहस्थोको गर्भकी वृद्धिके लिये गर्भसे सातवे महीनेमें पिछली क्रियाओके समान ही धृति नामकी क्रिया करनी चाहिये ॥८२॥ यह चौथी धृति नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर नौवें महीनेके निवट रहनेपर मोद नामकी क्रिया की जाती है यह क्रिया भी पिछली क्रियाओके समान आदरयुक्त उत्तम द्विजोके द्वारा गर्भकी पुष्टिके लिये की जाती है ॥८३॥ इस क्रियामें उत्तम द्विजोको गर्भिणीके शरीरपर गात्रिकाबन्ध करना चाहिये अर्थात् मन्त्रपूर्वक धीजाक्षर लिखना चाहिये, मङ्गलमय आभूषणादि पहिनाना चाहिये और रक्षाके लिये कवणमूत्र आदि बाधनेकी विधि करनी चाहिये ॥८४॥ यह पाचवी मोदक्रिया है ।

तदनन्तर प्रभूति होनेपर प्रियोद्भव नामकी क्रिया की जाती है इसका दूसरा नाम जातकर्म विधि भी है । यह क्रिया जिनेन्द्र भगवान्का स्मरण कर विधिपूर्वक करनी चाहिये ॥८५॥ इस क्रियामें क्रिया मन्त्र आदि अवान्तर विशेष कार्य बहुत भारी हैं इसलिये इनका पूर्ण ज्ञान भूतभूत उपागवाध्ययनाङ्गमें प्राप्त करना चाहिये ॥८६॥ यह छठवी प्रियोद्भव क्रिया है ।

१ स्वनाम्बित ल० । २ गात्रपु वीजाक्षगणा मन्त्रपूर्वक न्याय । ३ गोभनम् । ४ अलङ्कारः । ५ रसायं षट्करोगुत्पन्नविधानम् । ६ प्रमृताया गयाम् । ७ महार् ।

द्वादशाहात् पर नामकर्म जन्मदिनामतम् । अनुकूले सुतस्यास्य पित्रोरपि सुखावहे ॥८७॥
यथाविभवमष्टे देवपिद्विजपूजनम् । शस्त च नामधेय तत् स्याप्यमन्वयवृद्धिकृत् ॥८८॥
अष्टोत्तरसहस्राद् वा जितनामकदम्बकान् । घटपत्रविधानेन प्राह्यमन्यतम शुभम् ॥८९॥

इति नामकर्म ।

बहिर्यान ततो द्वित्रं मासैस्त्रिघतुरंशतैः । ययानुकूलमिष्टेऽङ्गुलं कामं तूर्णमिदमङ्गलं ॥९०॥
तत प्रनृत्यमीष्ट हि शिशो प्रसववेश्मनः । बहिःप्रणयन मात्रा धान्युस्मद्गणतस्य वा ॥९१॥
तत्र बन्धुजनावर्षत्ताभो य पारितोषिकः । स तस्योत्तरकालेऽर्घ्यो घन पित्र्य यवाप्यति ॥९२॥

इति बहिर्यानम् ।

• तत पर निपद्यास्य क्रिया बालस्य कल्प्यते । तद्योग्ये तल्पे आस्तौर्णे^१ कृतमङ्गलसन्निधौ ॥९३॥
सिद्धार्चनादिक सर्वो विधि पूर्वबबव^२ च । यतो दिव्यात्तनाहृत्स्वम् अस्त्य स्यादुत्तरोत्तरम् ॥९४॥

इति निपद्या ।

जन्मदिनमे वारह दिनके बाद, जो दिन माता पिता और पुत्रके अनुकूल हो, सुम् देनेवाला हो उम दिन नामकर्मकी क्रिया की जाती है ॥८७॥ इस क्रियामें अपने वैभवके अनुसार अर्हन्देव और ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये, द्विजोंका भी यथायोग्य सत्कार करना चाहिये तथा जो वंशकी वृद्धि करनेवाला हो ऐसा कोई उत्तम नाम बालकका रखना चाहिये ॥८८॥ अथवा जिनेन्द्रदेवके एक हजार आठ नामोंके समूहसे घटपत्रकी विधिमें कोई एक शुभ नाम ग्रहण कर लेना चाहिये । भावायं-भगवान् के एक हजार आठ नामोंके एक हजार आठ कागजके टुकड़ोंपर अष्टगधने सुवर्ण अथवा अनार की कलमसे लिखकर उनकी गोली बना लेवे और पीले वस्त्र तथा नारियल आदिमें टके हुए एक घडेमें भर देवे, कागजके एक टुकड़ेपर नाम' ऐसा शब्द लिखकर उसकी गोली बना लेवे इसी प्रकार एक हजार मान कोरे टुकड़ोंकी गोलिया बनाकर इन सबको एक दूसरे घडेमें भर देवे, अनन्तर किसी अवोध कन्या या बालकसे दोनों घडोंमेंमें एक एक गोली निकलवाता जावे । जिस नामकी गोलीके साथ नाम ऐसा लिखी हुई गोली निकले वही नाम बालकका रखना चाहिये । यह घटपत्र विधि बहलाती है ॥८९॥ यह मानकी नामकर्म क्रिया है ।

तदनन्तर दो-तीन अथवा तीन-चार माहके बाद किसी शुभ दिन तुरही आदि मागलिन वाजोंके साथ साथ अपनी अनुकूलनाके अनुसार बहिर्यान क्रिया करनी चाहिये ॥९०॥ जिस दिन यह क्रिया की जावे उसी दिनमें माना अथवा घायकी गोदमें बैठे हुए बालकका प्रनूनिगृहमे बाहर ले जाना साम्प्रमम्भन है ॥९१॥ उम क्रियाके करते समय बालकको भाई बान्धव आदिमें पारिणोषिक भेंटम्पमे जो कुछ धनकी प्राप्ति हो उमे इकट्ठाकर, जब वह पुत्र पिताके धनका अधिकारी हो तब उमके लिये सौप देवे ॥९२॥ यह आठवी बहिर्यान क्रिया है ।

तदनन्तर, जिनके समीप मङ्गलद्रव्य रखे हुए हैं और जो बालकके योग्य हैं ऐसे विद्याये हुए आमनपर उस बालककी निपद्या क्रिया की जाती है अर्थात् उमे उत्तम आमनपर बैठा लेते हैं ॥९३॥ इस क्रियामें मिद्ध भगवान्की पूजा करना आदि मत्र विधि पहलेके समान ही करनी चाहिये जिनमें इन बालककी उत्तरोत्तर दिव्य आमनपर बैठनेकी योग्यता होती रहे ॥९४॥ यह नौवी निपद्या क्रिया है ।

१ ढो वा त्रया वा द्विप्रान्तं । २ अथवा । ३ प्रसववेश्मन मन्त्राणात् । ४ परिताय भव । ५ गम्यायाम् । ६ विस्तीर्णं । ७ निपद्याक्रियायाम् । ८ निपद्याक्रियाया ।

गते भागवयवस्त्रे^१ च जग्माद्यव्ये^२ यथाक्रमम् । भद्रप्राशनमाप्नोति पूजाविधिपुराणम् ॥६५॥

इति भद्रप्राशनम् ।

ततोऽस्य हायने^३ पूर्णं द्युष्टिर्नाम त्रिया मता । सर्ववर्धनपर्वप्राशस्त्रवाच्या यथाधृतम् ॥६६॥

अत्रापि पूर्ववद्दानं जनी पूजा च पूर्ववत् । इष्टवन्धुसमाह्वानं समाप्तादिभ्यः^४ तदधृतम् ॥६७॥

इति द्युष्टिः ।

वेशवापस्तु वेशाना शुभंशुभं प्यवरोपणम्^५ । क्षीरेण चर्मणा देवगुहपूजापुराणम् ॥६८॥

गन्धोदकादितान् कृत्वा वेशान् शोषाशतोचिन्तान् । मोषष्टयस्य विधेयं स्यात् सचूलं^६ स्वास्त्र्योचिन्तम्^७

स्नपनोदकवीतलङ्गम् श्रुत्वा लिप्तं सम्भूषणम्^८ । प्रणमय^९ मनीन् पश्यत् योजयेद् बन्धुनाश्रिया^{१०} ॥१००॥

चौलाद्यया प्रतीये कृतपुण्याहमङ्गला । त्रियतयामादृते लोको यन्ते परया मुदा ॥१०१॥

इति वेशायापः ।

ततोऽस्य पञ्चमे वर्षे प्रथमाक्षरदर्शने । ज्ञेयं क्रियाविधिर्नाम्ना लिपिसंज्ञकानसत्प्रह ॥१०२॥

यथाविभवमश्रापि ज्ञेयं पूजापरिच्छदः । उपाध्यायपदे चास्य मतोऽपीनो^{११} गृह्यती ॥१०३॥

इति लिपिसंज्ञकानसत्प्रहः ।

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मता । यत्रापनीतिवेदास्य मौञ्जी सत्रवन्धना ॥१०४॥

जय क्रम क्रमसे सात आठ माह व्यतीत हो जाये तब अर्हन्त भगवान्की पूजा आदि कर बालकको अत्र खिलाना चाहिये ॥९५॥ यह दसवीं अन्नप्राशन त्रिया है ।

तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होनेपर व्युष्टि नामकी त्रिया की जाती है इस त्रियाका दूसरा नाम शास्त्रानुसार वर्षवर्धन है ॥९६॥ इस क्रियामे भी पहले ही के समान दान देना चाहिये, जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनी चाहिये, इष्टवन्धुओको बुलाना चाहिये और सबको भोजन कराना चाहिये ॥९७॥ यह ग्यारहवीं व्युष्टि त्रिया है ।

तदनन्तर किसी शुभ दिन देव और गुरुकी पूजाके साथ साथ क्षीरकर्म अर्थात् उस्तरासे बालकके बाल बनवाना वेशवाप त्रिया कहलाती है ॥९८॥ प्रथम ही बालको गन्धोदकने गीला कर उनपर पूजाके बचे हुए शेष अन्नत रखले और फिर चोटी सहित अथवा अपनी कुलपद्धतिके अनुसार उसका मुडन करना चाहिये ॥९९॥ फिर स्नान करानेके लिये लये हुए जलसे जिसका समस्त शरीर साफ कर दिया गया है, जिस पर लेप लगाया गया है और जिसे उत्तम आभूषण पहिनाये गये है ऐसे उस बालकसे मुनियोंको नमस्कार करावे, पश्चात् सब भाँड़े, बन्धु उसे आशीर्वादसे युक्त करे ॥१००॥ इस क्रियामें पुण्याह-मंगल क्रिया जाता है और यह चौल क्रिया नामसे प्रसिद्ध है इस क्रियामें आदरको प्राप्त हुए लोग बडे हर्षसे प्रवृत्त होते हैं ॥१०१॥ यह वेशवाप नामकी बारहवीं क्रिया है ।

तदनन्तर पाचवें वर्षमे बालकको सर्वप्रथम अक्षरोका दर्शन करानेके लिये लिपिसंज्ञान नामकी त्रियाकी विधि की जाती है ॥१०२॥ इस क्रियामे भी अपने वैभवके अनुसार पूजा आदिकी सामग्री जुटानी चाहिये और अध्ययन करानेमे कुशल व्रती गृहस्थको ही उस बालकके अध्यापकके पदपर नियुक्त करना चाहिये ॥१०३॥ यह तेरहवीं लिपिसंज्ञान क्रिया है ।

गर्भसे आठवें वर्षमे बालककी उपनीति (यज्ञोपवीत धारण) क्रिया होती है । इस त्रियामें वेशोभा मुण्डन, व्रतवन्धन तथा मौञ्जीबन्धनकी त्रियाए की

१ सप्ताष्टमागे । २ जन्मदिनात् प्रारभ्य । ३ सन्त्सरे । ४ स्वस्त्रो वत्सरोऽव्दो हायनोऽम्नी पारत् सभा इयमिधानान् । ५ शास्त्रानुगारेण । ६ तत्रापि ल० । ७ सहभोजनादि । ८ अपनयनम् । ९ पृष्टामहितम् । १० शिष्यासहितमित्यय । ११ यान्वयोचिन्तम् व० । १२ यान्वयोचिन्तम् व० । १३ अत्रङ्गार-पुत्राणिम् । १४ गुनिभ्यो नमनं पारथिवा । १५ यन्धुसमूहकृतागोवचनेन । १६ अधीतवान् ।

दृताहंतृजनस्यास्य मौञ्जीवन्वो जिनाल्पये । गुस्तासि विधातप्यो व्रतार्पणपुरस्सरम् ॥१०५॥
 शिखी सिनादुक् सान्तर्वासि^१ निर्वेषविश्रिय^२ । व्रतचिह्नं दधत्सूत्र^३ तदोमनी ब्रह्मचार्यतो ॥१०६॥
 चरणोचितमन्यच्च^४ नामपेयं तत्स्य^५ वं । वृत्तिश्च निक्षयाज्येन राजन्याबुद्धबन्धनात् ॥१०७॥
 'सोऽन्तपुरे धरेत् पान्या' नियोग इति केवलम् । 'तदग्र देवसाहृत्य' ततोऽग्र योग्यमाहरेत्^६ ॥१०८॥
 इत्युपनीति ।

व्रतचर्यामती^१ वश्ये त्रियामस्योपविभूत । षट्चूटरशिरोलिङ्गम्^२ अनुष्ठानव्रतोचितम् ॥१०९॥
 कटीलिङ्गं भवेत्स्य मौञ्जीवन्वादिभिर्गुणं । रत्नत्रिनयशुद्धयङ्गं तद्वि चिह्नं दिवात्मनाम् ॥११०॥
 तस्येष्टमूढलिङ्गं च सुधीतसितशाटकम्^३ । आहृताना कूल पूत विद्यान् वेति सूचने ॥१११॥
 उरोलिङ्गमवाप्त्य स्याद प्रथितं सन्तभिर्गुणं । यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्यानमूचकम् ॥११२॥
 शिरोलिङ्गं च तस्येष्ट पर मोण्डजमनाविनम्^४ । भौण्ड्य मनोवच कायगतमस्योपधृ ह्यन ॥११३॥
 एवप्रायेण^५ लिङ्गेन विभुद्ध धारयेद् व्रतम् । स्पृश्याहिसाविरत्यादि ब्रह्मचर्योपधृ हितम् ॥११४॥
 दस्तकाष्ठग्रहो नास्य न ताम्बूल न चाञ्जानम् । न हृत्त्रिविभि स्थानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति ॥११५॥

जाती है ॥१०४॥ प्रथम ही जिनाल्पयनें जाकर जिमने अहन्तदेवकी पूजा की है ऐसे उस वालकको व्रत देकर उमका मौञ्जीवन्वन करना चाहिये क्यान् उमकी कमरमें मूजकी रस्मी बाधनी चाहिये ॥१०५॥ जा चोटी रमाये हुए है, जिसकी सफेद धोती और मफेद दुपट्टा है, जो वेप और विकारोमे रहिन है, तथा जो व्रतके चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत मूजको धारण कर रहा है ऐसा वह वालक उम समय ब्रह्मचारी कह्यता है ॥१०६॥ उम समय उमके आचरणके योग्य और भी नाम रखये जा सकने है । उम समय वडे बन्धवाली राजपुत्रको छोडकर सबको भिक्षावृत्तिमे ही निर्वाह करना चाहिये और राजपुत्रको भी अन्त-पुरमें जाकर माता आदिमे किसी पानमें भिक्षा मागनी चाहिये, क्योंकि उम समय भिक्षा लेने-का यह नियोग ही है । भिक्षामें जो कुछ प्राप्ता हो उमका अग्रभाग श्री अरहन्तदेवको समर्पण कर बानी वचें हुए योग्य अन्नका स्वयं भोजन करना चाहिये ॥१०७-१०८॥ यह चौदहवीं उपनीति त्रिया है ।

अथान्तर ब्रह्मचर्यं व्रतके योग्य कमर, जाध, वक्षम्यन् और शिरके चिह्नको धारण करनेवाले इस ब्रह्मचारी वालककी व्रतचर्या नामकी त्रियाना वर्णन करते है ॥१०९॥ तीन लरकी मूजकी रस्मी बाधनेसे कमरका चिह्न होता है, यह मौञ्जीवन्वन रत्न-नयकी विद्युद्धिका अंग है और द्विज लोगोका एक चिह्न है ॥११०॥ अत्यन्त धुनें हुई सफेद धोती उसकी जाधका चिह्न है, वह धोती यह सूचित करती है नि अरहन्त भगवान्का कूल पवित्र और विशाल है ॥१११॥ उमके वक्ष स्थलका चिह्न सात लरका गुथ्या हुआ यज्ञोपवीत है, यह यज्ञोपवीत सात परमस्यानोका मूचक है ॥११२॥ उमके शिरका चिह्न स्वच्छ और उत्कृष्ट मुण्डन है जो नि उमके मन, वचन, कायके मुण्डनको बढ़ानेवाया है । भावार्थ—शिर मुण्डनसे मन, वचन, काय पवित्र रहते है ॥११३॥ प्रायः इस प्रकारके चिह्नोंमे विभुद्ध और ब्रह्मचर्यमे वडे हुए स्व्यू हिमाजा त्याग (अहिंसाणु व्रत) आदि व्रत उमे धारण करना चाहिये ॥११४॥ इस ब्रह्मचारीको वृक्षको दातीन नहीं करनी चाहिये, न पान खाना चाहिये, न अजन लगाना चाहिये और न हन्दी आदि लगावन स्नान करना चाहिये, उमे प्रतिदिन केवल

१ अन्धवस्त्रणं महिन । २ षण्विंशत्परिहिन । ३ यज्ञमूत्रम् । ४ व्रतनायाग्यम् । ५ तदास्य ल० । ६ रात्रय । ७ पापे निना प्रायश्चित्तय । ८ निगानम् । ९ दक्षय्यं यद्द ममय । १० गमात्रं नृञ्जीन । ११-मत् १० । १२ ब्रह्मचयव्रत । १३ धवत्तम् । १४ उमनीपादिहिनम् । १५ एव प्रारणम् ।

न 'स्रष्टुवादायन तस्य गामाद्रगपरिपट्टनम् । भूमौ वेषतमेकानी शरीरं प्रतनुदुषे ॥११५॥
 यावद् विद्यातामपि स्वात् सायश्चयेषुं प्रतम् । ततोऽपूर्वं धत्तं तन् स्वाद् हानुसं गृहमेधितान् ॥११७॥
 सूत्रमोपासकं चाप्य स्यात्स्येषं गुरोर्गुप्तात् । विषयेन ततोऽप्येव धारत्रमप्यात्मगोचरम् ॥११८॥
 शब्दविद्याऽन्तस्त्रादि' चाप्येषं नाप्य 'बुद्धयति । सुनंस्वारत्रयोपाय 'वेद्यात्यवयानयेऽपि च ॥११९॥
 'ज्योतिर्ज्ञानमवच्छेदोत्तान' ज्ञानं च शास्त्रम् । 'तद्व्याप्तामिति' च तेषाम्येषं विनोयत ॥१२०॥
 इति व्रतधर्मा ।

ततोऽस्याधीतविद्यस्य व्रत'बुद्धयवतारणम् । धिर्दोषविषयं तच्च स्थितयोर्तागिने' व्रते ॥१२१॥
 मनुमांसपरित्याग पञ्चोदुम्बरवर्जनम् । हिंसाविकिरितश्चास्य व्रतं स्यात् सायंवातिकम् ॥१२२॥
 व्रतावतरण चेद गृहसाक्षिहृत्वाचंम्' । व्रताराद् द्वादशापूर्वम् अथवा षोडशान् परम् ॥१२३॥
 कृतद्विजाचंनस्यास्य व्रतावतरणोचितम् । व्रतारभरणमत्यादिद्वयं न्युनंशया ॥१२४॥
 शास्त्रोपजीवियम्यंश्चेद्' धारयेच्छस्त्रमप्यत्र । 'स्वद्वृत्तिपरिरक्षणं शोभयं चाप्य तद्ग्रह' ॥१२५॥
 भोगव्रतप्रतावेवम् अथतीर्णो भवेत्तदा । धामब्रह्मव्रत 'त्यस्य तावद्यावत्प्रयोत्तरा' ॥१२६॥
 इति व्रतावतरणम् ।

जलसे कुछ स्नान करना चाहिये ॥११५॥ उसे पाठ अथवा पत्रगण नहीं मोना चाहिये, दूसरेके शरीरसे अपना शरीर नहीं रगडना चाहिये, और व्रतोगो विगृह रगनेके लिये अकेला पृथिवीपर सोना चाहिये ॥११६॥ जब तक विद्या समाप्त न हो तब तक उसे यह व्रत धारण करना चाहिये और विद्या समाप्त होनेपर वे व्रत धारण करना चाहिये जो कि गृहस्थोंके मूलगुण कहलाते हैं ॥११७॥ सबसे पहले इस ब्रह्मचारीको मुखसे श्रावणाचार पटना चाहिये और फिर विनयपूर्वक अध्यात्मशास्त्र पढना चाहिये ॥११८॥ उत्तम सस्वारोंको जागृत करनेके लिये और विद्वत्ता प्राप्त करनेके लिये इस व्याकरण आदि शब्दशास्त्र और न्याय आदि अर्थशास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिये क्योंकि आचार-विषयक ज्ञान होनेपर इनके अध्ययन करनेमें कोई दोष नहीं है ॥११९॥ इसके बाद ज्योतिष शास्त्र, छन्दशास्त्र, शकुनशास्त्र और गणितशास्त्र आदिका भी उसे विशेषरूपसे अध्ययन करना चाहिये ॥१२०॥ यह पन्द्रहवीं व्रतधर्मा क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त विद्याओका अध्ययन कर लिया है ऐसे उस ब्रह्मचारीको व्रतावतरण क्रिया होती है । इस क्रियामें वह साधारण व्रतोका तो पालन करता ही है परन्तु अध्ययनके समय जो विशेष व्रत ले रखेथे उनका परित्याग कर देता है । ॥१२१॥ इस क्रियाके बाद उसके मधुत्याग, मासत्याग, पाच उदुम्बर फलोका त्याग और हिंसा आदि पाच स्थूल पापोंका त्याग, ये सदा काल अर्थात् जीवन पर्यन्त रहनेवाले व्रत रह जाते हैं ॥१२२॥ यह व्रतावतरण क्रिया गृहकी साक्षीपूर्वक जितेन्द्र भगवान्की पूजा कर बाह्य अथवा सोलह वर्ष बाद करनी चाहिये ॥१२३॥ पहले द्विजोंका सत्कार कर फिर व्रतावतरण करना उचित है और व्रतावतरणके बाद गृहकी आज्ञासे वस्त्र, आभूषण और माला आदिका ग्रहण करना उचित है ॥१२४॥ इसके बाद यदि वह शस्त्रोपजीवी अर्थात् क्षत्रिय वर्गका है तो वह अपनी आज्ञाविकाकी रक्षाके लिये शस्त्र भी धारण कर सकता है अथवा केवल शोभाके लिये भी शस्त्र ग्रहण किया जा सकता है ॥१२५॥ इस प्रकार इस क्रियामें यद्यपि वह भोगोप भोगीने ब्रह्मव्रतका अर्थात् साम्बूल आदिके त्यागका अवतरण (परित्याग) कर देता है तथापि

१ मन्त्रव । २ नीतिशास्त्र । ३ द्रुप्यने ल० द० । ४ घाट्यर्च । ५ ज्योतिषशास्त्रम् ।

६ छद्मधारणम् । ७ गणितशास्त्रम् । ८ वृत्ति जीवन । ९ साधारण । १० व्रताराधनम् । ११ जर्म भव ।

१२ निवृत्तजीवन । १३ चास्य ल० । १४ वक्ष्यमाण, वैवाहिकी ।

ततोऽप्य 'गुर्वनुज्ञानाद् इष्टा वंवाहिकी क्रिया । वंवाहिके' कृते कन्याम् उचिता परिणेष्यत ॥१२७॥
 सिद्धार्चनविधि सम्पद् निर्वर्त्य द्विजसत्तमा । वृत्तानिऋतसम्पूजा कुर्युस्तत्संक्षिता' क्रियाम् ॥१२८॥
 पुष्याश्रमे' ववचिन् सिद्धप्रतिमान्मुखं तयो । दम्पत्यो परया नूत्या कार्यं पाणिप्रहोत्सव ॥१२९॥
 वेद्या 'प्रणीतमन्त्रोना त्रय द्वयमवककम् । तत प्रदक्षिणोऽवृत्त प्रसज्य विनिवेदानम् ॥१३०॥
 पाणिप्रहणदीक्षाया नियुक्त तद्बधूवरम् । श्रातप्ताह' चरेद् ब्रह्मव्रत देवानिसाक्षिकम् ॥१३१॥
 श्रात्वा स्वत्योचिता भूमि तीर्थभूमौविहृत्य च । स्वगृह प्रविशद् भूत्या परया तद्बधूवरम् ॥१३२॥
 विमुक्तकद्रुण पदचात् स्वगृहे शयनीयकम् । श्रमिदाप्य ययाकाल भोगाऽङ्गंरूपतात्तितम् ॥१३३॥
 सन्तानार्थमृतावेव कामसेवा मियो भजेत् । शक्तिशान्त्यप्येत्तोऽप्य' क्रमोऽवतेष्यतोऽप्यया ॥१३४॥
 इति विवाहक्रिया ।

एव वृत्तविवाहस्य गार्हस्थ्यमनुतिष्ठत । स्वधर्मानतिवृत्त्यर्थं वर्णलाभमयो' श्रुवे ॥१३५॥
 'ऊदभायोऽप्यय तावद् अस्वतन्त्रो गुरोर्गृहे । तत स्वातन्त्र्यसिद्धयर्थं वर्णलाभोऽप्यय शणित ॥१३६॥
 गुरोरनुज्ञया लघ्वधनशान्नादिसम्पद । पूयकृतालयस्यास्यं वृत्तिवर्णाप्तिरिष्यते ॥१३७॥
 तथापि पूर्ववत्सिद्धप्रतिमानर्चनप्रत १० । वृत्ताऽप्यो'पासकान् मुख्यान् साक्षीकृत्यापयेद् धनम् ॥१३८॥

जव तक उमके आगेकी क्रिया नहीं होती तब वह काम परित्यागरूप ब्रह्मव्रतका पालन करता रहता है ॥१२६॥ यह सोलहवीं व्रतावतरण क्रिया है ।

तदनन्तर विवाहके योग्य कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ जो विवाह करना चाहता है ऐसे उस पुरुषकी गुरुकी आज्ञासे वैवाहिकी क्रिया की जाती है ॥१२७॥
 उत्तम द्विजोंको चाहिये कि वे सबसे पहले अच्छी तरह मित्र भगवान्की पूजा करें और फिर तीनों अग्नियोंकी पूजा कर उनकी साक्षीपूर्वक उम वैवाहिकी (विवाह सम्बन्धी) क्रियाको करें ॥१२८॥ किमी पवित्र स्थानमें बड़ी विभूतिके साथ मित्र भगवान्की प्रतिमाके सामने बधू-वरका विवाहोत्सव करना चाहिये ॥१२९॥ वेदीमें जो तीन, दो अथवा एक अग्नि उत्पन्न की थी उसकी प्रदक्षिणाएँ देकर बधू-वरको समीप ही बैठना चाहिये ॥१३०॥ विवाहकी दीक्षामें नियुक्त हुए बधू और वरको देव और अग्निकी साक्षीपूर्वक सात दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिये ॥१३१॥ फिर अपने योग्य किसी देगमें भूगण कर अथवा तीर्थभूमिमें विहारकर वर और बधू बड़ी विभूतिके साथ अपने घरमें प्रवेश करें ॥१३२॥ तदनन्तर जिनका वरण छोड़ दिया है, ऐसे वर और बधू अपने घरमें समया नुसार भोगोपभोगके साधनोने शुशोभित शय्यापर शयन कर वेष्ट भतान उत्पन्न करनेकी इच्छामें ऋतुनालमें ही परस्पर काम-मोचन करें । काम-मोचनका यह व्रत का' तथा शक्ति की अपेक्षा रमता है इसलिये शक्तिहीन पुरुषोंने लिये इसमें विपरीत व्रम ममकना चाहिये अर्थात् उन्हें ब्रह्मचर्यमें रहना चाहिये ॥१३३-१३४॥ यह सत्रहवीं विवाह क्रिया है ।

इन प्रकार जिमका विवाह किया जा चुका है और जो गार्हस्थ्यधर्मका पालन कर रहा है ऐसा पुरुष अपने धर्मका उत्तमन न करे इसलिये उमके अर्थ वर्णलाभ क्रियाको कहते हैं ॥१३५॥ यद्यपि उमका विवाह हो चुका है तथापि वह जबतक पिताके घर रहता है तबतक अम्बतन्त्र ही है इसलिये उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये यह वर्णलाभकी क्रिया कही गई है ॥१३६॥ पिताकी आज्ञासे जिसे धनशान्त आदि सम्पदाएँ प्राप्त हो चुकी हैं और मयान भी जिसे अलग मित्र चुका है ऐसे पुरुषकी स्वतन्त्र आजीविका करने लानेको वर्णलाभ कहते हैं ॥१३७॥ इस क्रियाके समय

१ पितृनुमात् । २ विवाहोक्ति । ३ शक्ति तां स० । ४ पवित्रदेगे । ५ गृहान् ।

६ श्राद्धविवरणम् । ७ सन्तानार्थम् ऋतुराज कामवधम् । ८-भ्रता ७० । ९ विवाहित ।

१० आगे । ११ इत्यान्यो-म० ।

धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मिन् स्वगृहे पुष्यत् । गृहिधर्मतरवया धार्यं कृत्वा दातव्यं ॥१३६॥
 यथाऽस्मत्पितृवृत्तो धनेनात्माभिराजितम् । यतो धर्मस्य तद्गर्वं यतो धर्मात्प्राप्तं ॥१४०॥
 इत्येवमनुशिष्येन^१ वर्णलाभे नियोजयेत् । सदाचरं शोभितं धर्मं तत्प्राप्तुं नृणामर्तम् ॥१४१॥
 इति वर्णलाभक्रिया ।

सव्यवर्णस्य तस्येति कुलधर्माऽनुधीयन्ते । सा स्थित्वाऽस्मिन्निद्विषयक्षणा प्राग् प्रपञ्चिता ॥१४२॥
 विशुद्धा वृत्तिरस्याप्यव्ययधर्मात्प्रयत्नात् । गृहिणां कुलधर्मोऽप्येता कुलधर्मोऽप्येता मत् ॥१४३॥

इति कुलधर्मा क्रिया ।

कुलधर्मानुप्राप्तो धर्मो दाइधर्ममोदहन^२ । गृहस्थाचार्यभावेन संवयेत् सा गृहीतिनाम् ॥१४४॥
 ततो वर्णोत्तमत्वेन स्थापयेत् स्वां गृहीतिनाम् । शुभवृत्तित्रियामत्रविवाहं सोत्तरत्रियम् ॥१४५॥
 धन-यससुशैरेभि श्रुतवृत्तिक्रियादिभिः^३ । स्वमूर्ध्नि नयन्नेयं तदाऽऽर्हति गृहीतिनाम् ॥१४६॥
 वर्णोत्तमो महीदेव सुश्रुतो द्विजसत्तम । निस्तारको^४ ग्रामपति माताऽऽर्हति मानित ॥१४७॥
 इति गृहीतिना ।

सोऽनुरूप ततो लब्ध्वा सूनुमात्मभरक्षमम् । तत्रारोपितगार्हस्थ्यं तन् प्रशान्तिमत्त श्रयेत् ॥१४८॥

भी पहलेके समान सिद्ध प्रतिमाजीवा पूजन कर पिता अन्य मुरय श्रावणको सारी वर उन्ने सामने पुनको धन अर्पण करे तथा यह वहे कि यह धन लेकर तुम इस अपने घरमें पृथक् रूपसे रहो । तुम्हे दान पूजा आदि समस्त गृहस्थधर्म पालन करते रहना चाहिये । जिम प्रकार हमारे पिताके द्वारा दिये हुए धनसे मैने यदा और धर्मका अर्जन किया है उसी प्रकार तुम भी यदा और धर्मका अर्जन करो । इस प्रकार पुनको समझाकर पिता उसे वर्णलाभमें नियुक्त करे और सदाचारका पालन करता हुआ वह पुन भी पिताके धर्मका पालन करनेके लिये समर्थ होता है ॥१३८-१४१॥ यह अठारहवीं वर्णलाभ क्रिया है ।

जिसे वर्णलाभ प्राप्त हो चुका है ऐसे पुत्रके लिये कुलधर्मा क्रिया कही जाती है और पूजा, दत्ति तथा आजीविका करना आदि सब जिसके लक्षण है ऐसी कुलधर्मा क्रियाका पहले विस्तारके साथ वर्णन कर चुके हैं ॥१४२॥ निर्दोषरूपसे आजीविका करना तथा आर्य पुरुषोके करने योग्य देवपूजा आदि छह कार्य करना यही गृहस्थोकी कुलधर्मा कहलाती है और यही उनका कुलधर्म माना जाता है ॥१४३॥ यह उन्नीसवीं कुलधर्मा क्रिया है ।

तदनन्तर कुलधर्माको प्राप्त हुआ वह पुरुष धर्ममें दृढताको धारण करता हुआ गृहस्थाचार्यरूपसे गृहीतिनाको स्वीकार करे अर्थात् गृहस्थोका स्वामी बने ॥१४४॥ फिर उसे आपको उत्तमवर्ण मानकर आपमें गृहीतिना स्थापित करनी चाहिये । जो दूसरे गृहस्थोमें न पाई जावे ऐसी शुभ वृत्ति, क्रिया, मन्त्र, विवाह तथा आगे कही जानेवाली क्रियाएँ, शास्त्रज्ञान और चारित्र आदिकी क्रियाओसे अपने आपको उन्नत करता हुआ वह गृहीति अर्थात् गृहस्थोके स्वामी होनेके योग्य होता है ॥१४५-१४६॥ उस समय वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपति और मानाहं इत्यादि कहकर लोगोको उसका सत्कार करना चाहिये ॥१४७॥ यह बीसवीं गृहीतिना क्रिया है ।

तदनन्तर वह गृहस्थाचार्य अपना भार सभालनेमें समर्थ योग्य पुनको पाकर उसे अपनी

विषयेष्वनभिष्यद्गो^१ नित्यस्वाध्यायशोभता । नानाविधोपवासंश्च वृत्तिरिष्टा प्रशान्ता ॥१४६॥

इति प्रशान्ति ।

तत कृतार्थमात्मान मन्यमानो गृह्याश्रमे । यदोद्यतो गृहत्यागे तदाश्रयं क्रियाविधि ॥१५०॥
सिद्धान्तना पुरस्कृत्य सर्वानाहुय सम्मतान् । तत्साक्षि सूनवे सर्वं निवेद्यातो गृह त्यजेत् ॥१५१॥
कुलश्रमस्त्वया तात सम्पाल्योऽम्भस्परौक्षत । त्रिधा कृतं च नो^२ द्रव्यं त्ययेत्य विनियोग्यताम् ॥१५२॥
एकौऽतो धर्मकार्येऽतो द्वितीय स्वगृहव्यये । तृतीयं सविभागाय भवेत्स्वत्सहजन्मनाम् ॥१५३॥
पुत्र्यश्च सविभागाहं सप्त पुत्रं समाशरं^३ । त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठं सन्तति नोऽनुपालय ॥१५४॥
श्रुतवृत्तक्रियामन्त्रविधिरास्त्वमतन्द्रित । प्रपालय^४ कुलाम्नाय गुरु देवाश्च पूजयन् ॥१५५॥
इत्येवमनुशिष्य स्व ज्येष्ठं सूनुमनाकुल । ततो दीक्षामुपादात् द्विज स्व गृहमुत्सृजेत् ॥१५६॥

इति गृहत्याग ।

त्यक्तागारस्य सद्वृष्टे प्रशान्तस्य गृहीदिन । प्राग्दीक्षीपथिकात्^५ कालाद् एवशाक्यधारिण ॥१५७॥

यत्पुरन्दरघण बीक्षाग्रहण प्रति धार्यते । बीक्षाद्य नाम तज्ज्येय क्रियाजतं^६ द्विजमन ॥१५८॥

इति दीक्षाद्यम् ।

त्यक्तचेलादितद्गस्य जैर्ना दीक्षामुपेयु^७ । धारणं जातल्पस्य यत्तत् स्याज्जिनरूपता ॥१५९॥

गृहस्थीका भार सौंप दे और आप स्वयं उत्तम शान्तिका आश्रय ले ॥१४८॥ विषयोंमें आनन्द नहीं होना, नित्य स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहना तथा नाना प्रकारके उपवास आदि करते रहना प्रशान्त वृत्ति कहलाती है ॥१४९॥ यह इक्कीसवीं प्रशान्ति क्रिया है ।

तदनन्तर गृहस्थाश्रममें अपने आपको वृत्तार्थ मानता हुआ जन वह गृहत्याग करनेके लिये उद्यत होता है तब उसके यह गृहत्याग नामकी क्रियाकी विधि की जाती है ॥१५०॥ इस क्रियामें सबसे पहले सिद्ध भगवान्का पूजन कर समस्त इष्टजनोको बुलाना चाहिये और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुनके लिये सब कुछ सौंपकर गृह त्याग कर देना चाहिये ॥१५१॥ गृहत्याग करते समय ज्येष्ठ पुनको बुलाकर उससे इस प्रकार कहना चाहिये कि पुन, हमारे पीछे यह कुलश्रम तुम्हारे द्वारा पालन करने योग्य है । मैंने जो अपने धनके तीन भाग किये है उनका तुम्हें इस प्रकार विनियोग करना चाहिये कि उनमेंसे एक भाग तो धर्मकार्यमें खर्च करना चाहिये, दूसरा भाग अपने घर खर्चके लिये रखना चाहिये और तीसरा भाग अपने भाइयोंमें बांट देनेके लिये है । पुनको समान पुत्रियोंके लिये भी बराबर भाग देना चाहिये । हे पुन, तू कुलका बड़ा होकर मेरी सब सत्तानका पालन कर । तू शान्त, सदाचार, क्रिया, मन्त्र और विधिको जाननेवाला है इसलिये आलस्यरहित हाकर देव और गुणोंकी पूजा करता हुआ अपने कुलधर्मका पालन कर । इस प्रकार ज्येष्ठ पुनको उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करनेके लिये अपना घर छोड़ दे ॥१५२-१५६॥ यह बाईसवीं गृहत्याग नामकी क्रिया है ।

जिसने घर छोड़ दिया है, जो मध्यमवृष्टि है, प्रशांत है गृहस्थोंका स्वामी है और दीक्षाधारण करनेके समयके कुछ पहले जिसने एक वस्त्र धारण किया है उसके दीक्षाग्रहण करनेके पहले जो कुछ आचरण किये जाते हैं उन आचरणों अथवा क्रियाओंके समूहको द्विजकी दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं ॥१५७-१५८॥ यह तेईसवीं दीक्षाद्य क्रिया है ।

जिसने वस्त्र आदि सब परिग्रह छोड़ दिये है और जो जिनदीक्षाको प्राप्त करना चाहता है ऐसे पुरपका दिग्म्बररूप धारण करना जिनरूपता नामकी क्रिया कह्यती है ॥१५९॥

१ नित्यम् । २ अस्माकम् । ३ कुलपरम्पराम् । ४ दीक्षास्वीकारान् शत्र् । ५ क्रियासमूहः ।

६ गतस्य ।

धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मिन् स्वगृहे पुष्य् । गृहधर्मस्त्वया धार्यं कृत्स्नो दानादितक्षण ॥१३१॥
यथाऽस्मत्पितृदत्तेन धनेनस्माभिराजितम् । यशो धर्मश्च तद्वत्त्व यशोधर्मानुपायेण ॥१४०॥
इत्येवमनुशिल्पेन^१ वर्णलाभे नियोजयेत् । सदार सोऽपि त धर्मं तयानुष्ठातुमर्हति ॥१४१॥

इति वर्णलाभक्रिया ।

सर्ववर्णस्य तस्मैति कुलचर्याऽनुकीर्यते । सा त्विज्यादत्तित्वातीदिलक्षणा प्राक् प्रवञ्चिता ॥१४२॥
विशुद्धा वृत्तिरस्यायंपट्टकमानुप्रवर्तनम् । गृहिणा कुलचर्येष्टा कुलधर्माऽप्यसौ मता ॥१४३॥

इति कुलचर्या क्रिया ।

कुलचर्यामनुप्राप्तो धर्मो दाढर्चमयोद्बहन् । गृहस्थाचार्यभावेन संप्रयेत् स गृहीशानाम् ॥१४४॥

ततो वर्णोत्तमरत्नेन स्यापयेत् स्वा गृहीशिताम् । शुभवृत्तिक्रियामन्त्रविवाहं सोत्तरक्रिये ॥१४५॥

धनन्यसद्गौरैरभि श्रुतवृत्तिक्रियादिभि । स्वमुन्नतिं नयन्नेप तदाऽर्हति गृहीशिताम् ॥१४६॥

वर्णोत्तमो महोदेव सुश्रुतो द्विजसत्तम । निस्तारको ग्रामपति मानाहंश्चेति मानित ॥१४७॥

इति गृहीशिता ।

सोऽनुष्ण ततो लब्ध्वा सूनूमात्मभरक्षमम् । तच्चारोपितगाहंस्य सन् प्रवान्तिमत श्रयेत् ॥१४८॥

भी पहलेके समान सिद्ध प्रतिमाओका पूजन कर पिता अन्य मुख्य श्रावकोको साक्षी कर उनके सामने पुत्रको धन अर्पण करे तथा यह कहे कि यह धन लेकर तुम इस अपने घरमे पृथक् रूपसे रहो । तुम्हें दान पूजा आदि समस्त गृहस्थधर्म पालन करते रहना चाहिये । जिस प्रकार हमारे पिताके द्वारा दिये हुए धनसे मैने यश और धर्मका अर्जन किया है उसी प्रकार तुम भी यश और धर्मका अर्जन करो । इस प्रकार पुत्रको समझाकर पिता उसे वर्णलाभमे नियुक्त करे और सदाचारका पालन करता हुआ वह पुन भी पिताके धर्मका पालन करनेके लिये समर्थ होता है ॥१३८-१४१॥ यह अठारहवीं वर्णलाभ क्रिया है ।

जिसे वर्णलाभ प्राप्त हो चुका है ऐसे पुत्रके लिये कुलचर्या क्रिया कही जाती है और पूजा, दत्त तथा आजीविका करना आदि सब जिसके लक्षण है ऐसी कुलचर्या क्रियाका पहले विस्तारके साथ वर्णन कर चुके हैं ॥१४२॥ निर्दोषरूपसे आजीविका करना तथा आर्य पुरषोके करने योग्य देवपूजा आदि छह कार्य करना यही गृहस्थोकी कुलचर्या कहलाती है और यही उनका कुलधर्म माना जाता है ॥१४३॥ यह उन्नीसवीं कुलचर्या क्रिया है ।

तदनन्तर कुलचर्याको प्राप्त हुआ वह पुरुष धर्ममें दृढताको धारण करता हुआ गृहस्थाचार्यरूपसे गृहीशिताको स्वीकार करे अर्थात् गृहस्थोका स्वामी बने ॥१४४॥ फिर उन्ने आपको उत्तमवर्ण मानकर आपमें गृहीशिता स्यापित करनी चाहिये । जो दूसरे गृहस्थोमें न पाई जावे ऐसी शुभ वृत्ति, क्रिया, मन्त्र, विवाह तथा आगे कही जानेवाली क्रियाएँ, शास्त्रज्ञान और चारित्र आदिकी क्रियाओसे अपने आपको उन्नत करता हुआ वह गृहीश अर्थात् गृहस्थोके स्वामी होनेके योग्य होता है ॥१४५-१४६॥ उस समय वर्णोत्तम, महोदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपति और मानाहं इत्यादि बहुर लोगोको उसका सत्कार करना चाहिये ॥१४७॥ यह बीसवीं गृहीशिता क्रिया है ।

तदनन्तर वह गृहस्थाचार्य अपना भार सभालनेमें समर्थ योग्य पुत्रको पाकर उसे अपनी

विद्यमेवैनभिष्वङ्गो^१ नित्यस्वाध्यायशीलता । नानाविधोपवासंश्च वृत्तिरिष्टा प्रशान्ता ॥१४६॥

इति प्रशान्ति ।

तत कृतार्थमात्मान मन्यमानो गृहायमे । यदोद्यतो गृहत्यागे तदाऽभ्यर्ष क्रियाविधि ॥१५०॥
 सिद्धार्चना पुरस्कृत्य सर्वानाहुय सम्मतान् । तत्साक्षि सूनवे सर्वं निवेद्यानो गृह त्यजेत् ॥१५१॥
 कुसुमस्त्वया तात सम्पाल्योऽभ्यन्तरोक्षत । त्रिधा हृतं च नो^२ ब्रह्म त्वयेत्य विनियोग्यताम् ॥१५२॥
 एकोऽशो धर्मकार्योऽतो द्वितीय स्वगृहव्यये । तृतीय सविभागाय भवेत्स्वसहजन्मनाम् ॥१५३॥
 पुण्यद्वयं सविभागाहो समं पुत्रं समादाहं । त्वं तु नृत्वा कुलज्येष्ठं सन्तानं नोऽनुपातय ॥१५४॥
 श्रुतवृत्तक्रियामन्त्रविधिसंस्वमतन्द्रित । प्रपालय^३ कुलाम्नाय गुरु देवादश्च पूजयन् ॥१५५॥
 इत्येवमनुशिष्य स्व ज्येष्ठं सूनुमनाकुल । ततो दीक्षामुपावात् द्विज स्व गृहमुत्सृजेत् ॥१५६॥

इति गृहत्याग ।

त्यक्तागारस्य सद्दृष्टे^४ प्रशान्तस्य गृहीदिन । प्राग्दीक्षोपयिक्ता^५ कालाद् एवशाटकधारण ॥१५७॥
 पलुरदचरण दीक्षाग्रहण प्रति धार्यते । दीक्षाद्य नाम तज्ज्ञेयं श्रियाजातं द्विजन्मन ॥१५८॥

इति दीक्षाद्यम् ।

स्वस्तचैलादिसद्गस्य जैत्रौ दीक्षामुपेयुष^६ । धारणं जातएपस्य यत्तत् स्याज्जिनरपता ॥१५९॥

गृहस्थीका भार सौंप दे और आप स्वयं उत्तम शान्तिका आश्रय ले ॥१४८॥ विषयोमें आसक्त नहीं होना, नित्य स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहना तथा नाना प्रकारके उपवास आदि करते रहना प्रशान्त वृत्ति कहलाती है ॥१४९॥ यह इक्कीसवीं प्रशान्ति क्रिया है ।

तदनन्तर गृहस्थाथममें अपने आपको कृतार्थ मानता हुआ जब वह गृहत्याग करनेके लिये उद्यत होता है तब उसके यह गृहत्याग नामकी क्रियाशी विधि की जाती है ॥१५०॥ इस क्रियामें सबसे पहले मित्र भगवान्का पूजन कर समस्त इष्टजनोको बुलाना चाहिये और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुनके लिये सत्र कुछ सौंपकर गृह त्याग कर देना चाहिये ॥१५१॥ गृहत्याग करते समय ज्येष्ठ पुत्रको बुलाकर उससे इस प्रकार कहना चाहिये कि पुत्र, हमारे पीछे यह कुलजम तुम्हारे द्वारा पालन करने योग्य है । मैंने जो अपने धनके तीन भाग किये हैं उनका तुम्हें इस प्रकार विनियोग करना चाहिये कि उनमेंसे एक भाग तो धर्मकार्यमें खर्च करना चाहिये, दूसरा भाग अपने घर खर्चके लिये रखना चाहिये और तीसरा भाग अपने भाइयोंमें बांट देनेके लिये है । पुत्रोके समान पुत्रियोके लिये भी बराबर भाग देना चाहिये । हे पुत्र, तू कुटुम्बा बडा होकर मेरी सब सतानका पालन कर । तू शान्त, मदाचार, क्रिया, मन्त्र और विधियों जाननेवाला है इसलिये आलस्यरहित होकर देव और गुप्तोशी पूजा करता हुआ अपने कुलधर्मका पालन कर । इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करनेके लिये अपना घर छोड दे ॥१५२-१५६॥ यह बाईसवीं गृहत्याग नामकी क्रिया है ।

जिसने घर छोड दिया है, जो सम्यग्दृष्टि है, प्रशान्त है, गृहस्थोका स्वामी है और दीक्षाधारण करनेके समयके कुछ पहले जिनने एक वस्त्र धारण किया है उनसे दीक्षाग्रहण करनेके पहले जो कुछ आचरण किये जाने हैं उन आचरणो अथवा क्रियाओंके समूहको द्विजकी दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं ॥१५७-१५८॥ यह तेईसवीं दीक्षाद्य क्रिया है ।

जिनने वस्त्र आदि सब परिग्रह छोड दिये हैं और जो जिनदीक्षानो प्राप्त करना चाहना है ऐसे पुरुषका दिगम्बररूप धारण करना जिनरपता नामकी क्रिया कहलाती है ॥१५९॥

१ नित्यम् । २ अम्मावम् । ३ कुलपरम्पराम् । ४ दीक्षाञ्चीकारान् प्राक् । ५ क्रियामपुद् ।

६ गयत्य ।

अज्ञव्यधारण चेद जन्तुना कातरात्मनाम् । जैन निस्सङ्गतामूह्य रूप धीरैर्निवेद्यते ॥१६०॥
इति जिनरूपता ।

कृतवीथीपवासस्य प्रवृत्ते पारणाविधौ । मौनाध्ययनवृत्तत्वम् इष्टमाश्रुतनिष्ठिते^१ ॥१६१॥
वाचंयमो विनीतात्मा विशुद्धकरणय । सोऽपीपीत^२ श्रुत कृत्स्नम् श्रामूलाद् गृहसन्निधौ ॥१६२॥
श्रुत हि विधानानेन भव्यात्मभिरुपासितम् । योग्यतामिह पुष्पाति परत्रापि प्रसीदति ॥१६३॥

इति मौनाध्ययनवृत्तत्वम् ।

ततोऽप्येतास्त्रिणाचार शास्त्रादिश्रुतविस्तर । विशुद्धाचरणोऽभ्यस्येत् तीर्थकृत्त्वय भावनाम् ॥१६४॥
सा तु षोडशधाऽऽम्नाता महाम्बुदयसाधिनो । सम्यग्दर्शनशुद्धचादिलक्षणा प्राक्प्रपञ्चिता ॥१६५॥

इति तीर्थकृद्भावना ।

ततोऽप्य विदितशेष^३वेद्यस्य विजिततमन । गुरुस्थानाभ्युपगम मम्मतो गुर्वनुग्रहात् ॥१६६॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्न स्वगुरोरेभिसम्मत । विनीतो धर्मशीलश्च य सोऽर्हति गुरो पदम् ॥१६७॥

गुरुस्थानाभ्युपगम ।

तत सुविहितस्यास्य^४ युक्तस्य गणशेषणो । गणोपग्रहण नाम क्रियाम्नाता महर्षिभि ॥१६८॥

जिनका आत्मा कातर है ऐसे पुरुषोको जिनरूप (दिगम्बररूप) का धारण करना कठिन है इसलिये जिसमे परिग्रह त्यागकी मुख्यता है ऐसा यह जितेन्द्रदेवका रूप धीरवीर मनुष्योके द्वारा ही धारण किया जाता है ॥१६०॥ यह चौबीसवी जिनरूपता क्रिया है ।

जिसने दीक्षा लेकर उपवास किया है और जो पारणकी विधिमे अर्थात् विधिपूर्वक आहार लेनेमें प्रवृत्त होता है ऐसे साधुका शास्त्रकी समाप्ति पर्यन्त जो मौन रखकर अध्ययन करनेमें प्रवृत्ति होती है उसे मौनाध्ययनवृत्तत्व कहते हैं ॥१६१॥ जिसने मौन धारण किया है, जिसका आत्मा विनय युक्त है, और मन वचन काय शुद्ध है ऐसे साधुको गुरुके समीपमें प्रारम्भमे लेकर समस्त शास्त्रोका अध्ययन करना चाहिये ॥१६२॥ क्योंकि इस विधिसे भव्यजीवोके द्वारा उपासना किया हुआ शास्त्र इस लोकमें उनकी योग्यता बढ़ाता है और परलोकमे प्रसन्न रखता है ॥१६३॥ यह पच्चीसवी मौनाध्ययनवृत्तत्व क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त आचार शास्त्रका अध्ययन किया है, तथा अन्य शास्त्रोके अध्ययनमे जिसने समस्त श्रुतज्ञानका विस्तार प्राप्त किया है और जिसका आचरण विमुद्ध है ऐसा साधु तीर्थंद्धर पदकी भावनाओका अभ्यास करे ॥१६४॥ सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिरचना आदि जिनके लक्षण है जो महान् ऐश्वर्यको देनेवाली है तथा पहले जिनका विस्तारसे गाय वर्णन किया जा चुका है ऐसी वे भावनाएँ सोलह मानी गई हैं ॥१६५॥ यह छत्रीसवी तीर्थकृद्भावना नामकी क्रिया है ।

तदान्तर जिसने समस्त विद्याएँ जान ली हैं और जिसने अपने अन्त करणको बस कर लिया है ऐसे साधुना गुरुके अनुग्रहसे गुरुका स्थान स्वीकार करना शास्त्रसमत है ॥१६६॥ जो ज्ञान विज्ञान करने सम्पन्न है, अपने गुरुको इष्ट है अर्थात् जिसे गुरु अपना पद प्रदान करना योग्य समझने है, जो विनयवान् और धर्मरत्ना है यह साधु गुरुका पद प्राप्त करनेके योग्य है ॥१६७॥ यह सत्सङ्गकी गुरुस्थानाभ्युपगम क्रिया है ।

तदान्तर जो सदाचारका पालन करता है गण अर्थात् समस्त मुनियुक्तके पोषण

१ श्रुतगणानिर्गन्तम् । २ मौनी । ३ अध्ययनं कुर्यात् । लिट् । ४-विष्णवे १०, २०, ५० । ५ ज्ञान भाष्यकार । विज्ञान विष्णुकार । ६ सदाचारत्व ।

श्रावकानामिहामह्य श्राविका सपतानपि । सन्मार्गे वर्नयद्गोप गणपोषणमाचरेत् ॥१६६॥
 भुनासिन्धुं धृतं दद्याद् दौर्ध्वायिन्धुश्च दौसणम् । धर्मायिन्धुःपि सद्धर्मं स शश्वत् प्रनिपादयेत् ॥१७०॥
 सद्ब्रह्मान् धारयन् सूरिरमद्ब्रह्मज्ञानिवारयन् । शाश्वदश्च कृतादागोनान् स विभूयाद् गणम् ॥१७१॥
 इति गणोपग्रहणम् ।

गणपोषणमित्यादिभ्रुवद्वाच्यं ततम् । ततोऽप्य स्वगुरुभ्यान्तनक्रन्तो यत्नवान् भवेत् ॥१७२॥
 श्रयोनिविद्यं तद्विद्यं श्राद्धं मुनिमत्तमं । योग्यं शिष्यमपाहूय तत्तमं स्व भारमभयेत् ॥१७३॥
 गुरोरनुमनान् मोक्षपि गुरुभ्यान्मविच्छिन्त । गुरुवृत्ती स्वयं निच्छन् वर्नयेदमित्तं गणम् ॥१७४॥
 इति स्वगुरुभ्यानावापि ।

तत्रारोप्य नरं कृत्स्नं काले कस्मिंश्चिदन्वय । कृपयैश्च विहारो स निःसङ्गात्वात्तन्मावनात् ॥१७५॥
 निमन्त्रावृत्तेरैको विहरन् न महानथा । चिकीर्षुरात्मसम्भारं नाप्य सञ्चर्नुमर्हति ॥१७६॥
 श्रयि रागं सनुमृग्य शिष्यप्रवचनादिषु । निमन्त्रैवैवनात् सश्चर्वादादि तदाश्रयेत् ॥१७७॥
 इति निमन्त्रणं वा मन्त्रावनात् ।

कृत्स्नं वा मन्त्रं वा तत्र सन्लेखनोद्यत । कृतात्मदक्षिणभ्यान् योगनिर्वाणाम्बुधान् ॥१७८॥

अन्तर्मे जो न्यत्र गृह्णा है उमने महर्षिभोने गणोपग्रहण नामकी विज्ञा मानी है ॥१६८॥
 उम आचार्यको चाहिये कि वह मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंको समीचीन
 मार्गमें उगाता हुआ अच्छी तरह नथका पोषण करे ॥१६९॥ उसे वह भी चाहिये कि
 वह गान्ध अन्वयनकी इच्छा करनेवाओंको दीक्षा देवे और धर्मात्मा जीवोंके शिष्ये
 धर्मज्ञा प्रनिपादन करे ॥१७०॥ वह आचार्य मदाचार्य धारण करनेवाओंको प्रेरित करे,
 दुर्गाचारियोंको दूर हटावे और किये हुए स्वकीय अपराधनों मन्त्रो योगना हुआ
 अपने आश्रितगणकी रक्षा करे ॥१७१॥ यह अज्ञाईसवी गणोपग्रहण क्रिया है ।

तदनन्तर इन प्रकार नथका पालन करना हुआ वह उनम आचार्य अपने गुरुका
 न्यान प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न सहित हो ॥१७२॥ जिनने समस्त विद्याए पढ ली
 है और उन विद्याओंके जानकार उत्तम उत्तम मुनि जिसका आदर करने है ऐसे योग्य
 शिष्यको चुनकर उमने लिये अपना भाग सोप दे ॥१७३॥ गुरुकी अनुमतिसे वह शिष्य
 भी गुरुके स्थानपर अग्रिष्ठित होना हुआ उनके समस्त आचरणोंका स्वयं शरण करे और
 समस्तमथको पालन करावे ॥१७४॥ यह उन्नीसवीं स्वगुरुभ्यानावापि क्रिया है ।

उम प्रकार नुयोग्य शिष्यपर समस्त भार सोपकर जो किसी कालमें दुःखी नहीं
 होता है ऐसा मानु अकेल विहार करना हुआ 'मेरा आमा गव प्रवाग्ने पण्डितमे रहित
 है' इस प्रवाग्नेकी भावना करे ॥१७५॥ जिसकी वृत्ति समस्त पण्डितमे रहित है, जो अकेल
 ही विहार करता है, महानपस्वी है और जो केवल अपने आमाका ही सम्भार करना चाहता
 है उमने किसी अन्य पदार्थका सम्भार नहीं करना चाहिये अर्थात् अपने आमाको छोड़कर
 किसी अन्य मायु या गृहस्थके सुधारकी चिन्तामें नहीं पटना चाहिये ॥१७६॥ शिष्यगुम्भक आदि
 सप्त पदार्थोंमें राग छोड़कर और निमन्त्रणभावनामें एवात्र वृत्ति लगाकर उन समय उमने
 चारित्र्यकी मुक्ति धारण करनी चाहिये ॥१७७॥ यह तीसवीं निमन्त्रणं वा मन्त्रावना क्रिया है ।

तदनन्तर इस प्रकार अपने जानकार सम्भार कर जो गुरुकेना धारण
 करनेके लिये उद्यत हुआ है और जिनने सब प्रवाग्ने आमाकी मुक्ति कर ली है वेना

योगो ध्यान 'तदयो यो यत्न सवेगपूर्वक । तमाहुर्वोगनिर्वाणसम्प्राप्त परम तप ॥१७६॥
 कृत्वा परिकर योग तनुशोषनपूर्वकम् । शरीर कर्षयेंदोषे सम रागादिभिस्तवा ॥१८०॥
 तदेतद्योगनिर्वाण सप्राप्ते पूर्वभावना । जीविताशा मृतीच्छा च हित्वा 'भव्यात्मतन्वये ॥१८१॥
 रागद्वेषौ समुत्सृज्य श्रेयोऽवाप्नो च सशयम् । अनाभ्योषेय चात्मोयसङ्कल्पाद् धिरमेतदा ॥१८२॥
 नाह वैदो मनो नास्मि न वाणो न च कारणम् । 'तत्त्रयस्येत्यनुद्दिगो भजेदग्न्यत्वभावनाम् ॥१८३॥
 ग्रहमेरो न मे कश्चिद्वैवाहमपि कस्यचित् । इत्यवीनमना सम्पयेकत्वमपि भावयेत् ॥१८४॥
 यतिमाधाय लोकाग्रे नित्यानन्तमुखास्पदे । भावयेद् योगनिर्वाण स योगी योगसिद्धये ॥१८५॥

इति निर्वाणसम्प्राप्ति ।

ततो निरोधमाहार शरीर च समुत्सृजन् । योगीन्द्रो योगनिर्वाणसाधनाद्योद्यतो भवेत् ॥१८६॥
 उत्तमार्थे कृतास्त्यान 'सन्त्यस्ततनुषुद्धयो । ध्यायन् मनोवच 'काप्यान् बहिर्भूतान् स्ववान् स्वत ॥१८७॥
 प्राणिययन् मनोवृत्तं पदेयु परमेष्ठिताम् । जीवितान्ते स्वसत्कुर्याद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८८॥
 योग समाधिनिर्वाण तत्कृता चित्तनिवृत्ति । तेनेष्ट साधन यत्तद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८९॥

इति योगनिर्वाणसाधनम् ।

पुरः योगनिर्वाण त्रियाको प्राप्त हो ॥१७८॥ योग नाम ध्यानका है उसके लिये जो सवेग-
 पूर्वक प्रयत्न किया जाता है उस परम तपको योगनिर्वाण संप्राप्ति कहते हैं ॥१७९॥ प्रथम
 ही शरीरको शुद्ध कर मन्त्रेणनाके योग्य आचरण करना चाहिये और फिर रागादि दोषोके
 माय शरीरको वृथ वगना चाहिये ॥१८०॥ जीवित रहनेकी आशा और मरनेकी इच्छा छोडकर
 'यह भाव है इस प्रकारका मुयस प्राप्त करनेके लिये सन्यास धारण करनेके पहले भावना की
 जाती है यह योगनिर्वाण कहगता है ॥१८१॥ उस समय रागद्वेष छोडकर कल्याणकी प्राप्ति
 में प्रयत्न करना चाहिये और जो पदार्थ आत्माके नहीं है उनमें 'यह मेरे है' इस सकल्पका त्याग
 कर देना चाहिये ॥१८२॥ न मैं शरीर हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न इन तीनोंका कारण
 ही हूँ । इस प्रकार तीनोंके विषयमें उद्विग्न न होकर अन्यत्व भावनाका चिन्तन करना चाहिये
 ॥१८३॥ इस मगारमें मैं अनेका हूँ, न मेरा कोई है और न मैं भी किसीका हूँ, इस प्रकार उदार
 चित्त होकर एतन्भावनाका अच्छी तरह चिन्तन करना चाहिये ॥१८४॥ जो नित्य
 योग जगत् नृपता म्या है ऐसे लोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षस्थानमें बुद्धि लगाने उस
 योगीको योग (ध्याना) की निडिके लिये योग निर्वाण त्रियाको भावना करनी चाहिये । भावार्थ-
 मन्त्रेणनामें बैठे हुए माधुर्ना गगारके अन्य पदार्थोंका चिन्तन न कर एव मोक्षका ही चिन्तन
 करता चाहिये ॥१८५॥ यह शरीरकी योगनिर्वाणसम्प्राप्ति त्रिया है ।

तथा योऽपि समाधाय कृतप्राणधितर्जनं । इन्द्रोपपादमाप्नोति गतेः पुण्ये पुरोगताम् ॥१६०॥
 इन्द्रोऽस्युस्त्रिदशाघोशा तेषुस्पादस्तपोवलात् । य स इन्द्रोपपादः स्यान् क्रियाऽहंकारंतेदिनाम् ॥१६१॥
 ततोऽसौ दिव्यशय्याया दणादापूर्णधीवत् । परमानन्दसाद्भूतो दीप्तो दिव्येन तेजसा ॥१६२॥
 मणिमादिभिरष्टाभि युतोऽसाधारणं गुणं । सहजाम्बरदिव्यलक्षणनिभूयणभूयित ॥१६३॥
 दिव्यानुभावसंभूतप्रभाव परमुद्ग्रहन् । योऽप्युच्यते तदाऽऽसीदम् ऐन्द्र दिव्यावधित्विषया ॥१६४॥

इति इन्द्रोपपादक्रिया ।

पर्याप्तमात्र एवायं प्राप्तजन्मावबोधन । पुनरिन्द्राभिपेकेण योज्यतेऽमरसत्तमं ॥१६५॥
 दिव्यसद्गतेतवादित्रमद्गतोदगीतिनि स्वर्नं । विधित्रैश्चाप्तरौनुत्तं निवृत्तेन्द्राभिपेचन ॥१६६॥
 ति (किं) रीटमुद्ग्रहन् दीप्त स्वसाम्राज्यकलाञ्छनम् । सुरकोटिभिरारुद्रप्रमदंजयकारित ॥१६७॥
 सखी सदशुको दीप्त भूपितो दिव्यभूषणं । ऐन्द्रविष्टरमाहटो महानेप महोपते ॥१६८॥

इति इन्द्राभिपेक ।

ततोऽप्यमातानेतान् सत्कृत्य सुरसत्तमान् । पदेषु स्यापयन् स्वेषु विधिदाने प्रवर्तते ॥१६९॥
 स्वविमानद्विदानेन प्रीणितैश्चिबुधैर्वृत । सोऽनुभुङ्कते चिर काल सुकृती सुप्रमामरम् ॥२००॥
 तदेतद्विधिदानेन्द्रसुखोदयविकल्पितम् । क्रियाद्वय समाम्नात स्वर्लोकप्रभवोचितम् ॥२०१॥

इति विधिदानसुखोदयो ।

ऊपर लिखे अनुसार योगोका समाधान कर अर्थात् मन, वचन, वायकी स्थिरकर जिसने प्राणोका परित्याग किया है ऐसा साधु पुण्यके आगे आगे चलनेपर इन्द्रोपपाद क्रियाको प्राप्त होता है ॥१९०॥ देवोके स्वामी इन्द्र कहलाते हैं, तपश्चरणके बलसे उन इन्द्रोमें जन्म लेना इन्द्रोपपाद कहलाता है । वह इन्द्रोपपादनि या अहंत्प्रणीत मोक्षमार्ग वा सेवन करनेवाले जीवोके ही होती है ॥१९१॥ तदनन्तर वह इन्द्र उसी उपपाद शय्यापर धानभरमें पूर्णधीवन हो जाता है और दिव्य तेजसे देदीप्यमान होता हुआ परमानन्दमें निमग्न हो जाता है ॥१९२॥ वह अणिमा महिमा आदि आठ असाधारण गुणोसे सहित होता है और साय साय उत्पन्न हुए वस्त्र, दिव्यमाला, तथा मणिमय आभूषणोसे सुशोभित होता है । दिव्य माहात्म्यसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट प्रभावको धारण करता हुआ वह इन्द्र दिव्य अवधिज्ञानरूपी ज्योतिके द्वारा जान लेता है कि मैं इन्द्रपदमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥१९३-१९४॥ यह इन्द्रोपपाद नामकी तैतीसवीं क्रिया है ।

पर्याप्तक होते ही जिसे अपने जन्मका ज्ञान हो गया है ऐसे इन्द्रका फिर उत्तमदेव लोग इन्द्राभिपेक करते हैं ॥१९५॥ दिव्य संगीत, दिव्य वाजे, दिव्य मंगल-गीतोके शब्द और अप्सराओके विचित्र नृत्योसे जिसका इन्द्राभिपेक सम्पन्न हुआ है जो अपने साम्राज्यके मुख्य चिह्नस्वरूप देदीप्यमान मुकुटको धारण कर रहा है, हर्षको प्राप्त हुए करोटो देव जिसका जयजयकार कर रहे हैं जो उत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा देदी-प्यमान बत्त्राभूषणोसे सुशोभित हैं ऐसा वह इन्द्र इन्द्रके पदपर आरुड होकर अत्यन्त पूजाको प्राप्त होता है ॥१९६-१९८॥ यह चौतीसवीं इन्द्राभिपेक क्रिया है ।

तदनन्तर नमीभूत हुए इन उत्तम उत्तम देवोको अपने अपने पदपर नियुक्त करता हुआ वह इन्द्र विधिदान क्रियामें प्रवृत्त होता है ॥१९९॥ अपने अपने विमानोकी सहाय्यसे सगुप्त हुए देवोके घिरा हुआ यह पुण्यात्मा इन्द्र चिरका 'नव' देवोके सुशोभा अनुभव करता है ॥२००॥

१ गज तनि । २ अमरराजम् । ३ गम्भूरा १०, ६० । ४ इन्द्र । ५ त्रिभुवनानन्दरसंविदाङ्गा ।

प्रोक्तास्त्विन्द्रोपपादाभिपेकदानसुखोदया । इन्द्रत्यागाह्वयमयुता सप्रवक्ष्ये त्रियान्तरम् ॥२०२॥
 किञ्चिन्मानावशिष्टाया स्वस्याभाम्य स्थितौ सुरेर्द^१ । बुद्ध्वा स्वर्गवितार स्व सोऽनुशास्त्वमरानिति ॥२०३॥
 भो भो सुधादाना पृथग् भ्रस्माभि पालिताश्चिरम् । केचित् पिनीयिता^२ केचित् पुत्रप्रीत्योपलालिता ॥२०४॥
 पुरोधोमन्थमात्याना पदे केचिन्निर्गजिता । वयस्यपीठ^३मर्दोपस्थाने दृष्टादव केचन ॥२०५॥
 स्वप्राणनिर्विदोषञ्च^४ केचित् प्राणाय सम्मता । केचिन्मान्यपदे दृष्टा पालका^५ स्वनिवासिनाम् ॥२०६॥
 केचिच्चमूचरम्याने^६ केचिच्च स्वजनास्तथा । प्रजासामान्यमन्ये च केचिच्चानुवरा पृथक् ॥२०७॥
 केचित् परिजनस्थाने केचिच्चान्त पुरे चरा । काश्चिद् वल्लभिका देव्यो महादेव्यश्च काश्चन ॥२०८॥
 इत्यसाधारणा प्रीतिर्मया युध्मास्तु दशिता । स्वामित्यकितदव युष्मानि मय्यसाधारणी धृता ॥२०९॥
 साम्प्रत स्वर्गभोगेषु गतो मन्देच्छ्रतमहम् । प्रत्यासन्ना हि मे तक्ष्मी भ्रष्ट भूलोकगोचरा ॥२१०॥
 युष्मत्साक्षित त^७ कृत्स्नं स्व साम्राज्य मयोञ्जिभूतम् । धश्चान्यो मत्समो भावी तस्मै सर्वं समर्पितम् ॥२११॥
 इत्यनुस्तुक्ता तेपु भावयन्ननुशिष्यं^८ तान् । कुर्वन्निन्द्रपदस्याग स व्यथा नैति^९ धीरधी ॥२१२॥
 इन्द्रत्यागक्रिया संपा तत्स्वभोगातिसर्जनम् । धीरास्त्यजन्त्यनायासादादेश्य तादृशमप्यहो ॥२१३॥
 इति इन्द्रत्याग ।

इस प्रकार स्वर्गलोकमें उत्पन्न होनेके योग्यये विधिदान और इन्द्र सुखोदय नामकी दो क्रियाएँ मानी गई हैं ॥२०१॥ ये पत्नीसवी और छत्तीसवी विधिदान तथा सुखोदय क्रियाएँ हैं ।

इस प्रकार इन्द्रोपपाद, इन्द्राभिपेक, विधिदान और सुखोदय ये इन्द्र सम्बन्धी चार क्रियाएँ वही । अब इन्द्रत्याग नामकी पृथक् क्रियाका निरूपण करता हूँ ॥२०२॥ इन्द्र जब अपनी आयुकी स्थिति थोड़ी रहनेपर अपना स्वर्गमें च्युत होना जान लेता है तब वह देवोको इस प्रकार उपदेश देता है ॥२०३॥ कि भो देवो, मैंने चिरकालसे आपका पालन किया है, कितने ही देवोको मैंने पिताके समान माना है कितने ही देवोको पुत्रके समान बड़े प्रेममें खिलाया है, कितने हीको पुरोहित, मन्त्री और अमात्यके स्थानपर नियुक्त किया है, कितने हीको मैंने मित्र और पीठमर्दके समान देखा है । कितने ही देवोको अपने प्राणोंके समान मानकर उन्हें अपनी रक्षाके लिये नियुक्त किया है, कितने हीको देवोकी रक्षाके लिये सम्मानयोग्य पदपर देखा है, कितने हीको सेनापतिके स्थानपर नियुक्त किया है, कितने हीको अपने परिवारके लोग समझा है, कितने हीको सामान्य प्रजाजन माना है कितने हीको मेवक माना है, कितने हीको परिजनके स्थानपर और कितने हीको अन्न पुत्रमें रहनेवाके प्रतीहारी आदिके स्थानपर नियुक्त किया है । कितने ही दौलतोंकी वार्त्तिका बनाया है और कितनी ही देवियोको महादेवी पदपर नियुक्त किया है इस प्रकार मैंने आज लोगपर अगाधारण प्रेम दिखलाया है और आज लोगोंने भी हमपर असाधारण प्रेम धारण किया है ॥२०४-२०९॥ इस समय स्वर्गके भोगोंमें मेरी इच्छा मन्द हो गई है और निम्न ही पृथिवी ओसकी ७५मी जाज मेरे निरट आ रही है ॥२१०॥ इसलिये आज तुम मयकी माक्षीपूरुष में स्वर्गका यह गमन्त साम्राज्य छोड़ रहा हूँ और मेरे पीछे मेरे समान जो दमग दृष्ट होनेवाला है उसके लिये यह गमन्त सामग्री समर्पित करता हूँ ॥२११॥ इस प्रकार उन सब देवोंमें अपनी अनुश्रुति अर्थात् उदासीनताया अनुभव करता हुआ इन्द्र उन सबके लिये शिक्षा दे और धीरवीर बुद्धिवा धारण हो, दृष्ट पदका त्याग कर दुःखी न हो ॥२१२॥ इस तरह जो स्वर्गके भोगोंका त्याग करता है वह इन्द्रत्याग क्रिया है । यह भी पृथ

१ किञ्चित् । २ स्वर्ग १०, १० । ३ पिता इवाभिमता । ४ कामाचार्य । ५ समान यथा भर्त्सनात् । ६ साधारण इत्यर्थ । ७ सामान्य । ८ तत् कारणात् । ९ उपनिषत् । १० न यच्छति ।

अवनारक्रियाऽस्यान्या तत सपरिवर्तते । शृताहंत्पूजनस्यान्ते स्वर्गदिव्यत्तरिष्यत ॥२१४॥
 'सोऽथ नृजन्मसंप्राप्त्या सिद्धिं द्रागभिलाषुक' । चेत सिद्धनमस्यायां समाधत्ते' सुराधिराट् ॥२१५॥
 शुभं. षोडशभि स्वप्नं ससूचितमहोदय । तदा स्वर्गावनाराख्या कल्याणीमद्भुते^१ क्रियाम् ॥२१६॥
 इति इन्द्रावतारः ।

तत्रोऽन्तरीर्षीं गर्भेऽंती रत्नगर्भं गृहोपमे । जनयिष्या' महादेव्या 'श्रोदेवीभिर्विनाशिते ॥२१७॥
 हिरण्यवृष्टिं धनदे प्राक् पश्चात्तान् प्रवर्षति । 'अवायान्त्यामिवानन्दात् स्वर्गमपदि भूतलम् ॥२१८॥
 अमृतशयसने' मन्दम् आवाति व्याप्तसीरभे'^२ । नूदेव्या इव निश्वासे प्रकल्पते पवनामरं^३ ॥२१९॥
 दुन्दुभिर्ध्वनिते मन्द्रम् उत्यिते पयि वामुंचाम् । प्रकालस्तनिताशङ्काम् आतन्वति शिखण्डिनाम् ॥२२०॥
 न'दारलजमस्तानिम् आमोदाहृतथदपदाम् । मुञ्चत्सु गुह्यवास्वेपु^४ निकायेष्वमृताशिनाम् ॥२२१॥
 देवीयुपचरन्तीषु देवीं भूवनमातरम् । लक्ष्म्या सम^५ समाप्त्य श्रीह्रीषीघृतिर्नीतिषु ॥२२२॥
 कस्मिंश्चित् सुकृतावासे^६ पुण्ये राजपिमन्दरे । हिरण्यगर्भो धत्सेऽतो हिरण्यो वृष्टजन्मताम् ॥२२३॥
 हिरण्यसूचितोऽत्कृष्टजन्मत्वात् स तथा धृतिम्^७ । विभूणा ता क्रिया धत्से गर्भस्वोऽपि त्रिवोचभूत् ॥२२४॥
 इति हिरण्यजन्मता ।

आश्चर्यकी बात है कि धीरवीर पुरुष स्वर्गके वैसे ऐश्वर्यकी भी जिना किसी कष्टके छोड़ देते हैं ॥२१३॥ इस प्रकार यह सैतीमयी इन्द्रत्याग क्रिया है ।

तदनन्तर—जो इन्द्र आयुके अन्तमें अरहन्तदेवका पूजन कर स्वर्गसे अवतार लेना चाहता है उसके आगेकी अवतार नामकी क्रिया होती है ॥२१४॥ मैं मनुष्य जन्म पाकर बहुत शीघ्र मोक्ष प्राप्त किया चाहता हूँ यही विचार कर वह इन्द्र अपना चित्त सिद्ध भगवान्की नमस्कार करनेमें लगाता है ॥२१५॥ शुभ सोलह स्वप्नोके द्वारा जिनने अपना बड़ा भारी अभ्युदय—माहात्म्य सूचित किया है ऐसा वह इन्द्र उम समय कल्याण करनेवाली स्वर्गावतार नामकी क्रियाको प्राप्त होता है ॥२१६॥ यह अडतीसवीं इन्द्रावतार क्रिया है ।

तदनन्तर—वे माता महादेवीके श्री आदि देवियोके द्वारा श्रुद्ध किये हुए रत्नमय गर्भागारके समान गर्भमें अवतार लेते हैं ॥२१७॥ गर्भमें आनेके छह महीने पहलेसे जब कुत्रेर घरपर रत्नोकी वर्षा करने लगता है और वह रत्नोकी वर्षा ऐसी जान पडती है मानो आनन्दगे स्वर्गकी सम्पदा ही भगवान्के साथ साथ पृथिवीतरपर आ रही हो ॥ जब अमृतके समान सुख देनेवाली वायु मन्द मन्द बहकर सत्र दिशाबोमें फैल रही हो तथा ऐसी जान पडती हो मानो पवनकुमार देवोके द्वारा निर्माण किया हुआ पृथिवीरूपी देवीका निश्चय ही हो । जब आवागमें उठी हुई—फैली हुई दुन्दुभि वाजोकी गभीर आवाज मयूरोको अनमय में होनेवाली मधेगजनाकी शका उत्पन्न कर रही हो । जब गुह्यक नामके देवोके समूह कभी म्लान न होनेवागी और सुगन्धिके कारण भूमरोत्ते अपनी ओर खींचनेवाली कल्पवृक्षके पूत्रो की मालाओको धरमा रहे हो । और जब श्री, ह्री, वुद्धि, धृति और कीर्ति नामकी देविषा लक्ष्मी के साथ आकर स्वयं जगन्माता महादेवीकी सेवा कर रही हो उम समय पुण्यके निवामभूत विती पवित्र राजमन्दिरम वे हिरण्यगर्भ भगवान् हिरण्यो वृष्ट जन्म धारण करते हैं ॥२१८—२२३॥ जो गर्भमें स्थित रहने हुए भी तीन ज्ञानको धारण करनेवाके हैं ऐसे भगवान्, हिरण्य

१ साङ्ग व० । २ भक्ति । ३ नमस्कार । ४ ममाहित कुले । ५ मच्छति । ६ जनया । 'जनयिषी प्रसूयता जननी' इत्यनिधानात् । ७ श्रीह्रीषीघादिभि । ८ महागच्छन्त्याम् । ९ अमृत-वशाद्वावत्कारेण । १० व्याप्तमाप्त न० । ११ यामुचामरं । १२ दन्मदपु । १३ स्वयं न० । १४ पुण्यग्याने । १५ हिरण्यो वृष्टजन्मनानिधानम् ।

विश्वेश्वरा जगन्माता महादेवी महााती । पूज्या सुमङ्गला घेति घत्ते हृदि जिनाम्बिका ॥२२५॥
 कुलाद्रिनिलया देव्य श्रीहोषोषतिकीर्तय । सम सङ्ख्या घडेताद्व सङ्गता जिनमातृका ॥२२६॥
 जन्मानन्तरमायातं सुरेन्द्रैर्मरुपुङ्गव । धोऽभिषेकविधि क्षीरपयोधे षुचिभिर्जतं ॥२२७॥
 मन्दिरेन्द्राभिषेकोऽसौ क्रियाऽस्य परमेष्ठिन । सा पुन सुप्रतीतत्वात् भूयो नेह प्रतन्यते ॥२२८॥
 इति मन्दिरेन्द्राभिषेक ।

ततो विद्योपदेशोऽस्य स्वतन्त्रस्य स्वयम्भुव । शिष्यभावव्यतिक्रान्ति^१ गुरुपूजोपलम्भनम्^२ ॥२२९॥
 तदेन्द्रा. पुन्यन्येन^३ प्रातार त्रिजगद्गुरुम् । अशिक्षितोऽपि देयस्य सम्मतोऽसौति विस्मिता^४ ॥२३०॥

इति गुरुपूजनम् ।
 तत कुमारकान्तोऽस्य यौवराज्योपलम्भनम् । पट्टबन्धोऽभिषेकश्च तदास्य स्यान्महोजस ॥२३१॥

इति यौवराज्यम् ।
 स्वराज्यमधि राज्येऽभिषिक्तस्यास्य क्षितोऽवरं^५ । शासत^६ साण्यवामेनां क्षितिमप्रतिदासनाम् ॥२३२॥

इति स्वराज्यम् ।
 चक्रलामो भवेदस्य निधिरत्नसमुद्भवे । निजप्रकृतिभि^७ पूजा साभिषेकाऽपिरादिति ॥२३३॥
 इति चक्रलाम् ।

अर्थात् सुवर्णकी वर्षासे जन्मकी उत्कृष्टता सूचित होनेके कारण हिरण्योत्कृष्ट जन्म इस सार्यक नामको धारण करनेवाली क्रियाको धारण करते हैं ॥२२४॥ यह उनतालीसवी हिरण्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया है ।

उस समय वह भगवान्की माता विश्वेश्वरी, जगन्माता, महादेवी, महासती, पूज्या और सुमङ्गला इत्यादि नामोको धारण करती है ॥२२५॥ कुलाचलोपर रहनेवाली श्री, ही, बुद्धि, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी ये छह देविया जिनमातृका अर्थात् जिनमाताकी सेवा करनेवाली कहलाती हैं ॥२२६॥ जन्मके अनन्तर आये हुए इन्द्रोके द्वारा मेरु पर्वतके मस्तक पर क्षीरसागरके पवित्र जलसे भगवान्का जो अभिषेक किया जाता है वह उन परमेष्ठीकी मन्दराभिषेक क्रिया है । वह क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिये यहा उसका फिरसे विस्तार नहीं किया जाता है ॥२२७-२२८॥ यह चालीसवी मन्दराभिषेक क्रिया है ।

तदनन्तर स्वतन्त्र और स्वयम्भू रहनेवाले भगवान्के विद्याओको उपदेश होता है वे शिष्यभावके विना ही गुरुकी पूजाको प्राप्त होते हैं अर्थात् किसीके शिष्य हुए विना ही सबके गुरु कहलाने लगते हैं ॥२२९॥ उस समय इन्द्र लोग आकर हे देव, आप अशिक्षित होनेपर भी सबको मान्य है इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त होते हुए सबकी रक्षा करनेवाले और तीनों जगत्के गुरु भगवान्की पूजा करते हैं ॥२३०॥ यह इकतालीसवी गुरुपूजन क्रिया है ।

तदनन्तर कुमारकाल आनेपर उन्हें युवराजपदकी प्राप्ति होती है, उस समय महा-प्रतापवान् उन भगवान्के राज्यपट्ट वाधा जाता है और अभिषेक किया जाता है ॥२३१॥ यह विवालीसवी यौवराज्य क्रिया है ।

तन्पश्चात् समस्त राजाशोने राजाधिराज(सम्राट्)के पदपर जिनका अभिषेक किया है और जो दूसरेके शासनसे रहित इस समुद्र पर्यन्तकी पृथिवीका शासन करते हैं ऐसे उन भगवान्के स्वराज्यकी प्राप्ति होती है ॥२३२॥ यह सैतालीसवी स्वराज्य क्रिया है ।

इसके बाद निधियो और रत्नोनी प्राप्ति होनेपर उन्हें चक्रकी प्राप्ति होती है उस समय

१ विश्वेश्वरी स० । २ शिष्यत्वान्नाह । ३ गुरुपूजाप्राप्ति । स्वयं स्वयमेव गुरुरिति भाव ।
 ४ गुरुपूजन्येन स०, द० । ५ रत्न । ६ आन्वीयप्रजापरिवारं ।

दिशाञ्जय स विज्ञेयो योग्य दिग्विजयोत्तम । चक्ररत्न पुरसृष्ट्य जयन सापंथा महाम् ॥२३४॥
इति दिशाञ्जय ।

सिद्धदिविजयस्यास्य स्वपुरातनप्रवेशने । क्रिया चक्राभिषेकाह्वा साञ्जया सम्प्रतीत्यते ॥२३५॥
चक्ररत्न पुरोपाय प्रविष्ट स्व निकेतनम् । परार्थ्यविभवोपेत स्वविमानापहासि यन् ॥२३६॥
तत्र क्षणमिवासीने रम्ये प्रमदमण्डपे । चामरैर्वीज्यमानोऽप्य सतिर्कर इवाटिरात् ॥२३७॥
सपूज्य निधिरत्नानि कृतचक्रमहोत्सव । दन्वा किमिच्छक दान मान्यान् सन्मान्य पार्ष्णिवान् ॥२३८॥
तनोऽभिषेकमानोति पार्ष्णिर्वैर्नहितान्वय । नाग्दीतुषेय गम्भीर प्रध्वनन्मु सहस्रदा ॥२३९॥
यथावदभिषेकस्य निरीदारोपण तन । श्रियते पार्ष्णिर्वैर्नृत्यं चतुर्भि प्रयितान्वय ॥२४०॥
महाभिषेकसामय्या कृतचक्राभिषेचन । कृतमद्गलनेपय्य पार्ष्णिं प्रणतोऽभिन्ना ॥२४१॥
तिरोट स्फुटरत्नाद्वा ऋटिलीकृतद्विमुक्षम् । दयानदचक्रसाम्राज्यककुर्द नृपपुद्गवा ॥२४२॥
रत्नासृष्टरितं विभक्त वर्णाभ्या कृष्टलद्वयम् । यद्वाग्देव्या समाक्रीडारय चक्रद्वयायितम् ॥२४३॥
तारालितरत्नसूत्रमुक्ताफलमुरोगहे । धारयन् हारमादृष्टमिव महगलनोरत्नम् ॥२४४॥

समस्त प्रजा उन्हें राजाधिराज मानकर उनको अभिषेक मन्त्रित पूजा करनी है ॥२३३॥ यह चक्ररत्न नामकी चबालीसवी क्रिया है ।

तदनन्तर चक्ररत्नको आगे कर समुद्रमहित ममन्त पवित्रीको जीतनेवाले उन भगवान्का जो दिशाजोको जीतनेके लिये उद्योग करना है वह दिशाजय कहलाना है ॥२३४॥ यह दिशाजय नामकी पैंतालीसवी क्रिया है ।

जब भगवान् दिग्विजय पूर्णकर अपने नगरमें प्रवेश करने गते हैं तब उनके चक्राभिषेक नामकी क्रिया होती है । अब इस समय उसी क्रियाका वर्णन किया जाता है ॥२३५॥ वे भगवान् चक्ररत्नको आगेकर अपने उस राजभवनमें प्रवेश करने हैं जो त्रिदशमूल्य वैभवंसे सहित होना है और स्वर्गके विमानोष्णी हूँसी करता है ॥२३६॥ वहापर वे मनोहर ध्यानन्दमण्डपमें धणनर विराजमान होने हैं उस समय उनपर चमर द्रुगये जाते हैं जिससे वे ऐसे जान पडते हैं मानो निर्करनोमहित मुग्ध पर्वत ही हों ॥२३७॥ उस समय वे निधियो और रत्नोष्णी पूजाकर चक्र प्राप्त होनेका वचन भारी उचक करते हैं, किमिच्छक दान देने हैं और माननीय राजाजोका सम्मान करने हैं ॥२३८॥ तदनन्तर तुरही आदि हजारों मागन्त्रि जाकोके गभीर शब्द करते रहनेपर वे उत्तम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए राजाजोके द्वारा अभिषेकको प्राप्त होने हैं ॥२३९॥ तदनन्तर-विधिपूर्वक जिनका अभिषेक किया गया है ऐसे उन भगवान्के सम्मक्षपर प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुए मुख्य चार राजाजोके द्वारा मुबुट रक्षना जाता है ॥२४०॥ इन प्रकार महाभिषेकको सामर्थी से जिनका चक्राभिषेक किया गया है, जिन्होंने माद्वन्त्रि वेप धारण किया है, जिन्हें चारों ओर से राजा लोग नमस्कार कर रहे हैं, जो देदीप्यन्ता रत्नोष्णी मिश्रणसे ममन्त दिशाजोको व्याप्त करनेवाले तथा चक्रवर्तिने साम्राज्यसे चिह्नस्वरूप मकुटका धारण कर रहे हैं राजाजोमें श्रेष्ठ है जो अपने दोनों कानोंमें रत्नोष्णी किश्रणसे व्याप्त तथा मरुन्दनीके शोणारयने पहियोनी शोभा देनेवाले दो कुण्डलोको धारण कर रहे हैं जो वयस्यरूपी घरके सामने गटे लिये हुए मागन्त्रिनोरणसे समान मुगोभित होनेवाले और तागसोनी पत्तिले समान चक्र तथा

१ शान्तिमेव । २ विहितवचनम् । ३ समूह्य । ४ अटकार । ५ सिद्ध प्रयत्न वा ।
६ प्रपाने राजाजोका ७ वृषटा । ८ मुद्राभिषेकानिचक्रान् । ९ मिश्रणम् । १० शोणारयनिशुत्तनम् ।

विलसद्ब्रह्मसूत्रेण प्रविभक्ततनुमिति । तदनिर्भरसम्पालरम्यमूर्तिरियाद्रिप ॥२४५॥
 सद्गलवटकं प्रोचं शिखर भुजयोर्मुग्म् । द्वापिमशलापि विभ्रान् १ कृतधमापुद्गयापितम् ॥२४६॥
 कटिमण्डलससक्ततलसत्वाञ्चोपरिच्छद । महाद्वीप द्वयोपान्तरत्नयेदोपरिष्कृत ॥२४७॥
 मन्दारकुसुमाभोदलनालिकुलभक्तृते । किमप्यारब्धसद्गीतमिव शोषरमुद्गृत ॥२४८॥
 तत्कालोचितमन्यच्च दधन्मद्गलभूषणम् । स तदा तक्षयते साक्षान्तक्षया पुञ्ज इवोच्छ्रिय ॥२४९॥
 प्रीताश्चाभिष्टुब्धनयेन तदामो नृपसतमा । विश्वञ्जयो दिशाञ्जेता दिव्यमूर्तिभयानिति ॥२५०॥
 पौरा प्रकृतिमुह्याश्च कृतपादाभिषेचना । तत्क्षमार्चनमादाय कुर्यन्ति स्वशिरोपृतम् ॥२५१॥
 श्रीदेव्यश्च सरिद्देव्यो १ देव्यो विश्वेश्वरा अपि । समुपेत्य नियोगं स्वस्तदंनं पर्युपासते ॥२५२॥
 इति चक्राभियेक ।

चक्राभियेक इत्येक समाख्यात क्रियाविधि । तदनन्तरनस्य स्यात् साम्राज्याख्य त्रियान्तरम् ॥२५३॥
 अपरेर्द्वन्द्वान्मभे घृतपुण्यप्रसाधन १ मध्ये महानृपसभं नृपासनमधिष्ठित ॥२५४॥
 दीपै प्रकीर्णकशास्त्रे स्वर्धनोत्तीकरोन्म्वलं । धारनारोकराधृतं वीज्यमान समन्तत ॥२५५॥
 सेवागतं पृथिव्यादिदेवताशै १ परिकृत १ धृतिप्रशान्तवीपयोज्ञो निर्मलत्वोपमा १ विभि ॥२५६॥

वडे वडे मोतिपोसे युक्त हार धारण किये हुए हैं, शोभायमान यज्ञोपवीतमे जिनके शरीरकी उच्चता प्रकट हो रही है और इसी कारण जो तटपर पडते हुए निर्भरनोसे सुन्दर आकारवाले मुमेरु पर्वतके समान जान पडते हैं, जो रत्नोके कटक अर्थात् कडो (पक्षमे रत्नमय मध्यभाग) से सहित, ऊचे ऊचे शिखरो अर्थात् कन्धो (पक्षमें चोटियो) से युक्त, लम्बाईसे सुशोभित और इसलिये ही दो कुलाचलोके समान आचरण करनेवाली दो भुजाओको धारण कर रहे हैं, जिनकी कमरपर देदीप्यमान करधनी सटी हुई है और उससे जो ऐसे जान पडते हैं मानो चारों ओरसे रत्नमयी वेदीके द्वारा घिरा हुआ कोई महाद्वीप ही हो, जो मन्दार वृक्षके फूलोकी सुगन्धिके कारण आकर लगे हुए भूमरोके समूहकी भकारोसे कुछ गाते हुऐके समान सुशोभित होनेवाले शोखरको धारण कर रहे हैं, तथा उस कालके योग्य अन्य अन्य मागलिक आभूषण धारण किये हुए हैं ऐसे वे भगवान् उस समय ऐसे जान पडते हैं मानो जिसकी शिखा ऊची उठ रही है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीका पुञ्ज ही हो ॥२४१-२४९॥ उस समय अन्य उत्तम उत्तम राजा लोग सतुष्ट होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करते हैं कि आपने समस्त ससारको जीत लिया है, आप दिशाओको जीतनेवाले हैं और दिव्यमूर्ति हैं ॥२५०॥ नगरनिवासी लोग तथा मश्री आदि मुख्य मुख्य पुरुष उनके चरणोके अभिषेक करते हैं और उनका चरणोदक लेकर अपने अपने मस्तकपर धारण करते हैं ॥२५१॥ श्री ह्री आदि देविया, गङ्गा सिन्धु आदि देविया तथा विश्वेश्वरा आदि देविया अपने अपने नियोगोके अनुसार आकर उस समय उनकी उपासना करती हैं ॥२५२॥ यह चक्राभियेक नामकी छियालीसवी क्रिया है ।

इम प्रकार उनकी यह एक चक्राभियेक नामकी क्रिया बही । अब इसके बाद साम्राज्य नामकी दूसरी क्रिया बहने है ॥२५३॥ दूसरे दिन प्रातः कालके समय जिन्होंने पवित्र आभूषण धारण किये हैं जो वडे वडे राजाओकी मभाके बीचमें राजसिंहासनपर विराजमान हैं, जिनपर देदीप्यमान, गङ्गा नदीके जलके छोटोने ममान उज्ज्वल और गणिकाओके हायसे हिलाये हुए चमर चारों ओरसे टुंगये जा रहे हैं, जो धृति, धान्ति, दीप्ति, ओज और निर्मलताको उत्पन्न करनेवाले

१ दीपनं द्वापि । २ परिकेष्ठित । ३ दीपत् । ४ गगादेव्यादय । ५ पवित्रानुद्धार ।
 ६ महानृपगमाया मध्ये । ७ पृथिव्यन्तरोबायुगगनाधिदेवताविक्रियाचारी इत्यर्थ । ८ भूयि । ९ वनम् ।
 १ शोभा दीप्ती बने इत्यभिधानात् । १० उत्तादय ।

तान् प्रजानुग्रहे नित्यं समाधानेन योजयन् । सम्मालयानविश्रम्भं^१ प्रहृत्तोरनुत्सृजयन् ॥२५७॥
 पाषिवाणु प्रणतान् बभूव न्यायं पालयत प्रजा । अन्यायेषु 'प्रदुसाश्चेद् वृत्तिलोपो' छूष हि व ॥२५८॥
 न्यायश्च द्वितयो दुष्टनिग्रहं शिल्पालनम् । सौम्य सनातन क्षात्रो धर्मो रक्ष्य प्रजेश्वरं ॥२५९॥
 दिव्यास्त्रदेवताश्चामूराराध्या स्पृष्टविधानतः । तान्निस्तु सुप्रसन्नानिः श्वरय^२ भावको जय ॥२६०॥
 राजवृत्तिमिमां सम्यक् पालयद्भिरतग्रितैः । प्रजासु वर्तितस्य भो भवद्भिर्न्यायवर्त्मना ॥२६१॥
 पालयेद्य इम धर्मं स धर्मविजयी भवेत् । इमा जयेद् विजितात्मा हि क्षत्रियो न्यायनीतिकं ॥२६२॥
 इहैवं स्याद् यशोलाभो भूतान्मदश्च महोदय । अनुश्राम्युदयावाप्तिं श्रमात् श्रंलोक्षयतिर्जय ॥२६३॥
 इति भूयोऽनु^३ शिल्प्यैतान् प्रजापालनसत्त्वियो । स्वयं च 'पालयत्येनान् योगक्षेमानुचिन्तनं ॥२६४॥
 तदिदं तस्य साम्राज्यं नाम धर्म्यं श्रियात्नरम् । येनानुपालितेनायमिहामुत्र च नन्दति ॥२६५॥

इति साम्राज्यम् ।

एव प्रजा प्रजापालानपि पालयनश्चरम् । काले कस्मिंश्चिदुत्पन्नबोधे शीघ्रोद्यमो भवेत् ॥२६६॥

पृथिवी आदि देवताओंके अशोभे अर्थान् उनके वैज्ञानिक शरीरामे हैं, जो उन देवताओंको समाधान-पूर्वक निरन्तर प्रजाके उपकार करनेमें लगा रहे हैं और आदर सत्कार, दान तथा विद्वान् आदि में जो मन्त्री आदि प्रमुख कार्यकर्ताओंको आनन्दित कर रहे हैं ऐसे वे महाराज नमस्कार करते हुए राजाओंको इस प्रकार शिक्षा देते हैं कि तुम लोग न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करो, यदि अन्यायमें प्रवृत्ति रक्तोगे तो अवश्य ही तुम्हारी वृत्तिका लोप हो जावेगा ॥२५४-२५८॥ न्याय दो प्रकारका है—एक दुष्टोका निग्रह करना और दूसरा शिल्प पुराणका पालन करना । यहक्षत्रियोका सनातन धर्म है । राजाओंको इसकी रक्षा अच्छी तरह करनी चाहिये ॥२५९॥ ये दिव्य अस्त्रोंके अधिष्ठाता देव भी विधिपूर्वक आराधना करने योग्य हैं क्योंकि इनके प्रसन्न होनेपर युद्धमें विजय अवश्य ही होती है ॥२६०॥ इस राजवृत्तिका अच्छी तरह पालन करते हुए आप लोग आलस्य छोड़कर प्रजाके साथ न्याय-मार्गमें वर्तित करो ॥२६१॥ जो राजा इन धर्मका पालन करता है वह धर्मविजयी होता है क्योंकि जिनने अपना आत्मा जीत लिया है तथा न्यायपूर्वक जिनकी आजीविका है ऐसी क्षत्रिय ही पृथिवीको जीत सकता है ॥२६२॥ इन प्रकार न्यायपूर्वक वर्तित करनेमें इस ममारमें यशका लाभ होता है महान् वैभवके साथ साथ पृथिवीकी प्राप्ति होती है, और परलोकमें अभ्युदय अर्थान् स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अनुश्रममें वह तीनों लोकोंको जीत लेता है अर्थान् मोक्ष अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥२६३॥ इस प्रकार वे महाराज प्रजापालनकी गीनियोके विषयमें उन राजाओंको बार-बार शिक्षा देते हैं तथा योग और क्षेमका बार बार चिन्तन करने हुए उनका स्वयं पालन करते हैं ॥२६४॥ इस प्रकार यह उनकी धर्मसहित साम्राज्य नामकी बहू किया है जिनके कि पालन करनेमें यह जीव इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें समृद्धिका प्राप्ति होता है ॥२६५॥ यह मन्त्रालीमवी साम्राज्य श्रिया है ।

इस प्रकार बहुत दिन तक प्रजा और राजाओंका पालन करते हुए उन महाराजोंके किसी समय भेदविज्ञान उपन्न होनेपर दीक्षा ग्रहण करनेके लिये उद्यम होने

१ पृथिव्यादिदेवतागान् । २ नहं विदसांशं । ३ प्रवृत्तिश्च ५०, ५० २० । ४ निवृत्ति-राज्यतारा भवति । ५ नित्यमन भवति । ६ एव मति । ७ शिल्पा इत्या । ८ पालयत्यात् ५०, ५०, २० । ९ साम्राज्यनामश्रियात्नरम् ।

सदा निष्कान्तिरस्येष्टा त्रिया राज्याद् विरज्यत । लोकान्तिवर्षमरेभूयो बोधितस्य समागतं ॥२६७॥
 कृतराज्यार्पणो ज्येष्ठ सूनी^१ पारिवसाक्षिकम् । सतानपालने चास्य परोतीत्यनुशासनम् ॥२६८॥
 त्वया न्यायधनेनाङ्ग भवितव्य प्रजाधृती । प्रजा कामदुषा धेनु मता न्यायेन योजिता ॥२६९॥
 राजवृत्तिमिदं विद्धि यन्न्यायेन धनाजनम् । यधन रक्षण चास्य^२ तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥२७०॥
 प्रजाना पालनार्थं च भत मत्वनुपालनम्^३ । मतिर्हिताहितज्ञानम् श्रात्रिकामुत्रिकार्ययो ॥२७१॥
 तत^४ कृतेन्द्रियजयो वृद्धमयोगसम्पदा । धर्मार्थं^५ शास्त्रविज्ञानात् प्रज्ञा संस्वर्तुमर्हसि ॥२७२॥
 अन्यथा विमतिर्भूयो^६ पृथतापुक्तानभिन्नक । अन्ययाज्यं प्रणय^७ त्याग्निम्व्याज्ञानलवोद्धितं ॥२७३॥
 कुलानुपालने चाप्य महात्त यत्नमाधरेत् । श्रज्ञातकुलधर्मी हि दुर्घ संद्वेषयत् कुलम् ॥२७४॥
 तयाधमात्मरक्षाया सदा यत्नपरो भवेत् । रक्षित हि भवेत् सर्वं नृपेषाम्नि रक्षिते ॥२७५॥
 अपायो हि सपत्नेभ्यो^८ नृपस्यारक्षितात्मन । श्रात्मानुजीविवग्निच्च कृद्धलुब्धविमानितात्^९ ॥२७६॥
^{११} तस्माद् रसदतीक्ष्णावोन्^{१३} धपायानरिण्योजितान् । परिहृत्य निर्जैरिष्टं स्व प्रयत्नेन पालयेत् ॥२७७॥
 श्यात् समञ्जसवृत्तित्दमप्यस्यात्माभिरक्षणे^{१५} । श्रसमञ्जसवृत्ती हि निर्जैरप्यभिभूयते ॥२७८॥

लगता है ॥२६६॥ जो राज्यसे विरक्त हो रहे हैं और आये हुए लोकान्तिक देव जिन्हें बार बार प्रबोधित कर रहे हैं ऐसे उन भगवान्की यह निष्कान्त नामकी क्रिया कही जाती है ॥२६७॥ वे समस्त राजाओंकी साक्षीपूर्वक अपने वडे पुत्रके लिये राज्य सौंप देते हैं और सतान-पालन करनेके लिये उसे इस प्रकार शिक्षा देते हैं ॥२६८॥ हे पुत्र, तुझे प्रजाके पालन करनेमें न्यायरूप धनसे मुक्त होना चाहिये अर्थात् तू न्यायको ही धन समझ, क्योंकि न्यायपूर्वक पालन की हुई प्रजा भनोरयोको पूर्ण करनेवाली कामधेनु गायके समान मानी गई है ॥२६९॥ हे पुत्र, तू इमें ही राजवृत्त अर्थात् राजाओका कर्तव्य समझ कि न्यायपूर्वक धन कमाना, उसकी वृद्धि करना, रक्षा करना तथा तीर्थस्थान अथवा योग्य पानोका देना ॥२७०॥ प्रजाका पालन करनेके लिये सबसे अपनी बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिये, इस लोक और परलोक दोनों लोकसम्बन्धी पदायोंके विषयमें हित तथा अहितका ज्ञान होना ही मति कहलाती है ॥२७१॥ इसलिये वृद्ध मनुष्योंकी मर्गति रूपी सम्पदासे इन्द्रियोपर विजय प्राप्त कर तुम धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के ज्ञानसे अपनी बुद्धिकी सुसंस्कृत बनानेके योग्य हो अर्थात् बुद्धिके अच्छे संस्कार बनाओ ॥२७२॥ यदि राजा इससे विपरीत प्रवृत्ति करेगा तो वह हित तथा अहितका जानकार न होनेसे बुद्धिभूट हो जावेगा और ऐसी दशामें वह मिथ्याज्ञानके अश मानसे उद्धत हुए अन्य कुमांगमिथ्याने बरा हो जावेगा ॥२७३॥ राजाओको अपने कुलकी मर्यादा पालन करने के लिये बहुत भारी प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि जिसे अपनी कुलमर्यादाका ज्ञान नहीं है वह अपने दुराचारोंमें कुलको दूषित कर सक्ता है ॥२७४॥ इसके सिवाय राजाको अपनी रक्षा करनेमें भी सदा यत्न करने रहना चाहिये क्योंकि अपने आपके सुरक्षित रहनेपर ही अन्य सब कुछ सुरक्षित रह सक्ता है ॥२७५॥ जितने अपने आपकी रक्षा नहीं की है ऐसे राजाका मन्त्रियों तथा प्रोधी, लोभी और अपमानित हुए अपने ही सेवकोंसे विनाश हो जाता है ॥२७६॥ इसलिये मन्त्रियोंके द्वारा किये हुए प्रारम्भमें सरल धिन्तु फलवालोंमें कठिन अपायोंका परिहार कर जने इष्ट वर्गोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥२७७॥ इसके सिवाय

१ प्रजापती निमित्तम् । २ धनस्य । ३ पात्र । ४ त्रिबुद्धिरक्षणम् । ५ तत पारस्यात् । ६ नीतिन्याय । ७ भूयो ८०, ९०, १० । ८ यय । ९ दायादेभ्यः शत्रुभ्या वा । १० तिरस्कृतात् । ११ श्रमात् वाग्मात् । १२ श्रमाभावाद् बुधतामवृत्तादीन् रमाताने जन्मव्यापाने स्वादुरासम्पत् । १३ रक्षाया । १४ श्रान्तस्य । १५ आत्मरक्षा निमित्तम् । -र्यादिराण्य ४०, ९०, ८० ।

समञ्जसवस्येष्ट प्रजास्ववियमोक्षिता । अनास्यमवाङ्गपाद्व्यादिविरोपितम् ॥२७६॥
 तनो निराखियद्दृशं स्वा वृत्तिं पातप्रियाम् । स्वराज्ये सुखिनो राजा प्रेम्णं चेह च नन्दति ॥२७७॥
 सम समञ्जसत्वेन कृतमत्यात्मपालनम् । प्रजानुपालनं चेति प्रोक्ता वृत्तिर्महीक्षितान् ॥२७८॥
 'तन द्याप्रथिम धर्मं धयोक्त्तमनुपालयन् । स्थिनो राज्ये यतोऽर्थं निज्य च 'त्वमाप्नुहि ॥२७९॥
 प्रज्ञानयो समन्त्रबोधिविद्ययन्विष्य तम् । परितिक्रान्तिवत्पापो सुरेन्द्रैर्नियुजित ॥२८०॥
 महादानमयो दत्त्वा साम्राज्यपदमनुजन् । स राजराजो राजपतिर्भ्रान्तिं गृह्णाद् वनम् ॥२८१॥
 धीरेयं पाषिर्बं किञ्चित् ममुत्क्षिप्त्वा महानतात् । स्वपाथिरोपिता भूय सुरेन्द्रैर्भक्तिनिर्भरं ॥२८२॥
 ग्राह्यं शिषिना दिव्या दोषरत्नविनिमिताम् । विमानवसतिं नावीर्याभ्याना महोत्तमम् ॥२८३॥
 पुरस्मरेषु निष्पेषिद्वेष्योन्मयोविषु । सुरासुरेषु तत्रम् मरिग्याहंजन नम ॥२८४॥
 'अनुत्थितेषु सम्प्रोया पाषिर्बेषु समममम् । कुमारमप्य इन्द्रा प्राप्तराज्यं नवोदयम् ॥२८५॥
 अनायासिनि तत्यागादिव मन्दोन्मवद्द्युती । निधोता सह रत्नाना सदोहंभ्यनसक्षये ॥२८६॥

राजाको अपनी तथा प्रजाकी रजा करनेमें ममजसवृत्ति अर्थात् पजपातरहित होना चाहिये क्योंकि जो राजा अनमजसवृत्ति होता है, वह अपने ही लोगोंके द्वारा अपमानित होने लगता है ॥२७६॥ ममम प्रजाकी समान रूपसे देना अर्थात् किसीके साथ पजपात नहीं करना ही राजाका ममजसवृत्त गुण कहलाना है । उस ममजनव गुणमें शूरता या धातवपना नहीं होना चाहिये और न कठोर बचन तथा दण्डनी बज्जिता ही होनी चाहिये ॥२७७॥ इन प्रकार जो राजा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मानस्य इन छह अन्तरङ्ग शक्तियोंको जीतकर अपनी इस वृत्तिका प्राप्त करता हुआ स्वकोय राज्यमें स्थिर रहता है वह इस लोभ तथा परशोक दोनों ही लोकमें ममद्विबान् होता है ॥२७८॥ पजपातरहित होकर सबको एक समान देना, कुलनी मर्यादाकी रक्षा करना, बुद्धिकी रक्षा करना, अपनी रक्षा करना और प्रजाका पालन करना यह सब राजाकोकी वृत्ति कहानी है ॥२७९॥ इनमें हे पुत्र, ऊपर कहे हुए इन धात्रधर्मकी रक्षा करना हुआ तू राज्यमें स्थिर रहकर अपना यश, धर्म और विजय प्राप्त कर ॥२८०॥ जितनी बुद्धि अल्प बाल है और जित्ने भेदविज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐमें वे भगवान् ऊपर गये अनुभार पुत्रको शिक्षा देकर दीक्षान् दायके गिये इन्द्रोंके द्वारा पूजित होने है ॥२८१॥ अथानन्तर महादान देकर साम्राज्यपदको छोड़ने हुए वे गजानिराज शर्जाधर्मके वनके गिये निरगने है ॥२८२॥ प्रथम ही मुख्य मुख्य राजा लोग जिसे पृथिवीतन्त्रे उठाकर कपेपर रखकर कुछ दूर ले जाने हैं और फिर भक्तिमें बने हुए देव लोग जिने अपने कर्षोपर रखने हैं, जो वेदीप्यमान गन्तोंमें बनी हुई है और जो पृथिवीतन्त्रपर आये हुए नृपके विमानके समान जान पटनी है ऐसी दिव्य पाशोपर वे भगवान् मग्न होने है ॥२८३-२८४॥ जिन समय ममम आशाग-भाग्यको देखने हुए और अपनी कान्तिसे आकाशमें मूर्च्छकी प्रभावा मदेह पंगने हुए मुर और अमुर आगे चरने हैं, जिनो राज्य प्राप्त हुआ है और जिसका नवीन उदय प्रसट हुआ है ऐमें कुमारको आगे कर देने प्रेम और मममके साथ जब ममम गगन गेग भावान्के समीप गये होते हैं, जिनका भगवान्के समीप रहता छट् मुरा है और भगवान्के छोड़ देनेके ही मानो जितनी कान्ति मन्द पट गई है ऐमें निधि और गन्तोंका मनुह जब उनके पीछे पीछे आता है जितने वायुके वेगने टानी हुए ध्यात्रोंके मममके आवागको ध्यान

१ मममममम । २ अनुत्थितेषु । ३ अनास्यमवाङ्गपाद्व्यादिविरोपितम् । ४ नयायम् । ५ मममममममम ।
 ६ मममममममम । ७ पुत्रम् । ८ दीक्षान् । ९ अनास्यमममममम ।

संघे च कृतसनाहे सनं समनुगच्छति । भरुद्धतप्वजघातनिरुद्धपवनाध्यनि ॥२६०॥
 ध्वनत्सु सुरतूर्पेषु नृत्यत्यन्तरसा गणे । गायन्तीषु कलक्वाण किन्नरीषु च मङ्गलम् ॥२६१॥
 भगवानभिनिष्कान्त पुण्ये कस्मिंश्चिदाध्रमे । स्थित शिलातले स्वस्मिंदेचेतसीवातिविस्तृते ॥२६२॥
 निर्वाणदीक्षयात्मानं योजयन्नद्भुतोदय । सुराधिपं कृतानन्दमचित परमेष्ठ्यया ॥२६३॥
 योऽत्र शेषो विधिपुंक्त केशपूजादिलक्षण । प्रागेव स तु निर्णीतो निष्कान्तौ वृषभेजिन ॥२६४॥
 इति निष्कान्ति ।

परिनिष्प्रान्तिरेषा स्यात् क्रिया निर्वाणदायिनी । अत पर भवेदस्य मूमुक्षोयोगसम्मह ॥२६५॥
 यदाय त्यक्तबाह्यान्तस्तद्गो नि सद्गमाचरेत् । सद्गुडवर तपोयोग जिनकल्पमनुत्तरम् ॥२६६॥
 तदाऽप्य क्षपकश्रेणीम् आरुद्धस्योचिते पदे । शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धयातिकर्मघनाटवे ॥२६७॥
 प्रादुर्भवति निशेषबहिरन्तर्मलक्षणात् । केवलाख्य पर ज्योतिर्लोकालोकप्रकाशकम् ॥२६८॥
 तदेतत्सिद्धसाध्यस्य प्रापुषु परम मह । योगसम्मह इत्याख्याम् अन्नभुक्ते क्रियान्तरम् ॥२६९॥
 ज्ञानध्यानसमायोगो योगो यस्तकृतो मह । महिमातिशय सोऽयम् आम्नातो योगसम्मह ॥३००॥
 इति योगसम्मह ।

ततोऽप्य वेप्लोत्पत्ती पूजितस्यामरेश्वरं । बर्हिर्बभूतिरुद्धता प्रातिहायीदिलक्षणा ॥३०१॥

पर लिया है ऐसी सेना अपनी विशेष रचना बनाकर जिस समय धीरे धीरे उनके पीछे चलने लगती है तथा जिस समय देवोंके तुरही आदि बाजे बजते हैं, अप्सराओका समूह नृत्य करता है और किन्नरी देविया मनोहर शब्दोंसे भगलगीत गाती हैं, उस समय वे भगवान् किसी पवित्र आश्रममें अपने चित्तके समान विस्तृत शिलातलपर विराजमान होकर दीक्षा लेते हैं । इस प्रकार जिनका उदय आश्चर्य करनेवाला है और जो निर्वाणदीक्षाके द्वारा अपने आपको युक्त कर रहे हैं ऐसे भगवान्की इन्द्र लोग उत्कृष्ट सामग्रीके द्वारा आनन्दके साथ पूजा करते हैं ॥२८७-२९३॥ इस क्रियामें वेश लोच करना, भगवान्की पूजा करना आदि जो भी कार्य अवशिष्ट रह गया है उस सबका भगवान् वृषभदेवकी दीक्षाके समय वर्णन किया जा चुका है ॥२९४॥ इस प्रकार यह अटतालीमवी निष्प्रान्ति क्रिया है ।

यह निर्वाणको देनेवागी परिनिष्प्रान्ति नाम की क्रिया है । अब इसके आगे मोक्षकी इच्छा करनेवाले उन भगवान्के यागमह नामकी क्रिया होती है ॥२९५॥ जब वे भगवान् वाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको छान्दकर निष्परिग्रह अवस्थाको प्राप्त होने हैं और अत्यन्त वठिन तथा भवंश्रेष्ठ जिनका नामके तपोयोगका धारण करते हैं तब क्षपक श्रेणीपर आरुढ़ हुए और याग पद अर्थात् गुणस्थानमें जाकर द्युक्लध्यानरूपी अग्निसे धातियावर्मरूपी सपन बनने उपा देनेवाले जो भगवान् स गमस्त वाह्य और अन्तरङ्ग मन्के नष्ट हो जानेसे कोम तथा ज्मोक्वने प्रसंगित करनेवागी केवलात्ता नामकी उत्कृष्ट ज्याति प्रवट होती है ॥२९६-२९८॥ इस प्रकार जिस गमस्य कार्य सिद्ध हो चुके हैं और जिन्हें उत्कृष्ट तेज प्राप्त हुआ है ऐसे भगवान्के यह एक भिन्न क्रिया होती है जो कि 'योगसम्मह' इस नामको धारण करती है ॥२९९॥ ज्ञान और ध्यान मयागको याग कहते हैं और उग योगमे जो अतिशय तेज उत्पन्न होता है वह योगसम्मह कहलता है ॥३००॥ यह योगसम्मह नामकी उपागवी क्रिया है ।

महान्त वेपल्लता उत्पन्न होकर इन्हीं जिनकी पूजा की है ऐसे उन भगवान्के

प्रातिहार्याष्टकं दिव्यं गणो द्वादशघोदित । स्तूपहर्म्यावली सालवलय केतुमात्मिका ॥३०२॥

इत्यादिकाभिमा भूतिम् श्रद्भुतामुपविभूत । स्यादाहंत्यमिति ख्यात क्रियान्तरमनन्तरम् ॥३०३॥

इति आहंत्यक्रिया ।

विहारस्तु प्रतोतायौ धर्मचक्रपुरस्सर । प्रपञ्चितश्च प्रागेव ततो न पुनश्च्यते ॥३०४॥

इति विहारक्रिया ।

तत परार्यसम्पत्स्यै धर्ममार्गोपदेशने । कृततीर्थविहारस्य योगत्याग परा क्रिया ॥३०५॥

विहारस्योपसंहारं सङ्घतिश्च सभावने । वृत्तिश्च योगरोधार्या योगत्याग स उच्यते ॥३०६॥

यच्च दण्डकपाटादिप्रतीतार्यं क्रियान्तरम् । तदन्तर्भूतमेवादस्ततो न पुन्युच्यते ॥३०७॥

इति योगत्यागक्रिया ।

ततो निरुद्धनि शेषयोगस्थास्य जिनेशिन । प्राप्तशैलेश्वरस्यस्य^१ प्रक्षीणा घातिकर्मण ॥३०८॥

श्रियाप्रनिर्वृतिर्नाम परनिर्वाणमापुष^२ । स्वभावजनितामूर्ध्व^३ भ्रज्यामास्कन्दतो^४ मता ॥३०९॥

इति ध्रनिर्वृति ।

इति निर्वाणपर्यन्ता क्रिया गर्भादिका सदा । भव्यात्मभिरनुष्ठेया त्रिपञ्चाशत्समुच्चयात्^५ ॥३१०॥

यथोक्तविधिर्नता स्युः अनुष्ठेया द्विजन्मभि । योऽप्यत्रान्तर्गतो भेदस्त वच्यन्तरपर्यं ॥३११॥

प्रातिहार्यं आदि बाह्य विभूति प्रकट होती है ॥३०१॥ इस प्रकार आठ प्रातिहार्य, वारह दिव्य सभा, स्तूप, मकानोकी पवित्रिया, कोटका घेरा और पताकाओकी पवित्र इत्यादि अद्भुत विभूतिको धारण करनेवाले उन भगवान्‌के आहंत्य नामकी एक भिन्न क्रिया कही गई है ॥३०२-३०३॥ यह आहंत्य नामकी पचासवी क्रिया है ।

धर्मचक्रको आगे कर जो भगवान्‌का विहार होता है वह विहार नामकी क्रिया है । यह क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है और पहले ही इसका विस्तारके साथ निरूपण किया जा चुका है इसलिये फिरसे यहाँ नहीं कहते हैं ॥३०४॥ यह इष्यावनवी विहारक्रिया है ।

तदनन्तर धर्ममार्गके उपदेशके द्वारा परोपकार करनेके लिये जिन्होंने तीर्थ विहार किया है ऐसे भगवान्‌के योगत्याग नामकी उत्कृष्ट क्रिया होती है ॥३०५॥ जिसमें विहार करना समाप्त हो जावे, सभाभूमि (समवसरण) विघट जावे, और योगनिरोध करनेके लिये अपनी वृत्ति करने पडे उसे योगत्याग कहते हैं ॥३०६॥ दण्ड, कपाट आदि रूपसे प्रसिद्ध जो केवलिसमुद्घात नामकी क्रिया है वह इसी योगत्याग क्रियामें अन्तर्भूत हो जाती है इसलिये अलगसे उसका वर्णन नहीं किया है ॥३०७॥ यह वावनवी योगत्याग नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर जिनके समस्त योगोका निरोध हो चुका है, जो जिनके स्वामी हैं, जिन्हें शीलके ईश्वरपनेकी अवस्था प्राप्त हुई है, जिनके अधातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं जो स्वभावसे उत्पन्न हुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त हुए हैं और जो उत्कृष्ट मोक्षस्थानपर पहुँच गये हैं ऐसे भगवान्‌के अग्रनिर्वृति नामकी क्रिया मानो गई है ॥३०८-३०९॥ यह त्रिरेपनवी अग्रनिर्वृति नामकी क्रिया है ।

इस प्रकार गर्भसे लेकर निर्वाण पर्यन्त जो सब मिलापर त्रिरेपन क्रियाएँ हैं भव्य पुरुषोको सदा उनका पालन करना चाहिये ॥३१०॥ द्विज लोगोको ऊपर कही हुई विधिके अनुसार इन क्रियाओका पालन करना चाहिये । इन क्रियाओके जो भी अन्तर्गत भेद

१ धृतमार्गोप-५० । २ यत्र दण्ड-५०, ल० । ३ योगत्यागान्तर्भूतम् । ४ शीर्षात्तावस्यस्य ।

५ -नामुष ५०, ६०, ७०, ८०, ९० । ६ उच्यवगमनम् । ७ गच्छन् । ८ समुच्चया ७० । ९ त्रिपञ्चाशत्क्रियाम् ।

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्युच्चैर्भरताधिप स्वसमये सस्यापयन् तान द्विजान्
 सम्प्रोवाध कृती सता बहुमता गर्भान्वयोत्या क्रिया ।
 गभांला परितिवृत्तिप्रगमनप्रान्तास्त्रिपञ्चदासत
 प्रारंभेऽय पुन प्रवक्तुमुचिता दीक्षावयाख्या क्रिया ॥३१२॥
 यस्त्वेता द्विजसत्तमैरभिमता गर्भादिका सतक्रिया
 ध्रुवा सम्पगधीत्यभावितमतिर्जनेदवरे वसंते ।
 साधधोमुचिता स्वतश्च परत सम्पादयभाचरेद्
 भव्यात्मा स समप्रधीस्त्रिजगति चूडामणित्व भजेत् ॥३१३॥

इत्याप्ये भगवज्जिनतेनाचार्यंप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराणसद्वृहे द्विजोत्पत्तौ
 गर्भान्वयक्रियावर्णनं नाम षष्ट्यंशस्तम पर्व ।

है उनका आगेके पर्वमें निरूपण करेंगे ॥३११॥ इस प्रकार पुण्यवान् भरत महाराजने
 उन द्विजोनी अपने धर्ममें स्थापित करते हुए गर्भसे लेकर निर्वाणगमन पर्यन्तकी तिरपत गर्भ-
 न्वय त्रियाए वही और उनके बाद वहने योग्य जो दीक्षान्वय क्रियाए थी उनका कहना प्रारंभ
 क्रिया ॥३१२॥ उत्तम उत्तम द्विजोनी माननीय इन गर्भाधानादि समीचीन क्रियाओनी
 गुनकर तथा अच्छी तरह पढ़कर जो जिनेन्द्र भगवान्के दर्शनमें अपनी बुद्धि लगाता है और योग्य
 गामघी प्राप्त कर दूगरीसे आचरण कराता हुआ स्वयं भी इनका आचरण करता है वह भव्य
 पुरण पूर्ण शान्ति होकर तीनों लोकोके चूडामणिपनेको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर
 नीने लोकोके अश्रभागपर विराजमान होता है ॥३१३॥

इस प्रकार भावज्जिनतेनाचार्यंप्रणीत त्रिपट्टिलक्षण महापुराणग्रहणे भाषा-
 नुषारमें द्विजोनी उत्पत्ति तथा गर्भान्वय त्रियाओनी वर्णन
 करेवाग अष्टमीका पर्व समाप्त हुआ

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथाब्रवीद् द्विजन्मभ्यो 'मनु'दीक्षान्वयक्रियाः । यास्ता 'निःश्रेयसोद्वर्षादचत्वारिंशदवाप्यष्ट च ॥१॥
 श्रूयतां नो द्विजन्मतो वक्ष्ये नैःश्रेयसोः' क्रियाः । अवनारादिनिर्वाणपर्यन्ता दीक्षितोचिताः ॥२॥
 व्रता'विष्करणं दीक्षा द्विषाम्नातं च तद्ब्रतम् । महच्छानु च दोषाया 'हृत्स्नदेशानिदृत्तितः ॥३॥
 महाव्रतं भवेत् कृत्स्नहृत्साद्यागोविर्ब्रजिनम् । चिरतिः स्युस्तहितादिदोषेषोऽनुव्रतं मनम् ॥४॥
 तदुन्मुक्तस्य' या वृत्तिः पुंसो दीक्षोत्पमो मता । 'तामग्निना' क्रिया या तु सा स्याद् दीक्षान्वया क्रिया ॥५॥
 तस्याम्नु भेदसद्दरपानं प्राग्निर्णानं पष्टरम्' । क्रियते तद्विक्त्यानाम् ब्रधुना तदमरणंनम् ॥६॥
 तत्रावनारसंता स्याद् प्राया दीक्षान्वयक्रिया । मिव्यान्वदूषिते भव्ये सम्पापग्रहणोन्मुखे ॥७॥
 स तु सन्म्य योगीन्द्रं यक्ष्णाचार महापियम् । गृहत्याचार्यभयया पृच्छन्तीनि विचक्षणः ॥८॥
 व्रतं पूयं महाव्रता' मह्यं धर्ममनाबिलम्' । प्रायो मतानि तौम्याना' ह्येयानि प्रतिभान्ति मे ॥९॥
 'श्रीनान्यपि हि वाक्यानि सम्मतानि क्रियाविधौ । न विचारमहिष्णूनि 'दु'प्रर्णानानि सान्यपि' ॥१०॥

अयान्तर-नोल्हवें मनु महाराज भरत उन द्विजोंके लिये मोक्ष फल देनेवाली अष्ट-
 तालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ कहते लगे ॥१॥ वे बोले कि हे द्विजो, मैं अवतारमें लेकर निर्वाण
 पर्यन्तकी मोक्ष देनेवाली दीक्षान्वय क्रियाओंको कहता हूँ, सो तुम लोग सुनो ॥२॥ व्रतोका
 धारण करना दीक्षा है और वे व्रत हिंसादि दोषोंके पूर्ण तथा एकदेश त्याग करनेकी अपेक्षा
 महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे दो प्रकारके माने गये हैं ॥३॥ मूढम अथवा स्थूल-
 सभी प्रकारके हिंसादि पापोंका त्याग करना महाव्रत कहलाता है और स्थूल हिंसादि दोषोंमें
 निवृत्त होनेको अणुव्रत कहते हैं ॥४॥ उन व्रतोंके ग्रहण करनेके लिये सन्मुख पुरपकी जो
 प्रवृत्ति है उसे दीक्षा कहते हैं और उन दीक्षासे सम्बन्ध रखनेवाली जो क्रियाएँ हैं वे दीक्षान्वय
 क्रियाएँ कहलाती हैं ॥५॥ उन दीक्षान्वय क्रियाके भेद अष्टनालीस हैं जिनका वि निर्णय
 पहले किया जा चुका है । अब इन समय उन भेदोंके लक्षणोंका वर्णन किया जाता है ॥६॥ उन
 दीक्षान्वय क्रियाओंमें पहली अवनारा नामकी क्रिया है जब मिव्यात्वसे दूषित हुआ कोई मन्व
 पुरुष समीचीन मार्गको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है तब यह क्रिया की जाती है ॥७॥ प्रथम
 ही वह चतुर भव्य पुरुष योग्य आचरणवाले महाबुद्धिमान् मुनिराजके समीप जाकर अथवा
 किसी गृहत्याचार्यके समीप पहुँचकर उनसे इन प्रकार पूछता है कि ॥८॥ महाबुद्धिमन्, आप
 मेरे लिये निर्दोष धर्म बहिये क्योंकि मुझे अन्य लोगोंके मन प्रायः दुष्ट मालूम होने हैं ॥९॥
 धार्मिक क्रियाओंके करनेमें जो वेदोंके वाक्य माने गये हैं वे भी विचारको सहन नहीं कर सकते
 अर्थात् विचार करनेपर वे निगार जान पड़ते हैं, वास्तवमें वे वाक्य दुष्ट पुरुषोंके बनाये हुए

१ मन् । २ निःश्रेयस मोक्ष उदरं उत्तरपत्र यानु ता । ३ मांश्रेतूत् । निःश्रेयसो ल० ।
 ४ व्रताधिरररा प०, द०, ल० । ५ मन्वनिवृत्त्येवदेगनिवृत्तिः । ६ उन्महागुप्रतानिमुग्य ।
 ७ दीक्षाम् । ८ अनुव्रता । ९ पन्त्यान्येव पष्टरम् अष्टोत्तरव्यारिणः १० पर्मः । १० महाराजा
 ल०, द० । ११ निर्दोषम् । १२ ह्येयानि प्रतिभानि माम् इ०, ल०, अ० । ह्येयानि प्रतिभानि माम्
 ल०, द० । १३ वेदशम्भयानि । 'श्रुति इती वेद आम्नातः' इत्यनिधानात् । १४ दुष्टं- कपितानि ।
 १५ प्रमिद्वान्यपि । तानि वै ल० ।

इति पृष्टवते तस्मै व्याचष्टे स' विदावर । तस्य मुक्तिपथ धर्मं विचारपरिनिष्ठितम् ॥११॥
 विद्वि सत्योद्यमाप्तोय वच श्रेयोऽनुशासनम् । श्रनाप्तोपज्ञमन्यत्तु वचो वाङ्मलमेव तत् ॥१२॥
 विराग सर्वविन् सार्व सूक्तसूनुतपूतवाक् । आप्त सन्मार्गदेशी यस्तदाभासास्ततोऽपरै ॥१३॥
 रूपतेजोगुणत्पानध्यानलक्ष्म्यनुर्वातिभिः । काङ्क्ष्यता विजयज्ञानदृष्टिबोयंसुखामृतं ॥१४॥
 प्रष्ट्यो यो गुणैरेभि चक्रिकल्पाधिपादियु । स आप्त स च सर्वत स लोकपरमेश्वर ॥१५॥
 तत श्रेयोऽयिना श्रेय मतमाप्तप्रणेतृकम् । श्रव्याहृतमनालीडपूर्वं सर्वसमाभिभि ॥१६॥
 हेत्वाज्ञाद्युक्तमद्वैतं दीप्त गम्भीरशासनम् । श्रव्याश्रमसन्दिग्ध वाक्य स्वायम्भुव विदुः ॥१७॥
 इतद्वच तत्प्रमाण स्यात् श्रुतमन्त्रक्रियादय । पदार्था सुस्थितास्तत्र यतो नान्यमतोचिता ॥१८॥
 यथाश्रममनो ब्रूम तान्यदार्थान् प्रपञ्चत । ये सति कृष्यमाणा स्यु दु स्थिता परसूक्तय ॥१९॥
 वेद पुराण स्मृतय चारित्र्य च क्रियाविधि । मन्त्राश्च देवतानिद्गम आहाराद्याश्च शृद्धय ॥२०॥
 एतेऽर्था यत्र तत्त्वेन प्रणीता परमपिपा । स धर्म स च सन्मार्ग तदाभासा स्युरन्यथा ॥२१॥

है ॥१०॥ इस प्रकार पूछनेवाले उस भव्य पुरपके लिये महाज्ञानी मुनिराज अथवा गृहस्थाचार्य सत्य, विचारसे परिपूर्ण तथा मोक्षके मार्गस्वरूप धर्मका व्याख्यान करते हैं ॥११॥ वे कहते हैं—हे भव्य, मोक्षका उपदेश देनेवाले आप्तके वचनको ही तू सत्य वचन मान और इसके विपरीत जो वचन आप्तका कहा हुआ नहीं है उसे केवल वाणीका मल ही समझ ॥१२॥ जो वीतराग है, सर्वज्ञ है, भवका बल्ल्याण धरनेवाला है, जिसके वचन समीचीन, सत्य और पवित्र है, तथा जो उत्कृष्ट—मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाला है वह आप्त कहलाता है, इनसे भिन्न सभी आप्त-भाग हे अर्थात् आप्त न होनेपर भी आप्तके समान मालूम होते हैं ॥१३॥ जो रूप, तेज, गुण-स्वान, ध्यान, लक्षण, श्रद्धि, दान, सुन्दरता, विजय, ज्ञान, दृष्टि, धीर्य और सुखामृत इन गुणोंमें चतुर्वर्ती तथा इन्द्रादिकोसे भी उत्कृष्ट है वही आप्त है, सर्वज्ञ है और समस्त लोकोंका परमेश्वर है ॥१४—१५॥ इसलिये जो आप्तका कहा हुआ है, जिसका कोई खण्डन नहीं कर सकता और अपने आपको सर्वज्ञ माननेवाले पुरप जिनका स्वयं भी नहीं कर सके है ऐसा जैन मन है । व्यापणकी इच्छा करनेवाले पुरपोंके लिये बल्ल्याणवारण है ॥१६॥ जो युक्ति तथा जागमगे युक्त है, जगुपम है, देदीप्यमान है, जिगका शासन गम्भीर है, जो अत्पाधार वाला है और जिगके पश्येसे शिरो प्रक्षारण गदेह तरी होना ऐसा शरम ही अरहन्त भगवान्का बड़ा हुआ पहचाना है ॥१७॥ यदि अरहन्तदेवसे मतमें अन्य मतोंमें नहीं पाये जानेवाले शास्त्र, मन्त्र तथा प्रिया आदि पदार्थोंका अच्छी तरह निष्पण किया गया है इसलिये वह प्रमाणभूत है ॥१८॥ हे भव्य, मैं यथाश्रमने विन्यायके साथ अपदार्थोंका निष्पण करता हू, क्योंकि उन पदार्थोंके गभीर आदेश अन्य मतोंके धरा दृष्ट जान पड़ते हैं ॥१९॥ जिगमें वेद, पुराण, स्मृति, चारित्र्य, क्रियाविधि विधि, मन्त्र, देवता, ऋग और आहार आदिनी श्रद्धि इन पदार्थों का समर्थ रीतिमें परमार्थोंके निष्पण किया है यही धर्म है और यही गमीचीन मार्ग है । इसमें

श्रुत सुविहित वेदो द्वादशाह्वामकल्मषम् । हिसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽतो वृत्तान्तवाक् ॥२२॥
पुराण धर्मशास्त्र च तत्स्याद् वधनियेषि यत् । वधोपदेशि यत्तत्तु ज्ञेय धर्मप्रणेतृकम् ॥२३॥
साधयविरतिवृत्तम् आर्यपदकर्मलक्षणम्^१ । चातुरायम्यवृत्त तु परोक्तमतद्वन्द्वतां ॥२४॥
श्रियागभादिका यास्ता निर्वाणान्ता परोदिता^२ । आधानादिदमशानान्ता नता सम्यक्श्रिया मता ॥२५॥
मन्त्रास्त एव धर्मा रूढ ये क्रियासु नियोजिता । दुर्मन्त्रास्तैऽत्र विशेया ये युक्ता प्राणिभारणे ॥२६॥
द्विषद्वेदवरादयो ज्ञेया देवता शान्तिहेतव । श्रूरास्तु देवता ह्येया यासा स्याद् वृत्तिरामिर्षं ॥२७॥
निर्वाणसाधन यत् स्यात्तन्निदग जिनवेशितम् । एणाजिनादिचिह्न तु कुलिङ्ग तद्वि वंशुतम्^३ ॥२८॥
स्याभिरामियमोजित्व दुद्धिराहारगोचरा । सर्वज्ञयाम्नु^४ ते ज्ञेया ये स्युरामिर्षमोजिन ॥२९॥
अहिमाशुद्धिरेषा स्याद् ये निःसद्गता दयालव । रता पशुवधे धे तु न ते शुद्धा कुराणया ॥३०॥
वामशुद्धिमता तेया विकाना ये जितेन्द्रिया । सन्तुष्टाश्च स्वदारेषु श्रेया सर्वे विदम्बका ॥३१॥
इति शुद्ध मन यस्य विचारपरिनिष्ठितम् । स एवाप्तस्तदुभ्रतो^५ पमं धेयो हितायिनाम् ॥३२॥

शिवाय गत्र धर्माभार तथा मार्गाभार है ॥२०-२१॥ जिमके वारह अग है, जो निर्दोष है और जिममें श्रेष्ठ आचरणोका विधान है ऐसा शास्त्र ही वेद कहलाता है, जो हिमाका उपदेश देनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है उमे तो यमराजका वाक्य ही समभना चाहिये ॥२०॥ पुराण और धर्मशास्त्र भी वही हो सक्ता है जो हिंसाका निषेध करनेवाला है । इसके विपरीत जो पुराण अथवा धर्मशास्त्र हिंसाका उपदेश देने है उन्हें धूर्तोका बनाया हुआ समभना चाहिये ॥२३॥ पापारम्भके कार्योंसे विरक्त होना चाग्रि कहलाता है । वह चारित्र्य आर्य पुस्तोके करने योग्य देवपूजा आदि छह कर्मरूप है । इससे मिवाय अन्य लोगोंने जो ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों का चारित्र्य निरूपण किया है वह वास्तवमें दुर्ग है ॥२४॥ क्रियाए जो गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यन्त पहले के वही जा चुकी है वे ही समभनी चाहिये, इनके मिवाय गर्भमें मरणपर्यन्त जो क्रियाए अन्य लोगोंने कही है वे ठीक नहीं मानी जा सकनी ॥२५॥ जो गर्भाधानादि क्रियाओं में उपयुक्त होते है वे ही मन्त्र धार्मिक मन्त्र कहलाते है किन्तु जो प्राणियोंकी हिंसा करनेमें प्रयुक्त होते है उन्हें यहा दुर्मन्त्र अर्थात् गोटै मन्त्र समभना चाहिये ॥२६॥ शान्तिका करनेवाटे तीर्थ-घर आदि ही देवता है । इनके मिवाय जिनकी माममें वृत्ति है वे दुष्ट देवता छोडने योग्य है ॥२७॥ जो साक्षात् मोक्षका कारण है ऐसा जिनेन्द्रदेवता कहा हुआ निर्ग्रन्थपना ही सच्चा लिटम है । इसके सिवाय मृगचर्म आदिनों चिह्न बनाना यह कुलिङ्गियोंका बनाया हुआ कुलिङ्ग है ॥२८॥ मामरहित भोजन करना आहार-विषयन शुद्धि कहलाती है । जो मानभोजी है उन्हें सर्पधानी समभना चाहिये ॥२९॥ अहिमा शुद्धि उनके हानी है जो पशुहरहित है और दयालु है, परन्तु जो पशुओंकी हिंसा करनेमें तत्पर रहते है वे दुष्ट अभिप्रायवाटे शुद्ध नहीं है ॥३०॥ जो वामरहित जितेन्द्रिय मुनि है उन्हींके वामशुद्धि मानी जाती है अथवा जो गृहस्थ अपनी स्त्रियोंमें मनोप रतने है उनके भी वामशुद्धि मानी जाती है परन्तु इनके मिवाय जो अन्य गेग है वे बंजर विटम्बना करनेवाटे है ॥३१॥ इस प्रकार विचार करनेपर जिमका मन शुद्ध हो वही आप्त कहना सक्ता है और उमीके द्वारा कहा हुआ धर्म हित चाहनेवाटे गणों-को बल्याणकारी हो मथना है ॥३२॥ वह भव्य उन उत्तम उपदेशगमे इस प्रकारका उपदेश

१ यमस्य वचनम् । २ धर्मास्त्रम् । ३ द्रव्यावार्तादितिस्वाध्यायमद्यमत्रशास्त्रम् । ४ ब्रह्म-
प्यादिवनुग्राह्यम भव । ५ निरवयव । ६ पुरादिता ६०, ६०, ७०, ८० । ७ वृत्ताग्रिन ।
८ तद्विषं शुभम् ९०, ९०, ९० । ९ सन्नविनाशना इत्यथ । १० शशास ।

श्रुत्वेति देशनां तस्माद् भव्योऽनी देशकोत्तमात् । सन्मार्गे मतिमाधत्ते दुर्गारिंरतिमुत्सृजन् ॥३३॥
 गुरुर्जनयिता^१ तत्त्वज्ञानं गर्भः सुसंस्कृतः । तदा तत्रावतीर्णोऽसौ भव्यात्पा धर्मजन्मना^२ ॥३४॥
 श्रवतारक्रियास्यैषा गर्भाधानवदिष्यते । यतो^३ जन्मपरिप्राप्तिः उभयत्र^४ न विद्यते ॥३५॥
 इत्यवतारक्रिया ।

ततोऽस्य वृत्तलाभः स्यात् तदैव गुरुपादयोः । प्रणतस्य व्रतव्रातं^५ विधानेनोपसेदुष्य^६ ॥३६॥

इति वृत्तलाभः । . . .

ततः कृतोपवासास्य पूजाविधिपुरःसरः । स्थानलाभो भवेदस्य^७ तत्रापमुचितो विधिः ॥३७॥
 जिनालये शुचीं रङ्गो पद्ममण्डलं लिखेत् । विलिखेद् वा जिनास्यानमण्डल समवृत्तकम् ॥३८॥
 श्लक्ष्णेण पिष्टचूर्णेन^८ सलिलालोडितेन वा । घर्णेन^९ मण्डलस्येष्टे चन्दनादिद्रव्येण वा ॥३९॥
 तस्मिन्मण्डले पद्मे जने वाऽस्थानमण्डले । विधिना लिखिते तज्ज्ञांविष्वग्विरचिताघर्णे ॥४०॥
 जिनार्चाभिपुरः सूरिः विधिर्न न विधेयते । तदोपासकदोषेयमिति मूर्ध्नि मुहुः स्पृशन् ॥४१॥
 पञ्चमुष्टिविधानेन स्पृष्ट्वेनमधिमस्तकम्^{१०} । पूतोऽसि धीक्षयेत्पूक्त्वा सिद्धशोषा च सम्भवेत्^{११} ॥४२॥
 ततः पञ्चनभस्काररपदात्यस्मा उपादिशेत्^{१२} । सन्त्रोऽयमखिलात्^{१३} पापात्वां पुनीता^{१४} वितोरपन्^{१५} ॥४३॥
 वृत्त्वाविधिधर्मं पश्चात् पारणाय निजर्जयेत् । गुडोरनुग्रहात् तीर्जय सम्प्रीतः स्वगृहं व्रजेत् ॥४४॥
 इति स्थानलाभः ।

सुनकर मिथ्यामार्गमें प्रेम छोडता हुआ समीचीन मार्गमें अपनी बुद्धि लगाता है ॥३३॥ उस समय गुरु ही उसका मित्रा है और तत्त्वज्ञान ही संस्कार क्रिया हुआ गर्भ है । वह भव्य पुरुष धर्म रूप जन्मके द्वारा उस तत्त्वज्ञानरूपी गर्भमें अवतीर्ण होता है ॥३४॥ इसकी यह क्रिया गर्भाधानक्रियाके समान मानी जाती है क्योंकि जन्मकी प्राप्ति दोनों ही क्रियाओंमें नहीं है ॥३५॥ इस प्रकार यह पहली अवतारक्रिया है ।

तदनन्तर—उसी समय गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करते हुए और विधिपूर्वक व्रतोंके समूहको प्राप्त होते हुए उस भव्यके वृत्तलाभ नामकी दूसरी क्रिया होती है ॥३६॥ यह वृत्तलाभ नामकी दूसरी क्रिया है ।

तत्पश्चात् जिसने उपवास किया है ऐंसे उस भव्यके पूजाकी विधिपूर्वक स्थानलाभ नामकी तीसरी क्रिया होती है । इस क्रियामें यह विधि करना उचित है ॥३७॥ जिनालयमें विनी पवित्र स्थानपर आठ पांखुरीका कमल बनावे अथवा गोलाकार समवसरणके मण्डकी रचना करे ॥३८॥ इस कमल अथवा समवसरणके मण्डलकी रचना पानी मिश्रिते हुए, महींन चूर्णमें अथवा घिमें हुए चन्दन आदिसे करनी चाहिये ॥३९॥ उस विषयमें जानकार विद्वानोंके द्वाग लिये हुए उम अष्टदलकमल अथवा जिनेन्द्र भगवान्के समवसरणमण्डलकी जब सम्पूर्ण पूजा हो चुके तब आचार्य उस भव्य पुरुषको जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सम्मुख बंठावे और बार बार उनके मस्तकको स्पर्श करता हुआ यह कहें यह तेरी यावन्की दीक्षा है ॥४०-४१॥ पञ्चमुष्टिकी रीतिसे उसके मस्तकका स्पर्श करे तथा 'नू इम दीक्षामे पवित्र हुआ' इस प्रकार कहकर उसमें पूजाके बचे हुए दोषाक्षत घट्टन करावे ॥४२॥ तत्पश्चात् 'यह मन्त्र तुम्हे ममस्त पापोंसे पवित्र करे' इस प्रकार कहता हुआ उमें पञ्च नमस्कार मन्त्रका उपदेश करे ॥४३॥ यह विधि करके आचार्य उसे

१ जिना । २ धर्म एव जग्य तेव । ३ यस्मान् वात्पणान् । ४ गर्भाधानवतारयो ।

५ इति विष्णुसंहितागर्भाधानविधिना । ६ उपासनाय । ७ स्थानलाभे । ८ पलमिश्रितेन वा । ९ उच्छरणम् ।

१० पञ्चमुष्टिसंज्ञाविधानेन । ११ मूर्ध्नि । १२ प्राण्यम् । १३ अग्ने उपासनां पुर्यात् । १४ दुर्गतां

भक्त्या । १५ पवित्र चूर्णात् । १६ वृत्रम् ।

निदिष्टस्थानताभिस्य पुनरस्य गणग्रहः । स्यान्मिव्यादेवताः स्वस्माद् विनिःसारयतो गृहात् ॥४५॥
इप्रन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्य कृतादरम् । पूज्यास्त्विदानीमस्माभिः अस्मत्समयदेवताः ॥४६॥
ततोऽप्यमुं पितृनालम् अन्वयत्र स्वरमास्यताम् । इति प्रकाशमेवैतान् नीत्वाऽन्यत्र षवचिस्त्वजेत् ॥४७॥
गणग्रहः स एष स्यात् प्राक्तनं देवताद्रगणम् । विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः ॥४८॥

इति प्रहणक्रिया ।

पूजाराध्यात्मयथा स्यात्ता क्रियाऽस्य स्यादतः परा । पूजोपवाससम्पत्त्या शृण्वतोऽङ्गार्थसद्ग्रहम् ॥४९॥
इति पूजाराध्यक्रिया ।

ततोऽन्या पुण्ययज्ञाद्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । शृण्वतः पूर्वं विद्यानाम् अर्थं स ब्रह्मचारिणः ॥५०॥
इति पुण्ययज्ञक्रिया ।

तयाऽस्य दृढचर्या स्यात् क्रिया स्वसमयश्रुतम् । निष्ठाप्य शृण्वतो ग्रन्थान् बाह्ययान्त्यांश्च कांश्चन ॥५१॥
इति दृढचर्याक्रिया ।

दृढव्रतस्य तस्यान्या क्रिया स्यादुपयोगिता । पर्वोपवासपर्यन्ते प्रतिमायोगधारणम् ॥५२॥
इति उपयोगिताक्रिया ।

पारणाके लिये विदा करे और दृढ भव्य भी गुरुके अनुग्रहसे संतुष्ट होता हुआ अपने घर जावे ॥४४॥ यह तीसरी स्थानलाभ क्रिया है ।

जिसके लिये स्थानलाभकी क्रियाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ऐसा भव्य पुरुष जब मिथ्यादेवताओंको अपने घरसे बाहर निकालता है तब उसके गणग्रह नामकी क्रिया होती है ॥४५॥ उस समय वह उन देवताओंसे कहता है कि 'मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिनतक आदरके साथ आपकी पूजा की परन्तु अब अपने ही मतके देवताओंकी पूजा करूंगा इसलिये क्रोध करना व्यर्थ है । आप अपनी इच्छानुसार किसी दूसरी जगह रहिये ।' इस प्रकार प्रकट रूपसे उन देवताओंको ले जाकर किसी अन्य स्थानपर छोड़ दे ॥४६-४७॥ इस प्रकार पहले देवताओंका विसर्जन कर अपने मतके शान्त देवताओंकी पूजा करते हुए उस भव्यके यह गणग्रह नामकी चौथी क्रिया होती है ॥४८॥ यह चौथी गणग्रह क्रिया है ।

तदनन्तर पूजा और उपवासरूप सम्पत्तिके साथ साथ अंगोंने अर्थसमूहको सुननेवाले उस भव्यके पूजाराध्या नामकी प्रसिद्ध क्रिया होती है । भावार्थ—जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा उपवास आदि करते हुए द्वादशाङ्गका अर्थ सुनना पूजाराध्य क्रिया कहलाती है ॥४९॥ यह पाचवी पूजाराध्य क्रिया है ।

तदनन्तर साधर्मी पुरुषोंके साथ साथ चौदह पूर्वविद्याओंका अर्थ सुननेवाले उम भव्यके पुण्यको बढ़ानेवाली पुण्ययज्ञा नामकी भिन्न क्रिया होती है ॥५०॥ यह छठवी पुण्ययज्ञा क्रिया है ।

इस प्रकार अपने मतके शास्त्र समाप्त कर अन्य मतके ग्रन्थों अथवा अन्य किन्हीं दूसरे विषयोंको सुननेवाले उस भव्यके दृढचर्या नामकी क्रिया होती है ॥५१॥ यह दृढचर्या नामकी सातवी क्रिया है ।

तदनन्तर जिसके व्रत दृढ हो चुके हैं ऐसे पुरुषके उपयोगिता नामकी क्रिया होती है ।

१ उपदेगित । २ भव्य । ३ तन वारणात् । ४ ईर्या श्रोपेन वा । ५ प्रकट यथा भवति तथा । ६ निजमन । ७ द्वादशाङ्गसम्बन्धिद्रव्यगग्रहादिवम् । ८ चतुर्दशविद्याना सम्बन्धिनम् । ९ गृहाराध्यादिमहितस्य । 'पुत्रद्वयप्रदायारा मिय गब्रह्मचारिण्य ।' इत्यभिधानात् । १० मन्पूर्वमर्थस्य । ११ पर्वोपवासप्राप्त्यर्थम् ।

किंवाकलापेनोक्तेन शुद्धिमस्योपविभूतः । उपनीतिरनुधानयोग्यनिद्राग्रहो भवेत् ॥५३॥

उपनीतिर्ह वैपस्य वृत्स्य समयस्य च । देवतागुरुसंज्ञि स्याद् विधिद्वयप्रतिपालनम् ॥५४॥

शुक्लवस्त्रोपवीतादिधारणं धेय उच्यते । धार्यपट्टमंजीवित्वं वृत्तमस्य प्रचक्षते ॥५५॥

जैनोपासकदीक्षा स्यात् समयः समयोचितम् । इपतो गोत्रजात्यादि नामान्तरमतः परम् ॥५६॥

इत्युपनीतित्रिया ।

ततोऽयमुपनीतः सन् व्रतचर्या समाधयेत् । सूत्रमोपासकं सम्यग् ध्रम्यस्य पुन्यतोऽर्पेत ॥५७॥

इति व्रतचर्यात्रिया ।

व्रतावतारणं तस्य भूयो भूषादिसद्ग्रहः । भवेदधीतविद्यास्य यथावद्गुरुसन्निधौ ॥५८॥

इति व्रतावतरणत्रिया ।

विवाहस्तु भवेदस्य निवृञ्जानतस्य दीक्षया । सूत्रतोऽर्पितया सम्यक् स्वा धर्मसहचारिणीम् ॥५९॥

पुनर्विवाहसत्कारः पूर्वैः सर्वोऽस्य सम्मतः । सिद्धाचैनां पुरश्च्युत्य पत्न्याः संस्कारमिच्छतः ॥६०॥

इति विवाहत्रिया ।

पर्वके दिन उपवासके अन्तर्गते अर्थात् रात्रिके समय प्रतिमायोग्य धारण करना उपयोगिता क्रिया कहलाती है ॥५२॥ यह उपयोगिता नामकी आठवी क्रिया है ।

ऊपर कहे हुए क्रियाओके समूहसे शुद्धिको धारण करनेवाले उस भव्यके उत्कृष्ट पुरुषोके योग्य चिह्नको धारण करनेरूप उपनीति क्रिया होती है ॥५३॥ देवता और गुरुकी साक्षीपूर्वक विधिके अनुसार अपने वेप, सदाचार और समयकी रक्षा करना उपनीति क्रिया कहलाती है ॥५४॥ सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि धारण करना वेप कहलाता है, आयोके करने योग्य देवपूजा आदि छह कर्मोके करनेको वृत्त कहते हैं और इसके वाद अपने शास्त्रके अनुसार गोत्र जाति आदिके दूसरे नाम धारण करनेवाले पुरुषके जो जैन श्रावककी दीक्षा है उसे समय कहते हैं ॥५५-५६॥ यह उपनीति नामकी नौवी क्रिया है ।

तदनन्तर यज्ञोपवीतसे युक्त हुआ भव्य पुरुष शब्द और अर्थ दोनोंसे अच्छी तरह उपासकाध्ययनके सूत्रोका अभ्यास कर व्रतचर्या नामकी क्रियाको धारण करे । भावार्थ-यज्ञोपवीत धारण कर उपासकाध्ययनादय (श्रावकाचार) का अच्छी तरहसे अभ्यास करते हुए व्रतादि धारण करना व्रतचर्या नामकी क्रिया है ॥५७॥ यह दसवी व्रतचर्या क्रिया है ।

जिसने समस्त विद्याएं पढ ली है ऐसा श्रावक जब गुरुके समीप विधिके अनुसार फिले आभूषण आदि ग्रहण करता है तब उसके व्रतावतरण नामकी क्रिया होती है ॥५८॥ यह व्रतावतरण नामकी ग्यारहवी क्रिया है ।

जब वह भव्य अपनी पत्नीको उत्तम व्रतोके योग्य श्रावककी दीक्षासे युक्त करता है तब उसके विवाह नामकी क्रिया होती है ॥५९॥ अपनी पत्नीके संस्कार चाहने वाले उस भव्यके उमी स्त्रीके माथ फिरसे विवाह संस्कार होता है और उस संस्कारसे सिद्ध भगवान्की पूजाओ आदि लेकर पहले वही हुई समस्त विधि करनी चाहिये ॥६०॥ यह बारहवी विवाहत्रिया है ।

१ विराममुद्देश । २ भवचने गार्हपथीनी । ३ यज्ञोपवीत । 'उपवीत यज्ञयूत्रं प्रोदपूतं दधिषे करे' । ४ व्रतावतरणम् म० । ५ धर्मपत्नीम् । ६ गर्भान्वयत्रियाम् प्रोक्त । ७ जिनद्वयस्वीयाम् प्रामुख्यात्त्रिभार्याया ।

वर्णलाम्बुस्तनोऽप्य स्यात् सम्बन्ध' सविधित्त १ । 'समानाजीविनिर्बन्ध'वर्णरन्ध्रपासर् ॥६१॥
 चतुर' श्रावण'येष्टान् श्रावण कृतसत्क्रियान् । तान् श्रावणस्म्यनुप्राप्त्यो भवति' स्वसर्भो'कृत ॥६२॥
 पूय' निस्तारका देवश्रावणपा'सो'कपूजिता । ग्रह च कृतदोषोऽस्मि गृहीतोपासकव्रत ॥६३॥
 मया तु चरितो धर्मं पुण्यलो गृहमेधिनाम् । दत्तान्यापि च दानानि कृत च गुरुपूजनम् ॥६४॥
 श्रयोनिस्तम्बव जन्म लभ्याह गृहंनुग्रहात् । 'चिरभावितमूर्त्त'प्य प्राप्तो धृत्तमभावितम् ॥६५॥
 व्रतसिद्धयर्थमेवाहम् उपनीतोऽस्मि साम्प्रनम् । 'कृतविद्यदच जानोऽस्मि' 'स्वनीतोपासक'श्रुत ॥६६॥
 यतावनरणस्थान्ते' स्वो'हृताभरणोऽस्म्यहम् । पत्नी च सस्कृताऽऽत्मीया कृतयापिग्रहा पुन ॥६७॥
 एव कृतव्रतस्याद्य वर्णलाभो ममोचित । सुलभ सोऽपि युष्माकम् श्रुतज्ञानात् सयमंणाम् ॥६८॥
 इत्युपज्ञात्ते च त सत्यम् एवमस्तु समञ्जसम् ११ । त्वयोक्त्वा श्लाघ्यमेवैतत् कौश्ल्यस्तत्सत्सद्गो द्विज ॥६९॥
 युष्मावृशामलाभे तु मिथ्यादृष्टिभिरप्यमा । समानाजीविनि कर्तुं सम्बन्धोऽभिमतो हि न ॥७०॥
 इत्युक्त्वा'न समादात्स्य वर्णलाभेन युञ्जते । विधिवत् सोऽपि त ल'ध्वा याति तत्समकक्षताम् ॥७१॥
 इति वर्णलाम्बुश्रिया ।

वर्णलाम्बुश्रिया कृतचर्याऽनुबन्धते । श्रावणदृग्मं वृत्ति स्यात् कृतचर्याऽप्य पुण्यता ॥७२॥

इति कृतचर्या ।

तदनन्तर-जिन्हें वर्णलाम्बु हो चुका है और जो अपने समान ही आजीविका करते हैं ऐसे अन्य श्रावणको माय सम्बन्ध म्यापिन करनेकी इच्छा करनेवाले उभय भव्य पुरुषके वर्णगम नामकी क्रिया होनी है ॥६१॥ इस क्रियाके करने समय वह भव्य चार वडे वडे श्रावणको आदर सत्कार कर दुलावे और उनमे कहे कि आप लोग मुझे अपने समान बनाकर मेरा अनुग्रह कीजिये ॥६२॥ आप लोग ससाग्मे पार करनेवाले देव ब्राह्मण है, समारमें पूज्य है और मैंने भी दीक्षा लेकर श्रावणके व्रत ग्रहण किये हैं ॥६३॥ मैंने गृहस्थोके मपूर्ण धर्मका आचरण किया है, दान भी दिये हैं और गुरुओका पूजन भी किया है ॥६४॥ मैंने गुरुके अनुग्रहमे योनिके बिना ही उत्पन्न होनेवाला जन्म धारण किया है, और चिर कालमे पालन किये हुए मिथ्याधर्मको छोडकर जिसका पहले कभी चिन्तवन भी नहीं किया था ऐसा सम्यक् चारित्र धारण किया है ॥६५॥ ब्रह्मकी मिद्विके गिये ही मैंने इन समय यज्ञोपवीत धारण किया है और श्रावणकाचारका अच्छी तरह अध्ययन कर विद्वान् भी हा गया हू ॥६६॥ ब्रह्मवतरण क्रियाके बाद ही मैंने आर्भूषण स्वीकार किये हुए हैं, मैंने अपनी पत्नीके भी सम्कार किये हैं और उसके माय द्वारा विवाहसम्कार भी किया है ॥६७॥ इस प्रकार व्रत धारण करनेवाले मुझको वर्णलाम्बुकी प्राप्ति होना उचित है और वह भी आप माधर्मो पुण्योकी आज्ञामे सहज ही प्राप्त हो सकती है ॥६८॥ इस प्रकार वह चुकनेपर वे श्रावण कहें कि ठीक है, ऐसा ही होगा, तुमने जो कुछ कहा है वह सब प्रथमनीय है, तुम्हारे समान और दूसरा द्विज कौन है ? ॥६९॥ आप जैसे पुरुषओके न मिलनेपर हम लोगोको समान जीविका करनेवागे मिथ्यादृष्टियो के माय भी सम्बन्ध करना पडता है ॥७०॥ इन प्रकार कहकर वे श्रावण जमे आश्वामन दें और वर्णलाम्बुने युक्त करावें तथा वह भन्ध भी विधियुक्त वर्णलाम्बुको पाकर उन मय श्रावणोकी ममानताको प्राप्त होता है ॥७१॥ यह तेरहरी वर्णगम नामकी क्रिया है ।

• यह वर्णलाम्बु श्रिया कह चुके । अब कृतचर्या क्रिया कही जाती है । आपं पुरुषोके कर्णे

१ क'याप्रदानादानादिमन्ध'चम् । २ सविधानुमिच्छत । ३ स'गावप'न'मादि'वृत्तिभि । ४ विच-
 क्षणं । ५ चतु'गन्धान । ६ युष्मन्'मृगी'कृत । ७ विर'कान'सग'कार'रतम् । मिथ्या'वृत्ति-
 त्पपं । ८ पूर्व'मि'म'भ'वि'तम् । म'वृत्ति'मित्यप । ९ सम्पू'गावि'ध । १० म'वृ'व'धौ । ११ -ग'क'व'र-
 म०, २० । १२ ग'व'वी'र'व'र'वि'च'प्र'दान'प्र'र'णा'व'ग'ान । १३ इ'ट्यम् ।

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशिताम् । यत्ताध्ययनसम्पत्त्या परानुग्रहणक्षमः ॥७३॥
 प्रायश्चित्तविधानसः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् । गृहत्याचार्यतां प्राप्तः तदा धत्ते गृहीशिताम् ॥७४॥

इति गृहीशिताश्रिया ॥

ततः पूर्ववदेवार्य भवेद्विष्टा प्रशान्तता । नानाविधोपवासादिभावनाः समुपेयुषः ॥७५॥

इति प्रशान्तताश्रिया ।

गृहत्यागस्ततोऽस्य स्याद् गृहवासोद् विरज्यतः । योग्यं सूनृयथान्यायम् अनुशिक्ष्य गृहोत्थनम् ॥७६॥

इति गृहत्यागश्रिया ।

त्यक्तागारस्य तस्यातः तपोवनमुपेयुषः । एकशटकवारित्वं प्राग्बहोदाद्यभिष्यते ॥७७॥

इति दीक्षाद्यश्रिया ।

ततोऽस्य जिनरूपत्वम् इष्यते त्यक्तवाससः । धारणं जातरूपस्य युक्ताचाराद् गणेशिनः ॥७८॥

इति जिनरूपता ।

श्रियाशेषास्तु निःशेषा प्रोक्ता गर्भान्वये यथा । तथैव प्रतिपाद्याः स्युः न भेदोऽस्त्यत्र कदचन ॥७९॥

यस्त्वेतास्तत्त्वतो ज्ञात्वा भव्यः समनुतिष्ठति । सोऽधिगच्छति निर्वाणम् अचिरात्सुखसाङ्गवन् ॥८०॥

इति दीक्षान्वयश्रिया ।

योग्यं देवपूजां आदि छह कार्यामे पूर्णं प्रवृत्ति रचना कुलचर्या कहलाती है ॥७२॥ यह कुलचर्या नामकी चौदहवी क्रिया है ।

ऊपर कहे हुए चारित्रसे विशुद्ध हुआ श्रावक गृहीशिता क्रियाको प्राप्त होता है । जो सम्पन्नचारित्र और अध्ययनरूपी सम्पत्तिसे परपुरुषोका उपकार करनेमे समर्थ है, जो प्रायश्चित्तकी विधिका जानकार है, श्रुति, स्मृति और पुराणका जानने वाला है ऐसा भव्य गृहत्यागचर्य पदको प्राप्त होकर गृहीशिता नामकी क्रियाको धारण करता है ॥७३-७४॥ यह गृहीशिता नामकी पन्द्रहवी क्रिया है ।

तदनन्तर नाना प्रकारके उपवास आदिकी भावनाओको प्राप्त होनेवाले उस भव्यके पहलेके समान ही प्रशान्तता नामकी क्रिया मानी जाती है ॥७५॥ यह सोलहवी प्रशान्तता क्रिया है ।

तत्पश्चात् जब वह घरके निवाससे विरक्त होकर योग्य पुत्रको नीतिके अनुसार शिक्षा देकर घर छोड़ देता है तब उसके गृहत्याग नामकी क्रिया होती है ॥७६॥ यह सत्रहवी गृहत्याग क्रिया है ।

तदनन्तर जो घर छोड़कर तपोवनमें चला गया है ऐसे भव्य पुरुषका पहलेके समान एक वस्त्र धारण करना यह दीक्षाद्य नामकी क्रिया मानी जाती है ॥७७॥ यह दीक्षाद्य नामकी अठारहवी क्रिया है ।

इसके बाद जब वह गृहस्य वस्त्र छोड़कर किन्ही योग्य आचरणवाले मुनिराजसे दिग्भ्रमर रूप धारण करता है तब उसके जिनरूपता नामकी क्रिया कही जाती है ॥७८॥ यह उन्नीसवी जिनरूपता क्रिया है ।

इनके मियाय जो कुछ श्रियाएं बाकी रह गई हैं वे सब जिस प्रकार गर्भान्वय श्रियाओमें वही गईं हैं उगी प्रकार प्रतिपादन करने योग्य हैं । इनमे और उनमें कोई भेद नहीं है ॥७९॥ जो भव्य इन श्रियाओंको यथार्थरूपसे जानकर उनका पालन करता है वह सुत्रके आधीन होता हुआ बहुत शीघ्र निर्वाणको प्राप्त होता है ॥८०॥ इस प्रकार यह दीक्षान्वय श्रियाओवा वर्णन पूर्ण हुआ ।

प्रयात संप्रवक्ष्यामि द्विजा १ कर्त्रन्वयक्रिया । या प्रत्यासन्नप्रमिच्छस्य भवेत्प्रभंध्यदेहिन् ॥८१॥
 तत्र सज्जातिरित्याद्या क्रिया श्रेयोऽनुबन्धिनी । या सा वासप्रभव्यस्य नृजन्मोपगमे भवेत् ॥८२॥
 स नृजन्मपरिप्राप्तौ दीक्षायोग्ये सबन्धये । विशुद्ध लभते जन्म संवा सज्जातिरिष्यते ॥८३॥
 विशुद्धकुलजात्यादिसपत्सज्जातिरुच्यते । उदितोदितयदात्व यतोऽभ्येति पुमान् कृती ॥८४॥
 पितृव्ययशद्विषां शतकूल परिभाष्यते । मातृव्ययशद्विस्तु जातिरित्यभिलष्यते ॥८५॥
 विशुद्धिर्भयस्यास्य सज्जातिरनुवर्णिता । यत्प्राप्तौ सुलभा योषि श्रयलोप नर्तुं ॥८६॥
 सज्जन्यप्रतिलम्भोऽग्रम् आर्यावर्तं विशेषतः । सत्या देहादिसामप्रथा श्रेय मृते हि देहिनाम् ॥८७॥
 शरीरजमना संवा सज्जातिरनुवर्णिता । एतन्मूला यत् सर्वा पुंसामिष्टार्थसिद्धय ॥८८॥
 सत्कारजन्मना चाप्या सज्जातिरनुकीर्यते । यामासाद्य द्विजन्मत्व भव्यात्मा समुपादनुते ॥८९॥
 विशुद्धात्तरसम्भूतो मणि सत्कारयोगतः । यत्पुत्रकर्म यथाऽऽर्जवं १ क्रियामर्जं सुतरकृत ॥९०॥
 सुवर्णपातुरयवा शुब्धेदासाद्य सत्क्रियाम् । यथा तयैव भव्यात्मा शुद्ध्यत्यासादितक्रिय ॥९१॥
 ज्ञानं स तु सत्कार सम्यग्ज्ञानमनुत्तरम् । यदाय लभते साक्षात् सर्वविभूयत कृती ॥९२॥

अथानन्तर—हे द्विजो, मैं आगे उन कर्त्रन्वय क्रियाओंको कहता हूँ जो कि अल्पसारी भव्य प्राणी हीके ही सक्ती है ॥८१॥ उन कर्त्रन्वयनियमोंमें कल्याण करनेवाली सबसे पहली क्रिया सज्जाति है जो कि किसी निवृत्त भव्यको मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर होती है ॥८२॥ मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर जब वह दीक्षा धारण करने योग्य उत्तम वशमें विशुद्ध जन्म धारण करता है तब उसके यह सज्जाति नामकी क्रिया होती है ॥८३॥ विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिरूपी सपदा सज्जाति कहलाती है । इस सज्जातिसे ही पुण्यवान् मनुष्य उत्तरोत्तर उत्तम उत्तम वशको प्राप्त होता है ॥८४॥ पिताके वशकी जो शुद्धि है उसे कुल कहते हैं और माताके वशकी शुद्धि जाति कहलाती है ॥८५॥ कुल और जाति इन दोनोंकी विशुद्धिको सज्जाति कहते हैं, इस सज्जातिके प्राप्त होनेपर बिना प्रयत्नके सहज ही प्राप्त हुए गुणोंसे रत्नत्रयकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है ॥८६॥ आर्यखण्डकी विशेषतासे सज्जातित्वकी प्राप्ति शरीर आदि योग्य सामग्री मिलनेपर प्राणियोंके अनेक प्रकारके कल्याण उत्पन्न करती है । भावार्थ—यदि आर्यखण्डके विशुद्ध वशमें जन्म हो और शरीर आदि योग्य सामग्रीका सुयोग प्राप्त हो तो अनेक कल्याणोंकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है ॥८७॥ यह सज्जाति उत्तम शरीर के जन्मसे ही वर्णन की गई है क्योंकि पुरुषोंके समस्त इष्ट पदार्थोंकी सिद्धिका मूलकारण यही एक सज्जाति है ॥८८॥ सत्काररूप जन्मसे जो सज्जातिका वर्णन किया जाता है वह दूसरी ही सज्जाति है उसे पाकर भव्य जीव द्विजन्मपनेको प्राप्त होता है ॥८९॥ जिस प्रकार विशुद्ध खानमें उत्पन्न हुआ रत्न सत्कारके योगसे उत्कर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार नियाओ और मत्रोंसे सुसत्कारको प्राप्त हुआ आत्मा भी अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त हो जाता है ॥९०॥ अथवा जिस प्रकार सुवर्ण पापाण उत्तम संस्कारको पाकर शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भव्य जीव उत्तम नियाओको पाकर शुद्ध हो जाता है ॥९१॥ वह सत्कार ज्ञानसे उत्पन्न होता है सबसे उत्कृष्ट ज्ञान सम्यग्ज्ञान है जिस समय वह पुण्यवान् भव्य साक्षात् सर्वेश देवके मुखसे उस उत्तम ज्ञान-

१ भी विप्रा । २ प्रत्यासन्नमोगस्य । ३ सा वासप्र-सं० । ४ उत्तरोत्तराभ्युदयवदन्वयत्वम् ।
 ५ यत् सज्जाती प्राप्ती सत्याम् । ६ रत्नत्रयप्राप्ति । ७ उपागतं । ८ सज्जातिपरिप्राप्ति ।
 ९ आर्यखण्ड । आर्यावर्तं पुण्यभूमिरित्यभिधानात् । १० एषा सज्जातिर्मूल कारणं यासां ता । ११ यत् कारणम् । १२ सत्कारजन्मसज्जातिम् । १३ उत्कर्षं याति । १४ सुवर्णपापाण ।

सर्वं परमतानगर्भत् संस्वारजन्मा । जातो भवेद् द्विजमेति व्रतं शीर्षंश्च भूयते ॥६३॥
 व्रतचित्तं भवेदस्य सूत्रं मन्त्रपुरस्तरम् । सर्वशाहाप्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितम् ॥६४॥
 यज्ञोपवीतमस्य स्याद् द्रव्यतस्त्रिगुणतन्नाम् । सूत्रगोपासिश्च^१ तु स्याद् 'आवालेदेस्त्रिभिर्गुणै'^२ ॥६५॥
 सर्वं तद्व्यवहार परं ब्रह्माधिगच्छति । सर्वमभितन्वाशीर्षाभिर्गणनापचा^३ ॥६६॥
 'तन्मय-वृचितां शोभां जनीं पुण्यरथाशतं । त्विरीकरणमेतद्धि धर्मप्रोत्साहनं^४ परम् ॥६७॥
 अगोनिस्तमभ्य विश्वतानगर्भसमुद्भूयम् । सोऽधिगम्य परं जन्म तदा सर्ज्योतिभागवत् ॥६८॥
 ततोऽधिगतसज्जाति सद्गृहित्वमती भजेत् । गृहमेधोभयदास्यपद्मनाभ्यनुपालयन् ॥६९॥
 यदुक्त्वा गृहवर्षायाम् अयुष्टान विशुद्धिमत् । तदाप्तविहितं वृत्तनम् अतन्द्रासु रामाचरेत् ॥१००॥
 जिनेन्द्रश्लेषसज्जन्मा गणेशैरनुशिक्षित । स पत्ते परमं ब्रह्मवचंसं^५ द्विजतत्तम ॥१०१॥
 तमेव धर्मसाद्गुप्तं श्लाघन्ते धामिना जना । पर तेज इव ब्राह्मणं^६ अयनीर्णं महोत्तमम् ॥१०२॥
 'स यजन्^७ यज्ञयन्^८ धीमान् यजमानं^९ वपासित^{१०} । अथ्यापयप्रथीमानो^{११} 'देववेदाङ्गविस्तरम् ॥१०३॥

वो प्राप्त करता है उस समय वह उत्कृष्ट ज्ञानरूपी गर्भसे संस्वाररूपी जन्म लेकर उत्पन्न होता है और व्रत तथा शीलसे विभूयित होकर द्विज कहलाता है ॥९२-९३॥ सर्वज्ञ देवकी आज्ञा-को प्रधान, माननेवाला वह द्विज जो मन्त्रपूर्वक सत्र धारण करता है वही उसके व्रतोवा चिह्न है, वह सत्र द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है ॥९४॥ तीन लरवा जो यज्ञोपवीत है वह उसका द्रव्यसूत्र है और हृदयमे उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी गुणोसे बना हुआ जो श्रावकका सूत्र है वह उसका भावसूत्र है ॥९५॥ जिस समय वह भव्य जीव सस्कारोको पाकर परम ब्रह्मको प्राप्त होता है उस समय आचार्य लोग आशीर्षरूप वचनोसे उसकी प्रशंसा कर उसे पुण्य अथवा अक्षतोसे जिनेन्द्र भगवान्की आशिषिका ग्रहण कराते हैं अर्थात् जिनेन्द्रदेवकी पूजासे वचे हुए पुण्य अथवा अक्षत उसके शिर आदि अगोपर रखवाते हैं क्योंकि यह एक प्रकारका स्थिरीकरण है और धर्ममे अत्यन्त उत्साह बढ़ानेवाला है ॥९६-९७॥ इस प्रकार जब वह भव्य जीव बिना यौनिके प्राप्त हुए दिव्यज्ञानरूपी गर्भसे उत्पन्न होनेवाले उत्कृष्ट जन्मको प्राप्त होता है तब वह सज्जातिको धारण करनेवाला समझा जाता है ॥९८॥ यह सज्जाति नामकी पहली क्रिया है ।

तदनन्तर जिसे सज्जाति क्रिया प्राप्त हुई है ऐसा वह भव्य सद्गृहित्व क्रियाको प्राप्त होता है इस प्रकार जो सद्गृहस्थ होता हुआ आर्य पुरुषको करने योग्य छह कर्मोंका पालन करता है, गृहस्थ अवस्थामें करने योग्य जो जो विशुद्ध आचरण बहे गये हैं अरहन्त भगवान्के द्वारा कहे हुए उन उन समस्त आचरणोंका जो आलस्य-रहित होकर पालन करता है, जिसने श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्तम जन्म प्राप्त किया है और गणधरदेवने जिसे शिक्षा दी है ऐसा वह उत्तम द्विज उत्कृष्ट ब्रह्मतेज-आत्मतेजको धारण करता है ॥९९-१०१॥ उस समय धर्मस्वरूप हुए उस भव्यकी अन्य धर्मिता लोग यह कहते हुए प्रशंसा करते हैं कि तू पृथिवीतलपर अवतीर्ण हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मतेजके समान है ॥१०२॥ पूजा करनेवाले यजमान जिसकी पूजा करते हैं, जो स्वयं पूजन करता है, और दूसरोसे भी कराता

१ यन्मूत्रम् । २ उपासकाचारसम्बन्धि । ३ मनसा विकल्पिते । ४ सम्यग्दशाज्ञानचारित्रे । उपलब्धि उपयोगस्वार्थे । ५ परमज्ञानम्, परमतपो वा । ६ आचार्य । ७ प्रापयन्ति । ८ प्रवर्तनम् । ९ रामाचरन् ६०, अ०, त०, प०, द०, स० । १० वृत्ताध्ययनसम्पत्तिम् । 'स्याद् ब्रह्मवचस वृत्ताध्ययनार्थं' इत्यभिधानात् । ११ ज्ञानसम्बन्धुल्लुप्ततेज इव । १२ यजन् वृत्तम् । १३ यजन् कारयन् । १४ पूजानार्थं । १५ आराधित । १६ अध्ययन कारयन् । १७ आगम-आगमात् ।

स्पृशन्नापि महौ नैव स्तुष्ये दोषं महोग्नः । देवत्वमात्मसन्तुष्याद् इहैवाभ्याचतं गुणैः ॥१०४॥
 नाग्निमा महिमं वास्य गरिमेव न लाषडम् । प्राप्तिः प्राणाम्यमोक्षित्वं वशित्वं चेति तद्गुणाः ॥१०५॥
 गुणैरेनिष्पादमहिमा देवमाह्वयम् । विमृत्सोक्तानि घाम मष्ट्यामेव महीयते ॥१०६॥
 घर्मराचरितैः सत्यशौचशान्तिदमादिभिः । देवब्राह्मणानां श्लाघ्या स्वस्मिन् सम्नादपश्यमी ॥१०७॥
 श्रय जातिमुदावेदान् वरिचवेन द्विजश्रवः । दूयादेवं किमत्रैव देवभूयं गतो भवान् ॥१०८॥
 त्वमानुष्यायेण । किन्न किन्नेऽम्बोऽमुष्य पुत्रिका । 'देवैर्नवमुन्नतो' भूत्वा पात्यसत्त्वत्य मद्रिष्यान् ॥१०९॥
 जातिः संव कृत तच्च शीर्षसि धोर्षसि प्रयेतन ।^{१०} तथापि देवतात्मानम् आत्मान मन्यते नवान् ॥११०॥
 देवनातिपिपिप्रगिनकायैष्यप्रयतो^{११} भवान् । गुरुद्विजातिदेवानां प्रणामाच्च पराऽमुष्यः ॥१११॥
 दोक्षां जैनीं प्रपन्नस्य जातः कोर्षतिशयस्तव । यनोऽद्यापि मनुष्यस्य पादचारी महौ स्तुतान् ॥११२॥
 इत्युपाष्टसत्सम्मन्^{१२} उपातत्त्वं । स केनचित् । ददात्युत्तरमित्यस्मै बवोनिर्वृत्तवेदात् ।^{१३} ॥११३॥
 श्रूयतां भो द्विजमन्य स्वयात्समद्विष्यसम्भव^{१४} । जिनी^{१५} जनयिताऽस्माकं ज्ञानं गर्नोऽर्जतिनिर्मलः ॥११४॥

है, जो वेद और वेदाङ्गके विस्मारको स्वयं पढ़ता है तथा दूसरोंको भी पढ़ता है, जो यद्यपि पृथिवीका स्पर्श करता है तथापि पृथिवीमन्त्रन्धी दोष जिनका स्पर्श नहीं कर सकते है, जो अपने प्रथमनीय गुणोंसे इमी पर्यायमें देवपर्यायको प्राप्त होता है, जिनके अग्निमा ऋद्धि अर्थात् छोटापन नहीं है किन्तु महिमा अर्थात् बड़ापन है, जिनके गरिमाऋद्धि है परन्तु लघिमा नहीं है, जिसमें प्राप्ति, प्राणाम्य, ईशित्व और वशित्व आदि देवताओंके गुण विद्यमान है, उपर्युक्त गुणोंमें जिसकी महिमा बड़ रही है, जो देवरूप ही रहा है और लोकको उल्लवत करनेवाला उत्कृष्ट तेज धारण करता है ऐसा यह भय पृथिवीपर पूजित होता है ॥१०३-१०६॥ सत्य, शौच, क्षमा और दम आदि घर्मसम्बन्धी आचरणोंमें वह अपनेमें प्रथमनीय देवब्राह्मणोंमेंकी संभावना करता है अर्थात् उत्तम आचरणोंमें अपने आपको देवब्राह्मणके समान उत्तम बना देता है ॥१०७॥

यदि अपनेको भूतभूत ही द्विज माननेवाला कोई पुरुष अपनी जातिके बहंकारके आवेग से इस देवब्राह्मणमें बड़े कि आप क्या आज ही देवपनेको प्राप्त हो गये है ? ॥१०८॥ क्या तू अमुक पुरुषका पुत्र नहीं है ? और क्या तेरी माता अमुक पुरुषकी पुत्री नहीं है ? जिसमें कि तू इस तरह नाक ऊंची कर भरे ऐसे पुरुषोंका मत्कार किये बिना ही जाता है ? ॥१०९॥ यद्यपि तेरी जाति वही है, कुल वही है और तू भी वही है जो कि मन्वेरेके समय था तथापि तू अपने आपको देवतारूप मानता है ॥११०॥ यद्यपि तू देवता, अग्नि, पितृगण और अग्निके कार्योंमें निपुण है तथापि गुरु, द्विज और देवोंको प्रणाम करनेमें विमुक्त है ॥१११॥ जैनी दोक्षा धारण करनेमें तुम्हें कौनमा अतिशय प्राप्त हो गया है ? क्योंकि तू अब भी मनुष्य ही है और पृथिवीको स्पर्श करता हुआ पैरोंसे ही चलता है ॥११२॥ इस प्रकार श्रेय धारणकर यदि कोई उलाहना दे तो उसके लिये युक्तिमें भरे हुए वक्तव्योंमें इस प्रकार उत्तर दे ॥११३॥ हे अपने आपको द्विज माननेवाले, तू मेरा दिव्य जन्म मून, थीं जिनेन्द्रदेव ही मेरा पिता है और

१ ग्लनयदिगुणनाम । २ प्रथयैग्रायमन्तान् नव नामिन्नपर्यायत्वम् । ३ देवानीनम् । देव-
 साद्भवन् १०, ६०, ६० । देवसाद्भवन् ४०, ५०, ५० । ४ देवत्वम् । ५ कुलीन । 'प्रसिद्धपितु-
 स्त्नान् आमप्यादरा उच्यन्ते ।' ६ नम । ७ कुलीना पुत्री । ८ येन वारुणेन । ९ उद्गगनामिनः ।
 १० प्राप्सुम्ब । ११ -प्रावृत्तो १०, ६० । १२ स्वीहृत्तरोय यथा भवति तथा । १३ इपित ।
 १४ पट्टि । १५ अस्माक देवोन्पति । १६ पिता ।

'तथाहुंतीं त्रिधा' भिन्नां शक्तिं त्रैनुष्यसंभ्रिताम् । स्वसात्कृत्य समुद्भूता धर्मं संस्कारजमता ॥११५॥
 अपोनिस्तम्भवास्तो देवा एव न मातृवा । यय वयमिवाग्येऽपि सन्ति चेद् ब्रूहि तद्विधान् ॥११६॥
 स्वात्मभुक्षामुखाग्जाता ततो देवद्विजा ययम् । प्रतच्चिह्नं य न सूत्रं पवित्रं सूत्रवर्जितम् ॥११७॥
 पापसूत्रानुगा यूय न द्विजा सूत्रवच्छ्रवा । समार्गवच्छ्रवास्नोऽप्या केवरां मलदूषिता ॥११८॥
 शरीरजन्म सस्कारजन्म चेति द्विधा मतम् । जन्मादागिां मूर्तिद्वयं द्विधाम्नाता जिनागमे ॥११९॥
 देहान्तरपरिप्राप्तिं पूर्वदेहपरिक्षयात् । शरीरजन्म विज्ञेयं देहभाजां भयान्तरं ॥१२०॥
 तथात्सव्यात्मलाभस्य पुन सस्कारयोगत । द्विजन्मतापरिप्राप्तिर्जन्म संस्कारजं रभतम् ॥१२१॥
 शरीरमरण स्त्रायरन्ते देहविसर्जनम् । संस्कारमरणं प्राप्तव्रतस्याग समुत्भनम् ॥१२२॥
 'यतोऽय सन्धसस्कारो विजहति प्रगेतनम्' । मिथ्यादर्शनपर्यायं ततस्तेन' मृतो भवेत् ॥१२३॥
 तत्र' सस्कारजन्मेव प्रपापोपहत परम् । जात नो' गुर्वनुजानाद्' व्रतो देवद्विजा वयम् ॥१२४॥
 इत्यत्मनो गुणोत्कर्षं ह्यापयन्त्यायवर्त्मना । गृहमेधी भवेत् प्राप्य सद्गृहत्वमनुत्तरम् ॥१२५॥
 भूयोऽपि सप्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान् सत्त्वियोचितान् । जातिवादावलेपस्य' निरासार्थमत परम् ॥१२६॥

ज्ञान ही अत्यन्त निर्मल गर्भ है ॥११४॥ उस गर्भमें उपलब्धि, उपयोग और संस्कार इन तीन गुणोंके आश्रित रहनेवाली जो अरहन्तदेवसम्बन्धिनी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य ये तीन भिन्न भिन्न शक्तिया हैं उन्हें अपने अधीन कर हम संस्काररूपी जन्मसे उत्पन्न हुए हैं ॥११५॥ हम लोग विना योनिसे उत्पन्न हुए हैं इसलिये देव ही हैं मनुष्य नहीं हैं, हमारे समान जो और भी हैं उन्हें भी तू देवब्राह्मण कह ॥११६॥ हम लोग स्वयंभूके मुखसे उत्पन्न हुए हैं इसलिये देवब्राह्मण हैं और हमारे व्रतोंका चिह्न शास्त्रोंमें कहा यह पवित्र सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत है ॥११७॥ आप लोग तो गलेमें सूत्र धारणकर समीचीन मार्गमें तीक्ष्ण वृष्टक बनते हुए पापरूप सूत्रके अनुसार चलनेवाले हैं, केवल मलसे दूषित हैं, द्विज नहीं हैं ॥११८॥ जीवोंका जन्म दो प्रकारका है एक तो शरीरजन्म और दूसरा संस्कार-जन्म । इसी प्रकार जैनशास्त्रोंमें जीवोंका मरण भी दो प्रकारका माना गया है ॥११९॥ पहले शरीरका क्षय हो जानेसे दूसरी पर्यायमें जो दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है उसे जीवोंका शरीरजन्म जानना चाहिये । ॥१२०॥ इसी प्रकार संस्कारयोगसे जिसे पुन आत्मलाभ प्राप्त हुआ है ऐसे पुरुषको जो द्विजपनेकी प्राप्ति होना है वह संस्कारज अर्थात् संस्कारसे उत्पन्न हुआ जन्म कहलाता है ॥१२१॥ अपनी आयुके अन्तमें शरीरका परित्याग करना शरीरमरण है तथा व्रती पुरुष का प्राप्नोक्ता परित्याग करना संस्कारमरण है ॥१२२॥ इस प्रकार जिसे सब संस्कार प्राप्त हुए हैं ऐसा जीव मिथ्यादर्शनरूप पहलेके पर्यायको छोड़ देता है इसलिये वह एक तरहसे मरा हुआ ही कहलाता है ॥१२३॥ उन दोनों जन्मोंमेंसे जो पापसे दूषित नहीं हैं ऐसा संस्कारसे उत्पन्न हुआ यह उत्कृष्ट जन्म गुह्यकी आज्ञानुसार मुझे प्राप्त हुआ है इसलिये मैं देवद्विज या देवब्राह्मण कहलाता हूँ ॥१२४॥ इस प्रकार न्यायमार्गसे अपने आत्माके गुणोंका उत्कर्ष प्रकट करता हुआ वह पुरुष सर्वश्रेष्ठ सद्गृहत्व अवस्थाको पाकर सद्गृहस्थ होता है ॥१२५॥ उत्तम विद्याओंके करने योग्य ब्राह्मणोंसे उनके जातिवादका अहंकार दूर करनेके लिये इसके

१ ज्ञानवर्ध । २ सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्र्यार्णोति त्रिप्रकारे । ३ उपनयन्युपयोगसंस्कारात्मता मताम् । ४ अयानिमम्भप्रयारात् । अयोनिमम्भवसद्दुशानित्यथ । ५ आगमप्रोक्तम् । ६ सूत्रमात्र-मव वृष्टे मेया ते । ७ यन्मात पारणात् । ८ प्रान्तनम् । ९ मिथ्यादर्शनत्वजनरूपेणत्यर्थं । १० शरीरजन्मसंस्कारजन्मो । ११ अस्माकम् । १२ शरीरनुजाया । १३ गर्वस्य । १४ निरावरणाय ।

ब्रह्मणोऽपत्यमित्येव ब्राह्मणाः समुदाहृताः । ब्रह्मा स्वयम्भूंगवान् परमेष्ठीं^१ जिनोत्तमः ॥१२७॥
 स द्यादिपरमब्रह्म जिनन्द्रो गुणवृंहणात् । परं ब्रह्म यदायत्तम् आमनन्ति मुनीश्वराः ॥१२८॥
 नैनाजिनधरो ब्रह्मा जटाकूर्चादिलक्षणः । यः कामगर्दभो^२ भूत्वा प्रच्युतो ब्रह्मवर्चसात्^३ ॥१२९॥
 दिव्यमूर्त्तेजिनेन्द्रस्य ज्ञानगर्भदिनाविलात्^४ । समासादितजन्मानो द्विजन्मानस्ततो मताः ॥१३०॥
^५वर्णान्तिपातिनो नैते मन्तव्या द्विजसत्तमाः । व्रतमन्नादिस्कारसमारोपितगौरवाः ॥१३१॥
 वर्णोत्तमानिमान् विश्वः क्षान्तिशौचपरायणान् । सन्तुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यान् श्रविलप्टाधारभूषणान् ॥१३२॥
^६विलप्टाचाराः परे नैव ब्राह्मणा द्विजमानिनः । पापारम्भरता शश्वद् आहत्य^७ पशुघातिनः ॥१३३॥
 सर्वमेधमयं^८ धर्मम् अभ्युपेत्य पशुघ्नताम्^९ । का नाम गतिरेया स्यात् पापशास्त्रोपजीविनाम् ॥१३४॥
 चोदनालक्षणं^{१०} धर्मम् अधर्मं प्रतिजानते^{११} । ये तेभ्यः कर्मचाण्डालान् पश्यामो नापरान् भुवि ॥१३५॥
 पायिवर्दण्डनीयाश्च लुष्टाकाः^{१२} । पापपण्डिताः । तेऽपि धर्मजुषा बहृष्या ये निघ्नन्त्यघृणाः^{१३} पशून् ॥१३६॥
^{१४}पशुहत्यासमारम्भात् श्रव्यादेभ्योऽपि^{१५} निष्कृपाः । यद्युच्छ्रिति^{१६}मुशन्त्येते हन्तव्यं धार्मिका हृताः ॥१३७॥

आगे फिर भी कुछ कहता हूँ ॥१२६॥ जो ब्रह्माकी सतान है, उन्हें ब्राह्मण कहते हैं और स्वयंभू, भगवान्, परमेष्ठी तथा जिनन्द्रदेव ब्रह्मा कहलाते हैं । भावार्थ—जो जिनन्द्र भगवान् का उपदेश सुनकर उनकी शिष्य-परम्परामें प्रविष्ट हुए हैं वे ब्राह्मण कहलाते हैं ॥१२७॥ श्रीजिनन्द्रदेव ही आदि परम ब्रह्मा है क्योंकि वे ही गुणोंको बढ़ानेवाले हैं और उत्कृष्ट ब्रह्म अर्थात् ज्ञान भी उन्हींके अधीन है ऐसा मुनियोंके ईश्वर मानते हैं ॥१२८॥ जो मृगचर्म धारण करता है, जटा, डाढी आदि चिह्नोंसे युक्त है तथा कामके वश गधा होकर जो ब्रह्मतेज अर्थात् ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ वह कभी ब्रह्मा नहीं हो सकता ॥१२९॥ इसलिये जिन्होंने दिव्य मूर्तिके धारक श्री जिनन्द्रदेवके निर्मल ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म प्राप्त किया है वे ही द्विज कहलाते हैं ॥१३०॥ व्रत, मन्त्र तथा सस्कारोंसे जिन्हे गौरव प्राप्त हुआ है ऐसे इन उत्तम द्विजोंको वर्णोंके अन्तर्गत नहीं मानना चाहिये अर्थात् ये वर्णोत्तम हैं ॥१३१॥ जो क्षमा और शौच गुणके धारण करनेमें सदा तत्पर हैं, सतुष्ट रहते हैं, जिन्हे विशेषता प्राप्त हुई है और निर्दोष आचरण ही जिनका आभूषण है ऐसे इन द्विजोंको सब वर्णोंमें उत्तम मानते हैं ॥१३२॥ इनके सिवाय जो मलिन आचारके धारक हैं, अपनेको भूठमूठ द्विज मानते हैं, पापका आरम्भ करनेमें सदा तत्पर रहते हैं और हठपूर्वक पशुओंका घात करते हैं वे ब्राह्मण नहीं हो सकते ॥१३३॥ जो समस्त हिंसामय धर्म स्वीकार कर पशुओंका घात करते हैं ऐसे पापशास्त्रोंसे आजीविका करनेवाले इन ब्राह्मणोंकी न जाने कौन सी गति होगी ? ॥१३४॥ जो अधर्म स्वरूप वेदमें कहे हुए प्रेरणात्मक धर्मको धर्म मानते हैं मैं उनके सिवाय इस पृथिवीपर और किसीको कर्म चाण्डाल नहीं देखता हूँ अर्थात् वेदमें कहे हुए धर्मको माननेवाले सबसे बड़कर कर्म चाण्डाल हैं ॥१३५॥ जो निर्दय होकर पशुओंका घात करते हैं वे पापरूप कार्योंमें पडित हैं, लुटेरे हैं, और धर्मात्मा लोगोंसे वाह्य हैं, ऐसे पुरुष राजाओंके द्वारा दण्डनीय होते हैं ॥१३६॥ पशुओंकी हिंसा करनेके उद्योगसे जो राक्षसोंसे भी अधिक निर्दय हैं यदि ऐसे पुरुष ही उत्कृष्टताको प्राप्त होते हो तब

१ परमपदे स्थित । २ कामाद् गर्दभाकारमुत् इत्यर्थ । ३ अध्ययनसम्पत्ते । ४ अवलुपात् । ५ वर्णोमात्रवतिन इत्यर्थ । ६ दुष्ट । ७ हठात्, साक्षात् वा । ८ हिंसामयम् । ९ हिंसा कुर्वताम् । १० वेदोक्तलक्षणम् । ११ प्रतिज्ञा कुर्वने । १२ चोरा । १३ निष्कृपा । १४ पशुहानप्रारम्भात् । १५ राक्षसेभ्यः । १६ राक्षस कोणप श्रव्यात् श्रव्यादोऽस्त्रप आशरत् इत्यभिधानात् । १६ उपप्रतिम् ।

मतिनाचरिता ह्येते 'कृष्णवर्गे द्विजशुवाः । जनास्तु निर्मलाचाराः 'शुक्लवर्गे मता बुधः ॥१३३॥
 'श्रुतिस्मृति'पुरावृत्त'वृत्तमन्त्रक्रियाश्रिता । देवतालिङ्गकामान्तकृता शुद्धिद्विजन्मनाम् ॥१३६॥
 ये विशुद्धतरा वृत्ति तत्कृता' समुपाश्रिताः । ते शुक्लवर्गे बोधव्याः शोपा. शुद्धेः बहिः वृता ॥१४०॥
 तच्छुद्धयशुद्धी' बोधव्ये न्यायान्यायप्रवृत्तित. । न्यायो दयाद्रवृत्तित्वम् अन्त्यायः प्राणिसारणम् ॥१४१॥
 विशुद्धवृत्तयस्तस्माज्जैना वर्णोत्तमा द्विजा । 'वर्णान्तरं पारितो नैते जगन्मान्या इति स्थितम् ॥१४२॥
 स्यादारेवो' च षट्कर्मजोविना गृहमेधिनान् । हिसादोपोऽनुसङ्गो स्याज्जैनाना च द्विजन्मनाम् ॥१४३॥
 इत्यत्र' ब्रूमहे सत्यम्' अल्पसावद्यसङ्गति । 'तत्रास्त्येव तयाप्येषा स्याच्छुद्धि. शास्त्रदर्शिता ॥१४४॥
 अथि चंया विशुद्धचङ्गं पक्षश्चर्या च साधनम् । इति त्रितयमस्त्येव तद्विदानीं विवृण्महे ॥१४५॥
 तत्र पक्षो हि जैनाना कृत्स्नहिंसाविवर्जनम् । मंत्रोप्रमोदकाख्यमाध्यस्थ्यैरूपवृ हितम् ॥१४६॥
 चर्या तु देवतार्थं वा मन्त्रसिद्धचर्पमेव वा । श्रीपथाहारकल्पयै वा न हिंस्यामीति चेद्विदितम् ॥१४७॥
 तत्राकामकृते' शुद्धिः प्रायश्चित्तविधोपते । पश्चाच्चात्मालय' सूत्रो व्यवस्थाप्य गृहोज्जनम् ॥१४८॥

तो दु खके साथ कहता पडेगा कि वेचारे धर्मात्मा लोग व्यर्थ ही नष्ट हुए ॥१३७॥ ये द्विज लोग मलिन आचारका पालन करते हैं और भूउमूठ ही अपनेको द्विज कहते हैं इसलिये विद्वान् लोग इन्हें कृष्णवर्ग अर्थात् पापियोंके समूहमें गर्भित करते हैं और जैन लोग निर्मल आचारका पालन करते हैं इसलिये इन्हें शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानोके समूहमें शामिल करते हैं ॥१३८॥ द्विज लोगोकी शुद्धि श्रुति, स्मृति, पुराण, सदाचार, मन्त्र और क्रियाओके आश्रित हैं तथा देवताओके चिह्न धारण करने और कामका नाश करनेसे भी होती है ॥१३९॥ जो श्रुत स्मृति आदिके द्वारा की हुई अत्यन्त विशुद्ध वृत्तिको धारण करते हैं उन्हें शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानोके समूहमें समझना चाहिये और जो इनसे शेष वचते हैं उन्हें शुद्धिसे बाहर समझना चाहिये अर्थात् वे महा असुद्ध हैं ॥१४०॥ उनकी शुद्धि और असुद्धि, न्याय और अन्यायरूप प्रवृत्तिसे जाननी चाहिये । दयासे कोमल परिणाम होना न्याय है और प्राणियोका मारना अन्याय है ॥१४१॥ इससे यह बात निश्चित हो चुकी कि विशुद्ध वृत्तिको धारण करनेवाले जैन लोग ही सब वर्णोंमें उत्तम हैं । ये ही द्विज हैं । ये ब्राह्मण आदि वर्णोंके अन्तर्गत न होकर वर्णोत्तम हैं और जगत्सूज्य हैं ॥१४२॥

अब यहाँ यह कहा हो सकता है कि जो अग्नि मपी आदि छह कर्मोंसे आजीविका करनेवाले जैन द्विज अथवा गृहस्थ हैं उनके भी हिंसाका दोष लग सकता है परन्तु इस विषयमें हम यह कहते हैं कि आपने जो कहा है वह ठीक है, आजीविकाके लिये छह कर्म करनेवाले जैन गृहस्थोके थोड़ी सी हिंसाकी गति अवश्य होती है परन्तु शास्त्रोमें उन दोषोकी शुद्धि भी तो दितलाई गई है ॥१४३-१४४॥ उनकी विशुद्धिके अन्तर्गत तीन हैं पक्ष, चर्या और साधन । अब मैं यहाँ इन्ही तीनोंका वर्णन करना हूँ ॥१४५॥ उन तीनोंमेंसे मंत्रो, प्रमोद, वाख्य और माध्यस्थ्य-भावसे शुद्धिको प्राप्ति हुआ सम्भव हिंसाका त्याग करना जैनियोका पक्ष बहलाता है ॥१४६॥ किन्तो देवताके चित्रे, किन्तो मन्त्रकी मूर्तिके चित्रे अथवा किसी औपधि या भोजन बनवानेके चित्रे में किन्तो जीवकी हिंसा नहीं करना ऐसी प्रतिज्ञा करना चर्या बहलाती है ॥१४७॥ इस प्रतिज्ञामें यदि कभी इच्छा न रहने हुए प्रमादसे दोष लग जाये तो प्रायश्चित्तसे उगनी शुद्धि

१ पाप । २ पुण्य । ३ आगम । ४ परमार्थज्ञान । ५ पुण्य । ६ श्रुतिस्मृत्यादिनाम् ।

७ जैनिकोपकरण। शुद्धयशुद्धि । ८ वर्णान्तरवर्तिता । ९ गच्छता । १० 'हिंसादोषोऽनुसङ्गी स्याद्' इत्यत्र ।

११ साध्यमाध्यस्थ्यैरूपवृत्तः । १२ चर्या । १३ प्रमादवर्जिते दोषे । १४ -वात्माख्यं

२०, १०, २०, ३०, १०, १० ।

चर्मया गृहिणां प्रोक्ता जोवितान्ते तु साधनम् । देहाहारेहितत्यागात्^१ ध्यानशुद्धात्मशोधनम् ॥१४६॥
 त्रिप्वेतेषु न संस्पृशो वयेनाहंद्द्विजन्मानाम् । इत्यात्मपक्षनिश्चितदोषाणां स्यात्प्रिराहृतिः ॥१५०॥
 चतुर्गामाश्रमाणां च शुद्धिः स्यादाहंते मते । आतुराश्रम्यमन्वेयाम् भविचारितसुन्दरम् ॥१५१॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽप्य भिक्षुकः । इत्याद्यमास्तु जैनानाम् उत्तरोत्तरशुद्धितः ॥१५२॥
 ज्ञातव्याः स्युः प्रपञ्चेन सान्तभेदाः पृथग्विधाः^२ । ग्रन्थगौरवभीत्या तु नार्श्रतेषां प्रपञ्चना ॥१५३॥
 सद्गृहित्वमिदं श्रेयं गुणैरत्नोपञ्च हणम् । पारिव्राज्यमिनो वक्ष्ये सुविशुद्धं क्रियान्तरम् ॥१५४॥
 इति सद्गृहित्वम् ।

गार्हस्थ्यमनुपालयं गृहवासाद् विरज्यतः^३ । यद्दीक्षाग्रहणं तद्धि पारिव्राज्यं प्रचक्षते ॥१५५॥
 पारिव्राज्यं पारिव्राजी भावो निर्वाणदीक्षणम् । तत्र निर्ममता वृत्त्या जातरूपस्य धारणम् ॥१५६॥
 प्रशस्ततित्थिनस्रययोगत्तमं^४ ग्रहांसके^५ । निग्रन्थाचार्यनाश्रित्य बीसा प्राह्या मनुक्षुपा ॥१५७॥
 विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्बृत्तस्य वपुष्मतः । दीक्षायोग्यत्वमान्नातं सुमुखस्य सुमेधसः ॥१५८॥
^६ग्रहोपरागग्रहणे परिवेन्द्रचापयोः । वज्रग्रहोदये मेघपटलस्यगितेऽम्बरैः ॥१५९॥

की जाती है तथा अन्तमें अपना मत्र कुट्टम्ब पुनके लिये सौंपकर घरका परित्याग किया जाता है ॥१४८॥ यह गृहस्थ लोगोंकी चर्चा कही, अब आगे साधन कहते हैं । आयुके अन्त समयमें शरीर आहार और समस्त प्रकारकी चेष्टाओंका परित्याग कर ध्यानकी शुद्धिमें जो आत्माको शुद्ध करना है उमें साधन कहते हैं ॥१४९॥ वरहन्तदेवको माननेवाले द्विजोंका पक्ष, चर्चा और साधन इन तीनोंमें हिंसाके साथ स्पर्श भी नहीं होता, इस प्रकार अपने ऊपर ठहराये हुए दोषोंका निराकरण हो सकता है ॥१५०॥ चारों आश्रमोंकी शुद्धता भी श्री अर्हन्तदेवके मतमें ही है । अन्य लोगोंने जो चार आश्रम माने हैं वे विचार किये विना ही सुन्दर है अर्थात् जब तक उनका विचार नहीं किया गया है तभी तक सुन्दर है ॥१५१॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैन्प्रियोंके चार आश्रम हैं जो कि उत्तरोत्तर अधिक विशुद्धि होनेने प्राप्त होते हैं ॥१५२॥ ये चारों ही आश्रम अपने अपने अन्तभेदोंसे सहित हीकर अनेक प्रकारके हो जाते हैं, उनका विस्तारके साथ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये परन्तु ग्रन्थ बड़ जानेके भयसे यहाँ उनका विस्तार नहीं लिखा है ॥१५३॥ इस प्रकार गुणोंके द्वारा अपने आत्माकी वृद्धि करना यह सद्गृहित्व क्रिया है । अब इसके आगे अत्यन्त विशुद्ध पारिव्रज्य नामकी तीसरी क्रियाका निरूपण करेंगे ॥१५४॥ यह दूसरी सद्गृहित्व क्रिया है ।

इस प्रकार गृहस्थवर्मका पालन कर घरके निवाससे विरक्त होते हुए पुरुषका जो दीक्षा ग्रहण करना है उसे पारिव्रज्य कहते हैं ॥१५५॥ पारिव्राट्का जो निर्वाणदीक्षास्य भाव है उमें पारिव्रज्य कहते हैं, इस पारिव्रज्य क्रियामें ममत्व भाव छोडकर दिग्म्वररूप धारण करना पड़ता है ॥१५६॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको शुभ तित्थि, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ ग्रहोंके अंशमें निग्रन्थ आचार्यके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥१५७॥ जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षा ग्रहण करनेके योग्य माना गया है ॥१५८॥ जिम दिन ग्रहोंका उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य-चन्द्रमापर परिवेप (मण्डल) हो, इन्द्रयनुप उठा हो, दुष्ट ग्रहोंका उदम हो, आकाग मेघपटलसे टका हुआ हो, नष्ट माम

१ चेष्टा । २ चतुराश्रमत्वम् । ३ नानाप्रकाराः । ४ विरक्ति गच्छतः । ५ मूर्तः ।
 ६ ग्रहासकेः स०, द०, अ०, प०, इ०, म० । ७ चन्द्रादिग्रहणौ ।

- नष्टाधिमासदिनयो सक्रान्तौ 'हानिमत्तिथौ । दीक्षाविधिं समुक्षणं नेच्छन्ति वृत्तशुद्धयै ॥१६०॥
 'सम्प्रदायमनादृत्य यस्त्विम 'दीक्षयेदधी । स साधुभिर्बहिः कथौ वृद्धात्प्रातादनारत' ॥१६१॥
 'तत्र सूत्रश्रुत्याह्वु धोनी-त्रा सप्तविंशतिम् । र्धनिर्णोर्त'भर्षेसाक्षात्' पारिव्राज्यस्य लक्षणम् ॥१६२॥
 जातिर्मतिश्च तत्रस्य^{१०} लक्षणं सुन्दराद्गता । प्रभामण्डलचक्राणि तयाभिययनाथते^{११} ॥१६३॥
 सिंहासनोपधाने च छत्रचामरघोषण । अशोकवृक्षनिधयो गृहशोभावाहनं ॥१६४॥
 क्षेत्रज्ञाञ्जा सभा कीर्तिर्वन्धता वाहनानि च । भावाहारसुखानीति जात्यादि सप्तविंशति ॥१६५॥
 जात्यादिकानिमान् सप्तविंशति परमेष्ठिनाम् । गुणानाहुर्भजेदीक्षां स्वेषु^{१२} 'तेष्वृत्तादर ॥१६६॥
 जातिमानप्यनुत्सिक्त^{१३} 'सम्भजेदहंता क्रमो^{१४} । यतो जात्यन्तरे^{१५} जात्यां^{१६} याति जाति^{१७} चतुष्टयीम् ॥१६७॥
 जातिरेन्द्री^{१८} भवेद्विद्या चक्रिणा विजयाश्रिता । परमा जातिराहंन्त्ये स्वात्मोत्पा सिद्धिमोषुषाम् ॥१६८॥

अथवा अधिक मासका दिन हो, सक्रान्ति हो अथवा क्षयतिथिका दिन हो उस दिन बुद्धिमान् आचार्य मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्योके लिये दीक्षाकी विधि नहीं करना चाहते हैं अर्थात् उस दिन किसी शिष्यको नवीन दीक्षा नहीं देते हैं ॥१५९-१६०॥ जो मन्दबुद्धि आचार्य इस सम्प्रदायका अनादर कर नवीन शिष्यको दीक्षा दे देता है वह बृद्ध पुरुषोके उल्लघन करनेमें तत्पर होनेसे अन्य साधुओके द्वारा वहिष्कार कर देने योग्य है । भावार्थ-जो आचार्य असमयमें ही शिष्यको दीक्षा दे देता है वह बृद्ध आचार्यकी मान्यताको उल्लघन करता है इसलिये साधुओको चाहिये कि वे ऐसे आचार्यको अपने सघसे बाहर कर दे ॥१६१॥ मुनिराज इस पारिव्रज्य क्रियामें उन सत्ताईस सूत्र पदोका निरूपण करते हैं जिनका कि निर्णय होनेपर पारिव्रज्यका साक्षात् लक्षण प्रकट होता है ॥१६२॥ जाति, मूर्ति, उसमें रहनेवाले लक्षण, शरीरकी सुन्दरता, प्रभा, मण्डल, चक्र, अभिषेक, नाथता, सिंहासन, उपधान, छत्र, चामर, घोषणा, अशोक वृक्ष, निधि, गृहशोभा, अवगाहन, क्षेत्रज्ञ, आज्ञा, सभा, कीर्ति, वन्दनीयता, वाहन, भाषा, आहार और सुख ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद कहलाते हैं ॥१६३-१६५॥ ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद परमेष्ठियोके गुण कहलाते हैं । उस भव्य पुरुषको अपने जाति आदि गुणोंसे आदर न करते हुए दीक्षा धारण करना चाहिये । भावार्थ-ये जाति आदि गुण जिन प्रकार परमेष्ठियोमें होते हैं उसी प्रकार दीक्षा लेनेवाले शिष्यमें भी यथासंभव रूपसे होते हैं परन्तु शिष्यको अपने जाति आदि गुणोंका सम्मान नहीं कर परमेष्ठियोके ही जाति आदि गुणोंका सम्मान करना चाहिये । क्योंकि ऐसा करनेसे वह शिष्य अहंकार आदि दुर्गुणोंमें वचकर अपने आपका उत्थान शीघ्र ही कर सकता है ॥१६६॥ स्वय उत्तम जातिवाला होनेपर भी अहंकाररहित होकर अरहन्तदेवके चरणोंकी सेवा करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करनेमें वह भव्य दूमरे जन्ममें उत्पन्न होनेपर दिव्या, विजयाश्रित, परमा और स्वा इन चार जानियोंको प्राप्त होता है ॥१६७॥ इन्द्रके दिव्या जाति होती है, चन्द्रवृत्तियोके विजयाश्रिता, अरहन्तदेवके परमा और मोक्षको प्राप्त हुए जीवोंके अपने आत्माने उत्पन्न होनेवाली स्वा-

१ नष्टमासग्याधिनमासग्य दिनयो । २ अगमपूर्णतिथौ । ३ सम्पूर्णमतय । ४ आम्नायम् (परम्परागम्) । ५ दीक्षा श्वीकृत्याम् । ६ वृद्धानिब्रमण तत्पर । ७ परिव्राज्ये । ८ निश्चित । ९ श्रय्याम् । १० मूर्तिरिद्याम् । तत्रत्य ल० । ११ अभिषेकच अभिषेको नाथता च स्वाभित्त्व च । १२ आग्नीषेम् । १३ जात्यादिपु । १४ अगतिन । १५ चरणी । १६ जमान्तरे । १७ उन्नतो गत्याम् । १८ दिव्यत्रातिवित्रयत्रानि परमत्रानि स्वामोत्पजातिरिति । १९ इन्द्रस्य इयम् ।

मू र्पादिद्विषि^१ नेतव्या कपनेय चतुष्टयो । पुराणमरसम्मोहान् कवचित्त्र^२ त्रितयो मता ॥१६६॥
 कर्षेन्मूर्त्तिमात्मोवा रसन्मूर्त्ती शरीरिणाम् । तमोग्नितिच्छेद् दिव्यादिमूर्त्तीराप्नुमता मुनि ॥१७०॥
 स्वतसगमनिर्देश^३ मग्यमानो जितेदितानाम् । तनगान्यनिसन्ध्याय^४ तपस्येत् कृतलक्ष्णा ॥१७१॥
 म्नापयन्^५ स्वाद्यगसौन्दर्यं मुनिरथ तपदचरेत् । बान्धुदिव्यादिमौन्दर्यम् अतिचार्यपरम्परम् ॥१७२॥
 मचोमसाद्यो षु मृष्टस्वकायप्रनवमन । प्रनो^६ प्रमा मुनिर्ध्यापन् भवेत् क्षिप्र प्रमान्धर ॥१७३॥
 स्व मणिहस्तेह^७ दीपादितेजोऽप्यास्य पित नजन् । तेजोमयस्य योगी स्यात्तेजोवत्तयोग्यवन् ॥१७४॥
 तस्य बाण्य^८ चम्प^९ शस्त्राणि^{१०} प्राक्वतानि प्रगान्तिनाह । जिनमाराध्य योगीन्द्रो परमचक्राधिपौ भवेत् ॥
 त्यक्वन्मानादिमस्कार सक्षिय स्नातक^{११} जिनम । मूर्ध्नि मेरोरवाप्नोति पर जन्मान्निपेचनम् ॥१७६॥
 स्व^{१२} श्वाभ्यमैहिक त्यक्त्वा परमस्त्रामिन निनम् । सेवित्वा सेवनीयवत् एष्यत्येव जगज्जन^{१३} ॥१७७॥
 स्वोचितासतभेदाना त्यागात्पवनान्धरो मुनि । संह दिष्टरमध्यास्य तीर्थमभ्यापको भवेत् ॥१७८॥
 श्चोरोमानाद्यनाइत्य योऽन्भिरथ^{१४} धिर्भुवि । शवान स्वगिडने बाहुमात्रापरितारस्त ॥१७९॥

जाति होनी है ॥१६८॥ इन चारोंकी कल्पना मूर्ति आदिमें कर गेनी चाहिये, अर्थात् जिन प्रकार जातिके दिव्या आदि चार भेद हैं उन्ही प्रकार मूनि आदिके भी समझ लेना चाहिये । परन्तु पुगणोको जाननेवाले आचार्य मोहग्रहित होनेसे किसी किसी जगह तीन ही भेदोंकी कल्पना करते हैं । भावार्थ—मिद्धोगे स्वा मूनि नहीं मानते हैं ॥१६९॥ जो मुनि दिव्य आदि मूर्तियोंको प्राप्त करना चाहता है उसे अपना शरीर कृम करना चाहिये तथा अन्य जीवोंके शरीरोंकी रक्षा करते हुए तपश्चरण करना चाहिये ॥१७०॥ इसी प्रकार अनेक लक्षण धारण करनेवाग वह पुरुष अपने लक्षणोंको निर्देश करनेके अयोग्य मानता हुआ त्रिनेन्द्रदेवके लक्षणोंका चिन्तनकर तपश्चरण करे ॥१७१॥ जिनकी परम्परा अनिवायं है एसे दिव्य आदि सौन्दर्योंकी इच्छा करता हुआ वह मुनि अपने शरीरके सौन्दर्यको मर्गिन करता हुआ कठिन तपश्चरण करे ॥१७२॥ जिसका शरीर मलिन हो गया है, निम्ने अपने शरीरमें उत्पन्न होनेवाली प्रमा का त्याग कर दिया है और जो अहंन्देवकी प्रभाका ध्यान करता है एसा नाथु दीघ ही देदीप्यमान हो जाता है अर्थात् दिनप्रमा आदि प्रमाओंको प्राप्त करता है ॥१७३॥ जो मुनि अपने मणि और तेलके दीपक आदिका तेज छोटकर तेजोमय त्रिनेन्द्र भगवान्की आराधना करता है वह प्रभामण्डलमें उज्ज्वल हो उठता है ॥१७४॥ जो पहलेके अन्न, वस्त्र और दान्य आदि को छोडकर अत्यन्त दान्न होता हुआ त्रिनेन्द्रभगवान्की आराधना करता है वह योगिराज धर्मचक्रका अधिपति होता है ॥१७५॥ जो मुनि स्नान आदिका मन्वार छोडकर केवली त्रिनेन्द्रका आश्रय लेता है अर्थात् उनका चिन्तन करना है वह मेरुपर्वतके मस्तकपर उत्कृष्ट जन्मानिपेकको प्राप्त होता है ॥१७६॥ जो मुनि अपने इस लोभ-मन्त्राग्धी स्वामीपनेको छोडकर परमेश्वरामी श्रीत्रिनेन्द्रदेवकी सेवा करता है वह जगत्के जीवोंके द्वारा सेवनीय होता है अर्थात् जगत्के सब जीव उनकी सेवा करते हैं ॥१७७॥ जो मुनि अपने योग्य अनेक आसनो के भेदोंका त्यागकर दिग्भ्यर हो जाता है वह सिंहासनपर आसुट होकर तीर्थको प्रसिद्ध करनेवाला अर्थात् तीर्थ बन होना है ॥१७८॥ जो मुनि अपने तस्त्रिया आदिका अनादर कर पण्डित-

१ दिव्यमूर्त्तिपिजयमूर्ति परममूर्ति स्वामीचमूर्तिगि एवमुत्तरवापि योनीनम । ० विद्वादी ।
 ३ नामसक्तीन कर्तुमयोग्यमिति । ४ ध्यात्वा । ५ गुणं प्रवीत । 'गुणं प्रवीत' इत्यनिरुद्धतपणहिनलक्षणो-
 इत्यभिधानात् । ६ म्नानि कृदन् । ७ जिनस्य । ८ तैलाम्यउगत । ९ दिव्यान्म । १० अन्न-
 टो । करमुक्त । ११ सामायास । १२ प्रहृष्टजानातिगम । १३ स्वामिचन । १४ निजाप
 वद्गनादि । 'उपघान तूपवम्' इत्यभिधानात् । १५ निपरिहृ ।

तं महाभ्युदयं प्राप्य जिनो भूत्वाऽऽप्तसत्क्रियः । धेर्वाविरचितं दीप्रम् आस्कन्वत्युपधानकम् ॥१८०॥
 त्यक्तशीततपत्राण^१सकलामपरिच्छदः । त्रिभिश्छत्रैः तमुद्भूतितरुनेर्दुःखान्ते स्वयम् ॥१८१॥
 विविधव्यजन^२त्यागाद् अनुष्ठिततपोविधि^३ । चानराणां घनु पट्ट्या बीज्यते जिनपर्ययं ॥१८२॥
 उज्ज्वलानकसद्गौतमोयः कृत्वा तपोविधिम् । स्याद्दुन्दुभुभिनिर्घोषः घृष्यमाणजयोदयः ॥१८३॥
 उद्यानादिकृतां ध्यायाम् अपास्य स्वां तपो व्यधात् । यतोऽप्यमत एवास्य स्यादशोकमहादुःखः ॥१८४॥
 स्व^४ 'स्वापतेयमुचितं त्यक्त्वा निर्ममतामितः' । स्वयं निधिभिरभ्येत्य सेव्यते द्वारि दूरतः ॥१८५॥
 गृहशोभां कृतारक्षा द्वरीकृत्य तपस्यतः । धीमण्डपादिशोभास्य स्वतोऽभ्येति पुरोगताम् ॥१८६॥
 तपोऽवगाहनादस्य गहनाभ्यधितिष्ठतः । त्रिजगज्जनतास्थानसहं स्यादवगाहनम् ॥१८७॥
 क्षेत्रवास्तुसमुत्सर्गात्^५ क्षेत्रज्ञत्वमुपेव्युषः । स्वाधीनत्रिजगत्क्षेत्रम् ऐश्वर्यमत्योपजायते ॥१८८॥
 आज्ञाभिमानमुत्सृज्य मोनमास्थितवानयम् । प्राप्नोति परमात्मनां सुरातुरशरोपृताम् ॥१८९॥
 स्वामिष्टभृत्यवन्ध्यादिसभामुत्सृष्टवानयम् । परमाप्तपदप्राप्तौ श्रध्यास्ते त्रिजगत्सभाम् ॥१९०॥

रहित हो जाता है और केवल अपनी भुजापर शिरका किनारा रखकर पृथिवीके ऊंचे-नीचे प्रदेशपर शयन करता है वह महाअभ्युदय (स्वर्गादिकी विभूति) को पाकर जिन हो जाता है, उस समय सब लोग उसका आदर-सत्कार करते हैं और वह देवोंके द्वारा बने हुए देदीप्यमान तकियाको प्राप्त होता है ॥१७९-१८०॥ जो मुनि शीतल छत्र आदि अपने समस्त परिग्रह-का त्याग कर देता है वह स्वयं देदीप्यमान रत्नोंसे युक्त तीन छत्रोंसे सुशोभित होता है ॥१८१॥ अनेक प्रकारके पखाओके त्यागसे जिसने तपश्चरणकी विधिका पालन किया है ऐसा मुनि जिनेन्द्रपर्यायमें चौंसठ चमरोसे बीजित होता है अर्थात् उसपर चौंसठ चमर ढाले जाते हैं ॥१८२॥ जो मुनि नगाडे तथा संगीत आदिकी घोषणाका त्याग कर तपश्चरण करता है उसके विजयका उदय स्वर्गके दुन्दुभियोंके गम्भीर शब्दोंसे घोषित किया जाता है ॥१८३॥ चूंकि पहले उसने अपने उद्यान आदिके द्वारा की हुई छायाका परित्याग कर तपश्चरण किया था इसलिये ही अब उसे (अरहन्तअवस्थामें) महाअशोक वृक्षकी प्राप्ति होती है ॥१८४॥ जो अपना योग्य धन छोड़कर निर्ममत्वभावको प्राप्त होता है वह स्वयं आकर दूर दरवाजेपर खड़ी हुई निधियोंसे सेवित होता है अर्थात् समवसरण भूमिमें निधियां दरवाजेपर खड़े रहकर उसकी सेवा करती हैं ॥१८५॥ जिसकी रक्षा सब ओरसे की गई थी ऐसी घरकी शोभाको छोड़कर इमने तपश्चरण किया था इसीलिये थीमण्डपकी शोभा अपने आप इसके सामने आती है ॥१८६॥ जो तप करनेके लिये सबन वनमें निवास करता है उसे तीनों जगत्के जीवोंके लिये स्थान दे सबनेवाली अवगाहन शक्ति प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसका ऐसा समवसरण रचा जाता है जिसमें तीनों लोकोंके समस्त जीव स्वसे स्थान पा सकते हैं ॥१८७॥ जो क्षेत्र मवान आदिको परित्याग कर शुद्ध आत्माको प्राप्त होता है उसे तीनों जगत्के क्षेत्रको अपने आधीन रखनेवाला ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥१८८॥ जो मुनि आज्ञा देनेका अभिमान छोड़कर मोन धारण करता है उसे सुर और असुरोंके द्वारा शिरपर धारण की हुई उत्कृष्ट आज्ञा प्राप्त होती है अर्थात् उसकी आज्ञा सब जीव मानते हैं ॥१८९॥ जो यह मुनि अपने इष्ट सेवक तथा भाई आदिकी सभाका परित्याग करता है इसलिये उत्कृष्ट अरहन्त पदकी प्राप्ति होनेपर

१ उपवहंम् । २ छत्र । ३ घामर । ४ अर्हपर्याये गति । ५ स्वर्दुन्दुभिभि । ६ धनम् ।

'द्वयं दूतं स्वान्नेयं रिषयं दुष्यं धनं वगु' इत्यभिधानात् । ७ निर्ममत्व गत । ८ असेतरताम् । ९ प्रवेगनात् । १० आत्मस्वरूपत्वम् । 'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष' इत्यभिधानात् ।

स्वर्गुणोक्तोर्तनं त्यक्त्वा त्यक्तकामो महातपाः । स्तुतिनिन्दासमो भूयः कीर्त्यन्ते भुवनेश्वरः ॥१६१॥
 चन्दित्वा चन्द्रमर्हन्तं यतोऽनुष्टितवांस्तपः । ततोऽयं वन्द्यते चन्द्रः^१ अनिन्द्यगुणसन्निधिः ॥१६२॥
 तपोऽयमनुपातकः^२ पादचारो विवाहनः । वृत्तवान् पद्मगर्भे चरणन्यासमर्हति^३ ॥१६३॥
 बाष्पुप्तो हितवाय्वृत्या यतोऽयं तपसि स्थितः । ततोऽस्य दिव्यभावा स्यात् प्रीयगन्त्यखिलां सभाम् ॥१६४॥
 'अनाश्वान्नियताहारपारणोऽस्तपः' यत्तपः^४ । तदस्य दिव्यविजयं परमात्मतृप्तयः ॥१६५॥
 त्यक्तकामसुखो भूत्वा तपस्यस्वाच्चिरं यतः । ततोऽयं सुखसाद्भूत्वा परमानन्दयुं भजेत् ॥१६६॥ -
 किमत्र बहुनोषतेन यद्यदिष्टं ययावियम् । त्यजेन्मुनिरसकल्पः तत्तत्सूतेऽस्य तत्तपः^५ ॥१६७॥
 प्राप्तोत्कर्षं तदस्य^६ स्यात्तपश्चिन्तामणेः फलम् । यतोऽर्हज्जातिमूर्त्यादिप्राप्तिः संपादुवर्णिता ॥१६८॥
 जनेश्वरों परामातां सूत्रोद्दिष्टां प्रमाणयन् । तपस्या यदुपापते पारिव्राज्यं तदाञ्जनाम्^७ ॥१६९॥
 ग्रन्थञ्च बहुवाजाले निबद्धं युक्तिबाधितम् । पारिव्राज्य परित्यज्य ग्राह्यं^८ चेदमनुत्तरम्^९ ॥२००॥
 इति पारिव्राज्यम् ।

वह तीनों लोकोंकी सभा अर्थात् समवसरण भूमिमें विराजमान होता है ॥१९०॥ जो सब प्रकारकी इच्छाओंका परित्याग कर अपने गुणोंकी प्रशंसा करना छोड़ देता है और महा-तपश्चरण करता हुआ स्तुति तथा निन्दामें समान भाव रखता है वह तीनों लोकोंके इन्द्रोंके द्वारा प्रशंसित होता है अर्थात् सब लोग उसकी स्तुति करते हैं ॥१९१॥ इस मुनिने वन्दना करने योग्य अर्हन्तदेवकी वन्दना कर तपश्चरण किया था इसीलिये यह वन्दना करने योग्य-पूज्य पुरुषोंके द्वारा वन्दना किया जाता है तथा प्रशसनीय उत्तम गुणोंका भाण्डार हुआ है ॥१९२॥ जो जूता और सवारीका परित्याग कर पैदल चलता हुआ तपश्चरण करता है वह कमलोकें मध्यमें चरण रखनेके योग्य होता है अर्थात् अर्हन्त अवस्थामें देवलोक उसके चरणोंके नीचे कमलोंकी रचना करते हैं ॥१९३॥ चूँकि यह मुनि वचनगुप्तिको धारण कर अथवा हित मित वचनरूप भाषासमितिका पालन कर तपश्चरणमें स्थित हुआ था इसलिये ही इसें समस्त सभाको संतुष्ट करनेवाली दिव्य ध्वनि प्राप्त हुई है ॥१९४॥ इस मुनिने पहले उपवास धारण कर अथवा नियमित आहार और पारणाएं कर तप तपा था इसलिये ही इसे दिव्यतृप्ति, विजय-तृप्ति, परमतृप्ति और अमृततृप्ति ये चारों ही तृप्तिर्यां प्राप्त हुई हैं ॥१९५॥ यह मुनि काम जनित सुखको छोड़कर चिरकाल तक तपश्चरणमें स्थिर रहा था इसलिये ही यह सुखस्वरूप होकर परमानन्दको प्राप्त हुआ है ॥१९६॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? संक्षेप में इतना ही कह देना ठीक है कि मुनि सकल्पपरहित होकर जिस प्रकारकी जिस जिस वस्तुका परित्याग करता है उमका तपश्चरण उसके लिये वही वही वस्तु उत्पन्न कर देता है ॥१९७॥ जिस तपश्चरणरूपी चिन्तामणिका फल उत्कृष्ट पदकी प्राप्ति आदि मिलता है और जिससे अर्हन्तदेवकी जाति तथा मूर्ति आदिकी प्राप्ति होती है ऐसी इस पारिव्रज्य नामकी क्रियाका वर्णन किया ॥१९८॥ जो आगममें कही हुई जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाको प्रमाण मानता हुआ तपस्या धारण करता है अर्थात् दीक्षा ग्रहण करता है उसीके वास्तविक पारिव्रज्य होता है ॥१९९॥ अनेक प्रकारके वचनोंके जालमें निबद्ध तथा युक्तिसे बाधित अन्य लोगोंके पारिव्रज्य

१ यस्मात् वारणात् । २ गणचरविधि । ३ पादभारपरहित । ४ पादन्यासस्य योग्यो भवति । ५ अनवानव्रती । ६ अचरोत् । ७ यत् वारणात् । ८ दिव्यतृप्तिविजयतृप्तिपरमतृप्त्य-मृततृप्तयः । ९ आनन्दम् । १० प्रसिद्ध तप । ११ पारमाधिक्यम् । १२ अर्हत्सम्बन्धि पारिव्राज्यम् । १३ -मनुत्तमम् ल० ।

परमजिनपदानुरक्तयोः

भजति पुमान् य इमं क्रियाविधिम् ।

स घृतनिखिलकर्नबन्धनो

जननजरामरणान्तःकृद् भवेत् ॥२१०॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्यात्मा रामवाच्य जातिनुचितां जातस्ततः सद्गृही

पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमतादासाद्य यातो दिवम् ।

तत्रंघ्रौ श्रियमाप्तवान् पुनरतः इच्छुत्वा ग्लतश्चक्रिन्नाम्-

प्रान्ताहन्त्यपदः सप्तप्रमहिमा प्राप्नोत्यतो निर्वृतिम् ॥२११॥

इत्याप्ये भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहा-

पुराणसद्ग्रहे दीक्षाकर्त्रन्वयप्रक्रियावर्णनं नाम

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३६॥

वाला जो भव्य पुरुष उक्त क्रियाओंसहित जिनमतमें कहे हुए इस पुराणके धर्मका अथवा प्राचीन धर्मका स्मरण करता है और उसीके अनुसार आचरण करता है वह संसारसम्बन्धी भयके बन्धनोंको धीम्र ही तोड़ देता है—नष्ट कर देता है ॥२०९॥ जिसकी बुद्धि अत्यन्त उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवान्के चरणकमलोंमें अनुरागको प्राप्त हो रही है ऐसा जो पुरुष इन त्रिव्याजोंकी विधिका सेवन करता है वह समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करता हुआ जन्म, बुढ़ापा और मरणका अन्त करनेवाला होता है ॥२१०॥ यह भव्य पुरुष प्रथम ही योग्य जातिको पाकर सद्गृहस्थ होता है फिर गृहकी आज्ञासे उत्कृष्ट पारिव्रज्यको प्राप्तकर स्वर्ग जाता है, वहाँ उसे इन्द्रकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर चक्रवर्ती पदको प्राप्त होता है, फिर अरहन्त पदको प्राप्त होकर उत्कृष्ट महिमाका धारक होता है और इसके बाद निर्वाणको प्राप्त होता है ॥२११॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराण

संग्रहके भाषानुवादमें दीक्षान्वय और कर्त्रन्वय क्रियाओं

का वर्णन करनेवाला उनतालीसवां पर्व

समाप्त हुआ ।

या सुरेन्द्रपदप्राप्तिः पारिव्राज्यफलोदयात्^१ । संपा सुरेन्द्रता नाम त्रिया प्रागनुर्वाणता ॥२०१॥
इति सुरेन्द्रता ।

साम्राज्यमाधिराज्यं स्याच्चक्ररत्नपुर सरम् । निधिरत्नसमुद्भूत भोगसम्पत्परम्परम् ॥२०२॥
इति साम्राज्यम् ।

आर्हन्त्यमर्हंतो भावो कर्म वेति परा त्रिया । यत्र स्वर्गवितारादिमहाकल्याणसम्पदः ॥२०३॥
यासौ दिवोज्वतीर्गस्य प्राप्तिः कल्याणसम्पदाम् । तदाहन्त्यमिति श्रेय श्रेयोषयोभकारणम् ॥२०४॥
इत्याहन्त्यम् ।

भवजन्मननुवत्स्य यावत्स्या परमात्मनः । परिनिर्वृत्तिरिष्टा सा परं निर्वाणमित्यपि ॥२०५॥
कृत्स्नकर्ममलापायान् संशुद्धिर्मांस्तरात्मनः । सिद्धिः स्यात्सोपलब्धिः सा नाभावो न गुणोच्छ्रिता^२ ॥२०६॥
इति निर्वृतिः ।

इत्यागमानुसारेण प्रोचताः कर्त्तव्यक्रियाः । सप्तैतोः परमस्थानसद्वर्तिभ्यं योगिनाम् ॥२०७॥
योऽनुतिष्ठत्यतन्द्रालुः क्रिया ह्येषोत्तिग्धोदिताः । सोऽधिगच्छेत् परं धाम यत्सन्प्राप्तो परं शिवम्^३ ॥२०८॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

जिनमतविहितं पुराणधर्मं य इममनुस्मरति क्रियानिबद्धम् ।

अनुचरति च पुण्यवीः स भव्यो भवभवबन्धनमाशु निर्धुंनति ॥२०९॥

को छोडकर इसी सर्वोत्कृष्ट पारिव्राज्यकी ग्रहण करना चाहिये ॥२००॥ यह तीसरी पारिव्राज्य क्रिया है ।

पारिव्राज्यके फलका उदय होनेसे जो सुरेन्द्र पदकी प्राप्ति होती है वही यह सुरेन्द्रता नामकी क्रिया है इसका वर्णन पहले किया जा चुका है ॥२०१॥ यह चौथी सुरेन्द्रता क्रिया है ।

जिसमें चक्ररत्नके साथ साथ निधियो और रत्नोसे उत्पन्न हुए भोगोपभोगरूपी संपदाओ की परम्परा प्राप्त होती है ऐसा चक्रवर्तीका बडा भारी राज्य साम्राज्य कहलाता है ॥२०२॥ यह पाँचवी साम्राज्यक्रिया है ।

अर्हत् परमेष्ठीका भाव अथवा कर्मरूप जो उत्कृष्ट क्रिया है उसे आर्हन्त्य क्रिया कहते हैं । इम क्रियामे स्वर्गवितार आदि महाकल्याणकरूप सम्पदाओकी प्राप्ति होती है ॥२०३॥ स्वर्गसे अवतीर्ण हुए अर्हन्त परमेष्ठीको जो पञ्चकल्याणकरूप सम्पदाओकी प्राप्ति होती है उमे आर्हन्त्य क्रिया जानना चाहिये, यह आर्हन्त्यत्रिया तीनो लोकोमे क्षोभ उत्पन्न करनेवाली है ॥२०४॥ यह छठयी आर्हन्त्यत्रिया है ।

गमारके बन्धनमे मुक्त हुए परमात्माकी जो अवस्था होती है उसे परिनिर्वृति कहते हैं । इमका दूगरा नाम परिनिर्वाण भी है ॥२०५॥ समस्त कर्मरूपी मलके नष्ट हो जानेसे जो आत्मरत्नकी शुद्धि होती है उमे सिद्धि कहते हैं, यह सिद्धि अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप है अभाव-रूप नहीं है और न ज्ञान आदि गुणोके नागरूप ही है ॥२०६॥ यह सातवी परिनिर्वृति त्रिया है ।

इम प्रकार आगमके अनुसार ये सात कर्त्तव्य क्रियाएँ कही गईं हैं, इन त्रियाओका पालन करनेमे योगियोने परम स्थानकी प्राप्ति होती है ॥२०७॥ जो भव्य आलस्य छोडकर निरुपणकी हुई इन तीन प्रबन्धी त्रियाओका अनुष्ठान करता है वह उम परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त होता है जिसके प्राप्न होनेपर उमे उत्कृष्ट सुख मिल जाता है ॥२०८॥ पवित्र बुद्धिको धारण करने

१ यथास्ये ५० । २ तुष्णभावम्प्यो न । ३ 'बुद्धिगुणदुःपादिनयानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छ्रितसिर्मा' इति मनशोभो मोक्षो न । ४ गुणम् ।

परमजिनपदानुरक्तयोः

भजति पुमान् य इमं क्रियाविधिम् ।

स घृतनिसिलकरुनंबन्धनो

जननजरामरणान् कृद् भवेत् ॥२१०॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भयान्मा रामवाप्य जातिनुचितां जातस्ततः सद्गृही

पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमतादास्ताद्य यातो दिवम् ।

सत्रैर्द्रो श्रियमाप्तवान् पुनरतश्च्युत्वा रत्नचक्रितान्-

प्राप्ताहन्त्यपदः समप्रमहिना प्राप्नोत्यनो निर्वृतिम् ॥२११॥

इत्यार्यं भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीतं त्रिपिट्तज्ञगमहा-

पुराणसद्ग्रहे दीक्षाकर्त्तव्यक्रियावर्णनं नाम

एकीनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३६॥

वाला जो भय्य पुष्य उक्त क्रियाओमहित जिनमतमें कहे हुए इस पुराणके धर्मका अथवा प्राचीन धर्मका स्मरण करता है और उमीके अनुसार आचरण करता है वह समारमन्धन्वी भयके बन्धनोको शीघ्र ही तोड़ देता है—नष्ट कर देता है ॥२०९॥ जिसकी बुद्धि अत्यन्त उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवान्के चरणकमलमें अनुरागको प्राप्त हो रही है ऐसा जो पुरुष इन क्रियाओकी विधिका सेवन करता है वह समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करता हुआ जन्म, बुडापा और मरणका अन्त करनेवाला होता है ॥२१०॥ यह भय्य पुष्य प्रथम ही योग्य जातिको पाकर सद्गृह्म्य होता है फिर गुरुकी आज्ञासे उत्कृष्ट पारिव्रज्यको प्राप्तकर स्वर्ग जाता है, वहां उमे इन्द्रकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, तदनन्तर वहामे च्युत होकर चन्द्रवर्ती पदको प्राप्त होता है, फिर अरहन्त पदको प्राप्त होकर उत्कृष्ट गहिमाका धारक होता है और इसके बाद निर्वाणको प्राप्त होता है ॥२११॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपिट्तज्ञगमहापुराण

सग्रहके भाषानुवादमें दीक्षान्वय और कर्त्तव्य क्रियाओ

का वर्णन करनेवाला उनतालीसवा पर्व

समाप्त हुआ ।

चत्वारिंशत्तमं पर्व

अथात सम्प्रवक्ष्यामि क्रियासूत्ररचूलिकाम्^१ । विशेषनिर्णयो यत्र क्रियाणां^२ तिसृणामपि ॥१॥
 तत्रादौ तावदुत्प्रेष्ये^३ क्रियाकल्पप्रवृत्तये^४ । मन्त्रोद्धारक्रियासिद्धिं मन्त्राधीना हि योगिनाम् ॥२॥
 आधानादि क्रियारम्भे पूर्वमेव निवेशयेन् । त्रीणिच्छत्राणि चक्राणां त्रय त्रींश्च हविर्भुजं^५ ॥३॥
 'मध्येवेदि जिनेन्द्रार्धा स्यात्पयेच्च यथाविधि । मन्त्रकल्पोऽयमाभ्यातस्तत्र' तत्पूजनाविधौ^६ ॥४॥
 नमोऽन्तो नीरजसब्दश्चतुर्थन्तोऽत्र पठयताम् । जलेन भूमिवन्धाय^७ परा शुद्धिस्तु तत्फलम्^८ ॥५॥
 (नीरजसे नम)

वर्मास्तरणसम्बन्धस्ततः पश्चादुदीर्यताम् । विघ्नोपशान्तये दर्पमयनाय नमः पदम् ॥६॥

(दर्पमयनाय नमः)

गन्धप्रदानमन्त्रश्च शीलगन्धाय वै नमः ।

(शीलगन्धाय नमः)

पुष्पप्रदानमन्त्रोऽपि विमलाय नमः पदम् ॥७॥

(विमलाय नमः)

अथानन्तर—आगे इन त्रियाओकी उत्तरचूलिकाका कथन करेगे जिसमें कि इन तीनों त्रियाओका विशेष निर्णय किया गया है ॥१॥ इस उत्तरचूलिकामें भी सबसे पहले त्रियाकल्प अर्थात् त्रियाओके समूहकी सिद्धिके लिये मन्त्रोका उद्धार बरहगा अर्थात् मन्त्रोकी रचना आदि का निरूपण बरहगा सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोके कार्यकी सिद्धि भी मन्त्रोके ही आधीन होती है ॥२॥ आधानादि त्रियाओके प्रारम्भमें सबसे पहले तीन छत्र, तीन चक्र और तीन अग्निया स्थापित करना चाहिये ॥३॥ और वेदीके मध्य भागमें विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये । उक्त त्रियाओके प्रारम्भमें उन छत्र, चक्र, अग्नि तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी जो पूजा की जाती है वह मन्त्रवत्प बहलाता है ॥४॥ इन त्रियाओके करते समय जग्ने भूमि शुद्ध करनेके लिये जिमके अन्तमें नमः शब्द लगा हुआ है ऐसे नीरजस् शब्दको चतुर्थीके एवचनका रूप पढ़ना चाहिये अर्थात् 'नीरजसे नमः' (वमंरूप धूलिसे रहित जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिये । इस मन्त्रका फल उत्पृष्ट विगुद्धि होना है ॥५॥ तदनन्तर शोलागन्ध प्रदान करना चाहिये और उसके बाद विघ्नोको शान्त करने के लिये 'दर्पमयनाय नमः' (अटकारको नष्ट करनेवाले भगवान्को नमस्कार हो) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥६॥ गन्ध ममपण करनेका मन्त्र है 'शीलगन्धाय नमः' (शील रूप गन्ध धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो) । तथा पुष्प देनेका मन्त्र है 'विमलाय

१ उत्तरचूलिकायां सूत्ररचयितायां । २ गर्मावधानादीनाम् । ३ कथये । ४ त्रियावत्तावत्करणार्थम् । ५ अर्थात् । ६ हविर्मध्य । ७ गर्माधातार्थीक्रियारम्भः । ८ छत्रचक्रादीनाम् । ९ भूमिगन्धायार्थं भूमि शीलगन्धमप्येव । १० अत्रगन्धप्रदानम् ।

कुर्यादक्षतपूजायाम् अक्षताय नम पदम् । (अक्षताय नम)
 धूपार्थं धृतधूपाय नम पदमुदाहरेत् ॥८॥ (धृतधूपाय नम)
 ज्ञानोद्योताय पूर्वं च दीपदानं नम पदम् । (ज्ञानोद्योताय नम)
 मन्त्र परमसिद्धाय नम इत्यागतोद्धृती ॥९॥ (परमसिद्धाय नम)
 मन्त्रैरभिस्तु सत्सृष्ट्य धयावज्जयतीतलम् । ततोऽङ्क्^१ पीठिकामन्त्र पठनीयो द्विजोत्तमं ॥१०॥
 पीठिकामन्त्र —

सत्यजातपद पूर्वं चतुर्थ्यन्त नम परम् । 'ततोऽर्हंज्जातशब्दश्च तदन्तस्तत्परो' मत ॥११॥
 तत परमजाताय नम इत्यपर पदम् । ततोऽनुपमजाताय नम इत्युत्तर पदम् ॥१२॥
 ततश्च स्वप्रधानाय नम इत्युत्तरो ष्वनि^२ । अक्षताय नम शब्दाद् अक्षयाय नम परम् ॥१३॥
 अव्यावाघपद चान्यद् अनन्तज्ञानशब्दनम् । अनन्तदर्शनानन्तवीर्यशब्दो तत पृथक् ॥१४॥
 अनन्तसुखशब्दश्च नीरज शब्द एव च । निर्मलाच्छेद्यशब्दो च तथाऽभेदाजरश्रुती ॥१५॥

नम (कर्ममलसे रहित जिनेन्द्रभगवान्को लिये नमस्कार हो) ॥७॥ अक्षतसे पूजा करनेके लिये 'अक्षताय नम' (अक्षरहित जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले और धूपसे पूजा करते समय 'धृतधूपाय नम' (प्रसिद्ध वासनावाले भगवान्को नमस्कार हो) इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥८॥ दीप चढाते समय 'ज्ञानोद्योताय नम' (ज्ञानरूप उद्योत-प्रकाश) को धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र पढे और अमृत अर्थात् नैवेद्य चढाते समय 'परमसिद्धाय नम' (उत्कृष्ट सिद्धभगवान्को नमस्कार हो) ऐसा मन्त्र बोले ॥९॥ इस प्रकार इन मन्त्रोसे विधिपूर्वक भूमिका सस्कार कर उसके बाद उन उत्तम द्विजोको पीठिका मन्त्र पढना चाहिये ॥१०॥ पीठिका मन्त्र इस प्रकार है-सबसे पहले, जिसके आगे 'नम' शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति अन्तमें है ऐसे सत्यजात शब्दका उच्चारण करना चाहिये अर्थात् 'सत्यजाताय नम' (सत्यरूप जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) बोलना चाहिये, उसके बाद चतुर्थ्यन्त अर्हंज्जात शब्दके आगे 'नम' पद लगा कर 'अर्हंज्जाताय नम' (प्रशसनीय जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले ॥११॥ तदनन्तर 'परमजाताय नम' (उत्कृष्ट जन्मग्रहण करनेवाले अर्हन्तदेवको नमस्कार हो) बोलना चाहिये और उसके बाद 'अनुपमजाताय नम' (उपमारहित जन्म धारण करनेवाले जिनेन्द्रको नमस्कार हो) यह मन्त्र पढना चाहिये ॥१२॥ इसके बाद 'स्वप्रधानाय नम' (अपने आप ही प्रधान अवस्थाको प्राप्त होनेवाले जिनराजको नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले और उसके पश्चात् 'अक्षताय नम' (स्वरूपमें निश्चल रहनेवाले वीतराग को नमस्कार हो) तथा 'अक्षयाय नम' (कभी नष्ट न होनेवाले भगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र पढना चाहिये ॥१३॥ इसी प्रकार 'अव्यावाघाय नम' (वाघाजोसे रहित परमेश्वर को नमस्कार हो), 'अनन्तज्ञानाय नम' (अनन्त ज्ञानको धारण करनेवाले जिनराजको नमस्कार हो), 'अनन्तदर्शनाय नम' (अनन्तदर्शन-केवल दर्शनको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो), 'अनन्तवीर्याय नम' (अनन्त बलके धारक अर्हन्तदेवको नमस्कार हो), 'अनन्तसुखाय नम' (अनन्तसुखके भाण्डार जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो), 'नीरजसे

स्ततोऽपराप्रमेयोक्तो^१ सागर्भवासशब्दने^२ । ततोऽशोभ्याविलीनोक्तो परमादिपंनध्वनि^३ ॥१६॥
 पृथक्पृथगिने^४ शब्दास्तदन्नास्तत्परा^५ मता । उत्तराण्यनुसन्धाय पदान्येभिः पदंयेदेत् ॥१७॥
 प्रादो परमकाष्ठेति योगरूपायवाक्परम् । नम शब्दमुदीर्यान्ते मन्त्रविन्मन्त्रमुद्धरेत् ॥१८॥
 लोनाप्रवासिनेशब्दात्पर^६ कायो नमो नम । एव परमसिद्धेभ्योऽर्हत्सिद्धेभ्य इत्यपि ॥१९॥
 एव केवलिसिद्धेभ्य पदाद् भूयोऽन्तकृत्पदात् । सिद्धेभ्य इत्यमुष्माच्च परम्परपदादपि^७ ॥२०॥
 अनादिपदपूर्वाच्च तस्मादेव^८ पदात्परम् । अनाद्यनुष्मादिभ्य सिद्धेभ्यदच नमो नम ॥२१॥

नम' (कर्मरूपी धूलिसे रहित जिनराजको नमस्कार हो), 'निर्मलाय नम' (कर्मरूप मलमे रहित जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) 'अच्छेद्याय नम' (जिनका कोई छेदन नहीं कर सके ऐसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो), 'अभेद्याय नम' (जो किसी तरह भिद नहीं सके ऐसे अरहन्त को नमस्कार हो), 'अजराय नम' (जो बुढ़ापासे रहित है उसे नमस्कार हो), 'अमराय नम' (जो मरणसे रहित है उसे नमस्कार हो), 'अप्रमेयाय नम' (जो प्रमाणमे रहित है—छषस्य पुरुषके ज्ञानमे अगम्य है, उसे नमस्कार हो) 'अगर्भवासाय नम' (जो जन्म-मरणसे रहित होनेके कारण किसीके गर्भमें निवास नहीं करते ऐसे जिनराजको नमस्कार हो), 'अशोभ्याय नम' (जिन्हें कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकता ऐसे भगवान्को नमस्कार हो), 'अविलीनाय नम' (जो कभी विलीन—नष्ट नहीं होते उन परमात्माको नमस्कार हो) और 'परमघनाय नमः' (जो उत्कृष्ट घनरूप है—उन्हें नमस्कार हो) इन अव्यावाच आदि शब्दोंके आगे चतुर्थी-विभक्ति तथा नम शब्द लगाकर ऊपर लिखे अनुसार अव्यावाधाय नम आदि मन्त्र पदोंका उच्चारण करना चाहिये ॥१४-१७॥ तदनन्तर मन्त्रको जाननेवाला द्विज जिसके आदिमें 'परमकाष्ठ' है और अन्तमें योगरूपाय है ऐसे शब्दका उच्चारण कर उसके आगे 'नम' पद लगाता हुआ 'परमकाष्ठयोगाय नम' (जिनका योग उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त हो रहा है ऐसे जिनेन्द्रको नमस्कार हो) इस मन्त्रका उद्धार करे ॥१८॥ फिर लोकाप्रवासिने शब्दके आगे 'नमो नम' लगाना चाहिये इसी प्रकार परम सिद्धेभ्य और अर्हत्सिद्धेभ्य शब्दोंके आगे भी नमो नम शब्दका प्रयोग करना चाहिये अर्थात् क्रममें 'लोकाप्रवासिने नमो नम' (लोकके अप्रभ्राण पर निवास करनेवाले सिद्ध परमेष्ठीको बार बार नमस्कार हो), 'परमसिद्धेभ्यो नमो नम' (परम सिद्धभगवान्को बार बार नमस्कार हो) और 'अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नम' (जिन्होंने अरहन्त अवस्थाके बाद सिद्ध अवस्था प्राप्त की है ऐसे सिद्ध महाराजको बार बार नमस्कार हो) इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये ॥१९॥ इसी प्रकार 'केवलिसिद्धेभ्यो नमो नम' (केवली सिद्धोंको नमस्कार हो), 'अन्तवृत्तिसिद्धेभ्यो नमो नम' (अन्तवृत्त केवली होकर सिद्ध होनेवालोंको नमस्कार हो), 'परम्परसिद्धेभ्यो नम' (परम्परसे हुए सिद्धोंको नमस्कार हो) 'अनादिपरम्परसिद्धेभ्यो नम' (अनादि वालमे हुए परम सिद्धोंको नमस्कार हो) और 'अनाद्यनुष्मसिद्धेभ्यो नमो नम' (अनादिवालसे हुए अरमारहित सिद्धोंको नमस्कार हो), इन मन्त्र पदोंका उच्चारण बार नीचे लिखे पद पढ़ना चाहिये । इन नीचे लिखे शब्दोंको सम्बोधनरूपसे दो दो बार योचना चाहिये । प्रथम ही हे मम्यदृष्टे हे मम्यदृष्टे, हे आमप्रभन्म

१ अमराप्रमेयान्ती । २ सागर्भवासशब्दगहित । ३ परमपनशब्द । ४ अव्यावाचपदमित्या
 दय । ५ चतुर्थ्यात् । ६ नम-गम्यात् । ७ परमरूपस्यात् । ८ सिद्धेभ्य इति पदान् ।

इति भग्नपदान्युक्त्वा पदानोमान्यत पठेत् । द्विदशत्वाऽऽमन्त्र्य' दशतव्य सम्यग्दृष्टिपद तत् ॥२२॥
 आसन्नभक्ष्यशब्दश्च द्विर्वाच्यस्तद्वदेव' हि । निर्वाणादिदच पूजाहं स्वाहातोऽग्नीन्द्र इत्यपि ॥२३॥
 काम्यमन्त्र —

तत् स्वकाम्यसिद्ध्यर्थमिदं' पदमूढाहरेत् । सेवाफल पदपरमस्थान भवतु तत्परम् ॥२४॥

अपमृत्युविनाशन भवत्वन्तं' पद भवेत् । भवत्वन्तमतो वाच्य समाधिपरणाशरम् ॥२५॥

चूर्णि — 'सत्यजाताय नम, अहंज्जाताय नम, परमजाताय नम, अनुपमजाताय नम, स्वप्रधानाय नम, अचलाय नम, अक्षयाय नम, अव्यावाधाय नम, अनन्तज्ञानाय नम, अनन्तदर्शनाय नम, अनन्तवीर्याय नम, अनन्तसुखाय नम, नीरजसे नम, निर्मलाय नम, अच्छेद्याय नम, अभेद्याय नम, अजराय नम, अमराय नम, अप्रमेयाय नम, अगर्भवासाय नम, अक्षोभ्याय नम, अविहीनाय नम, परमघनाय नम, परमकाष्ठायोगरूपाय नम, लोकाप्रवासिने नमो नम, परमसिद्धेभ्यो नमो नम, अहंत्सिद्धेभ्यो नमो नम, केवलिसिद्धेभ्यो नमो नम, अन्तःकृतसिद्धेभ्यो नमो नम, परम्परसिद्धेभ्यो नम, अनादिपरम्परसिद्धेभ्यो नमो नम, अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नम, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभक्ष्य आसन्नभक्ष्य निर्वाण-पूजाहं निर्वाणपूजाहं अग्नीन्द्र स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिपरण भवतु ।

पीठिकामन्त्र एव स्यात् पदरेभि सन्चिह्नं । जातिमन्त्रमिती वक्ष्ये यथाश्रुतमनुमानम् ॥२६॥
 सत्यजन्मपद तान्तमादौ' शरणमप्यत । प्रपद्यामीति व्याच्य स्यादहंज्जन्मपद तथा ॥२७॥

हे आसन्नभक्ष्य, हे निर्वाणपूजाहं हे निर्वाणपूजाहं, और फिर अग्नीन्द्र स्वाहा इम प्रकार उच्चारण करना चाहिये (इन सबका अर्थ यह है कि हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटभक्ष्य, हे निर्वाण कल्याणकी पूजा करने योग्य, अग्निपुनार देवोके इन्द्र, तेरे लिये यह हवि सम-पित करता हू) ॥२०-२३॥ (अब इसके आगे काम्य मन्त्र लिखते हैं) । तदनन्तर अपनी इष्टसिद्धिके लिये नीचे लिखे पदका उच्चारण करना चाहिये 'सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिपरण भवतु' अर्थात् मुझे सेवाके फलस्वरूप छह परम स्थानोंकी प्राप्ति हो, अपमृत्युका नाश हो और समाधिपरण प्राप्त हो ॥२४-२५॥ ऊपर कहे हुए सत्र मन्त्रोका संग्रह इस प्रकार है—

सत्यजाताय नम, अहंज्जाताय नम, परमजाताय नम, अनुपमजाताय नम, स्व-प्रधानाय नम, अचलाय नम, अक्षयाय नम, अव्यावाधाय नम, अनन्तज्ञानाय नम, अनन्त-दर्शनाय नम, अनन्तवीर्याय नम, अनन्तसुखाय नम, नीरजसे नम, निर्मलाय नम, अच्छेद्याय नम, अभेद्याय नम, अजराय नम, अमराय नम, अप्रमेयाय नम, अगर्भवासाय नम, अक्षो-भ्याय नम, अविहीनाय नम, परमघनाय नम, परमकाष्ठायोगरूपाय नम, लोकाप्रवासिने नमो नम, परमसिद्धेभ्यो नमो नम, अहंत्सिद्धेभ्यो नमो नम, केवलिसिद्धेभ्यो नमो नम, अन्तः-कृतसिद्धेभ्यो नमो नम, परम्परसिद्धेभ्यो नमो नम, अनादिपरम्परसिद्धेभ्यो नमो नम, अनाद्यनु-पमसिद्धेभ्यो नमो नम, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभक्ष्य आसन्नभक्ष्य निर्वाणपूजाहं निर्वाणपूजाहं अग्नीन्द्र स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्यु विनाशन भवतु, समाधिपरण भवतु ।

इस प्रकार इन समस्त पदोंके द्वारा यह पीठिका मन्त्र कहा, अब इसके आगे शास्त्रोके अनुसार अनुनमसे जातिमन्त्र कहते हैं ॥२६॥ तान्त अर्थात् पठ्ठीविभक्त्यन्त सत्यजन्म पदके आगे शरण और उसके आगे प्रपद्यामि शब्द कहना अर्थात् 'सत्यजन्मन शरण प्रपद्यामि' (मे

१ सम्बोधन कृत्वा । २ आमन्त्रण इत्येवार्थं । ३ जमीन्म । ४ तस्यानुपरि । ५ मवतुगदान्ते यस्य तत् । ६ पठेन द०, त०, अ०, प०, स०, इ० । ७ समाधिपरणपदम् । ८ आपमानागिषमण । ९ नानामिति पाठ, नकार अन्ते यम्य तन् ।

अहंन्मातृपद 'तद्वत्स्वन्तमहंत्सुताक्षरम् । अनादिगमनस्येति तथाऽनुपमजन्मन ॥२८॥

रत्नत्रयस्य शरण प्रपद्यामीत्यत परम् । धोद्ध्यन्त^१ च तत सम्यग्दृष्टि^२ द्वित्वेन^३ योजयेत् ॥२९॥

ज्ञानमूर्तिपद तद्वत्सरस्वतिपद तथा । स्वाहान्तमन्ते यत्तस्य काम्यमन्त्रश्च^४ पूर्वयत् ॥३०॥

धूर्णि-सत्यजन्मन शरण प्रपद्यामि, अहंज्जन्मन शरण प्रपद्यामि, अहंन्मातु शरण प्रपद्यामि, अहंत्सुतस्य शरण प्रपद्यामि, अनादिगमनस्य शरण प्रपद्यामि, अनुपमजन्मन शरण प्रपद्यामि, रत्नत्रयस्य शरण प्रपद्यामि, हे सम्यग्दृष्टे हे सम्यग्दृष्टे, हे ज्ञानमूर्ते, ज्ञानमूर्ते, हे सरस्वति, हे सरस्वति स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु ।

जातिमन्त्रोऽयमाप्नातो^५ जातिसस्कारकारणम् । मन्त्र निस्तारकादि च ययाप्नापमितो ब्रुवे ॥३१॥

निस्तारकमन्त्र —

स्वाहान्त सत्यजाताय पदमावावनुस्मृतम् । तदन्तमहंज्जातायपद स्यात्तदनन्तरम् ॥३२॥

तत पदक्रमणे स्वाहा पदमुच्चारयेत् द्विज । स्याद्ग्रामयतये स्वाहा पद तस्मादनन्तरम् ॥३३॥

अनादिश्रोत्रियायेति ब्रूयात् स्वाहापद तत । तद्वच्च स्नातकायेति श्रावकायेति च द्वयम् ॥३४॥

सत्यरूप जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवका शरण लेता हूँ), इस प्रकार कहना चाहिये । इसके बाद 'अहंज्जन्मन शरण प्रपद्यामि' (मैं अरहन्त पदके योग्य जन्म धारण करनेवाले का शरण लेता हूँ) 'अहंन्मातु शरण प्रपद्यामि' (अहंन्तदेवकी माताका शरण लेता हूँ), 'अहंत्सुतस्य शरण प्रपद्यामि' (अरहन्तदेवके पुत्रका शरण लेता हूँ), 'अनादिगमनस्य शरण प्रपद्यामि' (अनादि ज्ञानको धारण करनेवालेका शरण लेता हूँ), 'अनुपमजन्मन शरण प्रपद्यामि' (उपमारहित जन्मको धारण करनेवालेका शरण लेता हूँ) और 'रत्नत्रयस्य शरण प्रपद्यामि' (रत्नत्रयका शरण ग्रहण करता हूँ) ये मन्त्र बोलना चाहिये । तदनन्तर सम्बोधन विभक्त्यन्त सम्यग्दृष्टि, ज्ञानमूर्ति और सरस्वती पदका दो दो बार उच्चारणकर अन्तमें स्वाहा शब्द बोलना चाहिये अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, ज्ञानमूर्ते, ज्ञानमूर्ते, सरस्वति सरस्वति, स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टे हे सम्यग्दृष्टे, हे ज्ञानमूर्ते हे ज्ञानमूर्ते, हे सरस्वति, हे सरस्वति, मैं तेरे लिये हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र कहना चाहिये और फिर काम्य मन्त्र पहलेके समान ही पढ़ना चाहिये ॥२७-३०॥ ऊपर कहे हुए पीठिका मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है—

'सत्यजन्मन शरण प्रपद्यामि, अहंज्जन्मन शरण प्रपद्यामि, अहंन्मातु शरण प्रपद्यामि, अहंत्सुतस्य शरण प्रपद्यामि, अनादिगमनस्य शरण प्रपद्यामि, अनुपमजन्मन शरण प्रपद्यामि, रत्नत्रयस्य शरण प्रपद्यामि, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते, सरस्वति सरस्वति स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।'

ये मन्त्र जातिसस्कारका धारण होनेसे जाति मन्त्र कहलाते हैं अब इसके आगे निस्तारक मन्त्र कहते हैं ॥३१॥ सबसे पहले 'सत्यजाताय स्वाहा' (सत्यरूप जन्मको धारण करनेवालेके लिये मैं हवि समर्पण करता हूँ) इस मन्त्रका स्मरण किया गया है फिर 'अहंज्जाताय स्वाहा' (अरहन्तजन्मको धारण करनेवालेके लिये मैं हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिये और इसके बाद पदक्रमणे स्वाहा (देवपूजा आदि छह कर्म करनेवालेके लिये हवि समर्पण करता हूँ), इस मन्त्रका द्विजको उच्चारण करना चाहिये । फिर 'ग्रामयतये स्वाहा' (ग्रामयतिके लिये समर्पण करता हूँ), यह मन्त्र बोलना चाहिये ॥३२-३३॥ फिर

१ मु दास्य अने दास्य तत् । २ सम्यग्दृष्टपदम् । ३ सम्यग्दृष्टिपदम् । ४ द्वि इत्या योक्-
येत्यपे । ५ पदपरमस्थानेत्यादि । ६ श्रावक । ७ स्वाहान्तम् ।

स्वाह्येवब्राह्मणार्पेति स्वाहेत्यन्तमत पदम् । सुब्राह्मणाय स्वाहान्त स्वाहान्ताऽनुपमाय गो ॥३५॥
सम्यग्दृष्टिपद चैव तथा निधिपतिश्रुतिम् । ब्रूयाद् वैश्रवणोक्ति च द्वि स्वाहेति तत परम् ॥३६॥
काम्यमन्त्रमतो ब्रूयात् पूर्ववन्मन्त्रविद् द्विज । ऋषिमन्त्रमितो वदये यथाऽऽहोपासकश्रुति ॥३७॥

चूणि—सत्यजाताय स्वाहा, अर्हज्जाताय स्वाहा, पदकर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-
श्रोत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय स्वाहा, अनुपमाय
स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु,
अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

ऋषिमन्त्र —

प्रथम सत्यजाताय नम पदमदीरयेत् । गृह्णीयादर्हज्जाताय नम शब्द तत परम् ॥३८॥

निर्ग्रन्थाय नमो वीतरागाय नम इत्यपि । महाव्रताय पूर्वं च नम पदमनन्तरम् ॥३९॥

त्रिगुलाय नमो महायोगाय नम इत्यत । ततो विविधयोगाय नम इत्यनुपठ्यताम् ॥४०॥

विधिषड्विधं चास्मात्प्रम शब्देन धोजितम् । ततोऽऽगधरपूर्वञ्च पठेत् पूर्वपरध्वनिम् ॥४१॥

‘अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा’ (अनादिकालीन श्रुतके अध्येताको समर्पण करता हू), यह मन्त्र-
पद बोलना चाहिये तदनन्तर इसी प्रकार ‘स्नातकाय स्वाहा’ और ‘श्रावकाय स्वाहा’ ये दो
मन्त्र पठना चाहिये (केवली अरहन्त और श्रावकके लिये समर्पण करता हू) ॥३४॥ इसके
बाद ‘देवब्राह्मणाय स्वाहा’ (देवब्राह्मणके लिये समर्पण करता हू), ‘सुब्राह्मणाय स्वाहा’
(सुब्राह्मणके लिये समर्पण करता हू), और ‘अनुपमाय स्वाहा’ (उपमारहित भगवान्के
लिये हवि समर्पित करता हू), ये शब्द बोलना चाहिये ॥३५॥ तदनन्तर सम्यग्दृष्टि, निधि-
पति और वैश्रवण शब्दको दो दो बार कहकर अन्तमें स्वाहा शब्दका प्रयोग करना चाहिये
अर्थात् ‘सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते, वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा’ (हे सम्यग्दृष्टि
हे निधियोके अधिपति, हे कुबेर, मैं तुम्हें हवि समर्पित करता हू) यह मन्त्र बोलना चाहिये ॥३६॥
इसके बाद मन्त्रोंको जाननेवाला द्विज पहलेके समान काम्यमन्त्र बोले । अब इसके आगे
उपासकाध्ययन-शास्त्रके अनुसार ऋषिमन्त्र कहता हू ॥३७॥ जातिमन्त्रोका संग्रह इस
प्रकार है—

‘सत्यजाताय स्वाहा, अर्हज्जाताय स्वाहा, पदकर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-
श्रोत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय
स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा,
सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

ऋषिमन्त्र—प्रथम ही ‘सत्यजाताय नम’ (सत्यजन्मको धारण करनेवालेको नमस्कार
हो) यह पद बोलना चाहिये और उसके बाद ‘अर्हज्जाताय नम’ (अरहन्त रूप जन्मको धारण
करनेवालेके लिये नमस्कार हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिये ॥३८॥ तदनन्तर
‘निर्ग्रन्थाय नम’ (परिग्रहरहितके लिये नमस्कार हो), ‘वीतरागाय नम’ (रागद्वेषरहित जिनेन्द्र
देवको नमस्कार हो), ‘महाव्रताय नम’ (महाव्रत धारण करनेवालोके लिये नमस्कार हो),
‘त्रिगुलाय नम’ (तीनों गुणधियोको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार हो), ‘महायोगाय नम’
(महायोगको धारण करनेवाले ध्यानियोको नमस्कार हो) और ‘विविधयोगाय नम’ (अनेक
प्रकारके योगोंको धारण करनेवालोके लिये नमस्कार हो) ये मन्त्र पठना चाहिये ॥३९—४०॥
फिर नम शब्दके साथ चतुर्थी विभक्त्यन्त विविधद्वि शब्दका पाठ करना चाहिये अर्थात् ‘विवि-

नम शम्परी चेतो चतुर्थ्यन्त्यावतुस्मृतौ । ततो गणधरायेति पद युक्ततम पदम् ॥४२॥
 परमपिभ्य इत्यस्मात्पर बाध्य नमो नम । ततोऽनुपमजाताय नमो नम इतीरयेत् ॥४३॥
 सम्ब्यद्दृष्टिपद चान्ते बोध्यन् द्विष्टदाहरेत् । ततो भूपतिशब्दश्च नगरोपपद पति ॥४४॥
 द्विर्वाच्यौ ताविमौ शब्दौ बोध्यन्त्रौ मन्त्रवेदिभिः । मन्त्रशेषोऽप्यय तस्मादनन्तरमुदीर्यताम् ॥४५॥
 कालश्रमगशब्द च द्विष्टत्वाऽऽमन्त्रणे तत । स्वाहेति पदमुच्यवायं प्राक्त्वाभ्यानि चोद्धरेत् ॥४६॥

चौर्ण-तत्पजाताय नम, अहंज्जाताय नम, निग्रन्थाय नम, धीतरागाय नम, महावताय नम,
 त्रिगुप्ताय नम, महायोगाय नम, विविधयोगाय नम, विविधधर्मे नम, अङ्गधराय नम, पूर्वधराय नम,
 गङ्गधराय नम, परमपिभ्यो नमो नम, अनुपमजाताय नमो नम, सम्ब्यद्दृष्टे सम्ब्यद्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते
 कालश्रमग कालश्रमग स्वाहा, सेत्राफल पट्टपरमस्थान भवतु, प्रपमृत्युयिताशनं भवतु, समाधिभरण भवतु ।

मुनिमन्त्रोऽप्यगाम्नातो मुनिभिस्तत्त्वर्षाशभिः । वक्ष्ये सुरेन्द्रमन्त्रं च यथा 'स्माहार्यंभी' धृति ॥४७॥
 प्रथमं तायजानाय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् । तत स्यादहंज्जाताय स्वाहेत्येतत्पर पदम् ॥४८॥

षट्ठये नम' (अनेक ऋद्धिप्रोक्तो धारण करनेवालेके लिये नमस्कार हो) ऐसा उच्चारण
 करना चाहिये । इसी प्रकार जिनके आगे नम शब्द लगा हुआ है ऐसे चतुर्थ्यन्त अङ्गधर और
 पूर्वधर शब्दोंका पाठ करना चाहिये अर्थात् 'अङ्गधराय नम' (अङ्गोके जाननेवालेको नमस्कार
 हो) और 'पूर्वधराय नम' (पूर्वोके जाननेवालेको नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिये ।
 तदनन्तर 'गणधराय नम' (गणधरको नमस्कार हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिये
 ॥४१-४२॥ फिर परमपिभ्य शब्दके आगे नमो नम का उच्चारण करना चाहिये अर्थात्
 'परमपिभ्यो नमो नम' (परम ऋषियोंको वार वार नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिये
 और इसके बाद 'अनुपमजाताय नमो नम' (उपमारहित जन्मधारण करनेवालेको वार वार
 नमस्कार हो) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥४३॥ फिर अन्तमें सम्बोधन विभक्त्यन्त
 सम्ब्यद्दृष्टि पदका दो वार उच्चारण करना चाहिये और इसी प्रकार मन्त्रोंको जाननेवाले द्विजों
 को सम्बोधनान्न भूपति और नगरपति शब्दका भी दो दो वार उच्चारण करना चाहिये ।
 तदनन्तर जागे वहाँ जानेवाला मन्त्रका अवशिष्ट अक्ष भी बोलना चाहिये । कालश्रमग
 मन्त्रोंको सम्बोधन विभक्तिम दो वार कहार उसके आगे स्वाहा शब्दका उच्चारण करना
 चाहिये और फिर यह सब पढ़ चुकनेके बाद पढ़ेके समान वाम्यमन्त्र पढ़ना चाहिये ॥४४-४६॥
 इन सब ऋषिमन्त्रोंका मग्न इम प्रकार है-

तत्र च दिव्यजाताय स्वाहा प्रेवमुदाहरेत् । ततो दिव्यार्च्यजाताय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् ॥४८॥

ब्रूयाच्च नेमिनायाय स्वाहेत्येतदनंतरम् । नौषर्माय पद चास्मात्स्वाहाहोक्त्वा यन्मनुस्मरेत् ॥५०॥

यत्राधिपतये स्वाहापदं वाच्यमनंतरम् । नृयोग्यनुचरायादि स्वाहागण्यनुदीरयेत् ॥५१॥

एतन्परम्परेन्द्राय स्वाहापुञ्चारयेत्पदम् । सम्पदेदहमिन्द्राय स्वाहेत्येतदनन्तरम् ॥५२॥

तन्परमाहंताय स्वाहेत्येतत् पद पठेत् । तत्राप्यनुपमायैतत् पद स्वाहापदादितम् ॥५३॥

सम्यग्दृष्टिपदं चास्माद् धोष्यन्न द्विरुदीरयेत् । तथा कल्पपतिं चापि दिव्यमूर्तिं च सम्पठेत् ॥५४॥

द्विर्वाच्यं वज्रनामैति तत्र स्वाहेतिं सहरत् । पूर्ववन् काम्यमन्त्रोऽपि पाठघोऽप्यान्ते त्रिभिः पदैः ॥५५॥

चूर्ति-सम्यग्जाताय स्वाहा, अहंजनाय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनायाय स्वाहा, नौषर्माय स्वाहा, कल्प्याधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफलं पदपरमम्यानं भवतु, अयमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिं मरणं भवतु ।

समर्पणं कर्त्ता ह्ये) यह उच्छृष्ट पद पठना चाहिये ॥६८॥ फिर 'दिव्यजाताय स्वाहा' (निम्नजात जन्म दिग्गम्य है उसे हवि समर्पण कर्त्ता हूँ) ऐसा उच्चारण कर्त्ना चाहिये और फिर 'दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा' (दिव्य तैवस्वरूप जन्म प्राग्ग कर्त्तव्याङ्के गिये हवि समर्पण कर्त्ता हूँ) यह पद पठना चाहिये ॥४९॥ तदनन्तर 'नेमिनायाय स्वाहा' (धर्मचन्द्रकी धृष्टीके स्वामी त्रिनेन्द्रदेवको समर्पण कर्त्ता हूँ) यह पद बोधना चाहिये और उसके बाद 'नौषर्माय स्वाहा' (नौषर्मन्त्रके गिये समर्पण कर्त्ता हूँ) इस मन्त्रका स्मरण कर्त्ना चाहिये ॥५०॥ फिर 'कल्प्याधिपतये स्वाहा' (स्वर्गके अधिपतिके गिये समर्पण कर्त्ता हूँ) यह मन्त्र कहना चाहिये और उसके बाद 'अनुचराय स्वाहा' (इन्द्रके अनुचरोंके गिये समर्पण कर्त्ता हूँ) यह मन्त्र बोधना चाहिये ॥५१॥ फिर 'परम्परेन्द्राय स्वाहा' (परम्परागमे होनेवाले इन्द्रके लिये समर्पण कर्त्ता हूँ) इस पदका उच्चारण करे और उसके अनन्तर 'अहमिन्द्राय स्वाहा' (अहमिन्द्रके लिये समर्पण कर्त्ता हूँ) यह मन्त्र अच्छी तरह पठे ॥५२॥ फिर 'परमाहंताय स्वाहा' (अरुहन्तदेवके परम उच्छृष्ट उपामकर्त्ता समर्पण कर्त्ता हूँ) यह मन्त्र पठना चाहिये और उसके पश्चात् अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहितके गिये समर्पण कर्त्ता हूँ) यह पद बोधना चाहिये ॥५३॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिये तथा सम्बोधनान्त कल्पपति और दिव्यमूर्ति शब्दको भी दो दो बार पठना चाहिये इसी प्रकार सम्बोधनान्त वज्रनामन् शब्द का भी दो बार प्रत्येक स्वाहा शब्दका उच्चारण कर्त्ना चाहिये और अन्तमें तीन तीन पदोंके द्वारा पढ़ेके समान काम्य मन्त्र पठना चाहिये अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिग्गमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे स्वर्गके अधिपति, हे दिव्यमूर्तिको धारण करनेवाले, हे वज्रनाम, मैं तेरे लिये हवि समर्पण कर्त्ता हूँ) यह बोधकर काम्य मन्त्र पठना चाहिये ॥५४-५५॥

ऊपर कहे हुए मूत्रेन्द्र मन्त्रोक्त मन्त्र इस प्रकार हैं-

'सत्यजाताय स्वाहा, अहंजनाय स्वाहा, दिग्गजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनायाय स्वाहा, नौषर्माय स्वाहा, कल्प्याधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिग्गमूर्ते दिग्गमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफलं पदपरमम्यानं भवतु

सुरेन्द्रमन्त्र एव स्यात् सुरेन्द्रस्यानुत्पणम् । मन्त्र परमराजादि वक्ष्यामीतो यथाश्रुतम् ॥५६॥
 प्रागत्र सत्यजाताय स्वाहेत्येतत् पद पठेत् । तत स्यादहंज्जाताय स्वाहेत्येतत्पर पदम् ॥५७॥
 ततश्चानुपमेन्द्राय स्वाहेत्येतत्पद भूतम् । विजयाचर्चादिजाताय पद स्वाहान्तमन्वत् ॥५८॥
 ततोऽपि नेमिनायाय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् । तत परमराजाय स्वाहेत्येतदुदाहरेत् ॥५९॥
 परमाहंताय स्वाहा पदमस्मात्पर पठेत् । स्वाहान्तमनुपायोक्तिरतो वाच्या द्विजन्मभि ॥६०॥
 सम्म्यद्दृष्टिपद चास्माद् बोध्यन्त द्विरुदीरयेत् । उप्रतेज पद चंब दिशाञ्जयपद तथा ॥६१॥
 नैम्यादिविजय चंब कुर्यात् स्वाहापदोत्तरम् । काम्यमन्त्र च त भ्रूयात् प्राग्वदन्ते पदंस्त्रिभि ॥६२॥

शृणु—सत्यजाताय स्वाहा, अहंज्जाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयाचर्चाजाताय स्वाहा, नेमिनायाय स्वाहा, परमराजाय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्म्यद्दृष्टे सम्म्यद्दृष्टे उप्रतेज उप्रतेज दिशाञ्जय दिशाञ्जय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

मन्त्र परमराजादिमंतोऽय परमेष्ठिनाम् । पर मन्त्रमितो वदये ययाऽऽह परमा श्रुति ॥६३॥

अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

यह सुरेन्द्रको मनुष्य करनेवाला सुरेन्द्र मन्त्र कहा । अब आगे शास्त्रोके अनुसार परमराजादि मन्त्र कहते हैं ॥५६॥ इन मन्त्रोमें सर्वप्रथम 'सत्यजाताय स्वाहा' (सत्य जन्म धारण करनेवालेको हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिये, फिर 'अहंज्जाताय स्वाहा' (अरहन्त पदके योग्य जन्म लेनेवालेको समर्पण करता हूँ) यह उत्कृष्ट पद पढ़ना चाहिये ॥५७॥ इसके बाद 'अनुपमेन्द्राय स्वाहा' (उपमारहित इन्द्र अर्थात् चक्रवर्तिके लिये समर्पण करता हूँ) यह पद कहना चाहिये । तदनन्तर 'विजयाचर्चाजाताय स्वाहा' (विजयरूप तथा तेज पूर्ण जन्मको धारण करनेवालेके लिये समर्पण करता हूँ) इस पदका उच्चारण करना चाहिये ॥५८॥ इसके पश्चात् 'नेमिनायाय स्वाहा' (धर्मरूप रयके प्रवर्तकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिये और उसके बाद 'परमजाताय स्वाहा' (उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेको समर्पण करता हूँ) यह पद बोधना चाहिये ॥५९॥ फिर 'परमाहंताय स्वाहा' (उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिये और इसके बाद द्विजोको 'अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहित के लिये समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोधना चाहिये ॥६०॥ तदनन्तर सम्म्योघनान्त सम्म्यद्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिये तथा इसी प्रकार सम्म्योघनान्त उप्रतेज पद, दिशाञ्जय पद और नेमिविजय पदको दो दो बार दो बार अन्तमें स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिये और अन्तमें पदके गमान तीन तीन पदोमें काम्य मन्त्र बोधना चाहिये अर्थात् सम्म्यद्दृष्टे सम्म्यद्दृष्टे उप्रतेज उप्रतेज दिशाञ्जय दिशाञ्जय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा (हे सम्म्यद्दृष्टि, हे प्रवृष्ट प्रतापने पाण्ड, हे दिशाञ्जयो जीतनेवाले, हे नेमिविजय, मैं तुम्हें हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोधना काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिये ॥६१-६२॥

परमराजादि मन्त्रोका मन्त्र इस प्रकार है—

'सत्यजाताय स्वाहा अहंज्जाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयाचर्चाजाय स्वाहा, नेमिनायाय स्वाहा, परमजाताय स्वाहा, परमाहंताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्म्यद्दृष्टे सम्म्यद्दृष्टे, उप्रतेज, उप्रतेज, दिशाञ्जय दिशाञ्जय, नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाफल पद परमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

ये मन्त्र परमराजादि मन्त्र माने गये हैं । अब आगे आगे जिन प्रकार परम काम्य

तत्रादौ सत्यजाताय नमः पदमुदीरयेत् । वाच्यं ततोऽर्हंजाताय नमः इत्युत्तरं पदम् ॥६४॥

ततः परमजाताय नमः पदमुदाहरेत् । परमार्हंतशब्दं च चतुर्थ्यन्तं नमः परम् ॥६५॥

ततः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नमः इत्युभयं वाच्यं पदमध्यात्मदर्शिभिः ॥६६॥

परमादिगुणायैति पदं चान्यत्रमोयुतम् । परमस्थानशब्दश्च चतुर्थ्यन्तो नमोऽङ्गित ॥६७॥

उदाहार्यं क्रमं ज्ञात्वा ततः परमयोगिने । नमः परमभाग्याय नमः इत्युभयं पदम् ॥६८॥

परमार्द्धिपदं चान्यच्चतुर्थ्यन्तं नमः परम् । स्यात्परमप्रसादाय नमः इत्युत्तरं पदम् ॥६९॥

स्यात्परमकाङ्क्षिताय नमः इत्यतः उत्तरम् । स्यात्परमविजयाय नमः इत्युत्तरं वचः ॥७०॥

स्यात्परमविज्ञानाय नमो वाक्यतदनन्तरम् । स्यात्परमदर्शनाय नमः पदमतः परम् ॥७१॥

ततः परमवीर्याय पदं चात्माग्रमः परम् । परमादिसुखायैति पदमस्मान्तरम् ॥७२॥

सर्वज्ञाय नमोवाक्यमर्हते नमः इत्यपि । नमो नमः पदं चात्मात्स्यात्परं परमेष्ठिने ॥७३॥

परमादिपदान्नेत्रं इत्यस्माच्च नमो नमः । सम्यग्दृष्टिपदं चान्ते बोध्यन्तं द्विः प्रयुज्यताम् ॥७४॥

कहा है उसी प्रकार परमेष्ठियोके उत्कृष्ट मन्त्र कहता हूँ ॥६३॥ उन परमेष्ठी मन्त्रोंमें सबसे पहले 'सत्यजाताय नमः' (सत्यरूप जन्म लेनेवालेके लिये नमस्कार हो) यह पद बोलना चाहिये और उसके बाद 'अर्हंजाताय नमः' (अरहन्तके योग्य जन्म लेनेवालेके लिये नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिये ॥६४॥ तदनन्तर 'परमजाताय नमः' (उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेके लिये नमस्कार हो) यह पद कहना चाहिये और इसके बाद चतुर्थी विभक्त्यन्त परमार्हंत शब्दके आगे नमः पद लगाकर 'परमार्हंताय नमः' (उत्कृष्ट जिनधर्मके धारकके लिये नमस्कार हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिये ॥६५॥ तत्पश्चात् अध्यात्म शास्त्रको जाननेवाले द्विजोको 'परमरूपाय नमः' (उत्कृष्ट निर्ग्रन्थरूपको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार हो) और परमतेजसे नमः (उत्तम तेजको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार हो) ये दो मन्त्र बोलना चाहिये ॥६६॥ फिर नमः शब्दके साथ परमगुणाय यह पद अर्थात् परमगुणाय नमः' (उत्कृष्ट गुणवालेके लिये नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिये और उसके अनन्तर नमः शब्दसे सहित चतुर्थी विभक्त्यन्त परमस्थान शब्द अर्थात् परमस्थानाय नमः' (मोक्षरूप उत्तमस्थानवालेके लिये नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिये ॥६७॥ इसके पश्चात् क्रमको जानकर परमयोगिने नमः' (परम योगीके लिये नमस्कार हो) और परमभाग्याय नमः' (उत्कृष्ट भाग्यशालीको नमस्कार हो) ये दोनों पद बोलना चाहिये ॥६८॥ तदनन्तर जिसके आगे नमः शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्तमें है ऐसा परमार्द्धि पद अर्थात् 'परमार्द्धये नमः' (उत्तम ऋद्धियोके धारकके लिये नमस्कार हो) और परमप्रसादाय नमः' (उत्कृष्ट प्रसन्नताको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार हो) ये दो मन्त्र पढ़ना चाहिये ॥६९॥ फिर 'परमकाङ्क्षिताय नमः' (उत्कृष्ट आत्मानन्दकी इच्छा करनेवालेके लिये नमस्कार हो) और परमविजयाय नमः' (कर्मरूप शत्रुओपर उत्कृष्ट विजय पानेवालेके लिये नमस्कार हो) ये दो मन्त्र बोलना चाहिये ॥७०॥ तदनन्तर 'परमविज्ञानाय नमः' (उत्कृष्ट ज्ञानवालेके लिये नमस्कार हो) और उसके बाद 'परमदर्शनाय नमः' (परम दर्शनके धारकके लिये नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिये ॥७१॥ इसके पश्चात् 'परमवीर्याय नमः' (अनन्त प्रलयालीके लिये नमस्कार हो) और फिर 'परमसुखाय नमः' (परम गुणके धारकको नमस्कार हो) ये मन्त्र कहना चाहिये ॥७२॥ इसके अनन्तर सर्वज्ञाय नमः' (समाग्ये समस्त पदार्थोंको जाननेवालेके लिये नमस्कार हो) 'अर्हंते नमः' (अरहन्तके लिये नमस्कार हो), और फिर 'परमेष्ठिने नमो नमः' (परमेष्ठीके लिये बार बार नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिये ॥७३॥ तदनन्तर 'परमनेत्रे नमो नमः' (उत्कृष्ट नेत्रोंके लिये नमस्कार हो) यह मन्त्र

द्विः स्ता^१ त्रिलोकविजयधर्ममूर्त्तिपदे तत । धर्मनेमिपदं ध्याञ्च द्विः स्वाहेति तत परम् ॥७५॥

काम्यमन्त्रमनो ब्रूयात्पूर्ववद्विधिवद्द्विज । काम्यसिद्धिप्रधाना हि सर्वे मन्त्रा स्मृता बुधे ॥७६॥

चूर्ण—सत्यजाताय नमः, अर्हज्जाताय नमः, परमजाताय नमः, परमाहंताय नमः, परमरूपाय नमः, परमतेजसे नमः, परमगुणाय नमः, परमस्थानाय नमः, परमयोगिने नमः, परमभागाय नमः, परमद्वये नमः, परमप्रसादाय नमः, परमकाङ्क्षिताय नमः, परमविजयाय नमः, परमविज्ञानाय नमः, परमदर्शनाय नमः, परमवीर्याय नमः, परमसुखाय नमः, सर्वज्ञाय नमः, अर्हते नमः, परमेष्ठिने नमो नमः, परमनेत्रे नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय धर्ममूर्त्ते धर्ममूर्त्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा, सेवाफल पटपरमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

^१एते तु पीठिकामन्त्रा सप्त शेषा द्विजोत्तम । एतं सिद्धार्चनं कर्मादाया^१नादिक्रियाविधौ ॥७७॥

क्रियामन्त्रास्त एते स्युराधानादिक्रियाविधौ । सूत्रे गणधरोढार्यं याति साधनमन्त्रताम् ॥७८॥

सन्ध्यास्वामिन्त्रये देवपूजने नित्यकर्मणि । भवत्पाहुतिमन्त्राश्च त एते विधिसापिना ॥७९॥

सिद्धार्चासिद्धिषु मन्त्रान् जपेद्व्योत्तर शतम् । गन्धपुष्पाभूतार्घ्यादि^२निवेदनपुर सरम् ॥८०॥

सिद्धविद्यस्ततो मन्त्रैरेभि कर्म समाचरेत् । शुक्लवासा शुचिर्व्रतोपबोध्यप्रमानस ॥८१॥

कहना चाहिये और उसके बाद सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार प्रयोग करना चाहिये ॥७४॥ तथा इसी प्रकार त्रिलोकविजय, धर्ममूर्त्ति और धर्मनेमि शब्दको भी दो दो बार उच्चारण कर अन्तमे स्वाहा पद बोलना चाहिये अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय, धर्ममूर्त्ते धर्ममूर्त्ते, धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे तीनों लोकको विजय करनेवाले, हे धर्ममूर्त्ति और हे धर्मके प्रवर्तक, मैं तेरे लिये हृदि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिये ॥७५॥ तत्परचात् द्विजोको पहलेके समान विधिपूर्वक काम्यमन्त्र पढना चाहिये क्योंकि विद्वान् लोग सब मन्त्रोमे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होना ही मुख्य फल मानते हैं ॥७६॥

परमेष्ठी मन्त्रोका सग्रहू इस प्रकार है—

सत्यजाताय नमः, अर्हज्जाताय नमः, परमजाताय नमः, परमाहंताय नमः, परमरूपाय नमः, परमतेजसे नमः, परमगुणाय नमः, परमस्थानातय नमः, परमयोगिने नमः, परमभागाय नमः, परमद्वये नमः, परमप्रसादाय नमः, परमकाङ्क्षिताय नमः, परमविजयाय नमः, परमविज्ञानाय नमः, परमदर्शनाय नमः, परमवीर्याय नमः, परमसुखाय नमः, सर्वज्ञाय नमः, अर्हते नमः, परमेष्ठिने नमो नमः, परमनेत्रे नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय, धर्ममूर्त्ते धर्ममूर्त्ते, धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा, सेवाफल पटपरमस्थान भवतु, अपमृत्यु विनाशन भवतु, समाधिमरण भवतु ।

ग्राह्यार्थोको ये ऊपर लिखे हुए सात पीठिका मन्त्र जानना चाहिये और गर्भाधानादि त्रियाजोको विधि करनेमें इनसे सिद्धपूजन करना चाहिये ॥७७॥ गर्भाधानादि त्रियाजोकी विधि करनेमें ये मन्त्र त्रियामन्त्र कहलाते हैं और गणधरोके द्वारा कहे हुए सूत्रमें ये ही साधन मन्त्रानेको प्राप्त हो जाते हैं ॥७८॥ विधिपूर्वक सिद्ध विये हुए ये ही मन्त्र सध्याजोके समय तीनों अग्नियोमें देवपूजनरूप नित्य कर्म करते समय आहुति मन्त्र कहलाते हैं ॥७९॥ सिद्ध भगवान्की प्रतिभावे गामने पहले गन्ध, पुष्प, अक्षत और अर्घ आदि समर्पण कर एक सी आठ बार उक्त मन्त्रोका जप करना चाहिये ॥८०॥ तदनन्तर जिसे विचारें सिद्ध हो गई है, जो

त्रयोऽग्नयः प्रणयाः^१ स्युः कर्मरश्मे द्विजोत्तमः । रत्नप्रितयसद्ब्रह्माद्यग्नेन्द्रमुकुटोद्भवः ॥८२॥
 तीर्थकुण्डगणभूच्छे^२ पदेवत्यन्तमहोत्सवे^३ । पूजाद्गतं^४ समासाद्य पवित्रत्वमुपागतः ॥८३॥
 कुण्डत्रये प्रणेतव्यास्त्रय एते महाग्नयः । गार्हपत्याहवनीप्रदक्षिणाग्निसद्वयः ॥८४॥
 अग्निमग्नित्रयं पूजां मन्त्रं कुर्यन् द्विजोत्तमः । आहिताग्निरिति श्रेयो नित्येऽप्या यत्र सद्यनि ॥८५॥
 'हविष्पाके च धूपे च दीपोद्बोधनसंविद्यौ । बह्वीनां^५ विनियोगः स्यात् शमीयां नित्यपूजने ॥८६॥
 प्रयत्नेनाभिरुच्यं स्याद् इदमग्नित्रयं गृहे । नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेऽप्ये ये स्फुरसंसृताः' ॥८७॥
 न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा । किन्त्वर्हद्विष्यमूर्ताग्न्यासम्बन्धात् पावनोऽग्नतः ॥८८॥
 ततः पूजाङ्गतामस्य मत्वाचंन्ति द्विजोत्तमाः । निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजाऽतो^६ न दुष्यति ॥८९॥
 व्यवहारनयापेक्षा तस्येष्टा पूज्यता द्विजैः । जैनैरभ्यवहार्यो^७ऽप्यं नयोऽष्टत्वेऽप्रजन्मनः^८ ॥९०॥
 साधारणास्त्विने मन्त्राः सर्वत्रैव क्रियाविधौ । यथा सम्भवमुपेये^९ विशेषविषयारच तान् ॥९१॥

सफेद वस्त्र पहने हुए हैं, पवित्र हैं, यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं और जिमका चित्त आकुलतासे रहित है ऐसा द्विज इन मन्त्रोंके द्वारा समस्त क्रियाएँ करे ॥८१॥ क्रियाओंके प्रारम्भमें उत्तम द्विजोंको रत्नत्रयका सकलन कर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे उत्पन्न हुईं तीन प्रकारकी अग्नियाँ प्राप्त करनी चाहिये ॥८२॥ ये तीनों ही अग्नियाँ तीर्थङ्कर, गणधर और सामान्य केवलीके अन्तिम अर्थात् निर्वाणमहोत्सवमें पूजाका अंग होकर अत्यन्त पवित्रताको प्राप्त हुईं मानी जाती हैं ॥८३॥ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामसे प्रसिद्ध इन तीनों महाअग्नियोंको तीन कुण्डोमें स्थापित करना चाहिये ॥८४॥ इन तीनों प्रखरकी अग्नियोंमें मन्त्रोंके द्वारा पूजा करनेवाला पुरुष द्विजोत्तम कहलाता है और जिसके घर इस प्रकारकी पूजा नित्य होती रहती है वह आहिताग्नि अथवा अग्निहोत्री कहलाता है ॥८५॥ नित्य पूजन करते समय इन तीनों प्रकारकी अग्नियोंका विनियोग नैवेद्यके पकानेमें, धूपखेनेमें और दीपक जलानेमें होता है अर्थात् गार्हपत्य अग्निसे नैवेद्य पकाया जाता है, आहवनीय अग्निमें धूप खेई जाती है और दक्षिणाग्निसे दीपक जलाया जाता है ॥८६॥ घरमें बड़े प्रयत्नके साथ इन तीनों अग्नियोंकी रक्षा करनी चाहिये और जिनका कोई संस्कार नहीं हुआ है ऐसे अन्य लोगोंको कभी नहीं देनी चाहिये ॥८७॥ अग्निमें स्वयं पवित्रता नहीं है और न वह देवतारूप ही है किन्तु अरहन्तदेवकी दिव्य मूर्तिकी पूजाके सम्बन्धसे वह अग्नि पवित्र हो जाती है ॥८८॥ इसलिये ही द्विजोत्तम लोग इसे पूजाका अंग मानकर इसकी पूजा करते हैं अतएव निर्वाणक्षेत्रकी पूजाके समान अग्निकी पूजा क्रममें कोई दोष नहीं है । भावार्थ—जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवके सम्बन्धसे क्षेत्र भी पूज्य हो जाते हैं उसी प्रकार उनके सम्बन्धसे अग्नि भी पूज्य हो जाती है अतएव जिस प्रकार निर्वाण आदि क्षेत्रोंकी पूजा करनेमें दोष नहीं है उसी प्रकार अग्निकी पूजा करनेमें भी कोई दोष नहीं है ॥८९॥ ब्राह्मणोंको व्यवहार नयकी अपेक्षा ही अग्निकी पूज्यता इष्ट है इसलिये जैन ब्राह्मणोंको भी आज यह व्यवहारनय उपयोगमें लाना चाहिये ॥९०॥ ये ऊपर कहे हुए मन्त्र साधारण मन्त्र हैं, सभी क्रियाओंमें काम आते हैं अब विशेष क्रियाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष मन्त्रोंको यथासम्भव कहता हूँ ॥९१॥

१ सक्वायां । २ केवली । ३ परिनिर्वाणमहोत्सवे । ४ कारणात्त्वम् । ५ चरपचने ।
 ६ गार्हपत्यादीनाम् अग्नित्रयार्ण । यथासप्येन हविष्पाकादिषु त्रिषु विनियोग स्यात् । ७ गर्भाधान-
 दिसस्माररहिताः । ८ अग्नित्रयपूजा । ९ कारणात् । १० व्यवहर्तुं योग्यम् । ११ विप्रस्य ।—जन्मभि.
 ८०, ८०, ५०, ५०, ४०, ३० । १२ सूट् । वरपे ।

गर्भाधानमन्त्र —

सज्जातिभागी भव सद्गृहिभागी भवेति च । पद्मद्वयमुद्योर्वावो पद्मानीमान्यत पठेत् ॥६२॥

प्राप्तो मुनीन्द्रभागीति भवेत्यन्ते पद्म यदेत् । सुरेन्द्रभागी परमराज्यभागीति च इयम् ॥६३॥

आर्हन्त्यभागी भवेति पदमस्मादन्तरम् । तत परमनिर्वाणभागी भव पद्म भवेत् ॥६४॥

प्राधाने^१ मन्त्र एष स्यात् पूर्वमन्त्रपुर सर^२ । धिनियोगश्च मन्त्राणां यथास्नाय प्रदर्शित ॥६५॥

चूणि—सज्जातिभागी भव, सद्गृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव, (प्राधानमन्त्र)

स्यात्प्रोतिमन्त्रस्त्रैलोक्यनाथो भवपदादिक । त्रैकाल्यज्ञानी भव त्रिरत्नस्वामी भवेत्ययम् ॥६६॥

चूणि—त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैलोक्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव, (प्रोतिमन्त्र) ?

^१मन्त्रोऽवतारकल्याणभागी भवपदादिक । सुप्रोती मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणवाक्पद ॥६७॥

भागीभव पदोपेतस्ततो निष्क्रान्तवाक्पद । कल्याणमध्यमो भागी भवेत्येतेन योजित ॥६८॥

ततश्चार्हन्त्यकल्याणभागी भव पदान्वित । तत परमनिर्वाणकल्याणपदसङ्गत ॥६९॥

गर्भाधानके मन्त्र—प्रथम ही 'सज्जातिभागी भव' (उत्तम जातिको धारण करनेवाला हो) और 'सद्गृहिभागी भव' (उत्तम गृहस्थ अवस्थाको प्राप्त होओ) इन दो पदोंका उच्चारण कर पदवात् नीचे लिखे पद पढ़ना चाहिये ॥९२॥ पहले 'मुनीन्द्रभागी भव' (महामुनिका पद प्राप्त करनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिये और फिर 'सुरेन्द्रभागी भव' (इन्द्र पदका भोक्ता हो) तथा 'परमराज्यभागी भव' (उत्कृष्ट राज्यका उपभोग करनेवाला हो) इन दो पदोंका उच्चारण करना चाहिये ॥९३॥ तदनन्तर 'आर्हन्त्यभागी भव' (अरहन्त पदका प्राप्त करनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिये और फिर 'परमनिर्वाणभागी भव' (परम निर्वाण पदको प्राप्त करनेवाला हो), यह पद कहना चाहिये ॥९४॥ गर्भाधानकी क्रियामें पहलेके मन्त्रोंके साथ साथ यह मन्त्र काममें लाना चाहिये इस प्रकार यह आम्नायके अनुसार मन्त्रोंका विनियोगका क्रम दिखलाया है ॥९५॥

गर्भाधानके समय काम आनेवाले विशेष मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है—

सज्जातिभागी भव, सद्गृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव ।

अब प्रीतिमन्त्र कहते हैं—'त्रैलोक्यनाथो भव' (तीनों लोकोंके अधिपति होओ) 'त्रैकाल्यज्ञानी भव' (तीनों कालका जाननेवाला हो) और 'त्रिरत्नस्वामी भव' (रत्नत्रयका स्वामी हो) ये तीन प्रीतित्रियाके मन्त्र हैं ॥९६॥

संग्रह—'त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैकाल्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव' ।

अब सुप्रोति त्रियाके मन्त्र कहते हैं—सुप्रोति त्रियामें 'अवतारकल्याणभागी भव' (गर्भकल्याणकको प्राप्त करनेवाला हो), 'मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव' (सुमेरु पर्वतपर इन्द्रके द्वारा जन्माभिषेकके कल्याणको प्राप्त हो), 'निष्क्रान्तकल्याणभागी भव' (निष्क्रमण कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो), 'आर्हन्त्यकल्याणभागी भव' (अरहन्त अवस्था—केवलज्ञानकल्याणकको प्राप्त करनेवाला हो), और 'परमनिर्वाणकल्याणभागी भव' (उत्कृष्ट निर्वाण कल्याणकको

१ गर्भाधाने । २ पीठिका मन्त्रपुर सर । ३ अवतारादिकल्याणविपरमनिर्वाणपदान्तात् सर्वपदानाम् । मन्त्र इति पद विशेष्यस्य भवति ।

भागी भवपदान्तश्च श्रमाद्वाच्यो मनीषिणि । धृतिमन्त्रमितो^१ वक्ष्ये प्रीत्या द्रुणुत मो द्विजा ॥१००॥
 चृणि—प्रवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव,
 आर्हन्त्यकल्याणभागी भव, परमनिर्वाणकल्याणभागी भव, (सुप्रीति मन्त्र) ।

धृतिश्रियामन्त्र—

श्राधानमन्त्र एवात्र^१ सर्वद्राहितदानवाक् । मध्ये यवाक्रम वाच्यो नान्यो भेदोऽप्य कश्चन ॥१०१॥

चृणि—सज्जातिदातृभागी भव, सद्गृहिदातृभागी भव, मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव,
 परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यपददातृभागी भव, परमनिर्वाणदातृभागी भव, (धृतिश्रिया मन्त्र) ।

मोदकियामन्त्र—

मन्त्रो मोदकियाया च मतोऽप्य मुनिसत्तमं । पूर्वं सज्जातिककल्याणभागी भव पद वदेत् ॥१०२॥

तत सद्गृहिककल्याणभागी भव पद पठेत् । ततो विवाहकल्याणभागी भव पद मनम् ॥१०३॥

ततो मुनीन्द्रकल्याणभागी भव पद स्मृतम् । पुन सुरेन्द्रकल्याणभागी भव पदात्परम् ॥१०४॥

मन्दराभिषेककल्याणभागीति च भवेति च । तस्माच्च शीवराज्यादिककल्याणपदसप्तमम् ॥१०५॥

प्राप्त करनेवाला हो) ये मन्त्र विद्वानोको अनुक्रमसे शीलना चाहिये । अब आगे धृतिमन्त्र
 कहते हैं सो है द्विजो, उन्हें तुम प्रीतिपूर्वक मुनो ॥१७-१००॥

सग्रह—‘अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्क्रान्ति-
 कल्याणभागी भव, आर्हन्त्यकल्याणभागी भव, परमनिर्वाणकल्याणभागी भव’ ।

धृति श्रियाके मन्त्र—श्राधान श्रियाके मन्त्रोमें मव जगह दातृ शब्द लगा देनेसे धृति
 श्रियाके मन्त्र हो जाते हैं, विद्वानोको अनुक्रमसे उन्हीका प्रयोग करना चाहिये, आवान श्रियाके
 मन्त्रोमें इन मन्त्रोमें और कुछ भेद नहीं है । भावार्थ—‘सज्जातिदातृभागी भव’ (सज्जाति-
 उत्तम जातिको देनेवाला हो), ‘सद्गृहिदातृभागी भव’ (सद्गृहस्थपदका देनेवाला हो),
 ‘मुनीन्द्रदातृभागी भव’ (महामुनिपदका देनेवाला हो), ‘सुरेन्द्रदातृभागी भव’ (सुरेन्द्रपदको
 देनेवाला हो), ‘परमराज्यदातृभागी भव’ (उत्तमराज्य—चक्रवर्तीके पदका देनेवाला हो),
 ‘आर्हन्त्यदातृभागी भव’ (अरहन्त पदका देनेवाला हो) तथा ‘परमनिर्वाणदातृभागी भव’
 (उत्कृष्ट निर्वाण पदका देनेवाला हो) धृति श्रियामें इन मन्त्रोका पाठ करना चाहिये ॥१०१॥

सग्रह—‘सज्जातिदातृभागी भव, सद्गृहिदातृभागी भव, मुनीन्द्रदानुभागी भव, सुरेन्द्र-
 दातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यदातृभागी भव, परमनिर्वाणदानुभागी भव’ ।

अब मोदकियाके मन्त्र कहते हैं—उत्तम मुनियोने मोदकियाके मन्त्र इस प्रकार माने
 हैं सत्रसे पहले ‘सज्जातिककल्याणभागी भव’ (सज्जातिके कल्याणको धारण करनेवाला हो)
 यह पद बोलना चाहिये, फिर सद्गृहिककल्याणभागी भव (उत्तम गृहस्थके कल्याणका धारण
 करनेवाला हो) यह पद पढना चाहिये, तदनन्तर ‘विवाहकल्याणभागी भव’ (विवाहके कल्याण
 को प्राप्त करनेवाला हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिये, फिर ‘मुनीन्द्रकल्याणभागी
 भव’ (महामुनि पदके कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो) यह मन्त्र बोलना चाहिये, इसके बाद
 ‘सुरेन्द्रकल्याणभागी भव’ (इन्द्र पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो), यह पद कहना
 चाहिये, फिर ‘मन्दराभिषेककल्याणभागी भव’ (सुमेह पर्वतपर अभिषेकके कल्याणको प्राप्त
 हो) यह मन्त्र पढना चाहिये, अनन्तर ‘शीवराज्यकल्याणभागी भव’ (शिवराज पदके कल्याण-
 का उपभोग करनेवाला हो) यह पद कहना चाहिये, तत्पश्चात् मन्त्रोके प्रयोग करनेमें विद्वान्
 लोकोको ‘महाराज्यकल्याणभागी भव’ (महाराज पदके कल्याणका उपभोक्ता हो) यह

भागीभवपदं याव्यं मन्त्रयोगविशारदः । स्वान्महाराज्यकल्याणभागी भव पदं परम् ॥१०६॥

भूयः परमराज्यादिकल्याणोपहितं सतम् । भागी भवेत्यथाहृत्यकल्याणेन च योजितम् ॥१०७॥

चूर्णः—सज्जातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव; वैवाहिकल्याणभागी भव, मुनीन्द्र-
कल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव, यौवराज्यकल्याणभागी भव,
महाराज्यकल्याणभागी भव, परमराज्यकल्याणभागी भव, आहृत्यकल्याणभागी भव, (मोदद्विया मन्त्रः) ।

प्रियोद्भवमन्त्रः—

प्रियोद्भवे च मन्त्रोऽयं सिद्धार्चनपुरःसरम् । दिव्यनेमिविजयाय पदात्परमनेमिवाक् ॥१०८॥

विजयायेत्यथाहृत्यनेम्यादिविजयाय च । युक्तो मन्त्राक्षरैरेभिः स्वाहान्तः सम्मतो द्विजैः ॥१०९॥

चूर्णः—दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहृत्यनेमिविजयाय स्वाहा ।

(प्रियोद्भवमन्त्रः) ।

जन्मसंस्कारमन्त्रोऽयम् एतेनाभेकमादितः । सिद्धाभिषेकगन्धाम्बुससिक्त शिरसि स्थितम् ॥११०॥

कृतजातिब्रह्मपगुणैः शीलप्रजान्वयैः । भाग्याधिपवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता ॥१११॥

सम्यग्दृष्टिस्तवाभ्येयमतेस्त्वमपि पुत्रकः । सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि^१ प्राप्य चक्राण्यनुक्रमत् ॥११२॥

इत्यङ्गानि श्शुशोदस्य प्रायः सारूप्ययोगतः^२ । 'तत्रावा'यात्मसङ्कल्पं^३ ततः सूक्तमिदं पठेत् ॥११३॥

मन्त्र बोलना चाहिये, फिर 'परमराज्यकल्याणभागी भव' (परमराज्यके कल्याणको प्राप्त हो) यह पद पढ़ना चाहिये और उसके बाद 'आहृत्यकल्याणभागी भव' (अरहन्त पदके कल्याण-
का उपभोग करनेवाला हो) यह मन्त्र बोलना चाहिये ॥१०३-१०७॥

सग्रह—'सज्जातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव, वैवाहिकल्याणभागी
भव, मुनीन्द्रकल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव,
यौवराज्यकल्याणभागी भव, महाराज्यकल्याणभागी भव, परमराज्यकल्याणभागी भव, आहृ-
त्यकल्याणभागी भव' ।

अब प्रियोद्भव मन्त्र कहते हैं—प्रियोद्भव क्रियामें सिद्ध भगवान्की पूजा करनेके बाद
नीचे लिखे मन्त्रोका पाठ करना चाहिये—

'दिव्यनेमिविजयाय', 'परमनेमिविजयाय', और 'आहृत्यनेमिविजयाय' इन मन्त्र-
क्षरोके साथ द्विजोको अन्नमें स्वाहा शब्दका प्रयोग करना अभीष्ट है अर्थात् 'दिव्यनेमिविजयाय
स्वाहा' (दिव्यनेमिके द्वारा कर्मरूप शत्रुओपर विजय प्राप्त करनेवालेके लिये हृदि समर्पण
करना है), 'परमनेमिविजयाय स्वाहा' (परमनेमिके द्वारा विजय प्राप्त करनेवालेके लिये
समर्पण करता है) और 'आहृत्यनेमिविजयाय स्वाहा' (अरहन्त अवस्थारूप नेमिके द्वारा
कर्म शत्रुओंको जीतनेवाले जितेन्द्रदेवके लिये समर्पण करता है) ये तीन मन्त्र बोलना चाहिये
॥१०८-१०९॥

संग्रह—'दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहृत्यनेमिविजयाय स्वाहा' ।

अब जन्म संस्कारके मन्त्र कहते हैं—प्रथम ही सिद्ध भगवान्को अभिषेकके गन्धोदवसे
मिन्न त्रिये दृग् चालत्रको यह मन्त्र पढ़कर शिरपर स्पर्श करना चाहिये और बहना चाहिये कि
यह नेगी माना कुल, जानि, अवस्था, रूप आदि गुणोंसे रहित है, नीलवती है, सन्तानवती
है, भाग्यश्री है, अनेकधर्म युक्त है, गोम्यदान्मर्माने रहित है और सम्यग्दृष्टि है इसलिये
हे पुत्र, इस मानाके सम्यग्धर्म तू भी अनुग्रहमें दिव्य चक्र, विजयचक्र और परमचक्र तीनों
प्राप्तों पाकर सम्प्रीतिको प्राप्त हो ॥११०-११२॥ इस प्रकार जानीर्वादि देवर पिता

१ मन्त्रम् ।

२ मन्त्राख्यादियथायोग्यगुणैर्गमिष्ठितः । ३ दिव्यवत्रविजयवत्रगमचक्राणि ।

४ उमान्शुशुशोदस्य । ५ यावन्तः । ६ विषयः । ७ निजउद्भवमन्त्रम् ।

श्रद्धाददृगात्सम्भवसि हृदयादपि जायते । आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः^१ शतम् ॥११४॥
 क्षीराज्यममृतं^२ पूतनाभाववर्गं^३ यद्विभक्तिभिः^४ घातिञ्जयो भवेत्यस्य^५ ह्यास्येन्द्राभिनालकम्^६ ॥११५॥
 श्रीदेव्यो जातं^७ ते जातक्रिया कुर्वन्त्विति श्रूयन् । तत्तन् चूर्णवातेन^८ शनैरद्वयं यत्नतः ॥११६॥
 त्व मन्दराभिपेकाहो भवेति स्तूपयेत्ततः । गन्धाम्बुनिश्चिरं जीव्या^९ इत्याशास्याशक्तं क्षिपेत् ॥११७॥
 नश्यात्कर्ममल कृत्स्नमित्यास्ये^{१०} ऽस्य सनासिके । घृतमौषधसंसिद्धमाद्य^{११} पेग्मात्रया^{१२} द्विजः ॥११८॥
 ततो विश्वेश्वरास्तन्यभागी^{१३} भूया इतीरयन्^{१४} । मातुस्तनमुपामन्त्र्य घटनेऽस्य समासजेत्^{१५} ॥११९॥
 प्राग्दर्शितमयानन्दं प्रीतिदानपुरःसरम् । विधाय विधिवत्तस्य जातकर्म समापयेत्^{१६} ॥१२०॥
 जरामुपटलं चास्य नाभिनालसमायुतम् । शुचौ भूमौ निखाताया विक्षिपेन्मन्त्रमापठन् ॥१२१॥
 सम्पद्दृष्टिपद धोष्ये सर्वमातेति चापरम् । वसुन्धरापदं चैव स्वाहान्तं द्विराहरेत् ॥१२२॥
 चूर्ण - सम्पद्दृष्टे सम्पद्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा ।
 मन्त्रेणानेन सम्मन्त्र्य भूमौ तोडकमक्षतम् । क्षिपेत्वा गर्गमलं^{१७} न्यस्तपञ्चरत्नतले क्षिपेत् ॥१२३॥

उसके समस्त अर्गोंका स्पर्श करे और फिर प्राय अपने समान होनेसे उसमें अपना सकल्पकर अर्थात् यह मैं ही हूँ ऐसा आरोपकर नीचे लिखे हुए सुभाषित पडे ॥११३॥ हे पुत्र, तू मेरे अङ्ग अङ्गसे उत्पन्न हुआ है और मेरे हृदयसे भी उत्पन्न हुआ है इसलिये तू पुत्र नामको धारण करनेवाला मेरा आत्मा ही है । तू सैंकडो वर्षों तक जीवित रह ॥११४॥ तदनन्तर दूध और धीरूपी पवित्र अमृत उसकी नाभिपर डालकर 'घातिजयो भव' (तू घातिया कर्मोंको जीतने-वाला हो) यह मन्त्र पढकर युक्तिसे उसकी नाभिका नाल काटना चाहिये ॥११५॥ उत्पश्चात् 'हे जात, श्रीदेव्य ते जातक्रिया' कुर्वन्तु अर्थात् हे पुत्र, श्री, ह्री आदि देवियाँ तेरी जन्मत्रियाका उत्सव करे यह कहते हुए धीरे धीरे यत्नपूर्वक सुगन्धित चूर्णसे उस बालकके शरीरपर उबटन करे फिर 'त्व मन्दराभिपेकाहो भव' अर्थात् तू मेरे पर्वतपर अभिपेक करने योग्य हो यह मन्त्र पढकर सुगन्धित जलसे उम्मे स्नान करावे और फिर 'चिर जीव्या' अर्थात् तू चिरकालतक जीवित रह-इस प्रकार आशीर्वाद देकर उसपर अक्षत डाले ॥११६-११७॥ इसके अनन्तर द्विज, 'नश्यात् कर्ममल कृत्स्नम्'-अर्थात् तेरे समस्त कर्ममलनष्ट हो जावें यह मन्त्र पढ करउसके मुख और नाकमें, औषधि मिलाकर तैयार किया हुआ घी मात्राके अनुसार छोडे ॥११८॥ तत्पश्चात् 'विश्वेश्वरास्तन्यभागी भूया' अर्थात् तू तीर्थ करकी माताके स्तनका पान करने वाला हो ऐसा कहता हुआ माताके स्तनको मन्त्रितकर उसे बालकके मुहमें लगा दे ॥११९॥ तदनन्तर जिस प्रकार पहले वर्णन कर चुके हैं उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक दान देते हुए उत्सव कर विधिपूर्वक जातकर्म अथवा जन्मकालकी श्रिया समाप्त करनी चाहिये ॥१२०॥ उसके जरामु पटलको नाभिकी नालके साथ साथ किसी पवित्र जमीनको खोदकर मन्त्र पढते हुए गाढ देना चाहिये ॥१२१॥ उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि सम्बोधनान्त सम्पद्दृष्टि पद, सर्गगाथा पद और वसुन्धरा पदको दो दो बार कहकर अन्तमें स्वाहा शब्द कहना चाहिये । अर्थात् सम्पद्दृष्टे सम्पद्दृष्टे सर्वमात सर्वमात वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा (सम्पद्दृष्टि, सर्गगी गाथा पृथ्वीमें यह समर्पण करता हूँ) इस मन्त्रसे मन्त्रितकर उस भूमिमें पाठ और प्रक्षाम शब्दोंपर पाँच प्रकारके रत्नोंके नीचे गर्भका वह मल रख देना चाहिये और फिर भगी मन्त्रपुत्र मन्त्र

१ बहुमन्त्रसरमित्यर्थ । २ क्षीराज्यरूपममृतम् । ३ सितला । ४ पूर्णवत्, यः । ५ अतिवत्, यः । ६ बालस्य । ७ हृत्स्य कुर्यात् । ८ द्विधादित्यर्थ । ९ पुत्र । १० आनयति । ११ अतिवत् । १२ अतिवत् । १३ अतिवत् । १४ अतिवत् । १५ अतिवत् । १६ अतिवत् । १७ अतिवत् । १८ अतिवत् । १९ अतिवत् । २० अतिवत् । २१ अतिवत् । २२ अतिवत् । २३ अतिवत् । २४ अतिवत् । २५ अतिवत् । २६ अतिवत् । २७ अतिवत् । २८ अतिवत् । २९ अतिवत् । ३० अतिवत् । ३१ अतिवत् । ३२ अतिवत् । ३३ अतिवत् । ३४ अतिवत् । ३५ अतिवत् । ३६ अतिवत् । ३७ अतिवत् । ३८ अतिवत् । ३९ अतिवत् । ४० अतिवत् । ४१ अतिवत् । ४२ अतिवत् । ४३ अतिवत् । ४४ अतिवत् । ४५ अतिवत् । ४६ अतिवत् । ४७ अतिवत् । ४८ अतिवत् । ४९ अतिवत् । ५० अतिवत् । ५१ अतिवत् । ५२ अतिवत् । ५३ अतिवत् । ५४ अतिवत् । ५५ अतिवत् । ५६ अतिवत् । ५७ अतिवत् । ५८ अतिवत् । ५९ अतिवत् । ६० अतिवत् । ६१ अतिवत् । ६२ अतिवत् । ६३ अतिवत् । ६४ अतिवत् । ६५ अतिवत् । ६६ अतिवत् । ६७ अतिवत् । ६८ अतिवत् । ६९ अतिवत् । ७० अतिवत् । ७१ अतिवत् । ७२ अतिवत् । ७३ अतिवत् । ७४ अतिवत् । ७५ अतिवत् । ७६ अतिवत् । ७७ अतिवत् । ७८ अतिवत् । ७९ अतिवत् । ८० अतिवत् । ८१ अतिवत् । ८२ अतिवत् । ८३ अतिवत् । ८४ अतिवत् । ८५ अतिवत् । ८६ अतिवत् । ८७ अतिवत् । ८८ अतिवत् । ८९ अतिवत् । ९० अतिवत् । ९१ अतिवत् । ९२ अतिवत् । ९३ अतिवत् । ९४ अतिवत् । ९५ अतिवत् । ९६ अतिवत् । ९७ अतिवत् । ९८ अतिवत् । ९९ अतिवत् । १०० अतिवत् ।

स्वत्पुत्रा' इय मत्पुत्रा भूयासुश्चिरजीविन । इत्युदांहृत्य 'सस्याहं तत्क्षेप्तव्य महीतले ॥१२४॥
क्षीरवृक्षोपनालाभि उपहृत्य' च भूतत्तम् । स्नाप्या तत्रास्य-मातासो सुलोचनमन्त्रितंजलं ॥१२५॥
सम्यग्दृष्टिपद बोध्यविषय द्विरक्षीरयेत् । पदमासत्रभयेति तद्वद् विश्वेश्वरेत्यपि ॥१२६॥
तत ऊजितपुण्येति जिनमातृपद तथा । स्वाहान्तो मन्त्र एव स्यान्मातृ स्नानसिद्धिः ॥१२७॥

चूर्ण -सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसत्रभय्ये आसत्रभय्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊजितपुण्ये ऊजितपुण्ये
जिनमातृ जिनमातृ स्वाहा ।

यथा जिनाम्बिका पुत्रकल्याणान्यभिपश्यति । तथेयमपि मत्पत्नीत्यास्ययेय' विधिं भजेत् ॥१२८॥
तृतीयेऽह्नि चानन्तज्ञानदर्शी भवेत्यमम्' । आलोकयेत्समुत्क्षिप्य निशि तारादक्षित नभ ॥१२९॥

पुण्याहघोषणापूर्वं कुर्याद् दान च शकित । यथायोग्य विदध्याच्च सर्वस्याभयघोषणाम् ॥१३०॥
जातकर्मविधि सोऽयम् आम्नात पूर्वसूरिभि । यथायोगमनुष्ठेय सोऽष्टत्वेऽपि द्विजोत्तमं ॥१३१॥

नामकर्मविधाने च मन्त्रोऽयमनुकथ्येते । सिद्धाचंनविधौ सप्त मन्त्रा प्रागनुर्वाणता ॥१३२॥
ततो दिव्याष्टसहस्रनामभागी भवादिकम् । पदत्रितयमुच्चार्य मन्त्रोऽन परिवर्त्यताम् ॥१३३॥

चूर्ण -'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्रनामभागी भव, परमाष्टसहस्रनामभागी भव' ।

मत पुत्रा चिरजीविनी भूयासु' (हे पृथ्वी तेरे पुत्र कुलपर्वतोके समान मेरे पुत्र भी चिरजीवी
हो) यह कहकर घान्य उत्पन्न होनेके योग्य क्षेत्रमें जमीनपर वह मल डाल देना चाहिये
॥१२२-१२४॥ तदनन्तर क्षीर वृक्षकी डालियोसे पृथिवीको सुशोभित कर उसपर उस
पुत्रकी माताको विठाकर मन्त्रित किये हुए सुहाते गर्भं जलसे स्नान कराना चाहिये ॥१२५॥
माताको स्नान करानेका मन्त्र यह है-प्रथम ही सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदको दो बार कहना
चाहिये फिर आसत्रभव्या, विश्वेश्वरी, अजितपुण्या, और जिन माता इन पदोंको भी सम्बोध-
नान्त बार दो दो बार बोलना चाहिये और अन्तमे स्वाहा शब्द पढ़ना चाहिये । भावार्थ-
सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसत्रभव्ये आसत्रभव्ये विश्वेश्वरि विश्वेश्वरि अजितपुण्ये अजितपुण्ये
जिनमातृ जिनमातृ स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटभव्य, हे सबकी स्वामिनी, हे अत्यंत
पुण्य सचय करनेवाली, जिन माता तू कल्याण करनेवाली हो) यह मन्त्र पुत्रकी माताको स्नान
कराते समय बोलना चाहिये ॥१२६-१२७॥ जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी माता पुत्रके
वर्षाणांको देवती है उसी प्रकार यह मेरी पत्नी भी देखे ऐसी श्रद्धासे यह स्नानकी विधि
करनी चाहिये ॥१२८॥ तीसरे दिन रातके समय 'अनन्तज्ञानदर्शी भव' (तू अनन्तज्ञानको
देवनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़कर उस पुत्रको गोदीमें उठाकर ताराओसे सुशोभित आवास
दिवाना चाहिये ॥१२९॥ उसी दिन पुण्याहवाचनके साथ साथ शवितके अनुसार दान करना
चाहिये और जितना वन गने उतना सब जीवोंके अभयकी घोषणा करनी चाहिये ॥१३०॥
इस प्रकार पूर्वान्यायोंने यह जन्मोत्सवकी विधि मानी है-बही है । उत्तम द्विजको आज भी
इगवा यथायोग्य रीतिसे अनुष्ठान करना चाहिये ॥१३१॥

अब आगे नामकर्म करने समय जिन मन्त्रोंका प्रयोग होता है उन्हें बहने हैं-इस विधिमें
गिद्ध भगवाणकी पूजा करनेके लिये जिन मातृपीठिका मन्त्रोंका प्रयोग होता है उन्हें पहले ही
बह चुके हैं । उन्हीं आगे 'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव' आदि तीनों पदोंका उच्चारण कर
मन्त्र परिवर्तित कर लेना चाहिये अर्थात् 'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव' (एक हजार आठ
दिव्य नामोंका पानेवाला हो), 'विजयाष्टसहस्रनामभागी भव' (विजयएक एक हजार आठ

शेषो विधिस्तु निःशेषः प्रागुक्तो नोच्यते पुनः । बहिर्यानि क्रियामन्त्रः ततोऽयमनुगम्यताम् ॥१३४॥

बहिर्यानि क्रिया—

तत्रोपनयनिष्क्रान्तिभागी भव पदात्परम् । भवेद् वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव पदं ततः ॥ १३५॥

क्रमान्मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पदं वदेत् । ततः सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पदं स्मृतम् ॥१३६॥

मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव पदं ततः । यौवराज्यमहाराज्यपदे भागी भवाम्बिते ॥१३७॥

निष्क्रान्तिपदमप्ये स्तारं परराज्यपदं तथा । आर्हन्त्यराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव शिलापदम् ॥१३८॥

पदैरेभिरयं मन्त्रस्तद्विद्विरनुजप्यताम् । प्रागुक्ती विधिरन्यस्तु निपद्यामन्त्र उत्तरः ॥१३९॥

चूणिः—उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, सुरेन्द्र-
निष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्ति-
भागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव, (बहिर्यानिमन्त्रः)

निपद्या—

दिव्यसिंहासनपवाद् भागी भव पर्व भवेत् । एवं विजयपरमसिंहासनपदद्वयात् ॥१४०॥

नामोंका धारक हो और 'परमाष्टसहस्रनामभागी भव' (अत्यन्त उत्तम एक हजार आठ नामोंका पानेवाला हो) ये मन्त्र पढ़ना चाहिये ।

संग्रह—'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्रनामभागी भव, परमाष्ट-
सहस्रनामभागी भव' ॥१३२-१३३॥ बाकीकी समस्त विधि पहले कही जा चुकी है इसलिये
दुबारा नहीं कहते हैं अब आगे बहिर्यानि क्रियाके मन्त्र नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिये ॥१३४॥

सबसे पहले 'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव', (तू यज्ञोपवीतके लिये निकलनेवाला हो)
यह पद बोलना चाहिये और फिर 'वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव' (विवाहके लिये बाहर निकलने
वाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिये ॥१३५॥ तदनन्तर अनुक्रमसे 'मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी
भव' (मुनिपदके लिये निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिये और उसके बाद 'सुरेन्द्र-
निष्क्रान्तिभागी भव' (सुरेन्द्र पदकी प्राप्तिके लिये निकलनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिये
॥१३६॥ तत्पश्चात् 'मन्दरेन्द्राभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव' (सुरेन्द्रपदके लिये
निकलनेवाला हो) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये और फिर 'यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी
भव' (युवराज पदके लिये निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिये ॥१३७॥ तदनन्तर
'महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' (महाराज पदकी प्राप्तिके लिये निकलनेवाला हो) यह पद
बोलना चाहिये और उसके बाद 'परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' (चक्रवर्तीका उत्कृष्ट राज्य
पानेके लिये निकलनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिये और इसके अनन्तर 'आर्हन्त्यराज्य-
भागी भव' (अरहन्त पदकी प्राप्तिके लिये निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिये ॥१३८॥
इस प्रकार मन्त्रोंको जाननेवाले द्विजोंको इन उपर्युक्त पदोंके द्वारा मन्त्रोंका जाप करना चाहिये ।
बाकी समस्त विधि पहले कह चुके हैं अब आगे निपद्या मन्त्र कहते हैं ॥१३९॥

संग्रह—'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्ति-
भागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्ति-
भागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रान्ति-
भागी भव' ।

निपद्यामन्त्रः—'दिव्यसिंहासनभागी भव' (दिव्य सिंहासनका भोक्ता हो—इन्द्रके

चूर्णः—दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी. भव, परमसिंहासनभागी (भव इति निषद्यामन्त्रः) ।

अन्नप्राशनक्रिया—

‘प्राशनेऽपि तथा मन्त्रं पर्वस्त्रिभिरुदाहरेत् । तानि स्वदिव्यविजयाक्षीणामृतपदानि च ॥१४१॥

भागी भव पदेनान्ते युक्तेनानुगतानि तु । पर्वरेभिरयं मन्त्रः प्रयोज्यः प्राशने युषः ॥१४२॥

चूर्णः—दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव ।

घृष्टि.—

घृष्टिक्रियाश्रितं मन्त्रम् इतो वक्ष्ये यथाश्रुतम् । तत्रोपनयनं जन्मवर्षवर्द्धनयाम्युतम् ॥१४३॥

भागी भव पदं श्रेयम् आदौ शेषपदाष्टके । वैवाहिनित्पदवदेन मुनिजन्मपदेन च ॥१४४॥

सुरेन्द्रजन्मना मन्दराभिषेकपदेन च । यौवराज्यमहाराज्यपदाभ्यामप्यनुभवात् ॥१४५॥

परमार्हन्त्यराज्याभ्यां वर्षवर्धनसंयुतम् । भागी भव पदं योज्यं ततो मन्त्रोऽयम् ऋवेत् ॥१४६॥

चूर्णः—उपनयनजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, वैवाहिनित्पदवर्द्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्द्धनभागी भव, यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव, आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव, (घृष्टिक्रियामन्त्रः)

आसनपर बैठनेवाला हो), ‘विजयसिंहासनभागी भव’ (चक्रवर्तीके विजयोल्लसित सिंहासन पर बैठनेवाला हो) और ‘परमसिंहासनभागी भव’ (तीर्थंकरके उत्कृष्ट सिंहासनपर बैठने वाला हो) ये तीन मन्त्र कहना चाहिये । ॥१४०॥

सग्रह—‘दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासनभागी भव’ ।

अब अन्नप्राशन क्रियाके मन्त्र कहते हैं—अन्नप्राशन क्रियाके समय तीन पदोंके द्वारा मन्त्र कहने चाहिये और वे पद दिव्यामृत, विजयामृत और अक्षीणामृत इनके अन्तमें भागी भव ये योग्य पद लगाकर बताने चाहिये । विद्वानोको अन्नप्राशन क्रियामें इन पदोंके द्वारा मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये । भावार्थ—इस क्रियामें निम्नलिखित मन्त्र पढ़ने चाहिये—‘दिव्यामृतभागी भव’ (दिव्य अमृतका भोग करनेवाला हो), ‘विजयामृतभागी भव’ (विजयरूप अमृतका उपभोक्ता हो) और ‘अक्षीणामृतभागी भव’ (अक्षीण अमृतका भोक्ता हो) ॥१४१—१४२॥

सग्रह—‘दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव’ ।

अब यहाँसे आगे शास्त्रानुसार व्युष्टि क्रियाके मन्त्र कहते हैं—सबसे पहले ‘उपनयन’ के आगे ‘जन्मवर्षवर्द्धन’ पद लगाकर ‘भागी भव’ पद लगाना चाहिये और फिर अनुक्रमसे वैवाहिनित्प, मुनीन्द्रजन्म, सुरेन्द्रजन्म, मन्दराभिषेक, यौवराज्य, महाराज्य, परमराज्य और आर्हन्त्यराज्य इन शेष आठ पदोंके साथ ‘वर्षवर्द्धन’ पद लगाकर ‘भागी भव’ यह पद लगाना चाहिये । ऐसा करनेसे व्युष्टिक्रियाके सब मन्त्र बन जावेंगे । भावार्थ—व्युष्टिक्रियामें निम्नलिखित मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये—‘उपनयनजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव’ (यज्ञोपवीतरूप जन्मके वर्षका बढानेवाला हो), ‘वैवाहिनित्पवर्षवर्द्धनभागी भव’ (विवाह क्रियाके वर्षका वर्धक हो), ‘मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव’ (मुनि पद धारण करनेवाले वर्षकी वृद्धिसे युक्त हो), ‘सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव’ (इन्द्र जन्मके वर्षका बढानेवाला हो), ‘मन्दराभिषेकवर्षवर्द्धनभागी भव’ (मुमेश्वर पर्वतपर होनेवाले अभिषेककी वर्ष वृद्धि करनेवाला हो), ‘यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव’ (युवराज पदकी वर्ष वृद्धि करनेवाला हो), ‘महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव’ (महाराज पदकी वर्षवृद्धिका उपभोक्ता हो) ‘परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव’ (चक्रवर्तीके उत्कृष्ट राज्य

चौलवर्म—

चौलवर्मस्थयो मन्त्र स्यान्वोपनयनादिकम् । मुण्डनागी भवान् च पदमादावनुस्मृतम् ॥१४७॥

ततो निग्रन्थमुण्डादिभागी भवपद परम् । ततो निष्प्रान्तिमुण्डादिभागी भव पद परम् ॥१४८॥

स्यात्परमनिस्तारककेशभागी भवेत्यत । परमेन्द्रपदादिद्वय केशभागी भवष्वनि ॥१४९॥

परमाहन्त्यराज्यादिकेशभागीति वाग्द्वयम् । भवेत्पन्तपदोपेतं मन्त्रोऽस्मिन्स्याच्छिद्रापादम् ॥१५०॥

शिखाभेतेन मन्त्रेण स्यापयोद्विधिवद् द्विज । ततो मन्त्रोऽयमाप्नातो लिपिसहस्रयानतद्वयम् ॥१५१॥

चूर्णि—उपनयनमुण्डनागी भव, निग्रन्थमुण्डनागी भव, परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्रकेश-
भावी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आहन्त्यराज्यकेशभागी भव । (इति चौलक्रियामन्त्र)

शब्दपारभागी भव अर्थपारभागी भव । पद शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भवेत्यपि ॥१५२॥

चूर्णि—शब्दपारगामी (भागी) भव, अर्थपारगामी (भागी) भव, शब्दार्थपारगामी (भागी) भव,
(लिपिसहस्रयानमन्त्र)

उपनीतित्रियामन्त्र स्मरन्तीम द्विजोत्तमा । परमनिस्तारकादितिद्वयभागी भवेत्यत ॥१५३॥

की वर्षवद्धि करनेवाला हो) और 'आहन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव' (अरहन्त पदवीन्पी
राज्यके वर्षका वटानेवाला हो) ॥१४३-१४६॥

सग्रह—'उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव, वैवाहनिष्ठवर्षवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्म-
वर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दरामिषेकवर्षवर्धनभागी भव,
यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव,
आहन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव' ।

अब चौलत्रियाके मन्त्र कहते हैं—जिनके आदिमें उपनयन शब्द है और अन्तमें 'मुण्ड-
भागी भव' शब्द है ऐसा पहला मन्त्र जानना चाहिये अर्थात् 'उपनयनमुण्डभागी भव' (उपनयन
त्रियामें मुण्डन करनेवाला हो) यह चौलत्रियाका पहला मन्त्र है ॥१४७॥ फिर 'निग्रन्थ-
मुण्डभागी भव' (निग्रन्थ दीक्षा लैते समय मुण्डन करनेवाला हो) यह दूसरा मन्त्र है और
उसके बाद 'निष्प्रान्तिमुण्डभागी भव' (भूनि अबस्थामें बेशलोच करनेवाला हो) यह तीसरा
मन्त्र है ॥१४८॥ तदनन्तर 'परमनिस्तारककेशभागी भव' (समारमे पार उतारनेवाले
आचार्यके केशोको प्राप्त हो) यह चौथा मन्त्र है और उसके पश्चात् परमेन्द्रकेशभागी भव
(इन्द्र पदके बेशोको धारण करनेवाला हो) यह पाँचवाँ मन्त्र बोलना चाहिये ॥१४९॥ इसके
बाद 'परमराज्यकेशभागी भव' (चन्द्रतीके बेशोको प्राप्त हो) यह छठवाँ मन्त्र है और 'आह-
न्त्यराज्यकेशभागी भव' (अरहन्त अवस्थाके बेशोको धारण करनेवाला हो) यह सातवाँ मन्त्र
बोलना चाहिये । द्विजोंको इन मन्त्रोंमें त्रिधिपूर्वक चोटी रखवाना चाहिये । अब आगे लिपि-
सहस्रयानके मन्त्र कहते हैं ॥१५०-१५१॥

सग्रह—'उपनयनमुण्डभागी भव, निग्रन्थमुण्डभागी भव, निष्प्रान्तिमुण्डभागी भव,
परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आहन्त्यराज्य-
केशभागी भव' ।

लिपिसहस्रयानके मन्त्र—'शब्दपारभागी भव' (शब्दोका पारगामी हो), 'अर्थपारगामी
भागी भव' (सम्पूर्ण अर्थका जाननेवाला हो) और 'शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भव' (शब्द
तथा अर्थ दोनोंके सम्बन्धका पारगामी हो) ये पद लिपिसहस्रयानके समय कहने चाहिये ॥१५२॥

सग्रह—'शब्दपारगामी भव, अर्थपारगामी भव, शब्दार्थपारगामी भव' ।

उत्तम द्विज नीचे लिखे हुए मन्त्रोंको उपनीति त्रियाके मन्त्ररूपसे स्मरण करते हैं—

युक्तं परमपिलिङ्गनेन भागोभयपदं भवेत् । परमेन्द्रादितिङ्गमादिभागी भयपदं परम् ॥१५४॥

एवं परमराज्यादि परमाहन्त्यादि च क्रमात् । युक्तं परमनिर्वाणपदेन च शिलापदम् ॥१५५॥

धूर्तिः—परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव, परमपिलिङ्गभागी भव, परमेन्द्रलिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव, परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव, (हरपुत्रीतिथियानुक्रमः)

मन्त्रेशानेन शिष्यस्य कृत्वा संस्कारमावितः । निर्वाणारेण वस्त्रेण कुर्यादेवं सयाससम् ॥१५६॥

कौपीनाच्छादनं धनम् धनतर्पितं न कारयेत् । मोञ्जोदन्धमतः कुर्याद् धनूषद्विप्रमेलकम् ॥१५७॥

सूत्रं^१ गणधरं^२ वधं व्रतचिह्नं नियोजयेत् । मन्त्रपूतमतो यज्ञोपवीतो स्यादसौ द्विजः ॥१५८॥

जात्येव ब्राह्मणः पशुम् इदानीं व्रतसंस्कृतः । द्विर्जातो द्विज इत्येवं रुद्धिमास्तित्पुत्रे^३ गुणः ॥१५९॥

देवान्यगुव्रतान्यस्मिन् गृहसाक्षि यथाविधिः । गुणशीलानुगंधवं संस्कुर्याद् व्रतजासकं^४ ॥१६०॥

ततोऽतिबालविद्यादीन्^५ भोगादस्य निर्विधेत् । दत्त्वोपासकाध्ययनं नामापि चरणोद्यतम् ॥१६१॥

ततोऽयं कृतसंस्कारः सिद्धार्चनपुरःसरम् । यथाविधानमाध्वेयं पूजां कुर्यादितः परम् ॥१६२॥

तस्मिन्दिने प्रविष्टस्य भिक्षायं जातिवेदमसु । योऽयं ताभः स देयः स्याद् उपाध्यायाय सादरम् ॥१६३॥

सबसे पहले 'परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव' (तू उत्कृष्ट आचार्यके चिह्नको धारण करनेवाला हो), फिर 'परमपिलिङ्गभागी भव' (परमऋषियोंके चिह्नको धारण करनेवाला हो) और 'परमेन्द्रलिङ्गभागी भव' (परम इन्द्रपदके चिह्नको धारण करनेवाला हो) ये मन्त्र बोलना चाहिये । इसी प्रकार अनुक्रमसे परम राज्य, परमाहन्त्य और परम निर्वाण पदको 'लिङ्गभागी भव' पदसे युक्तकर 'परमराज्यलिङ्गभागी भव' (परमराज्यके चिह्नको धारण करनेवाला हो), 'परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव' (उत्कृष्ट अरहन्तदेवके चिह्नको धारण करनेवाला हो) और 'परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव' (परमनिर्वाणके चिह्नको धारण करनेवाला हो) ये मन्त्र बना लेना चाहिये ।

सग्रह—'परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव, परमपिलिङ्गभागी भव, परमेन्द्रलिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव, परमाहन्त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव' ।

इन मन्त्रोंसे प्रथम ही शिष्यका संस्कार कर उसे विकाररहित वस्त्रके द्वारा वस्त्रसहित करना चाहिये अर्थात् साधारण वस्त्र पहिनाना चाहिये ॥१५६॥ इसे वस्त्रके भीतर लंगोटी देनी चाहिये और उसपर तीन लड़की बनी हुई मूंजकी रस्सी बांधनी चाहिये ॥१५७॥ तदनन्तर गणधरदेवके द्वारा कहा हुआ, व्रतोंका चिह्नस्वरूप और मन्त्रोंसे पवित्र किया हुआ सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत धारण कराना चाहिये । यज्ञोपवीत धारण करनेपर वह बालक द्विज स्वरूपसे लगता है ॥१५८॥ पहले तो वह केवल जन्मसे ही ब्राह्मण था और अब व्रतोंसे संस्कृत होकर दूसरी बार उत्पन्न हुआ है इसलिये दो बार उत्पन्न होनेरूप गुणोंसे वह द्विज ऐसी रुद्धिको प्राप्त होता है ॥१५९॥ उस समय उस पुत्रके लिये विधिके अनुसार गुरुकी साक्षीपूर्वक अणुव्रत देना चाहिये और गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत रूपशीलसे सहित व्रतोंके समूहसे उसका संस्कार करना चाहिये । भावार्थ—उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार व्रत और शील देकर उसके संस्कार अच्छे बनाना चाहिये ॥१६०॥ तदनन्तर गुरु उसे उपासकाध्ययन पढ़ाकर और चारित्र्यके योग्य उसका नाम रखकर अतिबाल विद्या आदिका नियोगरूपसे उपदेन दे ॥१६१॥ इसके बाद जिसका संस्कार किया जा चुका है ऐसा वह पुत्र सिद्ध भगवान् की पूजा कर फिर विधिके अनुसार अपने आचार्यकी पूजा करे ॥१६२॥ उस दिन उस पुत्रको

१ वस्त्रगन्धः । २ त्रिगुणात्मकम् । ३ ब्रह्मपुत्रम् । ४ प्राप्नोति । ५ समूहः । ६ वध-
भागान् ।

शोषो विधिस्तु प्राक्प्रोक्तं तमनून समाचरेत् । यावत्सोम्योतविद्य' सन् भजेत् सद्रह्यचारिताम् ॥१६४॥
 अयानोऽप्य प्रवक्ष्यामि द्रतचर्षामनुक्रमान् । स्यात्प्रोचामकाध्याय समानानानुमहत् ॥१६५॥
 शिरोलिङ्गमुरोलिङ्गं लिङ्गकङ्कुरमथितम् । लिङ्गमस्तोपनीतस्य प्राग्निर्णोत चतुर्विधम् ॥१६६॥
 तत्तु स्यादसिद्धत्वा वा मय्या कृत्वा वणिज्यया । यथास्व वर्धमानानां सद्बुद्धीनां द्विजमनाम् ॥१६७॥
 कृतिश्चत्त कारणाद् यस्य कृतं ज्ञानाङ्गणम् । सोऽपि राजादिसम्भवा शोषयेत् स्व यदा कृतम् ॥१६८॥
 तदाशोषनपार्हत्व पुत्रोऽप्रादिसन्तनो । न निषिद्ध हि दीक्षाहं कृते चेतस्य पूर्वजा ॥१६९॥
 अवीक्षाहं कृते जाना विद्याशिक्षोपजीविनः । एतेषामुपनीत्यादितास्वारो नानिमग्धन ॥१७०॥
 तेषा स्यादुचितं लिङ्गं स्वयौग्यव्रतधारिणाम् । एकसाटकधारित्व मन्थासमरणावधि ॥१७१॥
 स्यान्निरासिपनोऽपि कृत्स्नीमेवव्रतम् । प्रनारम्भवधोत्तमो ह्यनश्यापेयव्रतम् ॥१७२॥
 इति शूद्रतरा वृत्तिं शनपूनामुपेयिवान् । यो द्विजस्तस्य सम्पूर्णं व्रतचर्याविधि स्मृत ॥१७३॥
 दशाधिकारात्मस्योक्तानां सूत्रेषोपासितेन हि । ताम्यपाकमनुदेशमाश्रेणानुप्रचक्षते ॥१७४॥

अपनी जानि या कुटुम्बके लीगोत्रे घरमें प्रवेश कर भिक्षा माँगना चाहिये और उम भिक्षामें जो कुछ अथेका न्याम हो उसे आदर सहित उपास्यायके लिये मौप देना चाहिये ॥१६८॥ बाकीकी सब विधि पहले कही जा चुकी है । उमै पूर्णरूपमें करना चाहिये । इसके सिवाय वह जन्तक विद्या पटना रहे तब तब उमै ब्रह्मचर्यरत पान करना चाहिये ॥१६४॥

अथानन्तर जिनमें उपासनाभ्ययनका मक्षेपसे नग्रह किया है ऐसी इसकी व्रतचर्याको अनुक्रमसे कहना है ॥१६५॥ जिनका यज्ञोपवीत हो चुका है ऐसै बाउकके लिये शिखा चिह्न (मुण्डन), वस्त्र मयका चिह्न—यज्ञोपवीत, कमरका चिह्न—मूँजकी रस्मी और जाँघका चिह्न—मकैदे घोंठी ये चार प्रकारके चिह्न धारण करना चाहिये । इनका निर्णय पहले ही हो चुका है ॥१६६॥ जो लोग अपनी योग्यताके अनुसार तडवार आदि मन्त्रोंके द्वारा, स्याही अथान् लेखनकराके द्वारा, सेनी और व्यापारके द्वारा अपनी आजीविका करने हैं ऐसै मद्बुद्धि द्विजो को वह यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ॥१६७॥ जिसके कुटुमें किसी कारणसे दोष लग गया हो ऐसा पुरुष भी जब राजा आदिकी ममतिसे अपने कुटुको शुद्ध कर लेना है तब यदि उनके पूर्वज दीक्षा धारण करनेके योग्य कुटुमें उत्पन्न हुए हों तो उनके पुत्र पौत्र आदि सततिके लिये यज्ञोपवीत धारण करनेकी योग्यताका कही निषेध नहीं है । नावार्य—यदि दीक्षा धारण करने योग्य कुटुमें किसी कारणसे दोष लग जावे तो राजा आदिकी ममतिसे उनकी शुद्धि हो सकती है और उन कुटुके पुरूपको यज्ञोपवीत भी दिया जा सकता है । न केवल उमो पुरूपको किन्तु उसके पुत्र पौत्र आदि सततिके लिये भी यज्ञोपवीत देनेका कही निषेध नहीं है ॥१६८-१६९॥ जो दीक्षाके अयोग्य कुटुमें उत्पन्न हुए हैं तथा नाचना गाना आदि विद्या और गिल्पसे अपनी आजीविका करने हैं ऐसै पुरूपको यज्ञोपवीत आदि मन्त्रारोपी आज्ञा नहीं है ॥१७०॥ किन्तु ऐसै लोग यदि अपनी योग्यतानुसार व्रत धारण करें तो उनके योग्य यह चिह्न हो सकता है कि वे मन्थानमरण पर्यन्त एक घोंठी रहें ॥१७१॥ यज्ञोपवीत धारण करनेवाटे पुरूपको मँग-रहित भोजन करना चाहिये, अपनी विवाहिता कुटुम्बीका सेवन करना चाहिये, अनाग्नीहिताका त्याग करना चाहिये और अन्नश्च तथा जपेय पदार्थना परिचाग करना चाहिये ॥१७२॥ इस प्रकार जो द्विज व्रतोंमें पवित्र हुंठ अथयन्त शुद्ध वृत्तितो धारण करना है उनके व्रतचर्याकी पूर्ण विधि ममभनी चाहिये ॥१७३॥ अब उन द्विजोंके लिये उपासनाभ्ययन नाममें जो दश

तत्रातिवालविद्यायां कुलावधिरनन्तरम् । वर्णोत्तमत्वपात्रत्वे तथा सृष्ट्यधिकारिणा ॥१७५॥
 व्यवहारेतिताऽन्या स्याद् अथध्यत्वमदण्डयता । मानार्हता प्रजासम्बन्धात्तर चैयननुप्रमात् ॥१७६॥
 दशाधिकारि वास्तूनि स्वरूपात्कसद्रूपे । तानीमानि ययोर्दश सदक्षेपेण दिव्यभूते ॥१७७॥
 बाल्यात्प्रभूनि या विद्याशिक्षोद्योगाद् द्विजमन । प्रीयतातिवालविद्येति सा त्रिया द्विजसम्पन्ना ॥१७८॥
 तस्यांससत्या मूढात्मा हेयादेयानभिक्त । मिथ्यां धृति प्रपद्येत् द्विजमायै प्रतारित ॥१७९॥
 बाल्य एव ततोऽभ्यस्येद् द्विजमीपासिकोऽश्रुतिम् । स तथा प्राप्तसत्स्वार स्वपरोत्तारको भवेत् ॥१८०॥
 कुलावधि कुलावाररण स्यात् द्विजमन । तस्मिन्नसत्यसौ नष्टत्रियोऽप्यवसता भजेत् ॥१८१॥
 वर्णोत्तमत्व वर्णेषु सर्वेष्वधिकथमस्य वं । तेनाप श्लाघ्यतामेति स्वपरोद्धारणक्षम ॥१८२॥
 वर्णोत्तमत्व यद्यस्य न स्यात्प्र स्यात्प्रकृष्टता । अप्रकृष्टश्च नात्मान शोषयेत् परानपि ॥१८३॥
 ततोऽप्य शूद्रिकाम सन् सेवेताम्य कुलिङ्गिनम् । कृषह्म वा ततस्तज्जान् दोषान् प्राप्नोत्वसशयम् ॥१८४॥
 प्रदानार्हत्वमस्येष्ट पात्रत्व गुणगौरवात् । गुणधिकोऽहं सोऽस्मिन् पूज्य स्यात्तत्कृत्वापि ॥१८५॥
 ततो गुणकृता स्वस्मिन् पात्रता द्रष्टव्येऽद्विज । तदभावे विमान्यत्वाद् ह्यिपतेऽस्य घन नृप ॥१८६॥

अधिकार वहे है उन्हे यथाक्रमसे नामके अनुसार कहता हूँ ॥१७४॥ उन दश अधिकारोंमें पहला अतिवाल विद्या, दूसरा कुलावधि, तीसरा वर्णोत्तमत्व, चौथा पात्रत्व, पाँचवाँ सृष्ट्यधिकारिता, छठवाँ व्यवहारेतिता, सातवाँ अवध्यत्व, आठवाँ अदण्डयता, नौवाँ मानार्हता और दशवाँ प्रजा सम्बन्धान्तर है । उपासकसग्रहमें अनुक्रमसे ये दश अधिकारवस्तुएँ बतलाई गई हैं । उन्हीं अधिकार वस्तुओंका उनके नामके अनुसार यहाँ सक्षेपसे कुछ विवरण करता हूँ । ॥१७५-१७७॥ द्विजोको जो बाल्य अवस्थासे ही लेकर विद्या सिखलानेका उद्योग किया जाता है उसे अतिवालविद्या कहने है, यह विद्या द्विजोको अत्यन्त इष्ट है ॥१७८॥ इस अतिवाल विद्याके अभावमें द्विज मूल्य रह जाता है उसे हेय उपादेयका ज्ञान नहीं हो पाता और वह अपनेको भ्रष्टमूढ द्विज माननेवाले पुरुषोंके द्वारा ठगाया जाकर मिथ्या शास्त्रके अध्ययनमें लग जाता है ॥१७९॥ इसलिये द्विजोको उचित है कि वे बाल्य अवस्थामें ही श्रावकाचारके शास्त्रोका अभ्यास करें क्योंकि उपासकाचारके शास्त्रोके द्वारा जिसे अच्छे संस्कार प्राप्त हो जाते हैं वह निज और परको तारनेवाला हो जाता है ॥१८०॥ अपने कुलके आचारकी रक्षा करना द्विजोकी कुलावधि क्रिया कहलाती है । कुलके आचारकी रक्षा न होनेपर पुरुष की समस्त क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह अन्य कुलको प्राप्त हो जाता है ॥१८१॥ समस्त वर्णोंमें श्रेष्ठ होना ही इसकी वर्णोत्तम क्रिया है, इस वर्णोत्तम क्रियासे ही यह प्रजासको प्राप्त होता है और निज तथा परका उद्धार करनेमें समर्थ होता है ॥१८२॥ यदि इसके वर्णोत्तम क्रिया नहीं है अर्थात् इसका वर्ण उत्तम नहीं है तो इसके उत्कृष्टता नहीं हो सकती और जो उ कृष्ट नहीं है वह न तो अपने आपको शुद्ध कर सकता है और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकता है ॥१८३॥ जो स्वय उत्कृष्ट नहीं है ऐंसे द्विजको अपनी शक्तिकी इच्छासे अन्य कुलिङ्गियों अथवा कुत्रक्षी सेवा करनी पडती है और ऐसी दशामें वह नि सन्देह उन लोगोमें उत्पन्न हृद दोषोको प्राप्त होता है । भावायं-मदा ऐसे ही कार्य करना चाहिये जिससे वर्णकी उत्तमता में बाधा न आवे ॥१८४॥ गुणोका गौरव होनेसे दान देनेके योग्य पात्रता भी इन्हीं द्विजोंमें होती है क्योंकि जो गुणोंमें अधिक होता है वह समारमें सब लोगोके द्वारा पूजित होनेवाले लोगोके दाय भी पूजा जाता है ॥१८५॥ इसलिये द्विजोको चाहिये कि वे अपने आपमें गुणो-

रक्ष्यः सृष्ट्यधिकारोऽपि द्विजैरुत्तमसृष्टिभिः । असृष्टदृष्टिकृतां सृष्टिं परिहृत्य विदूरतः ॥१८७॥
 अन्यथा सृष्टिवादेन दुर्दृष्टेन^१ कुदृष्टयः । लोकं नृपांश्च सम्मोह्य तपन्त्युत्पयगामिताम् ॥१८८॥
 सृष्ट्यन्तरमतो दूरम् अपास्य नयतस्ववित् । अनादिकश्रियैः सृष्ट्यां धर्मसृष्टिं प्रभावयेत् ॥१८९॥
 तीर्थङ्करिण्यं सृष्ट्यां धर्मसृष्टिः सनातनी । तां श्रिताम्रूपानेव^२ सृष्टिहेतुन् प्रकाशयेत् ॥१९०॥
 श्रय्यादाज्यकृतां सृष्टिं प्रवन्नाः स्युर्नृपोत्तमाः । ततो नैश्वर्ययेषां स्यात्तत्रस्याश्वस्युरहंताः ॥१९१॥
 व्यवहारेशितां प्राहुः प्रायश्चित्तादिकर्मणि । स्वतन्त्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम् ॥१९२॥
 तदभावे स्वमन्योश्च न शोधयितुमर्हति । अग्राहः परतः शुद्धिम् श्रभोपसन्त्यचकृतो^३ भवेत् ॥१९३॥
 स्यादवध्याधिकारोऽपि स्थिरात्मा द्विजसत्तमः । ग्राह्यो हि गुणोत्कर्षान्नान्यतो^४ वधमर्हति ॥१९४॥
 सर्वैः प्राग्निं न हन्तव्यो ब्राह्मणस्तु विशेषतः । गुणोत्कर्षापकर्षिन्यां वधेऽपि द्व्यात्तमता^५ मता ॥१९५॥
 तस्मादवध्यतामिष पोषयेद् धार्मिके जने । धर्मस्य तद्धि माहात्म्यं तस्यो यत्राभिभूयते ॥१९६॥
 तदभावे च वध्यत्वम् अयमृच्छति सर्वतः । एव^६ च सति धर्मस्य नश्येत् प्रामाण्यमर्हताम् ॥१९७॥

के द्वारा की हुई पात्रताको दृढ़ करें अर्थात् गुर्णी पात्र वनें क्योंकि पात्रताके अभावमे मान्यता नहीं रहती और मान्यताके न होनेसे राजा लोग भी धन हरण कर लेते हैं ॥१८६॥ जिनकी सृष्टि उत्तम है ऐसे द्विजोंको मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा की हुई सृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अपनी सृष्टिके अधिकारोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥१८७॥ अन्यथा मिथ्यादृष्टि लोग अपने दूषित सृष्टिवादसे लोगोंको और राजाओंको मोहित कर कुमार्गगामी बना देगे ॥१८८॥ इसलिये नय और तत्त्वोंको जाननेवाले द्विजको चाहिये कि वह मिथ्यादृष्टियोंकी अन्यसृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अनादिकश्रियोंके द्वारा रची हुई धर्मसृष्टिकी ही प्रभावना करे ॥१८९॥ तथा इस धर्मसृष्टिका आश्रय लेनेवाले राजाओंसे ऐसा कहे कि तीर्थङ्करोंके द्वारा रची हुई यह सृष्टि अनादिकालसे चली आई है । भावार्थ—यह धर्मसृष्टि तीर्थङ्करोंके द्वारा रची हुई है और अनादि कालसे चली आ रही है इसलिये आप भी इसकी रक्षा कीजिये ॥१९०॥ यदि द्विज राजाओंसे ऐसा नहीं कहेंगे तो वे अन्य लोगोंके द्वारा की हुई सृष्टिको मानने लगेंगे जिसमे उनका ऐश्वर्य नहीं रह सकेगा तथा अरहन्तके मतकी माननेवाले लोग भी उसी धर्मको मानने लगेंगे ॥१९१॥ परमागमका आश्रय लेनेवाले द्विजोंको जो प्रायश्चित्त आदि कार्योंमें स्वतन्त्रता है उसे ही व्यवहारेशिता कहते हैं ॥१९२॥ व्यवहारेशिताके अभावमें द्विज न अपने आपको शुद्ध कर सकेगा और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकेगा तथा स्वयंशुद्ध होनेपर यदि दूसरेमे अपनी शुद्धि करना चाहे तो वह कभी श्रुती नहीं हो सकेगा ॥१९३॥ जिसका अन्त करण स्थिर है ऐसा उत्तम द्विज अवध्याधिकारमें भी स्थित रहता है अर्थात् अवध्य है क्योंकि ब्राह्मण गुणोंकी अधिकताके कारण किसी दूसरेके द्वारा वध करने योग्य नहीं होता ॥१९४॥ सब प्राणियोंको नहीं मारना चाहिये और विशेषकर ब्राह्मणोंको नहीं मारना चाहिये । इस प्रकार गुणोंकी अधिवृत्ता और हीनतासे हिंसामें भी दो भेद माने गये हैं ॥१९५॥ इसलिये यह धार्मिक जनोंमें अपनी अवध्यताको पुष्ट करे । यथार्थमें वह धर्मका ही माहात्म्य है कि जो इस धर्ममें स्थित रहकर विभो से तिरस्त्र नहीं हो पाता ॥१९६॥ यदि वह अपनी अवध्यताको पुष्ट न करेगा तो सब लोगों से वध्य हो जावेगा अर्थात् सब लोग उसे मारने लगेंगे और ऐसा होनेपर अर्हन्तदेवके धर्मकी

१ अगमोक्तिनेन कुदृष्टान्तेन वा । २ ता धर्मसृष्टिं प्रान्शयेदित्यर्थः । ३ आत्मानमाश्रिता । अथवापुत्र्यं ता श्रिता बोधयेत् तद्व्यापयन्म् । ४ -प्रवृत्तो म० । -प्रवृत्ती द० । ५ नृपादेः शशाङ्गात् । ६ द्विजपता (दुष्टनिग्रहसृष्टिप्रतिपातनता) ।

ततः सर्वप्रयत्नेन रक्षयो धर्मः सनातनः । स हि संरक्षितो रक्षां करोति सधराचर ॥१६८॥
 स्याद्दण्डघत्वमप्येवम् अस्य धर्मो स्थिरात्मनः । धर्मस्थी हि जनोज्यस्य दण्डप्रारोपने प्रभः ॥१६९॥
 'तद्धर्मस्थी' यमान्नायं' भावयन् धर्मवर्तिभिः' । धर्मस्थेय दण्डस्य प्रणेता धार्मिको नृपः ॥२००॥
 परिहार्यं यथा देवतुह्यस्यं हितार्थिभिः । अहास्यं च तयाभूतं न दण्डाहंस्ततो द्विजः ॥२०१॥
 युक्त्यानया गुणाधिक्यमात्मन्यारोपयन्, यथा । अदण्डपक्षे स्वात्मानं स्यापयेद्दण्डपारिणाम् ॥२०२॥
 अधिकारे ह्यसत्यस्मिन् स्याद्दण्डघोषं यथेतरः । तैतश्च निस्स्यतां प्राप्तो नेहामुत्र च नन्दति ॥२०३॥
 मान्यत्वमस्य सत्यसं मानाहंत्वं सुभाषितम् । गुणाधिको हि मान्यः स्याद् यद्यः पूज्यश्च सत्तमः ॥२०४॥
 असत्यस्मिन्नमान्यत्वम् अस्य स्यात् सम्मतेर्जनैः । 'तैतश्च स्यानमानादिलाभाभावान्' पदच्युतिः ॥२०५॥
 तस्मादयं गुणं यन्ताद् आत्मन्यारोप्यता द्विजैः । यत्नश्च ज्ञानवृत्तादिराम्यतिः सोऽर्जुनां नृपः ॥२०६॥
 स्यात् प्रजान्तरसम्बन्धे' स्वोपतेरपरिच्युतिः । याऽस्य सोऽन्ता प्रजासम्बन्धान्तरं नामतो गुणः ॥२०७॥
 यथा कालायसाविद्ध' स्वर्णं याति विवर्णताम् । न तयाऽस्यान्यसम्बन्धे स्वगुणोत्कर्षविप्लवः ॥२०८॥

प्रामाणिकता नष्ट हो जावेगी ॥१९७॥ इसलिये सब प्रकारके प्रयत्नोने मनातनधर्मकी रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि अच्छी तरह रक्षा किया हुआ धर्म ही चराचर पदार्थोंसे भरे हुए ससारमें उसकी रक्षा कर सकता है ॥१९८॥ इसी प्रकार धर्ममें जिमका अन्त करण स्थिर है ऐसे इस द्विजको अपने अदण्डचत्वका भी अधिकार है क्योंकि धर्ममें स्थिर रहनेवाला मनुष्य ही दूसरेके लिये दण्ड देनेमें समर्थ हो सकता है ॥१९९॥ इसलिये धर्मदर्शी लोगोके द्वारा दितलाई हुई धर्मात्मा जनोकी आम्नायका विचार करता हुआ ही धार्मिक राजा अधर्मी जनोको दण्ड देता है ॥२००॥ जिस प्रकार अपना हित चाहनेवाले पुरुषोके द्वारा देव द्रव्य और मुद्दय्य त्याग करने योग्य है उसी प्रकार ब्राह्मणका धन भी त्याग करने योग्य है । इसलिये ही द्विज दण्ड देनेके योग्य नहीं है ॥२०१॥ इस युक्तिसे अपनेमें अधिक गुणोका आरोप करता हुआ वह जिनेन्द्रिय दण्ड देनेवाले राजा आदिके समक्ष अपने आपको अदण्डच अर्थात् दण्ड न देने योग्य पक्षमें ही स्थापित करता है । भावार्थ—वह अपने आपमें इतने अधिक गुण प्राप्त कर लेता है कि जिससे उसे कोई दण्ड नहीं दे सकते ॥२०२॥ इस अधिकारके अभावमें अन्य पुरुषोके समान ब्राह्मण भी दण्डित किया जाने लगेगा जिससे वह दरिद्र हो जावेगा और दरिद्र होनेसे न तो इस लोकमें सुखी हो सकेगा और न परलोकमें ही ॥२०३॥ यह ब्राह्मण जो अच्छी तरह सन्मानके योग्य होता है वही इसका मान्यत्व अधिकार है सो ठीक ही है क्योंकि जो गुणोंसे अधिक होता है अर्थात् जिसमें अधिक गुण पाये जाते है वही सत्पुरुषोके द्वारा सन्मान करने योग्य, बन्दना करने योग्य और पूजा करने योग्य होता है ॥२०४॥ इस अधिकारके न होनेसे उत्तम पुरुष इसका सन्मान नहीं करेंगे और उससे स्थान मान लाभ आदिका अभाव होनेके कारण वह अपने पदमें च्युत हो जावेगा । इसलिये द्विजको चाहिये कि वह यह गुण (मान्यत्व गुण) बडे यत्नसे अपने आपमें आरोपित करे क्योंकि ज्ञान चारित्र्य आदि सम्पदाएँ ही उसका यत्न है इसलिये राजाओको उसकी पूजा करनी चाहिये ॥२०५—२०६॥ प्रजान्तर अर्थात् अन्य धर्माधिक्ययोके साथ सम्बन्ध होनेपर भी जो अपनी उन्नतिसे च्युत नहीं होना है वह इसका प्रजागमयन्तरे नामका गुण है ॥२०७॥ जिस प्रकार काले लोहके साथ मिला हुआ सुवर्ण

१ सन्धारणम् । २ धर्मसम्बन्धिनम् । ३ आगमम् । ४ धर्माचार्यमतात् दण्डं करोतीति तात्पर्यम् । ५-पारिणाम् अ०, प०, ६०, स० । ६ अमान्यत्वात् । ७ पूर्वस्थितस्य स्यानमानादिलाभाभावान् । ८ गुणो ६० । ९ द्विजः प० । १० योग्यता न तैः ६० । ११ सम्बन्धे सति । १२ अयोयुक्तम् ।

किन्तु प्रजान्तरं स्वेन सम्बद्धं स्वगुणानयम् । प्रापयत्यचिरादेव लोहयानुं यथा रसः ॥२०६॥
 ततो महानयं धर्मप्रभावोद्योतको गुणः । 'येनायं' स्वगुणैरन्यान् प्रात्मसात्कर्तुमर्हति ॥२१०॥
 असत्यस्मिन् गुणैर्ज्यस्मात् प्राप्नुयात् स्वगुणच्युतिम् । सत्येवं गुणवत्तास्य निष्कृष्यते^१ द्विजन्मनः ॥२११॥
 श्रतोऽतिबालविद्यादीर्नियोगान्^२ दशपोदितान् । यथाहंमात्मसात्कुर्वन् द्विजः स्यात्लोकसम्मतः ॥२१२॥
 गुणेष्वेव विशेषोऽन्यो यो वाच्यो बहुविस्तरः । स उपासकसिद्धान्ताद् अघिगम्यः प्रपञ्चतः ॥२१३॥
 'क्रियामन्त्रानुपङ्गेण अतर्चयार्थक्रियाविधौ'^३ । दशाधिकारा व्याख्याताः सद्बृत्तराहता द्विजैः ॥२१४॥
 क्रियामन्त्रास्त्वह, ज्ञेया ये पूर्वमनुवर्णिताः । सामान्यविषयाः सप्त पीठिकामन्त्ररुदयः ॥२१५॥
 ते हि साधारणाः सर्वक्रियासु विनियोगिनः । ततः श्रौत्संगिकानेतान् मन्त्रान् मन्त्रविदो विदुः ॥२१६॥
 विशेषविषया मन्त्राः क्रियासूक्तासु दर्शिताः । इतः प्रभृति चाभ्यूह्यास्ते यथाम्नायमप्रजैः ॥२१७॥
 मन्त्रानिमान् यथा-योगं यः क्रियासु नियोजयेत् । स लोके सम्मतिं याति पुक्ताचारो द्विजोत्तमः ॥२१८॥
 क्रियामन्त्रविहीनास्तु प्रयोक्तव्यतां न सिद्धये । यथा सुकृतसद्ग्राहाः^४ सेनाप्यस्ता चिनायकाः^५ ॥२१९॥

विवर्णताको प्राप्त हो जाता है उस प्रकार अन्य पुरुषोके साथ सम्बन्ध होनेपर इस ब्राह्मणके अपने गुणोंके उत्कर्षमें कुछ बाधा नहीं आती है । भावार्थ—लोहेके सम्बन्धसे सुवर्णमें तो खराबी आ जाती है परन्तु उत्तम द्विजमें अन्य लोगोंके सम्बन्धसे खराबी नहीं आती ॥२०८॥ किन्तु जिस प्रकार रसायन अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोहेको शीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देती है उसी प्रकार यह ब्राह्मण भी अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषोंको शीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देता है ॥२०९॥ इसलिये कहना चाहिये कि यह प्रजासम्बन्धान्तर गुण, धर्मकी प्रभावनाको बढ़ानेवाला सबसे बड़ा गुण है क्योंकि इसीके द्वारा यह द्विज अपने गुणोंसे अन्य लोगोंको अपने आधीन कर सकता है ॥२१०॥ इस गुणके न रहनेपर ब्राह्मण अन्य लोगोंके सम्बन्धसे अपने गुणोंकी हानि कर सकता है और ऐसा होनेपर इसकी गुणवत्ता ही नष्ट हो जावेगी ॥२११॥ इसलिये जो अतिबालविद्या आदि दश प्रकारके नियोग निरूपण किये हैं उन्हें यथायोग्य रीतिसे स्वीकार करनेवाला द्विज ही सब लोगोंको मान्य हो सकता है ॥२१२॥ इन गुणोंमें जो अन्य विशेष गुण बहुत विस्तारके साथ विवेचन करनेके योग्य हैं उन्हें उपासका-ध्ययनशास्त्रसे विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहिये ॥२१३॥ इस प्रकार अतर्चयार्थ क्रियाकी विधि का वर्णन करते समय उस क्रियाके योग्य मन्त्रोंके प्रसंगसे उत्तम आचरणवाले द्विजोंके द्वारा माननीय दश अधिकारोंका निरूपण किया ॥२१४॥ इस प्रकरणमें जिनका वर्णन पहले कर चुके हैं उन्हें क्रियामन्त्र जानना चाहिये और जो सात पीठिकामन्त्र इस नामसे प्रसिद्ध हैं उन्हें सामान्यविषयक समझना चाहिये अर्थात् वे मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं ॥२१५॥ वे साधारण मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं इसलिये मन्त्रोंके जाननेवाले विद्वान् उन्हें श्रौत्संगिक अर्थात् सामान्य मन्त्र कहते हैं ॥२१६॥ इनके सिवाय जो विशेष मन्त्र हैं वे ऊपर बही हुई क्रियाओंमें दिसला दिये गये हैं । अब अतर्चयार्थसे आगेके जो मन्त्र हैं वे द्विजोंको अपनी आम्नाय (शास्त्र परम्परा)के अनुसार समझ लेना चाहिये ॥२१७॥ जो इन मन्त्रोंको क्रियाओं में यथायोग्य रूपसे काममें लाता है वह योग्य आचरण करनेवाला उत्तम द्विज लोकमें सम्मान को प्राप्त होता है ॥२१८॥ जिस प्रकार अस्त्र-शास्त्र धारण कर तैयार हुए मुख्य मुख्य योद्धा

१ प्रजान्तरसम्बन्धेन । २ द्विजः । ३ सम्बन्धयेत् । नरपेदितपमं । ४ अधिकास्तान् । ५ क्रियाएण मन्त्राः क्रियामन्त्रास्तेषामनुपङ्गो योगस्तेन । ६ पूर्वोक्तप्रतर्चयार्थक्रियाविधाने । ७ साधारणान् । ८ यथायुक्ति । 'योगस्सप्रहृतोपायम्भानसङ्गतियुक्तिपु' इत्यभिधानान् । ९ सुविहितवक्त्राः । १० स्वामिर्हिताः ।

ततो विधिमम् सभ्यम् अग्रगम्य कृतांगम् । विधानेन प्रयोक्तव्या क्रियामन्त्रपुररक्षता ॥२२०॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्य स धर्मविजयी भरताधिराजो

धर्मक्रियासु 'कृतधीनु' पलोव साक्षि ।

तान् सुव्रतान् द्विजवरान विनियम्य सम्यक्

धर्मप्रिय समसृजत् द्विजलोकसार्गम् ॥२२१॥

मालिनी

इति भरतनरेन्द्रात् प्राप्तसत्कारयोगा

'व्रतपरिचयचारुद्धारवृत्ता श्रुताढ्या' ।

जिनवृषभमतानु' व्रज्यया पूज्यमाना

जगति बहुमतास्ते ब्राह्मणा ख्यातिमीयु ॥२२२॥

वृत्तस्थान'थ तान् विधाय सभवानिक्ष्वाकुचूडामणि'

जैने धर्मनि सुस्थितान् द्विजवरान् सम्मानयन् प्रत्यहम् ।

स्व मेने कृतिन मुदा' परिगता' श्वा सृष्टिमुञ्चं कृता

पश्यन् क सुकृते कृतार्थपदवीं नत्मानमारोपयेत् ॥२२३॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटितलक्षणमहापुराणसद्ग्रहे द्विजोत्पत्ती

क्रियामन्त्रानुवर्णनं नाम चत्वारिंशत्तम पर्व ॥४०॥

सेनापतिके विना कुछ भी नहीं कर सकते उसी प्रकार मन्त्रोसे रहित क्रियाएँ भी प्रयोग करनेवाले पुरुषोंकी कुछ भी सिद्धि नहीं कर सकती ॥२१९॥ इसलिये शास्त्रोका अभ्यास करनेवाले द्विजोंको यह सब विधि अच्छी तरह जानकर मन्त्रोच्चारणके साथ साथ सब क्रियाएँ विधिपूर्वक करनी चाहिये ॥२२०॥ इस प्रकार जिसने धर्मके द्वारा विजय प्राप्त की है, जो धार्मिक क्रियाओमें निपुण है और जिसे धर्म प्रिय है ऐसे भरतक्षेत्रके अधिपति महाराज भरतने राजा लोगोकी साक्षीपूर्वक अच्छे अच्छे व्रत धारण करनेवाले उन उत्तम द्विजोंको अच्छी शिक्षा देकर ब्राह्मणवर्णकी सृष्टि की अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की ॥२२१॥ इस प्रकार महाराज भरतने जिन्हें सत्कारका योग प्राप्त हुआ है व्रतोके परिचयसे जिनका चारित्र सुन्दर और उदार हो गया है, जो शास्त्रोके अर्थोंको जाननेवाले हैं और धीवृषभ जिनेन्द्रके मतानुसार धारण की हुई दीक्षासे जो पूजित हो रहे हैं ऐसे वे ब्राह्मण समारमे बहुत ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुए और गूत्र ही उनका आदर-सन्मान किया गया ॥२२२॥ तदनन्तर इक्ष्वाकु कुलचूडामणि महाराज भृगुन जैनमार्गमें अच्छी तरह स्थित रहनेवाले उन ब्राह्मणोंको सदाचारमें स्थिर कर प्रतिदिन उनका सम्मान करते हुए अपने आपको धन्य मानने लगे गो ठीक ही है क्योंकि आनन्दसे युक्त तथा उत्कृष्टनाको प्राप्त हुई अपनी सृष्टिको देखता हुआ ऐसा कौन पुण्यवान् पुरुष है जो अपने आपको वृत्तवृत्त्य न माने ॥२२३॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटितलक्षण महापुराणसद्ग्रहके भाषा-

नुवादमें द्विजोंकी उत्पत्तिमें क्रियामन्त्रोका वर्णन करनेवाला

यह चारिगवा पर्व समाप्त हुआ ।

१ गम्गुण'गाम्ने । २ गम्गुण'वृद्धि । ३ व्रताभ्याग । ४ श्रुताढ्यां ६०, १० । ५ मत्तानु-
गमनत । ६ चारित्रपद गतान् । ७ पूज्य । ८ गन्तापेण सह । ९ समविश्रामित्यर्थ ।

एकत्रवारिंशत्तमं पर्व

अथ चतुरर काले व्यतिक्रान्ते कियत्यपि । स्वप्नान्यशामयन्^१ कश्चिद् एकदाऽद्भुतदर्शनात् ॥१॥
 तत्स्वप्नदर्शनात् किञ्चिद् उत्पन्न इव चेत्सा । प्रबुद्ध सहसा तेषां पतनीति व्यनर्कयन् ॥२॥
 असत्पत्ना इमे स्वप्ना प्रायेण प्रतिमान्ति^२याम् । मग्ये दूरफलादर्थान् पुरावल्पे^३पत्प्रदान् ॥३॥
 कुतश्चिद् भगवत्पद्य प्रतपस्यादिभर्त्सेरि । प्रजाना कथमेवैवविधोपप्लवसम्भव ॥४॥
 तत^४ कृतयुगस्यास्य व्यतिक्रान्तो वदाचन । फलमेते प्रदास्यन्ति नूनमेन^५प्रकथयत ॥५॥
 'युगान्तविप्लवोदकाल एतेऽनिष्टासिन । स्वप्ना प्रजाप्रजापालसाधारणफलोदया ॥६॥
 पट्टन्ध्रार्कविम्बोत्यर्धिक्रियाजनित फलम् । जगत्साधारण तद्भुत् सदसत्त्वास्मदीक्षितम्^६ ॥७॥
 इतीदमनुमान न स्यूलायानुप्रचिन्तनम् । सूक्ष्मतत्त्वप्रतीतिस्तु प्रत्यक्षज्ञान^७ गोचरा ॥८॥
 केवलाहोदते नान्य सदायश्चान्तभेदवृत्त । को हि नाम तमो^८ नंदा हन्यादन्यत्र भास्वरान् ॥९॥
 तत्त्वादर्शो स्थिते देवे को नामास्मन्मतिभ्रम । सत्यादर्शो^९ करामर्शान् क परमेश्वसोप्यवम् ॥१०॥
 'तदत्र भगवद्भक्तप्रमदगलाददर्शनात् । युक्ता नस्तत्त्वनिर्णोति^{१०} स्वप्नाना शान्तिकर्म च ॥११॥
 अथि चास्मदुपत^{११} यद् द्विजलोकस्य सर्जनम् । गद्या तदपि विज्ञाप्य भगवत्पादमप्रियो ॥१२॥

अथानन्तर-कितना ही काल-वीत जानेपर एक दिन चतुर्वर्ती भरतने अद्भुत फल दिशानेवाले कुछ स्वप्न देवे ॥१॥ उन स्वप्नोके देवनेसे जिन्हें चित्तमें कुछ खेद-मा उत्पन्न हुआ है ऐसे वे भक्त अचानक जाग पड़े और उन स्वप्नोके फलका इस प्रकार विचार करने लगे ॥२॥ कि ये स्वप्न मुझे प्राय बुरे फल देनेवाले जान पड़ते हैं तथा मायमें यह भी जान पड़ता है कि ये स्वप्न कुछ दूर आगेके पक्ष मार्गमें फल देनेवाले होंगे ॥३॥ क्योंकि इस समय भगवान् वृषभदेवके प्रकाशमान रहते हुए प्रजाको इस प्रकारका उपद्रव होना कर्म समव हो सकता है^४ ॥४॥ इसीप्रकार कदाचित् इस कृतयुग (चतुर्थकाल)के व्यतीत हो जानेपर जब पापही अधिकता होने लगेगी तब ये स्वप्न अपना फल देंगे ॥५॥ युगके अन्तमें विप्लव फैलाना ही जिनका फल है ऐसे ये स्वप्न अनिष्टको सूचित करनेवाले हैं और राजा तथा प्रजा दोनोंको समान फल देनेवाले हैं ॥६॥ जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके चिम्बमें उत्पन्न होनेवाली विक्रिया से प्रकट हुआ फल जगत्के जीवोको समानरूपमें उठाने पड़ने हैं उसी प्रकार भरे द्वारा देये हुए स्वप्नोके फल भी समस्त जीवोको सामान्यरूपमें उठाने पड़ेंगे ॥७॥ इस प्रकार हमारा यह अनुमान केवल म्यूक्त पदार्थका चिन्तन करनेवाला है, सूक्ष्म तत्त्वकी प्रतीति प्रत्यक्ष ज्ञानमें ही हो सकती है ॥८॥ केवलज्ञानरूपी सूर्यको छोड़कर और कोई पदार्थ मग्यरूपी अन्धकार को भेदन करनेवाला नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि सूर्यको छोड़कर ऐसा कौन है जो रात्रिका अन्धकार नष्ट कर गये ॥९॥ तत्त्वोका साम्प्रतिक स्वरूप दिग्गगनेवाले भगवान् वृषभदेवके रहते हुए मुझे बुद्धिका भ्रम क्यों होना चाहिये, भगवत्पादके रहते हुए ऐसा कौन पुण्य है जो हाथके मर्ममें सुखकी मुन्दरता देये ? ॥१०-११॥ इसीप्रकार इस विषयमें भगवान्के मुग्यरूपी मङ्गल

१ दर्शन । २ तमना । ३ पदवाद्भाविराने । पञ्चमकाले इत्यर्थ । ४ प्रशाम्यमाने मति । ५ तस्मान् कारणान् । ६ चतुर्थकालस्य । ७ पाप । ८ मग्यस्य चतुर्थकालस्यान्ते विप्लव एव उदरं उत्तरण देता ते । ९ मर्मेणितम । १० केवलज्ञानविरमया । ११ निजगम्भयि । १२ दांये विद्यमाने मति । १३ तन् कारणान् । १४ स्वप्ननिर्णयं । १५ मया प्रथमावयवम् ।

दृष्टव्या गुरवो नित्य प्रष्टव्याश्च हिताहितम् । महर्जपेया च यष्टव्या । शिष्टानामिष्टमोक्षम् ॥१३॥
 इत्यात्मगतमालोच्य शय्योत्सद्गतात् पराद्वेषत । प्रातस्तत्रा समुत्थाय कृतप्रानातिवश्रिय ॥१४॥
 तत 'क्षणमिव स्थित्वा महास्थाने नृपवृत्त । धन्वनाभक्तये गन्तुम् उद्यतोऽभूद् विद्याम्पति ॥१५॥
 वृत्त' परिमितरेव मौलिवद्वेनृत्यित्त^१ । प्रतस्थे यन्दनाहेतो विभूत्या परयाग्नित ॥१६॥
 तत क्षेपीय^२ एवातो गत्वा संघे परिकृत । सम्राट् प्रापतमद्देश^३ यप्रास्ते स्म जगद्गुरु ॥१७॥
 दूरादेव जितान्स्थानभूमि ययप्रिधोऽवर । प्रणनाम चलन्मौलिघटिताञ्जलिकुड्मल ॥१८॥
 स ता प्रवक्षिणोक्त्य बहिर्भागे सदोऽस्वनिम् । प्रविशेद विद्यामोक्ष शान्त्या वक्षः^४ पृथग्दिपा^५ ॥१९॥
 मानस्तम्भमहाचैत्यद्भूमिसिद्धार्थपादपान^६ । प्रक्षेभाणो ध्यतोयाय स्तूपार्चचित्तपूजितान् ॥२०॥
 चतुष्टयो वनश्रेणी ध्वजान् हर्म्याकलोमपि । तत्र तत्रेक्षमाणोऽतो ता ता वक्षामल्लक्ष्ययत् ॥२१॥
 प्रतिकक्ष सुरस्त्रीणा गोतेनृत्तंश्च हारिभि । रज्यमानमनोवृत्ति तत्रास्यासीत् परा घृति ॥२२॥
 तत प्राविक्षदुत्तुद्गणोपुरद्वारवर्धना । गणरघ्युयिता भूमि श्रीमण्डपपरिकृताम् ॥२३॥
 त्रिमेखलस्य पीठस्य प्रथमा मेखलामत । सोऽधिर्दृश्य परीयाय^७ धर्मचक्राणि पूजयन् ॥२४॥

दर्पणको देखकर ही मुझे स्वप्नोके यथार्थ रहस्यका निर्णय करना उचित है और वही खोटे स्वप्नोका नान्तिवर्म करना भी उचित है ॥१२॥ इसके सिवाय मैंने जो ब्राह्मण लोगोकी नवीन सृष्टि की है उसे भी भगवान्के चरणोके समीप जाकर निवेदन करना चाहिये ॥१३॥ फिर अच्छे पुष्टोका यह कर्तव्य भी है कि वे प्रतिदिन गुरुओके दर्शन करें, उनसे अपना हित अहित पूछा करें और बड़े वैभवसे उनकी पूजा किया करें ॥१४॥ इस प्रकार मनमे विचारकर महाराज भरतने बड़े सवरे बहुमूल्य गध्यासे उठकर प्रात कालकी समस्त क्रियाए की और फिर थोड़ी देरतक सामां बैठकर अनेक राजाओके साथ भगवान्की वन्दना तथा भक्तिके अर्थ जानेके लिये उद्यम किया ॥१५॥ जो साथ ही साथ उठकर खड़े हुए कुछ परिमित मुकुटबद्ध राजाओमे घिरे हुए है और उत्कृष्ट विभूतिसे सहित है ऐसे महाराज भरतने वन्दनाके लिये प्रस्थान किया ॥१६॥ तदनन्तर सेना सहित सम्राट् भरत शीघ्र ही वहा पहुच गये जहा जगद्गुरु भगवान् विराजमान थे ॥१७॥ दूरसे ही भगवान्के समवसरणकी भूमिको देखते हुए निधियोके स्वामी भरतने नम्रीभूत मस्तकपर कमलकी बौडीके समान जोड़े हुए दोनो हाथ रखकर नमस्कार किया ॥१८॥ उन महाराजने पहले उस समवसरण भूमिके बाहरी भागकी प्रदक्षिणा दी और फिर अनेक प्रकारकी वक्षाओका उल्लघन कर भीतर प्रवेश किया ॥१९॥ मानस्तम्भ, महाचैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और पूजाकी सामग्रीसे पूजित स्तूपोको देखते हुए उन मन्त्रो उल्लघन करते गये ॥२०॥ अपने अपने निश्चित स्थानोपर चारो प्रकारकी वनकी पक्षियो, ध्वजाओ और हर्म्याकलीको देगते हुए उन्होने उन वक्षाओका उल्लघन किया ॥२१॥ गणवसरणकी प्रथमे वक्षामे होनेवाले देवागनाओके मनोहर गीत और नृत्योसे जिनके चित्तकी वृत्ति जगृष्य हो रही है ऐसे महाराज भरतको बहुत ही सतोप हो रहा था ॥२२॥ तदनन्तर बहुत ऊंचे गोरु दरवाजोके मार्गमे उन्होने जहा गणधरदेव विराजमान थे और जो श्रीमण्डपसे मुग्धोभित हो रही थी एसी गभाभूमिमे प्रवेश किया ॥२३॥ वहापर तीन बटनीवाले पीठकी प्रथम बटनीपर चद्रवर धर्मचक्रकी पूजा करते हुए प्रदक्षिणा दी ॥२४॥ तदनन्तर चद्रवर्ती दूगरी बटनीपर महाप्रजाओकी पूजा कर तीनों जगन्नी लक्ष्मीको तिरस्त्रुत करनेवाली गन्ध-

१ यत्रतीया । २ शान्त्ययन्तम् । ३ गार्हपत्यै । ४ अतिगहन क्षिप्रम् । ५ प्रदेशम् । ६ तामाभूमिम् ।

७ मातृप्रजाया । ८ -तापिबान् १०, १० । ९ प्रदक्षिणा चक्रं ।

मेघलाया द्वितीयास्या 'वरिवस्यन् महापृथ्व्याम् । प्रापद् गन्धकुटीं चक्री न्य'कृतत्रिजगच्छिद्यम् ॥२५॥
 देवदानवगन्धर्वसिद्धविद्यावरैर्दितम् । भगवन्तमपालोत्प प्राणमद्^१ भक्तिनिर्भर ॥२६॥
 स्तुत्वा स्तुतिभिरोज्ञानम् भ्रम्यच्च^२ च यथाविधि । निपसाद^३ यथास्थान धर्माभूतपिपासितं ॥२७॥
 भक्त्या प्रणमतस्तस्य भगवत्पादपङ्कजे । विद्वद्धिपरिणामाद्भगवदधिज्ञानमुद्भवो ॥२८॥
 पोत्वाऽथो धर्ममोक्षं परा तृप्तिमवापिवान् । स्वमनोगतमित्युच्चं भगवन्त व्यञ्जित्पत् ॥२९॥
 मया सृष्टा द्विजन्मान श्रानकाचारवृञ्चव^४ । त्वद्गीतोपासकाध्यायसूत्रमार्गानुगामिन ॥३०॥
 एवाद्येकादशान्तानि^५ दसान्धेभ्यो मया विभो । त्रतचिह्नानि सूत्राणि गुणभूमिभिर्भागत ॥३१॥
 विश्वस्यु^६ धर्मसंगस्य^७ स्वयि साक्षात्प्रणेतरि । स्थिते मयातिवालिदयाद्^८ इदमाचरित विभो ॥३२॥
 दोष कोऽद्भुतं कोऽत्र किमेतन् साधुप्रत^९ न वा । दोलायमानमिति मे मन स्यापय निश्चितो^{१०} ॥३३॥
 अथि छात्र मया सृज्ना निशान्ते षोडशेक्षिता । प्रायोऽनिष्टफलसदृचे मया देवाभिलक्षिता ॥३४॥
 यथादृष्टमृग्यस्त्रे^{११} तानिमान परमेश्वर । यथास्व तत्कलाग्यस्त्रप्रतीतिविषय^{१२} नय ॥३५॥
 सिंहो मृग्यस्त्रपोतश्च तुरग करिभारभूत्^{१३} । छाया वृक्षलतागुल्मशुष्कपत्रोपभोगिन^{१४} ॥३६॥
 शाखामृगा द्विपस्कन्धम प्राहृढा कौशिका^{१५} सर्ग । विहितोपद्रवा ध्याद्दर्श^{१६} प्रनयादच^{१७} प्रमोदिन ॥३७॥

बुटीके पास जा पहुँचे ॥२५॥ बहापर भक्तिसे भरे हुए भरतने देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर आदिके द्वारा पूज्य भगवान् धूपभद्रेवको देखकर उन्हे नमस्कार किया ॥२६॥ महाराज भरत उन भगवान्की अनेक स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति कर और विधिपूर्वक पूजा कर धर्मरूप अमृतके पीनेकी इच्छा करते हुए योग्य स्थानपर जा बैठे ॥२७॥ भक्तिपूर्वक भगवान्के चरण-कमलको प्रणाम करते हुए भक्तके परिणाम इतने अधिक विजुद्ध हो गये थे कि उनके उसी समय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तदनन्तर धर्मरूपी अमृतका पान कर वे बहुत ही सतुष्ट हुए और उच्च स्वरसे अपने हृदयका अभिप्राय भगवान्से इस प्रणार निवेदन करने लगे ॥२९॥ कि हे भगवन्, मैंने आपके द्वारा कहे हुए उपासकाध्याय सूत्रके मार्गपर चलनेवाले तथा थावकाचारमें निपुण ब्राह्मण निर्माण किये हैं अर्थात् ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की है ॥३०॥ हे विभो, मैंने इन्हे ग्यारह प्रतिमाओके विभागसे त्रतोके चिह्न स्वरूप एकसे लेकर ग्यारह तव यज्ञोपवीन दिये हैं ॥३१॥ हे प्रभो, समस्त धर्मरूपी सृष्टिको साक्षात् उत्पन्न करनेवाले आपके विद्यमान रहते हुए भी मैंने अपनी बडी मुखतासे यह काम किया है ॥३२॥ हे देव, इन ब्राह्मणों की रचनामें दोष क्या है ? गुण क्या है ? और इनकी यह रचना योग्य हुई अथवा नहीं ? इस प्रकार भूत्रके समान भूत्रते हुए मेरे चित्तको किसी निश्चयमें स्थिर कीजिये अर्थात् गुण, दोष, योग्य अथवा अयोग्यका निश्चयकर मेरा मन स्थिर कीजिये ॥३३॥ इसके सिवाय हे देव, आज मैंने रात्रिके अन्तिमभागमें सोलह स्वप्न देखे हैं और मुझे ऐसा जान पटता है कि ये स्वप्न प्राय अनिष्ट फल देनेवाले हैं ॥३४॥ हे परमेश्वर वे स्वप्न मैंने जिम प्रकार देरो हैं उसी प्रकार उपस्थित करता हू । उनका जैसा कुछ फल हो उसे मेरी प्रतीतिवा विषय करा दीजिए ॥३५॥ (१) सिंह, (२) सिंहका बच्चा, (३) हाथीके भागको घासण करनेवाला घोडा, (४) वृक्ष, लता और झाडियोंके सूत्रे पत्ते खानेवाले बकरे, (५) हाथीके स्तन्धपर बैठे

१ पूजयन् । २ अथ कृत । ३ नमस्वरौति स्म । ४ त्रिबिष्टवान् । ५ पातुमिच्छामि गन् । ६ वारणम् । ७ प्रतीता । ८ दसान्ताङ्गानि स०, म० । ९ सृष्टे । १० भूयत्वन । 'अने मृग्यपा-
 जानमुखेवैधेयवानिगा' इत्यमर । ११ वृक्षम् । १२ निश्चय । १३ विनापयामि । १४ शात्रम् ।
 १५ वरिणो मार विभक्ति । १६ मरिणम् । १७ जनुवा । १८ काव । 'वातो तु वरुणरिण-
 वनिपुष्टवृष्टप्रना' । ध्यात् शात्मपोपपरमुद्बलिमुक्वायया अपि ॥' इत्यभिधानान् । १९ भूमा ।

शुष्कमध्य तडाग च पर्वन्तप्रयुरोव्वम् । पांशुपूरितो रत्नराशिं स्वार्थं भगवति ॥३८॥
 तादृश्यशाली वृक्षम शीतांशु परिवेषयुक् । मियोन्द्रगीहृतसाङ्गद्वयो पुद्गवको तद्वृणतच्छिद्यो ॥३९॥
 रविराशावधूरत्नवतसोऽर्धस्तिरोहित । सशुष्कस्तदरच्छाद्यो जीर्णपर्णसमुच्चय ॥४०॥
 योऽर्जुनेऽथ यामिन्या दृष्टा स्वप्ना विद्यां वर । फलविप्रतिपत्तिं मे तद्गतां स्वमयावुद ॥४१॥
 इति तत्कालविज्ञाननिपुणोऽप्यवधित्विषया । रामाजनप्रबोधायं पत्रच्छ निधिराट् जिनम् ॥४२॥
 तत्प्रश्नावसितान्वित्य व्याचष्टे स्म जगद्गुरु । वचनामृतसद्मेकं प्रीणयन्निहित तव ॥४३॥
 भगवद्विध्यवाग्यंशुश्रूयावहितं तदा । ध्यानोपगमिवाभूत्सर्वविघ्नगतं नृ वा ॥४४॥
 साधु वत्स कृत साधु धामिकद्विजपूजनम् । किन्तु दोषानुपट्टं गोऽत्र कोऽप्यस्ति स निर्दाम्यताम् ॥४५॥
 भ्रायुष्मन् भवता सृष्टा य एते गृहमेधिन । ते तावदुचिताचारा यावत्कृतं पुगस्थितिः ॥४६॥
 तत कलियुगेऽभ्यर्णं जातिवादवलेपतः ॥ भ्रष्टाचारा प्रपत्त्यन्ते सन्मार्गप्रत्यनीकताम् ॥४७॥
 तेऽमी जातिमदाविष्टा वय लोकाधिका इति । पुरा दुरागमैर्लोक मोहयन्ति पनाशया ॥४८॥
 सत्कारलाभसवृद्धगर्वा मिथ्यामवोद्धता । जनान् प्रतारयिष्यन्ति स्वयमत्याच दु धृतो ॥४९॥

हुए वानर, (६) कौआ आदि पक्षियोंके द्वारा उपद्रव किये हुए उलूक, (७) आनन्द करते हुए भूत, (८) जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और किनारोंपर खूब पानी भरा हुआ है ऐसा तालाब, (९) घूलसे घूसरित रत्नोकी राशि, (१०) जिसकी पूजा की जा रही है ऐसा नैवेद्यको खाने-वाला कुत्ता, (११) जवान बैल, (१२) मण्डलसे युक्त चन्द्रमा, (१३) जो परस्परमें मिल रहे हैं और जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बैल, (१४) जो दिशारूपी स्त्रीरत्नोके से बने हुए आभूषणके समान है तथा जो मेघोसे आच्छादित हो रहा है ऐसा सूर्य, (१५) छाया-रहित सूखा वृक्ष और (१६) पुराने पत्तोंका समूह । हे ज्ञानियोमें श्रेष्ठ, आज मने रात्रिके समय ये सोलह स्वप्न देखे हैं । हे नाथ, इनके फलके विषयमे जो मुझे सदेह है, उसे दूर कर दीजिये ॥३६-४१॥ यद्यपि निधियोके अधिपति महाराज भरत अपने अवधिज्ञानके द्वारा उन स्वप्नोंका फल जाननेमे निपुण थे तथापि सभाके लोगोको समझानेके लिये उन्होने भगवान् से इस प्रकार पूछा था ॥४२॥ भरतका प्रश्न समाप्त होनेपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव अपने वचनरूपी अमृतके सिचनसे समस्त सभाको सतुष्ट करते हुए इस प्रकार व्याख्यान करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवान्की दिव्य ध्वनिके अर्थको सुननेकी इच्छा से सावधान हुई वह सभा ऐसी जान पड़ती थी मानो ध्यानमें मग्न हो रही हो अथवा चित्रकी बनी हुई हो ॥४४॥ वे कहने लगे कि हे ब्रह्म, तूने जो धर्मात्मा द्विजोकी पूजा की है सो बहुत अच्छा किया है परन्तु इसमें कुछ दोष है उसे तू सुन ॥४५॥ हे आयुष्मन्, तूने जो गृहस्थोकी रचना की है सो जबतक बृहस्पति अर्थान् चतुर्थकालकी स्थिति रहेंगी तबतक तो ये उचित आचारका पालन करते रहेंगे परन्तु जब कलियुग निकट आ जायगा तब ये जातिवादके अभिमानसे सदाचारसे भ्रष्ट होकर ममीचीन मोक्ष-मार्गके विरोधी बन जावेंगे ॥४६॥ पचम कालमें ये लोग, हम सब लोगोमें बड़े हैं, इस प्रकार जातिके मदसे युक्त होकर केवल धनकी आशासे खोटे खोटे शास्त्रोके द्वारा लोगोको मोहित करते रहेंगे ॥४७॥ सत्कारके लाभसे जिनका गर्व बढ रहा है और जो मिथ्या मदमे उद्धत हो रहे हैं ऐंमे ये ब्राह्मण लोग स्वयं मिथ्या शास्त्रोको बना बनाकर लोगोको ठगा करेंगे ॥४८॥ जिनकी चेतना पापमे दूषित हो रही है ऐसे ये मिथ्यादृष्टि लोग इतने समय

१ ईशानाशुक्ति । २ पद्मभू । ३ पुजित । ४ गन्धेहम् । ५ तस्य प्रश्नावसाने । ६ अवधानपरम् ।
 ७ वाग । ८ चतुर्थकाल । ९ पञ्चमकाल । १० ममीप गति । ११ गवन । १२ यास्यन्ति । १३ प्रतिकूलताम् ।
 १४ पञ्चमकाल । १५ 'पुगयावतार्निदिनि भविव्यत्यर्थे सट् । १६ वञ्चयिष्यन्ति । १७ दुःशास्त्राणि ।

त इमे कालपर्यन्ते चिक्रिवां प्राप्य दुर्दृशः । धर्मद्रुहो^१ भविष्यन्ति पापोपहतचेतनाः ॥५०॥
 सत्वोपधानिरता मधुमांसादानप्रियाः । प्रवृत्तिलक्षण^२ धर्मं घोषयिष्यन्त्यधामिकाः ॥५१॥
 अहिंसालक्षणं धर्मं दूषयिष्या दुराज्ञायाः । शोचनालक्षणं धर्मं पौष्टयिष्यन्त्यमी बत ॥५२॥
 पापसूत्रधरा धूर्ताः प्राणिमारणतत्पराः । 'वत्स्यंद्भ्यो प्रवत्स्यन्ति सन्मार्गं परिपन्थिनः'^३ ॥५३॥
 द्विजातिसर्जनं तस्मान्नाद्य यद्यपि दोषकृत् । स्याद्दोषबोजनमापत्या^४ कृपाल्यण्डप्रवर्तनात् ॥५४॥
 इति कालान्तरे दोषबोजमप्येतदञ्जसा । नाधुना परिहृतं धर्मं सृष्ट्यनतिप्रमात् ॥५५॥
 पयाक्षमुपवृत्तं सत् क्वचित्कस्यापि दोषकृत् । तयाऽप्यपरिहायं तद् धुर्ध्वं ह्यगुणाल्यया ॥५६॥
 तयदेवमपि मन्तव्यं श्रद्धात्वे गुणवत्तया । पृंसामाज्ञयवंपम्यात् पश्चाद् यद्यपि दोषकृत् ॥५७॥
 इदमेवं गतं हन्त यच्च ते स्वप्नदशनम् । तवप्येव्यद्^५ युगे धर्मस्थितिहासस्य सूत्रनम् ॥५८॥
 ते च स्वप्ना द्विधाऽऽप्नोताः स्वस्यास्वस्यात्मगोचराः । समंस्तु घातुभिः स्वस्या विषमंरितरे भताः ॥५९॥
 तस्याः स्युः स्वस्य तन्दृष्टाः मिथ्यास्वप्ना विषययात् । जगत्प्रतीतिमतिद्वि चिद्वि स्वप्नविमर्शनम् ॥६०॥
 स्वप्नानां द्वैतमस्त्यग्यदोषदैवसमुद्भवम् । दोषप्रकोपजा मिथ्या तस्याः स्युर्देवसम्भवाः ॥६१॥

तक विकारभावको प्राप्त होकर धर्मके द्रोही बन जायेंगे ॥५०॥ जो प्राणियोंकी हिंसा करनेमें तत्पर है तथा मधु और मांसका भोजन जिन्हें प्रिय है ऐसे ये अधर्मी ब्राह्मण हिंसात्प धर्मकी घोषणा करेंगे ॥५१॥ खेद है कि दुष्ट आशयवाले ये ब्राह्मण अहिंसात्प धर्मको दूषित कर वेदमें कहे हुए हिंसारूप धर्मको पुष्ट करेंगे ॥५२॥ पापका समर्थन करनेवाले, शास्त्रको जानने वाले अधवा पापके विद्वत्स्वरूप यज्ञोपवीतको धारण करनेवाले और प्राणियोंके मारनेमें तदा तत्पर रहनेवाले ये धूर्त ब्राह्मण आगामी युग अर्थात् पंचम कालमें समीचीन मार्गके विरोधी हो जावेंगे ॥५३॥ इसलिये यह ब्राह्मणोंकी रचना यद्यपि आज दोष उत्पन्न करनेवाली नहीं है तथापि आगामी कालमें खोटे पाखण्ड मतोंकी प्रवृत्ति करनेसे दोषका बीजरूप है ॥५४॥ इस प्रकार यद्यपि यह ब्राह्मणोंकी सृष्टि कालान्तरमें दोषका बीजरूप है तथापि धर्म सृष्टिका उल्लंघन न हो इसलिये इस समय इसका परिहार करना भी अच्छा नहीं है ॥५५॥ जिस प्रकार स्त्रिया हुआ अप्र यद्यपि कही किमीको दोष उत्पन्न कर देना है तथापि अनेक गुणोंकी आस्वासे विद्वान् लोग उसे छोड़ नहीं सकते उसी प्रकार यद्यपि ये पुष्पोंके अभिप्रायोंकी विषमतासे आगामी कालमें द्रोप उत्पन्न करनेवाले हो जावेंगे तथापि इस समय इन्हें गुणवान् ही मानना चाहिये ॥५६-५७॥ इस प्रकार यह तेरी ब्राह्मण रचनाका उत्तर तो हो चुका, अब तूने जो स्वप्न देखे है, खेद है, कि वे भी आगामी युग (पंचम काल) में धर्मकी स्थितिके हामको सूचित करनेवाले हैं ॥५८॥ वे स्वप्न दो प्रकारके माने गये हैं एक अपनी स्वस्य अवस्थामें दिखनेवाले और दूसरे अवस्थामें दिखनेवाले । जो घातुओंकी ममानता रहते हुए दिखते हैं वे स्वस्य अवस्थाके कहलाते हैं और जो घातुओंकी विषमता-न्यूनताधिकता रहते हुए दिखते हैं वे अस्वस्थ अवस्थाके कहलाते हैं ॥५९॥ स्वस्य अवस्थामें दिखनेवाले स्वप्न सत्य होते हैं और अस्वस्थ अवस्थामें दिखनेवाले स्वप्न असत्य हुआ करते हैं इस प्रकार स्वप्नोंके फलका विचार करनेमें यह जगत्प्रसिद्ध बात है ऐसा तू समझ ॥६०॥ स्वप्नोंके और भी दो भेद हैं एक दोषमें उत्पन्न होनेवाले और दूसरे देवमें उत्पन्न होनेवाले । उनमें दोषोंने प्रकोप-

१ धर्मघातितः । २ शोचनालक्षणम् । ३ नावि । ४ प्रतिदूने । ५ मृष्टि । ६ उत्तरवाले ।

'उत्तरः शान आयतिः' इत्यभिधानात् । ७ भविष्यद्युगे । ८ विचारणम् ।

यस्याणाद्गस्त्यमेवान्ताद् देवताधिष्ठितश्च यन्^१ । न मिथ्या तद्विभे स्वप्ना पतमेया^२ निबोध मे^३ ॥६२॥
 दृष्टा स्वप्ने मृगाधोशा ये श्रयोविशतिप्रमा । निरसपत्नां विहृत्पेमां श्मां श्माभूत्स्वृत्माश्रिता^४ ॥६३॥
 तत्फल सन्मतिं मुक्त्वा शेषतीर्थकरोदये । दुर्नयानामनुद्भूतिर्यापा सद्यतां स्फुटम् ॥६४॥
 पुनरेकाकिन सिंहपोतस्यान्वक्^५ भूमेक्षणत् । भयेयु सन्मतेस्तोयै तानुपद्गा^६ वृत्तिद्विगिन ॥६५॥
 करोद्रभारनिभुंनपुष्टस्याद्वयस्य धीक्षणात् । वृत्स्नान् तपोगुणान्योद् नात् दुष्पन्मसाधय ॥६६॥
 मूलोत्तरगुणेष्वान्तसद्वरा वेचनालसा । भक्षयन्ते मूलत वैचिंत्ये यास्यन्ति मन्दताम् ॥६७॥
^७निध्यानादजयूयस्य शुष्कपत्रोपयोगिन । यान्त्यसद्वृत्तान् त्यक्तरादाचारा पुरा नरा ॥६८॥
 करोन्द्रकम्धराखंडशाखामृगविलोकनात् । आदिकत्रान्वयोच्छ्रितौ श्मां पास्यन्त्यवृत्तीनका ॥६९॥
 कांक्षलूकसम्बन्धाधर्शनाद्वमंकाभ्यया । मुक्त्वा जंनान्मूनीनन्यमतस्यानन्दियुर्जना ॥७०॥
 प्रनृत्यता प्रभूतानां भूतानामोक्षणात् प्रजा । भजेपूर्नाभक्त्वाद्यं घ्यतरान् देवतास्यया^{१०} ॥७१॥
 शुष्कमध्यतडागस्य पर्वन्तेऽम्बुस्विनीक्षणात् । प्रच्युत्यायंनिवासात् स्याद्वमं प्रत्यन्तवासिपु^{११} ॥७२॥
 पासुधूसररत्नोदनिध्यानाद्द्विसत्तमा । नैव प्रादुर्भविष्यन्ति मुनय पश्चमे युगे ॥७३॥
 शूनोऽर्चितस्य सत्कारंश्चभोजनदर्शनात् । गुणवत्प्राप्तत्वारमाप्स्यन्त्यव्रतिनो द्विजा ॥७४॥

से उत्पन्न होनेवाले भूठ होते हैं और देवसे उत्पन्न होनेवाले सच्चे होते हैं ॥६१॥ हे कत्याणत्प,
 चंकि तू अवश्य ही देवताओसे अधिष्ठित है इसलिये तेरे ये स्वप्न मिथ्या नहीं हैं । तू इनका
 फल मुझमे समझ ॥६२॥ तूने जो स्वप्नमे इस पृथ्वीपर अकेले विहार कर पर्वतकी शिखरपर
 चढ़े हुए तेईस सिंह देखे है उसका स्पष्ट फल यही समझ कि श्रीमहावीर स्वामीको छोड़कर
 शेष तेईस तीर्थङ्करोके समयमे दुष्ट नयोकी उत्पत्ति नहीं होगी । इस स्वप्नका फल यही बत
 लाता है ॥६३-६४॥ तदनन्तर दूसरे स्वप्नमें अकेले सिंहके बच्चेके पीछे चलते हुए हरिणोका
 समूह देखनेसे यह प्रकट होता है कि श्री महावीर स्वामीके तीर्थमे परिग्रहको धारण करनेवाले
 बहुतसे कुलिङ्गी हो जावेंगे ॥६५॥ बड़े हाथीके उठाने योग्य बोझसे जिसकी पीठ भुक गई
 है ऐसे घोडेके देखनेसे यह मालूम होता है कि पंचम कालके साधु तपश्चरणके समस्त गुणोको
 धारण करनेमे समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥६६॥ कोई मूलगुण और उत्तरगुणोके पालन करनेकी
 प्रतिज्ञा लेकर उनके पालन करनेमे आलसी हो जायेंगे, कोई उन्हें मूलसे ही भग कर देने और
 कोई उनमे मन्दता या उदासीनताको प्राप्त हो जायेंगे ॥६७॥ सूखे पत्ते खानेवाले बकरोका
 समूह देखनेसे यह मालूम होता है कि आगामी कालमें मनुष्य सदाचारको छोड़कर दुराचारी
 हो जायेंगे ॥६८॥ गजेन्द्रके कंधेपर चढ़े हुए वानरोके देखनेसे जान पडता है कि आगे चलकर
 प्राचीन शत्रिय वंश नष्ट हो जायेंगे और नीच कुलवाले पृथ्वीका पालन करगें ॥६९॥ कौबोके
 द्वारा उलूकको त्रास दिया जाना देखनेसे प्रकट होता है कि मनुष्य धर्मकी इच्छासे जैनमनियो
 को छोड़कर अन्य मतके साधओके समीप जायेंगे ॥७०॥ नाचते हुए बहुतसे भूतोके देखनेसे
 मातूम होता है कि प्रजाके लोभ नामकर्म आदि कारणोसे व्यन्तरोको देव समझकर उनकी
 उपासना करने लगेंगे ॥७१॥ जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है ऐसे तालाबके चारो ओर पानी
 भरा हुआ देखनेसे प्रकट होता है कि धर्म आर्यखण्डसे हटकर प्रत्यन्तवासी म्लेच्छ खण्डमें
 ही रह जायगा ॥७२॥ धूलिसे मलिन हुए रत्नोकी राशिके देखनेसे यह जान पडता है कि
 पंचमकालमें ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे ॥७३॥ आदर-सत्कारसे जिसकी पूजा की

१ यस्मान्धारणात् । २ जानीहि । ३ मम श्वासात् । ४-मास्थिता ट० । ५ अनुगच्छन् ।
 ६ सर्पाग्रहा । ७ दर्शनात् । ८ पातयिष्यन्ति । ९ भूरीणाम् । १० देवमुदध्या । ११ म्लेच्छदेतापु ।
 'प्रयन्ता म्मच्छदश्च स्यात् ।'

तरुणस्य वृषत्वोच्चैः नदतोः^१ विहृतोक्षणात् । तारुण्य एव श्रामण्ये स्यात्पन्ति न दशान्तरे ॥७५॥
 परिवेपोपरवतस्य^२ श्वेतभानोनिशाभनात्^३ । नोत्पत्स्यते^४ तपोभृत्सु समनःपर्ययोऽवधिः ॥७६॥
 श्रम्योन्मं सह सम्भूय वृषयोगंमनेक्षणात् । वत्स्यन्ति मृगयः साहचर्यप्रिकथिहारिणः ॥७७॥
 घनावरणदृष्टस्य दर्शनादंशुमात्तिनः । केवलाकोदयः प्रायो^५ न भवेत् पञ्चमे युगे ॥७८॥
 पुंसां स्त्रीणां च चारित्र्यकृतिः शुष्कद्रुमेक्षणात् । महापथिरतोच्छेदो जीर्णवर्णविलोकनात् ॥७९॥
 स्वप्नानेवंफलानेतान् विद्धि दूरविपाकिनः^६ । नाद्य बोपस्ततः कोऽपि फलमेपां युगान्तरे ॥८०॥
 इति स्वप्नफलान्स्वप्नाद् बुध्वा वत्स यथा तथा । धर्मे मति दृढं घत्स्य विद्वद्विघ्नोपशान्तये ॥८१॥
 इत्थाकर्ष्यं गुरोर्वाक्यं स वर्णाश्रमपालकः । सन्देहकदंभापायात् स प्रसन्नमयान्मनः ॥८२॥
 भूयो भूयः प्रणम्येशं सभापृच्छद्य पुनः पुनः । पुनरावदते कृच्छ्रात् स प्रीतो गुर्वनुग्रहात् ॥८३॥
 ततः प्रविश्य साकेतपुरमाबद्धतोरणम् । केतुमात्तारुलं पौरैः सानन्दमभिनन्दिनः ॥८४॥
 शान्तिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशान्तये । जिनाभिषेकसत्पात्रदानार्थः पुण्यचेष्टितैः ॥८५॥
 गोदोहैः^७ प्लाविता धात्री पूजिताश्च महर्षयः । महादानानि दत्तानि प्रीणितः प्रणयो जनः^८ ॥८६॥
 निर्मापितास्ततो घण्टा जिनबिम्बैरत्नदकृताः । परार्ध्यरत्ननिर्माणाः सन्ध्या हेमरज्जभिः ॥८७॥

गई है ऐसे कुत्तेको नवेद्य खाते हुए देखनेसे मालूम होता है कि अतरहित ब्राह्मण गुणी पानोके समान सत्कार पायेंगे ॥७४॥ ऊचे स्वरसे शब्द करते हुए तरुण वैलका विहार देखनेसे सूचित होता है कि लोग तरुण अवस्थामे ही मुनिपदमें ठहर सकेंगे, अन्य अवस्थामे नहीं ॥७५॥ परिमण्डलसे धिरे हुए चन्द्रमाके देखनेसे यह जान पड़ता है कि पंचमकालके मुनियामे अवधिज्ञान और मन.पर्यय ज्ञान नहीं होगा ॥७६॥ परस्पर मिलकर जाते हुए दो वैलोकें देखनेसे यह सूचित होता है कि पंचमकालमें मुनिजन साथ साथ रहेंगे, अकेले विहार करनेवाले नहीं होंगे ॥७७॥ मेघोंके आवरणसे रके हुए सूर्यके देखनेसे यह मालूम होता है कि पंचमकालमें प्राय केवल-ज्ञानरूपी सूर्यका उदय नहीं होगा ॥७८॥ सूखा वृक्ष देखनेसे सूचित होता है कि स्त्री-पुरपोका चारित्र्य भ्रष्ट हो जायगा और जीर्ण पत्तोंके देखनेसे मालूम होता है कि महाऔपधियोंका रस नष्ट हो जायगा ॥७९॥ ऐसा फल देनेवाले इन स्वप्नोंको तू दूरविपाकी अर्थात् बहुत समय बाद फल देनेवाले समझ इसलिये इनसे इस समय कोई दोष नहीं होगा, इनका फल पञ्चमकालमें होगा ॥८०॥ हे वत्स, इस प्रकार भुक्तमे इन स्वप्नोंका यथार्थ फल जानकर तू समस्त विघ्नोंकी शान्तिके लिये धर्ममें अपनी बुद्धि कर ॥८१॥ वर्णाश्रमकी रक्षा करनेवाले भरतने गुरुदेवके उपर्युक्त वचन सुनकर सदेहरूपी कीचडके नाग होनेसे अपना चित्त निर्मल किया ॥८२॥ वे भगवान्को बार बार प्रणाम कर तथा बार बार उनसे पूछकर गुरुदेवके अनुग्रहसे प्रसन्न होते हुए बड़ी कठिनाईसे वहाँसे लौटे ॥८३॥ तदनन्तर नगरके लोग आनन्दके साथ जिनका अभिनन्दन कर रहे हैं ऐसे उन महाराज भरतने जिसमें जगह जगह तोरण बांधे गये हैं और जो पताकाओंकी पंक्तियोंसे भरा हुआ है ऐसे अयोध्या नगरमें प्रवेश कर छोटे स्वप्नोंसे होनेवाले अनिष्टकी शान्तिके लिये जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करना, उत्तम पात्रको दान देना आदि पुण्य क्रियाओंसे शान्ति कर्म किया ॥८४-८५॥ उन्होंने शायके दूधसे पूथिवीका मिचन किया, महर्षियोंकी पूजा की, बड़े बड़े दान दिये और प्रेमीजनोंको मंत्रुष्ट किया ॥८६॥ तदनन्तर उन्होंने बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए, सुवर्णकी रस्सियोंसे बाँधे हुए और जिनेन्द्रदेवकी प्रति-

लम्बिताश्च पुरद्वारि^१ तादृचतुर्विंशतिप्रमा । राजवेदमहाद्वारगोपुरेऽवप्यनुक्रमत् ॥८८॥
 यदा किल विनिर्वाति प्रविशत्यव्यय प्रभु । तदा मौल्यप्रलाननाभि श्रय्य स्यादहंतां स्मृति ॥८९॥
 स्मृत्या ततोऽहंदर्शना भक्त्या कृत्वाभिनन्दनाम् । पूजयत्यभिनिष्क्रामन् प्रविशश्च स पुण्यधी ॥९०॥
 रंजु सूत्रेषु सन्प्रोक्ता घण्टास्ता परमेष्ठिनाम् ।^२सदर्थघटिताष्टीका ग्रन्थानामिव चेशला ॥९१॥
 लोकचूडामण्येस्तस्य मौलिलाना विरेजिरे । पादच्छाया जिनस्येव घण्टास्ता लोकसम्मता ॥९२॥
 रत्नतोरणविन्यासे स्यापितास्ता निधोशिना । दृष्ट्वाहंद्बन्धनाहेतो लोकोऽप्यासीत्तदावर ॥९३॥
 पौरंजंनैरत स्वेषु^३ वैशमतोरणदामसु । यथाविभवमाबद्धा घण्टास्ता सपरिच्छदा^४ ॥९४॥
 आदिराजकृता सृष्टि प्रजास्ता बह्वृषेतिरे । प्रत्यगार यतोऽद्यापि लक्ष्या बन्दनमालिका ॥९५॥
 बन्दनार्थं कृता माला यतस्ता भरतेशिना । ततो बन्दनमालास्या प्राप्य हृदि गता क्षितौ ॥९६॥
 धर्मशीले महीपाले यान्ति तच्छीलता^५ प्रजा । श्रुताच्छील्यमतच्छीलै^६ यथा राजा तथा प्रजा ॥९७॥
 तदा कालानुभावेन प्रायो धर्मप्रिया नरा । साधोय साधुवृत्तेऽस्मिन् स्वामिन्यासन् हिते रता ॥९८॥
 सुकालश्च सुराजा च सम सन्निहित द्वयम् । ततो धर्मप्रिया जाता प्रजास्तदनुरोधत ॥९९॥

माओसे सजे हुए बहुतसे घटे बनवाये तथा ऐसे ऐसे चौबीस घटे बाहरके दरवाजेपर, राजभवन के महाद्वारपर और गोपुर दरवाजोपर अनुक्रमसे टंगवा दिये ॥८७-८८॥ जब वे चक्रवर्ती उन दरवाजोसे बाहर निकलते अथवा भीतर प्रवेश करते तब मुकुटके अग्रभागपर लगे हुए घटाओसे उन्हें चौबीस तीर्थं करोका स्मरण हो आता था । तदनन्तर स्मरणकर उन अरहन्तदेवकी प्रतिमाओको वे नमस्कार करते थे इस प्रकार पुण्यरूप बुद्धिको धारण करनेवाले महाराज भरत निकलते और प्रवेश करते समय अरहन्तदेवकी पूजा करते थे ॥८९-९०॥ सूत्र अर्थान् रस्सियोसे सम्बन्ध रखनेवाले वे परमेष्ठिओके घटा ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो उत्तम उत्तम अर्थोसे भरी हुई और सूत्र अर्थात् आगम वाक्योसे सम्बन्ध रखनेवाली ग्रन्थोकी सुन्दर टीकाए ही हो ॥९१॥ महाराज भरत स्वयं तीनों लोकोके चूडामणि थे उनके मस्तक पर लगे हुए वे लोकप्रिय घटा ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्रदेवके चरणोकी छाया ही हो ॥९२॥ निधियोके स्वामी भरतने अहन्तदेवकी बन्दनाके लिये जो घटा रत्नोके तोरणोकी रचनामें स्यापित किये थे उन्हें देखकर अन्य लोग भी उनका आदर करने लगे थे अर्थात् अपने अपने दरवाजेके तोरणोकी रचनामें घटा लगवाने लगे थे । उसी समयसे नगरवासी लोगोने भी अपने अपने घरकी तोरणमालाओमें अपने अपने वैभवके अनुसार जिनप्रतिमा आदि सामग्रीसे युक्त घटा बाँधे थे ॥९३-९४॥ उस समय प्रथमराजा भरतकी बनाई हुई इस सृष्टिको प्रजाके लोगोने बहुत माना था, यही कारण है कि आज भी प्रत्येक घरपर बन्दन मालाए दियाई देती है ॥९५॥ चूँकि भरतेश्वरने वे मालाए अरहन्तदेवकी बन्दनाके लिये बनवाई थी इसलिये ही वे बन्दनमाला नाम पाकर पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है ॥९६॥ यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा धर्मात्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मा मा नहीं होती है, यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है ॥९७॥ उम गमय वाङ्के प्रभावने प्राय सभी लोग धर्मप्रिय थे सो ठीक ही है क्योंकि गदाचारी भरतके राजा रहते हुए सब लोग अपना हित करनेमें लगे हुए थे ॥९८॥ उम समय अच्छा राजा और अच्छी प्रजा दोनो ही एक साथ मिल गये थे इसलिये राजाके अनुरोधसे प्रजा

१ बहिर्द्वारि १०, १०, १० । २ रत्नादिगम्यगर्भं । ३ तोरणमालाया । ४ जिविभवादिपरितर-
 रणहता । ५ धर्मशीलताम् । ६ अपर्मात्तवम् । ७ अपर्मात्तैरे सति ।

एष धर्मप्रिय सम्राट् धर्मस्यानभिनन्दति । मत्वेति निखिलो लोक तदा धर्मं रतिं व्यधात् ॥१००॥
 स धर्मविजयी सम्राट् सदृशं शुक्तिरजित । प्रकृतिष्वनुरक्तासु व्यधाद् धर्मक्रियादरम् ॥१०१॥
 भरतोऽभिरतो^१ धर्मं द्रव्यं तदनुजीविन । इति तदवृत्तमन्वीयु^२ मीलिवद्धा महोसित^३ ॥१०२॥
 सोऽयं सापित^४ कामार्थदक्षी चशानुभायत । चरितार्थद्वये तस्मिन् भजे धर्मकृतानताम् ॥१०३॥
 दान पूजा च शीलं च दिने पर्वंगुणोपितम्^५ । धर्मश्चतुर्विधं सोऽयम् आम्नातो^६ गृहभेषिनाम् ॥१०४॥
 ददौ दानमती सद्भ्यो मुनिभ्यो विहितादरम् । समेतो नवनि पुष्यं गुणं सन्तभिरन्वित ॥१०५॥
 सोऽत्राद् विशुद्धमाहारं ययायोगं च भेषजम् । प्राणियोऽभ्यपदानं च शान्त्यैतावनी गति ॥१०६॥
 जितेषु भक्तिमातन्वन् तत्पूजायां वृत्तिं दधौ । पूज्यानां पूजनाल्लोके पूज्यत्वमिति भावयन् ॥१०७॥
 चैत्यवंत्यासयादीनां निर्मापणपुरस्तरम् । स चक्रे परमाभिज्ञा कल्पवृक्षपुष्पप्रयाम् ॥१०८॥
 शीलानुपालने पत्नो भनस्वस्व द्विमोत्भूत् । शीलं हि रक्षितं यत्नाद् आत्मानमनु रक्षति ॥१०९॥
 श्रतानुपालनं शीलव्रतानुशक्तानुगारिणाम् । स्थूलहिंसाविरत्यादित्यक्षणानि च लक्षणं ॥११०॥
 'समावनानि तान्येषु ययायोगं प्रपासयन् । प्रजानां पातकं सोऽभूद् धीरेयो गृहभेषिनाम् ॥१११॥
 पर्वोपवासमास्याय^७ जिनागारे समाहित । कूर्वंन् सामयिकं सोऽभ्यामुनिवृत्तं च ततक्षणम्^८ ॥११२॥

धर्मप्रिय हो गई थी ॥१०१॥ यह सम्राट् स्वयं धर्मप्रिय है और धर्मार्त्ता लोगोंका सम्मान करता है यही मानकर उस समय लोग धर्ममें प्रीति करने लगे थे ॥१००॥ वह चक्रवर्ती धर्मविजयी था, सदाचारी था, पवित्र था और बलिष्ठ था इनलिये ही वह अपनेपर प्रेम रखनेवाली प्रजामें धार्मिक त्रियाओका आदर करता था अर्थात् प्रजाको धार्मिक त्रियाए करनेका उपदेश देता था ॥१०१॥ 'भरत धर्ममें तत्पर है और हम लोग उनके सेवक है' यही समझकर मुकुटद्वय राजा उनके आचरणका अनुसरण करते थे । मावार्थ—अपने राजाको धर्मार्त्ता जानकर आश्रित राजा भी धर्मार्त्ता बन गये थे ॥१००॥ चक्रके प्रभावमें अर्थ और काम दोनों ही जिनके स्वाधीन हो रहे हैं ऐसे चक्रवर्ती भरत अर्थ और कामकी सफरता होनेपर केवल धर्ममें ही एकाग्रता को प्राप्त हो रहे थे ॥१०३॥ दान देना, पूजा करना, शील पालन करना और पर्वके दिन उपवास करना यह गृहस्थोंका चार प्रकारका धर्म माना गया है ॥१०४॥ नव प्रकारके पुष्य और सात गुणोंसे सहित भरत उत्तम मुनियोंके लिये बड़े आदरके साथ दान देने थे ॥१०५॥ वे विशुद्ध आहार, योग्यतानुसार औषधि और ममस्त प्राणियोंके लिये अभय दान देने थे मो ठीक ही है क्योंकि दानकी यही तीन गति है ॥१०६॥ ममार्थमें पूज्य पुष्पोंकी पूजा करनेमें पूज्यपना स्वयं प्राप्त हो जाता है ऐसा विचार करते हुए महाराज भरत जिनेन्द्रदेवमें अपनी भक्ति बढाने हुए उनकी पूजा करनेमें बहुत ही सतोष धारण करते थे ॥१०७॥ उन्होंने अनेक जिनविम्ब और जिनमन्दिरोकी रचना करार कल्पवृक्ष नामका बहुत बड़ा यज्ञ (पूजन) किया था ॥१०८॥ उनके मनमें शीलकी रक्षा करनेका प्रयत्न मदा विद्यमान रहता था मो ठीक ही है क्योंकि प्रयत्नपूर्वक रक्षा किया हुआ शील आत्माकी रक्षा करता है ॥१०९॥ व्रतोंका पालन करना शील कहलाता है और स्थूलहिंसाका त्याग करना (अहिंसापू व्रत) आदि जो गृहस्थोंके व्रत हैं वे लक्षणोंके साथ पहले कहे जा चुके हैं ॥११०॥ उन व्रतोंकी भावनाओ सहित ययायोग्य रीतिमें पात्रन करते हुए प्रजापात्य महाराज भरण गृहस्थोंमें मुख्य गिने जाते थे ॥१११॥ वे पर्वके दिन उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर चित्तको स्थिर कर मामाश्रित करने

१ प्रजाविराजतेषु । २ भरता निरलो स०, म० । ईगानाऽभिरता अ०, म० । ३ अनुच्यन्ति म् ।

४ नृपा । ५ स्वाधीन—न०, म०, म०, अ०, प० । ६ धर्मं अनपवर्तितम् । 'एकानं अनपवर्तित'

इतिभिधानाम् । ७ उपवास । ८ कथित । ९ मंत्रोपमादादिभावनासहितानि । १० प्रतिज्ञा कृत्वा ।

—माभ्याय स०, प० । ११ सामाधिकानुपवन्तम् ।

जिनान्स्मरणे तस्य समाधानमुपेयुष । शीघ्रित्याद् गात्रयन्धस्य १ स्तान्याभरणाभ्यहो ॥११३॥
 तथापि बहुचिन्तस्य धर्मचिन्ताऽभवद् दृढा । धर्मो हि चिन्तिते सर्वं चिन्त्य स्यादनुचिन्तितम् ॥११४॥
 तस्याखिला क्रियारम्भा धर्मचिन्तापुरस्सरा । जाता जातमहोदकं पुष्पपाकोत्पसम्पद ॥११५॥
 प्रातरुमीलिताक्ष सन् सन्ध्यारागाहणा दिश । स मेनेऽहृत्पदाभोजरगणेवानुरिञ्जता ॥११६॥
 प्रातश्च्यवनं नृदत्तं शान्धतमसं रविम् । भगवत्केवलाकस्य प्रतिबिम्बममस्त स ॥११७॥
 प्रभातमहोदत्तप्रभुद्वैकमलावरात् । हृदि सोऽप्याञ्जनालापकलापानिव शीतलान् ॥११८॥
 धार्मिकस्यास्य कामार्थचिन्ताऽभूदानुपदङ्गिकी १ । तात्पर्यं त्वभवद्वर्त्मं कृत्स्नश्रेयोऽनुबन्धितं ॥११९॥
 प्रातश्चत्याय धर्मस्थं ५ कृतधर्मनिचिन्तन । ततोऽर्थकामसम्पत्तिं सहामात्यैर्म्यंरूपयत् ॥१२०॥
 तत्पातुत्थितमात्रोऽसौ सम्पूज्य गृहद्वैवतम् । कृतमद्भगलनेपथ्यो ६ धर्मसिनमधिष्ठित ॥१२१॥
 प्रजाना सदसद्बुद्धचिन्तनं क्षणमासित । तत श्रायुक्तकान् स्वेषु नियोगेष्वन्वशाद् विभु ॥१२२॥
 नृपासनमयाध्यास्य महादर्शनं ७ मध्यम । नृपान् सम्भाषयामास सोवावसरकाङ्क्षिण ॥१२३॥
 काश्चिच्चालोकनं काश्चित्स्मृतेराभावणं परान् । काश्चित्समानदानाद्यं तपयामास पायिवान् ॥१२४॥

हुए जिनमन्दिरमें ही रहते थे और उस समय ठीक भूिनयोका आचरण धारण करते थे ॥११२॥
 जिनेन्द्रदेवका स्मरण करनेमें वे समाधानको प्राप्त हो रहे थे—उनका चित्त स्थिर हो रहा था और
 आश्चर्य है कि शरीरके बन्धन शिथिल होनेसे उनके आभूषण भी निकल पड़े थे ॥११३॥
 यद्यपि उन्हें बहुत पदार्थोंकी चिन्ता करनी पड़ती थी तथापि उनके धर्मकी चिन्ता अत्यन्त दृढ
 थी सो ठीक ही है क्योंकि धर्मकी चिन्ता करनेपर चिन्ता करने योग्य समस्त पदार्थोंका चिन्तवन
 अपने आप हो जाता है ॥११४॥ बड़े भारी फल देनेवाले पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हे अनेक सपदाएँ
 प्राप्त हुईं हैं ऐसे भरतकी समस्त क्रियाओंका प्रारम्भ धर्मके चिन्तवनपूर्वक ही होता था अर्थात्
 महाराज भरत समस्त कार्योंके प्रारम्भमें धर्मका चिन्तवन करते थे ॥११५॥ वे प्रातःकाल
 आठ सोलहर जब समस्त दिशाओंको सबेरेकी लालिमासे लाल लाल देखते थे तब ऐसा मानते
 थे मानो ये दिशाएँ जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी लालिमासे ही लाल लाल हो गईं हैं ॥११६॥
 जिसने रात्रिका गाढ अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसे सूर्यको प्रातःकालके समय उदय होता
 हुआ देखकर वे ऐसा समझकर उठते थे मानो यह भगवान्‌के केवलज्ञानका प्रतिबिम्ब ही हो
 ॥११७॥ प्रातःकालकी वायुके चलनेसे खिले हुए कमलोंके समूहको वे अपने हृदयमें विन्द
 भगवान्‌की दिव्यध्वनिके समूहके समान शीतल समझते थे ॥११८॥ वे बहुत ही धर्मत्मा
 थे, उनके काम और अर्थकी चिन्ता गीण रहती थी तथा उनका मुख्य तात्पर्य सब प्रकारका
 कल्याण करनेवाले धर्ममें ही रहता था ॥११९॥ वे सबेरे उठकर पहले धर्मत्मा पुरुषोंके साथ
 धर्मका चिन्तवन करते थे और फिर मन्त्रियोंके साथ अर्थ तथा कामरूप सपदाओंका विचार
 करते थे ॥१२०॥ वे शय्यामें उठते ही देव और गुरुओंकी पूजा करते थे और फिर माङ्गलिक
 वेग धारणकर धर्ममनपर आरुढ होते थे ॥१२१॥ वहाँ प्रजाके सदाचार और असदाचारका
 विचार करते हुए वे क्षणभर ठहरते थे तदनन्तर अधिवारियोंको अपने अपने कामपर नियुक्त
 करते थे अर्थात् अपना अपना कार्य करनेकी आज्ञा देते थे ॥१२२॥ इसके बाद सभाभवनके
 यौवनमें जाकर राजमहामनपर विराजमान होते तथा भेषके लिये अवसर चाहनेवाले राजाओं
 वा गन्मान करने थे ॥१२३॥ वे कितने ही राजाओंको दर्शनमें, कितनीहीको मुसातानमें,

१ गन्तव्यनि । २ निगागम्बन्धि । ३ विरलित । ४ अमर्या । ५ धर्मस्थं गृह । ६ विचारमनरो ।

७ मङ्गलपापद्वारः । ८ आगममन्त्रलक्षणोपम् । ९ तलागन् । १० गभादर्शन-अ०, स० । गभागदा-

१०, स०, म० । मद्दर्शनं येषु ते महादर्शनात्पेषां मध्यम । शय्यामध्यवर्ती शक्तिर्यथं ।

तत्रोपायनसम्पत्त्या समायातान् महत्तमान् । यचोहरांश्च^१ सम्मान्य कृतकार्यान् व्यसजंयत् ॥१२५॥
 कलाविदश्च नृत्यादिदर्शनैः समुपस्थितान् । पारितोषिकदानेन महता समनपंयत् ॥१२६॥
 ततो विसर्जितास्थानः प्रोन्थाय नृपविष्टरान् । स्वेच्छाविहारमकरोद् विनोदं सुभुमारकं^२ ॥१२७॥
 ततो मध्यदिनेऽभ्यर्ष्य कृतमञ्जनसविधिः । तनुस्थितिं स निर्वर्त्य निरविसत्^३ प्रसाधनम् ॥१२८॥
 चामरोत्क्षेपताम्रमूलदानमवाहनादिभिः । परिचेष्टरवेत्येनं परिवाराद्गणनाः स्वतः ॥१२९॥
 ततो भूषतोत्तरास्थाने स्थितः कनिषदं^४ पंः । समं विदाय^५ मण्डल्या विद्यागोष्ठोत्सवादयत् ॥१३०॥
 तत्र चारितासिन्यो नृपवल्लभिनाश्च तम् । परिवत्रुस्वास्त्यताश्च्यमवकर्कशाः ॥१३१॥
 तासामावापसंल्लापपरिहास^६ कथादिभिः । सुखासिगामसौ भेजे भोगाद्वांश्च भूतंश्चम् ॥१३२॥
 ततस्तुषारशोरेऽर्ह्य पर्यटन्मणिकुट्टिमे । बोक्षते स्म परा शोभान् श्रभितो राजयेदमनः ॥१३३॥
 सनमंतच्चिब^७ हश्चिबत् समात्मध्यासशीलके^८ । परिश्रामप्रितरुतेतो^९ रजे सुरभुमारवन् ॥१३४॥
 रजन्यामपि पट्टत्यम् उचितं चमरतिलः । तवाचरन् सुतेनेयं त्रियामा^{१०} मत्यग्राहयत् ॥१३५॥
 कदाचिदुचिता^{११} वेला नियोग इति केयलम् । मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः कृतवायोर्जिप चक्रभूत् ॥१३६॥
 तन्त्रायामगता चिन्ता नास्यासौद् विजितशितेः । तन्त्र^{१२} चिन्तैव नन्वस्य स्वतन्त्रस्येह भारते ॥१३७॥

किननोहीको चार्त्तालाभसे, किननोहीको सन्मानसे और किननोहीको दान आदिसे मनुष्ट करते थे ॥१२४॥ वे बहापर भेंट ले लेकर आये हुए बडे बडे पुग्पो तथा दूतोको सन्मानित कर और उनका कार्य पूराकर उन्हें विदा करते थे ॥१२५॥ नृत्य आदि दिग्दानेके लिये आये हुए कलाओके जाननेवाले पुग्पोको बडे बडे पारितोषिक देकर सतुष्ट करते थे ॥१२६॥ तदनन्तर मभा विमर्जन करने और राजसिंहासनसे उठकर कोमल श्रीदाओके माथ माथ अपनी इच्छानुसार विहार करते थे ॥१२७॥ तत्पश्चात् दोपहरका समय निकट आनेपर स्नान आदि करके भोजन करने और फिर अलंकार धारण करने थे ॥१२८॥ उस समय परिवारकी मित्रया स्वय आकर चमर डोलना, पान देना और पंर दायना आदिके द्वारा उनकी सेवा करती थी । ॥१२९॥ तदनन्तर भोजनके बाद बैठने योग्य भवनमें कुठ राजाओके माथ बैठकर चतुर लोगो की मडलीके साथ साथ विद्याकी चर्चा करते थे ॥१३०॥ वहा जवानोके मदमे जिह्ने उद्गुष्टता प्राप्त हो रही है ऐसी वेश्याए और प्रियरानिया आकर उन्हें चारो ओरमे घेर लेती थी ॥१३१॥ उनके आभाषण, परस्परकी बातचीत और हाम्पपूर्ण कथा आदि भोगोके माधनोमे वे वहाँ कुछ देरकर मुग्से बैठने थे ॥१३२॥ इसके बाद जब दिनका चौथाई भाग गेप रह जाता था तत्र मणियोंमे जडी हुई जमीनपर टहलने हुए वे चारो ओर राजमहलकी उत्तम शोभा देखने थे ॥१३३॥ कभी वे श्रीदासचिब अर्थात् श्रीदामें महायता देने वाले लोगोके यधोपग हाय रगकर इधर उधर घूमने हुए देवभुमारोके समान मुग्गोभित होने थे ॥१३४॥ रातमें भी चक्रवर्तीके योग्य जो कार्य थे उन्हें करने हुए वे मुग्गमें रात्रि ध्यनीत करते थे ॥१३५॥ यद्यपि वे चक्रवर्ती कृतकृत्य हो चुके थे अर्थात् विजय आदिना ममस्त कार्य पूर्ण कर चुके थे तथापि केवल नियोग ममभरर कभी कभी उचित गमयपर मप्रियोके साथ गडाह करते थे ॥१३६॥ जिन्होंने

१ महरारान् । २ दूतान् । ३ पत्नियो भव । ४ मृदुभि । ५ मध्याह्न । ६ अन्वभवत् । ७ अनुपपन्नम् । वन्त्रमाच्यभारग्यादि । आरन्ववेगो नेपथ्य प्रतिरुमं प्रसाधनम् । ८ पादमर्दन । ९ परिपर्व-
 ष्चरिरे । १० भोजनान्ते स्थानु योन्थास्थाने । ११ विट्मन्त्रेण । १२ विधोभारग । 'मन्त्रादा भयान्म
 मिय' इत्यभिधानात् । १३ मृगमयसम् । १४ श्रीदामहाय । श्रीदा सीना ष ममं ष' इत्यभिधानात् ।
 १५ अतो भुर्वाग्म एव योत्तन्मिन् । १६ इत्यन्त । १७ मत्रि नमति म् । १८ उचिततात्पर्येणम् ।
 १९ म्यगपुर्विनाम्, अथवा मन्त्रविनाम् । 'तन्त्रवपाने जिदाने मुखवाने परिच्छदे' इत्यभिधानात् ।

तेन^१ पाङ्गुष्यमभ्यस्तम् अपरिज्ञानहानये । शास्तोऽस्याविषक्षा इमा कृत^२ सान्ध्यादिचर्चया^३ ॥१३८॥
^१राजविद्याश्चतस्रोऽभू कदाचिच्च कृतक्षण^४ । व्याचक्ष्वौ^५ राजपुत्रेभ्य ह्यातये स विचक्षण ॥१३९॥
 कदाचिन्निधिरत्नानाम् श्रकरोत्स निरीक्षणम् । भाण्डगारपदे तानि तस्य तन्त्र^६पदेऽपि च ॥१४०॥
 कदाचिद्धर्मशास्त्रेव या स्वविप्रतिपत्तय^७ । निराचकार^८ ता कृत्स्ना ख्यापयन्^९ विश्ववि-मतम्^{१०} ॥१४१॥
 श्राप्तोपज्ञेषु तत्त्वेषु काश्चित् सजातसशयान् । ततोऽपाकृत्य सशीतेस्तत्त्व^{११} निरणीनयत्^{१२} ॥१४२॥
 तथाऽज्ञावर्षशास्त्रार्थ^{१३} कामनीतो च पुष्कलम् । प्रावीण्य प्रथयामास यथात्र न पर कृती^{१४} ॥१४३॥
^{१५}हस्तितन्त्रेऽश्वतन्त्रे च दृष्ट्वा स्वातन्त्र्यमीशितु । मूलतन्त्रस्य^{१६} कर्ताऽप्रमित्यास्या^{१७} तद्विद्वामभूत् ॥
^{१८}आयुर्वेदे स दीर्घायुःप्रायुर्वेदो नू मूर्तिमान् । इति लोको निरारेक^{१९} श्लाघते स्म निधीशिनम् ॥१४४॥
 तोऽमीतो^{२०} पदविद्याया स कृती^{२१} चागलद्धकृती^{२२} । स छन्दसाप्रतिच्छन्द^{२३} इत्यासीत् सम्मत सताम् ॥१४५॥
^{२४}तदुपसन्न निमित्तानि शाकुन^{२५} तदुपकमम्^{२६} । तत्सर्गो^{२७} ज्योतिषा^{२८} ज्ञान तन्मत तेन^{२९} तत्रयम्^{३०} ॥१४७॥

समस्त पृथिवी जीत ली है और जो इस भरतक्षेत्रमे स्वतन्त्र है ऐसे उन भरतको अपने तैया परराष्ट्रकी कुछ भी चिन्ता नहीं थी, यदि चिन्ता थी तो केवल तन्त्र अर्थात् स्वराष्ट्र की ही चिन्ता थी ॥१३७॥ उन्होने अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिये ही छह गुणोका अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रुरहित पृथिवीका पालन करते थे तब उन्हें सन्धि विग्रह आदिकी चर्चासे क्या प्रयोजन था ॥१३८॥ अतिशय विद्वान् महाराज भरत केवल प्रसिद्धिके लिये ही कभी कभी बड़े उत्साहके साथ राजपुत्रोके लिये आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार राजविद्याओका व्याख्यान करते थे ॥१३९॥ वे कभी कभी निधियो और रत्नोका भी निरीक्षण करने थे । क्योंकि निधियो और रत्नोमेसे कुछ तो उनके भाण्डारमे थे और कुछ उनकी सेनामें थे ॥१४०॥ कभी कभी वे सर्वज्ञदेवका मत प्रकट करते हुए धर्मशास्त्रमें जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे ॥१४१॥ भगवान् अरहन्तदेवके कहे हुए तत्त्वोंमें जिन किन्हींको सदेह उत्पन्न होता था उन्हें वे उस सदेहसे हटाकर तत्त्वोका यथार्थ निर्णय करते थे ॥१४२॥ इसी प्रकार वे अर्थशास्त्रके अर्थमें और कामशास्त्रमें अपना पूर्ण चातुर्य इस तरह प्रकट करते थे कि फिर इस ससारमें उनके समान दूसरा चतुर नहीं रह जाता था ॥१४३॥ हस्तितन्त्र और अश्वतन्त्रमें महाराज भरतकी स्वतन्त्रता देखकर उन शास्त्रोके जाननेवाले लोगोको यही विद्वाम हो जाता था कि इन सबके मूल शास्त्रोके कर्ता यही है ॥१४४॥ आयुर्वेदके विषयमें तो मत्र लोग निधियोके स्वामी भरतकी विना किसी शकाके यही प्रशंसा करते थे कि यह दीर्घायु क्या मूर्तिमान् आयुर्वेद ही है अर्थात् आयुर्वेदने ही क्या भरतका शरीर धारण किया है ॥१४५॥ इसी प्रकार मज्जन लोग यह भी मानते थे कि वे व्याकरण-विद्यामें कुशल हैं, मन्दाकारमें निपुण हैं, और छन्दशास्त्रके प्रतिविम्ब हैं ॥१४६॥ निमित्तशास्त्र सबसे पहले उन्हींके धनये हुए हैं, शकुनशास्त्र उन्हींके बहे हुए हैं और ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान उन्हीं-

१ चरित्रगा । २ पर्याप्तम् । अत्रमित्यर्थ । ३ सन्धिविग्रहभावादिविचारेण । ४ आन्वीक्षिकीत्रयी वार्ता दण्डनीतिचतस्रो रात्रविद्या । ५ इत्यागाह । ६ वदति स्म । ७ सैन्यस्थाने परिग्रहे बभूवुरित्यर्थ । ८ विगंबाना । ९ निराहृतवान् । १० प्रवटीकुर्वन् । ११ सर्वज्ञमतम् । १२ सशयान् । १३ तिष्ठोपम-कारणम् । १४ नीतिशास्त्रार्थ । १५ कुशल । १६ मज्जसात्रे । १७ मूलशास्त्राय । १८ इति श्रुतिः । १९ वैदिकशास्त्रे । २० तिष्ठान् । २१ प्याकरगमशास्त्रमपीतवान् । २२ कुशल । २३ मन्दाकारे । २४ प्रतिनिधिः । २५ तदुपसन्ननिमित्तानि । २६ मन् । तेन प्रथमाकम् । २७ शकुनशास्त्रम् । २८ तेषु प्रथम-शकुनशास्त्रम् । २९ तस्य भरतस्य श्रुतिः । ३० ज्योतिषशास्त्रम् । ३१ तेन कारणेन । ३२ निमित्तानिधियम् ।

स निमित्तं^१ निमित्तानां^२ तन्त्रे मन्त्रे सदाकृते । देवज्ञाने^३ परं देवमित्यभूत्संमनोऽधिकम्^४ ॥१४८॥
 तत्सम्भूतो सनुद्भूतम् अभूत् पुण्यलक्षणम् । उदाहरणमन्यत्र लक्षितं येन तत्तनोः ॥१४९॥
 अन्वेष्य कलाशास्त्रसद्ग्रहेषु कृतागमाः^५ । तमेवादसं^६ मालोक्य संशयांशाद्भ्ररंसितुः^७ ॥१५०॥
 'त्रेनास्य सहजा प्रज्ञा नूर्ध्वजन्मानुषद्विगिणी'^८ । तेनैवा विद्वद्विद्याम् जाता परिपतिः परा ॥१५१॥
 इत्यं सर्वेषु शास्त्रेषु कलाम् सकलात् च । लोके स सम्प्रति प्राप्य तद्विद्यानां मनोऽभवत् ॥१५२॥
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रज्ञाभारमिनो मनुः । वृत्स्तस्य लोके^९ वृत्तस्य स भजे नूनधारताम् ॥१५३॥
 राजसिद्धान्तवत्त्वतो^{१०} धर्मशास्त्रान्यतस्त्वित् । परिव्यातः फलाज्ञाने सोऽभून्मूर्खान् सुमेपसाम् ॥१५४॥
 इत्यादिराजं^{११} तत्सम्पाद् अहो राजपिनायकम्^{१२} । तत्सर्वं^{१३} भौममित्यस्य दिशात्तच्छ्रुतिर्न यशः ॥१५५॥

मालिनी

इति सरलकलानामे^{१४}कमोः^{१५} स चरी
 कृतमतिभिरजयं^{१६} सद्गगनं संविधितम् ।
 बुधतदति^{१७} सत्त्वान् बोधयन् विद्वद्विद्या
 व्यवृणुत्^{१८} बुधचरीत्युद्घनत्सर्वोत्तरेकुः^{१९} ॥१५६॥

की मृष्टि है इमलिये उक्त तीनों शास्त्र उन्हींके मत है ऐमा समझना चाहिये ॥१४७॥ वे निमित्त शास्त्रोंके निमित्त हैं, और तन्त्र, मन्त्र, यजुन तथा ज्योतिष शास्त्रमें उत्तम अधिष्ठाता देव है इस प्रकार मंत्र लोगोंमें अधिक मान्यताको प्राप्त हुए थे ॥१४८॥ महाराज भरतके उत्पन्न होनेपर पुण्यके मंत्र लक्षण उत्पन्न हुए थे इमलिये दूमरी जगह उनके शरीरके उदाहरण ही देने जाते थे ॥१४९॥ शास्त्रोंके जाननेवाले पुण्य ऊपर बहे हुए शास्त्रोंके निवाय अन्य कलाशास्त्रोंके सगहमें भी भरतको ही दर्पणके समान देखकर मंथयके अंगोमें विरत होने थे अर्थात् अपने अपने संगय दूर करते थे ॥१५०॥ चूंकि उनकी स्वभाविक बुद्धि पूर्वजन्मसे मार्ग रचनेवाली थी इमलिये ही उनकी समस्त विद्याओंमें उत्तम प्रगति हुई थी ॥१५१॥ इस प्रकार ममस्त शास्त्र और समस्त कलाओंमें प्रतिष्ठा पाकर वे भरत उन विद्याओंके जानने-वालोंमें मान्य हुए थे ॥१५२॥ इस विषयमें बहुत बहनेसे क्या लाभ है ? इतना बहना ही पर्याप्त है कि बुद्धिके पारगामी कुलकर भरत समस्त लीलाचारके सुप्रधार हो रहे थे ॥१५३॥ वे राजशास्त्रके तत्त्वोंको जानने थे, धर्मशास्त्रके तत्त्वोंके जानकार थे, और कलाओंके ज्ञानमें प्रसिद्ध थे । इस प्रकार उत्तम विद्वानोंके मन्त्रपर सुशोभित हो रहे थे अर्थात् मन्त्रमें श्रेष्ठ थे ॥१५४॥ अहो, इनका प्रथम राज्य क्या आश्चर्य करनेवाला है, यह सम्राट् है । राजपियोंमें सुप्र है, इनका मार्गभौम पद भी आश्चर्यजनक है उन प्रकार उनका मन समस्त विद्याओंमें उल्लेख रहा था ॥१५५॥ इस प्रकार जो ममस्त कलाओंका एवमात्र स्थान है, जो बुद्धिमान् पुण्योंके माय अविनाशी मित्रता करना चाहता है और 'यह विद्वानोंमें चरन्ती है अथवा विद्वान् चरन्ती है' इस प्रकार जिनकी कीर्तिरूपी पनाका फहरा रही है ऐमा यह चरन्ती भरत विद्वानोंकी मनामें ममस्त विद्याओंका उपदेश देना हुआ ममस्त विद्याओंका व्याख्यान

१ वारणम् । २ निमित्तशास्त्राणां । ३ ज्योतिषशास्त्रे । ४ स मनोऽधिकम् २० । स गजोऽधिकम् २०, २० । ५ मन्त्राणांशास्त्रम् । ६ मन्त्रम् । ७ विरमन्ति स्म । ८ शास्त्रेण । ९ अनुभवन्विद्वती । १० नृपविद्याव्यवसाय । ११ आदिगण्य प्रजा । १२ राजपिनायक्य प्रजा । १३ सर्वभूमिगण्य प्रजा । १४ सुप्र । १५ सुः । १६ अविनाशी । १७ मन्त्रि बोधयन् । १८ निरन्तराणाम् । १९ विद्वान् ।

जिनविहितमनून सस्मरन् धर्ममार्गं
 स्वयमधिगतस्त्वो बोधयन् मार्गमन्यान् ।
 कृतमतिरखिला क्षमा पालयन्नि सपत्न्या
 चिरमरमत भोगंभूरिमार्गं स सम्प्राद् ॥१५७॥

शार्दूलविक्रीडितम्

सङ्गमीवाग्वनितासमागमसुखस्यैकाधिपत्य दधत्
 दूरोत्सारितदुर्गंय प्रशामिनीं तेजस्वितामुदहन् ।
 न्यायोपार्जितवित्तकामघटन शस्त्रे च शास्त्रे कृती
 राज्ञाय परमोदयो जिनशुपाभयेसर सोऽभवत् ॥१५८॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहा-
 पुराणसङ्ग्रहे भरतराजस्वप्नदर्शनतत्फलोपवर्णन
 नाम एकचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४१॥

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

'मध्येसभमया-वेद्यु निविष्टो' हरिविष्टरे । क्षात्र^१ वृत्तमुपादिशत्तत्तितान्^२ पायिवान् प्रति ॥१॥
 ध्रुयता भो महात्मान सर्वे^३ क्षत्रियपुङ्गवा । क्षत्रत्राणे नियुक्ता स्य^४ ध्रुयमाद्येन वेपसा ॥२॥
 तत्राणे च नियुक्ताना वृत्त व पञ्चयोदितम् । तत्रिसम्य^५ यथाम्नाय प्रवर्तंश्च प्रजाहिते ॥३॥
 तच्चेद कुलमत्यात्मप्रजानामनुपालनम् । समञ्जसत्व चेत्येवम् उद्दिष्ट पञ्चभेदभाक् ॥४॥
 कुलानुपालन तत्र कुलान्माप्रानुरक्षणम् । कुलोचितसमाचारपरिरक्षणलक्षणम् ॥५॥
 क्षत्रियाणा कुलान्माद्य कोदुद्गान्चेत्रिसम्यताम्^६ । आद्येन वेपसा सृष्ट सर्गोऽय क्षत्रपूर्वक^७ ॥६॥
 स चंप भारत 'वर्षमवतीर्णो दिवोऽप्रत । पुरा^८ भवे समाराध्य रत्नत्रितयमूर्जितम् ॥७॥
 द्विरष्टी भावनास्तत्र तीर्थकुत्वोपपाविनी । भावयित्वा शुभोदकां द्युलोकाप्रमधिष्ठित^९ ॥८॥
 तेनास्मिन् भारते वर्धे धर्मतीर्थप्रवर्तने । तत 'कृतावतारेण क्षात्रसर्गं प्रवर्तित ॥९॥
 तत्त्व कर्मभूमित्वाद् अद्यत्वे द्वितयो प्रजा । क्तंथ्या 'रक्षणोपेका प्रजात्या रक्षणोद्यता ॥१०॥
 रक्षणान्युद्यता येऽत्र क्षत्रिया स्युस्तदन्वया । सोऽन्वयोऽनादितन्तत्या बीजवृक्षवदिष्यते ॥११॥

अथानन्तर-किसी एक दिन सभाके बीचमें सिंहासनपर बैठे हुए भरत इकट्ठे हुए राजाओके प्रति क्षात्रधर्मका उपदेश देने लगे ॥१॥ वे कहने लगे कि हे समस्त क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महात्माओ, आप लोगोके आदित्रह्या भगवान् वृषभदेवने दु क्षी प्रजाकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया है ॥२॥ दु ग्नी प्रजाकी रक्षा करनेमें नियुक्त हुए आप लोगोका धर्म पाँच प्रकारका कहा है उसे सुनकर तुम लोग दाल्त्रके अनुसार प्रजाका रित करनेमें प्रवृत्त होओ ॥३॥ वह तुम्हारा धर्म कुलका पालन करना, वृद्धिका पालन करना, अपनी रक्षा करना, प्रजाकी रक्षा करना और समजसपना इस प्रकार पाँच भेदवाला कहा गया है ॥४॥ उनमेंसे अपने कुल-म्नायकी रक्षा करना और कुलके योग्य आचरणकी रक्षा करना कुल-मात्रन कहा जाता है ॥५॥ अद्य 'क्षीप्रयेत्त कुलान्माद्य चेसा है ?' सो 'भूमिधे । अतिश्रह्या भगवत्स्य च्युपभेद्येने क्षत्रपूर्वक ही इस सृष्टिकी रचना की है अर्थात् सबसे पहले क्षत्रियवर्णकी रचना की है ॥६॥ जिन्होंने पहले भवमें अतिसय श्रेष्ठ रत्नत्रयकी आराधना कर तथा तीर्थ कर पद प्राप्त करानेवाली और शुभ फल देनेवाली सोलह भावनाओका चिन्तनकर स्वर्गलोके सबसे ऊपर अर्थात् सर्गार्थसिद्धिमें निराम किया था वे ही भगवान् सर्गार्थसिद्धिमें आपर इस भारतवर्षमें अवतीर्ण हुए हैं ॥७-८॥ जिसमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनी है ऐसे इस भारतवर्षमें सर्गार्थसिद्धिमें अवतार लेकर उन्होंने क्षत्रियोंकी सृष्टि प्रवृत्त की है ॥९॥ वह क्षत्रियोंकी सृष्टि किस प्रकार प्रवृत्त हुई थी ? इसका समाधान यह है कि आज धर्मभूमि होनेसे प्रजा दो प्रकारकी पाई जाती है । उनमें एक प्रजा तो वह है जिसकी रक्षा करनी चाहिये और दूसरी वह है जो रक्षा करनेमें तत्पर है ॥१०॥ जो प्रजा रक्षा करनेमें तत्पर है उसीकी वधपरम्पराको क्षत्रिय कहते हैं यद्यपि यह वध अनादिवात्की मततिमे बीज वृक्षके समान अनादि बालका है तथापि

१ गभामध्य । २ निविष्टा ल०, म० । ३ क्षत्रियगम्बधि । ४ भित्तान् । ५ सर्व-प०, ७०, म० ।
 ६ भव प० । ७ श्रुवा । ८ ध्रुयनाम । ९ क्षत्रवृत्त । १० क्षत्रम् । ११ पृथग्भिन । १२ आश्रित ।
 १३ इनावतारेण ६०, ग०, अ० । १४ रगिन् युग्या ।

विशेषतरतु तत्सर्गं श्रेयसात्तद्व्यवेक्षया । तेषां सम्प्रतिपाद्यार प्रजायै न्यायवृत्तता ॥१३॥
 स तु न्यायोऽनतिशान्त्या धर्मस्यार्थं तमजंनम् । रक्षणं यथंगं धारय पात्रे च विनियोगम् ॥१३॥
 संपा पतुष्टयो वृत्तिन्याय सद्गुरुशिरित । जंगधर्मानुवृत्तिश्च न्यायो लोकोत्तरो मन ॥१४॥
 दिव्यमूर्त्तैरुत्पद्य जिनादुत्पादयज्जिनात् । रत्नत्रयं तु 'तद्योनि'पात'स्मादयोनिना ॥१५॥
 ततो महान्ययोत्पन्ना नृपा लोरोत्तमा मता । पविस्त्रियता स्वय धर्म्यं स्यापयत परानपि ॥१६॥
 तंस्तु सर्वप्रयत्नेन धार्यं स्वान्यवरक्षणम् । तत्पाला वय धार्यमिति चेत्तदनुद्यते ॥१७॥
 स्वय महान्वयस्त्रेण महिष्णि क्षत्रिया स्थिता । धर्मास्थिया न शोपादि' ग्राह्य सं. परतिद्रग्निनाम् ॥१८॥
 तच्छ्रेयादिग्रहे दोषं त्स्त्रेणाहात्म्ययिच्युति । ध्रुवाया गृह्यदक्षास्मिन् ध्रतस्तत्परिवर्जनम् ॥१९॥
 माहात्म्यप्रच्युतिस्तत्तत्त्वात् शिरोनतिम् । तत् 'शोपाद्युपादाने स्यान्निष्कृष्टव्यमात्मन ॥२०॥
 प्रद्विपन् परपापञ्जी विदपुष्पाणि निक्षिपेत् । यद्यस्य मूर्ध्नि नवनेय स्यादपायो महीपते ॥२१॥
 वशीकरणपुष्पाणि निक्षिपेद्यदि मोहने^{१०} । ततोऽप्य मूढवद्बुद्धि उवेयादन्यवद्यताम् ॥२२॥
 तच्छ्रेयाशोर्वच^{११} शान्तिवचनाद्यन्यलिद्रग्निनाम्^{१२} । धार्यं च परिहृत्य भवेन्न्यव^{१३} कृलताऽन्यथा^{१४} ॥२३॥

विशेषता इतनी है कि क्षेत्र और काण्की अपेक्षासे उसकी सृष्टि होती है । तथा प्रजाके लिये न्यायपूर्वक वृत्ति रखना ही उनका योग्य आचरण है ॥११-१२॥ धर्मका उत्लघन न कर घनका क्रमाना, रक्षा करना, बढाना और योग्य पानमे दान देना ही उन क्षत्रियोका न्याय कहलाता है ॥१३॥ इस चार प्रकारकी प्रवृत्तिको सज्जन पुष्पोंने क्षत्रियोका न्याय कहा है तथा जैनधर्मके अनुसार प्रवृत्ति करना ससारमें सबसे उत्तम न्याय माना गया है ॥१४॥ दिव्यमूर्त्तिको धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्पन्न होकर तीर्थ करको उत्पन्न करनेवाला जो रत्नत्रय है वही क्षत्रियोकी योनि है अर्थात् क्षत्रिय पदकी प्राप्ति रत्नत्रयके प्रतापसे ही होती है । यही कारण है कि क्षत्रिय लोग अयोनिज अर्थात् बिना योनिके उत्पन्न हुए कहलाते हैं ॥१५॥ इसलिये बड़े बड़े वशोमे उत्पन्न हुए राजा लोग लोकोत्तम पुरुष माने गये हैं । ये लोग स्वयं धर्ममार्गमें स्थित रहते हैं तथा अन्य लोगोको भी स्थित रखते हैं ॥१६॥ उन क्षत्रियोको सर्वप्रकारके प्रयत्नोसे अपने वशकी रक्षा करनी चाहिये । वह वशकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये यदि तुम लोग यह जानना चाहते हो तो मे आगे कहता हूँ ॥१७॥ बड़े बड़े वशोमें उत्पन्न होनेसे क्षत्रिय लोग स्वयं बडप्पनमें स्थिर हैं इसलिये उन्हें अन्यमत्तियोके धर्ममे श्रद्धा रखकर उनके शोषाक्षत आदि ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥१८॥ उनके शोषाक्षत आदिके ग्रहण करनेमें क्या दोष है ? कदाचित् कोई यह कहे तो उसका उत्तर यह है कि उससे अपने महत्त्वका नाश होता है और अनेक विघ्न या अनिष्ट आते हैं इसलिये उनका परित्याग ही कर देना चाहिये ॥१९॥ अन्य मतावलम्बियोको शिरोनति करनेसे अपने महत्त्वका नाश हो जाता है इसलिये उनके शोषाक्षत आदि लेनेसे अपनी निष्कृष्टता हो सकती है ॥२०॥ संभव है द्वेष करनेवाला कोई पाण्डो राजाके शिरपर विपपुष्प रख दे तो इस प्रकार भी उसका नाश हो सकता है ॥२१॥ यह भी हो सकता है कि कोई वशीकरण करनेके लिये इसके शिरपर वशीकरण पुष्प रख दे तो फिर यह राजा पागलके समान आचरण करता हुआ दूसरोकी वश्यताको प्राप्त हो जावेगा ॥२२॥ इसलिये राजाओको अन्यमत्तियोके शोषाक्षत, आशीर्वाद और शान्तिवचन

१ भरतभ्रातृवर्गिभूत्पारिवर्षीवर्गान् । २-रुद्राहृत व०, ल०, म० । ३ क्षत्रियाणांमुत्पत्तिस्थानम् ।

४ हरमान् धारणात् । ५ अनुबध्यते ।-दनुच्यते प०, ख०, म० । ६ शोषाक्षतस्नानोद्वादिक्म् । ७ अयं निद्रित् । ८ शोषादिदानु धारणात् । ९ मोहने निमित्ते । ११ तत् कारणात् । १२ शान्तिमन्त्र-पुष्पाद्यानादि । १३ नीररुत्ता । १४ तच्छ्रेयादिभ्योवार्प्रकारेण ।

जैतास्तु पापिवाग्नेयाम् अर्हत्यादोषसोविताम् । तद्वेदान्मन्त्रिणांश्च यतः पापक्षयो भवेत् ॥२४॥
 रत्नत्रितयमूर्तिनाम् आदिशत्रियवंशजाः । जिवाः मनामघोर्मायाम् अस्तच्छेपघातणम् ॥२५॥
 यथा हि कुलपुत्रानां मातयं वृद्धतिरोद्भूतम् । माग्नेयैव जिनेन्द्राद्यस्तन्मिन्त्यादिमूर्तिपितृन् ॥२६॥
 कथं मूर्तिजनादेशां शेषोपादानमिन्त्यपि । नारायणं तत्सजातीयास्ते रात्रपरमर्षयः ॥२७॥
 अक्षत्रियाश्च वृक्षन्वाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः । यतो रत्नत्रयायत्तन्मना तेषां तद्गुणाः ॥२८॥
 ततः स्थितमिदं जंगमनाद्व्यभनस्थिताः । क्षत्रियाणां न शेषादिप्रदानेऽपिभृता इति ॥२९॥
 कुलानुपालने यन्मन् अतः कूर्वन्तु पापिवाः । अन्ययान्यैः प्रनामैरन् पुराणानामवेदानात् ॥३०॥
 कुलानुपालनं प्रोक्तं वश्यं मन्थनुपायम् । भक्तिहिताहितज्ञानमात्रिकामुत्रिरापयोः ॥३१॥
 तन्पालनं कथं स्यात्त्वेद् अविद्यापरिद्वन्द्वनात् । मिथ्याज्ञानमविद्या स्याद् अन्तश्चे तत्त्वभाषना ॥३२॥
 प्राप्नोपत्तं भवेत्तद्वद् प्राप्नो दोषादिति क्षयात् । तस्मात्तन्मन्मन्त्येवमनोमत्तमपाश्रितुम् ॥३३॥

आदिका परित्राग कर देना चाहिये अन्यथा उनके कुलमें हीनता ही मक्षती है ॥२३॥ राजा
 लोग जैन हैं इसलिए अरहन्तदेवके चरणोंकी सेवा करनेवाले उन राजाओंको अर्हन्तदेवके
 सेवादान आदि ग्रहण करनेकी अनुमति देना न्यायबुद्धत ही है क्योंकि उनसे उनके पापका क्षय
 होता है ॥२४॥ रत्नत्रयी मूर्तिरूप होनेसे आदि क्षत्रिय श्री वृषभदेवके वंशमें उत्पन्न हुए
 जिनेन्द्रदेव उन राजाओंके एकही गोत्रके भाई-बन्धु हैं इसलिए भी उन्हें उनके सेवाक्षत आदि
 धारण करना चाहिये । भावार्थ—रत्नत्रयी मूर्ति होनेसे जिन प्रकार अन्य तीर्थंकर भगवान्
 वृषभदेवके वंशज कह्याते हैं उन्ही प्रकार ये राजा लोग भी रत्नत्रयी मूर्ति होनेसे भगवान्
 वृषभदेवके वंशज कह्याते हैं । एक वंशमें उत्पन्न होनेसे ये सब परम्परमें एक गोत्रवाले भाई-
 बन्धु ठहर्ने हैं इसलिए राजाओंको अपने एकगोत्री जिनेन्द्रदेवके सेवाक्षत आदिका ग्रहण करना
 उचित ही है ॥२५॥ जिन प्रकार कुलपुत्रोंको गुरुदेवके गिरपर धारण की हुई माला मान्य
 होती है उन्ही प्रकार जिनेन्द्रदेवके चरणोंके स्पर्शसे मुग्धोभित हुई माला आदि भी राजाओंको
 मान्य होनी चाहिये ॥२६॥ वदाचित् कोई यह बहूँ कि राजाओंको मूर्तियोंसे सेवाक्षत
 आदि किस प्रकार ग्रहण करना चाहिये तो उनकी यह गंता ठीक नहीं है क्योंकि राजपि और
 परमपि दोनों ही मंजातीय हैं ॥२७॥ जो क्षत्रिय नहीं हैं वे भी दीक्षा लेकर यदि मन्मन्त्राग्नि
 धारण कर लेते हैं तो क्षत्रिय ही हो जाते हैं इसलिए रत्नत्रयके आधीन जन्म होनेसे मूर्तिगज
 भी राजाओंके समान क्षत्रिय माने जाते हैं ॥२८॥ उपर्युक्त उल्लेखसे यह ध्यान निश्चित हो
 चुकी कि जैन मतमें भिन्न मतवाले लोग क्षत्रियोंकी सेवादान आदि देनेके अधिकारी नहीं हैं
 ॥२९॥ इसलिए राजा लोगोंको अपने कुलकी रक्षा करनेमें मदा यत्न करने रहना चाहिये
 अन्यथा अन्य मतावरुन्धो लोग भूटे पुगणोंका उपदेश देकर उन्हें उग लेंगे ॥३०॥ इस
 प्रकार क्षत्रियोंका कुलानुपायन (कुलके आम्नायनी रक्षा करना) नामका पदार्थ धर्म कह
 चुके जय दूनग मन्थनुपालन (शुद्धिनी रक्षा करना) नामका धर्म बहूँ है । इस लोक तथा
 परलोक मन्मन्त्री पदार्थोंके हिन-अहितका ज्ञान होना बुद्धि कह्याती है ॥३१॥ उस बुद्धिका
 पालन किस प्रकार हो सकता है ? यदि यह जानना चाहो तो उसका उत्तर यह है कि अविद्या
 का नाश करनेमें ही उसका पालन होना है । मिथ्या ज्ञानको अविद्या कहते हैं जो अज्ञानोंमें
 तदाबुद्धि होना मिथ्या ज्ञान कह्याता है ॥३२॥ जो अर्हन्तदेवका कर्ता हुआ ही बशी मन्त्र

१ मत ल०, म० । २ क्षत्रियाणाम् । ३ भूषणम् । ४ क्षत्रियणाम् । ५ तन्मनामर्षातिमदा ।

६ मन्त्र । ७ विनगुणम् । ८ प्रतीक्षितम् । ९ वश्यम् । १० आरम्भ ।

राजविद्यापरिज्ञानाद्दिव्येष्वे दृष्टा मतिः । धर्मशास्त्रपरिज्ञानमतिर्लोचद्वयाश्रिता ॥३४॥
 क्षत्रियास्तीर्थमुत्पाद्य षेऽभूयन् परमपंथः । ते महादेवदाब्दाभिधेया माहात्म्ययोगतः ॥३५॥
 आदिसत्रिययुक्तस्थाः पार्थिया ये महान्वयाः । महत्त्वानुभूतास्तेऽपि महादेवप्रयां गताः ॥३६॥
 तद्देव्यश्च महादेव्यो महाभिजनयोगतः । महद्भिः परिणीतत्वान् प्रसूतेऽच महात्मनाम् ॥३७॥
 इत्येवमस्त्विते पक्षे जंनैरन्यमताश्रयो । यदि कश्चित् प्रतिभूयान्मिथ्यात्वोपहृताशयः ॥३८॥
 वयमेव महादेवा जगन्निस्तरका वयम् । नास्मदाप्तात् परोऽस्त्याप्तो मत् नास्मन्मतात्परम् ॥३९॥
 इत्यत्र ब्रूमहे नैतत्सारं संसारचारिधेः । यः समुत्तरणोपायः स मार्गो जिनदेहितः ॥४०॥
 आप्तोऽहंस्वीतदोपत्वाद् आप्तम्मन्यास्ततोऽपरं । तेषु यागात्मभाग्यातिशयानामपिभावनात् ॥४१॥
 बागद्यतिशयोपेतः सार्वः सर्वार्थदुग्जिनः । स्वादाप्तः परमेष्ठी च परमात्मा सनातनः ॥४२॥
 स बागतिशयो ज्ञेयो येनायं विभुरक्रमात् । वचसंकेन दिव्येन प्रीणपत्यतितानं सभाम् ॥४३॥
 तथाऽऽत्मातिशयोऽप्यस्य दोषावरणसङ्घनात् । अनन्तज्ञानदुर्गवीर्यसुखातिशयसन्निधिः ॥४४॥
 प्रातिहार्यमयी भूतिः उद्भूतिश्च सभावनेः । गणाश्च द्वादशेत्येषु स्याद्भाग्यातिशयोऽहंतः ॥४५॥

ही सकता है और अरहत भी वही हो सकता है जो ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मका क्षय कर चुका हो । इसलिये अपने मनका मल दूर करनेके लिये अरहन्तदेवके मतका अभ्यास करना चाहिये ॥३३॥ राजविद्याका परिज्ञान होनेसे इस लोक सम्बन्धी पदार्थों में वृद्धि दृढ़ हो जाती है और धर्मशास्त्रका परिज्ञान होनेसे इस लोक तथा परलोक दोनों लोक सम्बन्धी पदार्थोंमें दृढ़ हो जाती है ॥३४॥ जो क्षत्रिय तीर्थ उत्पन्न कर परमपि हो गये हैं वे अपने माहात्म्यके योगसे महादेव कहलाते हैं ॥३५॥ बड़े बड़े वंशोंमें उत्पन्न हुए जो राजा लोग आदिसत्रिय-भगवान् वृषभदेवके चारित्र्यमें स्थिर रहते हैं वे भी माहात्म्यके योगसे महादेव इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ ऐसे पुरुषोंकी स्त्रिया भी बड़े पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेसे बड़े पुरुषोंके द्वारा विवाहित होनेसे और महापुरुषोंको उत्पन्न करनेसे महादेवियां कहलाती हैं ॥३७॥ इस प्रकार जैनियोंके द्वारा अपना पक्ष स्थिर कर लेनेपर मिथ्यादर्शनसे जिसका हृदय नष्ट हो रहा है ऐसा कोई अन्यमतावलम्बी पुरुष यदि कहे कि हम ही महादेव हैं, ससारते तारनेवाले भी हम ही हैं, हमारे देवके सिवाय अन्य कोई देव नहीं है और हमारे धर्मके सिवाय अन्य कोई धर्म नहीं है ॥३८-३९॥ परन्तु इस विषयमें हम यही कहते हैं कि उसका यह कहना सारपूर्ण नहीं है क्योंकि ससारसमुद्रसे तिरनेका जो उपाय है वह जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ मार्ग ही है ॥४०॥ रागद्वेष आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण एक अहंन्तदेव ही आप्त है उनके सिवाय जो अन्य देव हैं वे सब आप्तमन्य हैं अर्थात् भूठमूठ ही अपनेको आप्त मानते हैं क्योंकि उनमें वाणी, आत्मा और भाग्यके अतिशय का कुछ भी निश्चय नहीं है ॥४१॥ जिनेन्द्र भगवान् वाणी आदिके अतिशय से सहित हैं, सबका हित करनेवाले हैं, समस्त पदार्थोंकी माशात् देखनेवाले हैं, परमेष्ठी हैं, परमात्मा हैं और सनातन हैं इसलिये वे ही आप्त हो सकते हैं ॥४२॥ भगवान् अरहन्तदेव अपनी जिस एक दिव्य वाणीके द्वारा समस्त सभावों सतुष्ट करने हैं वही उनकी वाणीका अतिशय जानना चाहिये ॥४३॥ इसी प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मके अत्यन्त क्षय हो जानेसे जो उनके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त मग्य और अनन्त बलकी गमीपता प्रकट होती है वही उनके आत्माका अतिशय है ॥४४॥ तथा आठ प्रातिहार्यरूप विभूति प्राप्त होना, समवगरणभूमिकी रचना होना

बागादतिशयैरेभि ब्रह्मिभोजन्यैषोचरे । भगवान्निष्ठितार्थोर्द्धन् परमेष्ठो जादगुह ॥४६॥
 न च तादृशिव बरिधन् पुत्रानति नवान्तरे । तनोज्ययोगं व्यावृत्त्या सिद्धमाप्तन्महर्षि ॥४७॥
 इत्याप्तानुमन क्षात्रम् इम धर्ममनुस्मरन् । मनान्तरादनाप्तोपादानं स्वान्वय विनिवर्तयेत् ॥४८॥
 वृत्तादनात्मनीनादौ स्यादेवमनुरक्षिता । तद्रक्षणोच्च सरज्ञेन् क्षत्रिय क्षितिमदनाम् ॥४९॥
 उन्नत्यर्थवार्यहस्त्वस्य भूयोऽप्याविद्विचकोर्यया । निदर्शनानि श्रेष्ठ्यत्र वक्ष्यामन्मान्यनुक्रमान् ॥५०॥
 व्यवनपे पुण्यायस्य स्थान् पूर्यनिदर्शनम् । तथा निगतदृष्टान्त स समातिनिदर्शन ॥५१॥
 ज्ञेय पुष्टदृष्टान्तो नाम भुवनैतरात्मनो । यन्निदर्शनमावेन भुवनयुक्तयो ममर्थवत् ॥५२॥
 सत्तारोन्द्रियविज्ञानदुर्बोयसुखचारना । तस्याधानो च निर्वेष्टुं यत्ने मुपलभ्यया ॥५३॥
 भुवनस्तु न तथा किन्तु गुणैरुत्तरतोन्द्रियं । पर श्रेष्ठ्य स्वनाद्भूतम् अनुमुद्रत्ने निरन्तरम् ॥५४॥
 तत्रैन्द्रियवद्विज्ञानं स्वल्पज्ञानतया स्वयम् । पर शास्त्रोपयोगाय श्रयति ज्ञानवित्तकम् ॥५५॥
 तर्पेन्द्रियवदुर्बोयसि श्रान्तमात्राभादर्शनं । प्रथोना रिप्रदृष्टाना नरेन् सदशनोन्मुक् ॥५६॥
 तर्पेन्द्रियवदुर्बोयसि सहापापैक्षयेमिनम् । कार्यं पटयितुं वाञ्छेन् स्वय तत्साधनात्म ॥५७॥
 तत्रैन्द्रियमुखो कामनोर्गैरल्पतन्मुमना १ । वाञ्छेत् सुख परार्थोन्म इन्द्रियायानुत्तयत् १ ॥५८॥

जोर बारह नमाण होना यह मत्र अरहन्देवके नाग्यका अनिघाय है ॥४५॥ जा जिन्ही दूसरो में न पाये जानेवाले इन वाणी आदिके अनिघायोने महित है तथा कृतकृत्न है ऐसे भगवान् अरहन् परमेष्ठी ही जगतके गर है ॥४६॥ अन्य किनी भी मतमें ऐसा अरहन्देवके नमान कोई पुण्य नहीं है इन्द्रिये अन्य योगकी व्यावृत्ति होनेसे अरहन्देवमें ही आप्तपना सिद्ध होता है ॥४७॥ इस प्रकार आप्तके द्वारा कहे हुए इस क्षात्रधर्मका स्मरण करते हुए क्षत्रियोको अनाप्त पुण्योके द्वारा कहे हुए अन्य मनोमें अपने वनको पृथक् करना चाहिये ॥४८॥ इस प्रकार जिनमें आत्मज्ञान हित नहीं है ऐसे आचरणमें अपनी बुद्धिको गन्ना की जा सकती है और बुद्धिकी रक्षाने ही क्षत्रिय अत्रण्ड पृथिवीकी रक्षा कर सकता है ॥४९॥ ऊपर जो पदार्थका स्वरूप कहा है उसीको फिर भी प्रकट करनेकी इच्छामे यहापर उमानुमाग गीन उदाहरण कहते हैं ॥५०॥ अपना पुण्याय प्रकट करनेके लिये पहला पुण्यका दृष्टान्त है, दूसरा निगम अर्थान् बेडीका दृष्टान्त है और तीसरा नमानी जीवोका दृष्टान्त है ॥५१॥ जिन उदाहरणमें मुन और कर्मगन महित जीवोके मोक्ष और वन्य दोनो अवस्थाजोका ममर्थन किया जावे उसे पुण्यका दृष्टान्त अथवा उदाहरण जानना चाहिये ॥५२॥ यह नमानी जीव मुन प्राप्त करनेकी इच्छामे इन्द्रियोके उन्नत हुए ज्ञान, दर्शन, वीर्य, मुन और मुन्द्रगतो शरीरगुणो धर्मों ही अनुभव करनेका प्रयत्न करता है ॥५३॥ परन्तु मुन जीव ऐसा नहीं करता वह तो ऊपर कहे हुए अतीन्द्रिय गुणोमें अपने स्वाधीन हुए परम मुनका निरन्तर अनुभव करना रहता है ॥५४॥ इनमें ऐन्द्रियन ज्ञानवाग नमारी जीय स्वय अन्य जानी हनिसे गान्तोका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ज्ञानका चिन्तन करतेवाके अन्य पुण्योका आश्रय गेना है ॥५५॥ इसी प्रकार जिनसे इन्द्रियोमें देवने की शक्ति है ऐसा पुण्य अपने नमीपत्नी कु उ पदार्थोको ही देग मन्ना है उन्मिये वह दूबकी पदार्थोको देखनेके लिये नदा उन्नति होता रहता है ॥५६॥ जिनसे इन्द्रियोमें उन्नत हुआ वीर्य है वह किनी दृष्ट कार्योके स्वय करनेमें अनमर्थ होकर उसे दूसरेकी नहायनाको अपेक्षा में करना चाहता है ॥५७॥ तथा जिनसे इन्द्रियजनित मुन है ऐसा पुण्य काम भोगादिको

१ अनेके बागादतिशययोगोपादानात् । २ जिनै । ३ क्षात्रानाधर्मोक्तान् । ४ कामनिर्वादनार्थं । ५ दर्शनयो । ६ अनुभवितुम् । ७ इन्द्रियातिन्द्रियानिर्गम्य । ८ चिन्तयत् ९० । निगतम् ९०, ९० । ९ इन्द्रियजनितदर्शनोपादानात् । १० कर्तुम् इन्द्रियजनित ज्ञाननान्तर्गतं । ११ दूबवित्तम् । १२ गन्तुम् । १३ विरमनाच्छेदात् ।

तथेन्द्रियकृतौर्ध्वः स्नानमान्यानुत्पन्नः । विभूषणश्च तौर्ध्वं तस्मिन्तुम्भितप्यति ॥५६॥
 दोषयानुमलस्थान देहनेन्द्रियकं वहन् । पुमान्विव्राणभंघञ्यतद्रक्षास्वाकुलो भवेत् ॥६०॥
 दोषान्पश्येश्व १'जात्यादीन् देहार्तस्त'जिहासया' । प्रेक्षाकारी' तर्पः धनु' प्रयस्यति यदा पादा ॥६१॥
 स्वोक्तुर्बन्दिन्द्रियावाप्तं सुप्तमापुश्च तद्गतम् । आयासान्तरमन्विच्छेत् प्रेक्षमाणः प्रणश्वरम् ॥६२॥
 यस्त्वनीन्द्रियवित्तानदुर्वीर्यंमुखसन्ततिः । शरीरावाप्तसौर्ध्वैः स्वात्मभूतैरधिष्ठितः ॥६३॥
 तस्योक्तदोषमंस्पर्शो' भवेन्नैव कदाचन । तद्गानाप्तस्ततो' श्रेयः स्वादनाप्तस्त्वतद्गुणः ॥६४॥
 स्फुटीकरणमस्पर्श' वाक्यार्थस्याधुनोद्यते । यनोऽनाविष्टृतं तत्त्वं तत्त्वनो' नाद्युद्यते ॥६५॥
 तद्यथाऽनोन्द्रियज्ञानः शास्त्रार्थ' न परं श्रेयः । शास्ता स्वयं त्रिकातज्ञः केवलार्थललोचनः ॥६६॥
 तथाऽनोन्द्रियद्वानार्थी स्वादुर्वीर्यदर्शनः । तेनादृष्टं न वै किञ्चिद्युगपद्विद्वद्वश्वना ॥६७॥
 शायिकानन्तवीर्यश्च नान्यसाचि'व्यमोक्षते । कृतकृत्यः स्वयं प्राप्तलोकाप्रशिखरालयः ॥६८॥

अत्यन्त उत्कठित होतां हुआ इन्द्रियोके विषयोकी तृष्णासे पराधीन सुखकी इच्छा करता है ॥५८॥ इसी प्रकार इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाली सुन्दरतासे युक्त पुरुष स्नान, माला, विलेपन और आभूषण आदिसे अपनी सुन्दरताका सस्कार करना चाहता है । भावार्थ—आभूषण आदि धारणकर अपने शरीरकी सुन्दरता बढ़ाना चाहता है ॥५९॥ दोष, धातु और मलके स्थान स्वरूप इस इन्द्रियजनित शरीरको धारण करता हुआ पुरुष भोजन और औषधि आदिके द्वारा उसकी रक्षा करनेमें सदा व्याकुल रहता है ॥६०॥ जन्म मरण आदि अनेक दोषोको देखता हुआ और शरीरसे दुखी हुआ कोई विचारवान् पुरुष जब उसे छोड़नेकी इच्छासे तप करनेका प्रयास करता है तब वह इन्द्रियोके निवास स्वरूप शरीरको, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सुप्त और आयुको भी स्वीकार करता है और अन्तमें उसे भी नष्ट होता हुआ देखकर दूसरे ऐन्द्रियिक निवासकी इच्छा करता है । भावार्थ—तपश्चरण करनेका इच्छुक पुरुष यद्यपि शरीरको हेय समझकर छोड़ना चाहता है परन्तु साधन समझकर उसे स्वीकार करता है और जब तक इष्ट—मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक प्रथम शरीरके जर्जर हो जानेपर द्वितीय शरीरकी इच्छा करता रहता है ॥६१—६२॥ परन्तु जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय दर्शन, अतीन्द्रिय बल और अतीन्द्रिय मुखकी संतान है और जो अपने आत्मस्वरूप शरीर, आवास तथा सुन्दरता आदिमें सहित है उसके ऊपर वहे हुए दोषोका स्पर्श कभी नहीं होता है, इसलिये जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान, वीर्य और मुखकी संतान है उसे ही आप्त जानना चाहिये और जिसके उक्त गुण नहीं है उसे अनाप्त समझना चाहिये ॥६३—६४॥ अब आगे इसी वाक्यार्थका स्पष्टीकरण करते हैं क्योंकि जयनक किसी पदार्थका स्पष्टीकरण नहीं हो जाता है तब तक उसका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता है ॥६५॥ जिनके अतीन्द्रिय ज्ञान है ऐसा पुरुष किसी दूसरे शास्त्र के अर्थका आश्रय नहीं लेता, किन्तु केवलज्ञानरूपी निर्मल नेत्रोको धारण करनेवाला और नानो कालोंके सब पदार्थोंको जाननेवाला वह स्वयं सबको उपदेश देता है ॥६६॥ इसी प्रकार जिनके अतीन्द्रिय दर्शन है ऐसा जीव कभी अपूर्व पदार्थके देतनेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि जो एक साथ समस्त पदार्थोंको देखता है उसका न देगा हुआ कोई पदार्थ भी तो नहीं है ॥६७॥ जिनके धार्मिक अगन्तवीर्य हैं वह पुरुष भी किसी अन्य जीवकी सहायता नहीं चाहता किन्तु

अतीन्द्रियमूलोऽप्यात्मा स्याद्भ्रोगं कस्तुको न वै । भोग्यवस्तुगता चिन्ता जायते नास्य जात्वतः ॥६६॥
 प्राप्तानीन्द्रियसौन्दर्यो नेच्छेत्स्नानानादिसत्त्वियाम् । स्नातको नित्यशुद्धात्मा बहिरन्तर्मतक्षाम् ॥७०॥
 अतीन्द्रियात्मदेहश्च नाहारादीनपेक्षते । क्षुब्ध्याधिविद्यशास्त्राद्विवाधानीतननुः स वै ॥७१॥
 भवेच्च न तपःकामो वीनजातिभ्रममृतिः । नापासान्तरमग्निच्छेद् आत्मवासे च सुस्थितः ॥७२॥
 स एवमखिलैर्दोषैः मुक्तो युष्मदीशिलैर्गुणैः । परमात्मा परं ज्योतिः परमेष्ठीति गीयते ॥७३॥
 कामरूपित्वमाप्तस्य लक्षणं चेत्त साम्प्रनम् । सरागः कामरूपी स्याद् ग्रहतायंश्च सोऽञ्जसा ॥७४॥
 प्रकृतिस्थेन^१ रूपेण प्राप्तु यो^२ नातमीक्षितम् । स बंहुतेन^३ रूपेण कामरूपी कथं सुखी ॥७५॥

इति पुरुषनिर्दर्शनम् ।

निगलस्थो^४ प्रयानेष्टं गन्तुं देशमनन्तराम् । कर्मवन्धनबद्धोऽपि नेष्टं धाम^५ तपेय्यात्^६ ॥७६॥
 यथेह बन्धनान्मुक्तः परं स्वान्तरमृच्छति । अनंभवन्धनमुष्मदीभि तपोपाच्छेत् स्वतन्त्रताम् ॥७७॥
 निगलस्थो विपादाश्च स सर्वकः पुमान्यया । कर्मबद्धो विमुक्तश्च स एवात्मा मतस्तथा ॥७८॥

इति निगलनिर्दर्शनम् ।

गुणैरनात्मनोऽभ्यर्थये द्वयनेनैरिदर्शनम्^७ । तद्दुद्धीकरणावेष्टं^८ सत्सत्सारिनिर्दर्शनम् ॥७९॥

वह स्वयं कृतकृत्य होकर लोकके अन्न शिखरपर सिद्धान्त्यमें जा पहुँचता है ॥६८॥ इसी प्रकार अतीन्द्रिय सुखको धारण करनेवाला पुरुष भी भोगोंमें उत्कृष्टित नहीं होता, क्योंकि उसे भोग करने योग्य वस्तुओंकी चिन्ता ही कभी नहीं होती है ॥६९॥ जिने अतीन्द्रिय सौन्दर्य प्राप्त हुआ है वह भी कभी स्नान आदि क्रियाओंकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग मलका क्षय हो जानेमें वह स्वयं स्नानक कहलाता है और उसका आत्मा निरन्तर शुद्ध रहता है ॥७०॥ इसी प्रकार जिसके अतीन्द्रिय आत्मा ही शरीर है वह आहार आदिकी बोधा नहीं करता क्योंकि उसका आत्मारूप शरीर क्षुधा, व्याधि, विष और शस्त्र आदिकी वाधासे रहित होता है ॥७१॥ जिसके जन्म, जरा और मरण नष्ट हो चुके है वह कभी तपकी इच्छा नहीं करता तथा जो आत्मारूपी घरमें सुखमें स्थित रहता है वह कभी दूसरे आवासकी इच्छा नहीं करता ॥७२॥ इस प्रकार जो समस्त दोषोंमें रहित है, समस्त गुणोंमें महित है, परमात्मा है और उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप है वही परमेष्ठी कहलाता है ॥७३॥ यदाचित् आप यह कहें कि कामरूपित्व अर्थात् इच्छानुसार अनेक अवतार धारण करना आपका लक्षण है तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जो कामरूपी होता है वह अवश्य ही रागमहित तथा अहङ्गकार्य होता है ॥७४॥ जो स्वाभाविक रूपमें अपना इष्ट प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं है वह कामरूपी विकृत रूपमें कैसे मूर्खी हो सकता है ? ॥७५॥ यह पुरुष उदाहरण कहा, अत्र निगलना उदाहरण करने है ।

जिस प्रकार निगल अर्थात् वेडीमें बंधा हुआ जीव अपने इष्ट स्थानपर जानेके लिये समर्थ नहीं होता है उन्नी प्रकार कर्मरूप बन्धनमें बंधा हुआ जीव भी अपने इष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकता ॥७६॥ जिस प्रकार इस लोभमें बन्धनमें छूटा हुआ पुरुष परम स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है उसी प्रकार कर्मरूपबन्धनमें छूटा हुआ पुरुष भी स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है ॥७७॥ और जिस प्रकार वेडीमें बंधा हुआ तथा वेडीमें छूटा हुआ पुरुष एक ही माना जाता है उन्नी प्रकार कर्मोंमें बंधा हुआ तथा कर्मोंमें छूटा हुआ पुरुष भी एक ही माना जाता है ॥७८॥ यह निगलका उदाहरण है, इस प्रकार मुक्त और मगारी आत्माओंको प्रवृत्त करनेके लिये ये दो

१ युक्तम् । २ स्वभावधनेन । ३ अगस्त । ४ विनाशनेन । ५ मूलान्तरनित्यम् । ६ स्थानम् । ७ गन्धे । ८ मच्छेत् । ९ -दानम् १०, १०, १० । १० पुरुषार्थवृद्धिरुगाय ।

यत्ससारिणमात्मानम् ऊरीकृत्यान्वतन्त्रताम् । तस्योपदेशे मुक्तस्य स्वातन्त्र्योपनिबन्धनम् ॥६०॥
 मत ससारिवृष्टान्त सोऽभ्यामाप्तीयदर्शने । मुक्तात्मनां भयेदेव स्वातन्त्र्य प्रवटीकृतम् ॥६१॥
 तद्यथा ससृती देही न स्वतन्त्र कथञ्चन । कर्मबन्धवशीभावाज्जीवत्यग्याभितद्व यत् ॥६२॥
 तत परप्रधानत्वम् अस्मिन् प्रतिपादितम् ॥ स्वाच्चलत्व च प्सोऽस्य वेदनासहनादिभिः ॥६३॥
 वेदनाप्याकुलीभावश्चलत्वमिति लक्ष्यताम् । क्षयवत्त्व च देयादिभवेः । लक्ष्मण्डिसक्षयात् ॥६४॥
 बाध्यत्व ताडनानिष्टवचनप्राप्तिरस्य च । श्रन्तवच्चास्य विज्ञानम् अक्षयोप परिशयी ॥६५॥
 श्रन्तवद्दर्शन चास्य स्वादेन्द्रियकदर्शनम् । वीर्यं च तद्विध तस्य शरीरवलमत्पकम् ॥६६॥
 स्यादस्य सुखमप्येवम्प्रायमिन्द्रिययोचरम् । रजस्वलत्वमप्यस्य स्यात्कर्मोक्तं क्लृप्तकनम् ॥६७॥
 भवेत् कर्ममलावेशाद् अत एव मलीमस । छेद्यत्व चास्य गानाणा द्विधाभावेऽ लण्डनम् ॥६८॥
 मुद्गराद्यभिघातेन भेद्यत्व स्याद् विदारणम् । जरावत्त्व वयोहानि प्राणत्यागो मृतिर्मता ॥६९॥
 प्रमेयत्व परिच्छिन्नवेहमात्रावच्छ्रिता । गर्भवातोऽभक्तत्वेन जनमृदरदु स्थिति ॥६०॥

उदाहरण कहे, अब उक्त कथनको दृढ करनेके लिये ससारी जीवोका उदाहरण कहना चाहिये ॥७९॥ ससारी जीवोको लेकर जो उनकी परतन्त्रताका कथन करना है उनकी उसी परतन्त्रता के उपदेशमें मुक्त जीवोकी स्वतन्त्रताका उदाहरण हो जाता है । भावार्थ—ससारी जीवोकी परतन्त्रताका वर्णन करनेसे मुक्त जीवोकी स्वतन्त्रताका वर्णन अपने आप हो जाता है क्योंकि ससारी जीवोकी परतन्त्रताका अभाव होना ही मुक्त जीवोकी स्वतन्त्रता है ॥८०॥ अरहत देवके मतमें ससारीका उदाहरण वही माना गया है कि जिसमें मुक्त जीवोकी स्वतन्त्रता प्रकट हो सके ॥८१॥ आगे इसी उदाहरणको स्पष्ट करते हैं—ससारमें यह जीव किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि कर्मबन्धनके वश होनेसे यह जीव अन्यके आश्रित होकर जीवित रहता है ॥८२॥ यह ससारी जीवोकी परतन्त्रता बतलाई, इसी प्रकार सुख-दुःख आदिकी वेदनाओके सहनसे इस पुरुषमें चञ्चलता भी होती है ॥८३॥ सुख-दुःख आदिकी वेदनाओसे जो व्याकुलता उत्पन्न होनी है उसे चञ्चलता समझना चाहिये और देव आदिकी पर्यायमें प्राप्त हुई ऋद्धियोका जो क्षय होता है उससे इस जीवके क्षयपना (नश्वरता) जानना चाहिये ॥८४॥ इस जीवोको जो ताडना तथा अनिष्ट वचनोकी प्राप्ति होती है वही इसकी बाध्यता है और इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान क्षय होनेवाला है इसलिये वह अन्तसहित है ॥८५॥ इसका दर्शन भी इन्द्रियोसे उत्पन्न होता है इसलिये वह भी अन्तसहित है और इसका वीर्य भी वैसा ही है अर्थात् अन्तमहित है क्योंकि इसके शरीरका बल अत्यन्त अल्प है ॥८६॥ इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाला इममा गुण भी प्राय ऐमा ही है तथा कर्मोंके अगोसे जो बलवित हो रहा है वही इसका मैलापन है ॥८७॥ कर्मरूपी मलके सम्बन्धसे मलिन भी है और शरीरके दो दो टुकड़े होनेसे इसमें छेद्यत्व अर्थात् छिन्नभिन्न होनेकी शक्ति भी है ॥८८॥ मुद्गर आदिके प्रहारसे इसका शरीर विदीर्ण हो जाता है इसलिये इममें भेद्यत्व भी है, जो इसकी अवस्था कम होती जाती है वही इसका बुद्ध्या है, और जो प्राणोना परित्याग होता है वह इसकी मृत्यु है ॥८९॥ यह जो परिमित

अथवा कर्मनोऽङ्गं गर्भेऽस्य परिवर्तनम् । गर्भवातो विलीनत्वं स्याद् देहान्तरसङ्क्रमः ॥६१॥
 क्षुभितत्वं च संशोभः श्रोयाद्याद्विष्टचेतसः । भवेद् विविचयोगोऽप्य नानापोनिषु संश्रमः ॥६२॥
 संसारानास एषोऽप्य चतुर्गतिविवर्तनम् । प्रतिजन्मगन्धयाभावे ज्ञानादीनामसिद्धता ॥६३॥
 सूक्ष्मासुखं बलाहारी देहावातो च देहिनाम् । विवर्तन्ते तथा ज्ञानं दूक्षाक्षीं च रजोजुषाम् ॥६४॥
 एवंप्रायास्तु ये भावाः संसारिषु विनश्वराः । भुवतात्मनां न सन्पते भावास्तेषां स्थानश्वराः ॥६५॥
 मुक्षतात्मनां भवेद् भावः स्वप्रधानत्वमग्रिमम् । प्रतिजन्मात्मलाभत्वात् परद्रव्यानपेक्षणम् ॥६६॥
 वेदनाभिभवाभावाद् अचलत्वं गभीरता । स्यादक्षयत्वमक्षय्यं क्षयिकानिदायोदयः ॥६७॥
 अव्यावाच्यत्वमस्पृष्टं जीवाजीवरेवाध्याता । भवेदनन्तज्ञानत्वं विश्वार्थाक्रमोपनम् ॥६८॥
 अनन्तदर्शनत्वं च विश्वतत्त्वाश्रमेक्षणम् । योऽप्यरप्रतिघातोऽप्य सा मतानन्तवीर्यता ॥६९॥
 भोग्येष्वयैष्योत्सुक्प्रमनन्तमुत्ता मता । नौरजस्वं भवेदस्य व्यपायः पुण्यपापयोः ॥१००॥
 निर्मलत्वं तु तत्त्वेष्टं बहिरन्तर्मलच्युतिः । स्वभावविमलोऽज्ञादिसिद्धो नास्तीह वद्वन ॥१०१॥
 योग्य जीवपनाकारपरिणामो मलक्षयात् । तदच्छेद्यत्वमान्नातम् प्रभेद्यत्वं च तत्त्वतम् ॥१०२॥
 अक्षरत्वं च मुक्षतस्य क्षरणाभावतो मतम् । अप्रमेयत्वमात्मोत्सुर्गुणरद्वंरमेयता ॥१०३॥

शरीरमें रूका रहता है वह इसका प्रमेयपना है और जो बालक होकर माताके पेटमें दुग्धसे रहता है वह इसका गर्भवास है ॥९०॥ अथवा कर्म नोऽङ्गं रूपी गर्भमें जो इसका परिवर्तन होता रहता है वह इसका गर्भवास है और एक शरीरमें दूसरे शरीरमें जो मन्त्रमण करना है वह विलीनता है ॥९१॥ क्रोध आदिमें आक्रान्त चित्तमें जो क्षोभ उत्पन्न होता है वह इसका क्षुभितपना है, और नाना योनियोंमें परिभ्रमण करना इसका विविच योग कहलाता है ॥९२॥ चारो गतियों में परिवर्तन करते रहना इस जीवका संसारावास कहलाता है और प्रत्येक जन्ममें ज्ञानादि गुणोंका अन्य अन्य रूप होते रहना अमिद्धता कहलाती है ॥९३॥ कर्मरूपी रजमें युक्त रहनेवाले इन संसारी जीवोंके जिस प्रकार मुख दुग्ध, बल, आहार, शरीर और धर बदलते रहते हैं उसी प्रकार उनके ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य भी बदलते रहते हैं ॥९४॥ इस प्रकार संसारी जीवोंके जो विनश्यरभाव है वे मूख जीवोंके नहीं हैं, उनके सब भाव अविनश्यर हैं ॥९५॥ मूख जीवोंके उन भावोंमें आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेसे परद्रव्यकी अपेक्षासे रहित जो मूर्ध स्पृष्ट स्वतन्त्रपना है वही पहला भाव है ॥९६॥ सुख दुग्ध आदिकी वेदनामें हेनेवाले परभाव का अभाव होनेमें जो अचञ्चलता होनी है वही उनकी गभीरता है और कर्मोंके क्षयमें जो अतिशयोक्ती प्राप्ति होनी है वही उनका अविनाशी अक्षयपना है ॥९७॥ विभी भी जीव अथवा अजीवमें इन्हें बाधा नहीं पहुंचनी यही इनका अव्यावाच्यपना है और संसारके ममन्त पदार्थोंको एक साथ जानते हैं यही इनका अनन्तज्ञानीपन है ॥९८॥ ममन्त तत्त्वोंको एव साथ देखना ही इनका अनन्तदर्शनपन है और अन्य पदार्थोंके द्वारा प्रतिघातका न होना अनन्तवीर्यपना है ॥९९॥ भोग करने योग्य पदार्थोंमें उत्पन्ना न होना अनन्तमुग्धपना माना जाता है और पुण्य तथा पापका अभाव ही ज्ञाना नौरजसपन कहलाता है ॥१००॥ बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग मलका नाश होना ही इसका निर्मलपना कहलाता है क्योंकि उस मन्त्रमें ऐसा कोई भी पुण्य नहीं है जो स्वभावमें ही निर्मल हो और अनादि कालमें निद्र हो ॥१०१॥ कर्मरूपी मलके नाश होनेमें जो जीवके प्रदेनाका घनावार परिणमन होना है वही इनका अच्छेद्यपना है और उसी कर्मरूपी मलके नाश होनेमें इनके अनेकपना माना जाता है ॥१०२॥ मूख जीवका

१ दुग्ध २ अविनश्यर ३ दुग्धरूपी । ४ कर्मपनमात्रम् । ५ एवमादय । ६ स्वभाव । ७ चेतनाचिन्तनं । ८ पुण्यम् । ९ परिणमनम् ।

वहिरन्तर्मलापायाद् अग्रभ्रंघसतिर्मता । कर्मनोदर्मविश्लेषात् स्यादगौरवलाघवम् ॥१०४॥
 तादवदप्य^१ गुणैर्द्वै^१ अक्षोभ्यत्वमतो भवेत् । अविनीतत्वमात्मोपगुणैरप्यवपृक्तता^१ ॥१०५॥
 प्राग्देहाकारमूर्तित्वं यदस्याह्यमक्षरम् । साऽभोष्टा परमा काष्ठा योगरूपत्वमात्मन ॥१०६॥
 लोकाप्रवासत्त्रं लोक्यशिलरे शाश्वती स्थिति । अज्ञोपगुरुष्वार्याना निष्ठा^१ परमसिद्धता ॥१०७॥
 य समग्रैर्गुणैरेभि ज्ञानादिभिरलङ्कृत । किं तस्य कृतकृत्यस्य परद्रव्योपसर्पणं ॥१०८॥
 एष ससारिवृष्टान्तो व्यतिरेकेण^१ साधयेत् । परमात्मानमात्मन प्रभुमप्रतिशासनम् ॥१०९॥
 त्रिभिर्निदर्शनैरेभि आविष्कृतमहोदय । स आप्तस्तन्मते धीरं आधेया मतिरात्मन ॥११०॥
 एव हि क्षत्रियधेष्ठो भवेद् दृष्टपरम्पर । भतान्तरेयु दौ स्थित्य भावयन्नुपपत्तिभि ॥१११॥
 दिगन्तरेभ्यो व्यावर्त्यं प्रदुद्धा मतिमात्मन । सत्कारो स्थापयन्नेव^१ कुर्यान्नित्यनुपालनम् ॥११२॥
 अत्रिकानुत्रिकत्वात्पान परिरञ्जगतात्मन । आत्मानुपालन नाम तद्विधानो^१ द्विवृध्मे ॥११३॥
 आत्रिकपापयस्रता सुप्रतीनैव धीमताम् । विपञ्जत्राद्यपायाना परिरक्षणलक्षणा ॥११४॥

कभी क्षरण अर्थात् विनाश नहीं होता इसलिये इसमें अक्षरता अर्थात् अविनाशीपन है और आत्मासे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ युगोसे इसका प्रमाण नहीं किया जा सकता इसलिये इसमें अप्रमेय-पना है ॥१०३॥ वहिरग और अन्तरग मलका नाश हो जानेसे इसका गर्भावास नहीं माना जाता है और कर्म तथा नोकर्मका नाश हो जानेसे इसमें गुरुता और लघुता भी नहीं होती है ॥१०४॥ यह आत्मासे उत्पन्न हुए प्रशसनीय गुणोसे अपने स्वरूपमें अवस्थित रहता है इसलिये इसमें अक्षोभ्यपना है और आत्माके गुणोसे कभी पृथक् नहीं होता इसलिये अविनीतपना है ॥१०५॥ जो कभी न छूटने योग्य और कभी न नष्ट होने योग्य पहलेके शरीरके आकार इमकी मति रहती है वही इसकी परम हृद् है और वही इसकी योगरूपता है ॥१०६॥ तीनों लोकोंके शिखरपर जो इसकी सदा रहनेवाली स्थिति है वही इसका लोकाग्रवास गुण है और जो समस्त पुरुषार्थोंकी पूर्णता है वही इसकी परमसिद्धता है ॥१०७॥ इस प्रकार जो इन ज्ञान आदि समस्त गुणोसे अलङ्कृत है उस कृतकृत्य हुए मुक्त जीवको अन्य द्रव्योकी प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥१०८॥ यह ससारी जीवका दृष्टान्त व्यतिरेक रूपसे आत्मा को, जिमपर विसौका शासन नहीं है और जो प्रभुरूप है ऐसा परमात्मा सिद्ध करता है । भावार्थ—द्वग ममारी जीवके उदाहरणसे यह सिद्ध होता है कि यह आत्मा ही परमात्मा हो जाता है ॥१०९॥ इम प्रकार इन तीन उदाहरणोसे जिसका महोदय प्रकट हो रहा है वही आप्त है, उगी आप्तो मनमें धीरधीर पुष्पोको अपनी बुद्धि लगानी चाहिये ॥११०॥ इस तरह जिमने सब परम्परा देग ली है, और जो अन्य मतोंमें युक्तिथोसे दुष्टतावा चिन्तन करता है वही सब क्षत्रियोमें श्रेष्ठ बह्यता है ॥१११॥ क्षत्रियोको चाहिये कि यह अपनी जामृत बुद्धिों अन्व दिनाओं अर्थात् मांगे हटाकर समीचीन मार्गमें लगाता हुआ उसकी रक्षा करे ॥११२॥ द्वग लोक तथा परमोस गम्यन्धी जपायोमें जात्माकी रक्षा करना आत्मावा पालन करना बह्यता है । अब जागे इसी शास्त्राके पालनता वर्णन करने हैं ॥११३॥ विप साम्प्र जादि अयागोमें जाती रक्षा करना ही जिमका लक्षण है ऐसी द्वग लोकगम्यन्धी अयागोमें

'तत आमुनिव।पायरक्षाविविरनुद्यते । तद्रक्षण च धर्मो धर्मो ह्युपायप्रतिभिया ॥११५॥
 धर्मो रक्षत्यपारेभ्यो धर्मोऽभीष्टफलप्रदः । धर्मः श्रेयस्करोऽमुत्र धर्मोऽहानिनन्द्युः ॥११६॥
 तस्माद्धर्मवतात. सन् कुर्याद्विष्णुप्रतिक्रियाम् । एव हि रक्षितोऽप्यायद् भवेदात्मा भवान्तरे ॥११७॥
 बहूपायमिदं राज्यं त्वाज्यमेव नतस्त्विद्वान्म् । यत्र पुनः सतोर्ब्यां बरायते^१ निरन्तरम् ॥११८॥
 अपि चान्न मन.खेदेबहुने वा सुजासिन्वा^२ । मनसो निर्बुनि सौख्यम् उशान्तीह विचक्षणा. ॥११९॥
 राज्ये न सुगुणेशोऽपि दुरन्ते दुरितावहे । सर्वत. शङ्कमानस्य प्रत्युत्तानासुख^३ महत् ॥१२०॥
 ततो राज्यमिदं हेयमप्यमिदं भ्रंषजम् । उपादेयं तु विद्विद्भुस्तपः पथ्यमिवादानम् ॥१२१॥
 इति प्रागेव निर्दिष्टं^४ राज्ये भोगं त्यजेत् सुधीः । तथा त्यक्तुमशक्नोऽन्ते त्यजेद् राज्यपरिच्छेदम् ॥१२२॥
 कालज्ञानिनिरादिष्टे निर्णति स्ववनेव वा । जीविनान्ते तनुत्यागनाति दध्यादतः सुधीः ॥१२३॥
 त्यागो हि परमो धर्मस्त्याग एव पर तपः । त्यागादिह दशोत्तमः परत्रान्बुदयो महान् ॥१२४॥
 मत्वेति तनुमाहारं राज्यं च स्परिच्छेदम् । त्यजेदायतने^५ पुण्यं पूजाविधिपुरस्सरम् ॥१२५॥

होनेवाली रक्षा तो विद्वान् पुरुषोको विदित ही है ॥११४॥ इसलिये अब परलोक सम्बन्धी अपायोमें होनेवाली रक्षाकी विधि बहते है । परलोक सम्बन्धी अपायोमें रक्षा धर्मके द्वारा ही हो सकती है क्योंकि धर्म ही नमस्त आपत्तियोका प्रतिवार है—उनसे बचनेका उपाय है ॥११५॥ धर्म ही अपायोमें रक्षा करता है, धर्म ही मनचाहा फल देनेवाला है, धर्म ही परलोक में कल्याण करनेवाला है और धर्ममें ही इस लोकमें आनन्द प्राप्त होता है ॥११६॥ इसलिये धर्ममें एकचित्त होकर भविष्यत् कालमें जानेवाली विपत्तियोका प्रतिकार करना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेमें ही आत्माकी दूसरे भवमें विपत्तिसे रक्षा हो सकती है ॥११७॥ जिस राज्यके लिये पुत्र तथा सगे भाई आदि भी निरन्तर शत्रुता किया करते है और जिसमें बहुत अपाय है ऐसा यह राज्य बुद्धिमान् पुरुषोको अवश्य ही छोड़ देना चाहिये ॥११८॥ एक बात यह भी है कि जिसमें मानसिक खेदकी बहुलता है ऐसे इस राज्यमें सुखपूर्वक कैसे रहा जा सकता है क्योंकि इस मसारमें पण्डितजन मनकी निराकुलताको ही सुख बहते है ॥११९॥ जिसका अन्त अच्छा नहीं है और जिसमें निरन्तर पाप उत्पन्न होते रहते है ऐसे इस राज्यमें सुखवा लेश भी नहीं है बल्कि सत्र ओरसे शक्ति रहनेवाले पुरुषको इस राज्यमें बड़ा भारी दुःख बना रहना है ॥१२०॥ इसलिये विद्वान् पुरुषोको अपथ्य औपधिके समान इस राज्यका त्याग कर देना चाहिये और पथ्य भोजनके समान तप ग्रहण करना चाहिये ॥१२१॥ इन तरह बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह राज्यके विषयमें पहलेसे ही विरक्त होकर भोगोपभोगका त्याग कर दे, यदि वह इस प्रकार त्याग करनेके लिये समर्थ न हो तो कमसे कम अन्त समय उसे राज्यके आडम्बरका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिये ॥१२२॥ इसलिये यदि कालको जाननेवाला निमित्तज्ञानी अपने जीवनका अन्त समय बतला दे अथवा अपने आप ही उत्सवा निर्णय हो जावे तो बुद्धिमान् धनियको चाहिये कि वह उन समयसे शरीर परित्यागकी बुद्धि धारण करे उर्धात् सल्लेखना धारण करनेमें बुद्धि लगाने ॥१२३॥ क्योंकि त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्यागमें ही इस लोभमें कीर्तिकी प्राप्ति होती है और त्यागसे ही परलोकमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त होना है ॥१२४॥ ऐसा मानकर धनियको किसी पवित्र स्थानमें रहकर पूजा आदिकी विधि करके शरीर आहार और चमर छत्र आदि उपकरणोसे सहित राज्यका परित्याग कर देना

१ अत्र अ०, म०, म०, ल० । २ एतौदरे जाता । ३ बर कुर्वन्नि । ४ सुगाम्यना । ५ पुन चिगिति चेत् । ६ बरायणरो भूता । ७ आवासे । ८ पविने ।

गुरुसाक्षि तथा त्यक्तवेहाहारस्य तस्य घं । परीयहृजयायता सिद्धिरिष्टा महात्मन ॥१२६॥
 ततो ध्यायेदनुप्रेम्भा कृती जेतु परीपहान । विनाऽनुप्रेक्षणश्चित्तसमाधान हि दुर्लभम् ॥१२७॥
 'प्राग्भावितमेवाह भावयामि न भावितम्' । भावयामीति भावेन भावयेत्तत्त्वभावनाम् ॥१२८॥
 समुत्सृजेदनात्मीय शरीराद्विपरिग्रहम् । आत्मीय तु स्वसातकुर्वाद् रत्नत्रयमनुत्तरम् ॥१२९॥
 मनोव्याधेपरक्षार्थं ध्यायन्प्रिति स धीरधी । प्राणान् विसर्जयेदन्ते सस्मरन् परमेष्ठिनाम् ॥१३०॥
 तथा विसर्जितप्राण प्रणिधानपरायण । शिथिलीकृत्य कर्माणि शुभा गतिमयाऽनुते ॥१३१॥
 तस्मिन्नेव भवे शक्त कृत्वा कर्मपरिक्षयम् । सिद्धिमाप्नोत्यशक्तस्तु त्रिविवाप्रभवानुयात् ॥१३२॥
 ततश्च्युत परिप्राप्तमानुष्य परम तप । कृत्वान्ते निवृत्तिं याति निर्द्वंताखिलवन्धन ॥१३३॥
 क्षत्रियो यद्दनात्मज्ञं कुर्यात्प्रात्नानुपालनम् । विप्रशस्त्रादिभिस्तस्य दुर्मतिष्टुवभाविनी ॥१३४॥
 दुर्मतश्च दुस्त्रेऽस्मिन् भवावत् दुस्त्ररे । पतिव्याऽमुत्र बुखानां दुर्मतो भाजन भवेत् ॥१३५॥
 ततो मतिमताऽऽत्मीयविनिपातानुरक्षणे । विधेयोऽस्मिन् महायत्नो लोकद्वयहितायहे ॥१३६॥
 वृतात्परक्षणदचंच प्रजानामुपालने । राजा यत्न प्रकुरुते राज्ञा मौलो ह्ययं गुण ॥१३७॥

चाहिये ॥१२५॥ इस प्रकार जिसने गुरुकी साक्षीपूर्वक शरीर और आहारका त्याग कर दिया है ऐसे महात्मा पुरुषकी इष्टसिद्धि परीपहोके विजय करनेके आधीन होती है अर्थात् जो परीपह सहन करता है उसीके इष्टकी सिद्धि होती है ॥१२६॥ इसलिये निपुण पुरुषको परीपह जीतनेके लिये अनुप्रेक्षाओका चिन्तन करना चाहिये क्योंकि अनुप्रेक्षाओके चिन्तन किये विना चित्तका समाधान कठिन है ॥१२७॥ जिसका पहले कभी चिन्तन नही किया था ऐसे सम्यक्व आदिवा चिन्तन करता है और जिसका पहले चिन्तन किया था ऐसे मिथ्यात्व आदिवा चिन्तन नही करता इस प्रकारके भावसे तत्त्वोकी भावनाओका चिन्तन करना चाहिये ॥१२८॥ जो अत्माके नही है ऐसे शरीर आदि परिग्रहका त्याग कर देना चाहिये और जो आत्मा के है ऐसे सर्वोन्मृष्ट रत्नत्रयका ग्रहण करना चाहिये ॥१२९॥ धीर वीर बुद्धिको धारण करने वाटे पुरुषको मनकी चंचलता नष्ट करनेके लिये इस प्रकार ध्यान करते हुए और पंचपरमेष्ठियों का स्मरण करते हुए आयुके अन्तमें प्राणत्याग करना चाहिये ॥१३०॥ जो पुरुष ध्यानमें तनर रहकर ऊपर गिये अनुमार प्राणत्याग करता है वह कर्मोको शिथिल कर शुभ गतिको प्राप्त होता है ॥१३१॥ जो समर्थ है वह उमी भवमें कर्मोका क्षय कर मोक्षको प्राप्त होता है और जो असमर्थ है वह स्वर्गके अग्रभाग अर्थात् नवार्थिमिद्धिको प्राप्त होता है ॥१३२॥ वह वशमे च्युत हो मनुष्यपर्याय प्राप्त कर और परम तपश्चरण कर आयुके अन्तमें समस्त कर्म बधनको नष्ट करता हुआ निर्वाणको प्राप्त होता है ॥१३३॥ आत्माका स्वरूप न जाननेवाला जो क्षत्रिय अपने आत्माकी रक्षा नहीं करता है उमकी विप शस्त्र आदिसे अवश्य ही अपमृत्यु होनी है ॥१३४॥ और अपमृत्युमे मग हुआ प्राणी दु गदायी तथा कठिनाईसे पार होने योग्य इन मगारूप आकर्ममें पटार परगोके दुर्मतियोके दु गवा पात्र होता है ॥१३५॥ इनलिये युद्धिमात् क्षत्रियो दोषो ओकोमें टिन करनेवाले, आत्माके इन विघ्नवाधाओमे रक्षा करने में महाप्रयत्न करना चाहिये ॥१३६॥ इन प्रकार जिनो आत्माकी रक्षा की है ऐसे राजाको प्रशंसा पाए करनेमे प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि यह राजाओका मौलिक गुण है ॥१३७॥

धमञ्च पालनीवास्ताः प्रजाद्वेषेत्प्रपञ्चनः^१ । पुष्टं^२ गोपालवृष्टान्तम्^३ ऊरीकृत्य दिव्यम्^४ ॥१३८॥
 गोपालको यथा यत्नाद् वाः संरक्षत्यनद्रितः^५ । धनापालद्वय प्रयत्नेन तथा रक्षोभिजाः प्रजाः ॥१३९॥
 तद्यथा यदि गीः कश्चिद् भ्रपराधी^६ स्वगोकुले । तमद्गच्छेदनाद्युग्रदण्डंस्तीव्रमयोजयन्^७ ॥१४०॥
 पाल्येदनुत्प्रेण दण्डनेत्रे निपन्नयन्^८ । यथा गोपस्तथा भूपः प्रजाः स्वाः प्रतिपालयेत्^९ ॥१४१॥
 तीदमदण्डो हि नृपतिस्तीव्रमुद्रैर्जयेत्प्रजाः । तनो विरवनप्रकृतिं^{१०} जटपुरेणमम्^{११} प्रजाः ॥१४२॥
 यथा गोपालको मौलं पशुवर्गं स्वगोकुले । पोषयश्चैव पुष्टः स्याद् गोपोयं^{१२} प्राग्यगोघनः^{१३} ॥१४३॥
 तथैव नृपतिमौलं^{१४} तन्नभ्रात्मीयमेकन^{१५} । पौषयन्पुष्टिनाप्नोति स्वे परहिमश्च मण्डले ॥१४४॥
 पुष्टो मौलेन तन्त्रेण यो हि पापियन्ः^{१६} जरः । स जयेत् पृथिवीमेनां सागरान्तामंयत्नतः ॥१४५॥
 प्रभान्तरणं किञ्चिद् गोद्वेषं^{१७} क्षेत् प्रमादतः । गोपालस्तस्य सन्धानं पशुांद् बन्धाद्युपक्रमः ॥१४६॥
 यथाय च तृणाद्यस्मै देवा वादर्थं नियोजयेत् । उपद्रवान्तरैष्येवम् प्राशुं कुर्यात् प्रतिश्रियाम् ॥१४७॥
 यथा तथा नरेन्द्रोऽपि स्वबले धनितं भटम् । प्रतिश्रियाद्^{१८} निपन्नयन्पुष्टिनाप्नोति नन्दयम्^{१९} ॥१४८॥
 द्दोहृतस्य चात्स्योद्धं^{२०} षोडशादि^{२१} प्रचिन्तयेत् । सत्येवं भूयवर्गोऽप्य गन्धदानोति नन्दयम्^{२२} ॥१४९॥

उम प्रजाका किम प्रकार पालन करना चाहिये यदि आप यह जानना चाहते हैं तो हम ग्वालिये-
 का सुदृढ उदाहरण लेकर विस्तारके साथ उसका वर्णन करते हैं ॥१३८॥ जिस प्रकार ग्वालिया
 आन्ध्रपरहित होकर बडे प्रयत्नसे अपनी गायोकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको बड़े
 प्रयत्नसे अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥१३९॥ आगे इमीका सलासा करते हैं—यदि
 अपनी गायोंके समूहमें कोई गाय अपराध करती है तो वह ग्वालिया उसे अगछेदन आदि कठोर
 दण्ड नहीं देता हुआ अनुरूप दण्डसे नियन्त्रण कर जिम प्रकार उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार
 राजाको भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥१४०-१४१॥ यह निश्चय है कि कठोर
 दण्ड देनेवाला राजा अपनी प्रजाको अधिक उद्विग्न कर देता है इसलिये प्रजा ऐसे राजाको
 छोड़ देती है तथा मंत्री आदि प्रवृत्तिजन भी ऐसे राजाने विरवन हो जाते हैं ॥१४२॥ जिस
 प्रकार ग्वालिया अपने गायोंके समूहमें मुख्य पशुओंके समूहकी रक्षा करता हुआ पुष्ट अर्थात्
 सम्पत्तिशाली होता है क्योंकि गायोकी रक्षा करके ही यह मनुष्य विद्याल गोघनका स्वामी
 हो सकता है, उमी प्रकार राजा भी अपने मुख्य वर्गकी मुख्य रूपसे रक्षा करता हुआ अपने और
 दूसरेके राज्यमें पुष्टिको प्राप्त होता है ॥१४३-१४४॥ जो अष्टे राजा अपने अपने मुख्य बलमें
 पुष्ट होता है वह इन ममुद्रान् पृथिवीको बिना विगी बन्धके जीत लेता है ॥१४५॥ यदि
 कदाचित् प्रमादसे किमी गायका पैर टूट जाय तो ग्वालिया उसे बाधना आदि उपायोमें उस
 पैरको जोडना है, गायको बाधकर रयना है—बंधी हुई गायके लिये घाम देता है और उसके पैर
 को मजबूत करनेमें प्रयत्न करता है तथा इमी प्रकार उन पशुओंपर अन्य उपद्रवोंके आनेपर
 भी वह भीष्म ही उनका प्रतिहार करता है ॥१४६-१४७॥ जिम प्रकार अपने आश्रित गायों
 की रक्षा करनेके लिये ग्वालिया प्रयत्न करता है उमी प्रकार राजाको भी चाहिये कि वह अपनी
 सेनामें घायल हुए योद्धानो उत्तम वैद्यमें औपधिन्प सपदा दिलाकर उसकी विपत्तिवा प्रति-
 कार करे अर्थात् उसकी रक्षा करे ॥१४८॥ और वह वीर जब बच्छा हो जाये तो राजाको
 उसकी उत्तम आजीविता कर देनेवा विचार करना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेमें नृयवर्ग सदा

१ प्रपञ्चनम् ल०, म० । प्रपञ्चने अ०, ग० । २ गमुद्धम् । ३ स्वीकृत्य । ४ अनात्म्य ।
 ५ दोषी । ६ मंशोरत्रमदृक्त्वं । ७ निपन्नयन् । ८ उद्रेप कुर्यात् । ९ यत्नानुगतप्रदापरिवारबन्धनम् ।
 १० नां पोषयन्तीति गोपोगन्तम् । ११ कृप्योत्र । १२ बन्धम् । १३ एतस्मिन् म्याने । १४ गोघनम् ।
 १५ प्राकार कुर्यात् । १६ वैद्ययेष्टम् । १७ अधिन्पम् । १८ जीवितार्थम् । १९ दानन्दम् ।

यवेव सतु गोपालो सन्व्यस्त्रिचलने गजाम् । तदस्त्रिय स्यावयन् प्राग्गत् पुष्याद् धोग्यः प्रतिप्रियाम् ॥१५०॥
 तथा नृपोऽपि सत्प्राप्ते भृत्यमुष्णं ध्यसौ सति । तत्पदे पुत्रमेवावस्य भ्रातर वा नियोजयेत् ॥१५१॥
 सति चैव कृतज्ञोऽपि नृप इत्यनुरक्तताम् । उर्वति भृत्यवर्गोऽस्मिन् भवेच्च धृत्ययोजनं ॥१५२॥
 यथा सत्वपि गोपालः कृगिच्छे गवाहगणे । तद्योग्यमोषय इत्या वरोत्पत्य प्रतिप्रियाम् ॥१५३॥
 तवेव पृथिवीपालो दुष्यिभ्यं स्यान्जीविनम् । विमानस्क विदित्वेन सौचिह्ये सप्रियोजयेत् ॥१५४॥
 विरपतो ह्यानुजीवी स्याद् भ्रलब्धोचितजीवनं । प्रभोदिमानं नाचर्चय तस्मान्ननम् विरक्षयेत् ॥१५५॥
 तद्दोषं च वणस्थानकृगिसम्भवसन्निभम् । विदित्वा तत्प्रतीकारम् आशु बुधां द्विदशाम्पति ॥१५६॥
 बहुनापि न दत्तेन सौचिह्यमनुजीवितम् । उचिततत् स्वामिसन्मानाद् यथैवा जायते पृति ॥१५७॥
 गोषातको यथा युथं स्वे महोत्तरं भरक्षमम् । ज्ञात्वास्य नस्यवर्नादि विदध्याद् गात्रपुष्टये ॥१५८॥
 तथा नृपोऽपि संघे स्वे घोडारं भटसत्तमम् । ज्ञात्वेन जीवनं प्राज्य दत्वा सम्मानयेत् कृती ॥१५९॥
 कृतापवान् तद्योग्यं सत्वारं प्रीणयन् प्रभुः । न मुच्यतेऽनुरक्तं स्वं अनुजीविभिरनवहम् ॥१६०॥
 यथा च गोभो गोभूय वण्टकोपलवर्जिते । शीततपादिविधाधाभि उज्जिते चारयन् वने ॥१६१॥

आनन्दको प्राप्त होते रहते हैं—सतुष्ट वने रहते हैं ॥१४९॥ जिस प्रकार ग्वालिया सविस्थान से गायोकी हड्डीके विचलित हो जानेपर उस हड्डीको वही पैडालता हुआ उसका योग्य प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजाको भी युद्धमे किसी मुख्य भृत्यके मर जानेपर उसके पदपर उसके पुत्र अथवा भाईको नियुक्त करना चाहिये ॥१५०-१५१॥ ऐसा करनेसे भृत्य लोग 'यह राजा बडा कृतज्ञ है' ऐसा मानकर उसपर अनुराग करने लगेंगे और अक्सर पडनेपर निरन्तर युद्ध करनेवाले वन जायेंगे ॥१५२॥ कदाचित् गायोके समूहको कोई कीडा काट लेता है तो जिस प्रकार ग्वालिया योग्य औषधि देकर उसका प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजाको भी चाहिये कि वह अपने सेवकको दरिद्र अथवा खेदसिन्न जानकर उसके चित्तको सतुष्ट करे ॥१५३-१५४॥ क्योंकि जिस सेवकको उचित आजीविका प्राप्त नहीं है वह अपने स्वामी के इस प्रकारके अपमानसे विरक्त हो जायगा इसलिये राजाको चाहिये कि वह कभी अपने सेवकको विरक्त न करे । ॥१५५॥ सेवककी दरिद्रताको घावके स्थानमे कीडे उत्पन्न होनेके समान जानकर राजाको शीघ्र ही उसका प्रतिकार करना चाहिये ॥१५६॥ सेवकको अपने स्वामीसे उचित सम्मान पाकर जैसा सशोप होता है वैसा सतोप बहुत धन देनेपर भी नहीं होता है ॥१५७॥ जिस प्रकार ग्वालिया अपने पशुओके भुण्डमें किसी बडे वैलको अधिक भार धारण करनेमें गमथं जानकर उमके शरीरकी पुष्टिके लिये नस्य कर्म आदि करता है अर्थात् उसकी नासमें नेत्र डारता है और उमे मली आदि पिलाता है उमी प्रकार चतुर राजाको भी चाहिये कि वह अपनी सेनामें किसी योद्धाको अत्यन्त उत्तम जानकर उसे अच्छी आजीविका देकर सम्मानित करे ॥१५८-१५९॥ जो राजा अपना पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर पुरपको उसके योग्य महारोके सतुष्ट रमता है उमके भृत्य उसपर रादा अनुरक्त रहते हैं और वभी भी उसका माध नहीं छोडते हैं ॥१६०॥ जिस प्रकार ग्वालिया अपने पशुओके समूहको वाटे और पत्थरो मे रहित तथा शीत और गरमी आदिकी बाधामे शून्य वनमें चरता हुआ बडे प्रयत्नसे उसका

१ विपन्नताम् । २ नृपे । ३ पाश । ४ मुडवागीयम् । ५ दरिद्रम् । ६ विजन्तुम् । ७ शोभन विभवः । ८ विपन्नताम् । ९ शोभनी । १० शीवि । ११ अवमानताम् । १२ ययन न मुष्यात् । १३ रोडरहित-मिष्ये । १४ विपन्नताम् । १५ महान्मानाद्वात् । १६ शृणुवन्तम् । १७ भटाण पारयत् ।

पोषय रतिर नेन तथा भूषोऽपविष्णवे । देशे स्वानुगतं लोकं स्थापयित्वाऽभिरक्षतु ॥१६२॥
 राज्यविपरिवर्तये जनोऽप्य पीडयतेऽप्यया । चौरैर्दामरैरङ्गैरपि प्रत्यन्तनायकं ॥१६३॥
 प्रसह्य च तथाभूतान् वृत्तिच्छेदेन योजयेत् । बन्धकोद्धरणेनेव प्रजाया क्षेमधारणम् ॥१६४॥
 ययैव गोप सत्रात् वस्य माप्राप्तहासुरम् (नुगम्) । दिनमेत्सवस्थाप्य ततोऽप्येष्टुर्दयाद्रेषो ॥१६५॥
 विषाय चरणे तस्य शनैर्वन्धनसप्रिथिम् । नाभिनालं पुनर्गर्भनालेनापास्य म्लतत् ॥१६६॥
 जन्तुसम्भवशाङ्काया प्रनीकार विषाय च । क्षीरोनुयोगशनाद्यैरद्वेत् प्रतिवासरम् ॥१६७॥
 भूषोऽप्येवमुपासन्न वृत्तये स्वमुवात्तितुम् । यथाऽनुद्वे सन्मालं स्त्रीकुर्यादनुजीविनम् ॥१६८॥
 स्त्रीकृतस्य च तस्योदजीवनदिप्रचिन्तया । योगक्षेम प्रयुञ्जीत वृत्तकनेदास्य सादरम् ॥१६९॥
 ययैव खलु गोपाल पद्मन् श्रेनु सतुघन । क्षीरावलोचनाद्यैस्तान् परोक्ष्य गुणवत्तमान् ॥१७०॥
 श्रीगति शत्रुनादीनाम् श्रवणारणतत्पर । कृन्तुशत्रुभूषोऽप्येव श्रीगोमान् सुपरीक्षितान् ॥१७१॥
 क्षीतश्च युत्तिसूत्येन तान् यथावसर प्रभु । हृ रेवु विनियुञ्जीत भूष्ये साध्य क्व हि तत् ॥१७२॥
 यद्वच्च प्रतिभू कश्चिद् यो ऋते प्रतिगृह्यते । चलवान् प्रतिभूस्त्वंद्विप्रहो भूषोपसद्वद्रे ॥१७३॥
 काममात्रावदिष्टाया रात्राभूत्वाप म्लतत् । चारयित्त्वोदिते वैशो गा प्रभूतनुषोदरे ॥१७४॥

पोषण करता है उसी प्रकार राजाओं भी अपने सेवकों लोकोको किसी उपद्रवहीन स्थानमें रखकर उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥१६१-१६२॥ यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो राज्य आदिका परिवर्तन होनेपर चोर, डाकू तथा समीपवर्ती अन्य राजा लोग उसके इन सेवकोंको पीडा देते लगेगे ॥१६३॥ राजाको चाहिये कि वह ऐसे लोग डाकू आदिकों आजीविका उबरान नष्ट कर दे क्योंकि वाटोको दूर कर देनेसे ही प्रजाया बचाया ही गवता है ॥१६४॥ जिस प्रकार ग्राह्य हाथसे उत्पन्न हुए अच्छेको एक दिन तब मातासे साथ रहता है, दूसरे दिन दयावृद्धिसे मुक्त हो उसके परम धीरेसे रस्मी बाधकर जूटीसे बाधता है, उसकी जरायु तथा नाभिके नाकको बटे यत्नसे दूर करता है, कीड़े उत्पन्न होनेकी घवा होनेपर उसका प्रतीकार करता है, और दूध पिलाना आदि उपायोंसे उसे प्रतिदिन बढाना है ॥१६५-१६७॥ उसी प्रकार राजाको भी चाहिये कि वह आजीविकाके अर्थ अपनी सेवा करनेसे लिये आये हुए सेवकोंको उसके योग्य आदर सम्मानसे स्वीकृत करे और जिन्हें स्वीकृत कर लिया है तथा जो अपने लिये बलेश सहन करते हैं ऐसे उन सेवकोंकी प्रसस्त आजीविका आदिका विचार कर उनके साथ योग और क्षेमका प्रयोग करना चाहिये अर्थात् जो बन्तु उनके पाम नहीं है वह उन्हें देनेकी चाहिये और जो बन्तु उनके पाम है उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥१६८-१६९॥ जिस प्रकार गुण आदि के निरवयव करनेमें तलर रहनेवाला ग्वाण जब पनुओको गरीदनेसे लिये नैवार होता है तब वह दूध देगना आदि उपायोंसे परीक्षा कर उनमेंसे अत्यन्त गुणी पनुओको गरीदता है उसी प्रकार राजाको भी परीक्षा लिये हुए उच्चगुण पुत्रोंको गरीदना चाहिये ॥१७०-१७१॥ और आजीविकासे मन्थसे गरीदे हुए उन सेवकोंको सममानान्तर योग्य कार्यमें रगना देना चाहिये क्योंकि वह कार्यम्हो पत्र सेवकोंके द्वारा ही सिद्ध किया जा गवता है ॥१७२॥ जिस प्रकार पनुओने गरीदनेमें किसीको जामिनदार बनाया जाता है उसी प्रकार सेवकोंका मग्रह करनेमें भी किसी ब्रह्मजान् पुत्रको जामिनदार बनाना चाहिये ॥१७३॥ जिस प्रकार ग्वाण गन्धिके

१ मूत्रकम् । २ -रुष्यत् स०, म० । ३ परिवर्तय स०, म० । राज्यदि भूष्या राज्यान्-
 शान्तिम् । ४ अणुत्तराणम् । ५ दारिद्र्ये मूत्ररतिनिर्वा । ६ म्लेच्छापरं । ७ शत्रुनायकः ।
 ८ बन्धकः । ९ प्रतुघनः । १० जीवितम् । ११ मेता कर्मम् । १२ प्रजाया । १३ प्रतिगृह्यते ।
 १४ चरने । १५ ययैव स०, म० । १६ पाणः । १७ म्रः । १८ चरयित्वा ।

प्रातस्तरामयानीय यत्सपोतावशिष्टकम् । यपो योग्यि यया गोषो नवनीतावितिष्णया ॥१७५॥
 सया भूपोऽप्यतन्द्रान्भक्षतप्रामेषु^१ कारयेत् । कृषिं 'कर्मनिर्वाहोऽजप्रदानाद्यैरपत्रमः' ॥१७६॥
 देशेऽपि कारयेत् कृत्स्ने कृषिं सम्यक्शुच्योबलः । पान्यमानं सद्यप्रहायं च न्याय्यमंशं ततो^२ हरेत् ॥१७७॥
 सत्येवं पुष्टतन्त्रः स्याद् भाण्डागारदिसम्पदा । पुष्टो देशश्च तस्यैवं स्याद् पान्यैराशितम्भवे^३ ॥१७८॥
 स्वदेशे वाक्षरम्लेच्छान् प्रजावाधाविधायिनः । कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्त्वर्पादुपत्रमः ॥१७९॥
 विक्रिया न भजन्त्येतैः प्रभूणा कृतसतिक्रियाः । प्रभोरलभ्यसम्माना विक्रियन्ते हि तेऽन्वहम् ॥१८०॥
 यो केचिच्चाक्षरम्लेच्छाः स्वदेशे प्रचरिष्यन्थ । तेऽपि कर्षकसामान्य^४ कर्तव्याः शरदा नृपैः ॥१८१॥
 तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः । अथर्माक्षरसम्पाठैर्लोफध्यामोहकारिणः ॥१८२॥
 यतोऽक्षरकृतं गर्वम् 'प्रविद्याबलतस्तके' । अहन्त्यतोऽक्षरम्लेच्छाः पापसूत्रोपजीविनः ॥१८३॥
 म्लेच्छाचारो हि हिंसाया रतिर्मासाशनेऽपि च । बलात्परस्वहरणं निर्द्वैतत्वमिति स्मृतम् ॥१८४॥
 सोऽस्त्यमीया च 'यद्वैदेशास्त्रायंमधमद्विजाः । तादृश^५ बहुमन्यन्ते जातिवादापत्तेपत'^६ ॥१८५॥
 प्रजासामान्यतै^७ र्वैवा भता या स्यान्निष्कृष्टता । ततो^८ न भान्यतोऽस्त्येया द्विजा मान्याः स्पुराहता ॥१८६॥

प्रहरमान शेष रहनेपर उठकर जहा बहुतसा घास और पानी होता है ऐसे किसी योग्य स्थानमें
 गायोंको बड़े प्रयत्नसे चराता है तथा बड़े सबरे ही वापिस लाकर बछड़ेके पीनेसे बाकी बचे
 हुए दूधको मक्खन आदि प्राप्त करनेकी इच्छासे दुह लेता है उसी प्रकार राजाको भी आलस्य-
 रहित होकर अपने आधीन ग्रामोंमें बीज देना आदि साधनों द्वारा किसानोंसे खेती कराना
 चाहिये ॥१७४-१७६॥ राजाको चाहिये कि वह अपने समस्त देशमें किसानों द्वारा भली
 भांति खेती करावे और धान्यका सग्रह करनेके लिये उनसे न्यायपूर्ण उचित अन्न लेवे ॥१७७॥
 ऐसा होनेसे उसके भांडार आदिमें बहुत सी सम्पत्ति इकट्ठी हो जावेगी और उससे उसका बल
 बढ जावेगा तथा सतुष्ट करनेवाले उन धान्योंसे उसका देश भी पुष्ट अथवा समृद्धिशाली हो
 जावेगा ॥१७८॥ अपने आश्रित स्थानोंमें प्रजाको दुःख देनेवाले जो अक्षरम्लेच्छ अर्थात् वेद
 से आजीविका करनेवाले हो उन्हें कुलशुद्धि प्रदान करना आदि उपायोंसे अपने आधीन करना
 चाहिये ॥१७९॥ अपने राजासे सत्कार पाकर वे अक्षरम्लेच्छ फिर उपद्रव नहीं करेंगे। यदि
 राजाओंसे उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं होगा तो वे प्रतिदिन कुछ न कुछ उपद्रव करते ही रहेंगे
 ॥१८०॥ और जो कितने ही अक्षरम्लेच्छ अपने ही देशमें संचार करते हो उनसे भी राजाओं
 को सामान्य किसानोंकी तरह कर अवश्य लेना चाहिये ॥१८१॥ जो वेद पढकर अपनी आजी-
 विका करते हैं और अधर्म करनेवाले अक्षरोंके पाठसे लोगोंको ठगा करते हैं उन्हें अक्षरम्लेच्छ
 कहते हैं ॥१८२॥ चूकि वे अज्ञानके बलसे अक्षरों द्वारा उत्पन्न हुए अहंकारको धारण करते
 हैं इसलिये पापसूत्रोंसे आजीविका करनेवाले वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते हैं ॥१८३॥ हिंसा
 और मांस खानेमें प्रेम करना, बलपूर्वक दूसरेका धन हरण करना और धूर्तता करना (स्वेच्छा-
 चार करना) यही म्लेच्छोंका आचार माना गया है ॥१८४॥ चूकि यह सब आचरण इनमें
 हैं और जातिके अभिमानसे ये नीच द्विज हिंसा आदिको प्ररूपित करनेवाले वेद शास्त्रके अर्थ-
 को बहुत कुछ मानते हैं इसलिये इन्हें सामान्य प्रजाके समान ही मानना चाहिये अथवा उससे
 भी कुछ निवृष्ट मानना चाहिये । इन सब कारणोंसे इनकी कुछ भी मान्यता नहीं रह जाती

१ आरम्भप्रामेष्ठित्यर्थ । २ श्रुधीबलभृत्य । ३ श्रुधीबलेभ्य । ४ स्वीनृपात् । ५ वृष्टिवर ।
 ६ प्रदेशे अ०, म०, ल०, म० । ७ श्रुधीबलसामान्य यथा भवति तथा । ८ अज्ञानबलात् । ९ कृत्सितान्ते ।
 १० यत् शरण्यात् । ११ द्विजादिव्यारम् । १२ गर्वत । १३ प्रजासामान्यत्वमेव । १४ प्रजाम्ब ।

वर्षं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकसन्मताः । धान्यभागमतो रात्रौ न वक्ष इति चेन्मतम् ॥१८७॥
 वैशिष्ट्यं किद्रुतं शीषवर्णभ्यो भवतामिह । न जातिमात्राद् वैशिष्ट्यं जातिभेदाप्रतीतितः ॥१८८॥
 गुणतोऽपि न वैशिष्ट्यम् प्रस्ति यो नामधारकाः । व्रतितो ब्राह्मणा जना ये तं यद् गुणार्थिकाः ॥१८९॥
 निर्व्रतं निर्नमस्कारा निर्घृणाः पशुघातिनः । म्लेच्छाधारपरा यूयं न स्थाने^१ धर्माका द्विजाः ॥१९०॥
 तस्मादन्ते कुरु म्लेच्छा इव तेजो महोभुजाम् । प्रजासामान्यधान्यांशवानाद्यैरविशेषिताः ॥१९१॥
 किमत्र बहुनोषतेन जनान्मुक्त्वा द्विजोत्तमान् । नान्ये मान्या नरेन्द्राणां प्रजासामान्यजीविकाः ॥१९२॥
 अन्यच्च गोधनं गोषो व्याघ्रचोराद्युपक्रमात्^२ । यथा रक्षत्यतन्द्रालः भूपोऽप्येवं निजा प्रजाः ॥१९३॥
 यथा च गोकुलं गोमिन्यांयते संदिदुक्षया । सोपचारमुपेत्यं तोषयेद् धनसम्पदा^३ ॥१९४॥
 भूपोऽप्येवं बली कश्चित् स्वराष्ट्रं यद्यभिद्रवेत्^४ । तदा वृद्धैः समालोच्य सन्दध्यात्^५ पणवन्धत^६ ॥१९५॥
 जनक्षयाय सदप्रानो बह्वपायो बृहतरः । तस्मादुपप्रदानाद्यैः^७ सन्धेयोऽरिर्वलाधिकः^८ ॥१९६॥
 इति गोपालदृष्टान्तम् ऊरीकृत्य नरेदवरः । प्रजानां पालने यत्नं^९ विदध्यात्प्रयवर्तमानं ॥१९७॥

है, जो द्विज अरहन्तं भगवान्के भक्त हैं वही मान्य गिने जाते हैं ॥१८५-१८६॥ "हम ही लोगोको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, हम ही देव-ब्राह्मण हैं और हम ही लोकसम्मत हैं अर्थात् सभी लोग हम ही को मानते हैं इसलिये हम राजाको धान्यका उचित अंश नहीं देते" इस प्रकार यदि वे द्विज कहें तो उनसे पूछना चाहिये कि आप लोगोमे अन्य वर्णवालोसे विशेषता क्यों है ? कदाचित् यह कहो कि हम जातिकी अपेक्षा विशिष्ट हैं तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जातिकी अपेक्षा विशिष्टता अनुभवमे नहीं आती है, कदाचित् यह कहो कि गुणकी अपेक्षा विशिष्टता है सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग केवल नामके धारण करनेवाले हो, जो व्रतको धारण करनेवाले जैन ब्राह्मण हैं वे ही गुणोसे अधिक हैं । आप लोग व्रतरहित, नमस्कार करनेके अयोग्य, दयाहीन, पशुओका घात करनेवाले और म्लेच्छोके आचरण करनेमें तत्पर हो इसलिये आप लोग धर्मात्मा द्विज नहीं हो सकते । इन सब कारणो से राजाओको चाहिये कि वे इन द्विजोको म्लेच्छोके समान समझें और उनसे सामान्य प्रजाकी तरह ही धान्यका योग्य अंश ग्रहण करें । अथवा इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? जैनधर्मको धारण करनेवाले उत्तम द्विजोको छोडकर प्रजाके समान आजीविका करनेवाले अन्य द्विज राजाओके पूज्य नहीं हैं ॥१८७-१९२॥

जिस प्रकार ग्वाला आलस्यरहित होकर अपने गोधनकी व्याघ्र चोर आदि उपद्रवों-से रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥१९३॥ जिस प्रकार ग्वाला उन पशुओके देखनेकी इच्छासे राजाके आनेपर भेंट लेकर उसके समीप जाता है और धन सम्पदाके द्वारा उसे संतुष्ट करता है उसी प्रकार यदि कोई बलवान् राजा अपने राज्यके सन्मुख आवे तो वृद्ध लोगोके साथ विचारकर उसे कुछ देकर उसके साथ सन्धि कर लेना चाहिये । चूकि युद्ध बहुतसे लोगोके विनाशका कारण है, उसमें बहुत सी हानियां होती हैं और उसका भविष्य भी बुरा होता है अतः कुछ देकर बलवान् धनुके साथ सन्धि कर लेना ही ठीक है ॥१९४-१९६॥ इस प्रकार राजाको ग्वालाका दृष्टान्त स्वीकार कर नीति-

१ न भवय । २ -युपद्रवात् ल०, म०, प० । ३ गोमती । गोमान् गोमनीयमिधानान् । गोभत्या- म०, ल०, प० । ४ क्षीरघृतादिविक्रयाज्जानघनमुद्घ्या । ५ अभिगच्छेत् । ६ सन्धानं कृषान् । ७ निष्प्रदानादित्यर्थः । ८ उचितवस्तुवाहनप्रदानाद्यैः । ९ सन्धिं कर्तुं योग्यं । १० कृषान् ।

प्रजानुपालनं प्रोक्तं पापिवस्य जितात्मनः । समञ्जसस्त्वमधुना वक्ष्यामस्तद्गुणान्तरम् ॥१६८॥
 राजा चित्तं समाधाप्य यत्कुर्याद् दुष्टनिग्रहम् । शिष्टानुपालनं चैव तत्सामञ्जस्यमुच्यते ॥१६९॥
 द्विपन्तमयवा पुत्रं निगृह्णन्निग्रहोचितम् । अण्डपतितो^१ दुष्टम् इष्टं चेच्छ्रमनागतम् ॥२००॥
 मध्यस्थवृत्तिरेव यः समवशी समञ्जसः । समञ्जसत्वं तद्भाव^२ प्रजास्यधिपमेक्षिता ॥२०१॥
 गुणैर्नैतेन शिष्टानां पालनं न्यायजीविनाम् । दुष्टानां निग्रहं चैव नृपः कुर्यात् कृतागतसाम् ॥२०२॥
 दुष्टा हिंसादिवेषु निरता पापकारिणः । शिष्टास्तु क्षान्तिशौचादिगुणैर्धर्मपरा नरा ॥२०३॥

इत्य मनु सकलचक्रभूदादिराज

तान् क्षत्रियान् नियमयन् पथि सुप्रणीते^३ ।

उच्चावचैर्गुणमतेरचितैर्वचोभिः

शास्ति स्म बृत्तमखिलं पृथिवीश्वराणाम् ॥२०४॥

इत्युच्चैर्भरतेशिनानुकथितं सर्वोपमूर्धेश्वरा^४

क्षात्रधर्ममनुप्रपद्य मृदिता स्वा धृत्तिमन्वय^५ ।

योगक्षेमपथेषु तेषु संहिता^६ सर्वे च वर्णाश्रमा

स्वे स्वे वर्त्मनि सुस्थिता धृत्तिमधुर्धर्मोत्सवे प्रत्यहम् ॥२०५॥

मार्गसे प्रजाका पालन करनेमें प्रयत्न करना चाहिये ॥१९७॥ इस प्रकार इन्द्रियोको जीतनेवाले राजाका प्रजापालन नामका गुण कहा । अब समजसत्व नामका अन्य गुण कहते हैं ॥१९८॥

राजा अपने चित्तका समाधान कर जो दुष्ट पुरुषोका निग्रह और शिष्ट पुरुषोका पालन करता है वही उसका समजसत्व गुण कहलाता है ॥१९९॥ जो राजा निग्रह करने योग्य शत्रु अथवा पुत्र दोनोका निग्रह करता है, जिसे किसीका पक्षपात नहीं है, जो दुष्ट और मित्र, सभी को निरपराध बनानेकी इच्छा करता है और इस प्रकार मध्यस्थ रहकर जो सबपर समान दृष्टि रखता है वह समजस कहलाता है तथा प्रजाओको विषम दृष्टिसे नहीं देखना अर्थात् सबपर समान दृष्टि रखना ही राजाका समजसत्व गुण है ॥२००-२०१॥ इस समजसत्व गुणसे ही राजाको न्यायपूर्वक आजीविका करनेवाले शिष्ट पुरुषोका पालन और अपराध करनेवाले दुष्ट पुरुषोका निग्रह करना चाहिये ॥२०२॥ जो पुरुष हिंसा आदि दोषोमें तत्पर रहकर पाप करते हैं वे दुष्ट कहलाते हैं और जो क्षमा, सतोष आदि गुणोके द्वारा धर्म धारण करनेमें तत्पर रहते हैं वे शिष्ट कहलाते हैं ॥२०३॥ इस प्रकार सोलहवें मनु तथा समस्त चरित्रवर्तियोमें प्रथम राजा महाराज भरतने उन क्षत्रियोको भगवत्प्रणीत मार्गमें नियुक्त करते हुए, अपने पिता श्री वृषभदेवको इष्ट ऊचे नीचे योग्य वचनोसे राजाओके समस्त आचारका उपदेश दिया ॥२०४॥

इस प्रकार भरतेद्वारने जिनका अच्छी तरह प्रतिपादन किया है ऐसे सबका हित करनेवाले, क्षत्रियोके उत्कृष्ट धर्मको स्वीकार कर सब राजा लोग प्रसन्न हो अपने अपने आचरणोका पालन करने लगे और उन राजाओके योग (नवीन वस्तुकी प्राप्ति) तथा क्षेम (प्राप्त दृष्ट वस्तुकी रक्षा) में प्रवृत्त रहनेपर अपना हित चाहनेवाले सब वर्णाश्रमोके लोग अपने अपने

१ गणान्तरहितः । २ अण्डपतितम् । ३ समञ्जसत्वगद्भावः अ०, प०, ग०, म०, म० ।

४ मूलः प्रायः । ५ सर्वेभ्यः हितम् । ६ अनुजगम् । ७ 'ए' गन्ती मुष्टिः । ह्यदित्वात् साय वृष्टिर्निर्माह,

भ्रष्टोऽपि उग्ररुद्राण्य अचाराणां पृथक्प्राण्य इत्ये, पुरादिनाऽपि यः कृत्, 'एयर' इति तिङि ।

८ ऊर्ध्वेश्वरम् । ९ हितं कृत्वा ।

जातिशत्रियवृत्तमत्रिततरं रत्नत्रयादिपुत्रं

तीर्थक्षत्रियवृत्तमप्यनुजगौ यच्चक्रियामप्रपत्तः ।

तत्तत्र भगवाधिपाय भगवान् वाचस्पतिर्गोतमो

१ श्यामश्रवात्क्षितायंतत्त्वविषयां जैनों श्रुतिं व्यापयन् ॥२०६॥

बन्दारोर्भरताधिपस्य जगतां नरुः क्रमो वेधनः

तस्यानुस्मरतो गुणान् प्रथमतस्तं देवमाद्यं जितम् ।

तस्यैवोपचिन्तं सुरागुरुरोर्भक्त्या मुहुस्तन्वतः

बालोज्ज्वलपतरः सुखाद् व्यतिगतो निन्वोत्सर्वः सम्भूतः ॥२०७॥

जैनोंनिज्यां चिन्वन्प्रपतमनुदिनं प्रीणयन्प्रपिसार्धं

शश्वद्विद्वन्भरतो रचनिपुतलसप्तमौलिभिः सेव्यमानः ।

रमां हृत्स्नामापयोधेरपि च हिमवनः पातयन्निस्तपलां

रम्यं स्वेच्छामिनोर्बनिरविना दधिराद् भोगसारं दशाद्यम् ॥२०८॥

इत्यार्षे भगवज्जितमेनाचार्यप्रणीते श्रियष्टिलभगनहा-

पुराणसहस्रे भरतराजदर्पाश्रमस्थितिप्रति-

पादनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्वं ॥४२॥*

मार्गमें स्थिर रहकर प्रतिदिन धर्मोत्सव करते हुए मतोप धारण करने लगे ॥२०५॥ चक्र-
वर्णियोंमें अग्रेसर महाराज भरतने जो अत्यन्त उल्लूखित जातिशत्रियोंका चरित्र तथा रत्नत्रय
में प्रकट हुआ तीर्थक्षत्रियोंका चरित्र कहा था वह सब, ममन् पदार्थोंके स्वल्पको विषय करने-
वाले जैन शास्त्रोंको प्रकट करते हुए वाचस्पति (श्रुतकेवली) भगवान् गौतम गणधरने मगध
देशके अधिपति श्रेणिकके लिये निरूपण किया ॥२०६॥ तीनों लोकोंके स्वामी भगवान्
वृषभदेवके चरणोंकी बन्दना करनेवाले, उन्हीं परब्रह्मके गुणोंका स्मरण करनेवाले, उन्हीं
प्रथम जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करनेवाले और सुर तथा अमुरोंके गुरु उन्हीं भगवान् वृषभदेवकी
भक्तिपूर्वक बार बार पूजा करनेवाले भरतेश्वरका निरन्तर होनेवाले उत्सवोंमें भग हुआ
भारी समय मुझमें व्यतीत हो गया ॥२०७॥ जो नियमित रूपमें प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान्
की पूजा करता है, जो प्रतिदिन वाचकोंके समूहको मंत्रपुष्ट करता है, पृथिवीपर भूके हुए मुमुटो
में मुशोभित होनेवाले राजा लोभ जिनकी निरन्तर सेवा करते हैं और जो हिमवान् पर्वतमें
लेकर समुद्रपर्यन्तकी शशुरहित ममस्त पृथिवीका पालन करता है ऐसा वह सम्राट् भरत अपनी
इच्छानुसार शीघ्राओंके द्वारा दश प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करता था ॥२०८॥

इस प्रकार भगवज्जितमेनाचार्यप्रणीत श्रियष्टिलभगनहा

हिन्दो भाषानुवादमें भरतराजकी वर्णायमनी रीतिवा प्रनिपादन

करनेवाला वयालीमवां पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

१ उवाच । २ प्रटीकृषन् । ३ पुत्राम् । ४ व्यतिगताः । ५ गन्तोपिता । ६ गन्द्राकारम्भ स्मिन्-
रापेन्नाम् । ७ मन्वन्तु । ८ दिव्यगुरुर्गतिधिमेनामात्रनभनानगनवात्तनाटपादीनी दगात्तानि कस्य म नम् ।

० न० म० ६० ग० पुस्तकगु निम्नास्ति । पाठोर्प्रथिमी दुःखे । ४० ब० ४० ग० पुस्तकज्ये पाठो
न दुःखे ।

वृषभाय ममोद्भोगरियतिप्रभावहेतवे । त्रिपालगोचरानन्तप्रमेयाचालमूर्तये ॥१॥
 मम तत्रतत्रत्याग्यपस्यनिर्मागिहेतवे । आदिदेवाय महाख्यापारान्तरमेतवे ॥२॥
 जयन्ति जितमृत्यवो विपुलधीर्यंभाजो जिना जगत्प्रमदहेतवो विगदगन्दरन्दच्छिद ॥
 सुरासुरसिरस्युत्तरापरस्तावीविपिग्विबिरगोत्तरारगितपासासादइयाः ॥३॥
 वृतिर्निरात्वेर्भगवत श्रीजिनसेनाचार्यरयेति ।
 पर्वोऽत्र मुनिपदमत्र कविक्रमत्र मीर्मेधितदचरितमत्र महापुराणम् ।
 यदा गचीन्द्रजिनगेतमुत्तारविन्दनिर्यंइचासि न हरन्ति मनामि वेणाम् ॥ १ ॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते महापुराणे आद्यं
 खण्डं समाप्तमगमत् ॥

जो समस्त मर्यादाकी उत्पत्तिके कारण हैं और जिनकी केवलज्ञानरूपी मूर्ति त्रिपाल
 विषयक अनन्त पदार्थोंसे व्याप्त है उन वृषभदेवके लिये नमस्कार हो ॥१॥ जो मयवत्यागों
 के मार्गकी रचनामें कारण है और जो संसाररूपी समुद्रमें पार करनेके लिये पुलके समान हैं
 ऐसे प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेवको नमस्कार हो ॥२॥ जिन्होंने मृत्युको जीत लिया
 है, जो अनन्त बलको धारण करनेवाले हैं। जो जगत्के आनन्दके कारण हैं, जो विपत्तियोंकी
 बहुत भारी जड़को काटनेवाले हैं, और सुर तथा असुरोंके मस्तकपर चमकते हुए पचराग-
 मणियोंकी पकितसे निकलती हुई किरणोंके समूहसे जिनके दोनों सुन्दर चरणकमल कुछ कुछ
 लाल हो रहे हैं ऐसे जिनन्द्रदेव सदा जयवन्त हो ॥३॥

(इस प्रकार महाकवि भगवान् जिनसेनाचार्यकी वृत्ति समाप्त हुई)

इस महापुराणमें धर्मका निरूपण है, मोक्ष पद अथवा मोक्षमार्गका वचन है, उत्तम
 कविता है और तीर्थंकर भगवान्का चरित है अथवा इस प्रकार समझना चाहिये कि कवियों
 में श्रेष्ठ श्री जिनसेनके मुखकमलसे निकले हुए वचन किसके मनको हरण नहीं करते हैं ? ॥४॥

(इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत महापुराणका प्रथम खण्ड समाप्त हुआ)

महापुराणम्

[उत्तरखण्डम्]

त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

धिष्य तनोतु त श्रीमान् वृषभो वृषभध्वज । पत्संकस्य 'गतेमृक्तेनागं'श्चित्र महानभूत् ॥१॥
विक्रम कर्मचक्रस्य^१ यदशत्राभ्यचितकम । 'श्राक्रम्य धर्मचक्रेण चक्रं त्रैलोक्यचक्रिताम् ॥२॥
योऽस्मिश्चतुर्ष्वालादी^२ दिवादी था^३ दिवाकर । जगदुद्योतयामास प्रोद्गच्छद्भागभस्तिभि ॥३॥
नष्टमण्डाद्दशाम्भोधिकोटीकोटीवृ कल्पयो^४ । निर्वाणमार्गं निदिश्य^५ यो न सिद्धाश्च वद्धिता ॥४॥
तीर्थंश्रुत्सु^६ स्वत^७ प्रायो^८ नामादानपराभव^९ । यमस्मिन्^{१०} प्रसूशत्रासौ स्वतूनुमिष चद्रियु ॥५॥
येन^{११} प्रकाशिते मृषनेमार्गे^{१२} स्मिन्परेवृ तत्^{१३} । प्रकाशित^{१४} प्रकाशोक्तवैष्यं तीर्थंश्रुत्स्वभूत् ॥६॥

अथानन्तर, जिनकी ध्वजामे वृषभरथ चिह्न है और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जिन एकके जानेसे ही बहुत बड़ा मोक्षका मार्ग बन गया ऐसे अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीको धारण करनेवाले श्री वृषभदेव सत्रका कल्याण करें ॥१॥ जिनके चरणकमलकी इन्द्र स्वय पूजा करता है और जिन्होंने धर्मचक्रके द्वारा कर्मसमुहके पराक्रमपर आक्रमणकर तीनों लोकोंका चक्रवर्तीपना प्राप्त किया है ॥२॥ दिनके प्रारम्भमें सूर्यकी तरह इस चतुर्थकालके प्रारम्भमें उदय होकर जिन्होंने फीलती हुई अपनी वाणीरूपी विरणोसे समस्त जगत्को प्रकाशित किया है अर्थात् दिव्य ध्वनिके द्वारा समस्त तत्त्वोंका उपदेश दिया है ॥३॥ उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल के अठारह घोड़ी सागरतक जो मोक्षका मार्ग नष्ट हो रहा था उसका निर्देशकर जिन्होंने सिद्धों की सत्या बढाई है ॥४॥ जिस प्रकार चक्रवर्तियोंमें अपने पुत्र भरत चक्रवर्तीको उमके पहले किसी अन्य चक्रवर्तीका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव नहीं छू सका था उसी प्रकार तीर्थङ्करो में अपने पहले किसी अन्य तीर्थङ्करोका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव जिन्हू छू भी नहीं सका था । भावार्थ—जिस प्रकार भरत इस युगके समस्त चक्रवर्तियोंमें पहले चक्रवर्ती थे उसी प्रकार जो इस युगके समस्त तीर्थङ्करोमें पहले तीर्थंकर थे ॥५॥ जिनके द्वारा इस मोक्षमार्गके प्रकाशित किये जानेपर अन्य तीर्थंकरोंमें प्रकाशित हुए मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेके कारण उपदेगनी व्यर्थता हुई थी । भावार्थ—इस समय जो मोक्षका मार्ग चल रहा है उसका उपदेश सबसे पहले भगवान् वृषभदेवने ही दिया था उनके पीछे होनेवाले अन्य तीर्थंकरोंने भी उसी मार्गका उपदेश दिया है इसलिये उनका उपदेश पुनरवत होनेके कारण व्यर्थ सा जान पड़ता

१ शमनात् । २ मुक्तिमार्गं-य०, ल०, म० । ३ कभराजने-यस्य । ४ त्रिया । ५ चतुर्थ-
कालस्यादौ । ६ इव । ७ उन्वापिण्यवगपिण्यो । ८ उपदेशं श्रुत्वा । ९ अजितादिषु । १० आमन
पुत्रजान् । ११ पूर्वस्मिन् काने । १२ नामदानपराभव इति पाठस्य ल० पुस्तके भवत । नामदानपराभव
इति पाठस्य 'द०' पुस्तके भवेत् । अदानपराभव-आहारादिदानभाव इति परानव । नामदानपराभव
इति पाठे धीनिदानपराभव इति पराभव । १३ चतुर्थकालस्यादौ । १४ वृषभेण । १५ चतुर्थकालादौ ।
१६ भोगमार्गप्रमाणम् । १७ प्रकाशितस्य प्रकाशनं प्रोक्तव्यपत्न्यम् ।

० भगवान् वृषभदेव तृतीय कालके अन्तमें उत्पन्न हुए और तृतीय कालमें ही मार्ग पथारे हैं
दृगतिए आचाय गुणरत्ने चतुर्थ कालके आदिमें जाना किंस दृष्टित निरता है यह विचारणीय है ।

युगभारं बहुद्रेकश्चिर धर्मरयं पृथुम् । व्रतशीलगुणापूर्णं चित्रं यतंपति स्म य ॥७॥
 तमेकमक्षरं ध्यात्वा व्यवनमेकमिवाक्षरम् । वक्ष्ये समीक्ष्य लक्ष्याणि तत्पुराणस्य चूलिकाम् ॥८॥
 स्वोक्ते प्रमुक्ता सर्वे नो रसा गुह्यभिरैव ते । स्नेहादिहो तदुत्सृष्टान् भक्त्या तानुपयुञ्जमहे ॥९॥
 रागादीन् दूरतस्त्यक्त्वा शृङ्गारादिरसोक्तिभिः । पुराणकारणां शुद्धयोवा शुद्धा मुमुक्षुष ॥१०॥
 निर्मितोऽप्य पुराणस्य सर्वसारा महात्मभिः । तच्छ्रेये यतमानानां प्रासादस्येव न श्रम ॥११॥
 पुराणे प्रौढशब्दाद्यैः सत्प्रफलशालिनि । यचासि पल्लवानोव कर्णे कुर्वन्तु मे वृथा ॥१२॥
 अत्रं "गुह्यभिरैवात्म्यं" पूर्वं निष्पादितं परं । परं निष्पाद्यमानं सच्छ्रद्धोवद्भातिसुन्दरम् ॥१३॥
 इक्षोरिवात्म्यं पूर्वोद्धेनेवाभावि रसावहम् । यया तथास्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया ॥१४॥
 अनन्विष्टं मयि प्रौढं धर्मोऽप्यमिति गृह्यताम् । चाटुके स्वादुमिच्छन्ति न भोक्तारस्तु भोजनम् ॥१५॥

हे ॥६॥ जीर आश्चर्य है कि जिन्होंने अकेले ही बहुत कालतक इस अवसर्पिणी युगके भारको (पक्षमें जुवारोके बोझको) धारण करते हुए व्रतशील आदि गुणोंसे भरे हुए वडे भारी धर्म रथको चलाया था ॥७॥ ऐसे उन अद्वितीय अविनाशी भगवान् वृषभदेवको एक प्रसिद्ध ओम् अक्षरके समान ध्यान कर तथा पूर्वशास्त्रोका विचार कर इस महापुराणकी चूलिका कहता हू ॥८॥ हमारे गुरु जिनसेनाचार्यने हमारे स्नेहसे अपने द्वारा कहे हुए पुराणमें सब रस वहे हैं इसलिये उनकी भक्तिसे छोडे गये रसोका ही हम आगे इस ग्रन्थमें उपयोग करेंगे ॥९॥ राग आदिको दूरसे ही छोडकर शृङ्गार आदि रसोका निरूपण कर पुराणोकी रचना करने वाले शुद्ध ज्ञानी, पवित्र और मोक्षकी इच्छा करनेवाले होते हैं ॥१०॥ इस पुराणका समस्त सार तो महात्मा जिनसेनाचार्यने पूर्ण ही कर दिया है अब उसके वाकी वचे हुए अर्धमें प्रयत्न करनेवाले हम लोगोका परिश्रम ऐसा समझना चाहिये जैसा कि किसी मकानके किसी वचे हुए भागको पूर्ण करनेके लिये थोडा सा परिश्रम करना पडा हो ॥११॥ यह पुराणरूपी वृक्ष दान और अर्थमें प्रौढ है तथा उत्तम उत्तम पत्ते और फलोसे सुशोभित हो रहा है इसमें भरे वचन नवीन पत्तोंने समान हैं इसलिये विद्वान् लोग उन्हें अवश्य ही अपने कर्णोंपर धारण करें । भावार्थ—जिस प्रकार वृक्षके नये पत्तोंको लोग अपने वानोंपर धारण करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग हमारे इन वचनोंको भी अपने वानोंमें धारण करें अर्थात् स्नेहसे श्रवण करें ॥१२॥ इस पुराणका पूर्व भाग गुरु अर्थान् जिनसेनाचार्य अथवा दीर्घ वर्णोंसे बना हुआ है और उत्तर भाग पर अर्थान् गुरुने भिन्न दिव्य (गुणभद्र) अथवा लघु वर्णोंने द्वारा बनाया जाता है इसलिये क्या यह छन्दके समान सुन्दर नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य होगा । भावार्थ—जिस प्रकार गुरु और लघु वर्णोंने बना हुआ छन्द अत्यन्त सुन्दर होता है उसी प्रकार गुरु और दिव्यके द्वारा बना हुआ यह पुराण भी अत्यन्त सुन्दर होगा ॥१३॥ जिस प्रकार ईशका पूर्वार्ध भाग ही गीता होता है उसी प्रकार इस पुराणका भी पूर्वार्ध भाग ही रसीला हो यह विचार कर मैं इसके उत्तरभागकी रचना प्रारम्भ करता हू ॥१४॥ मुझमें प्रौढता (योग्यता) की सोच न कर इमे वेदके धर्म समझकर ही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि भोजन करनेवाले प्रिय बना

श्रयवाङ्मं भवेदस्य विरसं नेति निदचयः । धर्मायं ननु वेनापि नादसि विरसं क्वचित् ॥१६॥
 गुरुणामेव माहात्म्यं यद्यपि स्वादु मद्भवः । तरुंगा हि प्रभावेण^१ यत्फलं स्वादु जायते ॥१७॥
 निर्यान्ति हृदयाद् धाचो हृदि मे गुरुवः स्थिताः । ते^२ तत्र संस्परिष्यन्ते तत्र मेऽत्र परिश्रमः ॥१८॥
 इवं शुभ्रूपयो^३ भव्याः कविनोर्ग्रथो जिनेदवतः । तस्याभिघायकाः शब्धास्तत्र^४ निन्दन्व बर्तते ॥१९॥
 दोषान् गुणान्गुणो गृह्णन् गुणान् दोषान्स्तु दोषवान् । सदसज्जानयोद्विचित्रम् अत्र माहात्म्यमीदृशम् ॥२०॥
 गुणिनां गुणमादाय गुणी भवतु सज्जनः । असद्वेषसमादानाद्-दोषयान् दुर्जनोऽन्दुनतम् ॥२१॥
 सज्जने दुर्जनः कोपं कामं कर्तुमिहाहंति । तद्वैरिणामनापानां गुणानामाश्रयो^५ यतः ॥२२॥
 यया^६ स्वानुगमर्हन्ति सदा स्तोत्रं कवीदवरः । तया निन्दितुमस्वानुवृत्तं कुरुवयोऽपि माम् ॥२३॥
 कविरैव कवेर्बैसि कामं काव्यपरिश्रमम् । घन्ध्या स्तनन्ययोत्वत्तिषेदनामिव नावधिः ॥२४॥
 गृहाणेहास्ति चेद्वैषं स्वं धनं न निषिष्यते । खलासि प्रायितो भूयस्त्वं गुणात्र ममाग्रहोः ॥२५॥

कहनेपर ही स्वादिष्ट भोजनको इच्छा नहीं करते । भावार्थ—जिस प्रकार भोजन करनेवाले पुरुष प्रिय वचनोंकी अपेक्षा न कर स्वादिष्ट भोजनका ही विचार करते हैं उसी प्रकार धर्मात्मा लोग मेरी योग्यताकी अपेक्षा न कर केवल धर्मका ही विचार करें—धर्म ममभक्त हो इमे ग्रहण करें ॥१५॥ अथवा इस पुराणका अग्रभाग भी नीरस नहीं होगा यह निश्चय है क्योंकि धर्मका अग्रभाग कही किन्ती पुरुषने नीरस नहीं देना है ॥१६॥ यदि मेरे वचन स्वादिष्ट हों तो इसमें गुरुओंका ही माहात्म्य समझना चाहिये क्योंकि जो फल मीठे होते हैं वह वृक्षोंका ही प्रभाव समझना चाहिये ॥१७॥ चूकि वचन हृदयमे निकलते हैं और मेरे हृदयमें गुरु विद्यमान हैं इसलिये वे मेरे वचनोंमें अवश्य ही संस्कार करेंगे अर्थात् उन्हें सुधार लेंगे अत मुझे इन ग्रन्थके वचनानमें कुछ भी परिश्रम नहीं होगा ॥१८॥ इस पुराणको सुननेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीव हैं, इसका अर्थ जिनेन्द्रदेवने कहा है और उसके कहनेवाले शत्रु हैं इसलिये इसमें निन्दा (दोष) नहीं है ॥१९॥ गुणी लोग दोषोंको भी गुणरूपमें ग्रहण करते हैं और दोषी लोग गुणोंको भी दोषरूपमें ग्रहण करते हैं, इस संसारमें सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका यह ऐसा ही विचित्र माहात्म्य है ॥२०॥ सज्जन पुरुष गुणी लोगोंके गुण ग्रहण कर गुणी हों यह ठीक है परन्तु दुष्ट पुरुष अविद्यमान दोषोंको ग्रहणकर दोषी हो जाते हैं यह आश्चर्यकी बात है ॥२१॥ इस संसारमें दुर्जन पुरुष सज्जनोंपर इच्छानुसार श्रेय करनेके श्रेय्य हैं क्योंकि वे उन दुष्टोंके दायु स्वरूप, अनाय गुणोंके आश्रयभूत हैं । भावार्थ—चूकि सज्जनोने दुर्जनोंके दायुभूत, अनाय गुणोंको आश्रय दिया है इसलिये वे सज्जनोंपर यदि श्रेय करते हैं तो उचित ही है ॥२२॥ जिन प्रकार कवीदवर लोग अपने अनुकूल चलनेवालेकी मदा म्भुति करनेके योग्य होने हैं उसी प्रकार कवि भी अपने अनुकूल नहीं चलनेवाले मेरी निन्दा करनेके योग्य हैं । भावार्थ—उत्तम कवियोंके मार्गपर चलनेके कारण जहां वे मेरी प्रशंसा करेंगे वहां कुचवियोंके मार्गपर न चलनेके कारण वे मेरी निन्दा भी करेंगे ॥२३॥ कवि ही कविके काव्य करनेके परिश्रमको अच्छी तरह जान सकता है, जिन प्रकार घन्ध्या स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेकी वेदनाको नहीं जानती उसी प्रकार कवि कविके परिश्रमको नहीं जान सकता ॥२४॥ रे दुष्ट, यदि मेरे इस ग्रन्थमें दोष हों तो उन्हें तू ग्रहण कर, क्योंकि वह तेरा ही धन है उसके लिये तुझे ग्राह्य नहीं है, परन्तु

१ उत्तराजंम् । २ यदपि ५०, न०, म० । ३ प्रभावोऽतो अ०, ५०, ६०, म०, ५०, म० ।

४ गुरुम् । ५ श्रोतुमिच्छन् । ६ मन्, वाग्गार । ७ दुर्जनैरिच्छाम् । ८ सज्जन । आयात् । ९ मन्ः
 शारदात् । १० निजानुवचनम् ।

श्रोत्रपात्राञ्जलिं कृत्वा पीत्वा धर्मरसायनम् । अन्नरामरतां प्राप्नुम् उपयुञ्ज्वसिदं^१ ब्रूयाः ॥३६॥
 नूनं पृथ्वं पुराणाब्धेर्मध्यमध्यासितं मया । तत्सुभाषितरत्नानि सञ्चितानीति निश्चितिः ॥३७॥
 सुदूरपारगम्भीरमिति नात्र भयं मम । पुरोगां गुरवः सन्ति प्रष्टाः सबन् दुर्लभाः ॥३८॥
 पुराणत्यास्य संसिद्धिर्नाम्ना स्वैर्नैव सूचिता । निर्वक्ष्याम्यत्र नो वेत्ति ततो नास्म्यहमाकूलः ॥३९॥
 पुराणं धार्ममासाद्य जिनसेनानुगा घृष्टम् । भवाब्धेः पारमिच्छन्ति पुराणस्य किमुच्यते ॥४०॥
 श्रयो मनसि जिह्वायै शब्दः 'सालङ्कृतिस्तयोः' । श्रतः पुराणसंसिद्धिर्नास्ति कालविलम्बनम् ॥४१॥
 आकरेण्विव रत्नानाम् ऊहानां नाशये शयः । विचित्रातद्भृतीः^२ कर्तुं दौर्गत्यं किं कथ्येः कृतीः^३ ॥४२॥
 विचित्रपदविन्यासा रसिका सर्वसुन्दरा^४ । कृतिः सालङ्कृतितनं स्यात् कस्यप्यं कामसिद्धये ॥४३॥
 सञ्चितसर्वमसौ ह्यत्रो^५ नियत्रो^६ चापनिष्यतः । आमन्त्रिणो^७ च पुष्पाणां ध्यातव्येषं कृतिः श्रुता ॥४४॥

समुद्रसे उत्पन्न हुए इस धर्मरूपी महारत्नको कौस्तुभ मणिसे भी अधिक मानकर अपने हृदयमें धारण करें । ॥३५॥ पण्डितजनों कामरूपी पात्रकी अंजलि बना इस धर्मरूपी रसायनकी पीकर अजर अमरपना प्राप्त करनेके लिये उद्यम करें ॥३६॥ मुझे यह निश्चय है कि मैंने अवश्य ही इस पुराणरूपी समुद्रके पवित्र मध्यभागमें अधिष्ठान किया है और उससे मुभाषित-रूपी रत्नोंका संचय किया है ॥३७॥ यह पुराणरूपी समुद्र अत्यन्त गभीर है, इसका किनारा बहुत दूर है इस विषयका मुझे कुछ भी भय नहीं है क्योंकि सब जगह दुर्लभ और सबमें श्रेष्ठ गुह्र जिनसेनाचार्य मेरे आगे हैं ॥३८॥ इस पुराणकी सिद्धि अपने महापुराण इस नामसे ही सूचित है इसलिये मैं इसे कह सकूंगा अथवा इसमें निर्वाह पा सकूंगा या नहीं इसकी मुझे कुछ भी आकुलता नहीं है ॥३९॥ जिनसेनाचार्यके अनुगामी शिष्य प्रशस्त मार्गका आलम्बन कर अवश्य ही संसाररूपी समुद्रसे पार होनेकी इच्छा करते हैं फिर इन पुराणके पार होनेकी बात तो कहना ही क्या है ? भावायं—जिनसेनाचार्यके द्वारा बतलाये हुए मार्गका अनुसरण करनेमें जब संसाररूपी समुद्रका पार भी प्राप्त किया जा सकता है तब पुराणका पार (अन्त) प्राप्त करना क्या कठिन है ? ॥४०॥ अर्थ मनमें है, शब्द जिह्वाके अग्रभागपर है और उन दोनोंके अलंकार प्रसिद्ध है ही अतः इस पुराणकी सिद्धि (पूर्ति) होनेमें समयका विलम्ब नहीं है अर्थात् इसकी रचना शीघ्र ही पूर्ण होगी ॥४१॥ जिस प्रकार खानियों रत्नोंकी कमी नहीं है उसी प्रकार जिसके मनमें लक्ष अथवा पदार्थोंकी कमी नहीं है फिर भला जिसमें अनेक प्रकारके अलंकार हैं ऐसे काव्यके बनानेवाले कविको दक्षिणता किस बातकी है ? ॥४२॥ मेरी यह रचना अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री विचित्र पदव्यासा अर्थात् अनेक प्रकारसे चरण रखनेवाली होती है उसी प्रकार यह रचना भी विचित्र पदव्यासा अर्थात् अनेक प्रकारके सुवन्त विद्वन्त रूप पद रखनेवाली है, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री रसिका अर्थात् रमीली होती है उसी प्रकार यह रचना भी रसिका अर्थात् अनेक रसोंमें भरी हुई है, और जिस प्रकार सुन्दर स्त्री सालंकारा अर्थात् कटक कुण्डल आदि आभूषणोंसे संहित होती है उसी प्रकार यह रचना भी सालंकारा अर्थात् उपमा रूपक आदि अलंकारोंसे संहित है । इन प्रकार मेरी यह रचना सुन्दरी स्त्रीके समान भला किसके मनोरथकी सिद्धिके लिये न होगी ? भावायं—इसके पढ़नेसे सबके मनोरथ पूर्ण होंगे ॥४३॥ यह शुभ रचना पहलेके संचित पापोंको नष्ट

१ उपयुञ्जीष्यम् । २ प्रसिद्धा । ३ अतद्भनादच जिह्वायै श्रयो । ४ श्रुत्यायंयो । ५ -तद्भृतेः कर्तुं दौर्गत्यं अ०, प०, स०, म० । -नद्भृतेः कर्तुं दौर्गत्यं इ०, स० । ६ कृतेः अ०, प०, स०, म०, इ०, स० । ७ -सुन्दरी इ०, स० । ८ विनासिनी । ९ प्रतिपद्यी । १० आमन्त्रणी इ० ।

सहृदनाना^१ हिने^२ प्रीति प्राकृताना^३ प्रिय^४ प्रियम्^५ । एतद्धित^६ प्रिय चात् सर्वान् सन्तोषयत्यलम् ॥४५॥
इदं निष्पन्नमेवान् स्थितमेवायुगान्तरम् । इत्याविर्भावितोत्साहं प्रस्तुवे^७ प्रस्तुता कथाम् ॥४६॥
इति पीठिका ।

श्रयात् शणिक पोत्वा पुरो^८ सुचरितामृतम् । आसिस्वादयिषु^९ शेष^{१०} हस्तालग्नमिवोत्सुक ॥४७॥
समुत्पाय सभामध्ये प्राञ्जलि प्रणतो मनाक्^{११} । पुनर्विज्ञापयामास गीतम भणनायकम् ॥४८॥
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं सम्पकपुराणं परमं पुरो । निवृत्तोऽसौ यथास्थान्ते तथाहं चातिनिवृत्त^{१२} ॥४९॥
विलं तस्मिन् जयो नाम तीर्थेभूत् पार्यिवाप्रणो । यस्याद्यापि जितार्कस्य प्रतापं प्रयते क्षितौ ॥५०॥
यस्य दिग्विजयं शेषकुमारविजयं स्वयम् । वीरपट्टं समुद्धृत्य बबन्ध भरतेश्वरं ॥५१॥
पुरस्तोर्षकृता पूर्वशक्तिणा भरतेश्वर । दानतीर्थकृता श्रेयान् किलासी^{१३} च स्वयवरं ॥५२॥
अर्ककोतिं पुरो पीठ^{१४} सद्गरे कृतसद्गरं^{१५} । जित्वा निगलयामास^{१६} किलैकाकीं सहेलया ॥५३॥
तेनान्तो व्युपभं कृम्भो रयान्तो दृढसक्तक । धनुरन्तं दातो देवदर्मा भावान्तदेवभाक् ॥५४॥
मन्दनं सोमदत्ताह्नं सूरवत्तो गुणं गुणं । वायुशर्मा यशोब्राह्मणैर्यग्निश्चाग्निदेववाक् ॥५५॥
अग्निगुप्तोऽग्न्यं मित्राग्निर्हन्तंभूत् समहीभर^{१७} । सहेन्द्रो वसुदेवश्च ततः यश्चाद्भुत्सुधरं ॥५६॥

करनेवाशी है, आनेवाले पापोको रोकनेवाली है और पुण्योको चुलानेवाली है इसलिये इसका सदा ध्यान करते रहना चाहिये ॥४४॥ उत्तम मनुष्योकी हितमें प्रीति होती है और साधारण मनुष्योको जो इष्ट है वही प्रिय होता है, यह पुराण हितरूप भी है और प्रिय भी है अतः सभी को अच्छी तरह सन्तुष्ट करता है ॥४५॥ यह तैयार हुआ पुराण अवश्य ही इस ससारमें युगान्तर तक स्थिर रहेगा इस प्रकार जिसे उत्साह प्रकट हुआ है ऐसा मैं अब प्रकृत कथाका प्रारम्भ करता हूँ ॥४६॥ (इस प्रकार पीठिका समाप्त हुई ।)

प्रचलो मेरुसंज्ञक ततो मेरुप्रनाह्वयः । मेरुनिर्देशोयत्प्रान्तमर्वाग्निधानयोः ॥५७॥
 सर्वगुप्तः प्रियप्रान्तसर्वो देवान्तमर्वावाक् । सर्वविजयो गुप्तो विजयादिस्ततः परः ॥५८॥
 विजयमिनो विजयिलोऽपराजितसंज्ञकः । वसुमित्रः सविस्वादिनेनः सेनान्तमापुत्रात् ॥५९॥
 देवान्तमन्थः सत्यान्तदेवो गुप्तान्तमत्यवाक् । मन्थमित्रः सतां ज्येष्ठः सन्मिनो निर्मलो गुणः ॥६०॥
 विनीतः सम्बरो गुप्तो मून्यादिर्मुनिदत्तवाक् । मुनिदत्तो मुनिदेवप्रान्तो यत्नान्तगुप्तवाक् ॥६१॥
 मित्रयज्ञः स्वयम्भूश्च देववत्सालगौ^१ भगौ । भगादिफल्गुः फल्ग्वन्तगुप्तो मित्रादिफल्गुकः ॥६२॥
 प्रजापतिः सर्वसन्धो वरुणो धनपालकः । मघवान् राघवन्तजो महावीरो महारथः ॥६३॥
 विशालाक्षो महावालः शुचिमानस्तनः परः । वज्रदेव वज्रमारदेव चन्द्रचूलमनाह्वयः ॥६४॥
 जयो महारथः कच्छमहाकच्छावबुच्छकौ । नमिचिनमिर्ग्यो च वनानिवत्समंज्ञकौ ॥६५॥
 बलान्तनदो नन्दो च महानागो परस्तनः । मित्रान्तनदो देवान्तवापोऽनुपमनक्षणः ॥६६॥
 चतुर्निरधिकः प्रातिरिति ब्रह्मगुणापिपाः । एते सप्तद्विमयुक्ताः सर्वे वेद्यनुवादिनः^२ ॥६७॥
 स एवातोद् गृह्णत्यागाद् एतेष्वप्युदिनोदिनः^३ । एकसप्ततिः सत्यानसम्प्राप्तगणतो गणौ^४ ॥६८॥
 पुराणं तस्य^५ मे ब्रूहि महत्तस्मिन् कौतुकम् । नव्यजानकवृन्दस्य प्रप्रणो^६ भगवानिति ॥६९॥
 ततः स्वस्य यमात्तस्य^७ गगापीशादनुग्रहम् । अतन्वृत्तार स्वस्यानम् इद्विगिता हि घोषताः ॥७०॥
 यत्रऽऽमिष्टमस्मानिः पूष्टं शिष्टं त्वयैव तन् । चेनो जिह्वा त्वमस्माकमित्यस्तावीन्^८ सना च तम् ॥७१॥

प्रमिद्ध महीधर १७, महेन्द्र १८, वसुदेव १९, उमके अनन्तर- वसुंधर २०, अञ्जल २१, मेरु २२, तदनन्तर मेरुप्रन २३, मेरुभूति २४, सर्वयगा २५, सर्वयज्ञ २६, सर्वगुप्त २७, सर्वप्रिय २८, सर्वदेव २९, सर्वविजय ३०, विजयगुप्त ३१, फिर विजयमित्र ३२, विजयिल ३३, अपराजित ३४, वसुमित्र ३५, प्रमिद्ध विश्वसेन ३६, माधुमेन ३७, मत्स्यदेव ३८, देवमत्स्य ३९, सत्यगुप्त ४०, सत्यगुप्तोमं श्रेष्ठ मत्स्यमित्र ४१, गुप्तोमं युक्त निर्मल ४२, विनीत ४३, नवर ४४, मुनिगुप्त ४५, मुनिदत्त ४६, मुनियज्ञ ४७, मुनिदेव ४८, गुप्तयज्ञ ४९, मित्रयज्ञ ५०, स्वयभू ५१, भगदेव ५२, भगदत्त ५३, भगफल्गु ५४, गुप्तफल्गु ५५, मित्रफल्गु ५६, प्रजापति ५७, सर्वमघ ५८, वरुण ५९, धनपालक ६०, मघवान् ६१, तेजोगणि ६२, महावीर ६३, महारथ ६४, विशालाक्ष ६५, महावाल ६६, शुचिगाल ६७, फिर वज्र ६८, वज्रमार ६९, चन्द्रचूल ७०, जय ७१, महारथ ७२, अनिमग श्रेष्ठ वच्छ ७३, महावच्छ ७४, नमि ७५, विनमि ७६, बल ७७, अनिवल ७८, भद्रवल ७९, नन्दो ८०, फिर महानागो ८१, नन्दिमित्र ८२, वामदेव ८३ और अनुपम ८४ । इन प्रकार भगवान् वृषभदेवके ये ८४ गणधर थे, ये सभी मानो ऋद्धिपोमे महिन थे और सर्वज्ञ देवके अनुपम थे । इन चौराभी गणधरोंमें जो घग्वा (याग कर अत्यन्त प्रभावनाथी, गुणवान् और इन्हत्तरभी नभ्याको प्राप्त करनेवाला अर्थान् इन्हत्तरवा गणधर हुआ था, उन्हीं जयकुमारका पुराण मुझे कहिये क्योंकि उनमें बहुत भारी कौतुक है । आप नव्यजोवन्पो चानक पशियोंके समूहके लिये उत्तम मेघके समान हैं ॥४८-६९॥

तदनन्तर गणधरदेवमें अपना अनुग्रह जानकर राजा ध्येणिक अपने म्यानको अलंकृत करने लगा अर्थान् अपने स्यानपर जा बैठा मोठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष मयकेतो जानने-आने होने हैं ॥७०॥ 'हे मिष्ट' जिये हर्मजोग पूछना चाहते थे वही तूने पूजा है इन्द्रिये

१ सर्वयगा सर्वयज्ञा । २ देवदत्तनगदनी । ३ सर्वभूमुद्रा । ४ पर्यन्मुद्रेशान् । प्रतिम्यान इत्यर्थ । ५ एतेषु चतुर्गुणानिनागुधरदेवेष्वेकमुपनिषन्त्या प्राप्स्यगुणा । ६ गृणी स०, म० । ७ यद्यप्य । ८ प्रष्टुमेध इति विज्ञापयामास । ९ तावैवर्थ । १० मुनिमररोत् ।

गणो तेनेति सम्पृष्ट प्रवृत्तस्तदनुग्रहे । नार्थिनो विमूढान् सन्त कुर्वन्ते तद्वि तद्ग्रतम् ॥७२॥
शृणु श्रेणिक सप्रश्नस्त्वयात्रावसरं कृत । नाराधयन्ति कान्वाते सन्तोऽवसरवेदिन ॥७३॥
कयोमुहाम्

इह जम्बूमति द्वीपे दक्षिणे भरते महान् । वर्णाश्रमसमाकीर्णो देशोऽस्ति कुरुजाडमल ॥७४॥
धर्मार्थकाममोक्षणाम एको लोकेऽयमाकर । भाति स्वर्ग इव स्वर्गे विमान वाऽमरेशितु ॥७५॥
हास्तिनाख्य पुर तत्र विचित्र सर्वसम्पदा । सम्भव मूपयद्वाद्धौ लक्ष्म्या कुलगृहायितम् ॥७६॥
पति पतिर्वा ताराणाम् अस्य सोमप्रभोऽभवत् । कुर्वन् कुबलयाह्लाद सत्करं स्वैर्दुष्पाथय ॥७७॥
तस्य लक्ष्मीमनाक्षिप्य वक्ष स्थलनिवासिनी । लक्ष्मीरिय द्वितीयेति प्रेक्ष्या लक्ष्मीवती सती ॥७८॥
तयोर्जयोऽभवत् सूनु प्रजाविक्रमयोरिव । तन्वन्नाजन्मन कीर्ति लक्ष्मीमिव गुणार्जिताम् ॥७९॥
सुताश्चतुर्दशास्यान्ये जित्तरे विजयादय । गुणैर्मनून् व्यतिक्रान्ता सत्यया सद्दर्शोऽपि ते ॥८०॥
प्रवृद्धनिजचेतोभिस्तं पञ्चदशभिर्भुशम् । कान्ने कलाविशेषैर्वा राजराजो रराज स ॥८१॥

तू ही हमारा मन है और तू ही मेरी जीभ है' इस प्रकार समस्त सभाने उसकी प्रशंसा की थी ॥७१॥ राजा श्रेणिकके द्वारा इस प्रकार पूछे गये गौतम गणधर उसका अनुग्रह करनेके लिये तत्पर हुए सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष याचकोको विमुख नहीं करते, निश्चयसे यही उनका व्रत है ॥७२॥ गौतम स्वामी कहने लगे कि हे श्रेणिक ! सुन, तूने यह प्रश्न अच्चे अवसरपर किया है अथवा यह ठीक है कि अवसरको जाननेवाले सपुरुष अन्तमे किसको वश नहीं कर लेते ॥७३॥

राजा राजप्रभो' लक्ष्मीवती देवी प्रियानुज । श्रेयान् ज्यायान् जय पुत्रस्त्रादाय्यं पूज्यते न कं ॥२२॥
 स पुत्रवृष्टिपाटोप' सोमस्त्वपात्राधिपदिचरम् । भोग्य सम्भूतपुण्याना स्वस्य चानूत्तददन्तम् ॥२३॥
 श्रयान्प्रदा जगत्कामभोगवन्तुन् विद्युप्रभ' । अनित्यादाधिदुःखान्यान्मन्वा वायात्म्यवीक्षण' ॥२४॥
 विरज्य राज्य सयोग्य 'वृष्ये शौर्योजिते जये । 'अजर्वीशार्यवी'र्षीदिप्राग्यराज्यममृत्सु' ॥२५॥
 श्रम्येत्य वृषभान्यादा' दौक्षिवा मोक्षमन्वभून् । श्रेयसा' सह नापंत्यम्' श्रनुजेन यथा पुरा' ॥२६॥
 पितु पद्मभिक्षाया' जयोन्नापि' मर्हो महान् । महतोऽनुभवन् भोगान् सविभज्यानुजं समन्' ॥२७॥
 एरवाशय विहारार्थं बाह्योद्यानमुपागत । तत्रासीन सप्तालोक्य शीलगुप्त' महामुनिम् ॥२८॥
 त्रि परीत्य नमस्कृत्य नृत्वा भक्तिभरान्वित । श्रुत्वा धर्मं तमापृच्छ ह्य प्रीत्या प्रत्यक्षित् पुरीम् ॥२९॥
 तस्मिन् वने बसन्नागमिद्युन सह बभूवुः । श्रुत्वा धर्मं सुधा मत्वा ययौ प्रीत्या दयारमम् ॥३०॥
 कदाचिन् प्रावृडारम्भे प्रचण्डादाविताडित । मृदाज्ज्मो दान्तिमादाय नागो नागाज्जरोऽभवत् ॥३१॥

प्रकार अपने तेजको बटानेवाटे, अनिश्चय मुन्दर और विद्योप कलाओको धारण करनेवाटे उन पन्द्रह पुत्रोमे राजाधिराज सोमप्रभ मुग्धोभित हो रहे थे ॥८१॥ जिस राज्यका राजा सोमप्रभ था, लक्ष्मीमती रानी थी, प्रिय छोटा भाई श्रेयाम था और बड़ा राजपुत्र जयकुमार था मला वह राज्य किमके द्वारा पूज्य नहीं होना ? ॥८२॥ जिसपर पुत्ररूपी नागाओका विस्तार है ऐमा वह राजा सोमप्रभरूपी कल्पवृक्ष, पुण्य सचय करनेवाटे अन्य पुत्रपोको तथा स्वय अपने आपको भोग्य था यह आश्चर्यकी बात है । भावार्थ-पुत्रों द्वारा वह स्वय मुग्धी था तथा अन्य सब लोग भी उनमे मूढ पाते थे ॥८३॥

अथानन्तर किमी समय, पदाचारिके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले राजा सोमप्रभ ममार, शरीर, भोग और भाइयोको नम्र अनित्य, अपनित्र, दुःखस्वरूप और अपनेमे मित्र मानकर विरक्त हुए तथा कभी नष्ट न होनेवाले अनन्त वीर्य आदि गुणोमे श्रेष्ठ मोक्षरूपी राज्यके पाने में उत्सुक हो, दूरवीर तथा घुरघर जयकुमारको राज्य मौपकर भगवान् वृषभदेवके समीप गये और वहाँ अपने छोटे भाई श्रेयामके साथ दीक्षा लेकर मोक्षमुग्धका अनुभव करने लगे । जिस प्रकार वे पहिले यहाँ अपने छोटे भाईके साथ राज्यमुग्धका उपभोग करते थे उसी प्रकार मोक्षमें भी अपने छोटे भाईके साथ वहाँका मुख उपभोग करने लगे । भावार्थ-दोनो भाई मोक्षको प्राप्त हुए ॥८४-८६॥ दशर श्रेष्ठ जयकुमार पिताके पदपर आसीन होकर पृथिवी का पालन करने लगा । और अपने बड़े भारी भोगोपभोगोको वाँटकर छोटे भाइयोके साथ साथ उनका अनुभव करने लगा ॥८७॥ एक दिन वह जयकुमार त्रीडा करनेके लिये नगरके बाहर किमी उद्यानमें गया उनमे वहाँ विराजमान शीलगुप्त नामके महामुनिके दर्शन कर उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी, बड़ी भारी भक्तिके साथ साथ नमस्कार किया, स्तुति की, प्रीतिपूर्वक धर्म सुना और फिर उनमे आज्ञा लेकर नगरको वापिस लौटा ॥८८-८९॥ उसी वनमें माँफों का एक जोड़ा रहता था उनमे भी राजाके साथ साथ धर्म श्रवणार्थ उमे श्रमण मान कर प्रेममे दयाळुपी रमका पान किया था ॥९०॥ तिसी समय पराश्रित्युके प्राग्भयमे प्रचण्ड वज्रके पडनेमे उस जोडेमेंका वह सर्प शान्तिधारण कर मग जियगे नागकुमार रात्रिना देख दूआ

अन्वेद्युग्भिर्माहृत्य पुनस्तद्वनेमापतत् । नागी^१ श्रुतयती^२ धर्मं राजाऽत्रय सहात्मना ॥६२॥
 बोध्यकाकोदरेणामा^३ जातकोपो यिजातिना । सीलानीलोत्पलेनाहृत^४ दम्पती ती धिगित्यसौ ॥६३॥
 पलयामानो पापाणं काष्ठैर्लोष्ठं पदातय । अघ्नन्^५ सर्वे न को वाऽत्र दुरचरित्राय कृप्यति^६ ॥६४॥
 पाप स तद्ग्रणं^७ स्वा येवनाकुलधोस्तदा । नाम्नाऽजायत गङ्गाया कालोति जलदेयसा ॥६५॥
 सञ्जातानुशया सांसि धृत्वा धर्मं हृदि स्थिरम् । भूत्वा प्रिया स्वनायस्य^८ राजा स्वमुत्तमप्रयोत् ॥६६॥
 नागामरोऽपि तां पश्यन् कोपावेवममग्यत । बर्षत्तेन^९ ललेनया पराकी^{१०} हा हता वृया ॥६७॥
 विधवेति विवेदाधीनेदक्ष मामिम धचम्^{११} । न तःप्राणान् हरे यावद् भुजङ्गा केन वाऽस्म्यहम् ॥६८॥
 इत्यतोऽसौ दि^{१२}दक्षस्त जय तद्गृहमासदत । न सहन्ते ननु स्त्रीणां तिर्यञ्चोऽपि पराभवम् ॥६९॥
 'वासगेहे जयो रात्रौ श्रीमत्या^{१३} कौतुक प्रिये । शृण्वेकं दृष्टमित्याह्वयत् तद्भुजङ्गीविकेष्टितम् ॥१००॥
 'आभिजात्य वयो रूप विद्या वृत्त यश श्रियम् । विभूत्य विक्रम कान्तिर्महिक पारलोविकम् ॥१०१॥
 प्रीतिमप्रीतिमावेयम् अनादेयम् कृपा प्रपाम् । हानिं वृद्धि गुणान् दोषान् गणयन्ति न योषित ॥१०२॥
 धर्मं कामश्च^{१४} सञ्चयेो वित्तेनाय तु सत्पथ । क्रीणन्त्ययं स्त्रियस्ताभ्या^{१५} धिक् तासां वृद्धगृन्ताम्^{१६} १०३

॥९१॥ किसी दूसरे दिन वही राजा जयकुमार हाथीपर सवार होकर फिर उसी वनमें गया और वहाँ अपने साथ साथ मुनिराजसे धर्मं श्रवण करनेवाली सर्पिणीको वाकोदर नामके किसी विजातीय सर्पके साथ देखकर बहुत ही कुपित हुआ तथा उन दोनों सर्प सर्पिणीको धिक्कार देकर त्रीडाके नील कमलसे उन दोनोंका ताडन किया ॥९२-९३॥ वे दोनों वहाँसे भागे किन्तु पैदल चलनेवाले सेनाके सभी लोग भागते हुए उन दोनोंको लकड़ी तथा डेलीसे मारने लगे सो उचित ही है क्योंकि इस ससरामे दुराचारी पुरुषोपर कौन क्रोध नहीं करता है ? ॥९४॥ उन घावोंके द्वारा दुःखसे व्याकुल हुआ वह पापी सर्प उसी समय मरकर गंगा नदीमें वाली नामका जलदेवता हुआ ॥९५॥ जिसे भारी पश्चात्ताप हो रहा है ऐसी वह सर्पिणी हृदयमें निश्चल धर्मको धारणकर भरी और मरकर अपने पहलेके पति नागकुमारदेवकी स्त्री हुई । वहाँ जाकर उसने उसे राजाके द्वारा अपने मरणकी सूचना दी ॥९६॥ वह नागकुमार देव भी उसे देखकर क्रोधसे ऐसा मानने लगा कि इस दुष्ट राजाने अहंकारसे इस बेचारी सर्पिणी को व्यर्थ ही मार दिया ॥९७॥ उस मृखने इसे विधवा जाना, यह न जाना कि इसका मेरा जैमा पति है इसलिये मैं जबतक उसका प्राण हरण न करू तबतक सर्प (नागकुमार) कैसे बहला सकता हूँ ? ऐसा सोचता हुआ वह नागकुमार जयकुमारको वाटनेकी इच्छासे शीघ्र ही उसके घर आया सो ठीक ही है क्योंकि तिर्यञ्च भी स्त्रियोंका पराभव सहन नहीं कर सकते हैं ॥९८-९९॥ जयकुमार रात्रिके समय शयनागारमें अपनी रानी श्रीमतीसे वह रहा था कि हे प्रिये, आज मैंने एक वीतुव देना है उसे सुन, ऐसा कहकर उसने उस सर्पिणीको सब मुचेष्टाएँ कही ॥१००॥ इसी प्रकरणमें वह कहने लगा कि देखो स्त्रियाँ कुलीनता, अवरथा, रूप, विद्या, चारित्र, यश, रक्ष्मी, प्रभुता, पराक्रम, कान्ति, यह लोच-परलोच, प्रीति, अप्रीति, ग्रहण करने योग्य, अग्रहण न करने योग्य, दया, लज्जा, हानि, वृद्धि, गुण और दोषको कुछ भी नहीं गिनती है ॥१०१-१०२॥ धनके द्वारा धर्म-और कामका सचय-करना चाहिये यह तो

१ आगच्छ । २ सर्पिणीम् । ३ आकर्णितकवीम् । ४ अयजातिगणैंग सह कामधीडां वृवंतीम् ।
 ५ नादयति स्म । ६ प्यन्ति स्म । ७ काय करोति । ८ निजभक्तुं चरनागामरस्य । ९ कृणु
 जाननिजमग्यम् । १० जयेत् । ११ अगतिना । १२ पतिम् । १३ तत्प्राणात् हरे ख०, म०, अ० ।
 १४ दानिभुमिष्ट । १५ शय्यागृहे । 'उपनि शय्यागृहात् बागागारं विगारद' इति ह्यपुत्र ।
 १६ निजप्रियाया । १७ कृतप्रयम् । १८ गपेत् युष्मत् । १९ धर्मकामाग्याम् । २० समुदाभिजातियाम् ।

वृद्धिर्हम्य विप पदचान पत्रगस्य विप पुर । योपिता दूषितैच्छाना' विद्वतो विपम विपन् ॥१०४॥
 सत्यानामनें तं श्रोगा वञ्चिता ये न धीरता । दु श्रुतीनामिदंनान्ना मुक्तास्ते मुक्तिवन्तता ॥ १०५॥
 तासा किमुच्यते कोप प्रसादानपि भयङ्कर । हल्पयोक्तान् 'प्रविदयान् अगाधमरिता मया ॥१०६॥
 'जातैरिन्द्रनालेन' वञ्चना ग्राम्या' हि नायया ॥ तानि 'सन्दो' 'गुद्वैज्यस्त्' 'न्यायानातर इत्यत्र
 ता श्रयन्ते गुणान्नेव मासानोत्या यदि श्रिता । निष्कान्ति न चिर प्रान्ते नरपत्यपि च ते स्थिता ॥१०७॥
 दाया कि तदनयास्तामु दोषाणा कि समुदभव । तासा दायेभ्य इत्यत्र न कस्यापि विनिद्वय ॥१०८॥
 निर्गुणान् गुणिनो वन्तु गुणिन उलु निर्गुणान् । 'नाशकन् परमात्मज्ञपि भयन्ते ता' हि हेलया ॥
 मोक्षः गुणमयो नित्यो 'दायमप्य' इत्ययदधता । तासा नेच्छन्ति निर्वाणम् अत्र एवाप्तसुखिन्यु ॥१११॥
 सदमो सरस्वती वीरतिम् कितस्त्वमिति विभ्रता । दुर्लभास्मानु वन्तोपु बन्धवन्त्य इव प्रिये ॥११२॥
 इत्येतच्छाह तच्छ्रुत्वा त 'जिघामुरहितदा । पापिना चिन्तित पाप मया पापापलापन' ॥११३॥

समीचीन मार्ग है परन्तु स्त्रिया धर्म और काममे घन शरीरती है अन उनकी इस बटी हृद्
 लोठुननाको विककार हो ॥१०३॥ विप विन्दुके पीछे (पूँछपर) और साँपके आगे (मुँहमें)
 रहना है परन्तु जिनकी इन्डाए टुट्ट है ऐसी स्त्रियोंके समी ओर विपम विप भग रहना है ॥१०४॥
 खोटी श्रुतियोंके समान इन स्त्रियोंके नयामान (उत्तमे मय दिवनेवाले परन्तु
 वास्तवमें झूठे) नमस्कारोंमे जो मुट्टिमान् नहीं ठगे जाते हैं-उदमे वचे गूते हैं वे ही मुक्तिरूपी
 स्त्रीके बन्धन होने हैं । भावार्थ-जिन प्रकार बुझान्त्रोमे न ठगाये जावर उनमे मया वचे रहने
 वागे पुण्य मुक्त होने हैं उनी प्रकार इन स्त्रियोंके हावभाव आदिमे न ठगाये जावर उनमे वचे
 रहनेवागे-दूर रहनेवागे पुण्य ही मुक्त होने हैं ॥१०५॥ जिन स्त्रियोंकी प्रमत्तता ही भयकर
 है उनके दोषका क्या कहना है । जिस प्रकार गहरी नदियोंकी निर्मलता मूर्ख लोगोंको भीतर
 प्रविष्ट कर मार देती है उसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रमत्तता भी मूर्ख पुरुषोंको अपने अधीन कर नष्ट
 कर देती है ॥१०६॥ इन्द्रजात्र करनेवागे अपने इन्द्रजात्र अथवा मायामे मर्च श्रापीण पुरुषों
 को ही ठगा करने हैं परन्तु स्त्रियाँ इन्द्र महिन् गृहस्पतिको भी ठा लेती हैं इनलिये स्त्रियाँ माया-
 चारकी मानाएँ बही जाती हैं ॥१०७॥ प्रथम तो गुण स्त्रियोंका आश्रय लेने ही नहीं हैं यदि
 वदाचित् आश्रयके अभावमें अपना नाम होनेसे भयमे आश्रय लेने नी हैं तो अधिन समय
 तक नहीं टहरने और वदाचित् कुछ समयसे लिये टहर भी जाते हैं तो अन्तमें अश्रय ही नष्ट
 हो जाते हैं ॥१०८॥ दोषोका तो पूछना ही क्या है ? वे तो स्त्रीस्वरूप ही हैं अथवा दोषोंकी
 उत्पत्ति स्त्रियोंमें है अथवा दोषोंमे स्त्रियोंकी उत्पत्ति होती है इन बातका निश्चय इस मन्त्र
 में किपीको भी नहीं हुआ है ॥१०९॥ निर्गुणोंको गुणों और गुणियोंको निर्गुण माननेके लिये
 परमात्मा भी समर्थ नहीं है परन्तु स्त्रियाँ ऐसा अनायास ही मान लेती हैं ॥११०॥ मोक्ष रूप
 स्वरूप और निय है परन्तु स्त्रियाँ दोषस्वरूप और चकर है मानो इमीलिये अग्रहन्तदेवके
 शास्त्रोंमें उनका मोक्ष होना नहीं माना गया है ॥१११॥ हे प्रिये, जिस प्रकार ज्ञानियोंमें
 वररता दुर्गम है उसी प्रकार स्त्रियोंमें लक्ष्मी, सरस्वती, वीरति, मुक्ति और तू मे प्रमिद्ध स्त्रियाँ
 अचल दुर्गम हैं ॥११२॥ यह मय जयउत्तमने अपनी स्त्रीमे क्या, उसे मुनवर जयउत्तमरको

१ दुष्वाच्छानाम् । २ दुष्वाच्छानाम् । ३ प्रवेग वापिचि । ४ वञ्चनी । ५ इन्द्रान
 मन्त्रानया मयपति गन्धर्व । ६ पतिगन्धर्ववहिमुता । ७ श्रानि । ८ इन्द्रानादिदेवतामून
 सहित । ९ तदिन्द्रना वञ्चति । १० त्वु वाञ्छाम् । ११ नामवत् । १२ स्त्रिय । १३ दाय
 मय-म०, म० । १४ हनुमिच्छ । १५ पत्नियानां निह्वयत् । 'अपतानु निह्वय इच्छिनियन्त् ।

वाराणसी पुरो तत्र जित्वा तामामरौ पुरोन् । श्रमानस्तद्धिमानानि स्वसौर्षरिव सा ज्ञसोत् ॥१२४॥
 प्राक् समुच्चित्तदुष्कर्म न तत्रोत्पन्नर्हेति । प्रमादादपि तज्जोऽपि स्यात् किं पापी मनस्यपि ॥१२४॥
 एव भवश्रयश्रेय सूत्रनी धर्मवर्त्मनि । विनेयान् जिनविद्यैव सा ज्यैस्थानप्यधीदत् ॥१२६॥
 नामनैव कम्पितारातिस्तस्या पतिरकम्पन । विनीत इव विद्याया स्वानिप्रेतार्थसम्पद १० ॥१२७॥
 पुरोपाजितपुण्यस्य बद्धने रक्षणं धिय । न नीति ११ किन्तु कामे च धर्मं चात्योपयोगिनी ॥१२८॥
 न हर्ता केवल दाता न हन्ता पाति केवलम् । सर्वास्त १२ त्पालयामास स १३ धर्माविजयी प्रजा ॥१२९॥
 पारमात्म्ये पदे पूज्यो भरतेन यथा पुत्र । गृहाश्रमे तथा सोऽपि सा तस्य कृतवृद्धता ॥१३०॥
 तस्यासौतस्तुप्रभादेवी शीताशोर्वा प्रभा तथा । मुमुदे कुमुदाबोध विदधत् स कलाश्रय ॥१३१॥
 न लक्ष्मीरपि तत्रोत्थं सती सा सुप्रजा १४ यथा । सत्कला इव सद्गल्य पुत्रवत्यस्त्रिय प्रिया ॥१३२॥

वि सन्देह स्वर्ग और मोक्षको जीतनेवाला था ॥१२३॥ उस वाणीदेवने एक वाराणसी (वनारस) नामकी नगरी थी जो कि अपने अपरिमित राजभवनोंसे अमरपुरीको जीतकर उसके विमानोकी हँसी करती हुई सी जान पड़ती थी ॥१२४॥ जिनने पूर्वजन्ममें पापकर्मोंका सचय किया है ऐसा जीव उस वाराणसी नगरीमें उत्पन्न होने योग्य नहीं था । तथा उसमें उत्पन्न हुआ जीव प्रमादमें भी क्या कभी मनमें भी पापी हो सकता था ? अर्थात् नहीं ॥१२५॥

इस तरह भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्बन्धी त्रीनों भदोंके बल्याणको सचित करनेवाली वह नगरी जिनवाणीके समान दूसरी जगह रहनेवाले दिव्य लोगोको भी धर्म-मार्गमें प्रवृत्त कराती थी ॥१२६॥ जिस प्रकार विनयी मनुष्य विद्याका स्वामी होता है उसी प्रकार अपने नामसे ही शत्रुओको कम्पित कर देनेवाला राजा अकम्पन उस नगरीका स्वामी था । जिस प्रकार विद्या अपने अभिलषित पदार्थोंकी देनेवाली होती है उसी प्रकार वह नगरी भी अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली थी ॥१२७॥ पूर्व जन्ममें पुण्य उपार्जन करनेवाले उस राजाकी नीति केवल लक्ष्मीके बढ़ाने और उसकी रक्षा करनेमें ही काम नहीं आती थी किन्तु धर्म और कामके विषयमें भी उसका उपयोग होता था ॥१२८॥ वह राजा केवल प्रजामें कर वसूल ही नहीं करता था किन्तु उसे कुछ देता भी था और केवल दण्ड ही नहीं देता था किन्तु रक्षा भी करता था इस प्रकार धर्म द्वारा विजय प्राप्त करनेवाला वह राजा समस्त प्रजाका पालन करता था ॥१२९॥ राजा अकम्पनके कुलका घड्यपन यही था कि भगतमहाराज परमात्मपदमें जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवको पूज्य मानते थे उसी प्रकार गृहस्थाश्रममें उसे पूज्य मानते थे ॥१३०॥ उसके सुप्रभा नामकी देवी थी जोकि चन्द्रमाकी प्रभाके समान थी । जिस प्रकार चन्द्रमा अनेक कलाओका आश्रय हो अपनी प्रभामें कुमुदाबोध अर्थात् कुमुदिनियों का विकास करता हुआ प्रसन्न (निर्मल) रहता है उसी प्रकार वह राजा भी अनेक कलाओ-विद्याओका आश्रय हो अपनी सुप्रभा देवीसे कुमुदाबोध अर्थात् पृथिवीके समस्त जीवोंके आनन्द का विकास करता हुआ प्रसन्न रहता था ॥१३१॥ उत्तम सतान उत्पन्न करनेवाली वह पति-व्रता सुप्रभादेवी जिस प्रकार राजाको आनन्दित करती थी उस प्रकार लक्ष्मी भी उसे आनन्दित नहीं कर सकती थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार अच्छे फल देनेवाली उत्तम लताएँ प्रिय

१ प्रमाणातीने । २ पुरी । ३ हमनि स्म । ४ न्यायम् । ५ दिव्यभाषेव । ६ नाती ।
 ७ देवान्तरस्यान् । ८ वर्तयति स्म । ९ विनेयत् । १० निजानीप्यामंगयद् यस्या सा तस्या ।
 ११ ययन करणम् । १२ तत् वारणात् । १३ अकम्पन । १४ शोभना प्रजा जन्यानि यस्या सा सुप्रजा । सानुव्रवनीत्यर्थ ।

तस्या तन्नाथवशाप्रगण्यस्येवादायो रवे । प्राच्यां 'दीप्त्याप्तदिवक्त्रा सहस्रमभवन् सुता ॥१३३॥
हेमाङ्गदस्य वेतुथीसुकान्ताद्या ह्ययं स तं । वेष्टितः सव्यदीपिष्ट शक्र सामानिकैरिव ॥१३४॥
हिमवत्पद्मयोगेन्द्रासिन्धू इव ततस्तयोः । सुते सुलोचनालक्ष्मीमती चास्ता सुलक्षणे ॥१३५॥
सुलोचनाऽसी बालेव लक्ष्मी सर्वमनोरमा । कलागुणैरभासिष्ट चन्द्रिकेव प्रवर्द्धिता ॥१३६॥
सुमत्याएयाऽमला शुक्लनिशेवावद्वयत् कला । धानी शशाङ्करेखायास्तस्या सात्तिमनोहरा ॥१३७॥
श्रभूद् रागी स्वय 'रागस्त'त्कमाब्ज समाधित । रागाय कस्य धा न स्यात् स्वीचितस्यानसथय ॥१३८॥
नखेन्दुचन्द्रिका तस्या शश्वत्कुवलय किल । विद्वमाह्लादय'च्चित्रम् श्रनुधु'स्या श्रमाब्जयो ॥१३९॥
रेजुरङ्गुलयस्तस्या क्रमयोनेखरोचिया । इयन्त इति मद्देगाः* स्मरेणेव निवेशिता ॥१४०॥
नतासोयो जय 'स्नेहाद्' श्रमतीते* ततस्तयो । या थी क्रमाब्जयोस्तस्या सा किमस्ति सरोष्ठे ॥१४१॥

होती है उसी प्रकार उत्तम पुत्र उत्पन्न करनेवाली स्त्रियाँ भी प्रिय होती हैं ॥१३२॥ जिस प्रकार पूर्व दिशासे अपनी कान्तिके द्वारा समस्त दिशाओको प्रकाशित करनेवाली सूर्यकी किरणें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उस सुप्रभादेवीसे नाथवशके अग्रगण्य राजा अकम्पनके अपनी दीप्ति अथवा तेजके द्वारा दिशाओको वश करनेवाले हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१३३॥ हेमाङ्गद, सुकेतुथी और सुकान्त आदि उन पुत्रोंसे घिरा हुआ वह राजा ऐसा सुशोभित होता था जैसा कि सामानिक देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥१३४॥ जिस प्रकार हिमवान् पर्वत और पद्म नामकी सरसीसे गङ्गा और सिन्धु ये दो नदिया निकलती हैं उसी प्रकार राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाके सुलोचना तथा लक्ष्मीमती ये उत्तम लक्षणोवाली कन्याएँ उत्पन्न हुई थी ॥१३५॥ वह बालिका सुलोचना लक्ष्मीके समान सबके मनको आनन्दित करनेवाली थी और अपने कलारूपी गुणोंके द्वारा चादनीके समान वृद्धिको प्राप्त होती हुई सुशोभित हो रही थी ॥१३६॥ जिस प्रकार शुक्ल पक्षकी रात्रि चन्द्रमाकी रेखाओकी अत्यन्त मनोहर बलाओंको बढ़ाती है उसी प्रकार सुमिता नामकी धाय उस सुलोचनाकी अतिशय मनोहर पदाओंको बढ़ाती थी—उसके शरीरका लालन पालन करती थी ॥१३७॥ राग अर्थात् लालिमा उस सुलोचनाके चरण-वमलोका आश्रय पाकर स्वयं रागी अर्थात् राग करनेवाला अथवा लाल गुणसे युक्त हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि अपने योग्य स्थानका आश्रय जिसके रागके लिये नहीं होता ? ॥१३८॥ आश्चर्य है कि उसके नररूपी चन्द्रमाकी चादनी दोनों चरण-वमलोंके अनुबूल रहकर भी गमस्त कुचलय अर्थात् कुमुदिनियोंको अथवा पृथ्वीमण्डलके आनन्दका निरन्तर विषयित करती रहती थी । भावार्थ—चादनी वभी वमलोंके अनुबूल नहीं रहती, वह उन्हें निमीलित कर देती है परन्तु सुलोचनाके नररूपी चन्द्रमाकी चादनी उसके चरणवमलोंके अनुबूल रहकर भी कुचलय—नीलकमल (पक्षमें महीमण्डल) को दिवसित करती थी यह आश्चर्यकी बात थी ॥१३९॥ उसके दोनों पैरोंकी अगुलिया नतीकी किरणोंसे ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो मेरे वेग इतने ही हैं यही समभवत नामदेवने ही स्थापन की हों । भावार्थ—अभिजाता चिन्ता जादि यामने दशवेग हैं और दोनों पैरोंकी अगुलियाँ भी दश हैं इन्हींके वे ऐसी जान पड़ती थी मानो यामदेवने अपने वेगोंकी गरया बतलानेके लिये ही उन्हें स्थापित किया हो ॥१४०॥ जिसे सब लोग नमस्कार करते हैं ऐसी जयगुमार भी जिन्हें

१ मेरगा । २ अकम्पनगुद्रमयी । ३ अग्रगण्य । ४ सुलोचनाचरण । ५ मोर्चित रूप ।

६ अतुल्यवृत्त्या । ७ गम गदुगवस्था । ८ जयगुमार । ९ गमगवर्तिन रूप । १० जगत्पते ।

● 'अभिजापदिच' नाम्निगुणकपनाऽङ्गवर्तितारथ ।

उन्मादाय व्यापिभरहा मुनिगिति दशाव नामददा ॥—साहित्यदर्पणं ।

न स्यूलं न कृशो न जूँ न बक्रे न च सद्भक्तेः । विकटे^१ न च तज्जद्वये शोभाज्यर्षेयनयोरसौ^२ ॥१४२॥
 काञ्चोस्थान^३ तदालोच्येवोर^४ स्यूलं सुसद्गतं । कायगर्भगृहद्वारस्तम्भयत्पाहृतो कृते ॥१४३॥
 वेदिकं च मनोऽस्य शिरो वा^५ स्मरदन्तिन । सानुर्वाञ्जद्वयगतस्य द्युम्नेप्रसा कर्दातटम् ॥१४४॥
 कृत्वा कृशं नृश मध्य बद्ध भद्रगभयादिव । रज्जुभिस्तिस्त्रिभिर्पाशा^६ बलिभिर्यादमावभौ ॥१४५॥
 नाभिकूपप्रवृत्तास्या^७ रममार्गसमुद्गता । श्यामां शाङ्कवतमालेव^८ रोमराजिर्व्यराजत ॥१४६॥
 भिन्नो युक्नो मूढस्तस्यो^९ उष्णो सन्नापहारिणो । स्तनौ विद्वद्धर्मार्गो स्याद्वावस्थिनिमूढु ॥१४७॥
 सहयज्ञोनिवासिण्या समादितप्य जय श्रिया । स्वीकृतो यदि घेत्तान्या^{१०} बर्ष्यते तद्भुजौ कथम् ॥१४८॥
 वीरतश्मीपरिष्वक्नजयदक्षिणबाहुना । सवामेन^{११} परिष्वक्न^{१२} स्तत्कण्ठस्तस्य कोपमा ॥१४९॥
 दिवृषो^{१३} पेक्षतो^{१४} इतश्नो तत्कपोली विलेसतु^{१५} । कातो कलनदन्तानो जयवक्रान्ज^{१६} बर्ष्यो ॥१५०॥
 वटविम्बप्रवात्नादिनोपमेयमपीप्यते^{१७} । अग्रस्थातिद्वारत्वाद् वर्णकाररसादिभि ॥१५१॥

वडे स्नेहमे नमस्कार करेगा ऐसे उसके दोनो चरणकमलोंमें जो शोभा थी वह क्या कमलोंमें हो सकती है ? अर्थात् नहीं ॥१४१॥ उसकी दोनो जघाए न स्यूल थी, न कृश थी, न सीपी थी, न टेटो थी, न मिली हुई थी और न दूर दूर ही थी । उसकी दोनो जघाओंकी शोभा निराली ही थी ॥१४२॥ उसके करघनी पहननेके स्थान नितम्बग्रन्थलको देखकर ही मानो रघूल, परम्परमें मिले हुए और कामदेवके गर्भगृह सम्बन्धी दरवाजेसे खभोकी लकड़ीके समान दोनो ऊर्ध्वनाये गये थे ॥१४३॥ उनका नितम्ब प्रदेश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो कामदेवकी वेदी ही हो अथवा कामदेवरूपी हाथीका गिर ही हो अथवा कामदेवरूपी पर्वत का गिन्वर ही हो ॥१४४॥ उनका मध्यभाग ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो विधाताने उसे पहले तो अत्यन्त कृश बनाया हो और फिर टूट जानेके भयसे दिवलीरूपी तीन रश्मियोंमें मज्जत बांध दिया हो ॥१४५॥ नाभिरूपी कुण्डसे निकली हुई उसकी रोमराजि ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो जलमार्गमें निकली हुई हरी हरी छोटी घामकी पड़वित ही हो ॥१४६॥ उसने स्तन भिन्न भिन्न होकर भी (स्यूल होनेके कारण) एक दूसरेमें मिटे हुए थे, कोमल होकर भी (उत्त होनेके कारण) बटोर थे, और उष्ण होकर भी (आद्वादजनन होनेके कारण) मतापको दूर करनेवाले थे, इस प्रकार विद्वद्धर्मार्गको धारण करनेवाले उसके दोनो स्तन स्याद्वादकी स्थितिको धारण कर रहे थे ॥१४७॥ चूंकि उसकी दोनो भुजाओंमें वध-स्यूलपर निवाम वर्णवाली लक्ष्मीके साथ आलिङ्गन कर जयकुमारको स्वीकृत किया है इसलिये उनका वर्णन भला कंसे किया जा सकता है ? ॥१४८॥ उसका वट दीर्घ लक्ष्मीने सुशोभित जयकुमारके दाये और बाये दोनो हाथोंसे आलिङ्गनको प्राप्त हुआ था अतः उसकी उपमा क्या हो सकती है । भावार्थ—उसकी उपमा किसके साथ दी जा सकती है ? अर्थात् किसीके साथ नहीं—वह अनुपम था ॥१४९॥ हाथोंके बच्चेके दातकी आभाको धारण करनेवाले उसके निष्कृप, कोमल और चिकने दोनो कपोल ऐसे अच्छे जान पड़ने थे मानो जयकुमारका मुग्ध-कमल देवनेके शिष्ये मुन्दर दर्पण ही हो ॥१५०॥ वटकी कोपल, चिम्बी फल और मूंगा आदि पदार्थ, वर्ण, जातार और रस आदिमें ओठोंमें घट्टन दूर है अर्थात् उसने ओठोंके समान न तो

१ मदीर्घो । २ विन्दते । ३ वितमनीव । ४ कश्चित् । ५ आशोच्य । ६ इव । ७ इत्यम् । ८ सुशोभिताया । ९ जनमाग । १० हृत्विपद्वित्त । 'शाङ्कव' शाङ्कविति । 'वस्थिनि' वस्थिनिनात् । 'पाद्वन-सो, म०, अ० । ११ कश्चित् । १२ सुशोभितानुशान्भ्याम् । १३ यामनुजगहिन । १४ अर्धकण्ठिन । १५ जनगन्धार्हेतुनात् । १६ कातौ । १७ रेजतु । १८ जयकुमारस्य । १९ अतिशयत् केवल-मुपनात न ।

चित्ता सित्ता सभा स्निग्धा दन्ता बान्ता प्रभान्विता । अन्त करोति तद्वक्त्र तानैव वक्ष्यमयथा ॥१५२॥
 कुत १ कृता समुत्तुङ्गा स्वादमानात्पसोरभम् । मध्येववत्र किमध्यास्ते न सती यदि नासिका ॥१५३॥
 कर्णान्तिगामिनी नेत्रे १ वृद्धे १ नरशरोपमे । १ सोमवश्यस्य क क्षेप १ पद्मोत्पलजये तयो १ ॥१५४॥
 तत्कर्णविव कर्णेषु कृतपुण्यौ प्रियाज्ञया १० । तत्प्रेमालापगीताना १ पात्र १ प्रागेव तो यत ॥१५५॥
 तदभ्रशरासन १ १ कामस्तत्कटाक्षचारावलि १ १ स्वरूपेणाजित १ १ मत्वा जय मन्ये थ्यजेष्ट स ॥१५६॥
 तस्या लालाटिको १ १ नेक कामो वीराप्रणो स्वयम् । जयोऽपि नोन्नति कस्मात्तललाटस्य श्रितश्रिय ॥१५७॥
 मूदवस्तनव स्निग्धा कृष्णास्तस्या सक्ञ्चिता । कामिना केवल कालबालव्याला १ शिरोरुहा ॥१५८॥
 भाति तस्या पुरोभागो भूपितो नयनादिभि । सूरूप १ इव पादचात्थो १ बाभाति स्वयमेव स ॥१५९॥
 यो तस्यास्तनुनिर्माण वेधसा साधनो कृता १० । १ अणवस्तुणवच्छेयास्त एव परमाणव १ ॥१६०॥

इनका वर्ण है , न आकार है और न रस ही है इसलिये ही उसके ओठोको इनमेंसे किसीकी भी उपमा नहीं दी जा सकती थी ॥१५१॥ अवश्य ही उसके दात एक दूसरेसे मिले हुए थे- छिद्ररहित थे सफेद थे समान थे, चिकने थे, सुन्दर थे, और चमकीले थे, यदि ऐसा न होता तो सुलोचनाका मुख उन्हें भीतर ही क्यों करता ? ॥१५२॥ मुखकी सुगन्धिका स्वाद लेती हुई उमकी नाक यदि इतनी अच्छी नहीं होती तो वह इतनी ऊंची क्यों बनाई जाती ? तथा मुँसके बीचमें कैसे ठहर सकती ? ॥१५३॥ अर्जुनके वाणके समान कर्णके (राजा कर्ण अथवा कानके) समीप तक जानेवाले उसके दोनो नेत्र अत्यन्त विशाल थे, उन्होंने लाल कमल और नीलकमल दोनोंको जीत लिया था फिर भला सोमवश अर्थात् चन्द्रमापर कौन्सा आक्षेप वाची रह गया था जयवा सोमवश अर्थात् जयकुमारपर कौन सा क्षेप अर्थात् कटाक्ष करना वाची रह गया था ? ॥१५४॥ उसके कान ही सब कानोमे अधिक पुण्यवान् थे क्योंकि वे पहलेमे ही अपने प्रिय-जयकुमारकी आज्ञासे उनके प्रेमसभाषण और गीतोके पात्र हो गये थे ॥१५५॥ मैं तो ऐसा मानता हूँ कि कामदेवने जयकुमारको अपने रूपसे अजेय मानकर सुलोचनाकी भीहृत्पी घनुष और उमीके कटाक्षरूपी वाणोके समूहसे ही उसे जीता था ॥१५६॥ उम सुलोचनाका मेवक अवेग कामदेव ही नहीं था किन्तु वीरशिरोमणि जयकुमार भी स्वयं उमका मेवक था, फिर भला शोभाको धारण करनेवाले उसके ललाटकी उन्नति-उन्नता अथवा उत्तमता क्यों न होनी ? ॥१५७॥ नोमल, वारीक, चिकने, वाले और कुछ कुछ टेढ़े उमके निरले वाट कामी पुरषोको केवल वाले मापोने बच्चोके समान जान पडते थे ॥१५८॥ उम सुलोचनाका जागेरा भाग नेत्र आदिमे विभूषित होकर सुशोभित हो रहा था और पिछा भाग किमी गुन्दर यन्त्रुके गमान अगे आप ही सुशोभित हो रहा था ॥१५९॥ विघातने उमका शरीर वातामें जिन अणुओंका माधन बनाया था यथायंमं वे ही अणु परमाणु अर्थात्

श्रुतिबुद्धः क्षयासन्नः स्पष्टलक्ष्मिहागोचरः^१ । पूर्णः शोयोऽयसम्पूर्णो^२ न तद्वन्नशोपमो विद्युः ॥१६१॥
 न पश्चात्त पुरा लक्ष्मीर्बोधो^३ पत्रो^४ क्षणं क्षणे । वक्ष्यन्त्या भृष्टगती शोभां सा^५ स्याद्वादे तद्वानने ॥१६२॥
 चन्द्रे तोत्रकरोत्सन्ना^६ पद्मे शीतकराहता । लक्ष्मीः साऽयमेव तद्वन्नशो^७ जयलक्ष्मीकरग्रहात् ॥१६३॥
 रात्राविन्दुदिवाम्भोजं क्षयोन्दुर्दानिधारिजम् । पूर्णमेव द्विकास्त्रेव तद्वन्नशो^८ भाग्द्विदिवम् ॥१६४॥
 लक्ष्मीस्त^९ 'स्वेक्षितुस्तेन' वीक्षितस्यापि निश्चिता । किं पद्मे तादृशं येन^{१०} तद्वन्नशोपमोयते^{११} ॥१६५॥
 कुमार्या निजगन्जेता जितः पुष्पशारासनः^{१२} । स वीरः कः परो लोके यो न जय्योऽग्र^{१३} तोज्या ॥१६६॥
 कुमार्येव जितः कामो वीरः पश्चात्तजयो जितः । स्त्रीसृष्टिः कियती नाम विजयेऽस्या सहश्रिया ॥१६७॥

उत्कृष्ट अणु थे और उनसे वाकी वचे हुए अणु तृणके समान तुच्छ थे ॥१६०॥ चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था क्योंकि यदि पूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह बहुत बृद्ध अर्थात् बड़ा है, उसका क्षय निकट है, कलक उमवा स्पष्ट दिग्गलाई देता है और रातु उसे दवा देता है । यदि अपूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह स्वयं शपूर्ण है—अधूरा है । भावार्थ—उसका मुख तक्षण, अविनश्चर, निष्कलक और पूर्ण था इसलिये पूर्ण अथवा अपूर्ण कोई भी चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था ॥१६१॥ यदि कमलकी उपमा दी जाये सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कमलमे विकसित होनेके पहले लक्ष्मी नहीं थी और न पीछे रहती है वह तो क्षण क्षणमे विकसित होती रहती है परन्तु उसके मुखपर की लक्ष्मी एक विलक्षण शोभाको ग्रहण करती हुई स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी । भावार्थ—उसके मुखकी शोभा मदा एक सी रहकर भी क्षण क्षणमे विलक्षण शोभा धारण करती थी इसलिये कमलकी शोभासे वही अच्छी थी और इस प्रकार स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी क्योंकि जिस प्रकार स्याद्वाद द्रव्यार्थिक नयसे एकरूप रहकर भी पर्यायार्थिक नयसे नवीन नवीन रूपको प्रकट करता है उसी प्रकार उसके मुखकी लक्ष्मी भी सामान्यतया एकरूप रहकर भी प्रतिक्षण विलक्षण शोभा धारण करती हुई अनेकरूप प्रकट करती थी ॥१६२॥ चन्द्रमाकी शोभा सूर्यसे नष्ट हो जाती है और कमलकी शोभा चन्द्रमासे नष्ट हो जाती है परन्तु उसके मुखकी शोभा जयकुमारकी लक्ष्मीका हस्त ग्रहण करनेसे विलक्षण ही हो रही थी ॥१६३॥ चन्द्रमा रातमें सुशोभित होता है और कमल दिनमें प्रफुल्लित रहता है, चन्द्रमाका क्षय हो जाता है और कमल मुरझा जाता है परन्तु उसका मुख पूर्ण ही था, विकसित ही था और रातदिन सुशोभित ही रहता था ॥१६४॥ सुलोचनाके मुखको जो देखता था उसकी शोभा बढ़ जाती थी और सुलोचनाका मुख जिसे देखता था उसकी शोभा भी निश्चित रूपसे बढ़ जाती थी । कमलमें क्या ऐसा गुण है जिसमे कि उसे सुलोचनाके मुखकी उपमा दी जा सके ? ॥१६५॥ उसने कुमारी अवस्थामें ही तीनों जगत्को जीतनेवाला कामदेव जीत लिया था फिर भला संसारमें ऐसा दूसरा कौन वीर था जो आगे युवावस्थामें उसके द्वारा न जीता जाय ? ॥१६६॥ इसने कुमारी अवस्थामें कामदेव को जीत लिया था और तरण अवस्थामें जयकुमारको जीता था फिर भला इसके जीतनेके लिये

१ राहुगोचरः । (विषय) । २ वत्सलोपोऽपि । बलाहीन इत्यर्थः । बालचन्द्रोऽपि । ३ विरास-
 शीला । ४ लक्ष्मीः । ५ हता । ६ जयत्येव लक्ष्मीः । ७ —रथनिगम् व०, प०, म०, इ०, ल०, म० ।
 ८ धर्मस्य । ९ वक्ष्येण । १० येन धर्मेण गह । ११ तादृशं धर्मं पद्मे निमित्तं ? नामतोऽयम् ।
 वीक्षितस्यापि अविनाश्यात् सद्धार्यं न दृष्टोऽस्ति । यद्यपि दृष्टस्य तस्य पश्यन्तिधर्मस्य लक्ष्मी शोभा नेत्र
 सह तत्प्राप्तेः गह ईक्षितु वीक्षमाणस्य जनस्य निश्चिता स्यात् । १२ पुष्पशारासनी जित रूपमेव वनपि
 पुरप नेच्छति इत्यर्थः । १३ यीमने ।

मुगाद्गुरुस्य कलङकोज्य मन्त्रेऽह कन्ययाऽनया । स्वकान्त्या निजितस्याभूत् रोगराजश्च चिन्तया ॥१६५॥
 सार्धं कुबलयेनन्दु सह लक्ष्म्या सरोरुहम् । तद्वक्त्रेण जित ध्यक्त किमन्प्रेह जीयते ॥१६६॥
 जलाब्जं जलवासेन स्यलाब्जं सूर्यरश्मिभिः । प्राप्तुं तद्वक्त्रजा शोभा मन्वेऽद्यापि तपस्यति ॥१७०॥
 शनं बलिन्दुरेखेव सा कलाभिरवर्द्धत । वृद्धास्तस्या प्रवृद्धाया विधुभिः स्पर्धिनो ॥१७१॥
 इति सम्पूर्णसर्वद्विगशोभा शुद्धान्ववायजाम् । स्मरो जयभयाद्वृत्ता न तदाऽप्यकरोत् करे ॥१७२॥
 कारयन्ती जिनेन्द्रार्चादिचत्रा ॥ मणिमयीर्बहू । तासां हिरण्मयान्येव विश्वोपकरणात्यभिः ॥१७३॥
 तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजा प्रकुर्वती । मुहुः स्तुतिभिरर्घ्याभिः ॥ स्तुवती भक्तितोऽर्हते ॥१७४॥
 ददती पात्रदानानि मानयन्ती ॥ महामुनीन् । शृण्वती धर्ममाकर्ण्य भावयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१७५॥
 श्राप्तागमपदायाश्च प्राप्तसम्यक्त्वशुद्धिका । अथ फाल्गुननक्षत्रेश्वरेशो भक्त्या जिनेशिनाम् ॥१७६॥
 विधायाष्टाह्निकीं पूजाम् अश्रुचर्चां यथाविधि । वृत्तोपवासा तन्वडगी शोभा ॥ दातुमुपागत ॥१७७॥
 नृप तिहासनासीन सोऽप्युत्थाय वृत्ताञ्जलि । तद्वत्तशोभाभादाय ॥ निधाय शिरसि स्वयम् ॥१७८॥

लक्ष्मीके साथ साथ कितनी सी स्त्रियोकी सृष्टि बाकी रही थी ? भावार्थ—इसने लक्ष्मी यदि उत्तम उत्तम स्त्रियोको जीत लिया था ॥१६७॥ चन्द्रमाके बीच जो यह कलक दिखता है उसे मैं ऐसा मानता हूँ कि इस कन्याने अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है इसीलिये मानो उसे चिन्ताके कारण क्षयरोग हो गया हो ॥१६८॥ उस सुलोचनाके मुखने चन्द्रमाके साथ कुबलय अर्थात् कुमुदको जीत लिया था और लक्ष्मीके साथ साथ कमलको भी जीत लिया था फिर भग्या इम ससारमें और रह ही क्या जाता है जो उसके मुखके द्वारा जीता न जा सके ॥१६९॥ मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उसके मुखकी शोभा प्राप्त करनेके लिये जलकमल जलमें रहकर और स्याल कमल सूर्यकी किरणोंके द्वारा आज तक तपस्या कर रहा है ॥१७०॥ वह सुलोचना द्वितीया के चन्द्रमाकी रेखाके समान बलाओके द्वारा धीरे धीरे बढ़ती थी और ज्यो ज्यो बढ़ती जाती थी त्यों त्यों चन्द्रमाकी कान्तिके साथ स्पर्धा करनेवाले उसके गुण भी बढ़ते जाते थे ॥१७१॥ इस प्रकार जो ममम्न अगोकी शोभासे परिपूर्ण हैं और शुद्ध वशमें जिसकी उत्पत्ति हुई है ऐसी उम मुद्रोचनाको कामदेव जयकुमारके भयसे युवावस्थामे भी अपने हाथमें नहीं कर गया था ॥१७२॥

उम मुद्रोचनाने श्री जिनेन्द्रदेवकी अनेक प्रकारकी स्तनमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाई थी और उनमें सब उपकरण भी सुवर्ण हीके बनवाये थे । प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जानेसे बाद वह उन प्रतिमाओंकी महापूजा करती थी, अर्घ्यपूर्ण स्तुतियोंके द्वारा श्री अर्चन देवकी भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियोंका सम्मान करती थी, धर्मो गुनी थी तथा धर्मको मुनकर जान आगम और पदार्थोंका बार बार चिन्तन करती हुई मन्मथदमनकी मुद्राओंका प्राप्त करती थी । अथानन्तर—फाल्गुन महीनेकी अष्टाह्निकामें उमने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेवकी अष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओंकी पूजा की, उपवास किया और फिर यह शृंगांगी पूजाने शोभाशत देनेके लिये गिहागनपर बंटे हुए राजा अरम्भपति

उपवासपरिधान्ता पुत्रिके त्वं प्रवाहि^१ ते^२ । शरण^३ पारणाकाल इति कन्यां व्यसजंयत् ॥१७६॥
 तां विलोक्य महीपालो बालामापूर्णवीवनाम् । निविकारा सचिन्तः सन् तस्याः^४ परिणयोत्सवे ॥१८०॥
 शुभे श्रुतार्थसिद्धार्थसर्वार्थसुमतिश्रुतीन्^५ । कोष्ठादिमतिभेदान्वा^६ दिने व्याहूय मन्त्रिणः ॥१८१॥
^७ वृणते सर्वमूपाताः कन्यां नः कुलजीवितम् । द्रुत कर्म प्रदास्यामो विमृश्येमां सुलोचनाम् ॥१८२॥
^८ इत्यप्राशीत्तदा प्राह श्रुतार्थः श्रुतसागरः । अत्र सद्बन्धुसम्बन्धो जामाताऽन महान्वयः ॥१८३॥
^९ सर्वस्वस्य व्ययोऽत्राय^{१०} जन्मराज्यफलं च नः । ततः सच्चित्तमेवेत्तत् कामं नयविदारदः ॥१८४॥
 बन्धवः स्पृहं पाः सर्वे सम्बन्धश्चश्रवतितां । इक्ष्वाकुवंशवत्पूज्यो भवद्वंशश्च जायते ॥१८५॥
 क्लृप्तपत्न्योविद्याभूतश्रीवीर्यादिकम् । यद्दरेयु समन्वेप्यं^{११} सर्वं तत्तत्र^{१२} पिण्डितम् ॥१८६॥
 ततो नास्त्यत्र नश्चर्ष्यं^{१३} दिगन्तध्याप्तकीर्तये । जितार्कमूर्तये देया कन्यां^{१४} घेरेयकंकीर्तये ॥१८७॥
 सिद्धार्थोऽप्राह तत्सर्वमस्ति^{१५} किञ्च पुराविदः^{१६} । कनोपसोऽर्षि^{१७} सम्बन्धं नेच्छन्ति ज्यायसा सह^{१८} ॥
 ततः प्रतीतमूपात्पुत्रा वरगुणान्विताः । प्रभञ्जनो रयवरो बलिर्वज्रापुषाह्वयः ॥१८९॥

पास गई । राजाने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिये हुए शोभाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तकपर रखे तथा यह कहकर कन्याको विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवाससे विरक्त हो रही है, अब घर जा, यह तेरे पारणाका समय है ॥१७३-१७९॥ राजा पूर्ण वीवनको प्राप्त हुई उस विकारशून्य कन्याको देखकर उसके विवाहोत्सवकी चिन्ता करने लगा ॥१८०॥ उसने किसी शुभ दिनको कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुमारी और सभिन्नश्रोतु इन चारों बुद्धि ऋद्धियोंके समान श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ और सुमति नामके मंत्रियोंको बुलाया ॥१८१॥ और पूछा कि हमारे कुलके प्राणस्वरूप इस कन्याके लिये सभी राजा लोग प्रार्थना करते हैं इसलिये तुम लोग विचार कर कहो कि यह कन्या किसको दी जाय ? ॥१८२॥ इस प्रकार पूछनेपर शास्त्रोंका समुद्र श्रुतार्थ नामका मंत्री बोला कि इस विवाहमें सज्जन बन्धुओका समागम होना चाहिये, जमाई बड़े कुलका होना चाहिये, इस विवाहमें बहुत सा धन लक्ष होगा और हम लोगोंको अपने जन्म तथा राज्यका फल मिलेगा इसलिये नीतिनिपुण पुरुषोंको इस कार्यका अच्छी तरह विचार करना चाहिये ॥१८३-१८४॥ यदि यह सम्बन्ध चक्रवर्तीके साथ किया जाय तो सब राजा अपने बन्धु हो सकते हैं और आपका वंश भी इक्ष्वाकु वंशकी तरह पूज्य हो सकता है ॥१८५॥ बुल, रूप, वय, विज्ञा, चारित्र, शोभा और पौष्प आदि जो जो गुण वरोंमें योजना चाहिये वे सब उसमें इकट्ठे हो गये हैं । इसलिये इसमें कुछ चर्चाकी आवश्यकता नहीं है जिसकी कीर्ति सब दिशाओंमें फैल रही है और जिसने अपने तेजसे मृत्युके प्रतिविम्बको भी जीत लिया है ऐसे चक्रवर्तीके पुत्र अर्चकीर्तिके लिये यह कन्या दी जाय ॥१८६-१८७॥ इसी समय सिद्धार्थ मंत्री कहने लगा कि आपका यह सब कहना ठीक है परन्तु पूर्व व्यवहारको जाननेवाले छोटे लोगोंका बड़ोंके साथ सम्बन्ध होना भी अच्छा नहीं समझते हैं ॥१८८॥ इसलिये वरके गुणोंमें महिम्न प्रभजन, रयवर, बलि, वज्राधु, मेघेश्वर (जयकुमार) और भीमभुज आदि अनेक प्रसिद्ध राजपुत्र हैं जो एवसे एक बड़कर वैभववाली है तथा चतुर

१ गन्ध । २ तप । ३ गृहम् । 'शरण मूत्रक्षिप्तो' इत्यभिधानान् । ४ विवाह । ५ नामपदान् ।
 ६ कोष्ठबुद्धिबीजबुद्धिपदानुमारिणामभिन्नश्रोतुभेदानि । ७ वृणते त०, म०, प०, ग०, ङ० । प्राप्यन्ते ।
 ८ विचार्य ९ ६ पृच्छति १० म । १० धनम् । ११ अथ वा जन्म. पत्रं राज्यम् १२ तम् । १३ मृग्यम् ।
 १३ अर्चकीर्ती । १४ विचार्यम् । १५ इति प्राहेति गन्धम् । १६ -मन्तु स०, म०, प० । १७ पूर्ववेदि
 १८ अन्वयः । १९ मत्सा मत् । ज्यायसा त०, प० ।

मेघधरो भीमभुजस्तयाऽन्वेऽप्युदितोर्दितौ। वृत्तिनो बहवः सन्ति तेषु यत्रादयोस्तय ॥१६०॥
 शिष्टान् पृष्ट्वा च वैवज्ञानिरीक्ष्य शकुनानि च। स हितः समसम्बन्धरत्नम् कन्येति दीयताम् ॥१६१॥
 श्रुत्वा सर्वार्थवित्सर्वं सर्वार्थः प्रत्युवाच ततः। भूमिगोचरसम्बन्धः स नः प्रागपि विद्यते ॥१६२॥
 अपूर्वलाभ इलाध्यदच विद्याधरतामाश्रयः। विचार्य तत्र कर्मचिद्द्वेषमिति निर्दिद्यतम् ॥१६३॥
 सुमतिस्त निशाम्यार्थं युक्तानामह युगतचित्। न युक्तं यत्तुमुपेतत् १० तर्वावरानुगन्धदृत् ॥१६४॥
 किं भूमिगोचरैवत्या वरो नास्त्येति चेतसि। चत्रिणोर्गि भयैर्किञ्चिद् वरस्यं प्रस्तुतधृते ॥१६५॥
 दृष्टः सम्यगुपायोऽयं मयाऽत्रैकोऽविरोधयः। श्रुतः ११ पूर्वपुराणेषु स्वयं धरविधिधरः ॥१६६॥
 सम्प्रत्यकम्पनोपक्रमं १२ तदस्त्वायुगावधि १३। पुष्टात्पुत्रवत्सृष्टि १४ एयात्तिरस्यापि जायताम् ॥१६७॥
 दीयता कृतपुण्याय कर्मचित् कन्यका स्वयम्। वैधता १५ विप्रियं १६ नोऽस्मा भागूद् भूभुत्सु १७ देनचित् १८
 इत्येवमुक्त तत्सर्वैः समन्तं सहभूभुजा। नहि मत्सरिणः सन्तो न्यायमागर्तिसारिणः ॥१६८॥
 तान् १९ सम्पूज्य विसर्ज्याभूद् २० भूभू २१ तत्कार्यतत्परः। स्वयमेव गृहं गत्या सर्वं तत्संविधानयम् ॥१७०॥

हे उत्तमे जिसके लिये अपना चित्त प्रसन्न हो उसके लिये शिष्ट जन तथा ज्योतिषियोंसे पूछकर और उत्तम शकुन देखकर कन्या देनी चाहिये क्योंकि वराधरीवालोंके साथ सम्बन्ध करना ही कल्याणकारी हो सकता है ॥१८९-१९१॥ यह सब सुनकर समस्त विषयोंको जाननेवाला सर्वार्थ नामका मंत्री बोला कि भूमिगोचरियोंके साथ तो हम लोगोका सम्बन्ध पहलेसे ही विद्यमान है, हा, विद्याधरोंके साथ सम्बन्ध करना हम लोगोके लिये अपूर्व लाभ है तथा प्रशसनीय भी है इसलिये विचारकर विद्याधरोमे ही किसीको यह कन्या देनी चाहिये ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥१९२-१९३॥ तदनन्तर वहापर एकत्रित हुए सब लोगोका अभिप्राय जानकर योग्य बातको जाननेवाला सुमति नामका मंत्री बोला कि यह सब कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ये सभी बातें श्रुता उत्पन्न करनेवाली हैं ॥१९४॥ विद्याधरको कन्या दी है यह सुननेसे चक्रवर्तीके चित्तमे भी क्या भूमिगोचरियोंमें इसके योग्य कोई वर नहीं है यह सोचकर कुछ बुरा लगेगा ॥१९५॥ इस विषयमे किसीसे विरोध नहीं करनेवाला एक अच्छा उपाय मेने सोचा है और वह यह है कि प्राचीन पुराणोमे स्वयंवरकी उत्तम विधि सुनी जाती है। यदि इस समय सर्वप्रथम अकम्पन महाराजके द्वारा उस विधिका प्रारम्भ किया जाय तो भगवान् वृषभदेव और उनके पुत्र सम्राट् भरतके समान ससारमे इनकी प्रसिद्धि भी युगके अन्ततक ह्ये जाय ॥१९६-१९७॥ इसलिये यह कन्या स्वयंवरमे जिसे स्वीकार करे ऐसे किसी पुण्यशाली राजकुमारको देनी चाहिये। ऐसा करनेसे हम लोगोका आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेव अथवा युगध्यवस्थापक सम्राट् भरतसे कुछ विरोध नहीं होगा, और न राजाओका भी परस्पर में किसीके साथ कुछ वैर होगा ॥१९८॥ इस प्रकार सुमति नामके मंत्रीके द्वारा कही सब बातें राजाके साथ भाय सवने स्वीकृत की सो ठीक ही है क्योंकि नीतिमार्गपर चलनेवाले पुराण मात्सर्य नहीं करते ॥१९९॥ तदनन्तर राजाने सम्मानकर मंत्रियोंको विदा किया और स्वयं

१ उर्गर्गर्भदयवल् २ पुमि ३ चित्तोत्सवोऽस्ति । ४ ज्योतिष्यान् । ५ अस्माभि सह गन्ध सम्बन्धवान् वा । ६ तम् अ०, प०, स०, द०, ल०, म० । ७ भूचर । ८ अभिप्रायम् । ९ मित्रिणानाम् । श्रुतार्थादीनाम् । १० सर्वं वरा-प०, ल० । ११ विवाहवार्ताश्रवणम् । १२ पूर्वस्मिन् श्रुत । १३ अश्रमनेन प्रप्रमोदनात् । १४ स्वयंवरनिर्माणम् । १५ पुत्रित् भरतराजयत् । १६ सृष्ट ८० । स्वयंवरम् सृष्टा इति प्रसिद्धि । मृष्टिर्गति पाठे स्वयंवरम् मृष्टिप्रसिद्धि । १७ ब्रह्मणा । सृष्टा प्रसागत्येषा विधाया विन्वग्द्विधि इत्यभिधानात् । १८ विरजम् । अभिप्रायित्यर्थं १९ तृपेपु । २० मन्त्रिण । २१ अश्रमन । २२ स्वयंवरकार्यं । २३ प्रस्तुत श्रुत्य ।

निवेद्य 'सुप्रभायाश्च हृष्टो हेमाद्रगदस्य' च । वृद्धः कुलवमायातः आतोच्य च सनाभिभिः ॥२०१॥
 अत्रैकेषां निसृष्टार्थान् मितार्थान्परान् प्रति । वरेषां 'प्राभूतान्त.स्वपत्रान् दासतहारिणः' ॥२०२॥
 स दानमानः सम्पुज्य निवेद्यैतत्प्रयोजनम् । समानेत्तु महोपात्तान् सर्वदिवकं सनादिशत् ॥२०३॥
 ज्ञात्वा तदाशु तद्बन्धुविचित्राद्गदसंज्ञकः^{१०} । सोधर्मवत्पावागत्य देवोऽत्रिविलोचनः ॥२०४॥
 अरुम्पनमहाराजम् आलोच्य व्यमगताः । सुलोचनायाः पुण्यायाः^{११} स्वयंवरमवेत्सितुम् ॥२०५॥
 इत्युवत्सो^{१२}पपुरे दोग्ये रम्ये राजाभिसम्मतः । ब्रह्मस्थानोत्तरे भागे प्रधारे^{१३} बरवारतुनि^{१४} ॥२०६॥
 प्राङ्मुखं सर्वतोभद्रं मद्गतद्रव्यसम्भूतम् । विवाहमण्डपोपेतं प्रासादं बहुभूमिवम्^{१५} ॥२०७॥
 चित्रप्रतो^{१६} लोप्रावारपरिकर्मगुहावृतम्^{१७} । भास्वरं नग्निनर्माभ्यां^{१८} विधाम विधिदत् सुधोः ॥२०८॥
 'तं परीत्य विमृद्धोऽपि सुचिन्तितमहातलम् । चतुरस्रं चतुर्द्वारशालगोपुरसंयुतम्^{१९} ॥२०९॥
 रत्नतोरणसदृशोऽङ्कुरमालाविलासितम् । हृत्कूटाग्रनिर्भासि मर्मकृष्णाम्भिशोभितम्^{२०} ॥२१०॥
 स्थूलनोतोत्पलायद्वह्नुहोऽपिधरातलम् । विचित्रनेत्रविस्तोर्गण्डितानाति^{२१} धिराजितम् ॥२११॥

कार्य करनेमें जुट गया । उसने सबसे पहले घर जाकर ऊपर लिखे हुए समाचार सुप्रभादेवी और हेमागद नामके ज्येष्ठ पुत्रको कह सुनाये तथा कुलपरम्परासे बाधे हुए वृद्ध पुराणों और सगोत्री बन्धुओंके साथ पूर्वापर विचार किया ॥२००-२०१॥ कितने ही राजाओंके पास निसृष्टार्थ अर्थान् स्वयं विचारकर कार्य करनेवाले दूत भेजे, किन्तों हीके पास मितार्थ अर्थात् कहे हुए परिमित समाचार सुनानेवाले दूत भेजे और बिननों हीके पास उपहारके भीतर रखे हुए पत्रको ले जानेवाले दूत भेजे । इस प्रकार दान और सन्मानके द्वारा पूजित कर तथा स्वयंवर का प्रयोजन बतलाकर राजाने भूपालोंको वृत्तार्थके लिये सभी दिशाओंमें अपने दूत भेजे ॥२०२-२०३॥ यह सब समाचार जानकर अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाला विचित्रांगद नामका देव जो कि पूर्वभ्रममें राजा अरुम्पनका भाई था सौधर्म स्वर्गसे आया और अरुम्पन महाराजके दर्शन कर कहने लगा कि मैं पुण्यवती मलोचनाका स्वयंवर देगनेके लिये आया हूँ ॥२०४-२०५॥ ऐसा कहकर उसने राजाकी आज्ञानुसार नगरके समीप ब्रह्मस्थान से उत्तरदिशाकी ओर अत्यन्त शान्त, उत्कृष्ट, योग्य और रमणीय स्थानमें एक सर्वतोभद्र नाम का राजभवन बनाया जिसका मुख पूर्व दिशाकी ओर था, जो मङ्गलद्रव्योसे भरा हुआ था, विवाहमण्डपमें सहित था तथा कई सण्टका था ॥२०६-२०७॥ वह राजभवन अनेक प्रकार की गलियों, कोठों तथा गृह्णार करनेके घरोंसे घिरा हुआ था, देदीप्यमान था और मणियों तथा सुवर्णमें बना हुआ था । इस प्रकार उस बुद्धिमान् देवने विधिपूर्वक राजभवनकी रचना कर उसके चारों ओर स्वयंवरका महाभवन बनाया था जो कि विन्दु पा, वटा था, जिसका पश्चिमीभाग अलग अलग विभागोंमें विभक्त था, जो चौकोर था, जिसमें चार दरवाजे थे, जो कोठ तथा गोपुरद्वारोंमें मुनोभित था, रत्नोंके तोरणोंमें मिली हुई पतानाओंकी पंक्तियोंसे शोभायमान हो रहा था, देदीप्यमान निगरोंके अग्रभागपर चमकते हुए सुवर्णके बल्लोंमें अर्द्धत

१ सुप्रभायाश्च थ०, ५० । २ नित्रज्येष्ठपुत्रस्य । ३ वेपाञ्चिबन्धुप्राणम् । ४ स्वयमेव विचारितार्थान् । ५ परिमितार्थार्थान् । ६ उपायन । ७ वचोहरान् । -धन्वगागन-ज० । ८ स्वयंवरनायम् । ९ स्वयंवर-दिशाम् । १० अरुम्पनस्य मित्रम् । ११ पवित्राया । १२ पुरमभीने । १३ पदनिष्ठायाऽनित्चिदमप्य-भागस्योत्तरे । १४ अनिगम्यारे । १५ बरवान्मुदेने । वेदम मूर्धोऽनुस्मिन्नाम् इतिनिपातात् । १६ -नर्मिपम् स०, म० । १७ गोपुररम्या वा । १८ नृगायम् । १९ 'अमं दम हाटव' शान्तुम्पम्' इत्यनिपात-पाठारम्भः । २० सर्वतोभद्र परिवेष्टय । २१ द्वार गान्त-ज०, म०, अ०, ५०, ४०, ६० । २२ चतुरस्रम् । २३ यन्मरिचये ।

भोगोपभोगधोग्योवसर्ववस्तुसमाचितम् । यथास्थानगताशेषरत्नकाञ्चननिर्मितम् ॥२१२॥
 मुदा निष्पादयामास स्वयवरमहागृहम् । न साधयन्ति केऽभीष्ट पुसा शुभविपाकत ॥२१३॥
 त निरीक्ष्य कितेभर्ता लक्ष्मीलीलागृहायितम् । नासीत् स्वाडगे स सन्तोषात् सम्मित्रात् किन्न जायते ॥
 अथ प्रादुरभूत काल सुरभिमंत्तमन्थ । मुद मद च सञ्चिन्वन् कामिदु भ्रमरेषु च ॥२१४॥
 ववौ भन्द गजोद्धृष्टचन्दनद्रवसारभूत । एलातवडगससर्गपङ्क्तो मलयानिल ॥२१५॥
 मलयानिलमाश्लेष्टु सम्बन्धिनमुपागतम् । लताद्रुमा सुशाखाना प्रसारणमिवावधु ॥२१७॥
 यमसम्बन्धिविद्यत्याग रविर्भौत इयाकरोत् । मदेन कोकिला काले कूजन्ति स्म निरदकृशम् ॥२१८॥
 शृणुपमातं वमाप्ता न शाखा न स्पृशतेति तान् । अलोन् वास निविध्यन्तश्चम्पवाश्चलपल्लवं ॥२१९॥
 वसन्तश्रीविभोगो वा सशोकोऽशोकभूरुह । सपुष्पपल्लवो नाम साधं तत्सडगमाद् व्यधात् ॥२२०॥
 मूलस्कन्धाप्रमथ्येषु च्छ्ताच्चरिव मत्सरात् । सुरभोगि प्रसूनानि सुरभिश्च तदा वधे ॥२२१॥

था, जिसका धरातल वडे वडे नीलमणियोसे जडा हुआ हीनेके कारण जगमगा रहा था, जो नेत्र जातिके वस्त्रोसे बने हुए वडे वडे चदोवोसे सुशोभित था, भोग उपभोगके योग्य समस्त वडी वडी वस्तुओसे भरा हुआ था और योग्य स्थानपर लगाये हुए सब प्रकारके रत्नो तथा सुवर्णसे बना हुआ था । इस प्रकारका स्वयवरका यह महाभवन उस देवने बडी प्रसन्नतासे बनया था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदयसे पुरुषोके अभीष्ट अर्थको कौन कौन सिद्ध नहीं करते हैं अर्थात् सभी करते हैं ॥२०८-२१३॥ लक्ष्मीके लीलागृहके समान उस स्वयवर भवनको देखकर राजा अकपन सतोपसे अपने शरीरमे नहीं समा रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम मित्रोसे क्या नहीं होता है ? अर्थात् सभी कुछ होता है ॥२१४॥

अथानन्तर—कामको उन्मत्त करनेवाले तथा कामी लोगो और भ्रमरोसे क्रमश आनंद और मदको घटानेवाले वसन्तऋतुका प्रारम्भ हुआ ॥२१५॥ हाथियोके द्वारा घिसे हुए चन्दन वृक्षोने निष्पन्दरूपी सारको धारण करनेवाला तथा इलायची और लवगके ससर्गसे कुछ कुछ पीला हुआ मलयपर्वतका वायु धीरे धीरे बहने लगा ॥२१६॥ उस समय लताओ और वृक्षोकी जो शाखाए फैल रही थी उनसे वे ऐसे जान पडते थे मानो समीप आये हुए अपने सम्बन्धी मलयानिलका आलिंगन करनेके लिये ही भुजारूप शाखाए फैला रहे हो ॥२१७॥ उस समय गर्भने मानो डरकर ही यम मन्मन्धी—दक्षिण दिशाका त्याग कर दिया था अर्थात् उत्तरायण हो गया था और कोयले मदमे निरकुश होकर मधुर शब्द बर रही थी ॥२१८॥ ये हमारी शाखाए आतं व अर्थात् वसन्त ऋतुमे उत्पन्न होनेवाले अथवा रजस्वला अवस्थामें प्रवृत्त होने वाले पुण्योके प्राण हो रही हैं—धारण बर रही हैं इसलिये द्रव्हें मत छोओ ' यही बहते हुए मानो चपाके वृक्ष अपने हिलने हुए पल्लवोके द्वारा भ्रमरोको वहापर निवास करनेका निषेध कर रहे थे ॥२१९॥ जो वगन्त ऋतुरूपो लक्ष्मीके विभोगमें सशोक था अर्थात् शोक धारण बर रहा था गंगा अनीरना वृक्ष उम वगन्त ऋतुके सम्बन्धमे पृथ और पल्लवोसे सहित हो अपना अनीर नाम गार्धव बर रहा था ॥२२०॥ उम समय चमेलीने आम आदि वृक्षोके साथ द्रव्या

प्राकृष्टदिग्गजालीनि^१ बहूस्तानि वने यने । हानी^२ गुणाधिरान्यासस्तुलितानि^३ बह्वोद्गता^४ ॥
 क्रोडनारासक्तवान्ताभिर्वाध्यमाना सपीतिभिः । श्रान्दोला स्तम्भसन्भूतं सभाश्रोत्रनिब^५ न्वनं ॥२२३॥
 सुन्दरोष्वपि क्रन्देयं मधुपा मन्दतुल्य । माघवीमधुपानेन मुदा मधुरमाह्वयन्^६ ॥२२४॥
 भवेदन्त्यत्र^७ कामस्य रूपवित्तादि^८ साधनम् । कालं वसाधनं^९ सोऽस्मिन्ना^{१०} वनस्पति^{११} जूम्भते^{१२} ॥२२५॥
 नरविद्याधराधीमान् गत्वा^{१३} तत्कालसाधनात् । द्रुता स्वयवरालाप सर्वास्तान् समबोधयन् ॥२२६॥
 ततो नानानकध्वानप्रोत्कर्णाकृतदिग्दिष्टा । निजाह्वयनाननाभोजपरिभ्रान्तिविधायिन ॥२२७॥
 विविद्विभूतिमाश्रम्य विमानं गतमानकं^{१४} । सद्यो विद्याधराधीना द्योतमानदिगानना ॥२२८॥
 सुतोचनाभिप्राकृष्टि^{१५} विद्याकृष्टा समापतन्^{१६} । कामिना न पराकृष्टि^{१७} विद्यागुहत्वेऽस्तिस्त्रिय ॥

होनेके कारण ही मानो जड, स्कन्ध, मध्यभाग और ऊपर—सभी जगह सुगन्धित फूल धारण किये थे ॥२२१॥ जिन्होंने दिग्गजोंके भ्रमरोंको भी अपनी ओर खींच लिया है और जो उच्च-कुलमें उत्पन्न हुए बड़े पुरुषोंके समान हैं ऐसे मौलश्रीके वृक्ष प्रत्येक वनमें अपनी हानि होनेपर भी गुणोंकी अधिकता ही धारण कर रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार कुलीन मनुष्य हानि होनेपर भी अपना गुणतही छोड़ते हैं उसी प्रकार मौलश्रीके वृक्ष भी भ्रमरों द्वारा रसका पान किया जाना रूप हानिके होनेपर भी अपना सुगन्धिरूप गुण नहीं छोड़ रहे थे ॥२२२॥ जो गीत गा रही है तथा खेलनेमें लगी हुई है ऐसी सुन्दर स्त्रिया जो भूला भूल रही थी और उनके भूलने से जो उनके खभोसे चूँ चूँ शब्द हो रहा था उनसे वे भूले ऐसे जान पड़ते थे मानो उन स्त्रियोंके द्वारा पीडित होकर ही चिल्ला रहे हो ॥२२३॥ जिन्हें बुन्दके सुन्दर फूलोंपर अच्छी तृप्ति नहीं हुई है ऐसे भ्रमर माघवी (मधुकामिनी) लताका रस पीकर आनन्दमें मधुर शब्द कर रहे थे ॥२२४॥ वसन्तको छोड़कर अन्य ऋतुओंमें अच्छा रूप होना आदि भी कामदेवके साधन हो सकते हैं परन्तु इस वसन्तऋतुमें एक समय ही जिसका साधन है ऐसा यह काम वनस्पतियों तक फैल जाता है । भावार्थ—अन्य ऋतुओंमें सौन्दर्य आदिमें भी कामकी उद्भूति हो सकती है परन्तु वसन्तऋतुमें कामकी उद्भूतिका कारण समय ही है । उस समय सौन्दर्य आदिका अभाव होनेपर भी केवल समयकी उत्तेजनासे कामकी उद्भूति देखी जाती है और उसका क्षेत्र केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहता किन्तु वनस्पतियों तकमें फैल जाता है ॥२२५॥ उस वसन्तऋतुकी सहायतासे उन दूतोंने भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंके पास जाकर उन सबको स्वयवरके समाचार बतलाये ॥२२६॥

तदनन्तर अनेक नगाडोंके शब्दोंसे दिग्गजोंके कान खड़े करनेवाले अपनी स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंको म्लान करनेवाले, सब दिशाओंके मुखको प्रकाशित करनेवाले और सुलोचना इस नामरूपी आवपिणी विद्यासे आकर्षित हुए अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने अनेक विमानों से आकाशके विस्तारको कम करते हुए बहुत शीघ्र आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि कामी लोगों को अपनी अभीष्ट स्त्रियोंके छोड़कर और कोई उत्तम आकर्षिणी विद्या नहीं है ॥२०७—२२९॥

१ आहृष्टा दिग्गजगण्डवर्चयनयो यैस्तानि । २ पुण्यामादन्नाय सति । ३ मधुगुणाधिरानि । उपनारादिगुणाधिरानि । ४ मद्गोहृत्तानि । ५ विपुद्बकपोद्भूतं । ६ आश्राग चरित । ७ ध्वननि स्म । ८ अश्रमिन् बाल । ९ स्त्रीपुसा रूपधनभूषणार्थादि । १० वान एव एव साधन यस्य स । ११ वनलवाते । १२ वनस्पतिपथनम् । १३ वनस्पते । १४ वयन्लवात । १५ आकाशविन्दुनिम् । १६ अपरिच्छिन्नप्रमाणकै । अपरिमितवित्तयर्थ । —जनमानकं १०, ५० । १७ गुणाधरानामेव आकर्षण-विद्या तथा आहृष्टा आरपिना । १८ आगच्छन्ति स्म । १९ आश्रागविद्या ।

अभिमम्य'नृपः' क्षिप्रं स्वयमाविष्टृतोत्सवः । घेतः शीतोचन' धंशान् प्रीतान् प्रायेणायतुरम् ॥२३०॥
 स्वर्गहादियु सम्प्रोत्था समुद्बद्धोत्तावप्यजः । 'ग्रायम्पनिभिराविष्टृतादरः परित्यारितः ॥२३१॥
 शाशुकर्मभिवोद्यन्तम् अर्ककोति सहानुजम् । अकम्पननृपोऽभेद्ये' भरतं या'ऽन्यतुरम् ॥२३२॥
 स्वादरेणैव' ससिद्धिं भाविनीं तस्य सूचयन् । नाथधंशप्रणीनेषत्परं घानेतुमभ्ययात् ॥२३३॥
 ततो महीभूतः सर्वे त्रिसमुद्रान्तरस्थिताः । पूर इव पयोराशिं प्रापुः 'स्कीतोत्तृत्तथियः ॥२३४॥
 स्वयमर्थपथं गत्वा केवाञ्छित् सर्वसम्पदा । केवाञ्छिन्नाद् गमयित्वाऽन्यान् मान्यान् हेमाद्गदादिवान् ॥२३५॥
 ये ये यथा यथा प्राप्ताः पुरींस्ता स्तांस्तथा तथा । आह्वयन्तीं पताकगभिर्घोष्यताभिरदोषित् ॥२३६॥
 तदा तं राजनेहस्थं नरविद्याधराधिपः । पूतं सुसोचनाऽकार्पात् पितरं जितचक्रिणम् ॥२३७॥
 वाराणसी जितायोध्याः 'स्वनाम्नस्ता' निराकरोत् । कन्यारत्नान् परं' नान्यद् इत्यत्राहुः प्रमुत्थतः ॥२३८॥
 तान् स्वयंवरशालायाम् अर्ककोतिपुरस्सरान् । निवेद्य प्रीणयामास हृताभ्यागतसन्धियः ॥२३९॥

अनेक उत्सवोंको प्रकट करनेवाले राजा अकपनने स्वयं ही बहुत शीघ्र उन राजाओंकी अगवानी की और प्रसन्न हुए उन राजाओंको सुलोचनाके चित्तके समान वाराणसी नगरीमें प्रवेश कराया ॥२३०॥ जिसने बड़े प्रेमसे अपने घर आदिमें उत्सवकी ध्वजाए बंधाई है और आदरको प्रकट करनेवाले हेमागद आदि पुन जिसके साथ है ऐसे राजा अकम्पनने किरणों सहित उदय होने हुए सूर्यके समान अपने छोटे भाइयो सहित आये हुए अर्ककोतिकी अगवानी कर उसे महाराज भरतके समान नगरमें प्रवेश कराया ॥२३१-२३२॥ इसी प्रकार अपने आदरसे ही मानो उसकी आगे होनेवाली सिद्धिको सूचित करता हुआ नाथवशका अग्रणी राजा अकपन जयकुमार को लेनेके लिये उसके सामने गया ॥२३३॥ तदनन्तर जिस प्रकार पूर समुद्रकी ओर जाता है उसी प्रकार तीनो (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण) समुद्रोंके बीचके रहनेवाले सब राजा लोग अपनी अपनी शोभा बढ़ाते हुए बनारस आ पहुँचे ॥२३४॥ राजा अकपन कितने ही राजाओंके सामने तो अपनी सब विभूतिके साथ स्वय आधी दूरतक गया था और कितने हीके सामने उसने मान्य हेमाद्गद आदिको भेजा था ॥२३५॥ जो राजा जिस जिस प्रकारसे आ रहे थे उन्हें उसी उसी प्रकारसे उसने, अपनी फहराती हुई पताकाओंसे जो मानो बुल्ला ही रही हो ऐसी बनारस नगरीमें प्रवेश कराया था ॥२३६॥ उस समय सुलोचनाने राजमहलमें विराजमान तथा भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए अपने पिताको चक्रवर्तीको भी जीतनेवाला बना दिया था । भावार्थ—महलमें इकट्ठे हुए अनेक राजाओंसे राजा अकपन चक्रवर्तीके समान जान पडता था ॥२३७॥ उस समय अयोध्याको भी जीतनेवाली वाराणसी नगरी अपने नामसे ही उसका तिरस्कार कर रही थी । क्योंकि उस स्वयंवरके समय से ही लेकर इस सत्कारमें कन्यारत्नके सिवाय और कोई उत्तम रत्न नहीं है, यह बात प्रसिद्ध हुई है । भावार्थ—नादाचित् कोई बड़े कि चक्रवर्तीकी राजधानी होनेसे चौदह रत्न अयोध्यामें ही रहते हैं इसलिये वही उत्कृष्ट नगरी हो सकती है न कि वाराणसी भी, तो इसका उत्तर यह है कि सत्कारमें सर्वोत्कृष्ट रत्न कन्यारत्न है जो कि उस समय वाराणसीमें ही रह रहा था अत उत्कृष्ट रत्नका निवास होनेने वाराणसीने अयोध्याका तिरस्कार कर दिया था ॥२३८॥ अतिथियोका सत्कार

१ अभिमम्य गत्वा । २ अपम्पन । ३ सुलोचनाचित्तमिय । ४ अकम्पनस्यापत्यै । ५ अभिमूल गत्वा । ६ भरतमिव । ७ आम्पनस्यादरेण । ८ वृद्धीवृत्त । ९ प्रावेणायम् । १० अयोध्याभिधानात् । ११ अयोध्याकिन्म । अथवा योद्धमगत्रया अयोध्या एतत्त्वग्रण तदा तस्या अयोध्याया नास्तीति भाव । १२ उत्कृष्टम् ।

पुरोपाजितसद्धर्मान् सत्रंमेतत्तत १ पुरा १ । धर्म एव सनभ्यध्वं इति सञ्चित्य विद्वर १ ॥२४०॥
 वृत्वा जैनैश्वरीं पूजा दीनानायवनीपवान् १ । अर्नाथिन १ समर्थासु १ सर्वत्यागोत्सवोद्यत ॥२४१॥
 ता लक्ष्मीमक्षया भक्त्वा सफला चाप्तसद्व्ययाम् । स तदाभूत् क्षतरेषुभोग्य १ श्रितिरिवात्मन ॥२४२॥
 एष विहिततत्पूज १ प्रकृतार्थे १ प्रचक्रमे । प्रारम्भा सिद्धिभायान्ति पूज्यपूजा १ पुरस्तरा ॥२४३॥
 आस्फालिता तदा भेरी विवाहोत्सवशासिनी । व्याप्नोत् १ प्रमोद प्राक् चेत पदचात् १ कर्णेषु तद्वचनि ॥
 पुष्पोपहारिभूभागान् त्यक्ते तु न भस्तला । निर्जितादिमहान्तर्यध्यानाध्नातद्विगन्तरा ॥२४४॥
 विद्योषितमहान्तर्योपि देवा प्रोद्वद्धतोरणा । पुनर्न वसुधाशोदधवनीवृत्तसौधिनः १ ॥२४५॥
 रञ्जिताञ्जनसर्पेना मालाभारिशिरोधहा । ससृत्तभ्रूलतोपेता सविदोपलताडिवा १ ॥२४६॥
 १ मणिकुण्डलभारेण प्रलम्बध्रवणोज्ज्वला । सधिनररविन्यस्त १ पत्रचित्रकपोलिवा ॥२४७॥
 ताम्बूलरससर्पाद् द्विगुणारणिताधरा । मुक्ताभरणभाभारभासिद्वन्द्वरुक्षिवा १ ॥२४८॥
 सचन्दारसस्फारहारवक्षकुञ्चिता १ । महामणिममूला १ तिभास्वदभ्रूलतातता ॥२४९॥

करनेवाले राजा अकम्पानने उन अर्ककीर्ति आदि राजाओको स्वयवरशालामें ठहरावर प्रगन किया था ॥२३९॥ यह सब पहले उपाजंन किये हुए समीचीन धर्मसे ही होता है इसलिये सबसे पहले धर्म ही पूजा करनेके योग्य है ऐसा विचारकर विद्वानोंमें श्रेष्ठ राजा अकपन श्री जिनेन्द्र-देवकी पूजाकर तथा दीन, अनाथ और याचनोंको अयाचक बनाकर सबका त्याग करनेन्प उत्सवके लिये शीघ्र ही तयार हो गया । वह अच्छे कामोंमें रस की हुई लक्ष्मीको क्षयरहित और सफर मानने लगा तथा जिस प्रकार उसकी पृथिवी उसने उपभोग करनेके योग्य थी उसी प्रकार उस समय वह समस्त पृथिवीके उपभोग करने योग्य हो गया था । भावार्थ—पृथिवीके सब लोग उसने राज्यका उपभोग करने लगे थे ॥२४०—२४२॥ इस प्रकार उसने जिनेन्द्रदेवकी पूजाकर अपना प्रकृत कार्य प्रारम्भ किया सो ठीक ही है क्योंकि पूज्य पुरुषोंकी पूजा पूर्वक किये हुए कार्य अवश्य ही सफलताको प्राप्त होते हैं ॥२४३॥ उसी समय विवाहके उत्सवको सूचित करनेवाली भेरी बज उठी सो पहले सबके चित्तमें आनन्द छा गया और पीछे भेरीकी आवाज कानोंमें व्याप्त हुई ॥२४४॥ उस समय वहा पृथिवीपर जहा तहा फूत्रोंके उपहार पड़े हुए थे, आकाशमें पताराए नृत्य कर रही थी, समुद्री गर्जनाको जीतनेवाले बड़े बड़े नगाडोंसे दिनाए शत्रुघ्नमान हो रही थी, वहाकी बड़ी बड़ी गलिया शत्रु की गई थी उनमें तोरण बाधे गये थे और बड़े बड़े महल नये चूनाके चूणमें पुन सफेद किये गये थे ॥२४५—२४६॥ वहाकी म्त्रियोंने उत्तम नेत्र वज्जलमे रंगे हुए थे, शिरके बेश मालाओको धारण कर रहे थे, भौंहूपी लनाए सम्भारकी हुई थी, उनने ललाटपर मूदर तिलन लगाटुआ था, उज्ज्वल कर्ण मणियोंने बने हुए कुण्डलोंने भारसे कुछ कुछ नीचेकी ओर झूट रहे थे, कपोलोंपर हाथने बनाई हुई पत्ररचनाके चित्र बने हुए थे, पानके रसके सज्जमे उनके ओठोंकी लाली दूनी हो गई थी, उनने कण्ठ मोनियोंके आभूषणोंकी वाग्तिके भारसे बहुत ही मुग्धोभित हो रहे थे, उनका वक्ष स्थल चन्दनना लेप, बडा हार और स्तनोंमे शोभायमान हो रहा था, उनकी मुजा-रूपी लनाए बड़े बड़े मणियोंकी शिरणोंमे वेदीप्यमान हो रही थी, उनका विद्या निवम्बस्थल

१ ता वाग्गान् । २ पशुम् । ३ विदा वर । ४ याचकान् । ५ अनिच्छन् । ६ प्रानय ।
 ७ धर्मजनय । ८ वृत्तत्रिपूज । ९ प्रत्यासर्पम् । १० पुष्पाणां पूजा पुष्पतरा यन्तु । ११ प्रमोद
 रस । १२ नूतनगुणान्तर्यवनीवृत्तमहर्मा । १३ तिलरगहिनभावन्यना । १४ शत्रुघ्नमानवदन । १५ प्रमोद
 चित्राङ्गनर्णिकवर्णकान्वागतादिविविधरचनावत्प्रमोदना । १६ मनाश्रीका । १७ प्रमोदश्रीगदकर्म-
 कानिपयगास्त्रुण्णहारविचरुचाम्ना य पूजिता । १८ मयूगाना 'त' पुनरा निरान संवेत् ।

रक्षाररज्जुविभ्राजिसुविशालकटीतटो । मणिनूपुरनिर्घोषभस्सिताम्बजत्रमाग्निजा ॥२५१॥
 जितामरपुरीशोभा सौन्दर्यात् सा पुरी तदा । प्रसाधनमयं वायम् अघिताचित्य वैभयम् ॥२५२॥
 उत्सवो राजगोहस्य नगरेणैव वर्णित । अगाधो यदि पर्यन्तो मध्यमस्य^१ किमुच्यते ॥२५३॥
 न चित्र तत्र भञ्जितो^२ सोत्सवोऽन्तर्बहिद्वय तत् । तद्वत्स्वभूपया यस्मात्^३ कृष्णघाघि विचेतनम् ॥२५४॥
 भोक्तृशून्य न भोगाङ्गं न भोक्ता भोग्यजित । तत्र सन्निहितोऽनङ्गो लक्ष्मीश्चाविष्टतोदया ॥२५५॥
 पश्य पुण्यस्य माहात्म्यमिहापीति^४ तदुत्सवम्^५ । विलोक्य कृतधर्माणं^६ पुरस्थान् बहु मेनिरे ॥२५६॥
^७ उवसुन्वन् फल मत्वा धर्मस्य मुनयोऽपि तत् । धर्माधर्मं कलालोकात् स्वभाव स हि तादृशम् ॥२५७॥
 वन्यागृहात्तदा कन्याम् अन्या वा कमलालयाम्^८ । पुरोभूमं^९ पुरन्ध्यस्तानीपल्लज्जातताम्यताम्^{१०}
 विवाहविधिवेदिन्य कृततत्कालसत्क्रियाम् । समानीय सदैवता^{११} महातूर्परयान्विताम् ॥२५८॥
 सर्वमङ्गलसम्पूर्णं मुक्तालम्भू^{१२} धर्मापिते । चतुःकाञ्चनसुस्तम्भे भूरिरत्नस्फुरत्विधि ॥२५९॥
 प्रमोदात् सुप्रभादेशाद्^{१३} विवाहोत्सवमण्डपे । कलधौतमये पट्टे^{१४} निवैश्य प्राङ्मुखो सुखम् ॥२६०॥

करधनीरूपी रज्जुसे सुशोभित हो रहा था, और उनके चरणकमल मणिमयी नूपुरोंकी भनकार से कमलोका तिरस्कार कर रहे थे ॥२४७-२५१॥ इस प्रकार अपनी सुन्दरतासे स्वर्गपुरीकी शोभाको जीतनेवाली वह नगरी उस समय अचिन्त्य वैभवशाली अलवारमय शरीरको धारण कर रही थी ॥२५२॥ राजमहलका उत्सव तो नगर ही कह रहा था क्योंकि समुद्रके किनारे का भाग ही जब अगाध है तब उसके बीचका क्या पूछना है ? भावार्थ—जब नगरमे ही भारी उत्सव हो रहा था तब राजमहलके उत्सवका क्या पूछना था ? ॥२५३॥ वहाके सचेतन प्राणी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग सब जगह उत्सव मना रहे थे इसमे कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि वहाकी दीवाले आदि अचेतन पदार्थ भी तो अपने अलकारो द्वारा सचेतन प्राणियोंके समान ही उत्सव मना रहे थे । भावार्थ—दीवाले आदि अचेतन पदार्थ भी अलकारोसे सुशोभित किये गये थे जिससे वे ऐसे जान पडते थे मानो उल्लाससे अलकार धारण कर स्वय ही उत्सव मना रहे हो ॥२५४॥ वहापर भोगोपभोगका कोई भी पदार्थ भोक्तासे रहित नहीं था और न कोई भोक्ता भी भोगोपभोगके पदार्थसे रहित था, वहापर कामदेव सदा समीप ही रहता था और लक्ष्मी उदयरूप रहती थी ॥२५५॥ इस जन्ममे ही पुण्यका माहात्म्य देखो ऐसा सोचते हुए कितने ही धर्मात्मा लोग वहाका उत्सव देखकर उस नगरके रहनेवाले लोगोको बडी आदरकी दृष्टिमे देख रहे थे ॥२५६॥ मुनि लोग भी उसे धर्मका फल मानकर प्रसन्न हुए थे सो ठीक है क्योंकि धर्मका फल देखकर प्रसन्न होना धर्मात्मा लोगोका स्वभाव है और अधर्मका फल देखकर प्रसन्न होना अधर्मात्मा लोगोका स्वभाव है ॥२५७॥ उसी समय विवाहकी विधिको जाननेवाली मीभाग्यवती स्त्रिया, जिसने तात्कालिक सत्क्रियाए की है जो लज्जासे कुछ भयभीत हो रही है, जिसके आगे बडे बडे नगाडोके शब्द हो रहे है ज्योतिष शास्त्रको जाननेवाले अनेक विद्वान् जिसके साथ है और जो दूसरी लक्ष्मीके समान जान पडती है ऐसी उस वन्याको उसने गामने जाकर उसके घरमे मद्य प्रकारके मंगल द्रव्योसे भरे हुए, मोतियोके आभूषणोमे सुनो-
 नित, सुवर्णके घने हुए चार उत्तम लक्ष्मीसे युक्त और अनेक रत्नोकी कान्तिसे जगमगाते हुए

१ अनवारणरूपम् । २ विभक्ति स्म । ३ -मर्थो ल० । ४ पुण्याम् । ५ चेतनवान् । ६ उत्सववत् ।

७ यस्मात् कारणान् । ८ मन्वन्तनादि । ९ नगरे । १० अस्मिन् जन्मव्यपि । वि पुनरुत्तरजन्मनीत्यपि
 पदार्थ । ११ तन्युरागवम् । १२ कृतपुण्या । १३ उत्सव प्राप्ता । उदास्तन्वत् ल० । १४ लक्ष्मीम् ।
 १५ पुण्यस्य । १६ कृतम्वय । त्यात्तु कृतम्वनी पुरन्ध्यो इत्यभिधानात् । पुर पोष्यवहनसामूह धत
 इति पुरन्ध्यो । गुवादिनाम्यवगंशानि या स्त्रिया नाम । १७ लज्जया स्वीकृत । १८ ज्योतिषमहिहा ।
 १९ गाला । २० मन्वन्महादवीनिरगणात् । २१ पलने ।

कलशैर्मूर्खप्रियस्तवितसत्पल्लवापरं । अभिविच्य विशद्वाम्भूपूर्णं स्वर्णमयं शनं ॥२६२॥
 कृतमद्भराननेपथ्या नीत्वा नित्यमनोहृत्म् ॥ पूजयित्वाऽर्हंतो भक्त्या सर्वकल्याणकारिण ॥२६३॥
 सिद्धयोगां समादाय क्षिपत्वा शिरसि साशियम् । स्थिता प्रतीदयं सल्लग्नं तत्रावृत्त्याहितावरम् ॥२६४॥
 इतो महीशसन्देशान् नरल्लेचरनायका । श्वास्ते प्रसाधितान् कृत्वा प्रसाधनविदस्तदा ॥२६५॥
 निजोचितासनाष्टदा प्रष्टुं श्रीसमुद्भुवला । चलच्चाभरसम्पत्त्या कान्त्या वामरसद्भिना ॥२६६॥
 वृमार्यां निर्जित काम प्राक् स्वमेव^{१०} विवृत्य^{११} किम् । समागंत^{१२} पुनर्जंतुभितिं^{१३} शङ्ककाविधायिन^{१४} ॥
 कञ्चिदक^{१५} वृणीते^{१६}ऽसाविति ज्ञात्वाऽप्यहृद्य^{१७} । जेतु सर्वेऽपि ता तस्य^{१८} श्रद्धा हि मृतेो नृणाम् ॥
 'केरलीकठिनोत्तुङ्गकुचकोटिविलहृद्यन^{१९} । श्रमापानोत्साममर्यात् परिशीणपरिष्कम^{२०} ॥२६६॥
 माद्यन्मलयमातद्गणकटपण्डुविनोदनात्^{२१} । क्षतचन्दननियन्दसान्द्र^{२२}सौगन्ध्यवन्धुम् ॥२७०॥
 कावेरीवारिजास्वाद्यप्रहृष्टाण्डजनिर्भर- । श्रीशेच्छलज्जलस्युलकणभुक्तातिभूषणम् ॥२७१॥
 दक्षिणानिलमापल^{२३}कोत्कटानलदीपनम् । कोकिलात्किंतालापैर्वाञ्चालमनुकृतयन् ॥२७२॥

विवाहोत्सव मण्डपमें बड़े हर्षके साथ महारानी सुप्रभावी आज्ञासे आई और पूर्व दिशाकी ओर मुलकर मुखपूर्व न सोनेके पाटपर बिठा दिया । तदनन्तर मुखपर रखे हुए शोभायमान पल्लवों को धारण करनेवाले तथा विमुद्ध जलसे भरे हुए सुवर्णमय गुम्ब कलशसे उमका अभिषेक किया । फिर माङ्गलिक वस्त्रामुपणोंको धारण करनेवाली कन्याको नित्यमनोहर नामक चैत्यालयमें ले जाकर वहा उसमें सजका कल्याण करनेवाले श्री अर्हन्तदेवकी पूजा कराई । उसके बाद सिद्ध गोपाक्षत छेकर आशीर्वादपूर्वक उसके शिरपर रखने और इतना सब कर चुकने के बाद वे स्त्रिया उसका आदर सत्कार करती हुई शुभ लग्नकी प्रतीक्षामें उसे धेरकर वहीं ठहर गई ॥२५८-२६४॥ इधर महाराज अनम्पनके सदेशसे, मजावटको जाननेवाले वे सब भूमिगोचरी और विद्याधरोने अधिपति अपने आपको सजाकर अपने अपने योग्य आसनो पर जा बैठे । वे प्रकृष्ट शोभासे उज्ज्वल थे, दुल्ले हुए चमरोकी सपत्ति और कान्तिसे देवोंके समान जान पडते थे और ऐसी शक्ता उत्पन्न कर रहे थे मानो इस कुमारोने पहले ही कामदेवको जीत लिया था इमलिये वह कामदेव ही अपने बहुतसे रूप धारणकर उसे जीतनेके लिये पुन आया हो ॥२६५-२६७॥ यह सुल्लेचना विसी एकको ही स्वीकार करेगी, ऐसा जानकर श्री के मद्र राग लोण अहकार करके हुए उभे बीतनेके लिये बहू धेरे थे श्री रीक ही हू क्योकि मनुष्योकी आज्ञा बहुत ही बडी होनी है ॥२६८॥ जो स्त्रियोके मद्यके बुरगे तथा नूपुरोकी भ्रनसारमे सुगोभित वाये पैरोके द्वारा वृक्षोको भी वामी बना रहा है, जो वाय हायमें फूलोना धनुष धारण कर दूसरे हायमें आमकी भजरीको सूत्र फिरा रहा है, जिमका पराक्रम प्रसिद्ध है और जिसने बमन्त ऋतुम्पी मेववके द्वारा फूटपी समस्त शस्त्र बुला लिये है ऐना कामदेव, केरल देशकी स्त्रियोके बठिन और ऊचे बरोडो कुचोको उत्पन्न करनेमें उत्पन्न हुई धकावटके कारण जिमकी घूमनेकी शक्ति क्षीण हो गई है अर्थात् जो धीरे धीरे चल रहा है मन्थ पर्वतके

१ शुभं अ०, प०, म०, म०, ल०, इ० । २ नित्यमनोहरनाम चैत्यालयम् । ३ -येष ल० ।
 ४ प्रतीक्षा कृत्वा । ५ चैत्यालयम् । ६ वृत्तादर यथा भवति तथा । ७ अनम्पनवाचिनात् । ८ अत्रदृष्टान् ।
 ९ प्रसिद्ध । १० आमानम् । ११ राजनृमारम्पणं बंधुवाल कृत्वा । १२ मद्भरणम् । १३ मृसाधना
 जनुम् । १४ प्रसवणा गदना कर्वाणा । १५ अनिदिष्ट कञ्चिदक पुरपम् । १६ स्वीरारति ।
 १७ अहरारवन् । 'अहरारवान्त्यु' इत्यभिधानात् । १८ निराचिनागलाष्टदा मन्मन्मन्मूर्ति गन्धप ।
 १९ कररन्ती । २० श्रमापानोत्साममर्यात् । २१ सद्रपनाज्जलज्जलस्युलकणभुक्तातिभूषणम् परिशीणपरिष्कमम् ।
 २२ मन्थपर्वतपरिष्कमम् । २३ द्रव्यप्रपणम् । २४ विरहोत्सामिगमूलदानम् ।

योयिता मधुगण्डूषर्णपुरारायरञ्जितं । कुबंन् यामाष्टपिभिश्चालम्^१ श्रष्टपिपानपि वामुवान् ॥२७३॥
 यौसम^२ धनुरादाय^३ यामेनाहृद्विक्रम । धूतसून्^४ करणोच्चं परेण^५ परिवर्तयन्^६ ॥२७४॥
 वसन्तानुचरानीतनि शेषकुसुमायुध । जित्वा तदाखिलान् देशानम्यायात्^७ कुरमायुध ॥२७५॥
 तदा पुरात् समागत्य कृती जितपुरन्वर । समाधिर्भूतसाम्राज्यो राज्यचिह्नपुरस्तर ॥२७६॥
 स्वतन्मनीष्याप्तसर्वांश सुप्रभासहित पति^८ । स्वस्यात्^९ स्वयवरागारे स्वोचिते^{१०} स्वजनैर्दत् ॥२७७॥
 चित्र महेन्द्रदत्ताख्यो^{११} देवदत्त^{१२} रय पृथुम् । सज्जीवित समारोप्य कन्यामायात् कञ्चुकी ॥२७८॥
 समस्तबलसन्दोह सम्यक् सन्नाह्य^{१३} सानुज । हेमाश्रयदो जितानद्रग प्रीत्याश्यात् परितो रथम् ॥२७९॥
 तुर्यध्वानाहतिप्रैङ्गल^{१४} द्विकन्याकर्णपूरिका । सद्यप्रच्छन्ननिदिद्यच्छयाच्छादितभास्वरा ॥२८०॥
 लक्ष्मी पुरोमिवायोध्या चक्रिदिग्विजयागमे । शाला^{१५} प्रविश्य राजयलोचनार्या सुलोचना ॥२८१॥
 सर्वतोभद्रमाहृदय कञ्चुकीप्रेरिता गुपान् । न्यपिच्छल्लोचनेर्नार्तिर्नलोत्पलदर्लरिव ॥२८२॥
 चातका^{१६} वाञ्छवृष्ट्या^{१७} ते तद्दृष्ट्या तुष्टिमागमन् । श्राद्धाव कस्य वा न स्याद् ईप्सितायसमागमे ॥

मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थलोकी खाज खुजलानेसे टूटे हुए चन्दन वृक्षोंके निप्यन्दनी धनी सुगन्धिसे जो व्याप्त हो रहा है, कावेरी नदीके कमलोके आस्वादसे हर्षित हुए प्रक्षियोंकी अलहृद श्रीडासे उछलती हुई जलकी बड़ी बड़ी बूँदें ही जिसके मोतियोंके आभूषण हैं, जो विरहहृषी तीव्र अग्निको प्रज्वलित करनेवाला है और कोयल तथा भ्रमरोंके मनोहर शब्दोंसे जो वाचा लित हो रहा है ऐसे दक्षिणके वायुको अनुकूल करता हुआ सब देशोंको जीतकर उस समय वहाँ आ पहुँचा था ॥२६९-२७५॥ उसी समय, जिसने अपनी शोभासे इन्द्रको भी जीत लिया है, जिसका साम्राज्य प्रकट है, ध्वजा आदि राज्यके चिह्न जिसके आगे आगे चल रहे हैं अपनी शोभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर लीं हैं, सुप्रभा रानी जिसके साथ हैं और जो अपने कुटुम्बीजनोसे घिरा हुआ अर्थात् परिवारके लोग जिसके साथ साथ चल रहे हैं ऐसा पुण्यवान् राजा अकम्पन नगरसे आकर स्वयवर मण्डपमें अपने योग्य स्थानपर आ विराजमान हुआ ॥२७६-२७७॥ उसी समय महेन्द्रदत्त नामका कञ्चुकी चित्राङ्गदेवके द्वारा दिय हुए, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले बहुत बड़े अलकृत रथपर कन्याको बैठाकर लाया ॥२७८॥ कामकी जीतनेवाला हेमाङ्गद अपने छोटे भाइयोंसहित, समस्त सेनाके समूहको अच्छी तरह सजाकर बड़े प्रेमसे कन्याके रथके चारों ओर चल रहा था ॥२७९॥ जिसके आगे आगे बचने वाले नगाडोंके शब्दोंके आघातसे दिशारूपी कन्याओंके कर्णपूर हिल रहे थे, जिसपर अच्छी तरह लगे हुए छत्रकी छिद्ररहित छायासे सूर्य भी ढक गया था, और जो राजाओंके नेत्रोंसे पूजी जा रही थी अर्थात् समस्त राजा लोग जिसे अपने नेत्रोंसे देख रहे थे ऐसी सुलोचनाने, चक्रवर्ती के दिग्विजयसे लौटनेपर जिस प्रकार लक्ष्मी अयोध्यामें प्रवेश करती है उसी प्रकार स्वयवर शालामें प्रवेश किया और वहाँ वह सर्वतोभद्र नामक महलपर चढकर कञ्चुकीके द्वारा प्रतिष्ठो नीलवर्मन्ने दग्ने ममान अपने चञ्चल नेत्रोंके द्वारा राजाओंको सीचने लगी ॥२८०-२८२॥ जिस प्रकार चातक पक्षी मेंढोंके बरगनेसे सनुष्ट होती है उसी प्रकार सब राजा लोग मुग्धोनापे देगनेगे ही मनुष्ट हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि अपने अभीष्ट पदार्थके समागम

१ अत्यर्थम् । २ कुन्मर्तिमितम् । ३ वामहस्तेन । ४ मावदप्रगूनम् । ५ दक्षिणपरग ।
 ६ परिग्रमयन् । ७ वगन्न एवाधुनो भूत्यस्तेन समानीत । ८ आजगाम । ९ अकम्पन । १० मुतेन
 रिपयवा । ११ निजाचितस्थान । १२ आदचर्चयुक्तम् । १३ विचित्राङ्गददेवकेन क्वितीयम् ।
 १४ श्रष्ट दृष्ट्या । १५ शतम् । १६ स्वयवरनालाम् । १७ मिच्छति स्म । अयोध्यादित्यर्थ । १८ एव ।
 १९ गुण ।

स्वसौभाग्यवशात् सर्वान् साध्यालोक्ष्यात्पत्तराम् । श्लाघ्यं तद्योयितां पुंसां शौर्यं वा निजितद्वियाम् ॥
 ततः कञ्चुकिनिर्देशाद् बाला लीलाबिलोक्तिरः^१ । आकृष्य हृदयं तेषां तत्तोषात् समवातरत्^२ ॥२८५॥
 यस्य^३ यत्र गता स्याद्बुक् सा तत्रंवेव कोलित्ता । 'तत्तेज्यामवहृदापां' खिन्ना वा तदनीक्षकाः^४ ॥२८६॥
 किङ्किणीकृतभङ्कारारारवरम्प^५ रवं ततः । व्युडं^६ हृदं^७ हृदयं स्वर्गकर्मचामरशोभिभिः ॥२८७॥
 उत्पत्तिपतलेतुवाहं मोक्षपरुषिणाम्^८ । साक्षादपह्लया ह्वाने^९ वृचन्तनिव सन्ततम् ॥२८८॥
 पुनरध्यास्य^{१०} हृज्जन्म^{११} विद्येव हृदयप्रिया । मुक्ताभूषाप्रभामप्ये शारदीय तडिल्लता ॥२८९॥
 बीज्यमाना विद्युस्पद्भिर्हंसासामलचामरः^{१२} । जनानां दृष्टिदोषान् वा घृन्वाद्भुङ्क्ते मुहुः ॥२९०॥
 श्रवणतः^{१३} पुरानङ्गः सम्प्रति स्वीकृतोऽनया । प्रयोजनवशात् प्राप्तैः प्रास्तोऽपि^{१४} पतिगृह्यते ॥२९१॥
 श्रयाग्रह इवानङ्गः सद्यः सर्वाङ्गसङ्गतः । धिकारमकरोत् स्वैरं भूयो भ्रूनेत्रवचनजम् ॥२९२॥
 साङ्गो^{१५} पद्येत्तथाऽद्यं वम एकीभावं व्रजामि किम् । इत्यनङ्गोऽप्यनङ्गाद्यं त्वं मये^{१६} साध्ववुध्यत ॥२९३॥
 लक्ष्मीः सा सर्वभोग्याऽभूद् रतिव्यंगेन^{१७} भुज्यते । जितानङ्गानिभानेया न्यवहृत्य^{१८} जयमाप्स्यति ॥२९४॥

होनेपर किसे आनन्द नहीं होता है ? ॥२८३॥ वह सुलोचना भी अपने सौभाग्यके वदासे आये हुए ममस्त राजाओंको देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार शत्रुओंको जीतनेवाले पुरुषोंका शूरवीरपना प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार स्त्रियोंका सौभाग्य भी प्रशंसनीय होता है ॥२८४॥ तदनन्तर वह सुलोचना लीलापूर्वक अवलोकनके द्वारा उन राजाओंका हृदय अपनी ओर आकर्षितकर कञ्चुकीके कहनेसे उस महलसे नीचे उतरी ॥२८५॥ जिसकी दृष्टि उसके शरीरपर जहां पड़ गई थी वह मानो वही कीलित सी हो गई थी तथा उसके नीचे उतर आनेपर ये राजा लोग उसे न देखकर बहुत ही खेदविन्न हुए थे ॥२८६॥ तदनन्तर, जो कामदेवकी विद्याके समान सबके हृदयको प्रिय है, जो मोतियोंके आभूषणोंकी कान्तिके बीचमें शरदऋतुकी विजलीकी लताके समान जान पड़ती है और जिसपर मानो मनुष्योंकी दृष्टिके दोषोंको दूरसे ही दूर करते हुए, तथा चन्द्रमाके साथ स्पर्धा करनेवाले और हंसोंके पंखोंके समान निर्मल चमर बार बार डुराये जा रहे हैं ऐसी वह सुलोचना, जो छोटी छोटी घंटियों के हणभुग शब्दोंमें रमणीय है, कानोंके समीप लगे हुए सोनेके चमरोसे शोभायमान बड़े-ऊंचे घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, नीचे ऊपरको उठती हुई ध्वजाएं ही जिसको भुजाएं हैं और जो उन उड़ती हुई ध्वजाओंसे ऐसा जान पड़ता है मानो कुटप मनुष्यका माक्षात् निरन्तर निराकरण ही कर रहा हो और मुरूप (सुन्दर) मनुष्योंको साक्षात् बुला रहा ही हो' ऐसे रथपर सवार हुई ॥२८७-२९०॥ सुलोचनाने कामदेवका पहले तो तिरस्कार किया था परन्तु अब उमे फिर स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष हटायें हुएवाँ भी अपने प्रयोजन के वश फिर स्वीकार कर लेते हैं ॥२९१॥ पिशाचके समान शीघ्र ही इसके सब अंगोंमें प्रविष्ट हुआ कामदेव अगनी इच्छानुमार बार बार भोंह नेत्र और मुगमें उत्पन्न होनेवाले विचारोंको प्रकट कर रहा था ॥२९२॥ यदि मैं शरीर सहित होना तो क्या इम तरह इम सुलोचनाके साथ एकीभावको प्राप्त हो सकना ? अर्थात् इसके शरीरमें प्रवेश कर पाता ? ऐसा विचार कग्ना हुआ कामदेव मानो अपने शरीर रहितपनेको ही अच्छा ममम्ना था ॥२९३॥ वह

१ अवलीनै । २ अवतरन्ति स्म ३ यन्मिन्नवयने । ४ ते तस्या-ल० । तत् कारणात् ।

५ अवनरण वृचन्त्या सत्याम् । ६ सा वन्यकामीशमाणा न वनूवृत्त्यर्थः । ७ घृतम् । ८ प्रमिदः ।

९ रूपहीनाना रूपवनाऽप्य । १० व्रमेण निराकरणं साह्वानं च । ११ एवविषयमप्यध्याम्येति गम्यन्त्यः ।

१२ कामविद्या । १३ मरालपथः । १४ निराहृतः । १५ प्रतिशिष्टः । १६ सशरीरः । १७ गिष्टमिति ।

१८ अगृह्येन विपलाद्यनेति ध्वनिः । १९ निराहृतः । २० विवयम् जयदुमारं च ।

करग्रहेण लक्ष्मीवान् स्यान्न वा वारिधेर्भुवः । 'अस्या करग्रहो यस्य तस्य लक्ष्मी करे स्थिता ॥२६३॥
 लावण्यमम्बुधो वसुः स्त्रीध्वस्यामेव सम्भूतम्' । 'यत्प्राप्ता सरित सर्वास्तमेता' सर्वपायिका ॥२६४॥
 समस्तनेत्रसम्पीतमप्यस्या बर्धतेतराम् । लावण्यमम्बुधिस्यक्त श्रिया बहनु 'तत्वधम् ॥२६५॥
 रत्नाकरत्वदुर्गवंम् अम्बुधि श्रयते वृथा । कन्यारत्नमिद 'यत्र 'तयोरेतद्' विराजते ॥२६६॥

प्रसिद्ध लक्ष्मी सबके द्वारा उपभोग करने योग्य है और रति शरीररहित कामदेवके द्वारा भोगी जाती है परन्तु यह सुलोचना कामदेवको जीतनेवाले इन सभी राजाओका तिरस्कार कर जय अर्थात् विजय अथवा जयकुमारको प्राप्त होगी । भावार्थ—समारमे दो ही प्रसिद्ध स्त्रियां हैं एक लक्ष्मी और दूसरी रति । इनमेंसे लक्ष्मी तो सर्वपुरुषोके द्वारा उपभोग योग्य होनेके कारण पुंश्चलीके समान निन्द्य है और रति शरीररहित पिशाच (पक्षमे कामदेव) के द्वारा उपभोग योग्य होनेसे दूषित है परन्तु यह सुलोचना अपनी शोभासे कामदेवको जीतनेवाले इन सभी राजाओका तिरस्कार कर जय—जीत (पक्षमे जयकुमार) को प्राप्त होगी अर्थात् यह सुलोचना लक्ष्मी और रतिसे भी श्रेष्ठ है ॥२९४॥ समुद्रपर्यन्त इस पृथिवीका करग्रह अर्थात् टंका बसूल करनेसे कोई पुरुष लक्ष्मीवान् हो अथवा नहीं भी हो परन्तु जिसके इस सुलोचनाका करग्रह अर्थात् पाणिग्रहण होगा लक्ष्मी उसके हाथमे ही स्थित समझनी चाहिये ॥२९५॥ पुरपोमें लावण्य (खारापन) समुद्रमें है और स्त्रियोमें लावण्य (सौन्दर्य) इसी सुलोचनामें भरा हुआ है यही कारण है कि सब नदिया समुद्रके पास पहुँची हैं और सब राजा लोग इसके समीप आ पहुँचे हैं । भावार्थ—लावण्य शब्दके दो अर्थ हैं—एक खारापन और दूसरा सौन्दर्य । महा कविने दोनोंमें शाब्दिक अभेद मानकर निरूपण किया है । श्लोकका भाव यह है—लावण्य पुरपोमें भी होता है और स्त्रियोमें भी परन्तु उसके स्थान दोनोंमें नियत है । पुरपका लावण्य समुद्रमें नियत है और स्त्रीका लावण्य सुलोचनामें । पुरुषके लावण्यके प्रति स्त्रियोका आकर्षण रहता है और स्त्रियोके लावण्यके प्रति पुरपका आकर्षण रहता है । यही कारण है कि नदीस्त्री स्त्रिया आकर्षित होकर समुद्रके पास पहुँची हैं और सब राजा लोग (पुरप) सुलोचनाके प्रति आकर्षित होकर उससे समीप आ पहुँचे हैं ॥२९६॥ इसका लावण्य सबके नेत्रोंके द्वारा पिया जानेपर भी बडता ही जाता है परन्तु समुद्रको तो लक्ष्मीने छोड़ दिया है इसलिये वह उसे बँने धारण कर सक्ता है ? भावार्थ—ऊपरके श्लोकमें लावण्यके दो स्थान बतलाये थे—एक समुद्र और दूसरा सुलोचना । परन्तु यहा लावण्य शब्दका केवल सौन्दर्य अर्थ हृदयमें रखकर कवि समुद्रमें उमका अभाव बतला रहे हैं । यहा कवि लावण्य उम पदार्थको बट रहे हैं जिसे तिरस्कार वृद्धि ही होती रहे और जिसे देगकर दर्शन उगे सभी छोड़ना न चाहे । कविना मनोत लावण्य सुलोचनामें ही था क्योंकि उगे देगकर नेत्र सभी उगे छोड़ना नहीं चाहते थे और तिरस्कार उगकी वृद्धि होती रहती थी । समुद्रमें लावण्यका होना त्रिकोण दृष्ट नहीं है क्योंकि उगे लक्ष्मीने छोड़ दिया है यदि उगमें वास्तवमें लावण्य होता तो उगे लक्ष्मी क्यों छोड़ती ? (लक्ष्मीं द्राग समुद्रका छोला जाता कवि सम्प्रदायमें प्रसिद्ध है ।) ॥२९७॥ समुद्र अपने रत्नाकरत्वसे मोटा जह्वाकर व्यर्थ ही धारण करता है क्योंकि जिसे यह कयास्पी रत्न है उगी राजा अज्ञान और गरी मश्रभाके यह रत्नाकरत्वता सुनोभित होता है ॥२९८॥

१ लक्ष्मी । २ सुलोचना । ३ पुरप । ४ पृथिवी । ५ कर-कारण । ६ त समुद्र । ७ लक्ष्मी । ८ लावण्य । ९ यथा । १० अक्षयतनुभयो । ११ लक्ष्मी ।

इति स्तुतात्मसौभाग्यभाग्यरूपादिसम्भूता । जनं स्वयवरागारम् प्रागमद् गोमिती^१ सा ॥२६६॥
 'परिभूतिद्विधा सा^२ भाविनी^३ केति या तदा । प्रीतिशोकान्तरे केचिद् रस राजकमन्वभूत् ॥३००॥
 स्थित्वा महेन्द्रदत्तोऽपि^४ रत्नमालाधरो धुरि^५ । रथ प्रचोदयामास प्रतिविद्यापराधिपान् ॥३०१॥
 दक्षिणोत्तरयो श्रेणोर्नमेद्व विनमे सुतो । पति सुमतिरेपोऽयम् इत् सुविनिमि भिम ॥३०२॥
 श्रम्येऽमी च खगाधीशा विद्याधिवमशालिन । पति वृणीष्व त्व चैपु 'स्त्रेच्छामेकर पूरय ॥३०३॥
 इति कञ्चुकिनिदिष्ट नामादाय पृथक्पृथक् । कर्णकृत्यात्ययात्^६ सर्वान् रुचिदिचित्रा हि देहिताम् ॥३०४॥
 पश्चात् सर्वात्रिरोदर्येषा कञ्चित्तु विवरीयते^७ । तथैवेति खगास्तस्य कि वाशानाचलम्यते ॥३०५॥
 पश्चाज्ज^८ म्लमुखाऽजानि तद्रवाद् व्यक्तस्युर । रवेरिवोदये राता ससृते स्थितिरोदृशी ॥३०६॥
 'उच्चाद्वाद्वाद्गुद्गु^९ क्षिन्मन् अभिभूमि^{१०} चर रथ । कञ्चुकी कथयामास नामनिस्ताप्रपास्तदा ॥३०७॥
 निराकृत्याकंकोर्त्यावीन् साऽजेया जयमागमत् । हित्वा शोपान् द्रुमाश्चूत भयो भयुक्करी यथा ॥३०८॥
 गृहीतप्रप्रहस्तन^{११} कञ्चुकीचित्तवितदा । जयो ध्यापारयामास जयव्यावर्णनं प्रति ॥३०९॥

इस प्रकार लोग जिसकी स्तुति कर रहे हैं ऐसे अपने सौभाग्य, भाग्य और रूप आदिसे भरी हुई वह सुलोचना लक्ष्मीके समान स्वयवर भवतमें आ पहुँची ॥२९९॥ इस ससारमें पराभूति दो प्रकारकी है—एक पराभूति अर्थात् उत्कृष्ट सम्पद और दूसरी पराभूति अर्थात् पराभव-^२ तिरस्कार, सो इन दोनोंमें न जाने कौन सी पराभूति अथवा परा-भूति होनेवाली है ऐसा विचार करता हुआ राजाकोका समूह उस समय प्रेम और शोकके बीच किसी अव्यक्त रमका अनुभव कर रहा था ॥३००॥

रत्नोक्ती मालाको धारण करनेवाला महेन्द्रदत्त नामका कञ्चुकी भी धुरापर बैठकर विद्याधर राजाजोकी ओर रथ चलाने लगा ॥३०१॥ और सुलोचनासे कहने लगा कि ये विजयाधकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीके राजा नमि और विनमिके पुत्र हैं । यह लक्ष्मीका स्वामी सुनिमि है और यह इम ओर सुविनिमि है ॥३०२॥ विद्या और पराक्रमसे शोभायमान ये और भी अनेक विद्याधरोके अधिपति विराजमान हैं इनमेंसे तू किसी एकको बर अर्थात् पतिरूपमें स्वीकार कर और एक हीमें अपनी इच्छा पूर्ण कर ॥३०३॥ इस प्रकार कञ्चुकीने अलग अलग नाम लेकर जो कुछ कहा था उसे कानमें डालकर-सुनकर वह सबको छोड़ती हुई आगे चली सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंकी रुचि अनेक प्रकारकी होती है ॥३०४॥ यह कन्या सबको देखकर वादमें किमीको बरना चाहती है यह विचारकर विद्याधर लोग ज्योके त्यो बैठे रहे सो ठीक ही है क्योंकि आशा विस्रवा आश्रय नहीं लेती है ? ॥३०५॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेमें कमल विकसित हो जाते हैं और अस्त होनेसे मुरझा जाते हैं उसी प्रकार राजाओं के मुखरूपी कमल सुलोचनाके रथ नामने आनेसे पहले तो प्रफुल्लित हुए विन्तु रथके चले जानेपर वादमें मुरझा गये थे सो ठीक ही है क्योंकि ससारकी स्थिति ही ऐसी है ॥३०६॥ तदनन्तर वह रथ विद्याधरोकी ऊँची भूमिमें नीचे भूमिगोचरियोंकी ओर उतरा, उस समय वह कञ्चुकी नाम ले लेकर राजाओंका निरूपण करता जाता था ॥३०७॥ जिस प्रकार वसन्तऋतुमें कोयल सज वक्षोको छोड़कर आमके पाम पहुँचती है उसी प्रकार वह अजेय गुरोचना अर्ककीर्ति आदि राजाओंको छोड़कर जयकुमारके पाम जा पहुँची ॥३०८॥ उसी समय

१ पुण्य । २ लक्ष्मी । ३ अथवा मन्मन्व । पराभूति—न०, म०, ज०, प०, म०, ङ० । ४ अथवागण्डश । ५ भविष्यत् । ६ कञ्चुकी । ७ रथमुने । ८ नित्रवाञ्छाम् । ९ अनिदानवती । १० धरिगुणित्प्रति । ११ मतानायमवत । १० उग्रप्रदेशात् । १३ अगमन् । १४ भूचराणामभिभूयाम् । १५ सुगाध्यायम् ।

प्रदीप स्वकुलस्वाम्य प्रभु सोमप्रभात्मज । श्रीमातृत्साहभेदेर्वा^१ जयोऽयमाजुर्ज्युत ॥३१०॥
 न रूपमस्य ध्यावर्ष्यं तदेतदतिमन्मथम्^२ । स^३ दर्पणोऽर्पणीय किं परकडवणदर्शने ॥३११॥
 जित्वा मेघकुमारारुह्यान् उत्तरे भरते सुरान् । सिंहनाद वृत्तोऽनेन जिततन्मेघनिस्स्थन^४ ॥३१२॥
 वीरपट्ट^५ प्रवध्यास्य स्वभुजाभ्यां समुद्धतम् । न्यधायि निधिनायेन हृष्ट्वा मेघस्वरामिथा ॥३१३॥
 आत्मसम्यग्गुणैर्दुषत समेतश्चाभिगामिर्ब^६ । प्रज्ञोत्साहविशेषंश्च ततोऽयमुदितोदित ॥३१४॥
 चित्र जगत्त्रयस्वाम्य गुणा सरज्य^७ साम्प्रतम्^८ । ध्यावृता^९ सर्वभावेन^{१०} तव भावानुत्सृजने^{११} ॥३१५॥
 अयमेकोऽस्ति दोषोऽयं चतस्र सन्ति योषित । श्री कीर्तिर्वीरलक्ष्मीश्च वाग्देवी चातिवल्लभा ॥३१६॥
 जितमेघकुमारोऽयम् एक प्राक स्वज्योऽधुना । च्युतधैर्यं इवालक्ष्ये^{१२} यत्सहायोऽकृत स्मर ॥३१७॥
 बलिनोर्धुवोर्मध्ये बर्तमानो जिगोपतो^{१३} । द्वैधीभाव^{१४} समापन्न षाड्गुण्यनिपुण स्मर ॥३१८॥
 कीर्ति कुवल्याल्लादी पद्माल्लादीप्रभाऽस्य हि । सूर्याचन्द्रमसो तस्मादनेन हतशक्तौ ॥३१९॥

चित्तकी वातकी जाननेवाला कचुकी घोडोकी रास पकडकर जयकुमारका वर्णन करनेके लिये अपने वचनोको व्यापृत करने लगा अर्थात् जयकुमारके गुणोका वर्णन करने लगा ॥३०९॥ उसने कहा कि यह श्रीमान् स्वामी जयकुमार है, यह अपने कुलका दीपक है, महाराज सोमप्रभ पुत्र है और उत्साहके भेदोके समान अपने छोटे भाइयोसे आवृत है—धिरा हुआ है ॥३१०॥ कामदेवको तिरस्कृत करनेवाला इसका यह रूप तो वर्णन करने योग्य ही नहीं है क्योंकि हाथ का कवण देखनेके लिये क्या दर्पण दिया जाता है ? ॥३११॥ इसने उत्तर भरतक्षेत्रमे मेघ-कुमार नामके देवोको जीतकर उन देवोके कृत्रिम वादलोकी गर्जनाको जीतनेवाला सिंहनाद किया था ॥३१२॥ उस समय निधियोके स्वामी महाराज भरतने हर्षित होकर अपनी भुजाओ द्वारा धारण किया जानेवाला वीरपट्ट इसे बाधा था और मेघस्वर इसका नाम रक्वा था ॥३१३॥ यह आत्माके समीचीन गुणोसे युक्त है तथा आदरणीय उत्तम पुरुषोके साथ सदा सगति रखता है इसलिये बुद्धि और विशेष विशेष उत्साहोके द्वारा यह श्रेष्ठोमें भी श्रेष्ठ गिना जाता है ॥३१४॥ यह भी आश्चर्यकी बात है कि इसके गुण तीनों लोकोको प्रसन्नकर अब तेरे अन्त वरणको अनुरक्त करनेके लिये पूर्ण रूपसे लौटे है । भावार्थ—इसने अपने गुणोसे तीनों लोकोके जीवोको प्रसन्न किया है और अब तुझे भी प्रसन्न करना चाहतें है ॥३१५॥ यदि इसमें दोष है तो यही एक, कि इसके निम्नलिखित चार स्त्रिया हैं, श्री, कीर्ति, वीरलक्ष्मी और सरस्वती । ये चारो ही स्त्रिया इसे अत्यन्त प्रिय है ॥३१६॥ जिसने पहले अकेले ही मेघपुमारको जीत लिया था ऐमा यह जयकुमार इस समय तुझे जीतनेके लिये धैर्यरहित सा हो रहा है अर्थात् ऐमा जान पडता है मानो इसका धैर्य छट रहा हो यही कारण है अब इसने कामदेवको अपना सहायक बनाया है ॥३१७॥ एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनो वरवानोके बीचमें पडा हुआ यह सधि विग्रह आदि छहो गुणोमें निपुण कामदेव द्वैधी-भावको प्राप्त हो रहा है अर्थात् अभी उसका आश्रय लेता है और अभी तेरा ॥३१८॥ इसकी कीर्ति-तो मुख्य अर्थात् रात्रिमें मिलनेवाले कमलोको (पक्षमें महीमण्डलोको) आनन्दित करती है और प्रभा पक्ष अर्थात् दिनमें मित्रनेवाले कमलोको (पक्षमें पचा-लक्ष्मीको) विवसित

१ मन्त्रिनिर्णय । २ दुःखमानम् । ३ अतित्रान्तमगमयम् । ४ प्रसिद्ध । ५ त्रिजितमेघपुमार-पत्तपरि । ६ प्रयुध्वाय म० । ७ अभिगमाहं । आदरणीयैस्त्वयं । ८ सन वारणात् । ९ आरग्यनुत्कवा विधाय । १० अफुगा । ११ स्यात्तरमधुर्वन् । १२ मयत्तरवरूपेण । १३ चित्सात्सृजने । भाव सत्ता स्वभावाभिप्रायभावव्यथात्मजमगु इत्यभिधानात् । १४ दर्शनीय । १५ यन् वारणात् । १६ परत्पर श्रेष्ठिभ्याम् । १७ उभवावपववावम् ।

कीर्तिवह्निद्वारा लक्ष्मीरतिवृद्धा सरस्वती । जीर्णैरपि शान्तेव^१ तस्थते क्षतविष्टिः^२ ॥३२०॥
 ततस्त्वपि वयोदृग्शीलादियुगभाङ्गलम् । प्रीतिलंतेव दृक्पुष्पा प्रवृद्धास्य फलिप्यति ॥३२१॥
 युवाभ्या निर्जितः काम सन्प्रत्यभ्यन्तरीकृत । स^३ वामपत्रयायामुदरिविप्रश्मिन्तो^४ऽप्यरिः ॥३२२॥
 निष्ठुर जन्मतेऽमुष्मिन्^५ नयारिरपि स्मर । मत्वेव त्वा स्त्रिय भूयो नटेपु मटमत्तरः ॥३२३॥
 विरपातविजय श्रीमान् धानमात्रेण^६ निर्जित । त्वयाऽयमत एवात्र जयो न्यायागतस्तव ॥३२४॥
 प्राग्बह्वृत्^७ गले रत्नमालया दृग्गर्जरितम् । जयलक्ष्मीस्तवैवास्तु तत्त्वमेन^८ करे वृष्ट ॥३२५॥
 इति तस्य यव. श्रुत्वा स्मरत्याङ्गुष्यवेदिन । शर्नविगलितत्रांशोल्लोकीतावलोकन ॥३२६॥
 तदा जन्मान्तरत्नेहृदवाक्षुषी^९ मुन्दराकृति । कुन्दमाता^{१०} गुणास्तस्य श्रावणा^{११} पुष्पतापरः ॥३२७॥

वरनी है इसलिये इसने मूर्ख और चन्द्रमा दोनोंको शनिररहित कर दिया है ॥३१९॥ समस्त शत्रुओंको नष्ट करनेवाके इस जयकुमारकी कीर्ति तो सदा बाहर रहती है लक्ष्मी अत्यन्त वृद्ध है, सरस्वती जीर्ण है और वीर लक्ष्मी शान्त मी दिखती है इसलिये दृष्टिम्पी पुष्पोसे युवन और सूत्र बड़ी हुई इसकी प्रीतिस्त्री लता वय, रूप, नील आदि गुणोसे सहित तुम्हमें ही अच्छी तरह फलीभूत होगी । भावार्थ—३१६ वें श्लोकमें बतलाया था कि इसके चार प्रिय स्त्रियां हैं कीर्ति, लक्ष्मी, सरस्वती और वीरलक्ष्मी परन्तु उनमें तुम्हें सपत्नीजन्य दुःखका अनुभव नहीं करना पड़ेगा । क्योंकि कीर्ति नामकी स्त्री तो सदा बाहर ही धूमती रहती है—अन्त पुरमें उमका प्रवेश नहीं हो पाता (पक्षमें उमकी कीर्ति यमस्त ममारमें फँसी हुई है), लक्ष्मी अत्यन्त वृद्ध है—वृद्धावस्था युक्त है (पक्षमें बड़ी हुई है), सरस्वती भी जीर्ण अर्थात् वृद्धावस्थाके कारण विथिल शरीर हो रही है (पक्षमें परिपक्व है) इसलिये इन तीनोंपर उसका खाम प्रेम नहीं रहता । अत्र रह जाती है वीरलक्ष्मी, यद्यपि वह तर्ण है और सदा उमके पास रहती है परन्तु अत्यन्त शान्त है—गुञ्जार आदिकी ओर उमका आकर्षण नहीं है (पक्षमें क्षमायुक्त शर वीरता है) इसलिये इन चारोंसे राजाकी प्रीति दृष्टकर तुम्हपर ही आढ होगी क्योंकि तू वय, रूप, नील आदि गुणोसे महित है ॥३२०—३२१॥ तुम दोनोंने पहले जिम वामदेवको जीनकर दूर हटाया था उमें अब अपने अन्त करणमें बैठा लिया है, अथवा काम विद्वामपात्र बना लिया है परन्तु अत्र वही कामदेव तुम दोनोंका पगजय करनेके लिये तैयार हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुका वितना ही विजयाम बयो न किया जाय वह अन्तमें शत्रु ही रहता है ॥३२२॥ यद्यपि वह वामदेव तुम दोनोंका शत्रु है तथापि तुम्हें स्त्री मानकर इसी एकपर बड़ी निष्ठुरताके साथ अपना प्रभाव बढा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि योद्धाओंकी ईर्ष्या योद्धाओंपर ही होती है । भावार्थ—वह तुम्हें स्त्री समझ कायर मानकर अधिक दुःखी नहीं करता है परन्तु जयकुमार पर अपना पूरा प्रभाव डाल रहा है ॥३२३॥ जिमका विजय सर्वत्र प्रसिद्ध है ऐमें श्रीमान् जयकुमारको तूने धान अर्थात् आगमन (पक्षमें युद्धके लिये किये हुए प्रस्थान) मानने द्वारा जीत लिया है इसलिये इस जगह न्यायमें तेरी ही विजय हुई है ॥३२४॥ तू अपने दृष्टिम्पी वाणोके द्वारा जीने हुए इस जयकुमारको रत्नोकी मालामें गठमें बांधकर अपने हाथमें कर, विजयलक्ष्मी तेरी ही हो ॥३२५॥ इन प्रकार वामदेवने मन्वि विप्रह आदि छह गुणोंको जाननेवाके चञ्चुकीने वचन सुनकर धीरे धीरे जिमकी लज्जा छूटती जा रही है, जिमकी लीलापूर्ण दृष्टि बड़ी चञ्चल है तथा उम गमय जन्मान्तरका म्नेह नेत्रोंके द्वारा देती

१ वीरलक्ष्मी । २ जयकुमारस्य । ३ वा मययो । वामपत्रया—त० । ४ विरगामि । ५ जये । ६ गमनमागमन । ७ वपदृष्टुतमानुरूप कृता, वदृष्ट्यर्थं । ८ नत् ताग्गात् । ९ वज्रा । १० वगुषा वृष्यमाणा । ११ कुन्दवद् भागमाना । १२ श्वत्मानरिपया । श्वत्किंवा वा ।

इत्येभिः स्यन्दनादेया 'सामुक्षिप्यायरोपिता । रत्नमालां रामादाय कन्या कञ्चुकिनः कर्णात् ॥३२८॥
 श्रवणाद् बन्धुरां तस्य कण्ठेऽतिप्रेमगनिर्गता । सा पाषाणत् समध्यास्य यशोत्तमोरियापरा ॥३२९॥
 राहता सर्वतूयाणाग् उदतिष्ठन्महाध्वनिः । श्राययन्निव विषण्ण्याः कन्यासामान्यमुत्तवन् ॥३३०॥
 यत्रवारिजवातिन्या' नरविद्यापरेदिनाम् । श्रिया जयपुराणभोजम् ध्यापितं वा तदायभात् ॥३३१॥
 गतात्ता'चारयो म्लानमुत्साञ्जाक्षयस्फलश्रियः । लभूषरनुपाः कष्टमास्तन् गुण्यसररत्तमाः ॥३३२॥

ध्रभिमतफलसिद्धया पडमानप्रमोदो निजदुहि'तुसमेतं प्राप् पुरोधाया' पूज्यम् ।
 जयमगरतथं धा' कल्पयत्तोसनायं' नगरमन्दिशदुर्चर्त्ताययंतापिनायः ॥३३३॥
 ध्राद्योऽयं' महिते स्ययंवरविधौ 'यद्वभोग्यसोभाग्यभाग'
 'यस्माद्वाजरागेन्द्रवषत्रयनजश्रीशारयोपिद्वृतः ।

मालाम्लानगुणा 'यतोऽयम्' 'शरणे मन्दारमालायते

'तत्कल्पावधिर्वा' ध्रमस्य' विपुलं विश्वं' यशो व्यदनुते' ॥३३४॥

भास्वत्प्रभासरणप्रतिबुद्धपयः' प्राप्तोदयः प्रतिविषाया' परप्रभावम्' ।

'बन्धुप्रजाकुमुदबन्धुरचिन्त्यकान्तिर्भाति स्म भानुशशिनोविजयो जयोऽयम् ॥३३५॥

हुई जयकुमारकी सुन्दर आकृति, कुन्दके फूलके समान सुने हुए उसके गुण और कामदेव इन सवने उठाकर जिसे रखसे नीचे उतारा है ऐसी कन्या सुलोचनाने कंचुकीके हाथसे रत्न-माला लेकर तथा अतिशय प्रेममें निमग्न होकर, वह मनोहरमाला उस जयकुमारके गलेमें डाल दी । उस समय वह माला जयकुमारके वक्ष स्थलपर अधिरूढ़ हो दूसरी लक्ष्मीके समान सुगो-मित हो रही थी ॥३२६-३२९॥ उस समय अकस्मात् सब बाजोंकी वडी भारी आवाज ऐसी उठी थी मानो दिशारूपी कन्याओके लिये सुलोचनाका असाधारण उत्सव ही सुना रही हो ॥३३०॥ उस समय जयकुमारका मुखरूपी कमल बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था और ऐसा जान पडता था मानो भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओके मुखरूपी कमलोपर निवास करनेवाली लक्ष्मी उसी एकके मुखपर आ गई हो ॥३३१॥ जिनका आशारूपी जल नष्ट हो गया है और जिनके मुखरूपी कमल तथा नेत्ररूपी उत्पलोंकी शोभा म्लान हो गई है ऐसे भूमिगोचरी और विद्याधर राजा सूखे सरोवरके समान बडे ही दुखी हो रहे थे ॥३३२॥ अभीष्ट फलकी सिद्धि होनेसे जिसका आनन्द बढ रहा है ऐसा उत्कृष्ट नाथवशका अधिपति राजा अकंपन, कल्पलतासे महित कल्पवृक्षके समान पुत्रीसे युक्त पूज्य जयकुमारको आपेकर अपने उत्कृष्ट नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥३३३॥ चूँकि भाग्य और सौभाग्यको प्राप्त होनेवाला यह जयकुमार स्वयंवरकी सम्माननीय विधिमें सबसे पहला था, भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंके मुखकमलोंकी शोभारूपी वाराङ्गनाओंसे घिरा हुआ था और अम्लान गुणोवाली माला उसकी शरणमें आकर कल्पवृक्षकी मालाके समान आचरण करने लगी थी, अतएव उसका बहुत बडा निर्मल यश कल्पान्तकाल तक समस्त ससारमें व्याप्त रहेगा ॥३३४॥ जिसकी देदीप्यमान प्रभाके प्रसारसे कमल खिल उठते थे, दूसरो (शत्रुओ अथवा नक्षत्र आदिको) के प्रभावना तिरस्कार कर जिसका उदय हुआ था और जो भाईबन्धु तथा प्रजारपी कुमुदोकी

१ ममुद्धत्य । २ मुखकमलनिवासिन्या । ३ गतास्यवारण ट० । विगतमुखरणा । ४ पुत्री ।

५ अथे श्रुत्वा । ६ इव । ७ सहितम् । ८ आद्येऽय ६०, ५०, ४०, ३० । ९ यत् वारणात् । भाग्य
 पुण्य । १० यस्मान् वारणात् । ११ यस्मात् वारणात् । १२ जयस्य । १३ परित्राणे, गृहे । १४ तस्मात्
 वारणात् । १५ यत्पय्यन्ताम् । १६ निर्मलम् । १७ जगत् । १८ व्याप्नोति । १९ प्रमुद्धलक्ष्मी ।
 विरगिनवमल । २० निरादृत्य । २१ शत्रुनामय्यम् । नक्षत्रादिगाम्यर्थे च । २२ बन्धवस्य प्रजाश्च
 बन्धुप्रजा, बन्धुप्रजा एक कुमुदावि तेषां बन्धुवन्द्यः ।

प्रियबुहितरमेना^१ नायबशाम्बरेन्दो-श्रमुमुपनयति स्म^२ स्पष्टसौभाग्यलक्ष्मी ।
 'ज्वलितमहसमया वीरलक्ष्मीं च कीर्ति कथयति नयतीति 'प्रतिभञ्जानमुच्चं ॥३३६॥
 एतत्पुण्यमय स्वरूपमहिमा सौभाग्यलक्ष्मीरिय जातोर्ग्रहिन^३ जनक^४ स योऽस्य अनिका^५ संवास्य या सुप्रजा^६ ।
 पुण्योऽय जगदेकमद्भ्यल^७ मणिचूडामणि श्रीभूतामित्युक्तिजयभाग्जय प्रति जनेर्जातोत्सर्वजलिपता ॥३३७॥
 कृवलयपरिवेष सद्यथान समतात सततविततदोषि सुप्रतिष्ठ^८ प्रसन्न ।
 परिणतिनिजशोयैणाकंमाप्रम्य दिक्षु प्रथितपुयलकीर्त्या बद्धंमानो जय स्तात्^९ ॥३३८॥
 इति समुपगता श्री सवकल्याणभाज जिनपतिभतभाक्त्वालुप्युभभाज जय तम ।
 तद्वृष्टतमुपाज्व हे बुधा श्रद्धमाना परमजिनपदान्गद्वन्द्वमद्वद्वयत्या ॥३३९॥

* इत्यार्षे भगवद्गुणभद्रान्नायंप्रणीते त्रिपटिलक्षणश्रीमहापुराणसदग्रहे सुलोचना
 स्वयवरभानारोपणकल्याणक नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्वं ।

प्रफुल्लित करनेके लिये बन्धुके समान था और जिसकी कान्ति अचिन्त्य थी ऐसा सूर्य और चन्द्रमाको जीतनेवाला वह जयकुमार अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥३३५॥ जिसकी सौभाग्यरूपी लक्ष्मी स्पष्ट प्रकट हो रही है ऐसे उस जयकुमारने नायबगरूपी आकाशके चन्द्रमा स्वरूप राजा अकपनकी प्रिय पुत्री सुलोचनाको विवाहा था सो ठीक ही है क्योंकि प्रतिभागाली मनुष्योका उत्कृष्ट ज्ञान यही कहता है कि देदीप्यमान प्रतापके धारक पुरुषको ही अनोखी वीर-लक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है ॥३३६॥ उस समय जिन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा है एमे लोगो के द्वारा, जयकुमारके प्रति उमकी विजयको स्थित करनेवाली निम्नप्रकार बातचीत हो रही थी कि इस ससारमें यही पुण्य है, यही उत्तम रूपकी महिमा है, यही सौभाग्यकी लक्ष्मी है, जिसके यह उत्पन्न हुआ है वही पिता है जिसने इसे उत्पन्न किया है वही उत्तम सत्तानवती माता है यही लक्ष्मीवान् पुरुषोंमें चूडामणि स्वरूप है और समारका कल्याण करनेवाले रत्नके समान यही एक पूज्य है ॥३३७॥ जो चारो ओरसे बुकलय अर्थात् पृथ्वीमण्डल (पक्षमें रात्रि विवासी कमलो) को प्रसन्न अथवा प्रफुल्लित करता रहता है जिसकी कान्ति सदा कंठी रहती है, जिसकी प्रतिष्ठा उत्तम है और जो सदा प्रसन्न रहता है ऐसा यह (चन्द्रमाका मादृश्य धारण करनेवाला) जयकुमार अपने परिपक्व प्रतापसे सर्वपर भी आक्रमण कर दिशाओंमें फैली हुई बड़ी भारी कीर्तिसे सदा बढता रहे ॥३३८॥

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के मतकी उपासना करनेसे बहुत भारी पुण्यका उपाजन करनेवाले और सब प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त होनेवाले जयकुमारको लक्ष्मी प्राप्त हुई थी इसलिये हे श्रद्धावन्त विद्वान् पुरुषो, तुम लोग भी निराबुद्ध होकर परम दयालु सर्वोत्कृष्ट जिनेन्द्रदेवके दोनो चरणकमलोंकी उपासना करो ॥३३९॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्रान्नायंप्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराण सदग्रहे
 हिन्दी भाषानुवादमें सुलोचनाके स्वयवरका वर्णन करने
 वाला यह तैत्तिरीयवा पर्व पूर्ण हुआ ।

१ पुत्रोम् । २ अयमुत्-त०, ६०, ८०, ९०, १०० । ३ जयकुमारम । ४ प्रतिभंज प्रतिभ
 लक्ष्मण तद् ज्ञान च । प्रतिपुत्रसमृद्धिप्रतिभानानमित्य । ५ मान । ६ माना । ७ सुपुत्रकरी ।
 ८ मद्भ्यगतदपण । ९ मुस्यैवान् । १० भूयात् ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ दुर्मयणो नाम दुष्टस्तस्यासहिष्णुकः । सर्वानुद्दीपयन्^१ पापी सोऽर्ककीर्त्यनुजीवकः ॥१॥
 अकम्पनः खलः क्षुद्रो वृथैश्वर्यमदोद्धतः । मृया युष्मान् समाहूय श्लाघमानः स्वसम्पदम् ॥२॥
 पूर्वमेव समालोच्य मालाभासज्जयज्यये । पराभूति^२ विधित्सुयः स्थायिनीमायुगान्तरम् ॥३॥
 इति भ्रुवाणः सम्प्राप्य सवीडं चक्रिणः सुतम् । इह पद्लखण्डरत्नानां स्वामिनौ त्वं पिता च ते ॥४॥
 रत्नं रत्नेषु कथं च तत्राप्येवैव^३ कथ्यका । तं त्वां स्वगृहमातीय बोधेषां^४ पश्यास्य दुर्मतेः ॥५॥
 जयो नामात्र कस्तस्मिं दत्तवान् मृत्युघोदितः । तेनागतोऽस्मि दौर्घ्यं च्यं तदेतत् सोढुमक्षमः ॥६॥
 'प्राकृतोऽपि न सोढव्यः प्राकृतेरपि' किं पुनः । त्वाद्दशैः स्त्रीसमुद्भूतो मानभङ्गो मनस्विभिः ॥७॥
 'तदादिदा'^५ 'दिशाम्यत्सं पदं वैवस्वतास्पदम्'^६ । दिशाम्पादेशमात्रेण^७ समालां तेऽपि कथ्यकाम् ॥८॥
 इत्यसाम्बु^८ क्षुधं भर्तुः स्ववाचैवासुजत् खलः । सदसत्कार्यनिर्वृत्तो^९ शक्तिः सदसतोः^{१०} समा ॥९॥
 तद्वचःपवन^{११} प्रोढक्रीचधूमध्वजावणः^{१२} । अमद्विलोचनाद्दगारः^{१३} क्रुद्धाग्निस्सुरसप्रिभः ॥१०॥

अथानन्तर-दुर्मयण नामका एक दुष्ट पुरुष राजकुमार अर्ककीर्तिका सेवक था वह जयकुमारके उस वैभवको नहीं सहन कर सका इसलिये उस पापीने सब राजाओको इस प्रकार उत्तेजित किया । वह कहने लगा कि अकम्पन दुष्ट है, नीच है, झूठमूठके ऐश्वर्यके मदसे उद्वत हो रहा है, अपनी सम्पदाओंकी प्रशंसा करते हुए उसने व्यर्थ ही आप लोगको बुलाया है । वह तुम लोगोंका दूसरे युगतक स्थिर रहनेवाला अपमान करना चाहता है इसीलिये उसने पहलेसे सोच विचारकर जयकुमारके गलेमें माला डलवाई है, इस प्रकार कहता हुआ वह दुर्मयण लज्जित हुए चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिके पास आया और कहने लगा कि इन छोटे सण्डोंमें उत्पन्न हुए रत्नोके दो ही स्वामी है एक तू और दूसरा तेरा पिता ॥१-४॥ रत्नोमें कन्या ही रत्न है और कन्याओमें भी यह सुलोचना ही उत्तम रत्न है इसलिये ही अकम्पनने तुम्हें अपने घर बुलाकर तेरा तिरस्कार किया है, जरा इस दुष्टकी दुष्टताको तो देखो ॥५॥ भला, जयकुमार है कौन ? जिसके लिये मृत्युसे प्रेरित हुए अकम्पनने अपनी पुत्री दी है । मैं यह दुराचार गृह करनेमें लिये असमर्थ हूँ इसलिये ही आपके पास आया हूँ ॥६॥ जब कि नीच लोग भी छोटे छोटे मानभङ्गको नहीं सहन कर पाते है तब भला आप जैसे तेजस्वी पुरुष स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मानभंग कैसे सहन कर सकेंगे ? ॥७॥ इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये मैं आपकी आज्ञा-मात्रमें ही इस अकम्पनको यमराजका स्थान दे सकता हूँ और माला सहित वह कन्या आपके लिये दे गवता हूँ ॥८॥ इस प्रकार उस दुष्टने अपने वचनोंसे ही अपने स्वामीको दुष्ट प्रोष उत्पन्न करा दिया मो ठीक ही है क्योंकि अच्छा और बुरा कार्य करनेके लिये सज्जन तथा दुर्जनों परी एक-ही शक्ति रहती है ॥९॥ उस दुर्मयणके वचनरूपी वायुसे चढ़ी हुई प्रोषरूपी अग्निसे

१ समग्रमात्र । २ बोधामि प्रवलयन् । ३ परिभूतिम् । ४ कन्यारत्नेष्वपि । ५ तस्यै
 य०, प०, ग०, इ०, ल०, म० । ६ दुष्टत्वम् । ७ तेन कारणेन । ८ प्रकृते भवः पराभकोऽपि ।
 अथवा गृह्यधर्मपरि । ९ नीचैरपि । मत्पान्धवप्रबर्त्तित्वयम् । १० तत् कारणत् । ११ आदेशं देहि ।
 १२ दशभिः । १३ यमपुरम् । 'बायो दष्टधरः धाउदेवो वैवस्वतोऽन्त' इत्यभिधानात् । १४ निरूपण-
 मात्रेण । १५ अनुगाम् । १६ निपत्तो । १७ अग्रजदुर्जनयो । १८ प्रवृत् । 'प्रवृत् प्रोढमेधितमित्य-
 भिधानात् । १९ शक्तिः । २० कृपितानिभृपाग्गदुष । कृपा-स०, म० ।

उज्ज्वारः^१ उद्वलन्स्युसविस्फुलिङ्गोपमा गिरः । अर्कंकीर्तिद्वयोभ्योयान् विषयगुरिव^२ वाचया ॥११॥
 मामधिसिष्य^३ कन्धेय येन दत्ता दुरात्मना । तेन प्राणैव मूढेन दत्त स्वस्मं जलाञ्जलि ॥१२॥
 अतिश्राते^४ रये तस्मिन् प्रीह्यत श्रोत्रपावकः । तद्वै किन्नु को दाहघ इत्यनाग्रह स्थित ॥१३॥
 नाम्नानिमन्त्रितो मूढो मन्वते स्वप्नकम्पनम् । ऋद्धे मयि न वेत्तीति कम्पने सधरा घटा ॥१४॥
 मज्जद्भववारिचारानि^५ रास्ता तावदगोचरः । सहस्रत्यखिलान् शत्रून् बलवेनेय^६ हृत्या ॥१५॥
 प्ररड्गन्धनायेन्दुबुद्धाविमुत्पाटवी । मश्रोषप्रस्तुरड्गह्निनस्मिताजस्मिन्^७ रोदयति ॥१६॥
 धोरपट्टस्तदा सोढो भुयो^८ नर्तुनेवात्मया । क्यमद्य सहे माला सवसोभाप्यतोपिनीम् ॥१७॥
 मद्यत्^९ बभूवाम्मानमालेवास्त्वायुषावधि । जयलक्ष्म्या सहार्चिता^{१०} हरेय^{११} जयवसम् ॥१८॥
 जलदानं पेलवान्^{१२} नित्या मन्मत्रप्रविशायिन^{१३} । अद्य पश्यामि दुष्टस्य जयस्य जयमाहवे ॥१९॥
 इति^{१४} निमिप्रमर्षाद वाप्यावापिर्मुद्गपी । अनिवायो विनिजिय वातातजजधिष्वनिम् ॥२०॥
 अनलस्यानिरो वाजस्य^{१५} साहाय्यमगमस्तदा । केजिप पापक्रियारम्भे गूलना सामबाधिरा^{१६} ॥२१॥

जो लाट लाळ हो रहा है, जिमके नेत्रन्पी अगारे घूम रहे हैं, ओर श्रोत्रसे जो अग्निपुमार देवों के समान जान पटना है ऐसा वह अर्कंकीर्ति अपने बचनोमें ही ममम्न शत्रुओंको जगानेकी इच्छा करना हुआ ही मानो जग्ने हुए बड़े बड़े फुल्लिगोके समान बचन उगाग्ने लगा ॥१०-११॥ वह बोला जिम दुष्टने मेरा अपमान कर यह कन्या दी है उन मूर्खने अपने गिये पट्टे ही जगजति दे रही है ॥१२॥ उन समय कन्यावा रय आगे निकग्ने ही मेरी श्रोत्रन्पी अग्नि नदक उठी थी परन्तु जग्ने योग्य कौन है ? यह नहीं जानता हुआ मैं चुप बैठ गया था ॥१३॥ केवल नामने उगाया हुआ वह मूर्ख अपने आपसे अवम्पन मानता है परन्तु वह यह नहीं जानता कि मेरे कुपित होनेपर परतों सहित पृथिवी भी कँपने लगती है ॥१४॥ मेरी तन्त्रागन्पी जलकी धाराका विषय तो दूर ही रहे मेरी नेत्रान्पी लहर ही ममस्त शत्रुओंको अनायाम ही नष्ट कर देती है ॥१५॥ अरुण बड़े और मूर्खे हुए नायकन तथा चन्द्रवगन्पी दुष्ट वामोकी बड़ी भारी अटनी मेरे श्रोत्रन्पी प्रज्वलित अग्निमें, भस्म हो जायगी और फिर इन ममारमें कमी नहीं जा मकेगी ॥१६॥ उन समय पृथिवीके अधिपति चन्द्रवर्ती महागजने जयपुमार को जो धीगपट्ट बाधा था उसे तो मैंने उनके डरमें सह गिया था परन्तु आज अपने मन मोभाग्यको नष्ट करनेवागी इस बरमागको कँसे सह सकता हूँ ? ॥१७॥ मेरे वान्पी दूतरी अज्ञान माग ही इस युगने अन्ततव विद्यमान रहे । इस मागको तो मैं जयशमीने गाय माय जयपुमारके धस म्यलमें आज ही हरण किये लेता हूँ ॥१८॥ केवल शत्रुमागने विगीन हो जानेवागे कोमठ मेघोंको जीतकर अहवागको प्राप्त हुए जयपुमारकी जीत आज मैं युद्धमें देखूंगा ॥१९॥ इस प्रकार जिमने मर्यादा तोड दी है, पाप अनायके करनेमें जिमकी बुद्धि विचाररहित हो रही है और जो विनीमें निवारण नहीं किया जा सकता ऐसे अर्कंकीर्तिने उन समय अपने धात्रोमें प्रत्यक्त्वाके समुद्रकी गर्जनको भी जीत गिया था और निम प्रकार अग्नि को भट्टरानेके गिये चायु महायव होना है उसी प्रकार उसका श्रोत्र नदकानेके लिये कितने

१ उज्ज्वार । २ इष्यन्ति । ३ निरुत्तरः । ४ मानुसदम्पत्ये । ५ अन्वयः । ६ अरुणः । ७ अग्निः । ८ अग्निः । ९ अग्निः । १० अग्निः । ११ अग्निः । १२ अग्निः । १३ अग्निः । १४ अग्निः । १५ अग्निः । १६ अग्निः । १७ अग्निः । १८ अग्निः । १९ अग्निः । २० अग्निः । २१ अग्निः । २२ अग्निः । २३ इति उज्ज्वारनि गम्यः । २४ अग्निः । २५ अग्निः । २६ अग्निः । २७ अग्निः । २८ अग्निः । २९ अग्निः । ३० अग्निः । ३१ अग्निः । ३२ अग्निः । ३३ अग्निः । ३४ अग्निः । ३५ अग्निः । ३६ अग्निः । ३७ अग्निः । ३८ अग्निः । ३९ अग्निः । ४० अग्निः । ४१ अग्निः । ४२ अग्निः । ४३ अग्निः । ४४ अग्निः । ४५ अग्निः । ४६ अग्निः । ४७ अग्निः । ४८ अग्निः । ४९ अग्निः । ५० अग्निः । ५१ अग्निः । ५२ अग्निः । ५३ अग्निः । ५४ अग्निः । ५५ अग्निः । ५६ अग्निः । ५७ अग्निः । ५८ अग्निः । ५९ अग्निः । ६० अग्निः । ६१ अग्निः । ६२ अग्निः । ६३ अग्निः । ६४ अग्निः । ६५ अग्निः । ६६ अग्निः । ६७ अग्निः । ६८ अग्निः । ६९ अग्निः । ७० अग्निः । ७१ अग्निः । ७२ अग्निः । ७३ अग्निः । ७४ अग्निः । ७५ अग्निः । ७६ अग्निः । ७७ अग्निः । ७८ अग्निः । ७९ अग्निः । ८० अग्निः । ८१ अग्निः । ८२ अग्निः । ८३ अग्निः । ८४ अग्निः । ८५ अग्निः । ८६ अग्निः । ८७ अग्निः । ८८ अग्निः । ८९ अग्निः । ९० अग्निः । ९१ अग्निः । ९२ अग्निः । ९३ अग्निः । ९४ अग्निः । ९५ अग्निः । ९६ अग्निः । ९७ अग्निः । ९८ अग्निः । ९९ अग्निः । १०० अग्निः ।

तदा सर्वोपयासुद्धो^१ मन्त्री जानपदादिभिः^२ । धनवद्यमतिर्नाम सक्षितो भन्नित्रलक्षार्थः ॥२२॥
 धर्म्यमर्थं यशस्सारं ससौष्ठवमनिष्टरम् । सविचार्यं वचो न्याय्यं पथ्यं प्रोक्तुं प्रचेष्टमे ॥२३॥
 मही श्योम शशी सूर्यः सरिदीशोऽग्निर्लोज्ज्वलः । त्वं त्वस्थिता घनाः क्षालो जगक्षेमविपायिनः^३ ॥२४॥
 विपर्यसि विपयति^४ भवतामनुवर्तनात् । यतंते सृष्टिरेषा^५ हि ध्यवतं युष्मासु^६ तिष्ठते ॥२५॥
 गुणाः क्षमादयः^७ सर्वे व्यस्तास्तेषु क्षमादियु^८ । समस्तास्ते जगद्द्रव्यं^९ क्षत्रिणि त्वयि च स्थिताः ॥२६॥
 च्यवन्ते^{१०} स्वस्थितेः काले क्वचित्तेऽपि क्षमादयः । न स कालोऽस्ति यः कर्ता प्रच्युतेषु वयो^{११} स्थिते ॥२७॥
 सृष्टिः पितामहेनेय^{१२} सृष्टं ना^{१३} तत्सर्मापिताम्^{१४} । पाति सम्प्राट्^{१५} पिता तेऽद्य^{१६} तस्यास्त्यमनुपालकः ॥२८॥
 देवमानुषबाधाभ्यः क्षतिः कस्यापि^{१७} धा क्षितो । ममवेयमिति स्मृत्वा समाधेया^{१८} त्वयं व सा^{१९} ॥२९॥
 क्षतात् प्रायत इत्यासीत् क्षतोऽप्य भरतेश्वरः । सुतस्तस्योरतो^{२०} ज्येष्ठेः क्षत्रियस्त्व^{२१} तदादिमः ॥३०॥
 त्वसो न्यायाः प्रवर्तन्ते नूतना यो पुरातनाः । तैर्गपि त्वत्पलिता एव भवन्त्यत्र पुरातनाः ॥३१॥

ही राजा लोग उसके सहायक हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि पापत्रियाओके प्रारम्भमें सहायता देनेवाले सुलभ होते हैं ॥२०-२१॥ उस समय जो सब उपधाओसे शुद्ध है तथा जनपद आदि मन्त्रियोंके लक्षणोसे सहित है ऐसा निर्दोषबुद्धिका धारक अनवद्यमति नामका मन्त्री अच्छी तरह विचारकर धर्मयुक्त, अर्थपूर्ण, यशके सारभूत, उत्तम, कठोरता रहित, न्यायरूप और हितकारी वचन कहने लगा ॥२२-२३॥ उसने कहा कि पृथिवी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र, वायु, अग्नि, तू, तेरा पिता, मेघ और काल ये सब पदार्थ ससारमें कल्याण करनेवाले हैं ॥२४॥ आप लोगोमें उलटपुलट होनेसे यह ससारकी सृष्टि उलटपुलट हो जाती है और आपके अनुकूल रहनेसे अच्छी तरह विद्यमान रहती है इससे स्पष्ट है कि यह सृष्टि आप लोगो पर ही अवलम्बित है ॥२५॥ क्षमा आदि गुण अलग अलग तो पृथिवी आदिमें भी रहते हैं परन्तु इकट्ठे होकर ससारका कल्याण करनेके लिये चक्रवर्तीमें और तुझमें ही रहते हैं ॥२६॥ पृथिवी आदि पदार्थ किसी समय अपनी मर्यादासे च्युत भी हो जाते हैं परन्तु ऐसा कोई समय नहीं है जो तुम दोनोको अपनी मर्यादासे च्युत कर सके ॥२७॥ तुम्हारे पितामह भगवान् वृषभदेवने इस कर्मभूमिरूपी सृष्टिकी रचना की थी, उनके द्वारा सौंपी हुई इस पृथिवीका पालन इस समय तुम्हारे पिता भरत महाराज कर रहे हैं और उनके वाद इसका पालन करनेवाले तुम ही हो ॥२८॥ इस पृथिवीमें यदि किसीकी भी देव या मनुष्यकृत उपद्रवोसे कुछ हानि होती हो तो 'यह मेरी' ही है ऐसा समझकर आपको ही उसका समाधान करना चाहिये ॥२९॥ जो क्षत अर्थात् संवत्से रक्षा करे उसे क्षत्र कहते हैं, भरतेश्वर सबकी रक्षा करते हैं इसलिये वे क्षत्र हैं और तुम उनके सबसे बड़े औरस पुत्र हो इसलिये तुम सबसे पहले क्षत्रिय हो ॥३०॥ इस संसारमें नवीन न्याय तुमसे ही प्रवृत्त होते हैं और जो पुरातन अर्थात् प्राचीन है वे तुम्हारे द्वारा पालित होकर ही पुरातन कहलाते हैं । भावार्थ—आपसे नवीन न्याय मार्गकी प्रवृत्ति

१ धर्मार्थवामभयेषु व्याजेन परचित्तपरीक्षणमुपधा तथा शुद्ध । 'उपधा धर्मार्थवत्परीक्षणम्' इत्यभिधानात् । २ जनपदभवन्पुत्रुजनादिभि । ३ लीवस्य क्षेमकारिण । ४ विपर्यसमेति । ५ जगत्सृष्टि । ६ युष्मासु महीप्रभृतिषु प्रकाशते । ७ दान्त्यवगाहृतसहातमन्तापहरणप्रकाशानादिगुणा । ८ विवता । एकैर्नस्मिन्नेवं कदा एवेत्यर्थ । ९ पृथिव्यावासादियु । १० जगद्बुद्धी ५०, ५०, ५० । ११ प्रच्युता भवन्ति । १२ भरताईवीर्या । १३ पितृपित्रा आदिब्रह्मणा । 'पितामह पितृपिता' इत्यभिधानात् । १४ सृष्टा सां ४०, ५० । सृष्टयंता ६०, ५०, ५० । १५ आदिब्रह्मणा विस्तीर्णाम् । १६ घनी । १७ सृष्टे । १८ निवर्तनीया । १९ क्षति । २० उरति भव । सासात्सुतः न दत्तपुत्र । २१ क्षत्राजनात् ।

सनत्तनोर्गन्तु मार्गोऽपि श्रुतिस्मृतिषु भाषित । विवाहविधिर्नदेपु वरिष्ठो हि स्वयंवर ॥३२॥
 यदि स्यात् सर्वसन्प्राप्त्या कर्त्रेण पुण्यभाजनम् । प्रविरोधो 'व्यपाम्यत्र देवायतो विधिबुधे' ॥३३॥
 मध्ये महाब्रह्मोनेपु 'कश्चिद्वेदमनीषिनम् । सत्यनीकमलशुनिक गुणित गुणदुर्गतम्' ॥३४॥
 विस्मय रूपाय भाषितेषु पीतेऽपि विधेर्वशात् । न तत्र मत्सरः कार्यं शोषेन्यायोऽप्यगोदृग् ॥३५॥
 सद्ध्यते यदि केनापि न्यायो रक्षयस्त्वयैव स । नेद तदोचित क्वापि पाता स्यान्पारिपान्तिक ॥३६॥
 भवत्कुलाचलस्योनी नायसोमान्वयो पुरा । मेरोनियधनोनी वा सत्यसौ' पुरया वृता ॥३७॥
 सकलक्षत्रियस्येष्ट पूज्योऽय राजराजवन् । अकम्पनमहाराजो राजैव' ज्योतिषा गर्भ ॥३८॥
 निर्विशेष' पुरोरेण भन्वते भरतेदवर' । पूज्यातिलद्रव्येन प्राहृण्य' त्रताभावाहन् ॥३९॥
 पश्य तादृग् एवात्र सोमदशोर्गपि कल्पते । धर्मतीर्थं भवद्दशाद् दानतीर्थं 'ततो यत्' ॥४०॥
 पुरस्मरणभाश्रेण इवाध्य चक्र विद्या विनो' । प्रापो दुस्नायमसिद्धो दशायने 'पथमेव स' ॥४१॥
 'एतस्य दिग्जये सर्वदोषमेवेह पीश्यम् । अनेन 'व ह्य' प्रेष' स्मर्तव्यो ननु स त्वया ॥४२॥
 शाल्वा 'साम्नाभ्यशोषोऽपि स साम्यो नन्' निमंड । दृष्टसार' स्वभाष्येऽप्ये साधिनार्य' किमुच्यते ॥४३॥

चलनी है और पुराने न्यायमार्गकी रक्षा होनी है ॥३१॥ विवाहविधिके मत्र नेदोमें यह स्वयंवर ही श्रेष्ठ है । श्रुतियों और स्मृतियोंमें कहा गया यह स्वयंवर ही मनातन (प्राचीन) मार्ग है ॥३२॥ यदि पुण्यके पात्र स्वरूप किसी एक कन्याकी याचना मत्र मनुष्य करने लग जाय तो उस समय परम्पराका विरोध दूर करनेके लिये विद्वानोंने केवल भाग्यके आश्रीन होनेवाले इस स्वयंवर विधिना विधान किया है ॥३३॥ वडे वडे कुशोमें उत्पन्न हुए पुराणोंके भाष्यमें वह कन्या भाग्यवश अपनी इच्छानुसार किसी एकको स्वीकार करती है चाहे वह लक्ष्मीमहित हो या लक्ष्मीरहित, गुणवान् हो या निर्गुण, मूर्ख हो या कुरूप । अन्य लोगोंको इनमें ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि यह ऐसा ही न्याय है ॥३४-३५॥ यदि किसीके द्वारा इन न्याय का उल्लंघन किया जाय तो तुम्हें ही इसकी रक्षा करनी चाहिये इसलिये यह मत्र तुम्हारे लिये उचित नहीं है । क्या कभी रक्षक भी चोर या दानु होता है ॥३६॥ जिन प्रकार निपथ और तील कुलाचल मेरुपर्वतके उत्तम पत्र है उसी प्रकार भगवान् आदिनाथने पहले नायक और चन्द्रवश दोनों ही आपने कुशुपी पर्वतके उत्तम पत्र अर्थात् महायक बनाये थे ॥३७॥ जिन प्रकार चन्द्रमा सम्मन् ज्योतिषी देवोके समूहके द्वारा पूज्य है उसी प्रकार सन्मन् अग्निगोमें वडे महाराज अकपन भी भग्न चक्रवर्तीके समान मत्रके द्वारा पूज्य है ॥३८॥ महाराज भग्न इन अकपनको भगवान् कृपमदेवके समान ही मानते हैं इसलिये तुम्हें भी इनके प्रति नम्रता का व्यवहार करना चाहिये क्योंकि पूज्य पुराणोंका उल्लंघन करना दोनों लोकोंमें अकम्पाण करनेवाला कहा गया है ॥३९॥ और देखो यह सोमवश भी नायकके समान ही कहा जाता है । क्योंकि जिन प्रकार तुम्हारे वधमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हुई है उसी प्रकार सोमवशमें दान-तीर्थकी प्रवृत्ति हुई है ॥४०॥ चक्रवर्तीका चक्ररत्न आगे आगे चरने मात्रमें प्रथमनीय अद्वैत है परन्तु कठिनाईमें सिद्ध होने योग्य कार्योंमें वे प्रायः जयकुमार की ही प्रथमा करते हैं ॥४१॥ दिग्विजयने समय इसका पुराणार्थ मत्सरमें मन्त्रने देना था । उस समय इनने जो पराक्रम दिग्गया था वह भी तुम्हें याद रखना चाहिये ॥४२॥ जिन योद्धाओं भूगवीरपनेकी मनावना हो गजाओ

१ अतिरिक्त वर । २ ह्यत् । ३-देव मनीषिनम् ज०, म०, अ०, प०, इ०, म० । ४-सन्-
 दित्म् । ५ रक्षक । ६ महायवी । मन्मन्नी च । ७ पवित्रम् । ८ चन्द्र इव । ९ मनातनम् ।
 १० इन्द्रामुत्र च । ११ मानवगत । १२ यत् कारणात् । १३ पवित्रम् । १४ वरी । १५ जयम् ।
 १६ म० स० । १७ ब्रह्मनिपात । १८ भाषिणीने इत्यर्थे ।

विना धनं विना रत्नैर्भोग्येयं शीतस्त्वया तवा । जयात् माणुषी सिद्धिर्देवी पुण्योदयाद्यया ॥४८॥
 तृणकल्पोऽपि सयाह्यस्तव नीतिरियं वयम् । नापेन्नुवनायुष्मद्देवी लक्ष्म्या साक्षाद्भुजायिनी ॥४९॥
 यद्युभृत्यशयाद्भुजस्तुभ्यं धन्यपि कृप्यति । धर्ममन्त्राद्युमात्पाद्यौ त्वया स्यात् सम्प्रवर्तितम् ॥५०॥
 परदारभिलाषस्तव प्राथम्यं मा धृया वृथा । ध्ययमाहृताप्येया न वन्या ते भवित्यति ॥५१॥
 सप्रताप यश स्यास्तु जयस्य स्यादहर्षया । तव रात्रिरिवाशीति स्यादिग्न्यत्र मलीमता ॥५२॥
 सर्वमेतन्मर्षयेति मा भवेत्या सापन युध * । बह्वोऽप्यत्र भूपाता सन्ति तत्पक्षपातिन ॥५३॥
 पुरुषार्थंयय पुम्भिर्दुःप्राप तत्त्वयार्जजितम् । न्यायमार्गं समुल्लस्य धृया तत्त्वि विनाशये ॥५४॥
 अकम्पनस्य सेनेशो जय प्राग्विच चक्रिण । वीरलक्ष्यास्तुलारोह मुथा स्य वि विषयास्यति ॥५५॥
 ननु भ्यायेन वन्द्योस्ते वन्द्युपुत्री समर्पिता । उत्सवे वा पराभूतिरक्षमाऽत्र परानव ॥५६॥
 कन्यारत्नानि स त्वेव बह्वयन्यानि भूभुजाम् । इह तानि सरत्नानि सर्वान्यघ्नानि यामि ते ॥५७॥
 इति नीतिलतावृद्धिविषयाप्यपि यच पय । ॥५८॥ तच्चेतस शोभ तत्तैतस्य वा भूशम् ॥५९॥

को जानकर उसका भी सम्मान करना चाहिये फिर भला जिसका परानव देखा जा चुका है और जिसने अत्यन्त असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर दिया है उसकी तो बात ही क्या है ? ॥४९॥ आगे चलकर जिस समय विना चक्र और विना रत्नोके यह लक्ष्मी तुम्हारे उपभोग करने योग्य होगी उस समय तुम्हारी देवी सिद्धि जिस प्रकार पुण्य कर्मके उदयसे होगी उसी प्रकार तुम्हारी मानुषी अर्थात् मनुष्योसे होनेवाली सिद्धि जयकुमारसे ही होगी ॥४९॥ जब कि तृणके समान तुच्छ पुरुषकी भी रक्षा करनी चाहिये यह आपकी नीति है तब राज्य लक्ष्मीके साक्षात् भुजाओ के समान आचरण करनेवाले नाथ वश और सोम वश उच्छेद करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥४५॥ इन भाइयोके समान सेवकोका नाश करनेसे चक्रवर्ती भी तुमपर अधिक क्रोध करेंगे और युगके अन्ततक टिकनेवाला यह अधर्म भी तुम्हारे द्वारा चलाया हुआ समझा जायगा ॥४६॥ तुम्हें व्यर्थ ही परस्त्रीकी अभिलाषाका प्रारम्भ नहीं करना चाहिये क्योंकि यह निश्चय है, यह कन्या जबरदस्ती हरी जाकर भी तुम्हारी नहीं होगी ॥४७॥ जयकुमारका प्रताप सहित यश दिनके समान सदा विद्यमान रहेगा और तुम्हारी मलिन अकीर्ति रात्रिके समान सदा विद्यमान रहेगी ॥४८॥ ये सब राजा लोग युद्धमें मेरी सहायता करेंगे ऐसा मत समझिये क्योंकि इनमें भी बहुतसे राजा लोग उनके पक्षपाती हैं ॥४९॥ जो धर्म अर्थ और कामरूप तीन पुरुषार्थ पुरुषोको अत्यन्त दुर्लभ है वे तुम्हे प्राप्त हो गये हैं इसलिये अब न्याय मार्गका उल्लंघन कर उन्हें व्यर्थ ही क्यों नष्ट कर रहे हो ॥५०॥ यह जयकुमार जिस प्रकार पहले चक्रवर्तीका सेनापति बना था उसी प्रकार अब अकम्पनका सेनापति बना है तुम व्यर्थ ही वीरलक्ष्मीको तुलापर आरूढ क्यों कर रहे हो । भावार्थ—वीरलक्ष्मीको सशयमें क्यों डाल रहे हो ॥५१॥ निश्चय से तैरे एक भाईकी पुत्री तैरे दूसरे भाईके लिये न्यायपूर्वक समर्पण की गई है, ऐसे उत्सवमें तुम्हारा क्या तिरस्कार हुआ ? हा तुम्हारी असहनशीलता ही तिरस्कार हो सकती है ? भावार्थ—हितकारी होनेमें जिस प्रकार जयकुमार तुम्हारा भाई है उसी प्रकार अकपन भी तुम्हारा भाई है । एक भाईकी पुत्री दूसरे भाईके लिये न्यायपूर्वक दी गई है इसमें तुम्हारा क्या अपमान हुआ ? हा, यदि तुम इस बातको सहन नहीं कर सकते हो तो यह तुम्हारा अपमान हो सकता है ॥५२॥ मुञ्जोचनाके सिवाय राजाओके और भी तो बहुतसे वन्यारत्न हैं, रत्नान्वार महिन उन सभी वन्याओको मैं आज तुम्हारे लिये यहाँ ला देता हूँ ॥५३॥ इस प्रकार

१ तव । २ पुण्यपुत्रता । ३ रत्नशोभ । ४ सम्प्रवर्तित श०, ल०, अ० प०, इ० ५ प्रपमत्वम् ।
 ६ मा वार्थ । ७ युद्धस्य । ८ तव । ९ अग्रहमानता । १० प्रापयामि । ११ व्यापात् ल० ।

सर्वमेतत् समाकर्ष्य बुद्धिं कर्मानुसारिणीम् । स्पष्टयन्निव दुर्बुद्धिरिति प्रत्याह भारतीम् ॥१५॥
 अस्ति स्वयवर कन्या परिणीतो^१ चिरन्तन । पितामहकृतो मान्यो वयोज्येष्ठस्त्वकम्पन ॥१६॥
 विन्तु सोऽयं जयन्नेहात्तस्योत्कर्षं चित्रीयुक् । स्वसत्तायाश्च सौभाग्यप्रतीतिप्रविधित्सुक ॥१७॥
 सर्वभूपालसद्वोहसमाधिर्भावितोदयात्^२ । स्वयं चश्रीयितुं^३ चैव व्ययत् कपटं शठं ॥१८॥
 प्राक्समायितमन्त्रेण प्रदायात्सं स्वचेतसा । कृतसकेतया भाला सुतयाऽऽरोपिता मृया ॥१९॥
 युगादौ कुलवृद्धेन^४ मायेय संप्रवर्तिता । भयाद्य यद्युपे^५क्ष्येत कल्पान्ते नैव वार्यते ॥२०॥
 न चक्रिणोऽपि कोषाय स्यादन्यायनिषेधनम् । प्रवर्तयत्यसौ दण्डं मध्यम्यायावर्तति ॥२१॥
 जयोऽप्येवं समुत्ति^६कतस्तत्पट्टेन^७ च भालया । प्रतिस्व लक्षपरन्वो^८ मा करोत्या^९रम्भकम्पुरा ॥२२॥
^{१०}समनन्समच्छिद्य सर्वद्विषमम् युधि । अनुरागं जनिष्यामि राजन्याना मयि स्थिरम् ॥२३॥
 द्विधा भवन् वा मा वा बल ते न किमाशङ्गा^{११} । माला प्रत्यानयिष्यन्ति जयवक्तो विभिद्य मे ॥२४॥
 नाहं तु लोचनाप्यस्मि मत्सरो^{१२} मन्वरेरपम्^{१३} । परासुरपुनैव स्यात् किं मे विषयया त्वया ॥२५॥

अनवद्यमति मन्त्रीका वचनरूपी जल यद्यपि नीतिरूपी लताको वदनेवाला था तथापि उसने तपे हुए तेलके समान अर्ककीतिके चित्तको और भी अधिक क्षोभित कर दिया था ॥५४॥ यह सब सुनकर 'बुद्धि कर्मके अनुसार ही होती है,' इम बातको स्पष्ट करता हुआ वह दुर्बुद्धि इस प्रकार वचन कहने लगा ॥५५॥ मैं मानता हूँ कि विवाहकी विधियोंमें स्वयवर ही पुरातन मार्ग है और यह भी स्वीकार करता हूँ कि हमारे पितामह भगवान् वृषभदेवके द्वारा स्थापित होने तथा वयमें ज्येष्ठ होनेके कारण अकम्पन महाराज मेरे मान्य हैं परन्तु वह जयकुमारपर स्नेह होनेसे उसीका उत्कर्ष करना चाहता है और सबपर अपनी पुत्रीके सौभाग्यकी प्रतीति करना चाहता है । समस्त राजाओके समूहके द्वारा प्रकट हुए वदप्यनसे अपने आपको चक्रवर्ती बनानेसे लिये ही उस मूर्खने यह कपट किया है ॥५६-५८॥ 'यह कन्या जयकुमारको ही देनी है' ऐसी सलाह अवपन पहले ही कर चुका था और उमी सलाहके अनुसार अपने हृदयमें जयकुमारके लिये कन्या दे भी चुका था परन्तु यह सब छिपानेके लिये जिसे पहले ही सकेत किया गया है ऐसी पुत्रीके द्वारा उसने यह माला झूठमूठ ही डलवाई है ॥५९॥ युगके आदि में उच्चकुलीन अकम्पनके द्वारा की हुई इस मायाकी यदि आज मैं उपेक्षा कर दूँ तो फिर कल्पकालके अन्ततक भी इसका निवारण नहीं हो सकेगा ॥६०॥ अन्यायका निराकरण करना चक्रवर्तीके भी शोधके लिये नहीं हो सकता क्योंकि जब मैं अन्यायमें प्रवृत्ति कर बैठना हूँ तब वे मुझे भी तो दण्ड देते हैं । भावार्थ-चक्रवर्ती अन्यायको पसन्द नहीं करते हैं और मैं भी अन्यायका ही निराकरण कर रहा हूँ इसलिये वे मेरे इस कार्यपर शोध नहीं करेंगे ॥६१॥ यह जयकुमार भी पहले वीरपट्ट वाधनेसे और अब मालाके पड जानेसे बहुत ही अभिमानी हो रहा है । यह छिद्र पाकर पहले ही मेरे लिये कुछ न कुछ आरम्भ करता ही रहता है ॥६२॥ यह सबका समुह है इसलिये युद्धमें इमे आमूलचूर्ण नष्टकर सब राजाओका स्थिर प्रेम अपनेमें ही उत्पन्न करूंगा ॥६३॥ सेना फूटकर दो भागोंमें विभक्त हो जाय अथवा न भी हो, उँगमें मुझे क्या ? मेरे वाण ही जयकुमारका वध स्थल भेदनकर बरमालाको ले आवेंगे । ॥६४॥ मैं सुशोचनाको भी नहीं चाहता क्योंकि सबसे ईर्ष्या करनेवाला यह जयकुमार मेरे वाणोंमें अभी

१ विवाहे । २ अन्वुदय प्राप्यमाश्रिय । ३ क्षत्रीवाचरितुम् ॥ ४ मायायी । ५ दत्ता । ६ अवगमेन । ७ -गणत सं० । ८ -प्यन सं० । ९ मयि । १० वीरपट्टेन । ११ प्राणावमर । १२ व्यापारम् । १३ वातगमनम् । १४ गराः । १५ मन्त्रवान् । १६ मम वार्यं । १७ मन्त्राणु । 'परासुरात्पन्वत्वपरतत्रेतसस्त्रियता ।' इत्यभिधानात् ।

दुराचारनिषेधेन त्रय धर्मादि धर्षते । कारणे सति कार्यस्य किं हानिर्बुध्यते क्वचित् ॥६६॥
 ध्ययो मे विक्रमस्यास्ता' शरस्याप्यत्र न ध्यय । यधे प्रत्युत धर्मं स्याद् दुष्टस्याह' कृतो भवेत् ॥६७॥
 कीर्तिविरुद्धात्कीर्तौ नार्ककीर्तेर्विनश्यति' । अर्ककीर्तिरनिवार्या स्याद् अन्यायस्यानिषेधनात् ॥६८॥
 तस्य' मेऽप्यशस कीर्तेर्भवंदुर्मिर्षदुदाहृतम्' । भवेत्तत्सत्यसवादि' शीतकोऽस्म्यत्र यद्यहम् ॥६९॥
 य धमाध्व ततस्तूष्णीम् 'उष्णकोऽह्मिद प्रति । पश्वंमध्वं यदास्य च मा निषेधि' हितैरिभि ॥७०॥
 एव मन्त्रिणमूल्लङ्घय कृषीर्वा दुर्ग्रहाहित' । सेनापतिं समाहूय प्रत्यासन्नप्रभाम् ॥७१॥
 कथयित्वा महोशाना सर्वेषा रणनिश्चयम् । भेरीमास्फालयामास जगत्प्रथमप्रदाम् ॥७२॥
 अनुभेरीरय सद्य प्रत्यावासा' महोभुजाम् । नटबभटभुजास्फोटव'टुलाराव'निष्टुर ॥७३॥
 करिकण्ठस्फोटोद्धोषयष्टादङ्कारभैरव । जितकण्ठोरवारावहयहेपाविभीषण ॥७४॥
 चलद्वरिहृत्तौवधट्टकठोरध्वाननिर्भर । पदातिपट्वति'प्रोद्यद्भूरिभूरिवभीवह' ॥७५॥
 'स्पन्दत्स्यन्दनचक्रोत्पपृच्छौत्कारभीकर । धनु सज्जीक्रियासक्तगुणास्फालनकर्षण ॥७६॥
 प्रतिध्वनितदिग्भित्तिस्सर्वान्कभयानक । बलकोलाहल कालमिवाह्वातु समुद्यत ॥७७॥

ही मर जावेगा तव उस विधवासे मुझे क्या प्रयोजन रह जावेगा ॥६५॥ दुराचारका निषेध करनेसे धर्म आदि तीनों बढ़ते हैं, क्योंकि कारणके रहते हुए क्या कहीं कार्यकी हानि देखी जाती है ? ॥६६॥ इस काममें मेरे पराक्रमका नाश होना तो दूर रहा मेरा एक वाण भी खर्च नहीं होगा बल्कि दुष्टके मारनेमें धर्म ही होगा, पाप कहासे होगा ? ॥६७॥ ऐसा करनेसे प्रसिद्ध कीर्तिवाले मुझ अर्ककीर्तिकी कीर्ति भी नष्ट नहीं होगी परन्तु हा, यदि इस अन्यायकी निषेध नहीं करता हूँ तो किसीसे निवारण न करने योग्य मेरी अपकीर्ति अवश्य होगी ॥६८॥ तुमने जो मेरी अपकीर्ति और उसकी कीर्ति होनेका उदाहरण किया है सो यदि मैं इस विषयमें ठंडा हो जाऊ तो यह आपका निरूपण सत्य हो सकता है ॥६९॥ इसलिये तुम लोग चुप बैठो मैं इस कार्यमें उष्ण हूँ—क्रोधसे उत्तेजित हूँ । हित चाहनेवालोको धर्म, अर्थ तथा यश बढ़ाने वाले कार्यका कभी निषेध नहीं करना चाहिये ॥७०॥ इस प्रकार जिसका पराभव निकट है और जो खोटे हठसे युक्त है ऐसे दुर्बुद्धि अर्ककीर्तिने मनीका उल्लंघन कर सेनापतिको बुलाया और सब राजाओसे युद्धका निश्चय कहकर तीनों लोकोको भय उत्पन्न करनेवाली भेरी बजवाई ॥७१-७२॥ जो राजाओके प्रत्येक डेरेमें भेरीके शब्दोंके साथ ही साथ बहुत शीघ्र नाचते हुए योद्धाओंकी भुजाओकी ताडनासे उत्पन्न होनेवाले चंचल शब्दोंसे कठोर है, जो हाथियोंके गल्लोंमें स्पष्ट रूपसे जोर जोरका शब्द करनेवाले घटाओकी टकारसे भयकर है, जो सिंहोंकी गर्जनाको जीतनेवाले घोडोंकी हिनहिनाहटसे भीषण है जो चलते हुए घोडोंके घुरोंके सघटन से उठनेवाले कठोर शब्दोंसे भरा हुआ है, जो पंदल सेनाके पैरोंकी चौटसे उत्पन्न हुए पृथिवीके बहुत भारी शब्दोंमें भयकर है, जो चलते हुए रथोंके पहियोंसे उत्पन्न होनेवाले बहुत भारी चीत्कार शब्दोंमें भय पैदा करनेवाला है, जो धनुष तैयार करनेके लिये लगाई हुई डोरीके आस्फालन से कठोर है, जिसने दिसास्फी दीवालोको प्रतिध्वनितसे युक्त कर दिया है और जो सब प्रकारके नगाडोंमें भयानक हो रहा है ऐसा बहुत भारी सेनाका कोलाहल उठा सो ऐसा जान पड़ता

१ आम्नां नावदित्यध्याहार । २ पाप । ३ विनागमेप्यति । ४ जयस्य । ५ यदुदाहरणम् । ६ सत्येन अविपरीतप्रतिपत्तिरम् । मत्परा एववादापत या । ७ मद । ८ पटु । 'दत्ते तु चतुरस्रेणपटव' मुन्वान अध्यागद्व' शक्यभिधानाम् । ९ न निषिध्यत स्म । १० स्वीकृत । ११ गिबिर मनि गिबिर प्रति । १२ नवगियना । १३ ध्वनि । १४ पादहति । १५ भूमिध्वनिना भयकरवट । १६ कस्य ।

शिक्षिताः बलिनः शूराः शूराह्वदाः सकेतयः । गजाः समन्तात् सनाहृषाः^१ प्राक्चेतुरचलोपमाः ॥७८॥
 तुरङ्गमास्तरङ्गमाभाः सद्यःप्राभाब्धेःसवर्भकाः^२ ।^३अनुदन्ति नदन्ती^४स्यान्^५ विक्रामन्तः^६ समन्ततः ॥७९॥
 सचक्रं^७ पेंहि संयोग्य सधुरं^८ प्राज वाजिनः । इति^९ सम्भ्रमिणोऽप्यन्तु^{१०} रयास्तदनु सध्वजाः ॥८०॥
 चण्डाः कोदण्डकुन्तासिप्रासचक्रादिभीकराः । यान्ति स्मानुरथं क्रुद्धा रुद्धदिवकाः पदातयः ॥८१॥
 गर्ज गजस्तदोद्भव्य बाहो^{११} बाहं रथं रथः । पदातयश्च पादान्तं सम्भ्रमामिष्यप्युर्धुं^{१२} ॥८२॥
 शारुद्धानेकपानेकभूनालपरिस्वारितः । भेरीनिष्ठुरनिर्घोषभीषिताशेषदिग्द्वयः ॥८३॥
 चक्रध्वजं सनुत्याप्य सम्भ्रगाविष्कृतोन्नतिः । गर्जं विजयधोवाख्यम् श्राघह्याद्रिवरोत्तमम् ॥८४॥
 श्ररुकोतित्रिंभिर्भास्वदहं^{१३}मुद्यतभटाद्भूतः । ज्योतिः कृत्वाचलैर्वाकंद्यचालाभ्यचलाधिपम्^{१४} ॥८५॥
 किंबदन्ती^{१५} विदित्वैता भूपो भूत्वा कुलाकुलः^{१६} । स्वालोचितं^{१७} च कर्तव्यं^{१८} विधिना धियतेऽप्यया ॥८६॥
 इति त्वसत्सिधेः सायंम् श्रालोच्य च जयादिभिः । प्रत्यर्ककोर्त्वीया^{१९}विभद्^{२०} ब्रूत संप्राप्य तत्त्वम् ॥८७॥
 कुमार तव किं युक्तम् एव सीमातिलध्वनम् । प्रसीद प्रलयो^{२१} दूरं तन्मा कार्योमुपागमम् ॥८८॥

या मानो कालको बुलानेके लिये ही उठा हो ॥७३-७७॥ उस समय जो शिक्षित है, बलवान् है, शूरवीर है, जिनपर योद्धा बंधे हुए है, पताकाए फहरा रही है, जो सब तरहसे तैयार है और पर्वतोंके समान ऊंचे है ऐसे हाथी सब ओरसे आगे आगे चल रहे थे ॥७८॥ जो सशामरूपी समुद्रकी लहरोंके समान है, कवच पहने हुए है, हींस रहे है और कूद रहे है ऐसे घोडे उन हाथियों के पीछे पीछे चारो ओर जा रहे थे ॥७९॥ पहिये जल्दी लगाओ, धुराको ठीककर जल्दी लगाओ, इस प्रकार कुछ जल्दी करनेवाले, तथा जिनमें शीघ्रगामी घोडे जुते हुए है और ध्वजाएँ फहरा रही है ऐसे रथ उन घोडोंके पीछे पीछे जा रहे थे ॥८०॥ उन रथोंके पीछे धनुष, भाला, तलवार, प्रास और चक्र आदि दारुनोंसे भयकर, फैलकर सब दिशाओंको रोकनेवाले, क्रोधी और बलवान् पैदल सेनाके लोग जा रहे थे ॥८१॥ उस समय हाथी हाथीको, घोडा घोडाको, रथ रथको और पैदल पैदलको धक्का देकर युद्धके लिये जल्दी जल्दी जा रहे थे ॥८२॥ तदनन्तर—हाथियोपर चढे हुए अनेक राजाओंसे घिरा हुआ, नगाडोंके बठोर शब्दोंसे समस्त दिग्गजोंको भयभीत करनेवाला, चक्रके चिह्नवाली ध्वजाको ऊंचा उठाकर अपनी ऊंचाईको अच्छी तरह प्रकट करनेवाला और चमकीली तलवार हाथमें लिये हुए योद्धाओंसे आवृत्त अर्क-क्रीडि, मेरु पर्वतके समान उन्नत विजयध्वजेप नासक हाथीपर सवार हो अचलाधिप (अचल अधिप) अर्थात् पृथ्वीके अधिपति राजा अकपनकी ओर इस प्रकार चला मानो ज्योतिर्मण्डल और कुलाचलके साथ साथ सूर्य ही अचलाधिप (अचल अधिप) अर्थात् सुमेरुकी ओर चला ही ॥८३-८५॥ महाराज अकपन यह बात जानकर बहुत ही व्याकुल हुए और सोचने लगे कि अच्छी तरह विचारकर किया हुआ कार्य भी देवके द्वारा उल्टा कर दिया जाता है । इस प्रकार उन्होंने अपने मंत्री तथा जयकुमार आदिके साथ विचारकर अर्थनीतिके प्रति शीघ्र ही एक शीघ्रगामी दूत भेजा ॥८६-८७॥ दूतने जाकर कहा कि हे कुमार, क्या तुहें इस प्रकार सीमावा उल्लघन करना उचित है ? प्रलयवाल अभी दूर है इसलिये प्रमत्त हूजिये

१ सनद्धा वृत्ता । २ तनुवमहिना । ३ दन्तिना पत्त्वान् । ४ ध्वनन्त । ५ अगच्छन् । ६ लडपन पुर्वन्त । ७ चण्डो सह त्रिदिव्द पेंहि धारय । ८ धुरा सह त्रिदिव्द पेंहि । ९ प्रेरय । १० आनुप्रपावने प्रयुक्ता । त्वरावन्तः । ११ अगच्छन् । १२ अत्र । 'बाहोऽवस्तुरगो वागी ह्यो धुर्यस्तुरङ्गमः' इति धनन्त्रय । १३ सग्रामनिमित्तम् । १४ उद्युताग्निम् । १५ अवम्पन महागज प्रति । मेरु च । १६ जनवान्ताम् । १७ अधिनाचन । १८ मुष्ट्यानीचिनम् । १९ वायम् । २० अर्चनीति प्रति । २१ प्राहिणोत् । २२ प्रलय पृथ्व्यालान्ने भवनीयागमम् । मृषा मा वृत् ।

इति सामादिभिः 'स्वोक्तैरशान्तमवगम्य तम् । प्ररथेत्य तत्तया सवम् ध्राश्यवाजी'गमनूपम् ॥८६॥
 'काशिराजस्तदाकण्ठं विपादक्षलितानयः । महामोहाहितो' वाऽऽतोद् दुष्कार्ये' षो न गृह्यति ॥८७॥
 'अत्र चिन्त्यं न यः किञ्चिन्न्यायस्तेनेव' सद्धितः । 'तिष्ठतेहैव' संरथ्यसुमित्युक्ताः' सुलोचनाम् ॥८८॥
 इदानीमेव दुर्बुत्तं शृङ्खलालिङ्गनोत्सुकम् । शालामृगभियानेवो घघ्या दारात'तायिनम् ॥८९॥
 इत्युदीवं जयो मेघकुमारविजयाजिताम् । मेघघोवाभिषां भेरीं 'प्रष्टेनास्फोटयद्' ह्य ॥९०॥
 'द्रोणादिप्रशयारम्भघनाघनघनध्वनिम् । तदध्वनिध्व्याप' निर्जित्य निर्भद्य हृदयं द्विपाम् ॥९१॥
 तत्रवाकर्णनाद् घूर्णितार्णवप्रतिमे' बले । अतिवे'लोत्सवोऽप्राप्तीदुत्सवो विजये' यया ॥९२॥
 ततोद्भिन्नकटप्रान्तप्रक्षरन्मदपायिनः । स्वमेवेनेव मातृद्रवाः प्रोत्तुद्रवाः प्रोत्तमदिष्णवः ॥९३॥
 सुस्वनन्तः खनन्तः खं वाजिनो धायुरंहतः' । कृतोत्साहा' रणोत्साहाद् रेजुस्तोजस्विता हि सा ॥९४॥

और आगमको भूठा मत कीजिये । भावार्थ—लड़कर असमयमें ही प्रलय काल न ला दीजिये । दूतने इस प्रकार बहुतसे साम, दान आदिके वचन कहे परन्तु तो भी उसे अशान्त जानकर वह लौट आया और शीघ्र ही ज्योंके ल्यो सब समाचार अकंपनसे कह दिये ॥८८-८९॥ उन समाचारोंको सुनकर काशीराज अकंपनका चित्त विपादसे विचलित हो उठा और वे स्वयं महा-मोहसे मूर्च्छित हो गये सो ठीक ही है क्योंकि बुरे कामोंमें कौन मूर्च्छित नहीं होता ॥९०॥ जयकुमारने अकंपनको चिन्तित देखकर कहा कि इस विषयमें हम लोगोंको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि न्यायका उल्लंघन उसीने किया है, आप सावधान होकर सुलोचना की रक्षा करते हुए यही रहिये । दुराचारी, स्त्रियोंपर उपद्रव करनेवाले और इसलिये ही सांकलसे आर्लिगन करनेकी इच्छा करनेवाले उस अर्ककीतिको बंदरके समान वाधकर में अभी लाता हूँ ॥९१-९२॥ इस प्रकार कहकर जयकुमारने क्रोधमें आकर, युद्धमें आगे जानेवाले पुरुषके द्वारा मेघकुमारोंको जीतनेसे प्राप्त हुई मेघघोषा नामकी भेरी बजवाई ॥९३॥ प्रलयकालके प्रारम्भमें प्रकट होनेवाले द्रोण आदि मेघोकी घोर गर्जनाको जीतकर तथा शत्रुओं का हृदय विदारणकर वह भेरीकी आवाज सब ओर फैल गई ॥९४॥ जिस प्रकार शत्रुके विजय करनेपर उत्सव होता है उसी प्रकार उस भेरीका शब्द सुनकर लहराते हुए समुद्रके समान चंचल जयकुमारकी सेनामें माला डालनेके उत्सवसे भी कहीं अधिक उत्सव होने लगा ॥९५॥ उस समय फटे हुए गण्डस्थलके समीपसे भरते हुए मदका पान करनेवाले और अपने उसी मदसे ही मानो उन्मत्त हुए ऊंचे ऊंचे हाथी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे । तथा इसी प्रकार अच्छी तरह हींसते हुए, पैरोंसे आकाशको खोदते हुए और बायुके समान वेगवाले उत्साही घोड़े भी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उनका तेजस्वीपना

१ सोपनं. ८० । वचनसहितः । २ शीघ्रं जापितवान् । ३ अकम्पनः । ४ महामूर्च्छागृहीत इव । ५ अत्र कार्ये । ६ अर्ककीतिनेव । ७ निवसत । ८ राजभवने । ९ सावधाना. भूत्वा । १० दारात-तायनम् ८० । दारेपु कृतागमनम् । स्त्रीनिमित्तमागतमर्चवीतिमित्यर्थः । दाराततायिनमिति पाठे दारायं वधायनम् । 'आततायी वधोद्यतः' इत्यभिधानान् । ११ अशर्माभिना पुरपेण । १२ आरुपान्तं कारयति स्म । प्रष्टेनास्फालयद् ल०, अ०, प०, इ०, म० । १३ द्रोणादि द्रोणवालपुत्रादि । प्रशयारम्भ प्रवचनप्रारम्भ । द्रोणादयश्च ते प्रशयारम्भघनाघनास्तेषा ध्वनिम् । १४ व्याप्नोति स्म । १५ धामाने । 'प्रतिमान प्रतिविम्बं प्रतिभा प्रतिमानना प्रतिच्छाया । प्रतिदृष्टिरर्चा पुंसि प्रतिनिधिरुपमानं स्यात् ।' १६ अधिपत्यवः । 'अनिर्वेलभूनात्ययानिमात्रं गाङ्निर्भरम्' इत्यभिधानान् । अनिमातेलवो ल०, अ०, प०, इ० । १७ दिग्विजये । १८ पवनवेगाः । १९ कृतोद्योगाः ।

रवा प्रागिज' पर्वणा' पूर्णतवांगुघारुध' । महाबाहसमांगुक्ता प्रनृत्यत्केतुवाह्व' ॥६६॥
 योपिनोऽप्यभद्रापत्' पाटवान् सद्युग प्रति' । तत' 'प्रतिबलात्त्र' नूयासो वा' पदानवा' ॥६७॥
 वदंभानो ध्वनिल्लूय' रणरटो भविष्यत । वीरलक्ष्मीप्रवृत्तस्य प्रोद्यमो गुणयप्रिव' ॥१००॥
 वनान्वप वयदिशासनसर्गैर्विद्वि विप्रहृम्' । 'सुवर्माण सुधर्माण' कामवन्त' सरन्मदम् ॥१०१॥
 सामज विजयाद्वार्य विजयाद्विमवापरम् । बहूशो दृष्टसदग्राम 'गन्धर्वजविराद्रिनम् ॥१०२॥
 श्रयिष्ठाय' जय सर्वसाधनेन सहानुज' । निर्जगाम युगप्रान्तकाललीला विलद्रयपन् ॥१०३॥
 कुवंतो शान्तिपूजा त्व निष्ठ मात्रेति' सादरम् । प्रवेद्य चैलधामाग्रम्' सुता निन्यमनोहरम् ॥१०४॥
 समप्रबलमम्पस्या चचात छतयनिलाम्' । अक्षय्य क्षम्पिताराति 'साक्षम्पनिरक्षम्पन' ॥१०५॥
 सुकेतु सूर्यमित्रास्य श्रीधरो जयवर्मणा । देवकीतिर्जय जन्मरिति भूषा सतापना' ॥१०६॥
 इमे मुकुटद्वेयु पञ्च विख्यातकीर्तय' । परं च भूरा नायेन्दुवशगृह्या 'समाययु ॥१०७॥
 मेघप्रनदच षण्डासिप्रनाव्याप्तवियत्त । विद्याबलोदत साद्वर्द्धविद्यापरंरगात् ॥१०८॥

वही था ॥१९-१७॥ जो सब प्रकारके शस्त्रोंमें पूर्ण है, जिनमें बड़े बड़े घाटे जुते हुए हैं, और जिनकी ध्वजाएँ भी भुजाएँ नृत्य कर रही हैं ऐंसे युद्धके रथ पहलके ममान ही सब ओर फैल रहे थे ॥१८॥ जयकुमारकी सेनामें युद्धमें चतुर होनेके कारण मिन्या भी योद्धाओंके ममान आचरण करती थी इसलिये अन्य राजाओंकी अपेक्षा उसकी पैदल सेनाकी सत्या अधिक थी ॥१९॥ उस समय जो बाजोका शब्द बड़ रहा था वह ऐसा जान पड़ता था मानो एगके मैदानमें जो वीरलक्ष्मीका उत्तम नृत्य होनेवाला है उसे कई गुना करता हुआ ही बट रहा हो ॥१००॥

तदनन्तर—जो वनमें उत्पन्न हुआ है, वय, शिक्षा और अच्छे अच्छे लक्षणोंसे जिसका शरीर देखने योग्य है, जिसका स्वभाव अच्छा है, शरीर अच्छा है, जो कामवान है, जिसके मद भर रहा है, जिसने अनेक बार युद्ध देखे हैं, जो हाथीके चिह्नवाली ध्वजाओंसे सुशोभित है और दूसरे विजयाद्यं पर्वणसे ममान जान पड़ता है ऐंसे विजयाद्यं नामके हाथीपर सवार होकर वह जयकुमार मत्र सेना और सब छोटे भाइयोंके साथ साथ युगके अन्त कालकी लीलाको उत्कृष्टन करता हुआ निकला ॥१०१-१०३॥ इधर शत्रुओंको कम्पित करनेवाते और स्वयं अक्षय (निश्चल) रहनेवाते महाराज अक्षम्पनने भी 'तू अपनी मानाके साथ बादरपूर्वक शान्तिपूजा करती हुई बैठे' इस प्रकार बहुर पुत्री मुलोचनाको नित्यमनोहर नामके उत्तम चैद्यालय में पहुँचाया और स्वयं अपने पुत्रोंको साथ लेकर ममस्त सेनाएँपी नग्नपतिके द्वारा पृथिवीको कपाते हुए निरन्ते ॥१०४-१०५॥ सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा और देवकीनि ये सब राजा अपनी अपनी सेनाओंके साथ जयकुमारसे जा मिले ॥१०६॥ मुकुटपद राजाओंमें जिनकी कीर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है ऐंसे ऊपर बड़े हुए सुकेतु आदि पाच राजा तथा नापवश और मोमवणके आश्रित रहनेवाते अन्य गुरूवीर गौग, सभी जयकुमारसे जा मिले ॥१०७॥ जिसने अपनी तीक्ष्ण तलवारकी प्रशान्ते आरागनलको व्याप्त कर लिया है और जो विद्याने बलसे

१ दिग्विजय क्या । २ समन्तान प्राप्ता । पर्वणा स० । ३ रत्नम् । पूर्णतवांगुघारुध इति समन्तवशात् पूर्णतवांगुघारुध इति च भगवत् ययु त । ४ भग इति विजया । ५ युद्ध प्रति । ६ तन कारणम् । ७ प्रतिबल विनाशमान मनायय । ८ जयकुमारवने । ९ इव । १० अतिप्यक्षयप्रिव । ११ दार्तापिप्रुम् । १२ सुवर्माण सुधर्माण अ०, प०, म०, इ० । सुधर्माण सुधर्माण स० । १३ गान्तव्यमायम् । १४ आरागम्य वक्त्रविमानवत्तम् । १५ रत्नम्पद । १६ आरह्य । १७ जयवा गत । १८ येत्तम् । १९ भूमिम् । २० अक्षम्पनचापानि आरागनयन्ते मन्त्रि । २१ नापवशोमवाधिया ।

बल विभज्य भूभागे विशाले सवल रामे । प्रवृत्त्य^१ श्वरघ्न्यूह^२ दिरोधियलघरमर^३ ॥१०६॥
 उच्चैर्लजितत्यू घनिर्घनिर्घोषभीषण^४ । जितमेघस्यरो गर्जन् रेजे मेघस्यरस्तदा ॥११०॥
 चक्रव्यूह^५ विभक्ततत्प्रभूरिसाधनमध्यग । अर्कवीतिश्च भाति स्म परिवेयाहितावदत्^६ ॥१११॥
 क्रुद्धा खे खेचराधीशा सुनमिप्रमुखा पृथक् । गरुडव्यूहमापाद्य तस्युदचक्रितुताजया ॥११२॥
 अष्टचन्द्रा^७ खगा ख्याताश्चप्रिण परित सुतम् । शरीररक्षकत्वेन भेजुर्विद्यारमदोद्धता ॥११३॥
 अकालप्रलयारम्भज्ज्मिभाम्भोदगजितम् । निजित्य तूर्णं सूर्याणि वध्वनु सेगयो समम् ॥११४॥
 धानुष्कर्मिर्गणैर्मगि समरस्य पुरस्तरं । प्रवर्तयितुमारभे घोरघोषं सबलितम् ॥११५॥
 सद्ग्रामनाटकारम्भसूत्रधारा धनुर्धरा । रणरङ्ग विशन्ति स्म गर्जन्तूर्यपुरस्तरम् ॥११६॥
 श्रावण्य स्थानक^८ पूर्वं रणरङ्गो धनुर्धरं । पुष्पाञ्जलिनिर्विद्यस्तो^९ मूषत^{१०} शितशरीत्वर ॥११७॥
 तीक्ष्णा मर्माण्यभिघ्नन्त पूर्वं कलहकारिण । पश्चात्प्रवेशिन^{११} शब्दवत् खलकल्पा^{१२} धनुर्धृत ॥११८॥

उद्धत हो रहा है ऐसा मेरुप्रभ नामका विद्याधर भी अपने आधे विद्याधरोके साथ निकला ॥१०८॥ जो शत्रुओकी सेनाको नष्ट करनेवाला है, वडे वडे वाजोके समूहसे निकलती हुई आवाजके समान भयकर है और जिसने अपनी आवाजसे मेघोकी गर्जनाको भी जीत लिया है ऐसा जयकुमार उस समय विशाल और सम (ऊची नीची रहित) पृथ्वीपर अपनी समस्त सेनाका विभागकर तथा मकरव्यूहकी रचनाकर गर्जता हुआ बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०९-११०॥ उधर चक्रव्यूहकी रचनाकर अपनी बहुत भारी सेनाके बीच सडा हुआ अर्ककीर्ति भी परिवेपसे युक्त सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१११॥ क्रोधित हुए सुनमि आदि विद्याधरोके अधिपति भी गरुडव्यूहकी रचनाकर चक्रवर्तीके पुत्र-अर्कवीतिकी आज्ञासे आकाशमें अलग ही सडे थे ॥११२॥ विद्याके मदसे उद्धत हुए आठ चद्र नामके प्रसिद्ध विद्याधर शरीररक्षकके रूपसे चारो ओरसे अर्ककीर्तिकी सेवा कर रहे थे ॥११३॥ उन दोनो सेनाओमें असामयिक प्रलयकालके प्रारम्भमें वढती हुई मेघोकी गर्जनाको जीतकर शीघ्र शीघ्र एक साथ बहुतसे वाजे वज रहे थे ॥११४॥ युद्धके आगे आगे जानेवाले और भयकर गर्जना करनेवाले धनुर्धारी योद्धाओने वाणो द्वारा अपना मार्ग बनाना प्रारम्भ किया था । भावार्थ-धनुष चलानेवाले योद्धा वाण चलाकर भीडको तितर बितर कर अपना मार्ग बना रहे थे ॥११५॥ जो सग्रामरूपी नाट्यके प्रारम्भमें सनधारके समान जान पडते थे ऐसे धनुष को धारण करनेवाले वीर पुरुष गर्जते हुए वाजोको आगे कर युद्धरूपी रगभूमिमें प्रवेद कर रहे थे ॥११६॥ धनुष धारण करनेवाले पुरषोंने रणरूपी रगभूमिमें सबसे पहले अपना स्थान जमा कर जो तीक्ष्ण वाणोका समूह छोडा था वह ऐसा जान पडता था मानो उन्होंने पुष्पाञ्जलि ही विखेरी हो ॥११७॥ वे धनुषपर चढाये हुए वाण सदा दृष्टोने समान जान पडते थे यद्यपि जिन प्रकार दुष्ट तीक्ष्ण अर्थात् शूर स्वभाववाले होते हैं उसी प्रकार वे वाण भी तीक्ष्ण अर्थात् पैने थे, जिस प्रकार दुष्ट मर्मभेदन करते हैं उसी प्रकार वाण भी मर्मभेदन करते थे, जिस प्रकार दुष्ट बलवत् करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वाण भी बलवत् करनेवाले थे और जिस प्रकार दुष्ट पढते मधुर वचन कह कर फिर भीतर घुस जाते हैं उसी प्रकार वे वाण भी मनोहर शब्द

१ श्रुत्वा । २ मकरव्यूह रचनाविषयम् । ३ विद्याधर इत्यर्थः । ४ निर्घोषभीषण यथा भवति तथा । ५ विष्णुस्य नाम-२०, ल० । ६ प्राणः । ७ अष्टचन्द्रा इत्यादि । ८ वाणः । ९ त्रिमासिनेपणम् । उग्रव्यावृत्ति यथा । १० आनीप्रपानीनादि । ११ शिवा । १२ जिगा । १३ शरीरप्रथिता । १४ वाणः ।

उभयो 'पाद्वर्धयोर्ध्वा बाणयो' कृतपल्लवना । धन्विन खेचरादारा' रेजुराजो' जितश्रमा ॥११६॥
 ऋजुत्वाद दूरदर्शित्वात् सद्य कार्यप्रसाधात् । शास्त्रमार्गानुसारित्वात् शरा' सुसचिव' समा ॥१२०॥
 ऋयास्रपायिन ' पत्रवाहिनी' दूरपातिन । लक्ष्येपूडडोय तीक्ष्णास्या खगा '०' पंतु खगोपमा ॥१२१॥
 धर्मो' गुणयुक्तेषु' प्रेरिता हृदय गता । धूरान् 'शुद्धिरिवानेपीद' गति पत्रपरम्परा' ॥१२२॥
 पुसा सस्पर्शमानेण हृदयगता रक्तवाहिनी' । क्षिप्र न्यमीलपद्मेत्रे वेदथेव विशिखादली' ॥१२३॥
 त्यस्त्वेश खेचरात्वातिवृष्टी' गृह्यतमस्ततो' । परोऽन्विव्य शरावल्या जात्येव यशीकृत ॥१२४॥

करते हुए पीछेसे भीतर घूस जाते थे ॥११८॥ जो दोनो बगलोमे तरकस बाधकर उछल कूद कर रहे हैं तथा जिन्होने परिश्रमको जीत लिया है ऐसे धनुषधारी लोग उस यद्धमें पक्षियोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥११९॥ और वाण अच्छे मंत्रियोंके समान जल पडते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छे मनी ऋजु अर्थात् सरल (मायाचार रहित) होते हैं उसी प्रकार वाण भी सरल अर्थात् सीधे थे, जिस प्रकार अच्छे मनी दूरदर्शी होते हैं अर्थात् दूरतककी बातको सोचते हैं उसी प्रकार वाण भी दूरदर्शी थे अर्थात् दूरतक जाकर लक्ष्यभेदन करते थे, जिस प्रकार अच्छे मनी शीघ्र ही कार्य सिद्ध करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वाण भी शीघ्र करनेवाले थे अर्थात् जल्दीसे शत्रुको मारनेवाले थे और जिस प्रकार अच्छे मन्वी शास्त्रमार्ग अर्थात् नीतिशास्त्रके अनुसार चलते हैं उसी प्रकार वाण भी शास्त्रमार्ग अर्थात् धनुषशास्त्रके अनुसार चलते थे । ॥१२०॥ मास और खूनको पीनेवाले, पक्ष धारण करनेवाले, दूरतक जाकर पडनेवाले और पीने मुखवाले वे वाण पक्षियोंके समान उडकर अपने निजानोपर जाकर पडते थे । भावार्थ— वे वाण पक्षियोंके समान मालूम होते थे, क्योंकि जिस प्रकार पक्षी मास और खून पीते हैं उसी प्रकार वाण भी शत्रुओका मांस और खून पीते थे, जिस प्रकार पक्षियोंके पक्ष लगे होते हैं उसी प्रकार वाणोंके भी पक्ष लगे थे, जिस प्रकार पक्षी दूर जाकर पडते हैं उसी प्रकार वाण भी दूर जाकर पडते थे और जिस प्रकार पक्षियोंका मुख तीक्ष्ण होता है उसी प्रकार वाणोंका मुख (अग्रभाग) भी तीक्ष्ण था । इस प्रकार पक्षियोंकी समानता धारण करनेवाले वाण उड उडकर अपने निजानोपर पड रहे थे ॥१२१॥ जिस प्रकार गुणयुक्त धर्मके द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमें प्राप्त हुई विद्युद्वि पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करा देती है उसी प्रकार गुणयुक्त (डोरी सहित) धर्म (धनुष) के द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमें चुमी हुई वाणोंकी पवित्र शरवीर पुरुषोंको परलोक पहुँचा रही थी ॥१२२॥ जिस प्रकार हृदयमें प्राप्त हुई और रक्तवाहिनी अर्थात् अनुराग धारण करनेवाली अथवा रागी पुरुषोंको बस करनेवाली स्पर्शमानसे ही पुरुषोंके नेत्र बन्द कर देती है उसी प्रकार हृदयमें लगी हुई और रक्तवाहिनी अर्थात् हृदय की बहानेवाली वाणोंकी पवित्र स्पर्शमानसे शीघ्र ही पुष्पोंके नेत्र बन्द कर देती थी—उन्हें मार डालती थी ॥१२३॥ जिस प्रकार बहुत वर्षों होने और अन्धकारका समूह छा जानेपर

६ निजगरीरपास्त्रयो । २ इयुधी द्वौ । ३ पत्र मयूग । ४ सुद्धे । ५ चापगास्त्रात्पत्रमण । प्रयोक्तृमार्गारणत्वान् । ६ बाणा । ७ मंत्रिभि । ८ त्रय्यामृषपायिन ट० । आमामारवतमाजिन । ९ धर्मवहन्ति गच्छन्तीनि पत्रवाहित । १० बाणा । गराकवित्प्रा राणा । ११ पणिमयूगा । १२ धनुषा । १३ ज्यास्रहिने । अतिग्ययुक्तेन च । १४ विद्युद्विपरिणाम इव । १५ आनयति स्म । १६ धरन्तति । १७ रक्त प्रापयन्ती । आगयन्नुक्त प्रापयन्ती च । १८ इतोऽप्य पुन आरा' नगरात् समावातन्पिण्णुपुस्तकान् निपण्णामुद्गात्रियत् । १९ उपगमिन्मन्त्रचररक्षित्वर्षे । २० दागाम्यामणमूह । 'आनापिचि'नी दागाम्यगृह्णी इत्यभिधानान् । * भाषे वन

प्रगुणा^१ मुष्टि^२ संवाह्या दूरं दृष्टघनवर्तितः^३ । गदवेष्टं साधयन्ति स्म तद्भृत्या इव सायकाः ॥१२५॥
 प्रयोज्याभिमुखं तीक्ष्णान् वाणान् परशरान्प्रति । तत्रैव^४ पातयन्ति स्म धानुष्काः सा^५ हि धीधियाम्^६ ॥१२६॥
 जाताश्चापवृताः^७ केचिद् भ्रग्योन्यशरखण्डने । व्यापृताः श्लाघिताः पूर्वं रणे किञ्चित्करोपमा^८ ॥१२७॥
 हस्त्यश्वरथपत्थौषम् उद्भिद्यास्पष्टसक्षयत्^९ । शराः पेतुः स्व^{१०} सम्पातमेवास्ता^{११} दृढमुष्टिभिः ॥१२८॥
 पूषं विहितसन्धानाः^{१२} स्थित्वा किञ्चिच्चरानसे^{१३} । यानमध्यास्य^{१४} मध्यस्था^{१५} द्वैधीभावमुपागता ॥
 विग्रहे^{१६} हतशक्तिस्वाद् भ्रगत्या शत्रुसंभयाः । वाणाः^{१७} गुणितवाङ्गुण्या इव सिद्धिं प्रवेदिरे ॥१२९॥

व्यभिचारिणी स्त्री अपना पति छोड़ किसी परपुरुषको खोजकर वश कर लेती है उसी प्रकार विद्याधरोके खूनकी बहुत वर्षा होने और गूढ़ पक्षीरूपी अन्धकारका समूह फैल जानेपर वाणोंकी पकित अपने स्वामीको छोड़ खोज खोजकर शत्रुओंको वश कर रही थी ॥१२४॥ अथवा वे वाण अच्छे नौकरोके समान दूर दूरतक जाकर इष्ट कार्योंकी सिद्ध करते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छे नौकर प्रगुण अर्थात् श्रेष्ठ गुणोंके धारक अथवा सीधे होते हैं उसी प्रकार वाण भी प्रगुण अर्थात् सीधे अथवा श्रेष्ठ डोरीसे सहित थे, अच्छे नौकर जिस प्रकार मुट्टियोंसे दिये हुए अन्नपर निर्वाह करते हैं उसी प्रकार वे वाण भी मुट्टियों द्वारा चलाये जाते थे और अच्छे नौकर जिस प्रकार मालिककी दृष्टिके अनुसार चलते हैं उसी प्रकार वे वाण भी मालिककी दृष्टिके अनुसार चल रहे थे ॥१२५॥ धनुषकी धारण करनेवाले योद्धा जहाँ जहाँ शत्रुओंके बाण थे वही वही देखकर अपने पने वाण फेंक रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंकी वंसी ही बुद्धि होती है ॥१२६॥ जो वाण एक दूसरेके वाणोंको तोड़नेके लिये चलाये गये थे, धारण किये गये थे अथवा उस व्यापारमें लगाये गये थे वे युद्धमें नौकरोके समान सबसे पहले प्रशस्तको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ मजबूत मुट्टियोंवाले योद्धाओंके द्वारा छोड़े हुए वाण अस्पष्ट लक्षके समान दिखाई नहीं पड़ते थे और हाथी, घोड़े, रथ तथा पियादोंके समूहको भेदनकर अपने पड़नेमें स्थानपर ही जाकर पड़ते थे ॥१२८॥ जिस प्रकार सन्धि विग्रह आदि छह गुणोंकी धारण करनेवाले राजा सिद्धिको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे वाण भी सन्धि आदि छह गुणोंको धारण कर सिद्धिको प्राप्त हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार राजा पहले सन्धि करते हैं उसी प्रकार वे वाण भी पहले डोरीके साथ सन्धि अर्थात् मेल करते थे, जिस प्रकार राजा लोग अपनी परिस्थिति देखकर कुछ समय तक ठहरे रहते हैं उसी प्रकार वे वाण भी धनुषपर कुछ देर तक ठहरे रहते थे, जिस प्रकार राजा लोग युद्ध के लिये अपने स्थानसे चल पड़ते हैं उसी प्रकार वे वाण भी शत्रुको मारनेके लिये धनुषसे चल पड़ते थे, जिस प्रकार राजा लोग मध्यस्थ बनकर द्वैधीभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् भेदनीति द्वारा शत्रुके संगठनको छिन्नभिन्न कर डालते हैं उसी प्रकार वे वाण भी मध्यस्थ (शत्रुके शरीरके मध्यमें स्थित) हो द्वैधीभावको प्राप्त होते थे अर्थात् शत्रुके टुकड़े टुकड़े कर डालते थे और अन्तमें राजा लोग जिस प्रकार युद्ध करनेकी

१ अक्षरः । २ मुष्टिना संवाहयन्ते शयन्ते मुष्टिवाहाह्या । आत्मावगवर्तितरथ । ३ नयवै-
 मुष्टमाना । आलोचनमात्रेण प्रभोगभिप्रायं ज्ञात्वा धारयंशरारथ । ४ यत्र शत्रुनागं विचक्षणवैर ।
 ५ शीघ्र पराजयपरतत्त्वज्ञान । ६ बुद्धीनां मध्ये । धीधियाम् ७० । ७ वाणाः । ८ किञ्चित्करोपमा ।
 ९ भ्रग्योत्पलसदृशम् । १० स्वयोरपगतशरान् गदवैवेग्यम् । ११ शिप्याः । १२ वृत्तमद्योभवा वृत्तमद्योभवा ।
 १३ चाने रीते च । १४ यानमध्यास्य । १५ मध्यस्था गतम् । १६ द्विधास्तरारथम्, पक्षी उभयपक्ष-
 धरन्वम् । १७ शरिण्यन्तावे । अथवा शरीरे । १८ अथयानम् ।

धारा वीररसस्येव रजे रवनस्य कस्यचिन् । पनन्ती सततं धंयद् धारावनूपादिताद्गम् ॥१३१॥
 'सामकोदभिन्नमालोचय कान्तस्य हृदय प्रिया । परागुरासोच्चित्तोजय बन्तोवात्मनः स्थितिम् ॥१३२॥
 ध्रुवदण्डः फलः कश्चित् सर्वादिगोणभंटाप्रणोः । कीलितादात्वात्प्रतस्यैव पुपुधे चिरम् ॥१३३॥
 विलोक्य विलपज्वालिव्वातोलाोलशिखोपमः । शिलीमुखैर्बलं 'द्विभ्रं स्व' विपक्षधनुर्धरः ॥१३४॥
 गृहोत्वा बज्रकाण्डाल्यं सज्जीकृत्य धारासनम् । स्वयं योद्धुं समारब्धं सन्धोषः सानुजो जयः ॥१३५॥
 'कर्णाभ्यर्णाकृतास्तस्य गुणयुक्ताः सुयोजिताः । परंलघुतमस्थानाः' कालदोषाविधायिनः ॥१३६॥
 मार्गं प्रगुणसञ्चाराः प्रविश्य हृदयं द्वियाम् । वृष्ट्यायं^१ साधयन्ति स्म^२ निस्सृष्ट्यायं समाः शराः ॥१३७॥
 पनवन्तः प्रतापोषाः^३ समप्रा विप्रहे द्रुताः । प्रतातपोतित्तच्चक्रः कूटपुटं शिलीमुखाः ॥१३८॥

सामर्थ्येन रहित शत्रुको वध कर लेते हैं उसी प्रकार वे वाण भी शत्रुको वध कर लेते थे ॥१२९-१३०॥ निकाले हुए वाणके पीछे बहुत शीघ्र धीरतासे निरन्तर पड़ती हुई किसी पुरुषके शीघ्रकी धारा वीररसकी धाराके समान सुनोमित हो रही थी ॥१३१॥ कोई स्त्री अपने पतिका हृदय वाणसे विदीर्ण हुआ देखकर प्राणरहित हो गई थी मानो वह वह रही थी कि मेरा निवाम इसीके हृदयमें है ॥१३२॥ जिनके दण्ड टट गये हैं और जो सब धरीरमें घुम गये हैं ऐसे वाणोंकी नोकोंसे जिनके प्राण मानों कीलित कर दिये गये हैं ऐसा कोई योद्धा पटलेकी तरह ही निश्चल हो बहुत देरतक लडता रहा था ॥१३३॥ शत्रुओंके धनुषचारी योद्धाओंने प्रलयकालकी जलती हुई अग्निकी चंचल शिखाओंके समान तेजस्वी वाणोंके द्वारा मेरी सेनाको छिन्नभिन्न कर दिया है यह देख जयकुमारने अपने छोटे भाइयों सहित नोचित हो बज्रकाण्ड नामका धनुष लिया और उसे सजाकर स्वयं वृद्ध करना प्रारम्भ किया ॥१३४-१३५॥ उस समय जयकुमारके वाण † निःसृष्टार्थ (उत्तम) दूतके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिन प्रकार उत्तम दूत स्वामीके कानके पास रहते हैं अर्थात् कानसे लगकर बातचीत करते हैं उसी प्रकार वाण भी जयकुमारके कानके पास रहते थे अर्थात् कानतक खींचकर छोड़े जाते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत गुण अर्थात् रहस्य रक्षा आदिसे युक्त होने हैं उसी प्रकार वाण भी गुण अर्थात् टोरीमें युक्त थे, जिस प्रकार उत्तम दूतकी योजना अच्छी तरह की जाती है उसी प्रकार वाणोंकी योजना भी अच्छी तरह की गई थी जिन प्रकार उत्तम दूत अत्र लेकर जादी उठ लड़े होने हैं उसी प्रकार वाण भी अपने पगोंमें जल्दी जल्दी उठ रहे थे—जा रहे थे, जिस प्रकार उत्तम दूत व्यर्थ समय नहीं खोते हैं उसी प्रकार वाण भी व्यर्थ समय नहीं खोते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत मार्ग में सीधे जाते हैं उसी प्रकार वाण भी मार्गमें सीधे जा रहे थे और जिन प्रकार उत्तम दूत शत्रुओंके हृदयमें प्रवेगकर बठिनसे बठिन कार्यको सिद्ध कर लेते हैं उसी प्रकार वाण भी शत्रुओंके हृदयमें घुनकर बठिनसे बठिन कार्य सिद्ध कर लेते थे ॥१३६-१३७॥ अथवा ऐसा जान

१ साधिकादिभ्र-न० । २ सर्वाद्यध्यापिभि । ३ प्रतपानि । ४ छन्नभिःपनि पाठ । छद्दिन सण्डिन वा । ५ आन्वीयम् । ६ आनुरांमाहृष्ट्या । ७ करणंममीपे कृतादच । ७ पशं सन्देसपत्रं । ८ आमुविधायिन इत्यर्थं । ९ हृदयम् अभिप्राय च । १० अमाध्यायंम् । ११ अमन्तु गम्भादि-प्रयोजनदूतममा । १२ प्रकृष्टमन्त्रापनीवरा । नयद्भरता ।

† राजाशोकें छद् गुण ये हैं—'सन्धिविप्रहयानानि सस्याप्यानमेव च । द्वंधीनावदच विज्ञेय-पद्गुणा नीतिवेदिनम् ।'

† जो दोनोंका अभिप्राय लेकर स्वयं उत्तरप्रत्युत्तर करता हुआ कार्य सिद्ध करता है उसे निःसृष्टार्थ दूत कहते हैं । यह दूत उत्तम दूत कहनाया है ।

प्रस्फुरद्भि फलोपेतं सुप्रमाणं सुवृत्तितं । विरोधोद्भाविना विद्वयगोचरं विजयायहं ॥१३६॥
 वादिनेष जयेनोच्चैः कीर्ति क्षिप्र जिघृक्षुणा । प्रतिपक्ष प्रतिक्षिप्तं दास्यं शास्त्रैर्जगोयुणा ॥१४०॥
 लगा खगान्प्रति प्रास्ता प्रोद्भिद्य गगन गता । नियतंते न दावच्छे ते भियेषापत मृता ॥१४१॥
 सुतीक्ष्णा धीक्षणाभीला प्रज्वलन्त समन्तात् । मूर्द्धस्वशनिवत्येतु ताद् विमुक्ता खग शरा ॥१४२॥
 शरसद्घातसच्छ्रधान् गृध्रपक्षान्पकारितान् । श्रुष्टमृद्गरापातं नभोगा नभसो व्युध ॥१४३॥
 चण्डेरकाण्डन्तुश्च काण्डेरापाद्यतादिभे ॥ युगेऽरिमन् वि विमस्ताद्गनासिभिर्नगुभ ॥ भवेत् ॥१४४॥
 दूरपाताय नो किन्तु दूढपाताय वैचरं । लगा कर्णान्तम्राष्ट्र्य मृक्ता हृन्मृद्विपादिद्वान् ॥१४५॥
 श्रधोमृसा खगोर्मृक्ता रषतपातात्पलाशनात् । पयत्का साहसो वैयुनंरक वाऽयनेरघ ॥१४६॥

पडता या मानो वे वाण कपट युद्ध कर रहे हो क्योंकि जिस प्रकार कपट युद्ध करनेवाले पशवत अर्थात् सवारी सहित और प्रतापसे उग्र होते हैं उसी प्रकार वे वाण भी पशवत अर्थात् पशो सहित और अधिक सतापसे उग्र थे, जिस प्रकार कपट युद्ध करनेवाले युद्धमें शीघ्र जाते हैं और सबसे आगे रहते हैं उसी प्रकार वे वाण भी युद्धमें शीघ्र जा रहे थे और सबसे आगे थे तथा कपट युद्ध करनेवाले जिस प्रकार विना जाने सहसा आ पडते हैं उसी प्रकार वे वाण भी विना जाने सहसा आ पडने थे ॥१३८॥ जिस प्रकार विजयके द्वारा उत्तम कीर्तिको शीघ्र प्राप्त करनेवाला और जीतनेकी इच्छा रखनेवाला वादी प्रकाशमान, अज्ञाननाशादि फलोसे युक्त उत्तम प्रमाणसे सहित, अच्छी तरह रचना किये हुए ससारमें प्रसिद्ध और विजय प्राप्त कराने वाले शास्त्रोसे विरोधी-प्रतिवादीको हराता है उसी प्रकार विजयके द्वारा शीघ्र ही उत्तम कीर्ति सम्पादन करनेवाले, जीतनेकी इच्छा रखनेवाले तथा विरोधी प्रकट करनेवाले जय कुमारने देदीप्यमान, नुकीले, प्रमाणसे बने हुए, अच्छी तरह चलाये हुए, ससारमें प्रसिद्ध और विजय प्राप्त करानेवाले शस्त्रोसे शत्रुओकी सेना पीछे हटा दी थी ॥१३९-१४०॥ जयकुमार ने विद्याधरोके प्रति जो वाण चलाये थे वे आकाशको भेदनकर आगे चले गये थे और वहासे वे जबतक लौटे भी नहीं थे तबतक वे विद्याधर मानो भयसे ही डरकर गिर पडे थे ॥१४१॥ जो अत्यन्त तीक्ष्ण है, देखनेमें भयकर है, और चारो ओरसे जल रहे है ऐसे विद्याधरोके द्वारा आकाशसे छोडे हुए वाण योद्धाओके मस्तकोपर वज्रके समान पड रहे थे ॥१४२॥ जो वाणो के समूहसे ढक गये है, गीधके पखोसे अन्धकारमय हो रहे है और जिन्हे मुद्गरके आघात तक दिग्वाई नहीं पडते है ऐसे योद्धाओको विद्याधर लोग आकाशसे घायल कर रहे थे ॥१४३॥ इस युगमें उन तीक्ष्ण वाणोने सबसे पहले अकालमृत्यु उत्पन्न की थी सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने मूषेका प्रताप भी कम दिया है ऐसे लोगोसे क्या क्या अशुभ काम नहीं होते हैं ? ॥१४४॥ दूर जानेके लिये नहीं किन्तु मजबूतीके साथ पडनेके लिये विद्याधरोने जो वाण पानतव ग्रीचकर छोडे थे उन्होने बहुतसे हाथी आदिको मार डाला या ॥१४५॥ जिस प्रकार रक्त पीने और मांस खानेमें पापी जीव नीचा मृगवर नरकमें जाते है उसी प्रकार विद्याधरो

१ निराहत । २ वाण । ३ विद्याधरान् । ४ मुक्ता । ५ विद्याधरा । ६ एते नयावता ।

७ मुद्गरापातान् ल०, म० । ८ गगनापित्य । ९ अनात् । १० वाण । ११ उत्पादित । १२ अस्त्राणां निभि इति पाठ अस्त्राण्यवागुपाणिता पवाणाना तं मरिरीरयं । 'जागुगा वायुविगितौ इत्यभिधानान् । १३ ३ । १४ ध्वनि म् । १५ मागानान् । १६ गगापा । १७ वा इव । १८ मृच्छान् । १९ । १८ मृगव्य स्थितम् ।

‘भूमिर्लान्छुरसिप्ता-द्विष्ठान्कृष्यं यत्स्य’ । यत्पुत्रं दिव इतीदेशोदा-दिव्ययोयिताम् ॥१४७॥
 चप्रिणश्चक्रमेकं तत्र तत्र कस्यचित्सति । ‘दशरथान्वचकारभवंहृवस्तत्र जग्निरे’ ॥१४८॥
 सन्वेनें ० समं मुह्यं शरं १ संचरभूचरं । व्योम्पन्वोव्यमसात्तन्व-स्थित कतिपयक्षणे ॥१४९॥
 सन्चरंशरंदच्छत्रे शे परत्पररोषिनि । ‘अपोण्याश्लषणात्तेषाम् अमृद् रणनिषेजनेम् ॥१५०॥
 स्वास्त्रं १ शस्त्रंनभोगाना शरंश्चावापिन भृशम् । स्वसंग्य धीश्व सौत्सिप्तबोक्षपोप्राशामुषाणि १
 शय महारसभृद्धसमवर्तिसमी ० जय । प्रारद्वय ० योद्ध वज्रणे वज्रपाण्डेन वरिवत् ॥१५१॥-
 निजिनाशनिनिषोयज्यग्याघोपभिलुका १ । चापसायकचेतासि प्राक्षिपन् ० सह शत्रव ॥१५२॥
 चापमारभमाकृष्य प्यानिवेदितसायक । जपुत्प्यानमोत्त सोज्ज्वेदय ० विष्वद्विष १ क्षणम् ॥१५३॥
 न मध्ये न शरीरेषु दृष्टास्तद्योजिता-शरा । दृष्टास्ते केवल भूमौ सत्रणा पतिता परे ॥१५४॥
 निमीलयन्तश्चक्षुषि ज्वलयन् शिखीमुखा । मुखानि ककुभा वयु १ ० सादुत्कालीविभीषणा १ ॥१५५॥

के द्वारा छोड़े हुए बाण शत्रुओंका रक्त पीने और मांस खानेमें पापी हो नीचा मुखकर पूर्वियों के नीचे जा रहे थे—जर्मिनमें गड़ रहे थे ॥१४६॥ इसी प्रकार भूमिगोचरियों द्वारा निवेद्यता के साथ छोड़े हुए बाण शत्रुओंको भेदकर आकाशमें बहुत दूरतक इस प्रकार जा रहे थे मानो देवागनाओंकी दासिया ही हो ॥१४७॥ चक्रवर्तीका चक्र तो एक ही होता है उससे किसीकी हानि नहीं होती परन्तु उन युद्धमें अकाल चक्रसे समान बहुतने चक्रोंसे अनेक जीव मारे गये थे ॥१४८॥ विद्याधर और भूमिगोचरियोंके द्वारा एक साथ छोड़े हुए समान वेगवाले बाण आकाशमें एक दूसरेके मुखसे मुख लगाकर कुछ देरतक ठहर गये थे ॥१४९॥ परम्पर एक दूसरेको रोकनेवाले विद्याधर और भूमिगोचरियोंके बाणोंसे आकाश टक गया था और इमीत्रिये एक दूसरेके न दिख सकनेके कारण उनका युद्ध बन्द हो गया था ॥१५०॥ अपने और शत्रुओंके शस्त्रों तथा विद्याधरके बाणोंसे अपनी सेनाको बहुत कुछ घायल हुआ देखकर नेत्ररूपी भयकर अग्निकी आकाशकी ओर फँकनेवाला और संहार करनेके लिये कुपित हुए यमराजकी ममानता धारण करनेवाला जयकुमार इन्द्रकी तरह वज्रपाण्ड नामके धनुषसे युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥१५१-१५२॥ वज्रकी गर्जनाको जिननेवाले जयकुमारके धनुषकी डोरीके शब्द मात्रसे ढरे हुए कितने ही शत्रुओंने धनुष, बाण और हृदय—मंत्र फँक दिये । भावार्थ—भयमें उनके धनुष-बाण गिर गये थे और हृदय विकसित हो गये थे ॥१५३॥ कान तक धनुष खींचकर जिमने डोरीपर बाण रक्खा है और जो बली शीघ्रतासे बाणोंको रक्ता तथा छोड़ता है ऐसा जयकुमार क्षणभरके लिये ऐसा जान पड़ता था मानो प्रहार ही नहीं कर रहा हो अर्थात् बाण चला ही नहीं रहा हो ॥१५४॥ जयकुमारके द्वारा चलाये हुए बाण न बीचमें दिखते थे, और न जरीरोंमें ही दिखाई देते थे, केवल घावमहित जमीनपर पड़े हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥१५५॥ जो देखनेवालोंके नेत्र बन्द कर रहे हैं, सबको जला रहे हैं और उल्लाओंके समूहके ममान भयकर हैं ऐसे जयकुमारके बाणोंने दिग्गजोंके मुख टक रिये थे

१ भूमौ स्थितं । २ शत्रुः । ३ उद्भिद्यः । ४ बाणः । ५ कृतीमदुगा । ६ -मरान् न वः । ७ यत्राम् ।
 ८ नमन्तान् कृतान् नगमृहमार्गं । ९ हता । १० उभयबाणि ममानजर्वं । ११ मुगपत् । १२ शेष-ज०,
 अ०, प०, स०, इ० । १३ -शापान स०, अ०, प०, स०, इ० । १४ परम्परवत्तत्तनाभासात् । १५ आभी-
 यानामोषं । स्वान्त्रं अ० । १६ अग्निः । १७ सहायार्थं कृतिनवमदुग् । १८ उपशापयाम् । १९ शीघ्रः ।
 २० त्यजन्वन् । २१ दृष्टः । २२ पराक्रमोच्चप्रिव । २३ वेष्टयन्ति स्म । २४ गणनाः । २५ अर्थात् ।
 २६ अन्वाममूर्त्भीरग ।

तिर्यगोष्णपायाणि १ घृष्ट्वाज्यजिराद् २ बहि । पातितान् ३ लघुरानुचु सततान् स्वर्गान् ४ जडा ॥१५७॥
 शरसङ्घणैविद्याधु-मुकुटेभ्योऽगलन् ५ सुरं । मणयो गुणगूहर्घवा जयस्योपायनीकृता ॥१५८॥
 १पत्नमृतखगान्वीतप्रियाभि स्याधुवारिणा । २धारिदानमिदाचयं ३ वृषामरासदितो जय ॥१५९॥
 अन्तक समवर्तीति ४ तद्दार्तव न चेतया । कथ चप्रिसृतस्यंथ बले प्रेताधिपो ५ भवेत् ॥१६०॥
 वध विधाय न्यायेन जयेनाग्यायवतिनाम् । १यमस्तीक्ष्णोऽप्यभूद्धर्मस्तत्र २ दिव्यानलोपम ३ ॥१६१॥
 तावद्धेपित ४ निघोर्धैर्भापयन्तो द्विपो ह्यम । बलमाशवासयन्त स्व स्वीचन्द्रचाप्रिसूनव ५ ॥१६२॥
 प्रासात्प्रस्फुरतस्तीक्ष्णान् अमीक्ष्ण चाहवाहिन ६ । श्रावतंयन्त सम्प्रापन् यमस्येवाप्रगा भटा ॥१६३॥
 जयोऽपि स्वयमारुह्य जयो जयतुरङ्गमम् । क्रुद्ध प्रासात् समुद्रस्य योद्धुमश्वेयमादिशान् ॥१६४॥
 अमृत प्रहतगम्भीरभम्भा १ दिग्ध्वनिभीषण । बलार्णवदचलतस्यूलकस्तोल इय पाजिभि ॥१६५॥

॥१५६॥ तिरछे जानेवाले गोफनोके पत्थरोसे युद्धके आगनसे बाहर पडे हुए विद्याधरोको न देखकर मूर्ख लोग कहने लगे थे कि देखो विद्याधर शरीर सहित ही स्वर्ग चले गये हैं ॥१५७॥ वाणोकी चोटसे छिन्नभिन्न हुए विद्याधरोके मुकुटोसे जो मणि गिर रहे थे वे ऐसे जान पडते थे मानो गुणोसे वश होनेवाले देवोंने जयकुमारको भेंट ही किये हो ॥१५८॥ गिर गिरकर मरे हुए विद्याधरोके साथ आई हुई स्त्रिया अपने अश्रुरूपी जलसे जो उगहे जलाजलि सी दे रही थी उसे देखकर जयकुमारको दया आ गई थी ॥१५९॥ यमराज समवर्ती है अर्थात् सबको समान दृष्टिसे देखता है यह केवल कहावत ही है यदि ऐसा न होता तो वह केवल चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीतिकी सेनामे ही क्यों प्रेतोका राजा होता ? अर्थात् उसीकी सेनाको क्यों मारता ? ॥१६०॥ जयकुमारके द्वारा अन्यायमें प्रवृत्ति करनेवाले लोगोका वध करारकर वह तीक्ष्ण यमराज भी उस युद्धमे दिव्य अग्निके समान धर्मस्वरूप हो गया था । भावार्थ-पूर्वकालमे साक्षी आदिके न मिलनेपर अपराधीकी परीक्षा करनेके लिये उसे अग्निमे प्रविष्ट कराया जाता था, अथवा जलते हुए अगार उसके हाथपर रखाये जाते थे । अपराधी मनुष्य उस अग्निमें जल जाते थे परन्तु अपराधरहित मनुष्य सीता आदिके समान नहीं जलते थे । उसी आगको दिव्य अग्नि कहते हैं सो जिस प्रकार दिव्य अग्नि दुष्ट होनेपर भी अपराधीको ही जलाती है अपराधरहितको नहीं जलाती उसी प्रकार यमराजने दुष्ट होकर भी अयाधी मनुष्योका ही वध कराया न कि न्यायी मनुष्योका भी, इसलिये वह यमराज दुष्ट होनेपर भी मानो उस समय दिव्य अग्निके समान धर्मस्वरूप हो गया था ॥१६१॥ इतनेमें ही हिन हिनाहुटके शब्दोसे शत्रुओको डराते हुए और अपनी सेनाको धीरज वधाते हुए चक्रवर्तीके पुत्र-अर्ककीतिके घोडे सामने आये ॥१६२॥ यमराजके अग्रगामी योद्धाओके समान, देदीय मान और पने भालोको बार बार घुमाते हुए घुडसवार भी सामने आये ॥१६३॥ विजय करनेवाले जयकुमारने भी प्रोधित हो, जयतुरगम नामके घोडेपर सवार होकर अपनी घुडसवार सेनाको भाला लेकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥१६४॥ घोडोके द्वारा जिसमें चंचल और वधी वधी लहरें सी उठ रही है ऐमा वह सेनारूपी समुद्र वजते हुए गभीर नगाडे आदिके शब्दो

१ शरसङ्घणै । २ रणाद्यगलान् । ३ पतितान् ल०, स०, अ०, म० । ४ स्वर्गं गतान् ।
 ५ भूमि । ६ गलन्ति स्म । ७ गतप्राणविद्याधरानुगत । ८ जनाञ्जितम् । ९ विधाय । १० वानवृद्धादिपु
 त्रनत्रिमासां गमाना वतमान । ११ यम । १२ अन्तक । १३ जये । १४ वपथागिगम । १५ अन्व
 रिगार । १६ पत्नियुता गम्पिया । १७ अश्वाराहा । १८ भम्भेत्यनुरणम् ।

प्रतिमं वट्टनिष्ठं घृतवित्कृतिद्वयो रणेऽजलः । भोयपे शरमदघाते व्यदोषिष्ठः पराचिते ॥१६६॥
 याजिनः प्राक्कशाधानाद् अघां वन्ताभिसायकम्^१ । श्रियन्ते न सहन्ते हि परिन्तुं सतेजसः ॥१६७॥
 हिमताः पश्चिमवादास्यां बद्धामंघाः^२ परस्परम् । पाति केचिदिवाचन्तो^३ 'युध्यन्ते स्म चिरं ह्याः ॥१६८॥
 सन्द्भुतास्त^४ सम्पुञ्जलसन्तोलासिपत्रकैः । नभस्नहरन्नाद् भ्रमस्तदा पल्लवितो यथा ॥१६९॥
 पठितान्यसिनिघांतात् सुदूरं स्वामिनां कवचित् । भूयान्मनाः^५ शिरास्युच्चैः श्रन्वेष्टं वा श्रमहृयाः ॥१७०॥
 पुनून् बिभृद्गगान्त्ववाग्दवान् हृषया कोऽपि नावघोत्^६ । ते 'स्वदन्तमुररेव कृदाः प्राघनन्^७ परस्परम् ॥
 'यंतामत्रावशिष्टाह्राः^८ 'मण्डलाग्रंश्चिरं क्रुवा । लोहदण्डं रिवात्तण्डः धीरा युयुचिरे घुरि ॥१७१॥
 शिरः^९ 'प्रहरणेनुग्यो^{१०} 'उपश्यन्नाग्न्यं प्रकुर्वता । सर्वरोगनिराविद्धो^{११} 'दृष्ट्वा^{१२} परचादयुद्धं^{१३} सः ॥१७२॥
 ह्यान् प्रतिक्रमोद्भूत्य^{१४} य इस्तत्क पिशोयकम्^{१५} । श्रयुध्यत पुनः सृष्टुं तदो द्विगुणयद्रपम् ॥१७४॥
 जयोऽग्रान् सानुजस्तावदाविष्टस्य यमाहृतिः^{१६} । कष्टीरवनिवाहृत् ह्यमस्युद्यतः^{१७} श्रुया ॥१७५॥
 बाह्यगता^{१८} तन्नालोक्त्य कल्पान्तज्वालिभोवणम्^{१९} । चित्रेण विद्विद्धवाली चेतैव स्ववलाभ्युधिम्^{२०} ॥

से भयंकर हो रहा था ॥१६५॥ उस युद्धमें पृथिवीपर जो भयंकर वाणोंका समूह पड़ा हुआ था उसमें तलवारोंकी परस्परकी चोटमें निकले हुए फुलियोंमें अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी ॥१६६॥ घोड़े घोड़ोंकी चोटके पहले ही वाणोंके मामने दौड़ रहे थे सो ठीक ही हैं क्योंकि तेजस्वी पुरुष मर जाते हैं परन्तु परामभव महन नहीं करते ॥१६७॥ परस्पर एक दूसरेपर शोधित हो पिछके पंरामे लड़े हुए कितने ही घोड़े चिरकालतक इन प्रकार युद्ध कर रहे थे मानो अपने स्वामीकी रक्षा ही कर रहे हों ॥१६८॥ उस समय ऊपर उठाई हुई और रुधिरमें रगी हुई तलवाररूपी चंचल पत्तोंसे आकाशरूपी वृक्ष ऐमा मुशोमित हो रहा था मानो उसपर फिरसे नवीन पत्ते निकल आये हों ॥१६९॥ कहींपर खाली पीठ लिये हुए घोड़े इन प्रकार दौड़ रहे थे मानो तलवारकी चोटमें बहुत दूर पड़े हुए अपने स्वामियोंके गिर ही खोज रहे हों ॥१७०॥ घोड़ोंको बिना सीमके पशु मानकर दयामे कोई नहीं मारता था परन्तु वे क्रोधित होकर दांत और खुदोंमें एक दूसरेको मारने थे ॥१७१॥ उस युद्धमें कितने ही योद्धा क्रोधित होकर अगण्ड लोहेके डंडेके समान जिनमें दाममात्र ही शेष रह गया है ऐसी तलवारोंमें चिरकाल तक युद्ध करते रहे थे ॥१७२॥ अन्य कोई योद्धा, अच्छा करनेवाली गिरकी चोटमें यद्यपि कुछ देव नहीं मक रहा था तथापि गयेकी पीछेकी नमोमें गिरकी जुड़ा हुआ देखकर वह फिर भी युद्ध कर रहा था ॥१७३॥ उस समय कितने ही योद्धा अपने कपिनीयंक नामक धनुषमें घोड़ोंको ताड़ित कर युद्धको द्विगुणित करने हुए अच्छी तरह लड़ रहे थे ॥१७४॥ इतनेमें ही तलवार हाथमें लिये हुए जयकुमार अपने छोटे भाइयोंके साथ माय यमराज मरोक्षा आमार प्रकट कर और मिहके समान घोड़ेपर सवार होकर क्रोधसे आगे बढ़ा ॥१७५॥ कल्पान्त कालकी अग्निके समान भयंकर जयकुमारको घोड़ेपर सवार हुआ देखकर धनुके घोड़ोंकी पतिन लहर के समान अपने येनारूपी ममुद्धमें जा घुमी ॥१७६॥ जिनपर पनावाएं नृत्य कर रही हैं और

१ ज्वलति स्म । २ भूमायुचिने । ३ आयुषग्याभिमुखम् । ४ बटभृष । ५ गहन । ६ युद्धने स० । ७ नास्त्रम-न० । ८ स्वामिरहितपुष्टा । ९ न हन्ति स्म । १० ते च दत्त-न० । ११ ध्वनि स्म । १२ वेणुमात्रावशिष्टस्वरुपे । १३ शोशयते । 'शोशयती मन्त्राय कश्चापः शशाङ्क' इत्यनिधानात् । १४ मन्त्रकथनेन । १५ त्रिज्वलनि नातोऽसु । १६ सत्यं पश्चिममिपानित । १७ गन्-पश्चिमभाग कल्पान्तानाशय । १८ युयुषे । १९ गहापीठ्य । 'प्रतिघात महायै स्याद् वार्ताहृत्तगण्यो' इत्यनिधानात् । २० धानविशेषः । ध्वजित इत्यर्थ । २१ यमाहृतिम् स० । २२ उट्टनामि मत् । २३ अत्रमासोद्भवम् । २४ प्रनयानिबद्धमच्छरम् । २५ शत्रुवाजिमर्हः । २६ श्रयण्यगाधम् ।

चिरात् पर्यायमासाद्य^१ प्रनृत्यत्केतवो रथाः । जघिभिर्ध्याजिभिर्ध्वंसा प्रापायन् विद्विपः^३ प्रति ॥१७७॥
 निशेषेहे^२तिपूर्णे^४ रथेषु रथनायकाः । सुतां^५ 'जगर्जराशुद्वय पिञ्जरः'^६ कुञ्जतरिभिः ॥१७८॥
 चक्रसप्तदशमिषटशयासुमासकदंभे । रथकटपाश्चरन्ति स्म तत्राद्यौ मन्वपोतयत्^७ ॥१७९॥
 कन्तासिप्रासद्यक्रादिसङ्कोणै^८ षणितक्रमा^९ । अक्रामन् कृच्छुकृच्छ्रेण रणे रथतुरङ्गामाः ॥१८०॥
 तदा सन्नद्धसंप्रकृतसर्वायुधभृतां^{१०} रथम् । सङ्ग्राम्य^{११} वृषभं^{१२} वाऽर्कः समाहृष्टपरप्रभः ॥१८१॥
 पुरोज्वलत्समुत्सर्पच्छरतीक्ष्णांशुसन्ततिः । शयसन्तमसं भिन्दन् बालार्कमजयवज्रपः ॥१८२॥
^{१३}मण्डलाप्रसमुत्सेष्टदुष्टास्रः शस्त्रवामवित् । जयो भिषजमन्वयः^{१४} शयुरात्म्यं समुद्धरन् ॥१८३॥
 ध्वजस्योपरि धूमो वा तेनाकृष्टो^{१५} नु^{१६} सायकः । पपात तापमापाद्य सूचयन्नशुभं द्वियाम् ॥१८४॥
 ध्वजदण्डान् समाखण्डय विद्विषो^{१७} ज्वीतपीषयान् । कुर्वन् सर्वान् स^{१८} निर्वजान् सोमवशध्वजायते ॥१८५॥
 विच्छिन्नकेतवः केचित् क्षणं तस्यमुता इव । प्राणैर्न प्राणिनः^{१९} किन्तु मानप्राणा हि मानिनः ॥१८६॥
 प्रज्वलन्तं^{२०} जयन्तं ते जयं तं सोऽभक्षमाः । सह सर्वेऽपि^{२१} सम्पेतुः^{२२} अभ्यग्निं शलना यथा^{२३} ॥१८७॥

वेगशाली घोड़े जिनमें जुते हुए हैं ऐसे रथ चिरकालमें अपना नम्वर (वारी) पाकर शत्रुओंके प्रति दौड़ने लगे ॥१७७॥ रथोंके स्वामी, सम्पूर्ण शस्त्रोंसे भरे हुए रथोंपर सवार हो पित्रो मे वन्द हुए सिंहोंकी तुलना धारण करते हुए गरज रहे थे ॥१७८॥ उस युद्धमें पहियोंके संघट्टन से बिते हुए मुरदोंके खून और मासकी कीचड़में रथोंके समूह ऐसे चल रहे थे मानो किसी समूह में छोटी छोटी नावें ही चल रही हो ॥१७९॥ बरछा, तलवार, भाले और चक्र आदिसे भरे हुए युद्धक्षेत्रमें घायल पैरोंवाले रथके घोड़े बड़े कष्टसे चल रहे थे ॥१८०॥ उसी समय तैयार हुए तथा जुड़े हुए सब प्रकारके शस्त्रोंसे व्याप्त रथपर आरूढ़ होनेसे जिसका पराक्रम वृषभ राशिपर आरूढ़ हुए सूर्यके समान बढ़ रहा है, जिसके आगे चलते हुए वाणरूपी तीक्ष्ण किरणों का समूह प्रकाशमान हो रहा है और जो शत्रुरूपी अन्धकारको भेदन कर रहा है ऐसे उस जयकुमारने उदय होता हुआ बाल-सूर्य भी जीत लिया था ॥१८१-१८२॥ अथवा वह जयकुमार किसी अच्छे वैद्य या डाक्टरका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार वैद्य शस्त्रकी नोकसे विगडा हुआ खून निकाल देता है उसी प्रकार वह जयकुमार भी तलवारकी नोकसे दुष्ट-शत्रुओंका खून निकाल रहा था, जिस प्रकार वैद्य शस्त्र चलानेकी क्रियाको जानता है वसी प्रकार वह जयकुमार भी शस्त्र चलानेकी क्रिया जानता था और वैद्य जिस प्रकार शल्यको निकाल देता है उसी प्रकार जयकुमार भी शत्रुरूपी शल्यको निकाल रहा था ॥१८३॥ उसके द्वारा चलाये हुए वाण शत्रुओंको संताप उत्पन्नकर अशुभकी सूचना देते हुए धूमकेतुके समान उनकी ध्वजाओंपर पड़ रहे थे ॥१८४॥ उस समय शत्रुओंकी ध्वजाओंके दंडोंको रंड सड़ कर सब शत्रुओंको पीड़ितहीन तथा वंशरहित करता हुआ जयकुमार सोमवंशकी ध्वजाके समान आवरण कर रहा था ॥१८५॥ जिनकी पताकाए छिन्नभिन्न हो गईं हैं ऐसे कितने ही शत्रु शगमरके त्रिये मरे हुएके समान एडे थे सो ठीक ही है क्योंकि प्राणोंसे ही प्राणी नहीं गिने जाते किन्तु अभिमानी मनुष्य अभिमानको ही प्राण गमभने है ॥१८६॥ अच्छी तरह जलते हुए

१ जयगम् । 'पर्यायोश्चमरे प्रमे' इत्यभिधानात् । २ प्राप्य । ३ विद्विपं प्रति ख० । ४ जाम्बु । ५ गाम्यम् । ६ गर्जन्ति स्म । ७ पिञ्जरं, ख० । ८ रथणे । ९ मन्दनीरिव । १० दानपाश । ११ गजरोह । १२ गम्प्राय । १३ वृषभगग्निभिः । १४ कृत्वालेन समुल्लुप्तदुष्टाय । १५ अनुगत-दान् । १६ गतो यदि गम् । मन्वीय ख० । १६ समुमुष्ट । १७ इव । १८ अनुगत । १९ जय । २० न जीवन्ति । २१ जयमीति जयन् गम् । २२ अभिमुगमागता । २३ अग्निमभि पतन्ना । २४ वायवा २५ ख० ।

सन्नद्वयान्दनाश्चण्डास्तदा हेमाद्रगदाशय । कोदध्वास्फालनध्वाननिदहहरित^१ कृपा ॥१८८॥
 यवयुर्वह्निर्वाटि वा बाणवर्षि प्रति द्विप । यावत्ते^२ तदयता^३ नैयुस्तावदादिष्टतोद्यमा ॥१८९॥
 निदध्यानन्तसेनादिशरजाल रणाणवे । स्पन्दनाशचोदयामासु पोताम्बा यानरहस^४ ॥१९०॥
 बलद्वयास्त्रसमृद्धसन्तुपन्नाशुदाक्षणिम्^५ । पेतुर्वाहा^६ पर^७ तेजस्तेजस्वी सहने वयम् ॥१९१॥
 अग्नोऽग्न्य खण्डयन्ति स्म तेषा दास्त्राणि तद्रणे । नैकनम्पपरान्प्रागुद्दिचित्रमस्त्रेषु कौशलम् ॥१९२॥
 न नृता व्रणिता नैव न जयो न पराजय^८ । युद्धमानेष्वहो तेषु नाहवोऽप्याहवायने ॥१९३॥
 युद्ध्वाप्येव चिर श्रेकुं जेतु ते परस्परम् । जय सेनादये तस्मिन् जयावन्नेन दुर्लभं ॥१९४॥
 अन्तर्हासो जय सर्वं ततदाऽलोषय सौलया । शरं सद्य्वादयामास संन्य पुत्रस्य चक्रिण^९ ॥१९५॥
 निष्पन्दीभूतमालोषय चक्रिसूनु^{१०} स्वसाप्रनम् । रक्तोत्पलदलच्छायायाम् उच्चिद्य^{११} नयनत्विया ॥१९६॥
 जय परस्य नो मेऽय जयो^{१२} जयमह रणे । त्रिध्वस्य^{१३} भुवने शूद्रम् अकल्प स्थापये यदा ॥१९७॥
 विदध्यामद्य नायेन्दुप्रसरद्वशवर्द्धनम् । जयलक्ष्मीर्वशीकृत्य विधेयान्नेऽशुना सुखम्^{१४} ॥१९८॥

और सबको जीतते हुए उम जयकुमारको सहन करनेके लिये असमर्थ होकर वे मव शत्रु उमपर इस प्रकार टट पडे मानो अग्निपर पतंगे ही पड रहे हो ॥१८७॥ इतनेमें ही जिनके रथ तैयार हैं, जो बडे मोघी हैं, जिन्होंने मोघमे धनुष खींचकर उनके शरोंसे सब दिशाए भर दी है और शत्रु जबतक अपने लक्ष्यतक पहुंचने भी न पाये थे कि तबतक ही जिन्होंने अपना सब उद्यम प्रकट कर दिखाया है ऐसे हेमागद आदि राजकुमार शत्रुओपर अग्नि वर्षाके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥१८८-१८९॥ वे अनन्तमेन आदिके बाणोंका समूह रोककर बायुके समान वेगवात्रे रथोंको रणरंगी समुद्रमें जटाओके समान दौडाने लगे ॥१९०॥ वे रथोंके घोडे दोनों सेनाओं सम्बन्धी शस्त्रोंके मघट्टने उत्पन्न हुई अग्निपर पड रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वी मनुष्य दूसरेका तेज कैसे सह सकता है ? ॥१९१॥ उम युद्धमें दोनों सेनाओंके दास एक दूसरेको सड लड कर देते थे, एक भी शत्रु शत्रुओं तक नहीं पहुंचने पाता था सो ठीक ही है क्योंकि उनकी अस्त्रोंके चलानेकी कुशलता आश्चर्य करनेवाली थी ॥१९२॥ आश्चर्य है कि उन योद्धाओंके मुद्दे करते हुए न तो कोई मरा था, न किसीको घाव लगा था, न किसीकी जीन हुई थी और न किसीकी हार ही हुई थी, और तो क्या उनका वह युद्ध भी युद्ध सा नहीं मालूम होता था ॥१९३॥ इस प्रकार बहुत समय तक युद्ध करके भी वे एक दूसरे को जीत नहीं सके थे सो ठीक ही है क्योंकि उन दोनों सेनाओंमें जयकुमारके मिवाय और किसी को विजय प्राप्त होना दुर्लभ था ॥१९४॥ उन समय यह सब देखकर मन ही मन हमने हुए जयकुमारके चक्रवर्तिके पुत्र-अर्जुनीतिके गव सेनाको लीलापूर्वक ही बाणोंमे ढक दी थी ॥१९५॥ अपनी सेनाको चेष्टा रहित देखकर चक्रवर्तिके पुत्र-अर्जुनीतिके अपने नेत्रोंकी कात्तिके लाल कमलके दलकी कान्तिको जीतना हुआ अर्थात् मोघमे लाल लाल आँसे करता हुआ बहने लगा कि आज शत्रुको जीत नहीं हो सकती, मेरी ही जीत होगी, मैं युद्धमें जयकुमारको मारकर समासमें बलान्त कात्तिके टिकनेवाला युद्ध यथा स्थापित करूँगा तथा आज ही बढने हुए नाय-

१ दिग । 'दिगन्तु करुण बाष्ठा आगास्व हरितरव ता' । अग्निमानान । २ रथिन । ३ रणाङ्गण अग्निमुख समागय मुष्यताम् । ४ न गच्छन्ति स्म । ५ यामुवन्ति । ६ अग्निम् । ७ जम् । ८ अथा । ९ अक्षत् । १० एव गम्भमि । ११ जयकुमारान् । १२ अग्निप्ययर्थ । १३ न । म नो जय इति दुध्वनि । १४ जयकुमारम् । १५ विनास्य । अविनापति दुध्वनि । १६ जयय लमी इति दुध्वनि । १७ मुग्मिति दुध्वनि । 'आ०' प्रती अग्निमिति दुध्वनि ।

बुवन् स कल्पनादुष्टमिति^१ स्वानिष्टसूचनम् । द्विषं प्रचोदयामास श्रुधेयाजयमात्मनः^१ ॥१६६॥
 'प्रतिवतसमुद्भूतपश्चाद्गतपताकिकाः । मन्दं मन्दं वयणद्वघ्ण्टाः कुण्ठितस्वबलोत्सयाः ॥२००॥
 सशुष्यद्वातनिष्पन्दकटवीनाननभियः । निर्वाणालातनिर्भासिनिशोयास्त्रभराक्षमाः ॥२०१॥
 'आधोरणं कृतोत्साहः' कुच्छकुच्छेण चोदिताः । 'श्रात्रन्दमिय कुर्वन्तः कुण्ठितैः कण्ठगर्जितैः ॥२०२॥
 भीतभीता^१ 'युधोज्येयश्च चिह्नैरश्रुभसचिभिः । गजा गताजवाश्चेत्पुरचता इव जडयमाः ॥२०३॥
 मन्दमन्दं प्रकृत्यैव^१ मन्दा युद्धमदान्मृगाः^१ । जग्मुर्निहृत्कुः 'भद्रास्तद्वप्राणुभसूचनम्' ॥२०४॥
 विजयीषीविपुष्यस्य यूया प्रणिधयो^१ यथा । तयाऽर्ककीर्तयन्नुणा^१ ते^१ गजेषु नियोजिताः ॥२०५॥
 लङ्घयन्नेत्रयोर्दीप्त्या^१ पारिभद्रोद्गमच्छविम् । प्रकटभ्रुकुटीबन्धसन्धानितशरासनः ॥२०६॥
 रिपुं कृषितभोगीन्द्रसफटाटोप^१ भयङ्करः । कुर्वन्विलोक^१ नातप्ततीव्रनाराचगोघरम् ॥२०७॥
 गिरीन्द्रशिखराकारमाहृष हरिविक्रम । गजेन्द्रं विजयाद्दार्ढ्यं गर्जन्मेघ^१ स्वरस्तदा ॥२०८॥

वश और मोमवशका छेदन करूंगा, विजयलक्ष्मी मुझे अभी वशकर सुखी करेगी, इस प्रकार अभिप्रायसे दुष्ट तथा अपना ही अनिष्ट सूचित करनेवाला वचन कहते हुए अर्ककीर्तने क्रोधसे अपने पराजयके समान अपना हाथी आगे बढ़ाया ॥१९६-१९९॥ प्रतिकूल वायु चलनेसे जिनकी ध्वजाएँ पीछेकी ओर उड़ रही हैं, जिनके घटा धीरे धीरे बज रहे हैं, जिन्होंने अपनी सेनाके उत्सवको कुठित कर दिया है, गण्डस्थलके मदका निष्पन्द सूख जानेसे जिनके मुखकी शोभा मलिन हो गई है, जिनकी शोभा बुझे हुए अलातचक्रके समान है, जो सम्पूर्ण शस्त्रोका भार धारण करनेमें असमर्थ है, उत्साह दिलाते हुए महावत जिन्हें बड़ी कठिनाईसे ले जा रहे हैं, जो कुण्ठित हुई कण्ठकी गर्जनामें मानो रुदन ही कर रहे हैं, जो युद्धसे तथा अशुभको सूचित करनेवाले अन्य अनेक चिह्नोंसे अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं और जिनका वेग नष्ट हो गया है ऐसे हाथी चलते फिरते पर्वतोंके समान चल रहे थे ॥२००-२०३॥ मन्द जातिके हाथी स्वभावसे ही मन्द मन्द चल रहे थे, मृग जातिके हाथी युद्धके भयसे धीरे धीरे जा रहे थे और भद्र जातिके हाथी बिना ही कारण धीरे धीरे चल रहे थे परन्तु युद्धमें उनका धीरे-धीरे चलना अशुभको सूचित करनेवाला था ॥२०४॥ जिस प्रकार विजयकी इच्छा करनेवाले किन्तु पुण्यहीन मनुष्यके गुप्त सेवक व्यर्थ हो जाते हैं—अपना काम करनेमें सफल नहीं हो पाते हैं उसी प्रकार अर्ककीर्तिके लिये उन हाथियोंसे कही हुई महावत लोगोंकी प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो रही थीं ॥२०५॥ उधर जो अपने दोनों नेत्रोंकी कान्तिसे कल्पवृक्षके फूलकी कान्तिकी जीत रहा है, जिनमें अपनी भौंहोंकी रचनाके समान ही प्रकटरूपसे बाण चढे धनुषका आकार बनाया है, त्रोधित हुए महा सर्पके समान जिसका शरीर कुछ ऊपर उठा हुआ है और इसीलिये जो भयवर हैं, जो अपने धनुषको अपनी दृष्टि तथा तपे हुए बाणोका निशाना बना रहा है, एव मिहृके ममान जिनका पराक्रम है ऐसा मेघस्वर जयकुमार उस समय गर्जता हुआ मेरुकी शिखर के ममान आकारवाले विजयार्थ नामके उत्तम हाथीपर सवार होकर, अनुबूल वायु चलनेसे

१ अभिप्रायदुष्टम् । २ रिजानिष्ट । ३ अपजयम् । ४ प्रतिकूलवायु । ५ मन्दमन्द-अ०, प०, प०, ६०, प० । ६ मन्दवयण । ७ नष्टो-मुत्रगदना । ८ हस्तगर्ज । ९ वृत्तोद्योग । १० रोदनम् । ११ अधिभ्रीता । १२ गद्यमानम् । १३ स्वभावेनैव जडा । मन्दा इति जातिभेदात् । १४ मृग-गदना मृगजगत्पदम् । १५ भद्रजातय । १६ मन्दगमनम् । १७ वाञ्छा चरात् । 'प्रणिधिं प्रार्थने चरं' इत्यभिधानात् । १८ गजराशेहाणाम् ।-भीनये नृणा स० । १९ मनोरथा । २० मन्दास्तु-मच्छब्दम् । 'परिभद्रो निष्पन्दरमन्दार पारिजानक ।' इत्यभिधानात् । २१ दोषी भयङ्कर स०, प० । २२ रिजानिष्टनामैव अक्षरनीष्टगवाणान्नेया विषयम् । २३ जयकुमार ।

अनुकूलानिलोत्क्षिप्तपुर सपद्भ्यजानुर्कं । भान्तद्विपारिविशान्तविख्यातादृढयोधने ॥२०६॥
 प्रस्फुरच्छस्त्रसद्व्रातदीप्तिदीपितविद्धमुखं । धूतदुन्दुभिस्तद्भ्रानवहृद्व हितभीयणं ॥२१०॥
 घट्टामधुरनिर्घोषनिर्मग्नभ्रुवनत्रयं । सद्य समुत्तरद्वरैरपि सिहान् जिगीषुभि ॥२११॥
 प्रापद्युद्धोत्सुकं सार्द्धं गर्जेविजयसूचिभि । क्षयबेलानिलोद्धृतसिन्धुवेत्ता विद्धधयन् ॥२१२॥
 महाहास्तिकं विस्तारस्फूलनीलवलाहकं । समन्तात्सम्पतच्छट्टकं समूहसहस्रानव ॥२१३॥
 प्रोत्खातासिलताविद्युत्समूहसितभासुरं । नानानवमहाध्वानयम्भोरधनर्गजित ॥२१४॥
 नवलोलहितपूराम्बुनिद्वधरणोत्तल । नितातनिष्ठुरापातमुद्गरादानिसन्तति ॥२१५॥
 चलसितपताकालिबलाकाच्छादिताम्बर । सट्टग्राम प्रावृषो तदमीन् शरोपाम्बुपत्तदा ॥२१६॥
 सूत्रि सर्वसंग्रहसूत्रसमराडगणे । सेनयो सर्वशास्त्राणा व्यत्ययो बहुशोऽभवत् ॥२१७॥
 निद्वद्धमुखं मृध्वोर्धमध्यमद्युध्वजादुर्कं । सेनाद्वयविनिर्मुक्तं शस्त्रैर्घात्री च सा तता ॥२१८॥
 जयलक्ष्मीं नवोद्गाया ॥ सपत्नीमिच्छता नवाम् । तदाकंकीर्तिमुद्दिद्य जयेनाचोद्यतं द्विप ॥२१९॥
 अष्टचन्द्रा पुरोभूय भूय प्रावृष्टशक्तय ॥ क्षपकं बाह्यतां भेदा न्यवहस्तं निगदशव ॥ ॥

जिनकी ध्वजाओके वस्त्र उडकर आगेकी ओर जा रहे हैं, आनमण करते हुए सिंहको समान प्रसिद्ध पराक्रमवाले योद्धा जिनपर बैठे हैं, देदीप्यमान शस्त्रोके समूहकी दीप्तिमे जिन्होंने समस्त दिशाओके मुख प्रकाशित कर दिये हैं, वजते हुए नगाडोके बड़े बड़े शस्त्रोमे बढ़ी हुई गर्जनाओ से जो भयकर हैं, घटाओके मधुर शब्दोमे जिन्होंने तीनों लोक भर दिये हैं, तत्काल उठते हुए अहंकारसे जो सिंहको भी जीतना चाहते हैं और जो विजयकी सूचना करनेवाले हैं ऐसे हाथियों के साथ, प्रलय बालकी बायुते उठी हुई समद्वयी लहरोको उल्लंघन करता हुआ युद्धकी उत्तठा से आ पहुँचा ॥२०६-२१२॥ जिसमें बड़े बड़े हाथियोके समूहका विस्तार ही बड़े बड़े काले बादल है, चारो ओरसे पडते हुए वाणोके समूह ही मयूर है, ऊपर उठाई हुई तत्वाररूपी विजलियोकी चमकसे जो प्रकाशमान हो रहा है, अनेक नगाडोके बड़े बड़े शब्द ही जिसमें मेघोकी गभीर गर्जनाए है, नवीन शिखरके प्रवाहरूपी जलसे जिसमें पृथ्वी तल भर गया है, वही निदंयता के साथ पडते हुए मुद्गर ही जिसमें बजोँरा समूह है और फहराती हुई सपेद पताकाओके समूहरूप बगलाओमे जिसमें समस्त आकाश आच्छादित हो रहा है ऐमा वह युद्ध उस समय यपोद्धतुकी सम्पूर्ण घोभाको घुष्ट कर रहा था ॥२१३-२१६॥ चतुर्दशतक सत्र योद्धाओ के समूहसे धिरे हुए युद्धके मैदानमें दोनो सेनाओमे सब शस्त्रोना अनेक बार व्यत्यय (बदला बदली) हुआ था ॥२१७॥ उस समय ऊपरका आकाश गीघोके समूहमे भर गया था, मध्य भाग फहराती हुई ध्वजाओके वस्त्रोसे भर गया था और पृथिवी दोनो सेनाओके द्वारा छोटे हुए शस्त्रोसे भर गई थी ॥२१८॥ उसी समय जयलक्ष्मीको नवीन विवाहिता सुलोचना की नई सौन प्रानेकी इच्छा करते हुए जयकुमारने अर्जुनीनियो उद्देश्य कर अपना हाथी आगे बढ़ाया ॥२१९॥ जिस प्रकार बर्माने भेद क्षपकथेणीवाके मुनिको रोकते हैं उसी प्रकार अष्टचन्द्र नामके विद्याधर जिनकी वि शक्ति पहले देगनेमें आई थी फिरने सामने आकर

१ आशान्तगिह्वरानमप्रसिद्धारणाधोरणं । २ तादित । ३ ध्याज । ४ प्रनयराज । ५ विनद-
 धयन् स०, म०, अ०, प०, ह०, म० । ६ गजगमूह । ७ वाचमय । ८ गम्यायुधममूमयूरकं । ९ स्फुरण ।
 १० नूतारका । ११ द्रुपता । १२ विषयच्छिता । १३ पुलाति सम । १४ व्यत्यय इति गम्भीरिन
 इतरण हरणम् । ('ता०' प्रती व्यत्यय इतरणम्भिन इतरण हरणम्) १५ ध्याज । तथा स० ।
 १६ नूतनविवाहिताया गुवाचनाना । १७ प्रणि । १८ अथ नूना । १९ पुन पुन । २० पूर्व
 दृष्टपरानमा । २१ शरशश्याम्बु । २२ इव । २३ वनाम् । २४ जयम् । २५ तात्तुनिच्छर ।

जयोऽपि सुचिरात्प्रान्तप्रतिपक्षो व्यदोप्यलम् । लब्धेय रथेन वह्निं उत्साहान्निसखोऽपि ॥२२१॥
 तदोत्पन्नबलख्यातगजाद्रिशिखरस्थिता । मोक्षुमारभिरं राजराजसिंहा १ परस्परम् ॥२२२॥
 श्रमोपरदनोद्भिन्नो तत्र कौचिद् व्यसू गजो । चिर परस्परपारो भ्रायाता यमताद्रिवत् ॥
 समन्तत शरंश्छद्वा रेजुराजो गजाधिपा । क्षुद्रवेणुगणाकोणसञ्चरद् गिरिसिन्धुभा ॥२२४॥
 दानिनो मानिनस्तुष्टया कामवन्तोऽन्तकोपमा । महान्त सर्वसत्त्वेष्वेव युद्धघ्नतां कथं गजा ॥२२५॥
 मृगैर्गजैरिवापातं माप्रभर्नैर्भयाद् द्विषं । स्वसंन्रमेय सङ्क्षुण्णं धिक् स्थोत्य भीतचेतसाम् ॥२२६॥
 नि शक्तीन् शक्तिभिः शक्ताः शपताश्चक्रुः शक्तकान् ।
 शक्तिवृत्तान् शक्ताश्च नि शपतीन् धिग्धिगूनताम् ॥२२७॥
 शस्त्रनिर्भ्रंसवर्द्धगा निमीलितधिलोचना । सम्यक् सहतसरम्भा सम्भावितपराक्रमा ॥२२८॥
 बुद्धेष्वं बद्धपत्यदकास्तवत्सर्वपरिच्छदा । समत्याक्षुरसच्छूरा निघाय हृदयेऽहंत ॥२२९॥

जयकुमारको रोकने लगे ॥२२०॥ जिस प्रकार बहुतसे इन्धनको पाकर वायुसे उद्दीपित हुई अग्नि देदीप्यमान हो उठती है उसी प्रकार उत्साहरूपी वायुसे बड़ा हुआ वह जयकुमार भी बहुत देरमें शत्रुको पाकर अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था ॥२२१॥ उस समय दोनों सेनाओं में प्रसिद्ध हाथीरूपी पर्वतोंकी शिखरपर बैठे हुए अनेक राजारूपी सिंहोंने भी परस्पर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया था ॥२२२॥ उस युद्धमें एक दूसरेके दातोंके प्रहारसे विदीर्ण होकर मरे हुए कोई दो हाथी मिले हुए दो पर्वतोंके समान एक दूसरेके आधारपर ही चिरकाल तक खड़े रहे थे ॥२२३॥ चारों ओरसे वाणोंसे ढके हुए बड़े बड़े हाथी उस युद्धमें छोटे छोटे वासों से व्याप्त और चलते हुए पर्वतोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२२४॥ जो दानी हैं—जिनसे मद भर रहा है मानी है ऊंचे हैं, यमराजके समान है और सब जीवोंसे बड़े हैं ऐसे भद्र जातिके हाथी भला क्यों न युद्ध करते ? ॥२२५॥ जिस प्रकार हरिण भयभीत होकर भागते हैं उसी प्रकार मृगजातिके हाथी भी प्रारम्भमें ही पराजित होकर भयसे भागने लगे थे और उससे उन्होंने अपनी ही सेनाका चूर्ण कर दिया था इससे कहना पडता है कि भीरु हृदयवाले मनुष्यों के स्थूलपनको धिक्कार हो ॥२२६॥ शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धा अपने शक्ति नामक शस्त्रमें, जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र नहीं है ऐसे शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धाओंको शक्तिरहित—सामर्थ्यहीन कर रहे थे और जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र था वित्तु स्वयं अशक्त—सामर्थ्यरहित थे उन्हें भी शक्तिरहित—शक्ति नामक शस्त्रसे रहित कर रहे थे—ऊनका शस्त्र छुड़ा रहे थे इसलिये आचार्य कहते हैं कि ऊनता अर्थात् आवश्यक सामग्रीकी कमीको धिक्कार हो ॥२२७॥ जिनके समस्त अंग शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो गये हैं, नेत्र बन्द हो गये हैं, जिन्होंने युद्धकी इच्छावा अच्छी तरह सबोच कर लिया है, जो अपना पराक्रम दिखा चुके हैं, जिन्होंने बुद्धिमें ही पत्यवासन बाध लिया है और सब परिग्रह छोड़ दिये हैं ऐसे कितने ही

१ रथम् इधनम् । लब्धेर्वेधेधन ल०, म०, अ०, प०, स०, इ०, द० । २ उत्साहवायुना समुद्र । ३ राजराजसुरया । गिरां इति ध्वनि । ४ विगतप्राणी । ५ अयोन्यावतम्बनी । ६ यमकगिरिवत् । ७ गण्डवदगिरि—न०, अ०, प०, स०, इ०, म० । ८ आरोहणानुबन्ना इत्यथ । ९ युद्धघ्नो ल० । १० मृगजातिभिः । भययान्वेषणीयेर्षा । ११ हरिणैरिव । १२ प्रथमदिशापामिव । १३ सचूपाय भवन् । १४ शत्रुसमुपगृह्णन् । १५ शत्रुयायुधैः । १६ समर्थाः । १७ समर्थान् । १८ शत्रुयायुध युक्तान् । १९ शत्रुयायुधगृह्णान् । २० सामर्थीवृत्तताम् । २१ सम्यक्पुष्टतामरम्भा । २२ मनसैव इत्यप्यत्रागता । २३ गण्डवत् इत्यत्रवत् । २४ प्राणान् ।

कस्यचिद् शोधसंहारः स्मृतिश्च परमेष्ठिनि । 'निष्ठायामायुषोऽप्राप्तौद् भ्रम्यासत् किं न जायते' ॥२३०॥
 हृदि नाराचनिभिन्ना वक्रात् प्रवदसुकृत्तवा । 'शिवाकृष्टान्तरान्ता' पर्यंतव्यस्तपत्करा' ॥२३१॥
 मूढप्रपञ्चानिलोच्छिन्नमूर्च्छा संप्राप्तसत्तवा । समापाय हि ते शुद्धा श्रद्धा' शूरपति' गता ॥२३२॥
 छिन्नैश्चक्रेण शूराणां शिरोऽम्भोजैर्विकासिभि । 'रणाद्गणोर्षचित्तो बाभात् नृत्वं' जयजयधिय ॥ २३३॥
 स्वामिसम्मानदानादिमहोष'कृतिनिर्भरा । प्राप्याधमर्गता' प्राणं सेवा सप्पाद्य सेवका ॥२३४॥
 स्वप्राणव्ययसन्नुत्तद्भूमूर्द्धभि' स्वभूमूत' । सव्ययुजान् विधायाये घन्या 'नैर्दृष्ट्यमागमन् ॥
 जयमूर्त्ता' द्रुतपेतु श्रविभुवतजया' शरा । अष्टचन्द्रान् प्रति प्रोच्यं 'प्रदीप्योत्कोपमा' 'समम् ॥२३५॥
 'जयप्रहितशस्त्राली' तैर्निषिद्धा च विद्यया । ज्वरती परितदशस्त्रान्' परिवेषाट्टितिवंभी ॥२३७॥
 विश्वविद्याधराधीशम्' प्रादिराजात्मजसदा । 'द्विषो' 'निशेषयोशोपानित्याह सुनिर्म रया ॥२३८॥
 सोर्षि' सर्वे खगं साद्धं निर्द्वैतारातिविभ्रम । बह्विबृष्टिभिवाकाशे धययं शरत्तत्तितम् ॥२३९॥

शूरवीरोने हृदयमें अर्हन्त भगवान्को स्थापन कर प्राण छोडे थे ॥२२८-२२९॥ किमी योद्धा के आयुकी समाप्तिके समय त्रौब शान्त हो गया था और परमेष्ठियोका स्मरण होने लगा था मो ठीक है क्योंकि अभ्याससे क्या क्या मिद्ध नहीं होता ? ॥२३०॥ जिनके हृदय बाणोसे छिन्न भिन्न हो गये हैं, मुँहमे रधिरका प्रवाह बह रहा है, सियारोने जिनकी अतरियोकी तातोके अन्तभाग तकको खींच लिया है और जिनके हाथ पैर फट गये हैं ऐसे कितने ही योद्धा गीवोके पणोकी हवासे मूर्च्छीरहित होकर कुछ कुछ मचेत हो गये थे और शुद्ध श्रद्धा धारणकर शूरगति-स्वर्ग गतिको प्राप्त हुए थे ॥२३१-२३२॥ चक्र नामक दस्त्रमे बटे हुए शूरवीरोके प्रफुल्लित मुखकी कमत्रोसे भरी हुई वह युद्धकी भूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जयकुमारकी विजयश्रीके नृत्योमे ही सुशोभित हो रही हो ॥२३३॥ स्वामीके द्वारा पाये हुए आदर सत्कार आदि बडे बडे उपकारोसे दरे हुए कितने ही सेवक लोग अपने प्राणो द्वारा स्वामीकी सेवाकर ऊरुग अवस्थाको प्राप्त हुए थे और कितने ही घन्य सेवक, अपने अपने प्राण देकर सतुष्ट हुए शत्रु राजाओमे अपने स्वामियोकी पूजा प्रतिष्ठा कराकर वजं रहित हुए थे । भावार्थ-कितने ही सेवक लडते लडते मर गये थे और कितने ही शत्रुओको मारकर वृत्तार्थ हुए थे ॥२३४-२३५॥ जिन्होंने विजय प्राप्त करना छोडा नहीं है और जो अपनी बडी भारी कान्तिमे उरराके समान जान पडने हैं ऐसे जयकुमारके छोडे हुए बाण अष्टचन्द्र विद्याधरोने पाम बहुत शीघ्र एक माय पड रहे थे ॥२३६॥ जयशुमारके द्वारा छोडी हुई शस्त्रोकी पकितयो को उन विद्याधरोने अपने विद्या बलमे रोक दिया था । इसलिये वे उन के चारो ओर जन्मी हुई खडी थी और ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो चन्द्रमाओके चारो ओर गो शक्ति ही लग रही हो ॥२३७॥ उमी समय आदि मग्नाट्-भक्तके पुत्र अर्ककीनिते बटे प्राथमे सब विद्याधरोके अधिपति मुनिमिमे कहा कि तुम समन्त शत्रुओको नष्ट करो ॥२३८॥ और शत्रुओके पराक्रमको नष्ट करनेवाला मुनिमिकुमार भी अग्नि वर्षासे समान जावाममें बाणोके समूहकी

१ पश्चिमाणी गायाम् । २ रणे । ३ माध्यन्तम् । ४ जयशूरशूरवीरानामुत्था । अत्रगतस्यावा
 वा । ५ तत्राणा-० । ६ विहितसत्तवाय । ७ शूराम् । ८ स्वयम् । इतिपत्रवक्ता पतिनिव्यप ।
 ९ गारुडगोर्षिचन-० । १० नर्तनाय । ११ जयशूराम्य जयशूराम्या । १२ महारागागिनिम् ।
 १३ शूरप्राजिताम् । १४ शत्रुमूर्त्तम् । १५ निजन्तान् । १६ शत्रुदहनम् । शूरप्राजितायाम् ।
 १७ जयशूराम्यायाम् । १८ अचक्रजया । १९ शरीण्याशरामा म० । २० युष्मा । २१ जयशूर-
 नायिन् । २२ शत्रुनि । २३ अष्टचक्रानपत्ति मृगाङ्गान् पतिम् । २४ शरार्ति । २५ शत्रु ।
 २६ विनाय । २७ मुनिम् ।

भीकरा किङ्कराकारा^१ श्वन्तो रुद्रविडमुखा । कास्कान् शृणाम नेतीव सुतीक्ष्णा शरवोपतन् ॥
 मेघप्रभो जयादेशाद् इभेन्द्र^२ वा भृगाधिप । आक्रम्य विक्रमो शस्त्रं^३ शरीरत्सित^४ विहायति ॥२४१॥
 तमोऽग्निगजमेधाविविद्या सुनमिपोजिता । तुच्छोऽकृत्यं स^५ विच्छिद्य (?) सहसा भास्करादिभि^६ २४२
 जयपुण्ड्रव्याहृतयो विजिग्ये^७ खचराधिपम् । सद्यपामेऽनुगुणे ब्रूवे^८ क्षोदिमा बहिमेति^९ न ॥२४३॥
 प्रबुद्धप्रावृद्धारम्भसम्भूतान्भोधराशलिम् । विलद्व्ययनेकपानीक^{१०} कौमार^{११} जयमारुणत्^{१२} ॥२४४॥
 जयोऽप्यभिमुखीकृत्य विजयाद् गजाधिपम् । धीरोद्धत^{१३} हया प्राप्तं धीरोदात्तो^{१४}ऽन्नवीदिदम् ॥२४५॥
 न्यायमार्गा प्रवर्त्यन्ते सम्पक् सर्वेऽपि चक्रिणा । तेषामेभिर्दुराचारं^{१५} कृतस्त्व पारिपत्यिक^{१६} ॥२४६॥
 बुद्धिमास्त्वं तवाहार्यं बुद्धित्वमपि^{१७} द्वयणम् । कुभार नीयसे^{१८} पापंस्तृतीयं^{१९} तद्विगर्हत्तम्^{२०} ॥२४७॥
 अन्त कोपोऽप्ययं^{२१} पापंमहान् न्यायितो षुथा । सर्वतन्त्रक्षयो भर्तुं सहसा येन^{२२} तावृक्ष ॥२४८॥

वर्षा करने लगा ॥२३९॥ जो अत्यन्त भयकर है, किङ्करोके समान काम करनेवाले है, वेगके कारण शब्द कर रहे है और जिन्होंने सब दिशाएँ रोक ली है ऐसे वे तीक्ष्ण वाण हम किस किसको नष्ट नहीं करें ? अर्थात् सभीको नष्ट करें यही सोचकर मानो सब सेना पर पड़ रहेये ॥२४०॥ जिम प्रभार सिंह हाथीपर आक्रमण करता है उसी प्रकार खूब पराक्रमी मेघप्रभ नामके विद्याधर ने जयकुमारकी आज्ञासे उस सुनमिपर आक्रमण कर उसे शस्त्रोके द्वारा आकाशमें ही रोक लिया ॥२४१॥ मेघप्रभने सुनमिके द्वारा चलाये हुए तमोवाण, अग्नि वाण, गजवाण और मेघ वाण आदि विद्यामयी वाणोको सूर्य वाण, जल वाण, सिंह वाण और पवन वाण आदि अनेक विद्यामयी वाणोसे तुच्छ समझकर बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया ॥२४२॥ इस प्रकार मेघप्रभ ने उम युद्धमें जयकुमारके पुण्योदयसे विद्याधरोके अधिपति सुनमिको शीघ्र ही जीत लिया गो ठीक ही है क्योंकि देवके अनुकूल रहनेपर छोटापन और वडप्पनका व्यवहार नहीं होता है । भावायं-भाग्यने अनुकूल होनेपर छोटा भी जीत जाता है और बडा भी हार जाता है ॥२४३॥ बडी हुई चर्षाश्रुतुके प्रारम्भमें इकट्ठी हुई मेघमालाके समान हाथियोकी सेनाको उचरनकर अर्चनीतिके पक्षने लोगोने जयकुमारको रोक लिया ॥२४४॥ इधर धीर और उदात्त जयकुमारने भी अपना विजयाधं नामका श्रेष्ठ हाथी शोधसे प्राप्त हुए धीर तथा उद्धत अर्चनीतिके मामने चशवर उमसे इस प्रकार पहना शुरू किया ॥२४५॥ बट बटने लगा कि चशवर्षीके द्वारा सभी न्याय मार्ग अच्छी तरह चलाये जाते है परन्तु इन दुराचारी लोगोने गुभे उन न्यायमार्गोका शत्रु बना दिया है ॥२४६॥ हे कुमार, यद्यपि तू बुद्धिमान है परन्तु आहार्य बुद्धिवात्रा होना अर्थात् दूसरे के बहे अनुमार कार्य करना यह तेरा दोष भी है । इसके विवायत् पाप या पापी गुणोके अनुकूल हो रहा है नो यद् भी तेरा तीमरा दूषण है ॥२४७॥ इन पापी लोगोने मेरे अन्त वर्णमें यह बडा भारी दोष व्यर्थ ही उत्पन्न कर दिया है जिमने भग्न महागजको मय मेनाता ऐमा एक माय क्षय हो रहा है ॥२४८॥

ग्राहवोऽग्निर्हापोऽग्निं^१ ममाद्य भन्ता सृष्ट । अक्रोतिश्चावयो^२ रस्मिन्नाकल्पस्यायिनी ध्रुवम् ॥२४६॥
 च श्री सुतेषु राज्यस्य योग्यं त्वामेव मन्यते । स्वात्तस्यापि मनःपीडा न वेत्यन्यायवर्तनात् ॥२४७॥
^३द्रोण्यन्यायस्य भूमन्तस्तव चानास्ततः क्षणात् । दुष्टान् सत्तेचरान् सर्वान् बध्वाद्य भवतोऽप्ये ॥२४८॥
 नागमारुह्य 'तिष्ठ त्वं काष्ठात्' प्राणितो मया । अग्न्यापो हि परानूतिर्न तत्प्राणो^४ महीपत्नः ॥२४९॥
 कुमार, समरे हानिस्तवैव महती मया । हन्यात्मानमनुभक्तः^५ कः स तोदणासिना स्वयम् ॥२५०॥
 अन्वय इव सद्धमं प्रपकमरे^६दुदीरितम्^७ । 'प्राघातयितुमारणे गजेन त'^८ गतापिचम् ॥२५१॥
 तदा जरोम्यतिक्रुद्धो गजमुद्धविशारदः । नवभिद्विजयाद्धेन दन्तघातैरपातयत्^९ ॥२५२॥
 नवापि कृषितेभेन्नवदन्ताहतिक्षताः । अष्टचक्राक्रीतीनां प्रपेतुर्हृत्दन्तिनः ॥२५३॥
 चक्रिभूतोः पुनः सेनापतितोऽप्याद्^{१०}ध्रुवत्सया^{११} । 'तदा तदापुर्वा'^{१२} 'रक्षदह'^{१३}क्षयमपद्यत् ॥२५४॥
 सोढुमकः एतत्तेजो^{१४} जयत्यागश्चतुर्भुजः । जयन् जयोद्गो^{१५}मच्छायां संहृताज्ञोपदीपितः ॥२५५॥
^{१६}शरिखोत्रैरारुह्यैर्विभुक्त्नः पचरान् प्रति । जयार्थे^{१७} स्वाह्वांसलनः^{१८} क्षरत्सन्नरन्जितैः ॥२५६॥
 गतप्रतापः^{१९} कृच्छ्रात्मा सर्वेनप्राप्रिपस्तदा । पपात कातरौभूय करालम्बितभ्रुः ॥२५७॥

मेरा आपके माय जो युद्ध चल रहा है वह आज ही वन्द कर देने योग्य है क्योंकि इससे हम दोनोंकी कल्पान्तकाल तक टिकनेवाली अपकीर्ति अवश्य होगी ॥२४९॥ चतुर्वर्ती सब पुत्रो में राज्यके योग्य आपको ही मानता हूँ, क्या आपके इस अन्यायमें प्रवृत्ति करनेमें उनके मनको पीड़ा नहीं होगी ? ॥२५०॥ भरत महागजके न्यायमार्गका द्रोह करनेवाले तुम्हारे इन सभी दुष्ट पुरुषोंको विद्याधरोके माय माय बाधकर आज क्षणभरमें ही तुम्हें गीप देता हूँ ॥२५१॥ मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप हाथीपर चढ़े हुए यहाँ लण भर ठहरिये क्योंकि महा-पुरुषोंका अन्याय करना ही तिरस्कार करना है, अन्यायका त्याग करना तिरस्कार नहीं है ॥२५२॥ हे कुमार, मेरे माय युद्ध करनेमें तुम्हारी ही सबसे बड़ी हानि है क्योंकि ऐसा कौन सावधान है जो पानी तलवारमें अपनी आत्माका स्वयं घात करे ॥२५३॥ जिस प्रकार अमव्य जीव सभीचीन धर्मको नहीं सुनता उसी प्रकार जयकुमारके कहे हुए वचन अर्ककीर्तिने नहीं सुने और अपने हाथीसे जयकुमारके उत्तम हाथीपर प्रहार करवाना शुरू कर दिया ॥२५४॥ उम ममय हाथियोंके माय युद्ध करनेमें अत्यन्त निपुण जयकुमार भी अधिक क्रोधित हो उठा, उमने अपने विजयाद्य हाथीके द्वारा दानोंके नौ प्रहारोंमें अर्ककीर्ति तथा अष्टचन्द्र विद्याधरो के नौ हाथियोंको धायल करवा दिया ॥२५५॥ अर्ककीर्ति तथा अष्ट चन्द्र विद्याधरोके नौके नौ ही हाथी क्रोधित हुए विजयाद्य हाथीके दाँतोंके नौ प्रहारोंमें धायल होकर जमीनपर गिर पड़े ॥२५६॥ जिस समय जयकुमारने युद्धकी इच्छाने अर्ककीर्तिकी सेनाको चारों ओरसे घेरा उसी समय मानो उमकी आयुकी रक्षा करता हुआ ही दिन अन्त हो गया ॥२५७॥ जो अपनी कान्तिसे जामौनके फूटकी कान्तिको जीत रहा है, जिम्ने अपनी सब किरणें सकोच ली हैं, जो लाल लाल किरणोंमें ऐम जान पड़ता है मानो जयकुमारने विद्याधरोके प्रति जो वाण छोड़े थे वे सब ही विद्याधरोके निकलते हुए रुधिरमें अनुरजित होकर उमके शरीरमें जा लगे हों, जिमका सब प्रताप नष्ट हो गया है, जो क्रूर है और सबके नेत्रोंको अप्रिय है ऐसा वह दुष्ट

१ आह्व परि-त० । २ युद्धे मति । ३ हनुमिच्छन् । ४ तिष्ठान ल०, इ०, प०, ज०, स० ।

५ क्षणपर्यन्तम् । ६ अन्यायत्याग । ७ महात्मन । ८ बुद्धिमान् । ९ एवमुक्तवचन श्रुत्वा । १० मारयितुम् । ११ अर्ककीर्ति । १२-रथानयन् ल०, अ०, प०, स०, इ० । १३ अगमत् । १४ बोद्ध-मिच्छया । १५ यदा इ०, अ०, प० । १६ इव । १७ रक्षतीति रक्षत् । १८ दिवम् । १९ जयकुमार-म्यम् । २० कुमुम् । २१ विरले । २२ जयकुमारमन्वयिभि । २३ स्रवन् । २४ दुःखचारिस्वभावः ।

अर्ककीर्ति स्वकीर्ति वा मत्वा रोषेण भास्वर । अस्त जयजयस्याधात् फुवंन् कालघिलम्बनम् ॥२६१॥
 'हृदुटाशोकोऽपि सद्बृत्तोऽप्यगादस्तमहर्षति । आश्रित्य वारुणो रवत को न गच्छत्यधोगतिम् ॥
 उदये र्घाघतच्छायो' व्याप्य विश्व प्रतापवान् । 'दिनेनेनोऽप्यनदयत्' वस्तिष्ठेत्तोयकर पर ॥२६३॥
 इन' स्वच्छानि विच्छान' तापहारीणि या भृशम् । द्रष्टु सरास्यनिच्छन्ति' वञ्जाक्षीणि शुचा 'व्यु
 'जयनिस्त्रशनिस्त्रशनिवातपतितान् लगान् । 'प्राविशन्निजनीडानि' वीक्षित विशमा रगा ० २६४
 स प्रताप प्रभा साऽस्य सा हि सर्वैकभूज्यता । पात 'प्रत्यहमर्कस्य'प्यतक्यं 'कर्कशो विधि' ॥२६६॥
 कीर्योपमानता यातो यातोऽर्कदेवदृश्यताम् । उपमेयस्य का वातैत्यवाशीद्विवृषा गण ॥२६७॥

सूर्य मानो जयकुमारके तेजको न सह सकनेके कारण ही कातर हो अपने करो-किरणोसे (हृद्यो से) अस्ताचलको पकडकर नीचे गिर पडा ॥२५८-२६०॥ वह सूर्य अर्ककीर्तिको अपनी कीर्ति मानकर क्रोधसे जयकुमारके जीतमे विलम्ब करता हुआ अस्त हो गया ॥२६१॥ जिसका आलोक प्रकाश (ज्ञान) स्पष्ट है और जो सद्बृत्त-गोल (सदाचारी) है ऐसे सूर्यको भी अस्त होना पडा सो ठीक ही है क्योंकि वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा अथवा मद्यका सेवन करनेवाला ऐसा कौन है जो नीचेको न जाता हो-अस्त न होता हो-नरक न जाता हो । भावार्थ-जिम प्रकार मद्य पीनेवाला ज्ञानी और सदाचारी होकर भी नीचे गतिको जाता है उसी प्रकार सूर्य भी प्रकाशमान और गोल होकर भी पश्चिम दिशामे जाकर अस्त हो जाता है ॥२६२॥ उष्य कालसे लेकर निरन्तर जिसकी कान्ति बढ़ती रहती है और जो ससारमें व्याप्त होकर तपता रहता है ऐसा तीव्रकर अर्थात् तीव्र किरणोवाला सूर्य भी जब एक ही दिनमें नष्ट हो गया तब फिर भला तीव्रकर अर्थात् अधिक टैक्स लगानेवाला और सताप देनेवाला अन्य कौन है जो ससारमें ठहर सके ॥२६३॥ सतापको दूर करनेवाले स्वच्छ सरोवर अतिशय कातिरहित सूर्यको देखना नहीं चाहते थे इसलिये ही मानो उन्होंने शोकसे अपने कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये थे ॥२६४॥ सब पक्षी अपने-अपने घोंसलोमे इस प्रकार चले गये थे मानो वे जयकुमार की तीक्ष्ण तलवारकी चोटसे गिरे हुए विद्याधरोको देखनेके लिये समर्थ नहीं हो सके हो ॥२६५॥ सूर्यका असाधारण प्रताप है, असाधारण कान्ति है और असाधारण रूपसे ही सब उसकी पूजा करते हैं फिर भी प्रतिदिन उसका पतन हो जाता है इससे जान पडता है कि निष्ठुर देव तर्कका विषय नहीं है । भावार्थ- ऐसा बयो करता है इस प्रवारका प्रश्न देवके विषयमें नहीं हो सकता है ॥२६६॥ उस समय विद्वानोका समूह ऐसा कह रहा था कि जब अर्ककीर्तिके साथ उपमानता को प्राप्त हुआ सूर्य भी अदृश्य हो गया तब उपमेयकी क्या बात है ? भावार्थ-अर्ककीर्तिके श्रेये मूर्खकी उम्मा दी जाती है परन्तु जब मूर्ख ही अस्त हो गया तब अर्ककीर्तिकी तो बात ही

१ नित्रनामधेयमिव । २ पीड्या । ३ जयकुमारस्य । ४ व्यनतोद्योतोऽपि । व्यपतदसंनोऽपीति ध्वनि । 'आलोको दर्शनोद्यातो' इत्यभिधानात् । ५ सद्बृत्तुनमण्डनशीति । सच्चारित्रोऽपीति ध्वनि । ६ रवि । ७ पश्चिमागाम् । मद्यमिति ध्वनि । ८ अरण अनुत्वनदन । ९ उदगमे अभ्युदय च । १० बानि लो उच्चाव । 'छाया रयाशनगामाव प्रतिविम्बार्चयापितो । पातनोत्वोचयो बानितच्छाभापत्तिपु रम्या' इत्यभिधानात् । ११ दिवगत च । १२ सूर्यं प्रभुदय । इन सूर्यं प्रभो इत्यभिधानात् । १३ अन्त्याऽस्तम् । १४ सूर्यम् । १५ विगतकान्तिम् । १६ अनिच्छुनि । १७ दर्पित स्म । १८ प्रत्युत्सारस्य शिनिगामप्रपातन पतितान् । १९ प्रविष्टा । २० आत्मीयवृत्तायात् । वृत्तायो नीडम् विषयम् । इत्यभिधानात् । २० पतितम् । २१ गताम् । २२ नूट । २३ शिविति कर्म च ।

दुःखरोक्ष्यः 'करंस्तोक्ष्यः सत्तप्तनिजमण्डलः । प्रलं कुवलयध्वंसो दुस्मृतो दुर्मतिस्तुतः ॥२६८॥
 निस्सहायो निरात्मबोध्यमोडा परतेजसाम् । सिंहराशिचलः धूरः सहस्रोच्छ्रित्यं मूढगः ॥२६९॥
 पापरोगी मरत्रेयो रविविषममार्गः । रक्तवर्क सकलद्वेषो १० 'विषितादोऽग्रमाप्रगः ॥२७०॥
 'सता वृज्जन मित्रेण' गृहणा 'ज्यस्तनाथयत् । बहुदोषो' निषगवर्षेद्विचक्रित्य इवातुरः ॥२७१॥
 तदा बलद्वयामात्याः श्रित्वा बदरयो नृपो । इत्ययम्यं निशापटुम् श्रुनुवद्य ११ न्यपेक्षयन् ॥२७२॥
 तान्याः १२ तत्रैव सा रात्रिर्नैतु निष्या रणादृगणे । भडतीव्रव्रणासह्यवेदनारावनीपणे ॥२७३॥

क्या है ? ॥२६७॥ जो बड़ी कठिननामे देखा जाता है, अपनी किरणोमे तीक्ष्ण-ऊष्ण है, जिमने अपना मण्डल भी संतप्त कर लिया है, जो कुवलय अर्थान् कुमुदोंका ध्वंस करनेवाला है, बड़े कष्टमे जिमका उदय होता है अथवा जिमका पुत्र-घनि दुष्ट है, दुर्बुद्धि लोग ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो महायरहित है, आधाररहित है, जो चन्द्र आदि ज्योतिषियोंका तेज मह नहीं मकता, सिंह राशिपर है, चंचल है, क्रूर है, सहसा उछलकर मस्तकपर चलता है, पाप रोगी है, दूमरेके महारेमे चलता है, विषममार्ग-आनाममें चलता है, रक्तवर्क-लाल किरणोवाला है, मकल-कलामहित-चन्द्रमाके साथ दोष करनेवाला है, दिशाशोको बढ़ानेवाला है और पररहित-अर्धण नामका सारथि जिमके आगे चलता है, ऐमा सूर्य, बुधग्रह और गृह (बृहस्पति ग्रह) नामके सज्जन मित्रोंके साथ होनेपर भी अच्छे अच्छे वैद्य भी जिसका इलाज नहीं कर सकते ऐमे बहुदोषी-अनेक दोषवाले (पञ्चमें रात्रिवाले) रोगीके समान अस्त हो गया मो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट होनेके कारण जिमकी ओर कोई देख भी नहीं सकता है, जो अधिक टैक्स वमूल करनेके कारण तीक्ष्ण है, जो अपने परिवारके लोगोंको भी सताप देनेवाला है । कुवलय अर्थान् पृथिवीमण्डलका खूब नाश करनेवाला है, जिमका पुत्र खराब है, मूर्ख ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो महायक मित्रोंमे रहित है, दुर्ग आदि आचारोंसे रहित है, अन्य प्रतापी राजाओंके प्रतापको सहन नहीं करता है, सिंह राशिमें जिमका जन्म हुआ है, चञ्चल है, निर्दय है, जरा-जरा सी बातोंमें उछलकर गिरपर सवार होता है-अमहनशील है, बुरे रोगोंमे घिरा हुआ है, दूमरेके कहे अनुमार चलता है, विषम मार्ग-अन्याय मार्गमें चलता है, रक्तवर्क-जिसे मूनकी बीमारी है, जो सबके माय द्वेष करता है, जिमकी तृष्णा बड़ी हुई है और विना श्रमके प्रत्येक कार्य में आगे आगे आता है, ऐमे अनेक दोषवाले राजाका लाइलाज रोगीकी तरह बुद्धिमान् मित्र और मज्जन गृहके साथ होनेपर भी नाश होना ही है ॥२६८-२७१॥ उम समय दोनों मनाशो के शत्रियोंने श्रेयित हुए उन दोनों राजाओंके पाम जाकर रात्रिमें युद्ध करना अधर्म है ऐमा नियम कर उन्हें युद्ध करनेसे रोका ॥२७२॥ उन दोनोंने योद्धाओंके तीव्र धावोंकी असह्य वेदनाजनि चिन्लाहटने भयकर उमी रणके मैदानमें रात्रि व्यतीत करना अच्छा समझा

१-स्त्रीध्या ७०, ५०, ५०, ६०, ७० । २-पटोन्धति अगोचनपुनश्च । ३-व्यथोटा ट० । ४-प्रवीणाना
 गान्ना च नेत्रसाम् । ५-सिंहराशिस्थितः । ६-ऊर्ध्वंगो भूत्वा । ७-गिरसा गच्छन् । ८-कूटरोगी ।
 ९-रक्तकिरण । रक्तरोगी च रक्ताना पात्रको वा । १०-चन्द्रद्वेषी सकलचन्द्रद्वेषी च । ११-बद्धिउद्वि-
 बद्धिनाभिलापरच । १२-अनुबंधगामी । 'भ्रूमृतोऽरणोऽनू' इत्यभिधानात् । अश्रमाश्रयामी च ।
 १३-उत्कृष्टेन विद्यमानेनेन च । १४-सोममूनेन । विदुषा च । १५-बृहस्पतिना, उपदेगनेन सत्त्वोऽ-
 पीत्यर्थः । १६-प्रचुररात्रिः । नातदोषवादच । १७-व्याधिपीडितः । १८-निर्वन्ध कृत्वा । १९-अर्क-
 शीनिजयवृत्ताराभ्याम् ।

प्रतीची येन' जायेऽहम्' 'अगित्तमहस्करम् । इति सन्ध्याच्छलेना'हस्तत्र' कोपमिवागतम् ॥२७४॥
 लज्जे' सम्पर्कमर्केण कर्तुं' लोचनगोचरे' । इयं वेलेति वा सन्ध्याऽप्यन्वगादात्तविग्रहा' ॥२७५॥
 'अगावह' १० पुरस्कृत्य मामर्को रात्रिगामिना । तेन ११ पश्चात्कृतेऽतीव शोकात् सन्ध्या व्यलीयत' ॥२७६॥
 तमः सर्व' तदा ध्यापत् श्वचिल्लोतेन गृहादिषु । शत्रुशोषं न कुर्वन्ति तत एव विचक्षणाः ॥२७७॥
 श्रवकासं प्रकाशस्य यथात्मानमधात् पुरा । तथैव तमसः पश्चाद् धिङ्महद्वहं विहायस' ॥२७८॥
 'तमोबलान् प्रदोषाद्विप्रकाशाः प्रविदीपिरे' ११ जिनेनेव विनेनेन' १२ कलौ कष्टं कुलिङ्गिनः ॥२७९॥
 तनोविमोहित' १३ विश्व' १४ प्रबोधयितुमुद्भूतः । विधिनेव सुधाकम्भो १५ दीर्घाणां विघ्नरुचयो ॥२८०॥
 चन्द्रमाः १६ करनालोभिः श्रपिबद् बहलं तमः । बृद्धकासं १७ क्षयं १८ हातुं धूमपानमिवाचरन् ॥२८१॥
 निःशोषं नाशकदन्तुं ध्वान्तं हरिणलाञ्छनः । १९ असुद्धमण्डलो हन्यान्निष्प्रतापः कथं रिपुन् ॥२८२॥
 विधुं तत्करसंस्पर्शाद् भृशमासन् विकासिभिः । सरस्यो ह्लादयन्त्यो २० वा मुदा कुमुदलोचनैः ॥२८३॥

॥२७३॥ सध्याके वहानेसे दिन लाल लाल हो गया, मानो जिसमे में पैदा हुआ हूँ उस सूर्यको यह पश्चिम दिशा निगल रही है यही समझकर मानो उसे क्रोध आ गया हो ॥२७४॥ मैं सबके देखते हुए सूर्यके साथ सम्बन्ध करनेके लिये लज्जित होती हूँ यही समझकर मानो सध्याकी बेला भी शरीर धारणकर सूर्यके पीछे पीछे चली गई ॥२७५॥ सूर्य जब दिनके पास गया था तब मुझे आगे कर गया था परन्तु अब रात्रिके पास जाते समय उसने मुझे पीछे छोड़ दिया है इस शोकसे ही मानो सध्या वही विलीन हो गई थी ॥२७६॥ दिनके समय जो अधकार किन्ही गुफा आदि स्थानोमे छिप गया था उस समय वह सबका सब आकर फँल गया था सो ठीक ही है क्योंकि चतुर लोग इसलिये ही शत्रुको बाकी नहीं छोडते हैं—उसे समूल नष्ट कर देते हैं ॥२७७॥ आकाशने जिस प्रकार पहले प्रकाशके लिये अपनेमें स्थान दिया था उसी प्रकार पीछेसे अन्धकारके लिये भी स्थान दे दिया इसलिये आचार्य कहते हैं कि आकारके इस बहष्पनको धिक्कार हो । भावार्थ—बड़ा होनेपर भी यदि योग्य-अयोग्यका ज्ञान न हुआ तो उसका बहष्पन किस कामका है ? ॥२७८॥ जिस प्रकार कलिकालमें जिनेन्द्रदेवके न होने मे अज्ञानके कारण अनेक कुलिङ्गियोंका प्रभाव फैलने लगता है उसी प्रकार उस समय सूर्यके न होनेसे अन्धकारके कारण अनेक दीपक आदिका प्रकाश फैलने लगा था ॥२७९॥

इतनेमें चन्द्रमाका उदय हुआ जो ऐसा जान पडता था मानो अन्धकारसे मोहित हुए ममन्त मंमारको जगानेके लिये विधाताने अमृतसे भरा हुआ चादीका कलश ही उठाया हो ॥२८०॥ उस समय चन्द्रमा अपनी किरणरूपी नालियोंके द्वारा गाढ अन्धकारको पी रहा था और उसमे ऐमा जान पडता था मानो जिसमें खामी बढी हुई है ऐसे क्षय रोगवा नाश करनेके लिये धूम्रपान ही कर रहा हो ॥२८१॥ चन्द्रमा सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट करनेके लिये समय नहीं हो सका था सो ठीक ही है क्योंकि जिनका मण्डल अमुद्ध है और जो प्रतापरहित है वह शत्रुओंको कैसे नष्ट कर सकता है ? ॥२८२॥ तालावोमें चन्द्रमाके किरणोके स्पर्शसे कुमुद मूत्र फूट रहे थे और उनमे वे ऐमे जान पडते थे मानो गिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोके द्वारा चन्द्रमा

१ अहस्करेण । २ प्रादुर्भवामि । ३ गिगति स्म । ४ दिवस । ५ प्रतीच्याम् । ६ हीवी भवति । ७ इष्टिविषये प्रदेने । बह्व्रतप्रदेने इत्यर्थ । ८ स्वीट्टनगरीरा । ९ आमच्छति स्म । १० दिष्यम् । ११ पृष्टे क्त्वाहमिति । १२ विषय गता । १३ सर्वं विद्व जगत् । १४ आशास्य । १५ तिमिरप्राकट्याम् । पक्षे आशानागतमर्त्यात् । १६ प्रवासान्ते स्म । १७ रविणा । १८ मूडीहृत् । १९ जगत् । २० मोक्षार्थं । २१ विरचनशीलिभिः । २२ कुम्भगतनिम् बृद्धप्रवाण वा । २३ शयन्यापिम् । २४ शयन्यापिम् । २५ मुद नयति वा ।

उत्थितः पितृकोऽमार्कं विद्युग्ण्डल्यं वोपरि । का जीविवेति निर्विण्णाः प्रायः प्रोपितयोपितः २८४
 सन्नचन्द्रवत्स्योच्चं स्मरस्य परितोषिणः । प्रदृहास इवाशेषं साप्रदचन्द्रतपोऽतत् ॥२८५॥
 रुडौ रागाद्गुरदिवसे प्रमत्तानो भावुभानुभिः । तदा चन्द्रिकया प्राच्यवृष्टचेवावर्द्धताद्गिनाम् ॥२८६॥
 'वृषिष्ठताना तया तापो नाभूद् भास्कररदिमभिः । ययाशुभिस्तु'पाराशोर्विचित्रा इष्यदाकृतयः ॥२८७॥
 लण्डनादेव^१ कान्ताना^२ ज्वलितो मदनानलः । 'जाज्वलौत्ययमे'तेने'त्यत्यजन्मनु'^३ कादचन ॥२८८॥
 व्याभिमानविध्वंसो नापरं मयुना विना । कलहान्तरिताः कादित्सलीभिरतिपापिताः^४ ॥२८९॥
 प्रेम न^५ कृत्रिमंनंतत् किमनेनेति^६ कादचन । दूरादेवात्यजन् स्निग्धाः श्राविका वाऽऽसवादिक्म्^७ ॥२९०॥
 मनु द्विगुणितस्वादु^८ पीतं कान्तकरापितम्^९ । कान्ताभिः 'कामदुर्वारमातद्गमदवर्द्धनम् ॥२९१॥
 इत्याविर्भावितानद्गारसात्ताः प्रियसद्गमात् । प्रीतिं वागीचरतीता स्वीचश्रुवंपदीक्षणा^{१०} ॥२९२॥

को हर्षमे प्रमत्त ही कर रहे हो । विशेष—इम श्लोकमें सरसी मद्यके स्त्रीलिङ्ग होने तथा कर मद्यके श्लिष्ट हो जानेसे यह अर्थ ध्वनित होता है कि जिस प्रकार स्त्रिया अपने पतियोंके हाथना स्पर्श पाकर प्रसन्न हुए नेत्रोमे उन्हें हर्षपूर्वक आनन्दित करती हैं उमी प्रकार सरसिया भी चन्द्रमाके कर अर्थात् किरणोंका स्पर्श पाकर प्रफुल्लित हुए कुमुदरूपी नेत्रोमे उमे हर्षपूर्वक आनन्दित कर रही थी ॥२८३॥ प्राय विरहिणी स्त्रिया यह सोच-मोचकर विरक्त हो रही थी कि यह चन्द्रमा हमारे गालपर फोडेके समान उठा है अर्थात् फोडेके समान दुःख देनेवाला है इसलिये अब जीवित रहनेमे क्या लाभ है ? ॥२८४॥ जिसे चन्द्रमाका बल प्राप्त हुआ है और इसीलिये जो जोरमे सतोप मना रहा है ऐसे कामदेवके अदृहासके समान चन्द्रमाका गाढ प्रकाश सत्र ओर फैल गया था ॥२८५॥ मनुष्योके हृदयमें उत्पन्न हुआ जो रागका अकूरा सूर्यकी किरणोंसे मुखता गया था वह भारी अथवा पूर्व दिशामे आनेवाली वर्षाके समान फेरी हुई चाँदनीमे उस समय खूब बढ़ने लगा था ॥२८६॥ गृण्णिता स्त्रियोको सूर्यकी किरणोंमे बैसा सताप नहीं हुआ था जैसा कि चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शमे हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थोंकी गमनिया विचित्र प्रकारकी होती है ॥२८७॥ प्रिय पतिके विरहमे ही जो कामरूपी अग्नि जल रही थी वह इस मद्यसे ही जल रही है ऐसा समझकर कितनी ही विरहिणी स्त्रियोने मद्य पीना छोडा दिया था ॥२८८॥ मद्यके सिवाय व्ययके अभिमानको नष्ट करने-वाला और कोई पदार्थ नहीं है यही सोचकर कितनी ही कलहान्तरिता स्त्रियोको उनकी सखियोने खूब मद्य पिलाया था ॥२८९॥ हमारा यह प्रेम बनावटी नहीं है इसलिये इस मद्यके पीनेमे क्या होगा ? यही समझकर कितनी ही प्रेमिकाओंने श्राविकाओंके ममान मद्य आदिको दूर से ही छोड दिया था ॥२९०॥ कितनी ही स्त्रिया कामदेवरूपी दुर्निवार हाथीके मदको बढाने-वाले स्वादिष्ट मद्यको पनिके हाथसे दिया जानेके कारण दूना पी गई थी ॥२९१॥ इस प्रकार जिनके कामना रस प्रसन्न हुआ है और जिनकी दृष्टि कुछ-कुछ तिरछी हो रही है ऐसी स्त्रियां

१ पिटवो ल०, अ०, इ०, म०, प० । पिटव रफोटकः । 'विस्फोट पिटवस्त्रिणु' इत्यभिधानान् । २ गलमण्डल्य । 'गलमण्डो मण्डमाला' इत्यभियानान् । ३ जीविनम् । ४ उद्वेगपरा । दुःखे तत्परा इत्यर्थः । ५ विमुक्तभलुंका म्रिय । ६ व्याप्नोति स्म । ७ प्रथमवृष्टया । ८ विरहिणीना योपिनाम् । ९ चन्द्रम्य । १० वियोगान् । ११ प्रियतमाना पुमान् । १२ मृग ज्वलति । १३ श्रावनि । १४ मध्येन । १५ मद्यम् । १६ मद्यपान कारिता । १७ अस्माक्म् । १८ मध्येन । १९ मद्यादिक्म् । २० त्रिगुणित स्वादु इत्यपि पाठ । २१ प्रियतमवरेण दत्तम् । २२ कामदुर्वार-ट० । पूरयितुमशक्यः । २३ कामलोचना ।

तत्र काचिद् प्रियं बोध्यं कयाशेषं द्विपञ्चरं । स्वयं कामशरैरक्षताद्गो चित्रमभूद् व्यसुः ॥२६३॥
 'क्षतरं नृपलक्ष्याङ्गं बोध्यं कान्तमजानती । परा परासुतां' 'प्रापञ्जात्वाऽऽत्मविहितवर्णः' ॥२६४॥
 मया निवारितोऽप्यायां वीरलक्ष्मीप्रियः प्रिय । तत्कठोरव्रणरेवं जातोऽसीति मृता ॥२६५॥
 मां निवार्यं सहाय्यान्तीं कीर्तिं स्वीकर्तुमागमः ॥ । निमलेति विषयस्तो ॥ जानन्नपि बहिश्चरीम् ॥२६६॥
 स्थिता तत्रैव सा कीर्तिः किं वदन्ति ॥ नरोऽन्तरम् । इति सासु ॥ यमुक्त्वाऽप्या ॥ प्रायासीत् ॥ प्रियपद्मतिम्
 न किं निवारिताऽप्यायां ॥ त्वया साद्धं विचेतना ॥ सन्निधौ मे किमेवं त्वां नयन्ति गणिकाधमाः ॥२६७॥
 'अस्तु किं ॥ यातमद्यापि तत्र ॥ त्वां न हराणि ॥ किम् । विलप्यं वं कलालापा काचित् ॥ कान्तानुगाऽभवत् २६८॥
 शरनिर्मलसर्वाङ्गः कीर्लितासुरिवापरः । कान्तागमं प्रतीक्ष्यास्त लोचनस्थितजीवितः ॥३००॥
 कोपदष्टविमुवतीळं कान्तमालोक्य कामिनी । वीरलक्ष्म्या कृतासूया क्षणकोपाऽसुमत्यजत् ॥३०१॥
 हृदि निर्भिन्ननाराचो मत्वा कान्तां हृदि स्थिताम् । हा मृतेयं वराकीति ॥ प्राणान् कश्चिद् व्यसजंयत् ॥३०२॥

पतिके समागम होनेसे वचनातीत आनन्दका अनुभव कर रही थी ॥२९२॥ उन स्त्रियोमेसे कोई स्त्री अपने पतिको शत्रुओंके वाणोंसे मरा हुआ देखकर आश्चर्य है कि कामके वाणोंसे शरीर क्षत न होनेपर भी स्वयं मर गई थी ॥२९३॥ अन्य कोई अजान स्त्री यावोंसे जिसके अग उभाग ठीक-ठीक नहीं दिखाई देते ऐसे अपने प्रिय पतिको देखकर और उन्हें अपने द्वारा ही किये हुए घाव समझकर प्राणरहित हो गई थी ॥२९४॥ हे प्रिय, तुम्हें वीर लक्ष्मी बहुत ही प्यारी थी इसीलिये मेरे रोकनेपर भी तुम उसके पास आये थे अब उसी वीरलक्ष्मीके वठोर पावोंसे तुम्हारी यह दशा हो रही है यह कहती हुई कोई अन्य स्त्री मर गई थी ॥२९५॥ हे प्रिय, मैं उमी समय आपके साथ आ रही थी परन्तु आप मुझे रोककर कीर्तिको स्वीकार करनेके लिये यहाँ आये थे, यद्यपि आप यह जानते थे कि कीर्ति सदा बाहर घूमनेवाली (स्वीरणी-व्यभिचारिणी) है तथापि यह दुःख है ऐसा आपको भ्रम हो गया, अब देखिये, वह कीर्ति वहीं रह गई, हाय, क्या मनुष्य हृदय अथवा विरहको जानते हैं ? इस प्रकार ईर्ष्याके साथ कहकर अन्यकोई स्त्री अपने पतिके मार्गपर जा पहुँची थी अर्थात् पतिको मरा हुआ देखकर स्वयं भी मर गई थी ॥२९६-२९७॥ हे प्रिय, रोकी जाकर भी मैं मूर्खा आपके साथ क्यों नहीं आई ? क्या मेरे ममोप रहते ये नीच वेश्याएँ (स्वर्गकी अप्सराएँ) इस प्रकार तुम्हें ले जातीं ? गैर, अब भी क्या गया ? क्या मैं वहाँ उनसे तुम्हें न छीन लूंगी ! इस प्रकार विलाप कर मरु र मरवाली कोई स्त्री अपने पतिकी अनुगामिनी हुई थी अर्थात् वह भी मर गई थी ॥२९८-२९९॥ जिनका सत्र शरीर वाणोंसे छिन्न भिन्न हो गया है, और इसलिये ही जिसके प्राण कीर्तिनमे हो गये हैं तथा नेत्रोंमें ही जिनका जीवन अदया हुआ है ऐसा कोई योद्धा अपनी स्त्री के आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥३००॥ जिसने प्रोधमे अपने ओठ डसकर छोड़ दिये हैं ऐसे अपने पतिको देगकर क्षणभर प्रोध करनी और वीरलक्ष्मीके माथ ईर्ष्या करती हुई किसी अन्य स्त्रीने अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥३०१॥ जिनके हृदयमें याण घुस गया है ऐसे किसी योद्धाने

१ शान्त्येवावागच्छति प्रिय धृत्वेत्यर्थः । २ वैरिणां वाणैरुपनिक्षिप्तम् । ३ विलसप्राणः । ४ वर्णः । ५ पञ्चवक्त्रम् । ६ प्राण म०, अ०, श०, इ०, प० । ७ आत्मना नरदन्तवृत्तप्रतीः । ८ आगमः । ९ वीरलक्ष्म्या निष्कृतम् । १० ममारः । ११ आगच्छ । १२ वैरिणी नीतः । यन्निपत इत्यर्थः । १३ विदित्वा म० । १४ मर मनुष्याः अन्यैरं विरहम् । शरीरपरिमिदि पाठे उरामनुष्यम् । १५ अनुया मतिं यथा भवति यथा । १६ आगाम् । १७ विदित्वा मय मार्गम् । मृगिमित्यर्थः । १८ आगच्छम् । १९ वरावष्टम् । २० अमृत्युदेवत्वम् । २१ भवतु वा । २२ मयम् । २३ स्वयं । २४ अपि तु लगान्ते । २५ विदित्वा मय मार्गम् । वाग्यारमस्तेन शरवर्णोऽभूदित्यर्थः । २६ मय प्राणान् व्यसजंयत् म० ।

शस्त्रसभिन्नसर्वाङ्गम् अन्तकी नेतुमागत । कान्ता चिन्तापर कन्तुस्तद्वस्तादहृतापरम् ॥३०३॥
 कण्ठे चालिद्विगत प्रेमशोकाभ्या प्रियया पर । ध्यात्वा ता त्यक्तदेहोऽग्रात् निर्वाणं सन्नपस्तया ॥३०४॥
 श्वं स्वर्गे किं किमत्रैव सद्गमो नो न सदाय । तत्र त्व बहुवातोऽथ रमेऽयेत्याह सन्नतम् ॥
 अत्र वाञ्छुन् वासोऽस्तु कितया चिन्तयावयो । वियोग क्वापि नास्तीति कान्ता कान्तमतर्पयत् ॥३०६॥
 सन्नतो वीरलक्ष्मीं च कीर्तिं चैहिं चिरायुषा । हन्तु मामेव कामोऽयमिति कान्ताऽवददुषा ॥३०७॥
 जयस्य विजय प्राणस्तवैवैतद् विनिश्चितम् । सन्नतावद्य यास्यावो दिवमित्यब्रवीत् परा ॥३०८॥
 धारा पीप्सास्तव त्व च सयुक्तेष्वतिशोतत् । तत्र चिन्तातसारोऽसि पुरुषेभ्यो भय तव ॥३०९॥
 प्रायसा सायका काम त्वमप्यत्माकमन्तक । इति काम समुद्दिश्य खण्डिता स्वगतं जगु ॥३१०॥
 सा रात्रिरिति संत्लापं प्रेमप्राणरनीयत । तावत् सन्ध्याऽगता रागाद् राक्षसीवैभित्तु रणम् ॥३११॥

अपनी स्त्रीको अपने हृदयमें स्थित मानकर तथा हाय, यह वैचारी इस वाणसे व्यर्थ ही मरी जा रही है ऐसा समझकर शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥३०२॥ जिसका सब शरीर यस्त्रोमे छिन्न भिन्न हो गया है ऐंमे किसी अन्य योद्धाको यमराज लेनेके लिये आ गया था परन्तु स्त्रीकी चिन्तामें लगे हुए उमे कामदेवने यमराजके हाथमे छुड़ा लिया था ॥३०३॥ प्रेम और शोकके कारण अपनी स्त्रीके द्वारा गलेसे आलिंगन किया हुआ कोई धावसहित योद्धा उसी प्रिया का ध्यान कर तथा शरीर छोड़कर उसीके साथ मर गया ॥३०४॥ किसी योद्धाने व्रत धारण कर लिये थे इसलिये उसकी स्त्री उससे कह रही थी कि कल स्वर्गमें न जाने क्या क्या होगा ? इसमे कुछ भी शक्य नहीं है कि हम दोनोका समागम यहाँ हो सकता है, चूँकि तुम्हें स्वर्गमें बहुत सी स्त्रिया मिल जायेंगी इसलिये मैं आज यहा ही नीडा करूंगी ॥३०५॥ हम दोनोका निवास चाहे यहा हो, चाहे परलोकमें हो, उसकी चिन्ता ही नहीं करनी चाहिये । क्योंकि हम लोगो का विद्योग तो कही भी नहीं हो सकता है इस प्रकार कहती हुई कोई स्त्री अपने पतिसे सतुष्ट कर रही थी ॥३०६॥ कोई स्त्री क्रोधपूर्वक अपने पतिसे कह रही थी कि तुम तो व्रत धारण कर वीर लक्ष्मी और वीर्तिको प्राप्त होओ—उनके पास जाओ, दीर्घ आयु होनेके कारण यह कामदेव मुझे ही मारे ॥३०७॥ कोई स्त्री अपने पतिसे कह रही थी कि यह निश्चित है कि जयकुमारकी जीत तेरे ही प्राणोसे होगी और व्रतोके धारण करनेवाले हम दोनो ही आज स्वर्ग जावगे ॥३०८॥ खण्डिता स्त्रिया कामदेवको उद्देश्य कर अपने मनम कह रही थी कि अरे काम, सशोभी पुरुषोपर पडते समय तेरे वाण फूलोके हो जाते है और तू भी बहुत उडा हो जाता है, उन पुरुषोके पास तेरे बलकी सब परख हो जाती है वास्तवमें तू पुरुषोसे डरता है परन्तु हम स्त्रियोपर पडते समय तेरे वाण लोहेके ही रहते है और तू भी यमराज बन जाता है । भावार्थ—तू पुरुषोको उतना दुखी नहीं करता जितना कि हम स्त्रियोको करता है ॥३०९-३१०॥ प्रेमरूपी प्राणोको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषोने इस प्रकारकी बातचीतके द्वारा ज्योही वह रात्रि पूर्ण की त्योंही रागसे सग्राम देखनेके लिये आई हुई राक्षसीके समान सन्ध्या (सवेरे की रात्री) आ गई ॥३११॥

१

१ कण्ठेनालिद्विगत इ०, अ०, स०, प० । २ मरणम् । ३ अनन्तरागामिदिने । ४ स्यादिति न जाने इति सम्बन्ध । ५ आवयो । ६ स्वर्गे । ७ श्रीशामि । ८ स्वर्गे । ९ सनियम । १० गच्छ । ११ सनियमावावागम् । १२ सद्गमोतेषु स्त्रीपुरुषेषु । १३ अतिदमेन सुखहेतु । १४ सयुक्तास्त्रीपुरुषेषु । १५ अवयुक्तवचिनः । १६ पुरुषवियुक्ता । १७ रत्नामिप्रायम् । १८ भगन्ति स्म । १९ मियो भाषणं । २० अम इव प्राणा सेपा तै ।

प्राभातानकबोटीर्तां नि स्पन सेनयो राग्म् । धाक्रामतिरथ दिवधपम् धनमेणोच्छरैरतदा ॥३१२॥
 प्रतीच्यार्षिप्युत्तदग्नेो मयैवोदेति भास्वर । इति स्नेहादिषु प्राची प्रागभाहुदयाद्रये ॥३१३॥
 सरतां कमलाशिक्ष्य प्रभुशानां तदा मुदा । निर्वयो रवाचंमादाय निद्रेय भ्रमरावती ॥३१४॥
 गतायां स्पेन सद्रजोच पदिग्यां रवोदये रवि । सधर्मो निजकरेणोच्छैरियदये सा हि मित्रता ॥३१५॥
 रक्तं कुरे समाश्लिष्य राग्या सद्यो ध्यरज्यत । यदत्रिय रविभोगान् पर्यन्तविरतात् स्फुटम् ॥३१६॥
 पर्यन्तश्चोत् पुरेवंतां स्यां सन्ध्यामिति येर्वया । रविं रक्तमपि स्थिरयं ॥प्राच्यसामत ॥३१७॥
 शयित्वा धोरशय्यायां निशां नीतया नियामिन ॥ स्नात्वा सन्तपिताशेषदीनानाथदनीपया ॥३१८॥
 अश्लिष्य विधिना स्तुत्वा जिनेन्द्रास्त्रिजगत्प्रतान् । अतिष्ठन्प्रायका सर्वे परिधिद्युष रणोन्मुता ॥३१९॥
 अरिजयास्यमापहृष रय द्यवेतादययोजितम् । मूहीत्वा यज्रकाण्ड च दत्त यच्चविना द्वयम् ॥३२०॥
 बन्दिभागध्वन्द्वेन बन्धनानाद्रमालिक । गजध्वजं समुत्थाप्य ज्यलतधनोत्तमस्तुक् ॥३२१॥
 जयो ज्यास्फालन कर्बन् कृतान्तविकृताहृति । द्विपानां भोवणस्तस्यो दिशामप्याहरन् मदम् ॥३२२॥
 उपोदयायशक्तीति श्रंक्वातिदृष्युतच्छयि । कारागारमिवाप्यास्य स्पन्दन मदवाजिनम् ॥३२३॥

उसी समय दोनो सेनाओमें साथ साथ उठनेवाचे प्रातः काशीन करोडो वाजोके गर्दों ने एक साथ सब दिशाए भर दी ॥३१२॥ यद्यपि चन्द्रमा पदिचम दिशाके साथ है तथापि मूर्ध तो मेरे ही साथ उदय होगा इसी प्रेमसे मानो पूर्व दिशा मूर्योदयसे पहले ही सुयोभित होने लगी थी ॥३१३॥ उस समय भ्रमरोकी पक्ति ताणवोके फूटे हुए (पक्षमें जागे हुए) कमलरूपी नेत्रोसे अपना इष्ट पदार्थ लेकर निद्राके समान बड़ी प्रसन्नताके साथ निवृत्त रही थी ॥३१४॥ कमलनी मेरे अस्त होते ही सकुचित हो गई थी, इसलिये सूर्यने अपना उदय होते ही अपने ही ही किरणरूपी हाथोसे उसपर बहुत अच्छी शोभा की थी सो ठीक ही है क्योंकि मित्रता यही कहलाती है ॥३१५॥ रक्त अर्थात् लाल (पक्षम प्रेम करनेवाला) सूर्य, वर अर्थात् विरणो (पक्षमे हाथो)से सध्याका आलिंगन कर शीघ्र ही विरक्त अर्थात् लालिमारहित (पक्षमें राग हीन) हो गया था सो मानो वह यही कह रहा था कि ये भोग अन्त समयमें नीरस होते हैं ॥३१६॥ इस सूर्यने पहलेके समान ही अपनी सध्यारूपी स्त्रीका आलिंगन किया है इस ईर्ष्यासे ही मानो पूर्व दिशाने सूर्यको प्रेमपूर्ण अथवा लाल वर्ण होनेपर भी अपने पास क्षणभर भी नहीं ठहरने दिया था ॥३१७॥ व्रत नियम पालन करनेवाले सेनापतियोने वीरवाट्यापर शयन कर रात्रि व्यतीत की । सबरे स्नानकर सब दीन, अनाथ तथा याचकोको सतुष्ट किया, त्रिजगद्वन्द्व जिनेन्द्र देवकी विधिपूर्वक पूजाकर स्तुति की और फिर वे अपनी अपनी सेनाका विभागकर युद्धके लिये उत्सुक हो खडे हो गये ॥३१८-३१९॥ वन्दीजन और मागध लोगोका समूह जिसके नामके अक्षरोकी स्तुति करते हैं जो विजयलक्ष्मीके लिये उत्सुक हो रहा है, जिसका आकार यमराजके समान विकृत है जो दिग्गजोके भी मदको हरण करनेवाला है और भयकर है ऐसा जयकुमार सफेद घोडोसे जुते हुए अरिजय नामके रथपर सवार होकर और यज्रकाण्ड नामका वह धनुष जो कि पहले चक्रवर्तीने दिया था, लेकर हाथोकी ध्वजाको उडाता तथा धनुषकी डोरीका आस्फालन करता हुआ खडा हो गया ॥३२०-३२२॥ जिसकी अपकीर्तिक उदय

१ युगपत् । २ सरोवरणांम् । ३ वृद्धौ वृद्धि क्षये क्षयश्च । ४ अरुण अनुरक्तश्च ।
 ५ विरक्तोऽभूत् । ६ अवसाने निस्ताराणि इति वदन्ति वति सम्बन्ध । ७ आलिलिङ्ग । ८ अनुरक्तम् ।
 ९ निवसनाय । १० पूर्वादिक् । ११ न सहते स्म । १२ शयन कृत्वा । १३ नियमवन्त । १४ तिष्ठन्ति
 स्म । १५ रथयज्रकाण्डपापद्वयम् । पुरा सः । १६ स्तुयमान । १७ गजाङ्कितध्वजम् । १८ भयङ्कर ।
 १९ उदयप्राप्तपत्नीति । २० बन्धनानयम् ।

घट्टचन्द्रान् सखी कुर्वन् नष्टचन्द्रोगमान् युष' । स्वोत्पातकेतु'सङ्क्रमाचक्षणेत्पतक्षित ॥३२४॥
 'प्रत्यापातमहाघातविहृतस्वजयं शरं । विध्यन्म'ध्यन्दिनाकं वा समन सतहेतुभि ॥३२५॥
 जय शत्रुदुरालोकं ज्वलत्तेजोमय स्मयात्' । बलभो घाऽगमद् वारिं' प्रेरित सतकर्मणा ॥३२६॥
 जयोऽपि शरसन्तानघनी'कृत्यघनाघन । सहाकं'कीर्तिमकंणं कुर्वन् विनिहृतप्रभम् ॥३२७॥
 'प्रतीयाथान्तरे द्विन्द्वन्' रितुप्रहितसायकान् । शराश्चास्य पुरो घावन्'ब्रह्मस्येवोदयैऽजय ॥३२८॥
 अर्च्यंती'चन्द्रमस्त्राणि रंजयन्ती' च दुर्जयं । जयोऽर्ककीर्तौरौद्वय विहृत्य विनिनीयया' ॥३२९॥
 घट्टचन्द्रास्तदाम्येत्य' विद्याबलविजृम्भणात् । न्यपेधयन् जयस्येपून् श्रम्भोदा वा रवे करान् ॥३३०॥
 भुजबत्यादयोऽ'भ्येयुर्वीद् द्वे हेमाड्यद ऋषा । सानुज सिंहसदृयात् सिंहसदृघ इवापर ॥३३१॥
 'सानुजोऽनन्तसेतोऽपि प्राप मेघस्वरानुजान् । 'ब्राह्मणरेयो यया यूष कतिद्वयज'मतद्वयजान् ॥३३२॥
 श्रम्येऽप्यन्याद्व भूपाता भूपालान्कोपिनस्तदा । आनिपेतु' कुसाद्रीन्वा सञ्चरन्त' कुसाधला ॥३३३॥
 नास्त्येषामीदृशी शक्तिविद्येयमिति विद्याया । जयो युद्धाय सप्रदस्तदा' मित्रभुजद्वयम् ॥३३४॥

हो रहा है, कान्ति नष्ट हो गई है, युद्धके नष्ट चन्द्रोके समान अष्टचन्द्र विद्याधरोको जिसने अपना मित्र बनाया है जो अपना अनिष्ट सूचित करनेवाले धूमकेतुके समान चक्रके चिह्नवाली ध्वजामे सहित है, और उल्टी चलनेवाली तेज वायुसे जिनका वेग नष्ट हो गया है ऐसे देवताओ का घात करनेवाले वाणोसे जो दोषहरके सूर्यपर प्रहार करता हुआ सा जान पड़ता है, ऐसा अर्ककीर्ति धीरे चलनेवाले घोडोसे जुते हुए जेलखानेके समान अपने रथपर बैठकर, शत्रु जिमे देख भी नहीं सकते और जो जलते हुए तेजके समान है ऐसे जयकुमारपर बड़े अभिमानसे इस प्रकार आया जिस प्रकार कि हाथी पकडनेवालोके तूर व्यापारसे प्रेरित होता हुआ हाथीका बच्चा अपने बघनेके स्थानपर आता है ॥३२३-३२६॥ वाणोके समूहसे भेधोको सघन करने वाला जयकुमार भी सूर्यके साथ साथ अर्ककीर्तिको प्रभारहित करता तथा शत्रुके द्वारा छोडे हुए वाणोको छेदन करता हुआ सामने आया और जिस प्रकार उदयकालमें सूर्यकी किरणें उसके सामने जाती हैं उसी प्रकार उसके द्वारा छोडे हुए वाण ठीक उसके सामने जाने लगे। ३२७-३२८॥ बडी कठिनाईसे जीते जाने योग्य जयकुमारने अर्ककीर्तिको हटानेकी इच्छासे उसका उद्धतपना नष्ट कर, उसका छत्र घसन तथा ध्वजा सब छेद डाली ॥३२९॥ जिस प्रकार भेष सूर्यके, किरणोके, रोक लेते हैं, उसी प्रकार उम्र समग्र अष्टचन्द्रोने, आकर अपनी विद्या और बलके विस्तारमे जयकुमारके वाण रोक लिये थे ॥३३०॥ जिस प्रकार एक मिहोका समूह दूसरे मिहोके समूहपर आ पड़ता है उसी प्रकार भुजवली आदि भी बडे क्रोधसे छोटे भाइयो के साथ खडे हुए हेमागदसे लडनेके लिये उसके सन्मुख आये ॥३३१॥ जिस प्रकार अग देशमें उत्तान हुए हाथियोका समह'कलिंग देशमें उत्पन्न हुए हाथियोपर पडता है उसी प्रकार अनतसेन भी अपने छोटे भाइयोसहित जयकुमारके छोटे भाइयोके सामने जा पहुँचा ॥३३२॥ उस समय और भी राजा लोग नोधित होते हुए अन्य राजाओपर इस प्रकार जा टूटे मानो कुलाचल कुलाचलोपर टूट पड रहे हो ॥३३३॥ इन मेरे पक्षवालोकी न तो ऐसी शक्ति है

१ युद्धस्य । २ मित्रविनाशहेतुजयमानान् । ३ प्रतिबूलगायान् । ४ गम्पाह्लमिव । मन्धातु-
 रविमण्डानामिमुख मुक्ता शरा यथा स्वशरीरे पतन्ति तद्वदित्यर्थः । ५ गन्तान् । ६ गजपतनहतुपार्तम् ।
 ७ निविहीकृत । ८ अभिमुख जगाम । ९ शत्रुवित्तजित । १० रवे । ११ चिच्छेद । १२ ध्वजाम् ।
 १३ निराकरणेच्छया । नेतुमिच्छया वा । १४ सम्मुखमागत्य । १५ अभिमुखमागत्यु । १६ निजानुज-
 सहित । १७ अङ्गरदेशे भव । आङ्गवेयो ल० । १८ कनिङ्गदेशे भव । १९ प्राणुर्वन्ति स्म ।
 अभिपेतु ल०, ६०, स०, प० । २० सञ्चलन्त कुसादय ल० । २१ पूर्वं मुनेधर्मध्वजपञ्जानानगराज ।

विदित्वा विष्टरावम्पाञ्जयं सम्प्राप्य तावरः । नागपानं वारं चार्द्धचन्द्रं दत्त्वा ययादती ॥३३५॥
 तं सहस्रसहस्रान्मुस्करवंशुप्रभास्परम् । कैरवः शरमावाय वज्रकाण्डे प्रयोजयन् ॥३३६॥
 हत एव सुतो भर्तुर्भुवोऽनेनेति सम्भ्रमम् ८ । नरविद्यापरापीडा महान्तमुदपादयन् ॥३३७॥
 रथाग्रव तथा दुष्टानष्टचन्द्रान् सत्सारथीन् । स^{१०} शरो भस्मयामास शस्त्राणि च ययाऽग्निः ॥३३८॥
 छिद्रवन्तकरो दन्तीधातकी या हतायुधः । भग्नमानः कुमारोऽप्यद् धिषण्यत् चेष्टितं विधेः ॥३३९॥
 इति दत्तग्रह^{११} वीरं गजं या पादपाशकैः^{१२} । प्रपायु^{१३}र्धृष्टपायसोविधितस्तम्^{१४} जीवहृत्^{१५} ॥३४०॥
 तच्छीयं यत्पराभूतेः प्राक् प्राप्तपरिभूतिभिः । यत्पश्चात्साहसं धाष्टर्घात्^{१६} स द्वितीयः पराभवः ॥३४१॥
 सोऽन्वयः स पिता तादृक् पदं सा सैग्यसंहतिः । तस्याप्यातोदवस्वेष्यमन्मार्गः कं न पीडयेत् ॥३४२॥
 धीरपट्टेन बद्धोऽयं चक्रिणानेन तरसुतः । व्रणपट्टपदं नीतः पश्य कार्याधिपयंयम् ॥३४३॥
^{१७}पतस्यतद्गसदकाशमर्ककीर्तिमनायुधम् । स्वयं स्यापयित्वोच्चैः ब्राह्मणानेकैः स्वयम् ॥३४४॥
 विषक्षलगभूपालान् नागपाशेन पाशिवत्^{१८} । निव्यन्दं निजितारातिग्यंमंतीत्^{१९} सिंहविषमान् ॥३४५॥

और न यह विद्या ही है ऐसा समझकर जयकुमार स्वयं युद्धके लिये तैयार हुआ, उसी समय उसका मित्र सर्पका जीव जो कि देव हुआ था आसन कम्पित होनेसे सब समाचार जानकर बड़े आदरके साथ जयकुमारके पास आया और नागपाश तथा अर्द्धचन्द्र नामका वाण देकर चला गया ॥३३४-३३५॥ जो हजार सूर्यकी श्वमकती हुई किरणोंके समान देदीप्यमान हो रहा था ऐसा वह वाण लेकर जयकुमारने अपने वज्रकाण्ड नामके धनुषपर चढाया ॥३३६॥ इस वाणसे चक्रवर्तीका पुत्र अवश्य ही मारा जायगा यह जानकर भूमिगोचरी और विद्याधरोंके अधिपति राजाओने बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न किया ॥३३७॥ उस वाणने नौ रथ, सारथि सहित आठो अष्टचन्द्र और सब वाण वज्रकी तरह भस्म कर दिये ॥३३८॥ जिसका मान भग्न हो गया है ऐसा अर्ककीर्ति, जिसके दांत और सूँड कट गई है ऐसे हाथीके समान अथवा जिसका शस्त्र नष्ट हो गया है ऐसे यमराजकी तरह चेष्टा रहित खड़ा था इसलिये कहना पड़ता है कि देवकी इस दुख देनेवाली चेष्टाको धिक्कार हो ॥३३९॥ जिस प्रकार शस्त्ररहित किन्तु उपायको जाननेवाले पुरुष पैरोकी फाससे दातोंको दबोचकर वीर हाथीको पकड़ लेंते हैं उसी प्रकार जयकुमारने अर्ककीर्तिको पकड़ लिया ॥३४०॥ तिरस्कार होनेके पहले पहले जो लड़ना है वह शूरवीरता है और तिरस्कार प्राप्तकर घृष्टतावश जो पीछेसे लड़ना है वह दूसरा तिरस्कार है ॥३४१॥ यद्यपि उस अर्ककीर्तिका लोकोत्तर वंश था, चक्रवर्ती पिता थे, युवराज पद था और भारी सेनाका समूह उसके पास था तो भी उसकी यह दसा हुई इससे कहना पड़ता है कि दुराचार किसे पीडित नहीं करता है ? ॥३४२॥ चक्रवर्तीने जयकुमारको वीरपट्ट वाधा था परन्तु इसने उनके पुत्रको घावोकी पट्टियोका स्थान बना दिया, जरा कार्यकी इस उलट-मुलटको तो देखो ॥३४३॥ सब शत्रुओंको जीतनेवाले जयकुमारने अग्निपर पड़ने टुप पनगके समान तथा हथियाररहित अर्ककीर्तिको अपने रथमें डारकर और स्वय एव ऊँचे हाथीपर आरूढ होकर सिंहके समान पराक्रमी शत्रुभूत विद्याधर राजाओंको

१० अर्द्धचन्द्रशरम् । ११ गृह्यरथि । १२ जयकुमार । १३ वज्रकाण्डकोदण्डे । १४ प्रयोजयन् । १५ शक्ति । १६ अग्ने । १७ सम्प्राप्तिम् । १८ उन्मादितवान् । १९ अर्द्धचन्द्रवाण । २० वृत्तग्रहणम् । २१ दन्तग्रह ल० । २२ गत्रव्यन्तवृत्तान्तं । २३ अगमनशस्त्रे । २४ अर्कपीतिम् । २५ ब्राह्मणति स्म । २६ घृष्टत्वान् । २७ पतस्ययंगदुग्धम् । २८ पागपाशिकन् भवन्तीत्यर्थं । २९ प्रचेना वरण. पासी यादसौ पतिरल्पति. इत्यभिधानान् । ३० नियमितवान् ।

इति 'सौलोचने युद्धे समिद्धे शमिते' तदा । पपात 'पञ्चभूजम्भो वृष्टिः सुमनसां दिवः' ॥३४६॥
जयथीर्दुर्जम्भस्वामितनूजविजयाजिता । नोत्सेकायेति' नास्येन' त्रयैव 'प्रत्युताश्रयत् ॥३४७॥
'जयेनास्थान' सद्यपामजयायातेति सज्जया । दूरीकृतेव तत्कीर्तिर्दग्गतमगमत्तदा ॥३४८॥
श्रकम्पनमहीदास्य पूयेशं' वा वनद्विपैः । भूपैः संयमितैः' सायंम् श्रकंकीर्तिं समर्प्य सः ॥३४९॥
विजयाद्धमहागन्धितान्पुरस्कन्धसन्धुतः । निर्भर्त्सितोदय' 'दमाभून्मूर्ध्नित्यग्रज्ज' मण्डलः ॥३५०॥
रगभूमिं समालोक्य समन्ताद्बहुविस्मयः । मृताना 'प्रेतसंस्कारं' 'जीवता जीविकाक्रियाम्' ॥३५१॥
वारयित्वा पुरीं सर्वसम्भदाधिष्णुतोदयाम् । प्राविशत् प्रकटंद्वयंः तह मेघप्रभादिभिः ॥३५२॥
श्रकम्पनोऽप्यनुप्राप्य वृतेरन्तः' समाकृतः । राजकण्ठीरवी' 'वामा' राजपुत्रदातैः' पुरम् ॥३५३॥
सरक्षान् भूतभूपातान् कुम्भारं च विद्योगिभिः । घ्राह्वात्पादात्कृशन्तर्षया स्थानमवापयत् ॥३५४॥
विचिन्त्य विश्वविघ्नानां विनाशोऽहं प्रसादतः । इति बन्धितुमाजगम्' सर्वे नित्य' 'मनोहरम्' ॥३५५॥
दूरादेवावहृद्यत्पामवाह्येभ्यः' शान्तचेतसः । परीत्यार्याभिरागत्य 'सुष्टुद्वुः स्तुतिभिर्जिनान् ॥३५६॥

वरणके समान नागपाशसे इस प्रकार बाधा जिससे वे हिल-डुल न सकें ॥३४४-३४५॥ इस प्रकार जब सुलोचना सम्बन्धी प्रचण्ड युद्ध शान्त हो गया तब स्वर्गके पांच प्रकारके कल्पवृक्षों से फूलोंकी वर्षा हुई ॥३४६॥ अपने दुर्जय स्वामी (भरत) के पुत्र अर्ककीर्तिके जीतनेसे उत्पन्न हुई विजयलक्ष्मी जयकुमारके अहकारके लिये नहीं हुई थी बल्कि इसके विपरीत लज्जाने ही उठे आ घेरा था ॥३४७॥ 'यह अयोग्य समयमें किये हुए सप्राप्तके जीतनेसे आई है' इस लज्जा के कारण जयकुमारके द्वारा दूर की हुईके समान उसकी वह कीर्ति-उसी समय दिशाओके अन्त तक चली गई थी ॥३४८॥ जिस प्रकार समर्थ पुरुष जगली हाथियोंके समान भुण्डके मालिक वडे हाथीको पकडकर राजाके लिये सौंपते हैं उसी प्रकार जयकुमारने वधे हुए अनेक राजाओं के साथ अर्ककीर्तिको महाराज अकंपनके लिये सौंप दिया, तदनन्तर उदयाचलके शिखरपर स्थित सूर्यमण्डलको तिरस्त्रुत करता हुआ विजयायार्थ नामके वडे भारी मद्योन्मत्त हाथीके स्फुपपर सवार होकर युद्धका मैदान देखनेके लिये निकला, चारों ओरसे युद्धका मैदान देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ, उसने मरे हुए लोगोका दाह संस्कार कराया और जीवित पुरुषोंके अच्छे होनेका उपाय कराया, इस प्रकार जिसका ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसे जयकुमारने मेघप्रभ आदिके साथ साथ सबको आनन्द मिलानेसे जिसकी शोभा खूब प्रकट की गई है ऐसी काशीनगरी में प्रवेश किया ॥३४९-३५२॥ महाराज अकंपनने भी सैकड़ों राजपुत्रों तथा सिंहके समान तेजस्वी राजाओंके साथ साथ नगरमें पहुचकर रक्षा करनेवाले जिनके साथ है ऐसे वधे हुए अनेक राजाओं तथा अर्ककीर्तिको समझानेमें कुशल नियुक्त किये हुए पुरुषों द्वारा समझा-सुझाकर उन्हें उनके योग्य स्थानपर पहुचाया ॥३५३-३५४॥ अरहन्तदेवके प्रसादसे ही सब विघ्नोका नाश होता है ऐसा विचारकर सब लोग वन्दना करनेके लिये नित्यमनोहर नामके वैद्यालयमें आये ॥३५५॥ उन सभीने दूरसे ही अपनी अपनी सवारियोंसे उतरकर शान्तचित्त हो मन्दिर में प्रवेश किया और प्रदक्षिणाएँ देकर अर्घ्यसे भरी हुई स्तुतियोंसे जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की ॥३५६॥

१ सुलोचनासम्बन्धिनि । २ उपशान्ते । ३ 'मन्दार पारिजातक सन्तान कल्पवृक्षश्च पुति वा हरिचन्दनम्' इति पञ्चमुरभूजैश्च । ४ स्वर्गात् । ५ गर्वाय । ६ तस्येनम् ल० । एनम् जयकुमारम् । ७ पुन किमिति चेत् । ८ जयकुमारेण । ९ अनुचितस्थानकृतयुद्धविजयात् समुपागता । १० गज-यूयाधिपम् । ११ वडे । १२ बदर । १३ रवि । १४ राव । १५ जीवन्तीति जीवन्तस्तेपाम् । १६ जीवनो-पायमित्यर्थ । १७ अभिजक्षितं । १८ इव । १९ सह । २० सहस्रैः । २१ २१, द्वित्यमनोहरास्य चत्यालयम् । २२ निजवाहनेभ्य । २७ स्तुतिं चक्रुः ।

जयोऽपि जगदोनामित्याप्त^१विजयोदय । 'धस्तायोदस्तवर्माण भक्तिनिर्भरचेतना ॥३५७॥

शमितालिलविघ्नरास्तवस्त्वयि मुद्गोऽप्युपवात्यतुच्छनाम् ।

शुचिदुक्वितपुटेऽप्युत्सृज्यते ननु मुक्ताफलतां प्रपद्यते ॥३५८॥

घटयन्ति न विघ्नकोटयो

निषटे स्वतन्मयोर्निपासिनाम् ।

पटवोऽपि फल दयानिभि-

भयमस्त्य^२भ्युपि मध्यवर्तिनाम् ॥३५९॥

हृदये त्वयि सन्निपापिते^३

रिपय केऽपि भय^४ विपित्तय^५ ।

भ्रमृताशिपु^६ सत्सु सतत

विपमोदापितविप्लव वृत्त ॥३६०॥

उपयान्ति समस्तसम्पदो

विपदो विच्युतिमाप्नुवत्यलम् ।

वृषभ 'वृषमार्षदेशिन

भयकेतुद्विद्यमाप्नुया^७ सताम् ॥३६१॥

इत्य भवन्तमतिभक्तिपय निनीयो^८

प्रागेव बन्धकलय^९ प्रलय व्रजन्ति ।

पद्माङ्गनद्वरमपाचितमप्यवश्य

सम्पत्स्यतेऽस्य^{१०} विलसद्गुणभद्रभद्रम्^{११} ॥३६२॥

जिसे विजयका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ऐसा जयकुमार भी भक्तिसे भरे हुए हृदयसे समस्त कर्मों को नष्ट करनेवाले जगत्पति—जिनेन्द्रदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥३५७॥ हे समस्त विघ्नोको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्रदेव, आपके विषयमें किया हुआ स्तवन थोड़ा होकर भी बड़े महत्त्वको प्राप्त हो जाता है सो ठीक ही है क्योंकि पवित्र सीपके सपुटमें पड़ी हुई पानी की एक बूंद भी मोतीपनेको प्राप्त हो जाती है—मोतीका रूप धारण कर लेती है ॥३५८॥ हे देव, फल देनेमें चतुर करोड़ो विघ्न भी आपके चरणोंके समीप निवास करनेवाले पुष्पो को कुछ फल नहीं दे सकते सो ठीक ही है क्योंकि क्या समुद्रके बीचमें रहनेवाले लोगोको दावा नलसे कभी भय होता है ? ॥३५९॥ हे प्रभो, आपको हृदयमें धारण करनेपर फिर ऐसे कौन शत्रु रह जाते हैं जो भय देनेकी इच्छा कर सकें, निरन्तर अमृतभक्षण करनेवाले पुष्पोमें किसी विषयमें उत्पन्न हुआ उपद्रव कैसे हो सकता है ? ॥३६०॥ धर्मके मार्गका उपदेश देने वाले और कामदेवके शत्रु श्रीवृषभदेवकी धारण लेनेवाले सज्जन पुष्पोको सब सम्पदाएँ अपने आप मिल जाती हैं और उनकी सब आपत्तिया अच्छी तरह नष्ट हो जाती हैं ॥३६१॥ हे शोभायमान गुणोंसे कल्याण करनेवाले जिनेन्द्र, इस प्रकार जो आपको अतिशय भक्तिके मार्गमें ले जाना चाहता है उसके कर्मबन्धके सब दोष पहले हीसे प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं और फिर पीछेसे कभी नष्ट नहीं होनेवाला मोक्षरूपी कल्याण बिना मागे ही अवश्य प्राप्त हो

१ प्राप्त । २ स्तोति स्म । ३ अस्ति विम् । ४ सन्निधानोद्भूते । ५ परिभवम् । ६ विषातु मिच्छ्यत । ७ भ्रमृतामदनन्तीति अमृताङ्गिनस्तेषु । ८ धर्ममार्गोपदेशकम् । ९ प्राप्नुवताम् । १० नेतुमिच्छो । ११ बन्धदोषा । १२ सम्पन्न भविष्यति । १३ कल्याणम् ।

परिणतपरितापात्स्वेदपातो विलक्षो'
 'विगलितविभुभासो विह्वलानूनचेना ।
 'अधित विपिविमान' चिन्तयैश्चकिन्तु-
 विरह्विधुरवृत्ति' वीरलक्ष्मीवियोगे ॥३६३॥
 येषामय' जिनसुर समरे महाय-
 स्तानप्यह कृतरनि समुपामयामि ।
 'धुर्योऽयमेव यदि शऽऽत्र 'वितम्बनेनि
 मत्वेव मद्रसु' सन्निपाय जय'^{१०} जयश्री ॥३६४॥
 स'^{११} 'बहुतरमरा'जप्रोच्छिन्नान्'^{१२} शत्रुपामन्'^{१३}
 'द्रुतमिनि शमयित्वा वृष्टिभि सायवानाम् ।
 उपगनहरिभूमि'^{१४} प्राप्य भूरिप्रताप'^{१५}
 दिनकर इव कन्या'^{१६} सम्प्रयोगाभिलाषी ॥३६५॥
 मीनाग्येन यदा स्ववक्षसि धृता माला तदैवापर
 धीरो'^{१७} 'बोधमवायंवीर्षविभयो विग्रहय'^{१८} विद्वद्विष्ट ।
 धीरश्रीविरहित'^{१९} दधौ स शिरसाऽम्लान यदा शोषर
 लक्ष्मीवान् विदधाति माहससम्ब'^{२०} किंचा न पुष्योदये'^{२१} ॥३६६॥

जाता है ॥३६०॥ प्राप्त हुए मनापमे जिमे पमीना आ रहा है, जो लज्जित हो रहा है, 'मै मवका स्वमी हूँ' ऐसा अभिप्राय जिनका नष्ट हो गया है, जिनका चित्त विह्वल हो रहा है, और जो भाग्यकी गतिका विचार कर रहा है ऐसे अर्ककीनिने वीरश्रीमीका वियोग होनेपर उसने विरहमे विपुरवृत्ति धारण की थी ॥३६३॥ देवीको जीतनेवाला यह जयकुमार वृद्धमें जिनकी सहायता करता है मैं उनकी भी बड़े प्रेमसे उपामना करती हूँ, फिर यदि यह ही सबमें मुख्य हो तो इसमें विलम्ब क्यों करना चाहिये ऐसा मानकर ही मानो विजयलक्ष्मी जयकुमार को पाम वहन शीघ्र आ गई थी ॥३६४॥ इन प्रकार वाणीकी वर्षामे ऊपर उठी हुईं गन्तुपी धूलिको शीघ्र ही नष्ट कर पराक्रमके द्वारा मिहका स्थान प्राप्त करनेवाला और अब कन्याके नयोगका अभिलाषी जयकुमार उम सूर्यकी तरह वहन ही अधिक सुशोभित हो रहा था जोकि मिह राशिपर रहकर कन्या राशिपर आना चाहता है ॥३६५॥ जिनकी पराक्रमपी सम्पत्ति का कभी कोई निवारण नहीं कर सकता ऐसे शूरवीर जयकुमारने जिस समय सौभाग्यके वदा से अपने वक्ष म्थलपर माला धारण की थी उसी समय मत्र गन्तुजोको नष्ट कर वीरश्रीमीका बना हुआ तथा कभी नहीं मुरझानेवाला यमन्पी दूसरा सेहरा भी उसने अपने मन्तकपर धारण किया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो लक्ष्मीमान् है, साहमका मित्र है और जिनके पुष्यका

१ विस्मयान्वित । २ विमूल्वरहित । ३ धरति स्म । ४ कर्ममेद्रम् । ५ विरहविक्रमवन्धु वर्तनम् । ६ जयकुमार । ७ धुरन्धर । ८ कातक्षेप । ९ शीघ्रम् । १० जयकुमारम् । ११ जय । १२ अय विकम् । १३ विराजति स्म । १४ उन्नतान् । १५ रणून् । १६ बोधम् । १७ प्राप्ताश्रयपद । प्राप्ति-विहराभिन्धानद्व । १८ सन्तापम् प्रभावम् । १९ मुनाक्षनामद्रागभिलाषी । कन्यागणितमसम्प्रयोगाभिलाषी च । २० शुभम् । २१ पातयिचा । २२ कृतम् । २३ साह्य एव सत्वा । २४ पुष्यादय ल०, अ०, प०, स०, इ० ।

'जयोऽयात्सोऽयश्च' प्रभवति गुणेभ्यो गुणगण
 सदाचारात्सोऽयि सव विहितवृत्ति श्रुतमपि ।
 प्रणीत सर्वज्ञविदितसवत्सस्ते^१ एतु जिना-
 रततस्तान् विद्वान् संधयतु जयमिच्छन् जय इव ॥३६७॥

इत्याय त्रिषष्टिलक्षणधीमहापुराणसङ्ग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते
 जययिजयवर्णन नाम स्रुतदत्तवार्तिशतम पर्व ।

उदय है वह क्या नहीं कर सकता है ? ॥३६६॥ इस ससारमें विजय पुण्यसे होती है, वह पुण्य गुणोसे होता है गुणोका समूह सदाचारसे होता है, उस सदाचारका निरूपण शास्त्रोंमें है शास्त्र सर्वज्ञ देवके कहे हुए है और सर्वज्ञ सव पदार्थोंको जाननेवाले जिनेन्द्रदेव है इसलिये विजयकी इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुष जयकुमारके समान उन्हीं जिनेन्द्रदेवको आश्रय करें- उन्हींकी सेवा करे ॥३६७॥

इस प्रकार गुणभद्राचार्यविरचित त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसङ्ग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें जयकुमारकी विजयका वर्णन करनेवाला चवालीसवा पर्व समाप्त हुआ ।

पञ्चत्वारिंशत्तमं पर्व .

ध्रुव मेघस्वरो गत्वा 'प्रयमानपराश्रम. । मथितारातिदुर्गवं. पूयुं स्वावाप्तमास्थित.' ॥१॥
 स्वयं च सञ्चितापाणि हन्तुं स्तुत्वा जिनैशिनः । अकम्पनमहाराजः समालोक्य सुलोचनाम् ॥२॥
 कृताहारपरित्यागनियोगामावुधस्तदा^१ । 'सुप्रभाकृतपर्युष्टिं कार्योत्सर्गेण सुस्थिताम् ॥३॥
 सर्वशान्तिकरीं ध्याति^२ ध्यायन्तीं स्थिरचेतसा । धर्म्यानिंकापूषनिष्पन्दा^३ जिनैर्ग्राभिमुखीं मुदा ॥४॥
 समभ्यर्च्य समादवाप्त्य प्रशस्य बहुशो गुणान् । भवन्माहात्म्यतः पुत्रि शान्तं सर्वममङ्गलम् ॥५॥
 प्रतिष्यस्तानि पापानि 'नियाममृपसंहर'^४ । इत्पृत्सिप्तकरामुक्त्वा पुरस्कृत्य सुतानं सुतैः ॥६॥
 हृष्टः सुप्रभया चामा राजगेहं प्रविश्य सः । 'याहि पुत्रि निजागारं विसर्ग्येति सुलोचनाम् ॥७॥
 अग्नया चिन्तितं कार्यं धैवेन कृतमग्नया । इति कर्तव्यतामूढः^५ 'सुधुगादिभिरिद्धयोः ॥८॥
 औत्पत्तिक्यादि^६ धीभेदैर्वाञ्छोच्य सचिवोत्तमः । विद्याधरधराधीशान् विपाशोकृत्य^७ कृत्यवित् ॥९॥
 विश्वानाशवास्य तद्योगैः^८ 'सामसारैरुदीरितैः'^९ । सम्पत्तिवहितसत्कारः स्नानवस्त्रासनविभिः ॥१०॥
 'कुमार वशी'^{१०} 'युष्माभिर्विहितैः'^{११} वधिती च न.^{१२} । तरुवियमयोऽप्येति^{१३} 'पतीऽभूत्' ततः क्षयम् ॥११॥

अथानन्तर-प्रसिद्ध पराक्रमका धारक और शत्रुओके मिथ्या अभिमानको नष्ट करने-
 वाला जयकुमार अपने विशाल निवासस्थानमें जाकर ठहर गया ॥१॥ इधर महाराज अकपन
 ने स्वयं सचिव किये हुए पाप नष्ट करनेके लिये श्री जिनैन्द्रदेवकी स्तुति की और फिर जिसने
 युद्ध समाप्त होनेतक आहारके त्याग करनेका नियम ले रक्खा है, माता सुप्रभा जिसके समीप
 बैठी हुई है, जो कायोत्सर्गसे खड़ी हुई है, स्थिरचित्तसे सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला धर्म-
 ध्यान कर रही है, एकाग्र मनसे निश्चल है और आनन्दसे जिनैन्द्रदेवके सम्मुख खड़ी है ऐसी
 सुलोचनाको देखकर उसका सत्कार किया, आश्वासन देकर उसके गुणोंकी अनेक बार प्रशंसा
 की तथा इस प्रकार शब्द कहे-हे 'पुत्रि, तुम्हारे माहात्म्यसे सब अमंगल शान्त हो गये हैं, सब
 प्रकारके पाप नष्ट हो गये हैं, अब तू अपने नियमोंका सकोच कर ।' ऐसा कहकर उन्होंने हाथ
 जोड़कर खड़ी हुई सुलोचनाको आगे किया और राजपुत्री तथा रानी सुप्रभाके साथ साथ राज-
 भवनमें प्रवेश किया । फिर 'हे पुत्रि ! तू अपने महलमें जा' ऐसा कहकर सुलोचनाको विदा
 किया ॥२-७॥ पुन यह कार्य अन्य प्रकार सोचा गया था और देवने अन्य प्रकार कर दिया
 अब क्या करना चाहिये इस विषयमें मूढताको प्राप्त हुए अतिशय बुद्धिमान् महाराज अकपनने
 औत्पत्तिकी आदि ज्ञानके भेदोंके समान सुश्रुत आदि उत्तम मंत्रियोंके साथ विचारकर विद्याधर
 राजाओको छोड़ दिया । फिर कार्यको जाननेवाले उन्हीं अकपनने बड़ी शान्तिसे उनके योग्य
 कहे हुए वचनोंसे उन सबको आश्वासन देकर स्नान, वस्त्र, आसन आदिसे सबका अच्छी तरह
 सत्कार किया ॥८-१०॥ तथा अर्ककीतिसे कहा कि 'हे कुमार ! हमारे नाथवंश और सोम-

१ प्रकाशमान । २ स्वावासगृहे स्थित । ३ युद्धावसानपर्यन्तम् । ४ निजजननीविहितरक्षाजिन-
 पूजादिपरिचर्याम् । ५ ध्यानम् । ६ एकाग्रत्वेन निश्चलाम् । ७ नियमम् । ८ त्यज । ९ शब्द ।
 १० सुश्रुतप्रभृतिमन्त्रिभिः । ११ जन्मव्रतनियमोपधत्तपोभिर्ह्यपन्नज्ञानभेदैः । १२ नामपाशबन्धन गोत्रयित्वा ।
 १३ साम्ना सारैः । १४ वचनैः । १५ हे अर्ककीर्तौ । १६ नाथवंशसोमवंशौ । १७ इतौ । १८ जयस्य
 अस्माक च । १९ यस्मात् पुरपात् । २० सञ्जातम् ।

पुत्रबन्धुपदातीनाम् अपराधशतान्यपि । क्षमन्ते हि महात्मानस्तद्धि तेषां विभूषणम् ॥१२॥
 भवेद्देवादपि स्वामिन्यपराधविधायिनाम् । श्रावणमयज्ञः पापं चानुबन्धयित्स्वधनम् ॥१३॥
 अपराधः कृतोऽस्माभिरेकोऽयमधिकेभिः । यय यो^१ बन्धुभृत्यास्तस्मिन्मर शान्तुमर्हति ॥१४॥
 एषा कौर्तिरथ चतत् प्रसादात्तं प्रशाम्यति । शापानुप्रप्तयोः शान्तसर्वं विद्मः हि विषेहि नः ॥१५॥
 अर्केणालोकनारोधि हन्यते जगतस्तमः । अस्माकं सा भवानर्त्तस्त्मादन्तस्तमो हरेन् ॥१६॥
 प्रतिकूल्य तवास्मात्तु स्तन्यस्येव^२ स्तन्यधये^३ । अस्मज्जन्मान्तरा^४ वृष्टपरिपाकविशेषतः ॥१७॥
 विश्वविश्वम्भराह्लावी यदि शिषति यारिदः । कदाऽप्यज्ञानिके^५ स्मिस्तत्तस्यैवाद्युभोदयः ॥१८॥
 ह्येनेव दुरारोहाज्जनेने हासि पातितः । 'स ते प्रेष्यः' किमत्रास्ति धमनस्यस्य कारणम् ॥१९॥
 सुलोचनेति का वार्ता सर्वस्व नस्तर्बध तत् । निपिद्वश्चेत्स्वया पूर्वं प्रियते कि स्वयवरः ॥२०॥
 लक्ष्मीवतीं गृह्णाणाम् अक्षमालापरभिधाम् । निर्मला वा यशोमाला किं ते^६ पापाणमालया ॥२१॥

वश दोनों ही आपके द्वारा बनाये गये हैं और आपके द्वारा ही बढ़ रहे हैं । विपका वृक्ष भी जिससे उत्पन्न होता है उससे फिर नाशको प्राप्त नहीं होता ॥११॥ महात्मा लोग पुन, बन्धु तथा पियादे लोगोके संकडों अपराध क्षमा कर देते हैं क्योंकि उनकी शोभा इसीमें है ॥१२॥ औरोंकी बात जाने दीजिये जो देवके भी अधीन होकर स्वामीका अपराध करते हैं उनका अपयश कल्पान्त कालतक बना रहता है और उनका यह पाप भी अनेक दोषोका बढानेवाला होता है ॥१३॥ हम मूर्खोंने आपका यह एक अपराध किया है । चूंकि हम लोग आपके भाइयो और भृत्योमेंसे है इसलिये हे कुमार, यह अपराध क्षमा कर देने योग्य है ॥१४॥ यह हमारी अपकीर्ति और पाप आपके प्रसादसे शान्त हो सकता है क्योंकि आप शाप देने तथा उपकार करने-दोनोंमें समर्थ हैं इसलिये हम लोगोकी शुद्धता अवश्य कर दीजिये ॥१५॥ प्रकाशको रोकनेवाला सप्तारका अन्धकार सूर्यके द्वारा नष्ट किया जाता है परन्तु हमारे लिये तो आप ही सूर्य हैं इसलिये हमारे अन्त करणके अन्धकारको आप ही नष्ट कर सकते हैं ॥१६॥ पूर्वजन्मके पाप कर्मोंके विशेष उदयसे हम लोगोके लिये जो आपका यह विरोध उपस्थित हुआ है वह मानों पुत्रके लिये माताके दूधका विरोध उपस्थित हुआ है । भावार्थ—जिस प्रकार माताके दूधके बिना पुत्र नहीं जीवित रह सकता है उसी प्रकार आपकी अनुकूलताके बिना हम लोग जीवित नहीं रह सकते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवीको आनन्दित करनेवाला बादल यदि कदाचित् किसी एकपर यज्ञ पटक देता है तो इसमें बादलका दोष नहीं है किन्तु जिसपर पडा है उसीके अनुभ कर्मका उदय होता है ॥१८॥ चढना कठिन होनेसे जिस प्रकार घोडा किसीको गिरा देता है उसी प्रकार जयकुमारने आपको गिरा दिया है परन्तु वह तो आपका सेवक है इनमें बुरा माननेका कारण ही क्या है ? ॥१९॥ सुलोचना, यह कितनी सी बात है ? हमारा जो सर्वस्व है वह आपका ही है । यदि आप पहले ही रोक देते तो स्वयवर ही क्यों किया जाता ? ॥२०॥ जिसका दूसरा नाम अक्षमाला है ऐसी मेरी दूसरी पुत्री लक्ष्मीमतीको आप ग्रहण कीजिये । यह लक्ष्मीमती यशकी मालाके समान निर्मल है, पापाण (रत्नों) की मालासे आपको क्या प्रयो-

१ जयप्रलाभ. सन्धपरिरक्षणं रक्षितविवर्द्धनं, चेत्यनुबन्ध तेषां एव निबन्धन वारण मयम् ।
 २ युष्माकम् । ३ तन् वारणान् । ४ ते द० । ५ स्तनधीरस्य । ६ शिशो । यथा स्तनधीरस्य प्रातिपुत्र्य
 निनाञ्जीवनाय न रयात् तथा तव प्रातिपुत्र्यमपि अस्माकम् । ६ अनुभवम् । ७ एकस्मिन् पुत्रि ।
 ८ जय । ९ तव विद्मः । १० स्वयवरे क्षिप्तपापाणमालया । सुलोचनयाक्षिप्तलेमालया ।

आहारस्य^१ यया तेऽथ विकारोऽयं विना त्वर्या । जीविकास्ति किमस्माकं प्रसीदतु विभो भवान् ॥२२॥
यद्ययं भिन्नमयदि त्वय्यवार्येऽम्बुधाविव । तत्तेऽवशिष्टाः पुभ्येन भयत्प्रेषणकारिणः ॥२३॥
त्वं बह्निनेव केनापि पापिना विश्वजीवितः^२ । उष्णोऽकृतोऽसि प्रत्यस्मान् सीतोमव हि वारि^३ वा^४ ॥२४॥
न^५ चेदिमान् सुतान् दारान्^६ प्रतिप्रहय पातय । सप्त तापश्रयो यस्मिन् पुरुषां पादपादयो ॥२५॥
इति प्रसाद्य संतोष्य समारोप्य गजाधिपम् । अर्ककीति पुरोधाय^७ वृत्तं भूचरखचरंः ॥२६॥
शान्तिपूजां विधायाष्टौ दिनानि विधिघट्टिकाम् । महाभियेकपर्यन्तां सर्वपापोपशान्तये ॥२७॥
जयमानीय सन्धाय^८ सन्धानविधिचित्तदा । नितरां प्रीतिमृत्याद्य हृत्वंकीभावमक्षरम्^९ ॥२८॥
^{१०}अक्षिमालां महाभूत्या दत्त्वा सर्वायं सम्पदा । सम्पुष्य गमयित्वर्चनम्^{११} अन्नगम्य^{१२} यथोचितम् ॥२९॥
तथैतरांश्च सम्पत्न्य नरविद्याधराधिपान् । सद्यो विसर्जयामास सद्रत्नगजवाजिभिः ॥३०॥
ते स्वदुर्नयलज्जास्तर्वाः^{१३} स्व^{१४} स्वमगुः^{१५} पुरम् । सा धीर्देवा^{१६} परासत्य^{१७} प्रतिकर्त्तौ हि धार्ष्टिचरात् ॥३१॥

जन है ? ॥२१॥ आज यह आपका विकार आहारके विकारके समान है, क्या आपके विना हम लोगोंकी जीविका रह सकती है ? इसलिये हे प्रभो, हम लोगोंपर प्रसन्न हूजिये । भावार्थ—जिस प्रकार भोजनके विना कोई जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार आपकी प्रसन्नताके विना हम लोग जीवित नहीं रह सकते इसलिये हम लोगोंपर अवश्य ही प्रसन्न हूजिये ॥२२॥ हम लोग तो इधर उधर भेजने योग्य सेवक हैं और आप जिसका निवारण न हो सके ऐसे समुद्रके समान हैं । हे नाय, आपके मर्यादा छोड़नेपर भी जो हम लोग जीवित बच सके हैं सो आपके पुण्यसे ही बच सके हैं ॥२३॥ आप पानीके समान सबको जीवित कर देनेवाले हैं जिस प्रकार अग्नि पानीको गर्म कर देती है उसी प्रकार किसीने हम लोगोंके प्रति आपको भी गर्म अर्थात् क्रोधित कर दिया है इसलिये अब आप पानीके समान ही शीतल हो जाइये ॥२४॥ यदि आप शान्त नहीं होना चाहते हैं तो इन पुत्रों और स्त्रियोंको स्वीकार कीजिये, इनकी रक्षा कीजिये, मैं हम आप दोनोंके आश्रय श्रीवृषभदेवके चरणरूपी वृक्षोके समीप जाता हूँ ॥२५॥ इस प्रकार भूमिगोचरी और विद्याधरोंसे धिरे हुए अर्ककीतिको प्रसन्न कर, सतुष्ट कर और उत्तम हाथीपर सवार कराकर सबसे आगे किया तथा सब पापोंकी शान्तिके लिये आठ दिन तक बड़ी विभूतिके साथ महाभियेक होने पर्यन्त शान्तिपूजा की । मेलमिलापकी विधिको जाननेवाले अकंपनने जयकुमारको भी वहाँ बुलाया और उसी समय संधि कराकर दोनोंमें अत्यन्त प्रेम उत्पन्न करा दिया तथा कभी न नष्ट होनेवाली एकता करा दी । तदनन्तर अर्ककीतिको बड़े वैभव और सब प्रकारकी धनरूप सम्पदाओंके साथ साथ अक्षमाला नामकी कन्या दी, अच्छा आदर-सत्कार किया और उनकी योग्यताके अनुसार थोड़ी दूर तक साथ जाकर उन्हें विदा किया । इसी प्रकार अच्छे अच्छे रत्न, हाथी और घोड़े देकर अन्य भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंका सम्मान कर उन्हें भी शीघ्र ही विदा किया ॥२६-३०॥ अपने अन्यायके कारण उत्पन्न हुई लज्जासे जिनका वैर दूर हो गया है ऐसे वे सब लोग अपने अपने नगरको चले गये, सो ठीक ही है कपोकि बुद्धि वही है जो भाग्यवश हुए अपराधका शीघ्र ही प्रतिकार कर लेती

१ आहारो यया विनाशयति । २ विश्वेषा जीवन् यस्मात् स विश्वजीवित । विश्वजीवन अ०, प०, स०, इ०, ल० । ३ जलम् । ४ इव । ५ एवं न चेत् । ६ प्रतिग्रह कुप । ७ अप्रे इत्वा । ८ अन्त्येयसम्बन्धं वृत्त्वा । ९ अविनश्वरम् । १० अक्षमालाम् अ०, स०, इ०, ल० । ११ अर्ककीतिम् । १२ किञ्चिदन्तर गत्वा । १३ निरस्त । १४ स्वा स्वामगु पुरीम् द०, अ०, स० । १५ जगुः । १६ देवाज्जातापरासत्य । १७ प्रतिविधान करिष्यति ।

तदा पूर्वोदितो देव रामागत्य सुसम्पदा । सुलोचनाविवाहोदरपार्याणं रामपादयत् ॥३२॥
 मेघप्रभसुवेत्वादिसत्सहायान् सहानुजः । जयोऽप्यगमयत् सर्वाङ्गं सन्तप्यार्थैर्बहुप्रियः ॥३३॥
 'नाययशाप्रणीशचामा' जामात्राऽलोच्य सत्वरम् । सुधीः स्वगृहसाराणि' यथा रत्नान्मुपायनम् ॥३४॥
 विदितप्रस्तुतायोऽसि ययाऽसौ' नः प्रसीदति । तथा कुविति धर्केशं' सुमुखारयमजोगमत्' ॥३५॥
 आशु गत्वा निवेद्यासौ' दृष्ट्वेश धरणी' तनुम् । क्षित्वा प्रणम्य दत्त्वा च प्राप्तं निम्' ताञ्जलि
 देवस्थान् चरो देव प्रणम्याकम्पनो भयात् । देव विज्ञापयत्येव प्रसादं बृह तच्छुभम् ॥३७॥
 सुलोचनेति न 'क'यासारस्त्वद्विहितधिये' । स्वयवरविधानेन सम्प्रादायि' जयाय सा ॥३८॥
 'तत्रागत्य कुमारोऽपि प्राक् सर्वमनु' मत्य तत्' । विद्याधरधराधोऽं' सुप्रसन्नः सह स्थित ॥३९॥
 पश्चात् कौर्षिण ग्रहः शूरः स्थित्वा सह' शुभ्रहम् । खलो बलाद्यथाऽमभ्यं वृथा कोपयति स्म तम् ॥४०॥
 विज्ञातमेव देवेन सर्व' तत्सविधानकम् । 'चारचक्षुश्च वेत्येतोक्ति पुनः' सावधिर्भवान् ॥४१॥
 'कुमारो हि कुमारोऽसौ नापराधोऽस्ति कश्चन । 'तत्र तस्य सद्योपा' स्मो' वयमेव प्रमादिन ॥४२॥

है ॥३१॥ उसी समय पहले कहे हुए देवने आकर वडे वैभवके साथ सुलोचनाके विवाहका उत्सव सम्पन्न किया ॥३२॥ सबके प्यारे जयकुमारने भी अपने छोटे भाइयोंके साथ साथ मेघप्रभ सुकेतु आदि अच्छे अच्छे सब सहायकोंको धन द्वारा सतुष्ट कर विदा किया ॥३३॥

तदनन्तर नाथवशके शिरोमणि अतिशय बुद्धिमान् अकपनने अपने जमाई जयकुमारके साथ सलाह की और अपने घरके अच्छे अच्छे रत्न भेंटमें देनेके लिये वाधकर सुमुख नामक दूतको यह कहकर चक्रवर्तीके पास भेजा कि तू वर्तमानका सब समाचार जानता ही है, चक्रवर्ती जिस प्रकार हम लोगोपर प्रसन्न हो वही काम कर ॥३४-३५॥ उस दूतने शीघ्र ही जाकर पहले अपने आने की खबर भेजी फिर चक्रवर्तीके दर्शन कर पृथिवीपर अपना शरीर डाल प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर साथमें लाई हुई भेंट देकर कहा कि हे देव, अकपन नामका राजा आपका अनुचर है वह प्रणाम कर भयसे आपसे इस प्रकार प्रार्थना करता है सो प्रसन्नता कीजिये और उसे सुन लीजिये ॥३६-३७॥ उसने कहा है कि सुलोचना नामकी मेरी एक उत्तम कन्या थी वह मैंने स्वयवर-विधिते आपने ही जिसकी लक्ष्मी अथवा शोभा बढ़ाई है ऐसे जयकुमारके लिये दी थी ॥३८॥ कुमार अर्ककीतिने भी उस स्वयवरमें पधारकर पहले सब बात स्वीकार कर ली थी और वे प्रसन्न हुए विद्याधर राजाओंके साथ साथ वहा विराजमान थे ॥३९॥ तदनन्तर जिस प्रकार कोई दुष्ट शुभ ग्रहके साथ ठहरकर उसे भी दुष्ट कर देता है उषी प्रकार किसी दुष्टने जबदंस्त्री हम लोगोपर व्यथं ही उन्हें क्रोधित कर दिया ॥४०॥ इसके बाद वहा जो कुछ भी हुआ था वह सब समाचार आपको विदित ही है क्योंकि गुप्तचर रूप नेश्रोको धारण करनेवाला साधारण राजा भी जब यह सब जान लेता है तब फिर भला आप तो अवधिज्ञानी है, आपका क्या कहना है ? ॥४१॥ कुमार तो अभी कुमार (लडवा) ही है इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है, प्रमाद करनेवाले केवल हम लोग ही उसमें सद्योप है

१ स्वयवरनिर्माणे प्रोक्तविचित्राद्गणमुर । २ सदानुजान् ५०, ६०, म०, ल० । ३ बहव प्रियाणि मित्राणि ययम् । ४ अवम्पन । ५ पुण्या प्रियेण सह । ६ निजगृहे स्थितेपूव्वष्टानि । ७ प्राभुनम् । ८ चरि । ९ मुमुक्षाद्दयद्रुतम् । १० गमयति स्म । ११ दूत । १२ भूम्याम् । १३ स्थिराञ्जलि । १४ कन्यामुत्सृष्टवान् । १५ त्वया वृत्तैर्यथाय जयाय सम्प्रादामीति सम्बन्ध । १६ दत्ता । १७ स्वयवरे । १८ अनुमतिं कृत्वा । १९ स्वयवरविधानम् । २० चन्द्रादिशुभग्रहान्वित यथा भवति तथा गिन्या वीर्यति त गयेति सम्बन्ध । २१ तद्वृत्तान्तम् । २२ चारत गूढपुरपा एव चक्षुर्मय । २३ अवधि-ज्ञानमदित । २४ वाक्य । २५ गविधाने । २६ नागरापा । २७ भवाम ।

तस्मै^१ कन्या गृहाणेति नास्माभिः सा समर्पिता । आराधकस्य बोधोऽग्नौ यत् प्रकल्पयन्ति देवता ॥४३॥
 मयैव^२ विहिता सम्यक् र्धयिता बन्धवोऽपि न । स्निग्धाश्च^३ कथमेतेषां विदधामि विनिग्रहम् ॥४४॥
 इत्येतद्देव मा मेरेषा स्यात् सद्योपो यदि त्वया । कुमारोऽपि निगृह्येत न्यायोऽयं त्वदुपक्रम^४ ॥४५॥
 तदादिशो^५ विधेयोऽन^६ को दण्डस्त्रिविधोऽपि न । विधिषु किं परिवर्त्तेश किं वार्यहरण प्रभो ॥४६॥
 तवादेशविधानेन नितरा कृतिनो धयम् । इहामुत्र च तद्देव यथार्थमनुशाधि^७ न ॥४७॥
 इति प्रश्रयणीं घाणीं निगद्य हृदयप्रियाम् । सुमुखो राजराजस्य^८ प्यरतीत् करत्तया ॥४८॥
 सता वचांसि वेतासि हरन्त्यपि हि रक्षसाम्^९ । किं पुन सामसाराणि^{१०} तादृशाः^{११} समतादृशाम्^{१२} ॥४९॥
 इहंहीति^{१३} प्रसन्नोक्त्या प्रफुल्लवदनान्मूत्रज । उपासिहासन^{१४} स्रक्तो निःसृष्टार्थं निवेदय तम् ॥५०॥
 अकम्पने^{१५} किमित्थेवम् उदीर्य प्रहितो^{१६} भवान् । पुष्टयो^{१७} निर्विशेषास्ते सर्वेऽप्येष्टाश्च सत्प्रति ॥५१॥
 गृहाश्रमे त^{१८} एवाध्यात्मनेवाह च बन्नुमान् । नियेद्धार^{१९} प्रवृत्तस्य ममाप्यन्यायवर्त्तन्ति ॥५२॥
 पुरवो मोक्षमार्गस्य गुरुवो दानसन्तते । श्रेयाश्च चक्षिणा वृत्तैर्येवैहास्म्यहमपणो ॥५३॥
 तथा स्वयवरस्येभे नाभूद्वन् यत्कम्पना । क प्रवर्त्तयिताऽन्योऽस्य मार्गस्यैव^{२०} सनातन ॥५४॥

॥४२॥ 'तुम इस कन्याको ग्रहण करो' ऐसा कहकर तो मेने जयकुमारके लिये दी नहीं थी, तथापि देवना जो कुपित हो जाते हैं उसमें देवताका नहीं मन्तु आराधना करनेवाले हीका दोष समझा जाता है ॥४३॥ ये सब वचन मेरे ही बनाये हुए हैं, मेरे ही बढाये हुए हैं, मेरे ही भाई हैं और मुझे ही सदा स्नेह रखने हैं इसलिये इनका निग्रह कैसे करू ऐसा आप मन मानिये क्योंकि यदि आपका पुत्र भी दोगी हो तो उसे भी आप दण्ड दते हैं, इस न्यायका प्रारम्भ आपसे ही हुआ है । इसलिये हे प्रभो, आज्ञा दीजिये कि इस अपराधके लिये हम लोगोको तीनो प्रकारके दण्डोंमेंसे कौन सा दण्ड मिलने योग्य है ? क्या फासी ? क्या शरीरका क्लेश अथवा क्या धन हरण कर लेना ? ॥४४-४६॥ हे देव, आपकी आज्ञा पालन करनेमे ही हम लोग इस लोक तथा परलोकमें अत्यन्त धन्य हो सकेंगे इसलिये आप अपराधके अनुसार हमें अवश्य दण्ड दीजिये ॥४७॥ इस प्रकार नम्रतासे भरे हुए और हृदयको प्रिय लगनेवाले वचन कहकर वह सुमुख दून राजराजेश्वर-चक्रवर्तीके हाथके इशारेसे चुप हो गया ॥४८॥ जब कि सज्जन पुष्टयो वचन रक्षसोके भी चित्तको मोहित कर देने हैं तब सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले भरत जैसे महापुरुषोके शान्तिपूर्ण चित्तकी तो बात ही क्या है ? ॥४९॥ जिनका मुखरानी कमल प्रफुल्लित हो रहा है ऐसे चक्रवर्तीने 'यहा आओ' इस प्रकार प्रसन्नताभरे वचनोसे उस दूतको अपने सिंहासनके निकट बैठकर उससे इन प्रकार कहना प्राग्भ किया कि 'महाराज अकपतने इस प्रकार कहकर आपको क्यों भेजा है ? वे तो हमारे पिता के तुल्य हैं और इस समय हम समीपे ज्येष्ठ हैं ॥५०-५१॥ गृहस्थाश्रममें तो मेरे वे ही पूज्य हैं, उन्हीसे मैं भाईबन्धुवाला हू, औरकी क्या बात ? अन्यायमार्गमें प्रवृत्ति करनेपर वे मुझे भी रोकने वाले हैं ॥५२॥ इस युगमें मोक्षमार्ग चलानेके लिये जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव गुरु हैं, दानकी परम्परा चलानेके लिये राजा श्रेयास गुरु हैं और चक्रवर्तियोकी वृत्ति चलानेमें मैं मुख्य हू उसी प्रकार स्वयवरकी विधि चलानेके लिये वे ही गुरु हैं । यदि ये अकपन महाराज नहीं होने तो इस स्वयवर मार्गका चलानेवाला दूसरा कौन था ? यह मार्ग अनादि कालका है

१ जयाय । २ भरतेनैव । ३ स्नेहिता । ४ त्वया प्रथमोपनान्त । ५ तत् कारणात् । ६ बोधे । ७ निगमय । ८ तूष्णीं स्थित । ९ रक्षसानाम् । १० वचांसि साम्ना साराणि चेत् । ११ सताम् । १२ समत्वनेत्राणाम् । १३ अनापच्छेति । १४ सिंहासनसमीपे । १५ दूतमुन्मत् । १६ प्रेषित । १७ पुष्टिनैम्य । १८ गुरुभ्यो ब्र०, प०, म०, स०, इ०, स० । १९ अकम्पना एव । २० स्वयवरमार्ग ।

मार्गादिघरन्तनान्^१ घेऽत्र^२ भोगभूमितिरोहितान् । भुवंन्ति नूतनान् रातः सद्भिः पूज्यास्त एव हि ॥५५॥
 न चक्रेण न रत्नैश्च शोर्वर्नं निधिभिस्तथा । घतेन न पडटगेन नामि पुत्रं मेया व न ॥५६॥
 तदेतत् सार्वभौमस्य ज्येन्वेकेन केयलम् । सर्वत्र शौर्यकार्येषु तेनैव विजयो भव ॥५७॥
 म्लेच्छराजान् विनिजित्य नाभिंशले मशोमयम् । मन्नाम स्यापितं तेन^३ किमत्राग्येन वेनचित् ॥५८॥
 अर्ककीर्तिरकीर्ति मे कीर्तनीयामकीर्तियु । आराशाधिमाहायार्थोन्मदीमायमलीनसाम् ॥५९॥
 शमुना^४ऽन्यायवस्त्रय प्रायर्त्तीति^५ न वेयलम् । इह स्वयं च दण्डघानां^६ प्रथमः परित्खलितः ॥६०॥
 शभूदयशसो रूपं मत्प्रवीपादिव्याञ्जनम् । नार्ककीर्तिरसौ स्पष्टम् अयशःकीर्तिरेव हि ॥६१॥
 जय एव मदादेशाद् ईदृशोऽन्यायवर्तिनः । समीकुर्यात्तस्तेन स सामु दमिती युधि ॥६२॥
 सदोषो यदि निर्ग्राह्यो ज्येष्ठपुत्रोऽपि भूभुजा । इति मार्गमहं तस्मिन्नाद्य वर्तयितुं स्थितः ॥६३॥
 अक्षिमाला^७ किल प्रता^८ तस्मै कन्याज्वलेपिने^९ । भवद्भिरविषाघैस्तद् विरूप^{१०}कमनुष्ठितम् ॥६४॥
 पुरस्कृत्येह तामेति^{११} नीतः सोऽपि प्रतीक्ष्यताम्^{१२} । सकलदनेति किं मूर्तिः परिहर्तुं भवेद्विधो^{१३} ॥६५॥
 उपेक्षितः सदोषोऽपि स्वपुत्रदचक्रवतिना । इतीदमयशः स्यापि^{१४} ध्वयायि तदकम्पनः ॥६६॥
 इति सन्तोष्य विश्वेशः सोमस्यं सुमुखं नयन् । हित्वा ज्येष्ठं तुजं^{१५} तोकम्^{१६} शक्रं रोन्वायमौरसम् ॥६७॥

॥५३-५४॥ इस युगमे भोगभूमिसे छिडे हुए प्राचीन मार्गोको जो नवीन कर देते हे वे मत्पुत्र ही सज्जनों द्वारा पूज्य माने जाते हे ॥५५॥ मेरा यह प्रसिद्ध चक्रवर्तीपना न तो चक्ररत्नसे मिला है, न शेष अन्य रत्नोसे मिला है, न निधियोंसे मिला है, न छह अगोवाली मेनासे मिला है, न पुत्रोंसे मिला है और न मुझमे ही मिला है, किन्तु केवल एक जयकुमारसे मिला है क्योंकि शूर वीरताके सभी कार्योंमें मेरी जीत उसीसे हुई है ॥५६-५७॥ म्लेच्छ राजाओंको जीतकर नामि पत्रंतपर मेरा कीर्तिमय नाम उसीने स्थापित किया था, इस विषयमें और किसीने क्या किया है ? ॥५८॥ इस अर्ककीर्तिने तो अकीर्तियोंमें गिनने योग्य तथा स्याही और उडके समान काली मेरी अकीर्ति जब तक चन्द्रमा है तब तकके लिये ससारभरमें फैला दी ॥५९॥ इसने अन्याय का मार्ग जलाया है केवल इतना ही नहीं है । किन्तु ससारसे दण्ड देने योग्य लोगों में अपने आपको मुख्य बना लिया है ॥६०॥ जिस प्रकार दीपकसे काजल उत्पन्न होता है उसी प्रकार यह अकीर्तिरूप मुझमे उत्पन्न हुआ है, यह अर्ककीर्ति नहीं है किन्तु साक्षात् अयशकीर्ति है ॥६१॥ मेरी आज्ञासे जयकुमार ही अन्यायमे प्रवृत्ति करनेवाले इस प्रकारके लोगोंको दण्ड देता है इसलिये इसने युद्धमें जो उसे दण्ड दिया है वह अच्छा ही किया है ॥६२॥ और की क्या बात ? यदि बड़ा पुत्र भी अपराधी हो तो राजाको उसे भी दण्ड देना चाहिये यह नीतिका मार्ग अर्ककीर्तिपर चलानेके लिये आज मैं तैयार बैठा हूँ ॥६३॥ आप लोगोंने विचार किये बिना ही उस अभिमानिके लिये अक्षमाला नामकी कन्या दे दी यह बुरा किया है ॥६४॥ अथवा उम प्रसिद्ध अक्षमाला कन्याकी भेंट देकर आपने उस अर्ककीर्तिको भी पूज्यता प्राप्त करा दी है सो ठीक ही है क्योंकि यह कलंकसहित है यह समझकर क्या चन्द्रमाकी मूर्ति छोड़ी जाती है ? ॥६५॥ परन्तु चक्रवर्तीने अपराध करनेपर भी अपने पुत्रकी उपेक्षा कर दी- उमे दण्ड नहीं दिया इस मेरे अपयशको महाराज अकम्पनने स्थायी बना दिया है ॥६६॥ इस

१ पुरातनान् पुत । २ युगादी । ३ जयेन । ४ अर्ककीर्तिना । ५ प्रवर्तितम् । ६ दण्डितं भोग्यानाम् । ७ समदण्डं मूर्त्यान् । ८ अर्ककीर्ती । ९ अक्षमाला अ०, म०, इ०, स०, ल० । १० दत्ता । ११ गवित्राय । १२ वष्टम् । १३ सधमीमापाम् । १४ पूज्यताम् । १५ अवारि । १६ पुत्रम् । १७ न्यायमेव पुत्रमत्रोत् ।

सुमुखस्तर्ह्युवागारमिव वोढुं तदाश्रमः । स जयोऽश्रमो देव देवस्य नमति श्रमी ॥६८॥
 लब्धप्रसाद इत्युक्त्या क्षिप्रवाग्द्वयानि प्रणम्य तम् । विकसद्बदनाम्भोजः समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥६९॥
 इत एवोन्मत्तो ती^१ र्वात्प्रतीक्ष्यन्ती^२ मदागतित्म्^३ । प्रात्यातां चातनी चृष्टिं प्राकूपो वाज्जिवाभुवः^४ ॥७०॥
 इति विज्ञाप्य चक्रेणात्^५ कृतानुसः कृतत्वरः । सम्प्राभ्याकम्पनं नत्वा सजयं विहितादरम् ॥७१॥
 गोभिः^६ प्रकाश्य ररतस्य प्रसादं चक्रवर्तिनः । रवेर्वा वासं^७ रारम्भस्तद्वज्राञ्जं व्यकाशयत् ॥७२॥
 साधुवादः सदानैश्च सम्मानंस्तौ च तं तदा । श्रान्तिव्यतुरनिप्रोति कृतता हि महोभूतः ॥७३॥
 इत्यतकौदपावाप्तिविभासितशुभोदयः । श्रानुषिवान् जयः श्रीमान् सुषेन इवासुरै^८ कृतम् ॥७४॥
 सुलोचनामृन्वाम्भोजयत्पदापितलोचनः । श्रनङ्गानणुवाणंकतूपीरायितविग्रहः ॥७५॥
 तथा प्रवृत्तं सद्ग्रामे सायर्करसतः क्षतः^९ । पेलवंः कसुमरैर्निविचित्रा विधिभूतयः ॥७६॥
 अस्मितां सस्मितां कथंन् महत्तन्तीं सहासिकाम्^{१०} । सभयां निर्भयां वाताम् आकुलां तापनाकुताम् ॥७७॥

प्रकार सत्रके स्वामी महाराज भरतने सुमुख नामके दूतको सतुष्ट कर उसका मुख प्रसन्न किया और ज्येष्ठ पुत्रको छोड़कर न्यायको ही अपना औरस पुत्र बनाया । भावार्थ—न्यायके सामने बड़े पुत्रका भी पक्ष नहीं किया ॥६७॥ उसी समय चक्रवर्तीकी दयाका भार वहन करनेके लिये मानो अनमयं हुआ सुमुख कहने लगा कि 'हे देव' जिन्हें आपका प्रसाद प्राप्त हो चुका है ऐसे जयकुमार और अकंपन दोनों ही आपके चरणोंको नमस्कार करते हैं, ऐसा कहकर उस दूतने अपने समस्त अंग पृथ्वीपर टालकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया और जिसका मुखस्पी कमल विकसित हो रहा है तथा जिसने हाथ जोड़ रखे हैं ऐसा वह दूत खड़ा होकर फिर कहने लगा कि "जिस प्रकार दो चातक वर्षा ऋतुके पहले वादलसे वर्षा होनेकी इच्छा करते हैं उसी प्रकार जयकुमार और अकंपन आपके समीपसे मेरे जानेकी इच्छा करते हुए इमी ओर उन्मुख होकर बैठे होंगे" ऐसा निवेदन कर जिसने चक्रवर्तीमें आज्ञा प्राप्त की है ऐसे उम दूतने बड़ी शीघ्रतासे जाकर आदरके साथ महाराज अकंपन और जयकुमारको नमस्कार किया तथा वचनोंके द्वारा अनुराग करनेवाले चक्रवर्तीकी प्रसन्नता प्रकट कर उन दोनोंके मुलकमल इस प्रकार प्रफुल्लित कर दिये जिस प्रकार कि दिनका प्रारम्भ समय (प्रातः-काल) किरणोंके द्वारा लाल सूर्यकी प्रसन्नता प्रकटकर कमलोंको प्रफुल्लित कर देता है ॥६८-७२॥ उस समय उन दोनों राजाओंने धन्यवाद, दान और सम्मानके द्वारा उस दूतको अत्यन्त प्रसन्न किया था सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग किये हुए उपकार माननेवाले होते हैं ॥७३॥ इस प्रकार विचारातीत वैभवकी प्राप्तिमें जिनके शुभ कर्मका उदय प्रकट हो रहा है ऐसा वह श्रीमान् जयकुमार सुषेने इवासुरके घर रहने लगा ॥७४॥ जिसके नेत्र सुलोचनाके मुखस्पी कमलार भ्रमरके समान आचरण करते थे और जिसका शरीर कामदेवके बड़े बड़े वाण रखनेके लिये तरकसके समान हो रहा था ऐसा वह जयकुमार मुद्र होनेपर लोहेके वाणोंमें उम प्रकार घायल नहीं हुआ था जिस प्रकार कि अत्यन्त कोमल कामदेवके इन फूलोंके वाणोंमें घायल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि दैतलीला बड़ी विचित्र होती है ॥७५-७६॥ वह जयकुमार मुस्कुराहटसे रहित सुलोचनाको मुस्कुराहटसे युक्त करता था, न हंमनेपर जोरसे हंसाता था, नययुक्त होनेपर निर्भय करना था, आकुल होनेपर निराकुल करता था, वातालाप न करनेपर

१ पवित्रता । २ अश्रमनजयकुमारो । ३ स्वतः । ४ वाञ्छन्ती । ५ मदागतित्म् ।
 ६ प्रथममेघान् । ७ चक्रवर्तिनः । ८ वाग्नि किरणैश्च । ९ दिव्यारम्भ । १० नीलवन्ती ।
 ११ स्थितवान् । १२ मातुलसम्बन्धिनि गृहे । १३ पीडितः । १४ मुद्रुभिः । १५ राममहिताम् ।

अनालपन्तीमालाप्य लोकमानो यिलोकनीम् । अस्पृशन्तीं समास्पृश्य व्यधाद् व्रीडाश्लोपनम् ॥७८॥
 कृतो भवान्तरायद्ध तत्स्नेहबलशालिना । सुलोचनायाः कौरव्यः कामं कामेन कामुनः ॥७९॥
 सुलोचनामनोवृत्ती रागामृतकरोद्धरा । अमाच्चचाल बेलैय कामनाममहाम्बुधेः ॥८०॥
 मुकुले वा मुखे चक्रे चिकासोऽस्याः क्रमात्पदम् । प्राशान्तदुष्कारातिग्रहानक्षरसूचन ॥८१॥
 सक्षीमुखानि सयोक्ष्य जञ्जपित्वा दिशामसी । स्वैरं हसितुमारब्धं गृहीतमदनग्रह ॥८२॥
 सित्तासित्तासित्तालोलकटाक्षेक्षणतोमरं । जय तदा जितानद्वयं कृतवानरुणप्रतिष्कणम् ॥८३॥
 ससाध्वसा सलज्जा सा विव्याध विविधैर्मनवा । अनालीकनवेलाघाम् प्रति सन्धित्तयेव तम् ॥८४॥
 न भुजङ्गेन सन्दष्टा नापि ससेवितासया । न श्रेमेण समाक्रान्ता तथापि द्विद्यति स्म सा ॥८५॥
 स्वल्पन्ति स्म कालापादचक्रम्पे हृदयं भृशम् । घलाग्यालोकितान्यासप्रवशे घातमनश्च सा ॥८६॥
 प्रक्षालितेव लज्जाग्नात् सुदत्याः स्वेदवारिभिः । वागिन्धनं ध्यं दीपिष्ट विचित्रश्चित्तजोऽन्तः ॥८७॥
 तावत्प्रया भय तावत्तावत्कृत्यविचारणा । तावदेव धृतिर्पावज्जुम्भते न स्मरज्वरः ॥८८॥

उससे वातालाप करता था, अपनी ओर देखनेपर उसे देखता था, और स्पर्श न करनेपर उसका स्पर्श करता था । इस प्रकार यह सब करते हुए जयकुमारने सुलोचनाकी लज्जा दूर की थी ॥७७-७८॥ पूर्व पर्यायमे वधे हुए स्नेहहृषी बलसे शोभमान कामदेवने इच्छानुसार जयकुमारको सुलोचनाका सेवक बना लिया था ॥७९॥ रागरूपी चन्द्रमाके सम्बन्धसे बड़ी हुई, कामदेव नामक महासागरकी वेलाके समान सुलोचनाके मनकी वृत्ति क्रम क्रमसे चञ्चल हो रही थी ॥८०॥ सब शरीरमे घुसे हुए कामदेवरूपी पिशाचके द्वारा बिना कुछ बोले ही जिसकी सूचना हो रही है ऐसे विनासने सुलोचनाके मुखरूपी मुकुलपर धीरे धीरे अपना स्थान जमा लिया था ॥८१॥ कामरूपी पिशाचको ग्रहण करनेवाली सुलोचना सखियोंके मुख देखकर दिशाओसे वातचीत कर अर्थात् निरर्थक वचन बोलकर इच्छानुसार हसने लगी ॥८२॥ उस समय भय और लज्जा सहित सुलोचना कामदेवको जीतनेवाले जयकुमारको न देखने योग्य समयमे मानो ठगनेकी इच्छासे ही कामदेवको अपना सहायक बनाकर सफेद काले इन दोनों रंगोसे मिले हुए चञ्चल कटाक्षोसे भरी हुई दृष्टिहृषी अनेक तोमर नामके हृथियारोसे धीरे धीरे मार रही थी ॥८३॥ जब जयकुमार उसकी ओर नहीं देखता था उस समय भी वह सफेद, काले और चञ्चल कटाक्षोसे भरी दृष्टिसे उसे देखती रहती थी और उससे ऐसा मालूम होता था मानो यह उसे ठगना ही चाहती है ॥८४॥ उस समय उसे न तो सर्पने काटा था, न उमने मद्य ही पिया था, और न परिश्रमसे ही वह आक्रान्त थी तथापि वह पसीनेसे तर हो रही थी ॥८५॥ उसके मधुर भाषण स्वल्पित हो रहे थे, हृदय अत्यन्त कंप रहा था, दृष्टि चञ्चल हो रही थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने वशमे ही न हो ॥८६॥ सुन्दर दातोवाली मुञ्चवनाकी लज्जा इस प्रकार नष्ट हो गई थी मानो उसके पसीनारूपी जलसे धुल ही गई हो और कामदेवरूपी विचित्र अग्नि वचनरूपी ई धनसे ही मानो खूब प्रज्वलित हो रही थी ॥८७॥ जब तक कामदेवरूपी ज्वर नहीं बढ़ता है तबतक ही लज्जा रहती है तबतक ही भय रहता है, तब तक ही करने योग्य कार्यका विचार रहता है और तब तक ही धैर्य रहता है ॥८८॥

१ गाम्भ्यं । २ अत्ययम् । ३ इच्छु । ४ अनुरागचन्द्रेणोत्कटा । ५ स्थानम् । ६ प्राशान्त-
 प्रहसशरेण विना सूचय । ७ सत्वरती । ८ निरर्थक्यादिदोषदुष्टमुक्त्वा । ९ उपनात्तकी ।
 १० स्वेतकृष्णगवट । ११ गहायम् । १२ वञ्चनेच्छया । १३ स्वदवती चमूव । १४ मनोगवचनानि ।
 १५ अथय परार्थानेव अथवा आत्मन यणे अपीने न या नातीदिति । १६ वित्तज्ञान अ०, प०, ६०,
 ४०, ५० ।

विषयोऽह्यत्स सर्वेषाम् इन्द्रियाणां परस्परम् । परामवापतुः प्रीतिं दम्पती तौ पृथक् पृथक् ॥८६॥
 श्रत्यातदपात्^१ श्रमश्रा^२हिकरणंस्तावतपिती । श्रनिन्दतामतेपैकरणाकारिणं^३ विधिम् ॥८७॥
 श्रन्योग्यविषयं तीक्ष्णं त्यक्त्वाऽशेषान्यगोचरम् । स्तोत्रेन^४ सुखमप्राप्तं प्रापतुः परमात्मनः ॥८८॥
 सम्प्राप्तभावपर्यन्तो^५ विदतुनं स्वयं^६ च तौ । मुक्त्वं^७ शं^८ सहैवोद्यत्स्वक्रियोद्रेकसम्भवम्^९ ॥८९॥
 रतावसाने^{१०} निःशक्त्योर्गाडैस्तुषयात् प्रपश्यतो^{११} । तयोरन्योन्यमाभात^{१२} नेत्रयोरेव पुत्रिके ॥९०॥
 श्रवापि या तथा प्रीतिस्तस्मात्तेन^{१३} च या ततः^{१४} । तयोरन्योन्यमेवासीद् उपमानोपमेयता ॥९१॥
 भुवत्मात्मन्भरित्त्वेन^{१५} यत्सुखं परमात्मना । ततोऽप्यधिकमासीद्वा^{१६} सविभागेऽपि^{१७} तत्तयोः ॥९२॥
 इत्यन्योन्यसमुद्भूतप्रीतिस्कीर्तानुताम्भसि । कामाम्भोथी निमग्नौ तौ स्वैरं चिन्नीडतुदिचरम् ॥९३॥
 तदा स्वमन्त्रिप्र^{१८}हितगूढपनार्यबोवितः । जयो जियमिपुस्तूर्ण^{१९} स्वत्यानीयं^{२०} पिथो वराः ॥९४॥

वे दोनों दम्पती परस्पर पृथक् पृथक् सब इन्द्रियोंके विषयोंका सेवनकर परम आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥८६॥ अत्यन्त आसक्तिके कारण, क्रम क्रमसे एक एक विषयको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंमे वे संतुष्ट नहीं होते थे इसलिये सब इन्द्रियोंको एक इन्द्रियरूप न करनेवाले विघाताकी वे निन्दा करते रहते थे । भावार्थ—उन दोनोंकी विषयामयिन इतनी बड़ी हुई थी कि वे एक साथ ही सब इन्द्रियोंके विषय ग्रहण करना चाहते थे परन्तु इन्द्रियां अपने प्राकृतिक नियम के अनुसार एक समयमें एक ही विषयको ग्रहण कर पाती थी अतः वे असंतुष्ट होकर सब इन्द्रियोंको एक इन्द्रियरूप न बनानेवाले नामकर्मरूपी ब्रह्माकी मदा निन्दा करते रहते थे ॥९०॥ उन दोनोंने सब साधारण लोगोंको मिलनेवाला परस्परका सुख छोड़कर आत्माका वह उत्कृष्ट सुख प्राप्त किया था जो कि अन्य छोटे-छोटे लोगोंको दुष्प्राप्य था ॥९१॥ जिनके भावोंका अन्त आ चुका है ऐंमे वे दोनों ही एक साथ उत्पन्न हुई अपनी क्रियाओंके उद्रेकसे उत्पन्न होनेवाले एक सुखको छोड़कर और कुछ नहीं जानते थे ॥९२॥ संभोग कीटाके अन्तमें अशक्त हुए तथा गाढ उत्कंटाके कारण परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके नेत्रोंकी पुतलिया एक दूसरेके नेत्रोंकी पुतलियोंके समान ही सुशोभित हो रही थी । (यहां अनन्वयालंकार होनेसे उपमेय ही उपमान हो गया है) ॥९३॥ सुलोचनाने जयकुमारसे जो सुख प्राप्त किया था और जयकुमारने सुलोचनाने जो सुख पाया था उन दोनोंका उपमानोपमेय भाव परस्पर—उन्ही दोनोंमें था ॥९४॥ परमात्माने सबके स्वामी होकर जिय मुक्त्वा अनुभव किया था उन दोनोंका वह सुख परस्परमें विभक्त होनेपर भी उससे कहीं अधिक था । भावार्थ—यद्यपि उन दोनोंका सुख एक दूसरेके संयोगमे उत्पन्न होनेके कारण परस्परमें विभक्त था, तथापि परिमाणकी अपेक्षा परमात्माके पूर्ण सुखमे भी कहीं अधिक था । (यहां ऐंमा अतिगयोक्ति अलंकारमे कहा गया है वास्तवमें तो वह परमात्माके सुखका अनन्तवा भाग भी नहीं था) ॥९५॥ इस प्रकार परस्परमें उत्पन्न होनेवाले प्रेमामृतरूपी जलमे भरे हुए कामरूप समुद्रमें डूबकर वे दोनों चिरकालतक इच्छानुसार कीडा करते रहे ॥९६॥ उसी समय एक दिन जो अपने मंत्रोंके द्वारा

१ अत्यासक्तिन । २ श्रमवृत्त्या पदार्थग्राहीन्द्रियं । ३ निन्दा चक्रुः । ४ सन्ततेन्द्रियविषयाणा-
 मेकमेवेन्द्रियमकुर्वन्तम् । ५ सामान्यपुरषेण । ६ उत्तमम् । ७ स्वस्य । परमात्मन परमपुरुषस्येति
 ध्वनिः । ८ सीता । ९ वृषघाते । १० आत्मनौ । ११ सुखम् । १२ सहैव प्रादुर्भवतिज-
 चुम्बनादिममुल्लसत्सम्भूतम् । १३ सुरतनीडावसाने । १४ परस्परमालोक्यमानयो सता । १५ व्यरा-
 जनाम् । १६ जयकुमारान् । १७ सुखोन्नतया । १८ प्रीत्यो । १९ स्वोदरपूरकत्वेन । उभावान्मन्त्रि-
 स्सोदरपूरके इत्यभिप्रायान् । २० परमात्ममुखात् । २१ वा ब्रह्मवारेण । २२ विभजने । २३ मुक्त्वा ।
 २४ प्रेषिन । २५ गीघ्रम् । २६ म्वा पुरीम् । स्व त्या—न० ।

भवद्भिर्भावितैश्चयं मा मदीया^१ विदुश्व^२ । इति मामं^३ समभ्येत्य^४ प्रस्थानार्थं नवबुधुत्^५ ॥१८॥
 तद्बुध्या नाथवंशेशः^६ किञ्चिदासीत् तसंभ्रमः । जवे^७ जिगमिषी स्वस्मान्न स्यात् कस्याकुलं मनः ॥
 विचार्य कार्पण्यार्थं^८ तयास्त्वित्याह तं नृपः । स्नेहानुर्वर्तिनीं नैति^९ दीपिकां वा धियं सुधीः^{१०} ॥१०॥
 प्रादात्^{११} प्रागेव सर्वस्वं तस्मै दत्तसुलोचनः । तयापि लौकिकाचारं परिपालयितुं प्रभुः ॥१०१॥
 दत्त्वा कौशादि सर्वस्वं स्वीकृत्य^{१२} प्रीतिमात्मनः । अनुगम्य स्वयं दूरं शुभेऽहनि वधूवरम् ॥१०२॥
 कथं कथमपि त्यक्त्वा स^{१३} सजनिजंनप्रणीः^{१४} । ध्यावर्तत ततः शोकीं^{१५} तुगिवयोगी हि दुःसहः ॥१०३॥
 विजयाद^{१६} समाकृत्य जयोऽपि ससुलोचनः । श्रावदसामजं सर्वैः स्थानुर्जैविजयादिभिः ॥१०४॥
 हेमाद्गदकुमारैण सानुजेन च सोत्सवः । प्रवर्तयन् कथाः पथ्याः^{१७} परिहासं मनोहराः ॥१०५॥
 वृतः शशोव नक्षत्रैः सानुगदगं^{१८} ययौ शनं । इलां सञ्चालयन् प्राग्वा^{१९} श्रीमान् स जयसाधनः ॥१०६॥
 स्कन्धावारं^{२०} यथास्थानं पारोगदगं^{२१} न्यवीविशत् । वीक्ष्य कक्षपुटत्वेन प्रशास्ता^{२२} शास्त्रवित्ता ॥
 हृत्स्पटकुटीकोटिकटटोपनिर्गमः । बभामे^{२३} शिविरावासः स्वर्गवास इवारः ॥१०७॥

भेजे हुए पत्रके गूढ अर्थसे प्रेरित हो रहा है, बुद्धिमान् है, और शीघ्रसे शीघ्र अपने स्थानपर पहु-
 चनेकी इच्छा कर रहा है ऐसे जयकुमारने मामा (श्वसुर) के पास जाकर अपने जानेकी सूचना
 दी कि हे माम, आपने जिसका ऐश्वर्य बढ़ाया है ऐसे मुझे मेरी प्रजा देखना चाहती है ।
 ॥९७-९८॥ यह जानकर नाथवंशका स्वामी अकंपन कुछ धवड़ाया सो ठीक ही है क्योंकि
 अपनेसे जय (जयकुमार अथवा विजय) के जानेकी इच्छा करनेपर किसका मन व्याकुल नहीं
 होता है ? ॥९९॥ तदनन्तर कार्योंका पूर्वापर विचारकर राजा अकंपनने जयकुमारसे
 'तयास्तु' कहा सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य दीपिकाके समान स्नेह (तेल अथवा प्रेम)
 का अनुवर्तन करनेवाली बुद्धिको नहीं प्राप्त होते है । भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य स्नेहके पीछे
 बुद्धिको नहीं छोड़ते है ॥१००॥ यद्यपि महाराज अकंपन, सुलोचनाको देकर पहले ही जयकुमार-
 को सब कुछ दे चुके थे तथापि लौकिक व्यवहार पालन करनेके लिये अपने प्रेमके अनुसार सजाना
 आदि सब कुछ देकर उन्होंने किसी शुभ दिनमें वधू-वरको विदा किया । सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ
 महाराज अकंपन अपनी पत्नी सहित कुछ दूरतक तो स्वयं उन दोनोंके साथ साथ गये फिर जिस
 किमी तरह छोड़कर शोक करते हुए वहासे वापिस लौट आये सो ठीक ही है क्योंकि सतान-
 का वियोग बड़े दुःखसे सहा जाता है ॥१०१-१०३॥ जयकुमार भी सुलोचना सहित विजयार्थ
 नामके हाथीपर सवार होकर अन्य अन्य हाथियोंपर बैठे हुए विजय आदि अपने सब छोटे भाइयो
 तथा लघु सहोदरोंमें युक्त हेमाद्गदकुमारके साथ बड़े उत्सवसे भागमें कहने योग्य हसी विनोद-
 की मनोहर कथाए कहता हुआ और पृथिवीको हिलाता हुआ नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी तरह
 गगाके किनारे धीरे धीरे इम प्रकार चला जिम प्रकार कि पहले दिग्विजयके समय सेनाके
 गाय माथ चला था ॥१०४-१०६॥ शास्त्रोंके जाननेवाले और सबपर शासन करनेवाले
 जयकुमारने उग समय गगाके किनारे यथायोग्य स्थानपर पासवाली जमीन देकर सेनाके
 डेरे करवाये ॥१०७॥ देदीप्यमान कण्डोके करोड़ो तम्बुओंके समीप ही जिसमें आने जानेका मार्ग

१ अगमदीया यन्पुमिनादय । २ इष्टुमिच्छव । ३ इवमुरम् । ४ मग्नाप्य । ५ गमनप्रयोजनम् ।
 ६ शापयति म्म । ७ अत्रग्नः । ८ विजये इति ध्वनिः । ९ पार्थिवम् । १० न मन्वति विम् ।
 ११ गोभ्रा धीयं ग । १२ ददाति रम । १३ स्वस्य प्रीतिमेवास्व स्वीकृत्य । १४ स्वीकृत्य ।
 १५ अकंपन । १६ प्यापुंजनवान् । १७ पुत्रवियोग । १८ विजयादङ्गजम् । १९ पवि टिया ।
 २० मन्वति । २१ पूर्वदिग्ब्रजे यथा । २२ निविग्म् । २३ गगातीरे । २४ जयकुमार ।
 २५ सुम्बुश्चन्द्रगङ्गाप्रविशतिपुनर्निर्गमः । २६ ररात्र ।

तत् (त) प्राप्य सिन्धुर दध्वा स राजद्वारि रत्नकम् । विसर्ग्योच्चं प्रविश्यान्त श्रवतीर्य^१ निपाद्य तम्^२
 राजा सुलोचना चावरोप्य स्वभुजसन्मिनीम् । निविश्य स्वोचिते स्थाने मुहुशय्यातले सुखम् ॥११०॥
 तत्कालोचितवृत्तत प्रिया स तर्पयन् प्रिये । स्नानभोजनवाग्वाद्यगीतनृत्यविनोदनं ॥१११॥
 नीत्वा रात्रिं सुख तत्र^३ प्रत्यागम्य प्रत्यय^४ स्थिते । ता निवेद्य समाद्यवास्य हेमाद्यगदपुरस्तरान् ॥११२॥
 निपोज्य स्थानुजान् सर्वान् सम्पत्कटककरणे । आप्तं कतिपयैरेव प्रत्ययोध्यमिषया स ॥११३॥
 अर्ककोर्त्वादिभिं प्रष्टे^५ प्रत्यागत्य प्रतीक्षित^६ । सस्नेह सादर भूय कुमारैणालपन् पुरीम् ॥११४॥
 सानुरागान् स्वयं रागात् प्राविशद्वा विशाम्पति^७ । न पूजयन्ति के वाज्ये पुरुष राजपूजितम् ॥११५॥
 इन्द्रो वैभाद् बहिर्द्वाराञ्जिनस्योत्तीर्य भूपते । सभागेह समासाद्य मणिकुट्टिमभूतलम् ॥११६॥
 मध्ये^८ तस्य स्फुरद्वलखचितस्तम्भसम्भृते । विचित्रनेत्र^९ विन्यस्तसद्वितानविराजिते ॥११७॥
 मणिस्रक्ताफलप्रो^{१०} तलम्बतम्भूयभूयणे^{११} । परार्धरत्नभाजालजटिले मणिमण्डपे^{१२} ॥११८॥
 विद्यु ज्योतिर्गणेनेव राजकेन विराजितम् । स्वकीतिनिर्मलैर्वाग्यमान^{१३} चमरजन्मभि ॥११९॥

वनाया गया है ऐसा वह सेनाका आवाम (पहाव) इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो स्वर्गका
 दूमरा आवास ही हो ॥१०८॥ जयकुमारने अपने डेरके पास जाकर उसके बड़े दरवाजेके
 समीप ही अपना हाथी रोका, वही सब राजाओको विदा किया फिर ऊंचे तम्बूके भीतर प्रवेश
 कर हाथीको बैठाया—स्वयं उतरे, अपनी भुजाओका सहारा लेनेवाली सुलोचनाको भी उतारा
 और अपने योग्य स्थानमें कौमल शय्यातलपर सुखसे विराजमान हुए । फिर उस समयके
 योग्य समाचारोंको जाननेवाले जयकुमारने स्नान, भोजन, वार्तालाप, वाजे, गीत, नृत्य आदि
 मनोहर विनोदोसे सुलोचनाको सतुष्ट किया, रात्रि वही सुखसे बिताई, बहा ठहरनेका कारण
 बतलाया, उसे समझा बुझाकर वहीपर रक्त्वा हेमागद आदि सुलोचनाके भाइयोंको भी वह
 रक्त्वा, अपने सज छोटे भाइयोंको अच्छी तरह सेनाकी रक्षा करनेसे नियुक्त किया और
 फिर कुछ आप्त पुरुषोंके साथ अयोध्याकी ओर गमन किया ॥१०९—११३॥ अयोध्या पहुचने
 पर अर्ककीर्ति आदि अच्छे अच्छे पुरुषोंने सामने आकर जिसका स्वागत किया है, तथा जो
 बड़े स्नेह और आदरके साथ अर्ककीर्तिसे वार्तालाप कर रहा है एमें राजा जयकुमारने अनुराग
 करनेवालोंके साथ साथ बड़े प्रेमसे अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया तो ठीक ही है क्योंकि अन्य
 ऐसे पुरुष कौन है जो राजमान्य पुरुषकी पूजा न करें ॥११४—११५॥ जिस प्रवार इन्द्र सम-
 वसरणके वाह्य दरवाजेपर पहुचकर हाथीसे उतरता है उसी प्रवार जयकुमार भी राजभवन
 के वाह्य दरवाजेपर पहुचकर हाथीसे उतरा और सभागृहमें पहुचा । उस सभागृहकी जमीन
 मणियोसे जडी हुई थी उसके मध्यमें एक रत्नमण्डप था जो वि देदीप्यमान रत्नोसे जडे हुए
 खभोसे भरा हुआ था, अनेक प्रकारके रेशमी वस्त्रोंने तने हुए चदेवोसे सुशोभित था, मणियो
 और मोतियोसे गुथे हुए लम्बे लम्बे फनूस रूप आभूषणोंसे युक्त था, और बहुमूल्य रत्नोंकी
 कान्तिके जालसे व्याप्त था । जिस प्रकार उदयाचलपर सूर्य सुशोभित होता है उसी प्रकार
 उस रत्नमण्डपमें ऊंचे सिंहासनपर बैठे हुए महाराज भरत सुशोभित हो रहे थे । जिस प्रकार
 ज्योतिषी देशोंके समूहने चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार महाराज भरत भी अनेक राजाओं
 से सुशोभित हो रहे थे, उनपर अपनी कीर्तिके समान निर्मल चमर ढुलाये जा रहे थे इन्द्रके

१ राजमण्डपम् । २ उपविश्य । ३ त गजम् । ४ प्रतिशोध्य । ५ वाग्णम् । ६ अयोध्या प्रति ।
 ७ मनुय । ८ पूजित । ९ चक्रवर्तीव । १० समवसरणमिव भूपते सभागृहमिति सम्बन्ध । ११ गभा
 गृहम् । १२ पदवस्त्रवृत्त । १३ रात्रि । १४ दाम । १५ रत्नमण्डपे ७० । १६ चामर ।

वेष्टित वेद्मधनुषा नानाभरणरोचिणा । रोचिदेव वृताकार पूज्य पुण्यदचतुर्विधं ॥१२०॥
 तुङ्गसिंहासनासीन भास्वन्त बोधेष्वाग्निगम् । राजराज समालोक्य बहुशो भक्तिनिर्भर ॥१२१॥
 स वा प्रणम्य तीर्थेश स्पृष्ट्वाऽऽटाङ्गैर्घरासलम् । कर प्रसार्य सम्भाष्य 'राज्ञोवातप्रमातनम् ॥१२२॥
 निजहस्तेन निर्विष्ट 'दृष्ट्यालङ्कृत्य तुष्टयान । व्यभासिष्ट' सभामध्ये स तदा येन तेजसा ॥१२३॥
 प्रसन्नवदनेन्दुद्यदाह्लादिवचनाशुभि । वधू किमिति नानीता ता द्रष्टु वयमुत्सुका ॥१२४॥
 वय किमिति 'नाहृतास्तद्विवाहोत्सवे नवे । प्रकम्पनैरिव युक्त 'सनाभिभ्यो बहिष्कृता ॥१२५॥
 'नन्वह त्वत्पितृस्थाने मा पुरस्कृत्य कथका । त्वयाऽसौ परिणेतव्या त्व तद्विस्मृतवानसि ॥१२६॥
 इत्यकृत्रिमसामोक्त्या तपितश्चक्रवर्तिना । तदा विभावयन् भक्ति स्वयञ्च मणिकुट्टिमे ॥१२७॥
 नत्वाऽपश्यत्प्रसादीव प्रतिगूह्य प्रभोर्दयाम् । जय प्राञ्जलित्त्याय राजराज व्यजितपत् ॥१२८॥
 काशीदेशेशिना देव देवस्याज्ञाविधायिनाम् । विवाहविधिभेदेयु प्रागप्यस्ति स्वयवर ॥१२९॥
 इति सर्वे समालोच्य सचिवं शास्त्रवेदिभि । कल्याण तत्समारब्ध दैवेन कृतमन्यथा ॥१३०॥
 शान्त तत्त्वप्रसादेन ममूलोच्छेदकारणम् । रण शरणभायात् इत्येव भवत् प्रमो ॥१३१॥
 सुरलेचरभूपालास्त्वपदाम्भोरुहालिन । चक्रेणाक्रान्तदिवचक्र किङ्करास्तत्र कोऽस्म्यहम् ॥१३२॥

धनुषके समान अनेक प्रकारके आभरणोंकी कान्तिसे वेष्टित थे अतएव ऐसे जान पड़ते थे मानो कान्तिसे ही उनका शरीर बनाया गया हो और चारो प्रकारके (शुभायु, शुभनाम, शुभगोत्र और सातावेदनीय) पुण्योसे पूज्य थे । इस प्रकार राजराजेश्वर महाराज भरतको देखकर भक्तिसे भरे हुए जयकुमारने तीर्थ करकी तरह आठो अंगोसे जमीनको छूकर अनेक बार प्रणाम किया । महाराज भरतने भी हाथ फेलाकर उसका सम्मान किया तथा अपने हाथसे बतलाय हुए अपने निकटवर्ती आसनपर बैठकर प्रसन्न दृष्टिसे अलंकृत किया । इस प्रकार सतुष्ट हुआ जयकुमार सभाके बीच एक विलक्षण तेजसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था । ॥११६-१२३॥ तदनन्तर महाराज भरत अपने प्रसन्न मुखरूपी चन्द्रमासे निकलत हुए और सबको आनन्दित करनेवाले वचनरूपी किरणोसे सबको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहन लगे कि क्यो जयकुमार, तुम वहूको क्यो नहीं लाये ? हम तो उसे देखनेके लिये बड़ उत्सुक थे, इस नवीन विवाहके उत्सवम तुमने हम लोगोको क्यो नहीं बुलाया ? महाराज अकपनन अपने भाई त्रन्धुओसे हमको अलग कर दिया क्या यह ठीक किया ? अरे, मैं तो तुम्हारे पिताके तुल्य था तुम्हें मुझे आगे कर सुलोचनाके साथ विवाह करना चाहिये था, परन्तु तुम यह सब भूठ गये इस प्रकार चक्रवर्तीके द्वारा स्वाभाविक शान्त वचनोसे सतुष्ट किया हुआ जयकुमार उम ममय अपनी भक्तिको प्रकट करता हुआ नमस्कार कर अपराधीके समान अपना मुंह मणिदोमे जड़ी हुइ जमीनमें देखने लगा । फिर महाराज भरतसे दया प्राप्तकर हाथ जोड़कर गडा हुआ और गजाधिराज चक्रवर्तीमे इस प्रवार निवेदन करने लगा ॥१२४-१२८॥ हे देव, आपके आज्ञाकारी वादीनरेजने विवाहविधिके सब भेदोमें एव स्वयवरकी विधि भी पढ़ेमे चगी आ रही है इस प्रवार शास्त्रोको जाननेवाले सब मत्रियोके साथ सलाह कर यह उमव प्रारम्भ किया था परन्तु दैवने उमे उग्टा कर दिया ॥१२९-१३०॥ मेरा मू गहिा नाग करनेवाया वह युद्ध शात हो गया इसलिये ही यह सेवक आपके चरणोमें आया है ॥१३१॥ हे चक्रके द्वारा गमन दियाओपर आश्रमण करनेवाके महाराज, ओं देव, विद्यापर जो राजा आपने चरणवमत्रोने भ्रमर होकर सेवक वा रहे है फिर भला मैं उन

१ शुभायुर्नामगणेशचमणो । २ चक्रिणा । ३ दिष्ट्या ट० । प्रीत्या । ४ राजते स्य । ५ नूननेन । ६ अतादाज्ञाना । ७ वाम्य । ८ अंगो । ९ प्रगात्वा । प्रगादीव त० ।

'देवेनान्यसामान्यमानना मम ब्रुवता । 'ऋणीकृतः'कव 'वाञ्छुत्प्यं' भवान्तरसतेष्वपि ॥१३३॥
 नायेन्दुवंशसरोहीं' पुष्पा विहिनी त्वया । वदितौ पालितौ स्यापिनी च यावद्वरातसम् ॥१३४॥
 इति प्रथम्यां वाणीं श्रुत्वा तस्य निधीदवरः । तुष्ट्या सम्पुज्य पूजाविद्वस्त्राभरणवाहनैः ॥१३५॥
 दत्त्वा सुतोचनायं च तत्रोप्य विसृजतं तम् । महौ त्रिपानिवातिद्रव्यं तं प्रणम्य ययौ जय ॥१३६॥
 सम्पत्सम्पन्नपुण्यानाम् धनुवपनाति' सम्पदम् । पीरैर्वनी'पकानीकैः स्तूपमानस्वसाहसः ॥१३७॥
 पुराद् गजं समाहृत्य निष्कम्पेत्संमनप्रियाम् । सद्यो गद्यगा समासप्रः स्वमतोवैगचोदितः ॥१३८॥
 शुष्कभूदह्मावाये सम्पुत्रीसूय भास्वत'^{१०} । 'रवन्तं' 'ध्यादक्षमालोचन कान्तायादिचन्तयन्मयम् ॥१३९॥
 मूर्च्छितः प्रेमसद्भावात् तादृशो पितृ सुखं रते । समादवात्य तदोपायैः सुखमास्ते सुतोचना ॥१४०॥
 जलाद् भयं भवेत् किञ्चिद् अस्मात् शकुनादितः । इत्युदीर्यैद्गिततोनं शकुनतोनं सान्वित'^{११} ॥१४१॥
 सूरदेवस्य' तद्वाचयं कृत्वा प्राणावलम्बनम् । अजन् स सत्वरं मोहाद् 'श्रीनीर्यैषोद्योदयद् गजम् ॥१४२॥
 हेयोरोय'^{१२} विवेकः कः कामिनां मग्धवेतसाम् । उत्युष्टरं स्फुरद्दन्तं 'प्रोद्यत्प्रतिमानकम् ॥१४३॥

सर्वमे कौन हू ?—मेरी गिनती ही क्या है ? ॥१३२॥ हे देव, जो हमारे माघारण पुस्त्योको न प्राप्त हो सके ऐसा मेरा सम्मान करते हुए आपने मुझे ऋणी बना लिया है सो क्या गैकठो भवोंमें भी कभी इन ऋणमे छूट सकना हू ? ॥१३३॥ हे स्वामिन्, ये नाथवग और चन्द्र वंशरूपी अकुर भगवान् आदिनाथके द्वारा उत्पन्न किये गये थे और आपके द्वारा वधित तथा पालित होकर जबतक पृथिवी है तबतकके लिये म्यिर कर दिये गये हैं ॥१३४॥ आदर मन्कार को जाननेवाड़े महाराज भरत इन प्रकार विनयमे भरी हुई जयकुमारकी वाणी सुनकर बहुत ही संतुष्ट हुए, उन्होंने वन्दन, आभूषण तथा मवारी आदिके द्वारा जयकुमारका सत्कार किया तथा मुश्रोचनाके लिये भी उसके योग्य वन्दन, आभूषण आदि देकर उसे विदा किया । जयकुमारने भी प्रियाके समान पृथिवीका आलिंगनकर महाराज भरतको प्रणाम किया और फिर वहामे चल दिया । इसलिये कहना पडता है कि पुष्य मम्पादन करनेवाले पुस्त्योकी सपदाए मम्पदाओको वडाती हैं । इस प्रकार नगरनिवासी लोग और याचकोके समूह जिमके साहमकी प्रमंगा कर रहे है ऐसा वह जयकुमार हाथीपर सवार होकर नगरमे बाहर निकला और अपनी हृदयवल्लभाको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ अपने मनके बेगने प्रेरित हो शीघ्र ही गगाके किनारे आ गया ॥१३५-१३६॥ वहापर सुखे वृक्षकी डाडीके जग्रभागपर सूर्यकी ओर मुंह कर रोने हुए कोएको देखकर वह कुमार प्रियाके भयकी आशका करता हुआ बैसा शूरवीर होनेपर भी प्रेमके वश मूर्च्छित हो गया । आचार्य कहते हैं कि एमे रागमे उत्पन्न हुए सुखको भी विक्कार है । चेष्टासे हृदयकी बातको ममभनेवाले और शकुनको जाननेवाले पुरोहितने उमी समय अनेक उपायोमे मचेतकर आश्वामन दिया और कहा कि मुलोचना तो अच्छी तरह है । इस शकुनसे यही सूचित होता है कि हम लोगोको जलमे कुछ भय होगा इस प्रकार कहकर पुरोहितने जयकुमारको दान्त किया ॥१३९-१४१॥ उम पुरोहितके वचनोको प्राणोका सहारा मानकर वह जयकुमार शीघ्र ही आगे चला और भूलमे उमने अघाटमें ही हाथी चला दिया सो ठीक ही है, क्योंकि विचारहीन कामी पुरुषोको हेय उपादेयका जान कहा होता है ?

१ अकम्पन । २ ऋणेन तद्गन् वृत्त । ३ कस्मिन् भवान्तर । ४ वा अवधारणे । आनुष्यम् अनुगतम् । ५ जन्मनी । ६ क्षत्रिणम् । ७ जनयति । ८ याचक । ९ प्राप्नुमिच्छु । १० रवे । ११ ध्वनन्तम् । १२ वाचयम् । 'वाके तु कर्दारिष्टवतिपुष्टयङ्गुप्रजा । ष्वादसात्प्रथोपरमूद-
 वनिभुग्वायिमा अमि ।' इत्यभिधानान् । १३ नामवचन नीन । १४ शाकुनिक्म्य । १५ अजलोत्तरप्रदेशे । 'तीर्थं प्रवचने पात्रे लब्धान्नाये विदा परे । पुष्यारथ्ये जलोत्तारे महानशा महामुनी ।' १६ उपादेय । १७ प्रोद्यन्तुम्भन्वयन्म्यायोत्रागप्रदेत्तम् । 'अथ कुम्भनस्य वाशीय प्रतिमानमथोप्य यत् ।' इत्यभिधानम् ।

तरन्तं^१ म्पराधार मध्ये हृदयमाभिपद्यम् । देवी बालीति पूर्वोक्ता^२ सरय्या^३ सद्रूपमे^४ऽग्रहीत् ॥१४४॥
 'नक्राकृत्या स्वदेशस्य क्षुद्रोऽपि महतां यती । दृष्ट्या गज तिमज्जतं प्रत्यागत्य^५ तटे स्थिता ॥१४५॥
 सप्तभ्रम सहापेतुं^६ ह्रुव हेमाद्रगदादय । सुलोचनाऽपि तान्योदय दृष्टपञ्चामस्तृति ॥१४६॥
 मन्मूर्तीन् समापाम्य हृदये भक्तितोर्हंत । उपसर्गापरार्गात् त्यक्ताहारदारोरिषा ॥१४७॥
 प्राविशद् बहुभि सार्धं गद्यगा गद्येषु देवता ।^७ गद्यगापतप्रतिष्ठानगद्यगापूटाधिदेवता ॥१४८॥
 विबुध्यासनकम्पेन कृतज्ञाऽऽगत्य सत्वद्म् ।^८ तदनयत्तत् सार्वात् सतज्यं खलवार्जिकाम् ॥१४९॥
 स्वयमागत्य केनात्र रक्षन्ति दृष्टपुण्यकाम् । गद्यागतये विदृष्ट्यादु^९ भवन सर्वसम्पदा ॥१५०॥
 मणिपीठे समास्याप्य पूजयित्वा सुलोचनाम् । तव^{१०} दत्तामस्वाराज्जने^{११} गद्यगाधिदेवता ॥१५१॥
 स्वप्रसादादिद सत्रम्^{१२} श्रवद्वामरेडिन । तपेत्युषते^{१३} जयोऽप्येतन्^{१४} विमित्याह सुलोचनाम् ॥१५२॥
 उपविन्ध्याद्रि^{१५} विन्ध्याती विन्ध्युपामभूद् विभु । विन्ध्यकेतु प्रियां तस्य प्रियदग्धुशोस्तयो सुता ॥१५३॥

वह हाथी पानीमें चलने लगा, उस समय उसकी सूंडका अग्रभाग ऊचा उठा हुआ था, दात चमक रहे थे गडस्थल पानीके ऊपर था और आकार मगरके समान जान पड़ता था, इस प्रकार तेरता हुआ हाथी एक गढेके बीच जा पहुँचा । उसी समय दूसरे सर्पके साथ समागम करत समय जिस सर्पिणीको पहले जयकुमारके सेवकोने मारा था और जो मरकर काली देवी हुई थी उसने मगरका रूप धरकर जहा सरयू गंगा नदीसे मिलती है उस हाथीको पकड़ लिया सो ठीक ही है क्योंकि अपने देशमे रहनेवाला क्षुद्र भी बडो बडोसे बलवान् हो जाता है । हाथी को डूबता हुआ देखकर कितने ही लोग लौटकर किनारेपर खडे हो गये परन्तु हेमाङ्गद आदि घबडाकर उसी गढेमें एक साथ घुसने लगे । सुलोचनाने भी उन सबको गढेमें घुसते देख पच नमस्कार मनका स्मरण किया, उसने मन्त्रकी मूर्तिस्वरूप अर्हन्त भगवान्को बनी भक्तिसे अपने हृदयम धारण किया और उपसर्गकी समाप्ति तक आहार तथा शरीरका त्याग कर दिया ॥१४२-१४७॥ सुलोचना भी अनेक सखियोंके साथ गगामें घुम रही थी और उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो गङ्गादेवी ही अनेक सखियोंके साथ गंगा नदीम प्रवेश कर रही हो । इतनेमें ही गंगाप्रपात कुण्डते गंगाकूटपर रहनेवाली गंगादेवीने आसन कपायमान होनेसे सब समाचार जान लिया और किये हुए उपकारको माननेवाली वह देवी बहुत शीघ्र आकर दुष्ट कालिका देवीको डाँटकर उन सबको किनारेपर ले आई ॥१४८-१४९॥ सो ठीक ही है क्योंकि इस ससारम एमे कौन है जो पुण्य करनेवालोकी स्वय आकर रक्षा न करे । तदनन्तर उस देवीने गंगा नदीके किनारेपर बहुत शीघ्र अपनी विज्रिया द्वारा सब सम्पदाजोसे सुगोभित एक भवन बनाया, उसमें मणिमय सिंहासनपर सुलोचनाको ब्रँठाकर उसकी पूजा की और कहा कि तुम्हारे दिये हुए नमस्कार मनसे ही मैं गंगाकी अधिष्ठात्री देवी हुई हूँ और सो रमैन्द्रिनि विप्रोगिनी भी हूँ, यह सत्र तेरे ही प्रसादसे हुआ है । गंगादेवीके इतना कह चुननेपर जयकुमारो भी सुलोचनासे पूछा कि यह क्या बात है ? ॥१५०-१५२॥ सुलोचना कहने लगी कि विन्ध्याचत्र पर्वतके समीप विन्ध्यपुरी नामकी नगरीमें विन्ध्यकेतु नामका एक प्रसिद्ध

१ तरन्तानि तरन्तु नाम । २ हृदयम मध्य । ३ पूर्वस्मिन् भव जयन सह वन धर्मं श्रुतवत्या नाम्ना गह म्पिनवित्त्रालीयमहचरी । ४ सरयूतया । ५ गन्धाप्रदशत्वात् । ६ कुम्भीरवारण । नवन्तु कुम्भीर इयमिधानात् । ७ अभिमुपमागत्य । ८ हृदये प्रविष्टवत् । ९ उपसर्गावसानपदान् । १० गन्गापञ्चामस्तृत्यात् । ११ तापा-न० इ० अ० ग० प० । १२ निर्माय । १३ त्वया वितीया पञ्चनमस्ताराण्यम् । १४ अमूवम् । १५ विनामिनी (विप्रोगिनीति यावत्) । १६ गद्यादेवता । १७ जयकुमारोऽप्यत्र विमिति प्लवात् । १८ विन्ध्याचत्रगमीय ।

विन्ध्यश्रीस्तां पिता तस्याः शिकित्नुं सरुलान् गुणान् । मया सह मयि स्नेहामहीमस्य संमन्यत् ॥१५४॥
 वमन्तिलकोद्याने श्रीदन्तीं सैकदा दद्यात् । दष्टा तत्र मया दत्तनमस्कारपदाग्नयत् ॥१५५॥
 भावयन्ती मृताज्येयं भूत्वापात् स्नेहिनी मयि । इत्यब्रवीदमो सौप्रिय ज्ञात्वा सन्तुष्टचेतना ॥१५६॥
 तत्कालोचिनमनोक्त्या गद्गदविर्वा विमर्शं ताम् । सधनार्कं प्रकथ्येत्तं स्वं धन्येनुमासया ॥१५७॥
 स्वावाप्तं सम्प्रविश्योच्चैः सप्रियः मद्भवन्मुनिः । सम्येहं राजराजोक्तम् उक्त्वा तत्प्रहितं स्वयम् ॥१५८॥
 पृथक् पृथक् प्रदायाति नूदनामाद्यं वन्ननाम् । नोक्त्वा तत्रैव तां रात्रिं प्राणहत्याय भानुवन् ॥१५९॥
 विद्यानुयुक् रक्तनाम् मुनिं मुञ्चोनिनासितः । अगद्गदं प्रयात् प्रेम्णा कान्तिन्याः कुण्डलिनः ॥१६०॥
 कमनोरैरतिप्रोत्थितं ध्यात् रतनोत्तराम् । जाह्नवीं दक्षिणावर्तानामिः कूलनिन्दिक्ता ॥१६१॥
 चन्द्रलोमज्वलपाठीनलोचना रमशोन्मुखी । तरङ्गवाहूनिगडिसासिद्गणनमुत्सुका ॥१६२॥
 स्वभावमुनया दृष्टदृष्ट्या स्वच्छन्नाणुनाम् । तद्व्यववनीकः क्षन्तुमनोनातनार्षी ॥१६३॥
 अतिदृढरसो वै सख्यनुमनहा द्रुतम् । परं कान्तिं प्रियं याति स्वानुस्यं पयोनिधिम् ॥१६४॥
 रतेः कामाद् विना नेच्छा न नीचेत्तमस्वहा । सद्गमे तमयी जाना प्रेम नामेदुर्गं मनम् ॥
 माश्रयमेतया नित्यम् एति लावण्यमम्बुधरेः ॥१६५॥

राजा रहता था । उसकी स्त्रीका नाम प्रियद्रुगुथी था । उन दोनोंके विन्ध्यश्री नामकी पुत्री थी । उसके पिताने मुझपर प्रेम होनेमे मेरे साथ मत्र गुण सीखनेके लिये उसे महाराज अर्कपनको सौंप दिया ॥१५३-१५४॥ वह विन्ध्यश्री किसी एक दिन उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी, वहीँपर उने किसी सांपने काट लिया जिसमे मेरे द्वारा दिये हुए पंच नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करती हुई मरकर यह देवी हुई है और मुझपर स्नेह होनेके कारण यहाँ आई है यह जानकर जयकुमारने मनुष्टचित्त हो शान्तिमय वचन कहकर गंगादेवीको विदा किया । तदनन्तर अपनी प्रिया मुञ्चोचना और इष्ट-वन्धुओंके साथ साथ, फहराती हुई पताकाओंके द्वारा अपने आपको बगुलाओंसे गहिन करने हुऐके समान जान पडनेवाले अपने ऊंचे डेरमें प्रवेश किया । बड़े स्नेहमे महाराज भरतके कहे वचन सबको सुनाये, उसकी दी हुई भेंट सबको अलग अलग दी । मुञ्चोचनाको अत्यन्त प्रमत्त किया, वह रात्रि वहीं बिताई और मवेशी होते ही उठकर अपनेमें अनुराग रखनेवाले लोगोंके भोजनके लिये नृत्यके समान नमस्न दिग्भाओंको प्रकाशित करता हुआ वह कुर्वन्गियोंका प्यारा जयकुमार मुञ्चोचनाके प्रेमसे गंगा नदीके किनारे किनारे चलने लगा ॥१५५-१६०॥ वह जाने समय मनोहर वचनोंमे मुञ्चोचनाको बहुत ही मनुष्ट करता जाता था । वह कहता था कि हे प्रिये, देखो यह गंगा नदी अपने अनुरूप समुद्ररूपी पतिके पास बड़ी शीघ्रताने जा रही है, यह अपनी नाभिस्त्री भौर दिवला रही है, दोनों किनारे ही इसके नितम्ब है, चंचल और उज्वल मछलियाँ ही नेत्र है, यह श्रेष्ठ अथवा पतिके लिये समुत्थ है, तरंगरुसी भुजाओंके द्वारा गाढ़ आलिंगनके लिये उत्कण्ठित मी जान पडती है, स्वभावसे मुन्दर है, अपने स्वच्छतास्त्री गुणोंमे मत्रका हृदय हरनेवाली है, दोनों किनारोंपर वनके फूटे हुए पुष्पोंकी माला धारण कर रही है, इसका रस अथवा पानी मत्र खोरने वट रहा है और अपना वेग नहीं रोकता मक रही है ॥१६१-१६४॥ सो ठीक ही है क्योंकि कामदेवके विना रतिकी

१ अकम्पनस्य । २ विन्ध्यश्री । ३ आगच्छति म् । ४ मुञ्चोचना । ५ विमर्शितकामहितम् ।
 'वनाका विमर्शितका' इत्यभिधानात् । ६ चक्रिणः प्रोक्तम् । ७ भगित्वा । ८ चक्रिप्रेषितम् । ९ दत्ता ।
 १० प्रापय्य । ११ स्तम्भाकारे । १२ कर्तुम् । १३ अशिनयादिव्यासार्थिनवचनम् । १४ प्रकाशितमकव-
 सोव । १५ जयः । १६ गद्गदा । 'गद्गदाचिन्पदी जह्नु तमया मुरनिम्नगा' इत्यभिधानात् । १७ चञ्चव ।
 १८ समुद्रेण सह रतिश्रीशोम्बुनी । निवपतिममुद्रानिमुग्मी वा । १९ अनिवृद्ध-न० । २० जन्म्यासमन्ताद्
 वेगम् । रागोद्रेकं च । २१ समुद्रस्वरूपा । २२ गद्गदा । २३ पृष्ठादीर्घं शोचतिवन्तः ।

उत्पत्तिर्भूता^१ पृथ्वरण्यां यथिता सती^२ । याधिरेव पतिस्तस्माद् एवाऽभूत् पापनाशिनी ॥१६६॥
 पवला धामिकर्मण्या सतीनामुपमानताम् । गता कथोदयरं सर्वं स्तूपते देवतेति च ॥१६७॥
^१गुणितश्चेन्न के 'ना धा तस्तुवन्ति गुणप्रिया । 'इति गद्गपगतं ध्ययं ध्रन्वैश्चतितमनोरुरं ॥१६८॥
 तत कतिपयैरेव प्रयाणं कुरुजाडगलम् । प्राप्य तद्वर्णनाय्याजान्मोदयन् वशिपात्मजाम् ॥१६९॥
^२श्राप्तजानपदानोतफलपुण्यादिभिदच स । विषसप्तोसनीरेजसरोजातिविराजितं ॥१७०॥
 प्रत्येतेष्वैव प्रपश्यन्तीं सरोनेत्रैर्वंधूवरम् । 'सद्गप्रजपनाभोगा वापीकूपोपनाभिवाम् ॥१७१॥
 परोतजतरुषोच्चप्राकारकटिसूत्रिकाम् । अलङ्कृतमहावीरिविलसद्वाहुवल्लरीम् ॥१७२॥
 सोधोस्तुद्गकचुचा भास्वद्गोपुराननशोभिनीम् । कुड्कृमागुणकपूर्वकदंमार्तद्वतगात्रिकाम् ॥१७३॥
 नानाप्रसवसद्गुधमालापमितलधारिणीम् । तोरणापद्धरत्नादिमालालङ्कृतविग्रहाम् ॥१७४॥
 ग्राह्ययन्तीमियोध्वार्ध पतत्केत्वग्रहस्तकं । द्वारासवृत्तिविभ्रमनेत्रा^३ ॥ वासान्तदत्सुकाम् ॥१७५॥
 पुरोहितं^४ 'पुरन्ध्रीभिर्गन्त्रिभिर्वैश्यविश्वतं । दत्तशेव पुरं स्थित्वा साशोर्वांबं समुत्सुकं ॥१७६॥

इच्छा नहीं होती है, उत्तम-पुरुषोकी इच्छाएँ नीच पदार्थोंपर नहीं होती हैं, यह नदी समुद्रमें जाकर समुद्ररूप ही हो गई है सो ठीक ही है क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है, इसके समागममें ही समुद्रका लावण्य (सौन्दर्य अथवा खारापन) सदा सफल होता है ॥१६५॥ इस गंगा नदीकी उत्पत्ति पर्वतोंके पति-हिमवान् पर्वतसे है, पृथिवीपर यह बढी है और समुद्र ही इसका पति है इसलिये ही यह ससारमें पापोका नाश करनेवाली हुई है ॥१६६॥ यह सफेद है धर्मात्मा लोगोके द्वारा मान्य है, सतियोंको इसकी उपमा दी जाती है और सब कवीद्वर यदि गुणीजनोंकी स्तुति न करे तो फिर कौन किसकी स्तुति करेगा ? इस प्रकार सुननेके योग्य गङ्गा सम्बन्धी-तथा अन्य अत्यन्त मनोहर कथाओं द्वारा मार्ग तय किया । ॥१६७-१६८॥ तदनन्तर कुछ ही पडावों द्वारा कुरुजागल देश पहुचकर उसके वर्णनके वहानेसे सुलोचनाकी आनन्दित करते हुए जयकुमारने अपनी उस हस्तिनागपुरी नामकी राजधानीमें प्रवेश किया जो कि देशके प्रधान प्रधान पुरुषों द्वारा लाये हुए फल पुष्प आदिकी भेंट तथा खिले हुए नील कमल और सफेद कमलोसे अत्यन्त सुशोभित सरोवररूपी नेत्रोंसे ऐसी जान पडती थी मानों आगे आकर बवू बरको देख ही रही हो । उत्तम धूलीसाल ही जिसका विस्तृत जघन प्रदेश था, वावडी और कुएँ ही जिसकी विशाल नाभि थी, चारों ओर खडा हुआ सुवर्णका ऊँचा परकोटा ही जिसकी करधनी थी, सजी हुई बडी बडी मलिया ही जिसकी सुशोभित बाहुलताएँ थी, राजमवन ही जिसके ऊँचे कुब थे, देदीप्यमान गोपुररूपी मुखसे जो सुशोभित हो रही थी, बेशर अगूर और बपूरके विलेपनमें जिसका शरीर गीला हो रहा था, जो अनेक प्रकारके फूलोंसे गुंधी हुई मालारूपी वेश्याशको धारण कर रही थी, तोरणोंमें बाधी गई रत्न आदिकी मालाओंसे जिसका शरीर सुशोभित हो रहा था, जो ऊँर नीचे उडती हुई पताकाओंके अग्रभागरूपी हाथों में दृगती हुई सो जान पडती थी, खुपे हुए दरवाजे ही जिसके विश्वासपूर्ण नेत्र थे, जो घर-घर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कण्ठित सी जान पडती थी और इस प्रकार जो दूसरी सुलोचनाके गमान सुशोभित हो रही थी । महाराजके दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित हो आशीर्वाद देने-

१ हिमवद्गिरे । २ प्रसास्ता । ३ गुणवज्रनाम् । ४ अनघा । पाण्डा अ०, प०, ६०, ग०, ल० । ५ इति गङ्गागनैरिष्यनेन मह कमनीधैरतिप्रीतिमात्तपैरिति सम्बन्ध । ६ सुलोचनाम् । ७ सप्रान्द्रनपदजनानीत । ८ अभिमृगमागस्य । ९ प्रसास्तापूर्विकृष्टिमपनविभ्रताराम् । १० कवात् विपातारहितद्वारतयामित्यर्थ । ११ गृहमध्ये गोमवाप । १२ गृह्णन्वीरिभि ।

नृपमद्गलनिर्घोषः पुरन्दर इवापरः । मुनोचनामिवास्यां स्वां प्रविश्य नगरीं त्रयः ॥१७३॥
 राजगृहे महान्द्विषयानि विविधार्थिनः । 'प्रावमत्' कान्तया साहं नगरीं हृदयं मुदा ॥१७४॥
 निष्पादिवञ्चनिः^१ शूद्रैः शूद्रैः सगने महोत्सवम् । सर्वनलोपनं कृत्वा जिनपूजापुनरम् ॥१७५॥
 विषयमद्गलममत्स्या स्वोचितामनमुत्पिनाम् । हेमाद्रगदादिमादिभ्ये राजा ज्ञानमहोदयः^२ ॥१८०॥
 मुलोचनां महादेवीं पृथक्^३ 'व्यगामुदा । स्यान् नञ्चिनपुष्पाणु पन्थरेनादती रतिः ॥१८१॥
 हेमाद्रगदं 'समोदयम्' उच्यते सत्सम्भ्रमम् । पुरोन्मूय^४ स्वयं सर्वभोग्यैः 'प्रागुन्मोचिने' ॥१८२॥
 नृपयोगिनमुत्सासापैर्बारीरारोह्यादिभिः । वनवापीनरःकोडाकन्दुकादिदिनोदनेः ॥१८३॥
 'ग्रहानि स्वयम्भुवैवं सुशेन कनिचिन्तनी । तदोम्पितान्नास्त्रगणितानुद्गादिकम् ॥१८४॥
 प्रदाय परिवारं च तोयदिन्वा यथोत्पिनम् । चतुर्विधेन^५ कोतेन 'तन्पुरी' 'समजोगमम्'^६ ॥१८५॥
 सुस्रजनागैः मन्त्राण्य इष्ट्वा भूय^७ सन्प्रमम्^८ । प्रगन्वाह्यादयद्रमन्त्राण्य स बन्धनवान्तया ॥१८६॥
 मुखं काले गन्धपेयम् प्रकल्पयमहोपनिः । तदा सचिन्तयामास विरक्तः दामनीमयोः ॥१८७॥
 ग्रहो मया प्रमत्तेन विपयान्तेन मेक्षिता । कष्टं शरीरमन्सारनोगनिम्पारता विरम् ॥१८८॥

वाले पुरोहित, मौमाग्यवती स्त्रियां, मन्त्री और प्रसिद्ध प्रसिद्ध मेठ लोग मामने लटे होकर
 त्रिसे मोमजन दे रहे हैं ऐसे उग जयकुमारने तुम्हीं आदि मातृलिक वात्रोंके मन्त्रोंके साथ साथ
 दूसरे इन्द्रके समान अपनी उम ह्मिन्नागपुरीमें प्रवेश कर अपनेक प्रकारकी विभूतियोंसे बहुत
 नारी आनन्द देनेवाले तथा उम नगरीके हृदयके समान अपने राजनवतमं प्रिया मुलोचनाके
 साथ साथ बड़े आनन्दमें निवास किया ॥१७०-१७८॥

तदनन्तर बड़े नारी अम्बुदयको धारण करनेवाले महाराज जयकुमारने शुद्ध त्रिधि,
 शुद्ध नक्षत्र आदि पांचों बातोंमें निर्दोष लग्नमें बड़ा नारी उन्मद करकर सबको संतुष्ट
 किया और फिर जिनपूजापूर्वक मन्त्र भगल-संपदाओंके साथ साथ हेमाद्र आदि माद्योंके नामने
 ही अपने योग्य आननपर बड़ी हुई मुलोचनाको बड़े हृष्यमें पट्टवन्त्र बाधा अर्थात् पट्टरानी बनाया
 सो ठीक ही है क्योंकि पुष्पमन्त्र करनेवाली स्त्रियोंमें पतिवा एसा ही प्रेम होता है ॥१७९-
 १८१॥ उनके बाद कुशल जयकुमारने स्वयं आगे होकर पादुओंके योग्य मन्त्र प्रकारके भोगोप-
 भोगोंमें, नृत्य, गीत और मुख देनेवाले वचनोंमें, हाथों आदिकों नवारोने, वन, वापिका, तालाव
 आदिकी शौड़ाओंमें और गंद आदिके खेलोंमें प्रसन्नतापूर्वक हेमाद्र और उनके माद्योंकी
 सेवा की, कुछ दिन तक उन्हें बड़े सुखमें रखवा और फिर उनके अच्छे लगनेवाले हाथों, घोड़े,
 अन्न, गणिका तथा आनूपण आदि देकर उनके परिवारके लोगोंको मयायोग्य संतुष्ट किया
 और फिर रत्न, मोना, चांदी तथा रज्ये-यमें आदि चारों प्रकारका वजाना साथ देकर उन्हें
 उनके नगर बनारसको विदा किया । ॥१८२-१८५॥ मुखपूर्वक चिन्ते ही पड़ाव चलाकर
 वे हेमांगद आदि बनारस पहुंचे और माता सूप्रभाके साथ राजा अक्षयनके दर्शन कर उन्हें प्रणाम
 किया और जयकुमार तथा मुलोचनाकी आनन्तानमें माता-पिताको आनन्दित करने हुए रहने
 लगे ॥१८६॥

उम प्रकार मुखपूर्वक घट्टन सा समय व्यतीत होनेपर एक दिन महाराज अक्षयन काम-
 भोगोंमें विरक्त होकर इस प्रकार सोचने लगे ॥१८७॥ कि मुझ प्रमादीने विपयोंमें अपना

१ निवसति स्म । २ नगरीजनचित्ते उच्यते । ३ त्रिधिभूतसत्रयोगकरणं । विधिनक्षत्रहंगवार-
 मुहूर्तवा । ४ महोत्सवे ल० । ५ वजार । ६ मसानुदम् । ७ अने भूत्वा । पुम्भ्य य वा । ८ अतिथि ।
 ९ दिनानि । १० रत्नमुबारजत्रयवहाग्योग्यनाजम् इति चतुर्विधेन । ११ चागातीम् । १२ हेमाद्रगदम् ।
 १३ मनसि स्म । १४ अस्मानम् । १५ सुप्रनादेवीसहितम् ।

श्रादावजुच्युपादानम्^१ अजुच्यवयवात्मकम् । विश्वाशुचिकर पाप दु खदुःखेष्टितालयम् ॥१८६॥
 निरन्तरश्वेतोक्तोयनवद्धारशरीरकम्^२ । कुम्भिपुञ्जचिताभस्मविष्टानिष्ट विनश्वरम् ॥१८७॥
^३तदव्युष्य^३ जडो जातुस्त्वन्त पञ्चवेन्द्रियाभिनिभि । विश्वेधने^४ कुलिङ्गीव भूयोऽयात्^५ कृत्स्िता गतिम् ॥
 साऽऽज्ञाखनि^६ कितान्त्रवे^७ यत्र^८ ॥^९विश्वमणूषमम् । ता^{१०} पुपूर्व^{११} किलाद्याह धनं सङ्ख्यातिव वनं^{१२} ॥
^{१३}यदादाय भवेज्जन्मो य मुक्त्वा मुक्तिभागयम् । तथायात्स्मयिति^{१४} ज्ञात्वा पथ पुण्याति^{१५} धीपन् ॥
 हा हृतोऽसि चिर जतो मोहेनाद्यापि^{१६} ते यत् । नास्ति कायाशुचिज्ञान तन्त्याग^{१७} यवाति^{१८} दुर्लभ ॥
 दु खी सुखो सुखो दु खी दु खी दु ख्येव केवलम् ।^{१९}धन्यधन्योऽ^{२०}धनो धन्यो निर्धनो निधन सदा ॥१८५॥
 एवविधैस्त्रिभिर्जन्तु ईप्सतातीप्सितैश्चिरम् ।^{२१}चतुर्थ^{२२} भगमप्राप्य बभ्रमोति भवाणवे ॥१८६॥
^{२३}या^{२४}वष्टचयमसौ वष्टि^{२५}पर वष्टि स चापराम् । साऽपि वष्टचपर कष्टमनिष्टेष्टपरम्परा^{२६} ॥१८७॥

होकर इतने दिन तक शरीर, ससार और भोगोकी असारता नहीं देखी यह बड़े खेदकी बात है ॥१८८॥ प्रथम तो यह शरीर अपवित्र उपादानो (माता पिताके रज वीर्य) से बना है फिर इसके सब अवयव अपवित्र है यह सबको अपवित्र करनेवाला है, पापरूप है और दु ख देनेवाली खोटी खोटी चेष्टाओका घर है ॥१८९॥ इसके नौ द्वारोसे सदा मल मूत्र बहा करता है और अन्नमें यह विनश्वर शरीर कीडोका समूह चिताकी राख तथा विष्टा बनकर नष्ट हो जाने वाला है ॥१९०॥ ऐसे शरीरमे रहकर यह मूल्य प्राणी, जिनमे ससारके सब पदार्थ ई धन रूप है ऐसी पाचो इन्द्रियोकी अग्नियोसे तपाया जाकर कुलिङ्गी जीवके समान फिरसे नीच गतियोमें पहुचता है ॥१९१॥ जिसमें यह सारा ससार एक परमाणुके समान है ऐसा वह प्रसिद्ध आशारूपी गढा इसी शरीरमें है, इसी आशारूपी गढेको मैं आज थोडेसे धनसे पूरा करना चाहता हू ॥१९२॥ जिस शरीरको लेकर यह जीव जन्म धारण करता है-ससारी बन जाता है और जिसे छोडकर यह जीव मुक्त हो जाता है इस प्रकार शरीरकी वास्तविकता जानकर भी बुद्धिमान् लोग न जाने क्यों उसका भरण-पोषण करते हैं ॥१९३॥ हे जीव खेद है कि तू मोहकर्मके द्वारा चिरकालसे ठगा गया है, क्योंकि तुम्हे आजतक भी अपने शरीरकी अविश्रताका ज्ञान नहीं हो रहा है, जब यह बात है तब अत्यन्त दुर्लभ उसका त्याग भला कहा मिल सकता है ॥१९४॥ इस समारम जो दु खी है वे सुखी हो जाते है जो सुखी है वे दुखी हो जाते है और बितने ही दुखी दुखी ही बने रहते है इसी प्रकार धनी निर्धन हो जाते है निर्धन धनी हो जाते है और बितने ही निर्धन सदा निर्धन ही बने रहते है । इस तरह यह जीव जो सुखी है वह मुखी ही रहे और जो धनी है वह धनी ही बना रहे यह चौथा भग नहीं पाकर केवल उपर चहे हुए तीन तरहके भगोमे ही समाररूपी समुद्रमें चिरकाल तक भ्रमण करना रहता है । ॥१९५-१९६॥ यह पुण्य जिम स्त्रीको चाहता है वह स्त्री विरती दूसरे पुरुषको चाहती है जिमको यह चाहती है वह भी विनी अन्य स्त्रीको चाहता है इस प्रकार यह इष्ट अनिष्टवो

१ धर्माच्युपादानम् । २ पुनिगपित्वम् । ३ इमीनां पुञ्ज चिताया भस्म विष्टा
 पूरीया निष्पायामः ४ यन्मिन् तन् । ५ तन्मिन् शरीर । ६ मियका । ७ गवत्पुत्र । ८ अग्निनिष्पायक । ९ जन्मावप । १० आगारयो । ११ गवत्पुत्रम् । १२ आगारानिम् । १३ पुर्त्यदु
 मिष्टम् । १४ कलाविकाय । १५ शरीरम् । १६ मच्छरीरम्य मयात्वरुणम् । १७ पुष्टिदायनि । १८ वैतासो
 लक्ष्मणायनि । १९ शरीरपणम् । २० कुत्राग्नि । २१ धनवान् । २२ धनरहित । २३ सुखी सुखी
 धनी धनी चतुषभरम् । २४ मियम् । २५ मष्टि दृष्टिनि । अयम् पुणम् । २६ अयात्पम् ।
 २७ अतिशयान्धकारि । २८ मियमा दृष्टा । २९ मियात्पम् ।

यविष्ट तदनिष्ट स्याद् यवनिष्ट तद्विष्यते' । इहेष्टानिष्टयोरिष्टा नियमेन न हि स्थिति ॥११६८॥
 'स सासा' तत्तदेवैवा 'सा स स्यात् सोऽर्ष' तत्पुन । तत्त स्यात्तत्तदेवान्' चक्षके^८ चक्षकम् ॥११६९॥
 अन्तमस्य' विद्यास्यामि चिन्तयित्वा जितोदितम् । सन्तत जन्मकाल्पारगन्तो भीनोऽहमन्तकात् ॥२००॥
 भोगोऽय भोगिनो भोगो^{१०} भोगिनो^{११} भोगिनामहृत् ।^{१२} तावन्मायोऽपिनास्माक भोगो भोगेतिवति धृक्त् ॥
 भुज्यते^{१४} स भोग स्याद् भुक्तिर्वा भोग' इत्यते । तद्द्वय नरकेऽप्यस्ति तस्माद् भोगेषु वा रति ॥२०२॥
 भोगास्त्वेणाग्निस्वदृष्टं^{१५} 'दीपनीयोप शोपमा ।^{१६} एभि प्रबृद्धतृणान्ने^{१७} 'शान्त्यं चिन्त्यमिहापरम् ॥२०३॥
 इत्यतो न सुधा सद्यो वाग्दृष्ट्यावियो भद्राम् । हेमाद्रगद समाहृत्य^{१८} 'पूज्यपूजापुरस्सरम् ॥२०४॥
 अभिपिच्य चला मत्वा बध्वा पट्टेन वाञ्छलम्^{१९} । लक्ष्मीं समर्थं गत्वोक्तं ग्रन्थास यूयभेदितु ॥२०५॥
 प्रत्रय्य बहूनि साढं^{२०} 'सूक्ष्मं स सप्तमप्रभ^{२१} । प्रमाच्छेषीं समाहृत्य क्वचन्यमुदपादयत् ॥२०६॥
 श्रय जन्मान्तरापातमहास्नेहातिनिर्भर' । सुलोचनानानानन्द'^{२२} 'नेन्दुबिम्बात् छता^{२३} 'सुधाम्' ॥२०७॥
^{२४} 'उन्नीलश्रीलनोरैरराजिभिलोकेन' पिबन् । पूरयन् श्रोत्रपात्राभ्या^{२५} 'तद्गोर्वांतरसायनम् ॥२०८॥

परपरा बहुत ही दुःख देनेवाली है ॥११७॥ जो इष्ट है वह अनिष्ट हो जाता है और जो अनिष्ट है वह इष्ट हो जाता है, इस प्रकार समारमें इष्ट अनिष्टकी स्थिति किसी एक स्थानपर नियमित नहीं रहती ? ॥११८॥ आजका पुत्र अग्रे जन्ममें स्त्री हो जाता है स्त्री नपुंसक हो जाती है, नपुंसक स्त्री हो जाता है, वही स्त्री फिर पुंस्य हो जाता है, वह पुंस्य भी नपुंसक हो जाता है वह नपुंसक फिर पुंस्य हो जाता है अथवा नपुंसक नपुंसक ही बना रहता है, इस प्रकार इस चक्रमें बड़ा टेढ़ा सरुपण करना पड़ता है ॥११९॥ इसलिये श्रीजिनेन्द्रदेवके वहे हुए बचनोफा चिन्तवन कर मे अश्रय ही इस ममारका अन्त कस्मा क्योकि निरन्तर समारम्पी बनके भीतर परिभ्रमण करनेमें भे अथ यमराजमे डर गया ह ॥२००॥ भोग करनेवाले मनुष्यो के ये भोग ठीक सर्पके फगाके समान है और भोगनेवाले जीवको भोगी नाम देनेवाले है । तथा इनना सत्र होनेपर भी उन भोगोमेंमे एक भोग भी हमारा नहीं है यह निश्चय है ॥२०१॥ जिसका भोग किया जाता है उसे भोग कहते है अथवा उपभोग किया जाना भोग कहलाता है वे दोनों प्रकारके भोग नरकमें भी है इसलिये उन भोगोंमें क्या प्रेम करना है ? ॥२०२॥ जिस प्रकार औषधमे गेटकी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उसी प्रकार इन भोगोसे भी तृष्णास्पी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है अथ इन भोगोमे बड़ी हुई तृष्णास्पी अग्निकी शान्तिके लिये कोई हमरा ही उपाय सोचना चाहिये ॥२०३॥ इस प्रकार तृष्णास्पी विपको उगल देनेवाले बुद्धिमान् राजा अकम्पनने बहुत शीघ्र हेमाङ्गको बुझाकर पूज्य-परमेष्ठियोकी पूजापूर्वक उसका राज्याभिषेक किया, लक्ष्मी को चञ्चल समझ पट्टवन्धमे बाधकर उसे अचल बनाया और हेमागदको सौंकर श्रीभगवान् वृषभदेवके समीप जाकर अनेक राजाओ और रानी सुप्रभाके साथ दीक्षा धारण की तथा अनुक्रमसे श्रेणिया चढकर केवलज्ञान उत्पन्न किया ॥२०४-२०६॥ अथान्तर अन्य जन्ममे आये हुए बहुत भारी स्नेहने भरा हुआ जयमुमार खुले हुए नीःक्रम शोके समान सुगोभित होनेवाटे अपने नेत्रोमे सुशोचनाके मुखस्पी आनन्ददायी

१ इष्ट भवति । २ स पुमान् । ३ सा स्त्री स्यात् । ४ तत् नपुंसकम् । ५ एषा स्त्री स्यात् । ६ तत् नपुंसकम् । ७ तदेव पुनपुंसकमेव स्यात् । ८ चक्रवदावतमानममार । ९ समारस्य । १० सपस्य । ११ भागीति नामहृत् । भागीति नामवर । सर्पनामहृदित्यय । १२ भागीति नामहृत् मात्राप्रति । १३ पदार्थ । १४ पदार्थानुभवतत्रिया । १५ दीपनहनु । १६ भागं । १७ उपगान्तिकारणम् । १८ परमश्रीपूजापूर्वकम् । १९ निश्चल यथा भवति तथा । गट्टेन बध्वा वा निवन्धन हृत्वेव समर्थेति मन्वन्ध । २० क्षत्रियं । २१ सुप्रभादेवीमहित । २२ आनन्दपुत्रम् । २३ निमृताम् । २४ वाग्निम् । २५ चित्तमतीतोपपन्न द्विराजमानं । २६ नैत्रं । -सोचनं त० विद्या सर्वत्र । २७ सुशोचनावचनरूपगीतम् ।

'हरन् परिकराकारकरालिङ्गनसद्गतः' । 'तद्गात्रवृषिवास्तु त्वं रतं स्पन्दनवेदिनम् ॥२०६॥
तद्विम्बाधरसम्भावितामृतास्वादनोत्सुक्' । सङ्घट्टायाविरजामोदान्मोदमानोऽनिशं भृशम् ॥२१०॥
'अत्रंथ न पुनर्वैति' मम धरमासमागम' । 'स सुलोचनया स्वानि घट्टुरादीन्यनर्पयन् ॥२११॥
'प्रमाणकालभावेभ्यो यद्वते' समता तयो । तत सन्भोगशुद्धगारायारापारान्तगो हि तौ ॥२१२॥

'अतिपरिणतरत्या स्तोपितालेपनादि'

स सफलकरणानां^१ गोचरीभूय^२ सस्या' ।

हितपरविषयाणां^३ साऽपि^४ । 'तस्पर्शमेतो

समरतिवृत्तसारान्यन्वभूतां सुस्नानि ॥२१३॥

मनसि मनस्तिजह्यावापि^५ सौख्यं न ताभ्या

पृथगनुगतभावं^६ सद्गतताभ्यां नितान्तम् ।

'करणमुखसुखंस्तैस्तनमनः प्रीतिमापत्

भवति^७ परमुखं च क्वापि सौख्यं सुतुष्यं ॥२१४॥

निशिरसुरभिमन्दोच्छ्वासजं स्वः समोरं-

'मृदुमधुरवचोभि स्वादनीयप्रदेशैः ।

सहिततनुलताभ्या मादंबंकाकराभ्याम्

अश्लिलमनयता तौ सौख्यमात्मेन्द्रियाणि ॥२१५॥

चन्द्रमासे भरते हुए अमृतको पीता था, सुलोचनाके वचन और गीतरूपी रसायनको अपने कानरूपी पात्रोंमें भरता था, हाथीकी सूंडके समान आकारवाले हाथोंके आलिंगनसे युक्त हो स्पर्शन इन्द्रियसे जानने योग्य उसके शरीररूपी कुड्ड्याके भीतर रहनेवाले रसको ग्रहण करता था, विन्मी फलके समान सुशोभित उसके ओठोंमें रहनेवाले अमृतका आस्वाद लेनेमें सदा उत्सुक रहता था, उसके मुखरूपी कमलकी सुगन्धिसे रातदिन अत्यन्त हर्षित होता रहता था और 'स्त्री समागम मुझे इसी भवनेमें है अन्यभवनेमें नहीं है, ऐसा मानकर ही मानो सुलोचना के द्वारा अपनी लक्ष्मी आदि इन्द्रियोंको संतुष्ट करता रहता था ॥२०७-२११॥ चूंकि प्रमाण काल और भावसे इन दोनोंके प्रेममें समानता थी इसलिये ही वे दोनों सभोग शुद्धारूपी समुद्रके अन्त तक पहुँच गये थे ॥२१२॥ खूब बड़े हुए प्रेमसे जिसने विलेपन आदि छोड़ दिया है ऐसा वह जयकुमार सुलोचनाकी सय इन्द्रियोंका विषय रहता था और सुलोचना भी जयकुमारके हित करनेवाले विषयोंमें तत्पर रहती थी, इस प्रकार ये दोनों ही समान प्रीति करना ही जिनका सारभाग है ऐसे सुखोका उपभोग करते थे ॥२१३॥ पृथक् पृथक् उत्पन्न हुए परिणामोसे खूब मिले हुए उन दोनोंने अपने मनमें कामदेवका सुख नहीं पाया था किन्तु इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए उन उन सुखोंसे उनके मन प्रीतिको अवश्य प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ सुख क्या वहीं उत्तम तृप्तिके लिये हो सकता है ? ॥२१४॥ अपने स्वासोच्छ्वाससे उत्पन्न हुए शीतल सुगन्धित और मन्द पवनसे, कोमल और मधुर वचनोंसे, स्वाद

१ स्वीकुर्वन् । २ आनिङ्गने हृदयङ्गम 'मद्गत हृदयङ्गमम्'. इत्यभिधानात् । ३ सुलोचना-
शरीररमणूपमध्वम्यिन । ४ स्पर्शजननम् । ५ इह जन्मस्येव । ६ उत्तरभवे नास्तीति वा ।
७ स्त्रीमद्गतः । 'प्रीतिपदनिनी वामा बनिता महिना तया' इत्यभिधानात् । ८ विजय । ९ यौनिपुण्यादि-
प्रमाणान् समरतिप्रभूतिनात् । अन्योन्यान् रागादिभावाच्च । १० अतीवप्रवृद्ध । ११ सुप्तधीरुण्डु-
वृमचर्चिमान्याभरणादि । १२ नमस्तेन्द्रियाणाम् । १३ विषयीभूत्वा । १४ हितवर्चन्दनादिविषया-
णाम् । १५ सुलोचनापि । १६ जयस्य । १७ न प्राप्यते स्म । १८ पदार्थः । १९ इन्द्रियोंकाय-
जनितमुन्मत्तम् । २० परम् अयवन्तु मुख द्वारमुपायो यस्य तन् । परमुखं क्वापि भवति न कुनापीत्यर्थः ।
२१ धाम्यादिन् योष्यापरादिप्रदेशैः ।

हृत्सरसिजसारंरिष्टचेटीमभानं
 सततरतनिगित्तर्जालभागंप्रयुक्तं ।
 मृदुनिशिरतरं सम्प्रापयुस्तौ समीरं
 सुरतविरतिजातस्वेवविच्छेदतोष्यम् ॥२१६॥
 ता तस्य वृत्तिरनुश्रुतंयति स्म तस्या-
 इदंन तदेव रतितृप्तिनिमित्तमासीत् ।
 प्रेमापदत्रां विजभासमचित्थमन्त्य-
 सातोदयश्च भयभूतिफलं तदेव ॥२१७॥
 कामोद्गमन् सुरतवृत्तिषु तस्य शिष्य-
 भाय सुखीरिति रतिश्च सुलोचनाया ।
 यौ गर्वमुद्धहति चेन्न वृथाभिमानी
 स्वच्छेद्यसिद्धिविषयेषु गुणाधिकेषु ॥२१८॥
 एव सुखानि तनुजायन्भूय तौ च
 १० नैवपुनश्चरतेऽप्यभिलाषकोटिम् ॥
 धिक्शब्दमिष्यविषयोत्वसुख सुप्राप
 ११ तद्वैतविश्वविषयाय वृथा यत्तद्व्यम् ॥२१९॥
 इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यंप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणधोमहापुराणसद्ग्रहे जयसुलोचना
 सुखानुभवव्यावर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमं पद्य ॥४५॥

लेने योग्य अधर आदि प्रदेशोसे और कोमलताकी एक स्नान स्वरूप मन्दर शरीररूपी हतासे वे दोनो अपनी इन्द्रियोको समस्त मुक्त पट्टाचाले थे ॥२१५॥ जिसने कमलका सार भाग हूरण कर लिया है, जो प्रिय दासके समान आचरण करता है, निरन्तर सभोगका साधन रहता है, भरोलेने मार्गसे आता है और अत्यन्त कोमल (मन्द) तथा शीतल है ऐसे पवनसे वे दोनो ही सभोगने वाद उपन हुए पसीना सूम्नेका सुख प्राप्त करते थे ॥२१६॥ जयकुमारकी प्रवृत्ति सुलोचनाके अनुकूल रहती थी और सुलोचनाकी प्रवृत्ति जयकुमारके अनुकूल रहती थी । उन दोनोका परस्पर एक दूसरेके अनुकूल रहना ही उनने रतिजन्य सतोषका कारण था जो चिन्तवनमें न आ सके ऐसा प्रेम इन्ही दम्पतियोमें पूर्णताको प्राप्त हुआ था, इन्हीके सातावेदनीय-वा अन्तिम उदय था और यही सब इनके जन्म लेनेका फल था ॥२१७॥ बुद्धिमान् कामदेव, सभोग चेष्टाओके समय जयकुमारका शिष्य बन गया था और रति सुलोचनाकी शिष्या बन गई थी सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्य यदि व्यर्थका अभिमानी न हो तो ऐसा वीन हो जो अपने इष्ट पदार्थकी सिद्धिके विषयभूत अधिव गुणवाले पुरपोके साथ अभिमान करे ? ॥२१८॥

इस प्रकार शरीरसे उत्पन्न हुए सुखोका अनुभव कर चिरकाल तब रमण करनेपर भी वे दोनो इच्छाओकी अन्तिम अवधिको प्राप्त नहीं हुए थे—उनकी इच्छाए पूर्ण नहीं हुई थी । इसलिये रहना पडता है कि इष्ट विषयोसे उत्पन्न हुए सुखको भी धिक्कार है । हे पण्डितो, तुम उसी सुखके लिये प्रयत्न करो जो कि ससारके सब विषयोसे अतीत है ॥२१९॥ इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यंप्रणीते त्रिषष्टिलक्षण महापुराणग्रहके हिन्दी भाषागुणावर्णनं जय-कुमार और सुलोचनाके सुखभोगका वर्णन करनेवाला यह पैतालीमवा पद्य ममाप्त हुआ ।

१ इष्टव्यस्यायमाने । २ गवाक्षपय । ३ सुरतायगागजात् । ४ अयोचानुदानमेव । ५ प्राप्त । ६ जयसुलोचनयो । ७ विजयोदम्पयोभवा यत्र तत् । ८ अपश्चिमसुखोदयश्च । ९ जमप्राप्तिपत्रम् । १० नैव प्राप्तु । ११ अतन् । १२ वारणात् । १३ प्रयत्न कुरध्वम् ।

'हरन् फरिकराकारकरालिङ्गनसद्गतः' । 'तद्गात्रकूपिकान्तःस्थं रसं' 'स्पर्शनवेदिनम् ॥२०६॥
 तद्बिम्बाधरसम्भावितामृतास्वादनोत्सुकः । तद्ब्रजावारिजामोदानमोदमानोऽनिसं भूषम् ॥२१०॥
 'अत्रैव न पुनर्वेति' मम यामासमागमः' । 'स सुलोचनया स्याति चक्षुरादीन्यतपंयत् ॥२११॥
 'प्रमाणकालभावेभ्यो यद्व्रतेः समता तयोः । ततः सम्भोगशृङ्गारधारापारान्तगो हि तौ ॥२१२॥'

'श्रुतिपरिणतरत्या लोपितालेपनादिः'

स सकलकरणानां^१ गोचरीभूय^२ तस्याः ।

हितपरविषयाणां^३ साऽपि^४ 'तस्यैवमेतो

समरतिकृतसारारण्यन्वभूतां सुखानि ॥२१३॥

मनसि मनसिजस्यावापि^५ सौख्यं न ताभ्यां

पृथगनुगतभार्वः^६ सद्गताभ्यां नितान्तम् ।

'करणमुखसुखैस्तैस्तन्मनः प्रीतिमापत्

भवति^७ परमुलं च क्वापि सौख्यं सुतुल्यं ॥२१४॥

शिशिरसुरभिमन्ढोच्छ्वासजैः स्वैः समीर-

'मृदुमधुरवज्रोभिः स्वादनीयप्रदेशैः ।

ललिततनुलताभ्यां मार्दवैकाकराभ्याम्

श्रुतिलयनयतां तौ सौख्यमात्मेन्द्रियाणि ॥२१५॥

चन्द्रमासे भरते हुए अमृतको पीता था, सुलोचनाके वचन और गीतरूपी रसायनको अपने कानरूपी पात्रोंसे भरता था, हाथीकी सूँडके समान आकारवाले हाथोंके आलिंगनसे युक्त हो स्पर्शन इन्द्रियसे जानने योग्य उसके शरीररूपी कुड्डेयाके भीतर रहनेवाले रसको ग्रहण करता था, विश्वी फलके समान सुशोभित उसके ओठोंमें रहनेवाले अमृतका आस्वाद लेनेमें सदा उत्सुक रहता था, उसके मुखरूपी कमलकी सुगन्धिसे रातदिन अत्यन्त हर्षित होता रहता था और 'स्त्री समागम मुझे इसी भवमें है अन्यभवमें नहीं है, ऐसा मानकर ही मानो सुलोचना के द्वारा अपनी चक्षु आदि इन्द्रियोंको संतुष्ट करता रहता था ॥२०७-२११॥ चूँकि प्रमाण, काल और भावसे इन दोनोंके प्रेममें समानता थी इसलिये ही वे दोनों संभोग शृङ्गाररूपी समुद्रके अन्त तक पहुँच गये थे ॥२१२॥ खूब बड़े हुए प्रेमसे जिसने विलेपन आदि छोड़ दिया है ऐसा वह जयकुमार सुलोचनाकी सब इन्द्रियोंका विषय रहता था और सुलोचना भी जयकुमारके हित करनेवाले विषयोंमें तत्पर रहती थी, इस प्रकार ये दोनों ही समान प्रीति करना ही जिनका सारभाग है ऐसे सुखोंका उपभोग करते थे ॥२१३॥ पृथक् पृथक् उत्पन्न हुए परिणामोंसे रस मिले हुए उन दोनोंने अपने मनमें कामदेवका सुख नहीं पाया था किन्तु इन्द्रियोंने उत्पन्न हुए उन उन सुखोंमें उनके मन प्रीतिको अवश्य प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ सुख क्या वहाँ उत्तम तुष्टिके लिये हो सकता है ? ॥२१४॥ अपने श्वासोच्छ्वासमें उत्पन्न हुए शीतल सुगन्धित और मन्द पवनसे, कोमल और मधुर वचनसे, स्वाद

१ स्वीकुर्वन् । २ आलिंगने हृदयद्रव्यम् 'सद्गतं हृदयद्रव्यम्'. इत्यभिधानात् । ३ सुलोचना-

शरीररसकूपमध्यस्थितम् । ४ स्पर्शनवत् । ५ इह जन्मन्येव । ६ उत्तरभवे नास्तीति वा ।

७ स्त्रीगण्य । 'प्रतीपदर्शनी यामा वनिता महिना तथा' इत्यभिधानात् । ८ विजय । ९ योनिपुण्ड्रि-

प्रमाणान् समर्गनप्रमृतिवत् । अन्योन्यानुगगादिभावाच्च । १० अनीवप्रबुद्ध । ११ सुप्तधीगण्डूद-

बुमचर्चागात्राभरणादि । १२ गमनेन्द्रियाणाम् । १३ विषयीभूत्वा । १४ हिनयन्वन्दनादिविषया-

णाम् । १५ सुलोचनायि । १६ जयम् । १७ न प्राप्यते रसः । १८ पदार्थः । १९ इन्द्रियोपाय-

जनितमसौ । २० परम् अन्यवान्तु मुनि द्वारमुपायो यम्य मत् । परमुलं क्वापि भवति न बुजापीत्यर्थः ।

२१ भार्वादिन् योभ्यापरादिप्रदेशैः ।

हृतसरसिजमारैरिष्टचेटीयमानैः

सततरतनिमित्तैर्जातैर्मागप्रवृत्तैः ।

मृदुशिशिरतरैः सम्प्रापनुस्ती समीरैः

सुरतविरतिजातस्वेदविच्छेदसौण्डर्यम् ॥२१६॥

ता तस्य वृत्तिरनुवर्तयति स्म तस्या-

श्चैनं तदेव रतितृप्तिनिमित्तमासीत् ।

प्रेमापदप्रैर्निजभावमचिन्त्यमन्त्य-

सातोदयद्वय भवभूतिकलं तदेव ॥२१७॥

कामोत्थमन् सुरतमृत्तियु तस्य शिष्य-

भायं सुवीरिति रतिश्च सुलोचनायाः ।

को गर्भमृद्वहति चेन्न वृथाभिमानो

स्वैष्ट्यैर्षित्तिद्विविषयेषु गुणाधिकेषु ॥२१८॥

एवं सुखानि तन्जाग्यन्भूय ती च

नैवेद्यतुद्विचररतेऽप्यभिलाषकोटिम्^१ ।

विश्वरूपमिष्टविषयपोत्यसुखं सुप्राय

तद्वीर्यविश्वविषयाय वृथा यत्स्वम्^२ ॥२१९॥

इत्यायं भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणश्रीमहापुराणमद्रहं जयश्लोचना-

सुतानुभवयावर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

कैने योग्य अधर आदि प्रदेशोसे और कोमलताकी एक खान स्वरूप सुन्दर शरीररूपी लतासे वे दोनों अपनी इन्द्रियोको समस्त सुख पहुँचाते थे ॥२१५॥ जिसने कमलका सार भाग हारण कर लिया है, जो प्रिय दासके समान आचरण करता है, निरन्तर सभोगका साधन रहता है, झरोखेके मार्गसे आता है और अत्यन्त कोमल (मन्द) तथा भीतल है ऐसे पवनसे वे दोनों ही सभोगके वाद उत्पन्न हुए पत्नीना सुखनेका सुख प्राप्त करने थे ॥२१६॥ जयकुमारकी प्रवृत्ति सुलोचनाके अनुकूल रहती थी और सुलोचनाकी प्रवृत्ति जयकुमारके अनुकूल रहती थी । उन दोनोंका परस्पर एक दूसरेके अनुकूल रहना ही उनके रतिजन्य सतोषका कारण था जो चिन्तनमें न आ सके ऐसा प्रेम इन्हीं दम्पतियोमें पूर्णताको प्राप्त हुआ था, इन्हींके सातावेदनीयका अन्तिम उदय था और यही सब इनके जन्म लेनेका फल था ॥२१७॥ बुद्धिमान् कामदेव, संभोग चेष्टाओके समय जयकुमारका शिष्य बन गया था और रति सुलोचनाकी शिष्या बन गई थी सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्य यदि व्यर्थका अभिमानो न हो तो ऐसा कौन हो जो अपने इष्ट पदार्थकी सिद्धिके विषयभूत अधिक गुणवाले पुत्रपौके साथ अभिमान करे ? ॥२१८॥

इस प्रकार शरीरमें उत्पन्न हुए सुखोका अनुभव कर चिरकाल तक रमण करनेपर भी वे दोनों इच्छाओकी अन्तिम अवधिको प्राप्त नहीं हुए थे—उनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई थी । इसलिये कहना पड़ता है कि इष्ट विषयोसे उत्पन्न हुए सुखको भी विषकार है । हे पण्डितो, तुम उसी सुखके लिये प्रयत्न करो जो कि ससारके सब विषयोसे अतीत है ॥२१९॥ इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराणसंग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें जयकुमार और सुलोचनाके सुवभोगका वर्णन करनेवाला यह पैतालीमवा पर्व समाप्त हुआ ।

१ इष्टययस्यायमानं । २ गवाक्षपथ । ३ सुरतावसानजात । ४ अन्योन्यानुवर्तनमेव । ५ प्राप्तम् ।

६ जयश्लोचनयो । ७ निजयोर्दम्पत्योर्भावो यत्र तत् । ८ अपस्विगसुसौन्दर्यश्च । ९ जन्मप्राप्तिपथम् ।

१० नैव प्राप्तु । ११ अन्तम् । १२ वारणात् । १३ प्रयत्न कृष्यम् ।

पट्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

जय प्रासादमव्यास्य ^१दन्तावलगतो मुद्रा । यदुच्छ्रयाऽन्यदालोक्य गच्छन्तौ खगदम्पती ॥१॥
 हा मे प्रभावतीत्येतद् भ्रालपप्रतिविह्वल । ^२रतिमेवाहितः सद्य सहायोऽकृत्य मूर्च्छया ॥२॥
 तथा ^३पारायणद्वन्द्वं तत्रैवालोक्ष्य कामिनी । हा मे रतिवरस्युक्त्वा साऽपि मूर्च्छामुपागता ॥३॥
^४दक्षवेटीगनक्षिप्रकृतशीतक्रिया क्रमात् । सद्य कुमुदिनीवाप प्रबोध शीतदोषिते ॥४॥
^५हिमचन्दनसन्मिथशरिभिर्मन्दमारुन् । सोऽन्यमूर्च्छो दिश पश्यन् भन्दमन्दतनुव्रप ॥५॥
 यूप सञ्ज्ञेपि ^६सायन्नाम्भोजानुकृतानना । किमेतदिति तत्सर्वं जानानोऽपि स नागर ॥६॥
 श्रनेकानुनयोरापैर्गोत्रस्खलन^७दु खिताम् । सुलोचना समाश्रवास्य स्मरन् जन्मान्तरप्रियाम् ॥७॥
^८आकारतर्ज्जित् कृत्वा तामेवालपयन् स्थित । वञ्चनावञ्चव स्रवे प्रायः कान्तासु कामिन ॥८॥
 तयोर्गं मन्तररतमीधनुस्तान्तस्मृत्यनन्तरन् । स्वर्गादिगुतो बोधस्त्वीयो^९ व्यक्तितमीयिवान् ॥९॥
 तद्विलोक्ष्य सत्ययोऽस्या^{१०} श्रीमन्ती सशिवइकरा । पराश्च मत्सरोद्रेकादित्यग्योग्य तवावृबन् ॥१०॥

अथानन्तर किसी अन्य समय जयकुमार अपने महलकी छतपर आनन्दसे बैठा था कि इतनेमें ही अपनी इच्छानुसार जाते हुए विद्याधर दम्पती दिखे, उन्हें देखकर 'हा मेरी प्रभावती' इस प्रकार कहता हुआ वह बहुत ही वेचैन हुआ और मूर्च्छाकी सहायता पाकर शीघ्र ही प्रेमको प्राप्त हुआ । भावार्थ—पूर्वभवका स्मरण होनेसे मूर्च्छित हो गया ॥१-२॥ इसी प्रकार मुञ्जोचना भी उसी स्थानपर वज्रतरोका युगल देखकर 'हा मेरे रतिवर' ऐसा कहकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गई ॥३॥ जिस प्रकार चन्द्रमासे कुमुदिनी शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो जाती है—विल उठती है उसी प्रकार चतुर दासी जनोके द्वारा किये हुए शीतलोपचारके प्रमत्ते वह मुञ्जोचना शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हुई थी—मूर्च्छारहित हो गई थी ॥४॥ नपूर और चन्दन मित्रे हुए जलसे तथा मन्द मन्द वायुसे कुछ लज्जित हुआ और दिशाओकी ओर देवना हुआ वह जयकुमार भी मूर्च्छारहित हुआ ॥५॥ यद्यपि वह चतुर जयकुमार सब कुछ समझता था तथापि पूछो लगा कि तुम लोगोके मुंह सव्याकालसे कमलोका अनुकरण क्यों कर रहे है ? अर्थात् वात्तिरहित क्यों हो रहे है ? ॥६॥ पतिके मुंहसे दूसरी स्त्रीका नाम निरत जानेके कारण दुःखी हुई मुञ्जोचनाको जयकुमारने अनेक प्रकारके अनुनय-विनय आदि उपायोने समझाया तथा दूसरे जन्मकी प्रिया प्रभावती समझकर अपने मुंहवा आहार छिपा वह उसीने माय बातचीत करने लगा मो ठीक ही है क्योंकि गभी कामी पुकर स्त्रियोके ठगनेमें अग्र्यन्त चतुर होते है ॥७-८॥ उन दोनोंके जन्मान्तर सम्बन्धी अपना समाचार स्मरण होनेसे चार ही स्वयं परीषये सम्बन्ध रखनेवाला अवधिजान भी प्रसन्न हो गया ॥९॥ यह सब देखकर श्रीमन्ती निवकरा तथा और भी जो मुञ्जोचनारी मौने थी वे उग समय देव्योके

१ शान्तिर्विष्णुशक्तिमयम् । २ दन्तावनमो यम् । ३ विद्याधरदम्पती । ४ श्रीतिम् । ५ प्रायः । ६ सायन् । ७ गोषाये । ८ चतुर । ९ कर्तुर । १० ईश्वरउवाचात् । ११ अग्र्यमदात् । १२ शिषुः । १३ प्रभावतीति नामान्तरप्रदत्तम्, मुञ्जोचनया अथ प्रभावतीति अग्र्यरतीनामप्रदत्तम् । १४ जन्मा स्मरन्दिदमन्तरप्रदत्तम्, अथ प्रभावतीनामप्रदत्तम् । १५ मन्त्रावयम् । १६ मन्त्रावयमन्त्रावयनात् । १७ मन्त्रावयम् । १८ मन्त्रावयम् । १९ मन्त्रावयम् । २० मन्त्रावयम् । २१ मन्त्रावयम् । २२ मन्त्रावयम् । २३ मन्त्रावयम् । २४ मन्त्रावयम् । २५ मन्त्रावयम् । २६ मन्त्रावयम् । २७ मन्त्रावयम् । २८ मन्त्रावयम् । २९ मन्त्रावयम् । ३० मन्त्रावयम् । ३१ मन्त्रावयम् । ३२ मन्त्रावयम् । ३३ मन्त्रावयम् । ३४ मन्त्रावयम् । ३५ मन्त्रावयम् । ३६ मन्त्रावयम् । ३७ मन्त्रावयम् । ३८ मन्त्रावयम् । ३९ मन्त्रावयम् । ४० मन्त्रावयम् । ४१ मन्त्रावयम् । ४२ मन्त्रावयम् । ४३ मन्त्रावयम् । ४४ मन्त्रावयम् । ४५ मन्त्रावयम् । ४६ मन्त्रावयम् । ४७ मन्त्रावयम् । ४८ मन्त्रावयम् । ४९ मन्त्रावयम् । ५० मन्त्रावयम् । ५१ मन्त्रावयम् । ५२ मन्त्रावयम् । ५३ मन्त्रावयम् । ५४ मन्त्रावयम् । ५५ मन्त्रावयम् । ५६ मन्त्रावयम् । ५७ मन्त्रावयम् । ५८ मन्त्रावयम् । ५९ मन्त्रावयम् । ६० मन्त्रावयम् । ६१ मन्त्रावयम् । ६२ मन्त्रावयम् । ६३ मन्त्रावयम् । ६४ मन्त्रावयम् । ६५ मन्त्रावयम् । ६६ मन्त्रावयम् । ६७ मन्त्रावयम् । ६८ मन्त्रावयम् । ६९ मन्त्रावयम् । ७० मन्त्रावयम् । ७१ मन्त्रावयम् । ७२ मन्त्रावयम् । ७३ मन्त्रावयम् । ७४ मन्त्रावयम् । ७५ मन्त्रावयम् । ७६ मन्त्रावयम् । ७७ मन्त्रावयम् । ७८ मन्त्रावयम् । ७९ मन्त्रावयम् । ८० मन्त्रावयम् । ८१ मन्त्रावयम् । ८२ मन्त्रावयम् । ८३ मन्त्रावयम् । ८४ मन्त्रावयम् । ८५ मन्त्रावयम् । ८६ मन्त्रावयम् । ८७ मन्त्रावयम् । ८८ मन्त्रावयम् । ८९ मन्त्रावयम् । ९० मन्त्रावयम् । ९१ मन्त्रावयम् । ९२ मन्त्रावयम् । ९३ मन्त्रावयम् । ९४ मन्त्रावयम् । ९५ मन्त्रावयम् । ९६ मन्त्रावयम् । ९७ मन्त्रावयम् । ९८ मन्त्रावयम् । ९९ मन्त्रावयम् । १०० मन्त्रावयम् ।

स्त्रीरु मायेति या वार्ता सत्या तामग्र कुर्वती । पतिमूर्च्छां स्वमूर्च्छायाः 'प्रत्ययीकृत्य मायया ॥११॥
 पश्य कृत्रिममूर्च्छातिभावनाध्ययनसंबन्धिः । 'सन्ततान्त.स्थितप्रौढप्रेमप्रेरितचेतना ॥१२॥
 कन्याश्रमविलोपात्तगोरस्पलनद्वयिता । पति रतिवरोत्प्रेरणायांमूर्च्छां क्लृप्तदूषिणा ॥१३॥
 इय शीलवतीत्येता' निस्त्वन्' वर्णनपत्ययम् । प्रायो रक्तस्य' दोषोऽपि गुणवन् प्रतिभासते ॥१४॥
 प्रभावतीति सम्मुह्य' कितव. 'कौपिनीमिमाम् । 'प्रसिद्धादयिपुः शोकं तत्प्रीत्या विदधाति नः ॥१५॥
 'एतान् सर्वास्तदालापान् जयोऽग्निविलोचन. । विदित्वा सस्मिन् पश्यन् प्रियायाः रमेरमाननम् ॥१६॥
 वान्ते जन्मान्तरावाप्तं विश्वं वृत्तान्तमावयोः । व्यावर्ष्यमा सभा तुष्टिचौतुकापहृतां क्व ॥१७॥
 इति 'प्राचोदयत् साऽपि प्रिया तद्भाववेदिना । कयां कथयितुं वृत्तान् प्रावस्त' बलभाषिणा ॥१८॥
 इह जम्बूमति द्वीपे विदेहे प्राचि' पुष्कला-वती विषयमध्यस्था नगरी पुण्डरीकिणी ॥१९॥
 तत्राभवत् प्रजापालः प्रजा राजा प्रपातयन् । फलं धर्मायकामानां स्वीकृत्य कृतिना वरः ॥२०॥
 कुबेरमित्रस्तस्यासाद् राजश्रेष्ठो 'प्रतिष्ठितः । द्वात्रिंशद्भनवत्याद्या भार्यास्तस्य मनःप्रियाः ॥२१॥
 गृहे तस्य सन्तुष्टो नानाभवनवेष्टिते । वसन् रतिवरो नाम्ना धीमान् पारवतोत्तमः ॥२२॥

उद्रेकमे परस्परमें इम प्रकार कहने लगी ॥१०॥ देखो, यह सुलोचना मायाचारसे पतिकी मूर्च्छाको अपनी मूर्च्छाका कारण बनाकर 'स्त्रियोमे माया रहती है' इम कहावतको कैसा सत्य मिद्ध कर रही है । और इम प्रकार जिसने कृत्रिम मूर्च्छाके द्वारा प्रकट हुई भावनाओंका माफ साफ भवरण कर लिया है, जिसकी चेतना सदासे हृदयमें बैठे हुए प्रौढ प्रेममें प्रेरित हो रही है जो कन्याव्रतके भंग करनेसे प्राप्त हुए गोरम्बलन (भूलमे दूसरे पतिका नाम लेने)से दूषित है तथा कुलको दूषण लगानेवाली है ऐसी यह सुलोचना अपने पहलेके पतिको 'हे रतिवर' इस प्रकार बहकर बनावटी मूर्च्छाको प्राप्त हुई है ॥११-१३॥ यह जयकुमार इसे 'यह बड़ी शीलवती है, इस प्रकार कहता हुआ वर्णन करता है सो ठीक ही है क्योंकि रागी पुरुषको प्रायः दोष भी गुणके समान जान पडते है ॥१४॥ 'हे प्रभावति' ऐसा बहकर मूर्च्छित हो, शोध करनेवाली इम सुलोचनाको प्रमत्त करनेकी इच्छा करता हुआ यह धूर्त कुमार उमके प्रेमसे ही हम लोगोंको शोक उत्पन्न कर रहा है ॥१५॥ अबविज्ञानरूपी नेत्रको धारण करने-वाला जयकुमार उन लोगोकी इन सब बातोंको जानकर मन्द हसीके साथ साथ सुलोचनाके मुस्कुराते हुए मुखको देखता हुआ कहने लगा कि 'हे प्रिये' 'तू हम दोनोंके पूर्वभवका सब वृत्तान्त कहकर इम सभाको सन्तुष्ट तथा कौतुकके वशीभूत कर ।' यह सुनकर पतिके अभिप्रायकी जाननेवाली और मधुर भाषण करनेवाली सुलोचनाने भी पूर्वभवकी सब कथा कहनी प्रारम्भ की ॥१६-१८॥

इस जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि पुष्कलावती देशके मध्यमें स्थित है । उम नगरीका राजा प्रजापाल था जो कि समस्त प्रजाका पालन करता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामका फल स्वीकार कर सब पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ था ॥१९-२०॥ उस राजाका कुबेरमित्र नामका एक प्रसिद्ध राजगोठ था और उसकी हृदयको प्रिय लगनेवाली धनवती आदि वतीसे स्त्रिया थी ॥२१॥ अनेक भवनोमे घिरे हुए उम गेठके अत्यन्त ऊँचे महलमें एक रतिवर नामका वनूतर रहता था जो कि अतिज्ञाय बुद्धिमान् और सब वनूतरोंमें

१ कारणीकृत्य । 'प्रत्ययोऽग्निविलोचनविज्ञानहेतुपु' इत्यभियानान् । २ रतिवरोत्प्रेरणापुरुषे प्रवृद्धमनेहं प्रेरितमनमा । ३ अगच्छन् । ४ -त्येव ल० । -त्येना अ०, स०, इ०, प० । ५ निम्नतन् ट० । वृत्तन् । ६ अनुरक्तस्य । ७ मूर्च्छां गवा । ८ धूर्त । ९ प्रभावतीनामग्रहणान् कृपिनाम् । १० प्रमादयिपुमिच्छु । ११ एतान् । १२ अवादीन् । १३ उपश्रान्तवती । १४ पूर्वविदेहे । १५ श्रीमानित्यर्थः ।

कदाचिद् राजगोहागतेन बंदयेतिना स्वयम् । स्नेहेन सस्मितालापः स्वहस्तेन समुद्धतः ॥२३॥
 कदाचित् कामिनीकान्तकराज्जापितशर्करा-सस्मिभ्रितान् सुशालीयतण्डुलानभिभक्षयन् ॥२४॥
 कदाचिच्च्येष्ठिनोद्दिष्टं^१ हेतुदुष्टान्तपूर्वकम् । अहिंसालक्षणं धर्मं भावयन् प्राणिनेहितम् ॥२५॥
 कदाचिद् भवनायातयतिपादसरोजजम् । रेणुजालं^२ निराकुर्वन्^३ पक्षाभ्यां प्रत्युपागतः^४ ॥२६॥
 सौ कदाचिद् गतिः का स्थल^५ पापापापामनामिति । कूतुहलेन पृष्टः सन् जनेस्तुष्ठेन निर्विद्वान् ॥२७॥
 अधोभागमयोधं च मौनीवागमपारगः । क्षयोपशममाहात्म्यासित्यञ्चोऽपि विवेकिनः ॥२८॥
 श्रीहमनाप्रकारेण कान्तया रतिपेया^६ । सार्धमेवं चिरं तत्र सुप्तं कालमजोगमत्^७ ॥२९॥
 प्रसी रतिवरः कान्तस्वयमहं सा तव प्रिया । रतिपेणा भवावर्ते^८ जन्तुः किं किं न जायते ॥३०॥
 ततः कुबेरमित्रस्य धनवत्यादच पुण्यवान् । जातः कुबेरकान्ताख्यः कुबेरो^९ वा परः सुधीः ॥३१॥
 द्वितीय इव तस्यासीत् प्राणः सोऽनुचराप्रणो^{१०} । प्रियसेनाह्वयो बाल्याद् आरभ्य कृतसद्गतिः ॥३२॥
 द्वाजन्मनः^{११} कुमारस्य कामधेनुत्समा^{१२} । मनोऽभिलषितं बुभुक्षे समस्तसुखसाधनम् ॥३३॥
 धीर्न निष्पादपत्येकं गन्धशातिमनारतम् । इक्षूनमृतदेशीयान्^{१३} अग्न्यत्^{१४} स्मृतांस्तनुत्यचः ॥३४॥
 स्वयं मनोहरं वीगा दग्ध्यनीतिं^{१५} निरन्तरम् । तस्मान्नसमर्थं सर्वरोगस्वैदमलापहम् ॥३५॥

श्रेष्ठ या ॥२२॥ कभी तो राजभवनसे आये हुए सेठ कुबेरमिन वड़े स्नेहसे हँस हँसकर वार्ता-
 लाप करते हुए उसे अपने हाथपर उठा लेते थे, कभी वह स्त्रियोंके सुन्दर करकमलो द्वारा दिये
 हुए जोर शर्कर मिले हुए उत्तम धानके चावलको खाता था, कभी सेठके द्वारा हेतु तथा
 दुष्टान्तपूर्वक कई हुए प्राणिहितकारी अहिंसा धर्मका चिन्तन करता था, कभी भवनमें आये हुए
 मुनिराजके चरणवमलोंनी शूलिको उनके समीप जाकर अपने पक्षोसे दूर करता था, जब कभी
 कोई कुतूहलवश उममे पूछता था कि पापी तथा पुण्यात्मा लोगोंकी क्या गति होती है ? तब
 वह शास्त्रोक्त जाननेवाक़े किमी गौरी महाशयके समान इशारेसे चोंचके द्वारा नीचेका भाग
 दिखाना हुआ पापी लोगोंकी गति कहता था और उसी चोंचके द्वारा ऊपरका भाग दिखाना
 हुआ पुण्यात्मा लोगोंकी गति कहता था सो ठीक ही है क्योंकि क्षयोपशमके माहात्म्यके तिर्यञ्च
 भी विवेकी हीं जाने हैं ॥२३-२८॥ इस प्रकार यह कबूतर अपनी रतिपेणा नामकी कबूतरी
 के साथ नागा प्राररकी पीडा करना हुआ वहा सुगमे समय बिताता था ॥२९॥ मुलोवता
 यह रही है कि यह रतिवर ही आप मेरे पनि है और वह रतिपेणा ही मैं आपकी प्रिया हूँ ।
 दोनों इस गगनस्थी आवर्तने भ्रमण करना हुआ यह जीव क्या क्यान्ही होता है ? ॥३०॥
 उम कुबेरदन सेठके धनवती स्त्रीके एक कुबेरवान नामका पुत्र हुआ था जो कि अतिशय
 पुत्रवान्, वृद्धिवान् तथा दूगरे कुबेरके समान जान पड़ता था ॥३१॥ उम कुबेरवान्का
 एक प्रियमेत नामका श्रेष्ठ मित्र था जो कि बाल्य अवस्थामे ही उमके साथ रहता था और उमके
 दूगरे प्राणोके समान था ॥३२॥ एक अत्यन्त उत्तम कामधेनु कुमार कुबेरवान्को जन्मके
 ही पक्षे उमकी इच्छाके अनुसार सुगरे सब मापनोंको पूरा करती थी । यह कामधेनु प्रति
 दिन एक श्रेष्ठ तो मृगशित धान्यका उपान्न करती थी और एक गेन अमृतके समान मीठे,
 पकड़े उच्छेदके सब सबे इंसोका उपान्न करती थी ॥३३-३४॥ इसके मित्रत्व की कामधेनु
 कुमारके सामने निरन्तर मनोहर वीगा दक्षानी थी, और उसी कामधेनुके प्रसासे उमके रतनके

१-दिष्ट-२० । २-हेतुदुष्टम् । ३-अनागतम् । ४-अभिलषितम् । ५-कान्तया ।
 ६-कान्तस्वयमहं । ७-अनुचराप्रणो । ८-अभिलषितम् । ९-कान्तस्वयमहं । १०-अनुचराप्रणो ।
 ११-अनुचराप्रणो । १२-अनुचराप्रणो । १३-अनुचराप्रणो । १४-अनुचराप्रणो । १५-अनुचराप्रणो ।

सुगन्धितलिलं गाङ्गं^१ गम्भीरमधुरं^२ ध्वनन् । अम्भोवरो नभोभागाद् आसन्नादवभुञ्चति ॥३६॥
 कल्पद्रुमद्वयं वस्त्रभूषणानि प्रयच्छति । अन्नमानं ददात्यन्यद् द्वयं कल्पमहोदहः^३ ॥३७॥
 एवमन्यच्च भोगाद्व्यग्नं भ्रष्टोऽयं देवनिमित्तम् । शश्वत्सर्वदातस्तस्य पूर्णं प्रायमिकं वयः ॥३८॥
 तद्वीक्ष्य "पितरावेव किमेकामभिलाषुकः । किं बह्वोरिति चित्तं सन्दिहानो" समावृत्तौ ॥३९॥
 प्रियसेनं^४ समहृय तत्प्रशान्तान्मनोगतम् । अथादीधरतां भेरीं संव या त्वेकचित्ता ॥४०॥
 ततः सन्द्रदत्ताप्यो धनवत्या^५ सहाभवत् । स्वसा^६ कुबेरमित्रस्य "तन्नामवैतयोः" सुता ॥४१॥
 प्रियवत्ता ह्यया तत्याश्चेष्टिका^७ रतिकारिणी । कन्यकारतां विधायानि द्वात्रिंशत्तान्दराहृतौः ॥४२॥
 श्रेष्ठी कदाचिदुद्याने यज्ञपूजाविधौ सुधीः । सुपरीक्ष्य निमित्तेन^८ प्रियदत्तां गृणान्विताम् ॥४३॥
 श्रवधायोस्य पुत्रस्य^९ पञ्चताराबलान्विते । दिने महोविभूयन्तां^{१०} कल्याणविधिनाऽग्रहीत् ॥४४॥
 तन्निमित्तपरीक्षायाम् श्रवलोक्तिरुभागते । सुते गृणवती राज्ञो^{११} प्रशस्त्वत्यभिधा परा ॥४५॥
 भाजनं^{१२} भक्ष्यत्पूर्णमदत्तयति^{१३} मातुले^{१४} (?) ! स्वाम्या^{१५} सज्जाभरानम्रवदने जातनिबिदे^{१६} ॥४६॥

समय समीपवर्ती आकाशसे आकर मधुर तथा गम्भीर गर्जना करते हुए मेघ सब प्रकारके रोग, पसीना और मलको हरण करनेवाला गंगा नदीका सुगन्धित जल वरमाते थे ॥३५-३६॥ उस कुमारके लिये एक कल्पवृक्ष वस्त्र देता था, एक आमूपण देता था, एक अन्न देता था और एक पेय पदार्थ देता था ॥३७॥ इस प्रकार इनके सिवाय देवोंके दिये हुए और भी सब प्रकारके भोगोंका निरन्तर उपभोग करते हुए उस कुमारकी पहली अवस्था पूर्ण हुई थी ॥३८॥ पहली अवस्थाको पूर्ण हुआ देखकर माता पिताको चिन्ता हुई कि यह एक कन्या चाहता है अथवा बहुते । उसी चिन्तासे वे कुछ संदेह कर रहे थे और कुछ व्याकुल भी हो रहे थे । उन्होंने कुबेरकान्तके मित्र प्रियसेनको बुलाकर उसके मनकी बात पूछी और उसके कहनेपर उन्होंने निश्चय कर लिया कि इसके 'एक पत्नीव्रत है'—यह एक ही कन्या चाहता है, सो ठीक ही है क्योंकि दोनोंका एक चित्त हो जाना ही मित्रता कहाती है ॥३९-४०॥

तदनन्तर—उसी नगरसे समुद्रदत्त नामका एक सेठ था, जो कि कुबेरमित्रकी स्त्री धनवती का भाई था और उसे कुबेरमित्रकी वहिन कुबेरमित्रा व्याही गई थी । इन दोनोंके प्रियदत्ता नामकी एक पुत्री हुई थी और रतिकारिणी उसकी दासी थी । समुद्रदत्त सेठके प्रियदत्ता आदि वत्तीस कन्याएँ थी । किसी एक दिन उस बुद्धिमान् सेठने एक वागमने यज्ञकी पूजा करते समय सुन्दर आकारवाली उन वत्तीसों कन्याओंकी निमित्तवश परीक्षा की और उन सबमें प्रियदत्ताको ही गुणयुक्त समझा । फिर सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक और मंगल इन पांचों ताराओंके बलसे सहित किसी शुभ दिनमें बड़े वैभवके साथ कल्याण करनेवाली विधिसे उस प्रियदत्ताको अपने पुत्रके लिये स्वीकार किया ॥४१-४४॥ राजा प्रजापालकी गुणवती

१ गाङ्गासम्बन्धि । २ गम्भीरं मधुरं व०, अ०, प०, म०, इ०, ल० । ३ कल्पवृक्षस्य । ४ अनुभवन् । ५ जननीजनकौ । ६ एतामित्यपि पाठः । स्त्रियम् । ७ सन्देहं कुर्वन्तौ । ८ कुबेरवान्तस्य मित्रम् । ९ कुबेरवान्तस्याभिप्रायम् । १० एकपत्नीव्रतधारणमित्यप्यथारितवन्तौ । ११ कुबेरमित्रस्य भाग्यया धनवत्या सहोत्पन्न इत्यर्थः । १२ भगिनी । १३ कुबेरमित्रा ह्यया । १४ समुद्रदत्तकुबेरमित्रयोः । १५ मखी । १६ द्वात्रिंशत्तान्दराहृतौ विविधमध्यपायससृष्ट पूर्यित्वा एवस्मिन् भाजने अनर्घ्यं रत्नं निक्षिप्य यथाग्रे सस्याप्य द्वात्रिंशत्तान्दराहृतौ विविधमध्यपायससृष्ट पूर्यित्वा एवस्मिन् भाजने अनर्घ्यं रत्नं समागतं सा मम पुत्रस्य प्रियेति सुपरीक्ष्य । १७ तिथ्यादिपञ्चनक्षत्रबलान्विते । १८ प्रियदत्ताम् । १९ प्रजापालनृपस्य । २० मल्ल-ल०, व०, इ०, प०, अ०, स० । २१ अददति सति । २२ मातुले अ०, प०, म०, इ०, ल०, ट० । निज मामे श्रेष्ठिनि । २३ आत्मभ्याम् । २४ उत्पन्नवराग्ये ।

राजा बदाचिदप्राज्ञीद् घटया ललितान्वया । विहारयन् वनं तत्र वाप्यामालोक्य विस्मयात् ॥५८॥

तदनुष्णाधिपसप्तशाजाप्रत्यपरिस्फुरन् । परार्थंवापसान्नीतपञ्चरागमणिप्रनाम् ॥५९॥

मणिं मत्वा प्रविदमान्तर्नेयुं केनाप्यलम्ब्यतो । आगत्या प्रवर्तमानानां कृतः क्लेशाद् विना फलम् ॥६०॥

चिरं निरीक्ष्य निर्विण्णा. सर्वे ते पुरसागमन् । बुद्धिर्नप्रेसरो यस्य न निरुच्यः फलत्यमो ॥६१॥

वशाचिद् भूषतिः श्रेष्ठिमुत्तमं रत्नचित्तया । पत्तुमन्या विभावदानं श्रात्मनोनाम्यसूचिना ॥६२॥

त्रयेण कृद्भूमार्द्रेण ललाटे स्फुटमद्रितः । कान्ताः किं किं न कुर्वन्ति स्वभागपत्नि नरे ॥६३॥

पटुवन्नात् पर मन्वा तत्कमलकं महोपतिः । प्रातरान्यातमध्यास्य मन्वादीनित्यबुधयत् ॥६४॥

ललाटे यदि केनापि राजा पादेन ताडित । कर्त्तव्यं तस्य किं वाच्यं तत्रो मन्व्यन्मोदिहम् ॥६५॥

पटुत् ललाटे नाप्येन स्पृश्य स यदि ताडितः । पादेन केनचिद् बध्यः स प्राणान्तमिति स्फुटम् ॥६६॥

तदारुणार्थप्रयत्नं स्मिनेनाहूय मातुनम् । नृपोप्राप्नोत् स चाहर्तत् प्रस्तुतं प्रस्तुतार्थवित् ॥६७॥

तस्य पूजा विधातव्या सर्वातद्भारसम्पदा । इति तद्वचनात्पटुवा मणि वार्ता न्यवेदयत् ॥६८॥

समान होता है । राजाके वचन सुनकर सेठ भी दुःख सहित शीघ्र ही अपने घर चला गया ॥५७॥ किमी एक दिन राजा ललितघट नामक हाथीपर बैठकर विहार करनेके लिये वनमें गया, उम वनमें एक दावडी थी, उसके तटपर एक सुखा वृक्ष था, उसकी एक शाखा दावडीके निकटमें निकली थी, उस गान्वाके अग्रभागपर एक कोचेने वहीसे देदीप्यमान बहुमूल्य पञ्चराग मणि लाकर रख दी । दावडीमें उम मणिकी कान्ति पड रही थी, राजा तथा उसके सब साथियों ने उन कान्तिको मणि समझा और यह देखकर सजको आश्चर्य हुआ—उम मणिको लेनेके लिये सत्र दावडीके भीतर घुसे परन्तु उनमेंसे वह मणि किसीको भी नहीं मिली सो ठीक ही है क्योंकि आन्तिमे प्रवृत्ति करनेवाले पुरषोको क्लेशके सिवाय और क्या फल मिल सकता है ॥५८—६०॥ उन सब लोगोंने दावडीमें वह मणि बहुत देरतक देखी परन्तु जब नहीं मिली तब उदात्त हो अपने नगरको लौट आये सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रयत्नमें बुद्धि अग्रेसर नहीं होती वह प्रयत्न कभी सफल नहीं होता ॥६१॥ किमी समय प्रेमसे भरी हुई वसुमती नामकी सेठकी पुत्रीने रात्रिके समय अपने सौभाग्यको सूचित करनेवाले तथा कुंकुमसे गीले अपने पैरसे राजाके ललाट में स्फुट चिह्न बना दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुरुषके अपने आश्रीत होनेपर स्त्रिया क्या क्या नहीं करती है ? ॥६२—६३॥ राजाने उस पैरके चिह्नको पटुवन्वसे भी अधिक माना और सचेरा होने ही सभामें बैठकर मन्त्री आदिमें इस प्रकार पूछा कि यदि कोई पैरसे राजाके ललाट-पर ताडन करे तो उसका क्या करना चाहिये ? यह सुनकर फलामुमति मन्त्रीने कहा कि राजाका जो ललाट पटुके सिवाय किमी अन्य वस्तुके द्वारा छुआ भी नहीं जा सकता उमें यदि किसीने पैरसे ताडन किया है तो उसे प्राण निकलने तक मारना चाहिये ॥६४—६६॥ यह सुनकर राजाने उम मन्त्रीका निरस्कार किया तथा मन्द मन्द हँसीके साथ मामा कुबेरमित्रकी बुलाकर उनमें सब हाल पूछा । प्रकृत वानको जाननेवाला कुबेरमित्र कहने लगा कि जिसने आपके शिरपर पैरसे प्रहार किया है उसकी सत्र प्रकारके आभूषणहारी सपदागे पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार उसके वचनोमें मत्तुष्ट होकर राजाने वनविहारके समय दावडीमें दिखनेवाले मणि-

१ अगमत् । प्राज्ञीत् स० । २ परार्थमिति पञ्चरागस्य विशेषणम् । ३ ललितघटाक्षयजनेषु ।

४ सत्रम् । ५ मणि । ६ पुरुषस्य । तस्य ट० । ७ जविच्छिन्नप्रवृत्ति । ८ न पत्रप्रदो भवति ।

९ निजभाषेया । १० पादेन । ११ ताडन इत्यर्थः । १२ भवद्भिर्बर्त्तन्यम् । १३ पतित्यम् ।

१४ कुबेरमित्रः ।

मणिर्न जलमध्येऽस्ति तटस्यतरुसश्रित । प्रभाष्याप्यामिति प्राह सद्द्विचिन्त्य^१ धनिग्वर ॥६६॥
 तदा कुबेरमित्रस्य प्रज्ञामज्ञानमात्मन । दौष्ट्यं च मन्त्रिणो ज्ञात्वा पश्चात्तापान्महीपति ॥७०॥
 पश्य धूर्तरह मूढो वञ्चितोऽस्मीति सर्वदा । श्रेष्ठिनं प्राप्तसम्मानं^२ प्रत्यासन्नं व्यधात् सुधी ॥७१॥
 तन्त्रावायमहाभार^३ तत प्रभृति भूपति । तस्मिन्नारोप्य निर्वधं सयमं काममन्वभूत् ॥७२॥
 कदाचित् कान्तया दृष्टपतितो निजमूर्द्धनि । श्रेष्ठो ता सत्यमद्यत्वं धर्मपत्नीत्यभिष्टुवन् ॥७३॥
 दृष्ट्वा विमोच्य^४ राजानं वरधर्मगुरोस्तप^५ । साधं समुद्रदत्ताद्यं आदाय सुरभूपरे^६ ॥७४॥
 ताकुम्भी ब्रह्मलोकान्तेऽभूता लौकान्तिकी सुरी । विप्र साध्यं यथाबालपरिस्थित्या^७ मनोविभि ॥७५॥
 श्रयेद्यु प्रियदत्ताऽसौ^८ दत्त्वा दानं मुनींशिनैः । भक्त्या विपुलमत्याख्यचारणाय यथोचितम् ॥७६॥
 सम्प्राप्य नवधा पुण्यं तपसः सन्निधिर्मम । किमस्तीत्यब्रवीद् व्यक्तविनया मुनिपुङ्गवम् ॥७७॥
 पुत्रलान्नायि तच्चित्तं विदित्वाऽवधिलोवा । वामेतरकरे धीमान् स्पष्टमद्गुणित्पञ्चकम् ॥७८॥
 कनिष्ठामद्गुलिं वामहस्तेऽसौ समदर्शयत् । पुनान्कालान्तरे पञ्च साऽऽञ्चकामात्मजामपि^९ ॥७९॥
 ते^{१०} कदाचिज्जगत्यालवकेशस्य सृते समम । श्रमितानन्तमत्याख्यं^{११} गुणज्ञे गुणभूषणे ॥८०॥

की बात निवेदन की ॥६७-६८॥ वैश्यामे श्रेष्ठ कुबेरमित्रने विचारकर कहा कि वह मणि पानीके भीतर नहीं थी किन्तु किनारेपर खड़े हुए वृक्षपर थी, वावडीमें केवल उसकी कान्ति पड़ रही थी ॥६९॥ यह सुनकर उस समय राजा लोकपाल कुबेरमित्रकी बुद्धिमत्ता, अपनी मूर्खता और मंत्रीकी दुष्टता जानकर पश्चात्ताप करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—‘देखो इन धूर्तोंने मुझ मूर्खको खूब ही ठगा ।’ इस प्रकार कहकर वह बुद्धिमान् राजा सेठवा आदर सत्कार कर उसे सदा अपने पास रखने लगा ॥७०-७१॥ उस दिनसे राजाने तन्त्र अर्थात् अपने राष्ट्रकी रक्षा करना और अवाय अर्थात् परराष्ट्रोसे अपने सम्बन्धका विचार करना इन दोनोंका बड़ा भारी भार सेठको सौंप दिया और आप निर्द्वन्द्व होकर धर्म तथा काम पुरुषार्थका अनुभव करने लगा ॥७२॥ किसी समय सेठकी स्त्रीने सेठके शिरमें वाल देखकर सेठसे कहा । सेठने यह कहते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की कि तू आज सचमुच धर्मपत्नी हुई है । उस सेठने बड़ी प्रमत्तताके साथ राजाको छोड़कर समुद्रदत्त आदि अन्य सेठोंके साथ साथ देवगिरि नामक पर्वतपर वरधर्मगुरुके समीप तप धारण किया और दोनों ही तपकर ब्रह्मलोकके अन्तमें लौका न्तिक देव हुए सो ठीक ही है क्योंकि समयके अनुकूल होनेवाली परिस्थितिसे बुद्धिमानोको क्या क्या सिद्ध नहीं होता ? ॥७३-७५॥

त्रिमी दूसरे दिन प्रियदत्ता (समुद्रदत्तकी पुत्री और कुबेरकान्तकी स्त्री) ने विपुत्रमति नामने चारण ऋद्धिवारी महामुनिको नवधा भक्तिपूर्वक दान देकर पुण्य सपादन किया और फिर विनय प्रकटकर उन्हीं मुनिराजने पूछा कि मेरे तपका समय समीप है या नहीं ? ॥७६-७७॥ अवधिज्ञान ही है नेत्र जिाके ऐसे बुद्धिमान् मुनिराजने यह जानकर कि इसका चित्त मनाको चाह रहा है अग्ने दाहिने हाथकी पांच अंगुली और बायें हाथकी छोटी अंगुली दिगाई और उगमें गूँचिन किया कि पांच पुत्र और एक पुत्री होगी । तथा कालान्तरमें उस प्रियदत्ता-ने भी पांच पुत्र और एक पुत्री दिगगाई अर्थात् उत्पन्न की ॥७८-७९॥ किसी समय गुणरूप जाम्बवर्षीने धारण करकेवागी, जगत्याल वरधर्मकी पुत्री, अमितमति और अनन्तमति नाम

१ विद्याय । २ -गामा अ०, प०, ग०, ६०, ल० । ३ स्वर्गात्परराष्ट्रमहापुरम् । ४ आत्मानं गुणं भावविशुद्धिं । ५ धर्मपुंगुम् गभीरम् । ६ सुरलाम्नि परिमदिचद् गिरी । ७ कुबेरस्त-गमुद्रतो । ८-सर्गच्छन्द्या ८० । वातापुषण नाम । ९ कुबेरवाग्प्रिया । १० एषा पुत्रीम् । ११ अर्गद । १२ मन्त्रिणो ध०, प०, ग०, ६० । गुणियो ल० ।

प्रजापालनवृत्तान्यां यशस्वत्या तपोनृका १ गुणवत्या च सप्रान्ने पुरं तत्परनद्धिकम् ॥८१॥
 राजा मा तः पुरः श्रेष्ठीं चतुर्भोजकं चिरम् । श्रुत्वा महान्तद्विनाव दानायुद्योगोनायवो ॥८२॥
 कदाचिच्छ्रेष्ठिनो मेहं जट्टगात्रात्पयोर्गुणम् । प्राविशद् भक्तिनो स्थानयत्वा तौ दम्पनी मुदा ॥८३॥
 तद्दृष्ट्वाभ्यक्षितान्प्राग्भव तत्पदान्युजम् । कपोतमियुनं पक्षीः परित्स्फुर्यामिनन्व्यं तत् ॥८४॥
 गलितान्गोत्रमग्नौति बन्धुवाशेय तन्मुनी । जातमंतारनिर्वेगौ निगन्थापगतौ गृह्णतु ॥८५॥
 प्रियदत्तेद्रपितर्गणवचनत्वात्पदात् तु तान् । रतिपेणानपृच्छते नाम प्राग्गन्तनीति किन् ॥८६॥
 सा तुष्टेनालिखन्नाम रतिवेति बोध्य तत् १ । मनेषा पूर्वभाषेति कपोतः प्रीतिनीयित्वात् ॥८७॥
 तथा रतिवरः नृपः स्वनाम १ प्रियदत्तरा । सुकान्तोऽन्वहमिच्छेयोग्यशाराव्यतिषद् भुवि ॥८८॥
 तन्निरौष्य मनेषां पतिरित्यनित्यापुरा । रतिपेनाऽग्यात्तेन सद्गम १ विभ्यनुग्रहात् ॥८९॥
 १ तत्तन्मावर्तितानेनैतन् श्रुत्वा प्रीतिरभूदतम् । पुनः श्श्रूयवत्त्वाम् कयाशेषे १ सक्तौतुकाः ॥९०॥
 श्रम्यच्चार्त्तानि दृष्ट्वा श्रादाभ्या यदि चेत्तथा । ज्ञायते तच्च वचनम्यमिच्छन्वचन कौरवे १ ॥९१॥
 निजदागन्तान्मोनिः तिष्ठन्वनी ता सना शुभाम् । सुलोचनाऽऽश्वीन् सम्पत्तायने श्रूयनामिति ॥९२॥

की गणिनी (आर्षिदाजोकी स्वामिनी), तप धारण करनेवाली, प्रजापालकी पुत्री यशस्वती और गुणवतीके साथ मात्र उत्कृष्ट विभूतिने मुगोमित्त उन पुण्डरीकिणी नगरीमें पधारो ॥८०-८१॥ मत्र अन्व-पुरके साथ साथ राजा लोकपाल और मेठ कुबेरकान्त भी उन आर्षि-काजोके समीप गये और चिरकालतक ममीचीनधर्मका अस्तित्व मुनकर दान देना आदि उद्योग-को प्राप्त हुए ॥८२॥ किसी एक दिन सेठ कुबेरकान्तके घर दो जघाचारण मुनि पधारे । दोनो ही दम्पनियोने बड़ी भक्ति और आनन्दके साथ उनका पटगाहन किया ॥८३॥ उन मुनियोके दर्शन मात्रमें ही जिनने अपने पूर्वभवके सब समाचार जान लिये है ऐने वदूतर कदूतरी (रति-वर-रतिपेणा)के जोडेने अपने पखोने मुनिराजके चरणकमलोका स्पर्श कर उन्हे गमत्कार किया और परस्परकी प्रीति छोड दी । यह देखकर उन मुनियोको भी सत्सारे बराग्य हो गया और दोनो ही निराहार सेठके घरने निकलकर बाहर चले गये ॥८४-८५॥ इमारोको ममकनेवाली प्रियदत्ताने यह सब जानकर किसी समय रतिपेणा कदूतरीसे पूछा कि पूर्वजन्म-में तुम्हारा क्या नाम था ? ॥८६॥ उनने भी बोचसे 'रतिवेगा' यह नाम लिख दिया । उते देखकर यह पूर्वजन्मकी मेरी स्त्री है यह जानकर कदूतर बहुत प्रसन्न हुआ ॥८७॥ इसी प्रकार प्रियदत्ताने रतिवर कदूतरसे भी उनके पूर्वजन्मका नाम पूछा तब उसने भी मैं पूर्व जन्ममें सुकान्त नामका था ऐने अक्षर जमीनपर लिख दिये ॥८८॥ उन्हे देखकर और यह मेरा ही पति है यह जानकर उसीके साथ रहनेकी अभिलाषा करती हुई रतिपेणा भी देवके अनुग्रहसे उनीके साथ समागमको प्राप्त हुई-दोनो साथ साथ रहने लगे ॥८९॥ यह सब सुनकर समामें बैठे हुए सभी लोगोको बहुत भारी प्रसन्नता हुई और कथाका शेष भाग सुननेकी इच्छा करते हुए सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे बैठे रहे ॥९०॥ 'इसके सिवाय हम दोनोने और भी जो कुछ देना या सुना है उसे यदि जानती हो तो कहो' इस प्रकार जयकुमारके कहनेपर अपने 'वचनान्तरूपी जलमें उस शुभ समाको सींचती हुई मुलोचना कहने लगी'-'हाँ, अच्छी तरह

१ पुण्डरीकिणीपुरम् ।

२ लोकपालः ।

३ कुबेरकान्तः ।

४ जमिनानन्तमन्यो ।

५ जट्टगात्रात्पयोर्गुणवचनमात्र । ६ नत्वा । ७ विगलितपरस्परारत्यन्तस्तेहवदियर्थ । ८ कपोत-मियुतम् । ९ गलितमोहमिति ज्ञान्ता । गम्यान्व-न०, अ०, प०, इ० । १० निखिननामाश्रमम् । ११ निजपूर्वजन्मनाम । १२ सुकान्ताद्योऽह-न० । १३ विधेयानुब्रूयान् । १४ जयकुमारसनावर्तितानाम् । सपत्न्यादीनाम् । १५ आतनिवेदात् निक्षामगृहीत्वा निगंत्य गतचारणादिगोपकथाम् । १६ जयकुमारे ।

तदा मुनेर्गृहाद् भिक्षां त्यक्त्वा गमनकारणम् । अज्ञात्वा भूपते^१ प्रदनाद् 'आहामितमति'^२ श्रुतम्^३ ॥६३॥
 विषयेऽस्मिन्^४ खगदमाभूत्प्रत्यासन्नं^५ यन महत् । अस्ति धान्यकमालाख्यं तदभ्यर्षं^६ पुरं परम् ॥६४॥
 शोभानगरमस्यैशः^७ प्रजापालमहीपति । देवश्रीस्तस्य देव्यासीत् सुखदा शौरियापरा ॥६५॥
 शक्तिवेणोऽस्य^८ 'सामन्तस्तस्याभूत् प्रीतिदायिनी । अटवीश्रीस्तयोः^९ सत्यदेवः सूनुरिभे^{१०} समम् ॥६६॥
 सर्वेऽप्यासन्नमभ्यत्वाद् अस्मत्परा^{११} 'दत्तमाश्रयात् । श्रुत्वा धर्मं नृपेणामा समापन्वयमासयोः ॥६७॥
 त्यागं पर्वोपवासं च शक्तिवेणोऽपि भक्तिमान् । मुनिबेलात्यये^{१२} भुक्तिम्^{१३} ध्रुवहीत् स गृहिव्रतम् ॥६८॥
 'सत्यत्नो^{१४} शुक्लपक्षादिदिनेऽष्टम्यामवापरे । पक्षे^{१५} पञ्चतमास्त्यागम् आहारस्य समग्रहीत् ॥६९॥
 अनुप्रवृद्धकल्याणनामवेयमुपोषितम्^{१६} । सत्यदेवश्च साधुना^{१७} स्तवनं प्रत्यपद्यत्^{१८} ॥७०॥
 इत्यभूत्तमो श्रद्धाविहीनव्रतभूषणा । स मृणालवतीं नेतुं कदाचिदटवीश्रियम् ॥७१॥
 पितो^{१९} पुरो^{२०} प्रवृत्तः सन् शक्तिवेणुः ससंग्यकः । दत्ते धान्यकमालाख्ये प्राप्य सर्वसरोवरम् ॥७२॥
 निविष्टवानिदं धाम्यत् प्रकृतं तत्र कथ्यते । पतिम् मृणालवत्याख्यनगर्यां धरणीपतिम्^{२१} ॥७३॥

जानती हूँ, मुनिये ॥९१-९२॥ उस समय वे मुनि आहार छोड़कर सेठके घरसे चले गये थे । जब राजाको उनके इस तरह चले जानेका कारण मालूम नहीं हुआ तब उसने अमितमति गणिनी (आर्यिका) से पूछा । अमितमतिये भी जैसा सुना था वैसा वह कहने लगी ॥९३॥

इसी पुष्कलावती देशमे विजयार्ध पर्वतके निकट एक 'धान्यकमाल' नामका बड़ा भारी वन है और उस वनके पास ही शोभानगर नामका एक बड़ा नगर है । उस नगरका स्वामी राजा प्रजापाल था और उसकी स्त्रीका नाम था देवश्री । वह देवश्री दूसरी लक्ष्मीके समान सुख देनेवाली थी ॥९४-९५॥ राजा प्रजापालके एक शक्तिपेण नामका सामन्त था, उसकी प्रीति उत्तम करनेवाली अटवीश्री नामकी स्त्री थी । उन दोनोंके सत्यदेव नामका पुत्र था । किसी समय निवृत्तभव्य होनेके कारण इन सभीने मेरे चरणोके आश्रयसे धर्मका उपदेश सुना । राजा भी इनके साथ था । उपदेश सुनकर सभीने मद्य-मांसका त्याग किया और पर्वके दिन उपवास करनेका नियम लिया । भक्ति करनेवाले शक्तिपेणने भी गृहस्थके व्रत धारण किये और साथमें यह नियम लिया कि मैं मुनियोके भोजन करनेका समय टालकर भोजन करूंगा ॥९६-९८॥ शक्तिपेणकी स्त्री अटवीश्रीने पांच वर्ष तक शुक्ल पक्षका प्रथम दिन और कृष्णपक्षकी अष्टमीको आहार त्याग करनेका नियम किया, अनुप्रवृद्ध कल्याण नामका उपवास व्रत ग्रहण किया तथा सत्यदेवने भी साधुओके स्तवन करनेका नियम लिया ॥९९-१००॥ इस प्रकार ये सब सम्यग्दर्शनके विना ही व्रतरूप आभूषणको धारण करनेवाले हो गये । किसी एक दिन सेनापति शक्तिपेण अपनी सेनाके साथ अटवीश्रीको लेनेके लिये उससे माना-पिताकी नगरी मृणालवतीको गया था । वहाँसे लौटते समय वह धान्यकमाल नामके वनमें सर्वसरोवरके समीप ठहरा । उसी समय एक दूसरी घटना हुई जो इस प्रकार वही जाती है ।

१ तोरणमस्य । २ शक्ति । ३ अमितमत्यापिना । ४ दत्तं चारणमुनिनिषेधे आर्षणम् । ५ पुत्रप्राप्तयाम् । ६ विप्रपादं विरिणमोषम् । ७ समीपे । ८ नगरस्य । ९ नायकः । १० सत्यदेव-
 नामा स्त्रीरनुभव मन्त्रात् । ११ इमे सर्वे देवधीदेव्यादय गम धर्मं श्रुतेति सम्पद्य । १२ शक्ति-
 गणिनामन्वयनाश्रयात् । १३ मुनिप्राप्तात् अतिमाने गति । १४ आहार स्त्रीसरोणीनि वनम् ।
 १५ अष्टम्यादिदिनेषु । १६ अनुप्रवृद्धकल्याणनामवेयमुपोषितम् । १७ अष्टम्यादिदिनेषु । १८ पञ्चवर्षाणि ।
 १९ उपासकस्य समग्रहीत् । २० परमपिण्डा स्तोत्रम् । २१ मृगीवत् । २२ मृगीवत् । २३ मृगीवत् ।

सुकेतुन्तः^१ बंधुदेशानुजौ रतिवर्मन । भवद्वैतौग्मवत्तस्य विदुष्यः कनकधियाम्^२ ॥१०४॥
 तनैव^३ दुष्टिना^४ ज्ञाना श्रीदत्तस्मतिवत्तना । विमतादिधियात्वाता रतिवेगात्पया सती ॥१०५॥
 सुखान्तोऽगोसं देवेष्टजिनदत्तामुतोऽग्नि । भवदेवस्य दुर्बंत्या^५ दुर्मुखात्पोऽप्यभ्रायत ॥१०६॥
 स एव ब्रह्म^६ सावज्यं रतिवेगा मित्रशुकः^७ । वागिन्द्रार्थं गत्^८ स्तान्मानानाम्^९ इति सा^{१०} तदा ॥१०७॥
 मानापिनृष्या प्रादायि^{११} सुखान्ताय वृत्तेजने । देशान्तरान् सत्रागत्य तदानींश्रवणाद् भूभाम् ॥१०८॥
 दुर्मुखं वृषिते भीत्वा तदानीं तदनुवरम्^{१२} । ब्रजित्ना^{१३} शक्तिपेणस्य शरणं समुपागतम्^{१४} ॥१०९॥
 तदुर्मुखोऽपि^{१५} निबन्धाद् अनृगन्म्य^{१६} वधुवरम् । शक्तिपेणभयाद् बद्धवरो निववृत्ते^{१७} तत^{१८} ॥११०॥
 तत्रैतन्म^{१९} विपश्चारणद्वन्द्वाय समापुष्य^{२०} । शक्तिपेणी ददावन्न धारयेयं^{२१} पदजम्बतः ॥१११॥
 तत्रैवागत्य सायंसौ^{२२} निविष्टो बहुभिः सह । विभुनेष्टदत्तात्पयः श्रेष्ठो भार्यात्स्य धारिणी ॥११२॥
 मन्त्रिणस्तस्य^{२३} भूतायं शकृनि समूहस्पति । धन्वन्तरिश्च चत्वारः सर्वे शास्त्रविदारवा ॥११३॥
 एभि परिवृत्तः श्रेष्ठो हीनाऽग्नौ^{२४} कञ्चिद्वदायनम् । समीपयन् वृत्तो हेतोर्गान्तोऽग्निमिति^{२५} तान् जगौ ॥११४॥

मृगालवती नगरीका राजा धरणीपति था । उसी नगरीमें सुकेतु नामका एक सेठ रहता था जो कि रतिवर्मन्का पुत्र था । सुकेतुकी स्त्रीका नाम कनकधरी था और उन दोनोंके एक भवदत्त नामका पुण्यहीन पुत्र था ॥१०१-१०८॥ उसी नगरमें एक श्रीदत्त सेठ थे । उनकी स्त्रीका नाम था विमलश्री और उनके दोनोंके अत्यन्त प्यारी रतिवेगा नामकी सती पुत्री थी ॥१०५॥ उसी नगरके अगोत्रदेव सेठ और जिनदत्ता नामकी उनकी स्त्रीमें पैदा हुआ मुकान्त नामका एक पुत्र था । जिसका वर्णन ऊपर कर आये हैं ऐसा भवदेव बड़ा दुराचारी था और उस दुराचारीपनके कारण ही उसका दूसरा नाम दुर्मुख भी हो गया था ॥१०६॥ वह भवदेव धन उपार्जनकर रतिवेगाके साथ विवाह करना चाहता था इसलिये व्यापारके निमित्त वह बाहर गया था, परन्तु जब वह त्रिवाहने अवसर तक नहीं आया तब माता पिताने वह कन्या अत्यन्त तेजस्वी मुनान्तके त्रिये दे दी । जब दुर्मुख (भवदेव) देशान्तरसे लौटकर आया और रतिवेगाके विवाहकी बात सुनी तब वह बहुत ही कृपित हुआ । उसने घरने बधू और बर दोनो ही भाग्यन्तर शक्तिपेणकी शरणमें पहुँचे ॥१०७-१०९॥ दुर्मुखने भी हठमें बधू और बरका पीछा किया परन्तु शक्तिपेणके घरमें अपना बर अपने ही मनमें रखकर वहाने लौट गया ॥११०॥ शक्तिपेणने वहा पवारे हुए दो चारण मुनियोंके लिये अपने आगामी जन्मके कलेत्राके समान आहार दान दिया था ॥१११॥ उसी नरोत्तरके समीप धनी और मव मवके स्वामी मेरुवदत्त नामका सेठ बहुत लोगोके साथ बाहर ठहरा हुआ था । उसकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उस सेठके चार मन्त्री थे— १ भूतायं, २ शकृनि, ३ वृहस्पति और ४ धन्वन्तरि । ये चारो ही मन्त्री अपने अपने शास्त्रोंमें पण्डित थे ॥११२-११३॥ एक दिन सेठ इन मन्त्रोंके धिय हुआ

- १ मृगान्तवयाम् । २ कणिकमुन्मयम् । ३ कनकधिय । ४ श्रीदत्तविमलश्रीयो । ५ पुत्री । ६ अशोकदेवस्य त्रिषत्तमाया त्रिषत्तमाया सुत । ७ दुर्मुख इति नामान्तरमपि । ८ सुमुख स्वमातुः श्रीदत्त रतिवेगा दाचितपान् । मातुलो भगिनवान् स्व व्यवसायहीनो न ददामीति । दुर्मुखोऽजीवन्-यावदहं दीप्तान्तरस्य ब्रह्मसावज्यमिच्छामि तत्रान् रतिवेगा वसुषि न दानव्या इति द्वादशवर्षाणि वानावधि ददा । ९ धनमर्ज-पिथा । १० गृहीतुमिच्छ । ११ इतद्वादशवर्षादि सत्रागान् । १२ नागत । १३ रतिवेगा । १४ दीपये-स्य । १५ सुखान्तरतिवेगाद्वयम् । १६ गत्वा । १७ समुपाययन् । १८ अत्रिच्छेदेन । १९ पृच्छतो गत्वा । १९ व्यापृष्टितवान् । २० सर्वसरोवरस्वित्तशक्तिपेणधिविरान् । २१ सर्वसरोवरे । २२ गणधारण । २३ वागपय । समीपये ज०, द०, व०, म०, प०, स० । २४ सवन्म् । २५ कणिकमधायिप । २६ मेरु-वदत्तस्य । २७ विराजाययन्म् । २८ इति पृष्टवान् त श्रुष्टिाम् ।

शकुनि शकुनाद् दुष्टाद् प्रहात्पापाद् बृहस्पति । धन्वन्तरिस्त्रिदोषेभ्यो जन्मनोति समादिशत् ॥१११॥
 भूतार्थस्त्वस्तु तत्सर्वं कर्म हिंसाद्युपाजितम् । प्रधानकारण तेन हीनाङ्गम् इति सूतवान् ॥११२॥
 शक्तिपेणमहीपालप्रतिपन्नजुज पिता । सत्यदेवस्य दृष्ट्वाऽस्मिस्तमन्विष्यन् दृच्छया ॥११३॥
 तदा कृत्वा महद्दुःखं सभ्यं राकण्यतामिदम् । च्युत पयोऽतिपाकेन भाजनात्तण्डुलानपि ॥११४॥
 भक्ष्यमाणान् कपोताद्यं पश्येत्सृष्णीमय स्थित । क्रोधान्मातुः कनीपस्यां भर्त्सनादागतोऽहम् ॥
 श्रयस्ताद् बभ्रविवर घ्राणस्येति तदप्ययम् । क्षमते नेति सर्वेषां तदकर्मण्यतां ब्रुवन् ॥१२०॥
 गन्तुं सहात्मनां तस्यानभिलापाद् विपण्णवान् । परस्मिन्नपि भूयासं भवे ते स्नेहगोचरं ॥१२१॥
 इति कृत्वा निदानं ब्रह्मसयममाश्रित । प्रपेदे लोकपालत्वं तद्गतस्नेहमोहित ॥१२२॥
 क्वाचिच्छत्रकलपक्षस्य विनादो भायया सह । कृतोपवासया शक्तिपेणो भक्तिपुरस्सरम् ॥१२३॥
 मुनिभ्या दत्तदानेन पञ्चादशयं भवाप्तवान् । दृष्ट्वा तच्छ्रेष्ठं धारिण्यैः श्रावयोरन्यजन्मनि ॥१२४॥
 एतावत्पथे भूयास्तां निदानं कुरुतामिति । मन्त्रिणस्तस्य चत्वारोऽप्यस्तसवंपरिग्रहा ॥१२५॥

बैठा था कि इतनेमें वहा एक हीन अगवाला पुरुष आया । उसे देखकर सेठने सब मन्त्रियोंसे कहा कि यह ऐसा किस कारणसे हुआ है ? ॥११४॥ इसके उत्तरमें शकुनि मनीने कहा कि जन्मके समय घुरे शकुन होनेसे यह ऐसा हुआ है ? बृहस्पतिने कहा कि जन्मके समय दुष्ट ग्रहोंके पडनेसे यह हीनाग हुआ है और धन्वन्तरिने कहा कि जन्मके समय वात पित्त कफ इन तीन दोषोंके कारण यह विकलाग हो गया है । यह सुनकर भूतार्थ नामक मन्त्रीने कहा कि आप यह सब रहने दीजिये, इस जीवने पूर्वभ्रममें हिंसा आदिके द्वारा जो कर्म उपाजन किये थे वे ही इसके हीनाग होनेमें प्रधान कारण हैं ॥११५-११६॥ इतनेमें ही शक्तिपेण सेनापतिने जिसे अपना पुत्र स्वीकार किया है ऐसे उम सत्यदेवका पिता अपनी इच्छानुसार उसे खोजता हुआ आ पहुँचा । उम हीनाग पुत्रको देखकर उसे बहुत ही दुःख हुआ और वह कहने लगा कि हे सभासदो, गृहो, एक दिन घरमें चावल पक रहे थे सो पानीके उफानके कारण कुछ चावल बर्तनसे नीचे गिर गये और उन नीचे गिरे हुए चावलोंको बघूतर आदि पक्षी चुगने लगे परन्तु यह सब देखता हुआ चुनचाप गड़ा रहा—इतने उन्हें भगाया नहीं । तब इसकी माकी छोटी बहिनने प्रोषते इमें टाटा, उम टाटको न मह मकनेके कारण ही यह यहा चला आया है । यह इतना अशक्त-नील है कि 'तेरी नाकके नीचे मूँट्वा छेद है' इस बातको भी नहीं सह सकता है । इस तरह सब नमामदोने उमने पिताने उमकी अवमण्यताका वर्णन किया । चूँकि सत्यदेव अपने पिताके साथ वापिस नहीं जाना चाहता था इसलिये उमने दुःखी होकर निदान किया कि 'अगले भ्रममें भी मैं तेरे स्नेहका पात्र हूँ' उम प्रकार निदान कर वह ब्रह्मलिङ्गी मुनि हो गया और सत्यदेवके प्रेममें मोहित होकर भग जिगमे लोकपाल हुआ ॥११७-१२२॥ किन्ती एक समय सुन-पक्षी प्रतिदिन दिन शक्तिपेणने उपवास करनेवाली अपनी स्त्री अटवीश्रीने साथ साथ भक्तिपूर्वक ही मुनियोंसे आहारदान देकर पञ्चादशयं प्राप्त किये, उम देगवर भेट भेरादत्त और उमकी स्त्री पाणिनीने निदान किया कि 'ये दोनों अगले जन्ममें हमारी ही गतान हों' सेठ मंत्र-

१ कर्मवर्णन । २ विकलागो जन इति । ३ गुष्टं प्रोक्तवान् । ४ शक्तिपेणतामयामनोत्तमं मम पुत्र इति श्रुत्वात्पुत्राय । ५ कपोतामज्जात । ६ सत्यदेवोऽहम् । ७ सत्यदेवस्य कर्मण-
 ८ कर्मणम् । ९ सत्यदेवोऽहम् । १० भक्तिता । ११ धर्मताम् । १२ गणाजनात् । १३ मत् सत्यदेवस्य कर्मण-
 १४ कर्मणम् । १५ सत्यदेवोऽहम् । १६ आनिगताम् । १७ भवेयम् । १८ स्नेहोऽहम् ।
 १९, २०, २१ सत्यदेव । २२ साहाय्यताय देवत्वम् । २३-गुण्यम् । २४ दत्तात्पञ्चादशयं ।
 २५ सत्यदेवस्य कर्मणम् । २६ सत्यदेवस्य कर्मणम् । २७ पुत्री । २८ अटवीश्री । २९ मन्त्रवर्णनम् ।

तपो विधाय कालान्ते समापन् लोकपालनाम् । वपुर् १ च दानानामोदुपुष्पमाप्तवन् ॥१२६॥
 'तदाकर्म्यं महीदास्य' देवीं वसुमती तदा । स्वजन्मांतर २ सम्बोधमूर्च्छान्तरबोधिता ॥१२७॥
 ग्रहं पूर्वोक्तं ३ देवधीस्तत्रसादादिमा धियम् । प्राप्ता ४ तदातनो राजा ॥ वर क्वाद्य प्रवर्तते ॥१२८॥
 इति तस्याः परिप्रश्ने स प्रजापालभूपतिः । 'लोकपालोऽयमिन्द्रियुक्ते प्रियदत्ता स्वपूर्वंतम् ॥१२९॥
 जन्मावबुद्ध्यं चन्दित्वा साष्टवीथीरियं त्यजम् । शक्तिपेणो मम प्रेयान् श्रमो क्वाद्य प्रवर्तते ॥१३०॥
 इति ५ पूष्टाज्वदच्छक्तिपेणस्ते ६ ज्यं ७ मनोरमः ८ । ९ कुबेरदयिनः सत्यदेवोऽमृतनुजस्तव ॥१३१॥
 देवभूयं ६ गताः श्रेष्ठिमचिवास्तवत्पने ७ भूदम् । ८ आरम्य जन्मनः स्नेहान् परिचर्यां प्रवृत्ते ॥१३२॥
 कुबेरदयितस्यापि पिता प्राच्यः ९ स सत्यवः । पाता १० गन्धनरस्यादथ पुष्पान् स्निह्यन्नि देहितः ॥१३३॥
 भवदेवेन ११ निर्दग्धं द्विजावैतो १२ वपुर्वरम् । सायेंशो १३ धारिणो चेह १४ प्युस्ते १५ पितरायिनो १६ ॥१३४॥

दत्तके चारों मंत्रियोंने मंत्र पत्रग्रहका परित्याग कर तप धारण किया और आयुके अन्तमें लोकपालकी पर्याय प्राप्त की । इसी प्रकार मुकान्त और रतिवेगा नामके वपु-वरने भी दानकी अनुमोदना करनेमें प्राप्त हुआ बहुत भारी पुष्प प्राप्त किया ॥१२६-१२६॥ यह मंत्र मुनकर राजा लोकपालकी रानी वसुमतीको अपने पूर्वजन्मकी मंत्र दान याद आ गई जिनमें वह मूर्च्छित हो गई और मन्त्र होनेपर अमितमति आधिकारमें कहने लगी कि मैं पूर्वजन्ममें शोभानगरके राजा प्रजापालकी रानी देवधी थी, आपके प्रसादमें ही मैं इस लक्ष्मीको प्राप्त हुई हूँ, मेरे उम जन्मके पति राजा प्रजापाल आज कहाँ है ? यह कहिये ॥१२७-१२८॥ इस प्रकार वसुमतीका प्रश्न समाप्त होनेपर अमितमति आधिकारमें कहा कि यह लोकपाल ही पूर्वजन्मका प्रजापाल राजा है । इतना कहते ही प्रियदत्ताको भी अपने पूर्वजन्मकी याद आ गई । उसने आधिकारको बन्दना कर कहा कि शक्तिपेणकी स्त्री अष्टवीथी तो मैं ही हूँ, कहिये मेरा पति शक्तिपेण आज कहाँ है ? इस प्रकार पूष्टा जानेपर अमितमतिने कहा कि यह तेरा पति कुबेरकान्त ही उम जन्मका शक्तिपेण है और यह कुबेरदयित ही उम जन्मका मरुदेव है जो कि तुम्हारा पुत्र हुआ है । मेठ मेरुदत्तके जो भूतार्थ आदि चार मंत्री वे वे देवपर्यायको प्राप्त हो स्नेहके कारण जन्ममें ही लेकर तुम्हारे पतिकी भारी सेवा कर रहे हैं—वामपेनु और वस्यवृक्ष बनकर सेवा कर रहे हैं ॥१२९-१३०॥ कुबेरदयितका पूर्व जन्मका पिता सत्य भी देव होकर उनकी रक्षा करता है नो ठीक ही है क्योंकि पुष्पके प्रभावमें दूसरी गतिमें रहनेवाले जीव भी स्नेह करने लग जाते हैं ॥१३१॥ भवदेवने पूर्वजन्म वपु-वर (रतिवेगा और मुकान्त) को जन्म दिया था इनलिये वे दोनों ही मरकर ये वपु-वर-वपु-वरी हुए हैं । मेठ मेरुदत्त और

१ लोकपालगुल्फम् । २ मुकान्तपरिवेगिति मिमुनम् । ३ प्राप्ताम् । ४ पुष्पम् । प्राप्तामिन्द्रियु-
 वचनम् । ५ प्रजापालपुत्रविरापासत्य । ६ नायां कुबेरदयितस्य, धीवी वसुमती । ७ गिबनकात्परिजातव्रत ।
 ८ शोभानगरपरिव्रजासतमहीरतेमार्वा देवधीः । ९ हे अमितमत्पारिषे, मरुदत्तात् । १० प्राप्ता-
 पयम् । ११ शोभानगरपरिव्रजासतमव इत्यपः । १२ तस भर्ता लोकपालः । १३ आदित्यः ।
 १४ तप नियदत्तायाः । १५ पुत्रोऽर्थः । १६ कुबेरकान्तः । १७ शक्तिपेणस्य स्त्रीऽत्रतुवः । कुबेरदयि-
 त्ति तत्र पुत्रोऽनुविति गन्धन्यः । १८ वचनम् । १९ तस भर्तुः कुबेरकान्तस्य । २० जननानामरुदस्य
 वामपेनुपुत्रमिति धनोर्गोसास्यवां कर्तते । २१ पूर्वजन्मस्यव्यतिरिक्ता कृपणः । २२ एतावन्तम् ।
 २३ रतिवर्षमनवधिसं. मृता भवदेव । शोभात् शक्तिपेणकान्तारोऽन निर्दग्ध वपुर्वरं मुकान्तपरि-
 वेगोऽप्यम् । २४ कर्णोऽभिमानवृत्तानिति गन्धन्यः । २५ मरुदत्तः । २६ मर्त्यां पुष्पान् । पुष्पपरिष्याम् ।
 २७ तस भर्तुः कुबेरकान्तस्य । २८ कुबेरदयितवचनपी ।

इत्युक्त्वा 'सेदमप्याह' 'खपाचलसमीपगे । यसन्तो' धारणायद्री मुनी मलयकाञ्चने ॥१३५॥
 पूर्व' वननिवेशे' तो भिक्षार्थं समुपागतौ । तय पुत्रसमुत्पत्तिम् उपदिदय गतो ततः १३६॥
 अन्वेष्येवंसुधारादिहेतुभूती फपोतकौ । दृष्ट्या सकदणौ भिक्षाम् अनादाय धनं गतौ ॥१३७॥
 गुर्वोगु' स्तवं यु'ययो' उपयाती 'तयोरिदम् । उपदेशात् समाकर्म्यं सर्वमुक्तं यथाश्रुतम्' ॥१३८॥
 इति तेऽमितमरुवृक्षकथावगमतत्परा' १० । स्वहृषं संसृतेः सम्पद् मुहुर्मुहुर्भवयन् ॥१३९॥
 एव प्रयाति कालेऽसौ प्रियदत्ता प्रसङ्गतः । यशस्वतीगुणवत्यौ युवाभ्या येन हेतुना ॥१४०॥
 इय दीक्षा गृहीतेति पप्रच्छोत्पन्नकौतुका । ते' च तत्कारणं स्पष्टं यथावृत्तमवोचताम्' ॥१४१॥
 ततो धनवती' दीक्षा गणिन्या' सन्निधौ ययौ । माता' भूवेरसेना च तयोरायिकयोर्द्वयोः ॥१४२॥
 तावप्येषुः कपोतो च प्रामान्तरमुपाश्रितौ' । तण्डुलाद्युपयोगाय' समर्पितप्रबोद्धितौ' ॥१४३॥
 'भवदेवद्वरेणानुबद्धद्वरेण पापिना । दृष्टमात्रोत्पत्तिकोपेन' मारितौ पुरुदंशास' ॥१४४॥
 तद्राष्ट्रविजयादंस्त्य दक्षिणश्रेणिमाश्रिते । गन्धारविषयोः शीरवत्याख्यनगरेऽधिपः ॥१४५॥

उनकी स्त्री धारिणी यहां तेरे पति कुबेरकान्तके माता पिता हुए हैं ॥१३४॥ इतना कहकर
 अमितमति यह भी कहने लगी कि विजयाधर्म पर्वतके समीप मलयकाचन नामके पर्वतपर
 दो मुनिराज रहते थे, जब पूर्वजन्ममे शक्तिपेण सर्पसरोवरके समीप डेरा डालकर वनमें ठहरा
 हुआ था तब वे भिक्षाके लिये तेरे यहां आये थे और तेरे अगुलियोंके इगारेसे पांच पुत्र तथा
 एक पुत्री होगी ऐसा कहकर चले गये थे । तदनन्तर रत्नवृष्टि आदि पचासचर्योंके कारण स्वरूप
 वे मुनिराज इस जन्ममे भी किसी समय तेरे घर आये थे परन्तु कबूतर-कबूतरीको देखकर दया-
 युक्त हो बिना भिक्षा लिये ही वनको लौट गये थे । वे ही तेरे पिता और तेरे पतिके गुरु हुए हैं ।
 उन्हींके उपदेशसे मैंने यह सब सुनकर अनुक्रमसे कहा है ॥१३५-१३८॥ इस प्रकार जो पुरुष
 अमितमति आर्थिकाके द्वारा कहीं हुई कथाके सुननेमे तल्लीन हो रहें थे वे ससारके सच्चे स्वरूप
 का बार-बार चिन्तन करने लगे ॥१३९॥ इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होनेपर किसी दिन
 प्रियदत्ताने प्रसङ्ग पाकर यज्ञस्वरी और गुणवतीमे पूछा कि आप लोगोंने यह दीक्षा किस कारण
 ग्रहण की है? मुझे यह जाननेका कौतुक हो रहा है । तब उन दोनोंने स्पष्ट रूपसे अपनी दीक्षा-
 का कारण बतला दिया ॥१४०-१४१॥ तदनन्तर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवतीने तबकी
 स्वामिनी अमितमतिके पास दीक्षा धारण कर ली और उन दोनों आर्थिकाओकी माता कुबेर-
 सेनाने भी अपनी पुत्रीके समीप दीक्षा धारण की ॥१४२॥

किसी एक दिन यमराजके द्वारा प्रेरित हुए ही क्या मानो वे दोनों कबूतर-कबूतरी
 चावल चुगनेके लिये किसी दूसरे गाव गये । वहां एक खिलाव था जो कि भवदेवका जीव था ।
 उम पापीको पूर्व जन्मम बंधे हुए वैरके कारण कबूतर-कबूतरीको देखते ही पापकी भावना
 जागृत हो उठी और उसने उन दोनोंको मार डाला ॥१४३-१४४॥ उसी पुच्छलावती
 देशके विजयाधर्म पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक गन्धार नामका देश है और उसमें उशीरवती

१ अमितमत्यापिना । २ विजयाद्वर्षत । ३ निवसन्ती । ४ शक्तिपेणाटवीश्रीभवे । ५ सर्प-
 सरोवरनिवेशे । ६ भूवेरमित्रगमुद्रदत्तयो । ७ भूवेरान्तप्रियदत्तयो गुप्तवमुपाती यो द्वौ तयोरेव
 धारणयो । ८ यथाश्रुतम् त० । ९ लोतपालादाय । १० परिजाने रता । ११ यशस्वतीगुणवत्यौ ।
 १२ मम मानुषभूवेरदत्ताद् विविमनदयपूर्वभोजनासाभाज्जातलज्जया तपो गृहीनम् । १३ भूवेरमित्रस्य
 भार्या । १४ अमितम'याविराया । १५ जगत्पालचन्द्रवतिपुत्र्योरमितमत्यनन्मत्योर्जननी । १६ जम्बू-
 पापम् । १७ मशगाव । १८ अन्तःप्रेरितौ । १९ पूर्वधिमन् भवदेवो । २० पापेन त० ।
 २१ जम्बूपापम् वदन्तीनास्यगाश्रीरेण ।

आदित्यगतिरस्याभोग्महादेवो शशिप्रभा । तयोर्हिरण्यवर्मात्स्य । मुनो रतिवरोऽनवत् ॥१४६॥
 तस्मिन्नेवोत्तरश्रेण्यां गौरीविषयविद्युते । पुरे भोगपुरे वायुर्यो विद्यापराधिपः ॥१४७॥
 तस्य स्वयंप्रभादेव्या रतियेना^१ प्रभावती । बभूव जैनप्रमांसोऽप्यभ्युद्धरति देहिः ॥१४८॥
 माता पिताग्नि या यद्व सृजान्तरनिवेगयोः । जन्मव्यस्तिन् विज्ञान्ता चित्रं तावदेवं संनृतिः ॥१४९॥
 हा मे प्रभावतीयाह जयश्चेत् सन्तुतोचनः^२ । स्वपदिवर्णनं तस्याः कि पुनः त्रिवने पृथक् ॥१५०॥
 यौवनैतं समाक्रान्ता कन्या दृष्ट्वा प्रभावतीम् । इत्थं देयेयमित्याह खगोशो मन्त्रिप्रभस्तवः (ततः) ॥१५१॥
 शशिप्रभा^३ स्वना देव्या^४ गानादित्यगतिस्तया^५ । परे च सच्चरानोगाः प्रोत्थाऽप्याचन्त बन्धवाम् ॥१५२॥
 ततः स्वयंबरो युक्तो विरोचस्तत्र वैचित्रिन् । इत्यभाषन्त निदिविष्य 'तद्भूपोऽप्यभ्युपागमत्' ॥१५३॥
 ततः सर्वेऽपि तद्द्वान्तर्कणनादागमन् वराः । वमप्येतेषु सा कन्या नाग्रहोद् रत्नमाप्तया ॥१५४॥
 मानापिनुभ्यां तद् दृष्ट्वा सन्मुष्टा प्रियकारिणी^६ । यो जयेद् गतियुद्धे मा माता मयोऽन्याम्यहम् ॥१५५॥
 कण्ठे तस्वेति वक्त्रेया प्रागित्याह सती तयोः^७ । श्रुत्वा तत्र दिने सर्वानुचिन्तया व्यसर्जयन् ॥१५६॥

नामकी एक नगरी है । उनके राजा थे आदित्यगति और उनकी रानीका नाम था शशिप्रभा । रतिवर कबूतर मरकर उन दोनोंके हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ ॥१४६-१४६॥ उसी विजयावं पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गौरी नामका देश है उनसे भोगपुर नामसे प्रसिद्ध नगरमें विद्यापरोका स्वामी राजा वायुर्य राज्य करना था । उनकी स्वयप्रभा नामकी रानी थी । रतियेना कबूतरी मरकर उन्हीं दोनोंको प्रभावती नामकी पुत्री हुई सो ठीक ही है क्योंकि जैनधर्मका एक अंग भी प्राणियोंका उद्धार कर देता है ॥१४७-१४८॥ नृरत्न और रति-वेगाके जो पहले माता-पिता थे वे ही इस जन्ममें भी माता-पिता हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि यह संसार बड़ा ही विचित्र है । भावार्थ—सुकान्तके पूर्वजन्मके माता-पिता अशोक और जिनदत्ता इस भवमें आदित्यगति और शशिप्रभा हुए हैं तथा रतिवेगाके पूर्वजन्मके माता-पिता विमलश्री और श्रीदत्ता इन भवमें वायुर्य तथा स्वयंप्रभा हुए हैं ॥१४९॥ जब जयकुमारने मुलुकिनाके नाय बेटकर 'हा मेरी प्रभावती' ऐसा कहा तब फिर उनके रूप आदिका वर्णन अलगसे क्या किया जाय ? ॥१५०॥ प्रभावती कन्याको यौवनमें सम्पन्न देवतर विद्यापरोके अधिपति वायुर्यने अपने मन्त्रियोंमें कहा कि यह कन्या विने देनी चाहिये ? ॥१५१॥

मन्त्रियोंने परस्परमें निश्चय कर कहा कि 'शशिप्रभा आपकी वहिन है, और आदित्यगति आपकी पट्टराजीका भाई है । ये दोनों तथा इनके मित्र और भी अनेक विद्यापरा राजा बड़े प्रेममें कन्याकी याचना कर रहे हैं इसलिये स्वयंवर करना ठीक होगा क्योंकि ऐसा करनेमें किसीके साथ विरोध नहीं होगा । मन्त्रियोंकी यह बात राजाने भी स्वीकार की ॥१५२-१५३॥ तदनन्तर स्वयंवरकी बात मरकर मंत्री राजकुमार आये परन्तु कन्या प्रभावतीने इन सबमें से किसीको भी स्तनमात्रके द्वारा स्वीकार नहीं किया—जिसके भी गयेमें स्तनमात्रा नहीं टाली ॥१५४॥ यह देवतर माता-पिताने उनकी सारी प्रियकारिणीमें इनका वारण पूठा, सखीने उन दोनोंमें कहा कि यह पहले कहती थी कि 'जो मुझे गतियुद्धमें जीतेगा मैं उसीके गयेमें मात्रा टारूंगी' यह सुनकर राजाने उन दिन अवाधोग्य देवतर सबको सिद्धा किया ॥१५५-१५६॥

१ रतिवरनामकौत । २ रतियेना नाम कबूतरी । ३ श्रीदत्तविमलश्रीयो । ४ अशोकदेवजिनदत्ते । ५ अशुना वायुर्यस्वयंप्रभादेव्यो आदिचात्रिशशिप्रभे । ६ विद्यापरासुनामिति । ७ मुनोत्तदा मन्त्रि । ८ तत्र शशिप्रभेति मन्त्रिणी । ९ वायुर्यस्य तत्र भाषाणा । १० स्वयंप्रभादेव्या गाना आदिचात्रिरव गोर्नि स्वभुजाय याचितवान् इत्यर्थः । ११ एव मन्त्रि । १२ तदास्मिन्पनुमन्त्रिमनोत् । १३ कन्यायाः सती । १४ वायुर्यस्यवस्त्रप्रभयो ।

अग्रेद्यु लचराभीशो घोषयित्वा^१ स्वयवरम् । सिद्धकूटाएवचैत्यालयस्य मालां पुरस्थिताम् ॥१५७॥
 अपातयन्महामेघं^२ त्रि परोत्थ महोत्तलम् । अस्पृष्टा लचरा वेधिसां प्रहीतुमनोदवरा ॥१५८॥
 त्रया गता समादाय प्रभावत्या यिनिजिता । समो ननु न मृत्युश्च मानभट्टनेन मानिनाम् ॥१५९॥
 ततो हिरण्यवर्मायाद् गतियुद्धविशारद । मालामासञ्जयामास^३ तत्कण्ठे तेषां निजिता ॥१६०॥
 तयो जन्मान्तरस्त्रेहसमृद्धसुखसम्पदा । काले गच्छति कस्मिंश्च (चित्) यपोतद्वयदर्शनात् ॥१६१॥
 ज्ञातप्राग्भवसम्बन्धा सुविरक्ता प्रभावती । स्थिताशोकाकुलैकेव^४ चिन्तयन्ती निमग्नयो ॥१६२॥
 हिरण्यवर्मणा ज्ञातजन्मना लिखित स्फुटम् । पट्टक प्रियकारिण्या^५ हस्ते^६ समयलोष्य तम् ॥१६३॥
 क्व लब्धमिदमित्याख्यत् प्राह सापि प्रियेण ते । लिखित चेटवस्तस्य^७ सुकान्तो मे समर्पयत् ॥१६४॥
 इति तद्वचन श्रुत्वा स्वयमप्यात्मवृत्तवम् । प्रावतन^८ पट्टके तस्या लिखित्वाऽसौ^९ करे ददौ ॥१६५॥
 तद्विलोक्य कुमारोऽभूत् प्रभावत्या प्रसक्तधी । साऽपि तस्मिन् तयो प्रीति प्रावतन्या^{१०} द्वि^{११}गुणाऽभवत्^{१२}
 सम्भूय बाण्धवा सर्वं कल्याणाभिपद्य तयो । अक्रूर्यन्निव कल्याण द्वितीय ते चिकीर्षव ॥१६६॥
 दशम्या^{१३} सिद्धकूटाप्रे स्नानपूजाविधौ^{१४} सुवित्^{१५} । हिरण्यवर्मणा बोध्य परमावधिचारण ॥१६७॥

दूसरे दिन राजाने स्वयवरकी घोषणा कराकर कहा कि 'एक माला सिद्धकूट नामक चैत्यालयके द्वारसे नीचे छोड़ी जायगी' जो कोई विद्याधर माला छोड़नेके बाद महामेघ पर्वतकी तीन प्रदक्षिणाए देकर प्रभावतीके पहले उसे जमीनपर पड़नेके पहले ही ल लेगा वही इसका पति होगा यह सुनकर बहुतसे विद्याधरोन प्रयत्न किया परन्तु पूर्वोक्त प्रकारसे माला न ले सके इसलिये प्रभावतीने हारकर लज्जित होते हुए चले गये सो ठीक ही है क्योंकि मृत्यु भी अभिमानी लोगो के मानभग की बराबरी नहीं कर सकती है ॥१५७-१५९॥ तदनन्तर गतियुद्ध करनेमें चतुर हिरण्यवर्मा आया और उससे हारकर प्रभावतीने वह माला उसके गलेमे डाल दी ॥१६०॥ पूर्व जन्मके स्नेहसे बढी हुई सुखरूप सम्पत्तिसे जब उन दोनोका कितना ही समय व्यतीत हो गया तब किसी एक दिन कवूतर कवूतरीका जोडा देखनेसे प्रभावतीको पूर्वभवका सम्बन्ध याद आ गया, वह विरक्त होकर शोकसे व्याकुल होती हुई अकेली बैठकर कुछ सोचने लगी ॥१६१-१६२॥ इधर हिरण्यवर्माको भी जाति स्मरण हुआ था, उसने एक पटियेपर अपने पूर्वजन्मका सब हाल साफ साफ लिखकर प्रभावतीकी सखी प्रियकारिणीको दिया था प्रभावती ने प्रियकारिणीके हाथमें वह पटिया देखकर कहा कि यह चित्रपट तुम्हे कहा मिला है ? सखीने कहा कि 'यह चित्रपट तेरे पतिने लिखा है और उनके नौकर सुकान्तने मुझे दिया है, इस प्रकार सखीके वचन सुनकर प्रभावतीने भी एक पटियेपर अपने पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त लिखकर सखी के हाथमें दिया ॥१६३-१६५॥ वह चित्रपट देखकर हिरण्यवर्मा प्रभावतीपर बहुत अनुराग करने लगा और प्रभावती भी हिरण्यवर्मापर बहुत अनुराग करने लगी, उन दोनोका प्रेम पूर्व पर्यायसे प्रेममे वही दूना हो गया था ॥१६६॥ कुटुम्बके सब लोगोने मिलकर उन दोनोका भग्याभिषेक किया मानो वे उनका दूसरा बरयाण ही करना चाहते हो ॥१६७॥ किसी समय दशमीके दिन ये दोनो सिद्धकूटके चैत्यालयमें अभिवेक पूजन आदि कर रहे थे उसी समय हिरण्य-

१ स्वयवरमिति घोषयित्वा तद्दिने व्यगजंयदिति सम्बन्ध । २ भूमौ पातयति स्म । ३ मरोस्त्रिण ५० । ४ अयात्रमिति स्म । ५ अग्रायव । ६ प्रभावत्या तस्या । ७ हस्ते स्थितम् । ८ हिरण्यवर्मण । ९ प्राग्भवम् पुण्यमिष्ये । १० प्रभावती । ११ पुरातनी । १२ आ समन्ताद् द्विगुणा । १३ विषादिनाद् दशमदिने । १४ अभिषङ्गपूजाविधौ । १५ प्रयत्नप्राप्तम् । प्रत्यक्षमानी तां १६ । १७ चिकीर्ष ५०, ५०, ६०, ६०, ६० ।

प्रभातया च पृष्टोऽमी स्व पूर्वं भवदुक्तम्^१ । अनापत मुनेश्चैवमनुग्रहप्रिया तयो ॥१६६॥
 तृतीयजन्मनोऽत्र सम्भूतां वणिजा कुलं । रतिवेगा सुकान्तश्च प्राक् मृणालवनीपुरे ॥१७०॥
 भर्तुं भार्यामित्यन्वयं^२ सम्प्राप्यारिभयाद् गतीं^३ । कृत्वानुमोदन शक्तिपणदाने सपुत्र्यते ॥१७१॥
 पारव्रतभवे चाप्य^४ धर्मं ज्ञाते युवामिति । विधाय पितरौ^५ वैश्यजन्मलोपाविहापि तौ ॥१७२॥
 तृतीयज मनो^६ युष्मद्गुरुबोह्रं^७ च सद्गता । रतिपेणपुरो पार्वं गृहीतप्रोपयादिचरन् ॥१७३॥
 जिनेन्द्रभवने भक्त्या नानोपकरणं सदा । विधाय पूजा समवापामहोहं^८ सगाधिया ॥१७४॥
 पिताह् भवदेवस्य रतिवर्माभियन्ता । भूत्वा^९ श्रीधर्मनामाञ्च सपम प्राप्य शुद्धयो ॥१७५॥
 चारणत्व नृतीयं च ज्ञान प्रापमिहेत्यद^{१०} । श्रुत्वा मुनिवचं प्रीतिमापद्येतान्तरा च तीं^{११} ॥१७६॥
 एव सुखेन यात्येषां^{१२} काले वायुरयं पुपुन् । विद्यारदं^{१३} समातोष्य स्तनयिन्^{१४} प्रतिक्षणम् ॥१७७॥
 विद्वच्च विनश्चर पश्यन् शश्वच्छाश्वतिकीं मतिम् । जनं करोति सर्वत्र दुस्तरं किमिदं तमं^{१५} ॥१७८॥
 इति यायात्म्यमात्तञ्च दत्त्वा राज्यं विरज्यं^{१६} स । मनोरथाय नैस्तस्मिन्^{१७} प्रपित्पुरभवत्तरा ॥१७९॥
 आदित्यगतिमभ्येत्य प्रीत्या सर्वेषु धान्यवा^{१८} । प्रभावनीतुना देया भवतेय रतिप्रभा ॥१८०॥

वर्माने परमावधि ज्ञानको धारण करनेवाले चारणमुनि देवे, प्रभावतीने उनसे अपने पूर्वभवना वृत्तान्त पूछा, मुनिराज भी अनुग्रह बुद्धिमे उन दोनोंके पूर्वभवना वृत्तान्त उन प्रकार कहने लगे ॥१६८-१६९॥ किं तुम दोनो इम जन्मम तीमर जन्ममें मृणालवती नगरीके वैश्य कुलमें रतिवगा तथा मुकान्त हुए थे ॥१७०॥ श्री पुरुषवा मन्वन्च पाकर तुम दोनो शत्रुके भयमे भागकर शक्तिपेणकी धारण गये थे । वहा शक्तिपेणने मुनिराजके लिये जा आहार दाल दिया था उसकी अनुमोदना कर तुम दोनोने पुण्यवच किया था, उनके बाद बचनर-बवृत्तरी के भवमें धर्म लाभकर वहा विद्याधर विद्याधरी हुए हो । तुम दोनोके वैश्य जन्मके जो माता पिता थे वे ही इन जन्मके भी तुम्हारे माता पिता हुए हैं । तीमरे जन्मके तुम्हारे माना पिता तथा मेने मिलकर एक साथ रतिपेण गुरुके समीप प्रोपय व्रत लिया था, और उनका चिरकाल तक पालन करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक अनेक उपकरणोंमे सदा पूजा की थी उसीके फलस्वरूप हम लोग वहा विद्याधर हुए हैं । मैं पूर्वभवमें रतिवर्म नामका भवदेवका पिता था, अब श्रीधर्म नामका विद्याधर हुआ हूँ, मेने शुद्ध हृदयमेंमे सवम धारणकर चारण-ऋद्धि और तीसरा अवधि ज्ञान प्राप्त किया है इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर हिरण्यवर्मा और प्रभावती दोनो ही बहुत प्रसन्न हुए ॥१७१-१७६॥

इम तरह इन सयका समय मुपमे व्यतीत हो रहा था कि किमी एक समय प्रभावतीके पिता वायुग्य विद्याधरने प्रत्येन क्षण नष्ट होनेवाला मेघ देवकर ऐना विचार किया कि यह ममस्त समार इसी प्रकार नष्ट हो जानेवाला है, फिर भी लोग इमे म्चिर च्छेनाग ममभ्रत है, यह अगानरुपी घोर जववार सत्र जगह क्यों छाया हुआ है ? इन प्रकार दयायें स्तम्भका विचारकर विरक्त हो मनोरथ नामा पुनके लिये राज्य दे दिया और न्यय निर्धन्य अवम्या धारण करनेकी इच्छा करने गये ॥१७७-१७९॥ उसी समय वायुग्यके समी भाई-वन्धुओंने बट

१ स्वपूर्व-अ०, प०, ६०, स०, ल० । २ इन्द्रिमन्वपम् । ३ भवदेवमया । ४ पत्नीपित्री । ५ प्राप्य । ६ श्रीशक्तिमन्वधिकी । अगारदकजिनदत्ते च । ७ युवका पितर । श्रीधर्मनामश्री-अगारदक-जिनदत्ता । ८ भवदेवस्य पिता रतिवर्मा । ९ ज्ञाना स्म । १० श्रीधर्मनामपितरि । ११ हिण्यव-धर्मप्रभावयो । १२ वायुरपादीनाम् । १३ विनश्चरगीतम् । १४ मेपम् । अथ तथा वागिवा-मनयिन्ब्रह्माहर् इत्यभिधानान् । १५ पुत्रमित्रतत्रपरवन्दनादिवम् । १६ अज्ञानम् । १७ विरजता नूत्वा । १८ प्राप्नुमिच्छु । १९ वायुरप्य ब-पुत्रना ।

मनोरथस्य पुत्राय कन्या चित्ररथाय सा । इत्याहु^१ सोऽप्यनुज्ञाय^२ कृत्या बन्धुविसर्जनम् ॥१८१॥
 १ हिरण्यवर्मण सर्वलगराजाभिषेचनम् । विधाय बहुभि सार्धं सम्प्राप्य मुनिपुङ्गवम् ॥१८२॥
 सयम प्रतिपन्न^३ सन् सहवापुरथ^४ स्वयम^५ । तपो द्वादशधा प्रोक्त यथाविधि समाचरत् ॥१८३॥
 इत्युक्त्वा रतिवेगाऽह रतिपेणा^६ प्रभावती । चाहमेवेति^७ सभ्याना^८ निजगाद^९ सुलोचना ॥१८४॥
 तदाकर्ण्यं जयोऽप्याह पतिस्तासामह^{१०} क्रमात् । जाये स्म^{११} तत्र तत्रेति विश्वविस्मयकृद्ब्रह्म ॥१८५॥
 पुन प्रिया ज्य प्राह प्रकृत किञ्चिदप्यत । अर्वाशिष्ट तदप्युच्यंस्त्वया कान्ते निगद्यताम् ॥१८६॥
 इति पत्यु परिप्रश्नाद्दान ज्योत्सनया सभाम् । मूर्ति कुमुद्वतीं देन्दोविकासमुपनीयताम् ॥१८७॥
 साऽप्रवोदिति तद्ब्रूत् स्वपुण्यपरिपात्रजम् । सुल राज्यसमुद्भूत यथेष्टमपि निर्विशन्^{१२} ॥१८८॥
 परेशु कान्तया साह^{१३} स्वैच्छया विहरन् वनम् । सरो धान्यकमालास्य वीक्ष्यादित्यगते^{१४} सुत ॥१८९॥
 १ स्वप्राच्यभवसम्बन्ध प्रत्यक्षमिव लक्षयन् । काललब्धिवलाल्लभ्यनिर्वेदो विदुषा वर ॥१९०॥
 भङ्गुर^{१५} सद्यम सर्वोऽप्यङ्गिणामभिवाञ्छित^{१६} । किं नाम सुलक्ष्मदेम् श्लपसङ्कल्पसम्भवम् ॥१९१॥
 आपूर्वापुत्रल कपो हेय एवामयालय^{१७} । साम्राज्य भुञ्जते^{१८} लोलेर्वाति^{१९} शैर्बहुदोयलम्^{२०} ॥१९२॥
 अदूरवार^{२१} वापोऽप्यन् असारो दुरिताश्रय^{२२} । तादात्म्यप्राप्तः सन्नेत^{२३} धनेनमशुचिप्रियम्^{२४} ॥१९३॥

प्रेमस आदित्यगतिके समीप जाकर प्रार्थना की 'कि यह प्रभावतीकी पुत्री रतिप्रभा कन्या आप मेर मनोरथके पुत्र चित्ररथके लिये दे दीजिये ।' आदित्यगतिने भी स्वीकार कर समागत बन्धुओको विदा किया ॥१८०-१८१॥ महाराज आदित्यगति सब विद्याधरोके राज्यपर हिरण्यवर्माका अभिषेक कर अनेक लोगोके साथ किन्ही मुनिराजके समीप पहुचे, और वापुरथ के साथ साथ स्वय भी सयम धारण कर विधिपूर्वक शास्त्रोमें कहे हुए वारह प्रकारके तपश्चरण करने लगे ॥१८२-१८३॥ यह सब कहकर सुलोचनाने सब सभासदोसे कहा कि वह रतिवेगा भी मे ही हूँ, रतिपेणा (कन्नूतरी) भी मे ही हूँ और प्रभावती भी मे ही हूँ ॥१८४॥ वह मुनवर जयकुमारने भी सबको आश्चर्य करनेवाले वचन कहे कि उन तीनों भवोमें अनुक्रममें मे ही उन रतिवेगा आदिवा पति हुआ हूँ ॥१८५॥ जयकुमार फिर अपनी प्रिया-सुलोचनाके कहने लगा कि हे प्रिये, कुठ बात बानी और रह गई है उसे भी तू अच्छी तरह कह दे ॥१८६॥ जिम प्रकार चन्द्रमाकी मूर्ति कुमुदिनीको विवसित कर देती है उसी प्रकार वह सुलोचना भी अनन पतिके पूर्वोक्त प्रश्नमें दातीकी वाग्दिके द्वारा सभाको विवसित-हर्षित करती हुई अपने पुण्यके फलमें होनेवाटे समाचारोके इस प्रकार कहने लगी कि वह हिरण्यवर्मा राज्यसे उत्पन्न हुए सुपत्नी इच्छानुसार उपभोग करने लगा । किसी एन दिन अपनी बल्लभाके साथ वितार करता हुआ यह आदित्यगतिका पुत्र हिरण्यवर्मा धान्यकमाल नामके वनमें जा पहुचा । वहा मंगरोर देगार उगे अपने पूर्वभवसे मय गम्त्रण प्रत्यक्षकी तरह दिगने लगे, मा लट्टिके निमित्तके जिमे वैराग्य उत्पन्न हुआ है जोर जो निद्राओंमें श्रेष्ठ है ऐसा वह हिरण्यवर्मा आपने लगा कि प्राणिगोत्री इच्छावा विपद्भूत यह मभी गमागम धान्यकमाल है इस गमागममें पाइये मक रण उत्पन्न हुआ यह मुन क्या वस्तु है ? यह थायु वायुने गमाग वचल है । अनेक रागोंका पर स्वस्व यह गरीर छोडने योग्य ही है । अथ दोषोती देगेवाटे गज्यती वल

१ वायुव्याघ्र विधागादात् । २ तप्यात्पुत्राय मुनि कृत्या । ३ अथ एतावत् त० म० पुराणकारां दृश्यते । ४ वायुव्याघ्र वारिण । ५ आदित्यगति । ६ रतिपति कर्माती । ७ सुलोचना । ८ सभ्यानाम् । ९ प्रभावती । १० रतिवगादीनाम् । ११ आत्मात्मि । १२ अनुक्रम । १३ प्रभावती । १४ हिरण्यवर्मा । १५ पुत्रभव । १६ दायालव । १७ आनन्द । १८ मूर्ति । १९ बहुदोषवत् । २० आगमप्रवृत्त । २१ तपश्चरणम् । २२ वायु । २३ अणुवत् ।

देहवातो^१ भय नास्य^२ यानमन्मा न^३ हृद् भयन् । देहिन्^४ हित मागस्य^५ विषयामोऽत्र^६ निवृत्ते ॥१६४॥
 मोक्षयोश्च स्वल्पेण रुषीं देहैरन्तः । निर्वाणस्तिरतो ह्येवो देह एव यथा तथा^७ ॥१६५॥
 अथ सर्वोऽपि सम्बन्धो^८ भोगो रोगो रिपुर्वपु । दीर्घमायाममयापु तृष्णान्नेरिच्यन् घनन् ॥१६६॥
 आदौ जम जरा रोगा म^९प्रेतेऽन्तेऽन्तक खल । इति चञ्चलमग्यान्ति^{१०} जन्तोर्नष्टेभवावर्णवन्^{११} ॥१६७॥
 भोगिनो^{१२} भोगवद्^{१३} भोगा न^{१४} भोगा नाम भोग्यका । एव भावयतो भोगान् भूयोऽभूवन् भवावहा ॥१६८॥
 नियेष्यमाणा विषया विषया विषयप्रिया । देहोच्यन्ते^{१५} बुभुक्षानि^{१६} ^{१७}दोनोर्वैरिचौययं ॥१६९॥
 न तृप्तिरैभिरित्येषः^{१८} एव दोषो न पोषका । तृपयन्^{१९} विषयवन्त्यां समुत्तरदावलम्बनम् ॥२००॥
 यतिनातनुसन्ततवानागिन्^{२०} स्नेहमेचने । कामिन भस्मसाद्भावम् धनो वा न निवर्तते ॥२०१॥
 जतोर्नोपे^{२१} भोगान्ते सर्वत्र^{२२} विरतिर्षु^{२३} वा । स्वयं तस्या^{२४} प्रयत्नोऽप्य क्रियादोषो^{२५} मनीषिण ॥
 प्रापिनोऽप्यसहृद्^{२६} स भोगस्तानेव याचते । पतोऽप्यनाडिनोऽप्यर्हि^{२७} मात्रास्या एव बालक^{२८} ॥२०३॥

और मूर्ख लोग ही भोगते हैं, इस जरीरका अन्त निकट है, यह अमात्र है, और पापका आश्रय है, इसी शरीरके साथ इस आत्माका तादात्म्य हो रहा है, इसलिये अपवित्र पदार्थोंमें प्रेम करनेवाके इस प्राणीको प्रियकार हो, इस प्राणीको शरीरमें निवास करनेमें ता भय मातृम नहीं होता परन्तु उसमें निकटनेमें बड़ा भय मातृम होना है, निश्चयम् इस ममारमें मोक्षमार्गमें विपरीत प्रवृत्ति ही होती है ॥१८७-१९८॥ यह जीव स्व स्वल्पकी अपेक्षा स्पर्शित है परन्तु शरीरके सम्बन्धमें स्त्री हो रहा है, स्पर्शित होना ही मोक्षकी प्राप्ति है इसलिये निश्च प्रकार बने उसी प्रकार शरीरको अवश्य ही छोटना चाहिये ॥१९५॥ मत्र प्रकार सम्बन्ध ही बन्ध है भोग ही रोग है, शरीर ही शत्रु है, स्त्री अपु ही तो दुःख देती है और घन ही तृष्णास्पी अग्निका ईश्वर है ॥१९६॥ इस जीवको पृथके तो जन्म धारण करना पड़ता है, मध्यमें बुडापा तथा अनेक रोग है और अन्तमें दुष्ट मरण है, इस प्रकार मसारूप समुद्रके मध्यमें इस जीवको चकरी तरह भ्रमण करना पड़ता है ॥१९७॥ भोग करनेवाके शोका ये भोग सर्वके फलोके समान है इसलिये भोग करने योग्य नहीं है इस प्रकार भोगका बार बार विचार करनेवाके पुष्टके लिये ये भोग बड़े भयकर जान पड़ने लगते हैं ॥१९८॥ ये भेदन किये हुए विषय विषके समान है, जिस प्रकार उनेजक औशियामे पेटकी आग भभक उठती है उसी प्रकार भोगकी इच्छाशोके ये विषय भभक उठते हैं ॥१९९॥ इन विषयोंमें तृप्ति नहीं होती कब इतना ही दोष नहीं है किन्तु तृष्णाको पुष्ट करनेवाके भी है और ममारस्पी विषकी श्रेयो महाग दनेवाके भी है ॥२००॥ म्बियोंके शरीरमें उत्पन्न हुई यह कामस्पी अग्नि स्नेहस्पी श्रेयमें प्रवृत्ति हाकर कामी पुष्टीको भ्रम किये जिता नहीं गीतनी है ॥२०१॥ भोग करनेके बाद इन समस्त भोगात्मी शोकोके वेगव्य अवश्य होता है, बुद्धिमान् शोकोको जा तपश्चरण आदि क्रिया करनी पत्नी है वे सत्र इस वेगव्यको म्बिर रखनेका उपाय ही है ॥२०२॥ यद्यपि यह जीव भोगोंमें अनेक बार दुःखको प्राप्त है तथापि ये शीघ्र उन्ही भोगोंका चाहते हैं सो ठीक ही है क्वाकि माता वायुको जिस पंखे तात्नी है नाटक उसी उसी प्रकार माताके चरणोंमें पधडने है

१ शरीरे । निवृत्तम् । २ निर्गमनम् । ३ देहवासात् । ४ व्यपयः । ५ देहिनि । ६ येन येन प्रकारेण । ७ पुत्रनिर्वादिस्त्वन्वयः । ८ भवात्तत्र १०, ५०, ५० । ९ सम्बन्धः । १० तृप्तिरवन् । पत्रवद् वा । 'भोग' मुने स्त्रियदिनुत्तवदृश पत्रावयवा' इत्यभिधानात् । ११ भोगा नाम न नाम्यन्तात् । १२ भूय दहन्ति । १३ भाव्युनिच्छामि । १४ वास्तव्युनि । १५ भागं । १६ तृष्णा । १७ मन्त्र प्राप्ति संश्लेषः । स्नेहमेचने ५०, ५० । स्नेहोत्तरे ५०, १० । १८ सर्वम् । १९ अमीषि । २० विरतः । २१ अनुप्यानरोपः ।

अधुश्चत्व गुण मन्वे भोगाय 'वापसम्पदाम् । धृद्येत्वेपु कृतो मुक्तिर्विना मुक्ते कृत सुखम् ॥२०४॥
 'विश्वम्भजननें पूर्वं पदचात् प्राणार्थहारिभि । पारिपन्थिषसद्वशां विषयं वस्य नापद' ॥२०५॥
 तद्दुःखस्यैव माहात्म्य स्यात् सुख विषयैश्च पत् । 'यत्पारयल्लिवा स्यादु प्राणव ननु तदक्षुप' ॥२०६॥
 सडकल्पसुखसन्तोषाद् 'विमुखस्यात्मजात् सुखात् । गुञ्जग्नितापगुणुष्टनालामृगतमो जन ॥२०७॥
 सदास्ति निर्जरा नासो मुक्त्वं य-धम्पुतेविना । 'तच्छुभुतिश्च हतेवन्धहेतोस्तत्तद्धतो यते' ॥२०८॥
 केन मोक्ष वय जीव्य' कृत सौह्य वय वा मति । 'परिप्रहाप्रहप्राहगृहीतस्य भवान्ये ॥२०९॥
 किं भव्य किमभयोऽयमिति सञ्चरते' बुधा । ज्ञात्याऽप्यनित्यता लक्ष्मीकदाक्ष' शरणागिते ॥२१०॥
 अय कायद्रुम 'कान्ताव्रततीततिवेषित । जरित्वा' जन्मकान्तारे 'कालान्निपासमाप्स्यति ॥२११॥
 यदि धर्मकगादित्य' निदानविपद्रूपितात्' । सुख धर्माभूताम्भोपिमञ्जनेन किमुच्यते ॥२१२॥

॥२०३॥ भोग, आयु, काल और सम्पदाओंमें जो अस्थिरपना है उसे मैं एक प्रकारका गुण ही मानता हू क्योंकि यदि ये सब स्थिर हो गये तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ? और मुक्तिके विना सुख कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥२०४॥ पहले तो विश्वास उत्पन्न करनेवाले और पीछे प्राण तथा धनको अपहरण करनेवाले शत्रु तुल्य इन विषयोंसे किसे भला आपदाए प्राप्त नहीं होती है ? ॥२०५॥ इन विषयोंसे जो सुख होता है वह दुःखका ही माहात्म्य है क्योंकि जो करेला मीठा लगता है वह भूखका ही प्रभाव है ॥२०६॥ यह जीव कल्पित सुखोंसे सतुष्ट होकर आत्मासे उत्पन्न होनेवाले वास्तविक सुखसे त्रिमुख हो रहा है इसलिये यह जीव गुमचियों के तापनेसे सतुष्ट होनेवाले वानरके समान है । भावार्थ—जिस प्रकार गुमचियोंके तापनेसे बन्दरकी ठंड नहो दूर होती है उसी प्रकार इन कल्पित विषयजन्य सुखोंसे प्राणियोंकी दुःख रूप परिणति दूर नहीं होती है ? ॥२०७॥ इस जीवके निर्जरा तो सदा होती रहती है परन्तु बन्धका अभाव हुए विना वह मोक्षका कारण नहीं हो पाती है, बन्धका अभाव बन्धके कारणो का नाश होनेसे हो सकता है इसलिये मैं बन्धके कारणोका नाश करनेमें ही प्रयत्नशील हूँ ॥२०८॥ इस ससाररूपी समुद्रमें जिन्हें परिग्रहके ग्रहण करने रूप पिशाच लग रहा है उन्हें भला मोक्ष किस प्रकार मिल सकता है ? उनका जीवन किस प्रकार रह सकता है ? उन्हें सुख कहासे मिल सकता है और उन्हें बुद्धि ही कहा उत्पन्न हो सकती है ? ॥२०९॥ लक्ष्मीके कदाक्षरुणी वाणोंसे सुलाय हुए (नष्ट हुए) पुरुषमें अनित्यताको जानकर भी विद्वान् लोग 'यह भव्य है ? अथवा अभव्य है ?' इस प्रकार व्यर्थ सशय करने लगते हैं ॥२१०॥ स्त्रीरूपी लताओं के समूहसे घिरा हुआ यह शरीररूपी वृक्ष ससाररूपी अटवीमें जीर्ण होकर बालरूपी अनिकता ग्राम हो जायगा ॥२११॥ जब कि निदानरूपी विषसे दूषित धर्मके एक अशसे मुझे ऐसा गुण मिला है तब धर्मरुपी अमृतके समुद्रमें अवगाहन करनेसे जो सुख प्राप्त होगा उसका तो

१ शत्रु-ज० । २ विद्वान्भजनके । ३ शत्रुसदृश । ४ न विपत्तय । ५ बहुरास्वाद शारविशेष । शारवेलिङ्ग स्यादु ५०, ६०, ७०, ८०, ९० । ६ बुभुशाया । ७ विमुखदचात्मजान् ल०, ५०, ६०, ७० । ८ तन् कारणात् । ९ यत्न करोमि । १० जीवनम् । ११ परिग्रहस्वीकारलक्ष्मीवृत्तस्य । १२ कितिष्टेष्ट-परिणामन कि भविष्यति । १३ सशय भूवंति । १४ अपाङ्गदचनवाणतनूकृतशरीरे पुंसि । १५ भार्य-लता । १६ जीर्णभूत्वा । १७ यमदावाग्नि । १८ धर्मलेशात् । १९ शपोतजमनि भूचेरमित्रेण स्वैत श्रुतापुण्यस्यैवाग शपोतस्य दग विद्यापरिमाण विनोक्त्य शपोत श्रेष्ठिततपुण्यात्वात् मम विद्यापरल्ल भवति श्रुतिनाशविपद्रूपितात् ।

● निष्पादचन, अतिरिचि, प्रमाद, शपाय और योन ये बन्धनके कारण हैं ।

'अबोमद्वेपरागतात्मा सत्तारत्नद्विपर्यय । मोक्षरत्ने च वीक्षितो विद्मि^१ क क्षयो' मोक्षतापने ॥२१३॥
 यदि'देशादिसाधन्ये न तत्पत्तलुन कृत । मयेऽप्ययती' वेगान् बराप्रभ्युत्तरलवन् ॥२१४॥
 'आत्मं स्व परमात्मानम् आत्मन्यात्मानमात्मता । हित्वा दुरात्मतामात्मनीने'ऽर्चनि' चरन्' कुर ॥२१५॥
 इति सञ्चिन्तयन् गत्वा पुर'^२ परमनन्दविन् । सुवर्णदर्शने राज्य सानिपेक विनीयं स ॥२१६॥
 श्रवती'३' महीं प्राप्य श्रीपुर श्रीनिवेशनम्^४ । दीक्षा जनेश्वरीं प्राप श्रीपालाशमन्त्रिणी ॥२१७॥
 परिग्रहग्रहण्मूक्तो दीक्षित्वा स तपोऽग्नि । हिरण्यवर्ना^५ धर्मनिर्मलो ध्येष्टुनत्तराम् ॥२१८॥
 प्रभावती च तन्माया' 'गुणवत्यास्तपोऽगमन् । कृतद्वन्द्वमस मुक्त्वा चन्द्रिकाया' स्थिति पृथक् ॥
 तद्गुणतत्पता वीक्षो विान्वर' विनूयण । निस्तप्तो^६ 'व्योनाम्पेकविहारी विदववन्दिन ॥२२०॥
 नित्योदयो' 'बुधारीशो विद्वन्' द्रष्टा निरोचन'^७ । स कदाचिन् समागच्छन्मोदयन् पुण्डरीकिणीम् ॥

कहना ही क्या है ? ॥२१२॥ यह ममार अज्ञान, द्वेष और राग स्वरूप है तथा मोक्ष इससे विपरीत है अर्थात् सम्यग्ज्ञान और समता स्वरूप है । यदि विद्वान् लोग ऐसा देखते रहें तो फिर मोक्ष होनेमें देर ही क्या लगे ? ॥२१३॥ जिस प्रकार वेगमें जाने हुए पुरपके हाथमें वीच समुद्रमें छूटा हुआ रत्न फिर नहीं मिल सकता है उसी प्रकार देश काल आदिकी मामग्री मिलनेपर भी यदि तप नहीं किया तो वह तप फिर कैसे मिल सकता है ? ॥२१४॥ इसलिये हे आत्मन्, तू आत्माका हित करनेवाले मोक्षमार्गमें दुरात्मता छोड़कर अपने आत्माके द्वारा अपने ही आत्मामें परमात्मा रूप अपने आत्माको ही स्वीकार कर ॥२१५॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुए परम तत्त्वके जाननेवाले राजा हिरण्यवर्माने अपने नगरमें जाकर अपने पुत्र सुवर्णवर्मा के लिए अनिपेकपूर्वक राज्य सीपा और फिर विजयाद्वं पर्वतसे पृथ्वीपर उत्तरकर लक्ष्मीके गृहस्वरूप श्रीपुर नामके नगरमें श्रीपाल गुरुके ममीप जनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥२१६-२१७॥ परिग्रहणी पिशाचसे मुक्त हो दीक्षा धारण कर मूर्खके समान निर्मल हुआ वह राजा हिरण्यवर्मा तपश्चरगर्हणी किरणोंमें बहुत ही देदीप्यमान हो रहा था ॥२१८॥ प्रभावतीने भी हिरण्यवर्माकी माता-शक्तिप्रभाते साय गुणवती आर्यिकाने नमीप तप धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमाकी छोटकर चाँदनीकी पृथक् स्थिति भला कहाँ हो सकती है ? ॥२१९॥ वे हिरण्यवर्मा मुनिराज ठीक मूर्खके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार मूर्ख सद्वृत्त अर्थात् गोल है उसी प्रकार वे मुनिराज भी सद्वृत्त अर्थात् निर्दोष चारित्रको धारण करनेवाले थे । जिस प्रकार सूर्य तप अर्थात् गर्मीने देदीप्यमान रहता है उसी प्रकार मुनिराज भी तप अर्थात् अनगनादि तपश्चरणने देदीप्यमान रहते थे, जिन प्रकार मूर्ख दिग्म्वर अर्थात् दिशा और आकाशका आभूषण है उसी प्रकार मुनिराज भी दिग्म्वर अर्थात् दिशागुण वस्त्रको धारण करनेवाले निर्ग्रन्थ मुनियोने आभूषण थे, जिन प्रकार मूर्ख निमग अर्थात् सहायता-रहित अकेला होता है उसी प्रकार मुनिराज भी निमङ्ग अर्थात् परिहरहित थे, जिन प्रकार मूर्ख आकाशमें गमन करता है उसी प्रकार चारणक्रुद्धि होनेसे मुनिराज भी आकाशमें गमन करते थे, जिस प्रकार मूर्ख अकेला ही घूमता है उसी प्रकार मुनिराज भी अकेले ही घूमते थे—एकविहारी थे, जिस प्रकार मूर्खको मत्र बन्दना करते हैं उसी प्रकार मुनिराजको भी मत्र बन्दना

१ अज्ञान । २ वर्ष । ३ क्षयमानता । ४ मुदगनुत्तापादिग्रामप्रये । ५ मच्छत । ६ आत्मन् स्व त० । ७ आत्महिते । ८ मार्ग । ९ वर ल०, प० । रति कृ० अ०, स० । १० पापकमायवनात् निजनगर प्राप्य । ११ विजयाद्वं चिन्तान् भुव प्राप्य । १२ श्रीगृहम् । १३ आदिप । १४ हिरण्यवर्माने जनया गतिप्रयत्ना मत् । १५ गुणवत्याधिराया' कमीने । १६ रतिरूपे दिग्म्वर अन्वरेण निमूयपर्वति । १७ गमनधारिण । १८ सर्वोत्तोऽप्येषा । १९ अदृश्यः । २० रविरिव ।

सप्रभा चन्द्रलेखेव सह तत्र प्रभावती । गुणवत्या समागते सद्गतिः स्याद्यदुच्यया ॥२२२॥
 'गुणवत्यायिकां दृष्ट्वा नत्वोक्ता प्रियवत्तया । 'कुतोऽसौ' 'गणिनीत्याद्यत्' स्वर्गतेति' प्रभावती ॥२२३॥
 तच्छ्रुत्वा नेत्रभूता नौ संवेति^१ शुचमागता । कृतः प्रीतिस्तपेत्पुक्ता साऽश्रयोत् प्रियवत्तया ॥२२४॥
 न स्मरिष्यति किं पारावतद्वन्दं भयद्गृहे । 'तत्राहं रतियेणेति तच्छ्रुत्वा विस्मिताऽवदत् ॥२२५॥
 क्वातो रतिवरोऽञ्जेलि सोऽपि विद्याधराधिपः । हिरण्यवर्मा 'कर्मारियंतिरत्रेति'^२ 'सात्रयोत् ॥२२६॥
 प्रियवत्ताऽपि तं^३ गत्वा चन्दित्वं^४ महामुनिम् । प्रभावती परिप्रश्नात् पत्युरित्याह वृत्तकम् ॥२२७॥
 विजयाद्धिगिरेरस्य गान्धारनगरादिह^५ । विहर्तुं रतियेणोऽमा गन्धार्मा प्रिययाऽगामत् ॥२२८॥
 गान्धारी सर्वदष्टाऽऽमिति तत्र मृषा स्थिता । मन्त्रीपथोः प्रयोऽज्यास्याः श्रेष्ठो^६ विद्याधरश्च सः ॥२२९॥

करते थे, जिस प्रकार सूर्यका नित्य उदय होता है उसी प्रकार मुनिराजके भी ज्ञान आदिका नित्य उदय होता रहता था, जिस प्रकार सूर्य बुध अर्थात् बुधग्रहका स्वामी होता है उसी प्रकार मुनिराज भी बुध-अर्थात् विद्वानोके स्वामी थे, जिस प्रकार सूर्य विश्वदृश्या अर्थात् सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विश्वदृश्या अर्थात् सब पदार्थोंको जानने वाले थे, जिस प्रकार सूर्य विरोचन अर्थात् अत्यन्त देदीप्यमान रहता है अथवा विरोचन नामको धारण करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विरोचन अर्थात् अत्यन्त देदीप्यमान थे अथवा रुचिरहित उदासीन थे और जिस प्रकार सूर्य पुण्डरीकिणी अर्थात् कमलिनीको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार मुनिराज भी पुण्डरीकिणी अर्थात् विदेह क्षेत्रकी एक विशेष नगरीको आनन्दित करते थे इस प्रकार सूर्यकी समानता रखनेवाले मुनिराज हिरण्यवर्मा किसी समय पुण्डरीकिणी नगरीमें पधारे ॥२२०-२२१॥ प्रभासहित चन्द्रमाकी कलाके समान आर्यिका-प्रभावती भी वहाँ आई और गुणवती-गणिनीके साथ मिलकर रहने लगी सो ठीक ही है क्योंकि समागम अपनी इच्छानुसार ही होता है ॥२२२॥ गुणवती-गणिनीको देखकर प्रियदत्ताने नमस्कार कर पूछा कि सधाधिकारिणी अमितमति कहा है ? तब उसने कहा कि 'वह तो स्वयं चली गई है' यह सुनकर प्रभावती कुछ शोक करने लगी और कहने लगी कि 'हम दोनोंकी आखे वही थी,' तब प्रियदत्ताने पूछा कि उनके साथ तुम्हारा प्रेम कैसे हुआ ? उत्तरमें प्रभावती कहने लगी कि 'आपको क्या स्मरण नहीं है आपके घरमें जो कबूतर-कबूतरीका जोड़ा रहता था उनमेंसे मैं रतियेणा नामकी कबूतरी हूँ, यह सुनकर प्रियदत्ता आश्चर्यसे चकित होकर कहने लगी कि 'वह रतिवर कबूतर आज कहाँ है तब प्रभावतीने कहा कि वह भी विद्याधरोका राजा हिरण्यवर्मा हुआ है और कर्मरूपी यशुओंको नाश करनेवाला वह आज इसी पुण्डरीकिणी नगरी में विराजमान है । प्रियदत्ताने भी जाकर महामुनि-हिरण्यवर्माकी वन्दना की और फिर प्रभावतीके पूछनेपर अपने पतिवा वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगी ॥२२३-२२७॥

एक रतियेण नामका विद्याधर अपनी स्त्री गाधारीके साथ साथ इसी विजयाध पर्वनके गाधार नगरमें विहार करनेके लिये यहा आया था ॥२२८॥ मुझे सपने काट साया है इस प्रकार भूठ भूठ बहानाकर गाधारी यहा पड़ रही, सेठ बुवेरवान्त और विद्याधरले बहुत सी औपधियोंका प्रयोग किया परन्तु गाधारीने मायाचारीसे यह दिया कि 'अभी मुझे

१ पुण्डरीकिण्याम् । २ समागनवती सद्गतिवती वा । ३ गुणवत्यादिना ट० । गुणवती दक्षिणमा-
 व'याविता । ४ क्वातो । ५ पचस्वती । ६ अनन्तमतिगहिनाऽमितमत्यायिका । ७ गुणवती जगद ।
 ८ नाच प्राप्तेनि । ९ नेत्रदृशी । १० प्रियदत्ता । ११ पारावतद्वन्दे । १२ कर्मात्प्राति स०, प० ।
 १३ अतिम् गुरे विष्टीति । १४ प्रभावती । १५ हिरण्यवर्गमुनिम् । १६ पुनरागत्य । १७ पुण्डरीकिण्याम् ।
 १८ बुधरेवान्तः ।

मायया नास्मि शान्तेति तद्वाक्यान् खेदमागतौ । ग्राह तु स्ववतीं याने वने' शक्तिमवीयन्म् ॥२३०॥
 गान्धारी' बन्धनोनावम्' उनेत्य स्मरविक्रियाम् । 'दशपत्नीं निरीदयाह' बगिण्वर्षो बुद्धवतः ॥२३१॥
 ग्राह 'वर्षवरो वेत्सि न किं मामिन्युपायवित् । व्यनाद् विरक्तचित्ता तां तदेव हि त्रियः फलम् ॥२३२॥
 तदातीमागने पत्नीं स्वे म्बाम्ब्यमहमागता । पूर्वोपप्रयोगेन्युक्त्वाग्नात् तपतिः'पुरम् ॥२३३॥
 दयितान्कुरारयो मित्रान्दत्त कुबेरवाक् । परः कुबेरदत्तश्च कुबेरदत्तान्देववाक् ॥२३४॥
 कुबेरदिप्रियदत्तान्यः पञ्चते सञ्चिन्वयुताः । कतानोदतमानाः मम्पन्नवयोवनाः ॥२३५॥
 एतं स्वमनुभिः सार्यम् आरुह्य सिविका वनम् । पृथा कुबे'रश्रीगर्भं मा पितृन् समागतान् ॥२३६॥
 वृष्ट्वा कदाचिद् गान्धारीपृथक्' वृष्टवतीं पुमान् । स्वच्छे'ष्टी 'नेति तन्मन्थम्' उन'ने पन्ववादिशम् ॥२३७॥
 तन्मन्थमेव 'मत्तोऽन्या प्रथमो न पुमानिति । तदाकन्व' विरज्यामी' मयनि' सपन्नं श्रिता ॥२३८॥
 पुनन्मरागता' वृष्टा दीक्षेयं केन हेतुना । तत्रेति सा मया पृष्टा प्रप्रणम्य प्रियोक्तिभिः ॥२३९॥
 श्रेष्ठमेव ते तरोहेतुरिति प्रयत्नवोदमी । निगूढं तद्वचः श्रेष्ठो श्रुत्वाऽन्यत्पुः स्थितः ॥२४०॥
 मामन्यपीन्' सत्याम्नी मे' 'ववाद्येति पारिवृष्टवान् । सोऽपि मन्कारणेनैव गृहोन्वेहागमत्तः' ॥२४१॥
 इति तद्वचनाच्छे'ष्टी नृपद्वाम्भेत्य तं मृनिम् । वन्दिन्वार्यमनापुच्छय कालमस्या महोपनि' ॥२४२॥

शान्ति नहीं हुई है, यह मुनिकर उसके पनि रनिपेणको बहुत दुःख हुआ । वह अधिक शक्तिवाली औपधि लानेके लिये वनमें चला गया, डर उसके चचे जानेपर गांधारीने कुलटापन धारण कर कामकी चेष्टाएँ दिवाइं, यह देखकर उपायको जाननेवाटे और अपने व्रतमें दृष्ट रहनेवाटे सेठ कुबेरवान्ने कहा कि अरे, मैं तो नपुंसक हूँ—क्या तुम्हे मारुम नहीं ? ऐसा कहकर सेठने उसे अपनेसे विरक्तचित्त कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिका फल यही है ॥२३१-२३२॥ इनमें ही उसका पति वापिस आ गया, नव गांधारीने कह दिया कि मैं पहले ही हुई औपधिके प्रयोगसे ही मन्थ्य हो गई हूँ ऐसा कहकर वह पतिके साथ नगरमें चली गई ॥२३३॥ कुबेरदयित, कुबेरमित्र, कुबेरदत्त, कुबेरदेव और कुबेरप्रिय ये पांच मेरे पुत्र थे । ये पांचो ही समस्त शान्तोको जाननेवाटे, कलाकौशलमें निपुण तथा नव यौवनमें सुशोभित थे । किसी एक दिन जब कि कुबेरश्री कन्या मेरे गर्भमें थी तब मैं अपने पूर्वोक्त पुत्रोके साथ पालकीमें बैठ कर वनमें विहार करनेके लिये गई थी उसी समय गांधारीने मुझे देखकर और अलग ले जाकर मुझसे पूछा कि 'आपके सेठ पुत्र नहीं हैं' क्या यह बात सच है अथवा नूठ ? तब मैंने उत्तर दिया कि 'विश्वकुल सच है क्योंकि वे मेरे सिवाय अन्य स्त्रियोके प्रति प्रसन्न नहीं हैं यह मुनिकर उसने विरक्त हो अपने पतिके साथ साथ संवम धारण कर लिया ॥२३४-२३८॥ किसी एक दिन वह गांधारी आयिना यहा फिर आई तब मैंने दर्शन और प्रणाम कर प्रिय वचनों द्वारा पूछा कि 'आपने यह दोषा किस कारणसे ली है ?' उसने उत्तर दिया था कि 'मेरे तन्मन्थन-वा कारण तेरा सेठ ही है, सेठ भी गुण्णपसे यह बात मुनिकर नामने आकर खडे हो गये और पूछने लगे कि 'जिम्ने मुझे जीत लिया है ऐसा मेरा मित्र आज कहाँ है ? तब गान्धारी आयिकाने कहा कि 'वे भी मेरे ही कारण नव याग्य कर यहाँ पधारे है, ॥२३९-२४१॥ यह मुनिकर सेठ और राजा दोनों ही उन मुनिराजसे समीप गये और दोनोंने

१ -मागते स० । २-श्री सेदनामती अ०, स० । ३-विरक्तचित्तवत् । ४-विनाहृतप्रणम्य-वग्नहोपपत् । ५-गान्धारी स० । ६-कुनटावत् । ७-दशपत्नी स० । ८-वर्षवरो स० । ९-पन्थः । १०-पतिमहिता । ११-कुबेरदेव । १२-कुबेरप्रिय-सम्बन्धि गर्भम् । १३-एतन्ने । १४-पुत्रान् न भवतीति । १५-अपत्यवा । १६-सत् । १७-गान्धारी । १८-पुष्टीरिभ्याम् । १९-जितवती । २०-मम निव रतिपेण । २१-कुत्र तिष्ठतीति । २२-पुन्यत् स०, अ०, प०, स० । २३-मोक्षगत ।

गुणपालाय तद्राज्यं दत्त्वा सयममादधे^१ । निकटे रतिषेणस्य विद्याधरमुनीशितु^२ ॥२४३॥
 पञ्चम^३ स्वपदे सूनु निषोऽयान्य^४ सहात्मजं । ययौ श्रेष्ठी^५ च तत्रैव दीक्षा मोक्षाभिलाषुक ॥२४४॥
 तयोक्त्वा कान्तवृत्तान्तं^६ सा^७ समुत्पन्नसविदा^८ । विरज्य गृहसवासात् कुबेराविश्रिय सतीम्^९ ॥२४५॥
^{१०}गुणपालाय दत्त्वा स्वा सुता गुणवतीं^{११} श्रिता । प्रभावत्पुपदेशेन प्रियदत्ताऽप्यदोक्त^{१२} ॥२४६॥
 मुनिं हिरण्यवर्माणं कदाचित् प्रेतभूतले^{१३} । दिनानि सप्त सद्गोय^{१४} प्रतिमायोगधारिणम् ॥२४७॥
 धन्वित्वा नागरा^{१५} सर्वे त पूर्वभवसकथा । कुर्वाणा पुरमागच्छन् विद्युच्चोरोऽप्युदीरितात्^{१६} ॥२४८॥
 चेटक्या प्रियदत्तायास्तन्मुने प्राक्तन भवम् । विदित्वा तद्गतक्रोधासदोत्पन्नविभद्गक^{१७} ॥२४९॥
 मुनिं पृथक्प्रवेश्यसा^{१८} प्रतिमायोगमास्थिताम्^{१९} । प्रभावतीं च सयोग्य चितिकाया^{२०} दुराज्य ॥२५०॥
 एकस्यामेव निक्षिप्याधाक्षीं^{२१} दपजिघृक्षया^{२२} । सोढ्वा तद्रूपसर्गं तो विशुद्धपरिणामत ॥२५१॥
 स्वर्गं समुदपद्येता^{२३} क्षमया किं न जायते । सुवर्णवर्मा तज्ज्ञात्वा विद्युच्चोरस्य निग्रहम् ॥२५२॥
 कल्प्यामीति कोपेन पापिन सद्गुर व्यधात्^{२४} । विदित्वाऽवधिबोधेन सतीं^{२५} स्वर्गनिवासिनी ॥२५३॥
 प्राप्य सयमरूपेण सुता धर्मकथादिभि । तत्त्व श्रद्धाप्य^{२६} त कोपाद् अपास्य कृपयाऽऽहिती^{२७} ॥२५४॥

ही वन्दना कर धर्मका स्वरूप पूछा । काललब्धिका निमित्त पाकर राजा लोकपालने अपने पुन गुणपालके लिये राज्य दिया और उन्ही विद्याधर मुनि रतिषेणके निकट सयम धारण कर लिया ॥२४२-२४३॥ मोक्षके अभिलाषी सेठने भी अपने पाचवे पुन-कुबेरप्रियको अपने पदपर नियुक्त कर अन्य सब पुनोके साथ साथ वही दीक्षा धारण की ॥२४४॥ इस प्रकार प्रियदत्ता अपने पतिवा वृत्तान्त कहकर उत्पन्न हुए आत्मज्ञानके द्वारा गृहवाससे विरक्त हो गई थी, उस सतीने अपनी कुबेरश्री पुत्री राजा गुणपालको दी और स्वयं गुणवती आधिकारके समीप जाकर प्रभावतीके उपदेशसे दीक्षा धारण कर ली ॥२४५-२४६॥ विसी समय मुनिराज हिरण्यवर्माने सात दिनका नियम लेकर दमशानभूमिमें प्रतिमा योग धारण किया नगरके सब लोग उनकी वन्दना करनेके लिये गये थे । वन्दना कर उनके पूर्वभवकी कथाए कहने हुए जब सब लोग नगरको वापिस लौट आये तब एक विद्युच्चोरने भी प्रियदत्ताकी चेटीमे उन मुनिराजका वृत्तान्त सुना, मुनकर उसे उनके प्रति कुछ शोध उत्पन्न हुआ और उसी शोध के कारण उसे विभगावधि भी प्रवट हो गया, उस विभगावधिसे उसने मुनिराजके पूर्वभवके सब गमाचार जान लिये । यद्यपि मुनिराज प्रतिमायोग धारण कर अलग ही विराजमान थे और प्रभावती भी अलग विद्यमान थी तो भी उस दुष्टने पापसचय करनेकी इच्छामे उन दोनोंको मिगनर और एक ही चितापर रखकर जला दिया वे दोनों विशुद्ध परिणामोसे उगर्ग गहनकर स्वर्गमें उतरने हुए सो ठीक ही है क्योंकि क्षमासे क्या क्या नहीं होता ? जब मुवर्ण वर्मानो दम था तब पता चला तब उगने प्रतिज्ञा की कि मैं विद्युच्चोरका निग्रह अवश्य ही करूंगा- उमे अवश्य ही माग्गा । यह प्रतिज्ञा रखनेवाले हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव देव दक्षिणो अवधिभागमे जा गी, वे शीघ्र ही गयमीका रूप बनाकर पुनके पाग पहुँचे, दया

१-भारती ४०, १०, १०, १०, १० । २-मुनीशित १० । ३-धरमुनि कुबेरप्रियम् । ४-कुबेरप्रियम् । ५-कुबेरप्रियम् । ६-प्रियाय वृत्तान्तम् । ७-प्रियदत्ता । ८-सामुत्पन्नता । ९-सती १० । १०-पादपादय सुवाय । ११-गुणवतीविक्रामम् । १२-दीक्षामपदीम् । १३-पञ्चमम् । १४-विद्युच्चोरस्य । १५-नगरप्रियम् । १६-नगरप्रियम् । १७-नगरप्रियम् । १८-प्रियदत्ता । १९-प्रियदत्ता । २०-प्रियदत्ता । २१-प्रियदत्ता । २२-प्रियदत्ता । २३-प्रियदत्ता । २४-प्रियदत्ता । २५-प्रियदत्ता । २६-प्रियदत्ता । २७-प्रियदत्ता । २८-प्रियदत्ता । २९-प्रियदत्ता । ३०-प्रियदत्ता । ३१-प्रियदत्ता । ३२-प्रियदत्ता । ३३-प्रियदत्ता । ३४-प्रियदत्ता । ३५-प्रियदत्ता । ३६-प्रियदत्ता । ३७-प्रियदत्ता । ३८-प्रियदत्ता । ३९-प्रियदत्ता । ४०-प्रियदत्ता । ४१-प्रियदत्ता । ४२-प्रियदत्ता । ४३-प्रियदत्ता । ४४-प्रियदत्ता । ४५-प्रियदत्ता । ४६-प्रियदत्ता । ४७-प्रियदत्ता । ४८-प्रियदत्ता । ४९-प्रियदत्ता । ५०-प्रियदत्ता । ५१-प्रियदत्ता । ५२-प्रियदत्ता । ५३-प्रियदत्ता । ५४-प्रियदत्ता । ५५-प्रियदत्ता । ५६-प्रियदत्ता । ५७-प्रियदत्ता । ५८-प्रियदत्ता । ५९-प्रियदत्ता । ६०-प्रियदत्ता । ६१-प्रियदत्ता । ६२-प्रियदत्ता । ६३-प्रियदत्ता । ६४-प्रियदत्ता । ६५-प्रियदत्ता । ६६-प्रियदत्ता । ६७-प्रियदत्ता । ६८-प्रियदत्ता । ६९-प्रियदत्ता । ७०-प्रियदत्ता । ७१-प्रियदत्ता । ७२-प्रियदत्ता । ७३-प्रियदत्ता । ७४-प्रियदत्ता । ७५-प्रियदत्ता । ७६-प्रियदत्ता । ७७-प्रियदत्ता । ७८-प्रियदत्ता । ७९-प्रियदत्ता । ८०-प्रियदत्ता । ८१-प्रियदत्ता । ८२-प्रियदत्ता । ८३-प्रियदत्ता । ८४-प्रियदत्ता । ८५-प्रियदत्ता । ८६-प्रियदत्ता । ८७-प्रियदत्ता । ८८-प्रियदत्ता । ८९-प्रियदत्ता । ९०-प्रियदत्ता । ९१-प्रियदत्ता । ९२-प्रियदत्ता । ९३-प्रियदत्ता । ९४-प्रियदत्ता । ९५-प्रियदत्ता । ९६-प्रियदत्ता । ९७-प्रियदत्ता । ९८-प्रियदत्ता । ९९-प्रियदत्ता । १००-प्रियदत्ता ।

द्विप्ररूप समावाय निगद्य निजयुत्तरम् । प्रदायाभरण तस्मै पराद्वयं स्वपद गतो ॥२५५॥
 कदाचिद् वरतवियये सुसीमानगरे मूने । शिववोयस्य कंजल्यम् उदवाञ्जतधातित ॥२५६॥
 शक्रप्रिये शची मेनका च तत्रा जितेदवरम् । समाश्रित्य सृरापीश स्थिते प्रदनात् सुरेसितु ॥२५७॥
 श्रयं व सप्तमेगिहं प्राक् समात्थाञ्जवने । नाम्ना पुण्यवती सान्त्या प्रयना पुष्पपालिता ॥२५८॥
 कुसुमावचयासस्ते वने सर्पाग्निहेतुना । पूते देव्यावजायेतामित्याहासी स्म तीर्यकृत् ॥२५९॥
 प्रभावनीचरो देशे श्रुत्वा देवश्च तत्पति । स्वपूर्वंभवसन्ध्वं च तत्रागाता सभावने ॥२६०॥
 निजान्यजन्ममौल्यानु नूतदेसाग्निजेच्छ्रया । श्रालोक्यन्तो तत्सर्पसरोवणसमोपयो ॥२६१॥
 सह सायने भीमाप्य साऽनु दृष्ट्वा समागतम् । विनयेनाभिवन्द्यै धर्मं तौ समपूच्छताम् ॥२६२॥
 मुनिस्तद्वचन श्रुत्वा नाह धर्मोपदेशने । सर्पागमार्यवित्ताप्येज्जमर्षो नवस्यत ॥२६३॥
 प्ररूपयिष्यते किञ्चित् स मुष्मदनुरोधने । मया तथापि श्रोतव्यं यथाशक्त्यवधानवत् ॥२६४॥
 इति सम्पत्सत्त्वाप्रदानादि धावकाश्रयम् । यमादियत्तिसन्ध्वं धर्मं गतिचतुष्टयम् ॥२६५॥
 तद्वैतफलपर्यन्तं भुक्तिमक्तिनिबन्धनम् । जोऽनादिद्रव्यतत्त्व च यथावत् प्रत्यपादयत् ॥२६६॥

धारण करनेवाले उन देवदेवियोने धर्मकथाओ आदिके द्वारा तत्त्वश्रद्धान कराकर उसका शोध दूर किया और अन्तमें अपना दिव्यरूप प्रकटकर अपना सब हाल कहा तथा उसे बहुमूल्य आभूषण देकर दोनो ही अपने स्थानपर चले गये ॥२४७-२५५॥ किसी एक दिन वत्स देशमें सुसीमानगरीके समीप घातिया कर्म नष्ट करनेवाले शिवघोष मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥२५६॥ उस उत्सवमें शची और मेनका नामकी देवागनाए भी इन्द्रके साथ आई और श्रीजितेन्द्रदेवको नमस्कारकर इन्द्रके पास ही बैठ गईं । इन्द्रने भगवानुसे पूछा कि ये दोनो किस कारणसे देविया हुई है ? तब तीर्यं वर देव कहने लगे कि दोनो ही पूर्वभवमें मालिनकी लडकिया थी, पहलीका नाम पुष्पपालिता था और दूसरीका पुष्पवती । इन दोनोने आजसे सातवें दिन पहले श्रावकन्नत लिये थे । एक दिन ये वनमें फूल तोड़नेमें लगी हुई थी कि सर्परूपी अग्निके कारण मर गईं और मरकर देविया हुईं हैं ॥२५७-२५९॥ हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव जो देवदेवी हुए थे उन्होने भी उम समय समवगरणमें अपने पूर्वभवके सम्बन्ध सुने और फिर दोनो ही सभाभूमिसे निकलकर इच्छानुसार पूर्वभव मन्ध्वी सुशानुभवतके स्थानोको देखते हुए सर्पसरोवरके समीपवाले वनमें पहुँचे ॥२६०-२६१॥ उम वनमें अपने सघके साथ साथ एक भीम नामके मुनि भी आये हुए थे, दोनोने उन्हें देखकर विनयपूर्वक नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा ॥२६२॥ उनके वचन सुनकर मुनि कहने लगे कि अभी नवदीक्षित हैं, धर्मका उपदेश देना तो समस्त शास्त्रोना अर्थ जाननेवाले मुनियोना कार्य है इगलिये यद्यपि मैं धर्मोपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूँ तथापि तुम्हारे अनुरोधसे शक्तिके अनुगार कुछ कहना हूँ तुम लोगोको सावधान होकर सुनना चाहिये ॥२६३-२६४॥ यह कहकर उन्होने मन्ध्वगण तथा सत्त्वाप्रदान जादि श्रावक मन्ध्वी और यम आदि मुनि सम्बन्धी धर्मका निरूपण किया । चारो गनिया, उनके कारण और फल, स्वर्ग मोक्षने निदान एव जीवादि द्रव्य और तत्त्व इन

१ दिव्य रूप स०, प०, ६० । २ नमुन्यग्रम् । ३ इन्द्रस्य वानरे । ४ दम पूर्वजन्मनि के इति द्रव्य प्रदनात् तीर्यंशत् । ५ आ गणनिजान पूर्वमिच्छते । ६ पूर्वजन्मनि । ७ मन्ध्वरूपीह । ८ सान्त्या स० । ९ पुत्राङ्गणनाग्नि वने पुत्राङ्गणोत्सुमावाचार्यमात्र । १० अग्निगति-धारणेन । ११ मयवगन्ताम् । १२ क्विचिद्विदितेन । १३ धर्म । १४ विद्याविशेषम् । १५ स्वयम् । १६ मुनिधारणम् ।

तच्चभ्रुत्वा पुनरप्याभ्या भवता केन हेतुना । प्रत्रय्येत्यनुमुक्तोऽसौ यस्तु 'प्रयान्तयान् मुनि ॥२६७॥
 विदेहे पुष्कलावत्या नगरी पुण्डरीकिणी । तत्राह भीमनामाऽऽत् स्वपापाद् दुर्गते' कुले ॥२६८॥
 श्रुत्वा घर्मं ततो लेभे गृहिमूलगुणाष्टकम् ॥२६९॥
 तज्ज्ञात्वा मत्पिता पुत्र किमेभिर्दुष्करैर्वृथा । दारिद्र्यकर्ममालिप्तदेहाना' निष्कलैरिह ॥२७०॥
 अताप्येतानि दास्यामस्तस्मै स्वर्लोकिकाङ्क्षिणे । ऐहिक फलमिच्छामो भवेद्येनेह जीविका ॥२७१॥
 यत दत्तवत् स्थान तस्य मे वशयत्यसौ । मामवादीद् गृहीत्वैनम्' भ्रात्रजग्रहमन्तरे ॥२७२॥
 वज्रकेतोर्महावीर्या देवतागृहकृष्कुटम् । भास्वत्किरणसशोष्यमाणधान्योपयोगिनम्' ॥२७३॥
 पसो हृतवतो दण्ड जिनदेवार्पित' घनम् । लोभादपह्लु वानस्य' घनदेवस्य दुर्मते ॥२७४॥
 रसतोत्पादन हारम् अन्धर्ममणिनिर्मितम् । श्रेष्ठिन प्राप्य चीर ण गणिकार्यं समर्पणात् ॥२७५॥
 रतिपिङ्गलसप्तस्य शूले तलवर्षणम् । निशि मातु कनीयस्या कामनिर्मुत्सविद' ॥२७६॥
 पुत्र्या गेह गतस्याद्गच्छेदन पुरगक्षिण' १ क्षेत्रलोभाभिजे ज्येष्ठे मृते दण्डहृते' सति ॥२७७॥
 लोलस्यान्वयसप्तस्य' विलाप' देशनिर्गमे । द्यूते सागरदत्तेन प्रभूते निर्जिते घने ॥२७८॥

सबका भी ययार्थ प्रतिपादन किया ॥२६५-२६६॥ यह सुनकर उन देव-देवियोंने फिर पूछा कि आपने किस कारणसे दीक्षा धारण की है इस प्रकार पूछे जानेपर मुनिराज कहने लगे ॥२६७॥

विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें एक पुण्डरीकिणी नगरी है वहापर मैं अपने पापोंके कारण एक अत्यन्त दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ था । मेरा नाम भीम है ॥२६८॥ किसी अन्य दिन थोड़ी सी काललब्धि आदिके निमित्तसे मैं एक मुनिराजके पास पहुँचा और उनसे घर्मश्रवण कर मैंने गृहस्थोंके आठ मूल गुण धारण किये ॥२६९॥ जब हमारे पिताको इस बातका पता चला तब वे कहने लगे कि 'दरिद्रतारूपी कीचडसे जिनका समस्त शरीर लिप्त हो रहा है ऐसे हम लोगोंको इन व्यर्थके कठिन व्रतोंसे क्या प्रयोजन है । इनका फल इस लोकमें तो मिलता नहीं है, इसलिये आओ, ये व्रत स्वर्गलोककी इच्छा करनेवाले उसी मुनिके लिये दे आवे । हम तो इस लोकसम्बन्धी फल चाहते हैं जिससे कि जीविका चल सके ॥२७०-२७१॥ व्रत देने वाले गुत्खा स्थान मुझे दिखा' ऐसा मेरे पिताने मुझसे कहा तब मैं उन्हें साथ लेकर चला । रास्तेमें मैंने देखा कि वज्रकेतु नामके एक पुरुषको दण्ड दिया जा रहा है । पितासे मैंने उसका धारण पूछा, तब कहने लगे कि 'यह सूर्यकी किरणोंमें अपना अनाज सुखा रहा था और किसी मन्दिरका मुर्गा उसे खा रहा था । इसने उसे इतना मारा कि बेचारा मर गया । इसलिये ही लोग इसे दण्ड दे रहे हैं । आगे चलकर देखा कि जिनदेवके द्वारा रखी हुई धरोहरकी लोभमें छुटाने वाले दुर्वृद्धि घनदेवकी जीभ उखाड़ी जा रही है । कुछ आगे चलकर देगा कि' एक सेठने घरसे बहुमूल्य मणियोंका हार चुराकर वेश्याको देनेके अपराधमें रतिपिङ्गलको बोटवाला शूलीपर चढा रहा है, किसी जगह देता कि यामयागताये जिसका सब ज्ञान नष्ट हो गया है ऐसा एक बोटवाला रातमें अपनी माताकी छोटी बहिनकी पुत्रीके घर गया था इसलिये राज्यवर्माचारी उसका अंग बाट रहे हैं । दूगरी जगह देगा कि' माथंक् नाम धारण करनेवाले एक लोल नामके किसानने खेतके लोभमें अपने बड़े लहवोंको ठण्डोमें मार मारार मार डाला है, इसलिये उसे देशनिवालेकी राजा

१ देशवीर्याम् । २ पृष्ट । ३ प्रारभनेरम् । ४ अभूवम् । ५ दरिद्रे कुले । ६ अरमा-
 वम् । ७ विवरम् । ८ अदत्तम् । महापन्थमित्यर्थे । ९ जिनदेवास्येन दत्तम् । १० वञ्चयन् ।
 ११ निगमन्तानाम् । १२ तपवगम्य । १३ फोलेन हने । १४ लोभ इति नाम् । १५ रतिदेवाम् ।

दातु समुद्रदत्तस्य निदशकनेरानपे कृत्वा । परिवर्द्धितदुर्गन्धमधूमान्तर्बन्धितश्चरम् ॥२७६॥
 निरोधमभयोद्धो^१यथायामानन्ददेशानत्^२ । श्रद्धाकस्य नृपोरन्ध्यातिन^३ करत्तण्डनम् ॥२७७॥
 आनन्दराजपुत्रस्य^४ तदम्बुक्याज्वस्करादानम्^५ । मद्यविक्रयणे^६ बालं बन्धितदानरणेच्छया ॥२७८॥
 ह वा भूमौ विनिक्षिप्तवत्यास्त्वन्सविधानरम् । प्रकाशितवती स्वात्मने^७ शृङ्गधायाश्च^८ निप्रदम् ॥२७९॥
 पापाप्येतानि कर्मणि पश्यन् हितादिदोषत । अप्रामुत्र च पापस्य परिपाकं दुदत्तरम् ॥२८०॥
 श्रवणायानभिप्रेतप्रतत्यागौ^९ भवाद् भयात् । अप्रेपमोपमूपायोपादानेपहिमादिद्वयिता ॥२८१॥
 नाश्रवं किल्वमुद्रार्जप तनश्चित्रबधोचिन्ता । अस्मात्कमपि दोषेण्य^{१०} प्राक्चननात् पापकर्मणः ॥२८२॥
 इव तस्मात् समुच्चेप पुण्य सत्त्वंष्टितं पुष्ट । इति त मोचयित्वाऽग्रहीष दीक्षा मुमुक्षया^{११} ॥२८३॥
 सद्यो पुरुप्रसादेन सर्वशास्त्राभिरपारण । विदुद्धमतिरन्धयेद्यु समीपे सर्ववेदिन^{१२} ॥२८४॥
 मद्दृष्टपूर्वंजन्मानि समश्रीष^{१३} यथाभूतम् । कथयिष्याम्यहं तानि कर्तुं वा^{१४} कौतुक महत् ॥२८५॥
 इहैव पुष्कलावत्या विषये पुण्डरीकिणीम् । परिपालयति^{१५} प्रीत्या वसुपालमहानुजि ॥२८६॥
 विद्युद्देगाह्वय घोरम् श्रवण्य^{१६} करस्मितम् । धन स्वांष्टृत्य शोष च भवता दीयतामिति ॥२८७॥

दी जा रही है और वह विलाप कर रहा है। आगे जानेपर देखा कि नागरदत्तने जुआमें ममुद्रदत्तका बहुत सा धन जीत लिया था परन्तु ममुद्रदत्त देनेमें असमर्थ था इसलिये उमने शोषसे उसे बहुत देर तक दुर्गन्धित धुआके बीच घूममें बैठाल रखा है, किसी जगह देखा कि आनन्द महाराजके अभय घोषणा कराये जानेपर भी उनके पुत्र अगकने राजाका भेटा मारकर खा लिया है इसलिये उसने हाथ काटकर उसे विष्ठा खिलाया जा रहा है और अन्य म्यानपर देखा कि मद्य पीनेवाली स्त्रीने मद्य खरीदनेके लिये आभूषण लेनेकी इच्छासे किसी बालकको मारकर जमीनमें गाड़ दिया था, वह यह समाचार अपने पुत्रके कह रही थी कि कि सी राज कर्मचारीने उसे मुन लिया इसलिये उसे दण्ड दिया जा रहा है। हिंसा आदि दोषोसे उत्पन्न हुए इन पापकार्योंको देखकर मने निश्चय किया कि पापका फल इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह बुरा होता है। मने सप्तारके भयसे ब्रत छोड़ना उचित नहीं समझा। मैं माचने लगा कि हिंसा, भ्रूट, चोरी, परस्त्रीसेवन आदिसे दूषित हुए पुण्योको इसी जन्ममें अनेक प्रकारके बध-व्यग्रनका दुःख भोगना पड़ता हो सो वात नहीं किन्तु परलोकमें भी वही दुःख भोगने पड़ते हैं, हमारी यह दृष्टिता भी तो पहलेके पापकर्मोंमें मिली है, इसलिये सदाचारी पुण्योको इस पुण्यका अधिकने अधिक मद्यय करना चाहिये यह सोचकर मने अपने पिताको छोड़कर मोक्षकी इच्छामें दीक्षा धारण कर ली है ॥२७२-२८६॥ गुरुने प्रसादने में शीघ्र ही सब धान्तरूपी ममुद्रका पारगामी हा गया और मेरी बुद्धि भी विदुद्ध हो गई। किसी अन्य दिन मने सर्वज्ञ देवके समीप दापोंमें भरे हुए अपने पूर्वजन्म सुने थे सो उमीके अनुसार आप योगीना वडा भारी कौतुक करनेके लिये उन्हें कहता हू ॥२८७-२८८॥

इसी पुष्कलावती देवकी पुण्डरीकिणी नगरीको राजा वसुपात्र वडे प्रेममें पालन करने थे ॥२८९॥ किसी एक दिन कोनवालने विद्युद्देग नामका चोर पकडा, उसके हाथमें जो धन था उसे लेकर कहा कि बाकीका धन और दो, धन न देनेपर रक्षकोंने उसे दण्ड दिया तब उमने

१ घोषणाया मयाम् । २ आनन्दान्धनूपस्य निदेशानत् । ३ एतत् (एतद्) घनत्वम् । ४ शृङ्गुक्त्वा इत्यपि पाठः । ५ न्यूनगणम् । ६ मद्यव्यवहारनिमित्तम् । ७ कर्मधातिसा मुत् । ८ मद्यविक्रयः । ९ अनिष्ठा व्रतत्यागो वन्धु धननुसन्धनत्याग इत्यर्थः । १० शिवापीनानुननायाश्चत्तव्युत्तरिषत् । रोपमोपमूपायापारिह्यादिभ्यश्चि । ११ कौतुकम् । १२ मारुत्तुचिच्छता । १३ मन्वन्त्य । १४ शृणुमि स्म । १५ यवना । १६ रमति सति । १७ वतापारा गृहीका

आरक्षणी 'निगुह्नीर्ष्वस्त विमतये' धनम् । इत्यद्रवीत् तं सोऽप्याह गृहीत न मयेति तत् ॥२६१॥
 विमतेरेव तद्गोहे दृष्टवोपायेन केनचित् । दण्डकारणिकं प्रोक्त मूत्ना प्राप्नोमिमतम् ॥२६२॥
 शकृतो भक्षण मल्लैस्त्रिंशन्मुष्ट्यभिताडनम् । सर्वस्वहरणं चतत्रय जीवितवान्दृष्ट्वा ॥२६३॥
 'स सर्वंमनुभवायात् प्राणान्ते नारकीं गतिम् । विद्युच्चोरस्तपया हन्यतामित्यारक्षको नृपात् ॥२६४॥
 लब्धादेशोऽप्यहं हन्मि' नैनं हिंसादिवर्जनम् । प्रतिज्ञात मया सायोरित्याज्ञा नाकरोदसी ॥२६५॥
 गृहीतोत्कीचं इत्येषं चोरारक्षकयोर्नृप । शृङ्खलाबन्धनं कृत्वा फारयामास निष्पृणम् ॥२६६॥
 त्वयाऽहं हेतुना केन हतोनेत्यनुयुक्तवान् । प्रतुष्टधारक्षक चोर सोऽप्येव प्रत्यपादयत् ॥२६७॥
 एतत्पुरममुष्येच रात्रिं पितरि रक्षति । गुणपालो महाश्रेष्ठी कुबेरप्रियतज्ञया ॥२६८॥
 श्रद्धेव नाटकाचार्यतनूजा नाट्यमालिका । आस्थायिद्वया भावेन स्थायिनात्युद्वसन् ॥२६९॥
 तदालोक्य महीपालो बहुविस्मयमागमत् । गणिकोत्पलमालाख्यत् विमप्रादश्चर्मोश्वर ॥३००॥
 श्रेष्ठिनोऽप्य 'सियोऽप्येद्यु प्रतिमायोगधारिण । सोपवासस्य पूज्यस्य गत्वा चातायितुं मन ॥३०१॥
 नाशकं तदिहाश्चर्ममित्याख्यद् भूभुजायि सा । गुणप्रिये वृणोऽत्रेति प्रोक्ता शौलाभिभरक्षणम् ॥३०२॥
 अमीष्टं मम देहीति तद्वत् व्रतमग्रहीत् । अन्यथा तद्गृहं सर्वरक्षिताख्य समागमत् ॥३०३॥

कहा कि मैंने बाकीका धन विमतिके लिये दे दिया है । जब विमतिसे पूछा गया तब उसने कहा दिया कि मैंने नहीं लिया है, इसके बाद कौतवालने वह धन किसी उपायसे विमतिके घर ही देख लिया, उसे दण्ड देना निश्चित हुआ, दण्ड देनेवालोंने कहा कि या तो मिट्टीकी तीन थाली भरकर बिठो खानो, या मल्लोके तीस मुक्कोकी चोट सहो या अपना सब धन दो । जीवित रहनेकी इच्छासे उसने पूर्वोक्त तीनों दण्ड सहै और अन्तमे मरकर नरक गतिको प्राप्त हुआ । राजाने एक चाण्डालको आज्ञा दी कि तू विद्युच्चोरको मार डाल, परन्तु आज्ञा पाकर भी उसने कहा कि मैं इसे नहीं मार सकता क्योंकि मैंने एक मुनिसे हिंसादि छोड़नेकी प्रतिज्ञा ले रखी है ऐसा कहकर उसने जब राजाकी आज्ञा नहीं मानी तब राजाने कहा कि इसने कुछ घूस खा ली है इसलिये उसने क्रोधित होकर चोर और चाण्डाल दोनोंको निर्दयतापूर्वक साकलसे बधवा दिया ॥२८९-२९६॥ चोरने सतुष्ट होकर चाण्डालसे पूछा कि तूने किस कारणसे मुझे नहीं मारा तब चाण्डाल इस प्रकार कहने लगा कि ॥२९७॥ पहले इस नगरकी रक्षा इसी राजाके पिता गुणपाल करते थे और उनके पास कुबेरप्रिय नामका एक बडा सेठ रहता था ॥२९८॥ इसी नगरमें नाट्यमालिका नामकी नाटकाचार्यकी एक पुत्री थी एक दिन उसने राजसभामें रति आदि स्थायी भावो द्वारा शृङ्गारादि रस प्रकट करते हुए नृत्य किया ॥२९९॥ वह नृत्य देखकर राजाको बडा आश्चर्य हुआ तब उत्पलमाला नामकी बस्या बोली कि हे देव, इसमें क्या आश्चर्य है ? एक दिन अत्यन्त शान्त और पूज्य कुबेरप्रिय सेठने उनवामके दिन प्रतिमा योग धारण किया था, उस दिन मैं उनका मन विचलित करनेके लिये गई थी परन्तु उगमें समर्थ नहीं हो सकी । इस संसारमें यही बडे आश्चर्यकी बात है । यह सुनकर राजाने बडा कि 'हे गुणप्रिये ! तुझे गुण बहुत प्यारे लगते हैं इसलिये जो इच्छा हो सो माग ।' तब उगने बडा कि मुझे शीलव्रतकी रक्षा करना इष्ट है यही वर दीजिए राजाने वह वर उगे

१ तनवर । २ पिष्टं पुरुं । ३ विमतिनामधेयाय । ४ चोर । विमतिरपि । ५ धनम् ।

६ धारणेन 'पुराहिनादिवर्मचारिभिरिचर्यं । ७ मूषस्य । 'उच्चारवहसरो नाम चट्टम् । पुरीय उत्तरोव
 मूषवत्तमगयो मिष्टादिनी द्विजाम् । इयभियानात् । ८ विमति । ९ न यथ वरोगि । १० 'तत्र
 उत्राव धामिप, इयन्धिनात् । ११ तनवर । १२ पिष्टुप यथा भवति तथा । १३ प्रतुष्ट्या
 ५०, ५०, ६०, ५० । १४ आस्था । १५ श्रेष्ठिनोऽप्ययम् १०, ५०, ६०, ५० । १६ तमयोऽप्यु-
 पमम् । १७ चाण्डाल प्रायेण । १८ उपायमात्रागृहम् ।

रात्री तलवरो दृष्ट्वा तं बाह्याऽऽति तेन' तत् । 'प्रतिपादनवेलायामेवायान्मन्त्रिणः सुतः ॥३०४॥
 नृपतेर्मथुनो नाम्ना पृथुघोस्तं निरोक्ष्य सा । मञ्जूपायां विनिक्षिप्य गणिका सर्वरक्षितम् ॥३०५॥
 त्वया मदीयामरणं सत्यवत्यं समर्पितम् । त्वद्वनगिन्यं तदानेयमित्याह नृपर्मथुनम् ॥३०६॥
 सोऽपि प्राक् 'प्रतिपाद्यंतद् अनग्रहणसंश्रुतेः । प्रातिपत्यमगादीर्ष्यावान् द्वितीयदिने पुनः ॥३०७॥
 साक्षिणं परिवर्त्येनं मञ्जूपास्यं महोपतेः । सन्निवी याचिनो वित्तम् श्रमावृत्तमालया ॥३०८॥
 न गृहीतं मयेत्यस्मिन्मिथ्यावादिनि भूमजा । पृष्ठा सत्यवती तस्य पुरस्तान्मिक्षिपद्वनम् ॥३०९॥
 मथुनाय नृपः कृष्णा खलोऽयं हन्यन्नामिति । आत्तापयत्यदातीतुं स्वान् युक्तं तन्पापवर्तितः ॥३१०॥
 'पठन्तु नौग्रसद्वर्गशास्त्रसंघवणाद् द्रुतम् । अन्वेष्युः प्राक्तनं जन्म विदित्वा शममागते ॥३११॥
 यागहस्तिति मांसस्य पिण्डदानमनिच्छति । तद्वीक्ष्योपायविच्छेद्यो ष्ठी विवृद्धयानेकपेदागितम् ॥३१२॥
 सापिण्डपयोमिश्रशाल्योदकसमर्पितम् । पिण्डं प्रायोजयत्सोऽपि द्विरदस्तमुपाहरत् ॥३१३॥
 तदा तुष्ट्वा महीनायो यूपोऽवेष्टं तवेति तम् । प्राह पदचाद् ग्रहीष्यामोत्पन्नमुपेत्य स्थितः स तु' ॥३१४॥
 सचिबस्य' सुतं दृष्ट्वा नोयमानं दया नृपात् । वरमादाय तदधातात् दुर्वृत्तं तं ह्यमोचयत् ॥३१५॥

दिया और उस दिनसे उसने शील व्रत ग्रहण कर लिया । किसी दूसरे दिन सर्वरक्षित नामका कोतवाल रातके समय उसके घर गया, उसे देखकर उत्पलमालाने उससे कहा कि आज मैं बाहिर की हूँ—रजस्वला हूँ। इधर इन दोनोंकी यह बात चल रही थी कि इतनेमें ही मंत्रीका पुत्र और पृथुघो नामका राजाका साला आया, उसे देखकर उत्पलमालाने सर्वरक्षितको एक संदूकमें छिपा दिया और राजाके सालसे कहा कि आपने जो मेरे आभूषण अपनी बहिन सत्यवती के लिये दिये थे वे लाइये। उसने पहले तो वह दिया कि हाँ अभी लाता हूँ परन्तु बादमें जब उसने सुना कि उसने शील व्रत ले लिया है तब वह ईर्ष्या करता हुआ प्रतिकूल हो गया। दूसरे दिन वह वेश्या सन्दूकमें बैठे हुए कोतवालको गवाह बनाकर राजाके पास गई और वहाँ जाकर पृथुघोसे अपना घन मागने लगी ॥३००-३०८॥ पृथुघोने राजाके सामने भी झूठ कह दिया कि मैंने इसका घन नहीं लिया है। जब राजाने सत्यवतीसे पूछा तो उगने मग्न पन लाकर राजाके सामने रख दिया ॥३०९॥ यह देखकर राजा अपने सालेपर बहुत क्रोधित हुआ, उमने अपने नौकरोंको आज्ञा दी कि यह दुष्ट शीघ्र ही मार डाला जाय। सो ठीक ही है क्योंकि न्याय-मार्गमें चलनेवालेको यह उचित ही है ॥३१०॥ तिसी एक दिन पाठ करने हुए मुनिराजसे धर्मशास्त्र सुनकर राजाके मुख्य हाथीको अपने पूर्व भवना स्मरण हो आया, वह अत्यन्त शान्त हो गया और उमने मासका पिण्ड लेना भी छोड़ दिया, यह देख आचार्योंके जानने-वाले सेठने हाथीकी सब चेष्टाएं समझकर धी, गुह और दूध मिला हुआ गांठि चाबखोरा भात उमने सानेके लिये दिया और हाथीने भी वह शुद्ध भोजन खा लिया ॥३११-३१३॥ उन समय संतुष्ट होकर राजाने कहा कि जो तुम्हें दृष्ट हो सो मागो। मेरे देहा-श्रेच्छा यह वर अभी अपने पास रखिये, पीछे कभी ले लूंगा, ऐसा कहकर वह मेरे मुँहसे गूँने लगा ॥३१४॥ इसी समय मंत्रीका पुत्र मारनेके लिये ले जाया जा रहा था उसे देखकर मेरेको बहुत शोक हुआ और उसने राजाने अपना पहिलेका रक्ता हुआ वर मागकर उस दुर्गचारी मंत्रीके दुष्टों

श्रेष्ठिनंय निकारोऽयं^१ 'ममाकारोत्थमंस्त सः । पापिनामुपकारोऽपि सुभुज्जगप्यपापते ॥३१६॥
 अन्येद्युर्मयुनो रासः स्वेच्छया विहरन् धने । ऐचरागमुद्रिकामापात् 'कामरूपयिधायिनीम् ॥३१७॥
 करारुद्रगुलो धिनिक्षिप्य तां यस्तोः स्वकनीयसः^२ । सद्रकल्प्य श्रेष्ठिनो^३ रूपं सत्ययत्या निर्येतनम् ॥३१८॥
 प्रवेश्य (प्रविश्य) पापधी राजसमीपं स्वयमास्थितः^४ । यत्तु गृहीतश्रेष्ठी स्वरूपं बोध्य गृहीपतिः ॥३१९॥
 श्रेष्ठी किमर्थमायातोऽज्जाल^५ इत्यवदत्तदा । अनतमज्ञोऽयमायातः पापी सत्यवतीं प्रति ॥३२०॥
 भवनतलसंतत इति पौयुनिशोऽश्रवीत् । तद्वाक्यादपरोक्ष्येयं तमेयाह प्रहृण्यताम् ॥३२१॥
 श्रेष्ठी तवेति श्रेष्ठी च तस्मिन्नेव दिने गिधि । स्वगृहे प्रतिमायोगधारको भावयन् स्थितः ॥३२२॥
 पृथुधीस्तमवर्द्धभ्य^६ गृहीत्वा घोषयन् जने । अपराधमसततं^७ च नीत्वा प्रेतमहीतलम् ॥३२३॥
 आरक्षककरे हनुम् अपर्यामास पापभावं । सोऽपि राजनिवेशोऽयमित्य^८ ह्यसिना द्रवम् ॥३२४॥
 तस्य वक्षस्थले तत्र प्रहारो मणिहारताम् । प्राप शीलवती भक्तस्याहंत्परमदेवते ॥३२५॥
 दण्डनादपरोक्ष्यास्य^९ महोत्पातः पुरेऽजनि । क्षयः स येन सर्वेषां कि नाद्रुष्टवयाद् भवेत् ॥३२६॥
 नरेशो नागराश्चैतद् झालीक्य भयधिह्वलाः । तमेव शरणं गन्तुं श्मशानाभिमुखं ययुः ॥३२७॥
 तदोपेतर्गनिर्णयो विस्मयद्राकवासिनः । शीलप्रभावं व्याप्यं यणिग्वर्यमपूजयन् ॥३२८॥

छुड़वा दिया ॥३१५॥ परन्तु मंत्रीके पुत्रने समझा कि मेरा यह तिरस्कार सेठने ही कराया है, सो ठीक ही है क्योंकि पापी पुरुषोंका उपकार करना भी सांपको दूध पिलानेके समान है ॥३१६॥ किसी अन्य दिन वह राजाका झाला अपनी इच्छासे वनमें घूम रहा था, उसे वहाँ एक विद्याधरसे इच्छानुसार रूप बना देनेवाली अंगूठी मिली ॥३१७॥ उसने वह अंगूठी अपने छोटे भाई वसुके हाथकी अंगुलीमें पहना दी एवं उसका सेठका रूप बनाकर उसे सत्यवतीके घर भेज दिया । और पाप बुद्धिको धारण करनेवाला पृथुधी स्वयं राजाके पास जाकर बैठ गया । सेठका रूप धारण करनेवाले वसुको देखकर राजाने कहा कि 'यह सेठ असमयमें वहाँ क्यों आया है ?' उसी समय पृथुधीने कहा कि 'अपने आपको नहीं जाननेवाला यह पापी कामरूपी अग्निसे संतप्त होकर सत्यवतीके पास आया है' इस प्रकार उसके कहनेसे राजाने परीक्षा किये बिना ही उसी पृथुधीको आज्ञा दी कि तुम सेठको मार दो । सेठ उस दिन अपने घरपर ही प्रतिमायोग धारण कर वस्तुस्वरूपका चिन्तन कर रहा था ॥३१८-३२२॥ पृथुधीने उसे वहीं कसकर बांध लिया और जो अपराध उसने किया नहीं था लोगोंमें उसकी घोषणा करता हुआ उसे श्मशानकी ओर ले गया ॥३२३॥ वहाँ जाकर उस पापीने उसे मारनेके लिये चाण्डालके हाथमें सीप दिया । चाण्डालने भी यह राजाकी आज्ञा है, ऐसा समझकर उसपर तलवारका मजबूत प्रहार किया ॥३२४॥ परन्तु क्या ही आश्चर्य था कि श्री अरुन्धत परमदेवके भक्त और शीलव्रत पालन करनेवाले उस सेठके वक्षस्थलपर वह तलवारका प्रहार मणिपोंका हार बन गया ॥३२५॥ बिना परीक्षा किये उस सेठको दण्ड देनेसे नगरमें ऐसा बड़ा भारी उपद्रव हुआ कि जिससे सर्वका क्षय हो सकता था सो ठीक ही है क्योंकि उज्ज्वल पुरपोंके वधसे क्या नहीं होता है ? ॥३२६॥ राजा और नगरके सब लोग यह उपद्रव देखकर भयसे भवड़ाये और उसी सेठकी शरणमें जानेके लिये श्मशानकी ओर दौड़े ॥३२७॥ जब गयं उसकी शरणमें पहुंचे तब कही वह उपद्रव दूर हुआ, स्वर्गमें रहनेवाले देवोंने बड़े आश्चर्य

१ तिरस्कारः कथ्यता च । २ क्रियते स्म । ३ -मुपकारोऽयं अ०, सं० । ४ -माप काम-६०, अ०, सं० । ५ वगुनामपेयस्य । ६ निजानुजस्य । ७ बुद्धेरप्रियस्य । ८ नमीममागत्य स्थितः । ९ अवैलायाम् । १० यथातारणेन बद्ध्या । ११ अविद्यमानम् असात्य वा । १२ हिनस्ति स्म । १३ श्रेष्ठिनः ।

अपरोक्षितकल्याणाम् अस्माकं क्षन्तुमर्हसि । इति तेषु भयप्रस्तमानतेषु नृपादियु ॥३२६॥
 अस्मदजितदुष्कर्मपरिपाकादभूदिवन् । विषादस्तान् कर्तव्यो न भुवद्भिरिति ध्रुवम् ॥३३०॥
 वैमनस्यं निरस्यंषां श्रेष्ठीं प्रष्टः^१ क्षमावताम् । सर्वः पुरस्त्वृतः पूज्यो विभूत्या प्राविशान् पुरम् ॥३३१॥
 एवं प्रयाति कालेऽस्य वारिषेणां सूतानं नृपः । वसुपालाय पुत्राय स्वस्यादत्त विभूतिमत्^२ ॥३३२॥
 श्रयान्वेषः सनाभयं पृष्ठवान् श्रेष्ठिनं नृपः । विरट्वं किं न वाऽज्योग्यं धर्मादीनि^३ चतुष्टयम् ॥३३३॥
 परस्परानुकूलास्ते^४ सम्पद्वृष्टिषु साययु^५ । न मिव्यादृष्टिविति^६ प्राह श्रेष्ठी धर्मादित्त्ववित् ॥३३४॥
 इति तद्वचनाद् राजा मुष्ट्युज्जीष्टं त्वबोध्यताम् । दास्यामीत्याह सोऽप्याख्यज्जातिमृत्युशपाविति^७ ॥३३५॥
 न मया तद्द्वयं साध्यमिति प्रत्याह नृपतिः । मां भुञ्च साधयामीति तमबोवद्वणिश्वरः ॥३३६॥
 तदाकर्ण्य गृहत्यागम् अहं च सह^८ तिष्ठन्ता । करोमि किन्तु मे पुत्रा बालका इति चिन्तयन् ॥३३७॥
 सद्योभिप्राण्डकोद्भवतान् मसिकादानतत्परान् । क्षयापोडाहतान् वीक्ष्य सहसा गृहकोकिलान् ॥३३८॥
 सर्वेषु जीवनोपायं जन्तवो जानतेतराम् । स्वेषां विनोपदेशेन^९ तत्किं मे बलवित्तया ॥३३९॥
 इत्यतो वसुपालाय दत्त्वा राज्यं भयाविधि । विषाय योवराज्यं च श्रीपालस्य सप्तदशम् ॥३४०॥

से शीलव्रतके प्रभावका वर्णन कर उस सेठकी पूजा की ॥३२८॥ जिनके मन भयसे उद्विग्न हो रहे हैं ऐसे राजा आदिने सेठके कहा कि हम लोगोंने परीक्षा किये बिना ही कार्य किया है अतः आप हम सबको क्षमा कर दीजिये, ऐसा कहनेपर क्षमा धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ सेठने कहा कि यह सब हमारे पूर्वोपार्जित अनुभूत कर्मके उदयसे ही हुआ है । निश्चयसे इस विषयमें आपको कुछ भी विषाद नहीं करना चाहिये ऐसा कहकर उसने सबका वैमनस्य दूर कर दिया । तदनन्तर सब लोगोंके द्वारा आगे किये हुए पूज्य सेठ-कुबेरप्रियने बड़ी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥३२९-३३१॥ इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर वैभवशाली राजाने वारिषेणा नामकी इसी सेठकी पुत्री अपने पुत्र वसुपालके लिये ग्रहण की ॥३३२॥ किसी अन्य दिन राजाने सभाके बीच सेठके पूछा कि ये धर्म आदि चारो गुणपार्थ परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध हैं अथवा नहीं ? ॥३३३॥ तब धर्म आदिके तत्त्वको जाननेवाले सेठने कहा कि सम्पदादृष्टि सज्जनोंके लिये तो ये चारों ही पुत्रपार्थ परस्पर अनुकूल हैं परन्तु मिव्यादृष्टियोंके लिये अनुकूल नहीं हैं ॥३३४॥ सेठके इन वचनोसे राजा बहुत ही सतुष्ट हुआ, उसने सेठसे कहा कि जो कुण्डे दृष्ट हो, प्रायः उसे में दूंगा, तब सेठने कहा कि मैं जन्म-मरणपर स्वयं चारुत्तर दूँ ॥३३५॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि ये दोनों तो मेरे साध्य नहीं हैं तब वैश्यवर सेठने कहा कि अच्छा मुझे छोड़ दीजिये मैं स्वयं उन दोनोंको मिट्ट कर लूँगा ॥३३६॥ यह सुनकर राजाने कहा कि तैरे साथ में भी घर छोड़ना परन्तु मेरे पुत्र अभी बालक हैं—छोटे छोटे हैं इन प्रकार राजा विचार कर ही रहा था कि ॥३३७॥ अचानक उसकी दृष्टि छिपकलीके उन वच्चोपर पड़ी जो उसी समय विदीर्ण हुए अंठेने निकले थे, भूयकी पीठाने छटपटा रहे थे और इनलिये ही मन्त्रियोंमें एकदनेमें तत्पर थे, उन्हें देखकर राजा मोचने लगा कि अपनी अपनी आजीविकाके उपाय तो सभी जीव बिना किसीके उपदेशके अपने आप अच्छी तरह जानते हैं इमन्त्रिये मुझे अपने छोटे छोटे पुत्रोकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? यही विचार कर गुणपाल महाराजने वसुपालके लिये विधिपूर्वक राज्य दिया और श्रीपालको पट्ट नहिन सुवराज बनाया । तदनन्तर

१ चम्प-५०, सं० । २ मुमुक्षु । ३ पुरीम् सं० । ४ विभूतिमान् सं०, सं०, २० । ५ परमार्थ-
 वाममोक्षा । ६ ते धर्मादिय । ७ मज्जनेयु । ८ मिव्यादृष्टिषु । ९ धर्मापराधमोक्षव्यपदेशी ।
 १० जननमरणविनाशो ममेष्ट्याविति । ११ स्वया गृह । १२ तत्रने हस्तुदित्तमोमत्रावान् । १३ एत्
 वारिषान् ।

गुणपालमहाराज सखेरप्रियोग्रहीत् । बहुभिर्भूभुजं सार्यं तपो यतिवर त्रित ॥३४१॥
 श्रेष्ठ्यर्हिसाफलालोकानमयाऽप्यग्राहि तद्व्रतम् । तस्मात्त्व' न हूतोऽशीति' ततस्तुष्टाव' सोऽपि तम् ॥
 इत्युक्त्वा' सोऽग्रवीदेव' प्राक्' भूणालवतीपुरे । भूत्वा त्व' भवदेवाएयो रतिवेगासुवान्तयो ॥३४३॥
 बद्धवेरो निहन्ताऽभू' पारायतभवेऽप्यभू' । मार्जारं सन्मृति' गत्वा पुन' लखरजन्मनि ॥३४५॥
 विद्युच्चोरत्त्वमासाद्य सोपसर्गं मृति ध्यया । तत्पापापरखे दुःखम् अनुभूयामतस्तत ॥३४५॥
 श्रनेत्याखिलदवेद्युषत' ध्ययतवाग् विसर स्फुटम् । व्यधात् सुधी स्वदुस्तान्ति भीमसायु सुधाशितो ।
 त्रि प्राक् त्वन्मार्गितावावागिति' शुद्धिप्रयान्विती' । जातसद्वर्मसद्भाववावभिवन्द्य मुनि' गतो ॥३४७॥
 इति ध्याहृत्य' हेमाङ्गदामुजेद' च साऽग्रवीत् । भीम' सायु पुरे पुण्डरीविष्णु धातिघातनात् ॥३४८॥
 रम्ये शिवदक्षकरोद्याने पञ्चमज्ञानपूजित । तस्मिन्नास्त' समागत्य घतत्यो देवयोपित ॥३४९॥
 वन्दित्या धर्ममाकर्ष्य' पापादस्मत्पति' मृतः । त्रिलोकेश वदास्माक पति षोऽप्यो भविष्यति ॥३५०॥
 इत्यप्युच्यतसो' चाह पुरेऽस्मिन्नैव' भोजक' । सुरदेवा ह्यप्रस्तस्य वसुपेणा वसुनयरा ॥३५१॥

सेठ कुवेरप्रिय तथा अन्य अनेक राजाओके साथ साथ मुनिराजके समीप जाकर तप धारण किया ॥३३८-३४१॥ वह चाण्डाल कहने लगा कि सेठके अहिंसा व्रतका फल देखकर मैंने भी अहिंसा व्रत ले लिया था यही कारण है कि मैंने तुम्हें नहीं मारा है यह सुनकर उस विद्युच्चर चोरने भी उसकी बहुत प्रशंसा की ॥३४२॥

इतना कहकर वे भीम मुनि सामने बैठे हुए देव-देवियोसे फिर कहने लगे कि सर्वज्ञ देवने मुझसे स्पष्ट अक्षरोमें कहा है कि 'तू पहले मृणालवती नगरीमें भवदेव नामका वैश्य हुआ था वहा तूने रतिवेगा और सुकान्तसे वैर बाधकर उन्हें मारा था, मरकर वे दोनों कबूतर कबू तरी हुए सो वहा भी तूने विलाव होकर उन दोनोंको मारा था, वे मरकर विद्याधर विद्याधरी हुए थे सो उन्हें भी तूने विद्युच्चोर होकर उपसर्ग द्वारा मारा था, उस पापसे तू नरक गया था और वहाके दुःख भोगकर वहासे निकलकर यह भीम हुआ हू इस प्रकार उन बुद्धिमान् भीम मुनिने सामने बैठे हुए देव-देवियोके लिये अपना सब वृत्तान्त कहा ॥३४३-३४६॥ जिन्हें आपने पहले तीन बार मारा है वे दोनों हम हीं हैं ऐसा कहकर जिनके मन, वचन, काय-तीनो शुद्ध हो गये हैं और जिन्हें सद्वर्मकी सद्भावना उत्पन्न हुई है ऐसे वे दोनों देव देवी उन भीममुनिकी वन्दना कर अपने स्थानपर चले गये ॥३४७॥

यह कहकर हेमाङ्गदकी छोटी बहिन सुलोचना फिर कहने लगी कि एक समय पुण्डरी-विष्णी नगरीके शिवर नामके सुन्दर उद्यानमें धातिया वर्म नष्ट करनेसे जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे भीममुनिराज विराजमान थे, सभी लोग उनकी पूजा कर रहे थे, उसी समय वहापर चार देवियोने आकर उनकी वन्दना की, धर्मका स्वरूप सुना और पूछा कि हे तीन लोकके स्वामी, हम लोगोने पापसे हमारा पति मर गया है । कहिये—अब दूसरा पति कौन

१ तस्मात् कारणात् । २ एव तत्रवरोऽवादीत् । ३ तत्रवरवचनानन्तरम् । ४ स्तीति स्म ।
 ५ विद्युच्चोरः । ६ अहिंसाव्रतम् । तस्मात् त्व न हूतोऽशीति इत्युक्त्यैव सोऽप्येव प्रत्यपादपदित्यन्त सह सम्भय । ७ उग्रप्रचारण प्रतिपाद्य । स मुनि पुनरप्यात्मन सर्वज्ञेन प्रतिपादितनिजवृत्तक गुरदम्भ एषोराह । ८ वश्यमाणप्रचारेण । ९ पूर्वजन्मि । १० हे भीममुने, भवान् । ११ धातुव । १२ वपोतभवर्गि मार्जरी । १३ तयानिहन्ताऽमृतिनि सम्बन्ध । १४ इत्वा ल०, अ०, ए०, स०, इ० । १५ तद्वद्व्यस्तोविद्या परभवे । १६ अर्जन्मनि ए०, इ० । १७ सर्वज्ञोऽवन्तम् । १८ हिरण्यवर्मप्रभावतीचरो । १९ मनोवाक्काय मृदियुक्तो । २० भीममुनिम् । २१ उक्त्वा । २० सुतोपात् । २२ भीम' सायु' ए०, इ०, ल० । २३ आत्त रम । २४ भीमवर्जनी । २५ पुण्डरीविष्णुम् । २६ पातय' ।

धारिणी पृथिवी चेति चतस्रो योषित प्रिया । श्रीमती वीतशोभाया विमला वसन्तिका ॥३५२॥
 चतस्रश्चेदिकास्तासाम् अयेद्युस्ता वनान्तरे । सर्वा यतिवराभ्यासे पर्णे वानादिनाञ्जदुः ॥३५३॥
 तत्फलेनाद्भ्युते कल्पे प्रतीन्द्रस्य प्रिया श्रमात् । रतिपेणा सुसीमाख्या मुख्याया च सुखावती ॥३५४॥
 गुणमेति च देव्यस्ता यूय ताश्चेदिका पुन । चित्रपेणा फगाच्चित्रवेगा धनवती सती ॥३५५॥
 धनश्रीरित्यजापत वनदेवेषु^१ कन्यका । सुरदेवेष्व्यभूमूनां वा पिङ्गल पुररक्षन् ॥३५६॥
 स तत्र निजबोयेण प्रापद्भिगतवन्धनम् । मातुस्तत्सुरदेवस्य प्राप्ता या रात्रिसूनुताम् ॥३५७॥
 श्रीपालाख्यकृमारस्य ग्रहणे^२ कन्यमोक्षणे । सर्वेषां पिङ्गलाख्योऽपि भुवत सपस्य सम्प्रति ॥३५८॥
 भूत्वा बुधविमानेऽसौ^३ इहागत्य भविष्यति । स्वामी युष्माकमित्येतत्तच्चेतो हरण तदा ॥३५९॥
 परमार्यं कृत तेन^४ तथा गत्य मुनेर्वच^५ । पृष्टवानु^६ कन्य^७ कादचनम् । आत्मनो भाविन पतिम् ॥३६०॥
 पूर्वोक्तपिङ्गलाख्यस्य सूनुनाम्नाऽतिपिङ्गल । सोऽपि सन्यस्य युष्माक^८ रतिदायी भविष्यति ॥३६१॥
 इति तत्प्रोक्तमाकर्ष्य गत्वा^९ तत्सूजनाविधौ^{१०} । त्वात्ता निरोक्षणात्^{११} कामसम्मोहप्रहृम महत् ॥३६२॥
 रतिकूलाभिधानस्य^{१२} सविधान^{१३} मुने^{१४} श्रुतम्^{१५} । तत्पितुर्मणिनागादिदत्तस्य प्रवृत्त^{१६} तथा ॥३६३॥

होगा ? तव सर्वज्ञ-भीम मुनिराज कहने लगे कि इसी नगरमें सुरदेव नामका एक राजा था उसकी वसुपेणा, वसुधरा, धारिणी और पृथिवी ये चार रानिया थी तथा श्रीमती, वीतशोभा, विमला और वसन्तिका ये चार उन रानियोंकी दासिया थी । किसी एक दिन उन सजने वनमें जाकर किन्हीं मुनिराजके समीप दान आदिके द्वारा धर्म करना स्वीकार किया था । उन धर्मके फलसे वे अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्रकी देविया हुईं हैं । श्रमसे उनमें नाम इस प्रकार हैं- रतिपेणा, सुसीमा, सुखावती और सुभगा । वह देविया तुम्हारी सज हो, तथा तुम्हारी दासिया चित्रपेणा, चित्रवेगा, धनवती और धनश्री नामकी व्यन्तर देवोंकी कन्याएँ हुईं हैं । राजा सुरदेव मरकर पिङ्गल नामका कोतवाल हुआ है और वह अपने ही दोषसे कारागारका प्राप्त हुआ था, सुरदेवकी माता राजाकी पुत्री हुई है और श्रीपालकृमारके साथ उसका विवाह हुआ है । विवाहोत्सवके समय सज कैदी छोड़े गये थे उनमें पिङ्गल भी छूट गया था, अब मन्वास लेकर अच्युत स्वर्गमें उत्पन्न होगा और वही तुम सबका पति होगा । इधर मुनिराज ऐसे मनोहर वचन कह रहे थे कि उधर पिङ्गल सन्यास धारणकर अच्युत स्वर्गमें उत्पन्न हुआ और वहासे आकर उसने मुनिराजके वचन सत्य कर दिखाये । इनमें ही चारों व्यन्तर कन्याएँ आकर सर्वज्ञदेवसे अपने हीनहार पतिगो पूछने लगीं ॥३५८-३६०॥ मुनिराज कहने लगे कि पूर्वोक्त पिङ्गल नामका कोतवालके एज अनिपिङ्गल नामका पुत्र है वही सन्यास धारणकर तुम्हारा पति होगा ॥३६१॥ भीम केशवीने ये वचन सुनकर चारों ही देविया जाकर अति-पिङ्गलकी पूजा करने लगीं, उसे देपनेसे उन देवियोंकी कामका अधिव विचार हुआ था ॥३६२॥ उन देवियोंने रतिकूट नामके मुनिका चरित्र सुना, उनके पिता मणिनागद्रतका चरित्र सुना,

१ स्वीयुर्वन्ति स्म । २ व्यन्तरदेवयु । ३ शनवर । ४ विवाहोत्सव । ५ अच्युतविमानयो
 ६०, ५०, ५० । बुधविमाना इत्यपि पाठ । बुधविमानाधियति । ६ स्वामी युष्मानिजो घाटजन
 सह मन्वय । ७ पिङ्गलशरदेव । ८ कन्ययुक्तप्रकारण । (यमा) ९ मयन्वय । १० अन्तरम् ।
 ११ व्यन्तरकन्या । १२ भीमशक्तिनम् । १३ पुष्टय । १४ अतिपिङ्गलस्य समीप प्राप्य । १५ अति
 पिङ्गलस्य परिव्याविधौ । १६ विश्वनादिभ्यन्तरकन्यानाम् । तावाम् ५०, ५०, ५० । १७ कामसम्मोह
 प्रवर्षणं कृतम् । १८ रतिकूलाभिधानस्य पुराणम् । १९ व्यागारम् । २० नीमशक्ति-घाटान् ।
 २१ आगन्तम् । २२ रतिकूटस्य अन्तरम् । २३ अतिन्द्रम् ।

'सुषेतोश्चाखिले तस्मिन्सत्यभूते' मुनीश्वरम् । तां सर्वां परितोषेण गताः समभिवन्द्य तम् ॥३६४॥
 शायरमपि^१ तदा धन्वनाय तत्र गताधिदम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा गतो प्रीतिपरीतहृदयो दिवम् ॥३६५॥
 इत्यात्मीयभवावलीमनुगतैर्मान्यैर्मनोरञ्जनैः

स्पष्टं रस्खलितैः 'कलैरविरलैरव्याकुलैर्जल्पितैः'^२ ।

आत्मोपात्तशुभाशुभोदयवशोद्भूतोच्चनीचस्थितिम्^३ ।

ससर्पंद्शनाशुभूयितसभासभ्यान^४ सायभ्यधात्^५ ॥३६६॥

श्रुत्वा तां हृदयप्रियोक्तिमतुषकान्तो^६ रतागते यथा

ससञ्च^७ व्यकसत्तरां शरदि वा लक्ष्मीः सरःसश्रया ।

कान्तानां^८ यदनन्दुकान्तिरगलत्तद्वाग्दिनेशोद्गते^९ ।

अस्यानं^{१०} कृतमत्सरोऽसुखकरस्त्या^{११} ज्यस्ततोऽतो^{१२} युधेः ॥३६७॥

कान्तोऽभूद् रतिवेणया वणिगती पूर्वं सुकान्तस्ततः

सञ्जातो रतिवेणया रतिवरो गेहे कपोतो विशाम्^{१३} ।

सुकेतुका चरित्र सुना और सबके सत्य सिद्ध होनेपर वडे संतोपके साथ मुनिराजकी वन्दना कर अपने अपने स्थानोकी ओर प्रस्थान किया ॥३६३-३६४॥ उस समय हम दोनो भी मुनिराज की वन्दना करनेके लिये वहा गये और यह सब देख सुनकर प्रसन्नचित्त होते हुए स्वर्ग चले गये थे ॥३६५॥

इस प्रकार अपने द्वारा उपाजन किये हुए शुभ अशुभ कर्मोंके उदयवश जिसे ऊची नीची अवस्था प्राप्त हुई है और जिसने अपने दातोकी फैलती हुई किरणोसे समस्त सभाको सुशोभित कर दिया है ऐसी सुलोचनाने सब सभासदोको क्रमबद्ध मान्य, मनोहर, स्पष्ट, अस्खलित, मधुर, अविरल और आकुलता रहित वचनो द्वारा अपने पूर्वभवकी परम्परा कह सुनाई ॥३६६॥

हृदयको प्रिय लगनेवाले सुलोचनाके वचन सुनकर जयकुमार उस प्रकार सतुष्ट हुए जिस प्रकार कि सभोगके बादमे सन्तुष्ट होते । वह सभा उस तरह विकसित हो उठी जिस तरह वी शरदऋतुमें सरोवरकी शोभा विकसित हो उठती है । और सुलोचनाके वचनरूपी सूर्यके उदय होनेसे अन्य स्त्रियोके मुखरूपी चन्द्रमाओकी कान्ति नष्ट हो गई थी सो ठीक ही है क्योंकि अपोग्य स्थानपर वी हुई ईर्ष्या दुःख करनेवाली होती है इसलिये विद्वानोको ऐसी ईर्ष्या अवश्य ही छोड़ देनी चाहिये ॥३६७॥ सुलोचनाने जयकुमारसे कहा कि मैं पहले रतिवेगा थी और आप मेरे ही साथ मेरे पति सुकान्त वैश्य हुए, फिर मैं सेठके घर रतिवेणा कवूतरु हुई और आप मेरे ही साथ रतिवैर नामक कवूतरु हुए, फिर मैं प्रभावती विद्याधरी हुई और आप मेरे ही साथ हिरण्यवर्मा विद्याधर हुए उसके बाद मैं स्वर्गमें महादेवी हुई और आप मेरे ही साथ अतिशय

१ मुगालवनीपुराणे सुषेनोरपि धेष्टिन मुने गवाशाञ्चमुनिमिनि सम्बन्ध । एतन् कथात्रय ग्रन्थान्ते द्रष्टव्यम् । २ गत्योभूते १०, १०, ६०, १० । ३ प्रभावतीचरीहिरण्यवर्माचरपुरदम्पती । ४ सुन्दर । ५ गम्पुर्ण । ६ स्थितिः । ७ सुलोचना । ८ उवाच । ९ जय । १० सभा । ११ जयरय धीमतीनिषदाङ्गादिद्योपित्राम् । १२ सुलोचनावचनादिद्योस्ये सति । १३ दुःखतर । १४ मण्यत् । १५ वैश्यानाम् ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

कान्ते तत्राग्न्यदप्यस्ति प्रस्तुतं स्मर्यते त्वया । श्रीपालचक्रिसम्बन्धमित्यप्राक्षीत् स तां पुनः ॥१॥
 बाढं स्मरामि सौभाग्यभागिनस्तस्य वृत्तकम् । 'तवैवाद्योक्षितं' वेति सा प्रवक्तुं प्रचक्रमे ॥२॥
 जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्मिन् पूर्वस्मिन् पुण्डरीकिणी । नगरी नगरीवासी वासवस्यातिविधुता ॥३॥
 श्रीपालवसुपालाख्यौ सूर्याचन्द्रमसौ^१ च तौ । जित्वा महीं सहैवावतः^२ स्मेव नयविक्रमौ ॥४॥
 जननी, वसुपालस्य कुबेरश्रीदिनेऽन्यदा । वनपाले समागत्य केवलावगमोऽभवत् ॥५॥
 गुणपालमुनीशो^३ऽस्मत्पतेः^४ सुरगिराविति । निवेदितवति श्रान्त्वा पुरः सप्तपदान्तरम् ॥६॥
 प्रणम्य वनपालाय दत्त्वाऽस्तीं^५ पारितोषिकम् । पीराः सपर्यायं^६ सर्वेऽप्यायवृत्तिं^७ धोषणाम् ॥७॥
 विधाय प्राक् स्वयं प्राप्य भगवन्तमवन्दत । श्रीपालवसुपालौ च ततोऽनु समुदौ गतौ ॥८॥
 प्रमदाख्यं वनं प्राप्य^८ सद्भूमैरम्यमन्तरे । प्राग्जगत्पालचक्रेशो यस्मिन्व्यप्रोषं^९ पावने ॥९॥
 देवताप्रतिमालक्ष्ये स्थित्वा जग्राह संयमम् । 'तस्याघस्तात् समी'क्ष्येक्ष्यं'^{१०} प्रवृत्तां नृत्तमादरात् ॥१०॥
 तयोः^{११} कुमारः श्रीपालः पुष्यो नर्तयत्ययम् । अस्तु^{१२} स्त्रीवेपथयत्र स्त्री चेतुर्लूपवारिणी ॥११॥
 स्वादेव स्त्री प्रनृत्यन्ती नृत्तं युक्तमिदं भवेत् । इत्याह तद्वचः श्रुत्वा नटी मूर्च्छामुपागता ॥१२॥

यह सुनकर जयकुमारने सुलोचनासे फिर पूछा कि हे प्रिये, इस कही हुई कथामें श्रीपाल चक्रवर्तीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और भी है, वह तुम्हे याद है या नहीं ? सुलोचनाने कहा हां, सौभाग्यशाली श्रीपाल चक्रवर्तीकी कथा तो मुझे ऐसी याद है मानो मैंने आज ही देखी हो, यह कहकर वह उसकी कथा कहने लगी ॥१-२॥ इस जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि इन्द्रकी नगरी-अमरावतीके समान अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥३॥ सूर्य और चन्द्रमा अथवा नय और पराक्रमके समान श्रीपाल और वसुपाल नामके दो भाई समस्त पृथिवीको जीतकर साथ ही साथ उसका पालन करते थे ॥४॥ किसी एक दिन मालीने आकर वसुपालकी माता कुबेरश्रीसे कहा कि सुरगिरि नामक पर्वतपर आपके स्वामी गुणपाल मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर उसने सामने सात पैड चलकर नमस्कार किया, मालीको पारितोषिक दिया और नगरमें घोषणा कराई कि सब लोग पूजाकी सामग्री साथ लेकर भगवान्के दर्शन करनेके लिये चले, उसने स्वयं सबसे पहले जाकर भगवान्की वन्दना की । माताके पीछे ही श्रीपाल और वसुपाल भी बड़ी प्रसन्नतासे चले ॥५-८॥ मार्गमें वे एक उत्तम वनमें पहुँचे जो कि अच्छे अच्छे वृक्षांसे सुन्दर था और जिसमें देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी बट वृक्षके नीचे खड़े होकर महाराज जगत्पाल चक्रवर्तीने संयम धारण किया था । उसी वृक्षके नीचे एक दर्शनीय नृत्य हो रहा था, उसे दोनों भाई बड़े आदरसे देखने लगे ॥९-१०॥ देखते देखते कुमार श्रीपालने कहा कि यह स्त्रीका वेप धारण कर पुरुष नाच रहा है और पुरुषका रूप धारण कर स्त्री नाच रही है । यदि यह स्त्री स्त्रीके ही वेपमें नृत्य करती तो बहुत ही अच्छा नृत्य होता । श्रीपालकी यह बात सुनकर नटी मूर्च्छित

१ तवैवा-ज०, ग० । पर्याय- ल०, प०, इ० । २ प्रत्यसं वृत्तमिव । ३ चितौ ट० । मन्वी-
 जितौ । ४ यथाशक्त्याम् । ५ मुनीश्वर्य । ६ सुरगिरिस्त्वाम्नि पर्वते । ७ कुबेरश्री । ८ वृत्तया ।
 ९ यथाशक्त्याम् । १० नृत्तवृत्तः । ११ बट । 'न्यवेपथो यद्गान्द यतः' इत्यभिधानाम् । १२ बटवत् ।
 १३ आशीष्य । १४ दर्शनीयम् । १५ यद्गान्दानीश्वरयोः । १६ चेत् ।

उपायं प्रतिबोधेना तदा प्रथमपूर्वकम् । इति विज्ञापयामास ऋषिर्वाचि भविवचिप्रणम् ॥१३॥
 सुरम्यविषये श्रीपुराणिय श्रीवराहृष । तद्देवी श्रीमती तस्या सुता जयवतीत्यनूत् ॥१४॥
 तज्जानौ चक्रिणो देवी भाविनीत्यादिशब्दिद^१ । अभिज्ञान^२ च तस्यैतत् नटनट्योविर्वेत्ति^३ य ॥१५॥
 भेद स चक्रवर्तीति तत्परोक्षितुनागता । पुण्याद् वृष्टस्तनमरमाभिनिधिकल्पो यद्वृच्छया ॥१६॥
 अह प्रियरतिनामा^४ सुतेय नर्तको मम । ज्ञेया मदनवेगाख्या पुरुषाचारधारिणी ॥१७॥
 नटोऽय वासयो नाम ध्यान स्त्रीत्रेयधारक । तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तुष्ट्वा ता सन्तप्य ययोजितम् ॥१८॥
 गुरु बन्धितुमात्मोऽय गच्छन् सुरगिरिं तत^५ । अश्व केनचिदासीतम् आरुह्यासक्तचेतता ॥१९॥
 अथावयदती^६ किञ्चिद् अन्नर धरणीतले । यत्रा गमननरुह्ये ध्यक्तीकृतसगाकृति^७ ॥२०॥
 न्यग्रोन्नादयान स्वप्रतिनावासिना भूषान् । देवेन तर्जितो भीत्याऽभिनिवेगोऽनुचन् जग ॥२१॥
 कुमार पणलध्याश्वयिजया स्त्रनिमुक्तया । रत्नावतपिरेर्नीध्न स्थित त सति भाविन ॥२२॥
 बहुशोऽप्यस्य लम्ना इत्यग्रहीत्वा निमुक्तवान् । देव सरसि फसिर्निदेवन् स्नानादिविधिना धमम् ॥२३॥
 मार्गज स्थितनुद्भूय तमेकस्मान् सुवागुहात् । आगत्य राजपुत्रोऽभिमिति ज्ञात्वा ययोजितम् ॥२४॥
 वृष्ट्या पडरात्ररु-यास्ता स्त्रमुत्तान् न्यवेदयन् । स्वगोत्रकुलनामादि निर्विदय खचरेतिता ॥२५॥
 यत्नादज्ञानिरेनेन यथमस्त्रिरेतिता । इति तत्प्रोचनमाकर्म कुमारस्यानुकम्पिन ॥२६॥

हो गई ॥११-१२॥ उसी समय अनेक उपायोसे नटीको सचेत कर कोई स्त्री उस होनहार चक्रवर्ती श्रीपालसे विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगी ॥१३॥ कि सुरम्य देशके श्रीपुर नगरके राजाका नाम श्रीधर है उसकी रानीका नाम श्रीमती है और उसके जयवती नामकी पुत्री है ॥१४॥ उसके जन्मके समय ही निमित्तज्ञानियोने कहा था कि यह चक्रवर्तीकी पट्टरानी होगी और उस चक्रवर्तीकी पहिचान यही है कि जो नट और नटीके भेदको-जानता हो वही चक्रवर्ती है, हम लोग उसीकी परीक्षा करनेके लिये आये हैं, पुण्योदयसे हम लोगोंने निधिसे समान इच्छा-नुसार आपके दर्शन किये हैं ॥१५-१६॥ मेरा नाम प्रियरति है, यह पुरुषका आकार धारण कर नृत्य करनेवाली मदनवेगा नामकी मेरी पुत्री है और स्त्रीका वेप धारण करनेवाला यह वासव नामका नट है यह सुनकर राजाने सतुष्ट होकर उस स्त्रीको योग्यतानुसार सतोषित किया और स्वय अपने पिताकी वन्दना करनेके लिये सुरगिरि नामक पर्वतकी ओर चला, मार्गमें कोई पुरुष घोडा लाया उसपर आसक्तचित्त हो श्रीपालने सवारी की और दौड़ाया । कुछ दूरतक तो वह घोडा पृथिवीपर दौड़ाया परन्तु फिर अपना विद्याधरका आकार प्रवृष्ट कर उसे आकाशमें ले उडा । उस वट वृक्षके नीचे स्थित प्रतिमाके समीप रहनेवाले देवने उस विद्याधरको ललकारा, देवकी ललकारसे डरे हुए अशनिवेग नामके विद्याधरने अपनी भेजी हुई पणशु पिद्यासे उस कुमार श्रीपालको रत्नावर्त नामके पर्वतकी शिखरपर छोड दिया । देवने देखा कि उस पर्वतपर रहकर ही उसे बहुत लाभ हानेवाला है इसलिये वह कुमारको साथ लिये बिना ही लौट गया । कुमार भी किसी तालावमें स्नान आदि कर मार्गमें उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर कर बैठे ही थे कि इतनेमें एक सफेद महलसे छह राजकन्याएँ निकलकर आईं और कुमारको यह राजाका पुत्र है ऐसा समझार यथायोग्य रीतिसे दगंग कर अपना समा-चार निवेदन करने लगी । उन्होंने अपने गोत्र कुल और नाम आदि बतलाकर कहा कि 'अशनि-वेग नामके विद्याधरने हम लोगोंने यहा जवदंस्ती लाकर पटक दिया है' कन्याओंकी मह बात

१ जयवती जननमय । २ विज्ञान । ३ परिवर्तन विह्वलम् । ४ विनोप जानाति ।

५ नाम्ना स०, अ०, प०, ग०, इ० । ६ वता (अभयना) । ७ गमननि स्त । ८ मायाधर ।

९ विद्याधरनाटः ।

निजगमनवृत्तात्कथनाद्यसरे परा । विद्युद्भेगाभिधा विद्याधरी तत्र समागता ॥२७॥
 पापिताऽशनिवेगेन ह-तुमेन^१ प्रयोजिता । समीक्ष्य मदनापान्ताऽभूच्चिद्विचिन्तयत् ॥२८॥
 सूनू स्तनितवेगस्य राज्ञो राजपुरेशितु^२ । खगेशोऽशनिवेगाख्यो 'ज्योतिर्वेगाख्यमातृक ॥२९॥
 त्वमत्र तेन सौहार्दाद् आनीत स ममाप्रज । विद्युद्भेगाह्वयाऽह च प्रेषिता ते स मंयुन ॥३०॥
 रत्नावर्तगिरिं याहि स्थितस्तत्रैति सादरम् । भवत्समीपं प्राप्तेवभिति रक्तविचेष्टितम् ॥३१॥
 दर्शयन्ती समीपस्थ यावत् सौवर्गहान्तरम् । इत्युक्त्वाऽनभिसाप च ज्ञात्वा तस्य महात्मन ॥३२॥
 तत्रैव विद्यया सौवर्गेह निर्माप्य निस्त्रया । स्थिता तद्राजकन्याभि सह का कामिनां प्रया ॥३३॥
 एत्यानङ्गपनकाऽस्वात्स^३ सखोत्थमवोचत^४ । त्वत्पितृगुणपालस्य सन्निधाने जिनेशितु^५ ॥३४॥
 'ज्योतिर्वेगागुह प्रीत्या कुबेरश्री समादिशत् । निजजामातर^६ क्वापि श्रीपालस्वामिन मम ॥३५॥
 स्वय स्तनितवेगोऽस्ती सुतमन्त्रेवयेदिति । प्रतिपन्न स^७ तत्प्रोक्त भवन्त मंयुनस्तव ॥३६॥
 आनीतवानिहैत्येतद् अत्रबुध्यात्मनो द्विपम् । पातं भस्वोत्तरश्रेणे आशङ्क्यानलवेगकम् ॥३७॥
 स्वय तदा समालोच्य निदामं खचराधिपम्^८ । उदीरान्वेषणोपाय त्वत्सनेहाहितचेतस ॥३८॥
 आनीयता प्रयत्नेन कुमार इति बान्धवा । आवा प्रियसकाश ते प्राहंपुस्त^९ विहागते ॥३९॥

सुनकर कुमारको उनपर दया आई और वह भी अपने आनेका वृत्तान्त कहनेके लिये उद्यत हुआ । वह जिस समय अपने आनेका समाचार कह रहा था उसी समय विद्युद्भेगा नामकी एक दूसरी विद्याधरी बहा आई । पापी अशनिवेगेने कुमारको मारनेके लिये इसे भेजा था परन्तु वह कुमारको देखकर कामसे पीडित हो गई सो ठीक ही है क्योंकि चित्तकी वृत्ति विचित्र होती है ॥१७-२८॥ वह कहने लगी कि अशनिवेग नामका विद्याधर राजपुरके स्वामी राजा स्तनितवेगका पुत्र है, उसकी माताका नाम ज्योतिर्वेगा है ॥२९॥ वह अशनिवेग मिनताके कारण आपको यहा लाया है, वह मेरा बड़ा भाई है, मेरा नाम विद्युद्भेगा है और उसीने मुझ आपको पास भेजा है, अब वह आपका साला होता है ॥३०॥ उसने मुझसे कहा था कि तू रत्नावर्त पर्वतपर जा, वे वहा बिराजमान हैं इसलिये ही मैं आदर सहित आपके पास आई हूँ ऐसा कहकर उसने रागपूर्ण चेष्टाएँ दिखलाई और कहा कि यह समीप ही चूनेका बना हुआ पक्का भवान है परन्तु इतना कहनेपर भी जब उसने उन महात्माकी इच्छा नहीं देखी तब वहीपर विद्याके द्वारा भवान बना लिया और निलंज्ज होकर उन्ही राजकन्याओके साथ बैठ गई सो ठीक ही है क्योंकि वामी पुरपोको लज्जा कहासे हो सकती है ? ॥३१-३३॥ इतनेमें विद्युद्भेगा की मखी अनगपतावा आकर कुमारसे इस प्रचार कहने लगी कि 'आपकी माता कुबेरश्री आपके पिता श्रीगुणपाल जिनेन्द्रके समीप गई हुई थी वहा उसने बड़े प्रेमसे ज्योतिर्वेगाके पिताने वहा कि मेरा पुत्र श्रीपाल कही गया है उसे ले आओ । ज्योतिर्वेगाके पिताने अपने जामाता स्तनितवेगमे वहा कि मेरे स्वामी श्रीपाल कही गये हैं उन्हें ले आओ । स्तनितवेगने स्वय अपने पुत्र अशनिवेगको भेजा, पिताके कहनेसे ही अशनिवेग आपको यहा लाया है, वह आपका साला है । उत्तरश्रेणीवा राजा अनलवेग इनका शत्रु है उसकी आशवा कर तुम्हारे स्नेहसे जिनका चित्त भर रहा है ऐसे मत्र भाईबन्धुओने स्वय विचार कर आपके खोजनेका उपाय बतलाया और कहा कि कुमारको बड़े प्रयत्नसे यहा लाया जाय । वे सब विद्याधरोके अधिपति अनलवेगको रोखनेके लिये गये हैं और हम दोनोको आपके पास भेजा है । यहा आनेपर यह विद्युद्भेगा

१ श्रीगान्तम् । २ पुनेतिन अ०, प०, ग०, ल० । ३ ज्योतिर्वेगाख्या माता यस्यामी । ४ विद्युद्भेगा
 माता । ५ श्रीगान्तम् । ६ ब्रिजानि ल०, प० । ७ ज्योतिर्वेगत्य मातृज्योतिर्वेगाया पितरम् । कुबेरश्री
 शर्मादिगर्दिन खम्बन् । ८ स्तनितवेगजामातरम् । ९ ज्योतिर्वेगागता । १० अशनिवेगम् ॥११ तत्पुत्रारणम् ।

विद्युद्गुणाज्जन्तोश्च त्वाम् अनुभवतामनुभवत्या । न त्याग्येति तदाहर्षं ^१स विचिन्तोषिन बन् ॥४०॥
 मधोपनयनेऽग्रहिं ^२वन गुदभिरुपितम् । मुख्या गृह^३जतानोता स्वीरुमि न चापराम् ॥४१॥
 इत्यवोचसन्स्तदाह शृष्टारारमवेष्टितं । नानाविधं रञ्जयितुं प्रवृत्ता नागरमन्दा ॥४२॥
 विद्युद्देगा तनीं^४उच्छ्रन् स्वमानुषिनुसन्निनी । पिपाय द्वारमारोष्य सौराय प्राणम तनम् ॥४३॥
 तावनेन^५कमारोजपि मुञ्जवान् रवनरम्भनम् । प्रावृत्य^६त सप्तानोश्च मेरुः^७शिन्निोच्छ्रयन् ॥४४॥
 मन्वा नोन्वा द्विजं^८सिद्धकूटाप्रे खादिनु म्यिनः । वनन धोर्य सोऽप्या^९कीन् स^{१०}तेया^{११}जानिजो^{१२}गु ॥४५॥
^{१३}ततोऽज्जतोवं श्रीपालः स्नात्वा सरति भक्तिमात् ॥ मुमुक्षुपि सुगन्धेति समादाय जिवालयन् ॥४६॥
 परोय म्नांनुभारेभे विद्युत्^{१४}द्वान्वा^{१५}स्ययम् । तत्रिरौष्य प्रनम्सन्प्रन्यन्त्^{१६}स्त्रिनमुद्भवान् ॥४७॥
 श्रमिषन्थ धयाताम विधिदत्तत्र सृत्सिनः^{१७} । तमन्येत्य षण् कश्चिन् सनुद्वत्य ननपथे ॥४८॥
 गच्छन्मनोरमे राष्ट्रं^{१८}शिवरत्पुरेतिन । नुमुष्यानिवर्गेगत्स कान्ता कान्तरतोन्म्यन्त ॥४९॥
 तयो मृता भोगवतीम् प्रामासत्सदिकालये । मृदुराप्यानने सुप्ता वा क्मारीयमित्यमी^{१९} ॥५०॥
 अयुच्यन्त्^{२०}सोऽज्जवोदेया नृजडानी विषयेति च । तदुक्ते^{२१}स शृष्टा कृत्वा कन्यापितृसमोत्तम^{२२} ॥५१॥

आपको देवकर आपमें अन्यन् अनुभवत हो गट्ट है जत आपको यह छोडनी नहीं चाहिये ।
 कुमारने ये मत्र बाते मुनकर और अच्छी तरह विचारकर उचित उत्तर दिया कि मैंने यज्ञो-
 पवीन मन्त्राग्ने ममय गुग्जनोके द्वारा दिया हुआ एक द्रव ग्रहण किया था और वह यह है कि
 मैं माना-पिता आदि गुग्जनोके द्वारा दी हुई कन्याको छोडकर और किसी कन्याको स्वीकार
 नहीं करूंगा । जब कुमारने यह उत्तर दिया तब वे मत्र कन्याएं अनेक प्रकारकी मृद्गाग्रमकी
 चेष्टाजोमे कुमारको अनुभव करनेके लिये तैयार हुई परन्तु जब उमे अनुभव नहीं कर सकी
 तब विद्युद्देगा प्राणपति श्रीपालको मकानकी छतपर छोटकर और बाहरमे दरवाजा बन्दकर
 माना-पिताको मुठानेके लिये उनके पान गई । इधर कुमार श्रीपाल भी लाल बम्बड ओटकर
 नो गये, इनने एक मेरुट पत्तीकी दृष्टि उनपर पड़ी, वह उन्हें मामरा पिण्ड ममभर उज
 ले गया और सिद्धकूट-चैयालयके अग्रभागपर रखकर खानेके लिये तैयार हुआ परन्तु कुमार-
 की हिम्मा डुलना देवकर उनने उन्हें छोड दिया सो ठीक ही है क्योंकि यह उन प्रतियोगी जन्म-
 जात गुण है ॥३४-४५॥ तदनन्तर श्रीपालने सिद्धकूटकी शिवरसे नीचे उतरकर मरोवर्गमें
 स्नान किया और अच्छे अच्छे मुग्निपत्र पूंठ लेकर भक्तिपूर्वक श्री त्रिनायकी प्रदक्षिणा दी
 और स्तुति करता प्रारम्भ किया, उसी समय चैयायका द्वार अपने आप खुल गया, यह देवकर
 वह वहुन ही प्रसन्न हुआ और विधिपूर्वक इच्छानुसार श्रीत्रिनेत्रदेवकी पूजा बन्दनाकर मुग्गे
 बहीपर बैठ गया । इननेमें ही एक विद्याधर नामने आया जोर कुमारको उठाकर आशान-
 मार्गमें ले चला, चलने चलने के मनोरम देशके शिवरपुर नगरमें पहुँचे, यहाँके गलावा नाम
 अनिलवेग था, और उसकी स्त्रीका नाम था बालरती, उन दोनोके भोगवती नामकी पुत्री थी,
 वह भोगवती आशानमें बने हुए स्फटिकके महत्में वीमल मध्यापर सो रही थी उमे देवकर
 उन विद्याधरने श्रीपालकुमारने पूछा कि यह कुमारी कौन है ? कुमारने उत्तर दिया कि

१ मरिचि-म०, प०, अ० । २ स्वीहृत् । ३ कपराजवतोश्चनुमान इति । ४ सैरुणम् ।
 ५ कथा न बन्तु । ६ तन्वावन्ति । ७ त्रिभक्तित्तरी । ८ प्रणय । ९ दक्षिणित्त ।
 १० मरिचि-मम् । ११ मेरुः । १२ मुञ्जव । १३ मरीचकपत्तम् । १४ दक्षिणम् । १५ सिद्धकूटाग्रम् ।
 १६ मरिचि-मम् । १७ द्वारम् । १८ विद्याधर । १९ शोभन । २० श्रीपालवचना । २१ मरिचि-
 त्रनवर्ग ममोत्तम इत्यादि अन्तिमवर्ग विद्याधरवदिति । विदिति ? कन्याकन्या मरिचि-
 मत्र धीवत विरचमुद्रादीनि मरिचि-मिति ।

लगावे पूर्वदिशिभागे नीलाद्वारेण पश्चिमे । सुतीमाद्योऽस्ति देशोऽत्र महात्तरात्तर ॥६५॥
 तद्भूतवनगेतत्त्व सम्पत् चित्तेऽन्यथाय । अस्मिन्नेता शिला सप्त परस्परवृता वृता ॥६६॥
 ये ताऽसौ चकर्वात्त्व प्राप्तेत्यादेश ईदृश । इति तद्वचनादेव तास्तथा कृतवास्तवा ॥६७॥
 दृष्ट्वा तत्साहस वक्तु सोऽगमप्ररेदिन । कुमारोऽपि विनिर्गत्य ततो निविण्णचेतसा ॥६८॥
 काञ्चिज्जरावती कृत्यशरीरा पस्पचित्तरो । अचस्थितामथोभाने विषय पुष्कलावतीन् ॥६९॥
 वद प्रयाति व पन्या इत्यप्राक्षीत प्रिय वह् ॥०॥ विना गणनागोण प्रयातु नैव शक्यते ॥७०॥
 'स गम्भू'तिशानोत्तेयविजयाद्वर्गिरेरपि । परस्मिन्प्रित्यसावाह ॥ तदाकर्ण्य नृपालम् ॥७१॥
 ब्रूहि तत्रापयोपायमिति ता प्रत्यभापत । इह जन्मूमति द्वीपे विषयो वत्सकावती ॥७२॥
 तत्क्षेचरगिरी राजपुरे खेचरचक्रिय । देवी धरणिक्मस्य सुप्रभा ॥ बा प्रभाकरो ॥७३॥
 तयोर्ह तनूजासि विल्याताख्या सुखायती । त्रिप्रकारोऽश्विद्याना पारगाऽन्वेष्टरागता ॥७४॥
 विषये वत्सराज्या विजयार्थमहीवरे ॥ अकल्पनसुता पिप्पलाख्या प्राणसर्मा सतीम् ॥७५॥
 मगानिषोक्षित तत्र चित्रमालोच्य कम्बलम् । कषयाय कुतस्त्यस्ते तन्वीति प्रनतो मन ॥७६॥

नीचे बैठे हुए किसी विद्याधरको देखकर उससे पूछा कि यह कौन सा देश है ? तब वह विद्याधर कहने लगा कि ॥४६-६४॥ विजयार्थ पर्वतकी पूर्व दिशा ओर नीलगिरिकी पश्चिमकी ओर यह सुसीमा नामका देश है, इसमें यह महानगर नामका नगर है और यह भूतारण्य वन है, यह तु अपने मनमें अच्छी तरह निश्चय कर ले, इधर इस वनमें ये सात गिलाए पडी है जो कोई इन्हें परस्पर मिलाकर एकपर एक रख देगा वह चन्द्रवर्ती पदको प्राप्त होगा ऐसी सर्वज्ञ देवकी आज्ञा है' विद्याधरके यह वचन सुनकर श्रीपालकुमारने उन शिलाओंको उसी समय एकके ऊपर एक करके रख दिया ॥६५-६७॥ कुमारका यह साहस देखकर वह विद्याधर नगरके राजाको खबर देनेके लिये चला गया और इधर कुमार भी कुछ उदासचित्त हो वहासे निकलकर आगे चला । आगे किसी वृक्षके नीचे निन्द्य शरीरको धारण करनेवाली एक बुढियाको देखकर मधुर वचन बोलनेवाले कुमारने उससे पूछा कि पुष्पलावती देशको कौन सा मार्ग जाता है, बताओ, तब बुढियाने कहा कि वहा आकाश मार्गके बिना नही जाया जा सकता क्योंकि वह देश पच्छीम योजन ऊंचे विजयार्थ पर्वतसे भी उस ओर है, यह सुनकर राजपुत्र श्रीपालने उससे फिर कहा कि वहा जानेका कुछ भी तो मार्ग बतलाओ । तब वह कहने लगी इस जम्भू द्वीपमें एक वत्सकावती नामका देश है, उसके विजयार्थ पर्वतपर एक राजपुर नामका नगर है उसमें विद्याधरके चन्द्रवर्ती राजा धरणीकप रहता है उसकी वान्तिवो फलानेवाली सुप्रभा नामकी रानी है, मे उन्ही दोनोकी प्रसिद्ध पुत्री हू, सुखावती मेरा नाम है और मे जाति विद्या, कुल विद्या तथा सिद्ध की हुई विद्या इन तीनों प्रकारकी बडी बडी विद्याओंकी पारगामिनी हू । किसी एक दिन मे वत्सकावती देशके विजयार्थ पर्वतपर अपने प्राणोके समान प्यारी ससी, राजा अकल्पनकी पुत्री पिप्पलाको देखनेके लिए गई थी । वहा मेने एक विचित्र कम्बल देखकर उससे पूछा कि हे सपि, कह, यह कम्बल तुम्हे वहासे प्राप्त हुआ है ? उसने कहा कि 'यह कम्बल मेरी ही आज्ञासे प्राप्त हुआ है' । कम्बल प्राप्तिके समयसे ही कम्बलवालेका ध्यान करती हुई वह अत्यन्त विद्वल हो रही है ऐना सुनकर उमकी सगी मदनवती उमे देखनेके लिये उसी

१ वने । २ एवंवस्था उपर्युपरिस्थिता । ३ विहित । ४ प्राप्स्यति । ५ नीतना । ६ नगरेगिनु ल०, प०, अ०, स०, इ० । ७ वनात् । ८ निन्द्य । ९ अथ - ल० । १० प्रिय वद ल० । ११ पुष्पलावतीविषय । १२ पञ्चविंशतिपत्रन । १३ अपरमाणे । १४ जरती । १५ चन्द्रिव । १६ नागिनृत्तापितविद्यानाम् । १७ महीतते ल०, प० । १८ पिप्पलायाम् ।

जगद साऽपि भामेय^१ प्रायादेशवशादिति । 'कम्बलावाकितस्तद्वन्तं' रामाप्याय विद्वन्नाम् ॥७७॥
 एतां^२ तस्या^३ सखी श्रुत्वा समन्वेष्टुं समागता । काञ्चनाल्पपुराप्रान्ना मदनादिवती तदा ॥७८॥
 वृष्ट्वा तत्कम्बलस्यान्ते निबद्धां रत्नमुद्रिकाम् । तत्र^४ श्रीपालनामाक्षराणि चादेशास्तंभेः^५ ॥७९॥
 'अक्रामयसायकोद्भिन्नहृदयाऽभूदहं' ततः । कथं बंधापरं लोकात्मिणं श्रीपालनामभूत् ॥८०॥
 समागतः स इत्येतन्निश्चेत् पुण्डरीकिणीम् । उपगत्य जिनागारे वन्दित्या सपुष्पियता ॥८१॥
 त्वत्प्रवासकर्यां^६ सर्वां तव मातुः प्रजल्पनात् । विदित्या विस्तरेण त्याम् भ्रान्तेव्यामीति निश्चयात् ॥८२॥
 आगच्छन्ती भवद्वातां विद्युद्देगामुखोद्गताम् । भ्रवगत्य त्वया साद^७ योजयिष्यामि ते प्रियम् ॥८३॥
 न^८ विद्यादो विधातव्य इत्याशवास्य भवत्प्रियाम् । विनिर्गत्य ततोऽभ्येत्य सिद्धकूटजिनालयम् ॥८४॥
 अभिवन्द्यागता^९ऽस्पर्सेहि^{१०} मयाऽमा पुण्डरीकिणीम् । मातरं भ्रातरं चान्यास्त्यद्वयुत्सव समीक्षितुम् ॥८५॥
 पदीच्छास्ति तवेत्याह सा तच्छ्रुत्वा^{११} पुनः कृतः । त्वमेव जरती जातेत्यब्रवीत् स^{१२} सुखावतीम् ॥८६॥
 कुमारवचनाकर्णनेने^{१३} वाद्वैष्यमागतम् । भवतइच न किं वेत्सीत्यपहंस्य तयोदितम् ॥८७॥
 जराभिभूतमालोक्य स्वशरीरमिदं त्वया । कृतमेवविषं केन हेतुनेत्यनुपुष्यतवान् ॥८८॥
 तच्छ्रुत्वा साऽब्रवीदेवं पिप्पलंत्याख्ययोदिता । मदनादिवती या च मेयुनो विभ्रुतो तयोः ॥८९॥
 बलवान् धूमवेगाख्यस्तादृग्घरिवरोऽपि च । तद्भयात्त्वा^{१४} तिरोधाय पुरं^{१५} प्रापर्यितुं मया ॥९०॥
 मायारूपद्वयं^{१६} विद्याप्रभावात् प्रकटीकृतम् । कुमार, मत्करस्यामृतास्वादफलमक्षणात् ॥९१॥

समय काचनपुर नगरसे आई । उसने वह कम्बल देखा, कम्बलके छोरमें बधी हुई रलोकी अगूठी और उसपर खुदे हुए श्रीपालके नामाक्षर देखकर मुझे अपने गुरुकी आज्ञाका स्मरण हो आया, उसी समय मेरा हृदय कामदेवके बाणसे भिन्न हो गया, मैं सोचने लगी कि श्रीपाल नामको धारण करनेवाला यह भूमिगोचरी विद्याधरोके इस लोकमें कैसे आया ? इसी बातका निश्चय करनेके लिये मैं पुण्डरीकिणी पुरी पहुची, वहा जिनालयमें भगवान्की वन्दनाकर बैठी ही थी कि इतनेमें वहा आपकी माता आ पहुंची, उनके कहनेसे मैंने विस्तारपूर्वक आपके प्रवासकी कथा मालूम की और निश्चय किया कि मैं आपको अवश्य ही ढूँढकर लाऊंगी । उसी निश्चयके अनुसार मैं आ रही थी, रास्तेमें विद्युद्देगाके मुखसे आपका सब समाचार जानकर मैंने उससे कहा कि 'तू अभी विवाह मत कर मैं तेरे इष्टपतिको तुझसे अवश्य मिला दूंगी' इस प्रकार आपकी भावी प्रियाको विश्वास दिलाकर वहासे निकली और सिद्धकूट चत्यालयमें पहुची । वहाकी वन्दना कर आई हू, यदि माता भाई तथा अन्य बन्धुओंको देखनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ पुण्डरीकिणी पुरीको चलो, यह सब सुनकर मैंने सुखावतीसे फिर कहा कि अच्छा, यह बतला तू इतनी बूढी क्यों हो गई है ? कुमारके वचन सुनकर उस बुद्धियाने हँसते हँसते कहा कि क्या आप अपने शरीरमें आये हुए बुढापेको नहीं जानते—आप भी तो बूढे हो रहे हैं । कुमारने अपने शरीरको बूढा देखकर उससे पूछा कि 'तूने मेरा शरीर इस प्रकार बूढा क्यों कर दिया है ।' कुमारकी यह बात सुनकर वह इस तरह कहने लगी कि जिनकी कथन पहले कर आई हूँ ऐसी पिप्पला और मदनवती नामकी दो कन्याएं हैं, उन्हें दो प्रसिद्ध

१ कम्बल । २ कम्बलप्राप्तिमादि वृत्त्वैत्यर्थ । कम्बलप्राप्तिस्त-अ०, स०, ल० । ३ कम्बलवत् पुरपम् । ४ पिप्पलाम् । ५ पिप्पलाया । ६ मुद्रिकायाम् । ७ गम्भूतो इ०, अ०, स०, प० । ८ वाम-चाप । ९ गुणावती । १० भवदेशान्तरमनवयाम् । ११ विवाहो ल० । विदोपो अ०, स० । १२ अना-गताहम् । १३ आगच्छ । १४ गुणावतीवचनमाकर्ण्यं । १५ श्रीपाल । १६ कुमारवचनमाकर्ण्यं इ०, अ०, प० । कुमारवचनमाकर्ण्यं ल० । १७ धूमवेगहरिवरमयात् । १८ पुण्डरीकिणीम् । १९ मम जरतीइत्यम्बरच चाद्वैषमिति इयम् ।

विगनक्षुब्धम् शीघ्रं मामाहृद्य पुर प्रति । ब्रजेति सोऽपि तच्छुत्वा तिन्यो स्वप्नमानसम् ॥६२॥
 न स्पृशामि क्व चाहम् आरोटामि पुरा' 'गुरो । 'सन्निधावाददामोद्व्यनमि पद्मीदिरम् ॥६३॥
 सा तदावप्यं सन्निवन्त्य किं जानमिति विद्यया । गृहीन्वा पुरुषाकारम् उद्वहन्ती 'तमिन्वरीं ॥६४॥
 बन्दिता सिद्धकूटस्थ तत्र विद्यान्तये म्यना । तस्मिन्नेव दिने भोगवती' शशिनमात्मन ॥६५॥
 प्रविश्य भवनं कान्त्या कान्तिश्चानिर्दिष्टम् । निर्वर्तमानमात्रेण स्वप्नेऽग्राह्यान्त्यान्त्ये ॥६६॥
 तस्मिन्नेव कूटपूजार्थं कान्ता कान्तावती सती । रत्नवेगा सुवेगाऽमिन्मती रतिकान्त्या ॥६७॥
 संहिता चित्तवेगाभ्या पिप्पला मदनान्वती । विद्युद्देगा तयैवान्यात्नाभि सा परिवारिता ॥६८॥
 समागत्य महानक्या परीय जिनमन्दिरम् । यथाविधि प्राम्भेश सम्पूज्य स्तोत्रमुद्यता ॥६९॥
 तादृशं तामा तदा व्याकुलोनावमपि चेतम् । तस्मिन् शिवरुमारस्य वयनाक्रान्तमानसम् ॥१००॥
 'आदिष्टसन्निधानेन विलोक्य प्रहृतिं' गन्म् । स्यावती तदुद्देशाद्' ध्रुवीय कुमारस्य ॥१०१॥
 स्थानेऽप्यस्मिन्व्यादेने' तत्राप्यम्बुनि' मुद्रया' । स्वप्न कामरुपिण्या 'प्रेक्षमाणं यदुद्देश्या ॥१०२॥
 वृष्ट्या 'हरिवरस्तस्मात्प्रोक्ता कोपात् सपापनाक्' । निश्चये' महाकालगुहायां 'विहितायकम् ॥१०३॥

विद्याघर चाहते हैं, एकका नाम धूमवेग है और दूसरेका नाम हरिवर । ये दोनों ही अत्यन्त बलवान् हैं, उन दोनोंके भयमें ही मैंने आपको छिपाकर नगरमें पहुँचानेके लिये विद्याके प्रभाव से मायामय दो रूप बनाये हैं । हे कुमार, मेरे हाथमें रखे हुए इस अमृतके ममान् स्वादिष्ट फटके खाकर आप अपनी भूत तथा थकावटको दूर कीजिये और मुझपर सवार होकर शीघ्र ही नगरकी ओर चलिइये' यह सुनकर कुमान्ने कहा कि मेरे सवार होनेके लिये स्त्रीका रूप अयोग्य है, मैं तो उमका स्पर्श भी नहीं करता हूँ, सवार बनें होऊँ ? क्योंकि मैंने पहले गुरुके समीप ऐसा ही व्रत लिया है यह सुनकर उसने सोचा और कहा कि अब भी क्या हुआ ? वह विद्याके द्वारा उमी समय पुरुषका आकार धारण कर कुमारको प्रेमी शीघ्रतासे ले चली । चरने चलते वह सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँची और बन्दना कर विश्राम करनेके लिये वही बैठ गई । उन्नी दिन भोगवतीने स्वप्नमें देखा कि कान्ति और कान्ताजोमे वटा हुआ चन्द्रमा हमारे भवनमें प्रवेशकर लौट गया है इस स्वप्नको देखकर वह अमरगुकी शान्तिके लिये सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा करनेके लिये आई थी । वह सुन्दरी कान्तावती, सती रत्नवेगा, सुवेगा, अमितमती, रतिकान्ता, चित्तवेगा, पिप्पला, मदनान्वती, विद्युद्देगा तथा और भी अनेक राजन्याजोमे प्यरी हुई थी । उन सभी कन्याजोमे आकर वती भक्तिसे जिन-मन्दिरकी प्रदक्षिणा दी, विधिपूर्वक नमस्कार किया, पूजा की और फिर सजकी सत्र स्तुति करनेके लिये उद्यत हुई । स्तुति करने समय भी उसका चित्त व्याकुल हो रहा था । उमी चैत्यालयमें एक शिवकुमार नामका राज-पुत्र भी रहा था, उमका मुँह टेटा था परन्तु श्रीपादकुमारके समीप आने ही वह ठीक हो गया, यह देखकर सुमावतीने उसे उमके स्थानमें हटाकर दूसरी जगह रख दिया । उस चैत्यालयमें श्रीपालकुमार अपनी कामरुपिणी मुद्रामे डूबानुमार जलमें अपना स्थान रूप देख रहा था । उसे ऐसा करते पापी हरिवर विद्याघरने देग लिया और पूर्व जन्ममें पुण्य करनेवाड़े कुमारको

१ मम मध्यचन्द्रोत्पन्न मुद्रया अन्वचन्द्रोत्पन्नम् । २ पूर्वस्मिन् । ३ गुरो समीप । ४ स्वीकरोमि ।
 ५ श्रीपातम् । ६ गमनशीला । ७ पुरा कुमारेण भुजङ्गोपुष्पा मालवती । ८ मन्त्राणां कथनात् ।
 ९ आदेशपुरुषसामान्येन । १० पूर्ववत्पन्नम् । ११ तत्रैवम् । १२ स्थानगतम् । १३ जने ।
 १४ मुद्रिका । १५ त्रेयसमा ६० । १६ मदनान्वतीम्पुन । १७ निगिनकम् । १८ शत्रुर्त्त
 श्रीपातम् ।

वसस्तत्र महाकालस्त गृहीतुमुपागत १ । तस्य पुण्यप्रभावेन शोऽप्यपिऽचिचत्परो गत ॥१०४॥
 तत्र शय्यातले सुप्त्वा शुभो मुहुनि विस्तृते । परेद्युनिगंत 'तस्या' सप्रयुक्तं परीक्षितुम् ॥१०५॥
 श्रादिष्टपुष्टय भूतयज्ञैस्त्वियाऽभ्येत्य निर्येदितम् । गृहोत्था स्वविराट्पार कोपपायकदीपित ॥१०६॥
 त बोध्य धूमवेगाद्यम् खगश्चन्द्रपुराद् बहि । स्मशानमप्ये पापाणनिशातविधिवायुर्ध ॥१०७॥
 'यग्ल्लुत्तानि' चास्यासन् पतन्ति कसुसुमानि वा । परोऽपि खेचरस्तत्र नरेशोऽतिबलाह्वय ॥१०८॥
 स्वदेव्या चित्रसेनाया भृत्ये दुष्टतरसेति । त निह'त्यादहतस्मिन्' धूमवेगो निघाय तम् ॥१०९॥
 कुमार चागमस्तत्र मद्भीषजशक्तित १० । निराकृतज्वलद्द्विशक्तिस्तस्मात् स निगंत ॥११०॥
 हतानुचरभार्यात्र काचिन्निरपराधक । हतो नृपेण मद्भतैस्त्वस्य ११ दृष्टिप्रकाशिनो ॥१११॥
 तत्कृमारस्य सस्यपक्षाभिदशक्ति सा हृताशनम् । विदित्या प्राविशद् दुष्ट्वा कृमारस्ता सवौतुव ॥११२॥
 अभ्येद्यमपि यज्ञेण स्त्रीणा मायाविनिर्मितम् ११ । कञ्च दिविज्ञेसा ११ च नीरग्धामिति निर्भय ॥११३॥
 स्थितस्तत्र स्मरन्नेव सुता तन्नरेशिन । राजो विमलसेनस्य वत्पन्तवमलाह्वया ॥११४॥
 कामप्रहाहिता तस्यास्तद्ग्रहपजिहोर्षया ११ । जने समुदिते ११ सद्य कुमारस्तमपाहरत् ११ ॥११५॥

शोधसे उस स्थानसे ले जाकर महाकाल नामकी गुफामें गिरा दिया । उस गुफामें एक महा काल नामका व्यन्तर रहता था वह उसे पकड़नेके लिये आया परन्तु कुमारके पुण्यके प्रभावे अकिंचित्कर हो चला गया—उसका कुछ नहीं बिगाड सका । वह कुमार उस दिन उसी गुफामें पवित्र, कोमल और बडी शय्यापर सोकर दूसरे दिन वहासे बाहिर निकला, यद्यपि उसने अपना बूडेका रूप बना लिया था तथापि धूमवेगके द्वारा परीक्षाके लिये नियुक्त किये हुए पुरुषोने उसे पहिचान लिया, स्वामीके पास जाकर उन्होने सब खबर दी और पकडकर श्रीपालकुमार को सामने उपस्थित किया । शोधरूपी अग्निसे प्रज्वलित हुए धूमवेग विद्याधरने कुमारको देखकर आज्ञा दी कि इसे नगरके बाहिर श्मशानके बीच पत्थरपर घिसकर तेज किये हुए अनेक शस्त्रोसे मार डालो । सेवक लोग मारने लगे परन्तु वे सब शस्त्र उसपर फूल होकर पडत थे । इसीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और लिखी जाती है जो इस प्रकार है—

उसी नगरमें एक अतिबल नामका दूसरा विद्याधर राजा रहता था ॥६८-१०८॥ उसकी चित्रसेना नामकी रानीसे कोई दुष्ट नौकर फँस गया था, इसलिये राजा उसे मारकर जला रहा था । धूमवेग विद्याधर श्रीपालकुमारको उसी अग्निकुडमे रखकर चला गया परन्तु कुमारकी महीपथिकी शक्तिसे वह अग्नि निस्तेज हो गई इसलिये वह उससे बाहर निकल आया । उस मारकर जलाये हुए सेवककी स्त्रीको जब इस बातका पता चला कि कुमारके स्पर्शसे अग्नि शनितरहित हो गई है तब वह स्वयं उस अग्निमें घुस पडी और उससे निकलकर यह कहती हुई अपनी दृष्टि प्रवट करने लगी कि 'मेरा पति निरपराध था राजाने उसे व्यर्थ ही मार डाला है ।' कुमारको यह सब चरित्र देखकर बडा कौतुक हुआ, वह सोचने लगा कि 'स्त्रियोकी मायासे बने हुए दृग्ग वचको इन्द्र भी अपने यज्ञसे नहीं भेद सकता है, यह छिद्ररहित है' इस प्रकार मौखता हुआ वह निर्भय होकर वही बैठा था । इधर उस नगरके स्वामी राजा विमलसेनकी पुत्री कमशक्ती कामरूप पिशाचसे आग्रान्त हो रही थी, उसके उस पिशाचको दूर धरनेकी इच्छा से बहुत आदमी झट्टे हुए थे, श्रीपालकुमार भी वहा गया था और उसने उस पिशाचको दूर

१ मूधितुमिष्यं । २ गुहाया गवाशान् । ३ सप्रयुक्तं य० । सुप्रयुक्तं ल०, य०, प० ।
 ४ तिरपताया भैषुन । ५ निशिन । ६ निघट् चरार । ७ पापाणायुथानि । ८ हत्वा । ९ चित्तानी ।
 १० युग गमगाते हविश्राविद्यया त्रिवान्द पीतना जानमहोपशान्तिना । ११ स्वभर्तु । १२ वपटमिष्यं ।
 १३ एदग्न । १४ कामप्रहमहर्तुमिष्यत्ता । १५ एरत्र मित्रिने यतिः । १६ शमभङ्गपयारितवार्तिष्यं ।

सत्योऽभूत् प्राक्तनादेश इति तस्मै महीपतिः । तुष्ट्वा तं कन्याकां^१ दिव्यस्तस्या^२ निच्छां^३ विबुध्य सः^४ ॥११६॥
 अभ्यर्णं बन्धुवर्गस्य नैयोऽयं भवता द्रुतम् । यत्नेनेत्यात्मजं स्वस्य वरसेनं समादिशत् ॥११७॥
 नीत्वा सोऽपि कुमारं तं विमलादिपुरो बहिः । धेने तृष्णोपसन्तप्तं स्थापयित्वा गतोऽम्बुने^५ ॥११८॥
 तेषां सुखावती कुञ्जा भूत्वा कुसुममालया । परित्स्पृश्य तृषां नीत्वा^६ कन्याकां तं^७ वकार सा ॥११९॥
 धूमवेगो हरिवरदत्तं^८ वीक्ष्याभिलाषिणी । अर्भूतां बद्धमात्सरो^९ तस्याः स्वीकरणं प्रति ॥१२०॥
 द्वेषवन्तौ तदाऽऽलोक्य युवयोर्विप्रहो वृया । पतिभंवत्यसावस्या धमेपाऽभिलषिष्यति ॥१२१॥
 इति बन्धुजनैर्बाध्यमाणी वंराद् विरेभतुः । स्त्रीहेतोः कस्य वा न स्यात् प्रतिघातः^{१०} परस्परम् ॥१२२॥
 कन्याकृत्यैव^{११} गत्वाऽतः कान्तया स सुकान्तया । रतिकान्ताप्यया कान्तवत्या च सहितः पुनः ॥१२३॥
 स्थितं प्राक्तनरूपेण^{१२} काचित्तं वीक्ष्य तज्जिता । रतिं समागमत् काचित्तं कभाया^{१३} हि धोषितः ॥१२४॥
 प्रसुप्तवन्तं तं तत्र प्रत्यूषं च सुखावती । यत्नेनोद्धृत्य गच्छन्ती तैर्नोग्नीलितचक्षुषा ॥१२५॥
 विहाय मतिहेकाकिनं त्वं क्व प्रस्थितेति सा । पृष्ट्वा न क्वापि याताऽहं त्वत्त्वमपीपगता सदा ॥१२६॥
 आदिष्ट^{१४} वनितारत्नलाभो नंवात्र ते भयम् । इत्यन्तहित^{१५} मापाच स्वरूपेण समागमः^{१६} ॥१२७॥

कर दिया था । 'निमित्तज्ञानियोंने जो पहले आदेश दिया था वह आज सत्य सिद्ध हुआ ।' यह देख राजाने संतुष्ट होकर वह पुत्री कुमारको देनी चाही परन्तु जब कुमारकी इच्छा न देखी तब उसने अपने पुत्र वरसेनको आज्ञा दी कि इन्हें शीघ्र ही बड़े यत्नके साथ इनके बन्धु वर्गके समीप भेज आओ ॥१०८-११७॥ वह वरसेन भी कुमारको लेकर चला और विमलपुर नामक नगरके बाहर प्याससे पीड़ित कुमारको बैठकर पानी लेनेके लिये गया ॥११८॥ उसी समय कूबड़ीका रूप बनाकर सुखावती वहां आ गई, उसने अपने फूलोंकी मालाके स्पर्शसे कुमार की प्यास दूर कर दी और उसे कन्या बना दिया ॥११९॥ उस कन्याको देखकर धूमवेग और हरिवर दोनों ही उसकी इच्छा करने लगे । उसे स्वीकार करनेके लिये दोनों ईर्ष्यालु हो उठे और दोनों ही परस्पर द्वेष करने लगे । यह देखकर उनके भाई बन्धुओंने रोका और कहा कि 'तुम दोनोंका लड़ना व्यर्थ है इसका पति यही हो जिसे यह चाहे' इस प्रकार बन्धुजनोंके द्वारा रोके जानेपर वे दोनों वैरसे विरत हुए । देखो ! स्त्रीके कारण परस्पर किस किसका प्रेम भंग नहीं हो जाता है ? ॥१२०-१२२॥ उस कन्याने उन दोनोंमेंसे किसीको नहीं चाहा इसलिये सुखावती उसे कन्याके आकारमें ही वहां ले गई जहां कान्ता, सुकान्ता, रतिकान्ता और कान्तवर्ती थी ॥१२३॥ पहलेके समान असली रूपमें बैठे हुए कुमारको देखकर कोई कन्या लज्जित हो गई और कोई प्रीति करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंके भाव अनेक प्रकारके होते हैं ॥१२४॥ श्रीपाल रातको बही सोया, सोते सोते ही सवेरेके समय सुखावती बड़े प्रयत्नसे उठा ले चली, कुमारने आस सुलनेपर उससे पूछा कि तू मुझे यहां अकेला छोड़कर कहां चली गई थी ? तब सुखावतीने कहा कि मैं कहीं नहीं गई थी, मैं सदा आपके पाम ही रही हूं, यहां आपको स्त्रीरत्न प्राप्त होगा ऐसा निमित्तज्ञानीने बतलाया है, यहां आपको कोई भय नहीं है । आज तक मैं अपने रूपको छिपाये रहती थी परन्तु आज असली रूपमें आपसे मिल

१ दातुमिच्छुः । २ श्रीपालस्य । ३ कन्यावामानभितापम् । ४ विमलनेनः । ५ जलापः । जलमानेनुमित्यर्थः । ६ गमयित्वा । अपसापैत्यर्थः । ७ श्रीपालम् । ८ वृत्तरन्ध्राम् । ९ प्रीतिपाठः ल०, थ०, प०, स० । १० मन्वराजारेणं । ११ पूर्वस्वरूपेण (निजनुभारस्वरूपेण) । १२ अनेकगतिपामाः । १३ आदिष्टो ल०, प०, द० । १४ इत्यन्तहितम्पाठः १० । अन्तहितमाच्छादितं यथा भवति तथा । १५ समागममित्यपि पाठः । समागतमित् ।

हत्वाह तद्व्य श्रुत्वा प्रमुञ्चत्य^१ खगाचले । पुर इक्षिणभागस्य गजादि^२ ततःतमीपगम् ॥१२८॥
 कञ्चिद् गजपतिं स्तम्भमु-मूल्याहउद्वर्षकम् । द्वात्रिंशदुक्तयतीडाभि श्रीष्टित्वा यदामानयत् ॥१२९॥
 तत समुदिते^३ चण्डद्वीपितौ^४ निर्जिताद् गजात् । कुमारागमन पौरा युद्धया संगुष्टचेतता ॥१३०॥
 'प्रतिवेदनमुदबद्धचलरथेतुपतावर । 'प्रत्यद्गममबुयंस्ते' 'तपुण्योदयचोदिता ॥१३१॥
 तत्रो नभस्यस्तौ गच्छन् कञ्चिद्वपुरे हयम् । स्थित प्रदक्षिणीवृत्त्य रव^५ पश्यन्नात्सविस्मय ॥१३२॥
 तत्रापि विदितादेशंनगरं प्राप्तपूजन । पुनस्ततोऽपि निष्प्रम्य समागच्छन्निजेच्छया ॥१३३॥
 'चतुर्जनपदाभ्यन्तरस्यसीममहाचले^६ । जने महति सम्भूय^७ स्थिते येनापि हेतुना ॥१३४॥
 कस्यचित् शोशत^८ खड्ग कस्मिंश्चिदपि यत्नत । सत्यशक्ते समु खातु त^९ समुद्गीर्यं^{१०} हेलया ॥१३५॥
 कुमार प्रा^{११}हरद् वशस्तम्भ^{१२} सम्भूत^{१३}वशान् । तदालोक्य जन सर्वे प्रमोदादारव^{१४} व्यप्रात् ॥१३६॥
 तत्र कश्चित समागत्य मूकं सम्भुपविष्टवान् । प्रप्रणम्य कुमारं त जयशब्दपुरस्सारम् ॥१३७॥
 'कण्डवच कश्चिद्वदन्गुल्या प्रसारितकराद्गति । अञ्जलिं मुकुलोकृत्य समीपे समुपस्थित ॥१३८॥
 यो धर्ममणिपाकाय समुद्युक्तस्तदा मुदा । तेषां पाके व्यलोकित् कुमारं विनयेन स ॥१३९॥

रही हूँ ॥१२५-१२७॥ उसको यह वचन सुनकर श्रीपाल बहुत ही हर्षित हुआ और वहासे आगे चलकर विजयाधर्म पर्वतके दक्षिण भागमे स्थित गजपुर नगरके समीप जा पहुचा ॥१२८॥ वहा कोई एक गजराज खभा उखाडकर मदोन्मत्त हो रहा था । उसे कुमारने शास्त्रोक्त वतीस क्रीडाओसे क्रीडा कराकर वचा किया ॥१२९॥ तदनन्तर सूर्योदय होते होते नगरके सब लोगो ने गजराजको जीत लेनेसे कुमारका आना जान लिया, सबने सतुष्ट चित्त होकर घर घर चञ्चल पताकाए फहराई और कुमारके पुण्योदयसे प्रेरित होकर सब लोगोने उसकी अगवानी की ॥१३०-१३१॥ कुमार वहासे भी आकाशमें चला, चलता चलता हयपुर नगरम पहुचा वहा एक घोडा कुमारकी प्रदक्षिणा देकर समीपही मे खडा हो गया, कुमारने यह सब स्वयं देखा परन्तु उसे कुछ भी आश्चर्य नही हुआ ॥१३२॥ जब नगरनिवासियोको इस बातका पता चला तब सबने कुमारका सत्कार किया, कुमार वहासे भी निकल कर अपनी इच्छानुसार आगे चला ॥१३३॥ चलता चलता चार देशोके बीचमे स्थित सुसीमा नामक पर्वतपर पहुचा । वहा किसी कारण बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे, वे प्रयत्नकर म्यानसे तलवार निकाल रहे थे परन्तु उनमेंसे कोई भी उक्त कार्यके लिये समर्थ नही हो सका परन्तु कुमारने उसे लीला-मात्रमे निकाल दिया जिसमें बहुतसे वास उलझे हुए खडे थे ऐसे वासके विडम्पर उसे चलाया यह देखकर सब लोगोने वडे हर्षसे कुमारका आदर सत्कार किया ॥१३४-१३६॥ इतनेमें ही वहा एक गूंगा मनुष्य आया और जय जय शब्दका उच्चारण करता हुआ कुमारको प्रणाम कर बैठ गया ॥१३७॥ वही पर एक टेढी अगुलीका मनुष्य आया, कुमारको देखते ही उसकी अगुली ठीक हो गई, उसने हाथकी अगुली फैलाकर हाथ जोडे और नमस्कार कर पास ही खडा हो गया ॥१३८॥ वहीपर एक मनुष्य हीराओकी भस्म बना रहा था, वह बनती नही थी परन्तु कुमारके सन्निधानसे वह बन गई इसलिये उसने भी वडी विनयसे कुमारके दर्शन किये

१ यत्पुण्य । २ गजपुरम् । ३ उदय गते मनि । ४ मूर्ते । ५ प्रतिगूहम् । ६ सम्भुलागमनम् ।
 ७ चन्निरे । ८ श्रीमानपुण्य । ९ रथय पश्यन्निविस्मय ल०, इ०, अ०, म० । १० चतुर्दशमध्यस्थितसीमास्य
 महागिरौ । ११ महागिरौ ट० । १२ मितित्वा । १३ पद्गपिधान । १४ खड्गम । १५ उल्लास
 दृश्या । १६ प्ररति एम । १७ वणुगुमम् । १८ परिविन्निवणुगुम् । १९ -आदर न०, प० । २० मृञ्जय
 थ०, ए० । एणित्थ स० । विवासा ।

प्राग्भ्रमररुचिर्वा। पुरेऽमृद् विजया ह्वये । सोऽप्य' सेनापतिर्भावी भविष्यत्सक्यवर्तिनः ॥१४०॥
 तत्पुरे वर'कीर्त्तीर्ष्टकीनिभ्यात्मजापने' । लङ्पोन्वाटनमादेनस्तस्य श्रीपालचक्रिणः ॥१४१॥
 मूकः श्रेयः पुरे जातस्तस्य भावी पुरोहितः । शिवसेनमहोपालः श्रीमास्तन्नगरेश्वरः ॥१४२॥
 वीतशोका ह्वया तस्य तनुजा वनजक्षणा । मूकभावायमादेशः कुमारस्त तदापने' ॥१४३॥
 'कुण्डः शिल्पपुरोपन्नः स्वपतिस्तस्य भाव्यगौ । नान्ना वरपतिस्तत्पुरेशो नरपतेः सुता ॥१४४॥
 रत्नादिविमलासाढं तपंतस्य समागमः । भ्रष्टा'तिप्रसरादेशात् स्मरव्यपद्या' चिरम् ॥१४५॥
 स वज्रमणिपाकस्य' प्रवानपुरयो' भवेत् । तस्य' धान्यपुरे 'जातिविशालस्तनुराधिपः ॥१४६॥
 सुता विमतनेकास्य श्रीपालस्य तदापाने' । भ्रदेशस्तस्य तद्द्वग्मणिपाको महीजसः ॥१४७॥
 इत्यादेश'वरं ज्ञात्वा सर्वे स्वं स्वं पुर यन्तुः । तदा कुमारमुद्वाज्याभ्रभोभागे सुपावनी ॥१४८॥
 धूमवेगे धिलोन्नयनं विडिषी' भीषणारवः । धमिन्नयं' स्वितो रक्ष्या तं घेटन्युतामिन्तु ॥१४९॥
 तदा 'पूर्वोदिताचार्या देवता वाऽस्य' पालिका' । सा विद्यावररूपेण तनुपेस्य सुपावतीन् ॥१५०॥

॥१३९॥ श्रीपालने जो तलवार म्यानसे निकाली थी उसका स्वामी विजयपुर नगरका रहने वाला था और होनहार इसी श्रीपाल चक्रवर्तीका भावी मेनापति था ॥१४०॥ उसी विजयपुर नगरके राजा वरकीर्त्तीर्ष्टकी रानी कीर्त्तिमतीकी एक पुत्री थी, उसके वरके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने बतलाया था कि इसका वर श्रीपाल चक्रवर्ती होगा और उसकी पहिचान म्यानमेंसे तलवार निकाल लेना होगी ॥१४१॥ वह गूंगा श्रेयम्पुरमें उत्पन्न हुआ था और इसका भावी पुरोहित था, उसी श्रेयस्पुर नगरका स्वामी राजा शिवमेन था, उसके कमलके ममान नेत्रवाली वीतगोका नामकी पुत्री थी उसके वरके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने आदेश दिया था कि जिसके समागममें यह गूंगा बोलने लगेगा, वही इसका वर होगा ॥१४२-१४३॥ जिसकी अगुली टेढ़ी थी वह शिल्पपुरमें उत्पन्न हुआ था और इसका होनहार स्वपति रत्न था । उसी शिल्पपुर के राजाका नाम नरपति था उसके रतिविमला नामकी पुत्री थी, निमित्तज्ञानियोंने बताया था कि जिसके देवनेसे इसकी टेढ़ी अगुली फैलने लगेगी उसीके साथ कामरीडा करनेवाली इस कन्याका चिरकाल तक समागम रहेगा ॥१४४-१४५॥ जो हीराबोका भस्म बना रहा था वह इसका भत्री होनेवाला था और धान्यपुर नगरमें पैदा हुआ था, उसी धान्यपुर नगरके राजाका नाम विद्याल था उसकी एक विमरसेना नामकी कन्या थी, निमित्तज्ञानियोंने बतलाया था कि जिसके आनेपर हीराबोका भस्म बन जायगा वही महा तेजस्वी श्रीपाल इसका पति होगा ॥१४६-१४७॥ इस प्रकार निमित्तज्ञानियोंके आदेशानुसार उस पुरुषको पहिचान कर वे सब अपने अपने नगरको चढे गये और उसी समय मुगावती श्री कुमारको लेकर आकाशमार्गमें चल्ने लगी ॥१४८॥ चल्ने चल्ने इसे धूमवेग घन्तु मिला, वह कुमारको देखकर भयकर शब्द करने लगा, और डाट दिखाने रास्ता रोक आवाजमें सड़ा हो गया, उस समय घेटक और तलवार दोनों शस्त्र उमके पान थे ॥१४९॥ उसी समय पहले वही

१ श्रीपालस्य । २ वरकीर्त्तिपतेः प्रियाया कीर्त्तिमती गुणायाः आने परिपत्ये । ३ 'पुन
 प्यहारे स्तुतौ च' पुरीष्यवहारे तं टि० । -यामज्ञाने ३० । ज्ञाने अ०, म०, म० । ४ वीत-
 शोकायाः परिपत्ये । ५ वृत्ति म० । ६ वाक्यविशिष्टप्रसंगे अथवा वाक्यविशिष्टप्रसंगे । ७ वज्रमणि-
 पाकस्य म०, ट० । वज्रमणिपाकौ वज्ररत्नारत्नान् । जस्य श्रीपालस्य । ८ मणिमुक्त्य । ९ वज्रमणि-
 पाकस्य । १० उच्यति । ११ विमतनेकाया प्राण्ये । १२ आदेशात्तदापने । -देशात्तर म०, म० ।
 -देशात्तर म०, म० । १३ वाक्यविशिष्टप्रसंगे । तद्विषी भीषणारवम् म०, अ०, म० । १४ पूर्वोदिता-
 प्रमदवन्पवटपुरीष्यवृत्तिमायाम् । १५ श्रीपालस्य । १६ रतिपति ।

मुक्त्वा वृत्तारमभ्येत्य विभीषिद्याधराधरम् । विदुष्य विजयस्येति निजगाद निरावलम् ॥१५१॥
 साऽपि मुक्त्वा कुमार त धूमवेगे रणाङ्गणे । घिर घृष्या स्वविद्याभिर्परोत्तौ^१ हृद्यैर्यज्ञालिनी ॥१५२॥
 कुमारोऽपि समीपस्वशिलायां धरणीपरे । शनं 'समापतसत्य' देवश्री जननी पुरा ॥१५३॥
 यक्षीभूता तदागत्य सत्सु शन्ती वरेण तम् । अपास्यास्य श्रम मद्भू कुमार' प्रविद्य हृदम् ॥१५४॥
 जगर्दनमिति श्रुत्वा सोऽपि दिश्वस्य तद्भुज । प्रविश्य तं^२ शिलास्तम्भस्योपरिस्थितवाग्निदि ॥१५५॥
 कुर्वन् पञ्चनमस्कारयदना परिपतनम्^३ । प्रभाते 'तदुदग्भागे जिने'त्रप्रतिविम्बयम् ॥१५६॥
 विलोक्य कृतपुण्यादिसम्पूजनमस्त्रिय । सहस्रपत्रमम्भोज चरत्न सवृन्धम् ॥१५७॥
 श्रातपत्र सहस्रोक्ष फण घ फणितां पतितम् । दण्डरत्न समण्डूक नत्र 'घृडामहामणिम् ॥१५८॥
 चर्मरत्न स्फुरद्वक्तवृद्धिक बाकिणोमणिम् । ईक्षाञ्चक्रेऽऽ पुण्यात्मा तत्र' यक्ष्यपवेद्यत ॥१५९॥
 तदा मुदितचित्त सन् छत्रमुद्यम्य दण्डभृत् । प्रद्योतमानरत्नोपातत्को^४ यक्षीसामपितं ॥१६०॥
 सर्वरत्नमर्षादिभ्यर्भूवाभेर्देविभूषित । निजंगाम गृहातोऽसौ^५ 'सर्वेय्य सुखावती ॥१६१॥
 धूमवेग विनिर्जित्य प्रतिपदा^६ हिमद्युतिम्^७ । धूर्ध्वं कुमारत्मापन्ना सत्पलासिलताग्विता^८ ॥१६२॥
 एतया^९ सह गत्वात् सम्प्राप्तसुरभूधरम्^{१०} । गुणपालजिनायोदा सभामण्डलमाप्तवान् ॥१६३॥
 तत्र त सुचिर स्तुत्वा मनोवाक्पायशुद्धिभाक् । भातर भ्रातर चोचितोपचारो विलोक्य तौ ॥१६४॥

हुई प्रतिमापर जो इसकी रक्षा करनेवाली देवी रहती थी वह विद्याधरका रूप धारण कर आई और सुखावतीको छोड़कर कुमारको ले गई तथा सुखावतीसे कह गई कि तू निर्भय हो निराकुलतापूर्वक इस नीच विद्याधरसे लडना और इसे जीतना ॥१५०-१५१॥ शूरवीरता से शोभायमान रहनेवाली सुखावती भी कुमारको छोड़कर धूमवेगसे लडने लगी और रणके मैदानमें बहुत समय तक युद्धकर उसने उसे अपनी विद्याओ द्वारा रोक लिया ॥१५२॥ कुमार भी समीपवती पर्वतकी एक शिलापर धीरे धीरे जा पड़ा । वहा उसकी पूर्वभवकी माता देवश्री जो कि यक्षी हुई थी आई । उसने हाथसे स्पर्शकर श्रीपालका सब परिश्रम दूर कर दिया और कहा कि तू शीघ्र ही इस तालावमें घुस जा । कुमार भी उसके वचनोका विश्वास कर तालावमें घुस गया और वही रातभर पत्थरके खभेपर बैठ रहा ॥१५३-१५४॥ सबरे पञ्च नमस्कार मनका पाठ करता हुआ उठा, तालावके उत्तरकी ओर श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा देखकर पुष्प आदि सामग्रीसे पूजन और नमस्कार किया । तदनन्तर उसी यक्षीके उपदेशसे उस पुण्यात्माने सहस्र पत्रवाले कमलको चक्ररत्नरूप होते देखा, कछुवको छत्र होते देखा, बड़ी बड़ी हजार फणाओंको धारण करनेवाले नागराजको दण्डरत्न होते देखा, मडकको चूडामणि, मगरको चर्मरत्न और देदीप्यमान लाल रगके विच्छूको काकिणी मणि रूप होते देखा ॥१५६-१५९॥ उस समय उसने प्रसन्नचित्त होकर छत्र धारण किया, दण्ड उठाया, चमकीले रत्नोके जूते पहिने और फिर वह यक्षीके द्वारा दिये हुए मणिमय दिव्य आभूषणोसे सुशोभित होकर गुहासे बाहर निकला । उसी समय जिस प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धिके लिये शुक्लपक्षकी प्रतिपदा आती है उसी प्रकार धूमवेगको जीतकर तलवार लिये हुए चतुर सुखावती कुमारकी वृद्धिके लिये उसके पास आ पहुँची । श्रीपाल यहासे उसके साथ साथ चला और चलता चलता नुरगिरि पर्वतपर गुणपाल जिनेन्द्रके समवसरणमें जा पहुँचा ॥१६०-१६३॥ वहा मन,

१ दराप । २ सम्प्राप्त । ३ श्रीपादस्य । ४ कुमार ल० । ५ हृदम् । ६ मुहुर्मुहुरनुविन्तानम् ।
 ७ हृदस्योत्तरदिग्भागे । ८ घृडामणि तथा ल०, प०, अ०, रा०, इ० । ९ हृदे । वक्त्राण्येव रूपाणि
 गह्यपत्राम्भोजादीनि ईक्षाञ्च इति गन्धघ । १० मणिमयपादत्राण । ११ गुहाया सगरात् ।
 १२ प्रतिपद्दिनधीरिव । १३ चन्द्रम् । १४ चन्द्रनाचिता । १५ सुखावत्या । १६ नुरगिरिनागिरिम् ।

‘सदासीर्वादिस्तुष्टः संविष्टो भानुमन्निषी । नृत्वावनीप्रभावेण युष्पदन्तिकमाप्तवान् ॥१६५॥
 क्षेमेणैति तयोरग्रे प्राशंसतां^१ नृपानुजः^२ । सता स सहजो भारो यत्स्तुवन्त्युपकारिणः ॥१६६॥
 वसुपालमहोपालप्रशनाद् भगवतोर्दिनैः । स्थित्वा विद्याधरश्रेण्यां बहुलम्भान्^३ समापिदान् ॥१६७॥
 ततः^४ सप्तदिनैरेव सुखेन प्राविशान् पुरम्^५ । सञ्चितोन्नतपुण्याना भवेदापच्च-सम्पदे ॥१६८॥
 वसुपालकुमारस्य वारिपेणादिभिः समम् । कन्याभिरभवन् कन्याणविधिविधिवर्द्धकः ॥१६९॥
 स श्रीपालकुमारस्य जयावत्यादिभिः कृणो । तदा चतुरस्रीनीष्ट^६ कन्यकाभिरलट्टकतः ॥१७०॥
 सूर्याचन्द्रमती वा तो स्वप्रभाष्याप्तदिक्कन्दो । पालयन्तो धरांचक्रं चिरं निर्विघ्नतः स्म शन्^७ ॥१७१॥
 जयावत्यां समुत्तमो गुणपालो गूणोज्ज्वलः । श्रीपालस्यायुषागारे चक्र च समजायत ॥१७२॥
 स सर्वाश्चक्रवर्षुर्बतमोगाननुभवन् भूशम् । शरनीलां^८ व्यडन्दिष्ट लक्ष्म्यां^९ लक्ष्मिनिविप्रहः ॥१७३॥
 श्रभूज्जयावतीश्रातस्तनूना जयवर्मणः । जयसेना ह्यया कान्तेस्ता^{१०} सेनेव^{११} विजिन्वतो^{१२} ॥१७४॥
 मनोवेगोऽगनिवरः शिवास्त्रोऽगनिवैगवाकः । हरिश्चेतुः परे चोच्चं क्षमाभुजः क्षणनायकाः ॥१७५॥
^{१३}जयसेनास्यनुस्यूभिस्तेया^{१४} तुग्भिः^{१५} सहाभवन् । विवाहो गुणपालस्य सताभिः प्राप्तसम्पदः ॥१७६॥

वचन, कायकी दुष्टि धारण करनेवाले श्रीपालने बहुत देरतक गुणपाल जिनेन्द्रकी स्तुति की, माता और भाईको देखकर उनका योग्य विनय किया और फिर उन दोनोंके आशीर्वादसे मनुष्ट होकर वह माताके पास बैठ गया । उसने माता और भाईके सामने यह कहकर सुन्वावतीकी प्रशंसा की कि मैं इसके प्रभावसे ही कुशलनापूर्वक आपलोगोके समीप आ मवा हू मो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोंका जन्मसे ही ऐसा स्वभाव होता है कि जिसमें वे उपकार करनेवालोंकी स्तुति किया करते हैं ॥१६४-१६६॥ महाराज वसुपालके प्रश्नके उत्तरमें भगवान् ने जैसा कुछ कहा था उसीके अनुमार उस श्रीपालने विद्याधरकी श्रेणीमें रहकर अनेक लाभ प्राप्त किये थे ॥१६७॥ तदनन्तर वह सात दिनमें ही सुखमें अपने नगरमें प्रविष्ट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि प्रबल पुष्पका संचय करनेवाले पुरुषोंको आपत्तिया भी सम्पत्तिके लिये हो जाती है ॥१६८॥

नगरमें जाकर वसुपाल कुमारका वारिपेणा आदि कन्याओंके साथ विवाहोत्सव हुआ, यह विवाहोत्सव अनेक प्रकारकी विभूतियोंमें युक्त था ॥१६९॥ उसी समय चतुर श्रीपाल कुमार भी जयावती आदि चौरासी इष्ट कन्याओंके अलङ्कृत-सुशोभित हुए ॥१७०॥ अपनी कान्तिसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान पृथिवीका पालन करते हुए दोनों भाई चिरकाल तक सुखका उपभोग करते रहे ॥१७१॥ कुछ दिन बाद श्रीपालकी जयावती रानीके गुणोंसे उज्ज्वल गुणपाल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और इधर आयुषमालामें चररत्न प्रवृत्त हुआ ॥१७२॥ जिसका शरीर लक्ष्मीसे सुशोभित हो रहा है ऐसा वह श्रीपाल चक्रवर्तिके वहे हुए सब भोगोना अत्यन्त अनुभव करना हुआ इन्द्रकी लीलाको भी उल्लेखन कर रहा था ॥१७३॥ जयावतीके भाई जयवर्माके जयसेना नामकी पुत्री थी जो अपनी कान्ति से सेनाके समान मयको जीतनेवाली थी ॥१७४॥ इसके निवाय मनोवेग, अगनिवर, शिव, अगनिवैग, हरिश्चेतु तथा और भी अनेक अच्छे अच्छे विद्याधर राजा थे, जयसेनाको आदि नेत्र

१ नृपेश्वरश्रीवसुपालयोराशीर्बचन । २ सुन्वावती सामर्थ्येन । ३ स्तौति स्म । ४ श्रीपाल । ५ कन्यादिप्राप्ति । ६ प्राप्त मन् । ७ सप्तदिनावन्तरमेव । ८ आशीयपुण्डरीकानुरम् । ९ वट्टवशाधो नृत्यमभ्यन्धिनी । १० प्रियनरणीभि, पट्टाह्मीभिरत्यर्थ । ११ मुग्मन्त्रभूषाम् । १२ निग्मकरोति स्म । व्यनट्टपिष्ट ल० । १३ लक्ष्म्यालिट्ठिगि अ० म० । लक्ष्मीसित्त ५०, ल० । १४ कान्या ६०, ५०, अ०, म०, ल० । १५ चमूग्वि । १६ जयगीता । १७ जयसेनादिप्रधानाभिः । १८ मनोवेगादीनाम् । १९ पुत्रोभिः ।

कदाचित् काललब्ध्यादिचोदितोऽभ्रगर्णनिर्दूतिः । विलोकयन्नभोभागम् शक्रस्माद्विन्द्यकारितम् ॥१७७॥
 चन्द्रग्रहणमालोक्य धिगन्तं स्व्यापि चोदियम् । भ्रमस्त्वा संसृतो पापप्रस्तस्त्वान्यस्य वा गतिः ॥१७८॥
 इति निर्दिष्ट सञ्जातजातिसमृत्तिश्चात्तथो^१ । स्मरुप्रंभयसम्बन्धं प्रत्यक्षमित्य संस्मर ॥१७९॥
 पुष्कराद्वेम्परे भागे विदेहे पद्मकाह्वये । विषये विद्युत्ते कान्त पुरापीशोऽवनीश्वरः ॥१८०॥
 रयान्तकनकस्तस्य वल्लभा कनकप्रभा । तयोर्भूत्वा प्रभापास्तभात्करः कनकप्रभः ॥१८१॥
 तस्मिन्मध्येषुदृष्ट्याने दृष्टा सप्रेण मत्प्रिया । विद्युत्प्रभाह्वया तस्या वियोगेन विषण्णवान् ॥१८२॥
 सार्धं समाधिगुप्तस्य समीपे संयमं परम् । सम्प्राप्तवानतस्त्रिगन्धैः पितृमातृसनाभिभिः ॥१८३॥
 तत्र सम्पत्कवशुद्धघाद्विषोऽत्र प्रत्ययान् भृशम् । भावयित्वा भयस्थान्ते^२ जयन्ताह्यविमानजः^३ ॥१८४॥
 प्राण्ते^४ ततोऽहमागत्य^५ जातोऽम्ब्रमिति स्फुटम्^६ । समुद्रदत्तेनादित्य^७ गतिर्वापिरयाह्वयः^८ ॥१८५॥
 श्रेष्ठो कुम्भेकान्तश्च लोकान्तिकपदं गताः । धीधितस्तैः^९ समागत्य गुणपालः प्रबुद्धवान् ॥१८६॥
 मोहपाशं समुच्छिद्य तप्तवाद्यं तपस्ततः । घातिकर्माणि निर्मूय सयोगिपदभागम् ॥१८७॥
 यशःपालः सुखावत्यास्तनूजस्तेन सयमम् । गृहीत्वा सह तस्मैव गणभूत्प्रयमोऽभवत् ॥१८८॥

उन सब राजाओकी पुत्रियोके साथ गुणपालका विवाह हुआ । इस प्रकार वह गुणपाल उन कन्याओके मिलनेसे बहुत ही हर्षित हुआ ॥१७५-१७६॥

अथानन्तर—किसी समय जिसका मोक्ष जाना अत्यन्त निकट रह गया है ऐसा गुणपाल काललब्धि आदिसे प्रेरित होकर आकाशकी ओर देख रहा था कि इतनेमे उसकी दृष्टि अकस्मात् अन्धकारसे भरे हुए चन्द्रग्रहणकी ओर पडी, उसे देखकर वह सोचने लगा कि इस संसारको धिक्कार हो, जब इस चन्द्रमाकी भी यह दशा है तब संसारके अन्य पापग्रसित जीवोकी क्या दशा होती होगी ? इस प्रकार वैराग्य आते ही उस उत्कृष्ट बुद्धिवाले गुणपालको जाति स्मरण उत्पन्न हो गया जिससे उसे अपने पूर्वभवके सम्बन्धका प्रत्यक्षकी तरह स्मरण होने लगा ॥१७७-१७९॥ उसे स्मरण हुआ कि पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम विदेहमे पद्मक नामका एक प्रसिद्ध देश है, उसके कान्तपुर नगरका स्वामी राजा कनकरथ था । उसकी रानीका नाम कनकप्रभा था, उन दोनोके मे अपनी प्रभासे सूर्यको तिरस्कृत करनेवाला कनकप्रभ नामका पुत्र हुआ था । किसी दिन एक बगीचेमे विद्युत्प्रभा नामकी मेरी स्त्रीको सापने काट खाया, उसके वियोगसे मे विरक्त हुआ और अपने ऊपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले पिता माता तथा भाइयोके साथ साथ मेने समाधिगुप्त मुनिराजके समीप उत्कृष्ट सयम धारण किया था ॥१८०-१८३॥ वहा मे दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओका अच्छी तरह चिन्तन कर आयुके अन्तमे जयन्त नामके विमानमे अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ था ॥१८४॥ और अन्तमे वहासे चयकर यहा धीपालवा पुत्र गुणपाल हुआ ह । वह इस प्रकार विचार ही रहा था कि इतनेमे ही समुद्रदत्त, आदित्यगति, त्रायुरथ और श्रेष्ठ कुम्भेकान्त जो कि तपश्चरण कर लोकान्तिक देव हुए थे उन्होने आकर ममभाया । इस प्रकार प्रबोधको प्राप्त हुए गुणपाल मोहजालको नष्ट कर तपश्चरण करने लगे और घातिया कर्मोको नष्ट कर सयोगिपद—तेरहवें गुण स्थानको प्राप्त हुए ॥१८५-१८७॥ गुणावतीका पुत्र यशपाल भी उन्ही गुणपाल जिनेन्द्रके पास दीक्षा धारण कर

१ चन्द्रम्य । २-दशरथी अ०, ग०, ल० । ३ यान्त्या निराकृत । ४ धारणानि । ५ आयुष्यस्थाने । ६ अहमिन्द्र । ७ त्रयार्थपुराणे । ८ स्वर्गार । ९ पूर्वभवमग्न्य प्रत्यक्षमित्य संस्मरतिनिगम्य । १० त्रियज्ञानाया जननेन मृत् । ११ हिरण्यवर्गो जनः । १२ प्रभावत्या पिता । १३ उक्तपौत्रानिचामरे ।

• त्रियज्ञानाया पिता, † हिरण्यवर्गो जनः, ‡ प्रभावतीका पिता, § कुम्भेकान्तिका पिता ।

राजगण्डा मुनिविभक्त्याऽप्येव तं मुनिः । श्रीमान् पुनर्दिदा तु कृत्वा धर्मं द्रव्यमस्त् ॥१८६॥
 तत्र म्दनादसम्भवं श्रमापीन् प्रथमाधरः । न वरश्च युवावैने कुर्यात् मुनीवना ॥१८७॥
 निर्वेदिनवती वृष्टा नृपुत्राङ्गोत्थनागिना । विदेहे पुण्डरीकिणा यथातो नरीरिनि ॥१८८॥
 तत्र सर्वमनुष्ठातो वीरिष्ठ तन्व मनत्रिना । धनञ्जयानुवतागनी धनधरोनवर्द्धितो ॥१८९॥
 तपोन्मुद्गं सर्वदयितं श्रेष्ठीं ननुनीतीं वती । नृपया सर्वदयिता श्रेष्ठिनश्चित्तलने ॥१९०॥
 मुना मागरसेनस्य जयमेता ननाह्वना । धनञ्जयवतीन्व्यं यदस्तामिधाजरा ॥१९१॥
 देवश्रीरनुजा श्रेष्ठिपितृमुत्तम्या तनुद्वन्द्वी । ततो मागरसेनस्य मागरो हतमस्तर ॥१९२॥
 तत्र समुद्रदत्तस्य नृत् सागरदत्ता । मुनीं मागरसेनानुजाया ज्ञानमहोरगी ॥१९३॥
 जानी मागरमेताया दत्तो वैश्रवणदत्तात् । दत्ता वैश्रवणदत्तस्य दत्ताया श्रेष्ठिनः स तु ॥१९४॥
 भार्या सागरदत्तस्य दत्ता वैश्रवणदत्तात् । सती समुद्रदत्तस्य सा सर्वदयिता प्रिया ॥१९५॥
 सा वैश्रवणदत्तोष्ठा दत्ताया सागराह्वया । तेषां सुखं सुनेनैव कानं मरुत्तं हस्तम् ॥१९६॥
 यथापानमहीपाननाकाङ्क्षीन्मृगयत । वीरिजनञ्जयोऽप्येष्टु सन्नैवैवानीहृत् ॥१९७॥

उन्हीका पहला गागर हुआ ॥१८८॥ उसी समय राजाविराज श्रीपालने वी विभूतिके साथ
 आकर गुणगात्र तीर्थकरकी पूजा की और गृहस्थ तथा मुनि सन्ध्या-दोनों प्रकारका धर्म
 मुना । तदनन्तर वटी विनयके साथ अपने पूर्वजवका नवध पूछा, तब भगवान् इन प्रकार कहने
 लगे—यह मय धर्म मधुर वचन बोल्नेवाली मुन्दरी सुलोचना महाराज जन्तुनाके पूछनेपर
 उनसे कह रही थी । उन्ने कहा कि—

विदेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमें यत्पाल नामका राजा रहता था ॥१८९-१९१॥
 उसी नगरमें नवमंमुद्ग नामका एक वैश्य रहता था । उनकी स्त्रीका नाम धनधरो था जो कि
 धनको बढ़ानेवाली थी और धनजयकी छोटी बहिन थी । उन दोनोंका पुत्र सर्वदयित मेट
 था, उनकी बहिनका नाम सर्वदयिता था जो कि बड़ी ही मनी थी । मेट सर्वदयितकी दो स्त्रिया
 थी, एक तो सागरसेनकी पुत्री जयमेता और दूसरी धनजय मेटकी पुत्री जयदत्ता ॥१९२-
 १९४॥ मेट सर्वदयितके पिताकी एक छोटी बहिन थी जिसका नाम देवश्री था और वह मेट
 सागरसेनकी ब्याही थी । उसके सागरदत्त और समुद्रदत्त नामके दो पुत्र थे तथा मागरदत्ता नामकी
 एक पुत्री थी । सागरसेनकी छोटी बहिन मागरसेनाके दो मतानें हुई थी—एक वैश्रवणदत्ता
 नामकी पुत्री और दूसरा वैश्रवणदत्त नामका पुत्र । वैश्रवणदत्त मेट सर्वदयितका हिस्सेदार
 था ॥१९५-१९७॥ वैश्रवणदत्ता मेट सागरदत्तकी स्त्री हुई थी, मेट समुद्रदत्तकी स्त्रीका
 नाम सर्वदयिता था और मागरदत्ता मेट वैश्रवणदत्तको ब्याही गई थी । इन प्रकार उन सब-
 का समय निरन्तर बटे प्रेमसे व्यतीत हो रहा था ॥१९८-१९९॥ जिनने बहुत धन उपाजने
 किया है ऐमें मेट धनजयने किसी दिन अच्छे अच्छे रत्न मेट देकर राजा महापालके दर्शन लिये

१ गुणगात्रवर्तिनम् । २ जयदत्तम् । ३ नीती । ४ पुत्रः । ५ राक्षसेष्टी । ६ धनञ्जय-
 नामवन्धरप । ७ त्रितीयः । ८ सर्वदयितश्रेष्ठिजननवमंमुद्गम् । ९ पुत्री । १० दयिपोर्मेतुर्नित्यम् ।
 ११ सर्वमंमुद्गम् भाषायाम् । १२ दत्ता व० ५० इ० ५०, स० । १३ दत्तो व०, प०, द०, अ०,
 स० । १४ माति । १५ सर्वदयितश्रेष्ठिनः । १६ वैश्रवणदत्तः । १७ सागरसेनस्य जयदत्तस्य । १८ वैश्रव-
 णदत्ता । भाषानूक्ति सम्बन्धः । १९ सागरसेनस्य वनिष्पुत्रस्य । २० सर्वदयितश्रेष्ठिना नीतीप्रिया ।
 भार्या जयैति सम्बन्धः । २१ समुद्रदत्तस्यानुजा सागरदत्ताया । वैश्रवणदत्तस्यैव सम्बन्धः ।
 २२ समुद्रदत्तस्य । २३ अष्टम्युग, अथवापुत्रनेपथं । २४ भागी । २५ ज्ञानमहोरगी ।

वयसास्त्रिंशत्' स भूयोऽपि तापे' स गानपुत्रं वाम् । श्रीत्या धन इत्युवाच । प्रभृत्पतिर्नोऽवनम् ॥२०१॥
 विलोचन' स वसिष्ठुश्च सवैऽपि धनमाजिनुम् । कामे गुणोत्कृष्टान् सानुय विनवेत्ति ॥२०२॥
 'तस्मिन्नेतास्वाश्रयेत् स "ननुश्राश्रितस्त" । कायो वयस्यस्यस्य भायोऽनार्य'पुत्रं वाम् ॥२०३॥
 वेनाप्यविदितो रात्रावेव 'गार्ग्यमुपागत' । वामे गर्भे विदितवानस्य' माया' कुर्यात्संज्ञकम् ॥२०४॥
 इति सागरवताश्रयणवा' भृशु'समागतम् ॥ 'बाधितोऽप्यगोऽप्यगो इत्येतासा' 'मन्त्राणां' ॥२०५॥
 तान् धेष्टिगृह' माया संतापि 'च' कुर्यात् ॥ 'जातमृते' समागतं-यत्रात्वात् सा निवर्तिता ॥२०६॥
 तावीरवर्णय्येवतितान् वेचने' विदित्वात्पि । तवतासावपी पुत्रम् 'स्यस्यस्य'पुण्यम् ॥२०७॥
 तस्मिन्नेवा कृतान्वेव' तान् पथ पराशय । यत्र' वचन भौवेन 'निर्दिश्येत्पुत्रोविच' ॥२०८॥
 प्रायेण' धेष्टिता प्रोक्त धेष्टिमित्राय वृद्धिमात् । स्यमात्रे माधियु' विद्याम् ध्यायन्तव सदायि ॥
 प्रायः समर्पयामास विधियो कुरितोऽप्य । तयोऽपि जयधामात्यो सवभाषाय वस्तभा ॥२०९॥
 तो' भोगपुरवास्तव्यो' जितगन्तुणा ह्ययम् । कृत्वा वपंयता' पुत्रमिव कन्वीर्य सदा ॥२११॥

राजाने भी उसारा समान तिया धीर यडे प्रेममे उमने तिये यथायोग्य दत्त मा सुखं आदि
 धन यापिल दिया ॥२००-२०१॥ यद् देगवन् मय धैर्यपुत्र धन ममानेने तिये पाहिर निरने
 जोर' सन मिलार नगरते गभीर ही एज गायमें जातर टट्टर गये ॥२०२॥ दूसरे दिन समुद्र-
 दत्त राधिमं उन डेरोगे अपने घर आया और अपनी स्त्रीमे मनोग मन्त्र विनीके जाने निजा ही
 राधिमं ही अपने भण्डमें जा भिला । दूसर समवानुसार उगवा गर्भे यदने लगा । जब इस बात
 का पता समुद्रदत्तके वडे भाई सागरदत्तको चला तब उमने नमना रि यद् अवश्य ही इसरा
 पापरूप कुराचरण है । समुद्रदत्तकी स्त्री सर्वदयिताने पतिने माध ममागम हीरेरा गव ममा-
 चार यद्यपि बतलाया तथापि उसने परोक्षा किये बिना ही उगे घरने निराग दिया ॥२०३-
 २०५॥ तब सर्वदयिता अपने भाई सेठ गवंदयितने घर गदं परन्तु उमने भी अज्ञानतासे
 यही कहकर उसे भीतर जानेसे रोक दिया कि 'तू कुराचारिणी है, मेरे घरमें मत आ' ॥२०६॥
 तदनन्तर वह पासवे ही एव दूसरे घरमें रहने लगी, नौ महीनेकी अवधि पूर्ण होनेपर उसने
 एक अतिशय पुण्यवान् पुत्र प्राप्त किया ॥२०७॥ जब सेठ सर्वदयितको यह खबर लगी तो
 उसने समझा यह पुत्र क्या ? हमारे बुलवा बलव उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसने एक नौबर-
 को यह कहकर भेजा कि 'इमे ले जाकर किसी दूसरी जगह रम आ' । यह संवय बुद्धिमान् था
 और सेठका विश्वासपात्र भी था, वह बालकको ले गया और सेठके एव विद्याधर मित्रको जो
 कि विद्या सिद्ध करनेके लिये श्मशानमें आया था, सोप आया सो ठीक ही है क्योकि पापका
 उदय बडा विचित्र होता है । सेठके उस मित्रका नाम जयधाम था और उसकी स्त्रीका नाम
 जयभामा था । वे दोनों भोगपुरके रहनेवाले थे उन्होने उस पुत्रका नाम जितरायु रखा और
 उसे औरस पुत्रके समान मानकर वे बड़ी प्रसन्नतासे उसका पालन-भोषण करने लगे ॥२०८-

१ ददर्श । २ धनञ्जयाय । ३ ददी । ४ धनञ्जय रात्ता पूजितोऽय दृष्ट्वा ५ -मज्जिनुम् ल० ।
 ६ तच्छिविरात् । ७ देवश्रीसागरसेनयो पुत्र समुद्रदत्त । ८ शिविरम् । ९ सर्वदत्ताया । १० असो-
 भनव्यवहार । ११ दुर्वृत्त कश्चिन्नारोऽभवदिति । १२ सर्वदयितया । १३ निजपुरपागमनम् । १४ मम
 भर्ता शिविरादागत्य मया सह सम्पक् कृतवानिति निवेदितोऽपि । १५ सर्वदयिताम् । १६ निष्ठासिनवात् ।
 १७ निजाप्रसर्वदयितश्रेष्ठिगृहम् । १८ दुष्टमाचरति स्म । १९ नास्मद्गृह ल०, अ०, प०, स०, इ० ।
 २० गृहे । २१ शिशु । २२ यन कुनापि । २३ स्थापय । २४ भूय । २५ विश्वात्म्य' । २६ विद्या
 धरस्य । २७ जयधामजयभामेति द्वौ । २८ भोगपुरनिवासिनी । २९ तिस्रोऽजितरात्रित्यास्या कृत्वा ।
 ३० वर्षयत् स्म ।

तदा पुनर्वियोगेन सा सर्वदयिताऽचिरात् । स्त्रीवेदिनिन्दान्नुत्वा सम्प्रापञ्चम पीरुपम् ॥२१२॥
 तत् समुद्रदत्तोऽपि सायनेनामा^१ समागत । श्रुत्वा स्वभाषावृत्तान्ति निन्दित्वा भ्रातरं निजम् ॥२१३॥
 'श्रीच्छिनेऽनपराधामा गृह्वेशनिवारणात् । अरुण्यन्नितरा कृत्य क सहैताविचारितम् ॥२१४॥
 ज्येष्ठे न्यायगत योग्ये मयि स्थितवति स्वयम् । श्रेष्ठित्वमयमप्यास्त इति श्रेष्ठिनि' कोपवान् ॥२१५॥
 वं वैश्रवणदत्तोऽपि स सागारदत्तक^२ । साह्यं समुद्रदत्तेन मात्सर्याच्छ्रेष्ठिनि^३ स्थिता ॥२१६॥
 दुस्तहे तपसि श्रेयो मत्नरोऽपि ववचित् नृणाम् । अग्येद्युजितशानु त दृष्ट्वा श्रेष्ठी कृतो भवान् ॥२१७॥
 'समुद्रदत्तसात्प्य दधत्सत्तद' मागन । इति पप्रच्छ सोऽप्यात्मागमनकममब्रवीत् ॥२१८॥
 गान्धो मद्भागिनेयोऽयमिति तद्वस्तसत्स्थिताम् । मुद्रिका चोदय निदिक्ष्य निपरोक्षता^४ निजाम् ॥
 संयुनस्य^५ च सस्मृत्य तस्मै^६ सर्वश्रियं सूताम् । धन श्रेष्ठिपद चासौ^७ दत्त्वा निविण्णमानस ॥२२०॥
 जयधामा^८ जयधामा जयसेना^९ तथाऽपरा । जयदत्ताभिधाना च परा सागरदत्तिका^{१०} ॥२२१॥
 सा वैश्रवणदत्ता^{११} च परे चोन्वद्रवोधका । सजातास्तं सह श्रेष्ठी सयम प्रत्यपद्यत् ॥२२२॥
 मुनि रतिवर प्राप्य चिर विहितसयमा । एते सर्वेऽपि कालान्ते स्वगलोक समागमन् ॥२२३॥

२११॥ सर्वदयिताने पुनःके वियोगसे बहुत दिनतक स्त्रीवेदकी निन्दा की और मरकर पुरुष-
 का जन्म पाया ॥२१२॥ तदनन्तर समुद्रदत्त भी अपने भ्रुण्डके साथ वापिस आ गया और
 अपनी स्त्रीका वृत्तान्त सुनकर अपने भाईकी निन्दा करने लगा । सेठने अपराधके विना ही
 उसकी स्त्रीको घरमें प्रवेश करनेने रोका था इसलिये वह सेठपर अत्यन्त रोध करता रहता
 था सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य विना विचारे किया जाता है उसे भला कौन सहन कर
 सकता है ? ॥२१३-२१४॥ कुछ दिन बाद वैश्रवण सेठ सागरदत्तसे यह कहकर शोध
 करने लगा कि 'जब मैं बड़ा हू, और योग्य हू तो न्यायसे मुझे सेठ पद मिलना चाहिये, मेरे रहते
 हुए यह सेठ क्यों बन बैठा है' । इसी प्रकार सागरदत्त और समुद्रदत्त भी सेठन साथ ईर्ष्या
 करने लगे ॥२१५-२१६॥ आचार्य कहते हैं कि कठिन तपश्चरणके विषयमें की हुई मनुष्यों
 की ईर्ष्या भी कहीं कहीं अच्छी होती है परन्तु अन्य सब जगह अच्छी नहीं होती । किसी एक
 दिन सेठ सर्वदयिताने जितशानुसे पूछा कि तू समुद्रदत्तकी समानता क्यों धारण कर रहा है—
 तेरा रूप उसके समान क्यों है ? और तू सभामें किन्तलिये आया है ? तब जितशानुने भी
 अनुजमसे अपने आनेका सब समाचार कह दिया ॥२१७-२१८॥ उगी समय सेठकी दृष्टि
 उसके हाथमें पहिनी हुई अगूठीपर पड़ी, उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि 'यह मेरा
 भागजा ही है, दूसरा कोई नहीं है । उसे अपनी और अपने वहनोंईकी अपरीक्षकता (विना
 विचारे कार्य करने)की याद आ गई और उसे सर्वश्री नामकी पुत्री, बहुत सा धन और सेठना पद
 देकर स्वय विरक्तचित्त हो गया ॥२१९-२२०॥ उगी समय जितशानुना पालनेवाला
 जयधाम विद्याधर, उसकी स्त्री जयधामा, जयसेना और जयदत्ता नामकी अपनी स्त्रिया, वैश्रवण-
 दत्तकी स्त्री सागरदत्ता और वैश्रवणदत्तकी बहिन वैश्रवणदत्ता तथा और भी अनेक लोगोंको
 आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ । उन सबके साथ साथ सेठने रतिवर मुनिके समीप जाकर सयम धारण

१ यगिन्समूहेन सह । २ सर्वदयिताय । ३ पुत्रोद । ४ सर्वदयित । ५ स वै-स०, अ०, स०,
 इ० । ६ सागरदत्तसहित । ७ श्रेष्ठिनि स०, प०, इ०, स०, अ० । ८ समुद्रदत्तस्य समानरूपतान् ।
 ९ सभाम् । १० विचाररूपतान् । ११ सागरदत्तस्य विचाररूपतान् । १२ तत्रनागिनयज्ञिजगत्रवे ।
 १३ सर्वदयितश्रेष्ठी । १४ क्विन्नानुपपन्नविद्याधरदम्पती । १५ शक्यदयितस्य भाष्ये । १६ वैश्रवणदत्तस्य
 भाष्ये । १७ सागरदत्तस्य भाष्ये ।

व्यलोकिकट^१ स भूयोऽपि तस्मै^२ सन्मानपूर्वकम् । प्रीत्या धन हिरण्यादि प्रभूतमदितोचितम्^३ ॥२०१॥
 विलोक्य^४ त वणिक्पुत्रा सर्वेऽपि धनमाजितुम्^५ । ग्रामे पुरोपकण्ठस्थे सम्भूय विनिवेशरे ॥२०२॥
 'तन्निवेशादयाऽप्येद्यु स^६ समुद्रादित्तकः । रात्रौ स्वगृहमागत्य भाषासम्पर्कपूर्वकम् ॥२०३॥
 केनाप्यविदितो रात्रावेव 'सार्थमुपागत । काले गर्भं विदित्वाऽस्था^७ पापो^८ दुश्चरितोऽभवत्^९ ॥२०४॥
 इति सागरदत्ताख्यस्तया^{१०} भर्तु^{११} समागमम्^{१२} । 'बोधितोऽप्यपरीक्षयासौ स्वगेहात्ता^{१३} मपाकारो^{१४} ॥२०५॥
 तत श्रेष्ठिगृह^{१५} याता तेनापि 'व दुराचरा^{१६} । 'नास्मद्गृहे समागच्छेत्प्रज्ञानात् सा निवारिता ॥२०६॥
 समीपवर्तिव्येकस्मिन् केतने^{१७} विहितस्थिति । नवमासावधौ पुत्रम् अलंघानल्पपुण्यकम् ॥२०७॥
 तद्विदित्वा कुलस्वैप^{१८} समु पन्न पराभव । यत्र^{१९} क्वचन नीत्वैन 'निक्षिपेत्पत्यनुजोविक^{२०} ॥२०८॥
 प्रत्येय^{२१} श्रेष्ठिना प्रोक्त श्रेष्ठिमित्रस्य बुद्धिमान् । स्मदाने साधितु विद्याम् आगतस्य खयायिन^{२२} ॥
 बाल समर्पयामास विचित्रो दुरितोदय । खगोऽसौ जयधामारपो जयभामास्य बलभा ॥२१०॥
 तौ^{२३} भोगपुरवास्तव्यौ^{२४} जितशत्रुसमाह्वयम्^{२५} । कृत्वा कथंयता^{२६} पुत्रमिव मत्वीरस मुवा ॥२११॥

राजाने भी उसका सन्मान किया और बड़े प्रेमसे उसके लिये यथायोग्य बहुत सा सुवर्ण आदि धन वापिस दिया ॥२००-२०१॥ यह देखकर सब वैश्यपुत्र धन कमानेके लिये बाहिर निकले और सब मिलकर नगरके समीप ही एक गावमे जाकर ठहर गये ॥२०२॥ दूसरे दिन समुद्र-दत्त रात्रिमें उन डेरोसे अपने घर आया और अपनी स्त्रीसे सभोग कर किसीके जाने बिना ही रात्रिमें ही अपने भूष्ण्डम जा मिला । इधर समयानुसार उसका गर्भ बढ़ने लगा । जब इस बात का पता समुद्रदत्तके बड़े भाई सागरदत्तको चला तब उसने समझा कि यह अवश्य ही इसका पापरूप दुराचरण है । समुद्रदत्तकी स्त्री सर्वदयिताने पतिके साथ समागम होनेका सब समा-चार यद्यपि बतलाया तथापि उसने परीक्षा किये बिना ही उसे घरसे निकाल दिया ॥२०३-२०५॥ तब सर्वदयिता अपने भाई सेठ सर्वदयितके घर गई परन्तु उसने भी अज्ञानतासे यही कहकर उसे भीतर जानेसे रोक दिया कि तू दुराचारिणी है, मेरे घरमें मत आ' ॥२०६॥ तदनन्तर वह पासके ही एक दूसरे घरमे रहने लगी, नौ महीनेकी अवधि पूर्ण होनेपर उसने एक अतिशय पुण्यवान् पुत्र प्राप्त किया ॥२०७॥ जब सेठ सर्वदयितको यह खबर लगी तो उसने समझा यह पुत्र क्या ? हमारे कुलका बलक उत्पन्न हुआ है, इसलिये उसने एक नौकर-को यह कहकर भेजा कि 'इमे ले जाकर बिसी दूसरी जगह रख आ' । वह सेवक बुद्धिमान् था और गेटना विद्वामपात्र भी था, वह बालकको ले गया और सेठके एक विद्याघर मित्रको जो कि विद्या गिद्ध करनेके लिये श्मशानमें आया था, सौंप आया सो ठीक ही है क्योंकि पापका उदय बड़ा विचित्र होता है । गेटने उस मित्रका नाम जयधाम था और उसकी स्त्रीका नाम जयनामा था । वे दोनों भोगपुरके रहनेवाले थे उन्होने उस पुत्रका नाम जितशत्रु रखा और उमे औरत पुत्रके गमान मानकर ये बड़ी प्रसन्नतासे उमका पालन-पोषण करने लगे ॥२०८-

१ दत्त । २ धाञ्जयाय । ३ ददी । ४ धनञ्जय रामा पुत्रितोऽन् दृष्ट्वा ५ -मज्जितुम् ल० ।
 ६ श्रेष्ठिचरणम् । ७ स्वधोगागमगतया पुत्र समुद्रदत्ता । ८ निवारिम् । ९ सर्वदत्ताया । १० अगो
 भगव्यवत्तरः । ११ दुर्बल कश्चिन्नाराऽभवदिति । १२ गर्भदयिताया । १३ त्रिजपुरागमाम् । १४ मम
 भर्ता एतिसाऽप्यस्य स्यात् सत् सत्पत्तं कृत्वातिनि निवदितोऽपि । १५ सर्वदयिताम् । १६ त्रिजपुरागिताम् ।
 १७ त्रिजपुरागिताम् । १८ दुष्कृष्णवर्गिणम् । १९ नास्मद्गृहं ल०, य०, प०, ग०, द० ।
 २० गृहम् । २१ त्रिम् । २२ यत्र कुर्यात् । २३ श्यामम् । २४ भूयम् । २५ विद्वत्तः । २६ विद्या
 पत्रम् । २७ अन्धगमकभयमिति द्वौ । २८ भागपुरनिशागिनी । २९ त्रिजपुरागिताम् । ३० क०, य०, ग० ।

तदा पुनर्वियोगेन सा सर्वदयिताऽञ्जिरात । स्त्रीवेदिनिन्दान्मुत्वा सम्प्राप्यग्न्म पौरुषम् ॥२१२॥
 तत समुद्रदत्तोऽपि सायेंनामा^१ समागत । श्रुत्वा स्वभाषावृत्तान्तं निन्दित्वा भातर विजम् ॥२१३॥
 'श्रेष्ठिनेऽनपराधायाम् गृह्वेदानिवारणात् । 'श्रुत्वाप्यनितरा कृत्य क सहेताविचारितम् ॥२१४॥
 ज्येष्ठे न्यायगत योग्ये मयि स्थितवति स्वयम् । श्रेष्ठित्वमयमभ्यास्त इति श्रेष्ठिनि^२ वीषवान् ॥२१५॥
 वं 'वैश्रवणदत्तोऽपि स सागारदत्त'^३ । साह्यं समुद्रदत्तेन मात्सर्याच्छ्रेष्ठिनि^४ स्थिता ॥२१६॥
 दुस्तहे तपति श्रेयो मत्मरोऽपि क्वचित् नृणाम् । धन्येद्युजितदानु स दृष्ट्वा येष्टी कुतो भवान् ॥२१७॥
 'समुद्रदत्तात्सप्य दधत्सत्तद'भागन । इति पप्रच्छ सोऽप्यात्सागमनक्रममब्रवीत् ॥२१८॥
 नाग्यो मद्भागिनेयोऽयमिति तद्वस्तसह्यताम् । मुद्रिका वीषय निदिच्य नि परीक्षयता^५ निजाम् ॥
 गंयुनस्य^६ च सस्मृत्य तस्मै^७ सर्वश्रियं सुताम् । धन श्रेष्ठिपदं चात्तो^८ दत्त्वा निर्विग्नमानस^९ ॥२२०॥
 जयधामा^{१०} जयधामा जयसेना^{११} तथाऽपरा । जयदत्ताभिधानां च परा सागरदत्तिका^{१२} ॥२२१॥
 सा वैश्रवणदत्ता^{१३} च परे चोत्पन्नवोषका । राजातस्तं सह श्रेष्टी सयम प्रत्यपद्यत् ॥२२२॥
 मुनि रतिवर प्राप्य धिर विहितसयमा । एते सर्वेऽपि कालानो स्वर्गतोऽपि समागमन् ॥२२३॥

२११॥ सर्वदयिताने पुनर्के वियोगसे बहुत दिनतक स्त्रीवेदकी निन्दा की और मरकर पुरुष-
 का जन्म पाया ॥२१२॥ तदनन्तर समुद्रदत्त भी अपने भ्रूण्डके साथ वापिस आ गया और
 अपनी स्त्रीका वृत्तान्त सुनकर अपने भाईकी निन्दा करने लगा । सेठने अपराधके बिना ही
 उसकी स्त्रीको घरमें प्रवेश करनेसे रोका था इसलिये वह नेठपर अत्यन्त नोच करता रहता
 था सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचारे किया जाता है उसे भला कौन सहन कर
 सकता है ? ॥२१३-२१४॥ कुछ दिन बाद वैश्रवण सेठ सागरदत्तसे यह कहकर शोध
 करने लगा कि 'जब मैं बड़ा हूँ, और योग्य हूँ तो न्यायसे मुझे सेठ पद मिलना चाहिये, मेरे रहते
 हुए यह सेठ क्यों बन बैठा है' । इसी प्रकार सागरदत्त और समुद्रदत्त भी सेठ साय ईर्ष्या
 करने लगे ॥२१५-२१६॥ आचार्य कहते हैं कि कठिन तपश्चरणके विषयमें की हुई मनुष्यों
 की ईर्ष्या भी कही कही अच्छी होती है परन्तु अन्य सब जगह अच्छी नहीं होती । किसी एक
 दिन सेठ सर्वदयितने जितदानुसे पूछा कि तू समुद्रदत्तकी समानता क्यों धारण कर रहा है—
 तेरा रूप उसके समान क्यों है ? और तू सभामें किसलिये आया है ? तब जितदानुने भी
 अनुक्रमसे अपने आनेका सब समाचार कह दिया ॥२१७-२१८॥ उसी समय सेठनी दृष्टि
 उसके हाथमें पहिनी हुई अगूठीपर पड़ी, उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि 'यह मेरा
 भानजा ही है, दूसरा कोई नहीं है । उसे अपनी और अपने बहोईकी अपरीक्षयता (बिना
 विचारे कार्य करने)की याद आ गई और उसे सर्वश्री नामकी पुत्री, बहुत सा धन और सेठना पद
 देकर स्वयं विरक्तचित्त हो गया ॥२१९-२२०॥ उसी समय जितदानुना पालनेवाला
 जयधाम विद्याधर, जयसेना स्त्री जयधामा, जयसेना और जयदत्ता नामकी अपनी स्त्रियाँ, वैश्रवण-
 दत्तकी स्त्री सागरदत्ता और वैश्रवणदत्तकी बहिन वैश्रवणदत्ता तथा और भी अनेक लोगोंने
 आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ । उन सबके साथ साथ गेठने रतिवर मुनिके समीप जाकर सयम धारण

१ यगिक्समुहेन सह । २ सवदमिताय । ३ वृकोप । ४ सर्वदयिने । ५ स यै-स०, अ०, न०,
 ६० । ६ सागरदत्तसहित । ७ श्रेष्ठिनि स०, प०, ६०, स०, अ० । ८ समुद्रदत्तस्य समानताम् ।
 ९ सभाम् । १० विचारणुजनाम् । ११ सागरदत्तस्य निवारणुयनाम् । १२ निद्रानानियजितगत्रवे ।
 १३ सर्वदयिनाश्रेष्टी । १४ जितदानुर्षनेनिययापरदम्पनी । १५ सर्वदयितास्य भाष्ये । १६ वैश्रवणदत्तस्य
 भाष्ये । १७ सागरदत्तस्य भाष्ये ।

प्रान्ते स्वर्गाविहागत्य जयधामा तदातन^१ । वसुपालोऽत्र सञ्जातो जयभामाऽप्यजायत ॥२२४॥
 'जयवत्यात्तसौन्दर्या जयसेनाऽजनिष्ट सा । पिप्पला^२ जयदत्ता तु बत्यन्तमदनाऽभवत् ॥२२५॥
 विद्युद्वेगाऽभवद वैश्रवणदत्ता कलाखिला^३ । जाता सागरदत्तापि स्वर्गदित्य सुखावती ॥२२६॥
 तदा सागरदत्ताख्य स्वर्गलोकात् समागत । पुत्रो हरिवरो जात स^४ पुष्टवत्स प्रिय ॥२२७॥
 समुद्रदत्तो ज्वलनवेगस्याजनि विश्रुत । तनूजो धूमवेगाख्यो विद्याविहितपोष्य ॥२२८॥
 स वैश्रवणदत्तोऽपि भूतोऽज्ञाननिवेगक । श्रेष्ठो स सर्वदयित श्रीपालस्त्वमिहाभव ॥२२९॥
 त्व जामातुनिराकृत्या^५ सनाभिभयो विद्योजित । तदा^६ त्वद्वेपिणोऽस्मिंश्च तव द्वेपिण एव ते ॥२३०॥
 तदा प्रियास्तवात्राऽपि सञ्जाता नितरा प्रिया । अहि^७सयाऽभंक^८स्यासीद् बन्धुभिस्तव^९ सद्गम ॥२३१॥
 तत्तप फलतो जात चक्रित्व सकलक्षिते । सर्वसङ्गपरित्यागान्मडक्षु भोक्ष गमिष्यसि ॥२३२॥
 अयोदीरिततोर्वैश्वचनाकण्ठनेन ते । सर्वे परस्परद्वेषाद् विरमन्ति स्म विस्मयात् ॥२३३॥
 जन्मरोगजरामुःष्विहृतु सन्त^{१०}तानुगान् । सन्निधाय धिय धन्यो^{११}ऽस्यासीद्धर्मामृत तत ॥२३४॥
 विगिद चक्रिसाम्राज्य कुलासस्येव जीवितम् ।^{१२}'भुक्तिश्चक्र'^{१३} परिभ्राम्य मृदुत्वन्नफलाप्तित^{१४} ॥२३५॥

कर लिया । वे सभी लोग चिरकालतक सयमका साधन कर आयुके अन्तमे स्वर्ग गये ॥२२१-२२३॥ वहाकी आयु पूरी होनेपर स्वर्गसे आकर पहलेका जयधाम विद्याधर यहा राजा वसुपाल हुआ है, जयभामा वसुपालकी सुन्दरी रानी जयावती हुई है, जयसेना पिप्पली हुई है, जयदत्ता मदनावती हुई है, वैश्रवणदत्ता सब कलाओमे निपुण विद्युद्वेगा हुई है सागरदत्ता स्वर्गसे आकर सुखावती हुई है, उस समयका सागरदत्त स्वर्गसे आकर पुष्टवत्ताका प्यारा पुत्र हरिवर हुआ है, समुद्रदत्त ज्वलनवेगका प्रसिद्ध पुत्र हुआ है जो कि अपनी विद्याओसे ही अपना पोष्य प्रकट कर रहा है, वैश्रवणदत्त अगनिवेग हुआ है और सर्वदयित सेठ यहा श्रीपाल हुआ है जो कि तू ही है ॥२२४-२२९॥ तूने पूर्वभवमें अपने जमाई (भानेज जितशानु) को उसकी मातासे अलग कर दिया था इसलिये तुझे भी इस भवमें अपने भाई बन्धुओसे अलग होना पडा है, पूर्वभवमें जो वैश्रवणदत्त, सागरदत्त तथा समुद्रदत्त तेरे द्वेषी थे वे इस भवमे भी तुझसे द्वेष करनेवाले धूमवेग, अगनिवेग और हरिवर हुए है । उस भवमें जो तुम्हारी स्त्रिया थी वे इस भवमें भी तुम्हारी अत्यन्त प्यारी स्त्रिया हुई है । तुमने अपनी वहिनके वालककी हिसा नही की थी इसलिये ही तेरा इस भवमें अपने भाई बन्धुओके साथ फिरसे समागम हुआ है । तूने उस भवमें जो तपश्चरण किया था उसीके फलसे सम्पूर्ण पृथिवीका चक्रवर्ती हुआ है और अन्तमें सब परिग्रहोवा त्याग कर देनेसे तू श्रीघ्न ही मोक्ष पा जायगा ॥२३०-२३२॥ इस प्रकार तीर्थंकर भगवान् गुणपात्रके वहे हुए बचनोकी सुनकर सब लोगोने आश्चर्यपूर्वक अपना परस्पर पा मग बैर छोड दिया ॥२३३॥

तदनन्तर पुण्यात्मा श्रीपात्रने मदासे पीछे लगे हुए जन्म, रोग, जरा और मृत्युको नष्ट करनेके लिये बुद्धि स्थिर कर धर्मरूपी अमृतका पत्रन किया ॥२३४॥ वह सोचने लगा कि यह पत्रवर्तीका साम्राज्य कुम्हारकी जीवनीके समान है धर्मोपि जिस प्रकार कुम्हार अपना पत्र (पात्र) घुमाकर मिट्टीमे बने हुए पड़े जादि वर्तमाने अपनी आजीविका चलाता है

१ तन्वाचमव । २ आगावप्यापमहिषी त्राया । ३ त्तिनी १०, ५०, ६०, ७०, ८० । ४ सम्पूर्णावता । ५ गुरवत्त इति विद्युद्वेगस्य । ६ भगिनीपुत्राय निराकरणेन । ७ तस्याने । ८ अहियल । ९ तव भक्तित्वात् । १० पुत्राभ्यां वै मत्त मयाग । ११ तित्तरतनुमगतापीकार् । १२ गती । १३ यद् पात्र इति धन्यम् । १४ अश्रुत्तया । १५ पात्रवत्तम् परत्रियायगता च । १६ धावापन्नप्रशान्ति । १७ त्तिनीपान्तात् १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

ध्राद्यर्वायुर्य^१ भोगे^२ भोगो भङ्गो^३ हि सद्गम^४ । वयु पापस्य दुष्पात्र विचल्लोलो विभूतय ॥२३६॥
 'मार्गविभ्र शहेतुत्वाद् यौवनं यहनं धनम् । या रतिविषयेष्वेवा गवेययति साऽरतिम् ॥२३७॥
 सर्वमेतत्सुप्ताय स्याद् यत्नमतिविपर्यय^५ । प्रगुणाय मतो सत्या किं तस्याज्यमत परम् ॥२३८॥
 चित्तद्रुमस्य चेद् वृद्धिं अभिलाषविषाडकुरं । कथं दुःखफलानि स्यु सम्भोगविदेषु न ॥२३९॥
 भुक्तो भोगो दत्ताष्टगोऽपि यथेष्ट सुचिर मया । 'भ्रात्रामात्रेऽपि नात्रासीत्तुष्टितुष्णाविधातिनी ॥२४०॥
 मस्तु वास्तु समस्तं च सद्कल्पत्रिषयोरुत्तम । इष्टमेव तयाप्यस्माप्राप्तिस्त व्य^६स्ताऽपि निवृ^७ति ॥२४१॥
 शित्त स्त्रीभ्य सुखावाप्ति पौषव^८ किमत परम् । दंभ्यमात्मनि सम्भाष्य^९सौख्य स्या परम् १० पुमान् ॥
 इति श्रीपालचक्रेण सत्यजन् वक्रता धिय । प्रक्रमेणाखिल त्यक्तु सचक्र मतिमातनोत् ॥२४३॥
 तत सुखावतीपुत्र नरपालाभिधानकम् । कृताभिषेकमारोप्य समुत्सृज्य मिजासनम् ॥२४४॥
 जयवतीदिभि स्वाभिषेकैर्भिर्यरणीश्वरं । वसुपालादिभिश्चामा सयम् प्रत्यपद्यत ॥२४५॥
 स बाह्यमन्तरङ्गं च तपस्तप्या यथाविधि । क्षपकश्रेणिसाहृष्य^{११}भासेन (?) हतमोह^{१२} ॥२४६॥
 यथाख्यातमवाप्सोश्चारित्रनिष्कपायकम् । ध्यायन् द्वितीयशुकतेन वीचाररहितात्मना^{१३} ॥२४७॥

उसी प्रकार चरवर्ती भी अपना चक्र (चररत्न) धुगाकर मिट्टीसे उत्पन्न हुए रत्न या कर आदिसे अपनी आजीविका चलाता है—भोगोपभोगकी सामग्री जुटाता है इसलिये इस चरवर्ती के साम्राज्यको धिक्कार है ॥२३५॥ यह आयु वायुके समान है, भोग भेषके समान है, इष्ट-जनोका सयोग नष्ट हो जानेवाला है, शरीर पापोका खोटा पान है और विभूतिया विजलीके समान चंचल है ॥२३६॥ यह यौवन समीचीन मार्गसे भ्रष्ट करानेका कारण होनेसे सधन वनके समान है और जो यह विषयोमें प्रीति है वह द्वेषको ढूंढनेवाली है ॥२३७॥ इन सब वस्तुओं से सुख तभी तक मालूम होता है जब तक कि वृद्धिमें विपर्ययपना रहता है । और जब वृद्धि सीधी हो जाती है—तब ऐसा जान पड़ने लगता है कि इन वस्तुओंके सिवाय छोड़ने योग्य और क्या होगा ? ॥२३८॥ जब कि अभिलाषारूपी विषके अकुरीसे इस चित्तरूपी वृक्षकी सदा वृद्धि होती रहती है तब उसकी सम्भोगरूपी डालियोपर भला दुःखरूपी फल क्यों नहीं लगेंगे ? ॥२३९॥ मैंने इच्छानुसार चिरकालतक दसों प्रकारके भोग भोगे परन्तु इस भवमें तृष्णाको नष्ट करनेवाली तृप्ति मुझे रचमान भी नहीं हुई ॥२४०॥ यदि हमारी इच्छाके विषयमूलत सभी इष्ट पदार्थ एक साथ मिल जायें तो भी उनसे थोड़ा सा भी सुख नहीं मिलता है ॥२४१॥ स्त्रियोसे सुखकी प्राप्ति होना ही पुरपत्व है ऐसा प्रसिद्ध है परन्तु इसमें बढ़कर और दीनता क्या होगी ? इसलिये अपने आत्मामें ही सच्चे सुखका निश्चय कर पुरप हो सकता है—पुरुषत्वका धनी बन सकता है ॥२४२॥ इस प्रकार वृद्धिकी वक्रताको छोड़ते हुए श्रीपाल चरवर्तीने चररत्न सहित समस्त परिग्रहका एक साथ छोड़नेका विचार किया ॥२४३॥ तदनन्तर उसने नरपाल नामके सुखावतीके पुत्रका राज्याभिषेक कर उसे अपने बहुत उंचे सिंहासनपर बैठाया और स्वयं जयवती आदि रानिया तथा वसुपाल आदि राजाओंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥२४४-२४५॥ उन्होंने विधिपूर्वक बाह्य और अन्तरङ्ग तप तथा, क्षपक श्रेणीमें चढ़कर मोहरूपी शत्रुको नाश करनेमें प्राप्त होनेवाला कपायरहित यथाग्यात नामका उत्कृष्ट चारित्र प्राप्त किया, वीचाररहित द्वितीय शुक ध्यानके द्वारा आत्मस्वरूपका

१ वायुवर्षी । २ भेषो न० । ३ विनाशो । ४ इष्टमयाग । ५ सम्भाष्यन्तिनाऽप्येतान । ६ सखचद नादि । ७ मतव्यायाम माह । ८ इष्टमयकामिनादिकादशब्द । ९ श्रयन्तानाऽपि । १० अन्यापि । ११ सुखम् । १२ बुनाशकृतममाचरणमपि पीरपम । १३ मद्भुक्त्यनुमम् । १४ अत् परम्पुत्रा भवयम् । १५ मोहारातिज्याविनम् ल०, प०, अ०, म०, इ० । १६ एतत्प्रविक्रमवीचाररूपद्वितीयपुत्रतन्मतेन ।

घातिरन्तय हत्वा सम्प्राप्तययेचल । सयोगस्थाननाश्रम्य वियोगो घातिपरमय ॥२४८॥
 'शरीरश्रितयापायाद् श्राविष्कृतगुणोत्तर । अनन्तशा'न्तमप्रायमवाप सुखमुत्तमम् ॥२४९॥
 तस्य राश्यश्च ता सर्वा विधाय विविध तप । स्वर्गारोके स्वयोग्योपविमानैष्यमवन् सुरा ॥२५०॥
 श्राया चान्ध'त नत्वा गत्वा नाक निजोचितम् । अनुभूय सुख प्राप्ते' दोषपुण्यविशेषत ॥२५१॥
 इहगतरविति व्यक्त व्याजहार' सुलोचना । जयोऽपि स्वप्रियाप्रसन्नप्रभावादनुपतदा ॥२५२॥
 तदा सदस्सद' सर्वे प्रतीपु'स्तदुदाहृतम् । प' प्रत्येति' न दुष्टदचेत् सद्भिर्गणित वच ॥२५३॥
 एव सुखेन साम्राज्यभोगसार निरन्तरम् । भुञ्जानो रञ्जिताग्न्योऽपि बाल गमयत स्म तौ ॥२५४॥
 तदा 'खगभवावाप्तप्रसप्तिप्रमुखा श्रिता । विद्यास्ता' च महीश' च सम्प्रीत्या तौ ननदतु ॥२५५॥
 तदा 'बलात् बान्तया सार्द्धं विहतु' सुरगोचरान । पाञ्छत्' देशान् निज राज्य नियोज्य विजयेऽनुजे ॥२५६॥
 यथेष्ट सप्रियो विद्यावाहन सरिता पतीन् । कुलशंसास्रदोरन्मयनानि विविधान्यपि ॥२५७॥
 विहरन्त्यदा मेघस्वर कंठासशैलजे । धने सुलोचनाभ्यर्णाद् असी विञ्चिदपासरत् ॥२५८॥

चिन्तवन करते हुए ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंको नष्ट कर नौ केवललब्धिया प्राप्त की, सयोगकेवली गुणस्थानमें पहुचकर क्रमसे योगरहित होकर सब कर्म नष्ट किये और अन्तमें औदारिक, तैजस, कार्माण-तीनो शरीरोंके नाशसे गुणोंका समूह प्रकट कर अनन्त, शान्त, नवीन और उत्तम सुख प्राप्त किया ॥२४६-२४९॥ श्रीपाल चन्द्रवर्तीकी सब रानिया भी अनेक प्रकारका तप तपकर स्वर्गलोकमें अपने अपने योग्य बडे बडे विमानोंमें देव हुई ॥२५०॥ सुलोचना जयकुमारसे कह रही है कि हम दोनो भी ये सब कथाए सुनकर एव गुणपाल तीर्थङ्कर को नमस्कार कर स्वर्ग चले गये थे और वहा यथायोग्य सुख भोगकर आयुके अन्तमें वाकी बचे हुए पुण्यविशेषसे यहा उत्पन्न हुए है । ये सब कथाए सुलोचनाने स्पष्ट शब्दोंमें कही थी और जयकुमार भी अपनी प्रियाकी बृद्धिके प्रभावसे उस समय अत्यन्त सतुष्ट हुआ था ॥२५१-२५२॥ उस समय सभामें बैठे हुए सभी लोगोंने सुलोचना के कहनेपर विश्वास किया सो ठीक ही है क्योंकि जो दुष्ट नहीं है वह ऐसा कौन है जो सज्जनो के द्वारा बहे हुए वचनोपर विश्वास न करे ॥२५३॥ इस प्रकार साम्राज्य तथा श्रेष्ठ भोगोंका निरन्तर उपभोग करते और परस्पर एक दूसरेको प्रसन्न करते हुए वे दोनो सुखसे समय बिताने लगे ॥२५४॥ उसी समय पहले विद्याधरके भवमें लक्ष्मीको बढ़ानेवाली जो प्रज्ञप्ति आदि विद्याए थी वे भी बडे प्रेमसे जयकुमार और सुलोचना दोनोको प्राप्त हो गई ॥२५५॥ उन विद्याओंके बलसे महाराज जयकुमारने अपनी प्रिया-सुलोचनाके साथ देवोंके योग्य देशोंमें विहार करनेकी इच्छा की और इसलिये ही अपने छोटे भाई विजयकुमारको राज्यकार्यमें नियुक्त कर दिया ॥२५६॥

तदनन्तर जिसकी सवारिया विद्याके द्वारा बनी हुई है ऐसा वह जयकुमार अपनी प्रिया-सुलोचनाके साथ साथ समुद्र, कुलाचल और अनेक प्रकारके-मनोहर बनोंमें विहार करता

१ साम्राज्यार्थिव ज्ञानदर्शनसम्पन्न वनारिप्रदान नामभोगोपभोगवीयाणोतिविवेचनरणि । २ औरा
 रिक'शरीरकामर्णमिति शरीरत्रयविनाशान् । ३ अन्त शान्तमप्राप्तमवाप्त ६०, ७०, ८०, ९०, १०० ।
 अप्रायमनुपमम् । 'प्रायस'ताज्ञा मृत्यो कुयत्रा'त्ययार्थि' इत्यभिधानात् । ४ यथोचितम् १०, १०, २०,
 ३०, ४० । ५ आयुर्ग्ले । ६ उवाच । ७ गद गीदन्तीति गदग्गद । सभा प्राप्ता इत्यर्थ । ८ विश्वस्त
 वत् । ९ गुणोपादानम् । १० न श्रुयानि । ११ हिरण्यवर्मप्रभावयतीभये प्राप्त । १२ गुणोचनाम् ।
 १३ जम् । १४ सधिप्रथिय १०, १०, २०, ३० । १५ प्रमत्स्यादिविद्याबलात् । १६ पतिम् १०,
 १०, २०, ३० । १७ अगमनि स्म ।

ध्रुवरेन्द्रे सभामध्ये शीलमाहात्म्यदासाम् । जयस्य तदिप्रयायादच प्रभुर्वन्ति रुदाचन ॥२५६॥
 श्रुत्वा तदादिने वरुणे रविप्रभविमानजः । श्रीदा रविप्रभात्प्रेन तच्छ्रीलान्वेषण प्रति ॥२६०॥
 प्रेषिता काञ्चना नाम देवी प्राप्य जय सुधी । क्षेत्रेऽस्मिन् भारते खेचरात्रेऽरत्तरदिवत्ते ॥२६१॥
 मनोहराल्यविषये रात्रारत्नपुराधिप । अमृतं पिब्यलगात्वारं सुखदा तस्य मुप्रभा ॥२६२॥
 तयोर्विद्युत्प्रभा पुत्री नमैर्भार्या यदृच्छया । स्वा नन्दने महामेरी शीडन्त वांश्य सोत्सुका ॥२६३॥
 तदा प्रभृति मच्चित्तैःभवस्तन तिग्निनाहृति । त्वत्समागमनेवाह ध्यायन्ती दैवयोगत ॥२६४॥
 दृष्टवत्यस्मि कान्ता^१ऽग्निनिवेग सोडुमसना । इत्यपास्तोपदृष्टव्यान् स्वकीयान् स्मरयिह्वला ॥२६५॥
 स्वानुराग जपे व्यदनम् अरुरीदं विक्रनेशणा । तद्दृष्टचेष्टित दृष्ट्वा मा मस्या पापमोदसाम ॥२६६॥
 सोदर्यां त्व ममादायि^२ मया मुनिजराद् वनम् । पराश्रयनाटग^३सत्तटगमुत्त मे विषमक्षपम् ॥२६७॥
 महोत्तेनेति सप्तो^४वता मिय्या सा कोप^५वैपिनी । उजातरादासीदेवा त^६ समुद्रस्य गत्यरी^७ ॥२६८॥
 पुष्पावचपससपतनुपकान्तामिर्ताजिता^८ । भोत्वा तच्छ्रीलमाहात्म्यान् काञ्च^९नाड्यद्वयना पता ॥२६९॥
 श्रविमद्देवता चैव शीलवत्या परे न के । ज्ञात्वा तच्छ्रीलमाहात्म्य गत्वा स्वस्वामिन प्रति ॥२७०॥

हुआ निमी समय शैलादा पर्वतके वनमें पहुँचा और किसी कारणवश सुलोचनासे कुछ दूर चला गया ॥२५७-२५८॥ उसी समय इन्द्र अपनी सुभाके वीचमें जयकुमार और उसकी प्रिया सुलोचनाके शीलवती महिमाका वर्णन कर रहा था उसे सुनकर पहले स्वर्गके रविप्रभ विमानमें उत्पन्न हुए लट्ठीके अधिपति रविप्रभ नामके देवने उनके शीलवती परीक्षा करनेके लिये एक काञ्चना नामकी देवी भेजी, वह बुद्धिमती देवी जयकुमारके पास ध्यान रहने लगी कि 'इसी भरतक्षेत्रके विजयार्थ पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें एक मनोहर नामका देश है, उसके रत्नपुर नगरके अधिपति राजा पिङ्गल गांधार है, उनके सुप्त देनेवाली रानी सुप्रभा है, उन दोनोत्री में विद्युत्प्रभा नामकी पुत्री है और राजा नमिकी भार्या है । महामेरु पर्वतपर नन्दन वनमें त्रीडा करते हुए आपको देखकर मैं अत्यन्त उत्सुक हो उठी हूँ । उसी समयसे मेरे चित्तमें आपकी आकृति लिख सी गई है, मैं सदा आपके समागम का ही ध्यान करती रहती हूँ । दैवयोगमे आज आपको देखकर आनन्दके वेगको रोकनेके लिये असमर्थ हो गई हूँ । यह कहकर उसने समीपमें बैठे हुए अपने सब लोगोको दूर कर दिया और कामसे विह्वल होकर तिरछी आँसे चलाती हुई घह देवी जयकुमारमे अपना अनुराग स्पष्ट रूपसे प्रकट करने लगी । उनकी दुष्ट चेष्टा देखकर जयकुमारने कहा कि तू इस तरह पापका विचार मत कर, तू मेरी बहिन है, मैंने मुनिराजमे व्रत लिया है कि मुझे परस्त्रियोने शरीरके ससर्गसे उत्पन्न होनेवाला सुप्त विष खानेके समान है । महाराज जयकुमारके इस प्रकार कहनेपर वह देवी भूठमूठके शोधसे कापने लगी और राक्षसीका रूप धारणकर जयकुमारको उठाकर जाने लगी । पूरू तोड़नेमें लगी हुई सुलोचनाने यह देखकर उसे ललकार लगाई जिसमे वह उसके शीरके माहात्म्यने डरकर अदृश्य हो गई । देखो, शीलवती स्त्रीसे जब देवता भी डर जाते हैं तब औरोकी तो बात ही क्या है ? वह वाचना देवी उन दोनके शीरका माहात्म्य जानकर अपने स्वामीके पाम गई, यहा उमने उन दोनोने उम माहात्म्यनी प्रशंसा की तिनने मुनकर यह रविप्रभ देव भी आश्चर्यसे उनके गुणोमें प्रेम करता हुआ उन दोनोके पाम आया । उमने अपना मय

१ रविप्रभविमानोत्पन्नः प्रेषिता । २ श्रीतो ल० । ३ निरपिता । ४ ना प्रिय । ५ एतस्मिन् प्रदेशे । ६ नामवेगम् । ७ स्वजनान् । ८ स्वोद्वेगम् । ९ सर्ग-न०, प०, इ०, ग० । १० सम्प्राप्त ल० । ११ पापवेपनी ट० । अयोमन वम्पयन्ती । १२ जयम् । १३ गमनगीता । १४ मुखाचनान्विता । १५ काञ्चनात्पामरतटगना ।

प्रादासत् सा तयोस्तावद्ब्रह्माहात्म्य सोऽपि धित्मयात् । रविप्रभ समागत्य तावुभौ तद्गुणप्रियम् ॥२७१॥
 स्ववृत्तान्त समाख्याय युवाभ्यां क्षम्यतामिति । पूजयित्वा महारत्नैर्नविलोष समोपिवान् ॥२७२॥
 तथा चिर विद्वत्यात्सम्प्रीति कान्तया समम् । निवृत्त्य पुरमागत्य सुखसार समन्वभूत् ॥२७३॥
 श्रयान्पदा समुत्पन्नबोधिमेषस्वरथाधिप । तीर्थधिनाथ सासाद्य यन्दिस्थाऽऽनन्दभाजनम् ॥२७४॥
 कृत्वा धर्मपरिप्रश्न श्रुत्वा तस्माद्यथोचितम् । आक्षेपिण्यादिका सम्यक् कथाबन्धोदयादिकम् ॥२७५॥
 'कर्मनिर्मुक्तसम्प्राप्य शर्मसार प्रबुद्धधी । शिवङ्ककरमहादेव्यास्तनूजो जगता प्रिय ॥२७६॥
 श्रवार्थोऽनन्तवीर्याख्य शत्रुभि शस्त्रशास्त्रवित् । आकुभार यशस्तस्य' शौर्यं शत्रुजयावधि ॥२७७॥
 त्याग सर्वाथिसत्तर्पी सत्य स्वप्नेऽप्यविप्लुतम्^१ । विषायाभिपव तस्मै प्रदायात्वीयसम्पदम् ॥२७८॥
 पद पर परिप्राप्तुमश्वप्रमभिलाषुक । विसजितसगोत्रा^२ दिविर्निजितनिजेन्द्रिय ॥२७९॥
 वितजितमहामोह सर्माजितगुभाशय^३ । विजयेन जयन्तेन सञ्जयन्तेन सानुजै ॥२८०॥
 श्रम्येऽन्व निश्चितत्यागं रागद्वेषाविवृषितं । रविकीर्ती^४ रिपु^५ जयोऽरिन्दमोऽरिञ्जयाह्वय ॥२८१॥
 सुजयश्च सुकान्तश्च सप्तमश्चाजितञ्जय । महाजयोऽतिवीर्यश्च^६ धीरञ्जयसमाह्वय ॥२८२॥
 रविवीर्यस्तथाऽप्ये च तनूजाश्चक्रवर्तिन । तंश्च साद्रे^७ मुनिविष्णुश्चरमाङ्गो विशुद्धिभाक् ॥२८३॥

वृत्तान्त कहकर उन दोनोसे क्षमा मागी और फिर बड़े बड़े रत्नोसे पूजा कर वह स्वर्गको चला गया । इधर जयकुमार भी प्रिया-सुलोचनाके साथ चिरकाल तक बड़े प्रेमसे विहारकर वापिस लौटे और नगरम आकर श्रेष्ठ सुखोका अनुभव करने लगा ॥२५९-२७३॥

अथानन्तर-जिसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे जयकुमारने किसी एक दिन आनन्दके पात्र श्री आदिनाथ तीर्थ करके पास जाकर उनकी वन्दना की, धर्मविषयक प्रश्न कर उनका यथा योग्य उत्तर सुना, आक्षेपिणी आदि कथाए कही और कर्मोंके बन्ध उदय आदिकी चर्चा की ॥२७४-२७५॥ इस प्रकार प्रबुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले जयकुमारने कर्मोंके नाशसे प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुखको प्राप्त किया । तदनन्तर उसने जो लोगोको बहुत ही प्रिय है, जिसे शत्रु नहीं रोक सकते हैं, जो शस्त्र और शास्त्र दोनोका जाननेवाला है, जिसका यश कुमार अवस्थासे ही फैल रहा है, जिसकी शूरवीरता शत्रुओके जीतने तक है, जिसका दान सब याचकोको सतुष्ट करनेवाला है, और जिसका सत्य कभी स्वप्नमें भी खण्डित नहीं हुआ है ऐसे शिवर महादेवीके पुत्र अनन्तवीर्यका राज्याभिषेक कर उसे अपनी सब राज्य सपदा दे दी ॥२७६-२७८॥ तदनन्तर जो आकुलता रहित परम पद प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहा है, जिसने अपने सब कुटुम्बका परित्याग कर दिया है, अपनी इन्द्रियोको बश कर लिया है, महामोहको डाट दिला दी है और शुभासवका सचय किया है ऐसे चरमशरीरी तथा विशुद्धि को धारण करनेवाले जयकुमारने विजय, जयत, सजयन्त तथा परिग्रहके त्यागका निश्चय करनेवाले और राग द्वेषसे अदूषित अन्य छोटे भाइयो एव रविकीर्ति, रविजय, अरिन्दम, अरिजय, सुजय, मुकान्त, मातवा अजितजय, महाजय, अतिवीर्य, वरजय, रविवीर्य तथा इनके सिवाय और भी वैराग्यको प्राप्त हुए चक्रवर्तीके पुत्रोके साथ साथ दीक्षा धारण की ॥२७९-२८३॥

१ प्रसन्ना चकार । २ जयमुपोचनयो । ३ तथा त् । ४ मण्डभाजन वर्याणभाजन वा । तीर्थधि-त० । ५ आक्षेपणी विशेषणी सवेजनी निर्वेजनीति चेति चतस्र । आक्षेपणी स्वमतसग्रहणी समेधी विशेषणी कुमत्रग्रहणी यथाहंम् । सवेजनी प्रथयितु गृह्णतानुभाव निर्वेजनी वदतु धर्मवचनाविरक्त्यै । ६ कृत्वा यथा यथोदयादिका त०, प०, ६०, त० । ७ धर्मवन्धविमुक्तं प्राप्तु भोग्यम् । ८ जानाप्रिय त०, प०, अ०, त०, ६० । ९ कुमारपानादारम्य । १० अनन्तवीर्यस्य । ११ अविच्युतम् । निर्वाध वा । १२ वापयवादि । 'सगोत्रबान्धवपानिव-पुरवस्वजना गमा' इत्यभिधानात् । १३ गुभायव त० । १४ रविकीर्तिनामा । १५ रविजया त०, प०, ग०, ६० । १६ वरञ्जय त०, अ०, प०, ग० ।

एष पात्रविशेषेस्ते संबोद्धं शासनं महत् । इति विश्वमहीशेनं देवदेवस्य^१ सोऽर्जितः^२ ॥२८४॥
 वृत्प्रत्यपरित्यागः प्राप्तप्रन्यायं सद्ग्रहः । प्रवृष्ट सयमं प्राप्य सिद्धसप्तद्विबद्धितः ॥२८५॥
 चतुर्नामसप्तज्योतिर्हताततमनस्तमाः । श्रमूद् गणधरो भर्तुः एकसप्ततिपूरकः ॥२८६॥
 सुतोचनाप्यमं हार्यं शोकः पतिवियोगतः । गलिताकल्पवन्तीव प्रमत्तानामरभूद्गहात् ॥२८७॥
 शमितौ चक्रवर्तीष्टकान्तयाऽस्तु सुभद्रया । ब्राह्मसमीपे प्रत्रय भाविर्साद्विचर तपः ॥२८८॥
 वृत्वा विमाने साऽनुत्तरेऽभूत् कल्पेऽनुतेऽमरः । आदितीर्थाधिनाथोऽपि मोक्षमार्गं प्रवर्तयत् ॥२८९॥
 चतुष्टययाऽज्ञोत्था विविधद्विविभूयिनः । चिरं वृषभसेनादिगणेशः परिवेष्टितः ॥२९०॥
 सप्तचक्रसप्तवाराशिनित्तुर्वंधराश्रितः । सप्तचक्रचतुर्भ्यं शिखरं भूनिभं युतः ॥२९१॥
 तृतीयज्ञानसत्रेऽत्रं सहस्रं नवभिवृत्तः^३ । वेदलावगर्भविशतिसहस्रं समन्वित ॥२९२॥
 खड्गयन्त्रसप्तशोहविश्रियाद्वि विवर्द्धितः^४ । सप्तचक्रसप्तपदं क मित्तुर्भ्यं विदग्धितः^५ ॥२९३॥
 तावद्भिर्वादिभिर्वन्धो निरस्तपरवादिभिः । चतुरष्टस्रवाहं चष्टमिनः रावैश्च पिण्डितः ॥२९४॥
 संयमस्यानसप्तप्राप्तसम्पद्भिस्सद्भिर्भरिचितः । सप्ततुष्टेन्द्रियाण्युक्त्वा पूज्यब्राह्मचार्याकारिभिः ॥२९५॥
 आर्याकारिभिरभिष्टुयन्नानानागुणोदयः । दृढव्रतादिभिसंस्तप्रयोक्तः श्रावकः श्रित ॥२९६॥
 आर्याकारिभिः स्तुतः पञ्चतलाभिः सुश्रतादिभिः । भावनादिचतुर्भेदे देवदेवोऽदितयमः ॥२९७॥

उस समय भगवान् ऋषभदेवके समीप जयकुमार ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो आपके वड़े भारी शासनको धारण करनेके लिये यह एक विशेष पात्र है यही समभकर महाराज भरतने उसे भगवान्के लिये सौंपा हो ॥२८४॥ इस प्रकार जिसने सब परिग्रहका त्याग कर दिया है, सम्पूर्ण श्रुतका अर्थमंग्रह प्राप्त किया है, जो उत्कृष्ट संयम धारणकर मात ऋद्धिमोमे निरन्तर बढ़ रहा है, और चार ज्ञानरूपी निर्मल ज्योतिसे जिनने मनका विस्तीर्ण अधकार नष्ट कर दिया है ऐसा वह जयकुमार भगवान्का इकहत्तरवा गणधर हुआ ॥२८५-२८६॥ इधर पतिवै वियोगसे जिसे बड़ा भारी शोक रहा है और जो पड़े हुए कल्पवृक्षसे नीचे गिरी हुई वन्पलताके समान निष्प्रभ हो गई है ऐसी सुलोचनाने भी चक्रवर्तीकी पटुरानी सुभद्राके समभाने पर ब्राह्मी आर्याकारके पाम शीघ्र ही दीक्षा धारण कर ली और जिसे आगामी पर्यायमें मोक्ष होनेवाला है ऐसी वह सुलोचना चिरकाल तक तप कर अच्युतस्वर्गके अनुत्तगविमानमें देव पंदा हुई ।

इधर जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति चला रहे है, अनेक ऋद्धियोगे सुशोभित वृषभसेन आदि चौरामी गणधरोमे धिरे हुए है, चार हजार मात सौ पचास पूर्वज्ञानियोगे सहित है, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक मुनियोगे युक्त है, नौहजार अधधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनियोसे सहित है, बीस हजार केवलज्ञानियोगे युक्त है, बीस हजार छह सौ विप्रिया ऋद्धिके धारक मुनियोमे वृद्धिके प्राप्त हो रहे है, बारह हजार मात सौ पचास मनपर्ययज्ञानियोगे अन्वित है, परवादियोगको हटानेवाले बारह हजार मात सौ पचास वादियोमे बन्दीय है, और इस प्रकार सब मिलाकर तपस्वरणरूपी सम्पदाओंको प्राप्त करनेवाले चौरामी हजार चौरामी मुनिराज जिनकी निरन्तर पूजा करते है, ब्राह्मी आदि तीन लाख पचास हजार आर्याकार जिनके गुणोवा स्तवन कर रही है, दृढव्रत आदि तीन लाख श्रावक जिनकी सेवा कर रहे है, मुद्रना आदि पाच लाख आर्याकार जिनकी स्तुति कर रही है, नयनवामी आदि चार प्रकारके देव देविया जिनके चरणमलोका स्तवन कर रही है, चौपाये आदि तिर्यन्वगतिने जीव जिनकी

१ भग्नेदवणे । २ वृषभदेवगण्य । ३ जय । ४ अष्टादश-१०, ५०, ५०, ५०, ५० ।

५ उग्रगान्धि नीज । ६ मातुं योग्य । ७-भिर्भूत न० । ८-अभिपत्ता । ९-भिर्भूत न० । १०-स्तुति ।

११ मन परंपरानिर्गह्य ।

मिथ्यात्व पञ्चधा 'साष्टशतञ्चान्विरतिमना । प्रमादा पञ्चदश च कथायास्ते धनुर्विद्या' ॥३१०॥
 योगा पञ्चदश ज्ञेया सम्यग्ज्ञानविलोचनं । समूलोत्तरभेदेन कर्माभ्युपगतानि कोविदै ॥३११॥
 बन्धश्चतुर्विधो ज्ञेयः प्रकृत्यादिविचल्पिनः । कर्माभ्युदयसम्प्राप्त्या हेतवः फलबन्धयो ॥३१२॥
 तत्रैव ससुतेहेतु परित्यज्य गृहाश्रमम् । बोधतु स्रज्वरामृत्युपापत्राय नयावहम् ॥३१३॥
 'शक्तिमन्तस्तमासत्रयिनोया' विदितायाम् । गुणव्यादियद्भिव्यं' सम्यग् धनुगन्धु ययोचितम् ॥३१४॥
 श्रोत्रोपेक्षादिभेदेषु वीतरागादिकेषु च । गुलाकादिप्रकारेषु व्यपेक्षागारकादियु ॥३१५॥
 प्रमत्तादियुगत्स्वानविशेषेषु च सुस्थिता । निदचयव्यवहारोक्तम् उपायन मोसमुत्तमम् ॥३१६॥
 तथा गृहाश्रमस्यास्य सम्यग्दर्शनपूर्वकम् । दानगोतोपयासाहृदादिपूजोनसंज्ञिता ॥३१७॥
 धार्मिकैकादशोपासकक्रताः सन्नुनामया । सम्प्राप्तपरमस्वानसत्तयाः सन्तु पोषया ॥३१८॥
 इति 'सततचर्यादर्शगर्भवाग्निबालनो' । समभो' भरतापेता सवमेवममप्यन ॥३१९॥
 प्रिताननेत्रसम्यक्त्वदनुदिनायु देशसंयत । अष्टारमभिव्यायात् कंतासादगरोत्तमम् ॥३२०॥
 जगद्विनयनयोनिषु धर्मक्षेत्रेष्वनारतम् । अन्वा सद्धर्मवीजानि न्यविज्वद्धर्मवृष्टिभि ॥३२१॥

मिथ्यात्व पाच तरहका हैं, अविरति एक सी आठ प्रकारकी हैं, प्रमाद पन्द्रह है, कथापंचे चार भेद हैं, और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले लोगोंको योग्ये पन्द्रह भेद जानना चाहिये । विद्वानोंने कर्मोंका निरूपण मूल और उत्तरभेदके द्वारा किया है—कर्मोंके मूल भेद आठ हैं और उत्तरभेद एक सी अष्टशतीम है ॥३१०-३११॥ प्रकृति आदिके भेदमें चार प्रकारका जानना चाहिये तथा कर्म उदयमें आकर ही फल और बन्धके कारण होते हैं । भाग्य-पहलेके बंधे हुए कर्मोंका उदय आनेपर ही उनका सुख दुःख आदि फल मिलता है तथा नवीन कर्मोंका बन्ध होता है ॥३१२॥ तुम लोग भवितमान् हो, निकटभय्य हो और आगमनों जाननेवाले हो, इसलिये सत्कारके कारण स्वरूप-क्षोप, दुःख, सुदामा और मृत्यु आदि पापोंके भरे हुए इस भयकर गृहस्थाश्रमको छोड़कर गुप्ति, गमिषि, धर्म, अनुपेक्षा, परिपहृजय और चारित्र्य इन छहोंका अच्छी तरह अध्ययन करो तथा जिनके उपेक्षा आदि भेद बड़े ग्ये हैं ऐसे वीतरागादि मुनिधर्मों, जिनके पुण्य आदि भेद हैं ऐसे अतारादि मुनिधर्मों अथवा प्रमत्त संपन्नके आदि क्षेत्र अत्रुष्ट गुण स्थानोंमें रहनेवाले प्रमत्तरित्त आदि मुनिधर्मोंमें किसी एकरी अवस्था धारणकर निदचय और व्यपहार दोनों प्रकारके उत्तम मोक्षकी उपामना करो ॥३१३-३१६॥ इसी प्रकार गृहस्थाश्रममें रहनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सम्यग्दर्शनपूर्वक दान, शील, उपवास तथा अरहन आदि परमेष्ठिपोक्री पूजा करें, धन परिणामोंने श्रावणोरी ग्यारह प्रतिमाश्रोकाल पालन करें और यथायोग्य सज्जाति आदि मात परमस्यानोंमें प्राप्त हो ॥३१७-३१८॥ इस प्रकार भगवद्वरने ममीचौन तत्त्वोंकी रचनामें करो हृदं भगवतुकी वचनरूप विभूति मुनवर सन नभाने साथ साथ कही हृदं मय श्रावणो ज्योतीं त्यो माग अर्थात् उनका ठीक ठीक श्रद्धान विधा ॥३१९॥ मति, धन, अर्थात्—इन तीनों शास्त्रोंकी नेयो और सम्यग्दर्शनकी विद्वानकी धारण करनेवाला देशसयमी भरत भगवान् बुधभेदोकी बन्दनाकर पंगाम पंगोमें अपने उत्तम नगर-अयोध्याके आया ॥३२०॥ इधर तीनों एतोंके स्वामी भगवान् आदिनामने भी धर्मके योग्य क्षेत्रोंमें ममीचौनधर्मोंका बीज बोकर उमें धर्मवृष्टि

१ साष्टशतपाविरति—३०, ५०, ५०, ५०, ६० । २ तनुकारणम् । ३ मति-५०, ५०, ६०, ६० । ४ श्रावणप्रमत्ता । ५ मुनिधर्मविषयानुनेगात्परिहृजयकारितेभे । ६ सुष्टु पावनपरिणामा । ७ पुर्वोक्तगतम् । ८ पुण्यकारणम् । विधा सः । ९ मन्त्रादि ।

सता सकलसम्प्राप्तये विहरन् स्वयम् सगम् । चतुर्विंशदिनोपेतसहस्राब्दोत्पूर्वकम् ॥३२२॥
 लक्षकैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिशिरान्तरे । पौर्णमासीदिने पौर्वे^१ निरिच्छ समुपाविशत् ॥३२३॥
 तदा भरतराजेन्द्रो महामन्दरभूधरम् । अत्राप्राग्भार ध्यत्वोत्पिष्ट स्वप्ने दैर्घ्येण सत्पितम् ॥३२४॥
 तदैव युवराजोऽर्षिं स्वगदित्य महौषधि । द्रुमश्छित्वा नृपां जमराग स्वयन्तिमंशन^२ ॥३२५॥
 कल्पद्रुमनभौष्टाय दत्त्वा नृभ्यो निरन्तरम् । गृहेटं^३ निशामयामास^४ स्वर्गप्राप्तिसमुद्यतम् ॥३२६॥
 रत्नद्वीपं जिवक्षुभ्यो^५ नानारत्नकदम्बकम् । प्रादायाभ्यगमोद्युक्तम् धराक्षीत् सचिवाग्रिम ॥३२७॥
 वज्रपञ्जरमुद्भिद्य फेलास गजवैरिणम् । उल्लङ्घयितुमुद्यन्त सेनापतिभयक्षयत् ॥३२८॥
 आलुलोके बुधोऽनन्तवीर्यं धीमान् जयात्मज । यान्त प्रलोकयमाभास्य सतार^६ तारकेश्वरम् ॥३२९॥
 यशस्वतीसुनन्दाभ्या सखे शशमन प्रिया । शोचन्तीश्चिरमद्रादौत् सुभद्रा^७ स्वप्नगोचरा ॥३३०॥
 वाराणसीपतिश्चित्राद्गदोऽप्यालोकताकुल । खमुत्पतन्त भास्यन्त प्रकाश्य धरणीतलम् ॥३३१॥
^१एवमालोकितस्वप्ना राजराजपुरस्सरा । पुरोधस फल तेषाम् अप्रकृत्यर्षमोदये^८ ॥३३२॥
 कर्माणि हत्वा निर्मूलमुनिभिर्बहुभि समम् । पुरो सर्वेऽपि शसन्ति स्वप्ना स्वर्गप्रणामिताम्^९ ॥३३३॥
 इति स्वप्नफल तेषां^{१०} भायमाणे पुरोहिते । तदेवानन्वनामंत्य भर्तु^{११} स्थितिमवेदयत् ॥३३४॥
 ध्वनी भगवता दिव्ये सहते मुकुतोभवत् । कराम्बुजा सभा जाता पृष्णीव^{१२} सरसीत्यती ॥३३५॥

द्वारा खूब ही सीचा ॥३२१॥ इस प्रकार सज्जनको मोक्षरूपी उत्तम फलकी प्राप्ति करानेके लिये भगवान्ने अपने गणधरोके साथ साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एक लाख पूर्व विहार किया । और जब आयुके चौदह दिन बाकी रह गये तब योगोका विरोधकर पीप मासकी पीर्णमासीके दिन श्रीशिखर और सिद्धशिशिरके बीचमें कैलाश पर्वतपर जा विराजमान हुए ॥३२२-३२३॥ उसी दिन महाराज भरतने स्वप्नमें देखा कि महामेर पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्ध क्षेत्र तक पहुच गया है ॥३२४॥ उसी दिन युवराज अर्ककोत्तिने भी स्वप्नमें देखा कि एक महौषधिका वृक्ष मनुष्योके जन्मरूपी रोगको नष्टकर फिर स्वर्गको जा रहा है ॥३२५॥ उसी दिन गृहपतिने देखा कि एक कल्पवृक्ष निरन्तर लोगोके लिये उनकी इच्छानुसार अभीष्ट फल देकर अब स्वर्ग जानेके लिये तैयार हुआ है ॥३२६॥ प्रधानमन्त्रीने देखा कि एक रत्नद्वीप, ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोको अनेक रत्नोका समूह देकर अब आकाशमें जानेके लिये उद्यत हुआ है ॥३२७॥ सेनापतिने देखा कि एक सिंह वज्रके पिंजडेको तोडकर कैलाश पर्वतको उल्लघन करनेके लिये तैयार हुआ है ॥३२८॥ जयकुमारके विद्वान् पुत्र श्रीमान् अनन्त-वीर्यने देखा कि चन्द्रमा तीनों लोकोको प्रकाशितकर ताराओ सहित जा रहा है ॥३२९॥ सोती हुई सुभद्राने दया कि यशस्वती और सुनन्दाके साथ बैठी हुई इन्द्राणी बहुत देरतक शोक कर रही है ॥३३०॥ बनारसके राजा चित्राङ्गदने घबडाहटके साथ यह स्वप्न देखा कि सूर्य पृथिवीतलका प्रवागित पर आवाशकी ओर उडा जा रहा है ॥३३१॥ इस प्रकार भरतपी आदि लेकर मय लगाने स्वप्न देने और मूर्खोदय होते ही सवने पुरोहितसे उना पत्र पूछा ॥३३२॥ पुरोहितो कहा कि ये सभी स्वप्न कर्मोको विलकुल नष्ट कर भगवान् वृषभदेवका अनेक मुनियोके साथ साथ मोक्ष जाना सूचित कर रहे है ॥३३३॥ इस प्रकार पुरोहित उन सबके लिये न्यप्नेता पत्र तट ही रहा था कि इतोमें ही आनन्द नामका एक मनुष्य आकर भगवान्का मय हाथ सहो लगा ॥३३४॥ उगने कहा कि भगवान्ने अपनी दिव्यधर्मिता

१ पुष्यमास । २ पूर्वगिद्धाशयन्तम् । ३ अर्ककोत्ति । ४ स्वर्गगतम् । ५ गृहपतिरलम् । ६ ददौ ।
 ७ पुरातृषिक्रय । ८ बुद्धिमा । ९ तारकागहितम् । १० रत्नीरताम् । ११ एव विशातिन-न० ।
 १२ गुण-य । १३ मा-प्रागमासम् । १४ भगवादीनाम् । १५ पुरा । १६ मूर्खे । इत्येवमवेदयति समन्थ ।

तदारण्यमायेण सन्धर, सर्वमद्राज । चक्रवर्ती तपन्धेन्य' निरपरोत्य हृतमुनि ॥३३६॥
 महामहमहापूजा भक्त्या निर्वर्तयन्स्वयम् । चतुर्दश दिनान्धेव भगवन्मममेव ॥३३७॥
 माघकृष्णचतुर्दश्या भगवान् भान्द्ररोरये । मूर्धनोऽभिजिति प्राक्तपन्धद्रको मुनिनि सयम् ॥३३८॥
 प्राग्बिन्दुशुक्लतुरीये शुभकल्यानेन वद्वान् । योगजितवमन्धेन ध्यानेनापारितर्कवान् ॥३३९॥
 पञ्चह्रस्वस्वरौच्यारण्यप्रमाणेन तप्तयम् । धानेन विदधन्प्राप्तुपस्थानमभिष्टित ॥३४०॥
 शरीरनिघापाये प्राप्य मिद्वन्धवर्षयम् । निजाष्टगुणसम्पूर्वं सगोप्यतनुवापय ॥३४१॥
 निषो निरञ्जन निञ्जिद्रूनी देहादमृतिनाम् । म्यित म्वमूलमाद्भूत पदयन्निद्वमनारतम् ॥३४२॥
 तदागत्य सुरा सब प्राक्तनूजाधिरीर्यया' । पवित्र परम मोक्षसाधन शुचिनिर्मलम् ॥३४३॥
 शरीर भर्तुरन्धेति पराध्वर्येतिविकीर्षितम् । प्रप्रीड्यरत्ननामातिप्रोत्तुद्रामुद्रोद्भुक्ता ॥३४४॥
 मन्धनगुरुत्पूर्वपारो' वाग्मीरमारिभि' । घृतश्रीरादिमिद्वचाप्यवृद्धिना हृन्मोजिना ॥३४५॥
 जगद्गृह्य सौगन्ध्य सम्पाद्यामूनपूर्वकम् । तदारारोपमर्दने' पर्यायान्तमानवन्' ॥३४६॥
 धन्व्यचिनाग्निकण्डस्य गन्धपुष्पादिमिस्तथा । तस्य दक्षिणामोऽन्द गणपुन्वस्त्रिक्यामल ॥३४७॥
 तस्यापरस्मिन् दिग्भागे शयकेवलिकायाम् । एव बह्विधव भूमी भद्रस्थाप्यामरेन्दरा ॥३४८॥

सकोच कर लिया है इसलिये सम्पूर्ण सभा हाथ जोटकर बैठी हुई है और ऐसा जान पड़ना है मानो सूर्यास्तके समय निमीलित कमलोंमें युक्त सरनी ही हो ॥३३५॥ यह मुने ही भरत चक्रवर्ती बहुत ही शीघ्र सब लोगके साथ साथ बंलाज पर्वतपर गया, वहा जाकर उमने भगवान् कृपभदेवकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी, स्तुति की और भक्तिपूर्वक अपने हाथमें महामह नामकी पूजा करता हुआ वह चौदह दिन तक इसी प्रकार भगवान्की सेवा करता रहा ॥३३६-३३७॥ माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदये शुभ मूर्धन और अभिजित नक्षत्रमें भगवान् कृपभदेव पूर्वदिशाकी ओर मुँहकर अनेक मुनिबोके साथ साथ पर्यवामनमें विराजमान हुए, उन्होंने तीगरे-सूक्ष्मनिघ्राप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानमें तीनों योगोत्रा निगोध किया और फिर अन्तिम गुणन्यायमें ठहरकर पाच ऋषि अक्षरोके उच्चारण प्रमाण कारणमें चौथे व्युपरत त्रिधा-निवनि नामके शुक्लज्वालामे अघानिया कर्माका नाम किया । फिर औदारिक, तंजस और कामण्ड इन तीनों शरीरोके नाम होनेमें मिद्वन्धवर्षय प्राप्तकर वे मन्धकन्ध आदि निजके आठ गुणोंमें युक्त हो धण भरमें ही तनुमाननय्यमें जा पहुँचे तथा वहापर निय, निरजन, अपने शरीरमें कुछ कम, अमूर्त, आत्ममुक्त्तमें तन्लीन और निरन्तर समागवो देवते हुए विराजमान हुए ॥३३८-३४०॥ उसी समय मोक्षन्ध बाणशकी पूजा करनेकी इच्छामे नर देव लोग आये उन्होंने "यह भगवान्का शरीर पवित्र, उज्ज्वल, मोक्षका साधन, मन्ध और निर्मल है" यह विचारकर उने बहुमूल्य पाण्कीमें विद्यमान किया । तदनन्तर जो अग्निपुमार देवोने इन्द्रने स्तोत्री वाग्निमें देदीप्यमान उत्तम मुकुटमें उज्ज्वल हुई है तथा चन्दन, अमुर, कपूर, केशर आदि सुगन्धित पदार्थों और घी दूध आदिने बहाई गये है ऐसी अग्निमें जगन्की अमृतपूर्व सुगन्धि प्रकट कर उमका वर्तमान आचार गट कर दिया जोर उम प्रकार उमे दूसरी पर्याय प्राप्त करा दी ॥३४३-३४६॥ गन्ध, पुष्प आदिने जिमरी पूजा की गये है ऐंसे उन जग्निपुष्पके शक्तिनी और गणेशरोने शरीरका मन्धन करनेवाणी अग्नि म्वास्तिक की और वाई और तीर्थ कर तथा गणपणोने अतिरिक्त अन्य नामान्य वैदिकियोने शरीरका मन्धन

१ मिनम् । २ मात्त-शानम् । ३ निरि-तूना कर्तुं-द्वन्द्वम् । ४ उने म्यर्तम् ।
 ५ मुद्रोद्भुक्ते । ६ कर्तुं-मग्नि । ७ मुद्र-कर्म-ति । ८ पूर्व-मन्धकन्धम् । ९ योगोत्रागतमर्दनम् ।
 १० अमोमान धर्तु-मिषे ।

ततो भस्म समादाय पञ्चकल्याणभागिन । वय ध्वं भयामेति स्वललाटे भुजङ्गये ॥३४६॥
 कण्ठे हृदयदेशे च तेन^१ ससृश्य भक्तित । तत्पवित्रतम मत्वा धर्मरागरसाहिता ॥३५०॥
 तोषाद् सम्पादयामासु सम्भूयानन्दनाटकम् । सप्तमोपासकाद्यास्ते सर्वेऽपि ब्रह्मचारिण ॥३५१॥
 गार्हपत्याभिध पूर्वं परमाहवनीयकम् । दक्षिणाग्निं ततो ग्यस्य^२ सन्ध्यासु तिसृषु स्वयम् ॥३५२॥
 तच्छिवित्रयसामिष्ये चक्रमातपवारणम् । जिनेन्द्रप्रतिमाश्चैवा^३स्याप्य भन्त्रपुरस्सरम् ॥३५३॥
 तास्त्रिकाल समभ्यर्च्य गृहस्यैविहितादरा । भवतातिभयो^४ वृषभित्पाचासृषपासकान् ॥३५४॥
 स्नेहेनेष्टद्वियोगोत्प प्रदीप्त शोकपावक । तदा प्रबुद्धमप्यस्य^५ चेतोऽ^६धाक्षीदधीशितु ॥३५५॥
 गणो वृषभसेनाख्यस्तच्छोवापनिनीषया^७ । प्राकृस्त^८ वक्तु सर्वेषां स्वेषां व्यक्ता भवावतीम् ॥३५६॥
 जयवर्मा भवे पूर्वं द्वितीयेऽभूमहाबल । तृतीये ललिताङ्गाल्यो वज्रजडघञ्चतुर्थेके ॥३५७॥
 पञ्चमे भोगभूजोऽभूत् पष्ठेऽप्य धीधरोऽमर^९ । सप्तमे सुविधि क्षमाभूद् अष्टमेऽप्युतनायक ॥३५८॥
 नवमे वज्रनाभीशो दशमे^{१०}ऽनुत्तरान्धज । ततोऽवतीर्थ सर्वेन्द्रवन्दितो वृषभोऽभवत् ॥३५९॥
 धनश्रीराविमे जन्मन्वती निर्णायिका तत । स्वयप्रभा ततस्तस्मान्छ्रीमत्यायां ततोऽभवत् ॥३६०॥
 स्वयप्रभ सुरस्तास्नाद् अस्मादपि च केशव । तत प्रतीन्द्रस्तस्मान्च धनदत्तोऽहमिन्द्रताम् ॥३६१॥
 गतस्ततस्तत श्रेयान् दानतीर्थस्य नायक । आश्चर्यपञ्चकल्याणि प्रथमोऽभूत् प्रवर्तक ॥३६२॥

वरनेवाली अग्नि स्थापित की, इस प्रकार इन्द्रोने पृथिवीपर तीन प्रकारकी अग्नि स्थापित की । तदनन्तर उन्ही इन्द्रोने पंच कल्याणकको प्राप्त होनेवाले श्री वृषभदेवके शरीरकी भस्म उठाई और 'हम लोग भी ऐसे ही हो' यही सोचकर बड़ी भक्तिसे अपने ललाटपर दोनो भुजाओमें, गलेमें और वक्ष स्थलमें लगाई । वे सब उस भस्मको अत्यन्त पवित्र मानकर धर्मानुरागके रससे तन्मय हो रहे थे ॥३४७-३५०॥ सबने मिलकर बड़े सतोपसे आनन्द नामका नाटक किया और फिर श्रावकोको उपदेश दिया कि 'हे सप्तमादि प्रतिमाओको धारण करनेवाले सभी ब्रह्मचारियो, तुम लोग तीनों सध्याओमें स्वय गाहंपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियोकी स्थापना करो, और उनके समीप ही धर्मचक्र, छत्र तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओ की स्थापनाकर तीनों बाल मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करो । इस प्रकार गृहस्थोके द्वारा आदर सत्कार पाते हुए अतिय बनो' ॥३५१-३५४॥

इधर उस समय इष्टके वियोगसे उत्पन्न हुई और स्नेहसे प्रज्वलित हुई शोकदृषी अग्नि भरतके प्रबुद्ध चित्तको भी जला रही थी ॥३५५॥ जब भरतका यह हाल देखा तब वृषभसेन गणपर भरतका शोक दूर करनेकी इच्छा से अपने सब लोगोके पूर्वभव स्पष्ट रूपसे कहने लगे ॥३५६॥ उन्हीने कहा कि वृषभदेवका जीव पहले भवमें जयवर्मा था दूसरे भवमें महावृष हुआ, तीसरे भवमें ललिताङ्गदेव और चौथे भवमें राजा वज्रजड हुआ । पाचवें भवमें भोगभूमिका जायं हुआ । छठवें भवमें श्रीधरदेव हुआ, सातवें भवमें सुविधि राजा हुआ । आठवें भवमें अच्युतेन्द्र हुआ, नौवें भवमें राजा वज्रनाभि हुआ, दशवें भवमें सर्वाभिमिद्रिमें अहमिन्द्र हुआ और बहागे आगर गव इन्द्रोके दाग वदनीय वृषभदेव हुआ है ॥३५७-३५९॥ श्रेयां का जीव पहले भवमें पाशो था, दूसरे भवमें निर्णायिका, तीसरे भवमें स्वयप्रभा देवी, चौथे भवमें श्रीमती, पाचवें भवमें भोगभूमिका आया, छठवें भवमें स्वयप्रभदेव, सातवें भवमें केशव, आठवें भवमें अच्युतान्वगणा प्रतीन्द्र, नौवें भवमें धनदत्त, दशवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और बहागे

१ भयमा । २ भयम् । ३ सन्ध्याय । ४ धावकाप्य स०, प०, द०, ग० । ५ पावनाया
 ६ ललाटे । ७ शिवे । ८ इति । ९ अमर । १० अमर । ११ अमर । १२ अमर । १३ अमर । १४ अमर । १५ अमर । १६ अमर । १७ अमर । १८ अमर । १९ अमर । २० अमर ।

अग्निगृह पुरा पश्चात्प्रास्तोऽनु चनूरत् । दिवावत्प्रभो देवन्वा मनिवराह्वय ॥३६३॥
 तनोऽहमिन्द्रस्तस्माच्च नुवाहृहमिन्द्रताम् । प्राप्य त्व नतो जान पृक्त्वाप्युपायव ॥३६४॥
 श्राप्य मेनापति पश्चात्प्रास्तस्मात्प्रभद्वर । तनोऽहमिन्द्रतनुपाल वल्पातोऽस्तनस्तन ॥३६५॥
 महाबाहुन्तदचानुद् अहमिन्द्रस्तनद्वयुत । एष बाहुयत्री जानो जातापूर्वमहोदय ॥३६६॥
 मन्त्री प्राप्य नोानुचोऽनु नुरोऽनु कनकप्रन । आनन्दोऽहमिन्द्रोऽनु तन पीडाह्वयन्त ॥३६७॥
 अहमिन्द्रोऽहमिन्द्रोऽनु अहमय गतामि । पुरोहितस्तनरथायो वनूवास्तनप्रन ॥३६८॥
 घनमिन्द्रस्तनस्तस्माद् अहमिन्द्रस्तनद्वयुत । महापीडोऽहमिन्द्रोऽस्माद् अनन्तविजयोऽभवत् ॥३६९॥
 उपमेनदचनुरोऽनो भोानुमिननुद्भव । तनदिवावत्प्रभस्तस्माद् वरदत्त सुरो जय ॥३७०॥
 तनो गन्वाहमिन्द्रोऽनुत्तन्वाच्चाप्य नूतलन् । महानेनोऽनुत्त कर्ममहामेनादयोऽस्त ॥३७१॥
 ह्रिवाहनतामायो वराहार्थस्तनोऽभवत् । मणिगृहस्तनस्तस्माद् वरमेन सुरोस्तन ॥३७२॥
 तनोऽस्माद् विजयस्तस्माद् अहमिन्द्रो दिवद्वयुत । अदनिष्ट चिंतिष्टेष्ट शोषेण नेति श्रिया ॥३७३॥
 नागदत्तस्तनो वानरायोऽस्माच्च मनोहर । देवदिवावत्प्रभस्तस्माद् अन्नु सामानिक सुर ॥३७४॥
 तनद्वयुतो जयनोऽनुद् अहमिन्द्रस्तनस्तन । महानव समामाद्य गुणमेनोऽभवद् गनी ॥३७५॥

आकर दानतीर्थका नायक तथा पचादचर्यकी भवमे पहले प्रवृत्ति कग्नेवाग राता श्रेयान्
 हुआ है ॥३६०-३६२॥ तेरा जीव पहले भवमें अतिगृह नामका राता था, दूसरे भवमें नारकी
 हुआ, तीसरे भवमें शार्दूल हुआ, चौथे भवम दिवाकर प्रभदेव हुआ, पाचवें भवमें मनिवरा हुआ,
 छठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ, सातवें भवमें नुवाहृ हुआ, जाठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नौवें
 भवमें छह खण्ड पृथिवीका अक्वण्ड पालन कग्नेवाला भग्न हुआ है ॥३६३-३६४॥ वाहृ-
 वगीरा जीव पहले सेनापति था, फिर भोगभूमिमें आर्य हुआ । उसके बाद प्रभकर देव हुआ,
 तदनन्तर अकपत हुआ, उनके पश्चान् अहमिन्द्र हुआ, फिर महाबाहृ हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ
 और अब उसके बाद अपूर्व महा उदयरो धारण करनेवाग जाहूवली हुआ है ॥३६५-३६६॥
 मैं पहले भवमें राजा प्रीतिवर्धनरा मन्त्री था, उसके बाद भोग भूमिमा आर्य हुआ, फिर वनप्रभ
 देव हुआ, उसके पश्चान् आनन्द हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ, नहामे आनन्द पीठ हुआ, फिर मर्वायं-
 सिद्धिका अहमिन्द्र हुआ और अन्न भगवान् वृषभदेवका गणधर हुआ ह । अनन्तविजयरा जीव
 मयमे पहले पुरोहित था, फिर भोगभूमिमा आर्य हुआ, उसके बाद प्रभजन नामका देव हुआ,
 फिर घनमिन्द्र हुआ, उसके पश्चान् अहमिन्द्र हुआ, उसके अनन्तर महापीड हुआ, फिर
 अहमिन्द्र हुआ और अब अनन्तविजय गणधर हुआ है ॥३६७-३६९॥ महानेन पहले भवमें
 उपमेन था, दूसरे भवमें शार्दूल हुआ, तीसरे भवमें भोानुमिन्ना आर्य हुआ, चौथे भवमें चिन्ताहृद
 देव हुआ, पाचवें भवमें वरदत्त राता हुआ, छठवें भवमें देव हुआ, सातवें भवमें जय हुआ, अष्टा-
 मे चक्रवर् आठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नौवें भवमें वरामे पृथिवीरा आनन्द कर्मरूपी
 महानेनारो जीवनेमें अकपत पश्चान् भगमेन हुआ है ॥३७०-३७१॥ श्रीपेतरा जीव
 पहले भवमें ह्रिवाहन था, दूसरे भवमें वराह हुआ, तीसरे भवमें भोगभूमिमा आर्य हुआ, चौथे
 भवमें मणिगृहनी देव हुआ, पाचवें भवमें वरमेन नामका राता हुआ, छठवें भवमें उनन
 देव हुआ, सातवें भवमें विजय हुआ, आठवें भवमें अहमिन्द्र हुआ और नौवें भवमें अग्निव
 पूरण तथा लक्ष्मीमे नेविन शोषेण हुआ है ॥३७२-३७३॥ गुणमेनरा जीव पहले नागदत्त
 था, फिर वारर हुआ, उसके बाद भोानुमिन्ना आर्य हुआ, फिर मनोहर नामका देव हुआ,
 उसके पश्चान् चिन्ताहृद नामका राता हुआ, फिर सामानिक देव हुआ, अन्तमे अन्न शोषण

लोचुषो नकुलावांसिमाद् एतस्मात्सामनोरथः । ततोऽपि शान्तमदनस्ततः सामानिकागरः ॥३७६॥

राजाऽपराजितस्तस्मात्सहमिन्द्रस्ततोऽञ्जनि । ततो मरुगुजो जातो जयसेनोऽयमूर्जितः ॥३७७॥

इत्यस्मिन्भावराड्कटे भवभूतः स्वष्टे रनिष्टेस्तथा

संयोगः सहसा विप्रोगचरमः सर्वस्य नन्दोद्गमः ।

त्वं जानन्नपि किं विषण्णहृदयो विशिष्टकर्माष्टको

निर्दानं भगवानुवापदतुलं तोये विपादः कृतः ॥३७८॥

वयमपि चरमाङ्गाः सद्गमाच्छुद्धबुद्धेः

सकलमलयिलोपापादितात्मस्वरूपा ।

निदपमसुखसारं चक्रदत्तिस्तवीयं

पदमचिरतरेण प्राप्नुमोऽनाप्यमन्यः ॥३७९॥

भवतु सुहृदां मृत्यो शोकः शुभाशुभकर्मभिः

भवति हि स चेत्येवामस्मिन्पुनर्जननावहः ।

विनिहतभवे प्राथ्ये तस्मिन् स्वयं समुपागते

कथमवमहो धीमान् कुर्याच्छुचं यदि नो रिपुः ॥३८०॥

घ्रष्टापि दुष्टरिपवोऽस्य समूलतूलं

नष्टा गुणैर्गुणभिरष्टभिरेष जुष्टः ।

किं नष्टमत्र निधिनाथ जहोहि मोहं

सर्वेहि शोकविजयाय धियं विशुद्धाम् ॥३८१॥

जयन्त हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब वहासे पृथिवीपर आकर गुणसेन नामका गणधर हुआ है ॥३७४-३७५॥ जयसेनका जीव पहले लोलुप नामका हलवाई था, फिर नेवला हुआ, उसके बाद भोगभूमिका आर्य हुआ, फिर मनोरथ नामका देव हुआ, उसके पश्चात् राजा शान्तमदन हुआ, फिर सामानिक देव हुआ, तदनन्तर राजा अपराजित हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब मेरा छोटा भाई अतिशय बलवान् जयसेन हुआ है ॥३७६-३७७॥ श्री वृषमसेन गणधर चक्रवर्ती भरतसे कह रहे हैं कि इस ससाररूपी सकटमे इसी प्रकार सब प्राणियोंको इष्ट-अनिष्ट वस्तुओका संगम होता है और अन्तमें अकस्मात् ही उसका नाश हो जाता है, तू यह सब जानता हुआ भी इतना खिन्नहृदय क्यों हो रहा है ? भगवान् वृषभदेव तो आठो कर्मोंको नष्टकर अनुपम मोक्षस्थानको प्राप्त हुए हैं फिर भला ऐसे सतोपके स्थानमें विपाद क्यों करता है ? ॥३७८॥ हे चक्रवर्तिन्, हम सब लोग भी चरमशरीरी हैं, शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवान्के समागमसे सम्पूर्ण कर्ममलको नष्टकर आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं और अनुपम सुखसे श्रेष्ठ तथा अन्य मिथ्यादृष्टियोंके दुर्लभ उन्ही भगवान्के पदको हम लोग भी बहुत शीघ्र प्राप्त करेंगे ॥३७९॥ इष्ट मित्रोंकी मृत्यु होनेपर शोक हो सकता है क्योंकि उनकी यह मृत्यु शुभ अशुभ कर्मोंसे होती है और फिर भी इस ससारमे उनका जन्म करानेवाली होती है, परन्तु जिनमे ससारका नाश कर दिया है और निरन्तर जिसकी प्रार्थना भी जाती है ऐमा मित्र पद यदि स्वयं प्राप्त हो जावे तो इस बुद्धिमान् मनुष्यको यदि वह शत्रु नहीं है तो शोक कैसे करना चाहिये ? भावार्थ-हृषिके स्थानमें शत्रुको ही शोक होता है, मित्रको नहीं होता इसलिये तूम सबको आनन्द मानना चाहिये न कि शोक करना चाहिये ॥३८०॥ हे निधिपते, भगवान् वृषभदेवको आठो ही दुष्ट शत्रु जड़ और शायत गहित बिलबुल

१ वृषभदेवभरतस्य । २ पुरो सम्बन्धि । ३ जप्रागणीयम् । ४ मृत्यु । ५ सगारे । ६ मृत्यो ।

७ शरणसंनिभम् । ८ सेविता । ९ शय्यम् पारय ।

देहचतुर्ती यदि पुरोर्गुहं शोचसि त्व
 तं नस्मत्ताकृतिमवाप्य^१ दिव्दुरागा ।
 प्राग्जन्मनोऽपि^२ परि^३कर्मवृत्तौस्त्य^४ कस्माद्
 आनन्दनृत्यमधिकं विदवृष्टनाया ॥३८२॥
 नेशे विदवृष्ट शृणोमि न चचो दिव्य तवद्विष्टय
 नम्रस्तनत्रभानिभासिमवृष्ट^५ कतुं लभे मामुना ।
 तस्मात् स्नेहवशोऽस्म्यह बहुतर शोकीति चेदस्त्वद
 किन्तु भ्रान्तिरिय व्यनीतविषयप्राप्त्यं भवत्प्रार्थना ॥३८३॥
 विज्ञानवृष्ट^६ त्रिभुवनैकगुह्यदस्ते
 स्नेहेन मोहविहितेन^७ विनाशये किम् ।
 स्वोदात्तता^८ शतमलस्य न तज्जसे वि
 तस्मात्तव^९ प्रथममुक्तिर्गतिं न वेत्ति^{१०} ॥३८४॥
 इष्ट किं किमनिष्टमत्र वितय सत्कल्प्य जन्तुजड
 किञ्चिद्द्वेष्टापि वीष्टि^{११} किञ्चिदवयो कुर्यादपि व्यत्ययम् ।
 तेनैतानोऽनुगति^{१२}स्ततो भ्रवने भव्योऽप्यभव्योपमो
 आम्पत्येय कुमार्गवृत्तिरधनो^{१३} वाऽस्तद्रुनीदु जित ॥३८५॥

ही नष्ट हो गये हैं और अब वे आठ बड़े बड़े गुणों में सेवित हो रहे हैं, भला, इसमें क्या हानि हो गई ? इसलिये अब तू मोह छोड़ और शोकको जीतनेके लिये विषुद्ध बुद्धिको धारण कर ॥३८१॥ पूज्य पिताजीका शरीर छूट जानेसे यदि तू इतना अधिक शोक करता है तो बतला, जन्मसे पहले ही उनकी सेवा करनेवाले और बड़े हुए अनुरागको धारण करनेवाले ये देव लोग भगवान्के शरीरको भस्म कर इतना अधिक आनन्द नृत्य क्यों कर रहे हैं ? भाग्यार्थ—ये देव लोग भी भगवान्से अधिक प्रेम रखते थे, जन्मसे पहले ही उनकी सेवामें तत्पर रहते थे फिर ये उनके शरीरको जलाकर क्यों आनन्द मना रहे हैं इससे मालूम होता है कि भगवान्का शरीर छूट जाना दुःखका कारण नहीं है तू व्यर्थ ही क्यों शोक कर रहा है ? ॥३८२॥ कदाचित् तू यह कहेगा कि 'अत्र मैं उनके दर्शन नहीं कर रहा हूँ, उनके दिव्य वचन नहीं सुन रहा हूँ, और उनके दोनो चरणोंमें नम्र टाकर उनके तलाकी कान्तिसे अपने मुकुटको देदीप्यमान नहीं कर पाता हूँ, इसलिये ही स्नेहके वशासे आज मुझे बहुत शोक हो रहा है तो तेरा यह कहना ठीक है परन्तु यीती हुई वस्तुके लिये प्रार्थना करना तेरी भूत ही है ॥३८३॥ हे भरत तेरे पिता तो तीनो लोकोंके अद्वितीय गुरु थे और तू भी तीन ज्ञानोंका धारक है फिर इस मोहजान स्नेहसे अपनी उत्तमता क्यों नष्ट कर रहा है ? क्या तुझे ऐसा करते हुए इन्द्रमें लज्जा नहीं आती ? अथवा क्या तू यह नहीं समझता है कि मैं इन्द्रमें पहले ही माज्जा प्राप्त हो जाऊंगा ? ॥३८४॥ इस समारमें क्या इष्ट है ? क्या अनिष्ट है ? फिर भी यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ ही सकल्प कर किसीमें द्वेष करता है, किसीको चाहता है और कभी दोनोका उग्रा ममक र्णा है, इसलिये ही इनके पापकी परम्परा चरती रहती है और इनलिये ही यह भन्म होकर भी

१ बहन क्या भयति तथा । २ दहम् । ३ भस्माधीनम् । ४ नीतरा । ५ उन्मत्तगशासनि ।
 ६ परिषयाचरा । ७ वृषभस्य । ८ तस्य नगराज्या भासन इति । ९ ना विज्ञानपात्रिन् भग्न ।
 १० अज्ञानतन । ११ नवदुदात्तम् । १२ गतमता । १३ न ज्ञाति किम् । १४ वाञ्छति ।
 १५ कारणम् । १६ पापगुणि । १७ निपा इव ।

भव्यस्यापि भयोऽभवद् भवंगतः कालादिलब्धेविना
 कालोऽनादिरचिन्त्यदुःखनिश्चितो धिक् धिक् स्थिति संसृतेः ।
 इत्येतद्विबुधाऽत्र^१ शोच्यमयया नैतच्च यद्देहिनाम्
 भव्यत्वं बहुधा महीश सहजा वस्तुस्थितिस्तादृशी ॥३८६॥
 गतानि सम्बन्धशतानि जन्तोरनन्तकालं परिवर्तनेन
 नावेहि किं त्वं हि विबुद्धविश्वोच्यैव मुहुषेः किंमिहेतरो वा ॥३८७॥
 कर्मभिः कृतमस्यापि न स्यास्तु त्रिजगत्पतेः ।
 शरीरादि ततस्त्याज्यं मन्वते तन्मनीषिणः ॥३८८॥
 प्रागक्षिणोचरः सम्प्रत्येप चेतसि यतैते ।
 भगवोस्तत्र कः शोकः पश्येनं तत्र सर्वदा ॥३८९॥
 इति मनसि ययायं चिन्तयन् शोकवर्द्ध
 शमय विमलबोधाम्भोभिरित्यावभाषे ।
 गणभृदय स क्षत्री दाववधो महीश्रो
 नवजलदजलैर्वा तद्वचोभिः प्रशान्तः ॥३९०॥
 चिन्तां व्यपास्य गुरुशोककृतां गणेशम्
 श्रानम्य नम्रमुकुटो निकटात्मबोधिः ।
 भिन्वन्नितान्तनितरां निजभोगतृष्णां
 भोऽशोणकः^१ स्वनगरं ह्यविशट विभश्या ॥३९१॥

अथ कदाचिदसौ वदनाम्बुज
समन्निवीक्ष्य सन्नुज्ज्वलदपणे ।
पलितमक्षत द्रुतमिवागत
परमसौख्यपदात् पुरुसन्निधे ॥३६२॥
आलोक्ष्य त गलितमोहरस स्वरग्य
मत्वा जरत्पणमिवोद्गतबीधिरुद्यन्^१ ।
श्रादात्मात्महितमात्मजमर्ककीर्ति
लक्ष्म्या स्वया स्वयमयोजयदूर्जितेच्छ ॥३६३॥
विदितसकलतत्त्व सौख्यवर्गस्य भागं
जिगमिदुरपसत्त्वं^२र्दुग्धम निष्प्रयातम् ।
यमसमितितमप्र सयम गम्बलं^३ या-
ददितं^४ विदितसंमर्या किंपर प्रार्थयन्ते ॥३६४॥
मन पर्ययज्ञानमप्यस्य सद्य
सन्नुत्पन्नप्रत्^५ वेचल चानु^६ तस्मात्^७ ।
तद्वैवाभवद् भव्यता सादृशी सा
विचित्राट्टगिना निवृत्ते प्राप्तिरत्र ॥३६५॥
रवदेशोद्भवैरेवं^८ सम्पूजितोऽसौ
सुरेन्द्रादिभि साम्प्रत वन्द्यमान ।
त्रिलोकाधिनाथोऽभर्वात्कि न साध्य
तपो दुष्कर चेत् समादातुमीश^९ ॥३६६॥

अथानन्तर भरत महाराजने किसी समय उज्ज्वल दर्पणमें अपना मुखकमल देखकर परम सुखके स्थान स्वरूप भगवान् वृषभदेवके पामसे आये हुए द्रुतके समान सफेद बाल देला ॥३९२॥ उसे देखकर जिनका सब मोहरस गल गया है, जिन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है जो आत्महितको ग्रहण करनेके लिये उद्युक्त हैं और जिनकी वैराग्यविषयक इच्छा अत्यन्त सुदृढ तथा वृद्धिशील है ऐसे भरतने अपने राज्यको जीर्णतृणके समान मानकर अपने पुत्र अर्ककीर्तिको अपनी लक्ष्मीसे युक्त किया अर्थात् अपनी समस्त सम्पत्ति अर्ककीर्तिको प्रदान कर दी ॥३९३॥ जिमने समस्त तत्त्वोको जान लिया है और जो हीन जीवोके द्वारा अगम्य माक्षमार्गमें गमन करना चाहते हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने मार्ग हितकारी भोजनके समान प्रयासहीन यम तथा समित्तियोसे पूर्ण सयमको धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समझनेवाले पुरुष सयमके सिवाय अन्य किस पदार्थकी प्रार्थना करते हैं ? ॥३९४॥ उन्हें उसी समय मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया और उसके बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया । उनको वैसी भव्यता उसी सप्रय प्रकट हो गई सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोको मोक्षकी प्राप्ति बड़ी विचित्र होती है ॥३९५॥ जो भरत पहले अपने देशमें उत्पन्न हुए राजाओसे ही पूजित थे वे अब इन्द्रोके द्वारा भी वन्दनीय हो गये । इतना ही नहीं, तीन लोकके स्वामी भी हो गये सो ठीक ही है जो कठिन तपस्चरण ग्रहण करनेके लिये समय रहता है उसे क्या क्या वस्तु साध्य

१ उत्पन्न । २ गन्धुमिच्छु । ३ अपणवर्त्त । ४ मूलगुणममूह । ५ पादयमिव । ६ स्वीकृत-
वान् । ७ ज्ञानसमीचीनार्थी । ८ ज्ञानार्थत्रियाममर्या वा । ९ समुद्रमूतम् । १० गममान् ।
११ पदुत्पन्ने । १२ समय ।

भव्यस्यापि भयोऽभयद् भव'गत कालादिलम्भेविना
 कालोऽनादिरचिन्त्यु तानिचितो धिक् धिक् स्थिति ससृते ।
 इत्येतद्विदुषाऽत्र' शो'ध्यमयया नैतच्च यद्देहिताम्
 भव्यत्व बहुधा महोश सहजा वस्तुस्थितिस्तादृशो ॥३८६॥
 गतानि सम्बन्धशतानि जन्तोरन तकाल परिवर्तनेन
 नावेहि किं त्व हि विद्मुद्धयिष्योपुचंयमुह्ये कि'न्निरेतरो या ॥३८७॥
 कर्मभि कृतमस्यापि न स्यात्स्नु त्रिजगत्पते ।
 शरीरादि ततस्त्याज्य मयते तन्मनीषिण ॥३८८॥
 प्रागक्षिगोचर सम्प्रत्येष चेतसि यतंते ।
 भगवोस्तत्र क शोव पश्येन तत्र सर्वदा ॥३८९॥
 इति मनसि यथार्थं चिन्तयन् शोकर्याह
 शमय विमलबोधाम्भोभिरित्यावभाये ।
 गणभूदय स चक्री दावदग्धो महीध्रो
 नवजलदजलैर्वा तद्वचोभि प्रशान्त ॥३९०॥
 चिन्ता व्यपास्य गृहशोककृतां गणेशम्
 श्रानम्य नम्रमुकुटो निकटात्मबोधि ।
 निन्दभ्रितान्तनितरा निजभोगतृष्णा
 मोक्षोष्णक' स्वनगर व्यविशद् विमू'त्था ॥३९१॥

अभव्यकी तरह दुखी, निर्धन, कुमार्गमें प्रवृत्ति करनेवाला और रोगोसे भयभीत होता हुआ इस ससाररूपी वनम भ्रमण करता रहता है ॥३८५॥ काल आदि लब्धियोंके विना पूज्य भव्य जीवको भी ससारमें रहना पड़ता है, यह काल अन्तदि है तथा अचिन्त्य दु खोसे भरा हुआ है इसलिये ससारकी इस स्थितिको बार बार धिक्कार हो, यही सब समझ विद्वान् पुरुष को इस ससारमें शोक नहीं करना चाहिये अथवा जीवोका यह भव्यत्वपना भी अनेक प्रकारका होता है । हे राजन्, वस्तुका सहज स्वभाव ही ऐसा है ॥३८६॥ हे भरत, तू तो ससारका स्वरूप जाननेवाला है, क्या तू यह नहीं जानता कि अनन्त कालसे परिवर्तन करते रहनेके कारण इस जीवके संकडो सम्बन्ध हो चुके हैं ? फिर क्यों अज्ञानीकी तरह व्यर्थ ही मोहित होता है ॥३८७॥ तीनो लोकोके अधिपति भगवान् वृषभदेवका शरीर भी तो कर्मोंके द्वारा किया हुआ है इसलिये वह भी स्थायी नहीं है और इसलिये ही विद्वान् लोग उसे हेय समझते हैं ॥३८८॥ जो भगवान् पहले आखोसे दिखाई देते थे वे अब हृदयमें विद्यमान् हैं इसलिये इसमें शोक करनेकी क्या बात है ? तू उन्हें अपने चित्तमें सदा देखता रह ॥३८९॥ इस प्रकार मनमें वस्तुके यथार्थ स्वरूपका चिन्तन करता हुआ तू निर्मल ज्ञानरूपी जलसे शोक रूपी अग्नि शान्त कर, ऐसा गणधर वृषभसेनने कहा तब चन्द्रवती भी जिस प्रकार दावानलसे जला हुआ पर्वत नवीन वादलोके जलसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार उनके वचनोसे शान्त हो गया ॥३९०॥ जिसे आत्मज्ञान शीघ्र होनेवाला है और जिसका मुकुट नम्रभूत हो रहा है ऐसे भरतने पिताके शोकसे उत्पन्न हुई चिन्ता छोड़कर गणधरदेवको नमस्कार किया और अत्यन्त दक्षी हुई अपनी भोगविषयक तृष्णाकी निन्दा करते हुए तथा मोक्षके लिये उत्सुब होते हुए उगो बडे वैभवके साथ अपने नगरमें प्रवेद किया ॥३९१॥

१ यसारानुगत । २ शगारे । ३ शकविषयम् । ४ अय अज्ञ'इत्यर्थं । ५ चतसि । ६ मुक्मुद्याम्
 ७५ । 'दो मु धतुरपनवत्य । मूल्या उष्णदच दत्यभिधानाद् शीघराती यम् । मोक्षोत्सु ल० ।

मय यदाचिदसौ वदनाम्बुज
 समभिवीक्ष्य समुञ्ज्वलदपंथे ।
 पलितमंक्षत दूतमिवागत
 परमभीत्यपदात् पुरुक्षप्रिये ॥३६०॥
 श्रातोवय त गलितमोहरत स्वराज्य
 मत्वा जरतुपमिवोद्गतवीधिरघ्नन् ।
 श्रादात्मात्महितमात्मजनवर्धोति
 तन्मया स्वया स्वयमयोद्धपूजितेच्छ ॥३६३॥
 विदितसकलतत्त्व सोऽपवर्गस्य भागं
 जिगमिपुत्रपतात्वे^१र्दुग्म निष्प्रयासम् ।
 'यमसमिति सप्र सयम शम्बल'^२ वा-
 प्रदिन^३ विदितस^४मर्या किं पर प्रायंयन्ते ॥३६४॥
 मन पर्ययज्ञानमप्यस्य सद्य
 मनुत्पन्नवन् केचन चानु^५ तस्मान्^६ ।
 तदंबानवद् नश्यता तादृशी सा
 विचिनाद्भिना निवृत्ते प्राप्तिरत्र ॥३६५॥
 स्वदेशोद्भवरेवे^७ सम्पूजितोऽसौ
 सुरेन्द्रादिभि साम्प्रत वद्यमान ।
 त्रिलोकाधिनायोऽभवत्किं न साध्य
 तपो दुष्पर चेत् सभादातुमीश^८ ॥३६६॥

अधानन्तर भक्त महाराजने किसी समय उज्ज्वल दर्पणमें अपना मुखकमल देवकर
 परम सुगन्धे स्थान स्वरूप भगवान् वृषभदेवके पानमे आये हुए दूतक समान मफेद वाट देवा
 ॥३९०॥ उमे देवकर जिनका मत्र माहृम्म ग^१ गया है, जिन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है जो
 आत्महितको ग्रहण करनेके लिये उद्युक्त है और जिनकी वैराग्यविषय इच्छा अत्यन्त सुदृढ
 तथा वृद्धिशील है ऐसे भरतने अपने राज्यको जीर्णतृणके समान मानकर अपने पुत्र अर्ककीति-
 को अपनी लक्ष्मीमे युक्त किया अर्थान् अपनी समस्त सम्पत्ति अर्ककीतिको प्रदान कर दी ॥३९३॥
 जिसने ममत्न तत्त्वोत्तम जान लिया है और जो हीन जीवोंके द्वारा अगम्य माक्षमार्गमें गमन
 करना चाहते है ऐसे चक्रवर्ती भरतने मार्ग हिनकारी भोजनके समान प्रयासहीन यम तथा
 समित्तियोमे पूर्ण गयमका धारण किया था सा ठीक ही है क्योंकि पदार्थके यथार्थ स्वरूपको
 समझनेवाले पुरुष सुयमके मित्राथ अन्य किम पदार्थकी प्रार्थना करते हैं ? ॥३९६॥ उन्
 उमो ममय मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया और उनके वाद ही केवज्ञान प्रकट हा गया ।
 उनकी वैमी भयना उमी मप्रय प्रकट हा गई ना ठीक ही है क्योंकि प्राणियोत्तम माभनी प्राप्ति
 वही विचित्र हती है ॥३९५॥ जा भरत पहे अपने देगमें उत्पन्न हुए राजाओंमे ही पूजित
 थे वे अत्र उन्द्रोंके द्वारा भी वन्दनीय हो गये । इतना ही नहीं, तीन लाखके स्वामी भी हो गये
 मो ठीक ही है जो कठिन तपस्वरण ग्रहण करनेके लिये ममय रहना है उमे क्या क्या वस्तु माध्य

१ जन्मदात । २ गन्तुमिच्छु । ३ अरणवर्त । ४ मनुयुत्तमम् । ५ पदवर्तव । ६ स्वगत-
 वान् । ७ मानमभावनाया । ८ तापविश्राममया वा । ९ ग्मुद्भूतम् । १० परवान् । ११ पदवर्तव । १२ ममय ।

परिचितयतिहसो^१ धर्मवृष्टिं नियिञ्चन्
 नभसि कृतनिवेशो निर्मलस्तुडगवृत्ति ।
 फलमविकलमप्य भव्यसस्येषु कुर्वन्
 ब्यहरदखिलदेशान् शारदो वा स मेघ ॥३६७॥
 विहृत्य सुचिर^२ धिनेयजनतोपकृत्स्वायुषो,
 मूहूर्तपरिमास्थितो^३ विहितसत्क्रियो विच्युतो ।
 तद्विभ्रतयबन्धनस्य गुणसारमूर्त्त स्फुरन्
 जगत्त्रयशिक्षामणि सुखनिधि स्वधाम्नि स्थित ॥३६८॥
 सर्वेऽपि ते वृषभसेन मुनीशमुख्या
 सौख्य^४ गता सकलजन्तुषु शान्तचित्ता ।
 कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा
 निर्वाणमापुरमित गुणितो गणोन्द्रा ॥३६९॥
 यो नेतेव^५ पृथु जघान दुरिताराति चतुस्तापनो^६
 येनाप्त कनकादमनेव विमल रूप स्वभाभा^७स्वरम् ।
 भ्राभेजुश्चरणो सरोजजयिनी यस्यालिनो वाऽमरा-
 स्त भ्रूलोक्यगुरुषु पुषु श्रितयता श्रेयासि व स त्रियात् ॥४००॥
 योऽमृत्युञ्चदशो विभु कृतभृता तीर्थशिना चाग्निमो
 दृष्टो येन मनुष्यजोवन^८विधिमुक्तेश्च मार्गो महान् ।
 बोधो रोष^९विमुक्तवृत्तिरखिलो यस्योदयार्थात्म^{१०}
 स श्रीमान् जनकोऽखिला^{११}वक्रिप्रतेराद्य स दद्याच्छिष्यम् ॥४०१॥

नहीं है अर्थात् सभी वस्तुएँ उसे साध्य हैं ॥३९६॥ मुनिरूपी हस जिनसे परिचित है, जो धर्म-
 की वर्षा करते रहने है, जो आकाशमें निवास करते है, निर्मल है, उत्तमवृत्तिवाले है (पक्षमे ऊंचे
 स्थानपर विद्यमान रहते है) और जो भव्य जीवरूपी धानोमें मोक्षरूपी पूर्ण फल लगानेवाले
 है ऐसे भरत महाराजने शरद् ऋतुके मेघके समान समस्त देशोमें विहार किया ॥३९७॥
 चित्रवालक विहारकर जिन्होंने शिक्षा देने योग्य जन्मसमूहका बहुत भारी कल्याण किया है
 ऐसे भरत महाराजने अपनी आयुकी अन्तमूर्हूर्त प्रमाण स्थिति बाकी रहनेपर योगनिरोध
 किया और औशरिक, तैजस तथा कामाणि इन तीन शरीररूप बन्धनोके नष्ट होनेपर सम्यक्त्व
 आदि गारभूत गुण ही जिनकी मूर्ति रह गई है, जो प्रकाशमान है, जगत्त्रयके चूडामणि है और
 गुणके भाण्डार है ऐसे वह भरतेश्वर आत्मधाममें स्थित हो गये अर्थात् मोक्षकी प्राप्त हो गये
 ॥३९८॥ जो गमग्न जीवोंके विषयमें शान्तचित्त है, उत्तम गुणको प्राप्त है, यम शील आदि
 गुणोंमें पूर्ण है, गुणवान् है और गण अर्थात् भगिनिसमूहके इन्द्र है ऐसे वृषभसेन आदि मुख्य मुनिराज
 भी वात्स्रमगे अपरिमित निर्वाणधामको प्राप्त हुए ॥३९९॥ जिन्होंने नेताकी तरह चार
 आराधनाएँ चार प्रकारकी सेनाको साथ लेकर पापरूपी विशाल शत्रुको नष्ट किया था,
 जिन्होंने मुक्त पापाणके गमान अपना देदीप्यमान स्वरूप प्राप्ति किया है, भ्रमरोंके समान
 सब देशोंमें जाके कमलविजयी चरणोंकी सेवा करने है और जो तीन छोटे गुह है ऐसे धी
 भगवात् वृषभदेवकी सेवा करनेवाले तुम सबको ये ही कल्याण प्रदान करनेवाले हैं ॥४००॥
 जो कुत्तरोंमें पन्द्रहवें कुत्तर थे, तीर्थ करनेमें प्रथम तीर्थ कर थे, जिन्होंने मनुष्योंकी जीवित

१ धर्मवृष्टिः धर्मवृष्टिः । २ ध्यहरदखिलदेशान् । ३ मूहूर्तपरिमास्थितो । ४ सौख्यं । ५ नेतेव । ६ चतुस्तापनो । ७ स्वभाभा । ८ विधिमुक्तेश्च । ९ रोषः । १० अर्थात् । ११ वक्रिप्रतेराद्य ।

साक्षात्कृतप्रथितसम्पन्नपदार्थसायं

सद्धर्मतीर्थपथपाननमूत्तहेतु ।

भव्यामना भवन्मना स्वपरार्थसिद्धि-

मिस्वाकृद्वाकृपभो वृषभो विदध्यान् ॥४०२॥

यो नामेस्तनयोऽपि विश्वविदुषा पूज्य स्वयम्भूरिति

त्यक्त्वातोषपरिग्रहोऽपि सुधिया स्वामीति यः शब्दते ।

मध्यस्थोऽपि विनेयसत्त्वसन्निनेरेवोपकारी मनो

निर्दानोऽपि बुधैरपास्य चरणो य सोऽनु य शान्तये ॥४०३॥

इत्यार्षे भगवद्गुणमन्त्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टितक्षणश्रीमहापुराणसद्वष्टे

प्रथमनीरंङ्करचक्रधरपुराण नाम सप्तचत्वारिं-

शतम पर्वं परिममाप्तम् ॥४७॥

की विधि और मोक्षका महान् मार्ग प्रत्यक्ष देखा था, जिन्हें आवरणमें रहित पूर्ण अन्तिम-
केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और जो ममस्मन् पृथिवीके अधिपति नरत चक्रवर्तीके पिता थे वे श्रीमान्
प्रथम तीर्थंकर तुम नवको लक्ष्मी प्रदान करें ॥४०१॥ जिन्होंने प्रसिद्ध मन्त्र पदार्थोंके समूह
को प्रत्यक्ष देखा है और जो मनीचीन धर्मरूपी तीर्थंके मार्गकी रक्षा करनेमें मुख्य हेतु हैं ऐसे
इस्वाकृद् वषभे प्रभुव श्री वृषभनाथ भगवान् ममारी भज्य प्राणियोंको मोक्षरूपी आमाकी
उत्कृष्ट सिद्धिको प्रदान करें ॥४०२॥ जो नाभिराजने पुत्र होकर भी स्वयन् हैं अर्थात् अपने
आप उत्पन्न हैं, समस्मन् विद्वानोंके पूज्य हैं, ममस्मन् परिग्रहका त्याग कर चुके हैं फिर भी विद्वानों-
के स्वामी कहे जाते हैं, मध्यम्य होकर भी भव्यजीवोंके समूहका उपकार करनेवाले हैं और
दानरहित होनेपर भी विद्वानोंके द्वाग जिनके चरणोंकी सेवा की जाती है ऐसे भगवान् वृषभ-
देव तुम नरकी शान्तिके लिये हो अर्थात् तुम्हें शान्ति प्रदान करनेवाले हो ॥४०३॥

इस प्रकार भगवान् गुणमन्त्राचार्यप्रणीत त्रिपष्टितक्षण श्रीमहापुराण

मग्नहके हिन्दी भाषानुवादमें प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्तीका

वर्णन करनेवाग यह मन्त्राशीमवा पर्व पूर्ण हुआ ।

पुगणात्त्रिरगम्योऽयमर्थवीचित्रिभृपित ।

सर्वथां शरण मन्ये जिननेन महाकविम् ॥

पागग्रामो जन्मभूमियंदीया

गन्गीलागे जन्मदाना यदीय ।

पत्राश्राय क्षुद्रबुद्धि न चाह

टीकामेता स्वल्पमुद्धथा चकार ॥

जापाट्टृष्णपक्षम्य त्रयोदश्या तियावियम् ।

पञ्चमपञ्चतुर्युगमवर्षे पूर्णा वभूव मा ॥

ते ते जयन्तु विद्वानो बन्दनीयगुणाधरा ।

यन्वृषाकोणामागम्य तीर्षोऽय शान्प्रमागर ॥

महापुराण-द्वितीयभागस्थ-

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

अकम्पन गत क्षुद्रो	३८६	अच्छैलीच्छत्रमन्नागि	६१६	अथ चत्रपरा जनीम्	६०
अकम्पनमहाराजम्	३७१	अजानुबन्धिना ब्रह्म	७	अथ अमान्नागपान-	४६३
अकम्पनमहीनास्य	६२१	अजितञ्जयमाग्धान्	३८	अथ जानिमदावगान्	२७६
अकम्पनस्य मेनेषो	३६०	अजिन्विवा विधिना म्नुवा	६१८	अथ तत्र बुनावागम्	६६
अकम्पनं विमिषेवम्	४२६	अगिमादिनिगष्टानि	२४७	अथ तत्र गितागष्टे	१२४
अकम्पनीञ्चतुभ्रास्य	६२१	अनार्षीन् प्रगतानेषु	६६	अथ तत्रम्न एवापिम्	४०
अकरा भोस्तुमिच्छन्ति	११६	अनित्रान्ते ग्धे तस्मिन्	३८७	अथ तस्मिन् वनाभागे	७१
अकम्पान् वृषिणो इनी	७४	अनिगूढ पुत्रा पट्टान्	४०६	अथ न वृत्तमस्माना	२४१
अकम्पादुच्चरद्घ्वानम्	६०	अनिपग्गितरग्या	६४४	अथ ने मत्त मन्सूय	१४६
अकायमायवोद्भिप्र-	४८६	अनिवृद्ध शयामन्न	३६७	अथ दुर्मर्षी नाम	३८६
अकारणरगोना वम्	२०३	अनिवृद्धमावेग	६३६	अथ दूतवचनञ्च-	२००
अकारप्रदयारम्भ-	३६६	अनीय परन् विञ्चित्	१३७	अथ देगार्त्तनि पिर्गाणि	३६०
अक्षत्रियादथ वृताम्बा	३३३	अनीन्द्रियमुपाञ्ज्याना	३३७	अथ निरनिवागेष-	२०१
अक्षप्रभगमात्र ते	१६८	अनीन्द्रिया नवेहृत्स	३३७	अथ नृपतिगमात्रेर्नाति	११०
अक्षरञ्च ख मुक्तस्य	३३६	अनीन्द्रिवा नविद्यादीन्	३१४	अथ प्रादुग्धन् वात	३७२
अक्षिमात्रा महामूपा	६२७	अयन्तरिमिरानादौ	२०७	अथ मधुपरा गवा	६२४
अक्षिमात्रा चित्र प्रता	४३०	अयम्बुगानादुद्रिक्त-	४०	अथ ग्पगिवृष्य	४८
अक्षीणावयव मोऽम्बु	२१६	अयामगान् प्रमथाहि-	६३३	अथवा चर्म नावम मन्त्रेण्य	३३६
अक्षयमनुगगोण	१८६	अथ चिन्त्य न च विञ्चित्	३६४	अथवा मनु मन्त्र	४८
अक्षयह पुरम्भुञ्च	४१६	अथ चामुत्र चामोऽनु	६१७	अथवाऽऽ भवेऽस्य	३४३
अक्षीणदमिद देव	२०	अत्रान्तरे विरीन्द्रेऽस्मिन्	१२०	अथवा तत्रमूयम्	२००
अक्षीणदेवैश्चरभ्ये	३४	अत्रालरे जवनयोनि-	१०६	अथवा दुर्मर्षावि-	१४०
अक्षिभिर्बोऽथ मित्रानि	३४६	अत्रानि एवंवेदुदानम्	२६८	अथवाऽऽति जगत्	१४२
अक्षया दष्टरनेन	१०	अत्राय भुञ्जगिण्	४३	अथवा मोऽत्रिऽर्षी	३४६
अक्षयगाद मनिषे वम्	२०८	अत्रेऽपिगितवेष्टुपान्	४७६	अथ अनागवापाम	१८
अक्षयगादटावमभवति	३०४	अत्रेऽपि निगुष्टार्थान्	३७१	अथ मन्मन्मा-	११०
अक्षयाता मन्ममादङ्गान्	२६६	अत्रे व पुत्रेति	४६४	अथ मर्गिण त्रिनजन्	७६
अक्षान् मणिभिश्चरुते	६६	अत्रे व नाऽवाचयेत्तूसा	४७२	अथ मर्गिणैश्च पञ्चा	३४६
अक्षया मंगरुञ्च	३४७	अत्रे व मन्मन्मि	४६६	अथवा मन्मन्मन्मि	२७७
अक्षिन्वचना वि नाम	१४०	अथ वदाचिदौ वदनाम्बु	४१३	अथवा मन्मन्मन्मि	२६०
अक्षिन्वचना वि नाम	२०६	अथ पत्रपत्र वाते	३१७	अथवाऽऽथ मन्मन्मि	३११
अक्षिशास्त्र तदागात्	१३०	अथ पत्रपत्र पूयम्	१	अथवाऽऽथ मन्मन्मि	३१६
		अथ पत्रपत्रमि	१७०	अथवाऽऽथ मन्मन्मि	३०२

अयान्येद्यु सभामध्ये	४७५	अमालपत्नीमालाप्य	४३२	अन्यथा सृष्टिवादेत	३१३
अयान्येद्युश्चास्व-	११२	अनाशित भव पीत्वा	४२	अन्येद्यु लचराधीशो	४६०
अयान्येद्युदिनारम्भे	३३	अनाद्युपोऽपि तस्यासीत्	२१४	अन्येद्यु प्रियदत्तामौ	४५२
अथापरान्तिर्जंतुम्	८१	अनाश्वान्निपताहार-	२८७	अन्येद्युरिभमारहृष	३६०
अथात्रवीद् द्विजन्मभ्यो	२६६	अनित्या त्राणससारै-	२१५	अन्येद्युर्मैथुनो राज्ञ	४७४
अथावरुह्य कैलासात्	१५१	अनिराष्ट्रतसन्तापः	१८०	अन्येद्युर्मैथुनासाद्य	४७०
अथास्मै व्यतरत् प्राशु-	१२७	अनिष्टवन्तिसेवेयम्	२०७	अन्येद्युर्वसुधारादि-	४५८
अथोदीरिततीर्थेश-	४६८	अनुकूलानिलोत्क्षिप्त-	४०७	अन्येऽप्यन्याश्च भूपाला-	४१६
अथोपाचक्रमे वक्तुम्	१७७	अनुगङ्गातट देशान्	१३१	अन्येऽमी च खगाधीशा	३८१
अथोभयबले धीरा	२०३	अनुगङ्गातट भाति	२०	अन्येऽपि कलाशास्त्र-	३२६
अथोहृष्यभटानीक-	१८६	अनुगङ्गातट यान्ती	३५	अन्येऽश्च निश्चितत्यागै-	५०२
अदधुर्घनवृन्दानि	६	अनुगङ्गातट सैन्यै	१२७	अन्योऽन्य खण्डयन्ति स्म	४०५
अदीक्षाहं कुले जाता	३११	अनुतीरवतन्म्	५४	अन्योऽन्य सह सम्भूय	३२३
अदीनमनस शान्ता	१६८	अनुत्तरविमानौप-	१६३	अन्योऽन्यरदनोद्भिन्नौ	४०८
अदूरपार वायोऽग्रम्	४६२	अनुद्धता गभीरत्वम्	४	अन्योन्यविषय मौढ्यम्	४३३
अदृष्टपारमशोभ्यम्	४४	अनुद्धता मृगा शावं	६८	अन्योन्यस्येति सञ्जल्पं	३४
अदृष्टमथुत वृत्य	१५६	अनुप्रवृद्धकल्याण-	४५४	अपमृत्युविनाशनम्	२६३
अद्यासिन्धु प्रयातव्यम्	३४	अनुभेरीरव सद्य	३६२	अपराध वृत्तोऽस्माभि	४२६
अद्यैव च प्रहेतव्या	१५८	अनुयायिनि तत्यागादिव	२६५	अपरीक्षितकार्याणाम्	४७५
अधम्नाद् वक्त्रविवरम्	४५६	अनुरक्ततया ह्रस्वम्	१६१	अपरेद्युदिनारम्भे	२६२
अथावयदसौ किञ्चित्	४८१	अनुरक्तापि सन्ध्येय-	१८८	अपापोपहृता वृत्ति	२४३
अधिकारे ह्यसत्यस्मिन्	३१४	अनुवाधितः कर्पन्	६२	अपातयन्महाभेरम्	४६०
अधित्यकामु मोऽन्यात्रे	१३३	अनुवाधितः गत्वा	६३	अपायो हि मपत्लेभ्य	२६४
अधिमेघलमस्यामीत्	१२५	अनुवेणुमतीतीरम्	६८	अपि चात्र मन खेद-	३४१
अधिवक्षस्तर जिष्णो	२०४	अनुसिन्धुतः सैन्यै	६७	अपि चाद्य मया स्वप्ना	३१६
अधिवासितजैनास्त्र	३८	अनुत्थितेभ्यु सम्प्रीत्या	२६५	अपि चारिमुपज्ञ यद्	३१७
अधिरास्य गुहागर्भम्	११५	अनेकमन्त्रद्वीप-	४३	अपि चैषा विमुद्घटगम्	२८२
अधिप्टाय जय	३६५	अनेवानुनयोपार्थै-	४४६	अपि राग समुत्सृज्य	२५५
अधीनविद्य तद्विद्यै	२५५	अन्त कोपोऽन्ययम्	४१०	अपूर्वैरत्नसन्दर्भै	३७
अधोभागमयोर्ध्वं च	४४८	अन्त प्रवृत्तिज कोपो	१७३	अपूर्वलाभ श्लाघ्युदच	३७०
अधोमुक्ता गर्भमुक्ता	४००	अन्तःक समवर्तीति	४०२	अपृच्छन् सोऽन्येदेया	४८३
अध्यानमात्रमथाराद्	२०५	अन्तमस्य विधास्यामि	४४३	अप्तव्यस्तिभिरयमाजिषाम्	५५
अच्छ्रवणं मृगा मन्यै	४६४	अन्तर्गो जय सर्वम्	४०५	अन्याद् अन्धुरा तस्य	३८४
अनग्नमृषिता एव	१६४	अन्तवददर्शन चास्य	३३८	अवन्ध्यशामनस्यास्य	१७६
अनन्तदर्शनं च	३३६	अन्यच्च गोपन गोपौ	३४७	अत्राद्बलिनागेन	१५७
अनन्तमृगसदस्व	२६१	अन्यच्च देवता सन्ति	११७	अभिभ्यद्देवता ध्वम्	५०१
अनन्यशागोर्न्यै-	६४	अन्यच्च नमिनानोप-	१७६	अबोधेयैरामात्म	४६५
अन्यगनुर्गैर्न	२५२	अन्यच्च बहुवाग्जाले	२८७	अभव्य द्रव मद्यधर्मम्	४११
अनन्विष्य मयि प्रीष्टिम्	३५२	अन्यच्चावगित दृष्टम्	४५३	अभिगम्य नृप क्षिप्रम्	३७४
अनतरपानियो चास्य	३८७	अन्यत्र भ्रातृभ्रष्टानि	२०८	अभिचारत्रियेयागीत्	१
अतारिदनुर्वाण्य	३६२	अन्यथा चिन्तिन वायम्	४२५	अभिमतपत्निगृह्या	३८४
अतारिमन्त्राण्येन्म्	४२	अन्यथाऽन्यहृतां सृष्टिम्	३१३	अभिधत्त यथासामम्	४८१
अतारिधोविषयोऽ	२६१	अन्यथा विमर्शभूया	२६४	अभिधत्तागनाऽन्येहि	४८६

अभिपिच्य च राजेन्द्रम्	१२०	अर्षकीतिरकीति मे	४३०	अष्टचन्द्रान् सती कुर्वन्	४१६
अभिपिच्य चला मत्वा	४४३	अर्षकीतिर्वहिर्मास्वद्	३६३	अष्टचन्द्रास्तादाभ्येत्य	४१६
अभीष्ट मम देहीति	४७२	अर्षकीर्त्सादिभि प्रष्टं	४३५	अष्टापि दुष्टरिपोजस्य	५१०
अभूतपूर्वमुद्भूत-	६८	अर्षणालोनचारोपि-	४२६	अष्टोत्तरमहत्त्वाद् वा	२४७
अभूतपूर्वमेतद्री	११६	अर्षा मनसि जिह्वाये-	३५५	असख्यनल्पकोटीपु	१२५
अभूजयावती भ्रातु	४६३	अर्षा गुह्यभिरैवास्य	३५२	अमकृन् निद्वरस्नीगाम्	१२१
अभूत्कान्तिश्चकोराधया	२३०	अर्हन्मातृपद तद्वत्	२६४	असद्भ्यनाद्वहमात्रान्त-	३६
अभूत् प्रहृतगम्भीर-	४०२	अल वत चिर-	१६३	असत्पत्न्या इमे स्वपत्न्या	३१७
अभूदयरासो रूपम्	४३०	अल स्तुतिप्रपञ्चेन	१४६	असत्यस्मिन् गुणेऽयन्मातृ	३१५
अभूद् रागी स्वय राग.	३६४	अलका इव मरेजु	१	अमत्यस्मिन्नमन्यत्वम्	३१४
अभेद्यमपि वज्रेण	४८८	अलका कामकृष्णाहे	२२४	असहये वलयधट्टं	८५
अभेद्याभ्यमभूतस्य	२३४	अलका चरमात्रान्त-	३३	अस्मिप्यादिपट्टकमं-	२०७
अभेद्या दृढरान्धना	८१	असद्भ्यन्वान्महीयन्वाद्	३७	अस्मिपट्टनिष्ठमूत-	४०३
अभेद्ये मम देहाद्री	२०८	असद्भ्यमहिमोदयो	१२३	अग्नी रनिवर् वान्	४४८
अभ्यचिताग्निपुण्ड्रम्य	५०७	असद्व्यभावे लघ्यायं-	४८	अस्ति माधुर्यमन्योज	१५३
अभ्यर्षां यन्धुवर्गस्य	४८६	असदाग प्रवाणस्य	४१८	अस्ति स्वयवर पत्न्या	३६१
अभ्येति वरटागदवी	२०	अदतमिननीलाजा	१२	अस्तु वि यान्मद्यापि	४१६
अभ्येत्य नृपभाभ्याधाम्	३५६	अवतारगवियाऽन्याग्या	२५६	अस्तु वास्तु ममन्त व	४६६
अभ्येन्द्रे समामध्ये	५०१	अवतारत्रियाऽर्षेया	२७२	अस्वैर्यस्त्रैश्च शस्त्रैश्च	१०२
अमानुषोऽवरणेषु	११४	अवतारितपर्याण-	७३	अस्मदजितदुष्कमं-	४७५
अमितानन्तमत्यायिवाभ्यासौ	४५०	अवतारो वृत्तलाभ	२४४	अस्मिना मस्तिना कुर्वन्	४३१
अमुनाऽन्यायवर्त्मव	४३०	अवतीर्य मही प्राप्य	४६५	अस्मिन्ननिश्रये पूजाम्	३०१
अमुप्ताञ्जनसदृषट्टात्	२८	अवधार्यानिभिप्रेत-	४७१	अस्या पय प्रवाहाण	१८
अमुष्य जलमुत्पतद्	५१	अवधार्यास्य पुनस्य	४४६	अस्या प्रवाहमभ्योधि	१८
अमृतस्वसने मन्दम्	२५६	अवधूत पुरानदग	३७६	अस्याग्रह इवानदग	३७६
अमेयवीर्यामाहार्यं-	१४१	अवध्य तलमित्यास्था	१७२	अस्यानुमान् रम्येय	१२२
अमोघपातास्तस्यासन्	२३४	अवनिपतिसमाजे	७६	अस्योपान्तभुवदचकामति-	५६
अय कायद्रुम दान्ता	४६४	अवस्थाप्य तौवन्य	२२३	अस्वेदमतमच्छादयम्	१४१
अय एतु खलाचारो	१८०	अवान्तरविशेषोऽत्र	२४६	अह कुतो कुतो धर्म	३६२
अय च चत्रभृद्देवो	२०२	अवार्योऽनन्तवीर्याग्य	५०२	अह पूर्वोऽनन्दवधौ	४५७
अय जलधिरुच्चलत्तरल-	५०	अवारिधरन्त शूद्रवार्यं	५	अह पियरतिर्नामा	४८१
अयमनिभूतवेलो	५३	अविगणितमहत्त्वा	५३	अह वर्यवरो वेत्सि न	४६७
अयमनुवरन् वोक	१६५	अविदितपरिमाणी	७६	अह हि भग्नो नाम	४६
अयमयमुद्भारो	५८	अव्याघ्रधत्वमभ्येष्टम्	३३६	अहमद्य कृतायोऽग्निम्	१८८
अयमेवचर पौन-	२३	अव्याघ्रधपद चान्यद्	२६१	अहमिन्द्रोऽग्निमोऽभूवन्	५०६
अयमेकोऽस्ति दोषोऽन्य	३८२	अवाक्यधारण चेत्यम्	२५८	अहमेको न मे वरिचन्	२५६
अयोनिस्तम्भव जन्म	२७५	अवाक्योद्घाटनान्येषाम्	११२	अहानि म्यापनिर्वैवम्	४४१
अयोनिस्तम्भव दिव्य-	२७८	अविशिखरो लोका-	१६४	अहिभालक्षण धर्म	३२१
अयोनिस्तम्भवारतेन	२८०	अयोवतहरत्रायम्	२१	अहिनाऽनुद्धिरेषा म्यान्	२७१
अरिञ्जयास्थमारुह्य	४१८	अनोचनापिचिल्लेन	१४०	अहिना मन्यमन्येषाम्	१६५
अरेमिप्रमरोमिषम्	१५४	अद्वैतोऽपि ग्येभ्योऽपि	२७	अहा तटवनम्यास्य	२१
अर्षकीति र्वर्षकीति वा	४१२	अष्टचन्द्रा ग्ना ह्यती	३६६	अहो परममाश्चर्यं-	१३५
अर्षकीति. पुरो पोत्रम्	३५६	अष्टचन्द्रा पुरो भूय -	४०७	अहो महानय दीनो	१२२

अहो महानुभावोऽयम्	१२६	आद्यूनमगवृत्तपीत-	४०	आरुष्टवलिवा दृष्टिम्	१५६
अहो महानुभावोऽयम्	२०२	आद्योऽय महिते स्वयवरविधौ	३८४	आरूढ शिखिवा दिव्याम्	२६५
अहो मया प्रमत्तेन	४४१	आधान नाम गर्भादौ	२८५	आरूढवलिवा पदयन्	२३२
अहो मातृगणोऽम्भावम्	१७२	आधान प्रीति मुप्रीति-	२८४	आरूढपीवनीप्लागी	२३०
अहो विषयसौख्यानाम्	२०६	आधानमन्त्र एवाग्र	३०३	आरूढानेवपानेव-	३६३
आ		आधानात् पञ्चमे मासि	२४६	आरूढो जगतीमद्रे	१०६
आकारसवृत्ति कृत्वा	४४६	आधानादित्रियारम्भे	२६०	आरोहन्ति दुरारोहम्	२०७
आकारेष्विव रत्नानाम्	३५५	आधानाद्यास्त्रिपञ्चाशत्	२४४	आर्याणामपि वाग्मूया	३६१
आकालिकीमनादृत्य	७२	आधाने मन्त्र एव स्यात्	३०२	आर्यिकाभिरभिष्टूयमान-	५०३
आकृष्टदिग्जालीनि	३७३	आधोरणा मदमपीमतिनान्	७६	आहृत्यभागी भवेति	३०२
आकृष्टनिचुलामोदम्	२३२	आधोरणं दृतोत्साहं	४०६	आहृत्यमहंतो भावो	२८८
आनान्तभूभृतो नित्यम्	८२	आनन्दराजपुत्रस्य	४७१	आलानिता तनतस्त्वतिमात्र-	७७
आनान्तसैनिकैरस्य	८२	आनन्दिन्योऽप्यिनिधौषा	२३६	आलि त्व नालिक ब्रूहि	१६१
आखण्डलधनुर्लेखाम्	१३७	आनन्दिन्यो महाभयं	२२१	आलुलोके बुधोजन्त-	५०६
आम परागमानन्वन्	१८४	आनीतयानिहेत्येतद्	४८२	आलोकयन् जिनस्वभाव-	१५०
आगच्छन्ती भवद्वाताम्	४८६	आनीयता प्रयत्नेन	४८२	आलोक्य त गलितमोहस	५१३
आघातुको द्विरदित	७६	आन्धान् रुद्रप्रहारेषु	७०	आवश्येष्वसम्बाधम्	२१२
आचरय्य बलाप्येके	१०३	आपस्विभमाणवतटात्	८६	आवा चाकर्ण्यं त नत्वा	५००
आचाराङ्गेन नि क्षपम्	१६२	आ पाण्डरगिरिप्रस्थात्	६७	आवामपि तदा वन्दनाय	४७८
आजन्मन वृभारस्य	४४८	आपातमात्ररम्यारणाम्	२०६	आवापिपामया प्रीति	४३३
आज्ञापायो विपाक च	२१५	आपीतपयसा प्राज्य-	१२	आशु गत्वा निवेद्यासौ	४२८
आज्ञाभिमानमुत्सृज्य	२८६	आपो घन धृतरसा	५२	आश्रितैकादशोपासकक्रता	५०५
आतपन सहस्रो	४६२	आप्तजानपदानीत-	४४०	आष्टाल्लिको मह सार्व-	२४२
आतिथ्यमिव नस्तन्वन्	२०	आप्तागमपदार्थाश्च	३६८	आसत्रभव्यसद्वरच	२६३
आत्मस्त्व परमात्मानम्	४६५	आप्तोपज्ञ भवत्तत्त्वम्	३३३	आसन् विजयघोषारया	२३६
आत्मनेव द्वितीयेन	१७४	आप्तोपज्ञेषु तत्त्वेषु	३२८	आस्तामाध्यात्मिकीय ते	१४४
आत्मसम्भ्यगुणैर्मुक्त	३८२	आप्तोऽहंन् वीतदोषत्वात्	३३४	आस्ता भुजबली तावद्	१५८
आत्मान्वयप्रतिष्ठास्यं	२४३	आबध्यस्थानक पूर्वम्	३६६	आस्थाने जयदुन्दुभी ननु नदन्	८०
आत्मोपाधिविशिष्टाव-	५०४	आर्मिजात्य बयो रूपम्	३६०	आस्फालिता तदा शेरौ	३७५
आत्रिणापायमरशा-	३४०	आमृच्छद्य स्वगुरुम्	१४६	आहृदो परिहार्योऽयम्	४११
आत्रिणामुत्रिणापायात्	३४०	आयसा मायवा काम	४१७	आहारभयमज्ञे च	२१२
आदावशुच्युपादानम्	४४२	आयुर्वायुचल वायो	४६२	आहारस्य यथा तेज्य	४२७
आदिशत्रियवृत्तस्था	३३४	आयुर्वायुरय मोहो	४६६	आहृता वैचिदाजम्	१०२
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुर्बदे स दोषायु-	३२८	आह्वयन्तीमिवोर्ध्वाधि	४४०
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन् कुशल प्रष्टुम्	१०५	इ	
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन् भवता मृष्टा	३२०	इशोरिवास्य पर्वादि	३४२
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन् युष्मदीयाज्ञाम्	१००	इत्या वातां च दति च	२४१
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्प्रिति	५७	इत विन्नरसद्वीतम्	२१
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्नुपा दृष्टि	१६२	इत पिबन्ति बन्धेभा	१८
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्नुपा दृष्टि	४७६	इत प्रसीद देवेभाम्	१६
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्नुपा दृष्टि	६७२	इत प्रदानमारुष्य	२८
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्नुपा दृष्टि	३०	इत एवोन्मूली ती	४११
आदिशत्रियवृत्तस्था	४६१	आयुष्मन्नुपा दृष्टि	१३३		

इत्यथ तत्प्रमाणं स्यात्	२३०	इति प्रशान्तमोक्षम्बि	१०३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इत्यथ रचिनात्प्रत्य-	२२	इति प्रशान्तमोक्षम्बि	१०३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इत्यथ संवत्सोर्यज्ञो	२०	इति प्रशान्तो रोदर्यथ	१३५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इत्यथ हरिणाराजि-	१३५	इति प्रथयणी वाग्गी	८०८	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति कञ्चुकिनिदिष्टम्	३८१	इति प्रथयणी वाग्गी	८०८	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति काशान्ते दोष-	३२१	इति प्रसाद्य कन्तोप्य	८२३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति कृत्वा निदान म	४५६	इति प्रसाधिनप्तेन	१००	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति गाषावदृष्टान्तम्	३४३	इति प्रसाध्य ता भूमिम्	१०८	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति चक्रपरदा-	१०७	इति प्रस्यष्टचन्द्रायु-	३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति जयति सरन्मास्थ	१५७	इति प्रागेव निदिद्य	३४१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तन्प्रीकृतमात्रपर्यं	४७३	इति प्राचोदयन् सापि	४४७	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तन्प्रीकृतमात्र-	३००	इति प्रागाप्रिया कञ्चिन्	१६१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचन श्रुत्वा	८६०	इति वन्दुवनैर्वर्तमानागो	८८८	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनस्यान्ते	१८०	इति द्वेषेनाद्योयय	१००	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	१५८	इति द्रुवाण मन्त्राय	३८६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	४६७	इति नग्नवरन्दान्	८१६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	११३	इति भूयाःश्रुतिपन्थान्	०६३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	८६	इति मन्त्रमभूषणान्	६५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	२४१	इति मनमि यथार्थं चिन्तयन्	११०	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तद्वचनान्तरतो	८७१	इति मन्त्रपदान्युक्त्वा	०६३	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तस्य वच श्रुत्वा	३८३	इति मान्यम्ययुक्त्वा	०००	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति तस्या परिग्रहने	४५७	इति याथा स्वमासाद्य	४६१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति शर्मितमयुक्त	८५८	इति युष्मत्पदा जग्म-	१६०	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति दत्तग्रह वोगम्	४००	इति रम्यान् पुरस्यास्य	१७५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति दृष्टापदान त	१२७	इति वक्तव्यमि याम्यन्	८५०	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति नानाविधैर्मात्रै	१०३	इति विनाप्य चक्रेणान्	८३१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निषाद्यै कार्यतान्	१५६	इति विगति गादगमम्बु	५१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निमित्तमयादि	३८७	इति व्यक्तनिषिन्धागो	८६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निवारणपर्यन्ता	०६७	इति व्याहृत्य हेमाद्रगदा-	८३६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निविद्य मन्त्रान-	४६४	इति शक्ति तस्याद्रे	१३६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निदिश्य कार्यतान्	१७३	इति शारदिके तीत्रम्	०६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निदिश्य मन्त्रान्	००३	इति शामनि शाम्यने	१५६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निदिश्य राजेन्द्र	०६०	इति शुद्ध मन यस्य	०७१	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति निदिश्य मन्त्रान्ते	८६	इति शुद्धतरा वृत्तिम्	३११	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति नीतिनतावृद्धि-	३६०	इति श्रुत्वा रचयन्	४६६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति पयु परिग्रहान्	८६०	इति मन्त्ररत्नानामेव-	३०६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति पुष्पोदयाजिज्ञप्त्वा	६८	इति गञ्चिन्तयन् गवा	८६५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति पृष्टवने तन्मै	०३०	इति सत्त्वमन्त्रमै-	५०५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति पृष्टावदच्छक्तिपेण	४५७	इति स हृद्य तान् दूतान्	१५६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति प्रतीतमाहात्म्यम्	१०६	इति मत्वा वनम्येव	६६	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति प्रदोषमये	१६०	इति मन्त्राय विभवेण	४३०	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति प्रयोगमन्त्रान्	०८	इति समुचितैर्गुणै	१६८	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८
इति प्रशान्तिमानोदात्	१०६	इति समुपगता श्री	३८५	इति नन्मूर्गंवाद्यग-	२६८

इत्यत्र ब्रूमहे सत्यम्	२८२	इत्याह तद्वच ध्रुत्वा	४६०	इन्द्रियार्था मनोज्ञा ये	२२७
इत्यनङ्गमयी सृष्टि	२२५	इत्युक्तास्ते च त सत्यम्	२७५	इन्द्रोपपादाभिषेकी	२४४
इत्यनङ्गातुरा काचित्	१६२	इत्युक्तौ पार्थिवं सर्वं	२०३	इन्द्रो वेभाद् वहिर्द्वारात्	४३५
इत्यनाकुलभवेदम्	२५	इत्युक्त्वा रतिवेगाह	४६२	इमे मकुटबद्धा किम्	२०२
इत्यनुत्सुकता तेषु	२५८	इत्युक्त्वा सेदमप्याह	४५८	इमे मुकुटबद्धेषु	३६५
इत्यनुध्याय निष्क्रोप	३६२	इत्युक्त्वा सोऽब्रवीदेवम्	४७६	इमा वनगजा प्राप्य	१८
इत्यनुश्रुनमम्माभि	१५४	इत्युक्त्वा समारवास्य	२७५	इमे वनद्रुमा भान्ति	२५
इत्यनेकगुणेऽप्यस्मिन्	१२३	इत्युक्त्वोपपुरे योग्ये	३७१	इमे सप्तच्छदा पीप	१६
इत्यन्तरद्वागत्रूणाम्	२१२	इत्युच्चरद् गिरामोघो	२०६	इय दीक्षा गृहीतेति	४५८
इत्यन्योन्यसमुद्रभूत-	४३३	इत्युच्चावचता भजे	२२५	इय निधुवनामक्ता	२१
इत्यपृच्छन्नमौ चाह	४७६	इत्युच्चैर्भरताधिप	२६८	इय शीलवतीत्येनाम्	४४७
इयप्राक्षीतदा प्राह	३६६	इत्युच्चैर्भरतेशिनानुकथितम्	३४८	इयन्तकालमज्ञानात्	२७३
इयभूवन्नमी श्रद्धा	४५४	इत्युच्चैर्व्यतिवदता	७८	इयमाह्लादिताशेष-	१८
इत्यभ्यर्णतमे तस्मिन्	२३२	इत्युदीर्यं जयो मेघकुमार-	३६४	इष्ट किं किमनिष्टमत्र	५११
इत्यभ्यर्णं बले जिष्णो	२०३	इत्युद्दिष्टाभिरष्टाभि	२४४	इह जम्बूमति द्वीपे	३५८
इत्यभूमनगराणाम्	१७०	इत्युद्घोष्य कृतानन्द-	२०४	इह जम्बूमति द्वीपे	४४७
इत्यनङ्गवतस्वत्री	११६	इत्युपायैरुपायज	१०६	इहागताविति व्यक्तम्	५००
इत्यवोचसतस्नास्व	४८३	इत्युपासूढसरम्भम्	२७६	इहामी भुजङ्गा सरलं	५३
इत्यनादवतमप्येतद्	२०८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इहामुत्र च जन्तूनाम्	४६
इत्यमाधारणा प्रीति	२५८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इहेन्दुकसस्पशान्	१३६
इत्यमाध्वी द्रुध भर्तुं	३८६	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इहेव पुण्यलाबत्याम्	४७१
इत्यमौ वसुपानाय	४७५	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इहेव स्याद् यसोलाभो	२६३
इत्यभिन् भवमाद्वटे-	५१०	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इहेहीति प्रसन्नोक्त्वा	४२६
इत्यस्मै वृष्टने दिव्ये	५०	इत्युपासूढसद्धान-	२१७		
इत्यस्यै परा घोभाम्	१२४	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इ	
इत्यस्या रूपमुद्रभूत-	२३०	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	इंसितव्या मही कृत्स्ना	१०६
इत्याकष्यं गुरोर्बोधयम्	३२३	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उ	
इत्याकष्यं विभोर्बोधयम्	१६२	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उक्तव्यंवाक्यंत्वरय	३३५
इत्यावु नाकुलधिय	४६	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उन्नतश्चमुरोजो	५०६
इत्यागिमातुगारेण	२८८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उचितं युग्ममाह्वो	१७४
इत्यागिगनमाभोध्व	३१८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उच्चाद्राजुदुवधिम्वम्	३८१
इत्यागता गुणोत्थम्	२८०	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उच्चैर्भ्रजितृषींश-	३६६
इत्यागोदभवाश्चरीमनुगर्त	४७८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उज्जगर उज्जलस्फुल्विपु-	३८७
इत्यादिवामिमा भूतिम्	२६७	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उज्जितानवमङ्गीत-	२८६
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	३२६	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तमापे कृताप्या	२४६
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	४६१	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तरार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	३३५	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	६७	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	६१५	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	१८४	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	१६	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	२६८	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१
इत्यादिवात्र मन्मसाद्	६	इत्युपासूढसद्धान-	२१७	उत्तारार्धजयोद्योग-	१०१

उत्फुल्लपाटनोद्गन्धि-	२३०	ए	एवमन्वन्व भोगाटनम्	४४६	
उत्फुल्लमल्लिकामोद-	२३०	एकत्र भावर्नोमथी	१४८	एवमालोकितम्बज-	४०६
उत्फुल्लजृम्भिकागर्भम्	३६	एकतां तद्व्याम्भोधि	६०	एष धर्मत्रिय सभ्राद्	३०५
उत्पद्मसद्विगीनीनतुं	१६०	एवदाय विहागयं	३५६	एष पात्रविशेषन्ते	५०३
उत्तमो राजगोहस्य	३३६	एकस्यामिब निक्षिप्या-	४६८	एष भस्मनिर्गन्मिविकां	५३
उदयमिष्विस्त्राव-	१६५	एकाद्येवाद्दधान्यानि	३१६	एष सनाग्दृष्टान्तां	३५०
उदये वसिष्ठच्छाया	६१०	मुक्ताय पातयन्त्या	११५	एषा कीविरप चंतन्	४२६
उदयुन्वन् फन भावा	३६६	एकान्मथनसम्ब्यान्ते	१५५	ऐ	
उदाहार्यत्रम जात्रा	२६६	एतोऽपि धर्मकार्येजो	०५३	ऐतन्नान् प्रथमो राजान्	१३८
उदगार्हविनिवृत्त-	७५	एतन्पुष्पमय मुष्पमहिषा	३८५	औ	
उदपाटिनकवाटेन	१०८	एतन्पुग्ममुष्यैव	४००	क्रीपनिनसादिधीनेदं	४०५
उद्भृत्वेप विगटनम्ब	४८४	एतया मह गन्वाज	४६०	कौटुम्बरी च पननाम्	६०
उद्यानादिहृता छायाम्	०८६	एतस्य दिग्गये सर्वे	३८६	क	
उन्मत्तकोविले बाले	०३१	एता तस्या सन्तो श्रुत्वा	४८६	कडाल्लरे तत्रम्भिमन्	१३६
उन्मोलज्ञानदीरेज-	४४३	एताम् सर्वान्ददानापात्	४४३	कडाल्लरे द्विर्नायेऽम्भिमन्	१३८
उपशेन च गौरेनु	१३५	एतावपये भूयान्ताम्	४५६	कञ्चिद् गवपति स्मभम्	४६०
उपनततननाद्युन्वाता	१६६	एते तु पीठिकाभक्ता	३००	कञ्चिद्विज्जन्तपुञ्ज्रेन	०
उपनीतिक्रियाभन्त्रम्	३०६	एते ते महरादयो जतश्चरा	५६	कटका ल्लनिर्माण-	२३६
उपनीतिर्हि वेपस्य	२०४	एतेऽर्था यत्र तत्त्वेन	०३०	कटिका ल्लनिर्माण-	२६२
उपप्रदानमप्येवम्	१८१	एतेष्वहापयन् कारिचद्	२१०	कटी कटी मनाजस्य	००६
उपयान्ति समन्वयम्पदो	४२२	एतं स्वपूनुभि भाधम्	४६३	कटीनिदग मवेदस्य	०४६
उपयोम्येपु धान्येषु	६२	एत्यानद्वगपत्राकाऽप्यान्मि	६८०	कणपोऽस्य मनोजेगो	०३५
उपयुञ्च्यन्नामपयेनाम्	११५	एभि परिबुन श्रेष्ठी	४५५	कण्ठीरुबकिगोरुपाम्	१६६
उपवासपरिप्राणा	३६६	एता तवगपत्रास-	८६	कण्ठे चानिद्विगत	४१०
उपविन्ध्याद्रिविन्ध्यातो	४३८	एव हृतविवाहस्य	२५१	कण्ठे तस्येति वक्ष्येपा	४५६
उपगन्धमुव कृग्या	१७५	एव हृतव्रतस्याद्य	०३५	कण्ठे हृदयदेशे च	५०८
उपगन्धमुबोऽप्राज्ञान्	१३	एव केवतिमिदोस्य	०६०	कण्ठस्वतम नादान्ता	१६४
उपमिन्नुतिनि व्यक्तम्	८५	एव परमराग्यादि-	३१०	कथ कथमरि त्यस्वा	६३४
उपाद्रिष भोगिता भोगं	०१५	एव प्रत्रा प्रत्रापातान्	०६३	कथ च पातर्नोपाग्ना	३६३
उपाध्व प्राहृतप्रेत्रान्	१०	एव प्रयाति कालेऽपि	४५८	कथ च मोऽनुतेतस्या	१०२
उपाताहादने बोऽस्य	११४	एव प्रयाति कालेऽस्य	४०५	कथ मुनिजनादेपाम्	३३३
उपातिन्मु बरीन्द्राणाम्	६१	एव प्रायान्तु ये भावा	३३६	कथमरि रथचक्रम्	५८
उपायं प्रतिबोर्ध्यानाम्	४८१	एव प्रायान्ति निःशून्य	०५६	कथमि वा महोऽमानाम्	३६२
उपेक्षित मदीयोऽग्नि	४३०	एव प्रायैर्जनात्राणि	००३	कथम्भासांमसुरभि	२२
उपोदवापयस्योति	४१८	एव भवत्रपयेव	३६३	कथाविच्छेदप्रशस्य	४५६
उपयो षारदयोर्वध्या	३६३	एव मरिचमुन्मदस्य	३६२	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
उपो निद्वनमयास्य स्यात्	२४६	एवमपि विधानेन	०५०	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊ		एवविधेऽम्भिनजन्तु	४५२	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊनायाऽऽस्य तावद्	२५१	एव विहितान्त्र	३०५	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊजा च समतीया च	६८	एव मुग्यानि तनुःक्रान्तनुस्य	४५५	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊ		एव मृगेन दापयाम्	४६१	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊ		एव मृगेन माग्नास्य भोग्यार	४००	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३
ऊ		एव ति शक्तिपयेऽपि	३६०	कथाविच्छेदुष्टित्री गैर	४५३

कदाचिदुचिता घेताम्	३२७	कलकण्ठीकलकवारण-	२३१	काम्यमन्त्रमतो ब्रूयात्	२६५
कदाचिद् धर्मशास्त्रेषु	३२८	कलभान् कलभाडवार-	२१५	काम्यमन्त्रमतो ब्रूयात्	३००
कदाचिद् भवनायात-	४४८	कलशैर्मुखविन्यस्त-	३७७	कारयन्ती जिनेन्द्रार्वा	३६८
कदाचिद् भूषति श्रेष्ठि-	४५१	कलहसा हसन्तीव	३	कारयित्वा पुरी सर्व-	४२१
कदाचिद् राजगेहापतेन	४४८	कलापी बह्मारेण	२४	कालज्ञानिभिरादिष्टे	३४१
कदाचिद् वत्सविषये	४६६	कलाभिजात्यसम्पत्ता	२२३	कालव्यालगजेनेद	२०८
कदाचिन्निधिरत्नानाम्	३२८	कलाविदश्च मृत्यादिदर्शनं	३२७	कालश्रमणशब्द च	२६६
कनिष्ठाभङ्गुलि वामहस्तेऽपि	४५२	कलेवरमिद त्याज्यम्	१८६	कालारथश्च महाबालो	२२७
कन्याकृत्यैव गत्वात्	४८६	कलैरलिङ्गकुलकवारो	२३१	कालिङ्गकान् गजप्राय-	७०
कन्यागृहोत्तदा कन्याम्	३७६	कनैरलिङ्गोद्गान	२१६	कालिङ्गकर्णजैरथ	८५
कन्यारत्नानि सन्त्येव	३६०	कल्पद्रुमद्रव्य वस्त्रभूषणानि	४४६	कालिन्दकालवृटौ च	६७
कन्याव्रतविलोपात्त-	४४७	कल्पद्रुममभीष्टार्थम्	५०६	काशिराजस्तदाकर्ण	३६४
कपय कपिकच्छानाम्	७२	कल्पाधिपतये स्वाहा	२६७	काशीदेशेऽपि देव	४३६
कपोलकापसरुण-	१३४	कल्पानोकहसेवेव	१५८	काष्ठजोऽपि दहत्यग्नि	३५४
कपोलाकुञ्जवती तस्या	२२६	कल्याणाङ्गस्त्वमेवान्ताद्	३२२	किं किटवरे करालास्त्र-	१५७
कमनोर्वरतिप्रीतिम्	४३६	कवाटपुटविश्लेषाद्	१०८	किं किमात्थ दुरात्मानो	१५६
कमलनलिनीनाल	१६६	कविरेव कवेर्वेति	३५३	किञ्च भो विषयास्वाद	१६१
कप्रहेण लक्ष्मीवान्	३८०	कस्तूरिकामृगाध्यास-	३७	किं तरा स विजानाति	१५७
कप्रहेण सम्पीडय	७१	कस्मिचित्कृतवासे	२५६	किं बलेवेलिना गर्भं	१६१
कप्रवाल करालाग्रम्	२०१	कस्यचित् कौशत खड्गम्	४६०	किं भय किमभय्योऽय-	४६४
कप्रवालान् करे वृत्वा	१०२	कस्यचित् क्रीधसहार	४०६	किं भूमिगोचरेष्वस्या-	३७०
कप्राप्रविधूत खड्ग	२०१	कस्याप्यकालचरणे	१५२	किञ्चदन्ती विदित्वैताम्	३६३
कप्राऽमुलौ विनिशिय	४७४	काश्चित् मम्मानदानाभ्याम्	६२	किं वा सुरभट्टैरेभि	१५७
कप्रिण्डम्पटोद्दोषय-	३६२	काश्चित्कालोचनं काश्चित्	३२६	किञ्चिणीवृत्तभङ्गवार-	३७६
कप्रिणी नोभिरेवविय-	१३१	काश्चित्कदुर्गाश्रितान् म्लेच्छान्	१०६	किञ्चिच्चान्तरमुत्लघ्य	१०७
कप्रिणी हृरिणाराती	२१५	काश्चित्कर्मणिस्त्वाम्याम्	११३	किञ्चिच्चान्तरमुत्लघ्य	१३६
कप्रिण्या विमिनीपुत्र-	२१५	काश्चित्कर्ममादाय	१२५	किञ्चित् पदचान्मुख गत्वा	११२
कप्रिण्यामीनि बोपेन	४६८	काश्चित्कृतवासे	३२२	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१३४
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	३२२	काश्चित्कृतवासे	१६१	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	३७७
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	३०२	काश्चित्कृतवासे	४८५	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	२५८
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	८७	काश्चित्कृतवासे	३६५	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	३१५
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	७५	काश्चित्कृतवासे	२२८	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	३६१
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	१८७	काश्चित्कृतवासे	४४७	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१५
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	१८६	काश्चित्कृतवासे	४८०	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१७०
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	७०	काश्चित्कृतवासे	४७८	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	२१८
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	३६६	काश्चित्कृतवासे	३७७	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	६७
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	३६६	काश्चित्कृतवासे	१८२	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१५५
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	१६०	काश्चित्कृतवासे	८	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	२८७
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	२६६	काश्चित्कृतवासे	४८८	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	३०६
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	१०२	काश्चित्कृतवासे	२५४	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	३५७
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	४१०	काश्चित्कृतवासे	३३७	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१०५
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	४०६	काश्चित्कृतवासे	२७१	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१८०
कप्रिण्यकन्यारारुद्र	८८५	काश्चित्कृतवासे	६६५	किञ्चिच्चान्तरमारहण-	१५१

विममममोद्धरज.पुञ्ज-	१६०	कुमार्यां निवृत्त काम.	३७७	हुतवत्ता प्लवत्संज्ञा	२०
न्मिमत्तयो द्विपत् कश्चिन्	१५२	कुमार्यैव जित कामो	३६७	हुतव्युत्तारो ज्येष्ठे	२६४
विमिद प्रनयतोभाद्	६	कुम्भस्थीरूप ममक्ता	२५	हुतव्युत्तानि संख्यानि	११५
विमेतानि म्य राज्ञानि	२२	कुहराजन्मदास्युद्धेन्	११६	हुता मन्त्रकालसंब	३७२
विमेष क्षुनिवोऽन्वोनि	४६	कुन्ववर्त्तान् पाञ्चवानान्	६६	हुता बर्षोत्तरीयानि	१२
विरणुमन्मरंरव	१६३	कुयादिभ्रतपूजार्थम्	२६१	हुतानुवन्वता मूष	२६१
विल तस्मिन् जयां नाम	३५६	कुर्वन्ती शान्तिपूजा त्वम्	३६५	हुतापदान तद्गोप्ये	३७४
विल स्योन्व गुवावापि	४६६	कुर्वन् पञ्चवामन्वार-	६६०	हुतापदान उन्मुन्व	२०६
विसलपपुटभंदी देवदार-	१३०	कुन्वन्मन्वरा तात	२५३	हुताभिपेक्षेन च	१००
वीद्वक् परिच्छदमन्म्य	२००	कुन्वन्मामनुप्राप्तो	२५०	हुताभिपेक्षेन च	२२१
वीति कुवत्याह्लादी	३६२	कुलजातिवयोऽपगुणं	३०६	हुताहंन्युद्धतस्यास्य	२६६
वीतिर्वेदिच्छवा लदमी	३६३	कुन्वयमोऽभिप्येषाम्	२७०	हुतावधि त्रियो नागात्	२३२
वीतिचिन्वातकीर्वेभे	३६०	कुन्व पशयोविद्या-	२६६	हुतावानञ्च तदन	६१
वीत्योपमानता यानो	६१२	कुन्वदिति यदा देव	२६०	हुतावन च तदन	१०१
वृद्धिदानमत्तान्यस्य	२०६	कुन्वाच तपयुद्धमन्-	६०	हुताहास्यनिपाग	६२५
वृद्धकुमागन्वपूज-	१०१	कुन्वानुपासन तव	३३१	हुता कनिर्मरेष	१०७
वृन्नेषु प्रदनुत्तगाडवृगन्	७६	कुन्वानुपानेन प्रोक्षन्	३३३	हुतोऽन्वविश्याग्नी	११६
वृटीपरिगरेष्वस्य	१३	कुन्वानुपासने धानम्	२६६	हुतोऽदग्निन ध्यानान्	१२६
वृटीष्व च प्रमृताया	११३	कुन्वानुपासने दन्तम्	३३३	हुतोऽन्वन्व चामम्	१२६
वृट्स्वानोत्तिकाश्चैव	६६	कुन्वाभिश्च कुलाचार-	३१२	हुतोऽग्नीमवावड -	३०
वृष्ट मित्यपुरोत्तन.	४६१	कुन्वोपकुचममूर्ते	६०	हुतो भयानगावड -	४३२
वृष्टत्रये प्रणेनव्या	३०१	कुन्व्या कुन्वनात्यस्यं	६६	हुतोऽभिपेक्षो मस्यागन्	१३६
वृष्टश्च कश्चिदुत्तुन्या	४६०	कुन्वतमन्त्रियोऽनुद्वान	३६५	हुवा हुवा मृग मध्यन्	३६५
वृष्टोऽन्वोऽनुत्तुपिष्टेन	५	कुन्वमावचयामक्ते	६६६	हुवा वैश्वेदेवी पूगान्	३७५
वृत्त हुना समुत्तुङ्गा-	३६६	कुन्वति कौविला मना	७०	हुवा धनेपरिभन	५०२
वृत्तश्चिन्व काग्नाद् यस्य	३११	कुन्विते कवत्मानाम्	६	हुवा परिक्व योम	२५६
वृत्तदिक्द् भगवत्स्य	३१७	कुन्व्या दयमस्यादे	१०६	हुवा विप्रिदिम पर्यान्	२७२
वृत्त त्रिहाटकौ नाम	२६६	हुत हुत अत्रानेन	२०६	हुवा विमाने गानुमरेऽनुत्	५०३
वृन्वासिप्रामवत्रादि-	४०४	हुत वृवा भटादापं	१६५	हुवा व्यञ्जितान् गात्रां	६६६
वृत्तेरदधितस्यापि	४५७	हुत क्लवत सैव्ये	११६	हुवा श्रोत्रुदरे कर्वा	२०६
वृत्तेरमित्त्रस्यासोन्	४५७	हुतवापञ्च मन्त्रत्य	१२६	हुव्वमामन्वन्वार.	२५५
वृत्तेरादिप्रियवधान्य	४६७	हुतहृ पन्व तस्यान्व -	२६०	हुव्वन्वमं तावपान्	२६६
वृत्ता र्वयां च वृणीं च	७०	हुतप्रत्यपरिण्याग	५०३	हुव्वनामिति प्रसाध्यनाम्	१२६
कुमार चागमनात्र	६६६	हुतवत्रपरिधान्ति	१६६	वेचित्त्वमूचग्याने	२५६
कुमार परणुत्तुध्यान्व-	६६१	हुतदीधोपवामस्य	२५६	वेचित् वाम्भोद्वगङ्गाव-	६२
कुमार प्राहृद् वस्यन्व	६६०	हुतद्विवाचंतस्यास्य	२५०	वेचित् वीपंष्टगतामट-	१६०
कुमार तव कि मुक्त्तम्	३६३	हुतनुवाचित्त्वमूच	१६१	वेचित् हुतपिनी पीग.	१०६
कुमार्यगो दुष्मानि	४०५	हुतमदगत्तेपथ्य	११६	वेचित् परिद्धतभ्याने	२५६
कुमार्यवचताकगोनेन	४६६	हुतमदगतनेपथ्या-	३७७	वेचित् मीगधृष्टिर्वी	६१
कुमार ममरे हानिस्तवं	६११	हुतमदगतनेपथ्यो	७	वेचिद् वनैरवट्टग	१०६
कुमारोऽपि यमोपन्व-	६६२	हुतमदगतवट्टगीव-	१०७	वेचिद् रण्यगडस्य-	१६७
कुमारोऽपि कुमारोऽपि	४२६	हुतमावधुतिन्वकपं	१०५	वेचिद्मृतमिवात्तं	६६
कुमार्यां विजगज्जेता	३६७	हुतमावादनो देवा	१०६	चेत्तौ हृत्विश्यान्व-	१३६

गराग्रह स एष स्यात्	२७३	गिरेरधस्तले दूराद्	१३३	गृहीत्वा वज्रवाण्डाभ्यम्	३६६
गरापोषणमित्यावि-	२५५	गीर्वाण वृत्तमाल इत्यभिमत	१११	गृहे तस्य समुत्तुङ्गो	४४७
गरायन्ति महान्त विम्	३५४	गीर्वाणा वयमन्यत्र	१०५	गोक्षुजानामुगान्तेषु	३६
गराध्युषितभूभाग-	१४५	गुग्गुलूना वनादेप	२४	गोचराग्रगता योष्यम्	१६६
गरानिति त्रमात् पश्यन्	१४०	गुणतोषिण नर्वाशिष्टधम्	३४७	गोत्रस्त्रलनसंबुद्ध-	१६१
गणी तेनेति सम्पृष्ट	३५८	गुणपालमहाराज	४७६	गोदोहे प्लाविता धात्री	३२३
गणी वृषभसेनास्थ	५०८	गुणपालमुनीशोऽम्भत्-	४८०	गोपायिताऽहमस्याद्रे	१००
गतप्रताप वृच्छात्मा	४११	गुणपालाय तद्राज्यम्	४६८	गोपालको यथा यत्नाद्	३४३
गतस्ततस्तत् श्रेयान	५०८	गुणपालाय दत्त्वा स्वाम्	४६८	गोपालको यथा यूथे	३४४
गतानि सम्बन्धशतानि	५१२	गुणभूमिकृताद् भेदात्	२४१	गोभि प्रकाश्य रत्नस्य	४३१
गताया स्वेन सङ्कोचम्	४१८	गुणयन्त्रिति सम्पत्ति	१०४	गोभीर्षु दर्दुराद्रि च	७०
गताशा वारयो म्लान-	३८४	गुणवत्यायिका दृष्ट्वा	४६६	गोष्ठाङ्गराणु मन्त्रार्प	३६
गतिस्त्रलनतो ज्ञात्वा	२१६	गुणा क्षमादय सर्वे	३८८	गौरवैस्त्रिभिरन्मुक्त-	२१२
गते मासपूवकत्वे च	२४८	गुणागुगानभिज्ञेन	३५४	ग्रहोपरागग्रहण	२८३
गतो नु दिनमन्वेष्टुम्	१८७	गुरिणुनश्चेन्न के नान्या	४४०	ग्रामवोटयश्च विज्ञेया	२२६
गत्वा कतिपयान्यधौ	४६	गुरिणा गुणमादाय	३५३	ग्रामान् कुक्कुटमम्पात्यान्	१३
गत्वा निञ्जिबुद्गभूय	६१	गुरोर्नेतेन सिष्टानाम्	३५८	शीमेर्ज्वररमन्नापम्	१६४
गत्वा च गुरुमद्राक्षु	१५६	गुरोर्ष्वेप विज्ञोष्यो	३१५		
गत्वा च ते ययोद्देशम्	१५६	गुरोरेभिरपारुद्ध-	२७६		
गत्वा पुष्पगिरे प्रस्थान्	६८	गुप्तित्रयमयी गुप्तिम्	२१२		
गन्तु साहाय्येना तरय	४५६	गुरु बन्दिनुमाल्मीय	४८१		
गन्धप्रधानमन्त्रश्च	२६०	गुरप्रवाहप्रसृता	१४		
गन्धे पुष्पेश्च घृपेश्च	१०१	गुरुप्रसाद इत्युच्चं	१६०		
गन्धोदवाक्षितान् कृत्वा	२४८	गुरुर्जनयिता तत्त्व	२७२		
गन्मीरामतिगम्भीराम्	६७	गुरुमाक्षितया बेहा-	३४२		
गन्मीरावर्तनामान	२३६	गुरुणामेव माहात्म्यम्	३५३		
गभ्रंज्ञोऽह गिरेरस्मी-	१०६	गुरोरनुजया लब्ध-	२५१		
गर्जद्भिरतिगम्भीरम्	४३	गुरोरनुमतत्तत् मोऽपि	२५५		
गर्भायानत्रियामेनाम	२४५	गुरोरनुमतेऽधीति-	२०६		
गर्भायानात् पर मासे	२४६	गुरोर्वचनमादेय	१७८		
गर्भान्वयप्रियाश्चैव	२४४	गुरोर्गुरुत्व युवयो	४५८		
गलद्गण्डगाम्बनिष्ठतुता	१२७	गुल्फदध्नप्रमूनीध-	१३७		
गलद्घर्माभ्युधिन्द्रुनि	२७	गुहामुजमपध्वान्तम्	१७८		
गलन्मदजलास्तस्य	२२२	गुहामुखश्चतुर्दधीर-	८६		
गलितान्योन्यसम्प्रीति-	४५३	गुह्यमनिगुह्येव	११५		
गवा गगानयापश्यत्	११	गुहोऽप्यग्रा स नाश्नेपि	१०८		
गान्धारी बन्धकीभाबम्	४६७	गुह्यपक्षानिलोच्छिद्र-	४०६		
गान्धारी सपंदष्टाऽहमिति	४६६	गृहत्यागन्तौऽप्य	७७६		
गाहंपत्याभिध पूर्वम्	५०८	गृहसोभा कृतारक्षा	२८६		
गाहंम्यमनुपाल्येवम्	२८३	गृहाणोहास्ति चेद् दोषम्	३५३		
गिरिकृष्णमित्यासीन्	२३३	गृहाश्रमे त एवाव्या	४७६		
गिरिदुर्गोऽप्यमूल्लद्रुष्यो	१०३	गृहीतप्रग्रहन्त्र	३८१		
गिरीन्द्रशिखराकारमाहृष	४०६	गृहीतोन्नेच शयेप	४७७		
				ग	
				घटदासी कृता लक्ष्मी	१७६
				घन्यन्ति न विघ्नरोटयो	४२२
				घष्टानधुरनिर्घोष-	४०७
				घन तमो दिनार्केण	१८८
				घनावरणनिर्मुक्ता	६
				घनावरणरुद्रस्य	३२३
				घनावली कृणा पाण्डु	३
				घातिरभक्षयोद्भूताम्	२१८
				घातिकर्मदय हत्वा	५००
				घातिकर्ममलापायात्	१४२
				च	
				चक्र तदधुना वम्मात्	१५२
				चक्र नाम पर देवम्	१५३
				चक्रश्चक्र समुत्थाय	३६३
				चक्रभृद् भरण यष्टु	२०८
				चक्रमस्य ज्वनद्व्योमिन्-	१०
				चक्रमाशान्तिदिनचयम्	१५७
				चक्रग्न पुण्योद्य	२६१
				चक्रग्ननिर्गच्छि-	८
				चक्ररत्नमभूजिप्रणु	२३५
				चक्रनाभो भवेदग्न्य	२६०
				चक्रवान्युवा भजे	२६
				चक्रवारी धनोच्यम्	१८८

जननी धनुपालस्य	४८०	जयतर्दामुषाशोक-	१२४	जातकर्मविधि मोक्ष	३०६
जन्तुमन्मथशट्काराम्	३४५	जयदन्ताननीन्द्रया-	४६८	जाता दय चिरादय	१०६
जन्तोर्नोणेपु नोगान्ते	४६३	जयवचादिनि स्वानि	४६६	जानादनापयुता केचिद्	३६८
जन्मरोगजगामृत्युन्	४६८	जयत्रयो भवे पूर्व	५०८	जाति भवे कृत् तत्त्व	२७६
जन्मसम्भारमन्त्रोऽयम्	३०४	जयवादीऽनुवादीऽयम्	१२०	जातिप्रतिपत्तवर्जित-	३४६
जन्मानन्तरमायानं	२६०	जयश्रीर्दुर्जयस्वामी-	४२०	जातिमन्त्रोऽयमाभ्यातो	२६४
जन्मावबुद्धय वन्दिवा	४५७	जयश्रीगङ्गरोजालम्	६४	जातिमानस्यतुम्बिक-	२८४
जम्बूद्वीपे विद्वेहेऽग्निम्	४८०	जयसाधनमस्या रे-	८५	जातिरेन्द्रो भवेद्विद्या	२८४
जय शत्रुदुरालोकम्	४१६	जयगेताश्चमुद्गानि	४६३	जातिर्भूतिश्च तन्मयम्	२८४
जय परम्य नो भेद्य	४०५	जयमन्मैरमा रेजु	२००	जाती मागमेतायाम्	४६५
जय प्रसादमध्यास्य	४४६	जयस्य विजय प्राणं	६१७	जायादिजातिमान् मन्-	२८४
जय एव मदादेयाद्	४३०	जनाश्विनत्रयद्वेदिन्	१६६	जायते ब्राह्मण पूर्वम्	३१०
जयकरिष्यटात्रयं-	१६६	जयाध्वरपते दग्धन्	१८७	जायते गिन्द्रजानेन	३६१
जयकुञ्जरमान्ठ	११२	जयावत्या ममन्पती	६६३	जितकेतव्या देव	१५७
जयताञ्चक्रवर्तीनि	१०७	जयेनाम्यानमद्राम-	४०१	जितकेतव्यपशस्य	१५४
जयति जननताप-	१६८	जयेन जय निर्दग्ग-	१४६	जितनिघातिनिघोषम्	४६
जयति जयविनाम	१६७	जयेन विजयिन् विद्यम्	६	जितनूपुरमद्रागम्	२०
जयति जिनवराणाम्	११०	जयो ज्याम्पान कृवंन्	४१८	जितनेपकुमारोऽयम्	३८२
जयति मयन्नेरी-	१६७	जयो नामान वरन्मो	३८६	जिता च भवन्वाद्य	२०८
जयति सधर्मोकी	१६८	जयोऽपि जगदीमानम्	४०२	जितान्त्र नमन्तुष्यम्	१४८
जयति दिविजनायं	१६६	जयोऽपि धर्मल्लान-	४१६	जितामगपुरीमोमा-	३७६
जयति भरतराज-	२००	जयोऽपि मुचिराऽप्राप्त-	४०८	जिवा महीमिमा कृन्नाम्	१३१
जयति भुजगवक्रोद्धान-	२१६	जयोऽपि म्ययमारुह्य-	४००	जित्वा मयकुमागन्तान्	३८२
जयति भुजवक्रोमो	२१६	जयोऽपि मयुमीकृ य	४१०	जिवा म्नेच्छतृती विक्रिय	१३०
जयति मदनदागं	१६७	जयोऽप्येव मयुमिक्त-	३६१	जिनमनविहित पुगागधमम्	२८८
जयति जिनमनोमू	१६७	जयो महारम कच्छ-	३५७	जिनविहितमनूत मम्मरन्	३२६
जयद्विरदमाहो	३३	जयोऽप्यान् मानुजन्त्यावद्	६०३	जिनाशानुता दग्धन्	१६८
जयधाम जयनामा	४६७	जयोऽप्यान् मो दग्ध	४०४	जिनानुस्मरणे तस्य	३०६
जय निर्जितमोहारे	१४६	जरञ्जम्बूकमाधाय	२१५	जिताचामिमुम मुरि	२७२
जय निर्मद निर्माय	१४७	जरञ्जरन्त ऋट्पाध-	१३५	जितानये मुचो रटगे	२७२
जय निम्नीगंममार-	१४७	जग्दविमिर्नोऽन्द-	१६५	जिनेन्द्रमवने भक्त्या	४६१
जयनिम्नगार्निम्निस-	४१२	जग्दस्यावतो नायम्	२५	जिनेन्द्रात्तत्तदमग्र मा	२७८
जयन्ति जितमृत्यवो	३५०	जगनिमनूतमातावर	६८६	जितेषु भक्तिमान् वन्	३०५
जयन्ति विषुनामोय-	३६	जरायुपटत्र चाम्य	३०५	जीवादेरिति भवतिरिति	५६
जयन्त्यश्विनवाऽमार्गं-	२४०	जराशानु पेत्रवात् जिवा	३०७	जीवादीर्कविभागजा	१६७
जयपुण्योदयान् मदी	४१०	जराशुष्टिनिपुण्ड्रेषु	२०४	जीवादिमन्त्रे मन्त्रे	५०४
जयप्रयागवासिन्य-	१२६	जन्मन्म प्रयुक्ताऽनु-	४५	जीवेति तदनु भवतिरिति	५६
जय प्रवृद्ध मन्मार्ग-	१४७	जन्मन्मनपान् विभर्त्	६०	जीवानु पादिवाग्मोयाम्	३३३
जयप्रहितमाशानो	४०६	जनादवार्गनिमित्तम्	५५	जीतीमिन्ना विभर्त्	३४६
जयमानोय मन्माय	४०७	जनाद् भय भवेन् विजिबु	४३७	जीनेस्वकी पगमाऽयम्	२८७
जयमुक्ता द्रुत पेतु	४०६	जनाग्र जनवर्तेन	३६८	जीनोऽन्वदीया म्वात्	२७६
जयनश्री नवोद्गया	४०७	जनीयो भगवतेन	२०४	जीनजगन्मवाऽम्या	४६०
जय सरमोपाने त्रिप्यो	१४६	जन्म मर त्पुण्यम्-	२११	जीनाया म् प्राश्नेत	२८३

ज्ञातिव्याजनिगूढान्त	१७३	तच्छुसनहरा गत्वा	१५५	तत परम्परेन्द्राय स्वाहा	२६७
ज्ञातुधर्मकथा सम्यक्	१६३	तच्छित्तित्रयसान्निध्ये	५०८	तत परार्थसम्पत्त्यै	२६७
ज्ञात्वा तदाभु तद्वन्धु	३७१	तच्छुद्धपशुदो बोद्धव्ये	२८२	तत पर्यन्तविन्यस्त-	३०
ज्ञात्वा समागत जिप्यु	११६	तच्छ्रेयादिग्रहे दोष	३३२	तत पुण्योदयोद्भूताम्	२३७
ज्ञात्वा सम्भाव्यशौर्षोऽपि	३८६	तच्छ्रेयादीर्विष	३३२	तत पूजाऽऽगतमस्य	३०१
ज्ञात्वा सूत्रवृत्त सूक्तम्	१६३	तच्छौर्षं यत्परामृते	४२०	तत पूर्ववदेवास्य	२७६
ज्ञानज स तु सस्कार	२७७	तच्छ्रुत्वा नेत्रभूता नो	४६६	तत प्रचलिता मेना	३४
ज्ञानध्यानसमायोगो	२६६	तच्छ्रुत्वा पुनरप्याभ्या	४७०	तत प्रतीतभूपालपुत्रा	३६६
ज्ञानमूर्तिपद तद्वत्	२६४	तच्छ्रुत्वा साऽऽब्रवीदेवम्	४८६	तत प्रतीपमागत्य	१०१
ज्ञानविज्ञानसम्पन्न	२५४	तज्जल जलदोद्गीर्णा-	११७	तत प्रभृत्यभीष्ट हि	२४७
ज्ञानशुद्ध्या तप बुद्धि	२१३	तज्जातो चक्रिणो देवी	४८१	तत प्रमाणकं कैटिचद्	११३
ज्ञानोद्योताय पूर्व च	२६१	तज्जात्वा मतिपता पुत्र	४७०	तत प्रविश्य साकेत-	३२३
ज्ञेय पुरुषदृष्टान्तो	३३५	तटनिर्भरसम्पत्तं	१३२	तत प्रसन्नगम्भीर-	१५३
ज्येष्ठ प्रणम्य इत्येतत्	१८२	तटशुक्लाधिपासन्न-	४५१	तत प्रसेदुषो तस्य	४६
ज्येष्ठे न्यायगत योग्ये	४६७	तटस्यपुटपाषाण	८८	तत प्राची दिश जेतुम्	१०
ज्योतिर्ज्ञानमय	२५०	तटाभोगा विमान्यस्य	१२२	तत प्राविक्षदुतुङ्गा-	३१८
ज्योतिर्वेगामुह श्रोत्वा	४८२	तत वञ्चुकिनिर्देशाद्	३७६	तत प्रास्थानिकं पुण्य	८
ज्योत्स्नाकीर्तिमिवात्स्वन्	४	तत कतिपये देवा	१५१	तत श्रेष्ठिगृह याता	४६६
ज्योत्स्नादुबलवसना	४	तत कतिपर्यरेव	३६	तत श्रेयोऽधिना श्रेयम्	२७०
ज्योत्स्नामयं बुक्त्वा च	७	तत कतिपर्यरेव	११५	तत पटवर्मणो स्वाहा	२६४
ज्योत्स्नामालिनसम्भूता	४	तत कतिपर्यरेव	१५१	तत सद्गृहिकत्पाणि-	३०३
ज्वलप्रताप सौम्योऽपि	३६२	तत कतिपर्यरेव प्रयागो	४४०	तत सप्तदिनैरेव	४६३
ज्वलन्त्येव ग तेजस्वी	१७३	तत कलिपुगेऽम्भरो	३२०	तत समरसघट्टे-	१८५
ज्वलन्त्योपधिजालेऽपि	१३६	तत विश्चिन्तु स्वलदुर्गो	१२५	तत समुदिते चण्डदीधिनी	४६०
ज्वलन्त्येव बराल वो	१५४	तत विश्चिन्तु पुरो गच्छन्	१३८	तत समुद्रदत्तश्च	४६५
ज्वलद्दावपरीतानि	८८	तत कुमारवालेऽप्य	२६०	तत समुद्रदत्ताभ्यो	४४६
ज्वलन्त्योपपयो यस्य	८६	तत ब्रूहत्वाद् वाधिम्	५०	तत समुद्रदत्तोऽपि	४६७
ज्वलन्मुषुटभाचर्तो	२०५	तत वृत्तभय भूयो	१८६	तत सर्वप्रपलेन	३१५
त		तत वृत्तयुगस्फारय	३१७	तत सर्वेऽपि तज्ञातविशुंताद्	४४६
त वृष्णगिनिमूलद्रव्य	८६	तत वृत्तार्थमारमानम्	२५३	तत सुभावनोपुत्रम्	४६६
त नद्या परम ज्योति	२४०	तत वृत्तेन्द्रियत्रयो	२६४	तत मुक्तिहरियास्य	२५४
त निरीशय शितेभर्ता	३७७	तत वृत्तोपवासरय	२७२	तत स्ववाम्यसिद्धिर्धर्मम्	२६३
त परीय विगुदोऽ	३७१	तत धामनिव स्थिरवा	३१८	तत स्थपतिरत्नेन	८
त पुगलनरुपेण	४८६	तत धामनिर्म धर्मन्	२६५	तत स्थितमिद जनात्	३३३
त स्याद्विगुहगार-	१०७	तत शेषीय एवासी	३१८	तत स्वभावसम्बन्धम्	४६५
त सौहित्यगुहम् च	६७	तत पञ्चदशमस्कार-	२७२	तत स्म बलमशोभाद्	८५
त शीघ्रय धूमवर्गास्य	४८८	तत पर तिपटास्य	२४७	तत स्वयवरो युक्ती	४५६
त स्यात्पर जिप्यु	१७७	तत पर प्रपातश्वम्	३३८	तत स्वयय समासदय	३५७
त शीघ्र प्रयत्नार्थम्	१२४	तत परमत्राणाय	२६१	तत आमृनिवापाय-	३५१
त सहासकृष्णान्	४८०	तत परमत्राणाय	२६६	तत अजितपुण्येति	३०६
त सम वामपदे-ने	३०१	तत परमत्राणाय	२६६	ततपारावर्षी रेजे	१८६
त स्यात्परमिद्विषय	६२	तत परमवर्षीयय पदम्	२६६	ततपञ्चपर्याटिका	११८
त स्यात्परमिद्विषय	३११	तत परमवर्षीयय स्वाहा	२६७	ततपञ्चपर्येणायै	१७८

ततश्च त्रिव्यजाताय स्वाहा	२६७	ततो मन्त्रदिनेऽभ्यर्णो	३२७	तन्वानोचितमन्त्रञ्च	२६२
ततश्च स्वप्रयागाय	२६१	ततोऽभिरान् प्रमेःसोऽतो	२६२	तन्वानोचितवृत्तञ्च	४३५
ततश्चानुपमेन्द्राय स्वाहा	२६८	ततो महान्य धर्म	३१५	तन्वानोचितसामोक्त्या	४३६
ततश्चाहंस्वयन्व्याणनागी-	३०२	ततो महाव्योप्यता	३३३	तन्वुमारस्य मन्त्रदान्	४८८
ततश्च्युत परिप्राप्तमानुष्य	३४७	ततो महीभूत सर्वे	३७४	तन्त्रमी नूपुरामञ्जु-	२०८
ततश्च्युतो जयन्तोऽभूद्	५०६	ततोऽमो ध्रुवनिनेप-	१६५	तन्त्रेचरगिरी राजपुरे	४८५
ततस्त्वमुचुरभ्यर्णां	४८	ततो मुनीन्द्रकन्याश-	३०३	तत्तटोपान्तविद्याल-	१२५
ततस्तस्मिन् वने मन्त्रम्	६६	ततोऽय हृत्तम्वार	३१०	तत्राफनतो जात्रम्	४६८
ततस्त्रिनिक्षमाणेन	१५८	ततोऽय शुकृद्वाम सन्	३१२	तत्तु स्यादसिद्धत्या वा	३११
ततस्तुष्यांभ्रमेर्गह्व	३२७	ततोऽयमानवानेनान्	२५७	तत्तत्तणे च नियुक्ताना	३३१
ततस्ते जलदावार-	११७	ततोऽयमुपनीत सन्	२७५	तत्त्वादसो म्भिते देवे	३१७
ततस्त्वयि वयोस्य-	३८३	ततो राज्यमिद हेयमस्यमिव	३५१	तत्पत्नी शुक्लपद्मादिदिने	४५४
ततान्यत्रमसे लोके	१८६	ततोऽजगद्गान्दस्य	२८६	तत्पदोपान्तविद्याल-	२१५
ततो गत्वाहमिन्द्रोऽभूत्	५०६	ततोऽजतीर्णे गर्भोऽनी	२५६	तत्पानन कथ च स्यात्	३३३
ततो गुणकृता स्वस्मिन्	३१२	ततोऽजनीयं श्रीपाल	४८३	तत्पुरे षरतीर्णोऽप्यती-	४६१
ततो जितास्त्रिदशं	२६५	ततोऽजरोधनवधु-	२६	तत्प्रसागहृतोद्योतम्	११३
ततोऽग्निवालविद्यादीन्	३१०	ततो बणोत्तमन्वव	२५२	तत्प्रतिष्ठापितेऽने	३६८
ततो दृष्टापदानांऽय	११८	ततो बाल्यमिद कार्यम्	१५३	तत्प्रसनावसिद्धावि धम्	३२०
ततो दिव्याष्टमहस्र-	३०६	ततो विद्वत्सुन्वदध्य	१३	तत्प्राय मिन्यूर रुध्वा	४३५
ततो धनवती दीप्तम्	४५८	ततो विद्वत्सुल्लदध्य	३७	तत्पत्र सन्मति मुक्त्वा	३२०
ततो धनुर्धरप्रायम्	११६	ततो विद्योपदेशोऽय	२६०	तत्पत्नेनाच्युते कल्पे	४७७
ततोऽग्निगतमज्वालि	२७८	ततो विधिममु सन्व्यम्	३१६	तत्पत्रमेव मतोऽप्याम्	४६७
ततोऽग्निदृष्टं त शैलम्	१३७	ततो विधिवदानचं-	१५१	तत्पत्न्यावनिनामितन्	४५३
ततोऽग्नीनाखिलापार	२५४	ततो विश्वेदेवरास्तन्य-	३०५	तत्समीपे नृपेशामा	४५०
ततो ध्यायेदनुप्रेक्षा	३४२	ततो विसर्जितास्थान	३२७	तत्सम्पत्नी समुद्रमूनाम्	३२६
ततोऽग्नि विद्यामीरा	१०	ततो व्याचासयत्रेव	१८१	तत्सिद्धकृत्पूजार्थं कान्ता	४८७
ततो नमस्त्यमी गच्छन्	४६०	ततोऽग्नी दिव्यद्यस्यायाम्	२५७	तत्सोपानेन स्याद्रे	१०७
ततो नानानक्षत्रानग्नीर्वाण-	३७३	ततोऽग्नी धनदिव्यासो	६३	तत्सन्वन्तदंनान् विञ्चिन्	३१७
ततो मास्त्यत्र नक्षत्र्यम्	३६६	ततोऽस्माद् विजयस्तस्माद्	५०६	तत्र कल्पोपमं देवं	१८०
ततो निरुद्धनिर्गेष-	२६७	ततोऽस्मिं दत्तपुण्यासो	३८	तत्र कश्चिन् सभागम	४६०
ततो निवद्वते त्रिव्या	११८	ततोऽस्य केदसोऽपती	२६६	तत्र काचिन् प्रिय वीर्य	४१६
ततो निर्गन्धमुण्डादि-	३०६	ततोऽस्य गुर्वनुजानाद्	२५१	तत्र विश्वरनासोगाम्	१३८
ततोऽय प्रविशन् वीर्य	१३८	ततोऽस्य त्रिनरूपत्वम्	२७६	तत्र दण्डमिवाग्नी	२६१
ततोऽस्या पुण्यसत्त्वान्वा	२७३	ततोऽस्य दिग्ब्रह्मोद्योग-	१	तत्र चं यद्रुमान्मुद्रयान्	१३८
ततोऽस्यपितेनालम्	२७३	ततोऽस्य पञ्चमे वर्षे	२५८	तत्र त मुचिर स्तु वा	६६२
ततोऽस्यरान्मरहृषम्	८५	ततोऽस्य विदित्तोप-	२५४	तत्र नियमहो नाम	२४२
ततोऽग्नि नेमिनायाय	२६८	ततोऽस्य वृत्तनाम स्यात्	२७२	तत्र पशो हि जेवतान्	२८२
ततो भस्म समादाय	५०८	ततोऽस्य हायने पूर्णे	२५८	तत्र परसन् गुरुरासोगाम्	१३६
ततोऽग्निमनससिद्धं	४५	ततोऽस्याधीतविद्यस्य	२५०	तत्र कल्पुजनादर्थ-	२८७
ततोऽग्निपेवनाप्योनि	२६१	ततोऽग्निन्द्रस्तस्मान्च	५०६	तत्र भद्रापन दिव्यम्	११६
ततो मुक्तोऽस्यस्थाने	३२७	ततोऽग्निवर्मायाद्	४६०	तत्र कार्त्तिकान्तियो	३२७
ततो मतिमना मीय-	३४९	तन्वय वरंमूमिन्वाद्	३३१	तत्र बाल्युत्पादस्य	३८
ततो मध्यदिनेऽभ्यर्णो	२६	तन्वरांविक् करादु	३६६	तत्र गत्यायने मुष्टवा	४८८

तदासु प्रतिवर्तन्व्यम्	१७३	तद्वनान् वान्त्वा साद्वम्	५००	तपोऽयमनुपानत्	२८७
तदास्वीयाबुरोदधाताद्	२५	तद्विम्वाधरमम्भाविता-	४४४	तपोलक्ष्या परिष्वक्ता	१६२
तदा सदसद सर्वे	५००	तद्वुद्वन्वा नाधवसोरा	४३४	तपो विद्याय कालान्ते	४५७
तदा सप्रदसयुक्ता-	४०४	तदभूतवनमेतत्त्वम्	४८५	तप्तपाशुचिन्ताभूमि	१६४
तदा सर्वोपधामुद्धो	३८८	तदभूत्पारायण वाम	३६६	तम क्वाटमुदघाटय	१६८
तदा सागरदत्ताश्च	४६८	तदयथानीन्द्रियज्ञान	३६६	तम सर्वं तदा व्याप्तु	४१४
तदा सुलावती कुञ्जा	४८६	तदयथा यदि गौ कश्चिद्	३४३	तमध्वगोपमध्वग्यं	३६
तदास्ता समरारम्भ	११७	तदयथा समानी देही	३३८	तमभ्यपिञ्चन् पौराश्च	२२१
तदाऽप्य क्षपक्त्रेणीम्	२६६	तन् युयु समुतेहतुम्	५०५	तमस्मन्वन्यनामेप	४८४
तदाऽप्योपनयाह्वम्	३११	तद् रवाक्त्रेणाद् घृणि-	३६४	तमनयानुनीयेह	१६२
तदा स्वमन्त्रप्रहित	४३३	तद्वाष्ट्रविजयाद्वैस्य	४५८	तमालवनवीयोपु	८४
तद्विद तस्य साम्राज्यम्	२६३	तद्वृत्पालोक्तोच्चक्षु	२३०	तमामिषेविरं मन्दम्	७१
तदुन्मुखस्य या वृत्ति	२६६	तद्वक्त्र पवनप्रौढ-	३८६	तमित्यदमुतया लक्ष्म्या	१३३
तदुपश निमित्तानि	३२८	तद्वक्त्र सम्मुखीनेऽस्मिन्	१७७	तमित्यदमुतया लक्ष्म्या	१३३
तदुपाहृतस्तीर्षं	१२८	तद्वक्त्र पचनाभूतम्	११५	तमित्यालोक्यन् द्वृषान्	१७७
तदुपाहृतस्तीर्षं	११०	तद्विदित्वा कुन्स्यैव	४६६	तमिषेति गुहायासी	११२
तदुपेत्य प्रणामेन	१७६	तद् विलोक्य कुमारोऽभूत्	४६०	तमुच्चैर्वृत्तिमाज्ञान-	१२१
तदेतत् सार्वभौमस्त्वम्	४३०	तद्विलोक्य सपत्न्योऽप्या	४४६	तमुप्यमूकमानस्य	६७
तदेतत् सिद्धसाध्यस्य	२६६	तद्वीक्ष्य पितरावेप-	४४६	तमेकमक्षर ध्यात्वा	३५२
तदेनद् शोभनिर्वाणम्	२५६	तनुतागममहन् ते	१६४	तमेकपाण्डुर शंलम्	१२४
तदेतद् विधिदानेन्द्र-	२५७	तनुदरी वरारोहा	२०८	तमेन धर्ममादभूत्	२७८
तदेत्य द्रुतमायुष्मन्	१८०	तनुभूतपयोवेणी	४	तमोऽग्निगजमेधादिविद्या	४१०
तदेन शरमभ्यर्च्य	४६	तन्नापायगता चिन्ता	३२७	तमो द्वर विषूयाग्नि	१८६
तदेन्द्रा पूजयन्त्येनम्	२६०	तन्नावायमहाभारम्	४५२	तमो निम्नेपमुद्भूय	१८६
तदेया जातिसंस्कार	२४३	तन्निमित्तपरीक्षाया	४४६	तमोवलान् प्रदीपादिप्रकाशा	४१४
तदेव युवराजोऽपि	५०६	तन्निरीक्ष्य मर्मपायम्	४५३	तमोऽग्न्युष्णिना रेजे	१८८
तदेव परमज्ञान-	२७८	तन्निवेगादयान्येद्यु	४६६	तमो विधूप द्वरेण	१८६
तदोद्भिन्नकटप्रान्त-	३६४	तन्मन्त्रास्तु यथाग्नायाम्	२५५	तमोऽविमोहित विश्वम्	४१४
तदोपसर्गनिर्याजे	४७४	तन्मा भूदनयोर्द्वन्द्वम्	२०७	तयो कुमार श्रीपाल	४८०
तदोभयवलम्बात-	४०८	तन्मुक्ता विधिसत्ता दीपा	११८	तयो मुता भोगवती	४८३
तदुग्मो रत्नरान्दग्मं	१४०	तन्व्यो वनवत्ता रेजु	५	तयोरेह तनुज्जालि	४८५
तदुगम्यलनिववाण-	२३०	तप श्रुतञ्च जातिद्वय	२४६	तयोरासत् तटे पश्यन्	११४
तदुगोरुवर्नि श्रान्त्वा	१३८	तपश्रुताभ्यामेवातो	२४३	तयोरासत् तटे मय्यम्	११४
तद्वु सस्यं माहात्म्यम्	४६४	तपसोऽग्नेयं चोद्योष-	२१४	तयोर्जमान्स्नेह-	४६०
तद्वुसुखोऽपि निर्वन्धाद्	४५५	तपस्तनूनपात्तान-	२१०	तयोर्जमान्स्नेह-	४४६
तद्वुसुखोऽपि निर्वन्धाद्	४५३	तपस्तनूनपात्तापाद्	१६६	तयोर्जयोऽभवन्	३५८
तद्वेव नयथास्माकम्	१६०	तपस्तापतनुभूत-	१६६	तयोर्विद्युत्प्रभा पुत्री	५०१
तद्वेव विरमामुष्मान्	१५७	तपस्तीप्रमयामाद्य	१६२	तयोऽनुत् सर्वदयित	४६५
तद्वेव्यद्वय ३, हादेऽन्यो	३३४	तपोऽग्निस्तप्तदीप्तादृणा	१६६	तरङ्गात्पस्त्रीऽयम्	५८
तद्वेव्यद्वय ३, हादेऽन्यो	२१५	तपोऽनुमावादस्यैवम्	२१६	तरङ्गात्पस्त्रीऽयम्	५१
तद्वेव्यद्वय ३, हादेऽन्यो	३४४	तपोभिरक्षुभंरेभि	२१४	तरङ्गात्पस्त्रीऽयम्	६०
तद्वेव्यद्वय ३, हादेऽन्यो	३१४	तपो भुजवती रेजे	२०४	तरङ्गात्पस्त्रीऽयम्	१०
तद्वेव्यद्वय ३, हादेऽन्यो	४६६	तपोभय प्रणीतोऽग्नि	१७०	तरङ्गात्पस्त्रीऽयम्	५६

तेष्वहंदिज्यागोपासं	२४५	त्व बह्निनेव केनापि	४०७	दत्त्वा मुनोचनार्थं च	४३७
तेष्ववता विना सद्गतात्	२४०	त्वगस्थिमात्रदेहान्मे	१६६	ददती पात्रदानानि	३६८
ते स्वदुर्नयलज्जास्तवरा	४२७	त्वद्गतद्रुद्रगतुरद्गमाधनखुर-	६४	ददुरम्मं नृपा प्राच्यवनिद्रग-	६६
ते स्वभुक्तोऽग्निभूय भूयो	१६५	त्वत्त स्मा लघजन्मान	१५६	ददौ दानममी मद्भ्यो	३२५
ते हिमानी परिक्लिष्टाम्	१६४	त्वतीर्थमरसिस्वच्छे	१४८	दद्यच्चात्रचरी वृनिम्	१८४
ते हि साधारणा सर्व-	३१५	त्वतो न्याया प्रवर्तन्ते	३८८	दधनीरात्रपत्रानि-	१७५
तैरदिवच गिरि शाल्वा	६८	त्वत्प्रदस्मृतिमात्रेण	१४६	दद्यद्दण्डाभिधानोऽयम्	१०७
तैस्तु सर्वप्रयत्नेन	३३२	त्वत्पादनत्रभाजाज-	१४८	दद्यद्दीर्घतरता वृष्टिम्	२०६
तोपाद् सम्पादयामासु	५०८	त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा	३०६	दधान तुलितारोप-	१७६
तोषितैरवदानेन	११८	त्वत्प्रणामानुरक्तानाम्	१६०	दधान स्वन्धपर्यन्त-	०१०
तो भोगपुरवास्तव्यो	४६६	त्वत्प्रताप शरव्याजात्	१२०	दधानान्न तयम्नापम्	१६५
त्यक्न काममुखो भूत्वा	२८७	त्वत्प्रमादाच्छ्रुत सम्पत्	३५६	दन्त्राष्टग्रहो नाम्	०६६
त्यक्तचेलादिसद्गस्य	२५३	त्व प्रमादादिद सर्वम्	४३८	दन्तिदन्तांगलप्रोत्तोद्-	१८६
त्यक्नभीतातपत्राण-	२८६	त्वत्स्मृते पूतवागमि	१४८	दयितान्तकृद्वेगस्यो	४६७
त्यक्तस्नानादिसस्कार	२८५	त्वद्देहदीप्तयो दीप्रा	१६४	दयोदुरा मुरोत्पात-	५
त्यक्नागारस्य यस्यात्	२७६	त्वद्भुक्तिवामिनो देव	१००	दर्मान्निर्गमन्मन्त्र	२६०
त्यक्तागारस्य मद्दृष्टे	२५३	त्वमत्र तेन सीहादाद्	४८०	दर्शयन्ती ममोपस्थात्	४८०
त्यक्नोपधिधरा धीरा	१६७	त्वमादिराजो राजवि	१५३	दर्शन्या विद्वत्प्राप्ते	४६०
त्यक्त्वाऽन्यवस्त्रशस्त्राणि	२८५	त्वमागुप्यायण चित्र-	०७६	दर्शाद्रगमिनि भोगाद्गम्	२३३
त्यक्त्वाऽन्ये खेचरास्त्रातिवृष्टौ	३६७	त्वमुद्घाटय गृहाद्धारम्	१०७	दर्शाधिकारान्मन्योऽन्ना	३११
त्याग पर्वोपवास च	४५४	त्वया न्यायधनेनाऽग-	०६६	दर्शाधिकारि वान्मूनि	३१०
त्याग सर्वायिसन्तपि	५०२	त्वया मदीयाभरणम्	६७३	दर्शागं वनोदमृतानपि	६६
त्यागो हि परमो धर्म	३४१	त्वयाऽह हेतुना केव	४७२	दर्शागानि कामम्पाद्व	६६
त्रया गता समादाय	४६०	त्वयि राजनि राजोक्ति	१५५	दानं ममूद्रदत्तस्य	४७१
त्रय पञ्चाशदेता हि	२४४	त्वयोद कार्थमित्यम्	१५३	दान पूजा च मीत्र च	३०५
त्रयोऽन्यय प्रणेया स्यु	३०१	त्वयेदानी सभोपागाम्	१०८	दानिना मानिनस्पृष्ट्या	४०८
त्रयोऽन्ययोऽहंद्दयस्युत्	२४५	त्वयेना प्रसियतो देवो	३६	दिग्स्वामिना समामूमि	०२३
त्रयान् हरितकायात्च	१६७	त्वा नमस्पन् जननंघ	१६८	दिग्दृग्नाघनापाय-	५
त्रि परीत्य नमस्तृत्य	३५६	त्वा स्तोत्र्ये परमात्मानम्	१६१	दिग्लरेभ्यो व्यावर्धं	३४०
त्रि प्राक् त्वन्मारितावावाम्	४७६	त्वामायुष्मन् जगन्मान्यो	१७६	दिग्जये यस्य संयानि	१२६
त्रिकविद्रवाधिपानोद्भान्	६६	द	४६६	दिव्य प्रमान्य कोऽपि	१०५
त्रिकालविषय योगम्	१६५	दक्षवेदीजनक्षिप्रवृत्त-	४६६	दिव्यभाषा तवागोप-	१४५
त्रिष्टमलयोत्सङ्गो	८५	दक्षिणागानि त्रभापन्न-	३७७	दिव्यमूर्तेऽनुद्य	३३२
त्रिगुप्ताय नमो	२६५	दक्षिणेन तमश्नीन्द्रम्	१०१	दिव्यमूर्तेऽत्रिनेन्द्रस्य	०८१
त्रिजपग्जलजाल-	१३८	दक्षिणेन नद शोरुम्	६७	दिव्यरत्नविनिर्माण-	०२३
त्रिमानयुत् त्रिभुवनं वृक्ष	५११	दक्षिणेनैतया विष्वग्	२४	दिव्यरूप समादाय	४६६
त्रिमाननेत्रमम्पक्त्र-	५०५	दक्षिणोत्तरयो श्रेण्यो	१२८	दिव्यरत्नगीतवादिन-	०५७
त्रिभिर्निदरानैरेभि	३६०	दक्षिणोत्तरयो श्रेण्यो	३८१	दिव्यमिहामनपदाद्	३०७
त्रिमयतस्य पीठस्य	१४५	दण्डनादपरिधीयाम्य	४७४	दिव्यानुभाक्वभूमन्-	२५७
त्रिमयतस्य पीठस्य	३१८	दण्डरत्न पुरोधाय	१०	दिव्यानङ्गाभेदनाम्	००७
त्रिष्वेतेषु न ममर्षं	०८३	दण्डरत्नाभिधानेन	१०७	दिव्यात्रदवनाम्बाम्	०६३
त्व जामागुनिगृह्या	४६८	दत्त्वा त्रिभिच्छ्रद्द दानम्	०६०	दिग्ना प्रयापनापायाद्	३
त्व मन्दराधिपेकार्हे भवेति	३०५	दत्त्वा चागादि सर्वम्भ्यम्	६३६	दिग्ना प्रान्तेषु विधोने	८५

दिशा रावणमाक्रान्त्या	४१	दृष्टा स्वप्ने मृगाधीशा	३२२	द्रष्टव्या गुरवो नित्यम्	३१८
दिशाञ्जय स विज्ञेयो	२६१	दृष्टापदानानन्याश्च	७१	द्रष्टव्या विविधादेशा	१०३
दिस्यानिव द्विपान्	६१	दृष्टिवादेन निर्जात-	१६३	द्रोग्धून्यानस्य भूमर्तुं	४११
दीक्षा जंजी प्रपन्नस्य	२७६	दृष्टीनामप्यगम्येऽस्मिन्	२३	द्रोणादिप्रक्षयारम्भ-	३६४
दीक्षा रक्षा गुणामृत्या	१६१	दृष्ट्वा कदाचिद् गान्धारी	४६७	द्रोणामुखसहस्राणि	२२६
दीक्षावल्या परिष्वक्त	२०६	दृष्ट्वा तत्कम्बलस्यान्ते	४८६	द्वात्रिंशन्मौलिवद्धानाम्	२२३
दीपिकायाभिवामुप्याम्	२१५	दृष्ट्वा तत्साहस वक्तुम्	४८५	द्वादशाङ्गश्रुतस्वन्ध-	१६२
दीपिका रचिता रेजु	१८६	दृष्ट्वाऽथ त महाभाग-	४५	द्वादशाहात् पर नाम	२४७
दीप्रे प्रकीर्णकत्रातै	२६२	दृष्ट्वा विमोच्य राजानम्	४५२	द्वासप्तति सहस्राणि	२२६
दीयता कृतपुण्याय	३७०	दृष्ट्वा पञ्जराकन्यास्ता	४८१	द्वि स्ता त्रिलोकविजय	३००
दीर्घदोषातनिर्घात	२०७	दृष्ट्वा हरिवरस्तस्मान्नीत्वा	४८७	द्विजातो हि द्विजमेष्ट	२४३
दु खी सुखी मुखी दु खी	४४२	दृष्ट्वेवाकृष्टहरिणाम्	१८६	द्विजातिसर्जन तस्माद्	३२१
दुनोति नो भृश दूत-	१८४	देयमन्यत् स्वतन्त्रेण	१८५	द्वितीय इव तस्यासीत्	४४८
दुन्दुभिध्वनिते मन्द्रम्	२५६	देयान्युन्नतान्यस्मै	३१०	द्वितीयभार्जुन सालम्	१३६
दुराचारनिषेधेन त्रयम्	३६२	देवताऽतिथिपित्रिग्न-	२७६	द्वितीयमेखलाया च	१४०
दुर्गादवीसहस्राणि	२२७	देवताप्रमितालक्ष्ये	४८०	द्विधा भवतु वा मा वा	३६१
दुद्धरोधनपीभार-	४८४	देव त्वामनुवर्तन्ताम्	१५५	द्विपानुदन्यतस्तीरम्	७३
दुर्निरीक्ष्य करंस्तीक्ष्णै	४१३	देवदानवगन्धवं	३१६	द्विरष्टी भावनास्त्रज	३३१
दुर्मूले कुपिते भीत्वा	४५५	देवदिग्विजयस्यार्द्धम्	१००	द्विर्वाच्य वज्रनामेति	२६७
दुमुं तश्च दुरन्तेऽस्मिन्	३४२	देव दीप्र शर कोऽपि	४६	द्विर्वाच्यो ताविमौ शब्दौ	२६६
दुर्विगाहा महाग्राहा	३५	देवभूय गता श्रेष्ठि	४५७	द्विर्विस्तृतोऽयमद्रीन्द्रो	१२२
दुष्टा हिनादिवोरेषु	३४८	देवश्वोर्नुजाश्रेष्ठि-	४६५	द्विषड्योजनमागाह्य-	४६
दुस्तरा मुतरा जाता	६८	देवस्थानुचरो देव	४२८	द्विपन्तमथवा पुत्रम्	३४८
दुस्महे तपसि श्रेयो	४६७	देवाना प्रिय देवत्वम्	१०५	द्वेषवन्तौ तदालोचय	४८६
दूत तातवित्तीर्णो नो	१८५	देवान्तसत्य सत्यान्तदेवो	३५७		
दूत नो दूयते चित्तम्	१८२	देवीपूपचरन्तीषु	२५६		
दून सात्त्वत्ममाना	१५८	देवोऽयमक्षततनुविजिताग्धि-	५६		
दूरपाताय नो विशु	४००	देवेनानन्यसामान्यमाननाम्	४३७		
दूरमथ प्रयातव्यम्	३४	देवोऽयमनुधिमगाधमलद्रध्य-	५६		
दूरमुस्मारिता मैन्ये	८२	देव्य वनवमालाद्या	४५०		
दूरादेव जिनास्थान-	३१८	देशाध्यक्षा बलाध्यक्षै	१०१		
दूरादेवावहृषात्म-	४२१	देशेऽपि कारयेत् कृत्स्ने	३४६		
दूराद् द्रुप्यवृटीभेदाद्	२६	देहच्युती यदि गुरोर्गुह-	५११		
दूरानतघलन्मौनि-	१०१	देहवामो भय नास्य	४६३		
दूरानतवदन्मौनि-	११०	देशान्तरपरिप्राप्ति	२८०		
दूरानतवदन्मौनि-	१४१	देवमानुषयाधाम्य	३८८		
दृष्टिना वटश्रेणाम्	२०६	दोदंभं विगणप्यारय	२०३		
दृग्दर्शवीक्षितं गान्	१६३	दोर्भ्रं विभ्रान्तगुणवर्षान्	२२२		
दृग्भिवलागा शरामागाम्	२२४	दोष कोऽत्र गुण कोऽत्र	३१६		
दृग्ब्रह्मस्य लयाग्या	२७३	दापधानुमनस्यानम्	३३६		
दृग्दीप्तस्य धाम्योऽ-	२६३	दोगा वि तन्मयास्याम्	३६१		
दृष्ट मन्मगुणायाम्	१७०	दापान् गुणान् गुणी गृह्णन्	३५३		
दृष्टश्चर्यामि वा नाऽस्मिन्	५०१	दापान् पर्येत्येव आत्यादीन्	३३६		
				ध	
				धत्ते सानुचरान् भद्रान्	१३४
				धन यशोधन चास्मै	११८
				धनमित्रस्ततस्तस्माद्	५०६
				धनमेतदुपादाय	२५२
				धनश्रीरादिमे जन्मन्यतो	५०८
				धनश्रीरित्यजायन्त	४७७
				धनुर्धरा धनु सज्यम्	१०२
				धन्विन शरनाराच-	१०२
				धन्विन शरनाराच-	२०१
				धर्म कामश्च मञ्चवेयो	३६०
				धर्मवर्षमर्बहिर्भूता-	१०६
				धर्म इत्युच्यते मद्भि	५०४
				धर्मशीले महीपाले	३२४
				धर्मस्याम्वातता योषे	२१५
				धर्मार्थवाममोशागाम्	३५८
				धर्मोऽन्य महानामीद्	२३३
				धर्मोऽणुगुणमुक्तेः	३६७

धर्मोऽन मुक्तिपदमत्र	३५०	ननाहुन्ना स्वदेगन्व	६३८	न भेदव्य न भेदव्यम्	१०८
धर्मो रत्नस्यपायेभ्यो	३५१	न तदुवाचयन तस्य	२५०	न भोक्तुमन्वयाकारम्	१५७
धर्ममर्ष्यं यथास्मरन्	३८८	न तदर्थगमनात्	१६५	नभोऽज्ञादगरी तैनु	८
धर्म्यराचरिते मृत्य-	२७६	ननागुक्तुमोदनेदे	२०८	नम गजदरौ चैनौ	२६६
यवता धामिकैर्मन्या	४४०	ननेत्युच्यन्दिवा तस्या	३६४	नम मुक्तव च्यागमय-	३५०
धानुर्धर्मोर्गुणोर्मागं.	३६६	न गृहीत कथेपगिनत्	६७३	न मध्ये न शरीरेषु दृष्टा	४०१
धार्म्यदचक्रगन्मस्य	६३	न चक्रिगोर्प्रि कापाय	३६१	न मया तद्दृष्ट माप्यमिति	६७५
धारा रज्जुनिगनदा-	२३२	न चक्रंग न म्न्नेष्व	६३०	नमन्ने मतवावोन्द्र-	१६८
धारा वीररस्येव रेजे	३६६	न च तादृग्विज कदिवत्	३३५	नमन्ने परमानन्-	१६७
धारिणी पृथिवी चेति	४७७	न चास्य भदिगमहृगो	४१	नमन्ने पारनिर्वाण-	१४७
धार्मिकस्यास्य कामार्थ-	३२६	न चित्र तन मच्चिनी	३७६	नमन्ने प्रचलन्मोवि-	१४७
धिगिद चक्रियाप्राज्यम्	४६८	न चेदिभ्यन् सुनात्	६०७	नमन्ने प्राणवन्ध्याग-	१४८
धुनरुदयने रक्तागोव-	६१	न चेत्तन्पमन्प्रापीत्	११७	नमन्ने सुवतोद्भामि-	१४७
धुनी वैनर्या मापवती च	७०	नटोऽत्र वानवो नाम	४८१	नमन्ने मन्त्रगन्ध-	१६७
धुनीं नुमागधी गदनाम्	६७	न तयाऽस्मादुना शदो	१७०	नमन्ने मुक्तागोत्र-	१४७
धूमवेग विनिजित्य	४६२	नताना मुग्धोटीनाम्	१६५	नमन्ने स्वकिरीटा-	१६७
धूमवेगो विशोर्कानम्	४६१	नतागोषो जय म्नेहाद्	३६६	नमिधितमिपुरागै-	१०६
धूमवेगो हृषिकरध्वेताम्	४८६	न तुष्यन्ति म् ने लानी	१६८	नमिदव विनिधिवन्व	१०८
धूर्वीमालपरिक्षोप-	१३७	न लूनीया गतिम्लोपाम्	१५५	न मृता ब्रिगिता नव	६०५
धूर्वीमालपरिक्षोपो-	१४५	न तृणितेनिगिन्धेय	६६३	नमोऽनो भोग्यभ्याऽ	२६०
धूर्वमदग नवेपथ्य	३६	न वाऽप्यन प्रमादीव	६३६	नमोऽनु तुम्यमिद्वद्वे	१६८
धूर्वरक्तानुक्ता मन्ध्याम्	१८८	नत्वा विष्मन्नु वराचरगुम्	१७१	नरनि निन्नेरा यस्य	८८
धूर्तिमु मजमे मामि	२६६	नदीं वृषवनी कान्वा	६७	नरविद्यारराधोगान्	३७३
धैहि देव तनोऽस्मान्	१०१	नदीन ग्लमृगिण्डम्	४३	न रुधमस्य व्यावन्	३८२
धौगि मत्रिचानुपम्	६६	नदीना पुत्रिनाग्यापत्	७	नरुगो नागगश्चेत्	६७६
धौगिनेगन्मुलाहं	६६	नदीपुत्रिदेगेषु	१०	नरुंदा म यनेवापीत्	६०
धौरय पाथिवं विन्चिन्	२६५	नदीमवनिनामा च	६८	न नदीनीर्गि तन्नीर्पे	३६३
ध्यानगर्भगृहान्त स्या	१६४	नदी वधुनिरामेभ्यम्	४२	नवने माप्यनोऽभ्यर्षो	२६६
ध्रुव स्वपूरुषा दत्ताम्	१८५	नदीनलीरिय स्वच्छ-	१६	नवने वरातानीगो	५०८
ध्वजवृक्षान् समालम्बष	४०४	न दुर्तोनि मनन्तीवम्	१७६	नवनीहितपुगाम्	४०७
ध्वजस्योपरि धूमो वा	४०४	नद्योत्तरागोराय	११४	नवादि कुन्निनेन्द	४११
ध्वजतो घनसुधातान्	१३४	ननु स्यायेत वन्योन्ने	३६०	नवावृक्षपुगा पूग	२३०
ध्वजन्तु मुरभूपेषु	२६६	ननुतु मुगननेव	१००	नवास्य निपय मिडा	१३१
ध्वजो भगवता दिग्धे	५०६	नन्दन मोमदनाह	३५६	न विप्र किम्पु मन्वव	२००
ध्वजोऽप्यत्रया गाडम्	६४	नन्दनप्रतिमे तन्निन्	३८	न विप्रागै विप्राज्य	६८६
न		नन्दनो वृषनेगस्य	२००	नदपात् कर्ममन कृमन्	३०४
न करे पीहितो मोर्भो	११५	नन्दावनीं निवेगोऽथ	२३३	नटमष्टारगाम्भाधि-	३५१
न कि निवारिताऽप्यायाम्	४१६	नन्वत् त्वन्दिगुम्यने	४३६	नटाधिकामरिनी	२८६
न किञ्चिदप्यतानीव	११६	न दन्वात्र गुग नदी	३६७	न म माताम्यनदी	१७०
न किञ्चिदप्यतानीव	४८	नना श्रीनाभिराऽथ	१०६	न न्पुनामि कथ चाऽम्	६८७
न केवम निवारितो	१०६	नन गन्नागरेदे	३	न न्पुनै न हृगं नरुं	३६४
न केवम मनुमान्	३६	नन म्पुनैविनीगम्	१६०	न न्पुनै न हृगं नरुं	३६४
		न नुवदनेत मन्दष्टा	४३०	न न्पुनै न हृगं नरुं	३०१

नृनमप्यगमा पश्यन्	०१	पठन् नृनीन्द्रसद्वचन-	४३३	परिग्रहग्रहान्मुक्ता	४६५
नृचपोतमुचानाव	०११	पत्न्यनृज्यसद्रवागम्	४००	परिचितपतिहसो	४१४
नृचत्नद्रव्यपत्रन्त-	११६	पत्न्युत्पत्तयत्तवर्त-	१०७	परिगतपरितापान् स्वदेवारी	४०३
नृप मिहसितासोत्तम्	३६८	पत्न्योऽपिपत्तयान्	१८३	परित्वापमानानि	२६
नृपत्तमैयुनो नाम्ना	४३३	पत्न्युत्पत्तयान्	६०२	परित्वा सग्नो मग्ने	५४
नृपवर जिनमर्तु	१६३	पत्न्यनृ पत्तयानि	६३	परित्त्वन्वत्तया देव	१४४
नृपवल्गुनिवाकवचन-	०	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	२३६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपवल्गुनिवाकवचन-	०३	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	२५८	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपादगतानुवाञ्चानि-	०७	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	४०३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपानवारपरिपोषणान्	६६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपानाकपत्तो दूगान्	१८६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३६६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपानेडान् विजिज्याम्	६६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपान् चीराष्ट्रकानुष्ट-	६१	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	११३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपा भरतपृथा ये	००४	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३५	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपामनमथाप्याम्य	३०६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	५००	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपपंजराद्वारे	५८	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३०३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपप्रापनवाजीम-	१३६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३३३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपप्रमरनराज्योऽपि	१६८	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	८५	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेने विरवद्वय शृणोति	५११	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	१३३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेराव नीमिवाचनन्	०६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	१८८	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेन्दुवादेर्दुति नेने	१६१	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	१८८	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेम्यादिविजय चैव	०६८	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	८३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेवान्तमामन साम	१८१	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	३६०	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेग्राजिनपयो ब्रह्मा	०८१	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	१६०	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नेदुधान कोऽप्यनृदष्टो	०६	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	१६०	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपगृह्णाभानि धान्यापान्	६८८	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००२	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपगोपवाचनम्य-	४८१	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००२	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपगोपवाचनम्य-	१६३	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपगोपवाचनम्य-	४१०	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
नृपगोपवाचनम्य-	०६३	पत्तयानोऽपिपत्तयान्	००६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
प		परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	०६३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पववर्गात्तनुभो नम-	३	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	६३३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पट्टाश्रेयु विनीचने	१६	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	०६६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	०३०	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	३०६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	४६८	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	०१३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	०३८	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	६३५	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	५०८	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	१८३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	५०३	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	१६१	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पत्तयानोऽपिपत्तयान्	०१०	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	११०	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पट्टवर्षान् पर म वा	४५१	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	१६६	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पट्टाश्रेयुत्तुत्तुत्तुत्तु-	००३	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	१६५	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६
पट्टान्वाचो मान्येन	६४१	परमादिपदाश्रेय इयन्माप्य	१८३	परित्त्वान्तिरेषा म्यान्	२६६

पश्य पुण्यस्य माहात्म्यम्	३७६	पुण्य जले स्थलमिवाभ्यध-	६०	पुरोधाय शर रत्न-	५०
पश्याम्भोधेरनुतटमेपा	५४	पुण्य जिनेन्द्रपरिपूजन-	६०	पुरोधामन्थ्यमात्यानाम्	२५८
पहरा विपमप्राहं	८७	पुण्य पर शरणमापदि दुर्वि-	६०	पुरोपाजितपुण्यस्य	३६३
पासुधूसररत्नौघ-	३२२	पुण्य साधनमस्यैकम्	६५	पुरोपाजितसद्धर्मात्	३७५
पाकसत्त्वशताकीर्णाम्	१६७	पुण्यकल्पतरोरारसन्	२३७	पुरो बहि पुर पद्मवात्	६
पारिग्रहहृत्दीक्षायाम्	२५१	पुण्याच्चक्रधरश्रिय विजयिनी-	६५	पुरो भागानिवात्येतुम्	६६
पाण्डयान् प्रचण्डदोर्दण्ड-	७०	पुण्यादय भरतचक्रधरो-	६०	पुरोहितसखस्तत्र	११६
पादातकृतसवाधात्	१३१	पुण्यादित्ययमादिमा	१३०	पुरोहितं पुरश्चीभि	४४०
पादैरय जलनिधि	५२	पुण्याद् विना कुलन्ताद्गम्	१३७	पुलिन्दकन्यवासिन्य-	३७
पाप स तद्ब्रह्मंत्वा	३६०	पुण्याश्रये क्वचित् सिद्ध	२५१	पुष्कराद्धेऽपरं भागे	४६४
पापरोमी पश्येयौ	४१३	पुण्याहघोषणापूर्वं कुर्याद्	३०६	पुष्करावर्त्यभिरय च	२३३
पापसूत्रधरा घूर्ता	३२१	पुण्यं सिन्धुजलैरेनम्	११६	पुष्करं पुष्करोदस्तं	२१५
पापमूत्रानुगा यूयम्	२८०	पुण्योदयान्तिधिपति	१५०	पुष्टो मौलिनं तन्त्रेण	३४३
पापाप्येतानि कर्माणि	४७१	पुण्योदयेन भकराकर-	६०	पुष्पचूतवनोद्गाग्नि	२३१
पापिनाऽज्ञानिवेगेन	४८२	पुत्रबन्धुपदातीनाम्	४२६	पुष्पमार्तवमाप्तान	३७२
पारमात्म्ये पदे पूज्यो	३६३	पुत्रलाभार्थं तच्चित्तम्	४५२	पुष्पसम्मदंसुरभि	१६२
पारा पारेजल कूजत्	८७	पुत्र्यश्च सविभागार्हं	२५३	पुष्पावचयससक्त	५०१
पारावतभवे चाप्यधर्मम्	४६१	पुत्र्या मेह गतस्याङ्ग-	४७०	पुष्पोपहारिभूभागा-	३७५
पारिव्रज्य परिश्राजो	२८३	पुन प्रिया जय प्राह	४६२	पुष्फुक् स्फुरदस्त्रीषा	२०१
पाथिवस्यैव राष्ट्रस्य	६५	पुनरध्यास्य हृज्जन्म	३७६	पुजाराधास्यया रयाता	२७३
पाथिवान् प्रणतान् यूयम्	२६३	पुनरेकाविन सिंह-	३२२	पूर्वं वननिवेशे तौ	४५८
पाथिवदंष्ट्रनीयाश्च	२८१	पुनविवाहमस्कार	२७४	पूर्वं विहितसन्धाना	३६८
पालयेदनु रूपेण दण्डेनेव	३४३	पुनस्तत्रागता दृष्ट्वा	४६७	पूर्वमेव समालोच्य	३८६
पालयेद्य इम धर्मम्	२६३	पुनातीय हिमाद्रिं च	१८	पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे	११५
पिताह भवदेवस्य	४६१	पुर पादातमश्वीयम्	६	पूर्वोक्तपिडगलारयस्य	४७७
पितु पदमधिष्ठाय	३५६	पुर प्रतस्ये दण्डेन	६२	पृथक् पृथक् प्रदायाति	४३६
पितुस्त्वयमुदियार्थं	२७७	पुर प्रधाविनें प्रेङ्ग-	२८	पृथक् पृथगिमे शब्दा	२६२
पित्रो पुरीं प्रवृत्तं मन्	४५४	पुर प्रयातमश्वीयं	८१	पृथुधीस्तमवष्टभ्य	४७४
पिनङ्गतोरगामुच्चं	६७	पुरगोपुरमुल्लङ्घ्य	१७५	पृथ्वशस्तट तुङ्ग-	१७६
पीठिकाग्रं एष स्यात्	२६३	पुरवां मोक्षभागस्य	४२६	पोषयत्यतियत्नेन	३४५
पीन पुरा गम्यता सलिन	७७	पुरश्चत्येह तामेताम्	४३०	पोषयन्ति महीपाला-	१८६
पीन वनानि पूर्वम्	७४	पुरतोपेक्षता पूर्व-	३५६	पीरा प्रवृत्तिमुस्यारथ	२६२
पीपाञ्चुराशुदण्डि	७६	पुरम्भगमात्रेण	३८६	पीरैर्जनेनैव त्वेषु	३२४
पीपाञ्चुरा मदागारं	७६	पुरम्भरेषु निरुणे-	२६५	प्राममपुरानित्यम्	२२५
पीपाञ्चुरा धर्मोपयुक्तम्	३१६	पुराष्टगाभिरेन्मुक्ता	६	प्रतीगंक्षपलङ्गीचि-	१३१
पीपाञ्चुरा ध्यायामितान-	७७	पुराग तस्य मे वृत्ति	३५७	प्रवृत्तिर्येन रूपेण	३३७
पीपाञ्चुरा नरुणोत्सङ्ग-	१७५	पुराग धर्मसाग्रं च	२७१	प्रवृष्टो यो गुणैरेभि	२७०
पुमा सगरांसात्रेण	३६७	पुराग मार्गमागच्छ	३५५	प्रधानिनव सञ्जात्राण्	४३२
पुमा स्त्रीणां च शक्ति-	३२३	पुरागप्याय सगिर्दि-	३५५	प्रक्षेपितरथ विरथम्	१०४
पुमी हनचना दण्डम्	६७०	पुरागे प्रीतिपदायै	३४२	प्रणमस्यामोपानाम्	११२
पुम्भैः कथयन्तान्	२१	पुराद् एव समागच्छ	६३७	प्रणामात्प्रियावाह्या	३६८
पुम्भैः कथयन्तान्	२१६	पुरपापंयथ पुम्भि-	३६०	प्रक्षपातव्य विष्यम्	८
पुम्भैः कथयन्तान्	२६	पुरागव्यगम्यन्तान्	६०४	प्रक्षयदण्डिन्यां-	१७६

प्रचण्डदण्डवैशाख्यो	२३५	प्रत्यानलामनो तत्र	३०	प्रवालत्रयुष्मादे	२४१
प्रचण्डा वज्रनुषडाभ्या	२३४	प्रत्यावानमहावान-	४१६	प्रविभन्नत्रयुदास्मि	११७
प्रचलद्वलसशोभाद्	८१	प्रत्येदेव प्रपथ्यन्मीम्	४८०	प्रविद्मन्निश्च निर्वेद्मि	३१
प्रचेतुं सर्वमामप्रुया	१०४	प्रत्येय श्रेष्ठिना प्रोक्त	४६६	प्रवित्तम भवन कान्वा	४८७
प्रजा वरभरात्रान्ला	६४	प्रथम नन्यजाताय नम	२६५	प्रविष्टमात्र एवास्मिन्	१०८
प्रजाना पालनार्थं च	२६४	प्रथम नन्यजाताय स्वाहा	२६६	प्रवीरा राजवृध्वान	१०३
प्रजाना सदसद्वृत्तचिन्तनं	३०६	प्रथमोऽप्य परिशेषो	१४५	प्रवृत्तेय हृति कृत्वा	३५४
प्रजानुपालन प्रोक्तम्	३४८	प्रदानास्त्वमस्येष्टम्	३१०	प्रवृद्धनिजचेतोमि	३५८
प्रजापति सर्वमन्वो	३५७	प्रदाय परिवार च	४८१	प्रवृद्धप्रावृडास्मन्-	४१०
प्रजापालननुजाभ्याम्	४५३	प्रदीप स्वकुलभ्यायम्	३८०	प्रवृद्धवयो रेजु	६
प्रजामामान्यनैवेपाम्	३४६	प्रदुष्टान् भोगिन वान्निन्	६३	प्रवेद्य पापरी राजसमीपम्	६७४
प्रजा परिपह प्राज्ञो	२११	प्रद्विपन् परपापणी	३३०	प्रवेष्टुमाजिनीपथ-	७४
प्रज्वलन् जयन् वा	४०४	प्रदूयता प्रभूतानाम्	३०२	प्रवृत्त बहूनि सादंम्	४४३
प्रणानानुजग्राह	६५	प्रपतजानिचे रौघस्य-	७३	प्रगन्तियिनरात्र-	२८३
प्रणमद्वरणावेत्य	१७७	प्रपु-नवनमाभोक्त्वा	१३८	प्रगालनी समुत्पन्न-	२६५
प्रणम्य वनपात्राय	४८०	प्रवृद्धप्रथमोभ्यास्वा	२०८	प्रगालनमग्रा गाला	१४६
प्रणम्य वनपात्राय	४८०	प्रवीजवृत्तग्रादास्यम्	६८	प्रगन्त्यात्रगगान् प्रसन्नम्	१६३
प्रणय प्रथयस्वेति	१८०	प्रथमचरण किञ्चिद्	३६३	प्रमप्रमभवतोयम्	१
प्रणय प्रथयस्वेति	१८२	प्रभातमध्वोद्गानुप्रवृद्ध-	३०६	प्रमप्रया दुर्भावाम्	६६
प्रणुपाय मनोवृत्तिम्	२५६	प्रभावती च तन्मात्रा	४६५	प्रमप्रवदनेन्द्रवदाह्लादि-	४३६
प्रणुपत्य विधानेन	१५६	प्रभावतीचरी देवी	६६६	प्रमप्रमनिना रेजु	२
प्रणापी भुवनस्यैवम्	७	प्रभावतीति मम्महृष	४८७	प्रमह च तयामुत्तान्	३६५
प्रतिकक्ष मुरन्त्रीणा	३१८	प्रभावत्या च पृष्टोऽग्नी	६६१	प्रमह च तमगा म्दो	१८६
प्रतिवेतनमुद्वद्ध-	४६०	प्रभा ममजयतत्र	६४	प्रमह च धानयन् भूमौ	२०७
प्रतिग्रहापरासदि-	३८	प्रभुगुणानुमनश्चापिम्	१०५	प्रमादा विविगास्मन्न	१३६
प्रतिध्वनिदिग्मित-	३६२	प्रभोरवमर मायं	१०३	प्रमादिपदिगो यम्य	१०६
प्रतिध्वन्तानि पापानि	४२५	प्रभोरिवागमानुष्टा-	६७	प्रमाधिपानि दुर्गाणि	११६
प्रतिप्रयागुमस्येत्य	६५	प्रमतादिगुणान्यान-	५०५	प्रमाध्य दक्षिणामाशाम्	८४
प्रतिप्रयागुमानघ्रा-	१२८	प्रमदारव्य वन प्राय्य	६८०	प्रमारिनगरिग्निज्ञो	८७
प्रतिप्रयागुमि-यस्य	६२	प्रमाणानलभावेभ्यो	४४४	प्रयुज्वलन् त तत्र	४८६
प्रतिषोद्धमशक्तान्तम्	३५	प्रमाद्यन् द्विरद वद्विद्	७५	प्रयाननेयो यन्नीर-	७
प्रतिराष्ट्रमुपासीत-	३६	प्रमेय च परिच्छिन्न-	३३८	प्रयुक्त्वाप्रमप्रधान-	४०७
प्रतिवादनमुद्गत-	४०६	प्रमोदान् मुप्रनादेशान्	३७६	प्रयुक्त्वादि पत्नीपै	६००
प्रतिध्वानिपतेन	१५६	प्रयन्तेनाभिर्दस ग्याद्	३०१	प्रयुक्त्वादिगो दुष्ट-	१६३
प्रतीची येन जायेऽम्	४१४	प्रययौ निरपास्मोधिन्	६०	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रतीच्यापि सुगन्धदो	४१८	प्रयागनेरीति स्थान	६०	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रतीपयुक्तय कामम्	१७०	प्रयान घावतापेग-	२८	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रतीपयुक्तिसादं	६३	प्रयान्तमनुजामुत्त	१३०	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रतीपायान्तेरे दिष्टन्	४१६	प्रयायानुवन् किञ्चिद्	६६	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रयथो सुगन्धमात्रम्	१५६	प्रयुक्तानुनय भूया	२०६	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रयथममरारत्न-	२०१	प्रयुक्तानुनय भूया	२०६	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रयथा विगन्तियोगुहाल	७८	प्रयुक्तानुनय भूया	२०६	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६
प्रयतोऽवृत्तानेव-	१८६	प्रयुक्तानुनय भूया	२०६	प्रयुक्त्वादि न मोदस्य	२८६

वृत यूय महाप्रज्ञा	२६६	भाति तस्या पुरो भागो	३६६	भोगेष्वप्युत्सुक् प्रायो	२०७
ब्रूयाच्च नेमितायाय स्वाहा	२६७	भाति य शिखरंस्तुङ्गो	६८	भोगोपभोगसोम्योर-	३७२
ब्रूहि तत्राप्राप्तोपायमिति	४८५	भार्या नागरदत्तस्य	४६५	नोगोऽय भोगिनो भोगो	४४३
भ		भावनव्यन्तरज्योति	१४०	भोगेष्वप्येध्वनौत्सुक्य-	३३६
भक्त्या प्रणमतस्तस्य	३१६	भावयन्ती मृताऽजेयम्	४३६	भ्रमत्येकाकिनी लोकम्	१०६
नक्त्यापिना क्षजम्	१४६	भाम्बलभाप्रमरशप्रतिगुद्ध-	३८४	भ्रमद्यन्तनुटीयन्त-	१७५
भक्षाश्चाभूतगर्भाण्या	२३६	भास्वनमूर्धप्रभ तस्य	२३८	भ्रानरोऽभी तवाजय्या-	१५४
भक्ष्यमाणान् कपोताद्यै	४५६	भिक्षा नियतवलायाम्	१६८	भ्रातृभाण्डकृतानमप-	१५६
भगवत्स्वङ्गुशुभतोत्रान्	१४६	भियजेव करे स्पृष्ट्वा	१६०	भ्रक्षेपयन्त्रपाधानो	२२५
भगवद्दिव्यवागर्थ-	३२०	भिक्षी युक्ती गृहुन्वथी	३६५	भ्रूमद्रोने विना भद्रम्	२०३
भगवानभिनिष्काल	२६६	भीकृग विटकराकाग	४१०	म	
भङ्गिना किमु राज्येन	१६१	भीतमीना युधोऽज्यैश्च	४०६	मरिग मत्वा प्रविद्यान्तर्नपु	४५१
नद्रगुर मद्रगम सर्वोपि	४६०	भुक्तमान्मभगित्वेन	४३३	मरिगकृष्टवभारेण	३७५
नटा हस्त्युरम भेजु	२०१	भुक्तो भोगा दनाऽगोर्ष	८६६	मरिगोष्टे मनाम्वाप्य	४३८
नटैर्नानुटिर्ष केचिद्	१०८	भुक्त्वापि मुचिर बालम्	१६१	मरिगमुक्तापत्रप्रोत-	४३५
नरतनिजयलदमी-	२१६	भुजद्वयप्रदानैरिद वारिगामे	५४	मरिगं जेनमध्येऽग्नि	८५२
नरतस्यादिगजस्य	१०८	भुजज्यादयोऽभ्येषु	६१६	मरिगश्चूडामगिनाम	२३५
नरतेन समभ्यर्च्य	७०४	भुजापरोधमुद्मय	२०५	मष्टलाभ्रममृत्कृष्ट-	४०४
नरतेन विद्यात्रापि	२०५	भुज्यते य न भोग-भ्याद्	४४३	मन मसाग्नि दृष्टान्त	३३८
नरतो भारत वपं	२४०	भुनक्तु नृपभार्द्वो	१६१	मतिज्ञानममृत्तपान्	२१३
नरतोऽभिरतो धर्म	३०७	भूनाप्यंस्वस्तु तत्तत्तम्	४५६	मतिर्म वेवत मूनं	३५४
नर्तुभार्याभिमन्त्रयम्	८६१	भूत्वा युवविमानेऽग्नौ	४७७	मनिश्रुतिभ्या निरूपयम्	२१३
भवतु सुहृदा मृत्यो शोक	५१०	भूपोऽप्यनुवर्गस्य	१७३	मगद्गवाग्निद्वारागमि-	३८७
भवन्नुनाचलस्योभौ	३८६	भूपोऽप्येव बली कश्चित्	३४७	मवा नीवा द्विज	४८३
भयदेवचरेणानुद्वैरेण	४५८	भूपोऽप्येनमुपागमम्	३४५	मत्वाऽग्नौ गत्वरी नदमीम्	१२६
भवदवेन निर्दग्धम्	४५७	भूभृता णिमुनुद्गम्	८७	मवेति तनुमाह्वरम्	३४१
भवद्भिर्भाविनेश्वर्यम्	६३४	भूमिर्देनिष्टर क्षिप्ता	८०१	मदनमरणापानौ	२३१
भववन्धनमुक्तस्य	२८८	भूय परमराज्यादि-	३०४	मदानानमल्लज डति	४७६
भवेच्च न तप तपो	३३७	भूय प्रोक्ताहितो देव	१२७	मदयतिमिवावद्ध-	८७
भवेत्त्वमंभवावेनाद्	३३८	भूयस्तदलमालप्य	१८५	मदीयराज्यमाशान्त-	१७६
भवेदप्यत्र कामस्य	३७३	भूयो द्रष्टव्यमत्राम्नि	१०१	मद्गुहाऽगगच्छेदीयम्	३१
भवेद् देवादिपि स्वामिन्य-	४२६	भूयोऽपि मयवश्यामि	२८०	मद्दृष्टपृथ्वंजगामि	८७१
भवेद्युस्तत्प्रीया	२०६	भूयो भूय प्रणम्येयम्	३२२	मद्दयना कुमुदाग्दान-	३८७
भवेऽग्निमग्नेव भव्योऽयम्	३६०	भ्रूरागवन्तदाभ्वीय-	२०२	मपु द्विगुणितम्बाहु-	४१५
भव्यस्यापि भवोऽनयद्	५१२	भृष्टगीगृष्टगीतममूर्च्छन्	१३८	मधुमामर्षिवाग	२५०
भव्यात्मा ममवाप्य जातिमु-	२८६	भेजे पङ्क्तुजानिष्टान्	२०८	मधो मनुमदारकावोचनाम्	२३१
भागी भवपद ज्ञेयम्	३०८	भेद न चमवर्तीति	४८१	मध्यम्यवृत्तिरेव य	३४८
भागी भवपद वाच्यम्	३०४	भेदे प्रस्थानगमित्यो	१३१	मध्यम्योऽपि तदा तीव्रम्	२७
भागीभवपदान्तरव	३०४	भो भो मुधागता युयम्	२५८	मध्यं चक्षुर्धीरागया	२०६
भाग्यभवपदेनान्ते	३०७	भोक्तृनाय तभीगाह्यम्	३७६	मध्यं तस्य मद्रुद्र-	४३५
भाग्यभवपदोतेन	३०२	भोगव्रजान्नादवम्	२५०	मध्यं मरानुर्वानपु	३८६
भाजन भाग्यमूर्धमदन-	८६६	भागान्मुष्णागिगद्वर्ष	४८३	मध्यं मनीभूता मेषाम्	२०६
		भोगिनो भोगवद् भोगा-	४६३	मध्यं मन्मद्वयस्य	११७

प्रागुक्तव रवालेश	४६१	प्रियदुहितरमेना नाथ-	३८५	यलादशनिधेगेन	४८१
प्रागुक्तवर्णन चास्य	२३६	प्रियसेन समहूय	४४६	यलादुद्धरणीयो हि	१५३
प्राग्दिड्मुखस्तृतीयेन	५०७	प्रियोद्भव प्रसूतायाम्	२४६	यलानि प्रविभक्तानि	२००
प्राग्देहाकारमूर्तिवम्	३४०	प्रियोद्भवे च मन्त्रोऽयम्	३०४	यलान्तभद्रो नर्दा च	३५७
प्राग्वाणितमथानन्दम्	३०५	प्रीताश्चाभिष्टुवन्त्येनम्	२६२	यलिनामपि सन्त्येव	४८
प्राड्मुक्त सर्वनोभद्रम्	३७१	प्रीतिमप्रीतिमावेधम्	३६०	यलिनोर्धुवयोर्मध्ये -	३८२
प्राची दिशमथो जतुम्	३३	प्रेम न कृत्रिम नैतत्	४१५	यलं प्रसह्य निर्भुक्ता	८१
प्राच्यानाजलधेरभाच्य-	६५	प्रेयसीय तवैवास्तु	२०८	यलोत्पर्षपरीक्षेयम्	२०३
प्राच्यानिव स भूपालान्	६२	प्रेयिता काञ्चना नाम	५०१	यलोत्पभुक्तानि शेष-	६०
प्राणा इव वनादस्माद्	२३	प्रोक्ता पूजाहंतामिग्या	२४२	यालीता स्फोटितैश्चित्रै	२०५
प्रातरुत्थाय धर्मस्यै	३२६	प्रोक्तास्त्विन्द्रोपपादा	२५८	वह्योऽप्यस्य लम्भा	४८१
प्रातरुच्यन्तमुद्भूत-	३२६	प्रोक्तोपेक्षादिभेदेषु	५०५	वहि कलवल श्रुत्वा	११८
प्रातरन्मीलितार्क्ष सन्	३२६	प्रोक्तातासिलता विद्युत्	४०७	वहि पुरमभासाद्य	१७४
प्रातस्तरामयानीय	३४६			वहि समुद्रमुद्रिक्तम्	३७
प्रातस्तरामयोत्थाय	१६४			वहिरन्तर्मत्नापायाद्	३४०
प्रातिकूल्य तवास्मासु	४२६	फणमानोदगता रन्धात्	२१६	वह्निर्वेशमित्यादीन्	३०
प्रातिहार्यमयी भूति	१४५	फलानतान् स्तम्भकरोन्	१२	वह्निर्मण्डलेवासीन्	१५४
प्रातिहार्यमयी भूति	३३४	फलाय त्वद्गता भक्ति	१४२	वह्निर्न ततो द्वित्रै	२४७
प्रातिहार्याष्टक दिव्यम्	२६७	फलेन योजितास्तीक्ष्णा	८१	वह्निर्विभूतिरित्युच्चै	१४६
प्रातिहार्याष्टकोद्दिष्ट-	५०४	फेनोमिहिमसन्ध्याभ्र-	१६५	वह्निस्तटवनादेतत्	२३
प्रादात् प्रागेव सर्वस्वम्	४३४			वहुनापि न दत्तेन	३४४
प्रादुर्भवति नि शेष-	२६६	व		बहुवाणसासनाकीर्णम्	२५
प्राध्वकृत्य गले रत्न-	३८३	वद्धभृष्टिरदभ्रान्त-	२०५	वह्निपायमिद राज्यम्	३४१
प्राप्ते ततोऽह्मागत्य	४६४	वद्धवेरो निहन्ता भू	४७६	वाध्यत्व ताडनानिष्टवचन-	३३८
प्राप्ते स्वर्गादिहागत्य	४६८	वद्वाय च तूणाद्यस्मै	३५३	वाल समर्पयामास	४६६
प्रापयुद्धोत्सुव सादंम-	४०७	वन्ध सर्वोऽपि सम्बन्धो	४६३	वालानिव छादादस्मान्	१८२
प्रापिनोऽप्यमहृद्दुःखम्	४६३	वन्धव स्युर्नृपा सर्वे	३६६	वालास्ते बालभावेन	१५७
प्राप्तानीन्द्रियसोन्दर्यो	३३७	वन्धश्चतुर्विधो ज्ञेय	५०५	वाल्य एव ततोऽभ्यस्येत्	३१२
प्राप्तोऽर्च्यं तदस्य स्वान्	२८७	वन्धुजीवेषु विन्यस्त-	४	वाल्यात् प्रभृति या विद्या	३१२
प्राप्तोपघट्टैरम्यासीत्	२१४	वन्धुभृत्यक्षयाद् भूय	३६०	वाहृतस्या जितानदगपाशो	२२६
प्राप्य मयमरूपेण	६६८	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	विभति य पुमान् प्राणान्	४७
प्राभानानन शोर्टानाम्	४१८	वन्धुर्बन्धुक्षयाद् भूय	३६०	विभति हिमवानेनाम्	१६
प्रापदिचतविधाभज	२७६	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	विभ्यता जननिर्वादाद्	१५८
प्रायो व्याग्यान एवास्य	१७३	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुद्धिगास्त्व तवाहार्यं	४१०
प्राविणद् यदुभि सार्धम्	४३८	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुद्धिसागरनाभास्य	२३५
प्राजनेऽपि तथा मन्त्रम्	३०७	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुद्धिर्धव यद्वपत्यद्रवा	४०८
प्रागमत् गा शयोऽन्नाद्द्र	५०२	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	ब्रह्मचर्यं त्र धर्मस्य	२१४
प्रागान् प्रपुनन्तीः गान्	४०२	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	ब्रह्मचारी गृहस्थदव	२८३
प्रादुर्भुजसुत श्रेष्ठम्	२३५	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	ब्रह्मगोऽत्यमित्येवम्	२८१
प्रादुर्भुजसुतानान्	२१२	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	ब्रह्मगणा व्रतगस्वागात्	२४३
प्रियदत्तापि न गत्या धन्विता	४६६	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुधन् ग वरपना दुष्टमिति	४०६
प्रियदत्ता हृद्या तस्या	६६६	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुधाणानिति साक्षेपम्	१६१
प्रियदत्तोऽपि न गत्या धन्विता	४६६	वन्धुर्वैरिन्द्रगोपश्री-	३	बुधाणोरिति सद्ग्राम-	१८६

ब्रह्म यय महाप्रजा	२६६	मानि तस्या पुरो भागो	३६६	भोगेष्वप्युक्त प्रायो	२०७
ब्रूयाच्च नेमिनाथाय स्वाहा	२६७	मानि य शिवरंभुटुर्ग	६६	भोगोभोगभोगोभो-	३०२
ब्रूहि तन्प्रापशोवापमिति	४६५	नापो सागररदनस्य	६६५	भोगोऽथ भोगिनो भोगो	४४३
म		भावतव्यत्नराजोति	१४०	भोगेष्वप्येष्वती मुक्त्वा-	३३६
मक्त्या प्रणमनतनस्य	३१६	भावयन्ती मृताज्येदम्	४३६	अमप्येकाकिनी भोगम्	१०६
मक्त्यापिता अजम्	१६६	भाक्त्वाप्रनाप्रगरुदतिष्टुद्ध-	३६६	अमदन्वकुटीमन्त्र-	१७५
मक्षारचामृतगर्भाभ्या	२३६	मान्वत्तुम्यंरत तस्य	२३६	आनरोज्जो तवाज्यथा-	१५४
मध्यमाणान् कषोत्तायी	४५६	निष्ठा नियतवेदायाम्	१६६	आनृभाष्टट्टनामर्ष-	१५६
मगयन्त्रद्रुगणान्नोत्रान्	१४६	निपजेव करं मृष्ट्वा	१६०	अक्षेपयन्त्रपापार्ण	२०५
मगवद्दिन्यवागर्थ-	३२०	निद्रो युक्तो मृत्नाती	३६५	अमदन्तेन दिना मन्त्र	२०३
मगवानिमितिप्रान्त	२६६	मीकरा चिटकरावाग	६१०	म	
मद्विगना विमु राज्येन	१६१	मीतमीता युषोऽयैश्च	४०६	मणि म वा प्रविश्यान्तपु	५४१
मदगुर मद्रयम भवोऽपि	६६०	मुत्तमायममग्निवेत	६३३	मणिक्वृत्तनागरेण	३७५
मटा हन्त्युगम भंज	२०१	मुक्तो भोगो दगाटगोर्ग	६६६	मणिराट समास्थाय	४३६
मटंतीकुटिर्क वेजिद्	१०६	मुक्त्वापि मुचिर्ग वातम्	१६१	मणिमुक्त्वात्तप्रोत्त-	४३५
भरतविनयनरुमी-	२१६	मुजटगप्रधानंरिद वागिगमे	४६	मणिर्न ज्ञतमध्यस्मि	६५२
भरतस्यादिराजस्य	१०६	मुज्जनादद्याज्येयु	६१६	मणिष्कृन्मणिगतंम	२३५
भरतेन ममस्यर्च्य	४०६	मुजापगोरनुदुदुप	२०५	माटलाप्रममु मृष्ट-	६०४
भरतेना विनायापि	२०५	मुग्दने य न भोगस्याद्	६६३	मत मनाग्नि दृष्टान्त	३३६
भग्नेो भारत वर्ण	२००	मुनश्चु नृपनाईतो	१६१	मनिज्ञानसमुत्तपान्	२७३
भग्नेोऽग्निगो धर्म	३०५	भूनाथंस्वस्तु तन्मर्वम्	४४६	मनिर्मे कवन कृते	३५६
भर्तृभावांनिद्रुम्बन्धम्	६६१	भूया सुयविमावेजो	४७७	मनिधृतिभ्या निशेषम्	२७३
भवतु मृदा मृत्यो गोत्र	५१०	भूपाऽयत्नतयैर्यस्य	१७३	मन्त्रद्रुवाग्निवागग्नि-	३६७
भवन्तु तानतन्मोनी	३६६	भूषोऽयैव वती कश्चित्	३६७	म वा नीना द्विज	६६३
भवदेवचरेगानुदुधैरेण	४५६	भूषोऽयैवमुपासप्रम्	३४५	मवाजो गवर्गा लक्ष्मीम्	१०६
भवदेवेन निर्दोषम्	४५७	भूना पतिमुनुदाम्	६७	मन्त्रि तनुसाताम्	३६१
भवद्भिर्नाोविनेश्चयेम्	४३६	भूमिर्दृष्टिपु क्षिप्ता	४०१	मदनगदन्तानाती	२३१
भवदन्त्रनमुक्त्वाय	२६६	भूय परमराज्यादि-	३०४	मदनानतमन्त्रे इति	६७६
भवेच्च न तप वामो	३३७	भूय प्रोनाहितो देवै	१२७	मदभृतिनिवाचद-	६७
भवेत्त्वर्मनावेगाद्	३३६	भूपनदतमानस्य	१६५	मदीयराज्यमात्रान-	१३६
भवेद्गयत्र वामस्य	३७३	भूया दृष्टव्यमनात्	१०१	मद्गृहाष्टवैशेषम्	३१
भवेद् देवादिपि स्वामित्य-	४०६	भूयोऽपि मप्रवश्यामि	२६०	मद्गृष्टुपुवंद्रमाति	६७१
भवेयुग्मन्त्रदोषा	२०६	भूयो भूय प्रणम्येदम्	३०३	मद्वया कुन्मामान-	३६७
भवेऽस्मिन्नेव नज्योऽयम्	३६०	भूयंगदमन्त्रावोय-	२००	मनु द्विगिगतम्बाहु-	६१५
भव्यस्यापि भवोऽभवद्	५१०	भूहोमदृशीतममूचद्रु	१३६	मधुनामग्निवाग	२५०
भव्याना ममवाप्य ज्ञानिमु-	२६६	भेजे षड्द्रुनुदानिष्टान्	२०६	मयो मयुमागतनोचलाम्	२३१
भागो भवपद भेयम्	३०६	भेद म चक्रवर्तीनि	४६१	मध्यव्यवृत्तिरेव य	३४६
भागोभवपद वाच्यम्	३०४	भेदे प्रम्यानागिन्यो	१३१	मध्यम्योऽपि तदा नीरुम्	२७
भागोभवपदराजस्य	३०४	भो भो म्याना युयम्	२५६	मध्यं पशुर्धोराशया	२०३
भागोभवपदेनाने	३०७	भोक्तुम्य नमोऽष्टान्	३७६	मध्यं तस्य म्द्रुजन-	६५
भागोभवपदोनेन	३०७	भोक्तुम्य नमोऽष्टान्	२५०	मध्यं महाकृतीनेपु	३६६
भाजन भरतगम्युंमदन-	४४६	भोक्तुम्य नमोऽष्टान्	६६३	मध्यं मरीचुता नेपम्	२०६
		भादिना भोगद् भोग-	६६३	मध्यं मन्त्रयथाय	११७

मुक्त्वन्तु न तथा विन्तु	३३५	मेघम्बरो भीमभुज-	३७०	यथा त्रिनाम्बिका पुत्र-	३०६
मुक्त्वात्मना भवेद् भाव	३३६	मेघान्धकारितानोप-	१६४	यथा तथा नरेन्द्रोऽपि	३४३
मुक्त्वापत्नाच्छमापाय-	१६०	मेघा मत्त्वत्रयोपेता	२७	यथा तव हृत् चेत	१६१
मुक्तेनरान्तोर्व्यक्त्यै	३३७	मेघुनस्य च सम्मूलन	४६७	यथा दृष्टमुपन्यस्ये	३१६
मुक्त्वा कुम्भाम्भ्येत्य	४६२	मेघुनाय नृप वृध्वा	४७३	यथाश्वनमसो हूरानस्यम्	१४४
मुग्य रतिमुवापार-	२२४	मेघोशो गृण्यमयो नियो	३६१	यथाश्वनमुपयुक्त मन्	३०१
मुक्त्वमुदग्म् तनूदयां	२२६	मेघोहास्य समुच्छिद्य	४६६	यथास्यदग्निज्ञान-	१४७
मुखरंजयकारेण	११०	मेघोनाध्ययन्यत्तत्वम्	२४४	यथास्यवरमध्यञ्च	४८
मुखेन चन्द्रकान्तिन	१७६	मेघापयन् स्वाद्रगोन्द्यम्	२८५	यथावदभिषिक्तस्य	२६१
मुखेन पदत्रजच्छापाम्	१७६	मेघच्छेषणमवपण्डान	१०८	यथाविनवमत्रापि-	२४८
मुखरंनिष्टवाग्बुद्धि-	१७७	मेघेच्छराजमहृशाणि	२०७	यथाविनवमत्रेषुम्	२४७
मुच्यमाना गुहा मैत्र्यै	१०६	मेघेच्छराजादिभिर्दन्ता	२२३	यथा विपयमेवैषाम्	१८१
मुदा निष्पादयामास	३७०	मेघेच्छराजान् विनिजि य	४३०	यथाऽन्मन्यिन्दनेन	२५०
मुद्गराद्यभिधानेन	३३८	मेघेच्छाचारो हि हिंसायाम्	३६६	यथाम्ब मविनग्यामी	२२०
मुनयोऽपि समानारवेत्	१८३	मेघेच्छाननिच्छताऽप्यज्ञान्	१७८	यथाम्बानुगमहन्ति	२५३
मुनि रतिवर प्राप्य	४६७	य		यथा हि कुपुत्रागाम्	३३३
मुनि हिरण्यवर्माणम्	४६८	य नत्वा पुनरामनन्ति न पर	२३६	यथेष्ट मप्रियो विद्यावाहन	५००
मुनि पृथक्प्रदेनस्याम्	४६८	य तोऽप्यकारणद्वेषी	१५०	यथेष्ट वधनाम्कन	३३
मुनिन्या दत्तदानेन	६५६	य पूर्वापरकोटिभ्याम्	८८	यथैव खनु गासार	३६५
मुनिमन्त्रोऽयमाप्तो	२६६	य ममर्षगुणैरेभि	३४०	यथैव खनु गोसारो	३४४
मुनिमन्त्रेण ध्रुवा	४६६	य म्नु यो जगता प्रपन्न	२३८	यथैव गोत्र मत्रानम्	३४५
मुनीन्द्रपाठनिर्षोषं	१३५	यथीभूता तदाग य	४६९	यथोक्तविधिर्नैता स्यु	२६७
मुसलस्थूलधारानि	१६६	यच्च दण्डकपाटादि-	२६७	यथा तिन विनिर्वाति	३०४
मुहु प्रचलदुर्ध्वेल-	३६	यज्ञोपवीनमस्य स्यान्	२७८	यथादाय भवेज्जग्मी	४६०
मुक् श्रेयपुरे जात	४६१	यन्निमापाय नोत्तारे	२५६	यथाय त्यक्तवाश्रयान्	२६६
मुच्छिन्न प्रेममदुनावान्	६३७	यतोऽन्तरहृत् गत्रम्	३४६	यदि देशादिमात्रस्ये	४६५
मूर्त्यादिष्वपि नैतव्या	२८५	यथा निरोपमाहार	२५६	यदि धर्मरक्षादियम्	४६४
मूर्धामिषिकं प्राण-	२०१	यतोऽत्र तपसम्बारे	२८०	यदिष्ट तदनष्ट स्याद्	४४०
मूर्ध्नि पद्य ह्योऽस्याम्नि	१०३	यतो यतो वन जिष्णो	६६	यदि स्यान् सर्वमग्राध्यां	३८६
मूलस्त्रयाधमध्येषु	३७२	यतोऽप्य दृष्टकृतानाम्	६०	यदीच्छन्मिन् तवे पाह	४८६
मूलीत्तरागुणेष्वान्त-	३००	यतु न मविनागार्थम्	१४६	यदुक्तमादिगजन	१४६
मृगाद्रक्तस्य वदद्रकोऽयम्	३६८	यत्पुरस्वरग दीक्षा	२५३	यदुक्ता मूत्रवर्षायाम्	२०८
मृगं प्रविष्टवेदान्तं	१३५	यत्प्रष्टुमिष्टमन्मानि	३५७	यदेव मन्मन्गार-	२७८
मृगं गैरिवापानमात्रनर्त्त	४०८	यत्र शास्त्राणि मिथ्याणि	१६१	यदिष्टमन्निविन्देन	१६६
मृगानैरद्रगमावेक्ष्य	२६	यत्रोन्मग्नजना निष्पु	११६	यद्वचस्वशास्त्रविष्वाप-	३१७
मृगानैरधिदन्ताग्रम्	७५	यन्मशागिगमा मानम्	३३८	यद्वच प्रतियु क्तानिन्	३४५
मृदवस्मन्तव स्निग्धा	३६६	यथा कात्रायमाविद्धम्	३१६	यद्वच मिश्रमचदि	४०७
मृप्यता च तदस्मानि	२०६	यथा प्रममनो वृम	२७०	यथाभ्या भग्नवाति रमयमन्	२३८
मेघमया तुनीनस्याम्	१४०	यथा खन्वति गोपात्र	३४६	यथाऽन्मिन्पिदिष्टायाम्	३७०
मेघमया द्वितीयस्याम्	३१६	यथाऽप्यानवशाप्यार-	४६६	यत् करिनिगण्टम्	७५
मेघप्रनदच चन्द्रागिन्ना-	३६५	यथा गारावशो मीनम्	३४६	यत्तानेव दन्तवै	२८
मेघप्रममुत्रे वादि	४०८	यथा च गोश्च गोमिग्यापान	३४७	यत्तान् नृपान्द्वन्द्वम्	२०४
मेघप्रनो जवादेयाद्	४१०	यथा च गोसा गापुपन्	३६६	यत्तान् मन्मन्ग्या	४६४

यशपालमहीपाल-	४६५	ये विशुद्धतरा वृत्तिम्	२८२	रणभूमिं समालोक्य	४२१
यशस्यमिदमेवार्थ-	१५८	ये केचिच्चाक्षररत्नेच्छा	३४६	रतानुवर्तनैर्गाढ-	१६३
यशस्वतीसुनन्दाभ्याम्	५०६	ये तस्यास्तनुनिर्माणे	३६६	स्तावसाने नि शक्यो	४३३
यशोधनमसाहार्थ-	१८४	येन प्रकाशिते मुक्ते	३५१	रतिं चारितमप्येव	२१०
यस्त्वतीन्द्रियविज्ञान-	३३६	येनाय प्रहितं पत्नी	४७	रतिं कुलाभिधानस्य	४७७
यस्त्वेता द्विजमतमैरभिमता	२६८	येनाऽसौ चक्रवर्तित्वम्	४८५	रतिपिङ्गलमजस्य	४७०
यस्त्वेतास्तत्त्वतो ज्ञात्वा	२७६	येनास्य सहजा प्रजा	३२६	रते कामाद् विना नेच्छा	४३६
यस्य दिग्विजये मेघकुमार-	३४६	ये ये यथा यथा प्राप्ता	३७४	रत्न स्थपतिरप्यस्य	२३६
यस्य दिग्विजये विष्वग्	१२५	येषामय जितसुर समरे	४२३	रत्न रत्नेषु कर्मव	३८६
यस्य यत्र गता स्याद्दृक्-	३७६	योग समाधिनिर्वाणम्	२५६	रत्नतोरणविन्यासे	३२४
यस्याष्टादशकोट्योऽर्वा-	१२५	योगक्षेमौ जगत्स्थित्यै	६५	रत्नतोरणसङ्कीर्ण-	३७१
यस्योन्मग्नमवो रम्या	१२४	योगजा सिद्धयस्तेषाम्	१६६	रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्यामि	२६४
या कचग्रहपूर्वेण	१६२	योगजाश्चर्द्धयस्तस्य	२१३	रत्नद्वीप जिघृक्षुभ्यो	५०६
या कृता भरतेभ्यो	२१७	योगाश्चर्द्धयस्तस्य	५०५	रत्नमालाप्रतिरोचिष्यु	२३४
यागृह्णन्ति मासस्य	४७३	योगो ध्यान तदर्थो यो	२५६	रत्नानुचिन्तिततल	४३
या च पूजा मुनीन्द्राणाम्	२४२	योऽणुव्रतधरा धीरा	२४०	रत्नाशुच्छरित विभ्रत्	२६१
याचिन्निषेण नास्येष्टा	२११	योऽभूत् पञ्चदशो विभु	५१४	रत्नाशुजटिनास्तस्य	२३४
यायात्स्येन परिज्ञानम्	५०४	योऽत्र श्रेयो विधिर्मुक्त	२६६	रत्नाव रत्त्वगुणैर्गुणै-	३८०
यादोदोषार्थनिर्धानं	४२	यो नाभेस्तनयोऽपि	५१५	रत्नातपनमस्योच्चै-	२१८
यामनात्राविगष्टायाम्	३४५	योऽनुतिष्ठत्यतन्द्रानु	२८८	रत्नानि द्वितयान्यस्य	२२७
या वष्टयमसौ वष्टि-	४४२	यो नेतेव पुषु जघान	५१४	रत्नान्यपि विचित्राणि	६६
यावज्जीव ब्रह्मेष्टेपु	१६५	यो योजनशतोच्छ्रायो	१२४	रत्नान्यपि यथावामम्	२२२
यावदभ्येति सेनानो	१२८	यो वज्रमणिपात्राम	४६०	रत्नान्यमून्यनर्थाणि	५०
यावद् विद्याममानि स्यात्	२५०	योपिता मधुगण्डूपं	३७८	रत्नान्येतानि दिव्यानि	२३६
या मुनेन्द्रपदप्राप्ति	२८८	योपितो निष्कमालाभि	१३	रत्नार्थं पर्षुपासाताम्	१७६
याऽपि दिवोऽजनीर्यस्य	२८८	योपितोऽप्यभटायन्त	३६५	रत्नार्तगिरिं याहि	४८२
युक्त परमपिनिष्पन्न	३१०	योऽस्मिन्चतुर्थवालादो	३५१	रत्नं विमस्ति वा हृत्यम्	१८४
युक्तयानया गुणाधिक्यम्	३१४	योऽयं जीवधनावार-	३३६	रत्नैश्चाभ्यर्च्य रत्नेषाम्	५०
युगभार बर्हेश्वर-	३५२	योवनेन गमात्रान्ताम्	४४६	रत्यप्रतययमाहात्म्यम्	१४१
युगादौ बुभुक्षेन	३६१	योवनोग्मादजस्तेषाम्	१५६	रत्यादिबिमलासाद्धम्	४६१
युगान्तिविष्ववोर्ध्वं	३१७	र		रथकटपा परिदोषो	२००
युद्धात्प्येव विर शेरुर्न-	४०४	रक्त वरं गमादितप्य	४१८	रथचक्रममृषीहात्	४५
युधा तु दावैतो प्राज	१७२	रथाभ्युद्यता येऽत्र	३३१	रथवाही रथानुह	२७
युधाभ्या निरिज्र वाम	१८३	रथावृत्तिपरिशोभम्	१७६	रथवेगानिलोदरतम्	२६
युष्मन्नादात्र एतान्द	४०	रथय देवगहणेण	३३	रथा प्रागिव पर्याप्ता	३६५
युष्मन्नामताम्याम-	१६०	रथय मृष्टधृषिवाऽगोऽपि	३१३	रथाऽगणार्गिण्युष्णै-	४४
युष्मन्नाधि मन कृष्णम्	२४८	रथगिरिचरितं शोभं	४३	रथान्तरागणान्य	४६६
युष्मन्नामगणार्गे मु	२७४	रथ गन्तमो रथ	२०२	रथाद्रव तथा दुष्पणवट-	४२०
युष्मन्तरागणाम्	२६	रथगणार्गिण्युष्णम्	३२७	रथितो रथकटपायु	१०२
युष्मन् एव मृष्टवाह्या	६७	रथगणार्गिण्युष्णम्	७३	रथितो रथकटपायु	२०१
युष्मन्निरन्तरा देव	२७४	रथा विनातपन् गीष्ण-	६७	रथोऽस्मिन्चक्रयो माता	२३६
युष्मन्नेवैव मृष्टवाह्या	६६	रथोऽस्मिन्चक्रयो माता	३७४	रथोऽस्मिन्चक्रयो माता	२६
युष्मन्नेवैव मृष्टवाह्या	११२	रथोऽस्मिन्चक्रयो माता	२०२	रथा मना रथायुं पूर्णं	६५

रथोऽस्याभिमाता भूमिम्	४५	रात्री तलवरो दृष्ट्वा	४७३	तलद्वालयधो लोल-	२४
रथ्या रथ्यारवतघट्टात्	६	राष्ट्राण्यवधयस्तेषाम्	६६	ललाटपट्टमारुह-	१७६
रमणा रमणीयाश्च	१६०	रिपु कुपितभोगीन्द्र-	४०६	ललाटाभोगमेतासाम्	२२४
रम्या तीरतरुच्छाया	८७	रुद्धरोषोवनाधुष्ण-	६६	ललाटे यदि केनापि	४५१
रम्ये शिवद्वजरोधाने	४७६	रुद्ध्वा माल्यवतीतीरवनम्	६८	सवट्टगलवलीप्रायम्	७१
रराज राजराजस्य	१०६	रुपिता वञ्जकिञ्जल्कै	२०	लाटाललाटसमुष्ट-	६१
रराज राजराजोऽपि	२०४	रुढो रागाद्गुरुरिचत्ते	४१५	लावण्यमभ्युधो धुम्	३८०
रवि पयोधरोत्सङ्ग-	१४३	रुपतेजोगुरुस्थान-	२७०	लावण्यादयमभिसारयन्	५५
रविरविरलानश्रुन्	१६४	रेजु सूत्रेषु सम्प्रोक्ता	३२४	लावण्येऽपि न सम्भोग्यम्	४१
रविराशावपूरन-	३२०	रेजुरद्गुल्यस्तस्या	३६४	लास्ये स्तलत्पदन्यासै	८४
रविवीर्यस्तथान्ये च	५०२	रेजुर्वनलता नम्रं	२१६	लिखित साक्षिरो भुक्ति	१२६
रवे किमपराधोऽप्यम्	१८८	रेजे वरतल तस्या	२२६	लेपसाध्येऽपि कायेऽस्मिन्	१५८
रक्षानारज्जुविभ्राजि	३७६	रेजे स तदवस्वोऽपि	२१०	लेभेऽमेघमुरद्भुद वरततो	७६
रसनोत्पाटन हारम्	४७०	रोयस्यायतन देहम्	२११	लोकचूडामणैस्तस्य	३२४
रागद्वेषी समुत्सृज्य	२५६	रोषोभुवोऽप्य तनुशीकर-	५५	लोकपालाय त्वात्मलक्ष्मीम्	४५०
रागादीन् दूरस्तस्वस्त्वा	३५२	रोधोलतालयास्तीमान्	१५	लोकपालोऽपि सम्प्राप्त-	४५०
राजमेहे महानन्दविधापि	४४१	रोधोलताशिखोत्सृष्ट-	११	लोकम्य वृक्षनाथाने	१०५
राजन्यकेन सहृद	३०	रोमराजीमिदानीलाम्	१४	लोकाप्रवासश्चलोक्य-	३४०
राजन् राजन्वती भूयान्	१५५	रोमर् रजोभिराकीर्णम्	८	लोकाप्रवासिने षट्पात्	२६३
राजराजस्तदा भूरि-	४६५	रोप्यदण्डेषु विन्यस्तान्	२६	लोकानन्दिभिरप्रमापरिगतं	५६
राजविद्यापरिजानाद्	३३४			लोत्तरदगावितोलितदृष्टि	५३
राजविद्यादत्तसोऽभू	३२८			लोत्तस्यान्वयंननस्य	४७०
राजवृत्तिमिद विद्धि-	२६४			लोलुपो ननुषायोऽस्माद्	५१०
राजवृत्तिमिमा सम्यक्	२६३			सोलोर्गमिहस्त्वनिर्धूत-	१४
राजसिद्धान्तस्त्वन्नो	३२६			लोहस्वेवोपतप्तस्य	१८१
राजहर्षं वृताध्यासा	३४				
राजहर्षं वृत्तोपास्य-	१५				
राजहर्षस्य सेव्या	१६				
राजा न दाधिदवाजीद्	४५१				
राजाऽपराजितस्तस्मात्	५१०				
राजा राजप्रभो लक्ष्मीवती-	३५६				
राजा वित्त सभाधाय	३४८				
राजा सान्त पुरः श्रेष्ठी	४५३				
राजा सुलोचना चावरोप्य	४३५				
राजोक्तिर्मपि तस्मिन्	१८२				
राजोक्तिस्त्वपि राजेन्द्र-	१०६				
राशाभावसंघेषु शान्तजनता	३२				
राज्य कुलकलत्र च	१५५				
राज्यादिपरिवर्तेषु	३४५				
राज्याभिषेचने भर्तुं	२२१				
राज्ये न मुमत्सेतोऽपि	३४१				
राज्ये मनोभवस्थात्स्मिन्	१६२				
रात्राविन्दुदिवाम्भोजम्	३६७				
		ल			
		लक्ष बलासमासाद्य	५०६		
		लक्ष्मी पुरीमिवायोध्याम्	३७८		
		लक्ष्मी सररवती कीर्ति	३६१		
		लक्ष्मी सा सर्वयोग्याऽभूद्	३७६		
		लक्ष्मीप्रहामविषदा	३३		
		लक्ष्मीवाग्बनितासमागय-	३३०		
		लक्ष्मीवती गृहणोमाम्	४२६		
		लक्ष्मीस्तस्यैक्षितुस्तेन-	३६७		
		लक्ष्म्यान्दोलततामिवोरसि	६४		
		लक्ष्म्यन्नेत्रयोर्विन्द्या	४०६		
		लक्ष्म्यते यदि केनापि	३८६		
		लक्ष्म्याशोवाभिभूत सन्	४८४		
		लक्ष्मे सम्पत्करणे	४१४		
		लतायुवतिमसक्ता	८३		
		लतालयेषु रम्येषु	११		
		लघनन्दवलस्वीर्जं	४१५		
		लघ्यप्रसाद इत्युक्त्वा	४३१		
		लघ्यवर्णस्य तस्येति	२४२		
		लघ्यादेशोऽप्यह हृन्मि	४७२		
		लम्बिनाश्च पुरटारि	३२४		
		लम्बयन्त्युचिता शेषाम्	२७८		
				य	
				वद्यमात्रावधिष्ठाद्वयं	४०३
				वक्षुप्राभाष्यगो देव	१४२
				वक्षप्रमस्या शनाद्वयस्य	२२६
				वक्षत्रवारिजवामिन्या	३८५
				वक्षत्रेण्वमरनारीणाम्	१४५
				वक्षत्रेऽपि गुणव यस्मिन्	४६
				वक्षस्यतेऽप्य ररच	७
				वक्ष्याद्गुणुद्गुणधाम्	६७
				वक्षोभि वायवत्येव	१८३
				वक्ष्यतेतोर्महावीम्याम्	४७०
				वक्ष्यद्रोगाममुप्य क्वपदिव	५७
				वक्ष्यद्रजरमुद्भिद्य	५०६
				वक्ष्यामिषवग्नय वाय्वं.	२२३
				वक्ष्यन्वक्रवानादि-	३६५
				वक्ष्यन्वक्रवानादि-	१०७
				वक्ष्यन्वक्रवानान्त	२१७

वदनोऽस्य मुखाम्भोजाद्	१५२	वयसाधिव इत्येव	१८२	वाराणमविरतावाराम्	८७
यद प्रयाति क पन्था	४८५	वर वनाधिवासोऽपि	१८३	वारणं वसुमवाणस्य	१६
वध विधाय न्यायेन	४०२	वर विष यदेवस्मिन्	२०६	वातपृष्ठदरीभागानृधवत्	६८
वध्नीय न किमिति हन्त-	७६	वरणावरणस्तस्य	६८	वाताघातात्	५४
वन वनगर्जरिद जलनिधे	५६	वराहाररति मुक्त्वा	६८	वात्सक क्षीरसम्पोषाद्	१२
वन विलोकयन् स्वरम्	७४	वरांलामस्ततोऽस्य	२७५	वादिनेव जयेनोच्चं	४००
वनद्विपमदामोद-	७४	वरांलामोऽयमुद्दिष्ट	२७५	वापीकूपतडागंश्च	१७५
वनप्रवेशमुन्मुग्धा	६६	वरान्ति पातिनो नैते	२८१	वाराणसी जितायोध्या	३७४
वनप्रवेशिभित्तिव्यम्	१३५	वरांतमत्व यद्यस्य न	३१२	वाराणसीपतिश्चित्रादगदो	५०६
वनराजद्विधयेनेयम्	१६	वरांतमत्व वराणु	३१२	वाराणसी पुरी तत्र	३६३
वनराजोस्ततामोदा	५	वरांतमानिमान् विद्य	२८१	वारिवारिजकिञ्जल्क-	७३
वनरेणुभिरालनं	२५	वरांतमो महीदेव	२५२	वार्ता विशुद्धवृत्त्या स्यात्	२४२
वनरोमावलीस्तुङ्ग-	८६	वद्धंमानो ध्वनिस्तूर्य	३६५	वासगेहे जयो रात्री	३६०
वनवेदी ततोऽशीत्य	१३६	वर्षारम्भो युगारम्भे	३७	वासन्त्यो विकसन्त्येता	२२
वनवेदीद्वय प्रोच्चं	१४६	वर्षायोगिभरथासन्नं	२६	वासवन्त महार्शलम्	६८
वनवेदीपथा पश्यद्	१३८	वलिस्नपनमित्यन्य	२४२	वाहयन्त तमानोक्य	४०३
वनवेदीभिय धत्ते	१६	वलीना सकुसुमपल्लवाप्र-	७८	विचसन्ति सरोजानि	१६
वनस्यलीस्तरच्छाया	७२	वलीवन ततोऽद्वाशीत्	१३७	विवास बन्धुजीवेषु	३
वनस्पतीन् फलानघ्नान्	८३	ववपुर्वह्निर्वाष्टि वा	४०५	विकासितविनेयाम्बु	५०४
वनान्वय वयदिसाक्षा-	३६५	ववुमन्द स्वरुद्यान-	२१८	विक्रम कर्मचक्रत्य	३५१
वनाभोगमपर्यन्तम्	८८	ववो मन्द गजोद्घृष्ट-	३७२	विक्रिया न भजन्त्येते	३४६
वनितातनुसम्भूतकामानि	४६३	वशीकरणपुण्याणि	३३२	विक्रियाऽष्टतयो चित्रम्	२१४
वने वनगर्जोऽष्टो	३६	वसस्तत्र महाकालस्तम्	४८८	विख्यातविजय श्रीमान्	३८३
वने वनचरस्त्रीणाम्	१२८	वसन्ततिलवोद्याने	४३६	विगतच्छ्रुतच्छ्रम शीघ्रम्	४८७
वनेषु वनमातङ्ग्या	१६७	वसन्तश्रीवियोगो वा	३७२	विग्रहे हतशक्तित्वात्	३६८
वनोपान्तभुव संग्ये	६७	वसन्तानुचरानीत-	३७८	विघटय्य तमो नैशाम्	१८७
वन्दनार्थं श्रुता माला	३२४	वसन्ति स्मानिवेतास्ते	१६६	विघटय्य रथाङ्गानाम्	१६३
वन्दारुपा मुनीन्द्राणाम्	१४५	वसुधारकमित्यासीद्	२३४	विघटय्य कार्यपर्यायम्	४३४
वन्दारोऽभ्रंशताधिपस्य	३४६	वसुपालवृमारस्य	४६३	विचित्रपदविन्यासा	३५५
वन्दित्वा धर्ममावर्ष्यं	४७६	वसुपालमहीपालप्रस्ताद्	४६३	विचिन्त्य विश्वविघ्नानाम्	४२१
वन्दित्वा नागरा सर्वे	४६८	वसुमत्यापगामविय-	६८	विचूर्णेन शर तावत्	४७
वन्दित्वा वन्यमहन्तम्	२८७	वस्तुवाहनराज्याटगै	४७	विचैर स्वसुरोद्धत-	६७
वन्दित्वा गिद्धकुटारयम्	४८७	वस्तुवाहनमर्वस्वम्	६४	विच्छिन्नवेतव वेचिन्	४०४
वन्दिमागधवन्देन	४१८	वागाद्यनिगर्धरेभि	३३५	विजयमित्रो विजयिलो	३५७
वन्था स्तम्भेरमा	२६	वागाद्यनिशयोपेत	३३४	विजयायेत्यपार्हत्य-	३०४
वन्थानेवसत्सम्भोग-	७४	वाग्युजो हितवावृत्त्या	२८७	विजयाद्धं समारुह्य	४३४
वप्रा तर्भुवमाघातुम्	१२	वाग्देव्या सममालापो	-१६४	विजयाद्धं गिरेरस्य	४६६
वप विभक्तिं नाहूता	४३६	वाचयमत्वभारथाय	१६६	विजयाद्धं जयेऽप्यामीत्	१०१
वप प्रायेव मानदृगा	७५	वाचयमस्य तम्यागोत्र	२१३	विजयाद्धं तटानानि-	१५
वप त्रिनाम्ना देव-	३४७	वाचयमो विनीतारमा	२५४	विजयाद्धं प्रतिरुष्टि-	३३
वप वधोऽत्र नाम	१७७	वाजिन प्राक्प्रभाषाताद्	४०३	विजयाद्धं महागन्ध-	४२१
वपमर्षि चरमाष्टगा	५१०	वाग्य वपाटयोर्गुम्गम्	११२	विजयाद्धं चतप्रस्था-	१०४
वपमेव महादवा	३३४	वाद् गमराणि गौभाग्यभागिन	४८०	विजयाद्धं चले मरय	१७८

विजयादांचलोत्सवा	११६	विध्वम्ने पत्रगानीत्रे	११८	विलोक्य नं वरिष्कुत्राः	४६६
विजयादौ जिने कृन्मन्	१००	विनयाद् विच्युत राज-	४५०	विनोक्त विनयशक्ति-	३६६
विजयादौत्तमप्रेषि-	४८४	विना चक्राद् विना रत्नै	३६०	विनोत्तवीचिमघट्टाद्	१४
विजिगीषुतया देवा	४७	विनियोगास्तु सर्वाम्	२४५	विनोतिनातिराधुन्व-	१२८
विजिगीषोर्विपुष्यस्य	४०६	विनिबर्तयितुं शक्ता	४८४	विवाहविधिवेदिभ्यः	३७६
विजिताध्वममानान्-	१२०	विनिवायं वृत्तशोभम्	२०८	विवाहान्तु भवेदभ्य	२७४
विजितेन्द्रियवर्गिणाम्	१५८	विनीत मवरो गुप्तो	३५७	विवाहो वर्गलानस्य	२४४
विज्ञातमेव देवेन	४२८	विन्ध्यश्रीम्ना पिता तस्या	६३६	विविक्तरमगीयेषु	१२०
विज्ञातमहाहोह	५००	विपशव्यग्नूपालान	६०७	विविक्तैकान्तमेविवाद्	१६६
विज्जम्न करन्निरीसखाद्	७८	विपरीतामनदृष्टि	३४	विविक्तद्विपद चास्मान्	२६५
विज्जस्ताद्रेमरादेनाम्	२८	विपयमि विषयति	३८८	विविच्यजन यागाद्	२८६
विज्जस्तरपयमुनाहृत-	७८	विपाककटुमाश्याजम्	२०६	विबृणोति त्वतोऽप्येषाम्	१८०
विदध्यामद्य नाथेन्दु-	४०५	विपाकमूननिर्ज्ञान-	१६३	विद्याना नातिवा मिन्दुम्	६८
विदस्य मञ्जरीम्नीदगा	८३	विप्रवृष्टान्तरा क्वाप्माद्	१२०	विद्यानाप्तो महाबाहव	३५७
विदिनास्तुनार्थोऽभि	४२८	विप्रवृष्टान्तरावाम-	१०६	विमुद्धकृत्तगोभस्य	२८३
विदिनप्रकलतस्य	५१३	विप्रलोऽपि स्वजातोयो	१५४	विमुद्धकृतज्ञान्यादि	२७७
विदिन्वा विष्टराक्प्याज्जवम्	४२०	विप्रभावश्चरे कञ्ज-	७३	विमुद्धकृतयन्मन्मान्	२८२
विदूरस्वयं युष्मानि	१५८	विषम् पवनोद्धृता	६०	विमुद्धन्त वृत्तन	२७६
विदेम विल याप्यो	१००	विषुष्माननवमन	४३८	विमुद्धाव रमन्मृतो	२७७
विदेहे पुष्पलावण्याम्	४७०	विभक्तनोरस्यामुच्चै	११०	विमुद्धा वृत्तिरस्यायं-	२४२
विद्धि मा विजयादौभ्य	१०६	विभिन्दन् केतवी मूर्च्छी	२३०	विमुद्धावृत्तिरेपेषाम्	२४३
विद्धि मा विजयादांभ्यम्	१००	विमृत्वमरिचनेषु	३५	विमुद्धिरनभस्याभ्य	२७७
विद्धि सत्प्रेषणानीयम्	२७०	विमोक्षंभग्शोभम्	६६	विमोघनन्तु तत्तां	३३२
विद्यया शवहरेण मद्य	४८४	विश्राणमतिविन्निर्णाम्	१७६	विमोघविषया मन्त्रा	३१५
विद्याधरधगाधीमं	१०८	विमनेरेव तद्गोहे	४७०	विमोघिनमहावीर्यो	३७५
विद्याधरधरासार-	१०८	विमत्तराणि चेतासि	१५०	विन्द विन्दवर पदयन्	४६१
विद्याधरीकरालून-	२१०	विमुक्ता व्यक्तमून्कारम्	७५	विन्दशत्रुजयोद्योगम्	१७७
विद्याधर्यं वराचिञ्च	२१७	विमुक्तावद्भक्ष्य पदचान्	२५१	विन्द्यादीर्गवजये पूर्व-	१५०
विद्याधितेति मग्नीत	६८४	विमुक्ताप्रग्रहंवाहं	४५	विन्द्यमन्त्रगतमन्त्रत्या	४४१
विद्युच्चौरत्त्वमासाद्य	४७६	विद्यदुन्दुभिभिर्मन्द-	१४१	विन्द्यविद्यापराधीयम्	४०६
विद्युद्वेगा तनोज्ज्वलन्	४८३	विद्यद्विब्रूनिमाश्रम्य	३७३	विन्द्यविस्वम्नराह्लादी	४२६
विद्युद्वेगाज्जम्बद्	४६८	विद्वक्तो हृषानुजीवी स्यात्	३४४	विन्द्यभ्य घमंमन्त्रभ्य	३१६
विद्युद्वेगाज्जलोत्थ	४८३	विद्वज्य राज्य मयोऽय	३५६	विन्द्यानास्वाम्य तद्घोषं	४२५
विद्युद्वेगाह्वय चोरम्	४७१	विराग सर्वविन् मार्ध	२७०	विन्द्यैवग जगन्माना	२६०
विधवेति विवेदाधीनेऽसम्	३६०	विशदावद्वाग्जाल-	१४३	विन्द्यैवरादयो श्रेया	२७१
विधानुमनुक्तानाम्	४३६	विश्व्य ऋषिण चापि	३६६	विपक्षष्टक ज्ञानोव-	२०६
विधाय चरणे तस्य	३४५	विश्वकामिद सुदम्	२००	विपक्षीहृत् सर्वेषाम्	४३३
विधाय प्राक् स्वय प्राप्य-	४८०	विरेजुन्मनापुष्पी	६	विषये वनराव दाम्	४८५
विधायाष्टाह्निकी पूजाम्	३६८	विरोपितोऽज्यमी मुक्ता-	२१५	विषयेऽन्वितमिष्यदशो	२५३
विधिरेष न चागकि	११६	विनदन् विविधान् देवान्	६०	विषयेऽन्वितम्नराह्लादी	४७४
विधुं ज्योतिर्गं रोनेव	४३५	विनमन्प्रघमन्मृतम्	१५	विषयैर्जन्मन् मगारमानु-	४७४
विधुं तत्त रससर्गाद्	४१४	विनमद्ब्रह्ममूत्ररा	२६०	विषयैर्जन्मन् दाशिम्यन्	६८
विधुविन्व-प्रतिरपदि	८	विनोक्त वृत्तनुष्पादि-	४६२		

विसमङ्गो कृताहारा	२६	वैशिष्ट्य कि वृत्तम्	३४७	शर्न प्रयाति सञ्जिघृन्	२३
विसर्जितदक्ष सानुजम्	१००	व्यक्तये पुरुषार्थरथ	३३५	शर्न शर्नर्जनमुक्ता	६
विस्तीर्णजनसम्भोग्ये	१४	व्यजनैरिव श्वात्पात्रं	११५	शर्न राकाशवाराशि-	१८८
विस्रम्भजननं पूर्वम्	४६४	व्ययो मे विप्रमस्यास्ताम्	३६२	शर्न बालेन्दुरेखेव सा-	३६८
विहरन्तो मही वृत्तनाम्	१६७	व्यलोकिष्ट स भूपोऽपि	४६६	शफरी प्रक्षेपणामुद्यत्	१३
विहरन्त्यदा मेघस्वर	५००	व्यवहारनयापेक्षा-	३०१	शब्दपारभागी भव	३०६
विहाय मामिहेकाकिनम्	४८६	व्यवहारेशिता प्राहु	३१३	शब्दविद्यार्थशास्त्रादि-	२५०
विहारस्तु प्रतीतार्थो	२६७	व्यवहारेशितान्या स्याद्	३१२	शमिताखिलविघ्नसस्तव	४२२
विहारस्योपसहार	२६७	व्यसनेऽस्मिन् दिनेदास्य	१८७	शमिता चक्रवर्तीष्ट	५०३
विहृत्य सुचिर विनेयजन-	५१४	व्यापारितादृश तत्र	१८	शयिता वीरश्यायाम्	४१८
वीक्ष्य वाकोदरेणात्मा	३६०	व्याप्योदर चलकुलाचल-	५१	शयुपोता निकुञ्जेषु	२३
वीचिवाहुभिराध्वन्तम्	४१	व्यायता जीविताशेष	११३	शय्यासनालायादीनाम्	२२७
वीचिवाहुभिरनुवर्तते	३६	व्यालोलोमिव रास्पृष्टं	१५	शरतल्पगतानल्प-	१६३
वीज्यमाना विभुस्पर्द्धि-	३७६	व्यावहासीभिवानेनु	६	शरदुपहितकान्तिम्	१६
वीतराका ह्यमा तस्य	४६१	व्युष्टिःत्रियाधित मन्त्रम्	३०८	शरनिभिस्रसर्वाङ्ग	४१६
वीरपट्ट प्रवध्यास्य	३८२	व्युष्टिश्च केदावापद्व	२४४	शरभ ख समुत्पत्य	२४
वीरपट्टमदा मोदो भुवो	३८७	व्योमापगामिमा प्राहु	१८	शरभो रभसाद्भुध्वम्	६८
वीरपट्टेन वदोऽयम्	४२०	व्रजन् मन्द्राश्च वच्छाश्च	६६	शरल्लक्ष्मीमुखालोच-	५
वीरलक्ष्मीपरिष्वक्ता-	३६५	व्रत च समिति सर्वा	२१२	शरव्यमकरोद्यस्य	१७८
वगात् सर्वभूपाला-	३६६	व्रत दत्तवत् स्थानम्	४७०	शरव्याज प्रतापानि	१७८
वृत् परिमितैरेव	३१८	व्रतचर्यामतो वश्ये	२४६	शरशाली प्रभु कोऽपि	४७
वृत् शशीव नद्यर्ध	४३४	व्रतचिह्न भवेदस्य	२७८	शरसत्स्युविद्याभूत्	४०२
वृत्तम्यानय तान् विधाय	३१६	व्रतगिद्धधर्मवेवाह	२७५	शरसद्भुषितसञ्छन्नान्	४००
वृत्तादनात्मनीनादौ	३३५	व्रतानुपालन शील-	३२५	शरा पीप्यास्तव त्व च	४१७
वृथाभिमानविध्वमी	४१५	व्रतान्येतानि दास्याम	४७०	शरीर भर्तुरस्येति	५०७
वृश्चिकस्य विष पदचात्	३६१	व्रतावनरण चेदम्	२५०	शरीर यच्च यावच्च	२२३
वृषभाय नमोऽज्येय-	३५०	व्रतावनरणस्यान्ते	२७५	शरीरजन्मना संपा	२७७
वृषा वृद्धगन्त-	५	व्रतावनरण तस्य	२७४	शरीरजन्ममस्वार-	२८०
वृष पुराण स्मृतय-	२७०	व्रताविष्णुरग्य दशधा	२६६	शरीरश्रितयापायाद्	५०५
वृषनाभिभवामाभाद्	३३६			शरीरश्रितयापाये	५०७
वेदनाप्यापुनाभाव	३३८			शरीरबलमेतच्छ	२०८
वेदिना कामनित्रम्य	१०८			शरीरमरण स्वामु	२८०
वेदिनात्प्राणग्राहम्	३८			शरैरिषोरेरासर्नविमुक्तं	४११
वेदिनव मनात्रय	३६५			शश शशाग्रय देव	२४
वेदा प्रणीतमनीनाम्	२५१			शशाङ्कशरजैशारधे-	१६०
वेदायेंतमाम्बुदुम्	६६			शशितप्रभा रवता देव्या	४५६
वेदागामिन्वराग्वाडि	६३			शशब्दविकिर्णामुमे	२१६
वेदिन वदुधनुषा	६३६			शशर्त्तमिवाप्रसर्वाङ्गा-	४०८
वेदिनेत्यन्तं वैश्वदेवा	६०			शशत्रप्रहारदीप्यानि-	२०७
वेदस्य निरस्येवाम्	६७५			शशत्रमभिप्रसर्वाङ्गम्	४१७
वेदशरद्वन्द्वं च स्थास्मिन्	६६			शशत्राग्नीविद्यार्थेभ्यु	२५०
वेदशरद्वयं च शशीम्	१६२			शशिनवा सह पाटीर्ष	२८
वेदशरद्वयमात्रं	६६७			शाखाभट्टी वृत्रघ्नाया	२६
		श			
		शश शीवर्नदूता-	१६०		
		शशुनि शशुनाद् दुष्टाद्	४५६		
		शशुषो भशग मर्त्ये	४७२		
		शशिनमन्त गमासप्रविनेया	५०५		
		शशिनपेणमहीप्राणप्रतिपन्नतुत्र	४५६		
		शशिनपेणोग्र्य सामान-	४५६		
		शशिये शशी मनवा	४६६		
		शशुकादिशपनिर्मुक्तम्	५०४		
		शशुकादिशपनिर्मुक्तम्	१६८		
		शशुके दिशातपावात्तम्	२२६		
		शशुकात् प्रदक्षिणावर्णम्	२२७		
		शशुकात् च नद्या च	६८		

शास्त्रामृता मूनेन्द्राणाम्	१३५	शेषो विधिन्मु विनोप-	३०७	श्रीनपानान्त्रिजि हृन्वा	३५५
शास्त्रामृता द्विपस्वन्धम्	३१६	शेषोविधिन्मु प्राक्प्रोक्त	३११	श्रीतान्यपि हि वाक्यानि	३६६
शान्त तत्त्वप्रसादेन	४३६	शैलोद्रे महात्म्य	२३६	श्लक्ष्णेषु पिष्टचूर्णैः	२७७
शान्तस्वर्नर्नदन्ति स्म	३१६	शोभानगरगम्येद्य	६५४	श्व स्वर्गे हि किमनेव	४१७
शान्तिश्रियाभतदचक्रे	३२३	श्च्योतन्मदजवासार-	२००	श्वमदाविर्भवद्भोग	२०६
शान्तिपूजा विद्यायाष्टौ	४०७	श्यामादगीरनमिष्वक्त्र-	३७		
शामन तस्य चकादकम्	२०६	श्यावकानामिकासद्वपम्	२५५		
शास्त्रज्ञा वयमेकान्ताद्	१५३	श्राविकाभि स्तुत पञ्च-	५०३		
शिक्षिता बलिन दूरा	३६३	श्रिय तनोतु न श्रीमान्	३५१		
शिवरैरेष कृत्कील-	१०३	श्रीदेव्यश्च सरिदेया	२६०		
शिवरोल्लिखिताम्मोद-	१३०	श्रीदेव्यो जान ते जान	३०५		
शिक्षामेनेन मन्त्रेण	३०६	श्रीपर्वतं च दिशिन्म	७०		
शिवी सिनाशुक शान्.	२५६	श्रीपालकमुपालाभ्यौ	४६०		
शिविभिरसिक्कुलार्न.	२००	श्रीपालाभ्यङ्कुमारस्य	४०७		
शिरप्रहरणान्ग्यो	६०३	श्रीमच्छनिवेशम्	१६१		
शिरीषसुकुमारारोगी	२०६	श्रीमानानमिताशेष-	१३१		
शिरोरुहंजैराम्मोत्रि-	६६६	श्रीमानानमनि नोप-	१०५		
शिरोलिङ्गञ्च तस्येष्टम्	२४६	श्रुत च बहुशोऽस्मानि	६६		
शिरोलिङ्गमुरोनिङ्गम्	३११	श्रुत मुविहित वेदो	२७१		
शिलासलेषु तपेणु	१६४	श्रुत हि विधिवानेन	२५४		
शिवानामनिर्वध्वानं	१६६	श्रुतज्ञानदृशो दृष्ट-	१६६		
शिविरमुरश्चिन्द्रो-	६४६	श्रुतवृत्तिव्यामन्त्र-	२५३		
शिष्टान् मृष्ट्वा च दैवज्ञान्	३७०	श्रुतायिभ्यः श्रुत दद्यात्	२५५		
शोतमुप्य विरुक्ष च	१६६	श्रुता विन्वदिन निदा	१०७		
शीलानुपानने यत्नो	३२५	श्रुतिन्मृतिपुरावृत्त-	२६२		
शुकान् शुकच्छदच्छायं	१७५	श्रुत्वा तदादिमे कल्पे	५०१		
शुकावलीप्रवालान-	६	श्रुत्वा नद्वचन राजा	४५०		
शुकवन्त्रोपवासादि-	२७४	श्रुत्वा ता हृदयप्रियोक्ति-	४७६		
शुचिप्रावविनिमांसी	१३२	श्रुत्वा पुराणपुराणञ्च	१६६		
शुद्धस्फटिकमृद्धाश-	१३६	श्रुत्वा सर्वार्थविमर्शम्	३७०		
शुनोऽर्चिनस्य सत्कारः	३२२	श्रुत्वेति देशना तस्मान्	२०२		
शुभ श्रुतार्थमिदायं-	३६६	श्रुयता भो द्विजम्मन्य-	२७६		
शुभं षोडशानि स्वर्णं	२५६	श्रुयता भो द्विजन्मानो	२६६		
शुश्रुव ध्वनिरामन्द्रो	१३७	श्रुयता भो महान्मान	३३१		
शुक्लभूरह्यावाप्रे	४३७	श्रेष्ठिनेज्वरतापाया-	४६७		
शुक्लमध्य तदाग च	३२०	श्रेष्ठिनं च त्वारोऽयम्	४०६		
शुक्लमध्यतद्वागम्य	३२२	श्रेष्ठिनोऽय्य मियोऽयेष्ट.	४७२		
शुन्यगात्रम्बनं स्त्रीणाम्	१६०	श्रेष्ठी कदापिदुयाने	४४६		
शुन्यागारम्भानादि-	१६६	श्रेष्ठी किमर्थमायागो	४७४		
शुषोमियानि रत्नानि	६३	श्रेष्ठी कुर्वेकान्श्व	४६६		
शुशु भो नृपमार्दन-	२०६	श्रेष्ठी त्वेति श्रेष्ठी च	४७६		
शुशु श्रेणिक मप्रन	३५६	श्रेष्ठपतिमान् तारोऽान्	६०६		
शुषशत्रियपूना च	१७३	श्रेष्ठपेष नै तरोऽनुगिति	६६७		
				प	
				पल्लयवनसामग्र्या	२००
				पोटशास्य महत्वाणि	२३३
				पोटशैनेज्य यामिण्याम्	३२०
				पोटशैव महत्वाणि	२०६
				स	
				मयम प्रतिपन्न भन्	४६०
				मयमस्थानसम्प्राप्त-	५०३
				मवाहयाना महत्वाणि	२०६
				मवेगजनितश्रद्धा	१६५
				मशुष्यद्वाननिष्पन्द-	४०६
				मनारावाम तपोऽय्य	३३६
				मनारावामनिविन्शा-	१६५
				मनारोन्द्रियविज्ञान-	३३५
				मन्वारजन्मना चाग्या	२७७
				मन्वताना हिने प्रीति	३५६
				महार्थं विममुष्यानि	४६
				म एवमविशेषैः	३३७
				म एवामीद् गृह्ययागाद्	३५७
				म एष धर्मनायक्ये-	४५५
				म कदाचिद् गति वा	४४६
				मकनसत्रिययेष्ट	३६६
				मकननृपययाजे	२१६
				मकलमकिल तस्य	४७६
				मकान्ता रमयायाम	२७३
				म वि न दर्शनप्यायाम्	१६६
				म कृत्स्नमिदृशं	१७६
				मनीमुष्यानि मवीदय	४३०
				मनीवचनमुन्मद्व्य	१६०
				म मन्वुनिगतोमेध-	६६५
				म मिर्गिर्मणिमांला-	६७
				मद्वलनमुममनीयान्	४६५
				मद्वलनेष्वशितोन्तर्गो	२२५
				मद्वलनेष्वशितोन्तर्गो	२६
				मद्वलनेष्वशितोन्तर्गो	२१७

सङ्ग्रामनाटकारम्भ-	३६६	सत्य भरतराजोऽयम्	१५१	सन्ध्याहरणा बलामिन्दो	२३१
सचक्र धेहि राजेन्द्र-	३५	सत्य महेषुषी जडघे	२२४	सन्ध्यास्वगिनदये	३००
सचक्र धेहि सयोज्य	३६३	सत्यजन्मपद तान्तम्	२६३	सप्रदस्यन्दनादचण्डास्तदा	४०५
स चक्रिणा सहस्रम्य	३६२	सत्यजातपद पूर्वम्	२६१	सप्राग बहुपुप्रागम्	७१
स चन्दनरसस्फार-	३७५	सत्यमेव यथो रक्षयम्	४८	स पवववर्णिगुभानम्-	१२
सचामरा चलद्वसाम्	३४	सत्याभासं तै स्त्रीणाम्	३६१	सपदि विजयसैर्वैनिजित-	१३०
सचित्रपुरुषो वास्तु	४७	सत्येव पुष्टतन्त्र स्याद्	३४६	सपुत्रविटपादोप	३५६
सचिवस्य सुत दृष्ट्वा	४७३	सत्योऽभूत् प्राक्तनादेश	४८६	स पुमान् य पुनीते	४७
स चैप भारत वर्षम्	३३१	सत्वोपघातनिरता	३२१	सप्तगोदावर तीर्त्वा	७०
सच्छायानप्यसम्भाव्य-	७२	सदाचारनिर्जरिष्ट-	२४०	सप्तभद्रग्यातिमवेय ते	१४२
सच्छायान् सफलान् तुङ्गान्	११	सदानमानं सम्पूज्य	३७१	सप्रणाम च सम्प्राप्तम्	१०५
सच्छायान् सफलान् तुङ्गान्	७२	सदास्ति निर्जरा नासी	४६४	सप्रताप यथा स्यास्तु	३६०
स जयति जयलक्ष्मो-	२१६	सदेव बलमित्यस्य	८१	सप्रताप प्रभा सास्य	४१२
स जयति जिनराजो	१६७	सदोऽव्निरिय देव	१४६	स प्रतिज्ञामिवाकूढो	३६
स जयति हिमकाले	२२०	सदोषो यदि निर्ग्राह्यो	४३०	सप्रभा चन्द्रलेखेव	४६६
स जीयात् वृषभो मोह-	२४०	सद्गुह्यत्वमिद ज्ञेयम्	२८३	सप्रसाद च सम्मान्य	११०
सज्जने दुर्जने कोपम्	३५३	सद्य सहारमशुद्ध-	४०१	स प्रेयसीभिरावद्ध-	७२
सज्जन्मप्रतिलम्भोऽयम्	२७७	सद्यो गुरुप्रसादेन	४७१	स बहुतरमराजन् प्रोच्छ्रितान्	४२३
सज्जाति सद्गुह्यत्व च	२४५	सद्यो मिश्राण्डकोद्भूतान्	४७५	स बाह्यमन्तरङ्ग च	४६६
सज्जानिभारो भव	३००	सद्रत्नकटक प्रोच्ये	२६२	सभापरिच्छद सोऽयम्	१४६
सन्चरद्भीषणप्राहै	८६	सद्वृत्तस्तपसा दीप्तौ	४६५	सभावानानि तान्येप	३२५
सन्निवसत्येनसो हृन्नी	३५५	सद्वृत्तान् धारयन् सूरि	२५५	सम ताम्बूलवल्लीभि	८३
सन्जातानुशया साऽपि	३६०	स धर्मविजयी सम्प्राद्	३२५	सम समञ्जसत्वेन	२६५
स त स्यन्दनमारुह्य-	८	सधान्यैर्हृरित कीर्णम्	२४१	सम सुप्रविभक्ताडगम्	२२३
स ततोऽवतरधन्द्रे -	१०४	सधूपघटयोर्गुम् तत्र	१३८	समक्षमीक्षमाणेषु	२०५
स तत्र जिनदोषेण	४७७	सध्रीषी वीचिसरुद्धाम्	१०	समप्रबलसम्पत्त्या	३६५
स तडनगतान् दूरान्	८६	स नगो नागपुत्राय-	६७	समञ्जसत्वमस्येष्टम्	२६५
स तमालोत्रयन् दूरान्	८६	सनमंसचिव षञ्चित्	३२७	समन्तत शरैश्च्छस्त्रा	४०८
स तस्मै रत्नभृद्भारम्	१००	सनापमसनामैश्च	१२४	समन्तादिति सामन्तै	१०४
स ता प्रदक्षिणीवृत्त्य	३१८	स नाग्य परम विभ्रत्	२१०	समन्ताद् योजनायाम-	१४०
स ता वचामि चेतामि	४२६	सनातनोऽस्ति मार्गोऽयम्	३८६	समभ्यर्च्य समाशवास्य	४२५
स ता गन्धलसम्प्राप्यै	५०६	स निमित्त निमित्तानाम्	३२६	समवायाध्यमडग ते	१६३
स ता युधेन मित्रेण	४१३	स निवेदिनवृत्तान्तो	१७६	समवेगे सम मुक्तै.	४०१
स तामगम्भना विष्वग्	१८०	स नृजन्मपरिप्राप्तो	२७७	समस्तनेत्रसम्प्रीत-	३८०
स तानि चैष हृत्तमोऽयम्	३४४	सन्तानार्थमृतावेव	२५१	समस्तवलसन्दोहम्	३७८
स तु ग्यापोऽतित्राणत्या	३३२	सन्तुष्टान् स्वे वने दूरान्	८६	स महाभ्युदय प्राप्य	२८६
स तु सगुण्य योगीन्द्रम्	२६६	सन्त्यग्भिर्निलया देवा	३६	समासमीना पर्व्याप्त-	१४
स तारणमतित्रय्य	१०६	सन्त्येवानन्ततो जीवा	२४१	समागत स इत्येतन्निदचेत्	४८६
स तश्चेत्त्रय्येव	३५४	सन्धि च पणवन्धश्च	१७४	समागत्य महाभक्त्या	४८७
स त्वाग्याभसमुद्ध-	३२०	सन्धिविषहृचिन्नास्य	८०	स मागधवदाध्याय	१२०
स त्वात स जपानगम्	००६	सन्धिविषहृथानादि-	१०६	स भातदृग वन यस्य	८८
स त्वा दिव्यजघे चर्षा	१८८	सन्ध्यातपपाण्यागन्	१८८	समानदतिरेषा स्यात्	२६३
स त्वा परिभ्रव गातुम्	८८	सन्ध्यादिविषये नाग्य	३६	समानापातनाऽयस्मै	२४३

समापतच्छरजात-	२०७	सरला निषयो दिव्या	२३३	सर्वेऽपि जीवतोपाय	४७५
समीपवर्तिन्येकस्मिन्	४६६	सरम्विसलपान्तरस्पन्द-	१२६	सर्वेऽपि वृषभमेत-	५१४
समुच्चरन् जयज्वान-	१२०	सरसा वमलाक्षिम्य	४१८	सर्वेऽप्यामन्नभ्य वाद्	४५४
समुच्छिन्नपुरोभागा-	२७	सरसानि मरीचानि	८३	सर्वेऽपि विधित्तुमुक्ता	१६६
समुत्थाय सनामध्ये	३५६	सरमिजमकरन्दो-	१६	सनीलमृदुभिर्गति	८४
समुत्सृजेदनात्मीयम्	३४२	सरमीजलमापादौ	२०४	सवज्जमणिपात्रस्य	४६१
समुद्धृतासम्पूजन-	४०३	सरस्तरङ्गघौताङ्गा -	७५	सवन नावनि मोऽग्नि	१०४
समुद्भट्टरसप्रायं	२००	सरस्तीरतरुच्छायायाम्	२६	सर्वामिना नृग रेजु	१०२
समुद्भट्टसाम्प्यम्	४६७	सरस्तीरतरुपात्त-	६६	सवागतिभयो ज्ञेयो	३३४
समुद्भट्टो ज्वलनवेगस्य	४६८	सरस्तीरमुवोऽग्रस्यत्	११	म वा प्रसूयन् तीर्थेणम्	४३६
समुद्भमद्य पदयाम	३४	सरस्य स्वच्छमलिता	२५	म वैश्रवणादत्तोऽपि	४६८
समूलतूलमुच्छिद्य	३६१	सरासि वमनामोदन्	१०	मत्रतो वीररथपी च	४१७
समेन्वापसरावेक्षा	१३१	सरानि सरोजानि	२	म मस्मिन्नत्रनाज्जम्बवान्	२०६
समीनितक स्फुरदत्नम्	३०	सरिन रोहितास्या च	१२३	स शरो दूरमुत्पत्य	१२०
सम्पत्सम्पन्नपुण्यानाम	६३७	सरिनोऽपू मम सन्धे	८७	स शिखामगणथोऽमीयाम्	१५५
सम्पूज्य निधिरत्नानि	२६१	सरिनोऽमृगायापा-	६८	म नील पचनाधून-	६७
सम्प्रत्यक्षम्पनोपक्रमम्	३७०	सरितो विषमावर्त-	२०७	म श्रीपात्ररुमारस्य	४६३
सम्प्रदायमनादृत्य	२०४	सरिद्वधूस्तदुत्सङ्गो	८६	स श्रीमानिति विद्वत्	३१
सम्प्रधार्यमिद तावद्	१५२	स रेमे सरदारम्भे	२३०	स श्रीमान् भरनेश्वर	१७१
सम्प्रान्तभावपर्यन्तौ	४३३	सरोजरागरत्नानु-	१३६	स मत्तारपुरम्बारे	२११
सम्प्रान्तश्च तमुद्देशम्	१२०	सरोजन समाने	२	समत्वमतिगम्भीरम्	४३
सम्प्राप्य नवधा पुण्यम्	४५२	सरोजलमभूत् कान्तम्	२	ससम्भ्रम च मोऽभ्येत्य	६६
सम्प्रेक्षितं स्मितहर्षि	६५	सरोवगाहनिष्कित-	७५	समम्भ्रम महापेनु	६३८
सम्नापितश्च सम्भ्राजा	१०५	सरोवगाहनिर्धूत-	७३	समम्भ्रममिवास्यामृद्	४६
सम्पूय वाग्धवा सर्वे	४६०	सर्पिण्डपयोमिश्र-	४७३	स सर्वमनुभूययात्	४७२
सम्भोगैर्भममिति निविगन्	७८	सर्वं प्राणो न ह्यन्यो	३१३	स सर्वोत्पन्नस्युक्त-	६६३
सम्भ्यगृष्टिपद चान्ते	२६६	सर्वगुण त्रियप्रान्त-	३५३	स साधन मन भेजे	६६
सम्भ्यगृष्टिपद चास्माद्	२६७	सर्वज्ञाय नमोवाचयमहेने	२६६	स माध्वमा मन्त्रजा मा	४३२
सम्भ्यगृष्टिपद चारमाद्	२६८	सर्वतोभेद्रमारुह्य	३७८	स मा मा नतदेवंपा	४४३
सम्भ्यगृष्टिपद चैव	२६५	सर्वदम्भमज्ञान् सार्वान्	१३४	स मेहे यथमानोत्तम्	२११
सम्भ्यगृष्टिपद बोध्यविषय	३०६	सर्वमूपा नमन्दोह-	३६१	स म्मान् सरगा तीरिपु	१०
सम्भ्यगृष्टिपद बोध्ये	३०५	सर्वमद्भग नमस्पूर्णे-	३७६	स महादेव्यमी मत्ता	२१
सम्भ्यगृष्टिस्तवाभ्येयमन-	३०४	सर्वमनलमान् सर्व बुद्धिम्	३६१	स मह बशानिवागिन्या-	३६५
सम्प्राट् परयप्रयोध्याया	६	सर्वमेतन्मुखाय स्याद्	४६६	सह सार्थेन भीमाग्न्यम्	६६६
स यजन् याजयन् धीमान्	२७६	सर्वमेतन्ममेवेति मा मस्या	३६०	सह्या भवन्तुसांगाम्	३८४
स यस्य जयमेत्यानि	१७६	सर्वमेतन्ममेवेति मा मस्या	२८१	सहिता तिनरेगाभ्या	४८७
सरपरिमरेष्वाणन्	७७	सर्वरत्नमयेऽस्मिन्भूपा-	४६७	स हपादिशरमयज्ञा	२०१
सरसरोजरजगा	७	सर्वरत्नान् महानीन-	२२७	सहपासदगे नृदप्रतिपि	८१
सरसात् पृतभूपात्तान्	६२१	सर्वमानिचरौ ध्यानिपु	६७५	सागुत्तममिवाऽप्यन्	३७६
सरजोऽञ्जत्ररुचोर्ग-	१७१	सर्वमह कामानारम्	२१०	सासात्तुःशरमिधनमन्त्रदाय	५१५
सरति सरतीनेर त्य	१६५	सर्वम्बन्ध व्ययाऽज्ञाय	३६६	साशिला गरित्त्वंनम्	६७३
सरत्तम् यथाविषयम्	६०	सर्वान्मन्त्रिनिर्मुक्ता	१६५	साशेषमिति मन्त्रमात्	६८
सरला निषय सर्वे	२१८	सर्वोऽप्यगद्वयत तजो	१७७	सा धनमन्त्रिणाऽप्यजात्	२३०

सूर्याचन्द्रमसौ वा	४६३	स्कन्धावार यथास्थानम्	४३४	स्मितमानोक्ति हासो	२३०
सृष्टिं पितामहेनेयम्	३८८	स्कन्धावारनिवेशोऽस्य	६०	स्मितेष्वासा दुरोद्भिप्रो	२२५
सृष्टघन्तरमतो दूरम्	३१३	स्खलति स्म कलालापा	४३२	स्मितं प्रसादं सञ्जल्पं	६५
सेनानीप्रमूखास्तावत्	१५२	स्तनाङ्गरागसम्मर्षी	१६२	स्मृत्वा तनोऽहर्द्वर्चानाम्	३२४
सेनानीरपि वन्ध्याम्	६६	स्तनाब्जकुड्मलंरास्य-	२२४	स्यात् परमकाङ्क्षिताय	२६६
सेनान्तो वृषभ कुम्भो	३५६	स्तुति निन्दा सुख दुःखम्	१६६	स्यात् परमनिस्तारक-	३०६
सेनान्य बलरक्षायै	३८	स्तुतिनिन्दे कृति श्रुत्वा	३५२	स्यात् परमवितानाय	२६६
सेवागतं पृथिव्यादि-	२६२	स्तुत्वा स्तुतिभिरिज्ञानम्	३१६	स्यात् प्रजान्तरामन्वये	३१४
सैनिकैर्यमोद्ध	२३	स्तूपाश्च रत्ननिर्माणा	१३६	स्यात् प्रीतिमन्त्रस्वैलोक्य-	३०२
सैन्ये च हृतसनाहे	२६६	स्त्रीरत्नगजवाजीनाम्	२२८	स्यात् ममञ्जवृत्तित्वम्	२६४
सैन्यैरनुगतो रेजे	१५१	स्त्रीषु नाथेति या वार्ता	४४७	स्यादस्येव हि नास्येव	१४२
संबानुवर्ननीया ते	१६१	स्यलाब्जशङ्कनी हंसो	२०	स्यादवध्याधिकारेऽपि	३१३
संपा चतुष्टयी वृत्ति-	३३२	स्यलाङ्गिनीवनाद् विष्वक्	१२१	स्यादेव स्त्री प्रनृत्यन्ती	४८०
संपा निष्पान्तिरस्येष्टा	२६४	स्यलाम्बोर्षहिणीवास्य	१२१	स्यादस्य गुलमप्येवम्	३३८
संपा सकलदत्ति स्यात्	२४३	स्यलेषु पथपद्मिन्यो	२०	स्याद्विचित्रिञ्चिच्च सावद्यम्	१६७
सोऽञ्चल प्रभुमायान्तम्	१२४	स्यानाध्ययनमध्याय	१६३	स्यादारेका च पटवमं-	२८२
सोऽञ्चल शिखरोपान्त-	६७	स्यानान्येतानि सप्त स्फु	२४५	स्याद्दण्डञ्चत्वमप्येवम्	३१४
सोऽढुमकं ललस्तेजो	४११	स्थानेऽप्यस्मिन्वपादेनम्	४८७	स्याद्देवब्राह्मण्येति	२६५
सोऽज्जप्यत तपस्तप्त	२१४	स्यालीना कोटिरेकोकना	२२६	स्याद्विरामिपभोजित्वम्	३११
सोऽपला नृञ्जकैर्दुःश्याम्	२३३	स्थित प्राक्तनरूपेण	४८६	स्याद्विरामिपभोजित्वम्	२७१
सोऽर्था त्व ममादायि	५०१	स्थितश्चर्या निपद्याम्	२११	श्यावी मदगुको दीप	२५७
सोऽदाद् विगुडमाहारम्	३२५	स्थितस्तत्र स्मरन्नेवम्	४८८	स्व ग्राममृगण्येण	४८४
सोऽधीतो पदविद्यायाम्	३२८	स्थिता पश्चिमपादाभ्याम्	४०३	स्व मणिसनेहृदीपादि-	२८५
सोऽङ्गुह्य ततो लब्धा	२५२	स्थिता तत्रैव सा भीति	४१६	स्व स्वापनेयमुचितम्	२८६
सोऽज्जल पुरे चरेत् पाश्याम्	२४६	स्थिता सामयिके वृत्ते	१६२	स्व स्वाम्यमैहिक त्यक्त्वा	२८५
सोऽज्वय स पिता तादृक्	४२०	स्थित्वा महेश्वरतोऽपि	३८१	स्वनामिनीभिरारण्य-	१६२
सोऽज्वीय वक्ति चेदेवम्	१७४	स्थिरप्रवृत्तितत्त्वानाम्	६६	स्वगुलान्मुलुनानीव	१५५
सोऽप्रदान सामादो	१८०	स्थूलनीलोत्पलावद्वस्फुरद्-	३७१	स्वगुणोत्कर्षितं त्यक्त्वा	२८७
सोऽप्रत्यगमोपान्ते	१३	स्तनपनोदकघोताङ्गम्	२४८	स्वगुरुस्थानमप्रान्ति-	२४४
सोऽपि प्राक् प्रतिपाद्यत	४७३	स्नेहनेष्टविमोगत्य	५०८	स्वगोहादिषु मम्प्रीया	३७४
सोऽपि सर्वं खगं सार्धम्	४०६	स्फन्दत्यन्दनचक्रोत्प-	३६२	स्वच्छ स्व हृदय स्फुट	८०
सोऽभिषिक्तोऽपि नीलिम्बतो	२२२	स्फुदाप्रपि महो नैव	२७६	स्वतटस्फटिकोत्पत्तं	१२४
सोऽभेद्यो नीतिचञ्चुत्वाद्	१७३	स्फुटद्वेषदुरोन्मुक्तां	८६	स्वतटाग्रयिणी घत्ते	१६
सोऽप्य चत्रभूतामाद्यो	४६	स्फुटमित्नीलतोद्देशो	८६	स्वतन्त्रस्य प्रभो मन्थम्	१८०
सोऽप्य नृजन्म सम्प्राप्त्या	२५६	स्फुटान्नीचोऽपि सद्बृत्तो	४१२	स्वदेव्या चित्रनेनायाम्	४८८
सोऽप्य भुजवनी बाहु-	१७२	स्फुटोत्तरणमस्यैव	३३६	स्वदेशे वासरम्लेच्छान्	३४६
सोऽप्य माधितवामार्थं	३२५	स्फुरज्य बज्रपाण्डम्	४६	स्वदेशोद्भवरेव मम्पुजितो-	५१४
सोऽप्यमष्टापदैर्जुष्टो	१३५	स्फुरदाभरणोद्योत-	१७६	स्वदेशोद्भवरेव मम्पुजितो-	१८२
सोऽस्त्यमीया च	३४६	स्फुरद्गम्भीरनिर्घोष	१४१	स्वदेशोद्भवरेव मम्पुजितो-	१५४
सीभाष्येन यदा स्ववशनि	४२३	स्फुरन्मणितोपान्त-	१३५	स्वपूर्वापरकोटिभ्याम्	१२२
सीधोत्तुङ्गावृत्ता भास्वद्	४४०	स्फुरन्मोर्वोरवन्मन्य	४६	स्वप्नाना द्वैतमस्यम्यद्	३२१
सीनन्दवास्यमस्याभूद्	२३५	स्फुरत्परपमग्नात-	८३	स्वप्नानेव प तान्येतान्	३२३
सीरभेयान् स दृश्याय-	११	स्फुरत्युत्पशाद्विन-	१६६	स्वप्राच्यमवगच्छन्म्यम्	६६२

स्वप्राणनिविशोपश्च	२५८	स्वास्वं शस्त्रेनभोगानाम्	४०१	हा दुष्टं श्रुतमित्युच्यं	२०६
स्वप्राणव्ययसन्नुष्टं	४०६	स्वाहांत सत्यजाताय	२६४	हा मे प्रभावतीरमाह	४१६
स्वभावदुर्गमे तद्भ-	११७	स्वीकुर्वन्निन्द्रियावासासम्	३३६	हा मे प्रभावतीत्येतद्	४१६
स्वभावपक्षे चारिभन	१७३	स्वीकृतस्य च तस्य	३४१	हाराशान्तस्तनाभोग-	२२३
स्वभावमुभया दृष्टहृदया	४३६	स्वीकृत्य धयनाध्यक्षम्	४१०	हारिगीनस्वनावृष्टं	१३
स्वमुक्तिक्षेत्रसोमानम्	१२४	स्वदश्विन्दुभिरावद्ध-	२७	हारिभि किन्नरोद्गीतं	१६
स्वभ्यस्तात पञ्चमादङ्गाद्	१६३	स्वेन मूर्ध्ना विभत्येप	१२३	हारोऽपमतिरोच्यते	५०
स्वय कस्यनिकेतस्य	१२५	स्वैर जगृहुरावासासम्	६६	हाम्नितास्य पुर तत्र	३५८
स्वय च सञ्चितताघाति	४२५	स्वैर न पपुरम्भासि	७४	हा हतोऽसि चिर जन्तो-	४४२
स्वय तदा समालोच्य	४८२	स्वैर नवाध्वुपरिपीतमयल-	७६	हिमचन्दनसन्मिथ-	४४६
स्वय धीतमनाद् व्योम-	५	स्वीचितासनभेदानाम्	२८५	हिमवज्जयशसीनि	१२१
स्वयप्रभ सुरस्तस्माद्	५०८	स्वीपधानाद्यनादृत्य	२८५	हिमवत्पद्मयोगेन्द्रया	३६४
स्वय मनोह्र वीर्या	४४८	स्वीक्ते प्रयुक्ता सर्वे	३५२	हिमवद्विजयोद्देशी	२२२
स्वय महाश्वयत्वेन	३३२			हिमवद्विधृता पूज्याम्	१३
स्वय व्यभूयतास्योच्यं	२१८			हिमवानमगुत्तुज	१२२
स्वय स्तनिववेगोऽती	४८२			हिमाचलमनुप्राप्त	११६
स्वयमर्धपथ गत्वा	३७४			हिमाचलस्यमेध्वस्य	१२१
स्वयमर्पितसर्वस्वा-	६४			हिमानिलै कुचोत्कम्पम्	२३०
स्वयमागत्य केनान	४३८			हिरण्यवर्मण्य सर्व	४६२
स्वराज्यमधिराज्ये	२६०			हिरण्यवर्मणा ज्ञातजन्मना	४६०
स्वर्ग समुदपद्येताम्	४६८			हिरण्यवृष्टि धनदे	२५६
स्वर्गाशानश्रियमिव हृषति	५५			हिरण्यसूचितोत्कृष्ट-	२५६
स्वर्धुनीशोकरस्तादि-	८			दृम्भारवभृतो वत्मान्	६
स्वधुनीशोकराचार-	१२६			हृतसरसिजसारै-	४४५
स्वलक्षणमनिर्देश्यम्	२८५			हृतालिकुलकडकार	२३१
स्वतदमीव्याप्तमर्वाग	३७८			हृत्वा सरोऽम्बुकरिणो	७६
स्वविमानद्विदानेन	२५७			हृदये त्वयि सन्निधापिते	४२२
स्ववृत्तास्त समाख्याय	५०२			हृदि धममहारत्नम्	३५४
स्वमार च नमोर्ध्व्याम्	१२८			हृदि नाराचनिभिप्रा-	४०६
स्वमीभायवदान् सर्वान्	३७६			हृदि निभिप्रनाराचो	४१६
स्वमतीशदाक्चुनव्योम-	१२५			हृद्यै ससारसारावै	१६
स्वाग प्रमाजनायैऽग्या-	२१७			हृष्ट सुप्रभया वामा	४२५
स्वाङ्ग यत्तुगमाऽन्त्येवो	२१७			हेत्वाजायुक्तमद्वैतम्	२७०
स्वाद्देवैर्गुणै गमिद्विम्	३७४			हेमपत्राद्विजतो तन्व्या	२२६
स्वाद्य धामुनव्याग्यम्	२३६			हेमस्तम्भाप्रविन्यस्त-	१३७
स्वाध्यायमिव वृषागाम्	८३			हेमाद्गद सरोऽदयम्	४४१
स्वाध्याययागमगता-	१६७			हेमाद्गदवृ मारेण	४३४
स्वाध्यायेन भवाराध	१६२			हेमाद्गदगुणैःतुषी	३६४
स्वानुगम त्रये ध्यवतम्	५०१			हयोपेयविवेक व	४३७
स्वामिसम्मानदानादि-	८०६			हेमनीयु विद्यामान-	१६५
स्वार्माऽन्त्यायदन्त्यादि-	८८६			हेषदृष्टपीडकजनै	१३
स्वायन्स्वागुणान्तरात्	८८०			हृदयारय पुर प्रत्यद्	१२३
स्वायाम गन्प्रविश्याप्यं	८३६			हृदयवृत्तागुणानुष्ठा	२७

ह

हसपीत इवान्विच्छन्

१८६

हिसपीत इवान्विच्छन्

१८६

हसयूनाटजविञ्जल्य-

१०

हिसयूनाटजविञ्जल्य-

१०

हसस्वनानकाकाश

३

हसस्वनानकाकाश

३

हसा कलमपण्डेषु

२६

हसा कलमपण्डेषु

२६

हसोऽय निजसावाय

२०

हसोऽय निजसावाय

२०

हटस्पटकुटीकोटि-

४३४

हटस्पटकुटीकोटि-

४३४

हत एव सुतो भर्तु-

४२०

हत एव सुतो भर्तु-

४२०

हतानुचरभार्याय

४८८

हतानुचरभार्याय

४८८

हत्वा भूमो विनिक्षिप्त-

४७१

हत्वा भूमो विनिक्षिप्त-

४७१

ह्यान् प्रतिष्कन्तीकृत्य

४०३

ह्यान् प्रतिष्कन्तीकृत्य

४०३

ह्येनेव दुरारोहाज्जये-

४२६

ह्येनेव दुरारोहाज्जये-

४२६

हरन् कश्चिदकार-

४४४

हरन् कश्चिदकार-

४४४

हरिणीभिक्षितेज्वेता

२५

हरिणीभिक्षितेज्वेता

२५

हरितैरद्वरै पुणै

२४०

हरितैरद्वरै पुणै

२४०

हरिद्रारश्मिजतदमधु

२८

हरिद्रारश्मिजतदमधु

२८

हरिर्मगिणप्रभाजाले

१३२

हरिर्मगिणप्रभाजाले

१३२

हरिर्मगिणप्रभोत्सर्पे

४४

हरिर्मगिणप्रभोत्सर्पे

४४

हरिर्मगिणप्रभोत्सर्पे

८५

हरिर्मगिणप्रभोत्सर्पे

८५

हरिर्मगिमयस्तम्भ-

१७७

हरिर्मगिमयस्तम्भ-

१७७

हरिवाहननामाद्यो

५०६

हरिवाहननामाद्यो

५०६

हरीप्रसरनिभिप्रा-

१३४

हरीप्रसरनिभिप्रा-

१३४

हवि पीयूषपिण्डेन

२१८

हवि पीयूषपिण्डेन

२१८

हविष्णाके ष धृष्टे च

३०१

हविष्णाके ष धृष्टे च

३०१

हयार्तमिव पेनीर्धे

६०

हयार्तमिव पेनीर्धे

६०

हमिनत्रेऽवन्त्रे ध

३२८

हमिनत्रेऽवन्त्रे ध

३२८

हमिन्त्रा पदरक्षादि

१०३

हमिन्त्रा पदरक्षादि

१०३

हारयदवर्णपत्योपयम्

१६८

हारयदवर्णपत्योपयम्

१६८

हम्यदवर्णपत्यादानम्

६२

हम्यदवर्णपत्यादानम्

६२